महाभारत भाषा

शान्तिपर्व

राजधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म

जिसमें

युत्तम विधान से नीतिपंथ प्रजापालन परोपकार शरणागत भय-
हरण काम क्रोध लोभ मोहादि विषय निवारण साम दाम
दंड भेदादि षट्सम्पत्ति साधन योगसमाधि कथन ईश्वरा
राधनासक्त सर्वाहंकार द्वेष ममतादित्यक्त ध्यान
धारणा अन्तरङ्ग वहिरङ्ग साधनादि अनेक
मार्ग से मोक्षमार्ग प्राप्त्युपाय वर्णित है ॥

जिसको

विद्वंशावतंस मुंशी नवलकिशोरजी ने अपने व्यय से आगरापुर
मलपंडीनिवासि श्रीपण्डित कालीचरणजी से संस्कृत महाभारत
का यथातथ्य पूरे श्लोक श्लोक का भाषानुवाद कराया ॥

तीसरी बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छापागया
सन् १९१२ ई० ॥

शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र ॥

शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र।

शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र।

आपद्धर्म्म।

इति श्रीमहाभारतशान्तिपर्वणः सूचीपत्रं समाप्तिं पफाणेतिशम् ॥

अथ महाभारत भाषा ॥

शान्तिपर्व ॥

राजधर्म ॥

सो० गणपति इष्टमनाय सुमिरि भवानी शंकरहिं ।
भाषा कहौं बनाय शांतिपर्वकी वार्त्तिकहि ॥

पहिला अध्याय ॥

वैशम्पायन मुनिबोले कि हे राजन् ! श्रीगङ्गाजी के तटपर अपने सुहृदों को जलदानादि क्रिया करके सब पाण्डव विदुर धृतराष्ट्र और सब गतरूपास्त्रियों समेत पुर के बाहर एकमासतक निवास करतेभये वहां व्यासदेव, नारद, देवल, देवस्थान, कण्व इत्यादि बड़े २ मुनीश्वर और वेद के जाननेवाले बुद्धिमान् महात्मा अनेक ब्राह्मण लोग भी अपने २ शिष्यों समेत युधिष्ठिर के देखने को आये और देशकाल के सदृश राजा युधिष्ठिर ने उनका पूजनकिया राजा की पूजा को स्वीकार करके उस को मध्य में कर चारोंओर वृत्ताकार विराजमानहुये और शोकग्रस्तकुरुपति राजायुधिष्ठिर का आश्वासन किया उससमय कृष्ण द्वैपायन आदि मुनियों समेत नारदजी बोले कि हे राजन्, धर्म ! तुम बड़े भाग्य शाली हो तुम ने केशवजी की सहायता और अपने सुधर्म्म बल से प्रबल शत्रुओं को मार सम्पूर्ण पृथ्वी को विजयकिया और प्रारब्ध से महाभयकारी घोर युद्ध से निश्चिन्त्य हो आनन्द प्राप्तकिया अब ऐसी विजय को पाकर क्यों शोच में पड़े हो शास्त्र में लिखा है कि क्षत्रियधर्म्म के जाननेवाले को विजयपाकर शोक करना उचित नहीं और तुमने तो बहुतसमयतक धर्म्महीका पालन किया परन्तु उन्हों ने सदैव तुम्हारे साथ हठधर्म्मीही करी अर्थात तुमने सब

प्रकार से उन को समझाया परन्तु वह न माने अन्त को लाचार होकर युद्धही करना पड़ा और क्षात्रधर्म्म करके भूमिधन राज्यप्राप्तकिया अबतुम्हारा खेद करना क्षत्रियधर्म्म के विपरीत और अन्याय है तुम को अपना अहोभाग्य समझकर आनन्दकरना उचित है यह नारदजी के वचन सुनकर राजायुधिष्ठिर बड़ेविचार के साथबोले और नारदजी से कहनेलगे हे नारदजी! आप के वचन सब यथार्थ और योग्य हैं और यह निश्चय है कि श्रीकृष्ण की कृपा से और ब्राह्मणों के आशीर्वाद और भीमार्जुन के भुजबल से मैंने विजय पाकर समस्त पृथ्वी को पाया और प्रबलशत्रुओं को भी दलसमेत परास्त किया परन्तु हे मुनिवर! ज्ञातिबन्धु और गुरुजनों का जो क्षयहुआ वह दुस्सह दुःख मेरे अन्तःकरण को बहुतपीड़ा करता है हाय इसयुद्ध में अभिमन्यु और द्रौपदी के अज्ञानी प्यारेबालकों का नाश और गुरुजनों में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य आदि बड़े २ अतुलपराक्रमी और तेजस्वीसर्दार और महाबली अतिरथी अतुलपराक्रमी मेरासहोदर भाईकर्ण जिसकागुण पराक्रम वर्णन नहीं कियाजाता इनसबको बधकर के विजयप्राप्त की सो महादुःखदायी मालूमहोती है यह विजय अजय के तुल्य है यह कठोर विजय मेरे हृदय को यम की स्त्री के सदृश पीड़ित करती है जिन के पतिपुत्र बिचारे संग्राम में मरे वे स्त्रियां कैसे धीरज रक्खेंगी और श्रीद्वारकानाथ द्वारका को जायँगे तब वधू सुभद्रा अपने प्यारे भैयाकृष्ण से क्या कहैगी और जिस के पुत्र और प्यारे भाई दोनों मारेगये वह द्रौपदी मेरेहृदय को बारंबार पीड़ित करती है॥

दो० सुमुखि सुभद्रा द्रुपदजा कैसे धरि हैं धीर।
मरेपरमप्रियजासु सुत बन्धुविदितरणधीर॥

हे नारदजी! मैं अपने दुःखों को कहांतक कहूं कि मेरा कर्णसरीखा भाई जो युद्ध में अद्वितीय दशसहस्र हाथियों का बल रखनेवाला महारथी था उस के मरने का महादुःख मेरेहृदय को बड़ीही पीड़ा देता है प्रथम हमनहीं जानते थे कि कर्ण हमारा सहोदर भाई है माता ने प्रथम नहीं कहा यह वार्ता मैं यथार्थही आप से कहता हूं जो कदाचित् पहिले से हम जानतेहोते तो उस से स्नेह प्रीति बढ़ाकर आपत्तियों को मिटादेते वह कर्ण महाबुद्धिमान्, सत्यवादी, दानी, दयावान्, महाबली और पराक्रमी था और धृतराष्ट्र के पुत्रदुर्योधन का महाप्यारा प्राणरक्षक था और अपनी हस्तलाघवता से हरएक युद्ध में हमसब का अपमान करनेवाला था उस को जन्मते ही हमारी माता कुन्तीने एक पिटारी में बंद करके श्रीगङ्गाजी में बहादिया था जिस को यहां के लोगों ने सूत का और राधाका पुत्र माना वास्तव में वह कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र हमारा बड़ा भाई था वह सुभराज्यके लोभी अज्ञानी के कारण मारागया मैं और मेरे भाई भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव

कोई भी इसभेद को नहीं जानते थे परंतु वह सुंदर व्रतरखनेवाला कर्ण हम को जानताथा क्योंकि हमने सुनाहै कि हमारी शुभचिन्तक कुंतीमाता हमारी रक्षाके लिये उसके पासगई और कहा कि तू मेरापुत्र है सूर्य ने कृपा करके तुझको दियाथा तब भी उस महात्मा ने कुंती का मनोरथ पूरानहीं किया परंतु यह भी सुना कि उसने पीछे से माता से कहदिया कि मैं राजा दुर्योधन का साथनहीं छोड़सक्ता जो कदाचित् मैं तेरेकहने से युधिष्ठिर से मिलापकरलूं तो मुझे सब लोग नीच और विश्वासघाती आदि अनेक दोषलगाकर यह कहेंगे कि यह अर्जुन से भयभीत होकर युधिष्ठिर से जामिला इसकारण हे देवि ! मैं श्रीकृष्ण समेत अर्जुन को विजय करके युधिष्ठिर से मिलाप करूंगा यह सुनकर कुंती ने कर्ण से कहा कि जो तुझेयहीहठ है तो अर्जुन के सिवाय चारों को अभय करके अर्जुन से इच्छापूर्वक युद्ध करियो तब उसबुद्धिमान् कर्ण ने हाथजोड़ेहुये कुंती से कहा कि मैं अपने बसाते तेरेचारों पुत्रों को नहीं मारूंगा और हे माता ! तू काहे को अधीर होती है तेरेतो पांच ही पुत्र चिरंजीवि रहैंगे कैतो युद्धमें अर्जुन मुझे मारेगा या मैं अर्जुन को दोनोंमें से एकरहैगा पुत्रोंपर दयाकरनेवाली माता फिर बोली कि हे पुत्र ! जो तू इनका कल्याण चाहता है तो रक्षाही करियो ऐसा कर्ण से सत्य २ कहकर कुंती घर को गई ऐसा मेरासहोदर भाई अर्जुन के हाथ से मारागया हे मुनियों में श्रेष्ठ, नारदजी ! मैंने अपने सहोदर भाई कर्ण को पीछे से माता के वचनों से जाना इसी से मुझभाई के मारनेवाले का हृदय बहुत खेदपारहा है क्योंकि जो मेराभाई कर्ण भी जीतारहता तो मैं कर्ण और अर्जुन की सहायता से इन्द्र को भी जीतलेता और सभा में धृतराष्ट्र के बिचारे निर्बुद्धी पुत्रों से मुझदुखिया को क्रोध अकस्मात् उत्पन्नहोगया कि द्यूतसभा में दुर्योधन का शुभ चाहनेवाला कर्ण जब मुझसे कटुवचनों को बोलता उससमय मेरा क्रोध उस कर्ण के चरणों को देख २ कर दूरहोजाता था क्योंकि कर्णके दोनों चरण कुन्ती के चरणों के सदृश थे मैं अपनी बुद्धि से जब कुन्ती की और उसकी तुल्यता का कारण शोचता तो किसी प्रकार का हेतु नहीं समझ में आता था युद्ध में उस के रथ के पहिये को जो पृथ्वी ने पकड़ा और दबाया हे नारदजी ! इस का हेतु आप मुझ से कहिये उसमेरे भाई को किसने किस अपराध के कारण शाप दिया सो समझाकर कहिये क्योंकि आप त्रिकालज्ञ हैं संसार के कार्य्य कारण को जानते हैं और ब्रह्मज्ञानी हो इसी से आप के मुख से ठीक २ वृत्तान्त सुना चाहता हूं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेयुधिष्ठिरनारदसंवादेकर्णाभिज्ञानोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि जब नारद से युधिष्ठिर ने ऐसा प्रश्न किया तब महा-वक्ता श्रीनारदजी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, महाबाहो, युधिष्ठिर! तुम्हारे भाई कर्ण को परशुरामजी का जैसे शापहुआ वह मैं कहता हूं तुम चित्तलगा-कर सुनो कि जो तुम कहते हो कि युद्ध में कर्ण और अर्जुन की कोई शत्रुता न थी यह केवल देवताओं की गुप्त बात है सो ठीकही जानो वह वृत्तांत मैं क-हता हूं तुम अच्छे प्रकार से समझो हे युधिष्ठिर! पूर्वकाल में देवताओं में यह विचार गुप्तहुआ कि यह क्षत्रियों का समूह अधिक होगया है वह शस्त्रों से प-वित्रहोकर कैसेस्वर्ग को पावे इसनिमित्त शत्रुता की अग्नि का उत्पन्न और प्रकाश करनेवाला यह कन्या का पुत्र कर्ण उत्पन्न कियागया और वह महा-तेजस्वी बालक सूत का पुत्र कहाया और तरुण होकर द्रोणाचार्य्य गुरु से धनुर्वेदपढ़ा उससमय भीमसेन की सबलता और अर्जुन की युद्ध में हस्तलाघ-वता और हे राजेन्द्र! तुम्हारी बुद्धिमत्ता और नकुल सहदेव की पाण्डित्यता और नम्रता और श्रीकृष्ण अर्जुन से बाल्यअवस्था की मित्रता और प्रजा का अनुराग इत्यादि अनेक बातों को देखदेखकर हृदय में जलता था इसीहेतु से इसने बाल्यअवस्था से ही राजा दुर्योधन से मित्रता अङ्गीकारकरी और प्रार-ब्धाधीन अकारणदैवइच्छा से तुम से ईर्षाभाव रखता था अर्जुन को धनुर्वेद में अधिक पराक्रमी जान के अपनेगुरु द्रोणाचार्य्य से एकांत में जाकर विनयपू-र्वक बोला कि हे गुरुदेव! मेरा यहविचार है कि मैं अर्जुन से युद्धकरने को आप से ब्रह्मास्त्रविद्या रहस्य प्रयोग संहार समेत सीखूं इसमेरे मनोरथ को आप पूर्ण करें आप महात्मा हैं आपकी प्रीति पुत्र और शिष्यों में समान है आपकी कृपा से मुझे कोई पण्डित अकृतास्त्र अर्थात् बे शस्त्रवाला न कहैं द्रोणाचार्य्यजी ने जाना कि यह अर्जुन से शत्रुता रखता है इसकारण कर्ण से क्रोध में आकर कहा कि तू अल्पबुद्धि है और बुद्धि के तुल्य वर्ती। ब्राह्मण ही ब्रह्मास्त्र पासक्ता है अथवा तपस्वी क्षत्रिय को भी प्रयोग करना योग्य है और शूद्र को तो उसका अधिकार भी नहीं है तुमअपने योग्य ही वस्तुओंको मांगो जबकर्ण ने अङ्गिराकुल भूषण द्रोणाचार्य्य का यह वचनसुना और सिद्धांत को जाना तो उसीसमय द्रोणाचार्य्य को दण्डवत् करके बड़े अहंकार से महेंद्रगिरि पर्वतपरगया वहां प-रशुरामजी को साष्टांग दण्डवत् करके बोला कि हे महाराज! मैं भार्गव ब्राह्मण हूं आपकी प्रशंसा सुनकर शरण में आया हूं फिर परशुराम जी ने नामगोत्र प्रवर वेदइत्यादि सबबातें पूछकर अपनी शिष्यता में अङ्गीकार किया और बड़ी प्रीति से कहा कि किसकारण आप का आनाहुआ तब वह बोला कि हे महाराज!

धनुर्वेद पढ़ने को आया हूं तब प्रसन्न होकर कहा कि हमतुम को पढ़ावेंगे और सिखावेंगे और आज्ञा की कि आनन्द से रहो यहआज्ञा पाकर कर्ण उस स्वर्ग के तुल्य महेंद्र गिरिपर रहने लगा और वहां रहते हुये गन्धर्व, राक्षस और यक्षों से मेलहुआ और परशुरामजी से बुद्धि के अनुसार शस्त्रसीखे और देवता, दानव, दैत्यों से प्रीतिहुई तिसपीछे वह सूर्य्य का पुत्र कर्ण आकाश के समीप समुद्र के तटपर हाथ में कभी खड्ग कभी धनुष लिये वन में अकेला घूमाकरता था एकदिवस फिरते २ दैवयोग से उसने धोखे से मृग जानकर किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण की होमधेनु को बाण से मार डाला और धेनु के समीपजाकर मनहीमन में पछिताकर और उस के स्वामी उस अग्निहोत्री मुनि को क्रोधित जान उनके चरणपकड़ प्रार्थना करनेलगा कि हे स्वामिन् ! मृग की भ्रांति से यह गौ हमारे बाण से मारीगई इससे आपबड़े हैं क्षमा कीजिये क्योंकि बड़ेलोग छोटे उत्पाती बालकों पर सदैव कृपाकरते हैं और पण्डित लोग धोखे से हुये पाप का दोषनहीं मानते यह सिद्धांत समझ के मेरीविनय को अङ्गीकारकर क्षमा करिये कर्ण के ऐसेवचन सुन के वहक्रोधयुक्त होकर बोला औ शापदिया कि हे मूढ, शठ, अबोध ! तू अवश्य बधने के योग्य है और मूर्ख ! तू जिस के जीतने के लिये धनुष विद्या सीखकर अभ्यास करता है अथवा जय की आशा करता है जब उस के साथ अथवा किसी देवता से युद्धकरे गा उसीदिन तेरा यहपाप शिर घुमाकर प्रकट होगा और तेरे सुन्दर रथ के चक्र को पकड़कर भूमि ग्रसलेगी और चक्र के ग्रसते ही तुझ व्यग्रचित्त का शिर तेराशत्रु अपने पराक्रम से काटडालेगा हे नराधम ! तूचला जा तब उसशापित कर्ण ने बहुत से रत्न और गौदेने को कहकर चाहा कि शाप शान्त हो परन्तु न माना और कहा कि मेरे वचनों को कोई भी मिथ्या नहीं करसक्ता तुमजाओ या ठहरो अथवा अपना कार्य्य करो जब इसप्रकार ब्राह्मण के वचन सुने तब भावीप्रबल जानकर शाप के दुःख से शिरनीचाकर के भयभीत हो शाप को शोचता हुआ कर्ण चला आया ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेकर्णशापोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! कर्ण परशुरामजी के निकट आकर पहिले के अनुसार रहनेलगा और भार्गवजी की सेवा समय २ पर जैसी कि उचित है रात्रिदिन करनेलगा तब परशुरामजी ने उस का विक्रमबुद्धिगुण और श्रेष्ठकर्म जानकर उसको शुभअंगों सहित ब्रह्मास्त्रदिया और अच्छे प्रकार से धनुर्वेद पढ़ाकर बड़ा चतुर किया और ऐसा विश्वास उसपरबढ़ाया कि तप से और

व्रतों से जब निर्बल होते थे तो परशुरामजी जो कि बड़े बुद्धिमान् थे कर्ण के साथ कभी २ आश्रम के सन्मुख घूमाकरते थे और शान्त होकर इस के सहारे से आराम भी कियाकरते थे एकदिन अधिक थकित होकर कर्ण की बगल में अपना शिरधर के सोगये थे कि दैवयोग से हे युधिष्ठिर! अकस्मात् मांस, मज्जा, कफ, रुधिर आदि का खानेवाला एक महाभयानक कीड़ा जिस का स्पर्श भी अत्यन्त कठोर था कर्ण के समीप आया और उस की जंघा को अपने तीक्ष्ण दांतों से काटा परन्तु उस महावीर कर्ण ने गुरु के भय से कि मत कभी मेरे देह के हिलाने चलाने से गुरु की निद्रा जाती रहे इसलिये उस के हटाने और मारने का कोई उद्योग नहींकिया और उसीप्रकार कीड़े से काटीहुई जंघा समेत वह सूर्य का पुत्रकर्ण जरा भी न हटा धैर्य से उस महाक्लेश को सहाकिया और गुरु के शिर को धारण कियेरहा जब उस के रुधिर से उस का सबदेह भीजगया तबतो तपोमूर्ति परशुरामजी निद्रा से जगकर महापीड़ितहुये और शीघ्रही बोलउठे कि बड़े आश्चर्य्य की बात है कि मेरा देह अपवित्र कैसे होगया और कर्णतुझ से यह पूंछता हूं कि यह तैंने क्याकिया भय को त्याग सत्य २ कहो तबतो कर्ण ने उसकीड़े का काटना उन से वर्णन किया और परशुरामजी ने भी उस शूकरसमान कीड़े को देखा कि जिस के आठपावँ तीक्ष्णदाढ़ सुई के सदृश सिमटाहुआ और घनेवालों से ढकाहुआ अंग जिस का बड़ा भयानक रूपभल्लूक नाम कीट था उसने तपोमूर्ति परशुरामजी का जैसेही दर्शन किया तो उसीक्षण प्राणों को त्यागकर ऐसा आश्चर्य्यकारी भयानक रूप धारण करलिया कि जिस की लाल गर्दन मेघपर सवार राक्षसदेह आकाश में निराधार खड़ाहुआ दीखा और परशुरामजी को हाथ जोड़ेहुये आनन्द चित्त होकर बोला कि हे भृगुवंशियों में मृगेन्द्ररूप, परशुरामजी, महाराज! आप का कल्याण हो मैं आप के दर्शनों के प्रभाव से इस महाघोर नरक से छूटकर उद्धार हुआ और हे मुनिश्रेष्ठ! आप की कृपा से मैं अपने स्थान को जाऊंगा और आपने जो मेरा अभीष्ट सिद्धकिया इस से आप के चरणों को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक आप को चाहता हूं कि आपका ईश्वरभला करै यहसुनकर प्रतापी श्रीपरशुरामजी बोले कि तुम कौन हो और कैसे नरक में पड़े इस का सब वृत्तान्त हम से वर्णनकरो वह बोला कि हे महात्मन्! मैं प्रथम सतयुग में दंशनाम महाअसुर था और भृगुजी के समान मेरी अवस्था थी उससमय मैंने अपने पराक्रम से भृगुजी की प्यारी स्त्री को हरलिया था तब वह आप के पितामह भृगुजी महाक्रोधित होकरबोले कि अरे मूत्र, कफ, रुधिर, मज्जा के खानेवाले, दुष्ट, पापी! तू नरक के योग्य है उन का शाप होते ही हे महर्षे! मैं ऐसी सूरत का कीड़ा बन पृथ्वीपर गिरपड़ा तब मैंने प्रार्थना करके पूछा कि हे ब्रह्मन्! मुझ अपराधी का शाप कब छूटेगा तब उन्हों

ने कहा कि जब भृगुवंशीय परशुरामजी का दर्शन पावे गा तब तू शाप से मोचन होगा सो अब मैं उन्हीं के वचनों के अनुसार आप के चरणों का दर्शन पाकर इस कल्याणरूपी गति को प्राप्तहुआ ऐसा कहकर वह परशुरामजी को प्रणामकर चला गया फिर परशुरामजी ने क्रोध में आकर कर्ण से कहा कि अरे मूर्ख ! यह महादुःख है ब्राह्मण इस कष्ट को कभी नहीं सहसक्ता तू छल करके ब्राह्मण बना है तेरा धैर्य्य क्षत्रिय के तुल्य है इस से तुम छल त्यागकर सत्य २ यथार्थ कहो तब शाप से भयभीत होकर उनकी प्रसन्नता के अनुकूल कर्ण ने उत्तर दिया कि हे भार्गव ! मुझे ब्राह्मण क्षत्रिय से भिन्न सूत जानो और इसलोक में लोग मुझ को राधा का पुत्र कर्ण कहते हैं और हे महात्मन् ! आप दया करके मुझअस्त्रों के लोभी पर अनुग्रह करो आप वेद और धनुर्वेद के देनेवाले गुरुपिता के तुल्य हैं मैं निःसन्देह सूत हूं मैंने अस्त्रों के लोभ से आप से अपना भार्गवगोत्र कहा तब तो महाक्रोधाग्नि में जलते हुये परशुरामजी ने उस हाथबांधे आधीन खड़ेहुये कर्ण से कहा कि जिस प्रकार से तैंने अस्त्रों के लोभ से अपना भेदछुपाया अरे मूर्ख ! इसी अपराध से यहब्रह्मास्त्र सीखाहुआ तुझ को समय पर याद न आवै गा और अपने बराबरवाले के साथ युद्धकरने के समय स्मरण रहेगा कि वेद कभी ब्राह्मण से भिन्न किसी अन्यजाति में अचल और दृढ़ नहीं होगा अब तुमजाओ तुम सरीखे मिथ्यावादियों के लिये यहांकोई स्थान नियत नहीं है पृथ्वीपर युद्ध में तेरेसमान कोई क्षत्रिय नहीं होगा जब परशुरामजी ने ऐसे वचन कहे तब वह नम्रतापूर्वक न्याय और धर्म्म की रीति से दण्डवत् कर चलाआया और दुर्योधन के पास आकर कहा कि मैं अस्त्र का जाननेवाला अद्वितीय हूं ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेभार्गवोक्तकर्णशापवरप्रदानयोर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, युधिष्ठिर ! वह कर्ण उनभार्गवनन्दन परशुरामजी से शाप और अस्त्र पाकर दुर्योधन के साथ में रहने को प्रसन्न हुआ और बड़े अहंकार से कुरुपति के साथ रहनेलगा तब हे राजन् ! कर्ण ने जो जो पराक्रम किये उन को सुनो कि प्रथमतो कलिंगदेश के श्रीमान् राजपुर नगर में राजा चित्रांगद के यहां उस की कन्या के स्वयम्वर में देश २ के बहुत से शूर राजा इकट्ठे हुये यह वृत्तांत सुनकर दुर्योधन भी अपने कंचन के रथपर सवार हो कर्ण को साथ लिये वहांगया उस स्वयम्वर में शिशुपाल, जरासन्ध, भीष्मक, वभ्रु, कपोत, रोमानील और दृढ़पराक्रमी रुक्मी और राजा सृगाल और स्त्रीराज्याधिपति अशोकशतधन्वा: वीरभोज इत्यादि तो यह और

अन्य बहुत से दक्षिण देश के राजा और म्लेच्छोंके आचार्य्य राजालोग और इसी प्रकार पूर्व्वोत्तर के अनेक भूपति सबसुवर्ण के बाजूबन्द आदि अनेक रत्न जटित भूषणों से अलंकृत तेजस्वी शुद्ध सुवर्ण के से वर्ण उन्नतदेह सिंहसमान पराक्रमी से मदोन्मत्त इकट्ठे हुये हे भरतर्षभ! उस स्वयम्बर में जब सब राजा लोग यथायोग्य आसनोंपर बैठाये गये तब वह राजकन्या हाथ में जयमाल लिये अपनी धात्री और क्लीबलोगों के साथ रंगभूमि में आई और राजाओं के नामगुण पराक्रम सुनाये गये तब वह कन्या हरएक राजा को देखती हुई चली और जो दुर्योधन को उल्लंघन करके दूसरे के समीप जानेलगी तो राजादुर्योधन उस अपमान को नहीं सहसका और सब राजाओं को तुच्छसमझ तुरन्त ही कन्या को रोंक हाथ पकड़ रथपर बैठाय कर्ण के साथ अहंकार और बल बढ़ाकर चल दिया तिस पीछे द्रोण भीष्म आदि से रक्षित उस की सेना भी चलदी राजा दुर्योधन का रथ सब शस्त्रों से भराहुआ था ऐसा कन्या का हरण देखकर सब राजालोग अपने २ रथोंपर चढ़चढ़ अपने शूरवीरों समेत बढ़ २ कर पुकारते हुये और कन्याभिलाषी राजालोगों ने दौड़ २ कर कर्ण समेत दुर्योधन के रथ को जाघेरा और क्रोध से भरकर कर्ण और दुर्योधन दोनों के ऊपर शस्त्रों की वर्षा ऐसे करनेलगे जैसे कि दो पहाड़ों के ऊपर बादल वर्षाकरे ऐसा देखकर कर्णसमेत राजा दुर्योधन भी बाणों की वर्षा करतेहुये सन्मुखहुये और महाघोर संग्राम होनेलगा उस समय कर्ण ने ऐसा घोर युद्धकिया कि गदा शक्ति धनुषधारी ध्वजा समेत रथोंपर चढ़ेहुये बाणों की वृष्टिकरते हुये अगणित राजाओं के सब शस्त्रों को काट २ पृथ्वीपर डालदिया और अनेक घोड़े, हाथी, रथों के सारथियों को मार २ अगणित योधाओं को गर्द मर्दकर मारे शस्त्र और बाणों से दिन की रात्रि कर महाघोर संग्राम किया और सब राजाओं को जीत विजयी बाजों को बजाताहुआ तब वह भयभीत राजालोग युद्ध को त्याग अपना २ जीवले रथों को भी त्याग घोड़ोंको हांकतेहुये अपने २ देशोंको गये और राजादुर्योधन कर्ण आदि सब साथियों समेत कन्या को ले विजय का शब्द करतेहुये हस्तिनापुरको आये ऐसा रणकर्कश और महाभट कर्ण था॥२१॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेकर्णवीरतावर्णनोनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥

नारदजी बोले कि कर्ण की और भी वीरता सुनाता हूं तुम चित्त से सुनो यह सत्य २ कहता हूं कि एक दिवस कर्ण की वीरता और पराक्रम सुन के चक्रवर्ती मगधदेश के राजा जरासन्ध ने दो रथोंसमेत युद्धमें बुलवाया दोनों एक २ रथपर सवारहुये और शस्त्र लेकर दोनों बड़े शस्त्रवेत्ता द्वन्द्वयुद्ध करने

लगे प्रथम तो धनुषबाण से अनेकप्रकार से युद्धकिया फिर शस्त्रों से ठहरा २ कर पुकार २ के कि भागोमत २ कहकर घोरसंग्राम किया फिर खड्ग धनुष भी डाल २ विरथ हो बाहु कण्टक युद्ध किया तब कर्ण ने ऐसा पराक्रम किया कि जरासन्ध की सन्धि को उखाड़नेलगा तब जरासन्ध ने अपनी देह की विपरीत दशा देखकर दूर से ही शत्रुता को त्यागके कहा कि हे कर्ण ! मैं तुझ से प्रसन्न हूं और सराहकर कहा कि तू बड़ावीर है और अपनी प्रसन्नता से अंगदेश समेत मालिनी नगरी दीनी तभी से कर्ण भी भूमिपति हो दुर्योधनके साथ शोभितहुआ और हे युधिष्ठिर ! वह कर्ण अंगदेशों का राजा कहलाया और शत्रुओं की सेना का मर्दन करनेवाले कर्ण ने चम्पानगरी की रक्षा की वह तुम भी जानते हो इसप्रकार वह कर्ण शस्त्रों के प्रताप से इसभूमिपर प्रधान शस्त्रवेत्ता हुआ ॥

चौ० कर्ण सकल जग जीतन लायक । जो नहिं शाप देत भृगुनायक ॥

और हे राजन् ! तेरी जय के लिये देवेन्द्र इन्द्र ने उस के दोनों कुण्डल और कवच अर्थात् बखतर उससे मांगे और देवमाया से मोहित उसदानी कर्ण ने देह के साथ उत्पन्न अपने कवच और दोनों पूजित कुण्डलों को उतार इन्द्र को देदिये तब कर्ण दोनों कुण्डलों और कवचों से रहित होगया इसी हेतु वह विजयी कर्ण श्रीवासुदेवजी के सन्मुख युद्ध में अर्जुन के हाथ से मारा गया ॥

दो० विप्र न देतो शाप जो कवच न लेत सुरेश ।
तोको करिके करण सों लहत विजय को लेश ॥

अर्थात् ब्राह्मण और महात्मा परशुरामजी के शाप और कुन्ती को वचन देने और इन्द्र की माया करके भूल से कवच कुण्डलों के देने से और संख्या में अतिरथी कहने से और भीष्मजी के कियेहुये अपमान से और राजा शल्य की ओर से तेजबल और बुद्धि की न्यूनता और वासुदेवजी की इच्छा से वह कर्ण रुद्र, इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर, देव, यक्ष, राक्षसों से वर पानेवाले और महात्मा द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य के दियेहुये दिव्य अस्त्रवाले गांडीव धनुषधारी अर्जुन के हाथ से वह सूर्य्य के सदृश तेजस्वी सूर्य्य का पुत्र होके भी मारागया इस से हे युधिष्ठिर ! वह तेराभाई कर्ण इसप्रकार से शापित होकर बहुतों से ठगागया हे नरोत्तम ! वह शोच के योग्य नहीं है जो क्षात्रधर्म्म को पालनकर संग्राम भूमि में महायुद्ध कर साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्णजी के सन्मुख मारागया ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेमृतककर्णवीरतावर्णनोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि नारद तो इतना वर्णन युधिष्ठिर से कहकर चुप होगये और युधिष्ठिर फिर भी शोक से पीड़ित हो दीन आतुरमन सर्प के तुल्य श्वास ले २ अश्रुपात डालताहुआ तब दुःख से हतचित्त कुंतीमाता ने देशकाल के सदृश मधुर वाणी से युधिष्ठिर से कहा कि हे युधिष्ठिर ! तुम ऐसे धर्म्मज्ञ ज्ञानी होकर कर्ण का शोक क्यों करते हो हे महाबाहो ! तुम शोकको दूरकर मेरे इनवचनों को सुनो कि मैंने उस कर्ण को पहिलेही भाइयों से प्रीतिकरने को प्रेरणा किया था और उस के पिता सूर्य्य ने भी बहुत समझाया और अनेक बार शिक्षा कीगई परन्तु वह हठी कर्ण नहीं माना इससे तुम शोकको त्यागो भावी बड़ी प्रबल होती है जो होनहार है सो अवश्य होता है उस का मेटने-वाला कोई नहीं यह माता के वचन सुनते ही अश्रुपात डालता युधिष्ठिर बोला कि हे माता ! तुम ने जो इस वृत्तांत को गुप्त रक्खा इसी से हम इस महाशोक में पड़े इससे मैं अब शाप देता हूं कि कोई स्त्री मंत्र और गुप्तभेद को अन्तःकरण में न छिपावे ऐसा स्त्रियों को शाप दे राजायुधिष्ठिर फिर सधूम अग्नि के सदृश होकर शांत होगये ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेकुन्तीयुधिष्ठिरसंवादेयुधिष्ठिर
दत्तस्त्रीशापवर्णनोनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि शांत होकर भी दुःखार्णव में डूबेहुये व्यग्रचित्त उस धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस महारथी कर्ण का स्मरण करके रुदन किया और दुःखदशा में उष्णश्वास लेकर अर्जुन को देखकर यहवचन कहा कि जो हमलोग वृष्णि, अन्धक क्षत्रियों के पुर में ही भिक्षा मांगते रहते तो काहे को जाति के मनुष्यों का नाश करके इस शोकदशा को पहुँचते हमलोग निश्चय करके प्रारब्धहीन हैं और हमारे शत्रु बड़े प्रारब्धी थे हमने बड़ा आत्मघात किया कि इस का फल अवश्य पावेंगे क्षत्रियों के बल पराक्रम क्रोध आदि को धिक्कार है जिसके कारण इस महाशोक में हमलोग पड़े हम से तो अच्छे वनचारी ही लोग हैं जो इन्द्रियों को जीत क्रोध हिंसा आदि से रहित होके वैराग्य को धारण किये पवित्रात्मा हो साधुरूप होते हैं और हम सब तो लोभ और भूल से दंभी और मानी होकर ऐश्वर्य पूर्वक राज्य भोगने की इच्छा करके इस महाघोर दुःखदायी अवस्था को प्राप्तहुये पृथ्वी के विजय के हेतु अपने भाइयों को मराहुआ देखकर त्रिलोकी के राज्यको भी हम धिक्कार मानते हैं सो हम पृथ्वी के लोभ से मारने के अयोग्य गुरुजन आदि भाइयों और अन्य बहुत से राजाओं

को वध करके इच्छा रहित बांधव मारनेवाले पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुये और अपने पुत्र पौत्र सखाओं को जिसके लिये वधकराया ऐसी पृथ्वी के पाने से कौन सुख है हमारी ऐसी दशा है कि जैसे श्वान अस्थि को चबाकर प्रसन्न होता है वैसे ही हम ने अस्थिरूपी राज्य को पाकर प्रसन्नता पाई ऐसा राज्य मुझ को नहीं भावता यह क्षत्रियों के वंश का नाश दुर्योधन की मति के विपरीत होने से हुआ और तुम लोगों ने भी इसी राज्य के लिये बड़ाभारी पराक्रम किया हम को राज्य, भूमि, घोड़े, हाथी, गौ और सुवर्ण रत्नों का ढेर तो मिलजायगा परन्तु वे मरेहुये भाईबन्धु न मिलेंगे जो राज्य की इच्छा करके अभिमान और क्रोध में भरेहुये कालवश हो यमलोक को गये देखो पिता माता भी बड़े २ जप पूजन पाठ आदि अनेक तपस्या ब्रह्मचर्य्यादि शुभकर्म करके ऐसे पुत्रों को चाहते हैं जो शुभकर्म करनेवाले हों और माता गौरी, गणेश, महादेव आदि देवताओं का व्रत यज्ञ मंगलगान करके ऐसेगर्भों को दश मास पर्य्यन्त धारण करती है जो जीवने पर ऐश्वर्य्यवान् हो अच्छी २ सन्तानों को उत्पन्न करें और इस लोक में अपने माता पिता को अनेक सुख देकर अन्त को पुन्नामादि अनेक नरकों से उद्धार करें जब उनके उत्तम कुण्डलधारी तरुण पुत्र पृथ्वीसम्बन्धी भोगों को न भोगकर और देव, पितृ, ऋषि इनतीनों ऋणों को न चुकाकर कालवश हुये तो निश्चय है कि वे यमलोक को गये इस से निश्चय होता है कि उनके माता पिता दोनों धन रत्नों की आकांक्षावाले थे तभी वह राजालोग मारेगये जो राजालोग अपने वांछित के प्राप्तिकी इच्छा और उसके न मिलने से दुःख और क्रोध में प्रवृत्तहोंगे वह कभी कहीं अर्थात् इसलोक, परलोक दोनों में कभी सुख न पावेंगे पांचाल और कौरवों में जो मारेगये वे तो सत्य ही मारेगये क्योंकि तृष्णासंयुक्त मरने से स्वर्ग को नहीं गये जो लोग तृष्णा से रहित हैं वह ऐसी दशा में इसलोक, परलोक दोनों में सुख भोगेंगे हम सब इस संसार की अनित्यता में अर्थात् संसार के नाश में कारणरूप समझेगये परंतु हमारा राज्य हरने से वह सब कारण मिथ्या निश्चय होता है क्योंकि वह शत्रुता रखनेवाला और कपट के द्यूत आदि से अपनी जीविका करनेवाला दुर्योधन हम शुभचिंतक लोगों के साथ मिथ्यावादी हुआ इसी से हम ने न उन्हों ने विजय पाकर अभीष्ट सिद्धक्रिया अर्थात् उन्होंने नतो इस पृथ्वी को भोगा और न स्त्रियों के गीतवाद्य सुने और न अपने इष्टमित्र और मंत्रियों के वचनों को सुना और वह मूल्यरत्न और भूमि की आमदनी के धन को भी न भोगा इसका यह हेतुहै कि हमारी शत्रुता से पीड़ित होके इसलोक का सुख न पाया उसधन को हमारे पास देखकर उस का मुख विगड़कर पीला होगया और राजा धृतराष्ट्रभी अनेक बातों से

विदित कियागया तब भी अन्याय की बुद्धि में प्रवृत्तहो पुत्रों की इच्छा को स्वीकार करके अपने पिता के तुल्य भीष्मजी और विदुरजी के कहने को भी न मानकर उनकी अवज्ञा के कारण निश्चय करके मेरे ही सदृश ऐसी महाघोर कुलक्षयरूपी दशा को प्राप्तहुआ कि जो महाभ्रष्ट अन्तःकरणवाले और हम से ईर्षा रखनेवाले दुराचारी लोभी अपने दुर्योधन आदि पुत्रों को न समझाकर अपने सगे भतीजों को राज्य से हत करके अपयश का भागी हुआ और हमारे महाशत्रु पापात्मा दुर्बुद्धि सुयोधन आदि वृद्धों को शोक की अग्नि में डालकर गया हमारे घराने का कौन सा भाई सुहृदजनों के मध्य में श्रीकृष्ण से ऐसे वचन कहसक्ता था जैसेकि उस दुराचारी महालोभी अभिमानी दुर्योधन ने कहे और हमलोग अपने तेज प्रताप से सब दिशाओं को विजय करके अपने भाइयों से बरसों तक शत्रुता त्याग करते रहे तो भी उस दुर्बुद्धि ने दुर्योधन की सलाह से पराजय पाई जिस से कि यह हमारा सब कुटुम्ब नाश हुआ हम ने मारने के अयोग्य भीष्मपितामह आदि को मारकर इस संसार में अपयश पाया इस घराने के नाशकरनेवाले दुर्बुद्धि पापात्मा दुर्योधन को राजाधृतराष्ट्र राज्य देकर अब पछताता है कि बड़े २ शूरवीर मारेगये और बहुत से पाप करके देश का नाश किया उनको मारकर सबका क्रोध दूरहुआ यह शोक मुझ को दबाता है हे अर्जुन ! क्या हुआ पाप तो पुण्यश्लोकों के द्वारा अथवा पाप का प्रायश्चित्तादि दान तप करके और राज्य को त्याग स्मृतियों के जपकरने से नाश होता है त्यागीलोग फिर पाप कभी नहीं करसक्के यह स्मृति है त्यागीमनुष्य जन्म मरण से भी छूटजाता है अर्थात् मुक्त होजाता है यह भी श्रुति है कि तब वह योगमार्ग का पानेवाला ब्रह्म को पाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होजाता है ऐसा समझकर निर्द्वन्द्व गृहस्थाश्रमको त्याग ध्याननिष्ठ मननशील ब्रह्म में मिलाहुआ मैं तुम सब को पूछकर वन को जाऊँगा और हे शत्रुहंता, अर्जुन ! गृहस्थाश्रम में धर्म्मकुल योग आदि से आत्मदर्शन नहीं होसक्ता यह भी श्रुति है सो हे शत्रुसूदन ! मुझ गृहस्थाश्रम में फँसेहुये के सन्मुख वह पाप वर्त्तमान है जो मैंने किया है उसी पाप से जन्म और मरण का करनेवाला मोह मुझे प्राप्त होनेवाला है इससे मैं सम्पूर्ण राज्य और राजसम्बन्धी सुखों को त्यागकर सब से अलग हो शोक और ममता को दूरकर कहीं को अकेला चलाजाऊँगा और तुम इस निर्विघ्न अकंटक राज्य और भूमि को निस्संदेह भोगो और हे कौरवनन्दन ! राज्य और भोगों से मेरा प्रयोजन नहीं ऐसे वचन कहकर राजा युधिष्ठिर चुपका हुआ तब छोटाभाई अर्जुन बोला ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेयुधिष्ठिरार्जुनसंवादेयुधिष्ठिरपरिवेदनोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ऐसे वचन कहकर चुप होगया तब दृढ़ पराक्रमी तेजस्वी युद्ध में हस्तलाघवता आदि अनेक बातों से उग्रस्वरूप इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला अर्जुन बड़ी नम्रता और सुशीलतापूर्वक पृथ्वी की ओर शिर झुकाकर यह वचन बोला कि हे धर्म्मराज! आप नीति में निपुण और अशेष धर्म्मों के जाननेवाले होकर ऐसे क्लीबों के समान वचन कहते हुये शोभित नहीं होते धर्म का पालन करके और क्षात्रधर्म्म से विजय करी हुई भूमि को प्राप्त किया इस में कौन पाप हुआ जो इस को त्यागके आप ब्राह्मणों के समान वन में घूमना चाहते हैं यह आप की बुद्धिकी न्यूनता है जो अपने शत्रुओं के मरने से विकल होते हो काल पाकर तो सब संसार नष्ट होता है और जिस का जिस के हाथ घात लिखा है वह अवश्य होगा और होता है वही हुआ इस में आप को क्या दोष है नाहक आप पश्चात्ताप करते हैं ऐसे प्रबल शत्रुओं से विजय पाकर खेद करना अत्यन्त अन्याय है इसप्रकार से राज्य पाकर कोई भाग्यशाली त्याग नहीं करता इस राज्य के त्यागने से आप को लोग क्या कहेंगे कि जिसके लिये ऐसे २ कर्म किये उस को त्याग करना कौन धर्म है और जो राजा कि कुटिल पापात्मा होते हैं वह भिक्षा मांगते फिरते हैं प्रतिदिन जिस के ऐश्वर्य्य की वृद्धि होती है वही महाभाग्यवान् कहाता है और सब राजालोग अपने धन राज्य की ऋद्धि वृद्धि के लिये अहर्निशि नीति को शोचा करते हैं और दरिद्रता का होना महापाप का मूल है दरिद्र को आप रौरव नरक का किनारा समझो जैसे कि पापीलोग रात्रि दिन शोच में रहते हैं इसी प्रकार दरिद्री को भी कभी आनन्द नहीं मिलता और जो राजा होकर दरिद्री हुआ उसकी तो दशा कौन कहसके अपने सुन्दर धन को त्याग दरिद्री होना कौन सी नीति है ॥

दो० सकैन कछुकरि दारिदी दोऊ दिशा नशात।
होत सधन मतिमान को दोऊ दिशि अवदात ॥
सधन पुरुष के सधत हैं अर्थ धर्म्म अरु काम।
होत काज धनहीन को ग्रीषम सरसमछाम ॥
धन ते धन है होत अरु धन ते होत सुकर्म्म।
धनते प्रकटत धर्म्म जिमि गिरिते सरिता पर्म्म॥
काम क्रोध अरु हर्ष मद धीरज बड़ो विचार।
धनते प्रकटत भूप अरु सधत सकल उपचार ॥
सो पंडित गुणवान अरु दाता शूर सुजान।

दासबन्धुहित तासु सब जो जग में धनवान ॥
गो हय सेवक बन्धु हित विनु है जो कृश तौन ।
नहिं शरीरकृश तौन कृश धनविनु कृश सबभौन ॥
मुनिनसंगमहि अजिनधरि दर्भ कमण्डलु पानि ।
होनोंभूपहि उचित नाहिं राज्य करो हितमानि ॥

अर्थात् हे राजन् ! आप न्याय से विचारकरो कि जैसे देवता और दानवों से युद्ध हुआ उससमय देवताओं ने अपने जातिवालों को मारने के सिवाय कोई और भी विचार किया देवदानव परस्पर में एक ही पुरखे की संतति होने से सजाती कहलाते हैं और देखो किसी राजा को दूसरे का धन न लेना चाहिये तो वह धर्म कहां से करै इस विषय को पंडितलोगों ने वेदों में भी निश्चय किया तो यही निश्चय हुआ कि राजा को पण्डित होकर वेदत्रयी पढ़ना और सबदशा में धन का हरना और धन से रीति के अनुसार यज्ञकरना योग्य है और देवताओं ने द्रोह करके ही स्वर्गआदि स्थानों को पाया जैसे कि देवताओं ने जातिवालों से शत्रुता के सिवाय कोई उपाय दूसरा न किया देवतालोग सदैव इसी वेदवाक्य को कहते हैं और पढ़ाते हैं यज्ञ करते वा कराते हैं वह भी धर्म्म और कल्याणकारी हैं राजा लेता है और फिर देदेता है हम राजाओं के किसी धन को भी निंदारहित नहीं देखते हैं इसीप्रकार से सब राजालोग इसपृथ्वी को विजय करके यह कहते हैं कि यह हमारी है जैसे कि पिता के धनको पुत्र कहते हैं कि यह हमारा है वह राजर्षि भी स्वर्गके योग्य हैं जिन का कि धर्म्म कथन होता है जैसे कि पूर्णसमुद्र के अम्बुकण चारों ओर को जाते हैं इसीप्रकार राजकुलों से भी धन पृथ्वीपर ठहरता है जैसा कि यह पृथ्वी दिलीप, नृग, नहुष, अम्बरीष, मांधाता आदि अनेक राजाओं की थी वह तुम्हारी होगई यह सर्वदक्षिणावाला धनरूपी यज्ञ तुम को प्राप्तहुआ है जो तुम इस यज्ञको न करोगे तो तुम राजसम्बन्धी पापभागी होगे जहां का राजा सर्वदक्षिणावाले अश्वमेध को करता है उस के यज्ञांत के अवभृथनाम स्नान में सब देवता आकर पवित्र होते हैं और देखो विश्वरूप श्रीमहादेवजी ने सर्वमेध नाम महायज्ञ में सर्व जीवों समेत अपने को होम किया हम ने श्रवण किया है कि यह जीवधारियों का दाशरथ × नाम सनातन महामार्ग है सो हे राजन् ! आप कुमार्गी मतहो ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेयुधिष्ठिरमत्यर्जुनराजधर्म्मवर्णनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

× पकपक्ष दो स्त्रीपुरुष यजमान तीनवेद चार ऋत्विज यह दशरथ जिस यज्ञ में चलते हैं उसका नाम दाशरथ है ॥

नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे अर्जुन! तू एकाग्रचित्त हो एक मुहूर्त्तक दोनों कानों को हृदयकमल में धारणकर पीछे से मेरे वचन को सुन तब तू समझेगा मैं संसारी सुखों को त्यागकर साधुओं के चलेहुये मार्ग्गों में चलूंगा और तेरेकहने से कभी उस राज्य को स्वीकार न करूंगा जो तुम मुझ से पूछो कि आनन्दों से भराहुआ एकाकी के चलने का निर्विघ्न मार्ग कौनसा है अथवा नहीं पूछता है तो भी सुन घर के सुखों को त्याग जहां बड़े २ तपस्वीलोग तपस्या करते हैं उस जंगल में फल मूलों को भोजन करके मृगों के साथ विहार करूंगा समयपर हवन करूंगा दोनों समय स्नान करके स्वल्पाहारी हो मृगचर्म्म ओढ़ जटा धारण करूंगा और सरदी, गरमी, वर्षा, धूप आदि भूख प्यास के दुःख को सहता अपने देह को सुखाकर वन में रहनेवाले प्रसन्नचित्त पशु पक्षियों के नानाप्रकार के क्रीड़ित शब्द जो मन को और कानों को आनन्द देनेवाले हैं उन को सदैव सुनूंगा और प्रफुल्लित वृक्षों की और लताओं की आनंदकारी सुगन्धि को सूंघता और अनेक प्रकार के रूप धारण कियेहुये वनवासियों को देखूंगा और वानप्रस्थ मनुष्यों का और कुलवासियों के विपरीत दर्शन न करूंगा तो फिर ग्रामवासियों का क्यों करूंगा एकान्त में निवास करने का अभ्यास करके विचारवान् हो पक्के कच्चे फलों से अपना निर्वाह कर वन के फल वचन और जलों से देवता और पितरों को तृप्त करूंगा ॥

इसप्रकार से वनके शास्त्रों की बड़ी २ उग्र विधियों को करता इस देह की परिणाम दशा को देखूंगा फिर मुनिमुण्ड होकर एक २ वृक्ष से प्रतिदिन भिक्षा मांगता देह को पोषण करूंगा फिर शरीर में धूल लगा उजड़ेहुये मकान में या वृक्षों की जड़ों में निवास करके सब रोचक वा अरोचक वस्तुओं को त्याग शोच और आनन्द से रहित स्तुति निन्दा को समान कर इच्छा और ममता को दूरकर गृहस्थाश्रम से निर्द्वन्द्व हो आत्माराम प्रसन्नचित्त जड़ अन्ध और बधिरों कीसी दशा में योग से आत्मा में रमण करनेवाला शुद्ध अन्तःकरणवान् अन्य किसी से विवादरहित हो सब स्थावर जंगम और चार खानि के सब जीवों में अहिंसावान् अपने सुधर्म्म में प्रवृत्त होकर इन्द्रियों का पोषण करनेवाले जीवों के समान कभी किसी से हँसता न भृकुटी हिलाता सदैव प्रसन्नमुख जितेन्द्रियहोकर किसी से मार्ग को न पूछता चाहे जिस मार्ग होकर अनियतदेश की ओर अनिच्छावान् पीछे को न देखता काम, क्रोध, लोभ से रहित निरभिमानी होकर दैवइच्छा पर चलूंगा और स्वभाव जो है देह का पूर्वसंस्कार और भोजन वह आप से आप पैदा होजाते हैं जैसे कि बालक

को दूध इसलिये भोजन आदि की चिन्ता न करना चाहै कभी पहले घर में न मिलै अथवा दूसरे में भी स्वादु अस्वादु थोड़ा ही मिले उसे ही भक्षण करना बल्कि न मिलने से भी तृप्त रहना जिस घर में धुवां न हो रसोई अलग करदी हो अग्नि प्रज्वलित न हो मनुष्य भोजन करचुके हों पात्रों का मांजनाआदि भी होचुका हो भोजन सब खागये हों ऐसे समय में दोतीन अथवा पांच घर में भिक्षा करता संसारी प्रीति की फांसी को अलग करके इसपृथ्वीपर विचरूंगा समदर्शी महातपी लाभ में व अलाभ में व जीवन मरण में न किसी की स्तुति न निन्दा करके एक भुजा को ऊंचा कर दूसरी में चन्दन लगाके उन दोनों भुजाओं के कल्याण और अकल्याणों को न शोचे धनआदि की वृद्धि के लिये जो काम कि जीवधारियों को करने के योग्य हैं उन सब को त्याग कर केवल देह के निर्वाह होने के योग्य करे उनकामों में भी सदैव चित्त न देकर इन्द्रियों की सब क्रियाओं को छोड़कर चित्त के संकल्प को अपने वश में रखनेवाला बुद्धि के दोषों को दूरकरे सबसंगों से छूट मोह से जुदेहुये के सदृश किसी के वशीभूत न होगा इसप्रकार से संसार की प्रीति को त्यागूंगा मैंने अपनी मूर्खता से बड़ा पाप किया है कोई मूर्ख मनुष्य भी बुरे भले कामों को करके ऐसी स्त्री आदि का पोषण करता है जोकि केवल अपने स्वार्थ ही के लिये मिलेहुये हैं और अन्तावस्था में इस अनित्य शरीर को त्यागकर उस पाप का भागी होता है क्योंकि वह करनेवाले के काम का फल है इसप्रकार रथके पहिये के सदृश घूमनेवाले इस संसारचक्र में इसकाम का न करनेवाला संसार के जीवों में मिलजाता है जन्म, मरण, वृद्धावस्था के दुःख और रोगों से भरेहुये आत्मा के जुदा भ्रांति से रस्सी में सर्प के सदृश मिथ्या संसार को त्याग करके सुख को प्राप्तहोता है स्वर्ग से देवताओं के गिरजाने और महर्षियों को अपने २ स्थानों से नीचा होने का कारण अविद्या है और तत्त्व का जाननेवाला कौन पुरुष स्वर्ग के सुखों को चाहता है अर्थात् स्वर्ग के सुख भी नाशवान् हैं और अनेक प्रकार के लक्षणों से भरेहुये बड़े २ राजालोग अनेक प्रकार के कर्मों को करते हुये तुच्छ वार्त्ताओं के कारण छोटे २ राजाओं के हाथ से मारेजाते हैं इसी हेतु से यह ज्ञानरूपी अमृत बहुतकाल पीछे मेरे सन्मुख अर्थात् मुझ को प्राप्तहुआ है उसको पाकर मैं उस स्थान को चाहता हूं जोकि अनादि और अव्यय और सदैव एक स्वरूप में रहता है मैं धैर्य्यवान् और निर्भय होकर ऐसे निष्कंटक और भयरहित मार्ग में विचरताहुआ जरा रोग आदि से ग्रसित इस अपने शरीर को त्यागूंगा ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेयुधिष्ठिरज्ञानवर्णनोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर के ऐसे वैराग्ययुक्त वचन सुनके छोटे भाई भीमसेन बोले कि हे राजन्! आप अर्थ न जानके अपंडित वेदपाठी के सदृश ऐसे वचन कहते हो जिन को बुद्धिमान् कभी न कहैं अगर आप की ऐसीही बुद्धि थी तो प्रथमही कहते कि हम काहे को शस्त्रों को ग्रहण करते और काहे को यह उत्पात होता और मोक्ष के लिये भीखही मांगते रहते इस दारुण युद्ध को नहीं करते जो हम जानते कि विजय करना बुरा होता है तो छली धूर्त्त अधर्म्मी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर कौन सा फल प्राप्तकरें जो आप इसराज्य और भूमि का धर्म्म विचारकर त्याग करते हैं जैसे प्यासा मनुष्य सर के समीप पहुँचकर जल को नहीं पीता और वृक्षपर चढ़के मधु पाकर भय के मारे उस को नहीं पीता और जैसे हज़ारों कोस चलकर अभीष्ट नगर के समीप जाकर मारे भ्रम और संदेह के प्रवेश न करके फिरजाय और क्षुधित होके प्राप्त भोजन को दुःख मानकर नहीं खाता और जैसे कि कामी पुरुष तरुणी को पाकर विना भोग किये जाय तैसेही आप की बुद्धि मालूम होती है कि ऐसे विजय कियेहुये राज्य को अपनी निर्बुद्धिता से त्याग करते हैं हम को अपनी हारही अच्छी थी विजय लेने से कौन प्रयोजन निकला कि ऐसे विजयरूपी यश को पाकर फिर अयश लेना चाहते हो हे युधिष्ठिर! यहां हमहीं निन्दा के योग्य हैं कि आप को अपना बड़ाभाई समझकर अपनी निर्बुद्धिता से आप के पीछे २ काम करते हैं कि भुजों से वली और विद्यायुक्त पराक्रमी बुद्धिमान् होके इस प्रकार के नपुंसक की आज्ञा में चलते हैं जैसे कि निर्बल मनुष्य किसी बलवान् के साथ चलै मेरे इन वचनों को ध्यान करके विचारो कि हम सामर्थ्यवानों को राज्य प्राप्त करने के लिये उद्योग करना उचित है व अनुचित और शत्रुओं से घिरेहुये और पराजय पानेवाले राजालोग आपत्तिकाल में संन्यास लेते हैं इसी कारण ज्ञानी लोग क्षत्रियों के संन्यास की प्रशंसा नहीं करते और सूक्ष्म देखनेवाले धर्म्म के विपरीत मानते हैं अर्थात् स्मृतियों के अनुसार क्षत्रियों का मुंडन निषेध और अयोग्य समझते हैं कदाचित् कहो कि क्षत्रियधर्म्म हिंसा से भरा है इसका उत्तर यह है कि जो जिस धर्म्म में जिस जीविका में जिस जाति में जिस घराने में पैदा होते हैं वह उसी २ धर्म्म में चलते हैं और कोई अपनी जाति व सनातनधर्म्म की निन्दा नहीं करता क्योंकि सब क्षत्रियों का अक्षयधन तीनों वेद हैं इसके विपरीत क्षत्रियों का जो झूठा धर्म्म है वह नास्तिकों का बनायाहुआ है उसको धर्म्मज्ञलोग नहीं मानते हैं शरीर को अनाशवान् जाननेवाले आप सरीखे मनुष्य को मौन होकर धर्म्म कपट में प्रवृत्त होकर मरना संभव है और पुत्र,

पौत्र, देव, ऋषि, पितृ इन को पालन किये विना वन में अकेले अपने देह से सुखपूर्वक जीना भी आपही में घटित है तात्पर्य्य यह है कि जब पूर्वोक्त मनुष्यों का पालन न हुआ तो पशु के तुल्य हुये क्योंकि यह मृग, शूकर, पक्षी जो जंगल में अकेले रहते हैं वह स्वर्ग को नहीं प्राप्त करसक्ते न कोई दूसरे प्रकार से वह पुण्यभागी हैं जो कोई राजा संन्यासधर्म्म से सिद्धता को प्राप्त होता हो तो हे राजन्! पर्वत वृक्ष भी सिद्धि को प्राप्त करनेवाले हैं क्योंकि यह सदैव निरुपाधि संन्यासी हो गृहस्थधर्म्म से वाहर ब्रह्मचर्य्य धारण किये रहते हैं तात्पर्य्य यह है कि पशु पक्षी आदि कोई कर्म्म नहीं करसक्ते हैं अपने पूर्व्व कर्म्मफल को भोगते हैं और हमलोग कर्म्म करने के अधिकारी हैं इस से विना कर्म्म किये हमारी मुक्ति नहीं होगी जल के जीव जो अपनेही उदर को भरना जानते हैं वह भी सिद्धि को पाते हैं विचार करो कि जैसे यह संसार अपने २ कर्म्मों में प्रवृत्त है वैसेही हम सबको भी कर्म्महीं करना योग्य है विना कर्म्म करनेवाले क्षत्रिय की गति अर्थात् मुक्ति नहीं होती॥ २८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेदशमोऽध्यायः॥ १०॥

गेरहवां अध्याय॥

अर्जुन बोले कि इस स्थान में हम उस प्राचीन कथा को कहते हैं जिस में तपस्वियों से इन्द्र ने वर्णन किया है कि डाढ़ी मूछ कटाकर कोई बड़े घराने के निर्बुद्धि ब्राह्मण घर को त्यागकर इस विचार से वन को गये कि फिर घर को न आना चाहिये यह धर्म्म है ऐसा मानके वह धनाढ्य ब्राह्मणलोग अपने पिता, माता, भाई, वन्धुओं को त्याग ब्रह्मचारी होकर जंगल में रहनेलगे यह देखकर इन्द्रदेवता प्रसन्न हुये और सुवर्ण का पक्षीरूप धारणकर उनसे कहा कि जो यज्ञ के शेष अन्न के खानेवाले मनुष्यों ने जो कर्म्म किया वह कठिन है यह कर्म्म धर्म्म की वृद्धि का हेतु होता है और इस से जन्म भी सफल होता है और अंत को धर्म्मपरायण होकर अपने अभीष्ट को पाके मुख्य गति को प्राप्त होता है यह सुनकर वे ब्राह्मण बोले कि हे पक्षी! बड़े आश्चर्य्य की वात है कि तुम यज्ञाशियों की अर्थात् यज्ञ के शेष भोजन करनेवालों की अर्थात् भीख मांगनेवालों की प्रशंसा करते हो तो हम को भी सत्य निश्चय होता है और हमलोग भी भिक्षाशी हैं फिर पक्षी बोला कि मैं तुम सरीखे पापी और उच्छिष्टभोजी रजोगुणी अज्ञानियों की प्रशंसा नहीं करता हूं प्रशंसा के योग्य वे दूसरेही भिक्षा मांगनेवाले हैं जो वृक्षों के पत्ते तृण फल जो कीड़ों के उच्छिष्ट होते हैं उनको शुद्ध करके खाते हैं तव ब्राह्मण बोले कि यह हमारा बड़ा कल्याण है जो तुमने वर्णन किया हे पक्षी! हम सव वर्त्तमान हैं आप हमारे

कल्याण की बातें कहिये आपके वचनों में हमारी बड़ी श्रद्धा होती है पक्षीरूप इन्द्र बोले कि जो तुम आत्मा से आत्मा को जुदा करके द्वैत न मानो तो तुम से यथातथ्य वचन कहूं फिर ब्राह्मण बोले कि हे भाई ! हम तुम्हारे वचनों को सुनेंगे तुम मोक्षमार्ग के जाननेवाले हो हे धर्म्मात्मन् ! हम तेरी आज्ञा में वर्त्तमान हैं तुम हमको धर्म्म की शिक्षा करो पक्षी बोला कि सुनो चार पैरवालों में गौ बड़ी और धातुओं में सुवर्ण और शब्दों में मन्त्र और द्विपदों में ब्राह्मण श्रेष्ठतम है यह मन्त्र ब्राह्मणही को उचित है जो जीवनसे मरणकाल के श्मशान पर्य्यन्त समय के अनुसार जीवते ब्राह्मण का कहाजाता है इस ब्राह्मण का वेद के अनुसार स्वर्गमार्ग सर्वोत्तम है तात्पर्य्य यह है कि ऐसा न हो तो प्राचीन समय के पुरुषों ने मन्त्रों से प्रकट होनेवाले सब कर्म्मों को मेरे निमित्त कैसे किया मुख्य बात यह है कि वे कर्म्म स्वर्ग को देते हैं जो कोई मनुष्य निश्चय लाके जिस २ रूप से ईश्वर की उपासना करता है उसीप्रकार से इसलोक में सिद्धि को पाता है जैसे कि माघ महीने के शुक्लपक्ष आदि में जो उपासना करते हैं उन को सूर्य्यके द्वारा मोक्षरूपी सिद्धि प्राप्तहोती है और श्रावण आदि मास में करने से चन्द्रमार्ग से सिद्धि होती है अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है फिर वह स्वर्ग से गिरकर अपने कर्म्मों को भोगते हैं और जो कोई कर्म्म की निन्दा करके कुपंथ में चलते हैं वह अर्थहीन मूढ पाप के भागी होते हैं और देववंश,पितृवंश, ब्रह्मवंशों को त्यागकर वे मूढ़ वेदविहीन मार्ग को प्राप्त होते हैं अर्थात् राक्षसरूप होते हैं मैं तुम को यह वरदान देता हूं कि तुम्हारी सगुण और निर्गुण उपासना सिद्ध हो और गोधन और पुत्र देता हूं इससे हे ऋषियो ! उस २ मार्ग में निष्ठायुक्त होना यही तपस्वियों का तप कहाजाता है कुछ देह को सुखानाही तप नहीं होता अपने सनातन देवपितृमार्गसेही गुरुभक्ति करके ब्रह्म की प्राप्ति होती है वही निश्चय करके कठिन कहीजाती है इसी कठिन कर्म्म को करके देवताओं ने बड़े ऐश्वर्य्य को पाया इसी कारण मैं तुम से कहता हूं और निश्चय जानो कि गृहस्थाश्रमधर्म्म धारण करना कठिन है यही प्रतिष्ठापूर्वक कुटुम्बपोषण करना प्रजाओं का श्रेष्ठ और मुख्य तप है इसी से ब्राह्मणों ने द्वन्द्व मत्सरता आदि उपाधियों को छोड़ इसी को महातप जाना इसी आश्रम में ब्रह्मचर्य्य धारण कर वेदपाठ करना यही गृहस्थाश्रम का तप कठिन है ऐसी बुद्धि से प्रातःकाल सायङ्काल के समय को विभाग करके यज्ञ करने से शेष अन्न को कुटुम्बसमेत भोजन करनेवाले पुरुष अचल पदवी को पाते हैं इसीकारण देव अतिथि पितृ और अपने स्वजनों को देकर जो शेष अन्न भोजन करते हैं वही विघसाशी हैं इसी से धर्म्म को आश्रयकर जो ब्राह्मण सुव्रती और सत्यवादी हैं वह लोक में गुरुकी पदवी पाकर निस्संदेह होजाते हैं अर्थात् स्वर्ग में जाकर विमत्सर हो

इन्द्रलोक में असंख्य वर्षों तक निवास करते हैं अर्जुन बोले कि इस के अनंतर वह ब्राह्मण उस के धर्म्म अर्थ से भरे वचनों को सुनकर अपने हितकारी जान और यह समझकर कि दूसरे आश्रम में सिद्धि नहीं है वनवास को त्यागकर गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त हुये इस से हे सर्वज्ञ, युधिष्ठिर ! तुम भी उसी धैर्य्य को धारणकरके इस शत्रुरहिता पृथ्वी को अपनी करके राज्य करो ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेऽर्जुनवाक्ये ऋषिशकुनिसंवाद कथनोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे अर्जुन के वाक्य सुनकर नकुल बोले कि हे धर्म्मधारियों में उत्तम, महाप्राज्ञ, बड़ी छाती और प्रलम्बभुजवाले युधिष्ठिर ! वैशाख यूपनाम क्षेत्र में सब देवताओं की वेदियां हैं इस से जानो कि वह देवता भी यज्ञकरते हैं और अपने कर्म्मों से देवभाव को पहुँचे हे राजन् ! जो पितृ आस्तिकता से रहित केवल जीवधारियों को वर्षा आदि से प्राणदान करते हैं वह भी बुद्धि से कर्म्महीं को करते हैं और जो लोग वेद के मार्ग को त्यागते हैं उन को बड़ा नास्तिक जानो वह कभी स्वर्ग को नहीं पाते वेद के जाननेवालों का वचन है कि यह गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ है और उन्हीं को वेदपाठी जानो जिन्हों ने धर्म्म से प्राप्त हुये अपने धन को उत्तम २ यज्ञों में खर्च किया उसी को जितेन्द्रिय और त्यागी भी जानो हे राजन् ! जो पुरुष गृहस्थ के सुखों को न भोगकर वन में जाकर देह को त्यागता है वह तामसी त्यागी कहाता है हे युधिष्ठिर ! जो ब्राह्मण संन्यासी हो घर को त्याग वृक्षों की जड़ों में निवास करके किसी से कोई वस्तु विना मांगे भिक्षा के लिये घूमता विचरता है वह संन्यासी त्यागी है और जो ब्राह्मण काम क्रोध और तृष्णा को दूर करके वेदों को पढ़ता है वह त्यागी कहाजाता है ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूपी तराजू में एक ओर तीनों आश्रम और दूसरी ओर गृहस्थाश्रम रक्खा तो तीनों गृहस्थ से कम हुये हे राजन् ! जो पुरुष इसपर चलता है वही त्यागी है और वह पुरुष त्यागी नहीं कहाता है जो मूर्खों की सदृश घर को छोड़ वन को जाय जो ऐसा धर्म्मध्वजी मनुष्य वन में जाकर अभीष्ट वस्तु को चाहता है उसको धर्म्मराज मृत्यु की फांसी में बांधता है और अभिमानयुक्त कर्म्म करना सफल नहीं होता इससे त्यागयुक्त निरभिमानी होकर करनाही महाफलदायक है और शम, दम, दया, धैर्य्य, शौच, सत्यता, सुहृद भावपने से जो यज्ञधर्म्म होता है वह ऋषियज्ञ कहाताहै और पितृ देव अतिथियों को सन्तोष करनेवाले मनुष्य इसी लोक में प्रशंसा पाकर अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष चारों फलों को भोगते हैं हे धर्म्मात्मन् ! ब्रह्माजी ने भी यही शोच विचारकर जीवों को उत्पन्न

कियाहै कि यह अनेकप्रकार के दक्षिणायुक्त यज्ञों से मेरा पूजन करेंगे और पशु, वृक्ष, औषधियों को भी हव्य वस्तुओं सहित उत्पन्न किया इसी से वह यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रम को दृढ़ करता है इसी हेतु से गृहस्थाश्रम कठिन और दुर्लभ है उस को प्राप्त हो गृहस्थलोग पशु, धान्य, धन को पाकर जो यज्ञादिक कर्म्म न करेंगे वह सदैव पाप के भागी होंगे जैसे ऋषिलोग स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठ, जप, यज्ञ, करते हैं वैसेही दूसरे लोग ज्ञानयज्ञादिकों को और अन्य ऋषिलोग चित्तही में मानसी पूजनादि से यज्ञों को करते हैं हे राजन्! देवतालोग भी ऐसे ब्राह्मण की इच्छा करते हैं जो चित्त को एकाग्र करके ब्रह्मरूप को देखता है इसी से वह भी ब्रह्मरूपही है सो आप इधर उधर से प्राप्त कियेहुये विचित्र रत्नों को यज्ञों में खर्च न करके नास्तिकपना करते हो हे राजन्! गृहस्थाश्रमी होके मैं किसी को राजसूय अश्वमेध और सब यज्ञों का तर्क करनेवाला नहीं देखता हूं इस से आप उन ब्राह्मणों के द्वारा पूजनकरो जो दूसरे यज्ञ ब्राह्मणों से पूजित हैं जैसे कि देवताओं के स्वामी इन्द्र ने किया जो प्रजा का धन राजा की भूल से चोर उठालेजायँ और उस की रक्षा राजा न करे तो वह राजा कलि कहाता है और भूषणों से अलंकृत घोड़े, हाथी, दास, दासी, गौ और देश, ग्राम, छत्र, स्थान आदि ब्राह्मणों को न देकर ईर्षा द्रोह में भरेहुये हमलोग कलियुग के पापी राजा होंगे और हे राजन्! प्रजा की रक्षा और ब्राह्मणों को दान न देनेवाले प्रजा के पाप के भागी होकर अपने किये को भोगेंगे अर्थात् कभी सुखों को न भोगेंगे इस से हे स्वामिन्! जो तुम अच्छे २ यज्ञों से पूजन और पितरों को स्वधादानदिये विना और तीर्थों में विना स्नान किये वन को जाओगे तो ऐसी दशा में आप वायु से पृथक् टूटेहुये बादल के सदृश नाश को प्राप्त होगे और दोनों लोकों से गिरकर पिशाचयोनि को पाओगे जो बाहर भीतर की प्रीति को त्याग घर को छोड़ वन को जाता है वह त्यागी नहीं है हे महाराज! ऐसे अयोग्य कर्म्म ब्राह्मण को करने में हानिकारी नहीं हैं जैसे कि इन्द्र ने देवताओं की सेना को मारा उसीप्रकार युद्ध में वेग से वृद्धि पानेवाले शत्रुओं को मारकर कौन सा राजा शोचकरता है सो आप क्षत्रियधर्म्म पराक्रम से पृथ्वी को विजय करके मन्त्रों के जाननेवाले ब्राह्मणों को दान करके स्वर्ग के भी ऊपर अर्थात् ब्रह्मलोक को जाओगे सो अब तुम को शोच न करना चाहिये॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

तेरहवां अध्याय॥

यह नकुल के वचन सुनकर सहदेव बोले कि हे युधिष्ठिर! बाहर की द्रव्यों को त्यागकर सिद्धि नहीं प्राप्त होती जो मनुष्य अपने शरीर की द्रव्यों को त्याग

देता है वही सिद्ध होजाता है देह की द्रव्यों को त्याग पृथ्वीपर राज्य करने-वालों को जो धर्म्म और सुख होता है वैसाही हमारे मित्रों को भी हो दो अक्षर वाले को मृत्यु और तीन अक्षरवाले को ब्रह्म की प्राप्ति होती है अर्थात् मेरा कहनेवालों की मृत्यु और न मेरा कहनेवाले की मुक्ति होती है और हे राजन् ! इसी से ब्रह्म और मृत्यु दोनों बुद्धि से मालूम होते हैं यह दोनों अदृश्य शास्त्र निस्संदेह जीवों को लड़ाते हैं हे राजन् ! निश्चय जानो कि इस जीवात्मा का नाश नहीं है ऐसी दशा में धर्म्मयुद्ध में जीवों को मारकर हत्या नहीं मालूम होती फिर भी ऐसे नाशवान् शरीर के साथ जीव की उत्पत्ति और नाश वृथा मानना है इस से इस एकांतपने को त्यागकर पहिले पुरुषों ने जो पथ प्राप्त किया उसी पथ में चलना योग्य है अर्थात् स्थावर जंगम सहित इस सम्पूर्ण पृथ्वी को प्राप्त करके जो राजा भोग नहीं करता उसका जीवन निष्फल है हे राजन् ! वन में रहनेवाले और फल फूलों के खानेवाले जिस पुरुष की ममता द्रव्यों में होती है वह मृत्यु के मुख में है अर्थात् उस को सदैवता नहीं है तुम जीवों के भीतर बाहर को देखो जो भीतर की द्रव्य हैं उन को परमात्मा की सत्ता जानो जो पुरुष उस नित्य शुद्ध परमात्मा को देखते हैं वह इस महाभयानक संसार से मुक्त होते हैं आप मेरे पिता, माता, भाई, गुरु हो मुझदुःख से पीड़ावान् के अपराध के क्षमाकरने को योग्य हो हे भरतर्षभ ! मैंने जो आपके साम्हने सत्य झूठ कहा उसको भक्ति से कहाहुआ जानो ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसहदेववाक्यवर्णनोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकार नाना शास्त्र और वेदों के ज्ञाता भाइयों ने ऐसे २ वाक्य कहे तब कुन्ती के पुत्र धर्मस्वरूप युधिष्ठिर फिर चुपहोगये तो बड़ेघराने की पुत्री स्त्रियों में उत्तम बड़े नेत्रवाली श्रीमती द्रौपदीजी गज-रूप भाइयों के मध्यवर्ती गजेन्द्ररूप युधिष्ठिर को सन्मुख करके आनन्दचित्त हो बड़ी सावधानी से बोलीं कि हे राजन् ! यह सब तुम्हारे भाई चातक पक्षी के सदृश मुख को कुम्हला रहे हैं और बराबर पुकार रहे हैं इन को क्यों प्रसन्न नहीं करते तुम को उचित है कि इन मतवाले हाथियों के सदृश महाभुजवाले पराक्रमियों को जो महादुःख पारहे हैं युक्तिपूर्व्वक वचनों से सुखी करो और हे राजन् ! तुम ने पहले द्वैतवन के मध्य में वात, शीत, उष्णता से पीड़ावान् अपने भाइयों से यह वचन क्यों कहा था कि हम युद्ध में दुर्योधन को मारकर संपूर्ण पदार्थों से भरीहुई इस पृथ्वी को भोगेंगे और युद्ध में विजयी हो संपूर्ण मनोरथों को पूरा

करेंगे सो तुम ने महाबलवान् रथी महारथी भाइयों को विरथ करके बड़े २ हाथियों को मार घोड़ों के सवारों समेत रथों से पृथ्वी को आच्छादित किया अब नाना प्रकार के दक्षिणायुक्त यज्ञों से जो पूजन करोगे तो वनवास में जो दुःख पाये हैं वह सुखदायी होंगे हे धर्म्मध्वज! आप ने प्रथम उनसे ऐसा कहा था अब क्यों उनके चित्तों को उदास करते हो नपुंसकलोग पृथ्वी और धन को नहीं भोगते और न उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और क्षत्रिय दण्ड विना तेजस्वी नहीं होता और दण्ड विना पृथ्वी को नहीं भोगसक्ता हे राजन्! सब जीवों में दया करना और वेद पढ़ना और तप करना ब्राह्मण का धर्म्म है क्षत्रिय का नहीं दुराचारियों को दण्ड देना या देश से निकाल देना सत्पुरुषों का पालन करना युद्ध से न हटना यह क्षत्रियों का उत्तम धर्म्म है जिसमें क्षमा, क्रोध, दान और भेद आदि लेना और भय वा निर्भयता और कृपा होती है वही धर्म्म का जाननेवाला कहाजाता है तुम ने वेदविहित दान से या यज्ञ से अथवा याचनाके द्वारा यह पृथ्वी नहीं पाई शत्रुओं की युद्धकर्त्ता सेना और ऐसे २ युद्धवेत्ता पराक्रमी घोड़े, हाथी, रथों से भरेहुए प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति इन तीनों अंगों से युक्त और द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य आदि महाप्रतापियों से रक्षित अपने शत्रु को मारा इससे अवश्य इस पृथ्वी को भोगो हे राजन्! यह जंबूद्वीप अनेक उत्तम देशों से शोभित है इसको आपने दण्ड से मर्दन किया और हे महाराज! इसीप्रकार सुमेरुपर्वत के पश्चिम की ओर जो क्रौंचद्वीप है उस को भी आपने उक्त प्रकार से आधीन किया और हे कुरुनन्दन! उसी महामेरु के पूर्व में क्रौंचद्वीप के सदृश शाकद्वीप को भी दण्ड से स्ववश किया और शाकद्वीप के तुल्य सुमेरु के उत्तर और भद्राश्वद्वीप को दण्ड से विजय किया और हे वीर! तुम ने सागर के पार होके अनेक देशों से सुशोभित द्वीप और उपद्वीपों को दण्ड से परास्त किया ऐसे अनेक अप्रतिमेय कर्म्म आपने किये और ब्राह्मणों से प्रशंसा पाकर भी आप प्रसन्न नहीं होते सो हे भारत! तुम इन अपने भाइयों को देखकर प्रसन्न करो जो वृषभों के सदृश मत्त और गजेंद्रों के समान बली देवताओं के से स्वरूप शत्रुहन्ता महातपी एक २ पृथ्वी के जीतने योग्य हैं यह मेरी राय है कि ऐसे भाइयों को आनन्द दो नहीं तो फिर मेरे यह सब नरोत्तम पति कैसे समर्थ न होंगे जैसे कि देह के पृथक् होने से इन्द्रियां सामर्थ्यहीन हों और सब देश काल की जाननेवाली हमारी सास ने मुझ से यह बात मिथ्या नहीं कही कि हे पांचालि! यह शीघ्र पराक्रमी युधिष्ठिर अनेक राजाओंको मारकर तुमको उत्तम सुख देगा सो हे राजन्! उस वचन को आप की अज्ञानता से मैं निष्फल होता सा जानती हूं जिनके बड़े भाई बुद्धिमान् और वह सब आज्ञाकारी ऐसे चारों पाण्डुनंदन आपके मोह

से और चित्त की भ्रान्ति से दुःखित हैं सो हे राजन्! आप के भाई जो सावधान चित्त हों तो तुम को नास्तिकों के साथ बांधकर आप पृथ्वी को भोगें इसप्रकार के कर्म्म अज्ञानी करते हैं वह कभी आनन्द को नही पाते वह औषधियों से चिकित्सा के योग्य हैं जो उन्मत्तों के मार्ग में चलते हैं वह इस लोक में सब से स्त्रियों से भी निकृष्ट हैं मैं भी इसी प्रकार पुत्रों से रहित होजाऊँगी जो इन उद्योग करनेवालों को त्यागकर जीवना चाहती हूं मेरा वचन मिथ्या नहीं है तुम सब पृथ्वी को त्यागकर अपनी आपत्ति को बुलाते हो सो हे राजाओं में उत्तम! जैसे कि तुम सब राजाओं में शोभित हो वैसेही मान्धाता और राजा अम्बरीष थे इसी प्रकार तुम भी धर्म्म से प्रजा का पोषण करके पृथ्वी देवी का पालन करो और पर्व्वत वन द्वीप आदि से शोभित इस पृथ्वी पर राज्य करो हे राजन्! चित्त से उदासीन मत हो तुम अनेक प्रकार के यज्ञपूजनों से परमेश्वर को प्रसन्न करो और युद्ध में शत्रुओं को पराजयकर ब्राह्मणों को वस्त्र, धन, भोजन इत्यादि भोगों का दान करो ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेद्रौपदीवाक्यकथनोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंद्रहवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसप्रकार द्रौपदी के वचन सुनकर बड़े भाई का बड़ा मान करके फिर अर्जुन बोले कि दण्ड देनेवाले सब प्रजापर आज्ञाकर्त्ता हैं और दण्डीही रक्षा कर सब सोनेवालों के बीच में जगता है यह दण्डी के धर्म्म बुद्धिमान्लोग कहते हैं कि दण्डही से धन धान्य धर्म्म आदि होते हैं और दण्ड से अर्थ धर्म्म काम मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्तहोते हैं इसी से इस को त्रिवर्ग कहते हैं सो हे बुद्धिमान्! इस को लोकव्यवहार मानो और अंतर्दृष्टि से आत्मभाव को देखो कि कोई भी पापी राजदण्ड के भय से पाप नहीं करता और कोई यमदण्ड के भय से कोई परलोक के डर से पाप नहीं करते और कोई पापी आपस के भय से भी नही करते लोक में इस प्रकार के व्यवहार करनेवाले सब जीव दण्डके अधिकारी हैं कोई दण्ड के भय से परस्पर में भोजन भी नहीं करते इस से जो राजा दण्ड से प्रजा की रक्षा न करेगा वह अन्धतामिस्र नरक को जायगा जैसे कि अजितेन्द्रिय पुरुष अन्य उत्तम पुरुषों को दुःख देता है और दण्ड लेनेवाला कर्म्मकर्त्ता होता है तो उसी कारण से उस को दण्ड कहते हैं ब्राह्मणों का वचन दण्ड है क्षत्रियों का दण्ड मासिक देना है वैश्योंका दान दण्ड है और शूद्र निर्दण्ड कहाजाता है सो हे राजन्! लोक में धन की रक्षा के लिये अज्ञानताही दण्डनाम मर्य्यादा है जहां राजा दण्डलिये उद्युक्त रहता है

वहां की प्रजा अज्ञान नहीं होती इसी से वहां अच्छे प्रकार से निर्णय होता है ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षुक यह सब लोग भी दण्डही के भय से अपने अपने मार्ग में वर्त्तमान रहते हैं भयभीत मनुष्य नतो यज्ञ करसक्ता न दान देने की इच्छा करता न कहीं ठहरकर नियम धर्म्म करसक्ता न क्षत्रिय दूसरे मनुष्यों के मर्म्मों को छेदकर कठिनकर्म्म करसक्ता केवल एक मत्स्यघातीके समान जीवों को मारकर बड़ीलक्ष्मी को प्राप्तकरता है इसलोक में नहीं मारनेवाले क्षत्रिय की नतो कीर्त्ति है न धन है तो प्रजा भी नहीं है इन्द्रने वृत्रासुर के मारने से ही महेन्द्रपदवी पाई और देखिये जो मारनेवाले देवता हैं उन्हीं की पूजा अधिक लोग करते हैं रुद्र, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक, अग्नि, वरुण, यम यह मारनेवाले हैं इसीप्रकार काल, वायु, मृत्यु, कुबेर, सूर्य्य, अष्टवसु, मरुद्गण, विश्वेदेवा यह भी मारनेवाले हैं इनके प्रतापों को जान के सबलोग पूजन करके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं और ब्रह्माजी और पूषा देवता आदिको कोई नहीं पूजता और न किसी दशा में नमस्कार करते तात्पर्य्य यह है कि यह उत्पत्ति पालन करनेवाले हैं मनुष्यों में कोई मनुष्य शांतस्वभाव और जितेन्द्रिय सब कर्मों से शांत देवता को पूजता होगा इसलोक में हिंसारहित जीव तामें किसी को नहीं देखता बड़े बलवान् थोड़े बलवालों को मारखाकर जीते हैं जैसे नौला चूहों को मारकर खाता है उसीप्रकार बिलार नौले को खाता है और कुत्ता बिलार को और चित्र व्याघ्र कुत्ते को खाता है और काल सब को ग्रास करलेताहै देखो यह सब स्थावर जंगम जीवों का भोजन है कर्म्म ईश्वर का बनाया हुआ है उस में बुद्धिमान् अचेत नहीं होता जैसे उत्पन्न किया है वैसेही भोगना भी योग्य है क्रोध हर्ष को त्यागकर निर्बुद्धि वन में बसते हैं तपस्वी लोग भी वन में विना धंधा किये अपने प्राणों की रक्षा नहीं करसक्के पृथ्वी, जल, फूल आदि वस्तुओं में अनेक जीव होते हैं उनको कौन नहीं मारता ऐसे २ सूक्ष्म जीव होते हैं जो पलक मारने से मरजाते हैं काम क्रोध से रहित मुनिलोग ग्रामों से निकल वन में जाकर गृहस्थलोगों को धर्म्मात्मा कर्म्म करनेवाले दृष्टि पड़ते हैं मनुष्य पृथ्वीको खोदकर अथवा जड़ीबूटी को काटकर ओषधी से और पशु पक्षियों के मांससे यज्ञों को रचते हैं वह स्वर्ग को जाते हैं हे युधिष्ठिर! दण्ड से मिलीहुई इच्छा से सब जीवों के कर्म्म सिद्ध होते हैं यह निस्सन्देह बात है जो लोक में दण्ड न होय तो प्रजा नाश होजाय और निर्बलों को सबल खाजायँ जैसे कि जल में बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है यह सत्य वचन पहले समय में ब्रह्माजी ने कहा है कि दण्ड से प्रजा की रक्षा करना उत्तम नीति है देखो शांतहुई अग्नियां फिर भयकारी दण्डरूप फूंकनेसे प्रज्वलित होती हैं जो संसार में दण्ड न हो तो अच्छे बुरे का ज्ञान न हो जो

कुमार्गी नास्तिकलोग वेद की निन्दा करते हैं वह भी दण्डके भयसे मर्यादा पालन करने के लिये अत्यन्त समर्थ होते हैं सब लोग दण्ड से ही जीते जाते हैं दण्डसे रहित लोग बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं भयकारी दण्डसेही मर्य्यादा पालन होती है ईश्वर ने चारोंवर्ण के आनन्द और नेकनियत होकर अर्थ धर्म की रक्षा के निमित्त पृथ्वीपर दण्ड निर्मित किया जो पक्षी और भेड़िया आदि दुष्टजीव दण्ड से भयभीत नहीं तो यज्ञ की हव्य कव्यकी सामग्री समेत संसार को खाजायँ जो दण्ड का भय न हो तो ब्रह्मचारी वेद को न पढ़ें और सन्ततिवाला गौ को दुहे न कन्या विवाह को प्राप्त हो सर्वनाश होकर सम्पूर्ण मर्य्यादा टूटजायँ और दण्ड के विना कोई संवत्सर यज्ञों में मन्त्रयुक्त कर्म्म भी न करे सब आदमी वेदोक्त आश्रमधर्म्म को छोड़दें जो दण्डरक्षा न करे और हाथी, घोड़े, ऊंट, खच्चर, गधे आदि सवारी या बोझे को न लेचलें नौकर, लड़के, दास, दासी कोई आज्ञा को न मानें और स्त्रियां भी अपने धर्म्म में दृढ़ न रहें अर्थात् सब देव मनुष्य इसलोक परलोक में दण्डही से अपने २ कर्म्म को सावधानी से करते हैं जहां शत्रुओं का नाशक दण्ड अच्छे प्रकार से जारी होकर घूमता है वहां कोई मिथ्या पाप छल आदि बुरा कर्म्म दिखाई नहीं देता जो यह राज्य धर्म्म से वा अधर्म्म से विजय किया इसमें शोक न करना चाहिये राज्य के भोगों को भोगो और यज्ञादिक करो धनवान् अथवा पवित्र वस्त्रालंकार धारण करनेवाले फल आदि के दान देने से सुशोभित अनेक प्रकार के उत्तम अन्नादि भोजनों को करके सुखपूर्वक धर्म्म को करते हैं सब कर्म्मों का प्रारम्भ धन के आधीन है और वह धन दण्ड के स्वाधीन है कोई अत्यन्त नतो गुणवान् है न निर्गुण दोनों सब कर्म्मों में अच्छे और बड़े दृष्टि में आते हैं देखिये पशुओंके वृषणों को काटकर फिर उनके मस्तकों को तोड़ते हैं फिर वह बड़े बोझों को ले चलते हैं और पीटे भी जाते हैं ऐसे अनेक विषयों से लोक भराहुआ है इस से हे धर्म्म ! तुम अपने धर्म्म का आचरण करो शत्रुओं को निकालो और मित्रों का पालन करो हे शत्रुओं के मारनेवाले ! तुम को कोई दुःख मत हो और हे भाई ! कर्त्ता को उस के मारने में कोई पाप नहीं होता जो सम्मुख शस्त्र लिये घात की इच्छा करके आवे और मारनेवाला भ्रूणहत्या से भी वचता है सबभूतों में अन्तरात्मा अवध्य है जब कि आत्मा अवध्य अर्थात् कभी नहीं मरता तो वध करने में क्या दोष है जैसे कि मनुष्य दूसरे नवीन स्थान में प्रवेश करता है वैसेही जीवात्मा भी कर्माधीन नवीन देह को पाता है अर्थात् पुराने देह को त्याग नवीनशरीर में जाता है यह तत्त्ववेत्ता कहते हैं ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽर्जुनवाक्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे वचन जब अर्जुन ने कहे तब अतिअमर्षी भीमसेन धैर्य्यता से अपने बड़े भाई से बोले कि हे राजन्! तुम धर्म्म के जानने-वाले हो ऐसी कोई बात नहीं जिसको आप न जानते हों आप को हम शिक्षा नहीं देसक्ते हमारे मन में यही रहता है कि न कहूं न बोलूं परन्तु दुःख से बोले बिन रहा नहींजाता इस को आप समझिये आप के बड़े मोह से सबको संदेह होता है और विकल होकर निर्बलता होती है सब शास्त्रों के ज्ञाता होकर लोकों के राजा कैसे होते हैं ऐसी दशा में राज्य के विषय में एक युक्ति को कहूंगा तुम चित्त से सुनो दो प्रकार की व्याधि होती हैं एक दैहिक दूसरी मानसिक उनदोनों की उत्पत्ति परस्पर में होती है अर्थात् जो पुरुष निर्द्वन्द्व है वह देह और मन को आत्मा से जुदा मानता है वह उन व्याधियों से बचारहता है देह के रोग से मन के रोग उत्पन्न होते हैं और यह भी निश्चय है कि मन के रोगों से भी देह में व्याधि उत्पन्न होती है और जो आदमी देह और मन के गतदुःखों को शोचता है वह दुःख से दुःख को पाता है और दोनों दुःख अन-र्थक हैं शरीर से तीन प्रकार के गुण होते हैं अर्थात् शीतता उष्णता और वा-युत्व और तीनों गुणों की जो ऐक्यता है उसी को स्वस्थता कहते हैं अर्थात् वात, पित्त, कफ यह तीनों देह से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं उन तीनों की जो समता है वही नीरोगता का लक्षण है उन्हों में जब एक अधिक होता है तब चिकित्सा करीजाती है गरम औषध से शीत दूर होते हैं और शीत औषध से गरमी जाती है और सत्त्व, रज, तम यह तीनों गुण मानसी हैं उन तीनों की जो साम्यावस्था है उसी को स्वस्थता कहते हैं उनमें भी एक की आधिक्यता होने में उपाय कियाजाता है जैसे कि शोक की शांति प्रसन्नता से और प्रसन्नता शोक से जाती रहती है कोई भी अज्ञानी सुख में वर्त्तमान होकर व्यतीत दुःख को स्मरण करना चाहता है अर्थात् शोक से आनन्द को पीड़ित करता है यह दोनों देहादि के अभिमान से सम्बन्ध रखते हैं परन्तु तुम तीनों काल में मन देह के दुःख सुखों से पृथक् हो इसकारण उन दोनों को भूलकर सुख दुःख के समय और दुःख सुख के समय स्मरण करने के योग्य नहीं हैं हे कौरव! जो तुम याद करना चाहते हो तो कैसे यह आप का स्वभाव है या दैव की प्रब-लता है जिससे कि दुःखी होते हो आप सब पाण्डवों के देखते हुये एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को देखकर उसकी क्यों नहीं याद करते नगर से निकाल देना और मृगचर्म्मों का धारण करना और बड़े २ वनों में रहना आप क्यों नहीं याद करते जटासुर से दुःख पाना और चित्रसेन से युद्धकरना और राजा

जयद्रथ से कष्ट पाने की याद को कैसे भूलगये हो फिर गुप्तवास में कीचक से राजपुत्री द्रौपदी को जो दुःख हुये उनका भी विस्मरण होगया हे शत्रुनाशन! जो तुम्हारे युद्ध द्रोणाचार्य्य और भीष्मजी के साथ हुये वह सब घोर आन्तरीय शत्रुता से हुये जिस युद्ध में दोनों हाथों में बाण और भाइयों से प्रयोजन नहीं केवल अकेले चित्त के साथ लड़ना है वह आप का युद्ध सम्मुख वर्त्तमान है इस युद्ध में विजय न पाकर जो आप प्राणों को त्यागोगे तो दूसरी देह में आकर उनके साथ भी युद्ध करोगे तात्पर्य्य यह है कि उस वासनारूप चित्त के न जीतनेपर दूसरे जन्म में भी पहले संस्कार से आप को वह युद्ध प्राप्त होगा इससे हे भरतर्षभ! अब भी अपने कर्म्म से इस अपवित्र देह को त्यागकर जो चित्त का विरोधी एकाकी भाव होने के लायक है इसकारण चित्त के जीतने के लिये युद्धकरो उस चित्त के जीतनेपर उस दशा को प्राप्तहोगे कि चित्त से आत्मा पृथक् है इस स्वरूप की बुद्धि को और जीवों की उत्पत्ति और प्रीति को आत्मारूप चित्त से उत्पन्न होनेवाली विचार के उसको त्यागकर पूरे त्यागी हो बाप दादों की रीतिपर संसार में जैसा कि उचित है वैसा राज्य कर और पापात्मा दुर्योधन अपने साथियों समेत दैवइच्छा से युद्ध में मारागया और प्रारब्ध ही से तुम ने द्रौपदी के शिरके बाल पकड़ने का बदला पाया हे राजन्! बुद्धि के अनुसार तुम दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करके ईश्वर का पूजन करो और हम सब लोग और महाप्रतापी वासुदेवजी आप के आज्ञाकारी हैं॥ २६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषोडशोऽध्यायः॥ १६॥

सत्रहवां अध्याय॥

राजा युधिष्ठिर बोले कि बातों से त्याग नहीं होता किन्तु चित्त के रोकने से होता है और वह चित्त की रुकावट संतोषपूर्वक चित्त की एकाग्रता, नम्रता, वैराग्य, शान्ति, धैर्य्य, रूपान्तर होना, निरहंकार होने से होती है और राज्य असन्तोषी मनुष्य के करने योग्य होता है इसकारण राज्य के चाहनेवाले तुम छोटे होकर हम से पण्डिताई मत छांटो और राज्य को त्यागकर संतोषी हो इस बात को सिद्ध करते हुये युधिष्ठिर बोले कि असंतोषता, प्रमादता, मत्तता, रागता, अशान्तता, बलवत्ता, मोहता और सबप्रकारसे व्यग्रचित्तता आदि अनेक प्रकारके पापों से भरे हुये तुम राज्य को चाहतेहो जो अकेला राजा इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करे तो निश्चय है कि उसका भी एक ही पेट है तुम उसकी क्या प्रशंसा करते हो मास दिन आदि में असंपूर्ण होने के योग्य चित्त की इच्छा का पूर्ण करना उमरभर में भी नहीं होसक्ता क्योंकि प्रतिदिन लाभ होने में भी इच्छा बढ़ती ही जाती है ज्ञानी लोग भी अपने पेटके ही लिये बहुत

भक्ष्यवाले अमृतयज्ञ को करते हैं पहले पेट को जीतो फिर परलोक के जीतने से पृथ्वी भी जीती जाती है वही विजय तुम को भी हुई है तुम नरलोक के भोग और ऐश्वर्यों की प्रशंसा करते हो भोग न करनेवाले और तप से देह को दुर्बल करनेवाले उत्तम स्थान को पाते हैं निष्फल राज्य का मिलना और फल की रक्षा यह दोनों धर्म्म और अधर्म्मरूप तुम में वर्त्तमान हैं इससे बड़े बोझे से खाली होकर त्यागके भी रक्षा करनेवाले हो देखो व्याघ्र एकपेट के लिये शिकार करता है उससे और भी निर्बुद्धि मृग लोभ से बँधकर जीविका करते हैं जो राजा बाहर की विषयवासना को अपने वशीभूत करके संन्यास धारण करते हैं वह चित्त से प्रसन्न नहीं होते यह बुद्धि की विपरीतता जानो पत्तों के भोजन वा पाषाण पर कूटकर खानेवाले और इसीप्रकार दांतों को ऊखल बनानेवाले जल का भोजन करनेवाले और वायुभक्षणवाले जो ऋषिलोग हैं वह इस नरक से उद्धार होते हैं जो राजा इस संपूर्ण पृथ्वीपर राज्यकरे उससे वह संन्यासी अच्छा है जिसकी बुद्धि में पत्थर और सुवर्ण समान है पहले कहेहुये संस्कार और संकल्पों का प्रारम्भ कर्म्म न करनेवाला ममता को छोड़ निराश हो इसलोक परलोक दोनों में ऐसे अशोकस्थान को पाता है जिसका नाश नहीं राज्य के त्याग करनेवाले शोच नहीं करते हैं तुम राज्यको क्या शोचते हो जब सब राज्य को त्यागदोगे तब मिथ्यावाद से रहित होगे पितृयान या देवयान यही दोमार्ग प्रसिद्ध हैं यज्ञ करनेवाले तो पितृयान से और मोक्ष चाहनेवाले देवयान से अपने २ मार्ग को जाते हैं और वह महर्षि जो तप और ब्रह्मचर्य्य और वेद के पाठ से देहों को त्यागकर तत्त्वों को प्राप्तहोते हैं वही जीवन्मुक्त हैं इसलोक में आमिष ही बन्धन है तो उसी आमिष अर्थात् मांसादिकों को कर्म्म में हवन करके उन पापों से छूटकर उत्तम पद को प्राप्त होते हैं और जो लोग निर्द्वन्द्व मोक्ष के जाननेवाले हैं वह इन पुरानी कथाओं को कल्पना कहते हैं महासुंदर शोभायमान मिथिलापुरी में मेरा असंख्य धन है उसकी मुझ को कुछ भी ममता नहीं है ज्ञान के स्थपर चढ़कर शोचने के अयोग्य स्वर्गवासी मनुष्यों को शोचनेवाला निर्बुद्धि नहीं मालूमहोता अर्थात् वह उनकी दुखिया स्त्रियों आदि को नहीं शोचता है जैसे कि पहाड़पर बैठा मनुष्य पृथ्वी पर बैठेहुये मनुष्य को देखे जो पुरुष देखने के योग्य बातों को देखता है वही बुद्धिमान् और नेत्र रखनेवाला है इसकारण कि ज्ञात अज्ञात और करने वा न करने के योग्य बातों के जतलाने को बुद्धि कहते हैं और ब्रह्मभाव को जाननेवाला शुद्ध अन्तःकरण जो पुरुष है वह विद्यावानों के वचनों को अच्छे प्रकार से जानता है अर्थात् उनके वचनों के आशय को समझता है वही बड़ी प्रतिष्ठा पाता है अब तत्त्वज्ञान का वर्णन करते हैं कि जिससमय आकाशादि पंच महा-

भूतों के अनेक भेदों को एक आत्मा में देखता है और उसी आत्मा से उनकी उत्पत्तियों को भी देखता है तब तत्त्व की प्राप्ति होती है जो मनुष्य अज्ञानी निर्बुद्धि और तपस्या से रहित है वह तत्त्वदर्शियों की गति को नहीं पाते ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

इतना कहकर राजा फिर चुपका होगया तब भाई के वचनों से महाशोकयुक्त हो फिर अर्जुन बोले कि हे राजन्! इस विषय में हम एक पूर्व्व वृत्तांत कहते हैं कि जिसमें राजा जनक और उनकी स्त्री का संवाद है कि किसी समय राजा जनक ने भिक्षा के निमित्त राज्य त्याग करने की इच्छा की कि धन, पुत्र, स्त्री और अनेक प्रकार के रत्नों को और यज्ञादिक करने से शुद्ध सनातन मार्गों को त्याग मूर्खता में पड़ कमंडलु हाथ में ले मुट्ठी २ अन्न मांगते उदासीनवृत्ति हो विचरेंगे यह राजा का दृढ़विचारजान उसकी पतिव्रता स्त्री ने क्रोधित होकर कहा कि आप को यह क्या मूर्खता आई है कि ऐसे धनधान्ययुक्त अपने उत्तम राज्य को त्यागकर खप्पर हाथ में धारणकरके घर २ भीख मांगोगे यह एक २ मुट्ठी जौका मांगना तुम को योग्य नहीं हे राजन्! यह तुम्हारी प्रतिज्ञा मिथ्या है कि तुम ऐसे बड़े राज्य को त्यागकर थोड़े सामान कमंडलु आदि से तृप्तहोते हो हे स्वामिन्! इस थोड़ेसे सामान और मुट्ठी २ अन्न से तुम देव, ऋषि, पितृ आदि को तृप्त नहीं करसक्ते इससे यह आप का परिश्रम निष्फल है हे राजन्! तुम देव, ऋषि, अतिथि और पितरों को त्यागकर निष्कर्म्म संन्यासी होते हो जो तुम तीनों वेदों के पढ़ने से प्रतिष्ठित और हजारों ब्राह्मण और संसार का पोषण करनेवाले होकर शोभायमान थे सो तुम उन ब्राह्मण आदि के द्वारा अपना पेटभरना चाहते हो अत्यन्त प्रकाशवान् लक्ष्मी को छोड़कर कुत्ते के सदृश दीखते हो अब आप की माता पुत्र से रहित है और तुम्हारे कारण में भी पतिरहित हूं जो बड़े २ धनी भाग्यवान् क्षत्रिय राजा हजारों आप की सेवा करते हैं हे राजन्! लोक के बिगड़ने और देह ईश्वर के आधीन होने से तुम उन राजाओं को निष्फल करके किस लोक में जावोगे तुम्ह पापकर्म्मी का यह लोक परलोक दोनों नहीं हैं जो तुम धर्म्म से प्राप्त हुई स्त्रियों को त्यागकर जीते रहना चाहते हो गन्धमाल और आभूषण और नानाप्रकार के वस्त्रों को भी त्यागकर विना कर्म्म तुम कैसे त्यागी होते हो और सब जीवों के पोषक रक्षक होकर और पक्षियों के निमित्त फलवान् वृक्ष होकर दूसरों की सेवा किया चाहते हो बहुत से मांसभक्षी और कीड़े निरपराधी हाथी को भी खाते हैं फिर सब पुरुषार्थ से रहित तुम को क्यों नहीं खायँगे जो इस कुंडल को तोड़ आप के

वस्त्रों को भी छीनले तो ऐसी दशा में आप का चित्त कैसा होगा जो तुम इन सबको त्यागकर एकमुट्ठी भुनेहुये जौ के धारण करनेवाले हुये जब उस मुट्ठी जौके सदृश सब संसार है तो फिर तुम कैसे निश्चय करते हो जो यहां एक मुट्ठी जौ से प्रयोजन है तब आप की प्रतिज्ञा अत्यन्त नाश को प्राप्त होगी तो त्यागी नहीं होसक्के मैं कौन हूँ और तुम मेरे कौन हो और मुझपर तुम्हारी क्या कृपा है हे राजन्! इस पृथ्वीपर राज्य करके महल, पलंग, सवारी, वस्त्र, आभूषणों को भोगो इसी में तुम्हारा कल्याण है ऋग्, यजु, सामवेदरूपी यज्ञ लक्ष्मी से रहित निर्धन अमित्रवान् परमसुख चाहनेवाले संन्यासियों को कुंडल धारण कियेहुये देखकर राजा भी उसीप्रकार धारण करता है वह राज्य को क्या त्याग करता है अर्थात् त्यागकरना कठिन है आप उन दोनों मनुष्यों का अन्तर देखो जो बहुत देता या बहुत लेता है और उनदोनों में कौन सा श्रेष्ठ है पाखंड से भरेहुये याचक मनुष्यों को दक्षिणा का देना ऐसा है जैसा कि निर्बुद्धिता से दावानल अग्नि में हवन करना हे राजन्! जैसे कि अग्नि भस्मकरके शांत होजाती है उसी प्रकार याचना करनेवाला ब्राह्मण भी शांति को प्राप्त होता है इसलोक में संन्यासियों को भोजन देना मानो जीविका है जो राजा होके दान करनेवाला न होय तो मोक्ष चाहनेवाले कहां से होयँ इस संसार में कुटुम्बी लोग अन्न से जीवते हैं उसी से संन्यासी भी जीवते हैं अन्न से प्राण बना रहता है अन्न का दाता प्राण का दाता जानो जितेन्द्रिय पुरुष कुटुम्बीलोगों से जुदे भी होकर कुटुम्बवालों के हो ऐश्वर्य्य से प्रतिष्ठा पातेरहते हैं त्यागने से और मूर्खतापूर्वक याचना के करनेवाले संन्यासी से वह पुरुष उत्तम है जो अपने शुद्धभाव से धनआदि को त्यागता है हे राजन्! जो निस्संग हो बन्धन को त्याग शत्रुमित्र में समानबुद्धि और दृश्यपदार्थों में चित्त को न लगा कर वैराग्यवान् है वही मुक्त है और शिर मुड़ाकर गेरुयेवस्त्र पहिन बहुत से जंजालों में फँसेहुये धन के खोजने में फिरते हैं जो अल्पबुद्धि वेद के सनातनमार्ग को और अपने स्त्री पुत्रादिकों को त्यागकर जाते हैं वह कभी मुक्ति नहीं पाते हे महाराज! जितेन्द्रिय पुरुष मूंड़मुड़ाये गेरुआ कपड़े जटाधारी मृगचर्म्म ओढ़नेवाले धनकांक्षी साधुओं से उत्तम हैं जो मनुष्य प्रतिदिन अपने प्रथम गुरु के निमित्त अग्निहोत्रों की दक्षिणा को देता है और बड़े २ यज्ञों को भी करता है उससे अधिक धर्मात्मा कौन है अर्जुन बोले कि इसलोक में राजा जनक बड़ा तत्त्ववेत्ता प्रसिद्ध है वह भी अज्ञान के वशीभूतहुआ इस से आप भी मोह में मत फँसो और धर्म्म में प्रवृत्त हो सदैव दान तप में तत्पर दया आदि गुणों से सम्पन्न काम क्रोध से वर्जित प्रजापालनरूपी महादान में स्थित अपने गुरु वृद्ध इष्ट मित्र और याचकों को संतुष्टकर अपनी बुद्धि के अनुसार देवता अतिथि

और अनेक जीवों को यजन, पूजन, भोजन आदि से प्रसन्न करके वेद के अनुसार उत्तम ब्राह्मणों का सत्कारकर सत्यवक्ता हो हमसब समेत आप उत्तमपद को पावोगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भाई ! मैं वेदांतशास्त्र और अन्य शास्त्र को जानकर यह भी जानता हूं कि क्या त्यागना और क्या नहीं त्यागना चाहिये और उन शास्त्रों को भी जानता हूं जो घरानों से सम्बन्ध रखते हैं और मन्त्रों में भी मुझे बुद्धि के अनुसार निश्चय है परन्तु तुमलोग केवल अस्त्रविद्याओं के जाननेवाले और वीरों के व्रत से भरेहुये हो इससे किसी दशा में भी शास्त्र के यथार्थ आशय के जानने को समर्थ नहीं हो और जो शास्त्र के सूक्ष्म आशयों का देखनेवाला है और धर्म्म के निश्चय करने में पण्डित है वह भी ऐसानहीं कहसक्ता और तुम ने भाई के सुहृद्भाव में प्राप्त होकर वचनों को कहा इस से हे अर्जुन ! मैं तुम से प्रसन्न हूं युद्धधर्म्म में और क्रियाओं की चतुरता में तीनों लोकों में कोई भी तेरे समान नहीं है धर्म्म बड़ा सूक्ष्म है उसमें वार्त्तालाप करना तुम को बड़ा कठिन है इससे हे वीर ! सन्देह करने के योग्य तेरी बुद्धि नहीं है तुमतो केवल जनक के ही शास्त्र को जानते हो तुमने वृद्ध पुरुषों का संग नहीं किया इससे तुम ने उन तत्त्वदर्शियों के निश्चय भाव को नहींजाना बुद्धिमान्लोग निश्चयपूर्वक कहते हैं कि तपस्या का त्यागकरना बुद्धि की विपरीतता है और जो तुम कहते हो कि धन से उत्तम तप नहीं है इसविषय में मैं तुम से वर्णन करूंगा जैसे कि यह उत्तम है कि धर्म्मवान् पुरुष तप वेद को पठन पाठन और जप आदि के अभ्यास करनेवाले देखने में आते हैं ऐसे ऋषिलोग भी तपस्याही में प्रवृत्त रहते हैं जिन के सनातनलोक हैं इसी प्रकारके अन्य वनवासी भी जो सब संसार से मित्रभाव करनेवाले वेदपाठ और जप तप के करने से स्वर्ग को गये उत्तम पुरुष विषयों को त्याग अज्ञानरूपी अन्धकार से पार होकर उत्तम मार्ग से कर्म्मत्यागियों के लोकों को गये और जो दक्षिणमार्ग हैं जिनको कि प्रकाशवान् कहते हैं वह कर्म्मवालों के लोक हैं जो इन मार्गों से जाते हैं वह जन्म मरण के फंदे से नहीं छूटते वह मोक्ष वर्णन नहीं कियाजाता है जिसको कि मोक्षमार्ग में चलनेवाले देखते हैं इसकारण उसके प्राप्त होने के लिये योगाभ्यास करना उत्तम है परन्तु जानना उसका महाकठिन है पंडित लोग भी शास्त्रों में सारासार विचारतेहुये उसके सत्यासत्य जानने में भूलेहुये हैं उन्हों ने वेद के वचनों को और वेदांत शास्त्रों को उल्लंघन करके केले के

खम्भे को चीरकर सार वस्तु को नहीं देखा और अब दूसरे की मति को त्याग करके सिद्धान्त कहते हैं कि वह आत्मा, मन, बुद्धि, वाणी से परे नेत्रों से अदृश्य कर्म्मसाक्षी प्रकाशवान् हो प्राणियों में वर्त्तमान है चित्त को आत्मा की ओर लगाकर इच्छा और लोभ को वशीभूत करके और नित्यकर्म्मों को त्यागके अहंकाररहित होजाता है हे अर्जुन ! इस सूक्ष्म बुद्धि से प्राप्त होने के योग्य सत्पुरुषों से सेवित मार्ग में तुम किसप्रकार से अनर्थ नाम अर्थ की प्रशंसा करते हो हे अर्जुन ! कर्म्मकाण्ड के जाननेवाले दान, यज्ञ, कर्म्म और क्रियाओं के व्रत रखनेवाले मनुष्य भी इसीप्रकार देखते हैं तो फिर ज्ञानीलोग क्यों न देखेंगे कारणों के जाननेवाले पण्डितलोग सिद्धान्त बातों को कष्ट से भी नहीं समझासके कारण यह है कि वह पहिले जन्म के दृढ़ संस्कार को रखनेवाले ऐसा नहीं कहनेवाले हैं और मिथ्या को निर्मूल करने के लिये सभाओं में शास्त्रार्थ के करने में अतिप्रगल्भ बुद्धि रखनेवाले और अनेक शास्त्रोंके वेत्तालोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमते हैं इसप्रकार शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता ज्ञानी और महापुरुष भी सुनेगये उनको हम नहीं जानते तो दूसरा कौन उनको जानसक्ता है हे अर्जुन ! तपसेही वैराग्य को पाता है और बुद्धि से परब्रह्म को भी जानता है इसप्रकारके तत्त्व का जाननेवाला त्यागही से सदैव आनन्द को पाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेयुधिष्ठिरवाक्येएकोन
विंशतितमोऽध्यायः ॥ १६ ॥

बीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस वचन के कहने के समय सामयिक वक्ता देवस्थान नाम महातपस्वी ऋषि ने बड़ी युक्ति के सहित युधिष्ठिर से यह वचन कहा कि हे युधिष्ठिर ! अर्जुन ने जो कहा कि तप धन से बड़ा नहीं है इस विषय में तुझ से मैं कहता हूं तू एकाग्रचित्त होकर सुन हे अजातशत्रु, युधिष्ठिर ! तुम ने धर्म्म से सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया उस जीतीहुई को अयोग्य रीति पर त्यागदेना उचित नहीं क्योंकि चारों आश्रमों से सम्बन्ध रखनेवाली श्रेणी ब्रह्महीं में नियत है इससे हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! तुम भी उसको बुद्धि की परम्परा से विजय करो अर्थात् बड़ी दक्षिणावाले महायज्ञों से पूजन करो वेद का पठन पाठन ये रूप यज्ञ तो ऋषियों का और ज्ञानरूपी यज्ञ औरों का अर्थात् ब्रह्मचारी और संन्यासी का और कर्म्मनिष्ठ गृहस्थों का और तपोनिष्ठ होना वानप्रस्थों का जानो हे राजन् ! इसीप्रकार वैखानस नाम ऋषियों का सुना जाता है जो पुरुष धन के लिये इच्छा को करे उसकी इच्छा न करनाही उत्तम

है और जो उस धर्म्म को कोई क्षत्रिय करे वह बड़ा दोषी होता है और यज्ञही के कारण धनसंचय करते हैं जो देह को या उसी के समान धन को अयोग्य कर्म्म में खोता है और योग्य कर्म्म में नहीं लगाता है वह आत्मा से शत्रुता करनेवाली भ्रूणहत्या को नहीं जानता है योग्यायोग्य कर्म्मों का ज्ञान न होने से शुद्ध धर्म्म भी कठिनता से होता है ईश्वर ने यज्ञ करने के लिये धनुर्द्धारियों को उत्पन्न किया इससे यज्ञ के निमित्त आज्ञा पायाहुआ मनुष्य उस यज्ञ का रक्षक है इस कारण सब धन यज्ञही में खर्च करने के योग्य है उसीसे चित्त की इच्छा भी पूर्ण होती है बड़े तेजस्वी देवेश इन्द्र ने निरीच्छ होकर ईश्वरार्पण यज्ञकेही द्वारा सब देवताओं को अपना आज्ञाकारी किया और उसी यज्ञ के कारण वह अमरावती पुरी को पाकर अबतक शोभायमान है इससे निश्चय करके यज्ञमेंही सब धन खर्चना उचित है और महादेवजी भी सर्वयज्ञ में अपनी आत्मा को हवन करके सब देवताओं के देवता हुये और महातेजस्वी हो अपने तेज को इस ब्रह्माण्ड के सब लोकों में व्याप्त करके अपनी सुन्दर कीर्त्ति से पूर्ण कर दिगम्बररूप धारण किये विराजमान हैं और एक आविक्षत मरुत हुआ है जिसने देवराज इन्द्र को विजय किया उसके यज्ञ में आप श्रीलक्ष्मीजी ने आकर दर्शन दिया उस यज्ञ में सब सुवर्ण के ही पात्र थे और हरिश्चन्द्र राजा को भी सुना होगा कि उसने भी बड़े २ यज्ञों से पूजन किया और इन्द्र को भी विजय किया इसी से सब धन को यज्ञही में लगाना चाहिये ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

देवस्थान ऋषि बोले कि हम इसस्थान में एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको समय पर पूछने से बृहस्पतिजी ने इन्द्र से कहा कि निश्चय करके सन्तोष करनाही बड़ा स्वर्ग है सन्तोषी को महासुख होता है जब वह सन्तोषी इसप्रकार अपनी इच्छा को आत्मा में छिपाता है जैसे कि कछुआ अपने अंगों को तब थोड़ेही काल में ज्योतिरूप आत्मा अपनी आत्मामेंही प्रसन्न होता है तब यह भय नहीं करता और न इससे दूसरे को भय होता है और किसी बात की इच्छा नहीं करता तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है हे राजन्! इस प्रकार अधिकारी जीव जिस समय जिस २ रीति से जिस २ कर्म्म को करता है वह उस २ कर्म्म को अपने अनुभव से देखता है इसकारण तुम भी ज्ञाता हो अर्थात् प्रजा के पालन से निर्भयता प्राप्त करो कोई शास्त्र को कोई उद्योग को कोई ध्यान को अच्छा कहते हैं और कोई २ दोनों कोही श्रेष्ठ समझते हैं इसी प्रकार कोई यज्ञ को कोई संन्यास को कोई दान की प्रशंसा करते हैं और कोई

दान लेने को भी अच्छा कहते हैं कोई सब त्यागकर मौन हो बैठते हैं और कितनेही राज्य और प्रजापालन को श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई मारकर भेदकर विदीर्णकर एकान्तवास करते हैं इन सब बातों को देखकर कहता हूं कि निश्चय अपने कर्म्म में प्रवृत्त हो अब सिद्धान्त बात कहता हूं कि जीवों में जो शत्रुता न करने से धर्म्म होता है वह सत्पुरुषों का स्वीकृत है जैसे कि द्रोह न करना सत्य बोलना विभागकरने में दया पाखण्ड न करना भयभीत न होना अपनी स्त्रियों में सन्तति उत्पन्नकरना नम्रता लज्जा स्थिरस्वभाव इसप्रकार से उत्तम धर्म्मों में प्रवृत्त रहना स्वायम्भुवमनु ने कहा है इससे हे कौन्तेय! बड़ी युक्ति से इस धर्म्म को पालन करो यज्ञ के शेष अमृत अन्न का खानेवाला और शास्त्र के अर्थ को यथार्थ जाननेवाला अपराधियों को दण्ड देनेवाला साधुओं की पालना में अतिशय प्रीतिमान् हो प्रजा को सुमार्ग में स्थित करके आप भी धर्म्म-पूर्वक कर्म्म करै फिर अपने पुत्र को राज्य का अधिकारी कर वन के कन्द, मूल, फलों से अपना निर्वाह कर वन में रह शास्त्रश्रवण करनेवाली सुबुद्धि से कर्म्मों को करै हे राजन्! आलस्य को त्याग ये धर्मनिष्ठ होकर जो राजा ऐसे कर्म्म करता है उसका यह लोक और परलोक सफल होता है और इसी कर्म्म से काम, क्रोध, लोभ भी नष्ट होजाते हैं प्रजापालन में तत्पर और दान तप में प्रवृत्त दयायुक्त क्रोध इच्छा से रहित उत्तम धर्मवान् गो ब्राह्मणों के अर्थ युद्ध करनेवाले क्षत्रियों ने उत्तम गति को पाया है और एकादश रुद्र और अष्टवसु और द्वादश सूर्य्य साधुवर्ग और ऋषियों के अंशों से बनी राजा की देह होती है इससे तुम इस धर्म्मपर निश्चय नियत हो ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इतनी बातें सुननेवाले युधिष्ठिर से फिर अर्जुन ने वचन कहा कि हे महाबुद्धिमन्, धर्मज्ञ, युधिष्ठिर! क्षत्रियधर्म से बड़ी कठिनता-पूर्वक शत्रुओं को विजयकर राज्य पाकर क्यों दुःखी होते हो हे महाराज! क्षत्रि-यधर्म्म को ध्यान करते महापुरुषों ने क्षत्रियों का युद्ध में मरना बहुत से यज्ञों से भी उत्तम कहा है और ब्राह्मणों का संन्यासधर्म्म देह के त्यागने के समय पर कहागया है और क्षत्रियों का युद्ध में मरना ही संन्यास से उत्तम माना है और हे राजन्! क्षत्रियधर्म्म महारुद्र और महेश्वरशास्त्रों से संयुक्त है और समय पाकर युद्ध में शस्त्रों से मरना होता है इससे हे राजन्! जो ब्राह्मण भी क्षत्रिय-धर्म्म में प्रवृत्त होता है उसका जन्म सुफल होता है और योग्य इस कारण है कि लोक में क्षत्रिय का वंश ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाला है और स्वामी क्षत्रिय

को न तप न संन्यास न ब्रह्मयज्ञ न दूसरे धन से जीविका करना योग्य है इस से हे बुद्धिमन्, धर्म्मात्मन् ! आप प्रजापालन में तत्पर हो और दुःख से प्राप्त हुये शोक को त्यागकर कर्म्म करने में प्रवृत्त होजावो मुख्य करके क्षत्रिय का हृदय वज्र के तुल्य होता है सो ऐसे क्षत्रियधर्म्म से राज्य को पाकर जितेन्द्रिय हो यज्ञ दान आदि कर्म्मों में ध्यान दो निश्चय है कि इन्द्र भी ब्राह्मण का पुत्र हो कर्म्म से क्षत्रिय हुआ उसने पापात्माजाति के आठसौदश प्रकारों को मारा हे राजन् ! उसका वह कर्म्म प्रशंसा के योग्य है उसी कारण देवताओं के स्वामी हुये यह हम ने सुना है हे नरेन्द्र ! आप तप के सिवाय बड़े २ दक्षिणावाले यज्ञों को करके इन्द्र के समान पूजन करो और हे भाई ! आप ऐसी दशा में कुछ शोच न करो उनशास्त्रों से पवित्र क्षत्रियलोग अपने क्षत्रियधर्म्म से परमपद को प्राप्त हुये हे राजशिरोमणे ! जो भवितव्य था सो हुआ उसके मिटने को कोई समर्थ नहीं इससे तुम भी उल्लङ्घन करने के योग्य नहीं हो ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि अर्जुन के इतने कहनेपर भी युधिष्ठिर ने कुछ नहीं कहा तब व्यासजी बोले कि हे स्वामिन्, युधिष्ठिर ! यह अर्जुन का वचन सत्य है यह गृहस्थधर्म्म शास्त्र की दृष्टि से उत्तम है इस धर्म्म के रक्षक होकर धर्म्म में वर्त्तमान शास्त्रबुद्धि से अपना कर्म्म करो हे धर्म्मज्ञ ! गृहस्थाश्रम को छोड़ तुम्हारा वन में वास करना धर्म्म नहीं है गृहस्थ से देवता, अतिथि, पितर और नौकर, चाकर सब अपना निर्वाह करते हैं इससे उनका पोषण करो और पशु पक्षी आदि जीवधारी भी गृहस्थही से पलते हैं इसहेतु से गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमों में श्रेष्ठ है चारों आश्रमों में यह आश्रम दुःख से कटने योग्य है हे राजन् ! अब उस विधि को करो जोकि निर्बल असाहसी लोगों से कष्ट से होने के योग्य है तुम सब वेदों के जाननेवाले और महातपस्या करनेवाले हो सो आप बाप दादे के राज्य के धुर धारण करने के योग्य हो हे राजन् ! तपसमाधि, ब्रह्मविद्या, भिक्षामांगना, दृढ विश्वास, ध्यान और एकान्त बैठना, सन्तोष और सामर्थ्य के समान दान देना यह ब्राह्मणों का कर्म्म मोक्ष का देनेवाला है और क्षत्रियों के कर्म्म को कहता हूँ वह सब तेरा जानाहुआ है यज्ञ करना विद्या पढ़ना लक्ष्मी के लिये उत्तम उद्योग सन्तोप करना दान देना उग्ररूप होना और प्रजा का पोषण और सब वेदों का ज्ञान और ऐसेही अच्छे प्रकार से कियाहुआ तप बड़े धन का संचय करना और पात्र को दान देना ये राजाओं के श्रेष्ठ कर्म्म हैं हे राजन् ! वह इस लोक परलोक दोनों को सिद्ध करते हैं यह हम ने सुना

है हे कुन्ती के पुत्र ! इन सबमें दण्ड का धारण करना उत्तम कहाजाता है क्षत्रिय में सदैव पराक्रम है और पराक्रम में सदैव दण्ड नियत है यह क्षत्रियों की विद्या मोक्ष की देनेवाली है और बृहस्पतिजी ने भी इस कथा को गाया है पृथ्वी इन पूर्वोक्त दोनों को निगलजाती है जिस प्रकार बिल में रहनेवाले चूहों को सर्प और शत्रुता न करनेवाला राजा और वनवास न करनेवाला ब्राह्मण निकृष्ट सुनाजाता है सुद्युम्न राजऋषि ने दण्ड के धारण करने सेही ऐसी परम गति को पाया जैसी कि प्राचेतस दक्ष ने पाई युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् ! राजा सुद्युम्न ने किस कर्म्म से ऐसी सिद्धि को पाया मैं उसका वृत्तान्त सुना चाहता हूं व्यासजी बोले कि मैं इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास कहता हूं कि शङ्ख और लिखित नाम ब्राह्मण दोनों भाई थे वे बड़े तेजस्वी और व्रत करनेवाले हुये उनदोनों के पृथक् २ आकाम बाहुदा नदी के सामने सुपुष्पित सफल वृक्षों से शोभित अतिसुन्दर वर्त्तमान थे किसी समय दैव इच्छा से लिखित शङ्ख के आकाम को गया तो उसे देख शङ्ख भी अपने आकाम से निकला तब उस लिखित ने शङ्ख के उस आकाम में जो सुन्दर फल फूलों से युक्त था जाकर झुकेहुये फलों को गिराया और फलों का भोजन करनेलगा उसके भोजन करने के समय शङ्ख भी अपने आकाम में आया और उस फल खानेवाले अपने भाई से कहा कि यह फल तैंने कहां से पाये और काहे को खाता है तब हँसकर लिखित ने उसके पास जाकर कहा कि मैंने यह फल यहां से लिये हैं तब महाक्रोधित हो शङ्ख ने उससे कहा कि आप से तुम ने जो इन फलों को लिया यह तुम ने चोरी की तुम राजा के पास जाकर अपना कियाहुआ चोरकर्म्म कहो कि हे राजाओं में उत्तम ! मैंने विना दीहुई वस्तु को लेलिया तुम मुझ को चोर जानकर अपने धर्म्म का पालन करो और मुझ चोर को शीघ्र दण्ड दो हे महाबाहो ! इसप्रकार के अपने भाई के वचन सुनकर वह राजा के पास गया और अपना सब वृत्तान्त राजा से कहा तब राजा सुद्युम्न द्वारपालों के मुख से आये हुये लिखित को सुनकर मन्त्रियोंसमेत पैदल उसके पास गया और उससे मिल कर राजा ने धर्म्मयुक्त वचन कहे कि हे भगवन् ! आप का आना कैसे हुआ आप का जो मनोरथ हो वह मैं तत्कालही करूंगा इसप्रकार के राजा के वचनों को सुन वह ब्रह्मर्षि बोला कि हे नरोत्तम, महाराज ! मैंने बड़े भाई से विना आज्ञा लिये फलों को भोजन करलिया उसमें मुझ को जो उचित दण्ड हो वह शीघ्र दो विलम्ब न करो राजा सुद्युम्न बोला कि हे ब्राह्मणों में उत्तम ! जैसे आपने दण्डदेने में राजा को प्रमाण माना है उसी प्रकार आज्ञा देने में भी प्रमाण जानिये इसकारण शुद्धकर्मी और महाव्रतधारी आप मुझ से आज्ञा पानेवाले हो इसके विशेष जो तुम दूसरी कोई अन्यवार्त्ता अपनी प्रसन्नता की कहो उसे मैं

अवश्य करूंगा यह सुन उसमहर्षि ने अपने दण्ड के सिवाय दूसरा कोई वर राजा से न मांगा तब तो राजा ने उस लिखित नाम ब्रह्मर्षि के हाथों को कटवाया और दण्ड पाकर वह ऋषि चलेगये और पीड़ितस्वरूप से अपने भाई शङ्ख से जाकर यह बोले कि मुझ निर्बुद्धि दण्ड पानेवाले का वह अपराध क्षमाकीजियेगा शङ्ख बोला कि हे धर्म्म के जाननेवाले! मैं तुझपर क्रोध नहीं करता क्योंकि तुम मुझ को दोष का भागी नहीं करते तेरा धर्म्म बेमर्य्यादा हुआ था इसकारण तेरा प्रायश्चित्त हुआ तुम शीघ्रही बाहुदा नदी पर जाकर बुद्धिके अनुसार देवता और पितरों को तर्पण करो और अधर्म्म में चित्त न लगावो लिखित ने शङ्ख के उस वचन को सुनकर उस पवित्र नदी पर जा आचमन आदि करना प्रारम्भ किया तब उसके दोनों हाथ कमल के सदृश प्रकटहुये तब उसने वह हाथ अपने भाई को दिखाये फिर शङ्ख ने उससे कहा कि मैंने यह हाथ तपस्या से किये इसमें तुम कुछ संदेह मत करो इसमें दैवही कारण कहाजाता है लिखित बोले कि हे महातपस्विन्! तुमने पहिलेही मुझ को पवित्र क्यों न किया जो आप सरीखे ब्राह्मणोत्तमों में तप का ऐसा प्रभाव है शङ्ख बोले कि मैंने इसकारण ऐसा किया कि मैं तेरा दण्ड देनेवाला नहीं वह राजा पवित्र हुआ और तुम भी पितरों समेत पवित्र हुये व्यासजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर! उस सुद्युम्न राजा ने उसी कर्म्म के द्वारा परमानन्दरूपी पवित्रता को ऐसा पाया जैसा कि प्राचेतस दक्षजी ने पाई थी इससे हे महात्मन्! प्रजा का पालनही क्षत्रियों का धर्म्म है और दूसरा कुमार्ग है शोक से चित्त को हटाकर भाई के हितकारी वचनों को सुनो कि राजाओं को दण्डही धारण करना योग्य है मुण्डन धर्म्म नहीं है॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥ २३॥

चौबीसवां अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि इतना सुनाकर फिर उस अजातशत्रु युधिष्ठिर से व्यासजी ने यह वचन कहा कि हे तात! तेरे मनस्वी भाइयों से वन में बसने के समय जो मनोरथ हुये थे हे महारथिन्! उनको बतावो और तुम पृथ्वीपर राज्य करो जैसे कि नहुष के पुत्र ययाति ने किया हे नरोत्तम! इन विचारे तपस्वी वीरों ने वन में अनेक प्रकार से दुःखों को सहा और दुःख के अन्त में सुख को सब भोगते हैं इससे हे कौन्तेय! तुम अपने भाइयों के साथ धर्म्म अर्थ काम मोक्ष इनको प्राप्त करके पीछे से इन उपाधियों को त्यागोगे और देवता पितर जो आप का आश्रय किये रहते हैं उनके ऋण से भी छूटोगे और तुम सर्वमेध और अश्वमेधयज्ञों के द्वारा पूजन करो उसके पीछे परमगति को पावोगे और बहुत

बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों के फलों से भाई और स्त्री, पुत्र आदि सहित बड़ी कीर्त्ति को पावोगे और हे कौरवोत्तम ! हम तेरे वचन को जानते हैं इसप्रकार से कर्म्म करनेवाला धर्म्म से नहीं गिरता हे युधिष्ठिर ! जो राजा समान धर्म में प्रवृत्त हैं और बुद्धिमान् हैं वह दूसरे के धन हरनेवाले राजा का युद्ध और विजय करना आवश्यक मानते हैं जो राजा देशकाल को समझकर शास्त्र की बुद्धि से अपराधियों को क्षमा करके नहीं मारता वह उसी चोरी आदि पापों के फलों को पाता है और जो राजा छठेभाग को लेकर अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता वह उस रक्षा न करने के चतुर्थांश पाप को भोगता है और यह समझो कि जो राजा अपने धर्म्म को करता है वह कभी धर्म्म से भ्रष्ट नहीं होता सदैव राजा धर्म्मशास्त्र के विरुद्धकर्म्म करने से ही भ्रष्ट होता है जो पिता के समान सब प्रजापर शास्त्रबुद्धि से समदृष्टि होकर राज्य करताहै वह कभी पापका भागी नहीं होता और जो राजा दैवयोग से समयपर अपना कर्म्म नहीं करता वह अधर्म्म नहीं है बुद्धि के द्वारा बहुत शीघ्र ही शत्रु को दण्ड देना योग्य है और पापात्मा लोगों से स्नेह न रक्खे अपने देश में धर्म्म की वृद्धि करे और शूर वीर श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करे और कर्म्मकाण्ड के जाननेवाले ब्राह्मण और धनवान् वैश्यादिकों की अधिक प्रतिष्ठा करे और अनेक शास्त्रों के जाननेवाले पुरुष व्यवहारों में सम्मति करने के योग्य हैं और बुद्धिमान् राजाको उचित है कि कैसा भी कोई बुद्धिमान् हो किसी पर पूर्ण विश्वास न करे रक्षा न करनेवाला राजा पाप को भोगता है हे राजन् ! ईश्वर के कोप से जो दुर्भिक्ष आदि कष्ट प्रजापर होते हैं उन से और चोरी आदि से प्रजा का नाश होता है वह सब राजा का ही पाप है और हे राजन् ! जो विचारपूर्वक न्याय और धर्म्मशास्त्र के अनुसार पालन करनेपर भी जो प्रजा की हानि हो वह अधर्म्म नहीं है बहुधा होनहार बातें भी होजाती हैं परन्तु उन के दूर करने के उद्योग करने से राजा को पाप नहीं होता इस स्थान पर एक कथा तुम से कहता हूं कि प्राचीन समय में एक हयग्रीवनाम राजर्षि था वह शत्रुओं के दण्डदेने में और मनुष्यों के पोषण करने में जो उत्तम कर्म्म और श्रेष्ठ उद्योग थे वह सब करके युद्ध में कीर्त्तिमान् हो स्वर्ग में आनन्द करता है वह स्नेह को त्याग युद्धों में शस्त्रधारियों के शस्त्रों से घायल दिव्य अस्त्र शस्त्र धारण किये चोरों से माराहुआ कर्म्मकर्त्ता साहसी और मनोरथों का पानेवाला था और अपने युद्धरूप यज्ञ की अग्नि में शत्रुओं को हवनकर पापों से छूट प्राणों को त्याग देवलोक में विहार करता है॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकारके अनेक वचन व्यासजी से सुनकर अर्जुन को क्रोधित जान व्यासजी को सम्मुख कर युधिष्ठिर बोले कि यह पृथ्वी का राज्य और अनेक प्रकार के भोग मेरे चित्त को प्रसन्न नहीं करते अब यह दुःख मुझ को सताता है हे मुने ! अपने वीर पुरुष पति और पुत्रों के शोक से पीड़ित स्त्रियों के रोदन को सुनकर शान्त नहीं होता यह वचन सुनकर वेद और धर्म्म के ज्ञाता योगियों में श्रेष्ठ श्रीव्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि वह पति, पुत्र, स्त्रियों को कर्म्म करके वा यज्ञों से भी प्राप्त नहीं होसक्के और न कोई उन पुरुषों का देनेवाला है ईश्वर ने सबका समय नियत किया है इससे अपने २ समय मनुष्य यथेच्छ वस्तु पाता है इन स्त्रियों का सौभाग्य जाना था इससे विधवा हुईं इन का शोच करना व्यर्थ है विना समय के आये चाहे जितने ज्ञानशास्त्र धर्म्म-शास्त्र पढ़ने से भी पुत्र नहीं होते कभी मूर्ख भी अर्थों को पाता है सब कामों में समय ही मूल कारण है विनाशकाल में शल्यविद्या, मन्त्रविद्या और औषधी स-फल नहीं होती हैं वह सब कालसेही नियत और प्राप्त होते हैं जिसको विधाता ने उत्पन्न किया है वह सब काल पाकर नष्ट होते हैं विना समय आये कोई किसी का नाश नहीं करसक्ता समय पाके गुणी धनी निर्धन होते हैं और उसी प्रकार निर्धन निर्गुणी धनवान् होते हैं कालही में तीक्ष्ण हवा, बादल, मेह और वन के वृक्ष फूलते हैं समयही से अँधेरी उजेली रात्रि और विना समय के नदी वेग से नहीं बहतीं और पक्षी, सर्प, मृग, हाथी, पहाड़ी, पशु उन्मत्त नहीं होते समय परही स्त्रियां गर्भ धारण करतीं विना समय फाल्गुन चैत्र में वर्षा नहीं होती समय परही मरना, जीना, पैदा, धर्म्म, अधर्म्म होता है समय परही बालक बोलता और तरुण होता है समय परही बोयाहुआ उगता है और समय परही सूर्य्य का उदय अस्त आदि सम्पूर्ण बातें होती हैं इस स्थानपर हम राजा सेन-जित का इतिहास वर्णन करते हैं कि यह काल की गति दुःख से सहने के योग्य है और सब नरलोकवासियों को स्पर्श करती है कालसेही पृथ्वी के सब जीव मरते हैं और कालही से एक दूसरे को मारता है सो हे राजन् ! यह मरना जीना कहनेही मात्र है न कोई मरता है न जीता है न मारता है तर्कशास्त्र-वाले यह मानते हैं कि मारता है और दूसरा सांख्यशास्त्रवाला कहता है कि नहीं मारता है यह जीवों का जन्म मरण केवल आत्मा की सत्ता से है कि अपने आप होते हैं अर्थात् धन स्त्री के नाश से दुःख और पुत्र अथवा पिता के मरने में महादुःख है इसप्रकार ध्यान करताहुआ उस दुःख का उपाय करे मूर्ख होकर शोच न करे और शोक में डूबकर मूर्ख स्त्रियों को क्यों शोचता है जिन

के दुःखों में दुःख और भय में भय भी है अर्थात् दुःख और भय को दूना करना महाअज्ञानता है यह आत्मा भी मेरा नहीं है और न यह पृथ्वी मेरी है अर्थात् मुझ आत्मारूप से जुदे हैं और जैसे कि यह सब प्रपञ्च मेरा रूप है उसीप्रकार दूसरों का भी है अर्थात् सब रूपों में एकही आत्मा है जो इसप्रकार से देखता है वह अज्ञानता में नहीं फँसता है शोक के हज़ारों स्थान और आनन्द के सैकड़ों स्थान प्रतिदिन अज्ञानियों में आते हैं पण्डितों में नहीं आते इसप्रकार काल के प्रेरित सुख दुःख जीवों में घूमा करते हैं जैसा समय पाते हैं वैसेही सुखरूप दुःखरूप होजाते हैं यह सब मोह के लक्षण हैं ऐसा विचार करे कि यहां जितने सुख हैं वह भी दुःखरूपही हैं क्योंकि लोभ से जो चित्त में आकुलता होती है उससे दुःख उत्पन्न होता है और दुःख के नाश होने को सुख कहते हैं सुख के अन्त में दुःख और दुःख के अन्त में सुख अवश्य होता है न सदैव दुःख रहता है और न सुख बनारहता है कभी दुःख से सुख और कभी सुखसे दुःख होजाता है इस कारण इन दोनों को त्यागकर मोक्षरूपी अक्षय सुख को प्राप्त करे और उन्हीं दोनों सुख दुःखों से शोक की भी वृद्धि होती है इससे उन दोनों को एक अङ्ग के सदृश समझकर त्याग करे सुख दुःख को हृदय से अलग करने के निमित्त मनुष्य उपासना करे तो इस शोक से निवृत्त होगा देह, स्त्री, पुत्रों में स्नेह करनेवाला पीछे से समझेगा कि किसप्रकार से किसकारण कौन किसका सम्बन्धी है अर्थात् कोई किसी का न पुत्र है न स्त्री है इस संसार में जो अत्यन्त अज्ञान हैं और जो बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं वहही सुखों को भोगते हैं और मध्य के मनुष्य दुःखही पाते हैं हे युधिष्ठिर ! उस महाज्ञानी दानी दुःख सुख के ज्ञाता राजा सेनजित ने यह कहा कि उस लोभ आदि के कारण जो दुःखों से दुःखी है वह कभी सुखी न होगा दुःखों का नाश नहीं है एक से एक दुःख पैदा होताजाता है सुख दुःख राज्य नाश हानि मृत्यु जीवन इन सब को क्रम-पूर्वक पाते हैं उन सबों से पण्डितलोग न खुश होते हैं न शोच करते हैं युद्ध-भूमि में जो युद्ध करना है वही राजा का दीक्षायज्ञ है और राज्य में जो अच्छे प्रकार से दण्ड और नीति का जारी होना है उसी को योग जानो और यज्ञ के बीच जो दक्षिणा का देना है अथवा धन खर्चकर अच्छे प्रकार दान करना है वह सब राजाओं को शुद्ध करता है देह के स्नेह को त्याग यज्ञ करनेवाला महात्मा राजा बुद्धि और नीतिपूर्वक राज्य की रक्षा करनेवाला और धर्म्म की दृष्टि से सब मनुष्यों में घूमनेवाला जब समय पाकर देह को त्यागता है वह देवलोक में आनन्द करता है युद्ध में विजय कर देशों का पालन कर यज्ञों के अमृत को भोजन करके युक्ति दण्ड से प्रजाकी शुद्धि कर जो राजा संग्राम में मरता है वह भी स्वर्ग में निवास करता है और वेद शास्त्रों को पढ़ अच्छे

प्रकार से प्रजापालन कर चारों वर्णों को अपने २ धर्म्म में प्रवृत्त करके जो राजा शुद्ध अन्तःकरण होता है वह परमधाम को पाता है और उसके पुरवासी मन्त्री प्रजा आदि के मनुष्य उस स्वर्गवासी राजा की कीर्त्ति को गाते हैं और नमस्कार करते हैं वह राजा सर्वोत्तम है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसी विषय में राजा युधिष्ठिर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अर्जुन से यह वचन बोला कि हे अर्जुन ! तुम जो यह मानते हो कि धन से कोई बड़ा नहीं है विना धन के न स्वर्ग है न सुख है न राज्य आदि है सो यह सब तुम्हारा कहना मिथ्या है वेदपाठ, यज्ञ, जप आदि से सिद्ध होनेवाले बहुत से मनुष्य और तप में प्रीति करनेवाले मुनि ऐसे देखने में आते हैं जिन को सनातनलोक प्राप्त होते हैं हे अर्जुन ! जो ब्रह्मचारी और सब धर्म्मों के जाननेवाले पुरुष ऋषियों के प्राचीन आचरणों की रक्षा करते हैं उनको देवतालोग ब्राह्मण जानते हैं तुम भी वेदपाठ में प्रवृत्त हो इस से उन ज्ञाननिष्ठों को जानते हो हे अर्जुन ! तेजोमय पुरुष ज्ञानी और निष्ठावान् होके हजारों स्वर्गलोक को गये हैं और वेद में कहेहुये कर्म्मों को प्राप्त होकर यज्ञ वेदपाठ दान कठिनता से प्राप्त होते हैं जो पुरुष अर्य्यमा देवता के दक्षिणमार्ग होकर परलोक को गये हैं उन कर्म्म करनेवालों के लोकों को मैंने प्रथमही कहा और उत्तरायणमार्ग है उसको जो नियम से देखेगा वह यज्ञ करनेवालों के सनातनलोक में प्रकाशित होगा। हे अर्जुन ! उस स्थान पर ब्रह्मज्ञानी पुरुष उत्तरायणगति की प्रशंसा करते हैं संतोष से स्वर्ग को पाता है और संतोषही से मोक्ष भी मिलता है क्रोध और आनन्द को समान समझकर जो जीतलेते हैं वह ज्ञानीलोग संतोष भी करसक्ते हैं और इन से अन्यलोग संतोषी नहीं होते क्योंकि यह वैराग्य बड़ी उत्तम सिद्धि है इस स्थानपर राजा ययाति की कहीहुई उस कथा को कहते हैं जिससे कि ज्ञानीलोग त्यागी हो अपनी सब इच्छाओं को आत्मा में अन्तर्गत करते हैं जैसे कि अपने अङ्गों को कछुआ लय करता है जब यह भय नहीं करता और न इससे कोई भय करता और इच्छा और शत्रुता को भी नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है जब अहङ्कार और अज्ञान को जीतनेवाला स्नेह को दूर करता है तो भी मोक्ष को पाता है हे जितेन्द्रिय, अर्जुन ! तुम मेरे कहेहुये वचनों को सुनो कि कोई तो धर्म्म को चाहता है और कोई संसारी आनन्द को और कोई धन को सो जो पुरुष धन की इच्छा करता है उसकी अनिच्छा ही उत्तम है क्योंकि धन में बड़े २ दोष हैं और इस धन से

जो कर्म्म होते हैं उन में भी अधिक दोष आजाता है मैं प्रत्यक्ष देखरहा हूं और तुम भी देखसक्के हो धन की लिप्सावालों से त्याग के योग्य बातों का त्याग करना कठिन है जो धन को प्राप्त करते हैं उनमें सहनशीलता होना कठिन है और धन हत्या करनेवालों को मिलता है और वह प्राप्त हुआ धन भी शत्रुता का मूल है अर्थात् भय का कारण है फिर जो पुरुष उस बेशीलता, शोक, भय आदि से जुदा होना चाहे वह थोड़े धन के लिये लोभ से हत्या करता हुआ ब्रह्महत्या को नहीं जानता है अर्थात् लोभी थोड़े धनमें भी भ्रूणहत्या को प्राप्त होता है कष्टसे प्राप्त होने-वाले धन को पाकर अपने आज्ञाकारी नौकरों आदि को भी देकर सदैव दुःख को पाता है जैसे कि चोरों से इसलिये कि धन लेनेवाले नौकर भी विपरीत होजाते हैं बिना धन और सबप्रकार की उपाधियों से रहित जो पुरुष है वह सब प्रकार से स्तुति के योग्य है वह लोक देवताओं के पञ्चयज्ञ आदि करने के निमित्त भी जो संचित धन है उससे भी प्रसन्न नहीं होते अर्थात् देवयज्ञादिकों के लिये भी न देकर उससे प्रसन्न नहीं होते क्योंकि लोभ की वृद्धि होने से महा-दुःख होता है इस स्थान में प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले तीनों वेदों के ज्ञाता ज्ञानियों के यज्ञों की प्रतिष्ठा करनेवाले लोक में यज्ञ की गाईहुई कहावत को क-हते हैं कि ईश्वर ने यज्ञ के लिये धन को और यज्ञ करने के लिये पुरुषों को रक्षक पैदा किया इसकारण सब धन को यज्ञ और ईश्वर के पूजन में लगाना चाहिये वह धन देह के प्रयोजन के लिये हितकारी नहीं है हे धनवानों में उत्तम, अर्जुन! ईश्वर इस धन को अपने और यज्ञ के अर्थ नरलोक के वासियों को देता है इस से वह धन किसी का नहीं है इसी हेतु श्रद्धावान् पुरुष दान और यज्ञ करे क्योंकि प्राप्त होनेवाले धन का त्यागही उत्तम है उसके भोग और नाश को कोई अच्छा नहीं कहता है जबकि भोग में न आसका तो उसके इकट्ठे करने से क्या प्रयोजन है जो निर्बुद्धिलोग अपने धर्म्म के विपरीत अन्य मनुष्यों को देते हैं वह मरकर सैकड़ों वर्षतक विष्ठा को खाते हैं और जो अपात्र को देता है और सुपात्र को नहीं देता है तो पात्र अपात्र का ज्ञान न होने से दानधर्म्म का भी करना कठिन है प्राप्त होनेवाले धन और धन से पैदा होनेवाली वस्तुओं की अमर्य्यादा जाननी चाहिये जबकि पात्र और अपात्र का ज्ञान नहीं है॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

सत्ताईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि द्रौपदी के पुत्र अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, विराट्, द्रुपद, धर्म्मज्ञ, वृषसेन, धृष्टकेतु तथा अन्य बहुत से देशों के राजालोग जो संग्राम में मेरे

निमित्त मारेगये इससे मुझ ज्ञातिघाती स्ववंशछेदक राज्य की कामना करने-
वाले का शोक मन से नहीं जाता जिसकी गोदी में हमलोग खेले वह गङ्गाजी
के पुत्र हमारे पितामह भीष्मजी मुझ राज्य के लोभी के कारण युद्ध में गिराये
गये वह वज्र के तुल्य थे शिखण्डी को सम्मुख देखते अर्जुन के बाणों से कांपते
हुये मैंने देखे उन वृद्ध सिंह के समान अर्जुन के बाणों से विदीर्णदेह नरों में
उत्तम अपने पितामह को देखकर मेरा चित्त अत्यन्त पीड्यमान हुआ यहां तक
कि उस पर्व्वतसमान शत्रुहन्ता पितामह को घूमता देखके मुझ को मूर्च्छा
आगई उन भीष्मजी ने कुरुक्षेत्र के मैदान में बहुत दिवस तक भार्गव परशु-
रामजी से महाप्रबल युद्ध किया और काशी में काशीराज की कन्या के निमित्त
एक रथ के द्वारा उन महावीर गाङ्गेयजी ने स्वयंवर में आयेहुये सब राजाओं को
युद्धमें बुलाकर बड़े २ अस्त्रों को धारण किये महापराक्रमी चक्रवर्ती राजा शाल्व
को बड़ी वीरता से परास्त किया और जिनकी स्वेच्छाचारी मृत्यु ऐसे महाबली
पितामह ने पाञ्चालदेशवाले शिखण्डी को बाणों से नहीं गिराया परन्तु आप
अर्जुन के हाथ से गिरे हे मुनीश्वर! जब मैंने उनको पृथ्वीपर रुधिर से व्याप्त
देखा तभी भयदायक तप मेरे चित्त में उत्पन्न हुआ बाल्य अवस्थामें जिसने हमारी
रक्षा और पालन किया वह मुझ राज्य के लोभी पापी गुरुहन्ता महामूर्ख के
कारण नाशवान् राज्य के हेतु मारेगये सब राजाओं के पूज्य महाअस्त्रज्ञ गुरुजी
को युद्ध में मिलकर पुत्र के निमित्त मुझ पापी से मिथ्या वचन कहलायेगये
वह बात मेरे अङ्गों को भेदती है कि जो गुरु ने कहा था कि हे अर्जुन! तुम
सत्य २ कहो कि मेरा पुत्र जीवता है सत्य को निश्चय करनेवाले ब्राह्मण ने
उसबात को मुझ से पूछा मैंने हाथी का बहाना करके मिथ्या वचन कहा युद्ध
में सत्यता के कञ्चुक को त्यागकर मुझ राज्यलोभी पापी गुरुघ्नी के कहने से
वह गुरुजी हाथी के छल में छलेगये और कहागया कि अश्वत्थामा मारागया
हे मुने! मैं ऐसे महापापों को करके किसलोक में जाऊंगा और जो मैंने युद्ध
में दृढ़ महावीर अद्वितीय शस्त्रों के जाननेवाले अपने बड़ेभाई कर्ण को मरवाया
मुझ से अधिक पापी कौन है जैसे कि पहाड़ों में सिंह होता है उसीप्रकार उत्पन्न
होनेवाला अभिमन्यु बालक को मुझ राज्यलोभी ने द्रोणाचार्य्य की रक्षित सेना
में भेजा तब से अर्जुन की ओर और कमललोचन श्रीकृष्णजी और पुत्रों से
रहित दुःखों से पीड्यमान द्रौपदी की ओर देखने को ऐसे समर्थ नहीं होता हूं
जैसे कि बालकों का मारनेवाला महापापी पहाड़ों के समान पांचों पुत्रों से रहित
हो पृथ्वी को शोधता हूं कि तुझ पर मुझसा कुटुम्बघाती पापात्मा वर्त्तमान है
ऐसा अपने को धिक्कार कर अपनी देह को सुखाऊंगा तदनन्तर मैं गुरुघाती महा-
पापमूर्ति अपनी देहके त्यागने का उद्योग करूंगा अर्थात् अन्न जल छोड़कर बैठूंगा

तब हे तपोधन, ऋषियो! यहांपर अपने प्यारे प्राण को त्यागूंगा तुम सबको प्रसन्न करके कहता हूं कि इच्छा के अनुसार अपने २ अभीष्ट स्थान को जावो और मुझ को सब महाशय आज्ञा दो कि इसशरीर को त्यागूं वैशम्पायन कहते हैं कि इस प्रकार शोक सन्ताप करनेवाले युधिष्ठिर से श्रीव्यासदेवजी बोले कि ऐसा नहीं करना योग्य है तुम इतना शोक मत करो यही समझो कि ऐसा ही होनहार था सो हुआ जीवों के योग और वियोग होने को ऐसा निश्चय जानो जैसे कि पानी के बबूले पानी से बनकर पानीमें ही मिल जाते हैं अर्थात् उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं सब धनसमूह अन्त में नाश होते हैं और सब वृद्धि पानेवाले परिणाम में नाश को पाते हैं इससे सुख और दुःख का अन्त देखकर दुःख को सुख का प्रकाश करनेवाला जानो और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, लज्जा, धैर्य, नेकनामी यह सब बातें बुद्धिमान् चतुर पुरुषों में निवास करती हैं दीर्घसूत्रियों में नहीं होतीं मित्र सुख देने को और शत्रु दुःख देने को समर्थ नहीं है धन के प्राप्त करने के लिये बुद्धि समर्थ नही है और धन से भी सुख नहीं मिल सक्ता हे राजन्, युधिष्ठिर! जैसा ईश्वर ने कर्म्म बतादिया वैसाही करो इसी से तुम्हारी शुद्धि है तुम कर्म्मों को नहीं त्याग सक्ते ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवा अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि ज्ञातिबन्धुओं के मरने से शोक में मग्न प्राणत्यागने की इच्छा करनेवाले युधिष्ठिर का शोक व्यासजी ने पूर्वोक्त अनेक बातों के कहने से दूर किया और कहा कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर तुम अश्मगीत अर्थात् अश्मनाम ब्राह्मण ने जो गाया उसको समझो कि राजा जनक ने दुःख और शोक में मग्न होकर अश्मनाम ब्राह्मण से अपना सन्देह पूछा कि हे महाज्ञानिन्, महात्मन्! धन के प्राप्त करने और नाश में इच्छा रखनेवाले पुरुष कैसे कल्याण को पावें अश्मऋषि बोले कि उत्पन्न होनेवाले देह मनुष्यों को दुःख और सुख देने के निमित्त विना सोचे समझे सम्मुख आजाते हैं तब उन सुख दुःखों का बर्ताव होता है अर्थात् आमने सामने वाले दोनों में एक की आपत्ति में जो २ सम्मुख आता है वह उसकी बुद्धि को जल्दी से हरलेता है जैसे कि बादल को हवा हरलेती है मैं श्रेष्ठघराने में उत्पन्न हुआ हूं और सिद्ध हूं केवल मनुष्यही नहीं हूं इन तीनों बातों के हेतु से उसका चित्त निर्बल होता है संसारी सुखों में चित्त का लगानेवाला पुरुष पिता के संचित धन आदि को उड़ाकर खाली हाथ अर्थात् निर्द्धन होजाता है तब दूसरे के धन लेने को अच्छा समझता है उस अमर्य्याद और अयोग्य लेनेवाले का राजा

लोग निषेध करते हैं हे राजन्! जो चोर पुरुष हैं वह बीस व तीस वर्षतक जीते हैं और दूसरे सौवर्ष से अधिक नहीं रहते राजा को चाहिये कि उन बड़े दुःखियाओं का इलाज बुद्धिमानी से करे सब जीवों के आचार को जहां तहां देखताहुआ अपने प्रबन्ध को करे फिर मनुष्यों के पुनर्जन्म से जो दुःख होते हैं उन से चित्त में भ्रान्ति होती है और भ्रान्ति से अनिच्छा होती है तीसरी कोई बात सिद्ध नहीं होती जो इसलोक में यह और वह अनेक प्रकार के दुःख हैं उसी प्रकार विषयों के सुख भी प्राप्त होते हैं वृद्धावस्था वा मृत्यु उन महाबली और निर्बल व अहंकारी व महात्मा जीवों को भी भक्षण करनेवाली है इसलोक में कोई मनुष्य समुद्रके अन्ततक सम्पूर्ण पृथ्वीको विजयकरके भी मृत्यु और वृद्धावस्थाको उल्लङ्घन नहीं करसक्ता जीवोंके सम्मुख नियत होनेवाला सुख और दुःख मनुष्योंको लाचारीसे भोगनेके योग्य है उसका त्याग होही नहीं सक्ता हे राजन्! बाल्यावस्था, तरुणता अथवा वृद्धावस्थामें वृद्धपने की दशा रुकनेवाली नहीं है जोकि उससे विपरीत मनुष्यों को अभीष्ट हैं अनिच्छाओं के साथ मिले सम्बन्धियों से जुदा होना अथवा धनी वा निर्द्धनी होना और विना जानेहुये सुख और दुःख सामने आते हैं जीवोंका जन्म, मरण, हानि, लाभ या परिश्रम इन सबका मिलना दृष्टि से अगोचर वर्त्तमान है रूप, रस, गन्ध, स्पर्श यह सब जैसे स्वाभाविक वर्त्तमान होते हैं इसीप्रकार सुख दुःख भी विना जाने सम्मुख आते हैं निश्चय करके सब जीवों का आसन शयन सवारी उद्योग और खाने पीनेवाली वस्तु सब कालही से पैदा होते हैं वैद्य, रोगी, पराक्रमी, निर्बल, धनी और नपुंसकता यह समय की विपरीतता अनेक प्रकार की हैं सुन्दर घराने में जन्म और नीरोगता, सुन्दर स्वरूप होना, प्रारब्धी होना, संसारी सुख की प्राप्ति यह सब होतव्यता से ही पाता है बहुधा निर्द्धन और इच्छा न करनेवालों के बहुतसे पुत्र होते हैं और इच्छा करनेवाले और धनी और कर्म्म करनेवाले पुरुषों के नहीं होते रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, गृहस्थी आदि की आपत्ति विष, तप, मृत्यु, नीचे ऊपर का गिरना यह सब जीवों की दशा हैं जिसके जन्म में जो होनहार होता है उसको उस कर्म्म की मर्य्यादा से वह प्राप्त करता है उसको उल्लङ्घनकरता दृष्टि नहीं आता किन्तु उसमें प्रवृत्त दृष्टि आता है इस संसार में धनवान् मनुष्य बहुधा तरुणही अवस्था में मरता दीखता है और दुःखी निर्द्धनलोग वृद्ध होकर सौवर्ष के भी देखने में आते हैं और कुछ भी पास न रखनेवाले पुरुष चिरजीवी बहुत काल तक जीवतेहुये दृष्टि आते हैं और अच्छे ऐश्वर्य्यवान् घराने में उत्पन्न होनेवाले पतङ्ग के समान नाश होते हैं इसलोक में धन के भोगने की बहुधा लोगों को सामर्थ्य नहीं है सब दरिद्रीलोगों को काष्ठ भी हजम होजाते हैं कालसे बँधा हुआ यह मानता है कि मैं यह करूं तो वह निर्बुद्धि असन्तोषता से जो जो

चाहता है उसको करताहुआ पाप करता है ज्ञानियों ने शिकार खेलना, पांसा, स्त्री, मद्य और युद्ध में वितण्डावाद आदि को निन्दित किया है पर बहुत से शास्त्र के जाननेवाले पुरुष इन बातों में बड़े प्रवृत्त देखने में आते हैं इससे निश्चय है कि इस लोक में ईप्सित और बे ईप्सित सब अर्थ सब प्राणियों को समय के आधीन प्राप्त होते हैं इसका हेतु नहीं जानाजाता है अर्थात् अज्ञात बातें सम्मुख आती हैं प्रलय होनेपर पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, तेज, चन्द्रमा, सूर्य्य, दिन, रात, नक्षत्र, नदी, पर्वत इत्यादि असंख्य पदार्थों को कौन उत्पन्न करता है इसी प्रकार सर्दी, गरमी, वर्षा भी काल ही से इरते फिरते रहते हैं इसीप्रकार मनुष्यों के सुख दुःख भी हैं मृत्यु और वृद्धापन से संयुक्त मनुष्य को औषध, मन्त्र, होम, जप आदि कोई नहीं बचा सक्ता है जैसे कि महासमुद्र में परस्पर काष्ठ मिलजाय और मिलकर पृथक् होजाय उसीप्रकार जीवों का संयोग वियोग है जो पुरुष स्त्रियों के गीत वाद्यों से सेवित हैं और जो अनाथ हो दूसरे के अन्न के भोजन करनेवाले हैं उनमें मृत्यु समान ही कर्म्म करनेवाली है हजारों पिता माता और सैकड़ों पुत्र स्त्री संसारचक्र ने उत्पन्न किये वे किसके और हम किसके हैं न इसका कोई है और न वह किसी का है स्त्री, भाई, पति इनके साथ यह संयोग इस प्रकार है जैसे कि मार्ग्ग में एक दूसरे से मिलै यह कहां जायगा और मैं कहां जाऊंगा और मैं कौन हूं और यहां किस निमित्त वर्त्तमान हूं किस कारण से किस बात को सोचूं इसप्रकार चित्त में विचारांश करे जिसमें कि अपने सम्बन्धियों के साथ सदैव रहना नहीं है और जिसकी चाल गाड़ी के पहिये के सदृश घूमनेवाली है ऐसे संसार में माता, पिता, भाई आदि यह सब मार्ग्ग के से मिलाप हैं ज्ञानियों ने परलोक को ऐसा कहा है कि वह ज्ञानरूप से नहीं देखा गया अर्थात् ब्रह्मज्ञान से और धर्म्मयुद्ध में मोक्ष होने से वह परलोक भी नाश को प्राप्त होता है इस निमित्त शास्त्रों को उल्लङ्घन न करके इच्छावान् ऐश्वर्य्य की श्रद्धा करनी चाहिये पितृ और देवताओं का तर्पण और कर्म्मों को करे फिर ज्ञानी हो यज्ञों को बुद्धि के अनुसार करे और त्रिवर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म्म, काम का सेवन करे यह जगत् कालरूप लहरों से भरेहुये समुद्र के समान जिस में मृत्यु और वृद्धावस्था यह दो बड़े ग्राह हैं उसमें डूबते हैं परन्तु कोई बचा नहीं सक्ता केवल आयुर्वेद वैद्यविद्या को पढ़नेवाले बहुत से वैद्यलोग अपने कुटुम्बसमेत रोगों में पड़े दृष्टि आते हैं वह क्वाथ और अनेकप्रकार के रसों को खाकर मृत्यु को उल्लङ्घन न कर ऐसे वर्त्तमानही रहते हैं जैसे कि महासमुद्र अपनी मर्य्यादा को उल्लङ्घन नहीं करता रसों के बनानेवाले और धन भी खर्चनेवाले आदमी वृद्धावस्था से निर्बल और कांपते दृष्टि आते हैं जैसे कि पराक्रमी हाथियों से वृक्ष कांपता है इसीप्रकार तप से संयुक्त वेदपाठ और जप

के अभ्यास में प्रीति रखनेवाले दानी और यज्ञ करनेवाले वृद्धावस्था और मृत्यु से नहीं बचते हैं उत्पन्न होनेवाले जीवों के न दिन, न मास, न वर्ष, न पक्ष, न रात फिरते हैं सो नाशवान् असमर्थ मनुष्य इस काल से उस नाशवान् बड़े संसारमार्ग को पाता है जिसमें कि सब जीव रहते हैं जो आत्मा को अविनाशी समझें उस पक्ष में जीवात्मा से देह की उत्पत्ति है और जो आत्मा को नाशवान् समझें उस पक्ष में देह से जीव की उत्पत्ति हो चाहे जो कुछ होय परन्तु सब दशाओं में स्त्री और अन्यबान्धवों के साथ मिलना मिलाना मार्ग के मिलाप होने के समान है यह कभी किसी के साथ बहुत बड़े रहनेवाले साथी को नहीं पाता है और न अपनी देह के साथ बड़े रहनेवाले साथी को पाता फिर अन्य किसका साथ पावेगा हे राजन्! अब तेरा पिता और पितामह कहां है हे पवित्रात्मन्! अब न तुम उनको देखते हो न वे तुम को देखते हैं स्वर्ग नरक का देखनेवाला पुरुष नहीं है सब पुरुषों का नेत्ररूप शास्त्र है सो हे राजन्! इस स्थानपर उसको प्राप्त करो दूसरे के गुण में दोष न निकालनेवाला ब्रह्मचारी पुरुष पितृ देवता आदि के ऋण से दूर होने के लिये सन्तान को उत्पन्न करे वह यज्ञाभ्यासी सन्तान पैदा करनेवाला पहिला ब्रह्मचारी विवेकयुक्त हृदय के अन्धकार और शोक और मिथ्या को दूरकर इसलोक और परलोक की इच्छा को दूरकर परमात्मा को आराधन करे राग द्वेष रहित धर्म्म को करता हुआ बुद्धि के अनुसार धनों को इकट्ठा करके धर्म्मपूर्वक राज्य करनेवाले का यश लोक परलोक में बढ़ता है इसप्रकार कारणों से भरेहुये सम्पूर्ण वचनों को जानकर अत्यन्त शुद्धबुद्धि और शोक से पृथक् राजा जनक अश्मऋषि से पूँछकर अपने घर को गये हे राजन्! इसीप्रकार तुम भी शोक को त्यागो हे इन्द्र के समान! उठो और आनन्द करो तुम ने क्षत्रियधर्म्म से पृथ्वी को विजय किया उस को भोगो और उसका अनुमान कभी मत करो॥ ५६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

उन्तीसवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजेन्द्र! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर जब मौन हुये तब पाण्डुनन्दन अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे माधवजी! शत्रुहन्ता धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर सम्बन्धियों के शोक से महादुःखी हैं इस शोकसमुद्र में मग्न को आप समाश्वासन करें इसी के शोक से हम सब भी शोकवान् हैं इससे हे जनार्दन! इसका यह महाशोक दूर करने को आप ही समर्थ हैं ऐसे महात्मा

अर्जुन ने जब श्रीकृष्णजी से वचन कहे तब अविनाशी कमललोचन गोविन्दजी राजा की ओर दृष्टि करके सम्मुख हुये केशव गोविन्दजी बाल्य अवस्था से राजा युधिष्ठिर को अर्जुन से भी अधिक प्राणों से प्यारे थे और उनके वचनों को भी धर्म्मराज कभी उल्लङ्घन नहीं करते थे बातों से प्रसन्न कर महाबाहु श्रीवासुदेवजी चन्दन से चर्चित पर्वत की कुक्षिसमान युधिष्ठिर की भुजा को पकड़कर सुन्दर नेत्र दन्तों से शोभायमान कमल से प्रफुल्लित मुखारविन्द से बोले कि हे पुरुषोत्तम, युधिष्ठिर ! तुम शोक से अपने मुख को मत सुखावो जो इस युद्ध में मारेगये वह अब सुगमता से मिलने कठिन हैं हे राजन् ! जैसे कि स्वप्न में प्राप्त होनेवाली वस्तु जाग्रत् अवस्था में मिथ्या हैं इसीप्रकार वह क्षत्रिय भी हैं जो महारण में मारेगये युद्ध को शोभित करनेवाले सब शूरवीर सम्मुख युद्ध करके परलोक को गये उनमें कोई न भगा और न किसी ने पीठि फेरी सब वीर भारी संग्राम में महायुद्ध कर शस्त्रों से अपने देहों को पवित्र कर प्राणों को त्याग २ स्वर्ग्गलोक को गये उनका शोक करना वृथा है क्षत्रियधर्म्म के जाननेवाले वेद और वेदाङ्गोंके जाननेवाले शूरों ने वीरों की पवित्र गति को पाया यह शोच योग्य नहीं है इस स्थल में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कि पुत्रों के शोक में डूबेहुये राजा संजय से नारदजी ने कहा कि हे राजन्, संजय ! हम तुम और सब संसार सुख दुःखों से संयुक्त मरेंगे इसमें कौन संयोग है पहिले समय के राजाओं का माहात्म्य मेरे मुख से सुनो हे राजन् ! सावधान हो फिर दुःख को त्यागोगे तुम इन महानुभाव राजाओं को सुनकर अपने दुःख को दूर करो यह वृत्तान्त कठिन ग्रह का शान्तकर्त्ता आयुवर्द्धक राजाओं के श्रवण करने योग्य चित्तरोचक है इसको यथावत् सुनो हे राजन्, संजय ! हम अविक्षित और मरुत राजा को मृतक हुआ सुनते हैं जिस महात्मा राजा के यज्ञ में इन्द्र वरुण के साथ वह देवता जो विश्व को रचते हैं और जिनके आगे चलनेवाले बृहस्पतिजी हैं आके वर्त्तमान हुये जिसने ईर्षा से देवराज इन्द्र को भी विजय किया और इन्द्र के शुभ चाहनेवाले बृहस्पतिजी ने उससे कहा था कि यज्ञ मत करो उसकी आज्ञा पाने से बृहस्पतिजी के छोटे भाई संवर्त्त ने उसको पृथ्वी पर यज्ञ कराया तब यज्ञसीमा के वृक्षों से घिरी हुई पृथ्वी विना परिश्रम अपने आप फलसंयुक्त हुई और अविक्षित के यज्ञ में विश्वेदेवा सभासद् हुये और महात्मा राजा मरुत के यज्ञ में भोजन परोसनेवाले साध्यगण और मरुद्गण नाम देवता हुये जिन्हों ने यज्ञ में अमृतपान किया और यज्ञ में इतनी दक्षिणा दीगई कि देवता मनुष्य और गन्धर्वों से लेचलना कठिन हुआ हे संजय ! जो वह धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य्य नाम चारों कल्याणमय तुझ से और तेरे पुत्र से भी अधिक पवित्र होकर मरगया तो

ऐसी दशा में अपने पुत्र के विषय में तुम शोक न करो और सुहोत्र अतिथि को भी सुनते हैं कि कालवश हुआ जिसके देश में इन्द्र ने एक वर्षपर्य्यन्त सुवर्ण की वर्षा करी इस पृथ्वी का नाम वसुमती तभी से हुआ उसी राजा के समय में नदियों ने भी सुवर्ण धारण किया और लोकपूजित इन्द्र ने नदियों में कूर्म्म, कर्कट, नक्र, मकर, शिशुक आदि जीवों को गिराया उसके पीछे राजा अतिथि ने हज़ारों लाखों सुनहरी मछली, मगर, कछुओं को गिराहुआ देखकर आश्चर्य्य किया फिर यज्ञकर्त्ता उस राजा ने कुरुजाङ्गल देशों में जाकर यज्ञों के बीच में ब्राह्मणों को बहुत सा सुवर्णदान किया जब कि वह महादानी प्रतापी इस लोक को त्याग गये तो तुम शोक को किस निमित्त करते हो दक्षिणापूर्वक यज्ञ न करनेवाले पुत्र का शोच त्याग शान्त होकर चैतन्य होजाओ और सुनते हैं कि राजा अङ्ग बृहद्रथ भी मृत्युवश हुये जिसने दशलाख श्वेत अश्व और सुवर्णभूषणों से भूषित दशलाख कन्याओं को यज्ञ में पूजन करके ब्राह्मणों को दिया और वस्त्र भूषणों से अलंकृत उत्तम वर्ण के दशलाख हाथी और बैल उनके दक्षिणारूपी यौतुक में दिये जिनके साथ एकहज़ार गोपाल भी थे विष्णुपदनामपर्वतपर यज्ञ करनेवाले राजा अङ्ग के अमृत से इन्द देवता और दक्षिणाओं से ब्राह्मण महातृप्त हुये हे राजेन्द्र ! प्राचीन समय में इस राजा के हज़ारों यज्ञों में देव ब्राह्मण गन्धर्व दक्षिणा के भार को न लेजासके ऐसा दूसरा पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ न होगा राजा अङ्ग ने इस धन को सात सोमसंस्थाओं में दान किया वह भी तुझ से और तेरे पुत्र से अत्यन्त अधिक धर्म्मात्मा दान धर्म्म, यज्ञों को कर मरगया तो तुम क्यों अपने पुत्र के शोक में डूबरहे हो और औशीनर के पुत्र शिबि को भी मृतक हुआ सुना है जिस राजा ने अपने शब्दायमान रथ से पृथ्वी को शब्दमय करके चर्म्म के सदृश लये अर्थात् विजय किया और एक रथ से पृथ्वी को एकछत्र किया और उसके जहां तक गौघोड़े आदि पशु थे सबको उस औशीनर के पुत्र शिबि ने दान किया ब्रह्माजी ने उसके धन को लेचलनेवाला किसी को नहीं समझा उस शिबि राजा के समान पृथ्वी में न है और न होगा तुम दक्षिणायुक्त यज्ञ के न करनेवाले अपने पुत्र को न शोचो और भरतवंशी राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र महात्मा और धनी भरत को भी मराहुआ हमने सुना जिसने यमुनाजी के पास देवताओं के लिये तीनसौ घोड़े और सरस्वती के पास बीससहस्र घोड़े और गङ्गाजी के पास चौदहसहस्र घोड़ों को बाँधकर प्राचीन समय में सहस्र अश्वमेध और राजसूय यज्ञ से देवताओं का पूजन किया उसके समान दूसरे राजा लोगों में कर्म्म का करनेवाला कोई न हुआ उसने हज़ारों वेदियां बनवाकर यज्ञ में सहस्र विधि उत्तम २ घोड़ों का हवन किया उसी यज्ञ में भरत ने कण्व

ऋषिको हज़ारपद्म धन दक्षिणा में दिया वह भी महात्मा तुझ से और तेरे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा होकर मरगया इससे तुम भी पुत्रशोक करने के योग्य नहीं हो और हे संजय! दशरथजी के पुत्र रामचन्द्रजी को भी देह छोड़नेवाला सुनते हैं उन्हों ने प्रजा को और ऋषिलोगों को अपने पुत्र पिता के सदृश पालन किया जिनके देश में कोई स्त्री विधवा और अनाथ नहीं हुई पिता के समान राज्य किया समय २ पर वर्षा होती थी खेतियां अच्छे प्रकार से होती थीं उन रामचन्द्र जीके राज्य करने में सदैव सुकाल हुआ और कोई जीव उनके राज्य में जल में नहीं डूबा और अग्नि में कोई विपरीत दशा से नहीं भस्म हुआ और रोगों से कभी किसी को भय भी नहीं हुआ श्रीरामचन्द्रजी के राजाधिराज होने में स्त्री और पुरुष हज़ार वर्ष की अवस्था प्राप्त करनेपर भी किसी रोग से पीड़ित नहीं हुये और उनके समय में कभी स्त्रियों का शास्त्रार्थ अर्थात् वितण्डावाद नहीं हुआ तो पुरुषों का कैसे होता प्रजाके मनुष्य सदैव धर्म्मनिष्ठ होतेरहे और सब छोटे बड़े उनके राज्य में सन्तोषी निर्भय और सफलमनोरथ स्वतन्त्र और सत्यव्रत होते हुये और वृक्ष भी सदैव फलफूलयुक्त निरुपाधि हुये और सब गौवें एक २ द्रोणप्रमाण दूध देती थीं इस महात्मा ने चौदह वर्ष वन में तपस्वियों का वेष धारण कर बड़े भारी दश अश्वमेध यज्ञों को किया और आजानुबाहु तरुण श्याम अरुणाक्षयूथप मतङ्गसमान शोभायमान मुखारविन्द सिंह के स्कन्ध महाभुजवाले रामचन्द्रजी ने श्रीअयोध्याजी में ग्यारहहज़ार वर्ष पर्यन्त राज्य किया वह भी तुझ पिता पुत्र से अधिक पुण्यात्मा दानी प्रतापी होकर इस अनित्य शरीर को त्याग गये फिर तू पुत्रशोक व्यर्थ करता है और राजा भगीरथजी को भी मृतक हुआ सुनते हैं कि जिसके रचेहुये यज्ञ में इन्द्र अमृतपान करके मदोन्मत्त हुये और उसी के बल से देवोत्तम देवेन्द्र ने हज़ारों असुरों को विजय किया और अपने विस्तृत यज्ञ में उस राजा ने पूजन के पश्चात् सुवर्ण के आभूषणों से भूषित दशलाख कन्या दक्षिणा में पुण्य करीं वह सब कन्या चार २ घोड़ों के रथपर सवार थीं और हरएक रथ के साथ सुवर्णभूपित वस्त्रों से अलंकृत सौ सौ हाथी थे और एक २ हाथी के पीछे एक एक सहस्र घोड़े और प्रत्येक घोड़े के पीछे एक २ सहस्र गौ और प्रत्येक गौ के पीछे हज़ारों भेड़ बकरियां थीं तब उस समीपवर्ती राजा भगीरथ की गोदी में श्रीगङ्गाजी बैठगई इसीकारण उनका भगीरथ की पुत्री उर्वशी नाम प्रसिद्ध हुआ उस इक्ष्वाकुवंशी राजा भगीरथ की पुत्री त्रिपथगामिनी श्रीगङ्गाजी ने जिस के पुत्रीभाव को पाया ऐसे महातेजस्वी प्रतापी त्रिवर्गी को भी जब मृत्यु ने ग्रास किया तो तू अपने पुत्रही को क्या शोचता है और इसीप्रकार राजा दिलीप का भी मरना सुना जिसमें अनेक कर्म्मों की प्रशंसा ब्राह्मणलोग करते हैं ऐसे

सावधान सम्पूर्ण संसार के राजा ने अटूट धन से भरीहुई पृथ्वी को उस बड़े यज्ञमें ब्राह्मणों को दान में देदिया उस यजमान की यज्ञ में पुरोहितजी ने हिमालयदेश के हज़ारों हाथियों को दक्षिणा में पाया और शोभायमान सुवर्ण के स्तम्भवाले हरएक यज्ञकर्म्म के करनेवाले इन्द्र आदि देवता उसके समीप वर्त्तमान हुये उसके उस स्वर्णमय यज्ञ में स्वर्णनिर्मित वस्त्रों को धारण कर हज़ारों देवता और गन्धर्वों ने नृत्य किया और सप्तस्वरों के अनुसार बाजा बजाया और विश्वावसु गन्धर्व ने वीणा को ऐसा बजाया कि जिस को सब लोगों ने यही समझा कि यह हमारेही आगे बजाता है अन्य राजाओं में कोई ऐसा न हुआ जो दिलीप के से कर्म्म करे जिसके मार्ग में सुवर्णवस्त्रभूषित हज़ारों हाथी सोते थे जिन पुण्यात्मा पुरुषों ने इस राजा दिलीप को देखा वह भी स्वर्ग के विजय करनेवाले हुये दिलीप के महल में तीन शब्द सदैव होते थे वेदपाठ का धनुष का और दान देने का ऐसा होकर जो मृत्यु-वश हुआ तो तू भी शोक मत कर और युवनाश्व के पुत्र मान्धाता को भी मरा सुनते हैं जिस बालक को मृत्यु देवता ने उसके पिता की जङ्घा से निकाला जोकि दहीमिले घृत से उत्पन्न पिता के उदर में वर्द्धमान श्रीमान् तीनों लोकों का विजय करनेवाला प्रतापी राजा हुआ पिता की गोद में सोनेवाले उस देवस्वरूप को देखकर देवतालोगों ने परस्पर में यह कहा कि यह किसको भक्षण करेगा और इन्द्रनेही भयभीत होकर कहा कि मुझेही यह खाजायगा इसीकारण उसका नाम इन्द्र ने मान्धाता रक्खा तदनन्तर उस के पोषण के लिये इन्द्रनेही अपने हाथ से दुग्ध की धार उसके मुख में गेरी तो वह इन्द्र के हाथही को भोजन करके बहुत शीघ्र एकही दिन में बड़ा हुआ और बारह दिन में बारह वर्ष की अवस्था का होगया यह सब पृथ्वी उस महात्मा मान्धाता को एकही दिन में प्राप्त हुई समरभूमि में वह धर्म्मात्मा इन्द्र के समान शूर हुआ इसीसे इसने अङ्गार, मरुत, असित, गय, अङ्ग, बृहद्रथ आदि राजाओं को युद्ध में विजय किया जब युवनाश्व का पुत्र मान्धाता रणभूमि में अङ्गार के साथ में लड़ा तब देवताओं ने धनुष की टंकारों से जाना कि स्वर्ग का चूर्ण हुआ सूर्य्योदय से सूर्य्यास्तपर्य्यन्त मान्धाता का छत्र कहाजाता है हे राजन्! उसने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों से पूजन करके ब्राह्मणों को लाल मछलियों का दान किया उन से एक योजन ऊंची सुवर्ण की मछली और दश योजन ऊंची चांदी की बड़ी मछलियों को ब्राह्मणों के अर्थ दान किया और दूसरे मनुष्यों ने उनको विभाग किया वह भी तुम से उत्तम था इस कारण तुम पुत्रका शोक मत करो और नहुष के पुत्र ययाति को भी मराहुआ सुनते हैं जो इस पृथ्वी को सब समुद्रोंसमेत विजय करके धर्म्मशास्त्र की विधि

से परिमित पृथ्वी में वेदियां बनाकर पूजन करता वेदियों से पृथ्वी को सुशोभित करता चारों ओर को गया अर्थात् समुद्र के किनारे तक पहुँचा क्रतुनाम हज़ार यज्ञ और सौ अश्वमेध से यज्ञों से पूजन कर तीन सुवर्ण के पर्य्यंत दान करके ऋत्विज् अर्थात् यज्ञ करानेवाले को प्रसन्न किया नहुष के पुत्र ययाति ने आसुरी बुद्धि के अनुसार दैत्य और दानवों को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने सब पुत्रों को विभाग कर दी यदु द्रुह्य अणु तुर्वस इन चारों पुत्रों को दूसरे राज्य और देशों में छोड़कर और मुख्य राज्य परपुरु को अभिषेक कराके स्त्री के साथ वन को गया हे संजय! वह तुझसे और तेरे पुत्र से अधिकतर होकर मृत्युवश हुआ तो तू अपने पुत्र का शोक मत कर हमने अम्बरीष और नाभाग को मराहुआ सुना है प्रजाने राजाओं में उत्तम जिस पालन करनेवाले को चाहा जिस बड़े महात्मा राजाने अपने महायज्ञ में दश लाख यज्ञ करनेवाले राजा लोग अपने यज्ञ के ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा करने के निमित्त नियत किये इस बात को न पहिले किसी ने किया और न आगे करेंगे बुद्धिमान्लोग राजा अम्बरीष की इसप्रकार प्रशंसा करते हैं कि उस राजा के यज्ञ में एकलाख दशहज़ार राजालोगों ने ब्राह्मणों की सेवा करने के कारण हिरण्यगर्भलोक पाया ऐसा भी प्रतापी तेजस्वी जब मरगया तो तू किसकारण पुत्रका शोक करता है इसके विशेष राजा चैत्ररथके पुत्र शशिबिन्दु को भी हमने मृतक हुआ सुना है जिस महात्मा की एकलाख स्त्रियां थीं और एकलाख पुत्र सबके सब महाधनुर्द्धारी थे और प्रत्येक राजपुत्र के पीछे सौ २ राजकन्या चलीं और हरएक कन्याके साथ सौ २ हाथी और प्रतिहाथी सौ २ रथ और प्रत्येक रथ के साथ सौ २ घोड़े और घोड़े २ के साथ सौ २ गौ और गौवों के पीछे अनेक भेड़ बकरियां थीं ऐसे असंख्य धन को शशिबिन्दु ने बड़े अश्वमेध में ब्राह्मणों को बांटदिया उसको भी तू महाउत्तम समझकर अपने शोक को दूर कर गय और अमूर्त्तरय को भी हम ने मृतक सुना है यह राजा सौ वर्षपर्य्यन्त यज्ञ के शेष अमृत अन्न का भोजन करनेवाला हुआ अग्नि ने उसको वरदान दिया और गय ने भी बहुत से वर मांगे जिनमें एक यह वरदान है कि मेरा धन दान करते करते न निबटे और धर्म्म में पूरी श्रद्धा बनी रहे और मेरे चित्तमें सदैव सत्यता बनी रहे यह सब वरदान अग्नि ने उसको दिये अमा पूर्णिमा चातुर्मास में पूरे सहस्रवर्षपर्य्यन्त अश्वमेधयज्ञ से परमेश्वर का पूजन किया सहस्रवर्षपर्य्यन्त उठ २ कर एकलक्ष गौ और इतनेही खच्चर दान किये और धन से ब्राह्मणों को और अमृत से देवताओं को और स्वधा से पितरों को और कामशक्ति से स्त्रियों को प्रसन्न किया और महाअश्वमेध यज्ञ में उसराजा ने पचास हाथ चौड़ी और सौ हाथ लम्बी सुवर्ण की पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणों को यज्ञदक्षिणा दी और

जितने बालू के कण गङ्गा में हैं उतनेही राजा गय अमूर्त्तरय ने गोदान किये हे संजय ! जब ऐसे भी धर्म्मात्माको काल ने न छोड़ा तो तू क्या अपने पुत्र का शोक करता है रन्तिदेव और सान्त्य को भी हमने स्वर्गवासी हुआ सुना है जिस महात्मा तपोधन ने उत्तम आराधना करके इन्द्रसे वरप्रदान पाया कि हमारे बहुत अन्न उत्पन्न हो और अतिथियों के भोजनों में हमारी श्रद्धा न घटे और किसी से कोई वस्तु न मांगें आप से आप उस महात्मा रन्तिदेव के पास सब पशु आये और कहा कि पितृकार्य्य में हमको लगावो इसीकारण उनपशुओं के चर्म्मों से जो रुधिर निकला उसी से चर्म्मण्वती नदी प्रसिद्ध हुई सभा नियत होजाने पर वह राजा एक ब्राह्मण को सौ २ निष्क देने को पुकारता था परन्तु वह नहीं लेते थे जब हज़ार निष्क देता था तब ब्राह्मणों को पाता था पितरों के मालिक श्राद्धका जो सामान है उसमें जो पीतलके पात्र होते हैं वह यह हैं कि कलश थाली यज्ञपात्र कराह पिठर आदि वह सब सामान सुवर्णरचित था और जब बीससहस्र राजा उसके घर में रात्रि को वर्त्तमान हुये तब उन्होंने सौ २ गौ दक्षिणा में पाईं वह उत्तम कुण्डलधारी रसोईदार पुकारते थे कि अन्न अनेक व्यञ्जनों को भोजन करो पहिला मांस अब नहीं है वह भी तुम से और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा पुरुष मरगया तो तू क्यों पुत्रशोक करता है और इक्ष्वाकुवंशी महाबली महात्मा राजा सगर को भी मराहुआ सुनते हैं जिसके पीछे २ उसके साठ हज़ार पुत्र चलते थे जैसे कि वर्षा के अन्त में निर्मल आकाश में चन्द्रमा को हज़ारों नक्षत्र घेरेहुये चलते हैं प्राचीन समय में उस के प्रताप से पृथ्वी एक छत्रवाली हुई और हज़ार अश्वमेधों से उसने देवताओं को प्रसन्न किया और अनेक सुवर्णभूषित वराङ्गनाओं से शोभित सर्ववस्तुसम्पन्न महलों को बहुत से धनसे पूर्ण करके ब्राह्मणों को दान किया और क्रोध करके समुद्रों से अङ्कित पृथ्वी को खुदवाया इसीकारण समुद्र का सागरनाम हुआ उस महातेजस्वी को भी जब काल बली ने दबालिया तो तू क्या अपने पुत्रका शोक करता है और वेणु के पुत्र राजा पृथुको भी मृतक सुनते हैं जिसको बड़े २ ऋषियों ने वन में अभिषेक कराया और लोकों में प्रसिद्ध हुआ इसी से उसका नाम पृथु रक्खा और यह निश्चय है कि जो क्षत अर्थात् घाव से रक्षा करे वह क्षत्रिय कहलाता है इसकारण वेणुके पुत्र राजा पृथुकी प्रजा ने देखकर कहा कि हम अनुरक्त हैं अर्थात् प्रवृत्त हैं इससे राजा यह नाम हुआ राजापृथु के राज्य में वृक्ष विना परिश्रम किये फलको देते थे और पत्रमें मिष्टरस होता था और सब गौ एक २ द्रोणपरिमित दूध देती थीं क्षेत्र और स्थानों में सब प्रकार के मनुष्य निर्भय हुये समुद्रका जल इसके देखते ही स्थिर होता था और नदियां हटकर मार्ग करदेती थीं कहीं इसकी ध्वजा की रोक नहीं हुई इस राजा ने चारसौ हाथ ऊंचे इक्कीस सुवर्ण के पर्वतों को महायज्ञ

अश्वमेध में ब्राह्मणों को दान किया ऐसा महादानी धर्म्मात्मा जब मरगया तो निरर्थक पुत्रशोक तू क्यों करता है हे संजय! तुम मौन होकर क्या विचार रहेहो मेरे इन वचनों को नहीं सुनते हो मैंने जो इतने इतिहास कहे वह मिथ्या नहीं हैं जैसे आसन्नमृत्यु मनुष्य को हितकारी वचन असह्य होते हैं तैसेही तूभी मेरे वचनों को सत्य नहीं समझता संजय बोला कि हे नारदजी! मैं चित्त से आप के वचनों को सुनता हूं यह राजऋषियों की कीर्त्तियों से भरेहुये अनेक शोकों के दूर करनेवाले वचन हैं हे महर्षे! आप ने निष्फल वार्त्ता कोई नहीं कही मैं आप के देखनेसेही शोकरहित हूं और हे ब्रह्मवादिन्! मैं आप के अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हे नारद जी! आप का दर्शन सफल होता है इससे अनुग्रह करके इस पुत्र को फिर जिलावो जिससे कि मैं उससे मिलकर अपने शोक को मिटाऊं नारदजी बोले कि जो यह तेरा स्वर्णष्ठीवी नाम पुत्र जिसको पर्व्वत ऋषि ने तुझ को दिया था उसको मैं फिर तुझे देता हूं जिसकी हिरण्यनाभि होकर सहस्र वर्ष की अवस्था होगी॥ १५०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९॥

तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि संजय का वह पुत्र हिरण्यगर्भ कैसे हुआ उसको पर्व्वत ऋषि ने कैसे दिया और किसकारण से मरगया उस समय सब मनुष्य हजार वर्ष की अवस्था रखते थे तो संजय का पुत्र कौमार अवस्था ही में कैसे मर-गया आश्चर्य है कि वह नाममात्र को सुवर्णष्ठीव हुआ अथवा कैसे सुवर्ण का उगलनेवाला हुआ इस बात को जानना चाहता हूं श्रीकृष्णजी बोले कि इस स्थानपर मैं यह वृत्तान्त तुझ से कहता हूं कि यह नारद ऋषि और पर्व्वत ऋषि दोनों मामा भानजे थे लोकों के हित के लिये स्वर्ग से पृथ्वी में आये और पूर्व्व समय में वह दोनों नरलोक में बड़ी प्रीतिपूर्व्वक विहार करते फिरते थे पवित्रान्न हव्य चावल और घृतसंयुक्त देवताओं के भोजनों को करके मामा नारदजी और उनके भानजे पर्व्वत ऋषि पर्यटन करने को पृथ्वीपर घूमाकरते थे और दोनों तपोमूर्त्ति नरलोकवासियों के पदार्थों को भोजन करके स्वेच्छाचारी हो इस पृथ्वी के चारों ओर को घूमे और बड़ी प्रीतिपूर्वक परस्पर में दोनों ने यह प्रण किया कि हृदय में जो अच्छा बुरा कोई संकल्प उठे उसे आपस में कहना योग्य है और जो कोई मिथ्या कहै उसके बदले शाप होवे इसप्रकार की शर्तैं करके वह लोकपूजित दोनों ऋषि संजय नाम राजर्षि के समीप पहुँचे और बोले कि हम दोनों तेरे शुभ के

लिये कुछ समय तक तेरे पास रहेंगे हे राजन् ! तुम भी बुद्धिके अनुसार हम दोनों के समान होवो राजा ने तथास्तु कहकर दोनोंका सत्कार किया तदनन्तर किसी समय उन दोनों तपोमूर्त्तियों को प्रसन्न जानकर राजा ने यह कहा कि यह सुन्दर वर्ण स्वरूपवान् मेरी अकेली पुत्री आप की सेवा करेगी यह कन्या अतिसुशील नम्र देखने योग्य निर्दोष गुरुसेवापरायण चतुर कुमारी कमलनेत्र प्रकाशमान वर्त्तमान है उन दोनों ने कहा कि बहुत अच्छी बात है तब राजा ने उस कन्या को शिक्षा करी कि हे पुत्रि ! तू इन दोनों ऋषियों की पिता के समान सेवा कर वह सुशील कन्या राजा की आज्ञा पा उन दोनों महर्षियों की श्रद्धापूर्वक सेवा करनेलगी उसकी सेवा और अपूर्व लावण्यता से नारदजी को कामदेव ने सताया तब उस वृत्तान्त को नारदजी ने अपने भानजे पर्वत ऋषि से नहीं कहा परन्तु पर्वत ऋषि ने अपने तप के बल से नारद की अङ्गचेष्टाओं से उस वृत्तान्त को जाना और अत्यन्त क्रोधयुक्त हो कामपीड़ित नारदजी को शाप दिया कि सावधान हो आप ने मुझ से शर्त करके कहा था कि हृदय में जो बुरा भला संकल्प हो उसको परस्पर में कहना योग्य है उस को आप ने छिपाया है ब्रह्मन् ! आपने उस प्रतिज्ञा कियेहुये वचन को मिथ्या किया इससे मैं शाप देता हूं कि यही कुमारी आपकी निश्चय करके भार्या होगी हे स्वामिन् ! विवाहसमय में यह कन्या और अन्य मनुष्य तुम को वानररूप देखेंगे जोकि आप के असली रूप को नाश करेगा यह सुनकर नारद ने भी क्रोधित होकर उस अपने भानजे पर्व्वत ऋषि को शाप दिया कि तू भी तप ब्रह्मचर्य सत्यता आदि धर्म्मों को सदैव करताहुआ भी स्वर्गलोक न पावेगा इसप्रकार से वह दोनों क्रोधाग्नि में भरेहुये शापाशापी करके इधर उधर चले गये और बुद्धिमान् पर्वत ऋषि सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमे और अपने तेज बल से न्यायकी रीति से पूजन पानेवाले हुये इसके पीछे नारदजी ने उस संजयकी पुत्री को धर्म्म से पाया अर्थात् पाणिग्रहण के मन्त्र पढ़नेवालों की आज्ञा से नारदजी को वानररूप में देखकर अपमान नहीं किया और प्रसन्न हुये अपने स्वामी के समीप प्राप्त हुई उस पतिव्रता ने दूसरे देवता मुनि यक्ष गन्धर्व आदि को भी पति नहीं बनाया तदनन्तर किसीसमय तपोमूर्त्ति पर्वत ऋषिने कहीं वन में घूमते हुये नारदजीको देखा और नमस्कार करके नारदजी से कहा कि हे स्वामिन् ! आप मेरे स्वर्ग जाने के विषय में शाप अनुग्रह करके कृपा करो तब नारदजी ने पर्वत ऋषि से कहा कि मुझे आप ने प्रथम शाप दिया था कि तुम वानररूप होगे इसीकारण पीछे से ईर्षायुक्त मैंने भी तुम को शाप दिया कि अबसे लेकर अन्त तक स्वर्ग में नहीं रहसकोगे यह बात कहने योग्य नहीं है क्योंकि तुम हमारे पुत्रके समान हो तब उन दोनों मुनियों ने परस्पर में शाप को मोचन किया

तब वह सुकुमारी संजयकुमारी उस शोभायमान नारद के स्वरूप को देखकर दूसरे पुरुष की शङ्का से भागी तब उस पर्वत ऋषि ने उस निर्दोष भागनेवाली कुमारी से समझाकर कहा कि यह तेरा पति है इसमें विचार न करना चाहिये यह परमधर्म्मात्मा नारदजी तेरेही पति हैंइसमें तू सन्देह मत कर तब उस कन्या ने पर्व्वत ऋषि से शापदोष को समझकर चित्त में विश्वास किया कि नारदजी ने अपने मुख्यस्वरूप को पाया तब पर्व्वत ऋषि भी स्वर्ग को गये और नारदजी अपने स्थान को आये वासुदेवजी बोले कि यह भगवान् नारद ऋषि जो सब को प्रत्येक वार्त्ता प्रकट करते हैं उनसे जब तुम पूछोगे तब वह इसके यथार्थ वृत्तान्त को कहेंगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्णजी के कहने से राजा युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! मैं आप के मुखारविन्द से सुवर्णष्ठीव के जन्म को सुना चाहता हूं यह सुनकर नारद मुनि ने धर्म्मराज से कहा कि सुवर्णष्ठीव का जैसा वृत्तान्त है कि वह सब केशवजी ने आप से कहा उसमें जो कुछ शेष रह-गया है वह मैं तुझ से कहता हूं कि मैं और मेरा भानजा महामुनि पर्वत निवास करने की इच्छा करके महाप्रतापी राजा संजय के पास गये वहां हम दोनों ने शास्त्रोक्त कर्म्म के द्वारा पूजित हो सब इच्छाओं से पूर्ण उसके स्थान में निवास किया बहुत वर्षों के पीछे यात्रा करने के समय पर्वत ने मुझ से यह सार्थक वचन कहा कि हे ब्रह्मन् ! हम दोनों इस महाराज के घर में बड़े पूजित होकर रहे हम को उचित है कि इसका कल्याण विचारें तब मैंने उस शुभदर्शन पर्वत ऋषि से कहा कि हे भानजे, पर्व्वत ! यह सब सामर्थ्य तुझ में है राजा को वरों से लुभाना चाहिये जो २ वह वर मांगे वह उसको दो और वह हम दोनों के तप से सिद्धि को पावे तदनन्तर पर्व्वत ऋषि ने उस प्रतापी संजय को बुला-कर कहा कि हे संजय ! आप के सत्यतापूर्व्वक होनेवाले कामों से हम बहुत प्रसन्न हैं सो हे नरोत्तम ! तुम हम दोनों से कोई वर मांगो देवताओं के पीड़ा न होने से मनुष्यों का भी कल्याण होता है हे राजन् ! आप उस वर को लीजिये तुम हम दोनों की ओर से पूजन के योग्य हो संजय बोला जो आप मुझ से प्रसन्न हैं इतनेही से मेरा बड़ा लाभ हुआ फिर पर्व्वत ऋषि ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! उस चित्त की इच्छा को मांगो जो बहुत काल से आप के हृदय में है संजय बोला कि मैं ऐसा पुत्र चाहता हूं जो महापराक्रमी वीर दृढ़व्रतधारी विद्यावान् महाप्रारब्धी इन्द्र के समान तेजस्वी आयुष्मान् हो पर्वत बोले कि यह

सब इच्छा तेरी पूर्ण होगी परन्तु वह अवस्था में पूर्ण न होगा। तेरे हृदय में यह संकल्प इन्द्र के ऐश्वर्य्य के निमित्त है तेरा पुत्र सुवर्णष्ठीव के नाम से प्रसिद्ध होगा वह देवेन्द्र के समान तेजस्वी होगा परन्तु इन्द्र से रक्षा होनी चाहिये तब संजय ने महात्मा पर्वत ऋषि को प्रसन्न करके कहा कि आप ऐसी कृपा करें कि इन्द्र से भय न होवे हे मुनीश्वर! मेरा पुत्र आपके महातप से आयुर्दायवान् होवे पर्वतजी ने इन्द्रके हेतु से उसको कुछ उत्तर नहीं दिया फिर नारदजी कहते हैं कि मैंने राजा संजय से कहा कि हे महाराज! आप मुझ को याद करना मैं तुम्हारेपुत्र को यमराज के फन्दे से छुटाकर फिर उसी स्वरूप का करके दूंगा इससे हे पृथ्वी-पते, संजय! शोच मत करो ऐसा कहकर हम दोनों अपनी इच्छापूर्वक चले आये और राजा संजय इच्छानुसार अपने महल में पहुँचा तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर राजऋषि संजय के पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ा पराक्रमी और तेज से देदीप्यमान था और समय पाकर ऐसे बड़ा हुआ जैसे कि सरोवर में क-मल बड़ा होता है वह नाम के अर्थ के अनुसार यथा नाम तथा गुणवान् होकर लोक में बड़ा आश्चर्य्यकारी हुआ और इन्द्र उस पर्वत ऋषि के वरदान को जानकर बृहस्पतिजी की सलाह से अपने पराजय से भयभीत हो उस कुमार के मारने का मौका देखनेलगा और अपने दिव्य अस्त्र वज्रको आज्ञा दी कि तुम व्याघ्ररूप होकर इस कुमार को मारो नहीं तो हे वज्र! यह कुमार बड़ा होकर मुझ को मारेगा या पराजय करेगा जैसा कि पर्वत ऋषि ने राजा से कहा है जब इन्द्र ने वज्र को यह आज्ञा दी तब वह शत्रुहन्ता दिव्य अस्त्र कुमार के मारने को व्याघ्ररूप होकर सदैव सम्मुख आया करता था और संजय भी अपने ऐसे पराक्रमी पुत्र के होने से निर्भय होकर वन में वास करनेलगा फिर एक समय वह बालक निर्जन वन में गङ्गाजी के तटपर अपनी धात्री को साथ लिये क्रीड़ा करने के निमित्त चारों ओर को दौड़ा उस समय उस महाबली गजेन्द्र के समान पराक्रमी पांचवर्ष के बालक ने अकस्मात् उछलतेहुये उस प्रबल सिंह को देखा तो भयभीत हो कांपनेलगा और उसी समय उस व्याघ्र ने मारडाला तब वह धात्री पुकारी और वह शार्दूल उसको मारकर उसी स्थान पर अन्तर्द्धान होगया और देवराज की माया से गुप्त होगया तब उस धात्री के रोने का महाव्याकुल शब्द सुनकर वह राजा संजय वन से दौड़ा और वहां आकर अपने पुत्र को मराहुआ पृथ्वीपर पड़ा देख व्याकुल हो उसने मृतक पुत्र को छाती में लगा-कर महाविलाप किया तदनन्तर उसकी सब माता भी महाघोर विलाप और रोदन करती हुई वहां आई जहां राजा संजय शोक कररहा था उस समय राजा ने मुझ को स्मरण किया तब मैंने जाकर उसको दर्शन दिया उस समय उस शोकग्रस्त ने मुझ से वह वचन कहे जो श्रीकृष्णजी ने तुम को सुनाये फिर

इन्द्र की सलाह और नारदजी की कृपा से उसका सुवर्णष्ठीवी पुत्र जीउठा वह ऐसाही होना था उस होनहार से विपरीत करना असम्भव है तब उस पुत्र को देखकर उसके माता पिता प्रसन्न हुये और राज्य देकर तप के द्वारा स्वर्गवासी हुये उस सुवर्णष्ठीवी ने अपने माता पिता के मरने के अनन्तर ग्यारहसौ वर्षपर्य्यन्त पृथ्वीपर राज्य किया और बड़े २ यज्ञों के द्वारा देवता और पितरों को सन्तुष्ट कर वंश की वृद्धि करनेवाले बहुत से पुत्रों को उत्पन्न करके समयानुसार मोक्षरूप मृत्यु पाई सो तुम भी इस शोक को दूर करो जैसे कि केशवजी और महात्मा व्यासजी ने तुम से कहा है अपने बाप दादे के राज्य में प्रवृत्त होकर धर्म्म करो अर्थात् संसार का पोषण करो और महान् यज्ञों से पूजन करके अभीष्ट पद को पावोगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि महातपस्वी तत्त्वज्ञ व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि हे कमललोचन ! राजाओं का परमधर्म्म प्रजा का पालन है सदैव धर्म्मपर चलनेवाले पुरुषों का धर्म्म लोक को प्रमाण होता है सो हे राजन् ! तुम बाप दादे के राज्यपर नियत होजावो ब्राह्मणों में तप का होना जो धर्म्म है वह सदैव वेद से निश्चय होता है कि हे भरतर्षभ ! वह ब्राह्मणों का प्राचीन कर्म्म धर्म्म की मर्य्यादा है उस सब धर्म्म का रक्षा करनेवाला क्षत्रिय है जिस देशवासी मनुष्य ने आज्ञा को न माना वह मर्यादा भङ्ग करनेवाला पुरुष पकड़ने के योग्य है और जो अज्ञान होकर नौकर या पुत्र अथवा तपस्वी भी मर्यादा को बिगाड़े उस पापी को राजा दण्ड दे या मारडाले और जो राजा ऐसा न करे तो वह भी पाप का भागी होता है और जो राजा नाश होनेवाले धर्म्म की रक्षा न करे वह धर्म्म का नाश करनेवाला है तुम ने धर्म्मनाशक दुर्य्योधन आदि को उनके सहायकों और साथियों समेत मारा इससे हे पाण्डव ! तुम ने धर्म्म से मारा अब तुम क्यों शोच करते हो राजा को उचित है कि शत्रुओं को मारे और दान धर्म्म कर प्रेम से प्रजा का रक्षापूर्वक पोषण करे युधिष्ठिर बोले हे तपोमूर्त्ते, पितामह, व्यासजी ! मैं आप के वचनों में सन्देह नहीं करता हूं जो आप कहते हो वह सब धर्म्म आप के दृष्टिगोचर है अर्थात् आप उन सबके ज्ञाता हैं हे ब्रह्मन् ! मैंने राज्य के लिये मारने के अयोग्य बहुत से मनुष्यों को मारा वही कर्म्म मुझ को भस्म कररहा है तब व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ! ईश्वर में मिले पुरुष बुरा भला कैसाही कर्म्म करें उन सब कर्म्मों का फल ईश्वरही में वर्तमान होता है जैसे कोई पुरुष वन में जाकर फरसे से वृक्ष को काटे तो

काटनेवाले को पाप नहीं होता अर्थात् फरसे को पाप नहीं होता कदाचित् ऐसा कहो कि फरसे के लेने और चलाने से कर्म्म के फल को भोगे तहां कहते हैं कि फरसे की लकड़ी और शस्त्र बनाने का पाप बनानेवाले मनुष्य में भी होना चाहिये सो नहीं होता है जब पहिले कर्त्ता में कर्म्म का फल नहीं हुआ तो दूसरे कर्त्ता में कहां से होगा इसकारण ऐसे सब कर्म्म ईश्वर की इच्छा से होते हैं जो यह बात अभीष्ट नहीं है कि शस्त्रप्रहार करनेवाले का किया हुआ अकर्म्म फल शस्त्र बनानेवाला पाये ऐसी दशा में तुझ में पाप न होने से उसको ईश्वर ही में जानो और जो यही कहो कि अच्छे बुरे कर्म्म का कर्त्ता पुरुषही है ईश्वर नहीं है इस हेतु से भी यह कर्म्म अच्छा किया हे राजन्! अदृष्ट होनहार के विरुद्ध को कोई पुरुष अवश्य होनेवाले कर्म्म को नहीं त्यागता है जो यह समझते हो कि प्रारब्ध भी अपने दूसरे जन्म का पुण्य पाप है उसके उत्तर में कहते हैं कि दण्ड और शस्त्र बनाने का पाप पुरुष में नहीं है तो पिछले कर्त्ता में क्यों मिलना चाहिये अब तीसरे पक्ष को दोष लगाते हैं हे राजन्! जो तुम मारने के कर्म्म करने का कारण पुरुष को मानते हो तो इसप्रकार से भी तुझ हठवादी का कर्म्म बुरा नहीं हुआ है न होगा फिर लोक के पुण्य पाप अर्थात् सुख दुःख का कर्म्म मिलाने के योग्य है इस से यही जानो कि यह राजाओं का दण्डधारण करना लोक को प्रमाण है अर्थात् लोक और शास्त्र दोनों में देखाजाता है इसमें सन्देह करते हैं हे भरतर्षभ! लोक में भी तो अच्छे और बुरे कर्म्म अवश्य प्राप्त होते हैं और नेक अशुभ फल को पाते हैं यह मेरा मत है इसकारण मुझ को देह के त्यागने के लिये नियम करना उत्तम है इसका उत्तर यह है कि हे नरोत्तम! ऐसा भी हो परन्तु तुम पापों की जड़ हो इससे उस कर्म्म को त्यागो जिसका फल दुवन्त खाता है इसप्रकार चित्त में शोक मत करो हे भरतवंशिन्! अपने निन्दित धर्म्म में तुझ को देह का त्याग करना उचित नहीं है ऐसे निन्दित कर्म्म से भी महापाप होता है हे कुन्तीपुत्र! सब कर्म्मों के प्रायश्चित्त शास्त्रों में लिखे हैं देहधारी उनको करे और देह का त्याग करनेवाला नाश को प्राप्त होता है हे राजन्! जो तुम देहधारी होकर प्रायश्चित्तको न करोगे तो मरकर पश्चात्ताप करोगे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तेंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! मुझ राज्य के लोभी अकेले ने पुत्र, स्त्री, भाई, पिता, श्वशुर, गुरु, मामा, पितामह, महात्मा, क्षत्रिय, सम्बन्धी, सुहृज्जन, समानवय भानजे, जातिवाले और नानाप्रकार के उद्योग करनेवाले राजालोग मरवाये

सो हे तपोधन ! ऐसे२ वीर राजाओं को मारकर मैं क्या फल पाऊंगा इससे उन श्रीमान् राजाओं से खाली पृथ्वी को देख २ मैं सदैव चिन्ता करता हूं और ज्ञातिवालों के घोरनाश को और सैकड़ों शत्रु और करोड़ों अन्य मनुष्यों को मराहुआ देखकर महादुःखी होता हूं उनकी श्रेष्ठ २ स्त्रियों की क्या दशा होगी जो पति पुत्र और अपने भाइयों से रहित होगई वे तो दुर्बल शोक से पीड़ित हम सब पाण्डवों को दुर्वचन कहतीहुई वे स्त्रियां पृथ्वीपर गिरेंगी या अपने पिता, माता, पति, भाई, पुत्र आदि को न देख देह को त्याग २ यमलोक को जायँगी इसका निश्चय यह फल होगा कि हमलोग धर्म्म की सूक्ष्मता से स्त्री-वधकर्म्म के फल को पावेंगे और जो अपने सुहृज्जनों को मार प्रायश्चित्तों से पाप से निवृत्त होकर हमलोग मरेंगे तो अवश्य नरक में पापों को भोगेंगे इस से हे पितामह ! हम तप करके अपने देहों को त्यागेंगे अब आप आश्रमों में जो उत्तम आश्रम हो उसको कहो वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर के ऐसे वचनों को व्यासजी ने सुना तब बड़े विचारपूर्वक व्यासजी बोले कि हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ, युधिष्ठिर ! क्षत्रियधर्म्म को जानकर तुम व्याकुल मत हो यह सब क्षत्रिय लोग अपने क्षात्र धर्म ही से मारेगये पृथ्वी के सब धन और बड़े यश के चाहने-वाले काल के प्रेरित दूसरों के मारने में प्रवृत्त थे इन सब ने कालही से मृत्यु पाई तुम न भीम न अर्जुन न नकुल न सहदेव कोई मारनेवाले नहीं हौ काल ने सबको बटोरलिया यह सब बातें काल के लिये हेतुरूप होगई कि जीव जीव के हाथों से मरते हैं इसकारण यह तुम कर्मरूप बन्धन को प्रधान रखनेवाला अच्छे बुरे कर्म्मों का साक्षी सुख दुःखादि गुणों का समय पर फल देनेवाला कालरूप ईश्वरही जानो और हे युधिष्ठिर ! तुम उनके नाश होने के कर्म्मरूप कारण को भी समझो जिससे कि वह काल की फांसी में बँधेगये हे सावधान ! तुम अपने कर्म्म की प्रवृत्तिता को जानो कि जब तुम ईश्वरेच्छा से प्रारब्धाधीन ऐसे कर्म्म में प्रवृत्त कियेगये जैसे त्वष्टा का बनायाहुआ यन्त्र अङ्ग के हिलाने-वाले के आधीन होता है उसीप्रकार यह जगत् काल से संयुक्त कर्म्मों के द्वारा चेष्टा करता है पुरुषों के जन्म और नाश को दैवइच्छा से होना जानकर सुख दुःख करना वृथा है जो यहां मिथ्या भी तेरे चित्त का बन्धन है उस के लिये प्रायश्चित्त करना होता है उसको तुम करो और पहिले समय में देवासुरों के युद्ध में यह सुनाजाता है कि असुर बड़े भाई और देवता छोटे भाई थे उनका भी युद्ध धनही के निमित्त बत्तीसहज़ार वर्षतक हुआ देवताओं ने पृथ्वी को रुधिर से एकसमुद्रवाली करतेहुये दैत्यों को मारा और स्वर्ग को भी प्राप्त किया उसीप्रकार वेद के पारंगत होनेवाले अहंकार में भूलेहुये ब्राह्मण पृथ्वी को पाकर दैत्यों की सहायता के लिये तय्यार हुये वह तीनों लोक में प्रसिद्ध

शालावृक नाम से अट्ठासीसहस्र थे वह भी देवताओं के हाथ से मारेगये इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो अधर्म्म के जारी करनेवाले और धर्म्म का नाश होना चाहते हैं वे मूढबुद्धि मारने के ही योग्य हैं जैसे कि दैत्य देवताओं के हाथ से मारेगये जो एक पुरुष के मारने से घराना बचे और एक घराने के मारने से एक ग्राम बचे और एक ग्राम के मारने से एक देशभर बचे तो वह धर्म्म का नाश करनेवाला नहीं है हे राजन्! कोई तो अधर्म्मरूप धर्म्म है और कोई धर्म्मरूप अधर्म्म है वह परिडतही के जानने के योग्य है इसकारण तुम चित्त को स्वस्थ करो क्योंकि तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो और पूर्व्वचरित मार्ग्गों पर चलते हो ऐसे पुरुष कभी नरक को नहीं जाते इस से तुम अपने इन शूरवीर छोटे भाइयों को आनन्द दो जो पुरुष पापसंयुक्त कर्म्म में न्यायही में स्नेह रखता है वह पाप करताहुआ भी उसी दशावाला होजाय कर्म्म करके निर्लज्ज होजाय तो उसी में वह पाप पूरा होगा यह कहते हैं कि उसके पाप का नाश प्रायश्चित्त कर्म्म से नहीं है परन्तु तुम पवित्रकुल और दुर्योधन के दोष से कर्म्म करने-वाले होकर इस कर्म्म की अनिच्छा करके पश्चात्ताप करते हो सो सबका प्राय-श्चित्त बड़ा अश्वमेध यज्ञ कहा है उसको करो तो पापसे छूटोगे इन्द्र देवता मरुद्गणों के साथ शत्रुओं को विजय करके सौ सौ बार एक २ यज्ञ को करके शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ का करनेवाला हुआ जो लोकों के आनन्द का प्रकट करनेवाला मरुद्गणों समेत लोकों को प्राप्त करके चारों दिशाओं को प्रकाश करता शोभायमान है और स्वर्ग्गलोक में अप्सराओं से सेवित देवताओं के ईश्वर शचीपति इन्द्र की ऋषि और देवता चारों ओर से उपासना करते हैं हे निष्पाप! यह पृथ्वी तुझ को पराक्रम से प्राप्त हुई और तेरे पराक्रम से राजा लोग विजय हुये सो हे नरोत्तम! तुम अपने सुहृज्जनों समेत उनके पुर और देशों को जाकर अपने भाई, पुत्रों, पोतों को यथायोग्य राज्यों पर अभिषेक करावो और श्रेष्ठ आचरणयुक्त सब नौकर चाकरों को मीठे वचनों से प्रसन्न कर गर्भस्थ बालकों की और पृथ्वी की रक्षा करो और जिनके कि पुत्र कुमार नहीं हैं वहां उनकी कन्याओं को अभिषेक करावो स्त्रियों का समूह इसप्रकार अपने वाञ्छित को प्राप्त होकर शोकों को तजेगा इसप्रकार से सब देशों को स्वस्थ और आनन्द करके अश्वमेध यज्ञ से पूजन करो जैसे पूर्वकाल में विजयी इन्द्र ने किया था हे क्षत्रियोत्तम! वह महात्मा क्षत्रियलोग शोच के योग्य नहीं हैं जिन्हों ने अपने २ कर्म्म के द्वारा मृत्यु को पाया हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! क्षत्रियधर्म्म तुम को प्राप्त है और निष्कण्टक राज्य भी तुम को प्राप्त हुआ इस से अपने उस धर्म्म की रक्षा करो जोकि परलोक में कल्याण करनेवाला है ॥४८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

और किसी के मारने की इच्छा से शस्त्र को धारण किये सम्मुख आवे ऐसे आततायी के मारने से ब्रह्महत्या नहीं होती है हे कुन्ती के पुत्र! ऐसे स्थान में वेदों में भी पढ़ाजाता है वेद के प्रमाण की योग्यता को तुम से कहते हैं कि जो पुरुष गुरु की सेवा आदि से भिन्न मारने की इच्छा किये शस्त्रधारी ब्राह्मण को मारे उसके मारने से ब्रह्महत्या नहीं होगी क्रोध में प्रवृत्त होकर उस कर्म का फल क्रोधही में जाता है प्राणों के नाश में अथवा अज्ञानता में मद्य पीना भी धर्मात्मा पुरुषों की आज्ञा से निषेध नहीं है अर्थात् शुद्धि के योग्य है हे युधिष्ठिर! मैंने यह सब अभक्ष्य भोजनों का वर्णन किया इनसब से प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध होसक्ता है और गुरु की आज्ञा से उनकी स्त्री से सम्भोग करना मनुष्य को पाप का भागी नहीं करता है जैसे कि उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु को शिष्य के द्वारा उत्पन्न किया गुरु के निमित्त अथवा आपत्ति में चोरी करना निषेध नहीं होता और ब्राह्मण के सिवाय दूसरे वर्णों का धन लेना दोषभागी नहीं करता है और अपने या दूसरे के प्राणों की रक्षा में गुरु के निमित्त स्त्रियों में अथवा विवाहों के करने में मिथ्या बोलना अयोग्य नहीं गिनाजाता है और स्वप्नावस्था में वीर्य के गिरने से प्रातःकाल दूसरा यज्ञोपवीतधारण करना योग्य नहीं है अच्छी प्रज्वलित अग्नि में घृत से हवन करना प्रायश्चित्त है बड़े भाई के वेधर्म होने या संन्यासी होजानेपर छोटे को विवाह करना पाप नहीं है और शास्त्र की रीति से विषय की प्रार्थना करनेवाली दूसरे की स्त्री से सम्भोग करना दूषण नहीं है पशुओं का वध निरर्थक करना वा दूसरे से कराना महानिषेध है पशुओं पर दया करना ही संसार में योग्य है अज्ञानता से अयोग्य ब्राह्मण को दान देना और इसीप्रकार पात्र के सत्कारों का न करना भी दोषभागी नहीं करता इसीप्रकार कुपात्र स्त्री को दासी के समान त्यागदेना और भोजन वस्त्र देकर पृथक् करदेना भी अयोग्य नहीं है वह स्त्री भी उससे निर्दोष होकर पति को दूषित नहीं करसक्ती सोमनाम वस्तु का तत्त्व जानकर जो उसको बेचता है वह अदोषी है और असमर्थ नौकर के त्यागने में भी अदोष है और गौवों के निमित्त जंगल कटवाना भी दोष नहीं है इतने कर्म्मों का करनेवाला दोषका भागी नहीं होता है और जो२ प्रायश्चित्त हैं उनको ब्यौरे समेत कहूंगा॥३२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३४॥

पैंतीसवां अध्याय॥

ब्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि जो मनुष्य अपने कियेहुये पापों को फिर कभी न करे तो दान तपस्या आदि कर्म्मों से भी पापों से छूटजाता है जो ब्रह्मचारी कपाल और खड्ग को धारण करके अपने नित्य कर्म्म को

करताहुआ भिक्षावृत्ति से एक ही समय भोजन करे और दूसरों के गुणों में कोई दोष न लगाकर लोक में अपना कियाहुआ कर्म्म प्रकाश करताहुआ पृथ्वी पर शयन करे तो बारह वर्ष में ब्रह्महत्या दूर होजाती है अथवा उपदेशकर्त्ता पण्डितों की आज्ञा से व अपनी इच्छा से शस्त्रधारियों का लक्ष्य अर्थात् निशाना होजाय चाहे अग्नि में नीचा शिर करके अपनी देह को डालदे या किसी वेदमन्त्र को जपता तीनसौ योजन चलाजाय अथवा अपने सम्पूर्ण धन को किसी वेद जाननेवाले ब्राह्मण के अर्पण करे वा जीवनपर्य्यन्त के उपयोगी धन को या वस्तुओं से भरेहुये घर को उस ब्राह्मण के अर्थ दान करे वह गौ ब्राह्मण की रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्या से छूटता है ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य कृच्छ्रभोजी होकर छह वर्षमें पवित्र होता है और प्रतिमास के चतुर्थांशका कृच्छ्रभोजी तीन वर्ष में शुद्ध होता है और मास मास का कृच्छ्रभोजी एकही वर्ष में शुद्ध होता है और केवल जलमात्र ही से जीवन करनेवाला पुरुष थोड़े ही समय में पवित्र होता है और अश्वमेध यज्ञ से भी निस्सन्देह पवित्र होता है जो कोई राजा इसप्रकार के यज्ञों के अन्त में अवभृथ स्नान करनेवाले होते हैं वह सब पापों से छूटजाते हैं यह श्रुति है कि युद्ध में ब्राह्मण के निमित्त मराहुआ पुरुष ब्रह्महत्या से छूटता है अथवा ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष एक लाख गोदान पात्र ब्राह्मणों को दे तो सब पापों से छूटजाता है जो राजा पचीसहज़ार कपिला गौवों का दान करे वह सब पापों से रहित होता है जीवन के सन्देह होने में राजा सवत्सा दूध देनेवाली एकसहस्र गौ साधु और ब्राह्मणों को दान दे तो निस्सन्देह पापों से छूटकर नीरोग होता है और हे युधिष्ठिर ! जो राजा काम्बोज देश के सौ घोड़े जितेन्द्रिय ब्राह्मणों को दान करता है वह निष्पाप होता है और जो पुरुष एक ब्राह्मण को ब्राह्मण की यथेच्छ वस्तुओं को देवे और देकर नहीं कहै वह पाप से अत्यन्त रहित होता है जो पुरुष वारंवार मदिरापान करके अग्निवर्ण की मद्य को पिये तो वह इस लोक और परलोक दोनों में अपने को पवित्र करता है निर्जल देश में पहाड़ के शिखर से गिरे या अग्निमें पड़े या केदार हिमालय पर्व्वतपर चढ़े तो सब पापों से छूटजाता है और मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण बृहस्पति सवनाम यज्ञ से पूजन करने के पीछे सभा में जाने के योग्य है यह ब्राह्मण की श्रुति है कि जो पुरुष मद्य को पीकर ईर्षारहित हो पृथ्वी का दान करे और फिर मदिरा को न पिये वह संस्कार करनेवाला शुद्ध होता है गुरु की स्त्री से सम्भोग करनेवाला लोहे की गर्म शिला से चिपटजाय अथवा अपना लिङ्ग काटकर ऊंची दृष्टिवाला संन्यासी होजाय वह नरक भोगने से देह को शुद्ध करता है एक वर्ष तक जितेन्द्रिय होकर जो स्त्री रहती है वह सब कुकर्म्मों

से पवित्र होती है जो पुरुष महाव्रत को करे अर्थात् एक महीने तक जल को भी त्याग करे और सब धन को दान करदे अथवा युद्ध में गुरु के निमित्त मरे वह पापकर्म्म से शुद्ध होता है और जो गुरु से मिथ्या बोले या सत्कार गुरु का न करे तो वह उस गुरु की इच्छा को पूर्ण करके पाप से शुद्ध होता है और जिस पुरुष का व्रत नष्ट होगया हो वह व्रत नष्ट होने के छह महीने तक गोचर्म्म को धारण कर ब्रह्महत्या के व्रत को करे तो निर्दोष हो पाप से छूटे इसीप्रकार दूसरे की स्त्री या धनको हरे वह एक वर्षतक व्रती रहे तो पाप से छूटजाता है अथवा जिसके धनको ले उसके धन के समान अनेकप्रकार से धन देदे तो पाप से छूटे बड़े भाई से पहिले अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई और छोटे भाई से पीछे विवाह करनेवाला बड़ा भाई यह दोनों जितेन्द्रिय और व्रत में नियत होकर बारह दिन के कृच्छ्रव्रत से पवित्र होते हैं सदैव पितरों के उद्धार करनेवाले उस छोटे भाई को फिर अपना दूसरा विवाह करना उचित है और स्त्री को दोष नहीं होता क्योंकि वह उस से कोई देहसम्बन्ध नहीं रखती चातुर्मास में व्रत का धारण और पारण होता है स्त्रियां उससे शुद्ध होती हैं यह धर्म्मज्ञलोग कहते हैं सन्देहों से भरीहुई पापात्मा स्त्री बुद्धिमान् मनुष्य के सम्भोग करने के योग्य नही होती और जिन स्त्रियों का पाप केवल मानसी है वह मासिकधर्म्म से शुद्ध होजाती हैं जैसे कि भस्म से पात्र और जो शूद्र का जूठा कांसे का पात्र या मुख के बहुत से जलसे जूठा है वह भी दश वस्तुओं से पवित्र होता है गौ की पांचवस्तु और मिट्टी, जल, भस्म, खटाई, अग्नि चार चरण रखनेवाले सब धर्म्म ब्राह्मण के कहेजाते हैं और तीन चरणवाले क्षत्रियों के और दो चरणवाले वैश्यों के और एक चरणवाले शूद्र के कर्म्म कहेजाते हैं इसरीति से उनकी उच्चता और नीचता को जानो तिर्य्यग् चलनेवाले जीवों को मारनेवाला वा वृक्षों का काटनेवाला तीन रात्रि हवा का भक्षण करनेसे और अपने पाप को कहदे तो पाप दूर होय और अयोग्या स्त्री से सम्भोग करने में भी प्रायश्चित्त होता है कि भस्मपर गीले वस्त्रों से छह महीनेतक सोकर विहार करना चाहिये इसस्थान में भस्मशब्द के आने से सावित्री का जप भी करना योग्य है क्योंकि वह स्मृतियों से सिद्ध है इससे थोड़ा भोजन कर हिंसा, राग, द्वेष, मान, अपमान से रहित निर्विवाद होकर पवित्र स्थान में गायत्री को जपै वह मनुष्य सबपापों से मुक्त होता है जो द्विजन्मा अज्ञानता से पापों को करे वह दिनरात जंगल में नियत होकर वस्त्रों समेत तीन दिन रात जल में रहै और व्रती होकर स्त्री शूद्र और पतित से वार्तालाप न करे तो पापों से रहित होजाय इस निमित्त दान तप और शुभकर्म्मों से पापों को दूर करके श्रेष्ठफल की वृद्धि करे जैसे पुण्य से पाप को जीते और सदैव उत्तमकर्म्म कर निकृष्ट

कर्म्मों को त्यागे और धन से दान करे तो पाप नष्ट होजाय यह सब प्रायश्चित्त पापों के अनुरूपही मैंने कहे अब महापातकों के दूर करनेवाले प्रायश्चित्त कहता हूं हे राजन्! ज्ञानी पुरुष से कियाहुआ पाप बड़ा होता है और अ-ज्ञानी से थोड़ा होता है इसी से प्रायश्चित्त होसक्ता है शास्त्रोक्त विधि से पापका दूर करना सम्भव है परन्तु यह विधि आस्तिक और श्रद्धावान् के निमित्त कही जाती है और नास्तिक अश्रद्धावान् द्वेषी पाखण्डी पुरुषों में यह विधि कभी नहीं देखने में आती है हे नरोत्तम! ज्ञानीलोगों का धर्म्म और आचरण सर्वो-त्तम है वह इस लोक और परलोक में सुख की इच्छा करनेवालों को करने के योग्य है हे राजन्! तुम इस हेतु से अपने पापों को दूर करके उनको भी नरकों से उद्धार करोगे यह सुन युधिष्ठिर ने क्षणमात्र ध्यानावस्थित होकर व्यासजी को उत्तर दिया॥ ५१॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३५॥

छत्तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! कौन वस्तु भक्ष्य है और कौन अभक्ष्य है और कौन पदार्थ प्रशंसा के योग्य होता है और कौन पात्र और कौन अपात्र है यह भी आप कहिये व्यासजी बोले कि इस स्थान में एक इतिहास कहता हूं जिसमें सिद्धों का और प्रजापति मनु का संवाद है पूर्वकाल में व्रत करनेवाले ऋषियों ने प्रातःकाल के समय सामर्थ्यवान् मनुजी से पूछा कि हे प्रजापतिजी! भोजन किसरीति से करना चाहिये और किसप्रकार से पाक सिद्ध होता है और कौनसा करना योग्य है और कौनसा नहीं करना योग्य है यह सब वर्णन कीजिये यह सुनकर ब्रह्माके पुत्र स्वायम्भुवमनु ने कहा कि जिस देशकी शुद्धि नहीं हुई उस में भी जप, होम, व्रत और आत्मज्ञान होता है और मनुष्य इन जप आदि कर्म्मों में प्रवृत्ति करते हैं वह भी गङ्गा आदि तीर्थ के समान पवित्र करनेवाला है इसीप्रकार जप आदि के समान यह पर्वत भी पवित्र करने-वाले हैं उनमें सुवर्णप्राशन और रत्नों से स्नान करना दोष है देवालय में दर्शन करना वा घृत का स्पर्श करना यह बहुत शीघ्र मनुष्यों को पवित्र करते हैं ज्ञानी पुरुष कभी अहंकार न करे और जो कदाचित् करे भी तो दीर्घ आयु की इच्छा रखताहुआ तप्तकृच्छ्रव्रत को करे और बिना दीहुई वस्तु का न लेना दान करना वेद पढ़ना जप तप करना हिंसा न करना सत्य बोलना क्रोध न करना यज्ञ करना यह धर्म्म के लक्षण हैं वही धर्म्म देश काल पाकर अधर्म्म होता है अर्थात् प्राण के जाने में धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म होजाता है इसीकारण से दूसरे के धन को लेना मिथ्या बोलना हिंसा करना यह अवस्था

के धर्म्म हैं ज्ञानियों के यह दोनों धर्म्म और अधर्म्म दो २ प्रकार के हैं लोक और वेद की दो विधि हैं एक प्रवृत्ति दूसरी अप्रवृत्ति कर्म्म के फल को तो प्रवृत्ति और देवत्व होने को अप्रवृत्ति जानो इसीप्रकार बुरे कर्म्म का बुरा और अच्छे का अच्छा फल होता है दैवदैव करके युक्त अर्थात् होनहार शास्त्रोक्त कर्म्म से संयुक्त और शक्ति और ईश्वर इन चारों के सम्बन्धसे जो कर्म्म किया जाता है उसके करनेसे नीच पुरुषों का भी कर्म्मफल उत्तम होता है पशुहत्या के संदेह से अथवा इस लोक में परम्परा से प्रचलित रीति को जानकर कियाहुआ सन्ध्यावन्दनादि कर्म्म उत्तम होता है और दैव आदि के सम्बन्ध से कर्म्म का करना प्रायश्चित्त कहाजाता है अर्थात् काम क्रोध मोह से उत्पन्न जो मन की प्रिय और अप्रिय इच्छा वहभी दूर होजाती हैं और देहोंके जो रोगादि दुःख हैं वह औषध मन्त्र प्रायश्चित्त और तीर्थयात्रा से दूर होते हैं राजा को जो दण्डत्याग का पाप होता है वह एक रात्रि के व्रत से दूर होता है और पुरोहित की पवित्रता तीन दिन के व्रत से होती है जब पुत्रादि के मरने से शोकयुक्त मनुष्य शस्त्रादि के अपघात करने में न मरे तो तीन दिन व्रत करे और जो पुरुष अपनी ज्ञाति वा जन्मभूमि वा अपने कुलके धर्म्मों को सबप्रकार से छुपाते हैं वह भी अधर्म्मी हैं और धर्म्माधर्म्म का जब सन्देह होजाय तो दश वेद शास्त्र के ज्ञाता और तीन धर्म्म के ज्ञाता मिलकर जो कहें वही धर्म्म है बैल, मृत्तिका, चेंटी और श्लेष्मातक नामवृक्ष और विषवाली वस्तु यह सब ब्राह्मणों को अभक्ष्य हैं अर्थात् खाने के योग्य नहीं हैं जो ब्राह्मण शक नाम जाति से अलग रहते हैं उनको मछली और चार पैरवाला कछुआ और जो जल में उत्पन्न होनेवाले मेढक, भासा, हंस, सुपर्ण, चक्रवाक, प्लवा, बक, कौआ, गोह, गिद्ध, बाज, उल्लू और जितने चीड़फाड़ करनेवाले और पैनी डाढ़वाले पशु पक्षी हैं और जिनके दोनों ओर दांत हैं और चार डाढ़ रखनेवाले सब जीव अभक्ष्य हैं भेड़, बकरी, घोड़ी, गधी, ऊंटनी और सूतकी गौ का और मांसी पशुओं का भी दूध ब्राह्मण नहीं पिये और प्रेतान्न, सूतकान्न और जो कुछ कि सूतक से सम्बन्ध रखनेवाला है और जिसका बछड़ा दशदिन का न हुआ हो उसगौ का दूध अभक्ष्य है राजा का अन्न तेजको घटाता है शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को सुनार का अन्न और पतिपुत्ररहित स्त्री का धन आयु को क्षीण करता है ब्याज लेनेवाले का अन्न विष्ठा के समान होता है वेश्या का और स्त्रीजित का अन्न वीर्य्य के तुल्य है और दीक्षित का, कादर का और यज्ञ बेचनेवाले का, बढ़ई, चमार, धोबी और कुचालिनी स्त्रीका अन्न, वैद्य का अन्न, सीमा के रक्षक का अन्न, भोजन के योग्य नहीं है सब ग्रामवासियों ने जिसको यह दोष लगाया हो कि यह दूसरे की स्त्री से कुकर्म्म करता है उसका अन्न, स्त्रियों के अन्न से अपना जीवन करनेवाले का अन्न और जिस पुरुष के छोटेभाई का विवाह

उसके विवाहसे पहिले होगया हो उसका अन्न, राय भाट और जुवां खेलनेवालों का अन्न, वामहस्त से लायाहुआ अन्न, भोजन कियाहुआ अन्न, बासी अन्न, मदिरा के समीप रक्खाहुआ अन्न, खाने से बचाहुआ अन्न, लड़के बालों को विना खिलाया अन्न यह सब अन्न भोजन के योग्य नहीं हैं पेठे की तरकारी उसी प्रकार दूध का विकार मट्ठा दही जो बहुत दिनों होजाय तो भोजन के अयोग्य है और मुख्य करके गृहस्थ ब्राह्मणों को यह सब वस्तु खानी और पीनी अयोग्य हैं गृहस्थ को देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और कुल के देवताओं का पूजन करने के पीछे भोजन करना योग्य है जैसे संन्यासी भिक्षुक होय वैसे अपने घर में निवास करे अर्थात् घर के मनुष्य देवता आदि को देकर जो बचै वह भी संन्यासियों की भिक्षा के समान है ऐसी रीति पर चलनेवाला अपनी धर्मपत्नी के साथ विहार करता धर्मात्मा है और अपनी नेकनामी के लिये दान करे और भयसे दान न करे और अपने मित्र आदि को दान न करे अर्थात् मित्रों के शिष्टाचार आदि से दान अलग है और जो नाचने गाने का अभ्यास रखते हैं और जो हास्य और कुतूहल में प्रवृत्त हैं और नशा पीते हैं और जो ग्रह भूत आदि से पीड़ित हैं और जो चोर हैं या निन्दित हैं उनको कभी दान न देना चाहिये और जो बातचीत नहीं करसक्के और कुरूप हैं और जो किसी अङ्ग से रहित दुर्जन वा निकृष्टकुल हैं और व्रतों से संस्कार नहीं कियागया है उनको दान न देवे वेदपाठी के विशेष वेदहीन ब्राह्मण को दान न दे क्योंकि जो अच्छे प्रकार से दान नहीं किया और न अच्छे प्रकारसे लियागया वह दोनों देने और लेनेवाले महाअज्ञान हैं जैसे कि कोई खदिर या पाषाण को लेकर समुद्र को तरता डूबे उसीप्रकार दान देनेवाला और लेनेवाला दोनों डूबते हैं और जैसे गीले इन्धन से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है तप और वेदपाठ और आचारों से खाली दान लेनेवाला ऐसा है जैसे त्रिकुश में जल होना और जैसे लकड़ी का हाथी और चमड़े का हिरन होता है वैसे ही विना पढ़ा ब्राह्मण है वह तीनों नामही मात्र हैं जैसे कि स्त्रियों में नपुंसक निष्फल है और जैसे विना पक्ष के पक्षी है उसीप्रकार मन्त्रहीन ब्राह्मण है और जैसे अन्नों से खाली ग्राम होय और पानी के विना कूप होय और जैसे राख में हवन वैसेही मूर्ख ब्राह्मण में दान होता है देवता और पितरों के हव्य और कव्य का नाश करनेवाला और शत्रुरूप होकर धन का हरनेवाला लोकों को नहीं पासक्ता हे युधिष्ठिर ! जैसा कि वृत्तान्त था सब हमने वर्णन किया परन्तु यह बड़ा इतिहास आपके सुनने के योग्य है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन्, महामुने, व्यासजी ! मैं आप के मुख से सम्पूर्ण राजधर्म्म और चारों वर्ण के सब धर्म्मों को सुनना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम ! जिसप्रकार आपत्तिकाल के नियत समयों में जैसी नीति से चलना योग्य है मैं धर्म्मरूप मार्ग से कैसे पृथ्वी को विजय करूं प्रायश्चित्त व्रत शपथ आदि प्रसङ्ग से भरीहुई यह कथा मेरे चित्त को बड़ा आनन्द देती है धर्म्माचार और राज्य सदैव विरुद्ध हैं इसीप्रकार मुझ चिन्ता करनेवाले का चित्त सदैव मोह को प्राप्त होता है वैशम्पायन बोले कि वेद के महाज्ञाता व्यासजी ने बड़े प्राचीन सर्वज्ञ महामुनि नारदजी को देखकर युधिष्ठिर से कहा हे राजन् ! जो तुम सम्पूर्ण धर्म्म को यथार्थ सुना चाहते हो तो कौरवों के पितामह वृद्ध भीष्मजी के पास जावो वह श्रीगङ्गाजी के पुत्र सब धर्म्मों के जाननेवाले तेरे उन सन्देहों को जोकि धर्म्म की गुप्त वार्त्ता तेरे चित्त में नियत हैं दूर करेगा तीन मार्गों में चलनेवाली दिव्य नदी श्रीगङ्गाजी ने उसको उत्पन्न किया और जिसने सब देवताओं को इन्द्रसमेत साक्षात् होकर देखा और अपनी सेवा से बृहस्पति आदि देवऋषियों को बराबर प्रसन्न करके राजनीति को पढ़ा शुक्रजी जिसशास्त्र को जानते हैं और देवगुरु बृहस्पतिजी जिस शास्त्र के ज्ञाता हैं और जो धर्म्म धर्म्मशास्त्र से संयुक्त है वह सब कौरवों में श्रेष्ठ भीष्मपितामह ने प्राप्त किया उस व्रत करनेवाले भीष्मजी ने अङ्गों सहित वेदोंको भी बड़े महात्मा ज्ञानी च्यवन ऋषि से पढ़ा जिसने पूर्व्वकाल में ब्रह्माजी के बड़े पुत्र ब्रह्मज्ञानियों की गति के जाननेवाले कुमारजी के पास शिक्षा पाई और मार्कण्डेयजी के मुखसे सम्पूर्ण संन्यासधर्म्म को जाना और उस पुरुषसिंहने परशुरामजी से और इन्द्रदेवता से अस्त्रों को पाया वह मनुष्यदेह से जितेन्द्रिय अपुत्रवान् मृत्यु का वश करनेवाला सत्पुरुष स्वर्ग में प्रसिद्ध है और जिसकी सभा में बड़े २ पवित्र ब्रह्मऋषि सभासद हुये और ज्ञानयज्ञों में जिसको कोई बात अज्ञात नहीं है वह धर्म्म का ज्ञाता सूक्ष्म धर्म्म अर्थ के तत्त्वों को तुझ से कहेगा उसके पास जा वह धर्म्मज्ञ बहुत शीघ्र प्राणों को त्यागना चाहता है इसप्रकार की बातें सुनकर धर्म्मज्ञ महाबाहु युधिष्ठिर ने सत्यवती के पुत्र वेदव्यासजी से कहा कि मैं लोकों का अपराधी और सम्पूर्ण संसार का नाशकर्त्ता और ज्ञातिवालों के उस नाश को जिससे कि रोम २ कांपउठे करवाके और ऐसे धर्म्म से युद्ध करनेवाले पुरुष को छल से मरवाके मैं किस मुखसे उनके पास जाकर अच्छेप्रकार से प्रश्न करने के योग्य हूं वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने व्यासजी से इसप्रकार वचन कहा तब यादवों में श्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्णजीने चारों वर्ण के उपकार के

लिये राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजेन्द्र ! अब तुम शोक त्यागो जो भगवान् व्यासजी ने कहा है उसको करो और इस प्रार्थना के करनेवाले ब्राह्मण और महातेजस्वी तेरे भाई सम्मुख वर्त्तमान हैं और युद्ध में मरनेसे शेष रहेहुये राजालोग और कौरव जाङ्गल देशवाले सब के सब तुम्हारे पास प्राप्त हुये सो हे समर्थ, युधिष्ठिर ! उन महात्मा ब्राह्मणों के और द्रौपदी के प्रियकारी और लोक को हितकारी बातों को बड़े तेजस्वी गुरु व्यासजी की आज्ञा से करो श्रीकृष्णजीके यह वचन सुनकर महाप्राज्ञ साहसी राजा युधिष्ठिर सबके आनन्द के निमित्त उठ खड़ाहुआ और शोक को दूर किया और जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा घिरा होता है उसीप्रकार उन सब देव, ब्राह्मण, भाई, बन्धु आदि से घिरेहुये राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे करके अपने पुर में प्रवेश किया और वहां जाकर बड़ी श्रद्धा भक्ति से देव, ब्राह्मण, अतिथि आदिको दान दक्षिणा देकर पूजन किया तदनन्तर नवीन उज्ज्वल शाल दुशालों से सुशोभित और कल्याणकारी चिह्नवाले श्वेत सोलह बैलों से जुतेहुये मन्त्रों से पूजित रथपर सवार हुये उस समय महाबली भीमसेन ने तो रथ की बागडोर पकड़ी और अर्जुन ने प्रकाशित श्वेत छत्र को धारण किया उस समय की शोभा छत्र सहित युधिष्ठिर की ऐसे थी जैसे नक्षत्रों से घिराहुआ श्वेत बादल हो तब नकुल और सहदेव ने उसके व्यजन और चमर को हाथों में लिया इसप्रकार सुन्दरता से आच्छादित पांचों भाइयों ने रथ पर बैठकर सब छोटे बड़ों को दर्शन दिया और शीघ्रगामी श्वेत अश्वों से सुशोभित रथपर सवार होकर युयुत्सु भी राजा युधिष्ठिर के रथ के पीछे २ चलदिया और श्रीकृष्णजी भी सात्यकी के साथ उज्ज्वल सुवर्णनिर्मित शैब्य सुग्रीवनाम घोड़ों से जुतेहुये रथ में सवार होकर कौरवों के पीछे चले और पाण्डवों के ताऊ धृतराष्ट्र भी गान्धारी समेत नरयान में अर्थात् पीनस आदि में चढ़कर धर्मराज के आगे चले और कौरवोंकी वह सब स्त्रियां कुन्ती द्रौपदी आदि जिनके आगे विदुरजी थे नानाप्रकार की सवारियों पर चढ़कर चलीं और बहुत से हाथी घोड़े पैदल बनठनकर पीछे से चले इस प्रकार से शोभित होकर सब इष्ट मित्र भाइयों सहित सुन्दर वचन बोलनेवाले वैतालक, सूत, मागधों से कीर्त्तिमान् होते राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर नगर को गये उस महाबाहु युधिष्ठिर की वह सवारी बड़ी भीड़भाड़ के साथ अच्छे २ छोटे बड़े शूरों समेत अद्वितीय दीखती थी राजा की सवारी को नगरवासी मनुष्यों ने आते सुनकर नगर को और राजमार्ग को बुद्धि के अनुसार अच्छेप्रकार सुशोभित किया पृथ्वी को श्वेत माला और पताकाओं से और राजमार्ग को अगर चन्दन अतर आदि से सुगन्धित किया और नगर के द्वारपर नवीन दृढ़ सुवर्ण के कलश जल से पूरित किये और जहां तहां पुरकी कन्याओं ने श्वेत फूल

सैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन्, महामुने, व्यासजी ! मैं आप के मुख से सम्पूर्ण राजधर्म और चारों वर्ण के सब धर्मों को सुनना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम ! जिसप्रकार आपत्तिकाल के नियत समयों में जैसी नीति से चलना योग्य है मैं धर्मरूप मार्ग से कैसे पृथ्वी को विजय करूं प्रायश्चित्त व्रत शपथ आदि प्रसङ्ग से भरीहुई यह कथा मेरे चित्त को बड़ा आनन्द देती है धर्माचार और राज्य सदैव विरुद्ध हैं इसीप्रकार मुझ चिन्ता करनेवाले का चित्त सदैव मोह को प्राप्त होता है वैशम्पायन बोले कि वेद के महाज्ञाता व्यासजी ने बड़े प्राचीन सर्वज्ञ महामुनि नारदजी को देखकर युधिष्ठिर से कहा हे राजन् ! जो तुम सम्पूर्ण धर्म को यथार्थ सुना चाहते हो तो कौरवों के पितामह वृद्ध भीष्मजी के पास जावो वह श्रीगङ्गाजी के पुत्र सब धर्मों के जाननेवाले तेरे उन सन्देहों को जोकि धर्म की गुप्त वार्त्ता तेरे चित्त में नियत हैं दूर करेगा तीन मार्गों में चलनेवाली दिव्य नदी श्रीगङ्गाजी ने उसको उत्पन्न किया और जिसने सब देवताओं को इन्द्रसमेत साक्षात् होकर देखा और अपनी सेवा से बृहस्पति आदि देवऋषियों को बराबर प्रसन्न करके राजनीति को पढ़ा शुक्रजी जिसशास्त्र को जानते हैं और देवगुरु बृहस्पतिजी जिस शास्त्र के ज्ञाता हैं और जो धर्म धर्मशास्त्र से संयुक्त है वह सब कौरवों में श्रेष्ठ भीष्मपितामह ने प्राप्त किया उस व्रत करनेवाले भीष्मजी ने अङ्गों सहित वेदोंको भी बड़े महात्मा ज्ञानी च्यवन ऋषि से पढ़ा जिसने पूर्वकाल में ब्रह्माजी के बड़े पुत्र ब्रह्मज्ञानियों की गति के जाननेवाले कुमारजी के पास शिक्षा पाई और मार्कण्डेयजी के मुखसे सम्पूर्ण संन्यासधर्म को जाना और उस पुरुषसिंहने परशुरामजी से और इन्द्रदेवता से अस्त्रों को पाया वह मनुष्यदेह से जितेन्द्रिय अपुत्रवान् मृत्यु का वश करनेवाला सत्पुरुष स्वर्ग में प्रसिद्ध है और जिसकी सभा में बड़े २ पवित्र ब्रह्मऋषि सभासद हुये और ज्ञानयज्ञों में जिसको कोई बात अज्ञात नहीं है वह धर्म का ज्ञाता सूक्ष्म धर्म अर्थ के तत्त्वों को तुझ से कहेगा उसके पास जा वह धर्मज्ञ बहुत शीघ्र प्राणों को त्यागना चाहता है इसप्रकार की बातें सुनकर धर्मज्ञ महाबाहु युधिष्ठिर ने सत्यवती के पुत्र वेदव्यासजी से कहा कि मैं लोकों का अपराधी और सम्पूर्ण संसार का नाशकर्त्ता और ज्ञातिवालों के उस नाश को जिससे कि रोम २ कांपउठे करवाके और ऐसे धर्म से युद्ध करनेवाले पुरुष को छल से मरवाके मैं किस मुखसे उनके पास जाकर अच्छेप्रकार से प्रश्न करने के योग्य हूं वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने व्यासजी से इसप्रकार वचन कहा तब यादवों में श्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्णजीने चारों वर्ण के उपकार के

लिये राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजेन्द्र ! अब तुम शोक त्यागो जो भगवान् व्यासजी ने कहा है उसको करो और इस प्रार्थना के करनेवाले ब्राह्मण और महातेजस्वी तेरे भाई सम्मुख वर्त्तमान हैं और युद्ध में मरनेसे शेष रहेहुये राजालोग और कौरव जाङ्गल देशवाले सब के सब तुम्हारे पास प्राप्त हुये सो हे समर्थ, युधिष्ठिर ! उन महात्मा ब्राह्मणों के और द्रौपदी के प्रियकारी और लोक को हितकारी बातों को बड़े तेजस्वी गुरु व्यासजी की आज्ञा से करो श्रीकृष्णजीके यह वचन सुनकर महाप्राज्ञ साहसी राजा युधिष्ठिर सबके आनन्द के निमित्त उठ खड़ाहुआ और शोक को दूर किया और जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा घिरा होता है उसीप्रकार उन सब देव, ब्राह्मण, भाई, बन्धु आदि से घिरेहुये राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे करके अपने पुर में प्रवेश किया और वहां जाकर बड़ी श्रद्धा भक्ति से देव, ब्राह्मण, अतिथि आदिको दान दक्षिणा देकर पूजन किया तदनन्तर नवीन उज्ज्वल शाल दुशालों से सुशोभित और कल्याणकारी चिह्नवाले श्वेत सोलह बैलों से जुतेहुये मन्त्रों से पूजित रथपर सवार हुये उस समय महाबली भीमसेन ने तो रथ की बागडोर पकड़ी और अर्जुन ने प्रकाशित श्वेत छत्र को धारण किया उस समय की शोभा छत्र सहित युधिष्ठिर की ऐसे थी जैसे नक्षत्रों से घिराहुआ श्वेत बादल हो तब नकुल और सहदेव ने उसके व्यजन और चमर को हाथों में लिया इसप्रकार सुन्दरता से आच्छादित पांचों भाइयों ने रथ पर बैठकर सब छोटे बड़ों को दर्शन दिया और शीघ्रगामी श्वेत अश्वों से सुशोभित रथपर सवार होकर युयुत्सु भी राजा युधिष्ठिर के रथ के पीछे २ चलदिया और श्रीकृष्णजी भी सात्यकी के साथ उज्ज्वल सुवर्णनिर्मित शैब्य सुग्रीवनाम घोड़ों से जुतेहुये रथ में सवार होकर कौरवों के पीछे चले और पाण्डवों के ताऊ धृतराष्ट्र भी गान्धारी समेत नरयान में अर्थात् पीनस आदि में चढ़कर धर्मराज के आगे चले और कौरवोंकी वह सब स्त्रियां कुन्ती द्रौपदी आदि जिनके आगे विदुरजी थे नानाप्रकार की सवारियों पर चढ़कर चलीं और बहुत से हाथी घोड़े पैदल बनठनकर पीछे से चले इस प्रकार से शोभित होकर सब इष्ट मित्र भाइयों सहित सुन्दर वचन बोलनेवाले वैतालक, सूत, मागधों से कीर्त्तिमान् होते राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर नगर को गये उस महाबाहु युधिष्ठिर की वहसवारी बड़ी भीड़भाड़ के साथ अच्छे २ छोटे बड़े शूरों समेत अद्वितीय दीखती थी राजा की सवारी को नगरवासी मनुष्यों ने आते सुनकर नगर को और राजमार्ग को बुद्धि के अनुसार अच्छेप्रकार सुशोभित किया पृथ्वी को श्वेत माला और पताकाओं से और राजमार्ग को अगर चन्दन अतर आदि से सुगन्धित किया और नगर के द्वारपर नवीन दृढ़ सुवर्ण के कलश जल से पूरित किये और जहां तहां पुरकी कन्याओं ने श्वेत फूल

इकट्ठे किये फिर शुभ वचनों से स्तुतिमान् और सुहृज्जनों से संयुक्त पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ने सुन्दर अलंकृत नगर के द्वार में सुशोभित होकर प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अरतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि नगर में पाण्डवों के पहुँचतेही हज़ारों पुरवासी राजा के दर्शन करने को आये तब वह राजमार्ग जो अत्यन्त विस्तृत था वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा कि चन्द्रमा के उदय में बढ़ाहुआ महासमुद्र हो और राजमार्ग में जो रत्नजटित गृह थे वह स्त्री पुरुषों के बोझ से कम्पायमान हुये और उन कुलाङ्गनाओं ने बड़ी नम्रता से पांचों भाइयों को शोभित किया और द्रौपदी से कहनेलगीं कि हे कल्याणि ! तुम धन्य हो जो पुरुषोत्तम पाण्डवों में वर्त्तमान हो जैसे कि महर्षियों के पास गौतमी वर्त्तमान हो हे भाभिनि ! तेरे कर्म्म और आचरण सफल हैं ऐसी २ बातोंसे अन्तःपुर में आनन्द कुतूहल होनेलगा और युधिष्ठिर भी उस राजमार्ग को योग्यरीति से शोभित करते हुये राजमहल के समीप पहुँचे तदनन्तर सब अधिकारीलोग जहां तहां से पुरवासियों समेत सम्मुख आकर सुन्दर वचनों को कहनेलगे कि हे शत्रुओं के मारनेवाले, राजशिरोमणे ! आपने प्रारब्ध से शत्रुओं को विजय करके फिर अपने राज्य को पाया आप हज़ारों वर्षतक हमारे राजा होकर धर्म्म से प्रजा की ऐसी रक्षा करो जैसे कि स्वर्ग की रक्षा इन्द्र करते हैं इसप्रकार मङ्गलशब्दों से पूरित चारोंओरसे ब्राह्मणोंके आशीर्वादों को लेताहुआ इन्द्रभवन के समान घरमें प्रवेश करके विजय के वचनों को सुन रथसे उतर गृह के सब देवताओं को रत्नादि द्रव्य और फलों से पूजन किया तिसपीछे मङ्गलद्रव्य लिये ब्राह्मणों के देखने को फिर स्थान से निकला तो उन आशीर्वाद देनेवाले ब्राह्मणों के मध्यमें वह राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि नक्षत्रों के मध्य में निर्मल चन्द्रमा विराजमान हो फिर युधिष्ठिर ने धौम्यगुरु और ताऊ धृतराष्ट्रको आगे करके विधिपूर्वक उन ब्राह्मणों का पूजन किया और अपने नौकरों को मोदक रत्न सुवर्ण गौ वस्त्र आदि अनेक वाञ्छित द्रव्यों से प्रसन्न किया तदनन्तर मित्रों का और श्रवणों का आनन्ददायी पुण्याहवाचनशब्द होनेलगा और आनन्ददायक विजय के द्योतक शङ्ख और भेरीशब्द हुये तब ब्राह्मणों के शान्त होने पर कपट से ब्राह्मणरूप बनाय चार्वाक राक्षस जो दुर्योधनका मित्र संन्यासीरूप से ढकाहुआ शिखाधारी त्रिदण्डी रुद्राक्षधारण किये निर्लज्ज आशीर्वाद देनेवाले हज़ारों ब्राह्मणोंमें मिला हुआ आया वह महादुष्ट महात्मा पाण्डवों के दोषों के कहने की इच्छा से उन

सब ब्राह्मणों से विना पूछे राजा से बोला कि मैं इन सबकी ओर से कहता हूं कि हे राजन्! तुम जातिवालों के मारनेवाले निन्दित होकर धिक्कार के योग्य हो हे कुन्तीपुत्र! तू जातिवालों और गुरुओं को मारकर अपने को क्या उत्तम जानता है तुझ धिक्कारवान् का मरनाही योग्य है उस दुष्ट राक्षस के यह वचन सुनकर ब्राह्मण उसके वचनों को तिरस्कार कर महाक्रोधित हुये और राजा भी उन ब्राह्मणों समेत व्याकुल होकर बोला कि आपलोग कृपा करके मुझ नम्री-भूत प्रार्थना करनेवाले के ऊपर प्रसन्न हो क्योंकि मेरे भाई बहुत काल से दुःखी हैं इससे मुझ राज्य चाहनेवाले को धिक्कार करना उचित नहीं है तदनन्तर वह सब ब्राह्मण बोले कि हे राजन्! यह हमलोगों का वचन नहीं है आप का धन निर्विघ्न हो फिर उन महात्मा वेदज्ञ ज्ञानी ब्राह्मणों ने अपनी दिव्य दृष्टि से उस को जानलिया और कहा कि यह दुर्योधन का मित्र संन्यासधारण किये चार्वाक राक्षस उसका प्रिय करना चाहता है हे राजन्! हम नहीं कहते हैं तेरा ऐश्वर्य अचल हो ऐसा राजा को कहकर क्रोधित मूर्च्छावान् महातेजस्वी ब्राह्मणों ने हुंकार करके उस पापी राक्षस को मारडाला और राजा को आशीर्वाद दे वह सब ब्राह्मण अपने २ स्थानों को चलेगये और राजा ने सुहृज्जनों समेत आनन्द को पाया॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३८॥

उन्तालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायन जी बोले कि इतनी बातों के उपरान्त देवकीनन्दन सर्वदर्शी जनार्दन श्रीकृष्णजी ने सब भाइयों सहित विराजमान राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे तात! इसलोक में ब्राह्मणलोग हमलोगों को सदैव पूजने योग्य हैं क्योंकि यह पृथ्वीपर घूमनेवाले देवता हैं इनके वचनों में विष और अमृत दोनों हैं हे राजन्! पहिले सत्ययुग में चार्वाक नाम राक्षस ने बहुत समय तक बदरिकाश्रम में तपस्या की और यहांतक हुआ कि वारंवार ब्रह्माजी से वर मांगने को लुभा-यागया तो उसने यही मांगा कि मुझे किसीप्रकार के जीवधारी से भय न हो तब ब्रह्माजी ने अमान ब्राह्मण के सिवाय किसी जीवधारी से भय न होगा यह वरदान दिया फिर बड़े पराक्रमी शीघ्रकर्म्मी वर पानेवाले पापी राक्षसने देवताओं को दुःख दिया और उसके पराक्रम से हारेहुये देवताओं ने उसके मारने की प्रार्थना ब्रह्माजी से करी तब ब्रह्माजी ने कहा कि मैंने वही युक्ति करी है जिसमें कि उसकी मृत्यु शीघ्र होगी लोक के मनुष्यों में राजा दुर्योधन से इसकी मित्रता होगी उसके स्नेह में बँधाहुआ यह राक्षस ब्राह्मणों का अपमान करेगा वहां पर अपमान से तिरस्कृत क्रोधाग्नि वचनरूप पराक्रम रखनेवाले ब्राह्मण इस

पापी को भस्म करेंगे तब इसका नाश होगा सो हे राजन् ! वह चार्वाकनाम राक्षस ब्रह्मदण्ड से मृतक सोता है तुम किसी बात का शोच मत करो और जो आप के जातिवाले क्षत्रिय मारेगये वह धर्म्म से मारेगये स्वर्ग को गये इस से हे विजयिन् ! तुम अपने कर्म्म में सावधान होकर ग्लानि त्यागकर शत्रुओं को मारो और प्रजा की रक्षापूर्वक ब्राह्मणों का पूजन करो ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे श्रीकृष्णजी के समझाने से राजा युधिष्ठिर प्रसन्नचित्त हो शोकरूपी दुःख को त्याग पूर्वाभिमुख हो सुवर्णनिर्मित आसन पर विराजमान हुये और उसी आसन के समान आसनपर महातेजस्वी प्रतापी श्रीवासुदेव और सात्यकी भी बैठे और महात्मा भीमसेन और अर्जुन राजा को मध्य में करके शुद्ध रत्नजटित आसनोंपर बैठगये और कुन्ती माता भी नकुल और सहदेव के साथ सुवर्ण से चिह्नित महादीप्यमान हाथीदांत के सिंहासन पर बैठगई और सुधर्म्मा, विदुर, धौम्य, धृतराष्ट्र यह सब पृथक् २ अग्निवर्ण आसनों पर बैठगये जिधर राजा धृतराष्ट्र बैठे थे उधर युयुत्सु, संजय और यशस्विनी गान्धारी आदि सब बैठगये ऐसी सभा में बैठेहुये धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने अगस्त आदि श्वेतपुष्प पृथ्वी सुवर्ण रजत मणि आदि से चित्र विचित्र सर्वतोभद्र से चिह्नित देवताओं के आसनों को स्पर्श किया उस के पीछे सब नौकर चाकर आदि अधिकारियों ने पुरोहितजी को साथ ले बहुत सी मङ्गल वस्तुओं समेत राजा धर्म्मराज को देखा पृथ्वी सुवर्ण और नानाप्रकार के रत्न और सब सामानों से पूर्ण अभिषेक के पात्र और मृत्तिका सुवर्ण चांदी तांबे के जलपूरित कलश, फूल, फल, अक्षत यह सब ब्राह्मणों के हाथों में लिये अग्नि, गोरस, शमी, पीपल, ढाक आदि की लकड़ी, शहद, घृत, उदुम्बर, स्तवा और इसीप्रकार सुवर्णवेष्टित शङ्ख आदि सब सामान लाये और श्रीकृष्णजी की आज्ञा पाय धौम्य पुरोहित ने ईशान दिशा में लक्षण समेत वेदी रचकर व्याघ्रचर्म्म से संयुक्त श्वेतरूप अग्निसमान देदीप्यमान सर्वतोभद्रनाम आसन पर कृष्णा द्रौपदी समेत महात्मा युधिष्ठिर को बैठाकर मन्त्र की विधि से सम्मुख स्थापित अग्नि में हवन किया फिर श्रीकृष्णजी ने उठकर पूजित शङ्ख को हाथ में लेके कुन्तीपुत्र पृथ्वी के स्वामी युधिष्ठिर को अभिषेक किया इसीप्रकार राजर्षि धृतराष्ट्र और सब अधिकारियों ने श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्यशङ्ख से अभिषेक किये हुये भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर का दर्शन किया तदनन्तर आनक दुन्दुभी नाम पणव को बजाया तब युधिष्ठिर ने भी

इन सब पूजनों को स्वीकार करके और विधिपूर्वक सबका पूजन किया फिर स्वस्तिवाचन करनेवाले वेदपाठी जो कि क्षमा शील आदि गुणों से सम्पन्न थे उनको हजार निष्क स्वर्णमयी दक्षिणा देकर प्रसन्न किया फिर उन प्रसन्न हुये ब्राह्मणों ने स्वस्तिपूर्वक जयशब्द का उच्चारण किया और हंसों के समान शब्दों से युधिष्ठिर की प्रशंसा को किया कि हे पाण्डव, युधिष्ठिर ! आपने अपने प्रारब्ध और पराक्रम से अपने धर्म्म राज्य को पाया और प्रारब्धही से अर्जुन भीमसेन नकुल सहदेव समेत आप कुशल हैं अब सब बातों से निवृत्त होकर जो आगे करने के योग्य कर्म्म हैं उनको शीघ्र करो यह सुनकर धर्म्मराज सब सुहृदों समेत प्रसन्न हुये और राज्यासन को सुशोभित किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इकतालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि अधिकारी आदि के इन वचनों को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने देश काल के सदृश यह उत्तर दिया कि निश्चय पाण्डव धन्य हैं जिनकी सच्ची या झूंठी प्रशंसा को बड़े २ महात्मा ब्राह्मणों ने किया निश्चय है कि हम आपलोगों की कृपा के योग्य हैं जो ईर्षारहित होकर आप इस प्रकार हमलोगों के गुणों की प्रशंसा करते हो मेरा पिता महाराज धृतराष्ट्र उत्तम है मेरे प्रियवादी तुमलोगों को इसकी आज्ञा और अभीष्ट बातों में प्रवृत्त होना चाहिये मैं जातिका नाश करके इसी निमित्त जीता हूं इसकी सेवा मुझ को सावधानी से सदैव करनी योग्य है जो मैं आपलोगों की और सुहृज्जनों की कृपा के योग्य हूं तो तुम पहिले के समान धृतराष्ट्र की सेवाकरने में प्रवृत्त होने को योग्य हो मेरे साथीलोगों का और जगत् का यह स्वामी है और सम्पूर्ण पृथ्वी और हमसब पाण्डव इसीके हैं आपलोगों को यह मेरा वचन चित्तमें दृढ़ रखना चाहिये यह कह सबको आज्ञा दी कि अपनी इच्छाके अनुसार जावो इसप्रकार से सब पुरवासियों को बिदा करके युधिष्ठिर ने भीमसेन अपने भाई को युवराज-पदवी पर नियत किया और सर्वगुणसम्पन्न महाबुद्धिमान् संजय को सब कामों के परिणाम आदि के जानने और आय व्यय अर्थात् आमद खर्च के विचारने में नियत किया और महाधर्म्मज्ञ बुद्धिमान् विदुरजी को मन्त्र अर्थात् सलाह के और छह गुणों के विचारांश में नियत किया और सेना की संख्या और मासिकों के विभाग करने और प्रतिदिन के हिसाब आदि देखने में नकुल को स्थापित किया और शत्रुओं की सेना के रोकने और दण्ड देने में अर्जुन को नियत किया पुरोहितों में श्रेष्ठ धौम्य को ब्राह्मण और देवताओं के कामों में और अन्यकार्यों में भी प्रवृत्त किया और अपने सम्मुख रहने को जिससे कि

सदैव राजा की रक्षा रहै सहदेव को नियत किया तात्पर्य यह है कि जिस २ को जिस २ कार्य्य में कुशल समझा उस २ को उसी अधिकार पर नियत किया फिर धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने महाबुद्धिमान् विदुर, संजय, युयुत्सु से कहा कि आपलोग सावधानी से युक्ति बल और पराक्रम के द्वारा इस मेरे पिता राजा धृतराष्ट्र का सब कार्य ठीक २ करने को योग्य हो और पुरवासी और देशवासियों के जो कार्य्य हैं उन सबको राजा से पूछकर विभागादि कार्य करो ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकचत्वारिंशतमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालिसवां अध्याय ॥

इन सब प्रबन्धों के पीछे राजा युधिष्ठिर ने उन २ जातिवालों के श्राद्धों को पृथक् २ करवाया जो कि युद्ध में मारेगये थे और पुत्रों के श्राद्धों को राजा धृतराष्ट्र ने अपने हाथ से करके सब कामना आदि गुणसंयुक्त धन और गोदान भी किये और बड़े मोल के रत्न उन महात्मा द्रोणाचार्य्य और कर्ण और धृष्टद्युम्न अभिमन्यु घटोत्कच राक्षस और सहायक विराट सुहृज्जन द्रुपद और द्रौपदी के पुत्रों के निमित्त ब्राह्मणों को दिये और हज़ारों ब्राह्मणों में प्रत्येक ब्राह्मण को पृथक् २ समझातेहुये धन, रत्न, गौ और वस्त्रों से अच्छेप्रकार तृप्त किया और जो ऐसे राजालोग मारेगये जिन्हों के कोई सुहृज्जन नहीं हैं उनके नाम से संकल्प करके क्रियाकर्म्म किया और सब सुहृज्जनों के नामसे पाण्डवोंने धर्म्मशाला बावड़ी तालाब और अनेकप्रकार धर्म्मालय बनवाये और उन सब के ऋण से उद्धार लोकनिन्दा से रहित होकर धर्म्म से प्रजापालन आदि कर्त्ता कर्म्मों से निवृत्त हुआ और पहिले केही समान धृतराष्ट्र गान्धारी विदुर आदि सब कौरवों को और मान सत्कार के योग्य प्राचीन अधिकारियों को भी अच्छे प्रकार से प्रसन्न किया और जो स्त्रियां मृतक होगई अथवा जिनके पति नहीं रहे उनके निमित्त भी बहुत प्रकार से दान पोषण आदि कर्म्म किये अर्थात् उनके निमित्त घर वस्त्र और भोजन की वस्तु इत्यादि से अच्छेप्रकार पूजन किया और दुःखी अन्धे व गरीब पुरुषोंपर कृपा करी इन बातों से राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय कर शत्रुओं से अनृण हो निश्शत्रु हो सुखपूर्व्वक विहार करनेलगा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तेंतालिसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसप्रकार से अभिषेकादि से शुद्ध हो बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ नम्र हो श्रीकृष्णजी से यह कहा कि हे यादवोत्तम, श्रीकृष्णजी !

आप की कृपा से नीति पराक्रम बुद्धि के योग से मैंने बाप दादे के इस राज्य को फिर पाया इससे हे कमललोचन ! शत्रुओं के पराजय करनेवाले आप के चरणों में वारंवार नमस्कार करता हूं आप सम्पूर्ण संसार में अकेले निवास करनेवाले हैं और उपासना करनेवालों की गति भी आपही को कहते हैं जितेन्द्रिय ब्राह्मण बहुत प्रकार के नामों से आप की स्तुति करते हैं हे विश्वकर्त्ता, विश्वात्मन् ! तुम को नमस्कार है हे सर्व्वव्यापिन्, सर्व्वविजयिन्, हरि, श्रीकृष्ण, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम ! आप को नमस्कार है और तुम्हे आप अकेले प्राचीन पुरुष ने सात प्रकार से अदिति के पुत्र होकर परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बलदेव आदि के रूप को धारण किया तुम को तीनों यज्ञों में प्रकट होनेवाला और धर्म्म ज्ञान वैराग्य का स्वामी या ऐश्वर्य लक्ष्मी यश आदि का स्वामी भी कहते हैं तुम पवित्र कीर्त्तिवाली इन्द्रियों के और यज्ञों के ईश्वर होकर ब्रह्माजी के भी गुरु कहे जाते हो और तुम्हीं पिनाकधारी त्रिनेत्र शिवजी हो तुम्हीं समर्थ और दामोदर हो और तुम्हीं अग्नि सूर्य्य वराह धर्म्म गरुड़ध्वज शत्रुसेना पराजय करनेवाले सबदेहों में प्रवेश होनेवाले बड़े पराक्रमी पुरुष हो तुम्हीं उत्तम तुम्हीं सेनापति सत्य अन्नदाता और देवताओं के सेनापति स्वामिकार्त्तिक भी तुम्हीं हो तुम्हीं अजेय और शत्रुओं के विजयकर्त्ता हो और तुम्हीं ब्राह्मण आदि के रूप अनुलोम विलोम से उत्पन्न होनेवाले जीवों के रूप श्रेष्ठ हो और तुम्हीं ऊर्ध्ववर्त्मा अग्नि हो और तुम्हीं इन्द्र के अभिमानध्वंसक शिव विष्णुरूप हो तुम्हीं सगुण निर्गुण हो और क्रमसे पूर्व्व उत्तर ईशान आदि दिशारूप हो त्रिधामा और स्वर्ग से अवतार लेनेवाले हो तुम्हीं संसार के राजकुल हो और विराट्रूप हो तुम्हीं देवेन्द्र हो तुम्हीं संसार के कारण हो तुम्हीं सतरूप देहरहित श्रीकृष्ण हो तुम्हीं अश्विनीकुमार और उनके पिता सूर्य और कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़, यज्ञसेन हो तुम्हीं शिखण्डी, नहुष, महीश्वर और तुम्हीं पुनर्वसु नाम नक्षत्र हो और तुम्हीं पिङ्गलवर्ण रुक्म यज्ञ सुबभ्रु और दुन्दुभी हो तुम्हीं कालचक्ररूप हो श्रीकृष्ण पद्म पुष्कर पुष्पधारी हो तुम्हीं समर्थ और देवतारूप समुद्र ब्रह्म पवित्र धाम और धाम के ज्ञाता हो तुम को ही हिरण्यगर्भ श्रद्धा स्वधा केशव कहते हैं तुम्हीं इस संसार के उत्पत्तिस्थान और प्रलयस्थान हो और तुम्हीं आदि में इस विश्व को उत्पन्न करते हो हे संसार के उत्पत्तिस्थानरूप ! यह संसार आप के आधीन है हे शार्ङ्गधन्वा, चक्र, हाथ में रखनेवाले ! सभा में जब युधिष्ठिर ने बड़ी प्रीतिपूर्व्वक श्रीकृष्णजी की प्रशंसा सहित स्तुति की तब यादवेन्द्र कमललोचन श्रीकृष्णजी ने उस भरतवंशी युधिष्ठिर को उत्तम २ वचनों से प्रसन्न किया ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चवालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि यह सब स्तुति श्रीकृष्णजी की करके राजा युधिष्ठिर ने अधिकारी आदि सेवकों को विदा किया और वह सब राजा की आज्ञा पाकर अपने २ स्थानों में गये तदनन्तर भयंकरपराक्रमी भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव चारों अपने भाइयों से यह कहा कि तुमलोग महाभारी युद्ध में शत्रुओं के नानाप्रकार के शस्त्रों से विदीर्ण और घायलदेह क्रोध और शोक से दुःखी हो अत्यन्त थकगये हो और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! आपलोगों ने मेरे हेतु से वन में दुःख के निवासों को ऐसा पाया जैसे कि पापी पुरुष पावें इससे सुखपूर्वक इस विजय के आनन्द को भोगो और सावधान होकर विश्राम के पीछे कल फिरतुमलोगों से मिलूंगा इसके पीछे महाबाहु भीमसेनने धृतराष्ट्रसे स्वीकार किये हुये और भाई के दियेहुये दुर्योधन के इस महल को जोकि नाना आनन्द के स्थानों से व्याप्त अनेक रत्नों से जटित दास दासियों से पूर्ण था ऐसे प्राप्त किया जैसे कि इन्द्र ने महेन्द्र पर्वत को पाया और उसीप्रकार दुश्शासन के घर को जोकि बड़े २ महलों की पंक्ति से घिराहुआ सुवर्ण की वन्दनवारों से शोभित दास दासियों से व्याप्त बहुत धन धान्य से पूर्ण था उसको अर्जुन ने राजा की आज्ञा से पाया और वन में महापीड़ा पानेवाले नकुल को युधिष्ठिर ने दुर्मर्षण का वह महल दिया जोकि दुश्शासन के महल से उत्तम वीरभवन के रूपमणि और सुवर्ण से खचित था और दुर्मुख का श्रेष्ठ महल जोकि सुवर्ण से अलंकृत शोभायमान था और सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों से देदीप्यमान था वह महल सहदेव को दिया और सहदेव उसे पाकर ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे कि कैलास को पाकर कुबेर प्रसन्न हुआ और युयुत्सु, विदुर, संजय, सुधर्म्मा, धौम्य यह सब अपने २ महलों को गये और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी सात्यकी के साथ अर्जुन के महल में जाकर ऐसे विराजमान हुये जैसे कि पर्वत की गुफा में व्याघ्र बैठे फिर अपने २ स्थानों में अच्छे २ पदार्थ भोजन कर सुखपूर्वक निद्रा लेकर आनन्द के सहित राजा युधिष्ठिर के पास सब मिलकर प्राप्त हुये ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवां अध्याय ॥

जनमेजय बोले कि हे वैशम्पायनजी ! धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने राज्य को पाकर जो २ कर्म्म किये वह सब आप मुझ से वर्णन कीजिये हे जितेन्द्रिय, महर्षे ! तीनों लोकों के नाथ महायशस्वी पराक्रमी श्रीकृष्णजी ने जो २ कर्म्म किये वह भी कहनेके योग्य हो वैशम्पायन बोले हे राजन्, जनमेजय! मेरे कहेहुये सत्य २

वचनों को सुनो कि जो पाण्डवों ने वासुदेवजी को अग्रगामी करके जो २ कर्म्म किये वह एकाग्र हो सुनो कि युधिष्ठिर ने राज्य पाकर चारों वर्णों को यथायोग्य अपने २ स्थानों पर नियत किया प्रथम तो पाण्डवोंने स्नातक ब्राह्मणों को एक २ सहस्र निष्क दान दिया दास और पोषण के योग्य, रक्षित और अभ्यागतों को भी सब कामनाओं से पूर्ण किया और इच्छा करनेवाले दुखियों को भी आनन्द देकर उसने धौम्य पुरोहित को हजारों गौ और सुवर्ण-रचित स्थान रत्न आदि धन और अनेकप्रकार के वस्त्रादिक दिये और कृपाचार्य्यजी के निमित्त गुरुवृत्ति के समान सेवा की अर्थात् गुरु के समान पूजन किया और विदुरजी की भी पूजा करी और सब रक्षितलोगों को नानाप्रकार सुस्वादु भोजन और वस्त्र धन आदि से संतुष्ट किया और प्राप्त धन से राजा ने धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु की भी पूजा करी इन सब बातों को करके उस राज्य को धृतराष्ट्र विदुर और गान्धारी के स्वाधीन करके सुखपूर्वक रहनेलगा इसप्रकार सबनगर को प्रसन्न करके राजा हाथ जोड़ेहुये वासुदेवजी के पास गये वहां श्रीकृष्णजी को श्याम सजल मेघ के समान वर्ण शोभायमान मणि और सुवर्ण से भूषित पलंगपर बैठाहुआ देखा उस समय दिव्य अग्नि के समान प्रज्वलित पीताम्बर धारण किये दिव्य भूषणों से अलंकृत सुवर्णमणियुक्त कौस्तुभमणि को छाती में धारण किये ऐसे शोभायमान थे जैसे सूर्य्योदय में उदयाचल की शोभा होती है ऐसे अलौकिक शोभायमान श्रीकृष्णजी को देखकर बड़ी नम्रता और मृदु हास्यपूर्वक मीठे २ वचनों से राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाबुद्धिमन्, प्रतापीपुरुष ! आप की रात्रि क्या सुखपूर्वक व्यतीत हुई हे अविनाशिन् ! जैसे आप के सब विचार शुद्ध हैं इसीप्रकार दैवी बुद्धि भी आप में है हे भगवन् ! त्रिलोकीनाथ हमने राज्य आपकी कृपासे पाया और पृथ्वी हमारे आधीन हुई और हमारी उत्तम विजय जिसको हमने प्राप्त की वह नाशवान् नहीं है श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के इस वचन को सुनकर कुछ उत्तर नहीं दिया और ध्यानही में बैठेरहे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

छियालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे महापराक्रमिन् ! बड़ा आश्चर्य्य है कि तुम भी ध्यान करते हो हे त्रिलोकी के उत्पन्न करनेवाले ! क्या इस त्रिलोकी में कुशल है क्योंकि आप सरीखे पुरुष देवों के देव होके तीनों अवस्थाओं से हटकर जो चौथी अवस्था में प्राप्त हुये इस से मेरे चित्त को आश्चर्य्य हुआ प्राणायामादिकों

का करनेवाला और देह में फिरनेवाला आप का प्राण निश्चल हुआ और शुद्ध ज्ञान आप के चित्त में नियत हुये हे गोविन्द! आप की वाणी और मन ने बुद्धि में प्रवेश किया और सब गुण आप सरीखे क्षेत्रज्ञ में प्राप्त हुये आप के रोमाञ्च भी नहीं हिलते तुम्हारी बुद्धि और मन स्थिर है इससे हे माधव! तुम काष्ठ वा पाषाण के समान निश्चल हौ जैसे वायु से रहित स्थान में दीपक निश्चल और प्रकाशित रहता है उसीप्रकार आप भी निश्चेष्ट निश्चल वर्त्तमान हौ जो आप इसको गुप्त नहीं रखना चाहते हैं और मुझे समझने का अधिकारी समझते हैं तो ऐसी दशा में मुझ सन्देही के सन्देह को निवृत्त करो हे पुरुषोत्तम! आपही कर्त्ता अकर्त्ता माया के प्रवर्त्तक अविनाशी आदि अन्त रहित सबके आदि होकर तुम इसकारण मुझ नीचे शिरवाले से कहने के योग्य हौ तदनन्तर इन्द्रियों को यथास्थानों में नियत करके मन्द मुसक्यान से श्रीकृष्ण जी युधिष्ठिर से बोले कि शरशय्या पर वर्त्तमान अग्नि के समान शान्त होनेवाला पुरुषोत्तम भीष्म मुझ को ध्यान करता है इस से मेरा चित्त उसमें गया वज्र के समान जिसकी प्रत्यञ्चा के शब्द को देवराज इन्द्र भी सुनने को असमर्थ होता है उसको मैं प्राप्त हुआ हूं जिसने बड़े पराक्रम से सम्पूर्ण राजाओं की विजय करके वह तीनों कन्या विवाहीं और जो तेईस दिनतक परशुरामजी से युद्ध करताहुआ रोमाञ्च से भी खण्डित न हुआ वह सब इन्द्रियों को इकट्ठा करके और चित्त को ज्ञान के द्वारा आधीन करके मेरी शरण में प्राप्त हुआ और श्रीगङ्गाजी ने जिसको गर्भ में धारण किया और वशिष्ठजी का शिष्य होकर बड़ा तेजस्वी बुद्धिमान् दिव्यअस्त्रों का और अङ्गों के साथ चारों वेदों का जाननेवाला है और हे पाण्डव! जमदग्निजी के पुत्र परशुरामजी के शिष्य सब विद्याओं के मूलस्थान उस भीष्म को मैं चित्त से प्राप्त हुआ हूं सो हे युधिष्ठिर! वह तीनों कालका जाननेवाला धर्म्मज्ञों में उत्तम है उस पुरुषोत्तम के स्वर्गवासी होजाने में पृथ्वी ऐसी होजायगी जैसे चन्द्रमा के विना रात्रि होती है सो हे युधिष्ठिर! तुम गङ्गाजी के पुत्र महापराक्रमी तेजस्वी सत्यवक्ता भीष्मजी के पास बैठकर उन सब प्रश्नों को करो जो तेरे चित्त में वर्त्तमान हैं और अर्थ धर्म्म काम मोक्ष और चारों विद्या चारों आश्रमों के धर्म्म और सब राजधर्म्मों को उससे पूछो कौरवों के धुरन्धर उस भीष्मपितामह के अस्त होने पर सब धर्म्म भी अस्तंगत होजायँगे इससे मैं तुम को सलाह करता हूं अश्रुपात डालनेवाले युधिष्ठिर ने वासुदेवजी के उन उत्तम वचनों को सुनकर उत्तर दिया कि हे मथुरावासिन्! वह ऐसे ही हैं मैं निस्सन्देह जानता हूं क्योंकि मैंने बड़े २ महात्मा ब्राह्मणों के मुख से भीष्मजी का प्रभाव और माहात्म्य अच्छेप्रकार से सुना है हे यादवेन्द्र! जैसा आप कहते हैं वह ठीकही है हे माधव! जो आप की मेरे

ऊपर कृपा है ऐसी दशा में हम आप को मुख्य करके भीष्मजी के पास जावेंगे और सूर्य भगवान् के लौटनेपर वह परमधाम को जायँगे इससे हे महाबाहो ! वह कौरवोत्तम भीष्म आप के दर्शन पाने के योग्य हैं तुमहीं ब्रह्मरूप देवताओं के देवता सगुणनिर्गुणरूपमय होकर भीष्मजी को दर्शन दो यह वचन युधिष्ठिर के सुनकर श्रीमधुसूदन ने सात्यकी से कहा कि मेरा रथ जोड़ो सात्यकी ने शीघ्रही दारुक सारथी को हुक्म दिया कि बहुत जल्द श्रीकृष्णजी का रथ जोतकर लावो उसने आज्ञा पातेही कृष्ण के स्वर्णमयी रथ को जोतकर तैयार किया और हाथ जोड़कर श्रीकृष्णजी से निवेदन किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय ॥

जनमेजय ने कहा कि हे वैशम्पायनजी ! शरशय्यापर सोनेवाले भरतवंशियों के पितामह भीष्मजी ने किसप्रकार से कौन से योग को धारण करके देह का त्याग किया वैशम्पायन बोले कि हे महाराज ! आप सावधान हो पवित्रचित्त और नियम को दृढ़ करके महात्मा भीष्मजी के देहत्याग के वर्णन को सुनो उत्तरायण सूर्य्य होनेपर भीष्मजी ने समाधि में स्थित होकर जीवात्माको परमात्मा में लगाया और सैकड़ों बाणों से छिदेहुये सूर्य्य के समान तेजस्वी भीष्मजी बड़े २ महात्मा ब्राह्मणों से घिरेहुये महाशोभावान् हुये उनके चारों ओर वेदव्यास, नारद, देवस्थान, वात्स्यायन, अस्मक, सुमन्त, जैमिनि, पैल, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, असित, वशिष्ठ, कौशिक, हारीत, लोमश, अत्रि, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, बाल्मीकि, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, मुनि, पिप्पल, पुलह, संवर्त्त, कच, कश्यप, पुलस्ति, चक्रत, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, गौतम, गालव, विभाण्डव, माण्डव, धौम्य, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्कर, पूरण, कृष्णसूत इत्यादि महात्मा अपने २ अधिकारयुक्त सुन्दर आसनोंपर विराजमान थे ऐसी दशा में वर्त्तमान शरशय्यापर शोभित भीष्मपितामह ने श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को स्मरण किया तदनन्तर बड़े महात्मा धर्म्मज्ञ भीष्मजी ने उस योगेश्वर कमलनाभ सर्वव्यापी जगत के स्वामी श्रीवासुदेव श्रीकृष्णजी की स्तुति करी और कहा कि मैं श्रीकृष्णजी के आराधन करने की इच्छा करके जिस वचन को कहना चाहता हूं उस वचन से वह आदिपुरुष मेरे ऊपर प्रसन्न हो अब आशिष कहते हैं कि मैं सर्वात्मा से आत्माको त्यागकरके उनदोषों से रहित पवित्रमार्गी सबसे उत्तम जो तत्त्वमसि महावाक्य है उसके तत्पदका अर्थरूप हिरण्यगर्भ प्रजाके स्वामी ईश्वर को प्राप्त होता हूं देवता और ऋषियों ने भी उस अनादि

परब्रह्म को न जाना यह धाता नारायण भगवान् हरि अकेला आप को जानता है सिद्ध ऋषि मुनियों के समूह और देवता, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, दैत्य, दानव आदि जिसको नहीं जानते हैं कि यह ईश्वर कौन है और कहां से कब आया है जिस जीवों के ईश्वर में तीनों गुण से उत्पन्न होनेवाले संसारी जीव ऐसे ठहरते और प्रवेश करते हैं जैसे कि सूत्र में मणियों के समूह नियत होते हैं ऐसे परमात्मा हरि को सहस्रशिर और सहस्रचरण सहस्रभुजा मुकुटमुखवाला नारायण विश्वपरायण सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थूल से स्थूल गुरु से गुरु श्रेष्ठ से श्रेष्ठ-तम कहा और जिसको वेद और उपनिषद् आदि साममन्त्रों में ध्यान करते हैं और वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों नामों से और अन्य गुप्त उत्तम नामों से ब्रह्म जीव मन अहंकार रखनेवाली बुद्धिसे प्रकट होनेवाले जिन भक्तों के स्वामी को पूजते हैं वह तप जो उसकी प्रीति के निमित्त कियागया और जिसके द्वारा वह हर समय चित्तमें नियत होता है और सबका आत्मा और पैदा करनेवाला और जाननेवाला सर्वरूप है मैं उसको प्राप्त होता हूं और जिसको श्रीदेवकीजीने वेद ब्राह्मण और यज्ञों की रक्षाके निमित्त वसुदेवजी के द्वारा उत्पन्न किया जैसे कि अरणी काष्ठ अग्नि को उत्पन्न करता है जो द्वैतभाव को त्यागकर अनिच्छायुक्त पुरुष मोक्षके लिये उपाधि और पापों से जुदा सबके ईश्वर गोविन्द जी को सूक्ष्मबुद्धि से हृदयके आकाश में देखता है और जो प्राण इन्द्रियों को उल्लङ्घन कर कर्म करनेवाला सूर्यादि से भी अधिक प्रकाशवान् मन, बुद्धि, चित्तसे परे है उस संसार के स्वामी को प्राप्त होता हूं और पुराणों में पुरुष और यज्ञादिकों में जिसको ब्रह्म कहा और संसारके नाश में सङ्कर्षण कहा उस उपासना के योग्य की उपासना करते हैं द्वैत से भिन्न क्रियावान् भक्त पुरुष जिस एक और अनेक रूप से प्रकट होनेवाले की पूजा करते हैं उसी को जगत् का आश्रयरूप भण्डार कहा जिस में कि सब संसार वर्त्तमान है और जिसमें सब जीव ऐसे चेष्टा करते हैं जैसे कि जल में पक्षी क्रीड़ा करें जिस के आदि अन्तको देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प आदि कोई नहीं जान सक्ता है और सब जितेन्द्रिय लोग उस अविनाशी और महादुःख की औषध को पूजते हैं और जो आदि अन्त रहित सनातन आत्मयोनि अदृष्ट जाना नहीं जाता हरि नारायण प्रभु और जिस को सब स्थावर जङ्गम जीवों का स्वामी अविनाशी परमपदरूप कहते हैं और जिस दैत्यों के नाश करनेवाले सुवर्णवर्ण एक गर्भ को अदिति ने बारह प्रकार से उत्पन्न किया उस सूर्य्यरूप आत्मा को नमस्कार है और जो शुक्लपक्ष में देवताओं को और कृष्णपक्ष में पितरों को अमृत से तृप्त करता है वह ब्राह्मणों का राजा है और अमावस के चन्द्रमारूप को नमस्कार है जो बड़े अन्धकार के अन्त में जिस महातेजस्वी पुरुष को जानके मृत्यु को

उल्लङ्घन करता है उस उपासनायोग्य आत्मा को नमस्कार और जिस ब्रह्म को बड़ी२ ऋचाओं से अग्निस्थापनादि बड़े २ यज्ञों में ब्राह्मणों के समूह गाते हैं उस वेद आत्मा को नमस्कार और ऋग्, यजु, साम यह तीनों वेद जिसके धाम हैं और पञ्चहव्य जिसका रूप है और जिस को साततार गायत्री आदि विस्तार करते हैं उस यज्ञात्मा को नमस्कार और जो २ नाना मन्त्रों से होमा जाता है उस होमात्मा को नमस्कार उस यज्ञरूप सरूप आत्मा को नमस्कार जिसको वचनरूप अङ्ग और सन्धिरूप अंगुष्ठ आदि रखनेवाला सुररञ्जनरूप भूषणों से भूषित दिव्य और अक्षर कहा उस वागात्मा के अर्थ नमस्कार और जिस यज्ञोंके अङ्गरूप ने वराह होकर तीनों लोकों का हित करने के हेतु पृथ्वी को ऊपर उठाया उस यज्ञरूप वीरात्मा को नमस्कार जो पुरुष वेद में कहीहुई मोक्ष की देनेवाली युक्तियों से और धर्म्म, अर्थ, व्यवहार और उसके अङ्गों से सत्पुरुषों के पुल अर्थात् योगधर्म्म को तैयार करता है उस सत्यात्मा के अर्थ नमस्कार पृथक् २ धर्म्म करनेवाले और पृथक् कर्म्मफल के चाहनेवाले पुरुष जुदे २ धर्म्मों से जिसको अच्छी तरह पूजते हैं उस धर्म्मात्मा को नमस्कार जिस कामदेव के अङ्गों से सब देहधारी उत्पन्न होते हैं वह शरीर के उन्मादरूप कामात्मा को नमस्कार महर्षिलोग देह में वर्तमान अर्थात् देहरूपी क्षेत्र में विराजमान दृष्टि में न आनेवाले क्षेत्रज्ञ को निश्चय करके खोजते हैं उस क्षेत्रज्ञ आत्मा के अर्थ नमस्कार है सांख्यशास्त्रवालों ने जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थावान् सोलह गुणसम्पन्न चैतन्य को सत्रहवां कहा उस सांख्य आत्मा को नमस्कार आत्मा को परम आत्मा में मिलानेवाले और निन्दा से रहित श्वासा जीतनेवाले बुद्धि में वर्त्तमान अच्छे जितेन्द्रिय पुरुष जिसको ज्योतिरूप देखते हैं उस योगात्मा के अर्थ नमस्कार है पाप पुण्य के दूर होनेपर संसार से निर्भय शान्तरूप संन्यासी जिसको प्राप्त करते हैं उस मोक्ष आत्मा को नमस्कार हजार युग के अन्त में जो देदीप्यमान अग्नि सम्पूर्ण संसार को अच्छेप्रकार से भक्षण करती है उस घोरात्मारूप के अर्थ नमस्कार जो महापुरुष सब जीवों को अपने आत्मा में लय करके जगत् को एकरस कर बालकरूप होता है उस मायात्मा को नमस्कार और जिस अजन्मा कमललोचन की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ और जिस कमल में यह सब विश्व स्थिर है उस परमात्मा को नमस्कार हजार शिर रखनेवाले अनन्तपुरुष के अर्थ नमस्कार जिसके शिर के बालों में बादल और सब देह के जोड़ों में नदियां और कोख में चारों समुद्र हैं उस जल आत्मा को नमस्कार जिससे महाप्रलय की सब विपरीत सूरत पैदा होती हैं और जिसमें लय होते हैं उस हेत्वात्मा को नमस्कार जो रात्रि में अर्थात् सुषुप्ति में साक्षी होजाय और जाग्रत् में निष्फल निष्काम होता है और जिस

और अप्रिय का कर्त्ता नहीं है उस दृष्टात्मा को नमस्कार है जो विना रोक सब कर्म्मों में और धर्म्मकार्य्यों में तैयार वैकुण्ठ का रूप है उस कार्य्यात्मा के अर्थ नमस्कार जिस क्रोधाग्नि ने धर्म्म त्याग पशुवत् क्षत्रियों को इक्कीस बार युद्ध में मारा उस कर्म्मात्मा के अर्थ नमस्कार है जो अपने को पञ्चप्राणरूप होकर देह में वर्त्तमान वायुरूप होकर जीवों को चेष्टावान् करता है उस वायु आत्मा के अर्थ नमस्कार जो योगमाया के बल से सत्ययुग आदि युगों में अवतार लेता है और मास ऋतु दक्षिणायन उत्तरायण वर्ष इन सब के हिसाब से उत्पत्ति और प्रलय का कर्त्ता है उस कालात्मा के अर्थ नमस्कार जिसका मुख ब्राह्मण और दोनों भुजा क्षत्रिय और सब जङ्घा और पेट वैश्य हैं और शूद्र जिसके चरणों में रक्षावान् हैं उस वर्ण आत्मा को नमस्कार जिसका मुख अग्नि, मस्तक स्वर्ग, नाभि आकाश, चरण पृथ्वी, नेत्र सूर्य्य, कान दिशा हैं उस लोकात्मा को नमस्कार जो काल से और युग से परे परजन्य हिरण्यगर्भ है उससे परे जो मायोपहित अर्थात् माया से ढका जो ईश्वर है उससे भी परे है अर्थात् शुद्ध ब्रह्म है जिस की आदि नहीं और वह विश्व का आदि है उस विश्वात्मा को नमस्कार विषयों में कर्म्म करनेवालों को अनादर करके वैशेषिक गुणों अर्थात् राग द्वेष से जिसको विषयों का रक्षक कहा उस गुप्तार आत्मा को नमस्कार खाने पीने की वस्तुओं को इन्धन और रस के द्वारा वृद्धि पानेवाला प्राणरूप अग्नि होकर जीवों को धारण करता है उस प्राणात्मा को नमस्कार जो अग्नि देह के भीतर के प्राणों की रक्षा के निमित्त अन्न को चार प्रकार से भोजन कराती है और परिपक्व करती है उस पावकरूप आत्मा को नमस्कार जो पिङ्गलवर्ण दृष्टि स्थूलकण्ठ बड़ी दाढ़ नखरूप आयुधधारी रूप दानवेन्द्र का नाशक है उस दृप्त आत्मा को नमस्कार अर्थात् नृसिंहजी को नमस्कार है जिसको देवता गन्धर्व दैत्य और दानव मुख्यता से नहीं जानते उस सूक्ष्मात्मा को नमस्कार जो समर्थ भगवान् शेषजी रसातल में स्थित होकर सम्पूर्ण संसार को धारण करते हैं उस वीर्य्यात्मा को नमस्कार जो संसार की रक्षा के लिये मोहपाशों से जीवों को मोहता है उस मोहात्मा को नमस्कार इस उत्तम ज्ञान को पञ्च विषयों में लगा जानकर जिस पुरुष को ज्ञान से प्राप्त करते हैं उस ज्ञानात्मा को नमस्कार जिसका स्वरूप ध्यानचक्र से बाहर और सब ओर से ज्ञान-रूप नेत्र रखनेवाला है और जिसमें अत्यन्त विषय पैदा होता है उस दिव्य आत्मा को नमस्कार सदैव जटा दण्ड धारण किये पेट और देह लम्बा रखने-वाला और कमण्डलुरूप धनुर्द्धारी है उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है जो शूलधारी देवताओं का ईश्वर त्रिनेत्र रखनेवाला महात्मा भस्म से लिप्त देह से अर्द्धाङ्ग है उस रुद्रात्मा को नमस्कार जो अर्द्धचन्द्र को शिरपै और सर्पों का

यज्ञोपवीत किये पिनाक धनुष और शूल हाथ में लिये है ऐसे उग्रात्मा को नमस्कार जो सब प्राणियों का आत्मारूप आदि भूति अर्थात् अहंकार का नाश करनेवाला और काम, क्रोध, मोह से रहित है उस शान्तात्मा को नमस्कार जिससे सब स्थित हैं और जिससे सबकी उत्पत्ति है और सर्वरूप है और सर्व ओर है उस सर्वात्मा को नमस्कार हे विश्वकर्म्मन्! विश्व की आत्मा विश्व के उत्पन्नकर्त्ता आप पञ्चभूत से पृथक् मोक्षरूप हो ऐसे तीनों लोक में वर्त्तमान को नमस्कार है तीनों लोकों से परे सब दिशाओं में व्याप्त होकर सब के आश्रयस्थान हो हे लोकोत्पादक, अविनाशिन्, विष्णु! तुम को नमस्कार, हे इन्द्रियों के स्वामिन्, दुर्धर्ष! तुमहीं उत्पत्ति करनेवाले और नाशकर्त्ता हो तीनों मार्ग में आप के दिव्यभाव को नहीं देखता किन्तु आप के सनातनरूप को देखता हूं आप के शिर में स्वर्ग चरणों में देवी पृथ्वी और पराक्रम में तीनों लोक व्याप्त हैं इससे आपही सनातन पुरुष हो आप की भुजा दिशा, नेत्र सूर्य्य और वीर्य्य प्रजापति हैं और तेजस्वी वायु के सात मार्ग आप ही से रुकेहुये हैं जो पुरुष अतसीपुष्प के सदृश पीताम्बरधारी अविनाशी श्रीगोविन्दजी को नमस्कार करते हैं वह निर्भय होते हैं श्रीकृष्णजी को एकबार भी प्रणाम करना दश अश्वमेध के अमृत स्नान के तुल्य है दश अश्वमेध करनेवाला तो जन्म पाता है परंतु श्रीकृष्ण को नमस्कार करनेवाला फिर जन्म को नहीं पाता जो अहर्निशि श्रीकृष्ण का स्मरण करतेहुये कृष्णही का व्रत करते हैं वह ऐसे श्रीकृष्णही में प्रवेश होते हैं जैसे कि मन्त्र से होमाहुआ घृत अग्नि में लय होता है हे नरकासुर से भय उत्पन्न होनेवालों की रक्षा करनेवाले, संसारसागर के पार उतारनेवाले, वेद ब्राह्मणों की रक्षा करनेवाले, गो ब्राह्मणों के और जगत् के हितकारी, श्रीकृष्ण, गोविन्द! तुम को नमस्कार हरि यह दोनों अक्षर प्राणों के मार्ग में पाथेय हैं और संसाररूप रोग की औषध दुःख शोक के नाशक जैसे सब जगत् कृष्णमय हैं और सत्य विष्णुरूप है उसीप्रकार जगत् विष्णुरूप है जैसे सब विष्णुरूप है उसीप्रकार मेरे पाप भी नाश होयँ हे देवोत्तम, कमललोचन! आप के शरणागत और इच्छासदृश गति चाहनेवाले भक्त के लिये जो कल्याण है उसको ध्यान करो विद्या तप आदि के आलय अजन्मा सर्वव्यापी दुष्टों की त्रास का वञ्चनरूप यज्ञों से पूजित स्तुति के योग्य मुझपर प्रसन्न हो नारायणही परब्रह्म नारायणही बड़े देवता आदिपुरुष हैं जब भीष्मजी ने इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजी को स्तुति करके नमस्कार करी तब माधवजी ने योग से भीष्मजी की भक्ति को जानकर त्रिलोकीदर्शन दिव्यज्ञान देकर अपनी देह में फिर आगये फिर भीष्मजी के उस शब्द के बन्द होनेपर प्रीति से भरे गद्गदकण्ठ हो उन ब्रह्मवादियों ने उस बड़े ज्ञानी महात्मा

भीष्मजी को वचनों से पूजन किया और श्रीकृष्णजी की ऐसी स्तुति करने से भीष्मजी की बड़ी प्रशंसा की और श्रीपुरुषोत्तमजी भी योगबल से भीष्मजी की दृढ़भक्ति को जानकर अकस्मात् आनन्दयुक्त उठकर रथपर सवार हुये और सात्यकी को साथ लेकर चलने को उपस्थित हुये और महात्मा युधिष्ठिर अर्जुन समेत दूसरे रथपर सवार हुये भीमसेन और नकुल सहदेव तीनो एक रथपर सवार हुये परमतपस्वी कृपाचार्य्य, सूत, संजय, युयुत्सु भी रथोंपर सवार हुये वह सब पुरुषोत्तम रथों के बड़े शब्दों से पृथ्वी को कम्पायमान करते नगर के स्वरूप रथोंपर बैठे चलखड़े हुये तदनन्तर उस प्रसन्नचित्त मार्ग में पुरुषोत्तम की प्रशंसा में प्रवृत्त ब्राह्मणों के कहेहुये वचनों को सुनकर उस केशीदैत्य के मारनेवाले आनन्दकन्द श्रीकृष्णजी ने शिर झुकाये हाथ जोड़ेहुये दूसरे मनुष्यों को प्रसन्न किया ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मसप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि वहां से वह सब युधिष्ठिर आदि पांचो भाई और श्रीकृष्णजी समेत सब लोग रथोंपर सवार उस कुरुक्षेत्र को गये जहां कि उन क्षत्रियों ने युद्धमें शरीरों को त्याग किया था वहां रथों से उतर पर्वताकार हाथी और घोड़ों के हाड़ और देहों के समूहों से और शङ्खों के समान मनुष्यों के कपालों से व्याप्त हजारों चिताओं से चितेहुये अस्त्रों के खण्डों से पूर्ण उस कुरुक्षेत्र को देखतेहुये वह महारथी बड़ी शीघ्रता से चले और चलतेही में श्रीकृष्णजीने परशुरामजी के महापराक्रम को युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! यह पांच परशुराम जी के ह्रद दिखाई देते हैं परशुरामजी ने इन ह्रदों में क्षत्रियों के रुधिरसे उन अपने पितरों को तृप्त किया परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्र करके यहां युद्ध से निवृत्त हुये युधिष्ठिर बोले कि पहिले समय में परशुरामजी ने जो पृथ्वी को इकीस बार निःक्षत्र किया इस आप के कथन में मुझे बड़ा सन्देह है कि जब परशुरामजी ने क्षत्रियों को निर्वंश किया फिर क्षत्रियों के वंश की उत्पत्ति कैसे हुई सो आप कृपा करके समझाइये कि कैसे तो परशुराम ने पृथ्वी को निःक्षत्र किया और कैसे इसकी वृद्धि हुई हे महावक्ता! जब कि करोड़ों क्षत्रियोंका नाश हुआ और फिर उसीप्रकार पृथ्वी क्षत्रियों से पूर्ण होगई और महात्मा परशुराम ने किसकारण से कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों का नाश किया इस मेरे सन्देह को आप निवृत्त कीजिये और हे इन्द्रावर! यह वेद आप के वचनों से है आप से अधिक नहीं है वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा सन्देह किया तब

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी ने ब्योरेवार सब वृत्तान्त क्षत्रियों के नाश और उत्पन्न होने का कहा ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उनचासवां अध्याय ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे युधिष्ठिर ! उन परशुरामजी का प्रभाव और पराक्रम और जन्म जैसा कि मैंने महर्षियों से सुना है वह सब तुम मुझ से सुनो और जैसे परशुरामजी के हाथ से सब क्षत्रिय मारेगये और पैदा होकर इस महाभारत के युद्ध में संहार कियेगये उनमें जह्नु का पुत्र अज और अज का पुत्र बलाकाश्व उसका पुत्र धर्म्म का जाननेवाला कुशिक नाम पृथ्वीपर इन्द्र के समान महातपी हुआ और उसने चाहा कि मैं तीनों लोकों से अजेय पुत्र को उत्पन्न करूं उस उग्र तपस्यावान् को पुत्र के उत्पन्न करने में समर्थ जानकर उस के घर में आप इन्द्र ने आकर अवतार लिया और लोकेश्वरों के ईश्वर इन्द्र उसकी पुत्रता में प्राप्त हुये अर्थात् कुशिक का पुत्र गाधि नाम हुआ और उसकी कन्या सत्यवती हुई कुशिक ने उस कन्या का भृगुजी के पुत्र ऋचीकके साथ विवाह करदिया ऋचीकमुनि ने उस कन्या की पवित्रता से प्रसन्न होकर उसके पुत्र के निमित्त और उसीप्रकार गाधीके पुत्र के लिये दो स्थानों में चरु को बनाया अर्थात् दो स्थानोंपर तस्मै बनवाई और उस अपनी स्त्री सत्यवती को बुलाकर कहा कि यह चरु तुम खावो और दूसरा अपनी माता गाधीको खानेको दो उसका पुत्र क्षत्रियों में उत्तम होकर उत्तम २ क्षत्रियों का मारनेवाला लोक में अन्यक्षत्रियों से अजेय उत्पन्न होगा और हे कल्याणि ! यह तुम्हारा चरु तुम्हारे भी पुत्र को उत्पन्न करेगा जो धैर्य्यवान् इन्द्रियों का जीतनेवाला तपस्वी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा ऐसा अपनी भार्य्या को समझाकर वह तपस्वी महात्मा ऋचीक ऋषि वन को चलेगये और उसी समय तीर्थयात्रा में तत्पर वह राजा गाधि भी अपनी स्त्री समेत ऋचीक ऋषि के आश्रम में आया तो सत्यवती ने उनदोनों चरुओं को लाकर अपनी माता को भर्त्ता की आज्ञानुसार बड़ी प्रसन्नता से दिया और भर्त्ता की आज्ञाको माता से कहदिया सो हे युधिष्ठिर ! उसकी माता ने अपना चरु तो कन्या को दिया और सत्यवती ने अज्ञानता से उसके चरु को खालिया तब सत्यवती ने प्रसन्नानन होकर क्षत्रियों के नाश करनेवाले उग्ररूप दर्शन को गर्भ में धारण किया तब ब्राह्मणों में उत्तम ऋचीक उसके गर्भ में वर्त्तमान ब्राह्मण को जानकर अपनी देवीरूप भार्य्या से बोले हे कल्याणि ! चरुके विपरीत होने से तू माता से ठगीगई तेरा पुत्र महाक्रोधी और कठिन कर्म करनेवाला होगा और तेरा भाई ब्रह्मरूप और तप में प्रीति रखनेवाला उत्पन्न होगा।

मैंने तेरे चरु में विराट्रूप पुरुष का बड़ा ब्रह्मतेज नियत किया था और तेरी माता के चरु में सम्पूर्ण क्षत्रियों का तेज नियत किया था सो हे कल्याणि ! तेरे इस विपरीत चरु होने से ऐसा न होगा तेरी माता का पुत्र ब्राह्मण होगा और तेरा पुत्र क्षत्रियों का कर्म्म करनेवाला होगा जब पति ने ऐसा कहा तो सत्यवती गिरपड़ी और कांपतीहुई अपने पति से यह वचन बोली कि हे भगवन् ! अब आप मुझ से ऐसे वचन न कहिये कि ब्राह्मणों में नीच पुत्र को उत्पन्न करेगी ऋचीक बोले कि हे कल्याणि ! मैंने तुझ में ऐसे पुत्र की इच्छा नहीं की परन्तु चरु के विपरीत होने से निर्दय कर्म्म करनेवाला पुत्र होगा सत्यवती बोली कि हे समर्थ, मुने ! तुम इच्छा करके लोकों को भी पैदा करसक्ते हो फिर पुत्र का पैदा करना कितनी बात है तुम मुझ को विजयी ज्ञानवान् भीतर से सच्चा शूर बुद्धिमान् पुत्र देने को योग्य हो ऋचीक बोले कि हे कल्याणि ! मैंने कभी स्वप्न में भी मिथ्या नहीं कहा फिर मन्त्रों सहित चरुसाधनमें अग्निके समक्ष कैसे कहूंगा हे कल्याणि ! मैंने पहिले समय में तप के द्वारा इस बात को देखा था और जाना था कि तेरे पिता का सब कुल ब्राह्मण होवे सत्यवती बोली कि हे समर्थ ! चाहो मेरा और आप का निबेड़ा किसीप्रकार से होवे परन्तु मैं बुद्धिमान् विजयी धर्म्मात्मा पुत्र को प्राप्त करूं ऋचीक बोले कि हे प्यारी ! पुत्र और पौत्र में मेरी सामर्थ्य नहीं है परन्तु हे कल्याणि ! जैसा तुम चाहती हो वैसाही होगा इतनी कथा सुनाय वासुदेवजी बोले कि इसके पीछे सत्यवती ने पुत्र को उत्पन्न किया वह तप में प्रीति रखनेवाले सावधानव्रत शान्तरूप भार्गव जमदग्नि नाम से प्रसिद्ध हुये और कुशिकनन्दन गाधि ने ब्रह्मरूप विश्व के सम्पूर्ण ब्रह्मगुणों से संयुक्त विश्वामित्र नाम पुत्र को उत्पन्न किया और ऋचीक ने तप का भण्डार जमदग्निजी को उत्पन्न किया फिर उन जमदग्निजी ने भी ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया जो बड़े भय के हेतु और धनुर्वेद आदि सब विद्याओं के पारंगत होनेवाले उत्तम प्रकाशमान अग्नि के समान तेजस्वी क्षत्रियों के नाश करनेवाले परशुराम नाम थे इन परशुरामजी ने गन्धमादन पर्वतपर श्रीमहादेवजी को प्रसन्न करके उनसे अस्त्रोंको और बड़े तेजस्वी फरसे को पाया उस अकुण्ठधार महातेजस्वी अग्निसमान प्रकाशित अनन्य फरसे के द्वारा परशुरामजी लोकों में अद्वितीय प्रसिद्ध हुये उसी समय प्रकृतिवीर्यके पुत्र पराक्रमी तेजस्वी अर्जुन नाम क्षत्रिय दत्तात्रेयी ऋषि की कृपा से सहस्रभुजा पानेवाले चक्रवर्त्ती महातेजस्वी राजा ने अश्वमेध यज्ञ में पहाड़ और सातों द्वीपों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को वेदपाठी ब्राह्मणों को दान किया हे युधिष्ठिर ! वह सहस्रभुजा रखनेवाला पराक्रमी अर्जुन पिपासित अग्निदेवता से भिक्षा के निमित्त प्रार्थित कियागया तब उस राजा ने अग्नि को भिक्षा दी उसके बाणों की नोकों से प्रकट होनेवाले

पराक्रमी अग्नि देवता ने भस्म करने की इच्छा से गांव, पुर, देश, घोषों को पहाड़ वनस्पति समेत उस सहस्राबाहु की सहायता से भस्म करदिया वायु से बढ़ीहुई उस अग्नि ने सहस्राबाहु के साथ होकर महात्मा वशिष्ठजी के केवल आश्रम को भस्म किया तदनन्तर आश्रम भस्म होने के कारण वशिष्ठजी ने महाक्रोध से सहस्रार्जुन को शाप दिया कि जैसे तैंने मेरे इस वन को त्याग नहीं किया और जलादिया इसकारण परशुरामजी युद्ध में तेरी भुजाओं को काटेंगे उस समय इस शापको उस महातेजस्वी पराक्रमी सदैव विजयी सहस्राबाहु ने सन्देह न किया इसी शाप के कारण इसके पराक्रमी पुत्र अपने पिताके मारने में कारणरूप और अहंकारी और निर्दय हुये और जमदग्निजी की गौ के बछड़ों को उस हयदेश के बुद्धिमान् राजा सहस्राबाहु के विना जनाये अपने देश में लेआये इसकारण महात्मा परशुरामजी से युद्ध हुआ तदनन्तर क्रोध में भरकर परशुरामजी ने सहस्राबाहु की उन भुजाओं को काटकर घूमते हुये अपने बछड़ों को आश्रम में लेआये तब सहस्राबाहु के उन अज्ञानी पुत्रोंने एकता करके गुप्त आश्रम में जाकर भालों से महात्मा जमदग्निजी के शिर को काटडाला उस समय परशुरामजी लकड़ी और कुशाओं के लेने को वन को चलेगये थे तदनन्तर आश्रम में पिता को मृतक देख महाक्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो शस्त्र धारण करके यह प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को निःक्षत्र करूंगा यह कह कर सहस्राबाहु को पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब सहित मारकर हयदेशी हज़ारों उस के भाई बन्धुओं के रुधिर से पृथ्वी पर कीच करदी और क्षत्रियों को विध्वंस करके उसी समय क्रिया में युक्त हो वन को चलेगये फिर कितनेही हज़ार वर्ष पीछे स्वाभाविक क्रोध रखनेवाले प्रभु परशुरामजी की महानिन्दा हुई अर्थात् विश्वामित्रके पोते ऋभु के पुत्र महातपस्वी परावसु ने उन से सभा में निन्दा करके यह कहा कि हे परशुराम ! ययाति के गिरने पै स्वर्गनाम यज्ञ में जो प्रतर्दन नाम भृगुवंशी आदि सन्त पुरुष आये वह क्या क्षत्रिय नहीं हैं हे परशुरामजी ! तुम मिथ्या प्रतिज्ञा करनेवाले हो सभामें अपनी प्रशंसा करते हो और वीर क्षत्रियों के भय से तुम पर्वतों में आश्रयीभूत हो अब यह पृथ्वी सबओर से क्षत्रियों से व्याप्त हुई यह परावसु के वचन को सुनकर भार्गवजी ने फिर शस्त्र को हाथ में लिया इसके पीछे जो सैकड़ों क्षत्रिय परशुरामजी ने छोड़दिये वह वृद्धि पाकर पृथ्वी के स्वामी हुये हे राजन् ! फिर परशुरामजी ने उन बालकों को भी मारा तब फिर भी गर्भों में वर्त्तमान बालकों के उत्पन्न होने से पृथ्वी व्याप्त हुई फिर उसने उनको भी मारा तब क्षत्रियों की स्त्रियों ने कितनेही पुत्रों की रक्षा की इसीप्रकार इक्कीस वार परशुरामजी ने पृथ्वी को निःक्षत्र कर अन्त को अश्वमेध यज्ञ में कश्यपजी को यज्ञदक्षिणा में दान करदी तब कश्यपजी ने क्षत्रियों के

शेष रहने के निमित्त यज्ञ का स्रुवा रखनेवाले हाथ से बुलाकर परशुरामजी से यह वचन कहा कि हे मुने! तुम दक्षिणसमुद्र के किनारे जावो और यहां मेरे देश में तुम को कभी न रहना चाहिये तदनन्तर उस समुद्र ने अकस्मात् उन परशुरामजी के शूरपारक नाम देश को उत्पन्न किया जोकि पृथ्वी से जुदा गिनाजाता है और कश्यपजी इस पृथ्वी को ले ब्राह्मणों को स्वाधीन करके महावन में चलेगये फिर वैश्य और शूद्र स्वेच्छाचारी होकर ब्राह्मणों की स्त्रियों से कुकर्म करनेलगे इस जीवलोक के वे राजा होने से निर्वल मनुष्य सवलों से अधिकतर पीड़ावान् होनेलगे और ब्राह्मणों में किसी की प्रतिष्ठा नहीं रही इसके पीछे पृथ्वी समय के विपर्य्यय से नष्टबुद्धियों के हाथ से पीड़ित हुई और वे मर्य्यादा होने से रसातल को चलीगई जोकि धर्म्म की रक्षा करनेवाले क्षत्रियों से बुद्धि के अनुसार रक्षा नहीं कीगई इसकारण भयभीत होकर भागजानेवाली उस पृथ्वी को देखकर बड़े साहसी कश्यपजी ने उसको जङ्घा से धारण किया इसीकारण उसका नाम उर्व्वी हुआ और उस देवी पृथ्वी ने कश्यपजी को प्रसन्न करके अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करी कि कोई राजा हमारी रक्षा करे और कहा कि हे ब्रह्मन्! हैहयकुल की स्त्रियों में मुझ से रक्षित क्षत्रियलोग उत्तम हैं वही मेरी रक्षा करें उनमें वेदपाठी पौरववंशी विदूरथ का पुत्र वर्त्तमान है वह ऋक्षवत् पर्वत में वहां के ऋक्षों से रक्षित कियागया है उसीप्रकार यज्ञ करने-वाले बड़े दयावान् तेजस्वी पराशरजी ने राजा सुदास के पुत्रकी रक्षा करी है वह क्षत्रिय भी शूद्रभृत्य के समान उन के सब कामों को करता है इसकारण शूद्रकर्म नाम प्रसिद्ध हुआ वह मेरी रक्षा करे शिवि का महातेजस्वी गोपति नाम पुत्र वन में गौवों के दूध से पोषण कियागया है वह मेरी रक्षा करे और प्रतर्दन का पुत्र बड़ा पराक्रमी वत्सनाम गोशाला में बछड़ों के सङ्ग में रक्षा कियागया वह राजा मेरी रक्षा करे दधिवाहन का पौत्र दिविरथका पुत्र गङ्गाजी के किनारेपर गौतम ऋषि से रक्षित होकर महातेजस्वी महाभाग बृहद्रथ नाम गि-रिधरको टिनाम पर्वत में गोलाङ्गूल नाम वानरों से रक्षित कियागया है मरुत के वंश में जो क्षत्रियों के लड़के रक्षा कियेगये वह इन्द्र के समान पराक्रमी समुद्र से पोषण कियेगये हैं वह क्षत्रियों के पुत्र जहां तहां मैमार सुनार आदि की जाति में रक्षा कियेगये हैं वह मेरी रक्षा करतेही अचल होंगे उनके बाप दादे मेरेही निमित्त युद्ध में परशुरामजी के हाथसे मारेगये इसकारण उनसे अऋण होने के लिये मुझे उनका पूजन करना चाहिये मैं धर्म्महीन पुरुष से अपनी रक्षा कभी नहीं चाहती धर्म्मात्मा राजा के कारण ठहर सक्ती हूं इससे शीघ्र वि-चार कीजिये तब कश्यपजी ने पृथ्वीके बतायेहुये उन पराक्रमी क्षत्रिय राजाओं को बुलाकर अभिषेक कराया उनके पुत्र पोते होकर वंश नियत हुये इसप्रकार

का यह प्राचीन इतिहास है यह सब इतिहास कहतेहुये महातेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र जी रथ में चढ़ेहुये बड़ी शीघ्रता से गये॥ ६०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४६॥

पचासवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्ण से यह इतिहास सुनकर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाराज! परशुरामजी का पराक्रम इन्द्र के समान हैं जिसने कि क्रोध से पृथ्वी को निःक्षत्र किया और उनके भय से क्षत्रियों के बालक व्याकुल होकर गौ समुद्र गोलांगु रीछ वानरों से रक्षा कियेगये इससे आश्चर्य है और यह नरलोक भी धन्य है और पृथ्वीपर सब मनुष्य प्रारब्धी हैं जहां पर ब्राह्मणों ने ऐसा धर्म्मरूप कर्म्म किया अर्थात् क्षत्रियों को पापों से मोक्ष करके स्वर्गवासी किया हे राजन्! श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर यह संवाद कहतेहुये वहां पहुँचे जहां शरशय्या पर पड़ेहुये श्रीगङ्गाजी के पुत्र भीष्मजी वर्त्तमान थे वहां जाके सूर्य्य के समान तेज से भरेहुये महाप्रतापी भीष्मजी का दर्शन किया वह भीष्मजी बड़े धर्म्मिष्ठ देश में मोघवतीनदीके तटपर देवताओं से सेवित इन्द के समान मुनि ऋषियों से घिरेहुये थे उनको दूर से देखकर श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर आदि पांचो भाई और कृपाचार्य्य आदि सब साथियों समेत सवारियों से उतर चञ्चल मन को स्थिर करके उन महामुनियों में जाकर विराजमान हुये फिर गोविन्दजी सात्यकी और सब पाण्डव आदि व्यासजी को दण्डवत् करके भीष्मजीके आगे जाकर खड़ेहुये और उनको उस दशा में देख प्रणामादिक करके और उनके चारों ओर परिधि समान हो बैठगये तदनन्तर श्रीकेशवजी ने चित्त को ग्लान करके भीष्मजी से कहा कि हे महावक्ता! आप के सर्वज्ञान पूर्व्वके समान शुद्ध हैं और आप की बुद्धि व्याकुल तो नहीं है और वाणों की चोटों के दुःख से आप की देह पीड़ित तो नहीं है चित्त के दुःख से देह का दुःख महाप्रबल है हे समर्थ! आप सदैव धर्म्म करनेवाले शान्तनु पिता के वरदान से इच्छापूर्वक मृत्यु चाहनेवाले हो यह पिता का आनन्द मुझ को भी प्राप्त नहीं है यह अत्यन्त सूक्ष्म भाले भी देह में पीड़ा करते हैं सो हे महात्मन्! आपसरीखे इतने वाणों से भिदेहुये को क्यों न पीड़ा होगी जीवों की यह मुख्यता और नाश आपके सामने कहने के योग्य नहीं है अर्थात् आप सर्वज्ञ हो और ऐसे प्रतापी हो कि देवताओं के भी उपदेश करने को समर्थ हो हे भीष्मजी! जो भूत भविष्य वर्त्तमान है वह सब तुम्हारी वृद्धबुद्धि में वर्त्तमान है और जीवों का नाश और धर्म्म के फल का प्रकाश आप का जानाहुआ है तुमही धर्म्मरूप नदी हो आप नीरोगदेह राज्य

में वर्त्तमान हज़ारों स्त्रियों से व्याप्त होकर भी मुझ को ऊर्ध्वरेता दीखते हो हे महाराज ! तीनों लोक में सच्चे धर्म्मवाले महापराक्रमी शूर अकेले धर्म्म में प्रवृत्त उस मृत्यु को रोकेहुये तपके द्वारा शरशय्यापर सोनेवाले सिवाय भीष्मजी के किसी नामी पुरुष को संसार में नहीं सुनते हैं सत्य तप दान और यज्ञ के अधिकरण धनुर्वेद और वेदों की विज्ञता और सदैव संसार की रक्षा करनेवाला आप के सिवाय किसी को नहीं देखता हूं और आप के समान किसी महारथी को दयावान् पवित्र जितेन्द्रिय और सबों का उपकारी किसी को नहीं सुनते हैं तुमहीं एक रथ के द्वारा देवता, यक्ष, गन्धर्व, दैत्य, राक्षसों के विजय करने को समर्थ हो हे महाभुज, भीष्म ! तुम ब्राह्मणों के और वसुओं के अंश से मिलेहुये नवम वसु हो परन्तु गुणों में उनके नवम नहीं हो हे पुरुषोत्तम ! जो तुम हो उसे मैं अच्छेप्रकार से जानता हूं तुम पराक्रम के द्वारा देवताओं में भी प्रसिद्ध हो हे श्रेष्ठ ! मैंने आप के समान संसार में कोई गुणी न देखा है न सुना है इससे हे भीष्म ! तुम सब गुणों में देवताओं से भी अधिक हो आप अपने तप के बल से सब स्थावर जङ्गम जीवों के उत्पन्न करने को भी समर्थ हो ऐसे होकर अपने शुद्ध प्रकाशवान् लोकों को क्यों नहीं प्राप्त करोगे हे भीष्म ! आप इस जातिवालों के नाश से दुःखी राजा युधिष्ठिर के शोक को दूर करने को योग्य हो हे भरतवंशिन् ! चारों वर्ण के धर्म्म जो चारों आश्रमों के धर्म्मों से मिलेहुये हैं वह सब आप के जानेहुये हैं चारों विद्या और चातुर्होत्र में जो धर्म्म कहे और सांख्ययोग में जो सनातनधर्म्म वर्त्तमान है और चारों वर्णों का जो धर्म्म एक दूसरे से विरुद्ध नहीं है वह सेवन कियाहुआ धर्म्म क्रमपूर्वक आप का जानाहुआ है और प्रतिलोम से उत्पन्नों के धर्म्मों को भी आप जानते हैं और देश जाति कुल के धर्म्म और लक्षणों को भी जानते हो वेदों में कहाहुआ और श्रेष्ठलोगों का उपदेश कियाहुआ धर्म्म अच्छेप्रकार से आप का जाना हुआ है और इतिहास पुराणों का भी अभिप्राय अच्छेप्रकार से आप का जाना हुआ है और आप के चित्त में सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्र वर्त्तमान हैं हे पुरुषोत्तम ! इस लोक में जो कोई अर्थ संशय में पड़ेहुये हैं उन शोकों का दूर करनेवाला आप के समान कोई नहीं है हे नरेन्द्र ! वह पाण्डवों के चित्त का शोक अपनी बुद्धि से आप निवृत्त करिये आप सरीखे महान् बुद्धिमान् पुरुष मोहित जीव की शान्ति के अर्थ होते हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इक्यावनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी श्रीकृष्णजी के इन वचनों को सुनकर कुछ

मुख को उठाकर हाथ जोड़कर बोले हे भगवन्, श्रीकृष्णजी ! तुम को नमस्कार और हे जीवों के उत्पत्तिनाशक ! आपही इन्द्रियों के स्वामी और संसार के ईश्वर नाशकर्त्ता अजेय हौ और हे विश्वात्मन् ! विश्वकर्म्मा विश्व के उत्पत्तिस्थान आप को नमस्कार पञ्चतत्त्वों से परे मोक्षरूप तीनों लोकों में वर्त्तमान और तीनों से परे आप को नमस्कार हे योगेश्वर ! तुमहीं सबके मुख्य आश्रय हौ सो हे माधव ! आपने मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जैसे वचन कहे उसीसे आप के दिव्य भावों को देखता हूं जो कि तीनों मार्गों में वर्त्तमान हैं और हे गोविन्दजी ! मैं आप के सनातनरूप को देखता हूं महातेजस्वी वायु के सातों मार्ग्ग तुमहीं से रुकेहुये हैं आप के शिर से स्वर्ग्ग और चरणों से देवी पृथ्वी व्याप्त है दिशा भुजा और सूर्य्य नेत्र हैं और पराक्रम से वीर्य्य नियत है अतसीपुष्प के समान पीत पीताम्बरधारी अजेय और विद्युत्वाले बादल के समान आप के रूपको विचारता हूं हे देवताओं में उत्तम, कमललोचन ! तुम अपनी प्यारी गति प्राप्त करने के इच्छावान् होके अपने शरणागत भक्त के लिये जो कल्याण है उसको ध्यान करो वासुदेवजी बोले हे पुरुषोत्तम, राजन्, भीष्म ! निश्चय करके जिस हेतु से तुझमें मेरी परम भक्ति है उसीकारण मैंने अपना दिव्यरूप तुम को दिखाया और हे भीष्म ! जो पुरुष कि भक्त नहीं है और भक्त होकर भी सत्यवक्ता और शान्त नहीं है उसको मैं अपने रूप का दर्शन नहीं देता आप मेरे भक्त सदैव सत्य आचरणों में वर्त्तमान शान्तचित्त तप दान में प्रीतिमान् पवित्र हौ इससे हे राजन्, भीष्म ! अपने तप के प्रताप से मेरे दर्शन के योग्य हौ वह सब लोक आप के सामने वर्त्तमान हैं जिनमें जाकर फिर नहीं लौटता है हे कौरवेन्द्र ! तेरे जीने के तीस दिवस बाकी हैं वह सौ दिन के समान हैं तब तुम इस देह को त्यागकर अच्छे कर्म्मों के उदय से प्रकाशित होगे अग्नि के समान तेजस्वी अग्निवर्ण गुप्तरूप वसुदेवता विमानों पर सवार होकर तुम्हारी और उत्तरायण होनेवाले सूर्य्य की बाट देखरहे हैं हे पुरुषोत्तम ! उत्तरायण भगवान् सूर्य्य के होने में और जगत् काल के आधीन होने पर उन लोकों को जावोगे जहां जाकर वह ज्ञानी फिर लौटकर नहीं आता है हे वीर, भीष्मजी ! आप को परलोक जाने पर सब ज्ञाननष्टता को प्राप्त होंगे इसकारण हम सब धर्म्म के निश्चय करने के निमित्त आप के पास आये हैं इससे आप इस सत्यप्रतिज्ञ और जातिवालों के शोक से ज्ञाननष्ट युधिष्ठिर के निमित्त धर्म्म अर्थ समाधिसंयुक्त सीधे और सत्य २ वचनों को कहो और इस के संताप को दूर करो ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

बावनवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्णजी के उस वचन को सुनकर जो धर्म्म अर्थ से संयुक्त सबका हितकारी था भीष्मजी हाथ जोड़कर यह बोले हे लोकनाथ, शिवनारायण, महाबाहो, अविनाशिन्, श्रीकृष्णजी! मैं आप के वचनों को सुन कर बड़ाही प्रसन्न हूं हे स्वामिन्! मैं आप के सम्मुख क्या वचन कहूंगा जब सब संसार के वचन आप के दिव्य वचनों में अन्तर्गत हैं हे देव! इसलोक में जो कुछ करने के योग्य है और जो कियाजाता है वह दोनों लोकों के उपकारी कर्म्म तुझ बुद्धिमान् से उत्पन्न हुये हैं जैसे पुरुष देवराज के सम्मुख देवलोक का वर्णन करे वैसेही आप के सम्मुख धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वृत्तान्त कहना है हे मधुसूदनजी! मेरा चित्त बाणों की पीड़ा से पीड़ित है और अङ्गों में क्लेश हैं और बुद्धि में शुद्धि नहीं होती और कोई बात कहने की मुझ में सामर्थ्यवती बुद्धि नहीं है हे गोविन्दजी! जोकि मैं बाणों से विष अग्नि के समान पीड़ावान् हूं पराक्रम मुझ को छोड़ता है और प्राण भी शीघ्रता कररहे हैं मर्म्मस्थान में बड़ी पीड़ा है इससे मैं भ्रान्ति में डूबाहुआ हूं निर्बलता से मेरा वचन रुकता है सो मैं किसप्रकार से कहने को समर्थ हूं सो हे दाशार्ह! आप मुझ से प्रसन्न हैं इसीसे सब अच्छा है हे महाबाहो, अजेय! मुझ को क्षमा कीजिये मैं आप के सामने क्या कहसक्ता हूं आप के सामने बृहस्पतिजी की भी बोलने की सामर्थ्य नहीं मैं इस समय दिशा आकाश और पृथ्वी को नहीं पहिंचानता हूं हे मधुसूदनजी! मैं केवल आपकी सामर्थ्यसे वर्त्तमान हूं इससे आप शीघ्रही कहिये जो धर्म्मराज को अभीष्ट है तुम सब शास्त्रों के भी शास्त्र हो तुम्हारे साक्षात्कार में मुझसा कौन पुरुष किसप्रकार शास्त्र को वर्णन करे जैसे कि गुरु के वर्त्तमान होने पर कोई शिष्य शास्त्र कहै फिर वासुदेवजी बोले कि हे कौरवों के धुरन्धर, महाबली, बुद्धिमन्, सब अर्थों के दर्शी, शान्तस्वभाव, भीष्मजी! यह वचन आपही में वर्त्तमान और योग्य है हे गाङ्गेयजी! जो आपने बाणों की पीड़ा के विषय में मुझ से कहा सो हे समर्थ, भीष्मजी! यहां मेरी प्रसन्नता से प्राप्त होनेवाले वरदान को लो कि तुमको ग्लानि, मूर्च्छा, दाह, पीड़ा आदि कोई व्यथा न होगी और क्षुधा पिपासा भी न होगी और हे निष्पाप! तुम्हारे सब ज्ञान प्रकाशित होंगे और कहीं भी आप की बुद्धि नहीं रुकेगी और सदैव आप का चित्त सतोगुण में वर्त्तमान रजोगुण तमोगुण से पृथक् रहेगा जैसे कि चन्द्रमा बादलों से जुदा हो तुम धर्म्म से संयुक्त या अर्थ से संयुक्त जिस २ बात को विचारोगे उसमें आप की बुद्धि श्रेष्ठ रहेगी और तुम दिव्यदृष्टि को पाकर इस चार प्रकार के जीवों के समूहों को देखोगे फिर ज्ञानरूप अक्ष को पाकर तुम

इस घूमनेवाले प्रजा के जाल को मुख्यता से देखोगे जैसे कि जल की वस्तु को मछली देखलेती है वैशम्पायन बोले कि इन बातों के पीछे व्यास समेत उन सब महर्षियों ने ऋग्, यजु, सामवेदों की ऋचाओं के साथ वचनों से श्री कृष्णजी का पूजन किया फिर वहां आकाश से सब ऋतुओं के पुष्पों की दिव्य वर्षा हुई जहां कि श्रीकृष्णजी उन पाण्डव और भीष्मजी के साथ विराजमान थे और सब प्रकार के बाजे बजे और अप्सरा नाचीं और गन्धर्वों ने गाया और शीतल मन्द सुगन्ध लिये पवित्र कल्याणरूप वायु चली और दिशाओं के शान्त होने से शान्तरूप पशु पक्षी भी क्रीड़ा करनेलगे तदनन्तर एक मुहूर्त में ही सूर्य्य भगवान् पश्चिम में ऐसे दिखाई दिये जैसे कि वन को भस्म करती हुई अग्नि होती है फिर सब महर्षियों ने उठकर श्रीकृष्णजी और भीष्मजी से कहा कि अब हमलोग जाते हैं फिर कल आवेंगे उनके पीछे पाण्डव के साथ केशवजी और सात्यकी संजय और कृपाचार्य्यजी ने प्रणाम किया फिर वह सब ऋषि कल मिलेंगे ऐसा वचन कहकर चलेगये उसीप्रकार केशवजी और पाण्डव भीष्मजी को पूछकर परिक्रमा करके शुभ रथोंपर सवार हुये फिर वह सुवर्णमय रथ और पर्व्वताकार मतङ्ग हाथी और गरुड़ के समान शीघ्रगामी घोड़ों और धनुष आदि रखनेवाले पदातियों के साथ रथों की वह सेना आगे पीछे से अत्यन्त चपलता करनेवाली ऐसी चली जैसे महानदी नर्मदा आगे पीछे से रक्षावन्त पहाड़ को प्राप्त करके चले तदनन्तर चन्द्रमाजी उस सेना को प्रसन्न करते और उन ओषधियों को जिनके रसों को सूर्य्य देवता ने शुष्क किया उनको फिर अपनी किरणों से और गुणों से संयुक्त करते पूर्व्वदिशा से ऊपर को उठे फिर वह यादव और पाण्डव देवराज की पुरी के समान तेजोमय पुर में प्रवेश करके अपने महलों में ऐसे घुसे जैसे कि थके हुये सिंह गुफा में प्रवेश करते हैं॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२ ॥

तिरपनवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि वहां जाकर मधुसूदनजी शयनस्थान में जाकर सोगये और प्रातःकाल की अमृतवेला में जगे उस समय ध्यानमार्ग में प्रवृत्त होकर सब ज्ञानियों को देखकर फिर सनातन ब्रह्म का ध्यान किया तिसके पीछे स्तुति और पुराणों के जाननेवाले रक्तकण्ठ और सुशिक्षित पुरुषों ने उस प्रजा के स्वामी और सब जीवों में निवास करनेवाले संसार के भर्त्ता श्रीकृष्णजी की स्तुति की उस के पीछे पाठवाले पढ़ने और गान-वाले गाने और हजारों शङ्ख मृदङ्गों के शब्द होनेलगे और उस महल के

वीणा पणव वेणु के शब्द अतिमनोरम और हास्यरस से संयुक्त चारों ओर फैलेहुये सुनेगये उसके पीछे राजा युधिष्ठिर के गीत और वाजों के शब्द जोकि मङ्गलरूप मधुर वचनवाले थे होनेलगे फिर उठकर स्नान कर हाथ जोड़ निरहंकार हो महाबाहु श्रीकृष्णजी मन्त्र जपकर अग्नियों को प्रकाशित करके वर्त्तमान हुये फिर माधवजी ने चारों वेदों के जाननेवाले ब्राह्मणों से एक सहस्र गौवों के द्वारा स्वस्तिवाचन कराया फिर श्रीकृष्णजी गौवों को स्पर्श करके निर्मल आदर्श में अपना मुख देखकर सात्यकी से बोले कि हे सात्यकी ! तुम जाकर देखो कि युधिष्ठिर भी भीष्मजी के देखने को तैयार हुये यह सुनतेही सात्यकी ने शीघ्रही युधिष्ठिर से जाकर कहा कि हे राजन् ! वासुदेवजी का रथ तैयार हुआ वह भीष्मजी के पास जायँगे और आप की वाट देखते हैं यहां जो काम शीघ्र करने के योग्य है उसको करिये यह सुनकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने हुक्म दिया कि हे अर्जुन ! मेरा भी उत्तम रथ तैयार हो और सेना को छोड़ हमही लोग केवल वहां जायँगे धर्म्मात्मा भीष्मजी को हम पीड़ा नहीं देसक्ते हे अर्जुन ! इसकारण आगे चलनेवाले मनुष्यों को भी लौटा दो अब वहां भीष्मजी वड़े गुप्तधर्म्मों को कहेंगे इससे साधारण मनुष्यों को लेजाना मैं नहीं चाहता हूं तदनन्तर राजा की आज्ञा को जानकर अर्जुन ने रथ तैयार करने को आज्ञा दी फिर राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन और अर्जुन समेत सब मनुष्यों को ले श्रीकृष्णजी के महल में गये तब श्रीकृष्णजी सात्यकी को साथ ले पाण्डवों समेत रथोंपर चढ़ २ तैयार हुये और परस्पर में दण्डप्रणाम करके उन शीघ्रगामी रथों में बैठे हुये चलदिये दारुक ने श्रीकृष्ण के उस रथ को जिस में कि बलाहक, मेघपुष्प शैव्य, सुग्रीव नाम घोड़े जुते थे तेज किया और बड़ी शीघ्रता से चलदिये और धर्मस्थल कुरुक्षेत्र में जाकर ठहरे और वहां से रथों से उतर २ कर भीष्मजी के पास गये वहां सब पाण्डव आदि ने उन महर्षियों को जो भीष्मजी के पास बैठे थे दण्डप्रणाम किया फिर भीष्मजी का दर्शन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चौवनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वह सब पाण्डव और श्रीकृष्णजी महातेजस्वी भीष्मजी के ओर पास विराजमान हुये इस कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि पाण्डव आदि करके चारों ओर से घिरेहुये महापराक्रमी सत्यव्रत जितेन्द्रिय भीष्मजी से युधिष्ठिर ने कौन २ कथा पूंछी उसको आप मुझसे कृपा करके वर्णन कीजिये वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! कौरवों के धुरन्धर

भीष्मजी के शरशय्या पर वर्त्तमान होनेपर नारद आदि ऋषि और सिद्धलोग आये और मरने से शेष बचेहुये राजा जिनके अग्रवर्त्ती युधिष्ठिर थे उन्हों ने और धृतराष्ट्र, श्रीकृष्णजी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि बहुत से महात्माओं ने उन भरतवंशियों के पितामह गङ्गाजी के पुत्र श्रीभीष्मजी के पास जाकर उनका शोच किया फिर थोड़े समय तक ध्यानावस्थित होकर देवदर्शन नारदजी पाण्डव आदि सब राजाओं से बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! मैं समय के अनुसार कहता हूं कि यह गाङ्गेय भीष्मजी अब सूर्य के तुल्य अस्त हुआ चाहते हैं इससे तुम सब प्रश्न करो यह महात्मा चारों वर्णों के नाना प्रकार के धर्म्मों को जानते हैं यह वृद्ध देह को त्यागकर उत्तम लोक को पावेंगे तुम अपने चित्त के सन्देहों को इनसे पूछो नारदजी के ऐसे वचन सुनकर राजालोग भीष्मजी के पास गये और प्रश्न करने को समर्थ न होकर परस्पर में प्रश्न करने को उपस्थित हुये तदनन्तर युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी से बोले कि आप के सिवाय दूसरा मनुष्य पितामहजी से प्रश्न करने को समर्थ नहीं है इससे हे यादवेन्द्र, श्रीकृष्णजी! आपही पहिले वार्त्तालाप भीष्मजी से करिये और हे महात्मन्! हम सब में आपही धर्म्म जाननेवालों में श्रेष्ठ हो यह पाण्डव युधिष्ठिर के वचन सुन कर श्रीकृष्णजी ने भीष्मजी के पास जाकर यह वचन कहा कि हे राजाओं में श्रेष्ठ! क्या आपकी रात्रि सुख से व्यतीत हुई और शुद्ध लक्षणवाली बुद्धि क्या आप में वर्त्तमान है और हे जितेन्द्रिय! क्या सम्पूर्ण ज्ञान आप में प्रकाशित हैं और हृदय में कोई ग्लानि तो नहीं है आप का चित्त सावधान है यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हे कृष्ण! आप की कृपा से मेरा चित्त सबप्रकार से आनन्द में है अर्थात् अङ्गों की वेदना भूल परिश्रम और थकावट ग्लानि आदि सब दैहिक व्यथा दूर होगई और भूत भविष्यत् वर्त्तमान सब बातों को देखता हूं हे अविनाशिन्! वेद में कहेहुये जो धर्म्म हैं और जो वेदान्त से प्राप्त होनेवाले शम दम संन्यास आदि धर्म्म हैं उन सबको देखताहुआ यथार्थ जानता हूं और श्रेष्ठ पुरुषों के कहेहुये धर्म्म भी मेरे चित्त में वर्त्तमान हैं सो हे जनार्दन! मैं देश काल जातिकुल आदि के धर्म्मों का जाननेवाला हूं और चारों आश्रमों के धर्म्मों के अर्थ को भी जानता हूं वह सब मेरे हृदय में वर्त्तमान हैं और सब राजधर्म्मों को भी जानता हूं और जहां जो कहने के योग्य है उसको भी कहूंगा और हे जनार्दनजी! आप की कृपा से मेरे चित्त में शुभ बुद्धि उत्पन्न हुई आपके अनुग्रह से मैं तरुण के समान सब बातों में होगया हूं अब हे माधवजी! मैं कल्याणकारी धर्म्म के रखने को समर्थ हूं हे माधव! आपनेही पाण्डवों से कल्याणकारी धर्म्म श्रीमुख से क्यों नहीं कहा और यहां आप को क्या अभीष्ट है उसे वर्णन कीजिये वासुदेवजी बोले कि हे कौरवेन्द्र! तुम मुझ को संसार का हितकर्त्ता

मोक्षरूप जानो सत्य असत्य व दृश्यमान पदार्थ मुझही से हुये चन्द्रमा शीतल प्रकाशवान् है ऐसा कहने से कौन पुरुष सन्देह करेगा उसीप्रकार मेरे यशस्वी होने में भी कौन आश्चर्य करेगा हे महातेजस्विन्! मुझ को तेरा यश प्रसिद्ध करना अभीष्ट है इससे हे भीष्म! मैंने तुझ में बड़ी बुद्धि को प्रवेश किया सो हे पृथ्वीपाल! जबतक यह पृथ्वी वर्त्तमान रहैगी तबतक तेरी अविनाशिनी कीर्ति लोकों में प्रसिद्ध रहैगी हे भीष्मजी! आप प्रश्न करनेवाले पाण्डव युधिष्ठिर से जो कहोगे वह आप का वचन वेदवचनों के समान पृथ्वी पर अचल होगा जो पुरुष आप के इस प्रमाण से आत्मा को आत्मा में मिलावेगा वह देहत्याग करके सब प्रश्नों के फल को पावेगा इसीकारण हे भीष्मजी! मैंने आप को दिव्य बुद्धि दी जबतक इस भूलोक में पुरुष का यश वर्त्तमान रहता है तबतक उसकी कीर्त्ति का नाश नहीं होता हे भरतवंशिन्, राजन्, भीष्म! यह मरने से बचेहुये धर्म्म के पूछने की इच्छा करनेवाले राजालोग आप के चारों ओर बैठे हैं उनसे धर्म्मों को कहो आप अवस्था में वृद्ध शास्त्र और आचारों से पूर्ण राजधर्म्म आदि सब धर्म्मों में विख्यात हो जन्म से लेकर आजतक आप का कोई पाप किसीने नहीं देखा सब राजालोग आपकोही धर्म्म का जाननेवाला समझते हैं जिसप्रकार पिता पुत्र को उपदेश करता है उसीप्रकार आप नीति का वर्णन कीजिये हे राजन्! तुमने ऋषि देवता आदि की सदैव उपासना करी इस कारण सत्पुरुष से पूछेहुये तुम्हारे धर्म्मों के सुनने की इच्छा सब राजालोगों को है इससे आप इस धर्म्म को अवश्य कहिये ज्ञानियों ने धर्म्म को पण्डितों के करने योग्य कहा है हे समर्थ! जो आप धर्म्म को न कहोगे तो बड़ा दोष होगा इस से आप इन राजाओं को अपना पुत्र पौत्र समझकर इनके प्रश्नों को सुन्दर रीति से वर्णन करो॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय! इन बातों को सुनकर भीष्मजी बोले कि बड़े आनन्द की बात है कि अब मेरा चित्त और वाणी दृढ़ है इससे मैं धर्म्मों को वर्णन करूंगा हे गोविन्द, माधव! आप की कृपा से मैं सब कहने को समर्थ हूं आप सनातनरूप होकर सब जीवों के आत्मा हो और हे धर्मात्मन्, युधिष्ठिर! तुम सब धर्म्मों को मुझ से पूछो मैं बड़ी प्रसन्नता से तुम्हारे पूछेहुये धर्म्मों का वर्णन करूंगा जिस राजऋषि धर्म्मात्मा के उत्पन्न होने से सब ऋषि मुनि प्रसन्न हुये वह पाण्डव मुझ से प्रश्न करने को योग्य है धर्म्म का प्रकाश करनेवाला कौरववंश में जिसके समान कोई नहीं है वह पाण्डव मुझ से प्रश्न करे जिसमें धैर्य्यता, शान्तता, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म्म, पराक्रम और तेज सदैव

वर्त्तमान है और जो भाई, बन्धु, अतिथि, सेवक, शरणागतों को अच्छेप्रकार से सत्कार करके श्रेष्ठ आचरणों से मानता है और सत्यता, दान, तप, शूरता, शान्ति, चातुर्य्यता, असंभ्रमता आदि गुण जिसमें हैं वह पाण्डव मुझ से प्रश्न करे जो धर्म्मात्मा इच्छा, क्रोध, भय और प्रयोजन के लिये अधर्म्म को नहीं करे अथवा जो सदैव सत्यवक्ता सहनशील और ज्ञानी अतिथियों का प्यारा सदैव दान सत्पुरुषों को देता है और प्रतिदिन यज्ञ वेदपाठ करता श्राद्धों में प्रीति करनेवाला है वह पाण्डव मुझ से धर्म्म पूछने को योग्य है और जो शान्त ब्रह्मज्ञान का उपदेश पानेवाला है वह पाण्डव मुझ से इच्छापूर्वक प्रश्न करे यह सुनकर वासुदेवजी बोले कि बड़ी लज्जा में डूबे लोक की निन्दा से भयभीत धर्म्मराज युधिष्ठिर आप के पास नहीं आते हैं हे राजन्! इस लोक का स्वामी युधिष्ठिर लोक के नाश करने की निन्दा से आप के समीप नहीं आता है जो गुरु भक्त सम्बन्धी बान्धव अर्घ के योग्य थे उनको बाणों से छेदकर आप के पास नहीं आता है भीष्मजी बोले कि हे श्रीकृष्णजी! जैसे ब्राह्मणों का धर्म्म, दान, तप, वेदपाठ है उसीप्रकार क्षत्रियों का धर्म्म युद्ध में देह का त्यागना है जो राजा मिथ्या कर्म्म करनेवाले पिता, पितामह, गुरु, सम्बन्धी और बान्धवों को युद्ध में मारे वह भी धर्म्म है हे केशव! जो क्षत्रिय प्रण का त्यागनेवाला लोभी पापी भी होके युद्ध में गुरुओं को मारता है वह धर्म्म का ज्ञाता है जो पुरुष लोभ से धर्म्म की सनातनमर्य्यादा को नहीं विचारता है और जो क्षत्रिय उस लोभी को युद्ध में मारता है वह भी निश्चय करके धर्म्मका जाननेवाला है और जो क्षत्रिय युद्ध में पृथ्वी को रुधिर के स्वरूप जल और कटेहुये शिर के समान तृण और हाथियों के तुल्य पहाड़ और ध्वजाओं के समान वृक्ष धारण करनेवाली करता है वह धर्म्म का ज्ञाता है युद्ध में बुलायेहुये क्षत्रिय को सदैव लड़ना चाहिये क्योंकि मनुजी ने युद्ध को धर्म्म और स्वर्ग और इस लोक का देनेवाला कहा है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी से इसप्रकार कहेहुये धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर नम्रतापूर्व्वक पास जाकर उनके नेत्रों के सामने उपस्थित हुये और दोनों चरणों को पकड़लिया फिर उन भीष्मजी ने भी उनको प्रसन्न किया और उसका मस्तक सूंघकर कहा कि बैठो फिर सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी के पुत्र भीष्मजी ने उनसे कहा कि हे तात! तुम विश्वास करके मुझ से प्रश्न करो और किसी बात का भय मत करो ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को प्रणाम और पितामह को

दण्डवत् और सब गुरुओं की प्रतिष्ठा करके पूछा कि निश्चय राजाओं का धर्म्म उत्तम है क्योंकि जब ऐसे धर्म्मज्ञों ने इसको माना है तो मैं भी इसको सत्यही जानता हूं सो हे पितामह ! सम्पूर्ण राजधर्म्मों को कहो क्योंकि राजधर्म्महीं इस सम्पूर्ण जीवलोक की रक्षा का मुख्य स्थान है हे कौरव ! धर्म्म, अर्थ, काम यह तीनों राजधर्म्मों में रक्षा करनेवाले हैं और इसी राजधर्म्म में मोक्षधर्म्म भी अच्छेप्रकार से वर्त्तमान है जैसे कि घोड़े की बागडोर और हाथी का अंकुश होता है इसीप्रकार राजशासन भी लोक का धर्म्मरूप कहाजाता है राजऋषियों से सेवित उस धर्म्म में जो अधिक अज्ञान होजायँ तो ऐसी दशा में लोक की मर्य्यादा न रहैगी और सब लोग व्याकुल होजायँगे जैसे कि अँधेरे को सूर्य का उदय नाश करता है वैसेही राजधर्म्म भी गुप्त अशुभगति को दूर करते हैं अर्थात् राजासे दण्ड पानेवाले अपराधी पवित्र होकर स्वर्ग को जाते हैं इस हेतु से हे पितामह ! आप पहिले राजधर्म्मों को वर्णन कीजिये आप धर्म्मधारियों में श्रेष्ठहौ हे परन्तप ! हम सबका उत्तम ज्ञान आप के द्वारा प्राप्त हो क्योंकि वासुदेवजी भी आप को बुद्धि में महान् जानते हैं भीष्मजी बोले कि मैं श्रेष्ठ धर्म्म को नमस्कार करता हूं और संसार के स्वामी श्रीकृष्णजी को भी नमस्कार है अब ब्राह्मणों को नमस्कार करके वेदों से जानने के योग्य सनातनधर्म्म को कहता हूं हे युधिष्ठिर ! आप सावधान होकर अपने पूछेहुये सब राजधर्म्मों को मुझसे सुनो और जो २ दूसरी भी बात सुनना चाहते हो उसे भी सुनो हे कौरव, युधिष्ठिर ! उत्तम राजा को प्रजा की प्रसन्नता के निमित्त पहिले बुद्धि के अनुसार देवता और ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये क्योंकि देवता और ब्राह्मणों के पूजने से धर्म्म के ऋण से उद्धार को पाता है और लोक में अच्छेप्रकार से पूजित होताहै हे पुत्र, युधिष्ठिर ! तुम सदैव उद्योग के साथ कर्म्म करो विना उद्योग के दैव अर्थात् प्रारब्ध राजालोगों के अभीष्टों को सिद्ध नहीं करता यह दोनों प्रारब्ध और उद्योग साधारण हैं मैं उद्योग कोही उत्तम मानता हूं फल के द्वारा प्रारब्ध को निश्चय करके कर्म्म न करने के दोष से सिद्धि में दुःख से निवृत्त होता है तुम प्रारब्ध कर्म्म के निष्फल होजाने का शोक मत करो और इसीप्रकार से सदैव उद्योग करो यही राजाओं की बड़ी नीति है निश्चय है कि राजाओं की सिद्धि का करनेवाला सिवाय सत्यता के और कोई कर्म्म नहीं है सत्यमें प्रवृत्त राजा इसलोक परलोक दोनों में प्रसन्न रहता है हे राजेन्द्र ! सत्यता ही ऋषियों की उत्तम द्रव्य है उसीप्रकार सत्यता के सिवाय राजाओं का विश्वास उत्पन्न करनेवाला दूसरा कर्म्म नहीं है गुणवान्, सदाचारी, स्थिरस्वभाव, दयावान्, धर्म्मपरायण, जितेन्द्रिय, सावधान, बहुत दानी, प्रसन्नमुख, सत्पुरुषों को शरण लेनेवाला राजा कभी नाशको नहीं प्राप्त होता है सो हे कौरवनन्दन !

तुम सब कर्म्मों में तीन कर्म्मों के गुप्त करनेवाले नीति विचार के साथ सत्य बोलने में सावधान हो वह तीन कर्म्म यह हैं कि अपने दोष को छिपाना और शत्रु के दोष को निश्चय करना तीसरे जो उद्योग प्रारम्भ करना हो उस को गुप्त करना और जो सलाह कीजाय वह भी गुप्त करना बराबर मृदुलता करनेवाला राजा सब दशा में आज्ञाभङ्ग होने के योग्य होता है और तीव्रप्रकृति होने से सब प्रजा व्याकुल रहती है इस हेतु से दोनों कर्म्मों को करो हे महावक्ता, पुत्र, युधिष्ठिर ! ब्राह्मण तुझ से दण्डके योग्य नहीं हैं हे पाण्डव ! इस लोक में यह ब्राह्मण सब मनुष्यों में उत्तम हैं इस में महात्मा मनुजी ने दो श्लोक कहे हैं उन दोनों श्लोकों में धर्म्मों को तुम अपने चित्त में धरने के योग्य हो कि जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पाषाण से लोहा उत्पन्न हुआ उन्हों का सर्वव्यापी तेज अपनीही योनि में शान्त होता है जब लोहा पत्थर को मारता है और अग्नि से जल माराजाता है और क्षत्रिय ब्राह्मण से शत्रुता करता है तब वह तीनों पीड़ा को पाते हैं इससे हे महाराज ! ब्राह्मण प्रतिष्ठा और पूजने के योग्य हैं हे पुरुषोत्तम ! इसप्रकार जो तीनों लोकों को दुःख देनेवाले ऐसे पुरुष हों वह बराबर भुजाओं से दण्ड देने के योग्य हैं हे राजन् ! प्राचीन समय में महर्षि शुक्रजी ने दो श्लोक कहे हैं तुम एकाग्रचित्त से उनको सुनो धर्म्म सम्बन्ध रखनेवाला राजा संसार में शस्त्र उठाकर युद्ध में आनेवाले वेदपाठी ब्राह्मण को भी अपने धर्म्म से पकड़े वह धर्म्म का जाननेवाला है और उस कर्म्म से धर्म्म का नाश करनेवाला नहीं होसक्ता क्योंकि क्रोध क्रोध को पाता है हे राजन् ! यद्यपि ऐसा भी है तौभी ब्राह्मण रक्षा के योग्य है और अपराधी ब्राह्मण को भी देश से बाहर निकालदे हे राजन् ! जिस ब्राह्मण को दूसरे की स्त्री से कुकर्म्म करने का दोष लगा हो उसपर भी दया करे ब्राह्मण का मारनेवाला गुरुकी स्त्री से कुकर्म्म करनेवाला इसीप्रकार बालवध करनेवाला और राजासे शत्रुता करनेवाला होनेपर भी देश से बाहर निकालदेनाही वेदपाठी ब्राह्मण का विचार कियागया है उन को किसी दशा में देहदण्ड नहीं होसक्ता और जो ब्राह्मणों में भक्ति रखनेवाले हैं वह राजा के सम्बन्धी प्यारे होवें ब्राह्मणों के भक्त मनुष्यों के समूहों से बढ़कर कोई उत्तम खज़ाना नहीं है हे राजन् ! जो शास्त्र के निश्चय करनेवाले हैं वह सब छह क़िलों में से मनुष्यों के क़िले को दुर्गम और अजेय मानते हैं वह छह क़िले यह हैं मरुदेश, जल, पृथ्वी, वन, पहाड़, मनुष्य इसीकारण बुद्धिमान् राजा को चारों वर्णों पर कृपा करनी चाहिये जो राजा धर्म्मात्मा और सत्यवक्ता है वह प्रजा को प्रसन्न करता है हे पुत्र, युधिष्ठिर ! तुझ क्षमावान् को सब जातियों में दण्ड की क्षमा न करनी चाहिये क्योंकि हाथी के समान भी क्षमाशील राजा नीच और धर्म्म का विरोधी होता है

हे महाराज! प्राचीन समय में बृहस्पतिजी के धर्मशास्त्र में इसी आशय का एक श्लोक कहा है उस को मुझ से सुनो कि क्षमापराधी राजा की नीच मनुष्य सदैव अप्रतिष्ठा करते हैं जैसे क्षमावान् हाथीपर हाथीवान् सवार होजाता है इस से श्रीमान् राजा वसन्त ऋतु के सूर्य्य के समान न शीतल हो न अधिक ऊष्म का देनेवाला हो हे राजन्! तुमको अपने और दूसरे मनुष्यों की परीक्षा प्रत्यक्ष अनुमान से करनी योग्य है इस से तुम सब व्यसनों को त्याग करो राजा सदैव विजयके हेतु शत्रुओं पर अपने शूर पुरुषों को चढ़ावे साम नीति के स्थानापन्न दण्ड को त्यागे वह व्यसन यह हैं शिकार करना, पांसा खेलना, दिन का सोना, निन्दा, स्त्रीसङ्ग, नशा पीना, बाजाबजाना, सरोद व्यर्थ मद्यपान इन कर्म्मों से उत्पन्न होनेवाले सब व्यसन हैं इनमें कठोर वचन धन को व्यर्थ लेना दण्ड लेना यह क्रोध से उत्पन्न होनेवाले तीन व्यसन कठिन हैं कठिन व्यसनों का रखनेवाला सदैव अप्रशित होता है और लोक को व्याकुल करता है और प्रजा से शत्रुता रखनेवाला होता है और राजा को विवाहिता रानी से सदैव प्रीति रखनी चाहिये इस का यह कारण है जैसे कि गर्भवती रानी चित्तमें आनेवाली प्रियवार्त्ता को त्याग करके गर्भ की वृद्धि को करती है उसीप्रकार राजाको भी निश्चय कर्म्म करना चाहिये धर्म्मात्मा राजा को अपने चित्त की प्रिय बातों को त्यागके उन बातों में ध्यान लगाना चाहिये जिनसे संसार का उपकार हो हे युधिष्ठिर! तुझ को किसी समय भी धैर्य्य त्यागना उचित नहीं है धैर्य्यवान् चतुरङ्गिणी सेना रखनेवाले राजा को किसी स्थान में भय नहीं है इस से तुम को नौकरों के साथ कभी हँसी न करना चाहिये इसमें यह दोष हैं कि सेवक लोग बहुतहँसी आदि करने से स्वामी का अपमान करते हैं और अपने अधिकारपर भी स्थित नहीं होते हैं और आज्ञाभङ्ग करते हैं और करने के योग्य कामों के करने में भी सन्देह उत्पन्न कराते हैं और गुप्त विचार को भी प्रकट करते हैं और मांगने के अयोग्य वस्तुओं को मांगते हैं और राजा के भोजन योग्य वस्तुओं को भोजन करते हैं क्रोध करके भड़कते हैं और राजा की छाती पर चढ़ते हैं और छलयुक्त बातों से संसार के कामों को बिगाड़ते हैं और जालसाजी के आज्ञापत्रों से उसके देश को निर्बल करते हैं और स्त्रियों के रक्षकों से मिलजाते हैं और एकसी पोशाक पहिनने लगते हैं और राजा के सम्मुख में ही थूकाथाकी किया करते हैं और वह निर्लज्ज होकर उस के वचन को संसार में प्रकट करते हैं राजा के मृदु स्वभाव होने से और चित्त मिले होने से नौकरलोग उसका अपमान करके उस के घोड़े हाथी रथ आदि सवारियों पर सवार होते हैं और सभा में बैठकर सुहृज्जन ऐसे वचनों को कहते हैं कि हे राजन्! यह आप का कठिन काम है अथवा बुरा काम है और काम बिगड़ने

से हँसते हैं और इनाम आदि से प्रसन्न नहीं होते फिर परस्पर में ठट्ठा करते हैं गुप्त मन्त्र को प्रकट करते हैं और बुरे काम को अधिक प्रसिद्ध करते हैं और उस की आज्ञा को खेल और अपमान से करते हैं इसीप्रकार भूषण भोजन और स्नान की वस्तु चन्दन आदि के निबट जाने पर उसकी आज्ञा भङ्ग करतेहुये निडर और ढीठ होजाते हैं और अपने अधिकार को तुच्छ कहकर त्याग करते हैं और नियत मासिक पर सन्तोष नहीं करते हैं और राज्यके धन को चुराते हैं और राजाके साथ क्रीड़ा व्यवहार किया चाहते हैं और लोगों में कहते हैं कि यह राजा हमारा गुलाम है हे युधिष्ठिर ! राजा के मृदुल चित्त होने में यह दोष और अन्य भी बहुत से दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि राजा को सदैव उद्योग और विचार करना चाहिये स्त्री के समान अविचारी राजा की प्रशंसा नहीं होती इस स्थान में शुक्रजी ने एक श्लोक कहा है कि जैसे सर्प्प बिल के रहनेवाले जीवों को निगलजाता है उसी प्रकार पृथ्वी भी दण्ड के योग्य पुरुषों को दण्ड न देनेवाले राजा को और वेदाध्ययन के निमित्त परदेश न जानेवाले ब्राह्मण को और पर्यटन न करनेवाले संन्यासी को निगलजाती है इससे तुम हृदय में सोचकर इस बात को ठानकर सलाह के योग्य पुरुषों से सलाह करो और दण्ड के योग्य पुरुषों को दण्ड दो जो पुरुष सात अङ्गवाले राज्य के विपरीत काम करे वह चाहे गुरु हो या मित्र हो मारने के योग्य हो हे राजन् ! प्राचीन समय में मरुत नाम राजा ने बृहस्पतिजी के कहने से यह श्लोक कहा कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के योग्य कर्म्म को न जाननेवाले कुमार्गगामी गुरु कोभी दण्ड होता है बाहुके पुत्र राजा सगर ने पुरवासियों की वृद्धि के निमित्त असमञ्जस नाम बड़े पुत्र को त्याग किया हे राजन् ! उस असमञ्जस लड़के ने पुरवासियों के बालकों को सरयूनदी में डुबाया इसकारण पिता ने उस को क्रोध करके देश से निकाला और उद्दालक ऋषिने भी अपना प्यारापुत्र महातपस्वी श्वेतकेतु नाम जोकि ब्राह्मणों से मिथ्या व्यवहार करता था उसको त्याग किया इसलोक में राजाओं का सनातनधर्म्म यह है कि संसार की प्रसन्नता रक्षा सत्य बोलना व्यवहार का यथार्थ वर्ताव करना दूसरे के धन का नाश करना और समयपर देने के योग्य पुरुषों को देवे और पराक्रमी क्षमावान् सत्यवक्ता होवे वह राजा सुमार्ग से नष्ट नहीं होता है चित्त के क्रोध का रोकनेवाला शास्त्रार्थ में निश्चय बोधवाला और धर्म्म, अर्थ, मोक्ष में सदैव प्रवृत्त

अर्थात् दिवस के पूर्वभाग में धर्म्म को और मध्याह्नकाल में अर्थ को अन्त में काम को और रात्रि के अन्त में योग को करनेवाला और विचार को गुप्त रखनेवाला राज्य के योग्य है क्योंकि गुप्त रक्षा और सलाह के विना राजा को और कोई नाशकारक नहीं है राजा को चारों वर्ण के धर्म्मों की रक्षा करनी योग्य है और धर्म्मों के अस्तव्यस्त होने से प्रजा की रक्षा करना राजाओं का सनातन धर्म्म है अच्छे पुरुषोंपर विश्वास करे परन्तु अधिकतर विश्वास न करे और सदैव बुद्धि से छह गुणों के गुण दोषों को देखे शत्रु के दोषों का देखनेवाला राजा सदैव प्रशंसनीय है और जो धर्म्म, अर्थ, काम के मूल को जानता है वह दूतों से काम करानेवाला और गुप्त धन देकर शत्रु के मन्त्रियों को मिलानेवाला है वह भी प्रशंसा के योग्य है विना जीविकावाले पुरुषों की रक्षा करनेवाला और नौकरों का प्रबन्धक होकर मन्द मुसुकान के साथ बोलनेवाला, सुन्दरमुख, वृद्धों का सेवक, निरालस्य, निर्लोभ, सबपुरुषों के चलनपर बुद्धि को स्थिर करनेवाला, दृढ़स्वभाव, सुन्दर दर्शन होवे और कभी सत्पुरुषों से धन का दण्ड न लेवे नीचों से लेकर सत्पुरुषों को देवे आप लेनेवाला और दान करनेवाला शान्तचित्त और सुन्दर साधन करनेवाला, समयपर दान करनेवाला, भोगों का भोक्ता और शुद्ध आचारवान् शूरभक्त हो और धनलेकर शत्रुओं में न मिलनेवाले उत्तम कुलवाले दूसरेका अपमान न करनेवाले विद्यावान् संसार के जाननेवाले परलोक का विचारकरनेवाले धर्म्म में प्रवृत्त साधुवृत्ति और पर्वतों के समान दृढ़चित्त पुरुषों को सदैव अपना सहाय बनावे जो राजा ऐश्वर्यवान् होकर उन सहायकों के साथ भोगों में समान होवे केवल छत्र और आज्ञा में अधिक हो ऐसे राजा का चलन शूरपुरुषों के साथ आगे पीछे एक सा होवे इसप्रकार से करताहुआ भी राजा दुःख को नहीं प्राप्तहोता जो राजा कि सबके ऊपर सन्देह करनेवाला होवे वह कुटिल लोभी राजा अपनेही मनुष्यों के हाथ से माराजाता है पवित्र और संसार के चित्त को आधीन करने की इच्छा रखनेवाला राजा शत्रुओं से दब कर नाश को नहीं पाता है और चारों ओर से दृढ़ होता है क्रोध और व्यसनों से जुदा थोड़ा दण्डदेनेवाला जितेन्द्रिय राजा हिमाचल के सदृश जीवों का विश्वासपात्र होता है उसीप्रकार ज्ञानी त्यागी और शत्रुओं के छिद्रों के देखने में प्रवृत्त सुन्दरदर्शन सब वर्णों की नीति और अनीतिका जाननेवाला शीघ्रकर्म्मी क्रोध का जीतनेवाला सुगमता से प्रसन्न होनेवाला महासाहसी निरहंकारी क्रियावान् अपनी प्रशंसा न करनेवाला राजा भी संसार का प्यारा होता है जिस राजा के कर्म्म प्रारम्भही से अच्छे और नीतियुक्त होते हैं वह राजा राजाओंमें उत्तम है जैसे कि पिता के घर में पुत्र स्वच्छन्द आनन्द में रहते हैं उसी प्रकार जिस राजा के देश में मनुष्य निर्भय विचरते हैं वह राजा सब राजाओंमें

उत्तम है जिस राजा के पुरवासी और देशवासी धन को प्रकट रखनेवाले और नीति अनीति के जाननेवाले हैं वह राजा भी श्रेष्ठतम है जिसके देशवासी अपने कर्म्मों में प्रीति रखनेवाले देह के निरहंकारी धर्म्म में प्रवृत्त जितेन्द्रिय और बुद्धि के अनुसार पोषण करनेवाले होते हैं और जिसके देश में मनुष्य विजयी सावधान और सेवा के योग्य दूसरे की अप्रतिष्ठा करने की इच्छा न रखनेवाले और दान देने में प्रीति रखनेवाले होते हैं वह राजा है जिस राजा के देश में सत्य २ विषय को मिथ्या से प्रकट करना नहीं है और मिथ्या छल ईर्षा आदि कोई नहीं है उस राजा का धर्म्म सनातन है जो राजा ज्ञानी पण्डितों का सत्कार करता है और शास्त्रार्थ में दूसरे का भला करनेवाला है और सत्पुरुषों के मार्ग में चलनेवाला और दानी है वह राजा राज्य के योग्य है जिस राजा के दूत को और करने न करने की सलाह को कभी शत्रुलोग नहीं जानसक्के वह राजा भी राज्यके योग्य है प्राचीन समय में किसी राजा के आगे परशुरामजी के चरित्र कहने में यह श्लोक कहागया कि प्रथम राजा अपनी उत्तमता को प्राप्त करे तदनन्तर भार्या को फिर धन को और नीच राजा के होने में लोगों को कहां भार्या और कहां धन है जोकि राज्य के चाहनेवाले राजाओं का सनातनधर्म्म राज्य में संसार की रक्षा के विशेष और कुछ नहीं है इसी से यह रक्षाधर्म्म संसार को धारण कियेहुये है हे राजेन्द्र! प्राचेतस मनु ने राजधर्म्म में यह दो श्लोक कहे वह तुम चित्त से सुनो कि पुरुष इन छहबातों को ऐसे त्यागदे जैसे कि टूटी नौका को समुद्र में त्यागते हैं उन के नाम यह हैं—उपदेश न करनेवाला आचार्य १ वेद विद्या से रहित ऋत्विज् २ रक्षा न करनेवाला राजा ३ अप्रियवादिनी भार्य्या ४ गांव का चाहनेवाला गोपाल ५ वन का चाहनेवाला नाई ६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह राजधर्म्मों की रक्षा का आशय तुमसे कहा इस धर्म्म का वर्णन श्रीबृहस्पतिजी ने न्याय के अनुसार कहा है इसीप्रकार महातपस्वी भरद्वाज और महातप भगवान् शुक्रजी और सहस्राक्ष इन्द्र और प्राचेतसमनु गौरशिरामुनि यह सब राजशास्त्र के जारी करनेवाले वेदब्राह्मणों के रक्षक ब्रह्मवादी संसार की रक्षा करनेवाले राजाओं के धर्म्म की प्रशंसा करते हैं हे धर्म्मात्मन्, युधिष्ठिर! इस धर्म्ममय युक्ति को मुझ से सुनो चार अर्थात् दूतों को नियत करना समयपर प्रसन्न होकर मासिक देना और युक्तिबलसे राजभाग लेना विना युक्ति के महसूल न लेना सत्पुरुषों का संग्रह करना शूरता चतुराई सत्यता और प्रजा का अभीष्ट करना छल बल से शत्रुओं के पक्षवालों को तोड़ना पुराने

टूटेफूटे स्थानों को देखना और समय के अनुसार दो प्रकार के दण्डों का जारी करना साधुओं का त्याग न करना कुलीनलोगों का पोषण और अन्नआदि को इकट्ठा करना ज्ञानियों की सेवा करना और सदैव सेना को प्रसन्नकरना प्रजा का देखना संसारी कामों में खेद न मानना और खजाने की भी अधिक वृद्धि करना शत्रु से रक्षा और विश्वास न करना और जो शत्रुओं ने पुरवासियों को व्यापार आदिके छल से स्वाधीन करलिया हो उनको अपने आधीन करना और शत्रुओं में वर्त्तमान अपने मित्रों को बुद्धि के अनुसार देखना और जो नौकरों को शत्रुलोग अपने आधीन करते हैं उनको देखना कभी नौकरों पर पूर्ण विश्वास न करना अपने देश को देखना उसीप्रकार आप भी दूसरे को दृढ़ता कराना सब कर्म्म नीति धर्म्म के अनुसार करना सदैव उद्योग करना शत्रुओं का अपमान न करना और निकृष्ट कर्म्म कभी न करना जो बृहस्पतिजी ने राजाओं के उद्योग को कहा है वह राजधर्म्म की जड़ है इसके श्लोकों को मुझ से सुनो कि इन्द्र ने उद्योगही से अमृत को पाया और असुरों को मारा और नरलोक और सुरलोक दोनों में प्रतिष्ठावान् हुआ जो पुरुष उद्योग करने में निपुण हैं वह वचन के वीर पण्डितों से भी उत्तम समझे जाते हैं उद्योगी पण्डित लोग वीरों को प्रसन्न करके उनकी उपासना करते हैं उद्योगरहित राजा सदैव शत्रुओं से पराजय होने के योग्य है जैसे कि विना विषवाला सर्प विना उद्योग सबल भी निर्बल शत्रु को नहीं मारसक्ता थोड़ी अग्नि भी भस्म करसक्ती है और थोड़ा विष भी मारडालता है सेना के एक अङ्गसे भी युक्त शत्रु के गढ़पर वर्त्तमान होकर राजा धन और सेना से वर्द्धमान सबदेश को तपाता है अपने शत्रु राजा की गुप्तसलाह और उसका वचन और विजय के लिये मनुष्यों का इकट्ठा करना और उसके हृदय का जो कपट हो और विजय आदि के हेतु जो छल हो और जो उसके राज्य के कामों में विगाड़ हो उन सब बातों का अपनी बुद्धिमत्ता से जानकर विजय करे और देश को स्वाधीन करने के लिये धर्म्मिष्ठबातेंकरे यह राज्य करना बड़ा भारी तन्त्र है यह तन्त्र निर्दय राजाओं से धारण नहीं किया जासक्ता और माया का यह उत्तम स्थान राज्य मृदुस्वभाववाले राजा से धारण करने के योग्य नहीं है इस लोक में यह राजधर्म्म विषय रूपहै वह सत्यतासेही धारण कियाजाता है इससे मृदुता और कठोरता से संयुक्त बुद्धि से कर्म्म करना चाहिये यद्यपि संसार की रक्षा करनेवाले राजा को हानि भी होजाय वह भी उसका धर्म्मही है राजालोग ऐसे प्रकार के चलन को किया करते हैं तुम अच्छेप्रकार से कर्म्म करनेवाले के सम्मुख राजधर्म्मों का यह थोड़ा सा वर्णन किया फिर जिसमें तुम्हें सन्देह है उसे कहो वैशम्पायन बोले कि इतनी बात के पीछे भगवान् व्यासजी, देवस्थान, अस्म, वासुदेवजी, कृपाचार्य्य,

सात्यकी और संजय यह सब अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर बोले कि हे भीष्म! तुम को धन्यवाद है तदनन्तर भीष्मजी के चरणों को स्पर्श करके युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! इससमय अपने सन्देहों को आप से नहीं पूछूंगा क्योंकि सूर्य्यास्त हुआ फिर युधिष्ठिर, केशवजी, कृपाचार्य्य आदि ब्राह्मणों को दण्डवत् और श्रीगाङ्गेयजी की परिक्रमा करके रथोंपर सवारहुये और दृषद्वती नाम नदी में स्नान आचमन सन्ध्यावन्दनादि कर्म्म करके फिर हस्तिनापुर में पहुँचे ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

उनसठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि फिर वह पाण्डव और यादव प्रातःकाल उठकर सन्ध्यावन्दनादि से निवृत्त होकर रथों पर चढ़ भीष्मजी के पास आये और व्यास आदि ऋषियों को प्रणाम कर चारों ओर को बैठगये और श्रीभीष्मजी को बड़ी नम्रता से प्रणाम करके हाथ जोड़ के यह कहा कि हे भरतवंशिन्, महाराज, भीष्मजी! इस पृथ्वीपर जो यह राजा शब्द प्रचलित होरहा है इसका हेतु क्या है और काहे से उत्पन्न हुआ यह आप मुझ से कहिये सब पुरुषों के समान भुजा, ग्रीवा, बुद्धि, प्राण, आत्मा, दुःख, सुख, पीठ, मुख, उदर आदि रखने वाला और एकसाही वीर्य्य, अस्थि, मस्तक, मांस, रुधिर रखनेवाला और श्वास का भी बराबर आना जाना और एकसा देह और जन्म मरणवाला और मनुष्यों के समानही गुण रखनेवाला एक पुरुष किसकारण से सब मनुष्यों पर आज्ञा करनेवाला होता है और अकेला किसप्रकार से शूरवीर और उत्तम पुरुषों से व्याप्त कैसे सब पृथ्वी की रक्षा करता है और संसार की प्रसन्नता को भी चाहता है उसी अकेले की प्रसन्नता से सब संसार प्रसन्न होता है और उस के व्याकुल होने में सब महाव्याकुल होते हैं सो वक्ताओं में श्रेष्ठ आप इस बात को मुझ को समझा के कहिये मेरी बुद्धि में यह छोटा नहीं है जो सब पुरुषों में देवताओं के समान पूजित होता है भीष्मजी बोले कि हे नरोत्तम! तुम सावधान होकर सब वृत्तान्त सुनो जैसे कि सत्ययुग के प्रारम्भ में राजशब्द हुआ उससमय नतो कोई राजा और न राज्य था न दण्ड और दण्ड देनेवाला था सब संसारी लोगों ने परस्पर में धर्म्मही से रक्षा करी तब धर्म्म से परस्पर रक्षा करनेवालों ने बड़ा खेद पाया इसकारण उनमें अज्ञानता प्रकट हुई और अज्ञान के वशीभूत होकर ज्ञान के लोप से उनका धर्म्म नाश हुआ फिर उत्तम ज्ञान के नष्ट होने से मोह के वशीभूत हो सब मनुष्य लोभ में प्रवृत्त हुये उसके पीछे मनुष्य असम्भव बातों के विचार करनेवाले हुये और फिर वहां कामनाम दूसरी इच्छा भी

आकर वर्त्तमान हुई फिर काम के वशीभूत मनुष्यों को राग ने आकर दबाया और राग में प्रवृत्त होकर मनुष्यों ने करने और न करने के योग्य कर्म्म को नहीं जाना फिर हे राजन्! उन्हों ने भोगकरने के अयोग्य स्त्री के भोग को और इसी प्रकार कहने और न कहने योग्य वचन को और भोज्य और अभोज्य वस्तु को और दोषों को भी त्याग न किया अर्थात् सब बातें करनेलगे ऐसी दशा में इस नरलोक को वेमर्यादा होने से वेद भी लोप हुआ फिर वेद के लुप्त होने से धर्म्म का नाश हुआ फिर वेद और धर्म्म के लोपहोनेपर देवताओं में भय उत्पन्न हुआ तब वह भयभीत देवता ब्रह्माजी की शरण में गये और महादुःखी हो हाथ जोड़कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करके कहा कि हे भगवन्! लोभ मोह आदि के होने से नरलोक में सनातन वेद और धर्म्म का लोप हुआ इस कारण हम सब में भय उत्पन्नहुआ इसी हेतु से हमलोग भी नरलोकवासियों के समान होगये अर्थात् स्वाहा आदि के न होने से भूखे मरते हैं हमारी वर्षा नीचे को होती है और मनुष्यही वर्षा करनेवाले हैं उनकी क्रिया नष्ट होने से हमको संशय प्राप्त हुआ इससे हे पितामह! यहां जो कल्याणकारी कर्म्म हैं उसको ध्यान करो आपही के प्रभाव से यह नवीन उत्पन्न होनेवाला भय नाश को प्राप्त होगा तब ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे कल्याण को विचारूंगा जिससे कि तुम्हारा भय दूर हो फिर ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धि से एक लाख अध्याय बनाये जिनमें कि धर्म्म, अर्थ, काम का वर्णन है और ब्रह्माजी सेही यह त्रिवर्ग गुण प्रसिद्ध हुआ फिर चौथा मोक्ष है जो कि इस त्रिवर्ग के फल और साधन से अपना फल और साधन पृथक् रखता है अर्थात् मोक्ष का त्रिवर्ग दूसरा है तात्पर्य्य यह है कि इच्छा फल से रहित है वह भी उसी में कहा है और धर्म्म आदि के विपरीत होने का कारण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और धनुष से व्यापारियों का मार्ग में निवास, तपस्वियों की वृद्धि, चोरों का नाश, दण्ड से उत्पन्न होनेवाला यह त्रिवर्ग भी वर्णन किया चित्त, देश, काल, साधन, कर्म्म, सुहृद आदि जिनके सुधारने का कारण नीति से उत्पन्न होनेवाला षट्वर्ग भी वर्णन किया अर्थात् नीति के बल से प्रजा की व्याकुलता भी मिटती है और कुदेश भी सुदेश होजाताहै और कलियुग भी सत्ययुग होजाता है हे भरतवंशिन्! कर्म्मकाण्ड,ज्ञानकाण्ड,वार्त्ता अर्थात् खेती, जीविका, व्यापार आदि का काण्ड दण्डनीति अर्थात् प्रजा के पोषण करने की विद्या और बड़ी विद्या उन लाख अध्यायों में दिखाई मन्त्रीलोगों की रक्षा और उनपर ऐसा गुप्त दूत का नियत करना जो कि नानाप्रकार की युक्तियों का जाननेवाला हो जैसे कि ब्रह्मचारी आदि के रूप रखनेवाले और हरएक स्थान में भिन्न २ पोशाकवाले तीन २ नियत हों यह सब बातें और राजकुमार का लक्षण उनमें वर्णन किया हे राजन्! इसमें साम,

दाम, दण्ड, भेद और पांचवां उदासीनता भी सम्पूर्णता के साथ वर्णन की सब गुप्त विचार उसीप्रकार भेद के निमित्त सलाह का मिथ्या करना और मन्त्र की सिद्धि और असिद्धि का जो फल है उसको भी वर्णन किया और तीन प्रकार की सन्धियां जो भय और लेख और धन से सम्बन्ध रखती हैं अधम, मध्यम, उत्तम नाम से वर्णन कीं भय से होनेवाली सन्धि लघु और सत्कार से होनेवाली सन्धि मध्यम है और लेनदेन से होनेवाली सन्धि उत्तम है❀यात्रा के चारों समय धर्म्म और त्रिवर्ग का विस्तार और धर्म्मयुक्त विजय और अर्थ की विजय और ० आसुरी विजय सम्पूर्णता के साथ वर्णन की + और उस से पञ्चवर्ग के लक्षण भी तीन प्रकार के वर्णन किये और प्रकाशित वा अप्रकाशित दोनों प्रकार की सेना भी कही उन में प्रकाशित सेना आठ प्रकार की है और अप्रकाशित सेना बड़े विस्तार की है॥

हे पाण्डव! रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, भारकश, नौका, दूत, उपदेशक गुरु यह सेना के आठ अङ्ग हैं और जङ्गम विष बिच्छू आदि से पैदा होनेवाले और स्थावर विष और चूर्ण में मिलनेवाले कहे और वस्त्र आदि के स्पर्श में और खाने पीने की वस्तुओं में विष मिलाना और मारण आदि प्रयोग यह तीन प्रकार के विष का मेल करना दण्डरूप कहा और शत्रु, मित्र, उदासीन यह भी वर्णन किये ग्रह नक्षत्र आदि मार्गों के गुण इसीप्रकार पृथ्वी के गुण मन्त्र यन्त्र आदि से अपनी भयभीत प्रजा की रक्षा करना रथ आदि के कारखाने को देखना मनुष्य हाथी घोड़े रथ आदि को नीरोग और पराक्रमी करनेवाली अनेक प्रकार की युक्तियां और बहुत प्रकार के व्यूह और विचित्र युद्ध में जानकारी यह भी उसमें वर्णन किये और उत्पात निपात अर्थात् ग्रहों का विरोध और पृथ्वी का कम्पन और उल्कापात होना उत्तम युद्ध और भागना और शस्त्रों का तीव्र करना और उनका ज्ञान भी वर्णन किया सेना का दुःख और उसीप्रकार सेना का प्रसन्न करना पीड़ा और आपत्ति के समय का ज्ञान भी वर्णन किया इसीप्रकार बाजों के शब्दों से चढ़ाई आदि के इङ्गित को समझ कर काम करना योग संचार, पताका और मन्त्र आदि के सुनने और देखने से मोहित करना और चोर उग्ररूप वनवासी मनुष्यों की सेना से शत्रु के देश को पीड़ा देना यह सब उसमें वर्णन किया और अग्नि लगानेवाले विष देनेवाले मूर्त्ति बनानेवाले और सेना के प्रधानों को अपनी ओर मिलाने और खेती आदि के काटने और हाथियों के वध करने और सन्देह पैदा करने रोजीना देने और विश्वास उत्पन्न करने से शत्रु के देश को पीड़ा देना वर्णन किया सात

❀ अपने मित्रों की जब वृद्धि हो–अपने खज़ाने का इकट्ठा होना–शत्रु के मित्रों का नाश–शत्रु के खजाने का नाश–यह चार यात्रा के समय हैं। ० रात्रि को मारपीट करना। + मन्त्री–देश–गढ़–सेना–खज़ाना–यह पञ्चवर्ग हैं और अत्यन्त–साधारण–न्यून यह तीन प्रकार हैं॥

अङ्ग रखनेवाले राज्य के नाश वृद्धि और समानता और दूत के उद्योग के फल से अपने देश की वृद्धि का वर्णन किया और शत्रु मित्र और मध्यस्थों की फूट का वर्णन किया इसीप्रकार पराक्रमियों को पीड़ा देना और मारना वर्णन किया अत्यन्त सूक्ष्म व्यवहार उसीप्रकार कांटे का उखाड़ना अर्थात् दुष्टों को मारना मल्लक्रीड़ा व्यायाम आदि शस्त्रों के चलाने का अभ्यास धन का संचय यह सब वर्णन किये विना जीविका के पुरुषों का पालना और सेवकों का देखना समयपर धन का दान करना व्यसनों में प्रवृत्त न होना यह सब वर्णन किया इसीप्रकार राजगुण अर्थात् चढ़ाई आदि सेनापति के गुण त्रिवर्ग का हेतु और गुण दोष वर्णन किये नौकरों के अनेक प्रकार के बदचलन और नेकचलन सब में संदेह करना भूल का त्यागना अप्राप्त को प्राप्त करना और प्राप्तवस्तु की बहुत वृद्धि करना फिर अच्छी वृद्धि पानेवाली वस्तु को अच्छे सुपात्रों का दान करना यह सब वर्णन किया धन का खर्च करना धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये कहाजाता है इसीप्रकार आपत्ति के दूर करने के लिये चौथा दान इसमें वर्णन किया हे राजन्! इसीप्रकार इस लाख अध्याय में क्रोध और काम से उत्पन्न होनेवाले दश व्यसन वर्णन किये और आचार्यों ने शिकारबाजी, पांसा, मद्य पीना, स्त्री यह चार व्यसन काम से उत्पन्न होनेवाले कहे ब्रह्माजी ने उनको भी इसमें वर्णन किया और वैसेही क्रोध से उत्पन्न होनेवाले कठोरवचन, उग्रता, दण्डपारुष्य, देह को घायल करना, त्याग करना, धन को निरर्थक खर्च करना यह छह व्यसन वर्णन किये नानाप्रकार के यन्त्र और उनकी क्रिया वर्णन कीं शत्रु की सेना से देश आदि की पीड़ा और घायल होना स्थानों का तोड़ना यह सब वर्णन किया सीमा के वृक्षों का तोड़ना और राज्य की आमदनी का रोकना शस्त्र आदि सामान के बनाने की रीतियों का वर्णन किया और पणवानक, शङ्ख भेरी बाजों का बजाना और द्रव्यों का संग्रह करना वर्णन किया जो कि संख्या में छह हैं मणि, पशु, पृथ्वी, वस्त्र, दासी, दास और स्वाधीन होनेवाले को शान्त करना सत्पुरुषों का पूजन करना परिडतों के यज्ञांगतादान और होम की विधि को जानना वर्णन किया मङ्गलवस्तु सुवर्णादि का स्पर्श करना, देह को शृङ्गार करना, भोजन करना, सदैव ईश्वरको मानना यह सब वर्णन किया अकेले की चढ़ाई की रीति सत्यता मीठा बोल उत्सव समाजों की क्रिया इसीप्रकार ध्वजा धन आदि का वर्णन किया हे युधिष्ठिर! इसीप्रकार चौतरा आदि बैठने का स्थान मनुष्यों के गुप्त प्रकट वृत्तान्तों को और व्यवहारों को सदैव देखना वर्णन किया ब्राह्मणों को अदण्ड होना और युक्ति से दण्ड देना और विजातिवालों और गुणों से उत्पन्न होनेवाली प्रतिष्ठा पुरवासियों की रक्षा देश की अच्छी वृद्धि करना और बारह राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले

मण्डल में जो स्थिरचित्त है उसका भी वर्णन किया अर्थात् विजय के चाहनेवाले चारों ओर चार शत्रु और उनसे आगे चार मित्र फिर उनसे आगे चार उदासीन यही मण्डल के बारह राजा होते हैं और बहत्तर प्रकार के संस्कार देह, देश, जाति और कुल के धर्म्म अच्छेप्रकार वर्णन किया और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष युक्तियां और अनेकप्रकार की इच्छा धन आदि इसमें कहे मूल-कर्म्म अर्थात् माल के प्रबन्ध की रीति माया, योग, नदी और नियत प्रदेशों के दोषी करने का भी वर्णन किया और जिन २ रीतियों से यह संसार विरुद्ध न होवे वह सब रीतियां नीतिशास्त्र में वर्णन कीं वह ब्रह्माजी इस उत्तम शास्त्र को बनाकर उन देवताओं से जिनमें मुख्य इन्द्र देवता थे प्रसन्न होकर यह बोले कि संसार की वृद्धि और धर्म्म, अर्थ, काम के नियत होने के वास्ते सरस्वती की यह सार बुद्धि प्रकट है लोक की रक्षा करनेवाला दण्ड पारितोषिक से संयुक्त यह नीतिशास्त्र दण्ड युक्त होकर लोगों में विचरेगा यह संसार दण्ड ही से आधीन होता है और दण्डही को पाताहै यह दण्डनीति नाम से प्रसिद्ध तीनोंलोकों में वर्त्तमान होगी छहगुणों से भरी यह दण्डनीति महात्माओं के आगे नियत होगी इस में धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सबका वर्णन किया तदनन्तर भवरूप विशालाक्ष स्थाणु उमापति शङ्कर भगवान् ने इस नीति को लिया फिर शिवजी ने संसारी जीवों की थोड़ी अवस्था जानकर उस ब्रह्माजी के बनायेहुये महाअस्त्र नाम शास्त्रका सार निकाला उसमें दशहजारही रह गया कि उस विशालाक्ष नाम सारको इन्द्र ने पाया इन्द्र ने भी उसका पांच हजारही में आशय निकाला उसका नाम बाहुदन्तक रक्खा उसको बृहस्पतिजी ने तीनहीहजार में संक्षेप किया वह बार्हस्पती नाम से प्रसिद्ध हुआ फिर योगाचार्य शुक्रजी ने एकही हजार में संक्षिप्त करके वर्णन किया इस क्रम से महर्षियों ने अवस्था की न्यूनता देखकर संक्षेप किया इसपीछे देवताओं ने प्रजापति विष्णुजी से कहा कि संसारी पुरुषों में से एक योग्य पुरुष जो राज्य-शासन करने के योग्य हो उसको आज्ञा दीजिये तब नारायणजी ने विचारकर रजोगुण से रहित तैजस नाम मानसी पुत्र उत्पन्न किया उसनिरञ्जन महाभाग ने पृथ्वी पर राज्य करना न चाहा और संन्यास धारण किये की इच्छा करी उसका पुत्र कीर्त्तिमान् हुआ वह भी जीवन्मुक्त हुआ उसकापुत्र कर्दमजी हुये वह भी बड़े तपस्वी हुये और कर्दमजी का पुत्र अनङ्ग नाम साधुरक्षक और दण्डनीति में प्रवीण हुआ अनङ्ग के पुत्र महानीतिज्ञ पराक्रमी ने जाकर बड़े भारी राज्य को प्राप्त किया और इन्द्रियों के वशीभूत हुआ उस मृत्यु को पुत्र मानसी सुनेथा नाम तीनों लोक में प्रसिद्ध हुआ उसका पुत्र वेन हुआ वह राग द्वेष में वशीभूत हो प्रजापर अधर्म्म करनेवाला हुआ उस को ब्रह्मवादी ऋषियों

ने मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुशों से मारा और उसकी दाहिनी जङ्घा को मन्त्रों से मथा तब उस जङ्घा से एक पुरुष ऐसा उत्पन्न हुआ जोकि छोटा देह कुरूप और कोयले के समान वर्ण रक्तनेत्र कालेकेशवाला था उसको देखकर ऋषियों ने कहा कि बैठजावो उसी से सैकड़ों निषाद उत्पन्न हुये जोकि वन में और पर्वतों में निर्दयचित्त होकर रहते हैं और विन्ध्याचलवासी दूसरे प्रकार के म्लेच्छ हैं वह भी उसी से पैदा हुये फिर उन महर्षियों ने उस की दाहिनी जङ्घा को मथा उससे एक ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ जो रूप में द्वितीय इन्द्र सुवर्णनिर्मित वस्त्र और खड्ग धनुष बाण धारण करे वेदवेदाङ्गों का जानने-वाला धनुर्वेद में पण्डित था उस के आधीन सब दण्डनीति हुई तब वह वेन-पुत्र ऋषियों से हाथ जोड़कर बोला कि धर्म्म, अर्थ की देखनेवाली बड़ी सूक्ष्म बुद्धि मुझ में उत्पन्नहुई इस बुद्धि के अनुसार मुझ को क्या करना योग्य है यह समझाकर आप मुझ से कहिये आप अर्थसंयुक्त जिस काम को कहोगे उसको मैं करूंगा इसमें कोई विचार न करियेगा तब देवता और महर्षिलोग बोले कि जिसमें ठीक २ निश्चयपूर्वक धर्म्म है उसको निस्सन्देह करो और सब जीवों में समानदृष्टि हो प्रिय अप्रिय को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ को दूर से त्याग ऐसा काम करो कि लोक में जो कोई मनुष्य धर्म्म से हटजाय वह सदैव आप से दण्ड के योग्य है चित्त से कर्म्म से वार्त्ता से बराबर शपथ करो कि मैं ब्राह्मणों का पालन करूंगा और इस शास्त्र में दण्डनीति से सम्बन्ध रखनेवाला जो नीति-धर्म्म कहा उसको निस्सन्देह मैं करूंगा और कभी इन्द्रियों के वशीभूत न हूँगा और यह भी प्रतिज्ञा करो कि मुझ से ब्राह्मण अदण्ड हैं और यह भी प्रण करो कि सब संसार की रक्षा करूंगा। फिर उस वेनपुत्र ने देवताओं से कहा कि महा-भाग पुरुषोत्तम ब्राह्मण मुझ से नमस्कार के योग्य हैं फिर ब्रह्मवादी ऋषियों ने कहा कि ऐसाही हो वेदरूप भण्डार रखनेवाले शुक्रजी उसके पुरोहित हुये वालखिल्य ऋषियों के समूह और सारस्वत ब्राह्मण उनके मन्त्री हुये और गर्गमुनिजी उसके ज्योतिषी हुये यह अपने कुल में आठवां हुआ अर्थात् पहिला विष्णु, दूसरा [illegible]रज, तीसरा कीर्त्तिमान्, चौथा कर्दम, पांचवां अङ्ग, छठा अवतल, सात[illegible] चढ़ाइ[illegible]ठवां पृथु हुआ मनुष्यों में यह श्रेष्ठ श्रुति प्रसिद्ध है प्रथम इसके पुत्र [illegible] और मागध नाम उत्पन्न हुये वेन का पुत्र पृथु इन दोनों पर प्रसन्न हुआ तब सूत को अनूपदेश और मागध को मगधदेश दिये उस के समय में जो असमभूमि थी उसको उसने सम करवायी यह भी सुना है कि सब मन्वन्तरों में पृथ्वी असम होजाती है फिर पृथु ने चारों ओर से शिला के जालों को धनुष की कोटी से उठाया उस से पहाड़ बड़े हुये तब पृथु देवताओं के देवता इन्द्र और विष्णुजी और प्रजापालक ऋषि मुनि ब्राह्मण आदि

से अभिषेक करायागया उसको पृथ्वी ने साक्षात् रत्नों को लेकर सेवन किया और नदियों के स्वामी समुद्र ने और पर्वतों के अधिपति हिमाचल ने और इन्द्रदेवता ने उसको असंख्य धन दिया और स्वर्णमयी पर्वतों ने सुवर्ण दिया यक्ष राक्षसों के अधिपति कुबेर ने भी अक्षय धन दिया उससे धर्म्म, अर्थ, काम सिद्ध हुये हे पाण्डव ! घोड़े, रथ, हाथी और करोड़ों मनुष्य पृथु के ध्यान सेही उत्पन्न होगये उस समय किसीको वृद्धापन देह रोग और न दुर्भिक्ष आदि कोई प्रकार की व्याधि न थीं उसकी उत्तम रक्षा से कभी सर्प चोर आदि से भय नहीं होता था उसकी यात्रा के समय समुद्र के जल स्थिर हुये और पर्वतों ने मार्ग दिये और कभी ध्वजापतन नहीं हुआ उसने यक्ष, राक्षस, नाग आदि समेत पृथ्वी को दुहा और सत्रह प्रकार की खेतियां प्रकट कीं और जिस २ का जो अभीष्ट था वह भी उस महात्मा ने लोकधर्म्म को उत्तम रखनेवाला किया और सब प्रजा को प्रसन्न किया इसीसे राजा शब्द कहाजाता है ब्राह्मणों के घावों की रक्षा से क्षत्रियशब्द हुआ और बहुत धर्म्म से यह भूमि प्रसिद्ध हुई और पृथ्वी नाम हुआ और आप सनातन विष्णुजी ने मर्यादा नियत की कि हे राजन् ! कोई पुरुष तेरे विरुद्ध काम नहीं करेगा और योग के द्वारा आप विष्णु ने उस की देह में प्रवेशकिया इसीसे यह नर देवताओं के समान है इसी से जगत् राजा को प्रणाम करता है इससे राज्य दण्डनीति से सदैव रक्षा के योग्य है इसीप्रकार दोनों के होने से और देश की दशाओं के देखने और पोषण करने से राजा को कोई पराजय नहीं करसक्ता है इस लोक में समदर्शी राजा के चित्त और कर्म्म से कियाहुआ उत्तम कर्म्म और उत्तमफल के वास्ते कल्पना कियाजाता है इसका क्या हेतु है जो देवगण के सिवाय सब लोग राजा के स्वाधीन होते हैं इसका हेतु यह है कि प्रथम विष्णु के मस्तक में सुवर्ण का कमल उत्पन्न हुआ उससे बुद्धिमान् धर्म्म की रक्षा करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई और लक्ष्मी से धर्म्म के द्वारा अर्थ उत्पन्न हुआ इसीप्रकार अर्थ से धर्म, अर्थ उत्पन्न हुये और लक्ष्मीजी राज्य में नियत होती हैं तब स्वर्ग से आकर दण्डनीति में कुशलबुद्धि राजा उत्पन्न होता है वह मनुष्य विष्णु के माहात्म्य का जाननेवाला बुद्धिमान् होकर प्रतिष्ठा को पाता है इसकारण देवताओं के अभिषेक कियेहुये राजा को कोई उल्लङ्घन करके कर्म्मकर्ता नहीं होसक्ता है और यह संसार एक राजा के आधीन होता है उसके विना यह जगत् कर्म्म करने को समर्थ नहीं होसक्ता हे राजन् ! शुभकर्म्म शुभफल के निमित्त कियाजाता और लोक उस समान अङ्गी एक के आज्ञावर्ती नियत होता है जिसने उसके सौम्य मुख को देखा वही उसका आज्ञाकारी हुआ और वही उससुन्दर ऐश्वर्यवान् अर्थवान् और रूपवान्को भी देखता है उस दण्ड की प्रतिष्ठा से शुद्धलक्षणवाली नीति और उसमें वर्तमान

जो उत्तम धर्म्म सो दृष्टि पड़ता है इसी से यह सब क्रमपूर्वक कियागया और इस शास्त्र में शास्त्र पुराण महर्षियों की उत्पत्ति तीर्थों का और नक्षत्रों का वंश कहागया और इसी प्रकार चारों आश्रमों का धर्म्म चातुर्होत्र आदि चारोंवर्णों का धर्म्म और चारों विद्या इसमें वर्णनहुई इतिहास, वेद, सम्पूर्ण न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति इस में वर्णन करी वृद्धों की सेवा, दान, शौच, युक्ति, चढ़ाई आदि सबजीवों पर कृपा का करना और सब यन्त्र इस में कहेगये और उस ब्रह्माजी के शास्त्र में पृथ्वी और पाताल का सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कियागया इसी हेतु से ज्ञानियों ने राजा शब्द को सदैव जगत् में कहा हे राजन् ! देवता और नरदेव यह दोनों समान हैं यह सब राजाओं का माहात्म्य हम ने पूर्णता से कहा अब अन्य क्या वार्त्ता आप को पूछना है ॥ १४५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

साठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसके पीछे युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर भीष्मजी से यह प्रश्न किया कि सब वर्णों के कौन २ धर्म्म हैं वह सब पृथक् २ कहिये चारों वर्ण और आश्रम और धर्म्मों को कौन मानता है और देश किस रीति से वृद्धि को पाता है और राजा किस राजा से बड़ाई पाता है और पुरवासी और अधिकारी लोग कैसे आनन्दपूर्वक वृद्धि पाते हैं और कैसे खज़ाने दण्ड गढ़ सहायक मन्त्री सेना पुरोहित आचार्यों को त्यागकरे राजा को कैसी आपत्ति में कैसे २ मनुष्यों पर विश्वास करना योग्य है और आत्मा की रक्षा दृढ़तापूर्वक कहां करनी योग्य है यह सब बातें आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि महाधर्म्म को और जगत् के स्वामी श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके मैं सनातनधर्म्मों को कहता हूं क्रोध न करना सत्य बोलना क्षमाकरना अपनी स्त्रियों में सन्तति पैदा करना पवित्रता और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष किसी से शत्रुता न करना शुद्धभाव होना पोषण आदि यह तो सब वर्णों के धर्म्म हैं अब जो केवल ब्राह्मणों का धर्म्म है उसको कहता हूं कि शान्त स्वभावही को प्राचीन धर्म्म कहा और उसी में वेदपाठ का अभ्यास यह भी नित्यकर्म्म होता है उस अपने कर्म्म में सावधान शान्तवृत्ति और विपरीतधर्म न करनेवाले ब्राह्मण को जो धन प्राप्त होय तो विवाह करके सन्तान को उत्पन्न करे और दान और यज्ञ कर धन को विभाग कर भोगना चाहिये ब्राह्मण वेदपाठही से आनन्दित रहता है दूसरा कर्म्म करे या न करे क्योंकि मैत्र कहाजाता है अर्थात् सब का मित्र होता है और क्षत्रिय का भी धर्म्म मैं कहता हूं कि दान करे किसी से प्रार्थना न करे यज्ञ करे परन्तु दूसरे को यज्ञ न करावै वेद पढ़े परन्तु

किसी को पढ़ावे नहीं प्रजा को पोषण करे चोरों के मारने में तत्पर रहे और युद्ध में पराक्रम करे जो राजालोग शास्त्रज्ञ और यज्ञों से पूजन करनेवाले हैं और युद्ध में विजयी हैं वह क्षत्रियों में उत्तम और लोकों के विजय करनेवाले हैं जो क्षत्रिय विना घायल युद्ध से पीठ फेरता है उसकी प्राचीनलोग प्रशंसा नहीं करते हैं यह क्षत्रियों की उत्तम रीति कही चोरों के मारने के सिवाय इसका कोई बड़ा कर्म्म नहीं है दान, वेदपाठ, जप, यज्ञ राजाओं का कल्याण कहाजाता है इसकारण से धर्म्म की इच्छा रखनेवाले राजा को अधिक युद्ध करना चाहिये राजा अपनी सब प्रजा को अपने धर्म्मों में नियत करके वह सब कर्म्म जिसमें अन्तःकरण में शान्तचित्त हो धर्म्म से करावै राजा प्रजा के पोषण करने से महाआनन्द में प्राप्त होता है दूसरा कर्म्म करे या न करे राजा इन्द्र का पुत्र कहा जाता है अब वैश्य के धर्म्म कहता हूं वेदपाठ पवित्र यज्ञ से धन को संचय करने में प्रवृत्त चित्त होकर वैश्य पिता के समान पशुओं का पोषण करे इसके विशेष दूसरा कर्म्म विपरीत है पशुओं की रक्षा से बड़े सुख को पाता है ब्रह्माजी ने पशुओं को उत्पन्न करके वैश्य को दिये और ब्राह्मण और राजा को सब प्रजा दी है इनकी जीविका भी कहता हूं छह गौवें में से एक गऊ के दूध को पिये और सौ में से एक गऊ और बैल को ले और व्यापार के नफ़े में सातवां भाग ले इसीप्रकार उनके सींग खुर आदि को ले और सब बीज के व्यापार और खेती के सातवें भाग को ले यही बर्षौड़ी जीविका है वैश्य को ऐसी बुद्धि कभी न करनी चाहिये कि मैं पशुओं का पोषण न करूं वैश्य के राजी होने में दूसरे किसी की रक्षा पशुओं में योग्य नहीं अब शूद्र का भी धर्म्म कहता हूं ब्रह्माजी ने शूद्र को सब वर्णों का दास नियत किया इस हेतु से तीनों वर्णों की सेवा ही शूद्र का कर्म्म कहाजाता है उनकी सेवा से वह बहुत सुख पाता है शूद्र क्रमपूर्वक तीनों वर्णों की सेवाकरे और किसी दशा में धन को इकट्ठा न करे क्योंकि वह छोटा होकर धन के हेतु से उत्तम वर्ण को अपने आधीन न करेगा चाहे राजा की आज्ञा से धर्म्मज्ञ शूद्र धन को संचयकरे उसकी जीविका को कहता हूं शूद्र तीनों वर्णों की ओर से अवश्य पोषण के योग्य कहाजाता है छत्र सितार पलँग आदि जूते का जोड़ा वान का काढ़ना यह सब पुरानी वस्तु सेवा करनेवाले शूद्र को देना चाहिये पुराने वस्त्र द्विजों के धारण करने के योग्य नहीं होते वह शूद्रही को देने योग्य हैं वही उसका धर्म्म-रूप धन है द्विजों में जिस किसी की सेवा करने की इच्छा से शूद्र आवे उसकी जीविका उस द्विज सेही धर्म्मज्ञों ने कही है वही द्विज असन्तान शूद्र को भोजन देने के योग्य है और वृद्ध अथवा निर्बल भी पोषण के योग्य हैं शूद्र को किसी आपत्ति में भी स्वामी का त्यागना उचित नहीं है और धन के नाश होजाने

पर वह स्वामी अपने बाल बच्चों से भी अधिक पोषण के योग्य है शूद्र का धन नहीं है वह धर्म स्वामी के लेने के योग्य है और तीनों वर्णों की सेवा करनाही उसका यज्ञ है स्वाहाकार, वषट्कार, मन्त्र शूद्र में नहीं होसके इसकारण यह वेदोक्त व्रत बुद्धि से रहित शूद्र आप ग्रहशान्ति और वैश्वदेव यज्ञों से पूजन करे उस पाप की दक्षिणा को पूर्णपात्ररूप कहा पै जवन नाम शूद्र ने ऐन्द्राग्नि के विधान से एकलाख दक्षिणा दी हे राजन् ! सब वर्णों का जो यज्ञ है वह उसका भी होता है क्योंकि उनका वह सेवक है और सब यज्ञों में पहिला श्रद्धायज्ञ कहाजाता है पवित्र यज्ञ करनेवालों का वसुदेवता है वेदपाठी ब्राह्मण अपने २ कर्म्म से परस्पर में देवता हैं यहां उन्हों ने अच्छेप्रकार से दृढ़ता से सकल यज्ञों से पूजन किया तीनों वर्णों में ब्राह्मणों सेही सन्तान उत्पन्न कीगई इसीकारण से यज्ञ में शूद्र का अधिकार है ब्राह्मण यद्यपि देवताओं के भी देवता हैं इस से जो वह कहैं वही यथार्थ है इस हेतु सब यज्ञ स्वभाव से भी चारोंवर्णों से कियेजाते हैं ऋग्, यजु, सामवेदों का जाननेवाला ब्राह्मण सदैव देवता के समान पूजन के योग्य है और ऋग्, यजु, सामवेदों का अनधिकारी और तीन वर्णों के पास रहनेवाला शूद्र प्राजापत्य है हे राजन्, युधिष्ठिर ! मानसी यज्ञ सब वर्णों में होता है इस मानसीयज्ञ करनेवाले की इच्छा देवता और दूसरे मनुष्य नहीं करते हैं यह बात नहीं है अर्थात् श्रद्धा की पवित्रता से सब लोग इसके यज्ञ में भाग को चाहते हैं इसी हेतु से सब वर्णों में श्रद्धा यज्ञ कहाजाता है अग्नि के विना शूद्र का अधिकार पवित्रता यज्ञों में किसप्रकार से है यह शङ्का करके कहते हैं ब्राह्मण तीनोंवर्णों का असाधारण देवता है इस हेतु से कि उन ब्राह्मणों ने अपने यजमान दूसरे वर्णों को यज्ञ न कराया हो वह भी बात नहीं है अर्थात् ब्राह्मणों ने यह कहकर कि हम अमुक इच्छा से अमुकशर्म्मा आदि जे विगड़ेहुये यज्ञ का पूजन करवाते हैं यज्ञ तो क्या वेदोक्त विवाह के सिवाय अग्नियों का विस्तार वेदोक्त बुद्धि के अनुसार वैश्य से सम्बन्ध रखनेवाला है इस निमित्त ब्राह्मणों ने तीनों वर्णों में यज्ञ उत्पन्न किया इस कारण सब वर्ण साधु हैं और जाति वर्ण अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उस ब्राह्मण की विपरीत दशा में उत्पन्न होते हैं जिनको अनुलोम विलोम कहते हैं जैसे कि एक अकार सब अक्षरों से मिलकर बहुत रूपवाला होता है अर्थात् साम, यजु, ऋग्वेदों के रूपों को धारण करता है उसीप्रकार अकेला ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म उन वर्णों में उत्पन्न हुआ हे राजन् ! इस स्थानपर प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष और यज्ञ की इच्छा करनेवाले वानप्रस्थ ब्राह्मणों की कहीहुई स्तुतिरूप कहावत को कहते हैं कि श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष प्रातःकाल सायंकाल पर अग्नि में धर्मपूर्वक आहुति देना है इससे निश्चय श्रद्धाही

बड़ा कारण है इसमें जो यज्ञ वायुदेवता का है वह उत्तम है और जो बुद्धि के अनुसार कियागया वह सबसे श्रेष्ठ है इसके विशेष अनेक प्रकार के कर्म्मफल देनेवाले रुद्र नाम सोलह अग्निहोत्र हैं अच्छे ज्ञान से जो पुरुष उनको जानता है वह श्रद्धावान् द्विजन्मा यज्ञ करने के योग्य है जो चोर या पापी या महापापी यज्ञ से पूजन किया चाहता है उसको साध्वी कहते हैं और ऋषिलोग उसकी प्रशंसा करके कहते हैं कि यह निस्संदेह साधु है सदैव सब दशा में प्रत्येक वर्ण को पूजन करना चाहिये यह सिद्धान्त है तीनों लोक में यज्ञ के समान कोई बात नहीं है इस हेतु से पवित्र श्रद्धा में नियतबल इच्छा के अनुसार दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले पुरुष के द्वारा पूजन कराना चाहिये ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे सत्यपराक्रमिन्, युधिष्ठिर! अब तुम चारों आश्रमों के नाम और कर्म्मों को सुनो ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चार आश्रम हैं इनमें जटाधारणसंस्कार और द्विजभाव को पाकर वेदाध्ययन कर आधान आदि कर्म्मों को करके आत्मज्ञानी जितेन्द्रिय और गृहस्थाश्रम से पूर्णकाम स्त्री के साथ अथवा अकेलाही वानप्रस्थ नाम आश्रम को प्राप्त करे फिर वह धर्म्म का जाननेवाला ऊर्ध्वरेता हो वानप्रस्थों के शास्त्र को पढ़कर अर्थात् कर्म्म के ज्ञान द्वारा प्राप्तकर संन्यासी होकर केवल मोक्ष को पाता है हे राजन्! इस लोक में पण्डित ब्राह्मण को प्रारम्भ में ऊर्ध्वरेता मुनियों के कर्म्म करने चाहिये और ब्रह्मचारी ब्राह्मण को मोक्षधर्म्म में प्रवृत्त होकर भिक्षा मांगना उत्तम है जिस आश्रम में मिताहारी, अनाहारी, स्थानरहित, यथालाभ सन्तोष, मुनिरूप, शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, समदर्शी, भोग काम संकल्प आदिसे पृथक् ब्राह्मण होता है वह कैवल्य मोक्ष को पाता है जो पुरुष वेदों को पढ़कर मृत्यु के समान कर्म्म का करनेवाला सन्तान को उत्पन्न करके सुखों को भोग योग में प्रवृत्त उन कठिन धर्म्मों को जोकि मुनियों से सेवित हैं करे और अपनीही स्त्री में तृप्त ऋतुकाल में उसके पास जानेवाला शास्त्र के अनुसार कर्म्मकरे धूर्त्तता कुटिलतारहित, मिताहारी, देवता में प्रीतिमान्, स्वरूप का जाननेवाला, सत्यवक्ता, मृदुस्वभाव, दयावान्, क्षमावान्, सावधान, गुरु और शास्त्र के वचनों का माननेवाला और ब्राह्मणों को अन्न का देनेवाला, ईर्षारहित, सब आश्रमियों का दाता, सदैव वेदोक्तकर्म्म करनेवाला, गृहस्थ आश्रमी हो ऐसे स्थान में महानुभाव ऋषियों ने नारायणगीत को कहा है जो कि बड़े २ अर्थ और तप से भरा है उसको सुनो कि अपनी स्त्रियों के साथ सत्यता और शुद्धभाव और अतिथिपूजन धर्म्म अर्थ और

प्रीति यह सुखरूप कर्म्म इस लोक और परलोक में सेवन करने के योग्य हैं महर्षि लोग इस उत्तम आश्रम में निवास करनेवाले पुरुषों का कर्म्म पुत्र स्त्रियों का पोषण और वेदों का पढ़ना कहते हैं जो यज्ञ करने का अभ्यास रखनेवाला ब्राह्मण इसप्रकार बुद्धिके अनुसार गृहस्थआश्रम में निवास करता है वह गृहस्थों की जीविका को अच्छी तरह शुद्ध करके स्वर्ग में अत्यन्त पवित्र फल को पाता है अब ब्रह्मचारी के कैवल्य मोक्ष को वर्णन करते हैं कि अकेला सब देवताओं को स्मरण करता और सब वेदमन्त्रों को जपता और एकगुरु में विश्वास करने-वाला मैले वस्त्र धारण करनेवाला ब्रह्मचारी सदैव व्रत करनेवाला दीक्षावान् जितेन्द्रिय वेदान्तशास्त्र के विचारकरने के योग्य ध्यान को करता गुरु के कुल में निवास करे गुरुसेवापरायण होकर छह कर्मों से निवृत्त होजाय उन में प्रवृत्त न होजावे और दण्डक्रिया से युक्त आचरण नहीं करे शत्रुओं को न सेवे यह ब्रह्म-चारी का आश्रमपद इच्छा कियाजाता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

बासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आप मुझ से वह सब धर्म्म वर्णन कीजिये जो कल्याणरूप सुखद उत्तम फल के दाता हिंसारहित सब के प्रिय सुगम रीति-वाले मुझ सरीखे राजा को सुख के देनेवाले हों भीष्मजी बोले कि ब्राह्मण के चार आश्रम कहे उनको तीन वर्ण नहीं करसक्ते हे राजन् ! बहुत से कर्म्म ऐसे कहे जो राजा सेही सम्बन्ध रखते हैं वह स्वर्ग के दाता हैं तेरे प्रश्न के अनुसार यह धर्म्म हिंसायुक्त नहीं हैं वह सब बुद्धि के अनुसार क्षत्रियधर्म्म में नियत हैं जो निर्बुद्धि पुरुष ब्राह्मणहोकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के कर्म्म करता है वह इस संसार में निन्दित होकर परलोक में नरक भोग करता है और हे राजन् ! इस लोक में दास, कुत्ता, भेड़िया आदि जो पशुओं के नाम नियत हैं वही नाम उस ब्राह्मण के होते हैं जो अपने कर्म्मों को त्याग करदेता है चारों आश्रमों में चपलता से रहित सब धर्म्मों में प्रवृत्त चित्त के जीतनेवाले ब्राह्मण के छह कर्म हैं उन कर्मों के करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मरूप हैं ब्राह्मण अपने कर्म्मों को छोड़कर छोटे धर्म्मों में क्यों प्रीति करता है यह संस्कार का हेतु कहते हैं जो पुरुष जिस निजदशा में जिस देश और काल में जिस फल की इच्छा से जो बुराभला कर्म्म करता है वह लोभ कर्म्म के फल से और बहुत दिन के अभ्यास से सगुणब्रह्म को पाता है अर्थात् यह भी निन्दित नहीं है हे राजन् ! तुम ब्याज लेना खेती करना व्यापार शिकार से जीविका करना और इन सब में बड़ा वेदपाठ को जानने के योग्य हो अभ्यास से कर्म्म स्वीकार होते हैं फिर

उत्तम कर्म का अभ्यास नहीं करते हैं और यह शङ्का करके कहते हैं कि काल से प्रकट होनेवाला पुरुष पिछले संस्कार और काल की गति से चलायमान होता है इसी से स्वाधीन होकर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट कर्म्मों को करता है पिछले पुण्य पाप देह की उत्पत्ति में प्रधान और यह लोक अपने प्रिय कर्म्म में श्रद्धा प्रीति रखनेवाला है और जीवात्मा प्रवृत्त है वा स्वतन्त्र है इसीकारण शास्त्र में आज्ञा नहीं कियेगये ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्विषाष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

तिरसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि धनुष का खैंचना शत्रु का मारना खेती व्यापार पशु पालना धन इत्यादि के लिये दूसरे की सेवा करना यह कर्म्म ब्राह्मणों के करने के योग्य नहीं हैं ज्ञानी गृहस्थ ब्राह्मणको छह ब्रह्मकर्म्म अर्थात् प्राणायाम आदि सेवन करने के योग्य हैं सब कर्मों से निवृत्त ब्राह्मण का कर्म्म वनवास उत्तम कहाजाता है राजा की नौकरी खेती करना व्यापार से जीवन करना कुटिलता परस्त्रीगमन और व्याज की जीविका करना इन सब बातों को अत्यन्त त्यागकरे जो ब्राह्मण दुराचारी धर्म्मों से पृथक् वृषलीपति अर्थात् विना विवाही स्त्री का पति निर्दय मनुष्य की देह का नौकर अपने कर्म्म का त्यागनेवाला है वह शूद्र होता है वेदों को पढ़े वा न पढ़े तो भी शूद्रों के समान है वह भी दासों के समान भोजन कराने के योग्य है यह सब शूद्र के समान होते हैं इन को देवकार्य्य में त्याग करे उस ब्राह्मण में दियेहुये हव्य कव्य और सब दान न देने के बराबर हैं जोकि विना मर्य्याद अपवित्र निर्दयचलन और हिंसा करनेवाला अपने धर्म्म कर्म्म का त्यागनेवाला हो इसकारण ब्राह्मण का शान्तस्वभाव पवित्रता और शुद्धपन भी नियत किया इसीप्रकार पहिले समय में ब्रह्माजी ने ब्राह्मण के सब आश्रम पैदा किये जो जितेन्द्रिय यज्ञ में अमृत का भोजन करनेवाला सबका प्रिय दयावान् क्षमायुक्त निर्लोभ सरल मृदुचित्त हिंसारहित सन्तोषी और सहनशील हो वही ब्राह्मण है दूसरा पाप कर्म्म करनेवाला नहीं हे राजन्! इच्छायुक्त धर्म्म सब जीव और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में रक्षित रहते हैं इसकारण विष्णुजी वर्णों को शान्तिधर्म्म में अप्रवृत्त मानकर उनको नहीं चाहते तब उन में जो हानि होती है वह कहते हैं लोक में सब जीवों को सुख आदि न होवे और चारों वर्ण का धर्म्म और वेदवचन भी नहीं होयँ सब यज्ञकर्म्मादि क्रिया नष्ट होजायँ और सब आश्रमी न होयँ क्योंकि यह सब विष्णुही की कृपा से होते हैं जो राजा तीनों वर्णों के आश्रम का सेवन किया चाहो तो हे राजन्! चारों आश्रम में देखे हुये उन धर्म्मों को

सुनो कि वेदान्त में अधिकार न होने से पुराणों के द्वारा आत्मा को सुनने की इच्छा से देह के वल के अनुसार तीनोंवर्णों की सेवाकरनेवाले सन्ततिमान् राजा की आज्ञा पाके और आचारनिष्ठा में तीनों वर्णों के समान दश धर्म्मों के प्राप्त करनेवाले अर्थात् योगधर्म्मों के जाननेवाले शूद्र के सव आश्रम नियत हैं एक शान्ति दान्ति कल्याण गुण को त्यागकर उस धर्म्मचारी शूद्र का अन्त में भिक्षाधर्म्म कहा इसीप्रकार वैश्य और क्षत्रिय का भी भिक्षाकर्म्म कहा है कर्म्म से निवृत्त वृद्धराजा के कामों में परिश्रम करनेवाला राजा की आज्ञा से वैश्य संन्यास आश्रम को धारण करे इससे हे युधिष्ठिर ! राजा भी धर्म्म से वेदों को और राजशास्त्रों को पढ़कर सन्तति को उत्पन्न करके यज्ञ में अमृत को भोजन करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन कर राजसूय अश्वमेध आदि अनेकयज्ञों को वुद्धि के अनुसार करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देके युद्ध में थोड़ी या वहुत विजय को पाकर प्रजापोषण करनेवाले पुत्र को या दूसरे गोत्र के उत्तम क्षत्रिय के पुत्र को राज्यपर नियत करके विचारयुक्त वुद्धि के अनुसार पितृयज्ञों के द्वारा पितरों को अच्छेप्रकार से पूजकर यज्ञों से देवताओं को और वेदों से ऋषियों को प्रसन्नकर अन्तावस्था में जो दूसरे आश्रम को चाहे वह क्रम से एक आश्रम से दूसरे आश्रमों को प्राप्त करके सिद्धि को पाता है वह राजर्षिभाव से भिक्षा करे और सेवा से न करे तो वह गृहस्थधर्म्म से जुदा भी आनन्दपूर्व्वक भिक्षा करे यह तीनों का सदैव कर्म्म नहीं है यही वृत्तान्त चारों आश्रमियों का है अपने धर्म्म पर चलनेवाले मनुष्यों का जो धर्म्म लोक में उत्तम है वह क्षत्रियों की भुजा से सम्बन्ध रखता है तीनों वर्ण और आश्रमियों के सव धर्म्म उपधर्म्मों समेत राजा के धर्म्म से प्रकट होते हैं इसको वेद में कहाहुआ जानता हूं जैसे कि सव जीवों के चरण हाथी के पैर में छिपजाते हैं इसीप्रकार सव धर्म्मों को राजधर्म्मों में अन्तर्गत जानो धर्म्म के जाननेवाले दूसरे धर्म्मों को अल्प फल देनेवाला कहते हैं उत्तम पुरुषों ने क्षत्रियधर्म्म को वड़ा रक्षाका स्थान और महाकल्याणरूप है राजधर्म्म को श्रेष्ठ माननेवाले सव धर्म्म और वर्ण पोषणकर्त्ता जानते हैं राजा को धर्म्मरक्षा करने से सव धर्म्मों का छठाभाग मिलता है दण्डनीति के नष्ट होनेपर तीनों वेद डूवजाते हैं और सव वड़े २ धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं और आश्रमों के सव धर्म्म जातेरहते हैं सव त्यागों के छठेभाग को लेता है इस से राजा भी त्यागी होता है सव दीक्षा राजधर्म्मों में कहीं और सव विद्या भी राज-धर्म्मों में संयुक्त हैं और सव लोक भी राजधर्म्मही में हैं जैसे कि नीचों के हाथों से मारेहुये मृग आदि जीव उन घातकों के शास्त्रोक्तधर्म्म के नाशकारक होते हैं इसी प्रकार राजधर्म्मों से जुदे सव धर्म्म हैं क्षणकवुद्धि लोग अपने धर्म्म का आदर नहीं करते हैं इसकारण राजधर्म्मही उत्तम है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मात्रषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारों आश्रमों के और संन्यासियों के लौकिक वैदिक धर्म क्षत्रियधर्म में वर्तमान हैं क्षत्रियधर्म के अच्छे प्रकार नियत न होने से सब संसारी जीव निराश होजाते हैं आश्रमवासियों का गुप्तधर्म बहुत द्वारवाला है उस सनातनधर्म के स्वरूप को दूसरे मनुष्य शास्त्र से विपरीत क्रोधयुक्त करते हैं वह मनुष्य पवित्र वचनों से लोक के निश्चय के कहनेवाले हैं और धर्मों के निश्चय और सिद्धान्तों को न जानकर निर्बुद्धिलोग उस कर्म को क्रोध में भरेहुये करते हैं प्रत्यक्ष में बहुतसुखों का करनेवाला आत्मा का साक्षी छलरहित सबका उपकार करनेवाला धर्म क्षत्रियों में वर्तमान है हे युधिष्ठिर ! जैसे कि पूर्व समय में गृहस्थाश्रम नैष्ठिक प्रस्थवीती नाम ब्राह्मणों का और तीनों वर्णों का अन्तर्भाव प्रसिद्ध हुआ उसीप्रकार राजधर्मों में सब संसार को आचरणों के द्वारा नियत माना है हे राजन् ! जिसप्रकार कि पहिले समय में बहुत से शूरवीर राजा दण्डनीति के लिये उन विष्णुजी के पास गये जो कि महातेजस्वी सब जीवों के ईश्वर देवता प्रभु नारायण हैं उस समय में राजालोग अपने हरएक कर्म को ध्यान करके कि इनमें कौनसा उत्तम है यह सन्देह करके सिद्धान्त के सुनने को विष्णुजी के पास पहुँचे उसकाल में प्रथम देवता से मिलेहुये साधु गण देवता और अष्टवसु अश्विनीकुमार रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण और सिद्ध लोग क्षत्रियधर्म में प्रवृत्त थे इस स्थान में धर्म अर्थ के निश्चय को तुम से कहूंगा हे राजन् ! प्राचीन समय में दानवों से व्याप्त बेमर्याद लोक के होनेपर मान्धाता नाम पराक्रमी राजा हुआ उस समय उस मान्धाता ने प्रभु के दर्शन करने की इच्छा से यज्ञ किया और उसने महात्मा विष्णुजी के चरणों में शिर रखकर प्रार्थना करी तब विष्णु ने इन्द्र के रूप में उसको दर्शन दिया तब अन्य सत्पुरुष राजाओं समेत उसने उनका पूजन किया तब इन्द्ररूप प्रभु ने कहा कि हे धर्मधारियों में उत्तम ! तू क्या चाहता है जो ऐसे ध्यान से उस परब्रह्म विष्णु का दर्शन किया चाहता है यह विश्वरूपदेवता मुझ से और साक्षात् ब्रह्माजी के भी दर्शन के योग्य नहीं हैं और दूसरी इच्छा जो तेरे हृदय में वर्तमान है उसको दूंगा तुम्हीं नरलोकों में राजा हो तुम सत्यता में नियत धर्म को श्रेष्ठ माननेवाले जितेन्द्रिय सूर्यदेवता के उपासक बुद्धि भक्ति और श्रद्धा से उत्तम हो इससे मैं तुझको तेरे चित्त के प्रिय वरदान को देताहूं मान्धाता बोले कि मैं निस्सन्देह आप को प्रणामों से प्रसन्न करके आदिदेव भगवान् का दर्शन करूंगा धर्म की इच्छाकरनेवाला मैं सब अन्य इच्छाओं को त्याग करके वन जाने की और सत्पुरुषों के देखेहुये सन्मार्ग की इच्छारखता हूं मैंने इस अप-

मेय क्षत्रियधर्म से लोकों को प्राप्त किया और अपने यश को दृढ़ किया और जो यह धर्म आदिदेवता से जारी कियागया है इससे उत्तम धर्म करना नहीं जानता हूं इन्द्र बोले कि जो क्षत्रिय राजा नहीं हैं और धर्म में प्रवृत्त हैं वह धर्म के अंश से परमगति को नहीं प्राप्तहोते वह कर्म निश्चय प्रकट करने के योग्य नहीं है कि जो क्षत्रियधर्म आदिदेवता से जारी कियागया फिर दूसरे धर्म उसके अंग रूप जारीकिये बाक़ी के असंख्यधर्म संन्यासधर्म के साथ क्षत्रियधर्म से पृथक् हैं वह विनाशी फलवाले उत्पन्न किये अर्थात् उनका फल करनेहीवाले को होता है दूसरे को नहीं होता इस राजधर्म में सब धर्म वर्तमान हैं इसकारण इस धर्म को उत्तम कहते हैं पहिले समय में क्षत्रियधर्म रखनेवाले विष्णुजी ने शत्रुओं को पराजय करके अपने कर्म से सब देवता और महातेजस्वी ऋषि मुनियों की रक्षा की जो ध्यानचक्र से बाहर भगवान् सब शत्रुओं को न मारते उस दशा में न ब्राह्मण होते और न लोकआदि के बनानेवाले प्रजापति होते और न यह धर्म न पहिला धर्म होता जो वह देवोत्तम आदिदेव इस पृथ्वी को और सबअसुरों को विजय न करते उसदशा में ब्राह्मणों के नाशहोने से सब वर्णधर्म और आश्रमों के धर्म नहीं होते वह सनातनधर्म सैकड़ों प्रकार से नाश होकर फिर क्षत्रिय धर्म के द्वारा बड़ी वृद्धि को पहुँचा और हरएक यज्ञआदि में धर्म जारी हुये इस हेतु से संसार में क्षत्रियधर्म को उत्तम कहते हैं युद्ध में देहका त्याग सब जीवों में दया लोक का ज्ञान और व्याकुल संसार का पोषण और पीड़ित पुरुषों को दुःख से छुटाना यह सब राजाओं के क्षत्रियधर्म में वर्तमान हैं राजा से भयभीत होकर वह पुरुष पाप को नहीं करते हैं जो कि बेमर्याद और काम क्रोध से भरे हुये हैं दूसरे उत्तमलोग सब धर्मों में प्रवृत्त श्रेष्ठ आचरणवान् साधुधर्म का उपदेश करते हैं राजाओं के राजधर्म से पुत्र के समान पोषण कियेहुये सब जीव निस्सन्देह लोक में विचरते हैं इससे यह क्षत्रियधर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ लोक में उत्तम सनातन अविनाशी प्राचीन सब स्थानों में जारी और मोक्ष की सीमा है॥ ३०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुष्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

पैंसठवां अध्याय॥

इन्द्ररूप भगवान् बोले कि ऐसा पराक्रमी सब धर्मों में प्रवृत्त और सब धर्मों में उत्तम क्षत्रियधर्म है यह संसार की वृद्धि करनेवाला धर्म तुमसरीखे अधिकारी राजाओं से रक्षा के योग्य है उसके विपरीत कर्म करने से संसार की हानि होती है सब जीवोंपर दया करनेवाला राजा खेती के प्रबन्ध और राजसूययज्ञ

आदि में अनृत स्नान करना भिक्षा न मांगना अर्थात् संन्यास न लेना सबका पोषण करना इत्यादि बातों को जाने और युद्ध में देहत्यागही को श्रेष्ठ धर्म माने इस निमित्त कि मुनिलोग देहत्यागही को उत्तम कहते हैं जैसे कि आप के नेत्रों के सामने सदैव राजधर्मों में प्रवृत्त राजा लोगों ने देह को त्याग किया परस्पर में दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि आश्रमधर्म का चाहनेवाला ब्रह्मचारी अकेला क्षत्रिय बहुतसे शास्त्र और गुरुसेवा समेत प्राचीनधर्म को करे और एकसे अर्थवाले व्यवहार को जारी होनेपर युक्ति से प्रिय अप्रिय वार्ताओं को त्याग करके उसको करे और चारों वर्णका धर्म नियत करके और उद्योग नियम और परिश्रम से वर्णधर्मों को पालन करे इसी से सबधर्मों में प्रवृत्त क्षत्रियधर्म को सब आश्रमधर्मों से श्रेष्ठ धर्म कहा जो वर्ण अपने २ धर्म को नहीं करते हैं और उन धर्मों को विपरीत अर्थवाला कहते हैं उन मनुष्यों को बेमर्याद और सदैव धन के संचय में प्रवृत्त पशुओं के समान जानो जो कि धन के व्यय से नीति को जारी करता है इस हेतु से भी क्षत्रियधर्म अन्य आश्रमधर्मों से अधिक कल्याणकारी है त्रिवेदी ब्राह्मणों के यज्ञ आदि धर्म और अन्य ब्राह्मणों के जो आश्रमधर्म हैं यही ब्राह्मण के उत्तम धर्म कहेजाते हैं दूसरा कर्मकर्ता शूद्र के समान शस्त्र से मारने के योग्य है हे राजन्! चारों आश्रमों के धर्म ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण से प्राप्त करने के योग्य हैं दूसरा कभी नहीं जानता विपरीत कर्म करनेवाले की यह वृत्ति कल्पनाही गिनीजाती है अर्थात् कर्म से धर्म की वृद्धि होती है जैसा धर्म है वैसाही वह भी है जो वेदपाठी ब्राह्मण विपरीत कर्म करता है वह प्रतिष्ठा करने के योग्य नहीं है अपने कर्मको न करने से वह ब्राह्मण विश्वास के योग्य नहीं होता यह धर्म सब धर्मों में करने के योग्य है और क्षत्रियों से इसकी वृद्धि होनी योग्य है इस कारण राजधर्म उत्तम है न दूसरे धर्म कि जिनमें वीर बड़ा है वह वीरधर्म मुझ को भी स्वीकृत हैं मान्धाता बोला कि किरात, गान्धार, चीना, शबर, वर्वर, शक, तुषार, कंक, पल्हव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, काम्बोज और ब्राह्मण क्षत्रिय से उत्पन्न होनेवाले और वैश्य शूद्र मनुष्य आदि सब देश के वासी कैसे धर्मों को करेंगे और मुझ से चोर राजा से सब मनुष्य कैसे धर्मपर नियत करने के योग्य हैं सो हे भगवन्! मैं यह सुना चाहता हूं उसको मुझ से कहिये हे देवेश्वर! तुम क्षत्रियों के बान्धव रूप हो इन्द्र बोले कि सब चोरजातों को पिता माता की सेवा करना योग्य है उसी प्रकार आचार्य गुरु और आश्रमवासियों की सेवा करनी चाहिये सब चोरजातों से राजा की भी सेवा करनी योग्य है वेदधर्म यज्ञक्रिया आदि भी उनका धर्म कहाजाता है इसी प्रकार पितृयज्ञ, कूप, प्रपा और समय के अनुसार सदैव ब्राह्मणों को दानदेना, अहिंसा, सत्यता, क्रोधत्याग, आजीविका और विभाग

की रक्षा, पुत्र और स्त्रियों का पोषण पाकर शत्रुता न करना और ऐश्वर्य चाहने-
वालों को सब यज्ञों की दक्षिणा देना चाहिये सब चोरजातों की ओर से धनरूप
पवित्रयज्ञ देने के योग्य है हे निष्पाप, मान्धाता ! प्राचीन समय में इस प्रकार से
ऐसे २ कर्म नियत किये वह यहां सब लोक को करने के योग्य हैं मान्धाता बोले
कि नरलोक में सबवर्णों में चोर दृष्टिआते हैं चारों आश्रमों में आश्रम के चिह्न
चिह्न वर्तमान हैं इन्द्रबोले कि दण्डनीति के नाशहोने और राजधर्मके दूरकरने से
राजा की निर्बुद्धिता और अप्रबन्ध से जीव अचेत होजाते हैं इस सत्ययुग के
समाप्त होनेपर भिक्षा मांगनेवाले उसी प्रकार ब्रह्मचर्य आदि का चिह्न रखने-
वाले और आश्रमों के कल्पना करनेवाले असंख्य होंगे और पुराण और धर्मों
की परमगति को न सुननेवाले काम क्रोध से चलायमान पुरुष कुमार्ग को
पावेंगे जब महात्माओं की दण्डनीति से पाप दूर होता है तब उत्तम सनातन
सद्धर्म चलायमान नहीं होताहै जो पुरुष लोक के गुरु राजा का अपमान करता है
उसको दान होम श्राद्ध आदि का कभी फल नहीं होता मनुष्यों के स्वामी सना-
तन देवतारूप धर्मनिष्ठ राजा का देवता भी अपमान नहीं करते हैं भगवान्
प्रजापतिजी ने सब जगत् को उत्पन्न किया और धर्मों की प्रवृत्ति निवृत्ति के
लिये क्षत्रियकुल को पैदा किया है जो बुद्धि से जारी होनेवाले धर्म के फल
को स्मरण करता है वह मेरा माननीय और पूज्य है उसमें क्षत्रियधर्म वर्तमान
है भीष्मजी बोले कि वह भगवान् प्रभु मरुद्गणों से घिरेहुये ऐसा कहकर अपने
भवन को गये हे निष्पाप ! प्राचीन समय में इस श्रेष्ठ प्रकार से किये हुये धर्म
के जारी होने से बुद्धिमान् और बहुत शास्त्रों का जाननेवाला कौन पुरुष
क्षत्रियधर्म का अपमान करसक्ता था अन्याय से प्रवृत्त और निवृत्त होनेवाले
बीचही में ऐसे नाश को प्राप्त होते हैं जैसे कि मार्ग में अन्धेपुरुष दुःख को
पाते हैं हे पुरुषोत्तम ! आदि में जारी होनेवाले पिछले पुरुषों का रक्षास्थान
धर्मरूप कर्म करो और मैं तुम को अच्छे प्रकार जानता हूं कि तुम सबप्रकार
से समर्थ हो ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि आप ने जो मनु के पुत्रों के चारों आश्रम कहे इन आश्रमों
के आशय को मुझ से वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यहां
साधुओं के प्रिय सबधर्म तुम को मालूम हैं और जो तुम हृदय आकाश में वर्त-
मान ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखनेवाले धर्म को पूछते हो उसको समझो कि साधु
आचार मे संयुक्त चारों आश्रमियों के सब धर्म राजधर्मों में वर्तमान होते हैं

दण्डनीति के साथ इच्छा और शत्रुता से रहित सब जीवों में समदर्शी राजा को वह ब्रह्मलोक प्राप्तहोता है जो कि संन्यास आदि के द्वारा प्राप्त होता है जो ब्रह्मज्ञान दान युद्ध पोषण आदि को जानता है उस शास्त्रवृत्ति पण्डित राजा का गृहस्थाश्रमही उत्तम होता है और सदैव विभाग के द्वारा सब ओर से पूजन के योग्य पुरुषों को पूजतेहुये राजा को वह लोक प्राप्त होता है जो ब्रह्मचारियों को ब्रह्मज्ञान से मिलता है और शरणागतसम्बन्धी मित्र और जातिवालों का पोषण करनेवाला राजा वह लोक पाता है जो दीक्षा से लोगों को प्राप्त होता है और जो उत्तमपुरुष आश्रमियों में श्रेष्ठ हैं उनका सत्कार करनेवाले राजा को वानप्रस्थ के प्राप्त योग्य स्थान की प्राप्ति होती है और नित्यकर्म पितृयज्ञ भूतयज्ञ नरयज्ञ इन उत्तम यज्ञों के करनेवाले राजा को भी वानप्रस्थवाला ही स्थान मिलता है और जीवों को भाग और अतिथियों का पूजन और देवयज्ञों से भी पूर्वोक्त स्थान की प्राप्ति होती है और अच्छे पुरुषों की रक्षा के लिये शत्रु के देशों के मर्दन करनेवाले राजा को भी वही वानप्रस्थवाला लोक मिलता है और सब जीव और अपने देश की पूरी रक्षा करने से दीक्षा से ब्रह्मलोक का प्राप्त करनेवाला संन्यासआश्रमधर्म प्राप्त होता है और सदैव वेद पढ़ना शान्त और श्रेष्ठपुरुषों का पूजन उपाध्याय की सेवा यह भी ब्रह्मआश्रम को देते हैं और सर्वदा दिन को धर्मपूर्वक जप करनेवाले और देवपूजन न करनेवाले राजा को धर्मआश्रमपद मिलता है और सब जीवोंपर दया करनेवाले मृदुचित्तवाले राजा को सर्वावस्थपद मिलता है और सबदशा में बालक और वृद्धोंपर दया करने से भी सर्वावस्थपद प्राप्त होता है और हठ से कर्म करनेवाले जीवों में से शरणागतों की रक्षा और बुद्धि के अनुसार पूजन भी करता गृहस्थाश्रम में निवास करे और सब जड़ चैतन्य जीवों की रक्षा और बुद्धि के अनुसार पूजक होकर भी गृहस्थाश्रम में निवासकरे और भाई पुत्र पोतों की स्त्रियोंपर अवस्था के विचार से शासना और कृपा करना गृहस्थाश्रम का तप है और ज्ञानी और पूजन के योग्य साधुओं की सेवा और पालन से भी गृहस्थाश्रमपद होता है और जो राजा अपने आश्रम में वर्तमान और घर में रहनेवाले जीवों को भोजन के द्वारा अपने वशीभूत करता है वह भी गृहस्थाश्रमपद होता है जो पुरुष ईश्वर के रचेहुये धर्म में बुद्धि के अनुसार वर्तमान है वह सब आश्रमों के शुद्धफल को पाता है और जिस पुरुष में सदैव गुण नाश को नहीं पाते हैं उस आश्रमी को भी नरों में श्रेष्ठ कहते हैं और जो राजा स्थान, कुल, अवस्था आदि के विचार से सब की प्रतिष्ठा करता है वह सब आश्रमों में निवास करता है और जो राजा राज्य, देश, कुल, धर्मों की रक्षा करता है वह सर्वाश्रमी होता है और समय पर जीवों के ऐश्वर्य और भेंटों को करता है वह साधुआश्रम में

निवास करता है और जो दशधर्म को भी न जाननेवाला राजा सब लोकों के धर्म को विचारता है वह भी आश्रमी होता है और जो धर्मज्ञ पुरुष लोक में धर्म को करते हैं वह जिस राजा के राज्य में रक्षा किये हुये हैं वह राजा भी धर्म का भाग पाता है और जो राजा धर्म को उत्तम माननेवाले धर्मज्ञ पुरुषों की रक्षा नहीं करते हैं वह उनके पाप को भोगते हैं जो पुरुष इस लोक में राजाओं के सहायक होयँ वह सबभी दूसरे के किये हुये धर्म में भाग लेनेवाले हैं हे पुरुषोत्तम ! सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम को प्रकाशवान् और निर्णयवाला और पवित्र कहा और जो मनुष्य सब जीवों को आत्मा के समान रखनेवाला दण्ड और क्रोध को त्याग करता है वह इस लोक और परलोक में सुख पाता है और धर्मरूप समुद्र में वर्तमान सतोगुणरूप पराक्रम और धर्मरूप रस्सी बांधनेवाली और त्यागरूप हवा से चलनेवाली शीघ्रगामिनी नौका उस को अच्छेप्रकार से तारती है जब सब से निवृत्त होता है और जो इसके हृदय में कामना वर्तमान है उसको भी त्याग करता है तब ज्ञानी होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है हे राजन् ! तुम शुद्धचित्त हो इससे धर्म को पावोगे वेदपाठ का अभ्यास करनेवाले शुभकर्मी ब्राह्मण आदि सब लोगों के पोषण का उद्योग करो और हे राजन् ! जो पुरुष आश्रमों में वर्तमान वन में धर्म करते हैं उनसे सौगुणा पुण्य राजा को प्रजा के पोषण से होता है हे पाण्डवों में श्रेष्ठ ! यह अनेक प्रकार से धर्म मैंने तुम से कहे इससे तुम इस सनातनधर्म में वर्तमान होकर प्रजापालन सेही चारों आश्रम और वर्णों के धर्मों को जो कि ब्रह्म के प्राप्त होने की सामग्री है उसको प्राप्त होगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णों का धर्म कहा अब देश के बड़े धर्मों को कहो भीष्मजी बोले कि जो राजा का अभिषेक है वही देश का बड़ाकर्म है क्योंकि राजा और सेना के बिना चोर देश को नष्ट करते हैं राजा के बिना देशों में धर्म नियत नहीं रहता परस्पर में एक एक को खाजाते हैं राजा के बिना देश को सदैव धिक्कार है जो राजा को चाहता है वह इन्द्र को चाहता है यह श्रुति है कि (यथा इन्द्रस्तथा नृपः) अर्थात् जैसा इन्द्र है वैसाही राजा है इससे वह पूजन के योग्य है राजा से रहित देशों में कभी निवास न करना चाहिये क्योंकि राजा से रहित देश में अग्निदेवता हव्य को नहीं ग्रहण करता है जो ऐसे देश में कोई दूसरा राजा इच्छा करके आवे तो वह पूजा के योग्य कहां से होसक्ता है तात्पर्य यह है कि बिना राजा के देश में

पाप के सिवाय कोई धर्म नहीं है जो राजा अच्छे प्रकार से विचार करे तो सर्वानन्द हो क्योंकि क्रोधयुक्त पराक्रमी राजा सब नाश करता है हे राजन्! जो गौ दुःख से दूध देनेवाली होती है वह महादुःख पाती है और जो सुख से दूध देती है उसको पीड़ा नहीं देते हैं जो विना तपाये लकड़ी अच्छीतरह नव जाती है उसको तपाने की कोई आवश्यकता नहीं होती और जो लकड़ी आप झुकती है उसको भी नहीं झुकाते इससे हे राजन्! पराक्रमी को अच्छे प्रकार नमस्कार करै जो बलवान् को नमस्कार करता है वह इन्द्र को नमस्कार करता है इससे ऐश्वर्य चाहनेवाली प्रजा को सदैव राजा करना अवश्य है जिन्हों का राजा नहीं है उनका धन और स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाला कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता राजा से रहित देश में पापी पुरुष दूसरे के धन को चुराता है और प्रसन्न रहता है जब दूसरे मनुष्य उसके धन को हरते हैं तब राजा को चाहता है तब पापी भी कभी आनन्द को नहीं पाते हैं एक के धन को दो हरते हैं और दो के धन को दूसरे अन्य लोग हरते हैं और जो दास नहीं है वह दास किया जाता है और बल से स्त्रियां हरण कीजाती हैं इसी हेतु से देवताओं ने राजा को नियत किया है जो लोक में पृथ्वी का दण्ड धारण करनेवाला राजा न होय तो अधिक बलवान् निर्बलों को भक्षण करजायँ जैसे कि जल में मछली मछलियों को खाती हैं पूर्व समय में राजा न रखनेवाले परस्पर भक्षण करनेवाले जीव नाश को प्राप्तहुये जैसे कि जल में बलवान् मछली निर्बल मछली को खाकर नाश करदेती है यह हम ने सुना तदनन्तर उन्होंने परस्पर में मिलकर नियम किया यह भी हम ने सुना कि जो वचन की कठोरता और दूसरे की स्त्री से भोग करने का उग्रदण्ड हो और जो दूसरे के धन को चुरावे ऐसे प्रकार के मनुष्य हम को त्यागने के योग्य हैं वह सब वर्णों के विश्वास के लिये उस प्रकार के परस्पर नियमों को करके नियमों में दृढ़ नहीं हुये तब दुःख से पीड़ित हो वह जब प्रजा के लोग ब्रह्माजी के पास गये कि हे ईश्वर! हम विना राजा के नाश होजायँगे इससे हम को राजा दो हम ऐश्वर्यवान् होकर उसीकी प्रतिष्ठा करेंगे जो हमारी रक्षा करेगा तब ब्रह्माजी ने मनुजी को आज्ञा करी मनुजी ने उन प्रजाओं को स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं पापकर्म से बहुत डरता हूं राज्य में बड़े २ दुःख हैं इससे पारहोना कठिन है मुख्यकर विनलाभ चलनेवाले मेरी सन्तानों में वर्तमान हैं भीष्मजी बोले कि यह सुनकर प्रजा ने मनुजी से कहा कि भयमतकरो पाप कर्ताकोही होगा हम पशुओंका और सुवर्ण का पचासवां भाग और अनाज का दशवांभाग खज़ाने की वृद्धि के लिये तुम को देंगे और कन्याओं के विवाहों में कर लगने पर सुन्दर रूपवती कन्याओं को देंगे जो आप की उत्तम सन्तान हैं वह उत्तम शस्त्र और सवारियों समेत आप के पीछे

ऐसे चलेंगे जैसे देवतालोग महेन्द्र के पीछे चलते हैं सो तुम पराक्रमी प्रतापी विजयी राजा हम सब को ऐसे प्रसन्न करोगे जैसे कि राक्षसों को कुबेर प्रसन्न करता है राजा से रक्षित होकर प्रजा जिस धर्म को करेगी उस धर्मका चौथाभाग तुमको मिलेगा सो हे राजन्! उस बड़े धर्म से वर्धमान सुखसे प्राप्त होनेवाले आप हम सब की रक्षा उसीप्रकार करो जैसे कि देवताओं की रक्षा इन्द्र करता है आप सूर्य के समान तपानेवाले हैं इससे विजय के निमित्त चलो और शत्रुओं के अहंकारों को नाश करो और सदैव तुम्हारी विजय होगी तब बड़ीभारी सेना समेत महाप्रतापी सूर्यसमान तेजस्वी मनुजी वहां से चले और जैसे देवता महेन्द्र की प्रतिष्ठा को देखते हैं उसीतरह उसकी उस प्रतिष्ठा को देखकर सब भयभीत हुये और अपने २ धर्म में चित्त लगानेलगे फिर वर्षा करनेवाले बादल के समान मनुजी सबओर से पापियों को विजयकरते और अपने कर्म में लगाते हुये पृथ्वी पर भ्रमण करनेलगे इसीप्रकार जो मनुष्य पृथ्वीपर ऐश्वर्य को चाहैं वह अवश्य राजा को बनावें और उसके पास वर्तमान होकर जैसे कि शिष्यलोग गुरु को और देवता देवराज को मानते हैं उसीप्रकार वह भी भक्तिपूर्वक उसको नमस्कार करें अपने मनुष्यों में प्रतिष्ठित मनुष्य को अन्य लोग भी प्रतिष्ठा देते हैं और अपने लोगों में अपमान पानेवालों को दूसरे भी अपमान करते हैं शत्रुओं से राजा की पराजयहोना सबका दुःखदायी है इसकारण छत्र, सवारी, वस्त्र, आभूषण और खाने पीने की वस्तु और मकानात आसन शय्या आदि राजा को निवेदन करें जिससे कि वहराजा शुद्धचित्त से आनन्दपूर्वक मन्द मुसक्यान से प्रजा से मीठे वचन कहे और उपकार करनेवाला दृढ़ भक्त विभाग करके भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय समानद्रष्टा सुन्दर दृष्टि से देखे ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! ब्राह्मणों ने मनुष्यों के स्वामी देवतारूप राजा को क्या कहा उसे आप कहिये भीष्मजी बोले हे राजन्! इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस को कौशिकी राजा वसुमना ने बृहस्पतिजी से पूछा था कि हे महाज्ञानिन्, बृहस्पतिजी! जीव कैसे बढ़ते और कैसे नाश होते हैं और किस के पूजन से अविनाशी सुख को पावें यह सुनकर बृहस्पतिजी ने कहा कि हे महाज्ञानिन्! लोक का धर्म राजा को मूल रखनेवाला दृष्टि पड़ता है प्रजालोग राजा के भय से परस्पर में भक्षण नहीं करते हैं राजा सब संसार के कुकर्मी लोगों को पवित्र करता है और पवित्र करके शोभायमान होता है जैसे कि चन्द्रमा और सूर्य के उदय

न होनेपर परस्पर में न देखनेवाले जीव अन्धतामिस्र नाम नरक में गोते खाते हैं और जैसे थोड़े जल में मछलियां और बधिक से स्वच्छन्द विहार करनेवाले पक्षी भयभीत रहते हैं उसीप्रकार श्रेष्ठ दण्ड से प्रजा भी भयभीत होकर अधर्मों से बचीरहती हैं इससे विना राजा के प्रजा नाश होजाती है जैसे कि ग्वाल से रहित पशु होते हैं और पराक्रमी अल्पपराक्रमी की स्त्री को हरण करते हैं और धन की रक्षा करनेवालों को मारते हैं जो राजा रक्षा नहीं करे तो इस लोक में यह न होगा कि यह मेरा स्थान या स्त्री या पुत्र है अर्थात् धन स्त्री पुत्र अपने नहीं कहसक्ता और सब ओर से धन का नाश होता है जब कि राजा रक्षा नहीं करता है तो पापीलोग अकस्मात् सवारी, वस्त्र, भूषण और अनेक प्रकार के रत्नों को हरण करते हैं जब रक्षा राजा की न हो तो बहुधा धर्म करनेवालों पर बहुत से शस्त्र चलाये जाते हैं और अधर्म मचजाता है और जो राजा की श्रेष्ठ रक्षा न होय तो वृद्ध माता, पिता, आचार्य, अतिथि और गुरु इत्यादि को कष्ट देकर मारते हैं और सदैव धनवानों को दुःख और बन्धन और मरण होता है और इस बात को कोई प्राप्त न करसके कि यह धन स्थान आदि पदार्थ हमारा है विना काल मरते हैं और संसार चोरों के ही आधीन होकर घोर नरक में गिरता है और योनि का दोष वर्तमान न होवे खेती और व्यापार का मार्ग भी न चले धर्म डूबजाय तीनों वेदों का अभाव होजाय और पूरी दक्षिणावाले यज्ञ विधि के अनुसार न हों न विवाह समाज आदि हो बैल गौवों में भोग न करें और मनुष्य दही को न बिलोवें और अहीरों की गाय नाश होजायँ भयभीत व्याकुलहृदय और हाहाकाररूप अचेत हो संसार का शीघ्रही नाश होजाय और मारे भय के कोई राजा स्वयंवर भी न करे तपस्वी और विद्याव्रतधारी ब्राह्मण वेदों को न पढ़ें और अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य धर्म के स्नानादिकों को भी न करसकें और चोरों को निर्भयता होजाय और हाथोहाथ चोरी करें और सब मर्यादा टूटजायँ और भय से पीड़ित होकर सबदेश भागजाय अनीति जारी हो और संसार वर्णसंकर होजाय और सब देशों में दुर्भिक्ष पड़े और जब मनुष्य राजा से रक्षित होकर चारो ओर से निर्भय होते हैं तब इच्छापूर्वक अपने द्वारों को खोल२ सोते हैं जो धार्मिक राजा पृथ्वी की रक्षा अच्छे प्रकार से नहीं करता है तब कोई किसी की घुड़की को नहीं सहता है तो तमाचा कब सहैगा जब कि राजा की अच्छी रक्षा होती है तब सब स्त्रियां भूषणों से भूषित पुरुषों से अरक्षित भी निर्भय मार्ग में चलती हैं और मनुष्य धर्म को करते हिंसा नहीं करते और एक दूसरे पर कृपा करता है तीनों वर्ण पृथक्२ बुद्धि के अनुसार महायज्ञों से पूजन करते हैं और परिश्रम करके विद्या को पढ़ते हैं यह लोक जीविकारूप जड़ रखता है और वेदके लिखे हुये कर्म जो कि वर्षा आदि

के कारण हैं धारण किये जाते हैं जब राजा बड़े बल से प्रजा के श्रेष्ठ भार को लेकर उसकी रक्षा करता है तब संसार प्रसन्न होता है और उसके नाश से चारों ओर जीवों का भी नाश होता है और ऐश्वर्य में ऐश्वर्य होवे तो कौन उसकी प्रतिष्ठा न करे जो पुरुष राजा के प्यारे हित में नियत होता है तो संसार में भय उत्पन्न करनेवाला राजा भी उस पुरुष का बोझा धारण करताहै और दोनों लोकों को विजय करनेवाला है जो पुरुष चित्तसे भी उसके पाप को विचारे वह निस्सन्देह इसलोक में दुःख भोगकर अन्त में नरक पाता है राजा कभी अपमान के योग्य नहीं है क्योंकि वह मनुष्यों का बड़ा देवता नररूप में वर्तमान है कि सदैव समय के अनुसार पांचरूप को धारण करता है अर्थात् सूर्य, अग्नि, मृत्यु, कुबेर और यमराज भी होता है जब छलाहुआ राजा पापियों को सबके सम्मुख उग्रतेज से भस्म करता है तब अग्निरूप होता है और जब दूत के द्वारा राजा सब जीवों को देखता है और मंगल मनाकर चलता है तब सूर्यरूप होता है जब क्रोधयुक्त होकर सैकड़ों अपवित्र मनुष्योंको पुत्र पौत्र मन्त्रियों समेत मारता है तब मृत्युरूप होता है जब सब अधर्मियों को कठिन दण्ड देताहै और धर्म करने-वालों पर कृपा करता है तब यमराजरूप होता है जब राजा सहायता करनेवालों को धन की धाराओं से तृप्त करता है और शत्रुता करनेवालों के अनेक प्रकार के रत्नों को छीनलेता है किसी से लेता है और किसी को देता है तब वह कुबेर रूप होता है बुद्धिमान् सुगमकर्मी धर्मरूप लोक के चाहनेवाले और दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मनुष्य को इस ईश्वर स्वरूप राजा की निन्दा न करनी चाहिये पुत्र भाई अथवा समान अवस्थावाला यद्यपि आत्मा की बराबर हैं वे भी राजा की निन्दा करके सुख को नहीं पाते हैं वायु को सारथी रखने-वाला अग्नि चाहे कुछ भस्म करने से बाक़ी भी छोड़े परन्तु राजा से विरोधी का चिह्न भी नहीं रहता उस राजा की रक्षा के योग्य वस्तुओं को मनुष्य दूर से ही त्यागकरे और राजधनहरण से ऐसा डरे जैसे कि मृत्यु से डरते हैं क्योंकि राजधन के छूने से ऐसे नाश होजाता है जैसे कि फन्दे के छूतेही मृग मरजाता है इसलोक में बुद्धिमान् मनुष्य राजधन को अपने धन के समान रक्षा में रक्खे राजधन के चुरानेवाले महाचोर नरक में पड़ते हैं भोज, विराट, सम्राट्, क्षत्रिय, पृथ्वीनाथ, मनुष्यरक्षक जो राजा इन शब्दों से विशेषण अर्थात् प्रशंसा किया जाता है उसके पूजन को कौन योग्य नहीं है इससे ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् मनुष्य राजा की शरण में रहै राजा अपने मन्त्री को पारितोषिक आदि देकर प्रसन्न करे जोकि उपकारी, ज्ञानी, कुलीन, दृढ़नकिरखनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा और स्थिरस्वभाव हो राजा मनुष्य की बुद्धि से प्रशंसा करता है और दुर्बल भी करदेता है इससे राजा के

अपराधी को कहां सुख है और अपने आज्ञाकारी को राजा सुखी करता है प्रजालोगों की हृदय से प्रतिष्ठा उत्तम और सुखरूप होती है मनुष्य राजा के पास शरणागत होकर इस लोक परलोक दोनों में सुखी होते हैं और बड़ा यशस्वी राजा भी समदर्शी भाव सत्यता प्रसन्नता आदि से पृथ्वी पर आज्ञाओं को और बड़े २ यज्ञों को करके स्वर्ग में सनातन स्थान को पाता है ऐसे बृहस्पतिजी के समझाने से राजा वीरकौशली ने बड़ी धर्मनीति से प्रजा का पालन किया॥ ६१॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

उनहत्तरवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले राजा से कौन कर्म करना रहजाता है और कैसे देश की रक्षा के योग्य है और कैसे शत्रुओं को विजय करे और कैसे दूतों को नियत करे और कैसे वर्णों को विश्वास दिलावे और नौकर, पुत्र, स्त्री आदि को कैसे शिक्षा करे भीष्मजी बोले कि तुम सावधान होकर राज्य के सम्पूर्ण प्रबन्ध और रीतियों को सुनो पृथुवंशी या दूसरे वंश के राजा को भी प्रारम्भ में जो करने के योग्य है वह कहता हूं कि प्रथम तो राजा अपने चित्त को वश करे फिर शत्रु विजय करने के योग्य है चित्त को विना वश किये राजा कभी शत्रुओं को विजय नहीं करसक्ता है पांचो इन्द्रियों को स्वाधीन करना यही चित्त का विजय करना है इन्द्रियों का जीतनेवाला राजा सदैव शत्रुओं को पीड़ा दे सक्ता है गुल्म अर्थात् रक्षा करनेवाली सेना को गढ़, देश, नगर, वन, उपवन आदि स्थानों में नियत करे और कोष्ठपालों को पुर, नगर, राजमहल आदि सब स्थानों में जंगी पहरा बनाकर नियत करे फिर मनुष्यों के ज्ञाता बुद्धिमान् भूख प्यास परिश्रम के सहनशीलों को अज्ञान अन्धे बहरे के रूप में गूढ़चारी अर्थात् जासूसों को नियत करे और सावधान राजा को उचित है कि सब मन्त्री और नानाप्रकार के मित्र और पुत्रों से भी गुप्त दूतों को नियतकरे ऐसेही नगर, देश और सामन्त नाम राजाओंपर भी गुप्तदूत नियत करने योग्य हैं जिनको कि वह परस्पर में भी न जाने और शत्रुओं के भेजे हुये दूतों को जाने हुये व्यापारियों की दूकान विहारस्थान संन्यासियों के समाजों में वन, उपवन और पण्डितों की सभा में अथवा देश की कचहरी राजसभा और बड़े घरोंपर नियत करे ऐसी सावधानी से राजा शत्रु के दूत को निश्चय करे प्रथम तो दूत के निश्चय होने पर प्रयोजन सिद्ध होता है जब राजा अपने को बुद्धि में कम समझे तब मन्त्रियों से सलाह करके पराक्रमी राजा से सन्धि करे जो राजा बड़ेउत्साहयुक्त धर्मज्ञ और साधु हैं

उनके साथ धर्मात्माराजा को सदैव सन्धि करनी चाहिये बुद्धिमान् राजा अपनी पराजय होती जानकर अपराध से छूटकर कृपा से पोषण होनेवाले और प्रजा के शत्रुरूप सब अपराधियों को मारे जो राजा उपकार और अनुपकार करने को समर्थ नहीं है और पराजय करने की भी सामर्थ्य नहीं है उसप्रकार के राजा से तरहही देना योग्य है बुद्धिमान् राजा उस समय युद्ध के लिये चढ़ाई करके जब कि शत्रु निर्बल और मित्रों से रहित बान्धवों से पृथक् दूसरे से युद्ध करनेवाला और अचेत हो ऐसे और चढ़ाई कीजाय कि मालूम न हो और जब कोई वीरपराक्रमी राजा समर्थ और पराक्रमी सेना सहित सुखी हो तब चढ़ाई के समय पहिले नगर में रक्षाकरनेवाली सेनाको सामान सहित नियत करके अपनी चढ़ाई को प्रकट करे और जो वह भी पराक्रमी है और इसके आधीन न हो उस दशा में सेना और बलपराक्रमसे हीन राजा बलीराजाको बल से हीन करताहुआ उस कर्म में प्रवृत्त हो कि विष के शस्त्र और अग्नि आदि से उसके देशको व्याकुल करे और उसके मन्त्री वा भाई बन्धुओं में परस्पर कलह मचवावे राज्य के चाहनेवाले बुद्धिमान् राजाको सदैव युद्धत्यागकरना योग्य है बृहस्पतिजी ने तीनयुक्तियों से राजा के प्रयोजन सिद्ध होने को कहा है पण्डित राजा युद्धनिवृत्तकर्ता कुछ देकर सन्धिकरना शत्रु और शत्रुओं के मित्रों से विरोध करवाना इनतीनों युक्तियों के द्वारा जिस प्रयोजन के सिद्धकरने को चाहै वही प्राप्तकरै और ज्ञानीराजा अपनी प्रजा से भी छठाभाग उपजे का उनकीही रक्षाके निमित्त लेवे और दशधर्म में प्रवृत्तलोगोंसे जो थोड़ा बहुत राज-अंश लेना उचित है उसको पुरवासियों की रक्षा के लिये बिना विचार के लेवे जैसे पुत्र देखने योग्य हैं वैसेही पौत्र भी निस्सन्देह देखने चाहिये विवाद के दृष्टिगोचर होनेपर उसमें परिश्रम न करना चाहिये किन्तु राजा विवाद के सुनने और योग्यायोग्य जानने के लिये सब अर्थों के जाननेवाले ज्ञानी पुरुषों को नियत करे क्योंकि उनमें राज्य नियत है उन बुद्धिमान् आज्ञाकारी पुरुषों और मन्त्रियों को सुवर्ण की खानि नमक का स्थान अनाज की मण्डी और रुई धान नदी के पुल आदि स्थानों पर उनकी आमदखर्च विचारने के वास्ते नियत करे सदैव अच्छे प्रकार दण्ड का धारण करनेवाला राजा धर्म को प्राप्त होता है राजा का सदैव दण्ड जारी होना पूरा धर्म कहलाता है और जो राजा वेदवेदांग का जाननेवाला पण्डित तपस्वी दानयज्ञ का अभ्यासी भी हो और व्यवहार लोपकरनेवाला हो अर्थात् विवाद को अस्तव्यस्त करे ऐसे राजाको यश और सुखकी प्राप्ति कैसे होगी जब राजा दूसरे पराक्रमी राजासे पीड्यमान होय तब वह बुद्धिमानी से गढ़ में रक्षाले मित्रों को संयुक्त करके युद्ध के व्यवहारों में रीतियां जारी करे और सामवेद के विपरीत अर्थों को विचार करे

मार्ग में अहीरों के गाँवों को नियत करे और अन्य गाँवों को उठादे और उन सब को भी बड़े नगरों के उपनगरों में बसावे और जो रक्षा के योग्य दुर्गम स्थान हैं उनमें देशवालों को बसावे और धनी लोगों को और सेना के प्रधानों को बराबर धैर्य बँधवावे और शत्रु के खेतों को आप राजा छीनले और दखल होने के असम्भव होने पर अग्नि से भस्म करे खेतों में अनाज बोने पर शत्रु के मनुष्यों को अपनी ओर करके उनके द्वारा खेतों को छीनले या अपनी सेना के द्वारा उन सबका विध्वंस करे इसी प्रकार नदी के मार्ग पुल आदि को तोड़ डाले सब जल को हटा दे और हटने के अयोग्य जल को विषयगर्द से बिगाड़े वर्तमान और भविष्यत् काल में सदैव मित्र का कार्य वर्तमान होने पर भी उसको त्याग करके मैदान में शत्रु के मारनेवाले और विवश शत्रु के पास रहनेवाले राजा से मिलकर निवास करे अर्थात् उससे सन्धि करके उसकी सेना के द्वारा शत्रुओं को अपने देश से दूरकरे राजा सब ओर से गढ़ों के ओर पास वृक्षों को लगावे और सब छोटेवृक्षों को कटवावे परन्तु चीतनाम वृक्षों को त्यागकरे उसी प्रकार बहुत बड़े वृक्षों की शाखाओं को कटवावे सब दशा में चैतनाम वृक्षोंकी पत्तीको अवश्य गिराना चाहिये तब अच्छे प्रकार से प्रगंजी अर्थात् धुस आदि और आकाशजननी अर्थात् गोले के बाहर आने के छिद्रों को बनवावे और खाई को जलपूरितकर मगर मच्छों से पूरित करे पुर के श्वास लेने के लिये छोटे२ द्वार हों और सब प्रकार से उनकी रक्षा करे द्वारपर सदैव भारी यन्त्र तोप इत्यादि को नियत करे और शतघ्नियों को अपने आधीन करके आरोपणकरे और काष्ठ इकट्ठा कराने के योग्य है इसी प्रकार कूपों को खुदवावे और पहिले बनेहुये कूपों को साफ़ करावे और फूस आदिसे बननेवाले स्थानोंको मृत्तिका से लिपवावे इसी प्रकार अग्नि के भय से चैत के महीने में घास आदि को खुदवावे और इकट्ठी करे और सेना के खाने की वस्तु को रात्रि में पकवावे और अग्निहोत्र के सिवाय दिन में अग्नि न जलावे और कर्मारिष्टशालाओं में अर्थात् लोहार आदि की दूकानों में अग्नि बड़ी रक्षापूर्वक रहे और घरों में भी दबीहुई अग्नि रहे दिन में जिसके घर में अग्नि जलाईजाय उसको बड़ा दण्ड हो और पुर की रक्षाके लिये भी इसीप्रकार प्रघोष अर्थात् मनादी करादे और भिक्षुक, कुम्हार, क्लीव, प्रमत्त, कुशील आदि पुरुषों को देश से बाहर करदे क्योंकि वह दूसरी दशा में हानिकारक होंगे और चौतरे आदि अठारह नाम से प्रसिद्ध तीर्थ सभा और बड़े २ मकानों में वर्णों के अनुसार सब के गुप्त देवताओं को नियत करे और बड़े २ राजमार्गों को बनवावे और जल की प्याऊ आदि बाजारों में शास्त्र के अनुसार नियत करे और पात्रस्थान शस्त्रस्थान और सब लड़नेवालों के मकानात अश्वशाला गजशाला आदि सड़क की खाई और बाग महल इत्यादि बनवावे

और इन स्थानों को ऐसा गुप्त रक्खे कि दूसरा मनुष्य कोई न जानसके तेल चर्बी, शहद, घृत और सब औषध, कोयले, कुश, मूंज, ढाक, जौ, ईंधन औ विष से भरेहुये बाणों का ढेरकरावे और सब धनुष आदि शस्त्र शक्ति, दुधारा खड्ग, वर्म, औषधी, मूल, फल और अच्छे ज्ञाता चारप्रकार के वैद्यों को नौकर रक्खे अर्थात् विष का दूरकरनेवाला व्रण का अच्छा करनेवाला और रोगों को जानकर चिकित्सा करनेवाला और कृत्तिआ अर्थात् घात आदि से बचाने-वाला यह चार प्रकार के वैद्य कहलाते हैं और नट, नर्तक, मल्ल और मायावी आदि पुरुषों को बसावे वह सब पुर के उत्तम लोगों को प्रसन्न करें और राजा उनको धन से मान से पूजन से और अनेक प्रकार से प्रसन्न रक्खे और उनको नौकर चाकर पुरवासी अथवा दूसरे राजा से भी शंका होय तो अपने आधीन करे और दान मान से और अनेक प्रकार के विश्वास से उनका सत्कार करे और शत्रु को ताड़ना करके अथवा मारकर उनसे उऋण होवे यह शास्त्र में कहा है और राजा को सात वस्तु रक्षा के योग्य हैं अपना देह, मन्त्री, खज़ाना, मित्र, दण्ड, देश, पुर यह सातो राजा के अंग हैं इनकी सदैव रक्षा उचित है और जो षड्गुण और त्रिवर्ग को जानता है वह इस पृथ्वी को भोगता है वह छहगुण यह हैं कि सन्धि करना चढ़ाई करना शत्रुता करके वर्त-मान होना शत्रु को भयभीत करने के लिये चढ़ाई दिखाकर अपने स्थानही पर वर्तमानरहना दोनों ओर से सन्धि करना इसीप्रकार गढ़ आदि में वर्तमान होना अथवा दूसरे किसी महाराज की शरण लेना और त्रिवर्ग को भी स्वस्थ चित्त से सुनिये आमदनी और खर्च और खज़ाने की वृद्धि इसीप्रकार धर्म, अर्थ, काम यह भी श्रेष्ठ त्रिवर्ग समय पर सेवनकरने के योग्य है इसरीति से धर्मपूर्वक राज्य करनेवाला राजा बहुतकालतक पृथ्वी को भोगता है इस विषय में बृहस्पतिजी ने दो श्लोक कहे हैं सो हे श्रीकृष्णजी ! आप की जय हो उनको भी सुनिये कि सबकरने के योग्य कर्मों को करके और सुन्दररीति से पृथ्वी का पालन और पुरवासियों का पोषण कर परलोक में आनन्द से वर्त-मान होता है उस राजा को तप यज्ञादि से क्या प्रयोजन है जो राजा धर्म से प्रजापालन करता है वही सब धर्मों का ज्ञाता है युधिष्ठिर बोले कि दण्डनीति और राजा दोनों समान हैं इन में कौन कर्म करता है और किस को सिद्धि प्राप्त होती है इस को मुझे समझाइये भीष्मजी ने कहा कि दण्डनीति चारो वर्णों को अपने धर्म में प्रवृत्त करती है और राजा से अच्छे प्रकार जारी होने से वह अधर्मों से भी रक्षाकरती है चारो वर्णों को अपने २ कर्मों में नियत होने और मर्यादा ठीक रहने में और दण्डनीति के कुशल रहने और प्रजा के निर्भयरहने से तीनों वर्ण बुद्धि के अनुसार अपनी दृढ़ बुद्धि में बड़े २ उद्योग करते हैं उसी

से मनुष्यों के सुख बने रहते हैं और काल का हेतु राजा या राजा का हेतु काल है इसमें सन्देह मत करो कि राजाही काल का कारण है क्योंकि जब राजा दण्डनीति में अत्यन्त कर्मकर्ता होता है तब सत्ययुग नाम काल उत्पन्न होता है उसमें धर्म जारी होता है और अधर्म नष्ट होता है और किसी वर्ण का चित्त अधर्म में नहीं जाता है और सबगुण बुद्धि के अनुसार होते हैं सब सुख और ऋतु निर्विघ्न होती हैं और मनुष्यों के स्वर वर्ण और चित्त शुद्ध होते हैं उस युग में रोग और अल्पावस्था नहीं होती और स्त्रियों में कुपात्रता नहीं दृष्टि आती कोई कृपण नहीं होता और विना परिश्रम पृथ्वी में अन्न बहुत उत्पन्न होता है और ओषधी, फल, फूल, त्वचा, मूल महापराक्रमी होते हैं और अधर्म का लोप होता है धर्मही व्याप्त होजाता है इन धर्मों को यज्ञसम्बन्धी जानो जब राजा दण्डनीति में चौथाभाग दूरकरके तीन भागों को लेता है तब तृतीय वर्तमान होता है और दण्डनीति के उन तीनों भागों के सम्मुख अधर्म का चौथाभाग आकर वर्तमान होता है और खेती सफल होती है और ओषधियां भी उत्पन्न होती हैं और जब राजा दण्डनीति के आधेभाग को छोड़ देता है तब द्वापर नाम युग आजाता है उस समय अधर्म का आधाभाग दण्डनीति के आधेभाग के सम्मुख आजाता है तब पृथ्वी में आधा फल अन्न ओषधी आदि उत्पन्न होते हैं जब राजा दण्डनीति को अत्यन्तही त्याग कर विना विचारे प्रजा को दुःख देता है तब कलियुग वर्तमान होजाता है कलियुग में बहुत अधर्मियों के उत्पन्नहोने से कभी धर्म नहीं होता है सब वर्णों का चित्त अपने धर्म से पृथक् होजाता है और शूद्रलोग भिक्षा से जीवन करते हैं ब्राह्मण सेवा से अपना पोषण करते हैं धन की प्राप्ति और उसकी रक्षा दोनों का नाश होता है और वैदिककर्म निष्फल होजाते हैं सब ऋतु सुखरहित और रोगों से व्याप्त होती हैं मनुष्यों के स्वर देह चित्त म्लान होजाते हैं और रोगों के कारण मनुष्यों की अकालमृत्यु होती है और स्त्रियां पापात्मा कुचालिनी होजाती हैं और प्रजा के लोग निर्दय उत्पन्न होते हैं खण्डवृष्टि और खेती कभी फलती कभी नहीं फलती है जब राजा दण्डनीति से सावधान होकर प्रजा को अच्छे प्रकार से पोषण नहीं किया चाहता है तब सब रसों का नाश होता है राजाही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों युगों का कारण है सत्ययुग का जारी करनेवाला राजा अक्षय स्वर्ग भोगता है और त्रेतायुग उत्पन्न करनेवाला स्वर्ग को अल्पकाल भोगता है और द्वापर को पैदाकरनेवाला भागके अनुसार स्वर्ग भोगता है और कलियुग को जारी करनेवाला महापापों को भोगता है अर्थात् बहुत समय तक नरक भोगता है और प्रजा के पापों में डूबाहुआ महाअपयश को प्राप्त होता है इससे क्षत्रिय लोग दण्डनीति को आगे करके अप्राप्त को प्राप्तकरें और

प्राप्त की चारो ओर से रक्षाकरें अच्छे प्रकार से जारी कीहुई दण्डनीति माता पिता के समान संसार की स्थिति और वृद्धि करनेवाली मर्यादारूप होती है सो हे राजन् ! यही धर्म उत्तम है और इसीसे सब जीव ऐश्वर्यवान् होते हैं इस कारण हे कुन्तीनन्दन ! तुम नीतिपूर्वक प्रजापालन करो ऐसे आचरणों से प्रजाका पालन करनेवाला दुर्गम स्वर्ग को पाता है ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे क्षत्रियव्यवहार के जाननेवाले, पितामह ! किस रीति से कर्म करनेवाला सुखपूर्वक दोनों लोकों में उन सुखों को पावे जोकि भविष्यत् काल में आनन्ददायक हों भीष्मजी बोले कि यह छत्तीसगुण छत्तीस ही विशेषणों से संयुक्त हैं इन सविशेषण गुणों से युक्त राजा जो २ कार्य करता है वह सब कल्याणकारी होते हैं रागद्वेषवर्जित आस्तिकबुद्धि राजा सब धर्मों को प्रीति से करे और परलोक का चिन्तन करे लोभ न करे और दयायुक्तहोकर धन को इकट्ठाकरे और धर्म, अर्थ संयुक्त इन्द्रियों को प्रसन्न करे और उदारतापूर्वक प्यारे वचन कहे और आत्मस्तुतिरहित पात्रापात्रविचार कर पात्र को दान दे नीचों से स्नेह न करे और बुद्धिमान् होकर बान्धवों से द्वेष न करे थोड़ी जीविका के दूतों को भ्रमण न करावे और न कभी कष्टदे और नीचपुरुषों से न तो अपने गुण कहै और न अपना प्रयोजन वर्णन करे साधु से ले नहीं नीचों की रक्षा न करे विना परीक्षा किये दण्ड न दे मन्त्र गुप्तरक्खे लोभियों को धन न दे कृतघ्नी लोगोंपर विश्वास न करे अनीर्षु और स्त्रियों का रक्षक शुद्ध दयावान् बहुत सी स्त्रियों का सेवन न करनेवाला शुद्ध भोजन करे और क्रियावान् पुरुषों का पूजन और गौवों का पूजन निश्छल होकर करे इसीप्रकार देवताओं को यज्ञादि धर्मों से प्रसन्न करे और उत्तम लक्ष्मी को चाहै नम्रतापूर्वक ईश्वर की सेवाकरे बुद्धिमान् और काल का जाननेवाला शत्रु को भी अपराध जाने विना दण्ड न दे और अपराधी शत्रुओं के मारने में शोच न करे विना कारण क्रोध न करे कृतघ्नियों पर नम्रता न प्रकट करे जो इस लोक में कल्याण को चाहते हो इससे तुम राज्य में प्रवृत्त होकर इस प्रकार से कर्म करो इसके विपरीत कर्म करनेवाला राजा बड़ी विपत्ति में पड़ता है जो राजा इन सब गुणों से सम्पन्न कर्मों को करता है वह इस लोक में अनेक ऐश्वर्यों को भोग स्वर्ग में बड़ी प्रतिष्ठा पाता है यह सब बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीष्मजी को प्रणाम करके वैसाही किया ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! किस प्रकार से प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा चिन्ता से रहित होता है और कैसे धर्म में विपरीत कर्म नहीं करता भीष्मजी ने कहा कि हे राजन् ! मैं मिलेहुये सनातनधर्म तुम से कहता हूं क्योंकि धर्मों को व्योरेवार कहने में अन्त नहीं है तुम धर्मनिष्ठ वेदपाठी देव-व्रतपरायण हो गुणवान् ब्राह्मणों को पूज करही में यज्ञों को करो और अपने पुरोहितादि को दानदक्षिणा देकर राज्य के कामों को करो और शुद्धभाव से धैर्यभाव में प्रवृत्त बुद्धि के अनुसार राजअंश को ले और काम क्रोध को त्याग दे क्योंकि जो राजा काम क्रोध में प्रवृत्त होकर राज्य के प्रबन्ध को करता है वह निर्बुद्धि अपने अर्थ धर्म को भी खो बैठता है लोभी और मूर्खों को काम और अर्थ में नियत मत करो निर्लोभी बुद्धिमान् पुरुषों को सब अधिकारों पर नियत करो राज्य के कामों में बिना कुशल काम क्रोध में भरेहुये माल के महकमे आदि में अधिकारी होनेवाले मूर्ख बिना विचार युक्ति के कारण प्रजा को दुःखदायी होते हैं खेती के पवित्र पष्ठांश से और अपराधियों के जुर्माने से और परमठ आदि के महसूल को शास्त्र की रीतिपर लेने से धनका आगम चाहो और जब छठाभाग अन्नादि का लेने से प्रजा का वार्षिक व्यय पूरा न होसके तब आलस्य को त्याग राजनीति के द्वारा राजा प्रजा के महसूल आदि लेने को माफ़करे और इसी प्रकार बुद्धि के अनुसार उनकी जीविका और रक्षा का भी विचार करे उसकी प्रजा भी उस धर्मात्मा दानी को अनेक प्रकार से आनन्द देती है इस से तुम अधर्म और लोभ से धन को मत चाहो जो राजा शास्त्र के अनुसार न चले उस के धर्म अर्थ का नाश होता है जो धन की इच्छा रखनेवाला राजा शास्त्र पर दृष्टि नहीं रखता और भूलाहुआ प्रजा को क्लेश देता है वह अपना मरण आप करता है जैसे कि दूध का चाहनेवाला गौ के थन को काटे उसको दूध कहां से मिलसक्ता है उसीप्रकार बिना विचार के पीड़ा दियाहुआ देश भी अच्छी वृद्धि को नहीं पाता है और जो दूध देनेवाली गौ की उपासना करताहै वह सदैव दूध पाता है इसी प्रकार विचारपूर्वक देशका भोगनेवाला राजा भी फल को पाता है और विचार से भोगेहुये सुरक्षित देश की भी वृद्धि करता है तब खज़ाने में धन की वृद्धि होती है राजा से अच्छे प्रकार सुरक्षित भूमि भी अन्न, सुवर्ण, रत्न आदि राजा को और प्रजा दोनों को ऐसे देती है जैसे कि तृप्तिमाता दूध को देती है इससे हे राजन् ! तुम माली के समान हो जैसे कि माली उत्तम वृक्षों की रक्षा करता है और हानिकारी वृक्षों को निकालता है वैसेही अपनी प्रजा का पालन करो तो सदैव आनन्द-

पूर्वक रहोगे जो शत्रु पर सेना की चढ़ाई करने से तेरे धन का व्यय हो उस दशा में सामनीति के द्वारा ऐसे धन को इकट्ठा करो जो कि ब्राह्मणों के विशेष दूसरे वर्णों का हो ब्राह्मण को धनाढ्य जानकर तू अपने चित्त से कभी लोभ में प्रवृत्त न हो किन्तु सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को यथायोग्य धन को दो इस प्रकार से ब्राह्मणों को दान से प्रसन्न करोगे तो सदैव आनन्द से राज्य भोगोगे और अन्त में स्वर्ग की भी प्राप्ति होगी ऐसे सम्पूर्ण धर्माचरण से प्रजा-पालन करो जिससे कि तुम कभी शोक में नहीं प्रवृत्त होगे यही प्रजापालन सबधर्मों में उत्तम गिना जाता है प्रजा को भय से रक्षा नहीं करनेवाला राजा एक दिन में जो पाप करता है वह हज़ार वर्ष में भी उसके पाप से नहीं छूटता और जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है उसका एक दिन का पुण्य स्वर्ग में दशहज़ार वर्षतक आनन्द देता है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ धर्मों के करने में जो धर्म प्राप्त होता है वह धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेवाला राजा एक क्षण में पाता है इससे हे युधिष्ठिर! तुम बड़ी सावधानी से युक्ति-पूर्वक प्रजा का पालन करोगे तो पवित्र फल को पाकर कभी शोक को प्राप्त न होगे और सब लोकों में महालक्ष्मी को पावोगे जो राजा नहीं हैं उनके पास ऐसे धर्मों का प्रकाश नहीं होता इस कारण जो ऐसे धर्म के फल को पावे वही राजा है सो तुम धैर्यवान् होकर देवों को अमृत से और सुहृद्जनों को कामनाओं से तृप्तकरो ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

बहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्! जो ब्राह्मण सत्पुरुषोंकी रक्षा और असत्पुरुषों को राज्य से निकलवादे वही राजा को पुरोहित करने के योग्य है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें पुरूरवा ऐल और वायु का संवाद है पुरूरवा बोले कि ब्राह्मण कहां से उत्पन्न हुआ और तीनोंवर्ण कहां से पैदाहुये और कौन २ कर्मों से उत्तमता प्राप्ति होती है वह सब मुझ से वर्णन कीजिये वायुदेवता बोले कि हे राजन्! ब्रह्माजी के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, चरण से शूद्र उत्पन्न हुये सो ब्राह्मण तो संस्कार के द्वारा धर्मों के समूहों का रक्षक सब का ईश्वर पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला है और दण्डधारण के लिये क्षत्रिय पृथ्वी का स्वामी और रक्षक उत्पन्न हुआ और धन धान्य की रक्षा के लिये वैश्य और इन तीनों वर्णों की सेवा के निमित्त शूद्र उत्पन्न हुआ ऐल बोला कि ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनों में से यह वसुन्धरा पृथ्वी किसकी होनी चाहिये इसको हे वायुदेवता! मुझ से कहिये तब वायु

बोले कि इस लोक में यह पृथ्वी वेदपाठी ब्राह्मण की है यह धर्मज्ञ पुरुष कहते हैं ब्राह्मण अपने धन को भोगता है और अपनेही वस्त्रादि को धारण करता है और दान भी अपने ही धन का करता है इससे निश्चय है कि द्विजन्मा ब्राह्मण ही सब वर्णों का गुरु और वृद्ध और उत्तम समझा जाता है जैसे कि स्त्री पति के न होने में सन्तति के लिये देवर को पति करती है यह प्रथमकल्प तुम से कहा और आपत्तिकाल में इससे भिन्न होता है इससे जो कोई स्वर्ग को चाहे वह इस धन समेत पृथ्वी को तपस्वी ब्राह्मण को अर्पण करे जो कुलवान् बुद्धिमान् नीतिज्ञ ब्राह्मण अपनी उत्तम बुद्धि से सब प्रकार की बातों की शिक्षा राजा को करे वह कल्याणकारी है उसके उपदेश कियेहुये धर्मों को जो राजा करता है वह सेवापरायण निरहंकारी क्षत्रिय धर्म में प्रवृत्त ज्ञानी शुभकर्मी राजा उसी धर्म से बहुत कालतक कीर्तिमान् होता है और उस सब धर्म का भागी राजपुरोहित है और इसी प्रकार सब प्रजा भी राजा की रक्षा में हैं वह सुन्दर वृत्ति करनेवाली प्रजा जिस राजा के राज्य में धर्मों को करती है उसके पुण्य के चौथेभाग को राजा प्राप्त करता है और देवता, मनुष्य, पितृ, गन्धर्व, उरग, राक्षस यह सब यज्ञ सेही जीवन करते हैं और विना राजा के देश में यज्ञ नहीं है इससे इन सब धर्मयज्ञों का मूल राजाही है इसीसे सब की तृप्ति होती है वह राजा गर्मी में वायु, जल, छाया आदि से प्रसन्न रहता है और शीतकाल में अग्नि, वस्त्र और सूर्य इनसे सुख पाता है और चित्त शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्धादि विषयों में रमता है और भयभीत मनुष्य इन सब भोगों में आनन्द नहीं प्राप्त करता है इससे जो निर्भयता करनेवाला है उस का बड़ा फल है तीनों लोकों में प्राणदान के समान कोई वस्तु नहीं है जैसे इन्द्र और यम राजा हैं वैसेही धर्म भी राजा है राजा बहुत से रूप धारण करता है और राजाही से यह सब धारण किये हुये हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्विसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि बहुश्रुत और महाप्रभाववान् धर्म अर्थ के जानने-वाले ब्राह्मण राजा को पुरोहित करने के योग्य हैं जो राजाओं का पुरोहित धर्मात्मा और मन्त्र का जाननेवाला हो और उन का राजा भी उसी प्रकार के गुणों का जाननेवाला हो वहां सब प्रकार से कल्याण होता है वह राजा और पुरोहित दोनों प्रजा को और सब देव पितरों को और पुत्रादिकों को वृद्धि करनेवाले हैं वह श्रद्धापूर्वक अच्छे वेदोक्त धर्मों में प्रवृत्तचित्त सुहृद

जनों के सुखदायी और हितकारी हैं प्रजा में ब्राह्मण लोग क्षत्रिय की प्रतिष्ठा करने से सुख को पाते हैं और जो प्रजा उन दोनों का अपमान करती है तो नष्ट होजाती है क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय सब वर्णों के मूल कहे जाते हैं इस स्थान में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिस में ऐल और कश्यप ऋषि के उत्तर प्रत्युत्तर हैं उसको सुनिये ऐल बोला कि जब ब्रह्मकुल क्षत्रियकुल को त्याग करता है ऐसी दशा में सब वर्ण कैसे होजाते हैं और कैसे पोषण कियेजाते और जीवन किस के द्वारा होता है कश्यपजी बोले कि इस लोक में जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर में विरोध रखते हैं वहां क्षत्रिय का देश नष्टता को प्राप्त होता है फिर जैसे पराक्रम प्रकट होता है वैसेही उस देश को चोर सेवन करते हैं और उसी प्रकार सन्तलोग भी उन में रूपधारण करते हैं अर्थात् यह जानते हैं कि यह ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला म्लेच्छराजा है उन्हों के वेद की वृद्धि नहीं होती और सन्तान भी वेद नहीं पढ़ते और वर्गों में कभी लक्ष्मी की वृद्धि नहीं होती और सब सन्तान मूर्ख होती है और यज्ञादि से रहित म्लेच्छरूप होजाते हैं इस से यह दोनों परस्पर में स्नेह और पोषण के योग्य हैं क्योंकि क्षत्रियकुल ब्रह्मकुल का रक्षास्थान है इसी प्रकार ब्रह्मकुल क्षत्रियों का रक्षास्थान है यह दोनोंकुल सदैव से प्रतिष्ठावान् हैं जब इनदोनों में स्नेह नहीं होता उस दशा में सब संसार नष्ट होजाता है और अज्ञान की फांसी में फँसता है और इस संसाररूपी अथाह समुद्र से ऐसे पार नहीं उतरसक्ता जैसे कि अथाह समुद्र में उत्पात में पड़ीहुई नौका के चारोंवर्ण महाभयभीत होते हैं फिर प्रजा नष्ट सी होजाती है रक्षा कियाहुआ ब्राह्मण देश में सुवर्ण की वर्षा को करता है और अरक्षित ब्राह्मण अश्रुपात से पाप की वर्षा करता है जब ब्रह्मचारी ब्राह्मण पढ़ी हुई वेदशाखाओं से रहित चोरों से घिराहुआ होता है और क्षत्रिय उसकी रक्षा नहीं करता है वहां देवता वृष्टि को सन्देहपूर्वक करते हैं अर्थात् वर्षा का होना कठिन होता है और देश में मरी और दुर्भिक्षभी प्रवेश करते हैं और जहांपर पापात्मा लोग स्त्री या ब्राह्मण को मारकर प्रशंसा पाते हैं और राजा के सम्मुख भी भय नहीं करते तब क्षत्रियों को भय प्राप्त होता है हे ऐल! पापियों के पापकरने से यह राजारूप देवता रुद्ररूप अर्थात् कलिरूप होजाता है क्योंकि पापीलोग ही पापों से कलियुग को उत्पन्न करते हैं वह कलि साधु असाधु सब को मारता है ऐल बोला कि राजा का रुद्ररूप कहां से होता है यह मुझ से कहिये कश्यपजी बोले कि मनुष्यों के हृदय में जो आत्मा अर्थात् जीवात्मा है वही नाशकर्ता होता है तब अपने और दूसरे के देहों को घातकरता है रुद्र उत्पात की वायु के समान है और उस देवतारूप बादल के तुल्य है अर्थात् तैसे वायु बादलों को पृथक् २ करदेती है उसी प्रकार काम क्रोध आदि आत्मा को

विपरीतदशा में करते हैं ऐल बोला कि पवन किसी को अलग नहीं करती है और देवता इन्द्र बादलरूप होकर भी वृष्टि नहीं करता परन्तु नरलोकों में संयुक्त होकर ऐसा गर्भित दृष्टिपड़ता है और कामद्वेष के कारण मरना और विस्मरण होना होता है कश्यपजी बोले कि जैसे एक स्थान की देदीप्त अग्नि सम्पूर्ण ग्राम को भस्म करती है उसी प्रकार यह देवता भी बड़ामोह प्रकट करता है इसी से सबजीव पुण्य पापों में प्रवृत्त होते हैं ऐल बोला कि मुख्यकर पापियों के पाप करने से पुण्य पाप से पृथक् आत्मा को अज्ञानता से दण्डस्पर्श करता है ऐसी दशा में किस कारण से पुण्य करता है और किसहेतु से पाप नहीं करता अर्थात् शास्त्रोक्त कर्म निष्फल नहीं होता कश्यपजी बोले कि अहंकार के साथ आत्मा का योग न होने से अहंकार का कियाहुआ पाप नहीं होता और अहंकार में प्रवृत्त होने से पाप के समान दण्डस्पर्श करता है जैसे कि सूखे काष्ठ के साथ गीलाकाष्ठ भी जल जाता है इससे पापियों से कभी मेल मिलाप न करे ऐल बोला कि पृथ्वी इस लोक में साधु असाधु सबको धारण करती है और सूर्य भी साधु असाधु कोई हो सबको तपाते हैं और वायु भी इसी प्रकार सबपर चलती है इसी प्रकार जलभी साधु असाधु सबको पवित्र करता है तात्पर्य यह है कि पृथ्वी आदि के समान आत्मा सब से असंग है फिर अहंकार युक्त रुद्रभाव से आत्मा को क्या सम्बन्ध है इस से आत्मा रुद्ररूप है यह कहना योग्य नहीं कश्यपजी बोले कि हे राजकुमार! इसी प्रकार से वह शुद्ध आत्मारूप दृष्टिगोचर होता है परन्तु परलोक के विषय में ऐसे प्रकार का दर्शन वर्तमान नहीं है उस दशा में जो पुण्य पाप को करता है तब देह त्यागने पीछे उन दोनों के रूप में अन्तर होता है अर्थात् पुण्य का लोक मधुमान और दिव्य प्रकाशवान् सुवर्णरूप ज्योति रखनेवाला और अमृत की नाभि है उसी में ब्रह्मचारी लोग देहत्याग करके आनन्द को करते हैं उसमें जरा मृत्यु आदि कोई दुःख नहीं है और पाप का लोक कुचाली सदैव दुःखरूप अत्यन्त शोक का कर्ता है उसमें भूले हुये पापात्मा लोग गिरते हैं और बहुत समय तक अपने को शोचा करते हैं ब्राह्मण क्षत्रियों के परस्पर विरोध होने से प्रजा असह्य दुःख को सहती है ऐसा जानकर राजा को इस लोक में सदैव विद्यावान् वेदज्ञ ब्राह्मण पुरोहित करना चाहिये उस पुरोहित को नियत करके राज्याभिषेक करे इस लोक में ब्राह्मण धर्म से सब से मुख्य और धर्म का मार्ग दिखानेवाला कहा है ब्राह्मण की उत्पत्ति सबसे प्रथम है इससे इनको प्रथम पद की प्राप्तिहै और सब प्रकार पूजन के योग्य हैं सब उत्तम पदार्थ उसकी भेंट के योग्य हैं यह बात पराक्रमी राजा भी सदैव करे क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय की वृद्धि करता है और

क्षत्रिय से ब्राह्मण भी वृद्धि पाता है इसी हेतु से ब्राह्मण क्षत्रियों से सदैव पूजने के योग्य हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि देश का अभीष्ट और रक्षा राजा के आधीन है और राजा का जो अभीष्ट और रक्षा है वह पुरोहित के आधीन कही जाती है जिस में प्रजाओं का जो गुप्त भय है उसको ब्राह्मणही दूर करता है और दृष्टिगोचर भय को राजा अपने भुजबल से दूर करता है इस कारण सम्पूर्ण राज्य के लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजा मुचुकुन्द और कुबेरजी के प्रश्नोत्तर हैं राजा मुचुकुन्द इस सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करके कुछ इच्छापूर्वक सेना समेत कुबेरजी के पास गया तब कुबेरजी ने राक्षसों को आज्ञादी कि इस सेना को मारो तब मुचुकुन्द की सेना को राक्षसों ने मारा उस समय अपनी सेना के नष्टहोने पर विद्यावान मुचुकुन्द ने अपने वेदपाठी पुरोहित की निन्दा की तब तो पुरोहित वशिष्ठजी ने अपने तप के प्रभाव से सब राक्षसों को मारडाला और उस राजा के मार्ग को भी जाना फिर कुबेरजी ने अपनी सेना के मरने पर मुचुकुन्द को दर्शन दिया और यह वचन कहा कि तुम से पहिले राजालोग पुरोहितों के कारण महापराक्रमी थे ऐसा किसीने कर्म नहीं किया जैसा कि तुमने यहां किया निश्चय करके वह अस्त्रज्ञ पराक्रमी राजालोग आकर मुझ सुखदुःख के स्वामी की उपासना करते हैं इससे जो तू पराक्रमी है तो अपने पराक्रम को दिखा तुम ब्राह्मणों के पराक्रम से क्या अधिक कर्म करते हो तबतो क्रोधयुक्त होकर मुचुकुन्द ने धन के स्वामी कुबेरजी को उत्तर दिया कि ब्रह्माजी ने एक स्थान में उत्पन्नहोनेवाले ब्रह्मकुल और क्षत्रियकुल को उत्पन्न किया वह विद्या और पराक्रम से भराहुआ संसारकी क्या रक्षा नहीं करे क्योंकि तप और मन्त्रबल तो सदैव ब्राह्मणों में वर्तमान है और क्षत्रियों में अस्त्र और भुजाबल सदैव वर्तमान है दोनों मिलकर प्रजा का पालन करना योग्य है इससे हे अलकापुरी के राजा, कुबेरजी ! क्यों मेरी निन्दा करते हो फिर कुबेरजी ने राजासे और उनके पुरोहित जी से कहा कि मैं ईश्वर के विना दिये हुये किसी को राज्य नहीं देताहूं और ईश्वर की इच्छा विना किसी का राज्य हरता भी नहीं हूं तब मुचुकुन्द ने उत्तर दिया कि हे कुबेरजी ! मैं भी आप के दियेहुये राज्यको भोगना नहीं चाहता हूं मेरी यही इच्छा है कि मैं अपनी भुजाबल से जीते हुये राज्य को भोगूं भीष्मजी बोले कि ऐसे मुचुकुन्द के निर्भय वचनों को सुनकर कुबेरजी ने बड़ा आश्चर्य

किया तदनन्तर क्षत्रियधर्म के ज्ञाता उस राजा मुचुकुन्द ने भुजबल से प्राप्त होनेवाली पृथ्वीपर बड़े आनन्द से राज्य किया इस प्रकार से जो उत्तम ब्राह्मण को अग्रगणनीय करके धर्मज्ञ राजा राज्य को करता है वह कठिन भूमि को भी विजय करके सुख और आनन्द भोगता है और सदैव यशस्वी रहता है ब्राह्मण सदैव जल रखनेवाला और क्षत्रिय शस्त्र रखनेवाला हो तो उन दोनों के आधीन सब विश्वके पदार्थ हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा जिस रीति से मनुष्यों की वृद्धि करता है और पवित्र लोकों को विजय करता है वह सब आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि दान, यज्ञ, व्रत, तप का अभ्यास रखनेवाला प्रजापालन में प्रीतिकर्ता राजा सदैव धर्म से प्रजा का पालन करे और दान, मान, प्रीति से धार्मिक पुरुषों का सन्मान करे क्योंकि राजा से पूजित धर्म सब स्थानों पर पूजाजाता है राजा जो २ कर्म करता है वही प्रजाओं को सुखदायी जानपड़ता है राजा सदैव शत्रुओंपर मृत्यु के समान दण्डधारण करनेवाला होवे और सब चोर आदि को मारे और अपनी इच्छा से किसी को क्षमा न करे इस लोक में राजा से रक्षित प्रजा जिस धर्म को करती है उस के चौथे अंश को राजा प्राप्त होता है और प्रजा के लोग जो दान, यज्ञ, व्रत और वेदपाठ आदि कर्म करते हैं प्रजापालन करनेवाला राजा उस के चौथे भाग को भोगता है और जो रक्षा नहीं करता उसकी प्रजा जो पाप करती है उसका चौथाई पाप राजा भोगता है और निर्दय मिथ्यावादी मनुष्य जो कर्म करते हैं उस कर्म के सम्पूर्ण या आधेभाग को राजा पाता है और जिस कर्म से राजा जैसे पाप से छूटता है उस को सुनो जो चोरों से हराहुआ धन उन से फेरलेने को असमर्थ हो ऐसी दशा में असमर्थ और व्यापारियों के साथ जीविका करनेवाले राजा को अपने भण्डार से देना चाहिये सदैव ब्राह्मण का धर्म रक्षाकरने के योग्य है जो कि ब्राह्मण रक्षा के योग्य हैं और जो पुरुष ब्राह्मणों के साथ निकृष्ट कर्म करे वह देशमें रखने के योग्य नहीं है ब्राह्मण के धन की रक्षा से सबकी रक्षा होती है इसीसे राजा ब्राह्मण की कृपा से अभीष्ट सिद्धकरे जैसे जीवों की रक्षा मेघ और पक्षियों की रक्षा वृक्ष करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों का अभीष्ट राजा से सिद्ध होता है अपनी इच्छा के अनुसार चित्त और बुद्धि रखनेवाले निर्दयी लोभी राजा से प्रजा की रक्षा का होना सम्भव नहीं युधिष्ठिर बोले कि मैं राजसुख का चाहनेवाला एक क्षणमात्र को भी राज्य नहीं चाहता हूं केवल धर्म के निमित्त राज्य को अच्छा

क्षत्रिय से ब्राह्मण भी वृद्धि पाता है इसी हेतु से ब्राह्मण क्षत्रियों से सदैव पूजने के योग्य हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि देश का अभीष्ट और रक्षा राजा के आधीन है और राजा का जो अभीष्ट और रक्षा है वह पुरोहित के आधीन कही जाती है जिस में प्रजाओं का जो गुप्त भय है उसको ब्राह्मणही दूर करता है और दृष्टिगोचर भय को राजा अपने भुजबल से दूर करता है इस कारण सम्पूर्ण राज्य के लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजा मुचुकुन्द और कुबेरजी के प्रश्नोत्तर हैं राजा मुचुकुन्द इस सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करके कुछ इच्छापूर्वक सेना समेत कुबेरजी के पास गया तब कुबेरजी ने राक्षसों को आज्ञादी कि इस सेना को मारो तब मुचुकुन्द की सेना को राक्षसों ने मारा उस समय अपनी सेना के नष्टहोने पर विद्यावान् मुचुकुन्द ने अपने वेदपाठी पुरोहित की निन्दा की तब तो पुरोहित वशिष्ठजी ने अपने तप के प्रभाव से सब राक्षसों को मारडाला और उस राजा के मार्ग को भी जाना फिर कुबेरजी ने अपनी सेना के मरने पर मुचुकुन्द को दर्शन दिया और यह वचन कहा कि तुम से पहिले राजालोग पुरोहितों के कारण महापराक्रमी थे ऐसा किसीने कर्म नहीं किया जैसा कि तुमने यहां किया निश्चय करके वह अस्त्रज्ञ पराक्रमी राजालोग आकर मुझ सुखदुःख के स्वामी की उपासना करते हैं इससे जो तू पराक्रमी है तो अपने पराक्रम को दिखा तुम ब्राह्मणों के पराक्रम से क्या अधिक कर्म करते हो तवतो क्रोधयुक्त होकर मुचुकुन्द ने धन के स्वामी कुबेरजी को उत्तर दिया कि ब्रह्माजी ने एक स्थान में उत्पन्नहोनेवाले ब्रह्मकुल और क्षत्रियकुल को उत्पन्न किया वह विद्या और पराक्रम से भराहुआ संसारकी क्या रक्षा नहीं करे क्योंकि तप और मन्त्रबल तो सदैव ब्राह्मणों में वर्तमान है और क्षत्रियों में अस्त्र और भुजाबल सदैव वर्तमान है दोनों मिलकर प्रजा का पालन करना योग्य है इससे हे अलकापुरी के राजा, कुबेरजी ! क्यों मेरी निन्दा करते हो फिर कुबेरजी ने राजासे और उनके पुरोहित जी से कहा कि मैं ईश्वर के विना दिये हुये किसी को राज्य नहीं देताहूं और ईश्वर की इच्छा विना किसी का राज्य हरता भी नहीं हूं तब मुचुकुन्द ने उत्तर दिया कि हे कुबेरजी ! मैं भी आप के दियेहुये राज्यको भोगना नहीं चाहता हूं मेरी यही इच्छा है कि मैं अपनी भुजाबल से जीते हुये राज्य को भोगूं भीष्मजी बोले कि ऐसे मुचुकुन्द के निर्भय वचनों को सुनकर कुबेरजी ने बड़ा आश्चर्य

. तदनन्तर क्षत्रियधर्म के ज्ञाता उस राजा मुचुकुन्द ने भुजबल से प्राप्त
।ी पृथ्वीपर बड़े आनन्द से राज्य किया इस प्रकार से जो उत्तम ब्राह्मण
अग्रगणनीय करके धर्मज्ञ राजा राज्य को करता है वह कठिन भूमि को
विजय करके सुख और आनन्द भोगता है और सदैव यशस्वी रहता है
सदैव जल रखनेवाला और क्षत्रिय शस्त्र रखनेवाला हो तो उन दोनों के
।धीन सब विश्वके पदार्थ हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा जिस रीति से मनुष्यों की वृद्धि करता है और पवित्र
.कों को विजय करता है वह सब आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि
।न, यज्ञ, व्रत, तप का अभ्यास रखनेवाला प्रजापालन में प्रीतिकर्ता राजा
धर्म से प्रजा का पालन करे और दान, मान, प्रीति से धार्मिक पुरुषों का
करे क्योंकि राजा से पूजित धर्म सब स्थानों पर पूजाजाता है राजा
२ कर्म करता है वही प्रजाओं को सुखदायी जानपड़ता है राजा सदैव श-
मृत्यु के समान दण्डधारण करनेवाला होवे और सब चोर आदि को
और अपनी इच्छा से किसी को क्षमा न करे इस लोक में राजा से रक्षित
जिस धर्म को करती है उस के चौथे अंश को राजा प्राप्त होता है और
के लोग जो दान, यज्ञ, व्रत और वेदपाठ आदि कर्म करते हैं प्रजापालन
कर वाला राजा उस के चौथे भाग को भोगता है और जो रक्षा नहीं करता
उसकी प्रजा जो पाप करती है उसका चौथाई पाप राजा भोगता है और निर्दय
मिथ्यावादी मनुष्य जो कर्म करते हैं उस कर्म के सम्पूर्ण या आधेभाग को
राजा पाता है और जिस कर्म से राजा जैसे पाप से छूटता है उस को सुनो जो
चोरों से हराहुआ धन उन से फेरलेने को असमर्थ हो ऐसी दशा में असमर्थ
और व्यापारियों के साथ जीविका करनेवाले राजा को अपने भण्डार से देना
चाहिये सदैव ब्राह्मण का धर्म रक्षाकरने के योग्य है जो कि ब्राह्मण रक्षा के
योग्य हैं और जो पुरुष ब्राह्मणों के साथ निकृष्ट कर्म करे वह देशमें रखने के
योग्य नहीं है ब्राह्मण के धन की रक्षा से सबकी रक्षा होती है इसीसे राजा ब्राह्मण
की कृपा से अभीष्ट सिद्धकरे जैसे जीवों की रक्षा मेघ और पक्षियों की रक्षा वृक्ष
करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों का अभीष्ट राजा से सिद्ध होता है अपनी इच्छा
के अनुसार चित्त और बुद्धि रखनेवाले निर्दयी लोभी राजा से प्रजा की रक्षा
का होना सम्भव नहीं युधिष्ठिर बोले कि मैं राजसुख का चाहनेवाला एक क्षण-
मात्र को भी राज्य नहीं चाहता हूं केवल धर्म के निमित्त राज्य को इच्छा

समझता हूं और इस में धर्म वर्तमान नहीं है इससे राज्य से मुझ को अलग कीजिये और धर्म करने के लिये वनही को जाऊंगा वहां पवित्र वनमें तारक दण्ड जितेन्द्रिय फल मूल भोजन करनेवाला मुनिरूप धारण कर धर्म का साधन करूंगा भीष्मजी बोले कि मैं तेरी उस बुद्धि को जानता हूं जो कि दूसरे के दुःख की हरनेवाली है परन्तु वह निर्गुण है शुद्धदयावान् से राज्य का भोगना असम्भव है यह लोक तुझ मृदुस्वभाव बड़े धार्मिक उत्तम और नपुंसक धर्म रखनेवाले दयावान् को भी बहुत मानता है पिता पितामह का चालचलन देखो इस प्रकार का राजाओं का चलन नहीं होता है जैसा कि तुम कर्म किया चाहते हो इस लोक में व्याकुलता में प्रवृत्त दयावान् तुम प्रजापालन से उत्पन्न होनेवाले धर्मफल को नहीं प्राप्तहोगे पाण्डु और कुन्ती ने ऐसा आशीर्वाद नहीं मांगा जैसे कि शास्त्रज्ञ होकर अपनी बुद्धि से तुम कर्म करते हो पिता ने तेरी शूरता पराक्रम सत्यता आदि को सदैव कहा है अर्थात् आशीर्वाद दिया और कुन्तीने आप के माहात्म्य और उदारता को चाहा और पितृदेवता पुत्रों में स्वधा और स्वाहा को नरयज्ञ देवयज्ञ के द्वारा चाहा करते हैं दानयज्ञ और वेदपाठ करना और चारोंओर से प्रजा का पालन करना यह धर्म हो या अधर्म हो तुम जन्म सेही उन के करने के लिये उत्पन्नहुये हो हे कुन्तीपुत्र! समयपर धुड़ में जुड़नेवाले और रक्खेहुये भारको उठानेवाले पीड्यमान पुरुषों की भी कीर्ति नाश नहींहोती है और शिक्षा कियाहुआ मार्ग में वर्तमान घोड़ा भी भार को लेचलता है कर्म वचन से जो निरपराधता है वही कर्म की सिद्धि है इस लोक में किसी धर्मवान् गृहस्थी, राजा और ब्रह्मचारी ने एकान्त में बैठकर धर्म को नहीं किया छोटाभी कर्म बहुत मनुष्यों का सुखदायी होने से बड़ा सारवान् है इससे न करने से करनाही उत्तम है विना जाने का अधिक पाप नहीं है जब कुलवान् धर्मज्ञ पुरुष उत्तम ऐश्वर्य को पाता है तब राजा का सिद्धप्रयोजन और उसकी रक्षा उसके कल्याण के निमित्त कल्पना कीजातीहै इस लोक में धर्मकरनेवाला राजा राज्य को पाकर सब और किसी को दान से किसी को पराक्रम से किसी को सत्यवचनों से अपने स्वाधीनकरे विद्यावान् कुलवान् निर्जीविका से भयभीत पुरुष जिसको प्राप्तहो तृप्तितासे आनन्दपाते हैं उससे अधिक कौनधर्महै युधिष्ठिर बोले हे पितामह! उत्तम स्वर्ग का देनेवाला कौनकर्महै और उत्तम प्रीति क्या है और इसका फल बड़ा ऐश्वर्य कौनहै यह मुझे समझाइये भीष्मजी बोले कि जिस राजा के पास भयसे पीड्यमान पुरुष एक क्षणमात्रभी अच्छेप्रकार से कुशलतापूर्वक आनन्द को पाता है वह हमलोगों में स्वर्ग का जीतनेवाला है इससे हे कौरवों में उत्तम! कौरवों में प्रीति करनेवाले तुम्हीं राजाहोकर स्वर्गको विजयकरो सत्पुरुषों की रक्षाकरो और दुष्टोंको

हे तात ! जैसे बड़े २ पुण्यात्मा उपकारी जीवों की रक्षा करते हैं वैसेही तुम पने सुहृदजन और प्रजाका पालन करो ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! कोई ब्राह्मण अपने कर्म में प्रवृत्त है और उसके विपरीत कर्म में डूबेहुये हैं उनकी न्यूनाधिकता कहिये भीष्मजी कि जो ब्राह्मण ब्रह्मविद्या और शम दम आदि लक्षणों से संयुक्त समदर्शी वह ब्रह्मरूप कहेजाते हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋग्, यजु, साम आदि अपने कर्म में अत्यन्त प्रवृत्त हैं वह देवताओं के समान हैं और जो जन्म के योग्य कर्मों से रहित और सब बालबच्चे स्त्री आदि के दुःखदेनेवाले हैं और लोभ से धन इकट्ठा करनेवाले नाममात्र को ब्राह्मण कहलाते हैं वह शूद्र के तुल्य हैं और जो वेदपाठी अग्निहोत्री नहीं हैं उन सब से धर्मात्मा राजा कर ले और विना मासिक के राजसेवा करावे धर्माधिकारी और मासिक लेकर देवता की पूजाकरनेवाला नाक्षत्रक, ग्रामयाजक, मनुष्यों के समूह को यज्ञकरानेवाला और मार्गका कर लेनेवाला यह पांचो ब्राह्मण चाण्डाल के सदृश हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋत्विज्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और सन्देशहर हैं वह क्षत्रिय के समान होते हैं और जो ब्राह्मण अश्वयानी, हस्तियानी, रथयानी और पदाती होते हैं वह वैश्यकेसमान होते हैं जिस राजा का कोशागार धन से खालीहो वह ब्रह्मरूप और देवरूप ब्राह्मणों के सिवाय इनसब ब्राह्मणों से पृथ्वी की भेजले और जो ब्राह्मण नहीं हैं उनके धनका स्वामी राजा है और ब्राह्मण होके अपने धर्म के विपरीत चलनेवाले ब्राह्मण के धन का भी राजाही स्वामी होता है यह वेदवाक्य है अपने धर्म के विपरीत धर्मवाला ब्राह्मण किसीप्रकार से भी राजा से अदण्ड नहीं होसक्ता अर्थात् धर्मपर अनुग्रह करने के कारण वह लोग समझाने और भाग देने के योग्य हैं और जिस राजा के देश में ब्राह्मण चोर होता है उसके आन्तर्य के जाननेवाले मनुष्य उसको राजाही का अपराध जानते हैं जो वेदज्ञ और स्नातक ब्राह्मण आजीविका के न होने से चोर होजाय वह राजा से पोषण के योग्य है यह वेदज्ञों का वचन है और जिस ब्राह्मण की आजीविका नियत कीगई है और अपराधी होजाय तो वह अपनी जीविका को त्यागदे और जो न त्यागे तो राजा उसको सकुटुम्ब देशसे बाहर निकालदे ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! राजा किस २ के धनका स्वामी होता है
और किस वृत्ति से रहै यह कृपाकरके मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि ब्राह्मणके
सिवाय राजा सबके धनका स्वामी होता है और ब्राह्मणों में भी जो अपने धर्म
के विपरीत हैं उनके भी धनका स्वामी गिनाजाता है यह वेदकी श्रुतिहै विप-
रीतधर्म करनेवाले ब्राह्मण किसी दशामें भी राजा से अदण्ड नहीं होसक्के श्रेष्ठ
लोग राजाओं का यह प्राचीन व्यवहार कहते हैं जिसराजा के देशमें ब्राह्मण चोर
होता है उस अपराध को राजाही का पाप मानते हैं उसकर्म से आत्मा को जब
लगाने के योग्य मानते हैं इसीसे सब राजऋषियों ने ब्राह्मण को पोषण किया
इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको राक्षस से हरेहुये राजा
केकयने वर्णन किया है वह यह है कि एक भयानकरूप राक्षसने वेदपाठी व्रत-
निष्ठ केकयदेश के राजा को वन में पकड़लिया तब राजा ने उस से कहा कि
मेरे देश में चोर, कृपण, मद्यपी आदि कोई नहीं है और सब मनुष्य अग्निहोत्री
हैं और सदैव यज्ञधर्म करनेवाले हैं और मेरा ब्राह्मण भी मूर्ख नहीं है किन्तु व्रत-
निष्ठ अमृतपान करनेवाला अग्निहोत्री यज्ञ करनेवाला है और मेरे देश में
कोई भी विना दक्षिणावाले यज्ञ से पूजन नहीं करते और कोई वेदपाठ और
यज्ञ से खाली नहीं है पठन, पाठन, यज्ञ करते कराते दान देते और लेते हैं इन
छह कर्मों में प्रवृत्त हैं मृदु स्वभाव सत्यवादी स्वकर्मनिष्ठ ब्राह्मण मुझ से पूजित
और अच्छे प्रकार से भोगों के पानेवाले हैं सत्यधर्म में कुशल अयाचक दान
लेते हैं वेतन लेकर नहीं पढ़ाते हैं आप पढ़ते हैं यज्ञ करते हैं परन्तु दूसरे को
नहीं कराते और दान लेने को भी निषेध करते हैं अपने कर्म में सावधान और
युद्ध में न मुड़नेवाले ऐसे मेरे क्षत्रिय ब्राह्मणों की चारो ओर से रक्षा करते हैं
निश्छल होकर खेती गौवों का पालन और व्यापार आदि से अपना निर्वाह
करते हैं सावधान क्रियावान् सुन्दर व्रतवाले सत्यवादी हैं और भागों का वि-
भाग शान्तचित्त बाहर भीतर से पवित्र और सब से प्रीति रखने आदि में
प्रवृत्त हैं ऐसे मेरे देश के वैश्यलोग भी अपने २ कर्म में प्रवृत्त हैं और अपने
कर्म में सावधान दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मेरे देश के शूद्र भी
तीनों वर्णों की सेवा करते हैं दुखिया, अनाथ, वृद्ध, अल्पप्राण, रोगी, स्त्री
इन सबको भाग देनेवाला हूं और कुल, देश आदि के सब नियत धर्मों को
बुद्धि के अनुसार दृढ़ करनेवाला हूं और मेरे देश में तपस्वीलोग सत्कारपू-
र्वक पूजित सब ओर से रक्षित अच्छे प्रकार से भाग पानेवाले हैं और मैं भी
सब भागों के दिये विना भोजन नहीं करता हूं और अन्य की स्त्री से सम्भोग

और न कभी स्वतन्त्रता से क्रीड़ा करता हूं मेरे देशमें ब्रह्मचारी लोगों
और कोई भिक्षा मांगनेवाला नहीं है और सब भिक्षुक भी ब्रह्मचर्य
नहीं हैं विना ऋत्विज् के होम नहीं होता और मैं कभी वेदपाठी या
तपस्वियों का अपमान नहीं करता और अपने देश के सोजाने पर
करता हूं मेरा पुरोहित ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त तपस्वी सब धर्मों का जानने-
सब देश भर का स्वामी और बुद्धिमान् है मैं दान से विद्या को चाहता
र् ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सत्यतापूर्वक धन को चाहता हूं और सेवा
गुरु लोगों के पास जाया करता हूं और मैं राक्षसों से कभी भय नहीं
मेरे देश में विधवा स्त्री नहीं हैं और अपने कर्म का त्याग करनेवाला
नाम को भी ब्राह्मण मेरे देश में नहीं है और न कोई छली चोर ब्राह्मण है
अनधिकारियों का यज्ञ करानेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पापकर्मी
तु से मुझ को राक्षसों से किंचित् भी भय नहीं है और मुझ युद्धकर्ता
में शस्त्रों से विना व्रण दोअंगुल भी देह नहीं है और मेरे देशवाले सदैव
ब्राह्मण और अन्य मनुष्य यज्ञों से मेरे कल्याण को चाहते हैं इससे तुम
देह में प्रवेश मतकरो राक्षस बोला कि हे केकय ! जिसकारण से तुम सब दशा
को ही विचारते हो इस से तुम कुशलपूर्वक घर को जावो मैं आपको
कर जाता हूं और सुनो कि जो गौ, ब्राह्मणों और प्रजा की रक्षा करते हैं
को राक्षसों से कभी भय नहीं होता फिर पाप से भय कैसे होगा जिन के
ब्राह्मण हैं और पुरवासी वा अतिथियों का सत्कार करते हैं वह
निश्चय करके स्वर्ग पानेवाले हैं भीष्मजी बोले कि इसकारण ब्राह्मणों
रक्षाकरे क्योंकि वह रक्षा को निर्विघ्न करते हैं और उनका आशीर्वाद रा-
को सफल होता है इस हेतु से विपरीतकर्मी ब्राह्मणों को भी राजा
में प्रवृत्त करे और उनपर ऐसा अनुग्रह करे कि वह भाग पाने के योग्य
जो राजा इस प्रकार से अपने देश और पुरवासियों के साथ वर्ताव
है वह इस लोक में कीर्तिमान् होकर अन्त में इन्द्र की समता को
होता है ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि आपत्तिकाल में ब्राह्मणों की जीविका राजधर्मों से कही
तो किसी दशा में ब्राह्मण वैश्यधर्म से भी अपनी जीविका करसक्ता है
नहीं ? भीष्मजी बोले कि आजीविका के नष्ट होजाने से और दुःखहोने
कारण क्षत्रियधर्म में प्रवृत्त होने को असमर्थ ब्राह्मण खेती और गौ के

पालन आदि में प्रवृत्त होकर वैश्य के धर्म से निर्वाह करसक्ता है युधिष्ठिर बोले कि ब्राह्मण वैश्यधर्म में प्रवृत्त होकर किस २ वस्तु के बेचने से स्वर्ग से च्युत नहीं होता है भीष्मजी ने कहा कि मद्य, नोन, तिल, घोड़े, गौ, बकरी, बैल, मधु, मांस, सिद्धान्न इतनी वस्तुवों को ब्राह्मण सब दशा में नहीं बेचे क्योंकि इन में से कोई भी वस्तु बेचे तो अवश्य नरकभोगे बकरा अग्निरूप और भैंसा वरुणरूप, घोड़ा सूर्यरूप, पृथ्वी विराट्रूप, गौ यज्ञ अमृतरूप हैं वह किसी दशा में भी बेचने के योग्य नहीं हैं साधुलोग पकेअन्न से कच्चेअन्न को बदलने की प्रशंसा नहीं करते हैं इस से कच्चेअन्न से पकेअन्न को भोजन के लिये अदला बदलीकरे तो यह कहकर बदला करे कि हम पके अन्न को भोजन करेंगे आप इसको तैयार करो इसप्रकार विगार कर बदला करने से कोई दोष नहीं है इस स्थान पर व्यवहार अच्छे लोगों के सनातनधर्म को समझो मैं यह आप को देता हूं आप इसको लीजिये धर्म मन की इच्छा से वर्तमान होता है पराक्रम से जारी नहीं होता इसप्रकार से ऋषिलोग और अन्यपुरुषों के सनातन व्यवहार जारी होते हैं यही श्रेष्ठ है इस में कुछ सन्देह नहीं है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जब सब प्रजा शस्त्रों को धारण करती है और सब अपने धर्मों से हटजाते हैं तब क्षत्रियधर्म नष्ट होजाता है तब लोक का राजा कैसे रक्षा करने को योग्य होय इस मेरे सन्देह को व्योरेवार कहकर दूरकरो भीष्मजी बोले कि जिन वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है वह वर्ण दान, तप, यज्ञ, अशत्रुता और शान्तस्वभाव से अपना कल्याण चाहें उन में जो वेदपाठ के पराक्रम रखनेवाले ब्राह्मण हैं वह चारो ओर उद्योग करके राजा के पराक्रम को बढ़ावें जैसे कि देवतालोग अपने इन्द्र के पराक्रम को बढ़ाते हैं हतराज्य राजा का भी ब्राह्मणही रक्षक है इस से ज्ञानी राजा को ब्राह्मण के पराक्रम से उद्योग करना चाहिये जब पृथ्वी का विजय करनेवाला राजा देश में मंगलकरे तब वर्ण अपने २ धर्म में कैसे नहीं चलेंगे अर्थात् अवश्य चलेंगे हे युधिष्ठिर ! वे मर्यादा जारीहोने में और चोरों से वर्णसंकर करने में शस्त्रधारी सबवर्ण दृष्टि न पड़े अर्थात् वर्णों की पृथक् २ पहिचान न हो और क्षत्रिय अज्ञानता से ब्राह्मण के साथ सबप्रकार से शत्रुताकरे उस ब्रह्मकुल का कौन रक्षक है और कौन धर्म और क्या उन की रक्षा का स्थान है भीष्मजी बोले कि जप, तप, ब्रह्मचर्य, शस्त्र, पराक्रम, छल और बिना छल से शासन करना उचित होय तो ब्राह्मणों के ऊपर अधिकतर वे मर्यादगी करनेवाले क्षत्रिय का दण्ड देनेवाला ब्राह्मण ही होगा क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणही से प्रकट हुआ है जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ उन का सर्वव्यापी तेज अपने उत्पत्तिस्थान में शान्तिता को पाता है जब लोहा पत्थर को काटता है

और अग्नि जल को स्पर्श करती है और क्षत्रिय ब्राह्मण से शत्रुता करता है तब वह तीनों नाश को पाते हैं इस से हे युधिष्ठिर ! क्षत्रियों से अजय और बहुत बड़े तेज और बल ब्राह्मण में शान्ति को पाते हैं ब्राह्मण का पराक्रम न्यून होने और क्षत्रिय का पराक्रम कठिन होने में और सब ब्राह्मणों के ऊपर सब वर्णों के शत्रुहोने में ब्राह्मणों को और धर्मों को और अपने को रक्षा करने-वाले जो पुरुष अपने जीव को त्याग करके यहां युद्ध को करते हैं वह साहसी और क्रोधजित पवित्रलोकगामी होते हैं ब्राह्मणों के लिये सब वर्णों को शस्त्र धारण करना अभीष्ट समझा जाता है वह शूर भोजनरहित अग्निप्र-वेश करनेवालों के सदृश ऐसे उत्तम लोकों को प्राप्त होते हैं जो कि यज्ञ, वेद-पाठ, तपस्या आदि से संयुक्त तपस्वियों के भी लोकों से बड़े हैं और मोक्षरूप परमगति को भी पाते हैं ब्राह्मण तीनों वर्णों के ऊपर शस्त्र धारण करता दोष को नहीं प्राप्त होता है इसी प्रकार मनुष्यों ने भी अपने देह के त्याग से दूसरे धर्म को नहीं जाना उन को नमस्कार है और उन का कल्याण हो जो ब्राह्मणों के शत्रुओं के मारने में अपनी देह को अर्पण करते हैं हम को भी उन्हीं की सी योग्यता हो मनुजी ने उन वीरों को स्वर्गवासी और ब्रह्मलोक का विजय करनेवाला कहा जैसे कि अश्वमेधयज्ञ के अवभृथस्नान से मनुष्य प-वित्र होते हैं और जैसे युद्ध में पाप के नाशकर्ता अस्त्रों से मरनेवाले पवित्र होते हैं उसी प्रकार देश काल के कारण से दोनों धर्म और अधर्म परस्पर में लौटपौट होते हैं अर्थात् अधर्म धर्मरूप होजाता है क्योंकि वह देश काल इसी प्रकार का है सब के मित्र निर्दयकर्म को करते उत्तम स्वर्ग को पाते हैं और धर्म में प्रवृत्त क्षत्रिय पापकर्म को करते परमगति को पाते हैं क्षत्रिय आदि वर्ण के विपरीत कर्म होने से ब्राह्मण अपनी रक्षा के निमित्त तीनों काल में दुःख से विजय होनेवाले नीचों के विजय करने के लिये शस्त्र को धारण करता दोष को नहीं प्राप्त होता है युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज ! चोर और वर्णसंकरों का समूह उठने और क्षत्रियों के असावधान होनेपर जो दूसरा वर्ण पराक्रमी प्रजापालन के लिये चोरों को विजय करे वह ब्राह्मण या वैश्य या शूद्र चोरों से प्रजा की रक्षा करे और धर्म से दण्ड को धारणकरे दूसरे के योग्य कर्म को करे या न करे और चाहे निषेध करने के योग्य हो या न हो मेरी बुद्धि में इस कारण से क्षत्रिय के सिवाय दूसरे वर्ण को भी शस्त्र धारण क-रना उचित है भीष्मजी बोले कि जो शूद्र या दूसरा कोई अपार में पार हो और बिना नौका के नदी की नौका हो वह सब प्रकार प्रतिष्ठा के योग्य है हे राजन् ! जिसकी रक्षा में मनुष्य अपना सुखपूर्वक काम करें और चोरों से अ-नाथों की रक्षा होय वह प्रीतिपूर्वक उसी राजा को ऐसे पूजें जैसे कि अपने

बान्धव को पूजते हैं हे कौरव ! निर्भय दान करनेवाला सदैव मानने के योग्य है जो बैल सवारी के योग्य नहीं होता उस से क्या प्रयोजन है और दूध न देनेवाली गौ से भी क्या प्रयोजन है वांझ स्त्री भी निष्प्रयोजन है इसी प्रकार रक्षा न करनेवाले राजा से भी कौन अर्थ है हे राजन् ! जैसे लकड़ी का हाथी और चर्म का मृग और नपुंसक और ऊपर खेत निष्प्रयोजन हैं इसी प्रकार जो ब्राह्मण वेदपाठी नहीं है और राजा रक्षक नहीं है और मेघ वर्षारहित है वह सब निरर्थक हैं जो पुरुष सदैव सत्पुरुषों की रक्षाकरे और नीचपुरुषों को मार्ग में चलावे वही राजा करने के योग्य है उससेही यह सब राज्यभार धारण किया जासक्ता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उन्नासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महावक्ता ! ऋत्विज् किस निमित्त नियत किये जाते हैं और उनका स्वभाव कैसा होना योग्य है और किस प्रकार के होयँ इसका वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि साम आदि वेद और शास्त्रों को जानकर प्रतिदिन कर्म में प्रवृत्त ऋत्विज् ब्राह्मणों का प्रति कर्म जो कि अच्छे प्रकार प्रवृत्त होकर कियाजाय वह कहाजाता है जो ऋत्विज् सदैव एकही राजा के समीप रहनेवाला और शत्रुओं के प्रश्नों का उत्तर देनेवाला सब का मित्र और समदर्शी होय वह दयावान् सत्यवादी व्याज न लेनेवाला शुद्ध अन्तःकरण शत्रुता और अहंकार से रहित लज्जायुक्त शान्तचित्त भीतर बाहर की बातों का जाननेवाला बुद्धिमान् सत्य धैर्यवान् तपयुक्त जीवों की हिंसा न करनेवाला रागद्वेष से भिन्न निर्दोष तीन गुणों में प्रवृत्त ज्ञान से तृप्त होय वह ब्रह्मआसन के योग्य है वही महाऋत्विज् प्रतिष्ठा के योग्य हैं युधिष्ठिर बोले कि जो यह वेद का वचन दक्षिणाओं के विषय में कहाजाता है कि यह देना चाहिये यह देना चाहिये वह कहीं व्यवस्था को नही पाता है यह शास्त्र धन की संख्या का निश्चय करनेवाला नहीं है किन्तु आप धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला है क्योंकि शास्त्र की यह बड़ी आज्ञा सामर्थ्य को नहीं देखती हैं श्रद्धा दान से यज्ञकरना चाहिये यह वेद की श्रुति है निष्फलकर्मवाले यज्ञ को श्रद्धा क्या पूर्ण करेगी अर्थात् जितनी गौ उतनेही वस्त्र या उनकेबदले चरु देवे यह निर्धन के लिये विधि है जो सामर्थ्यवान् पुरुष गौ के स्थान में चरु देवे तो वह मिथ्यायज्ञ है भीष्मजी बोले कि कोई मनुष्य वेदों के अपमान दुष्टता और छल आदि से बड़े पद को नहीं पाता है तेरी बुद्धि ऐसी न हो हे तात ! दक्षिणा यज्ञों का अंग है यह वेद का वचन है दक्षिणारहित यज्ञ किसी दशा में भी सफल नही होता

इस से तीनों वर्णों को सदक्षिणा यज्ञ करना चाहिये ब्राह्मणों का राजा सोम है यह वेद की मर्यादा है उस को विक्रय किया चाहते हैं परन्तु बिना यज्ञ के उस का बेचना अभीष्ट नहीं है क्योंकि उस धन के द्वारा प्राप्तहुये सोम से फिर यज्ञ होसक्ता है यह धर्मज्ञ ऋषियों का विचार है परन्तु उस समय जब कि पुरुषयज्ञ और सोमयज्ञ न्याय के अनुसार हो न्याय के विपरीत पुरुष दूसरे का है न अपना है अपमान से संयुक्त महात्मा ब्राह्मणों के किये हुये यज्ञ आदि शुभ नहीं होते यह भी वेद की श्रुति है तप यज्ञ से भी उत्तम है यह विशेप श्रुति है वह तप में तुझ से कहता हूं उस को सुन हिंसारहित, सत्य बोलना, दया और शान्तचित्तहोना इसी को पण्डितों ने तप कहा है देह का सुखाना तप नहीं है वेदों का प्रमाण न मानना, शास्त्रों को उल्लंघन करना सबधर्मों में प्रवृत्त न होना यह बात अपना नाश करनेवाली है कर्म भी ज्ञानही से सम्बन्ध रखते हैं इस को समझो कि दशहोम करनेवालों की बुद्धि को साकल्य और चित्तरूप स्रुक् और ज्ञानरूप घृत यही ज्ञान करना उत्तम है केवल यज्ञ नहीं उचित है और सब प्रकार की कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सीधापन ब्रह्मपद है ज्ञान का विषय इतनाही है और सब वृथा है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जो कर्म न्यूनतम भी है वह भी बिना सहायता के अकेले मनुष्य से करना कठिन है फिर राजा से करना कैसे सुगम होगा राजा का मन्त्री कैसे स्वभाव और आचरणवाला होवे और कैसे मन्त्री पर विश्वास करे और कैसे पर न करे भीष्मजी बोले कि हे राजन्! राजालोगों के मन्त्री चारप्रकार के होते हैं एक तो समान प्रयोजनवाला, दूसरा प्राचीन, तीसरा सम्बन्धी, चौथा बनाहुआ, पांचवां धर्मात्मा मित्र भी मन्त्री है जो कि पक्षपातरहित और दोनोंओर से गुप्तधनपाने के कारण छली न हो जिधर धर्म होय उधरही संयुक्त हो अथवा उसके उदासीनपने में भी जो धर्म में आरूढ़ हो उसी में संयुक्त हो जो प्रयोजन उसकी बुद्धि में निकृष्ट हो उसको उससे न कहे विजय की इच्छाकरनेवाले राजालोग धर्म और अधर्म दोनों से कर्म को करते हैं इन चारो मन्त्रियों में मध्य के दो मन्त्री श्रेष्ठ हैं पहिला और चौथा सदैव सन्दिग्ध हैं और जितनेहैं सब शंका के योग्य हैं अपना काम अपने नेत्रों के सम्मुख करनायोग्य है इससे निश्चय करके राजा को अपने मित्रों की रक्षा में ढील न करनी चाहिये क्योंकि असावधान राजा का सबलोग अपमानकरते हैं असाधु साधुरूप औरसाधु भय उत्पन्न करनेवाले होजाते हैं शत्रु मित्रहोता है और

मित्र भी शत्रुता करता है जो कि मनुष्य की बुद्धि सदैव एक सी नहीं रहती इससे कौन उसपर विश्वासकरे इससे जो उत्तमकर्म हैं उन को अपने सम्मुखही करे वा करावे जो अत्यन्तविश्वास करता है वह सवधर्मार्थों को नाश करता है परन्तु सव स्थानों में अविश्वासही करना मृत्यु से भी अधिक है विश्वास अकालमृत्यु है विश्वास का करनेवाला आपत्ति में पड़ता है जिसपर विश्वास करता है उसीकी इच्छा से जीवता है इस कारण कितनेही पुरुषोंपर तो विश्वास करना योग्य है और कितनेही पर ससन्दिग्ध विश्वास योग्य है हे तात ! यह सनातन नीति की गति देखने के योग्य है अविश्वास के स्थान यह हैं कि जिस को जाने कि मेरे मरने के पीछे इसी को राज्य होगा उससे सदैव शंका करनी योग्य है ज्ञानी लोग इस को शत्रु कहते हैं जिस के क्षेत्र से दूसरे के क्षेत्र में जल जाता है वहां उसके न चाहते सव पुल क्या नष्ट न होवें अर्थात् वह अधिक जल छोड़ने से देश को भी वरवाद करसक्ता है इसीप्रकार अपने देश की सीमा के समीपी जो राजा हैं जवतक वह सीमापर प्रवन्ध न रक्खें तवतक व्यापारादि अच्छे प्रकार से होते हैं और जव वह विपरीतता को करे तव देश की हानि होती है इस से वह राजा भी विश्वास योग्य नहीं है वैसेही वह राजा जल की आधिक्यता से भयभीत उस वन्द को तोड़ना चाहता है जिस को कि उसप्रकार का हानिकारक जाने उस शत्रु को अच्छे प्रकार से धमकावे जो मित्र वृद्धि से सन्तुष्ट न होवे और हानि में वड़ा दुःखी होवे यह मित्र का वड़ा लक्षण है ऐसे महान्लोग कहते हैं और जो यह माने कि मेरे नाश से उस का नाश होगा उसपर निश्चयपूर्वक ऐसा विश्वासकरे जैसा कि पिता पर विश्वास होता है वह सदैव धर्म कर्मों में भी घावों से वचाता है अपनी सामर्थ्य से वृद्धिमान् होकर उस की सव ओर से वृद्धि करे और घावों से भयभीत मित्र को अच्छा मित्रजाने और जो घावों के चाहनेवाले हैं वही शत्रु हैं जो सदैव व्यसनों से भयभीत रहता है और जो राज्य की वृद्धि के कारण शत्रुता नहीं करता है जो ऐसे प्रकार का राजा मित्र होय वह आत्मा के समान कहा जाता है जो रूप वर्ण और स्वर से संयुक्त क्षमावान् गुण में दोष न लगानेवाला कुलीन अपने श्रेष्ठकुल से सम्पन्न है वह प्रधान है और शास्त्रों को स्मरण रखनेवाला वुद्धि का स्वामी हरएक वात को याद रखनेवाला चतुर और स्वभाव से दयावान् है और जो प्रतिष्ठावान् व अप्रतिष्ठावान् होकर भी कभी शत्रुता न करे ऋत्विज् या आचार्य या प्रशंसनीय मित्रहो ऐसा मन्त्री तेरे घर में पूजित होकर वर्तमान हो वही तेरे वड़े मन्त्र को जाने और अर्थ धर्म की प्रकृति को जाने उसपै तेरा विश्वास पिता के समान हो एक कामपर दो या तीन अधिकारी नहीं नियत करने चाहिये अर्थात् एक कामपर एकही अधिकारी किय

जाय क्योंकि जीवों में सदैव विपरीतता होती है इससे वह भी कभी परस्पर में क्षमा न करेंगे जो नेकनामी को उत्तम माननेवाला और मर्याद पर चलनेवाला समर्थ मनुष्यों से शत्रुता नहीं करता है और अनर्थों को नहीं करता और इच्छा, भय, लोभ, क्रोध इत्यादि के कारण धर्म को नहीं छोड़ता चतुराई से सबका प्रिय बोलनेवाला है वह तेरा प्रधानमन्त्री होके कुलीन, श्रेष्ठस्वभाव, क्षमावान्, अपनी प्रशंसा न करनेवाला, शूर, श्रेष्ठ, चतुर, बुद्धिमान्, करने न करने के काम में विचारवान्, सत्संगी, सुकर्मी, सब कर्मों में प्रवृत्त ऐसे मन्त्री करने के योग्य हैं और जो पूजित अच्छेभाग को पानेवाले हों वा अपनी योग्यता से बड़े अधिकारोंपर नियत होनेवाले बड़े कार्यों में प्रवृत्त ऐसे लोग कल्याणों को करते हैं और परस्पर में ईर्षा करनेवाले लोग सदैव पापों को करते हैं और आपस में एक एक को कहकर राज्य के कर के लेने पर अधिकारी होते हैं इनलोगों से और जातिवालों से मृत्यु के समान भयभीत जानो ज्ञातिवाले समानता के विचार से सदैव धन की वृद्धि को नहीं सहते हे महाबाहो ! जातिवालों के सिवाय कोई उस के नाश को नहीं चाहता है जो सीधा, मृदुस्वभाव, दानी, लज्जावान्, सत्यवक्ता और सुचाली हो और जो अन्य बिरादरी हैं वह भी सुखदायी नहीं हैं इस कारण वह भी अपमान के योग्य नहीं हैं क्योंकि जातिवालों से बाहरहुये मनुष्य को दूसरे भी अपमान करते हैं दूसरे मनुष्यों के दबाये हुये अप्रतिष्ठित मनुष्य का जातिही रक्षा का स्थान है जातिवाला अन्य जातिवालों से होनेवाली जातिवालों की अप्रतिष्ठा को किसी दशा में भी नहीं सहता है सम्बन्धियों से किसी बान्धव का अपमान करनेपर सम्पूर्ण जाति भर अपना अपमान मानती है उन में गुण और अगुण भी दृष्टि आते हैं अन्य जातिवाला न तो कृपा करता है और न किसी अन्य जाति को झुकता है यह दोनों बातें और उत्तम अनुत्तमता जातिवालों में दृष्टि पड़ती हैं इससे जातिवालों की अपने सुष्ठु वचन और देह के अभ्युत्थान से प्रतिष्ठा करे और यथायोग्य पूजन सत्कार भी करे जहां तक बने वहां तक इन के अभीष्ट को करे विश्वासरहित और विश्वास के समान सदैव उन के साथ बर्ताव करे दोष या गुण उन से नहीं कहना योग्य है इस प्रकार अधिकारी और चतुर मनुष्य के शत्रु अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और मित्र होजाते हैं जो इस प्रकार से जाति वा सम्बन्धियों के मण्डल में और मित्र शत्रु और उदासीनों में सदैव बर्ताव को करता है वह बहुत काल पर्यन्त कीर्तिमान् रहता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि इस प्रकार जाति और सम्बन्धियों का मण्डल और शत्रु मित्र के आधीन भी न होने पर किस प्रकार से उन का चित्त स्वाधीन किया जाता है भीष्मजी बोले कि मैं इस स्थान पर इस भूत वृत्तान्त को कहता हूं जिस में वासुदेव और नारदजी का संवाद है वासुदेवजी बोले कि हे नारदजी! सुहृद्जन परममन्त्र के जानने योग्य नहीं हैं चाहे पण्डित या मूर्ख हो या अजित हो ऐसा जानकर आप को सुहृद् मित्र जानकर कुछ कहूंगा कि हे स्वर्गगामिन्! आप की सम्पूर्ण बुद्धि और पराक्रम को देखकर पूछता हूं कि मैं सब भागों के आधे अंश को भोगता हूं और कठोर वचनों को सहता हूं यह जो आप की सेवा है उस को जातिवालों के ऐश्वर्यभाव से नहीं करता हूं जैसे अग्नि का चाहनेवाला अरणी काठ को सहता है उसी प्रकार कठोर वचन मेरे हृदय को सुखाता है बलदेवजी में सदैव पराक्रम गद में सुकुमारता और प्रद्युम्न में रूप की अहंकारता है इससे हे नारदजी! मैं असहाय हूं और बड़े महाभाग पराक्रमी अजित सदैव दूसरे पर चढ़ाई करने में सन्नद्ध अन्धक और वृष्णि क्षत्रिय हैं वह जिसके सहायक न हों उसका नाश होजाय और जिस के साथी होजायँ उसका कुलभर वृद्धि को पावे अक्रूर और उग्रसेन इन दोनों से सदैव निषेध कियाहुआ मैं केवल एक कोही नहीं चाहता हूं जिससे कि एक के चाहने से दूसरे का क्रोध न हो परस्पर में विरोधी उग्रसेन और अक्रूर जिसके दोनों ओर होयँ और वह उनका मध्यस्थहो इससे अधिक उसको क्या दुःख होगा और वह दोनों जिसके मित्र न हों उस दशा में इस से अधिक दुःख क्या है सो हे महाज्ञानिन्! मैं एक की विजय दूसरे का अपमान ऐसे चाहता हूं जैसे जुवा खेलनेवालों की माता दोनों पुत्रोंके मध्य में दुःख पाती है इससे हे नारदजी। ऐसी दशा में मुझ दुःख पानेवाले का कल्याण और जातिवालों की वृद्धि के कहने को आप योग्य हैं नारदजी बोले हे श्रीकृष्णजी! दो प्रकार की आपत्ति हैं एक आन्तरीय दूसरी बाह्य वह दोनों आपत्तियां अपने स्वभाव और जातिवालों की ओर से उत्पन्न होती हैं सो यह आप की आन्तरीय सम्पूर्ण आपत्ति अपने कर्म से उत्पन्न होकर अक्रूर और उग्रसेन के द्वारा प्रकट होनेवाली है क्योंकि यह सब उनके वंश में हैं और वही आपत्ति धन इच्छा या निन्दा युक्त वचनों से उत्पन्न होनेवाली है अपनी जाति से उत्पन्न होनेवाला ऐश्वर्य दूसरे में नियत किया है और अब उसमें मूल उत्पन्न हुआ है क्योंकि जातिका शब्द उसका सहायक है अर्थात् जाति का नाश न करना चाहिये तुम को उस ऐश्वर्य का फेरलेना ऐसे उचित नहीं है जैसे कि वमन किये हुये अन्न को

हे श्रीकृष्ण ! तुम को भी जाति के विरोध के भय से किसी दशा में भी बभ्रु और उग्रसेन का राज्य लेलेना योग्य नहीं है और जो बड़े उद्योग व कठिन कर्म से प्राप्त भी होगा तो ऐसी दशा में बड़ी हानि और व्यय भी होगा और अन्त में नाश भी होगा बराबर साफ़कर उस मृदुचित्त के छेदनेवाले निर्लोह अस्त्र से सब की वाणी को बन्दकरो वासुदेवजी बोले कि हे नारदजी ! मैं मृदुआदि लोह के अस्त्र को कैसे जानूं जिससे कि साफ़ और तेज़ करके उन की जिह्वाओं को बन्दकरूं नारदजी बोले कि सामर्थ्य के अनुसार अन्नदान करना क्षमाशीलता मृदुत्व और जो जिसके योग्य हो उसकी उसी प्रकार पूजाकरना यही निर्लोह अस्त्र है तुम अपनी वाणी से उन कठोर मिथ्यावचनों को कहनेवाले जातिवालों के हृदय और वचन दोनों को शान्तकरो जो महापुरुष चित्त का जीतनेवाला सत्संगी भी नहीं है उस प्रकार का कोई पुरुष बड़े धुर को धारण नहीं करता है तो तुम उसको हृदय से स्वीकार करके धारण करो बैल बड़े भारी बोझे को समभूमि में बराबर लेचलता है और प्रत्येक सौगद नाम कठिन स्थान में दुःख से धारण करने योग्य बोझे को लेजाता है विरोध से समूहों का नाश होता है और आप समूहों के स्वामी हो इससे यह समूह आप को आश्रय लेकर नाश को प्राप्त न हो वही करिये बुद्धि क्षमा शान्तचित्त और दान धन के सिवाय ज्ञानी पुरुष में गुण नियत नहीं होता है सदैव अपने पक्ष की वृद्धि करना धन कीर्ति वृद्धि और आयु का पूर्ण करनेवाला है इससे हे कृष्ण ! जैसे जातिवालों का कल्याणहो वही करिये हे प्रभो ! वर्तमान और भविष्यत् काल में छह गुण की वृद्धि से सेना का इकट्ठा करना चढ़ाई करना उसीप्रकार उसकी रीतियां जिनको कि आपजानते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हो हे महाबाहो ! सब यादव, कुरु, भोज, अन्धक, वृष्णि कुलवाले क्षत्रिय आप के आधीन हैं वह सब लोकालोक पर्यन्त के स्वामी हैं हे माधव ! ऋषिलोग भी आप की बुद्धि की उपासना करते हैं तुम सबजीवों के गुरु होकर भूत भविष्यत् को जानते हो यादवलोग आप सरीखे ईश्वर को पाकर सुख को पाते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन् ! यह पहिला आचरण है अब दूसरा आचरण सुनो जो कोई पुरुष धन की रक्षा आदि को करे वह राजा से रक्षाके योग्य है हे युधिष्ठिर ! जो दास या नौकर मन्त्री करके ज़ब्त और नष्टकिये हुये खजाने को राजा से कहदे उसकी बातें एकान्त में सुनने के योग्य हैं और उसकी मन्त्री से रक्षा कीजाय चोरी करनेवाले मन्त्री बहुतों को मारते हैं राज्य के खज़ाने के

गुप्त चुरानेवाले सब नौकर मिलकर खज़ाने के रक्षक को पीड़ा देते हैं वह अरक्षित होकर नाश को पाता है इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कालकवृक्षीय नाम मुनि ने कौशल राजा से कहा वह मुनि कौशल देशों के क्षेमदर्शन नाम राजा से मिलने को गये और एक काक को किसी पिंजरे में बन्द करके अपने विचार को प्रचलित करने की इच्छा से उस क्षेमदर्शी के सब देशों में घूमतेहुये यह कहते फिरते थे कि काक की विद्या को पढ़ो मेरे काक भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल को वर्णन करते हैं इसप्रकार बहुतसे मनुष्यों के साथ देश में चारोंओर घूमते २ राजा के सब नौकरों के अन्यायों को देखा और सबदेश की यथार्थ बातों को जानकर जहां तहां राज्य के धनके चुरानेवाले राजा के नौकरों को पहिचानकर काक को लिये व्रतपरायण मुनि यह वचन कहते हुये कि मैं सर्वज्ञ हूं राजा से मिलने को गये और राजा से मिलकर काक के वचन से वस्त्रालंकार से अलंकृत राजा के प्रधानों से कहा कि तुमने अमुक स्थान पर यह चोरी की है और इस बात को यह सब मनुष्य जानते हैं कि तुमने राज्य के खज़ाने को चुराया ऐसा यह काक कहता है इस को जल्दी से देखो तब उस काक ने राज्य के धन के चुरानेवाले दूसरे नौकरों को भी कहा और यह भी कहा कि मेरा इसका कोई वचन मिथ्या नहीं है तात्पर्य यह है कि उसने सब नौकर दोषी किये उनलोगों ने रात्रि के समय निद्रा में निश्चेष्ट मुनि के उस काक को तीरों से घायल किया प्रातःकाल होतेही पिंजरे में उस काक को बाण से छिदाहुआ देखकर वह मुनि राजा से बोले हे राजन्! मैं तुझ से निर्भयता चाहता हूं तुम्हारी आज्ञा से तुम्हारे हितकारी वचनों को कहता हूं राजा ने उत्तर दिया कि अपने अभीष्ट को चाहनेवाला मैं आपके हितकारी वचनों को कैसे न सुनूंगा और हे मुने! मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूं आप जो चाहें सो कहें मैं आप के वचनों को सुनूंगा और करूंगा मुनि बोले कि हे राजन्! मैं तुम्हारे अपराधी नौकरों के किये कर्म को और नौकरों से तेरे भयों को जानकर भक्ति से सब वृत्तान्त कहने को तुम्हारे पास आया हूं प्रथमही आचार्यों से राजा की सेवा करनेवाले नौकरों का यह दोष कहागया कि राजा की सेवा करनेवाले पुरुषों की यह पापरूप आजीविका बहुत थोड़ी है जिसका स्नेह राजासे है उसकी मानो सर्प से प्रीति है राजालोग बहुत से मित्र और शत्रु रखनेवाले होते हैं राजा की सेवाकरनेवालों को उन सबसे भय करना कहा है उसी प्रकार इन नौकरों को भी एकमुहूर्त तो राजा से भय होय अस्वस्थचित्तपने से राजा को भुलावा देने को समर्थ होते हैं परन्तु इच्छावान् राजा को किसी दशा में भी भूल करना योग्य नहीं राजा नौकरों की चूक से हानि को पाता है और हानि पानेवाले राजा में जीवन नहीं होसक्ता राजा को शिक्षा करनेवाला नाश को पाता है जैसे देदीप्त अग्नि में

जीव भस्म होते हैं अप्रिय वचन और निष्फल उठावैठी और यात्रा आदि इंगित और देह के अंगीय कर्मों से शंका करनेवाला मनुष्य जीने की आशा को त्याग करके सदैव युक्तिपूर्वक राजा की सेवाकरे जो कि समर्थ और प्राण धन का स्वामी सर्प के समान क्रोधवान् होता है प्रसन्न राजा देवताओं के समान सब अभीष्टों को प्राप्त करता है और क्रोधयुक्त भी वैश्वानर अग्नि के समान मूल समेत भस्म करता है हे राजन् ! यह मैंने जैसा कहा है वैसाही वर्तमान है और मैं बराबर तेरे बड़े २ प्रयोजनों को करूंगा मुझ सा मन्त्री आपत्ति में बुद्धि को ऐसी सहायता देता है जैसे कि मेरे काम को पूरा करनेवाला काक परन्तु मुझ को यह सन्देह है कि जैसे मेरा काक मारागया उसीप्रकार तेरे मन्त्री मुझ को भी मारेंगे यहां आप की मैं निन्दा नहीं करसक्ता और आप जिनके प्यारे हो वह भी निन्दा के योग्य नहीं राज्य के कार्य करनेवाले और बिगाड़ करनेवाले नौकरही हैं नौकरोंपर विश्वास मतकरो जो जीवों की निर्धनता चाहनेवाले खज़ाने के नौकर आप के दर्बार में वर्तमान हैं उन्हों ने मुझ से शत्रुता की हे राजन् ! जो पुरुष आप की हानि से निस्सन्देह राज्य को चाहते हैं रसोइये लोगों से मिलकर उन के मन का विचार सिद्ध होता है और नहीं भी होता हैं इससे हे राजन् ! मैं उनके भय से दूसरे आश्रम को जाऊंगा हे समर्थ ! उनका चलाया हुआ बाण मेरे काकपर गिरा छली पुरुषों के कारण मुझ अनिच्छावान् का काक यमलोक को गया मैंने तप और सूक्ष्मदृष्टि के द्वारा इस राज्यनदी को देखा जो बहुत से नौकररूपी नक्र, झष, ग्राह और छोटी २ मछलियों से संयुक्त है उस नदी को अपनी मृत्यु उत्पन्न करनेवाले अपने काक के द्वारा जो तरा तो वह नदी विना शाखा के वृक्ष और पत्थर कांटों से भरी सिंह व्याघ्रों से व्याप्त अगम असह्य हिमालय की कन्दरा के समान पड़ी दीपक के द्वारा अन्यायगढ़ और नौका के द्वारा जलगढ़ प्राप्त कियाजाता है पण्डितों ने भी राज्यरूपी गढ़ में प्रवेश होने की युक्ति को नहीं जाना ऐसा आप का राज्य कपट और अन्धकार युक्त तमोगुण से व्याप्त है यहां कोई आप से भी विश्वास करने को योग्य नहीं है फिर मुझ को कहां से होगा इस हेतु से यह अच्छास्थान नहीं है यहां सत्य और मिथ्या एकसीही हैं अच्छे कर्म में मृत्यु है तब बुरेकर्म में तो कुछ सन्देह ही नहीं बुरे कर्म में भी न्याय से घात होता है और अच्छे कर्म में कभी नहीं होता यहां ज्ञानी पुरुष बहुत न ठहरे शीघ्रही चलाजाय हे राजन् ! एक सीता नाम नदी है जिस में नौका डूबजाती है सब जीवों का नाशक फांसीरूप उसी नदी के समान मानता हूं आप तो मधुप्रपात हो और भोजन विष से युक्त है और तेरा चित्त सत्पुरुषों से विपरीत नीचों के समान है और सर्पों से भरेहुये कूपसदृश शीतल जल की नदीसमान आप हो कुत्ता, गीदड़, गिद्ध आदि से

घिरेहुये राजहंस के समान हो जैसे कि वड़े वृक्ष को पाकर लता की वड़ी वृद्धि होती है फिर अग्नि उस लता को घेरती है और उस वृक्षको भी उल्लंघन कर वृद्धि को पाती है उस कठोर इन्धन से भय उत्पन्न करनेवाली दावानल नाम अग्नि उसको भस्म करती है इस प्रकार के तेरे मन्त्री हैं उन को दण्ड दो और हे राजन्! तुम्हारी ओर से अधिकारों पर नियत कियेहुये और आपही से पोषितहुये और आप से मिलकर आप के प्यारे को मारा चाहते हैं अन्यायी की रक्षा करनेवाले और शंका करनेवाले मैंने तेरे देश में इसप्रकार से निवास किया जैसे कि कोई पुरुष वीरपत्नियों के घरमें अथवा सर्पवाले घर में निवासकरै नौकरों के साथ राजा के स्वभाव जानने की इच्छा से मैंने इस देश में निवास किया कि राजा जितेन्द्रिय है या इसने काम क्रोध आदि को विजय किया है राजा इन मुंशियों का प्यारा है या प्रजालोगही राजा के प्यारे हैं इन सब तेरी बातों के जानने की इच्छासे यहांआया आप मुझे ऐसे अच्छे विदित होतेहो जैसे कि भूखे को भोजन और मन्त्री लोग ऐसे बुरे मालूम होते हैं जैसे विना पिपासा के जल मैं उनसे शत्रुता करनेवाला नहीं हूं उनका वह दोष दिखलाना ही शत्रुता प्रकट करता है शत्रुकी भीतरी विपरीतता से ऐसे डरना चाहिये जैसे चोरियल सर्प से राजा बोला कि हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! आप वड़े दान मान से पूजित मेरे घर में निवास करो और जो तुमको नहीं चाहते हैं वह मेरे यहां नहीं रहेंगे और जो उनका अपराध है वह आपही से जानने के योग्य है हे मुने! जैसे कि दण्डधारण अच्छे प्रकार से होय और शुभकर्म होय वह आप विचारकर मेरा कल्याण करो मुनि बोले कि पहिले आप काक के मारने के अपराध को विचारकर हरएकको अधिकार से अलग करो फिर मारने के हेतु को जानकर प्रत्येक को मारो एक से अपराधवाले वहुत मनुष्य भेद खुलजाने के भयसे कांटों से भी मार डालते हैं इससे यह तुमको कहता हूं हम मृदुदण्डवाले दयावान् ब्राह्मण हैं आपकी अपनी और दूसरों की कुशल को चाहते हैं इससे तुम से कहता हूं कि मैं कालकवृक्षीय नाम मुनि आप का सम्बन्धी हूं आप के पिता का प्यारा मित्र सत्यसंकल्प हूं आप के पिता के स्वर्गवासी होने में आपको राज्यासन पर वर्तमान होने पर मैंने सव इच्छाओं को त्यागकर तप किया मैं प्रीतिपूर्वक तुमसे कहता हूं कि फिर अचेत मतहोना तुम दैवइच्छा से राज्यको पाकर और दुःख सुख को देखकर मन्त्री के आधीन होनेवाले राज्य से क्यों भूलहुयेहो तिसपीछे उत्तम ब्राह्मण के प्राप्त होनेपर राजकुल और पुरोहितकुल में वड़ा मंगल हुआ कालकवृक्षीय मुनिने पृथ्वी को एकछत्रा करके यशस्वी राजा कौशल से उत्तम यज्ञों से पूजन कराया और कौशल राजाने भी उस हितकारी वचन को सुनकर पृथ्वी को विजय किया और जैसा मुनि ने कहा वैसाही किया॥ ६८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

तिरासीवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! सभासद और युद्ध के सहायक व सुहृद्जन और सेना के अधिकारी और मन्त्री लोग कैसे होने चाहिये? भीष्मजी बोले कि जो पुरुष लज्जावान्, जितेन्द्रिय, सत्यवक्ता, सन्मार्गी आदि से संयुक्त और न्याय अन्याय के कहने को समर्थ हों वह तेरे सभासद होयँ जो मन्त्री बड़े शूर और शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण जातिपुरोहित इत्यादि सन्तोपी और श्रेष्ठकर्मी होयँ ऐसे सहायकों को सब आपत्तियों में पूछो क्योंकि सदैव पूजित कुलीन मनुष्य अपनी सामर्थ्य को नहीं छिपाता है वही पूजित और पोपित मन्त्री प्रसन्न अप्रसन्न पीड़ित और घायल बहुत से मनुष्यों के समूहों को राज्य के कर्मों में प्रवृत्त करताहै कुलीन, देशी, रूपवान्, ज्ञानी, बहुत शास्त्र के जाननेवाले, बुद्धिमान्, स्वामिभक्त ऐसे पुरुष तेरे नौकर होयँ और जो अकुलीन, लोभी, निर्दयी और निर्लज्ज हैं वह तेरी तबतक सेवा करें जबतक कि गीलेहाथहों राजा ऐसे मन्त्रियों को सदैव माल के अधिकारों पर नियतकरे जो कि कुलीन और आनन्द चित्त नेत्र आदि के इंगित अर्थात् इशारे को जाननेवाले मृदुस्वभाव देशकाल रीतियों के ज्ञाता और स्वामी के कामकी वृद्धि चाहनेवाले हों उनको राजा पारितोषिक और पोपणके योग्य माने वह धन और बड़े २ अधिकारोंपर नियतता और दिव्यवस्त्रादिकों का देना और आदर मानपूर्वक छोटे बड़े प्यारेभोगों से सुखभागी होयँ वह ज्ञानी और गुरुपूजन आदि से संयुक्त नेकचलन व्रतकरनेवाले साधु सत्यवक्ता सदैव चाहनेवाले मन्त्री आपत्तिकाल में भी त्याग नहीं करें जो नीच निर्बुद्धि धर्माधर्म की मर्यादा को नहीं जानते हैं और उस मर्यादा के त्यागनेवाले हैं उनसे अपने को बचावो समूह को छोड़कर एक को न चाहे और जो समूह में एक स्वीकार करने के योग्य हो ऐसी दशा में बहुत से मन्त्रियों से एकही मन्त्री कल्याण करनेवाला है उसको स्वीकारकरके इच्छा से समूह को त्यागकरे जिस का पराक्रम दृष्टिआता है और नेकनामी को उत्तम माने और मर्यादा को दृढ़करे वह साधुहै और जो समर्थों को पूज ईर्षारहित व मनुष्यों से ईर्षा नहीं करता है और इच्छा, भय, क्रोध, लोभ से धर्म को नहीं छोड़े और निरहंकारी, सुचाली, क्षमावान्, सावधानचित्त और मानयुक्त होय वह सब दशा में परीक्षा लियाहुआ तेरी सलाह आदि में सहायक होय हे कुलीन! कुलसंयुक्त, क्षमावान्, चतुर, ज्ञानी, शूर, कृतज्ञ, सुचाली मन्त्री कल्याण का लक्षण है ऐसे कर्म करनेवाले ज्ञानी पुरुष के शत्रुलोग प्रसन्न होते हैं और मित्र बनजाते हैं इस पीछे चित्तका जीतनेवाला बुद्धिमान् ऐश्वर्य का चाहनेवाला राजा मन्त्रियों के गुण, अवगुणों की परीक्षा करे जिन मन्त्रियों का सम्बन्ध

उन पुरुषों से है जो कुलीन स्वदेशी कामकरने में कुशल और धन आदि के द्वारा किसी के स्वाधीन न होनेवाले स्वामी से अप्रतिकूल और सब प्रकार से परीक्षित उत्तमयोनि वेदमार्गी निरहंकारी हों ऐश्वर्य और राज्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष को ऐसे मन्त्री करनेचाहिये न्याय के अनुसार यह बुद्धि और पिछले कर्मों से पैदाहोनेवाला संस्कार और सत्यता आदि से संयुक्त बुद्धि दूसरे को विजय करनेकी सामर्थ्य महाआपत्ति में भी स्थिरचित्त बड़ी कृतघ्नता में भी पवित्र, क्षमा बाहर भीतर से स्वामी से प्रीति करना स्थिरचित्तता धारण करने की सामर्थ्य यह अनेक गुण हैं राजा इन गुणों की परीक्षा लेकर सदैव शुभचिन्तक कार्यकर्ता और पांचो छलों से जुदेपुरुषों को माल के अधिकारों पर नियत करे श्रेष्ठवक्ता, वीर और कर्तव्य अकर्तव्य कामों में कुशल, कुलवान्, धनाढ्य और नेत्रों के इंगित अर्थात् इशारे आदि के पहिचाननेवाले मृदुस्वभाव देशकालकी विधि के जाननेवाले और भर्ता के काम में हित करनेवाले मन्त्रियों को माल के सब अधिकारों पर नियत करे जो मित्र तेजस्वी नहीं है उससे एकमत होकर कभी करने न करने के योग्य कर्म को निश्चय नहीं करना योग्य है क्योंकि वह सब कर्मों में सन्देहों को उत्पन्न करते हैं इससे थोड़े शास्त्र का जाननेवाला मन्त्री यद्यपि उत्तम कुलवान् और धर्म, अर्थ, काम से संयुक्त भी हो तौभी मन्त्र के विचारने को समर्थ नहीं है इसी प्रकार अन्य कुल का पुरुष चाहे वह बहुत से शास्त्र का जाननेवाला भी हो तौभी छोटे कामों में ऐसे अचेत होजाता है जैसे कि अन्धा और अनायक मनुष्य होता है और जिसका संकल्प नियत नहीं है वह विधिज्ञ, शास्त्रज्ञ, उपायज्ञ भी हो परन्तु सदैव के लिये काम पूरा करने को समर्थ नहीं होता और शास्त्र से रहित दुर्बुद्धि मनुष्य के केवल कर्म के प्रारम्भ से उसके मुख्य कर्म के फलों का विचार साबित नहीं होताहै जो मन्त्री स्वामी से प्रीति करनेवाला नहीं है उसपर विश्वास नहीं आता है इस कारण प्रीति न करनेवाले मन्त्री से गुप्त विचारों को प्रकट न करे वह कुचाली पुरुष मन्त्रियों समेत राजा को ऐसे पीड़ित करता है जैसे अग्नि और हवा छिद्रों में प्रवेश करके वृक्ष को पीड़ा देती है कभी स्वामी नौकर को क्रोधित होकर छुड़ा देता है और मारे क्रोध के वचनों से निन्दा करता है फिर प्रसन्न भी होजाता है वह बातें स्वामी में प्रीति रखनेवाले पुरुष को क्षमा करने के योग्य हैं और मन्त्रियों का भी क्रोध वज्रपात के समान होता है जो नौकर अपने स्वामी की भलाई के कारण इनबातों को क्षमा करता है ऐसे मनुष्य को सुख दुःख आदि कामों में सदैव पूछे जो प्रीति न करनेवाला कुटिल मनुष्य दूसरे अवगुणों से भरा हुआ महाज्ञानी भी हो तौभी राजा का मन्त्र सुनने के योग्य नहीं है जो शत्रुओं के साथ मिलाहुआ है और पुरवासियों को

बहुत नहीं मानता है वह शत्रु जानने के योग्य है परन्तु मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं है अज्ञानी, अपवित्र, कुटिल शत्रु की सेवा करनेवाला और अपनी प्रशंसा करने में प्रवृत्त, अशुभचिन्तकतामें लगा, क्रोधी, लोभीहो और नवीन नौकर चाहे स्वामी से प्रीति करनेवाला बहुत शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिष्ठित बड़ा भाग पानेवाला भी हो और जिसका पिता पहिले समय में अन्याय से अपमान किया गया हो वह अहंकारी फिर अधिकार पर नियत कियाहुआ भी मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं है, जो पुरुष मित्र की ओर से छोटे कामों से भी अलग कियागया हो फिर अन्य अवगुणों से युक्तहो वह भी मन्त्र सुनने के योग्य नहीं है ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, पवित्र,सब कामों में कुशल और देशीही वह मन्त्र के योग्य है और जो ज्ञान, विज्ञान में पूर्ण अपने शत्रु के मन्त्री आदि के वृत्तान्त का जाननेवाला शुभचिन्तक और राजा की आत्मा के समान हो वह भी मन्त्र के सुनने योग्य है जो सत्यवक्ता, प्रसन्नचित्त और मन्त्र के गुप्तरखने में समर्थ, लज्जावान्, मृदुस्वभाव, बाप दादे से नौकर चलाआयाहो वह मन्त्र के सुनने के योग्य है सन्तोषी, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, बुद्धिमान्, पाप को अपना शत्रु समझनेवाला, मन्त्र और समय का ज्ञाता वहभी मन्त्रसुनने के योग्य है हे राजन् ! दण्डधारण करनेवाले राजा को उस के साथ सलाह करनी चाहिये और समर्थ होकर अपने मीठेवचनों से लोक को स्वाधीन करता है और पुरवासी और देशवासियों ने जिसमें धर्म का विश्वास किया वह लड़नेवाला और नीतिज्ञ है वह भी मन्त्र के सुनने के योग्य है इस कारण इन सबगुणों से संयुक्त और अच्छे पूजित और बड़े २ कर्मों के चाहनेवाले तीन मन्त्री प्रकृति के ऊपर आरूढ़ होयँ वह अपनी और शत्रु की प्रकृतियों में दोष को देखे, वह राजा का देश जिसका मूल मन्त्रियों का मन्त्र है अच्छी वृद्धि को पाता है शत्रु इसके अवगुण को नहीं देखे और अवगुणों में शत्रु के सम्मुख कच्छप के सदृशजाय और अंगों को छिपायेहुये अपने दोष को ढके राजा के जो बुद्धिमान् मन्त्री अपने मन्त्र के छिपानेवाले हैं वह राजा और मन्त्रीलोग मन्त्ररूप कवच रखनेवाले हैं, राज्य को कहते हैं कि दूतही इसकी जड़ है और सार इसमें मन्त्र है ऐसे राज्य में जो स्वामी और मन्त्री जीविका के कारण अहंकार, क्रोध, ईर्षारहित अपने को माननेवाले सबको अपने आधीन करके कर्म करते हैं तब सुखी होते हैं जो मन्त्री पांचोप्रकार के छलों से जुदे हैं उन के साथ सदैव सलाह को विचारे इन तीनों विचारों में नाना प्रकार के विचार करके चित्तको लगाकर सलाहके अन्त समयपर उस को उत्तर के लिये उस गुरु से पूछे जो कि उस के असली मूल को जानता हो और उस धर्म, अर्थ, काम के जाननेवाले गुरु ब्राह्मण से मिलकर तात्पर्य को पूछे जब तीनों की राय की ऐक्यताहोय तब अशक्त राजा उस मन्त्र को

भी अपने काम में संयुक्तकरे जो मन्त्रऔर तत्त्व अर्थ के निश्चय को जाननेवाले हैं उन्हों ने इस प्रकार सदैव मन्त्र करना कहा है इस हेतु से प्रजा को आज्ञावर्ती करने में समर्थ तेरा मन्त्र इसप्रकार सदा जारी होय इस मन्त्रशाला के मध्य किसी दशा में भी बौना, कुबड़ा, दुर्बल, खंजा, अन्धा, अज्ञान, स्त्री, नपुंसक यह सब लोग तिर्छे होकर आगे पीछे ऊपर नीचे नहीं घूमे उसी प्रकार नौका पर चढ़कर वन, आकाश और कुश और काश से रहित मकानपर वर्तमान होकर राज्यके बड़े अंगों के सबदोषों को दूर करके उचित समयतक करने के योग्य कर्म का विचार करे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चौरासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें बृहस्पतिजी और इन्द्र का संवाद है इन्द्र बोले कि हे बृहस्पतिजी ! और वह एक पद कौनसा है जिसको पुरुष अच्छेप्रकार से करता हुआ सबजीवों का प्यारा होके बड़ी कीर्तिको पावे बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्र! कपट से रहित पुरुष मीठेवचनों के बोलने से सब जीवों का प्यारा होकर महती कीर्ति को पाता है यही एक पद सबलोक का सुखदायी है इसको सबजीवों में करने से सदैव प्याराहोता है सदैव भौंह चढ़ानेवाला जो पुरुष किसी से बात नहीं करता है वह मीठेवचन न बोलने से सबजीवों का शत्रु होजाता है मन्द मुसुकान सहित वार्तालाप करनेवाला जो पुरुष सब को देखकर प्रथमही बोलता है उसपर संसारी जीव प्रसन्न होते हैं, सब स्थानों में मीठेवचनरहित दान भी मनुष्यों को प्रसन्न नहीं करता है जैसे कि व्यंजन से रहित भोजन और हे इन्द्र! जीवों के सब धन को भी लेकर जो पुरुष मीठेवचनों को कहता है वह उन वचनों से इस सब लोक को आधीन करता है इस कारण दण्डधारी राजा को भी मीठावचन बोलना योग्य है इसका फल राज्य की वृद्धि करता है और उसके मनुष्य भयभीत नहीं होते हैं श्रेष्ठकर्म के साथ मीठेवचन बोलने के सिवाय दूसरी कोई बात उत्तम नहीं है भीष्मजी बोले कि हे कुन्तीनन्दन ! बृहस्पतिजी के ऐसे वचन सुनकर जैसे इन्द्रने सब कर्म किये उसी प्रकार तुम भी सब कर्मों को करो ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पचासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे राजेन्द्र ! संसार के धर्म व प्रजापालन करनेवाला राजा इस लोक में किस प्रकार कीर्ति और आनन्द को पाता है भीष्मजी बोले कि

प्रजापालन में संयुक्त पवित्र और शुद्धन्याय का करनेवाला राजा धर्म, कीर्ति को पाकर दोनोंलोकों को प्राप्त करता है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! किस प्रकार के व्यवहारों और कैसे अदालत के हाकिमों के साथ विवादों का निर्णय करे इसको आप कहने के योग्य हो आपने जो पहिले पुरुष के विषय में गुण कहे वह एक पुरुष में वर्तमान नहीं हैं यह मेरा कथन है भीष्मजी बोले कि हे महाज्ञानिन् ! यह ऐसेही है जैसे कि तुम कहते हो इन सब गुणों से संयुक्त कोई पुरुष कठिनता से प्राप्तहोता है इसलोक में बड़ीयुक्ति से मिश्रितस्वभाव भी कठिनता से मिलता है इसको फिर कहूंगा जैसे कि तुम उक्तप्रकार के मन्त्रियों को नियत करोगे वहां उस अदालत में चार ब्राह्मण भी ऐसे नियत करो जो कि वेदों के जाननेवाले बुद्धिमान् और ब्रह्मचर्यव्रती और पवित्र हों और वैसेही पराक्रमी, शस्त्रधारी आठ क्षत्रियों को भी नियत करो और इक्कीस धनाढ्य वैश्यों को स्थापित करो और अच्छे शिक्षित प्रतिदिन के कर्मकरने में पवित्रदेह तीन शूद्र भी अवश्य नियतकरो और ऐसे सूत पौराणिकों को भी नियतकरो जो कि आठ गुणों से संयुक्त पचासवर्ष की अवस्था के हों और जो दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला श्रुति, स्मृति संयुक्त नम्र समदर्शी विवादकर्ताओं के कार्य में प्रसक्त धन का निर्लोभी महाघोर सात व्यसन शिकार, पांसा, स्त्री, मद्यपान, दूसरे पर घातकरना, कठोर वचन, अर्थ दूषण आदि से रहित हो ऐसे पुरुष को आठो मन्त्रियों के मध्य में मन्त्रियों का प्रधान नियतकरो फिर उन को देशों में भेजो अर्थात् राजा दौरा करावे और देश के लोगों को उनसे विदित करे सो हे युधिष्ठिर ! तुम को इस व्यवहार से प्रजालोग देखने के योग्य हैं दावे की वस्तुपर वादी और प्रतिवादी के परस्पर में निर्वाद होनेपर उस धरोहररूप वस्तु को न लेनाचाहिये क्योंकि वह विवाद का नाश करनेवाली है विवाद के निश्चय बिगड़ने पर वह अधर्म तुझको और उनको पीड्यमान करेगा और तेरा देश ऐसे भागजायगा जैसे बाज के भय से पक्षियों का समूह इस लोक में अच्छेप्रकार प्रजापालन करनेवाले राजा के अधर्म से सब देशभर दूसरे देशों को ऐसे चलाजाता है जैसे कि समुद्र में टूटीनौका उस अधर्म से हृदय को भय उत्पन्न होता है और अस्वर्ग होता है, जबकि राजा का मन्त्री या उसका पुत्र धर्मासन अर्थात् न्यायाधीश वर्तमान होकर धर्ममूल राज्य में अधर्म से रक्षाकरता है, अधिकारोंपर नियत होनेवाले और उचितकर्म को न करनेवाले राज्य के नौकर आप को आगे करके राजा के साथ अधोगति को पाते हैं, संसार का रक्षक राजा पराक्रमियों के बल से घायल और दुःख से शब्द करनेवाले अनाथों का सदैव नाथ होय इस हेतु से वादी और प्रतिवादी की दोनों ओर के वाद प्रतिवाद से साक्षी की आवश्यकता होगी साक्षी और नाथ अर्थात् मुख्तार, वकील से रहित

विवाद अधिक ध्यान करने के योग्य है और अपराधों के अनुसार अपराधियों को दण्ड दे धनवानों से धन दण्ड ले और निर्धनियों को कारागृह आदि से दण्ड देवे और दुराचारी राजाओं को भी चढ़ाई आदि से भयभीत करे और शासना करे और श्रेष्ठ पुरुषों को मीठेवचन और पारितोषिक आदि से पालनकरे जो पुरुष राजा को मारना चाहै या कहीं अग्नि लगानेवाला चोर और वर्णसंकर करनेवाला है उनका घात अनेक प्रकार से हो हे राजन्! अच्छेप्रकार दण्ड देनेवाले और शास्त्रानुसार कर्म करनेवाले राजा को अधर्म नहीं होता किन्तु सनातनधर्महीं है जो अज्ञानी राजा इच्छा के अनुसार दण्ड देता है वह इसलोक में अपकीर्तिमान् होकर अन्त को नरक पाताहै अन्य के अपराध से अन्य को दण्ड न दे अर्थात् पिता के अपराध में पुत्र को दण्ड न दे किन्तु पुत्र के द्वारा पिता को बुलवाकर कारागृह वास दे और पुत्र को छोड़दे राजा कैसीही आपत्ति में किसी दूत को न मारे दूत का मारनेवाला राजा मन्त्रियों समेत नरक को भोगता है क्षत्रियधर्म में प्रीति रखनेवाला जो राजा सत्य बोलनेवाले दूत को मारे उसके पितर भ्रूणहत्या को प्राप्त होते हैं कुलीन और कुलसंयुक्त प्रियवक्ता चतुर और अपने मालिक के कहने के अनुसार वार्तालाप करनेवाला स्मरण रखनेवाला सातो गुणों से संयुक्त हो, इनगुणों से भरा और रक्षक इसका दरवानहो वह इनगुणों से व्याप्त गढ़, नगर आदि का रक्षक होता है, सन्धि, विग्रह का विचार करनेवाला मन्त्री धर्मशास्त्र के अर्थाशका जाननेवाला बुद्धिमान्, धैर्यवान्, लज्जायुक्त गुप्तमन्त्रों को छिपानेवाला होताहै, कुलीन, सतोगुणी, पवित्र मन्त्री की प्रशंसा होती है इसी प्रकार सेनापति भी इनगुणों से संयुक्त होना चाहिये व्यूह यन्त्र आयुध तत्त्वज्ञ पराक्रमी शीत उष्ण वर्षा वायु का सहनेवाला शत्रु के दोष का ज्ञाता हो शत्रु को विश्वासदे और आप किसी पर विश्वास न करे यहां तक कि पुत्रपर भी विश्वास नहीं करे हे निष्पाप! मैंने यह शास्त्र का तत्त्वार्थ तुम से कहा राजाओं का विश्वास न करनाही गुप्त कर्म कहाजाता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

छियासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा कैसे बनेहुये पुर में रहने के योग्यहै अथवा कैसे पुर को बसाकर उस में निवास करे हे पितामह! यह सब मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! राजा को पुत्र और बान्धव और जातिवालों समेत जहां पर निवास करना चाहिये वहां वृत्ति अर्थात् जीविका और रक्षापूर्वक पूछना न्याय के अनुसार है इस कारण गढ़ की तैयारी और रक्षाकी रीति सब व्योरे-

वार तुझ से कहूंगा सुनकर उसीप्रकार करना चाहिये और युक्ति से कर्म करना चाहिये छह प्रकार के गढ़ में वर्तमान होकर फिर पुरों को बसावे जो गढ़ सब प्रकार के धन से भी पूर्ण और चारो ओर से पांच योजन विस्तृत एक मनुष्य ऊंची पृथ्वी से घिराहुआ है वह मुख्य गढ़ है दूसरा महीदुर्ग अर्थात् कोट तीसरा गिरिदुर्ग जिस के चारो ओर पहाड़ हो चौथा नरदुर्ग अर्थात् मनुष्यों का कोट पांचवां मृत्तिका का कोट छठा वनदुर्ग जिस के चारो ओर वनहो यह छह क़िले हैं, जो पुर अर्थात् प्रधान नगर दुर्ग से संयुक्त धान्य और आयुधों से पूर्ण दृढ़ प्राकार और परिखा अर्थात् परकोटा और खाईं से दृढ़ हाथी घोड़े रथ आदि से संयुक्त हो और जिस में चतुर कारीगर और अनाज आदि का संचय अच्छे प्रकार वर्तमानहो और महाचतुर धर्मात्मा मनुष्यों से व्याप्त पराक्रमी मनुष्य हाथी घोड़े रखनेवाला चबूतरा और दूकान आदि से शोभायमान और प्रसिद्ध व्यापारवान् उपाधिरहित निर्भय श्रेष्ठ प्रकाशवान् गीतवाद्यों से शब्दायमान उत्तम स्थानों से शोभित शूर और धनीलोगों से भराहुआ वेदध्वनि और समाज उत्सव आदि आनन्दों से संयुक्तहोकर जिस में सदैव देवपूजन होता हो उस में मन्त्री और सेना को स्वाधीन रखनेवाला राजा आप निवास करे उसी पुर में खज़ाना, सेना, मित्र और व्यवहार आदि की वृद्धि करके पुर और देशों के सब दोषों को दूरकरे, तोशेख़ाने और अस्त्रालय की बड़ी युक्ति से वृद्धिकरे अर्थात् अन्न आदि के सबढेर और मन्त्रालय आदि की वृद्धिकरे काठ, लोहा, भूसा, कोयला, लकड़ी, सींग, हाड़, बांस, कपाल, चर्बी, शहद आदि औषधों का समूह, सन, शालवृक्ष का रस, धान, धनुष, बाण, चमड़े की नसें, देह, बेत, मूंज, बल्वज, तृण, पीनेकी वस्तु, कूप, बहुत जलवाले तड़ाग, हौज़ और दूध के बड़ेवृक्ष यह सब राजा से रक्षाकरने के योग्य हैं और बड़ी युक्ति से सत्कार कियेहुये आचार्य, ऋत्विज्, पुरोहित और बड़े तीरन्दाज, शिल्पी, ज्योतिषी, वैद्य, ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान् लोग और अच्छी शिक्षापाये हुये चतुर शूर और बहुत शास्त्रों के जाननेवाले कुलीन सतोगुणी सब अधिकारों पर नियत और प्रवृत्त धार्मिक पुरुषों को उपदेश का राजा पूजन करे अर्थात् उनका पोषण करे और धर्म के त्यागी पुरुषों को दण्ड दे और सब वर्णों को बड़ीयुक्ति से अपने कर्मों में प्रवृत्त करे इसीप्रकार दूतों के द्वारा पुरवासी और देशवासियों को भीतर बाहर से अच्छेप्रकार निश्चय करके फिर कर्म में प्रवृत्त करे राजा आप दूतों को और मन्त्र खज़ाना आदि दण्ड को अधिकतर देखे क्योंकि सब प्रबन्ध के मूल यही हैं दूतों के नेत्रों से पुर और देश में उदासीन, शत्रु, मित्रों के सब इच्छा कर्मों को जाने फिर सावधानी से उनका सब प्रबन्ध करना योग्य है जो राजा सदैव भक्तों को पूजनेवाला और शत्रुओं को

दण्ड देनेवाला है उसको सदैव यज्ञों से पूजन करना योग्य है और पीड़ारहित दान भी करना चाहिये प्रजा की रक्षा करना चाहिये धर्म को पीड़ादेनेवाला कर्म न करना चाहिये दुखी, अनाथ, वृद्धा, विधवा स्त्रियों की इच्छा पूरी करके उनकी रक्षा और जीविका को सदैव विचार करे राजा आश्रमों में तपस्वियों का सत्कारपूर्वक पूजन और प्रतिष्ठा करके सदैव कालके अनुसार वस्त्र, भोजन, पात्र आदि को देवे राज्य और देश के सब कार्योंको अपने देहसमेत तपस्वियों को निवेदनकरे और सदैव बड़ीयुक्ति के साथ नम्रतापूर्वक वर्तमानहो राजा उस प्रकार के कुलीन और बहुत शास्त्रों के जाननेवाले सर्वत्यागी तपस्वीको देखकर वस्तु, आसन, भोजन आदि से सदैवपूजन करतारहै राजा आपत्तिमें तपस्वी पर विश्वास करे क्योंकि चोर भी तपस्वियों पर विश्वास करते हैं परन्तु तपस्वी के पास खज़ानों को नहीं रक्खे क्योंकि धन के कारण चोरों से उसके मारे जाने का भय है, सदैव प्रतिदिन सेवन और पूजन न करे और अपने देशों में दूसरा भी तपस्वी मित्र करना चाहिये और शत्रुके देशों में वनों में और सामन्त नगरों में भी दूसरा तपस्वी मित्र करना चाहिये शत्रु के देश और वन में वर्तमान उन तपस्वियों के भागों को सत्कार और प्रतिष्ठा से भेंट करावे जिससे कि अपने देश में वह तीव्र व्रतवाले तपस्वी किसी आपत्ति में शरणागत राजा को उसकी इच्छानुसार शरणदें यह लक्षण देशमिश्रित तुझ ने कहा इस प्रकार का नगर में राजा आप वास करने योग्य है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! देश के पालन और स्वाधीन करने में जो विचार हैं उन्हें आप वर्णन कीजिये क्योंकि मैं चित्त से जानना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि मैं देश की रक्षा और स्वाधीन करने की सबरीतियां तुझ से कहता हूं तुम चित्तलगाकर सुनो गांव का जैसा प्रधान होता है वैसाही दश गांव का दूसरा प्रधान करना चाहिये इसीप्रकार बीस, सौ, हज़ार आदि ग्राम का प्रधान करना चाहिये वह प्रधान ग्राम और देश के वासियों के दोषों को निश्चय करे और उन सबबातों को दशग्राम के प्रधान से कहे वह बीसवाले से इसी प्रकार क्रम से बीसवाला सौवाले से और सौवाला हज़ार गांव के प्रधान से कहै और वह सब प्रधान लोग उन वस्तुवों को भोजन करें जो कि ग्राम वा देश में उत्पन्न हों एक गांववाला दशगांववाले को और दश गांववाला बीस गांववाले को इसी प्रकार एक से एक ऊपरवाले को भेजदे वह सौ ग्राम का स्वामी सत्कार कियाहुआ एक ग्राम के भोगने को समर्थ है और जो बड़ा और

श्रेष्ठ वृद्धि पाया हुआ मनुष्यों से भरा देश हो उसमें हज़ार गांव का स्वामी राजा का नायब होता है वह हज़ार गांव का स्वामी नगर की उत्तम शाखाओं के भोगने के योग्य है वही देशी मनुष्यों से संयुक्त उस नगर की शाखा अनाज धन आदि के भोग से प्रजा के पोषण करने को भी योग्य है उनका काम जो युद्ध है और ग्राम से सम्बन्ध रखता हो धर्म का जाननेवाला और सावधान कोई मन्त्री उन २ कामों को देखे अथवा प्रत्येक नगर में हर एक बात का विचारनेवाला एक पुरुष नियत होय और नगर का स्वामी भयानकरूप होकर ऊंचे स्थान पर विराजमान होके अपने प्रताप से उन सब सभासदों को आच्छादित करे जैसे कि चन्द्रमा नक्षत्रों के तेज को दबालेता है उस देश में घूमनेवाला कोई दूत उनके वृत्तान्तों को पहुँचावे और जो अधिकारीरूप राक्षस मारने की इच्छा करनेवाले पापात्मा दूसरे के धन को हरनेवाले मूर्ख हैं उनसब से जीवों की रक्षा करे, मोल बेच मार्ग और अनाज वा अपने लड़के स्त्री समेत प्राप्त कियेहुये धन और माल को अच्छे प्रकार से ध्यान करके व्यापारियों पर महसूल नियत करे और पैदायश धन और खर्च और कारखाने को सदैव वारंवार देखकर शिल्प के कारखाने के विषय में शिल्पविद्यावानों पर महसूल नियत करे प्रथम राजा के छोटे बड़े महसूलों को नियत करे जिससे कि प्रजा पीड़ावती नहीं होवे पृथ्वी का स्वामी वैसाही करे अनाज आदि फल और परिश्रम आदि कर्म को अच्छे प्रकार से विचारकर सब महसूलों को विचार करे फल और कर्म इन दोनों में कोई विना हेतु के वर्तमान नहीं होता है जैसे कि राजा और कर्मकर्ता दोनों कर्मों के भोगनेवाले होयँ उसी प्रकार ठीक विचार कर राजा की ओर से महसूल नियत करना चाहिये और अपनी जड़ देश को नहीं काटे और लोभ से दूसरों की जड़ खेती आदि को नहीं काटे और राजा इच्छारूपी द्वारों को बन्द करके अत्यन्त प्रसन्न होता है और जो बहुत खानेवाले प्रसिद्ध हैं वह उस राजा के साथ शत्रुता करते हैं जब प्रजा शत्रु है तब राजा का कल्याण कहां है और वह शत्रु होकर फल को नहीं पाता है सावधान बुद्धिवाले राजा को बछड़े के समान होकर देश को दुहना योग्य है और हे युधिष्ठिर! नौकर और बछड़ा पराक्रमी होने पर पीड़ा को सहता है और माता के दूध से रहित किया हुआ बछड़ा कर्म को नहीं करता इसी प्रकार अत्यन्त दुहा हुआ देश भी बड़े कर्म को नहीं करता है जो राजा आप देश की रक्षा करता है वह श्रेष्ठ महसूल योग्य पृथ्वी की भेज ले आनन्दपूर्वक निर्वाह करता है और उत्तमफल को पाता है उस देश में आपत्ति के लिये दियेहुये धन की अधिक वृद्धि करे देश खज़ानारूप है और जैसे कि खज़ाने की रक्षा महल में होती है उसी प्रकार पुरवासी, देशवासी, सब शरणागत और अल्पपराक्रमियों पर भी सामर्थ्य के

अनुसार राजा कृपा करे वाह्यजन चोर वनवासी आदि को दूसरे के सुपुर्द करके उससे बहुत धन लेकर मध्य का देश सुखपूर्वक भोगने के योग्य है इस प्रकार से सुखी दुःखी कोई मनुष्य भी राजा पर अप्रसन्न नहीं होते पहिलेही भेज की तहसील को प्रकट करके अपने देश में भय दिखलावे और कहे कि यह शत्रु की सेना का भय महाआपत्तिरूप है उसको भी हम देश के नष्ट होने का कारण जानते हैं जैसे कि बांस के वृक्ष में फल की उत्पत्ति का होना मेरे शत्रु चोरों के साथ बड़े उद्योग करके अपने नाश होने के लिये इस देश को पीड़ा देना चाहते हैं इस घोर आपत्ति में असह्य भय होने से आप लोगों की रक्षा के लिये तुमसे धन को चाहता हूं और भय दूर होने पर तुम्हारा सबधन फेर दूंगा और शत्रु लोग जो यहां से धन हर लेजायँगे वह फेर न देंगे और स्त्री आदि तुम्हारे सब नष्ट होजायँगे और यह भी वात ठीक है कि पुत्र स्त्री के लिये धन के इकट्ठे करने की इच्छा कीजाती है मैं तुम्हारे प्रभाव से प्रसन्न होता हूं जैसे कि पुत्र के उदय में पिता प्रसन्न होता है मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार देश के साथ तुम्हारी सुखपूर्वक रक्षा का प्रबन्ध करता हूं और आप लोगों को आपत्तियों में बोझ का सहनेवाला होना चाहिये जैसे कि श्रेष्ठबैल भार को सहते हैं किसी आपत्ति में धन को अत्यन्त प्यारा न समझना चाहिये समय का जाननेवाला राजा इन मीठी और साफ़ बातों को आज्ञापत्र के द्वारा अपने नौकरों को विदित करे और धन के लेनेवाली युक्तियों को प्रजापर जारी करके धन को ले परकोटा और नौकरों के पोषण आदि का खर्च और युद्धसम्बन्धी भय वा मनोरथ का सिद्धकरना और उसकी रक्षा को अच्छेप्रकार से विचार कर वैश्यों को भेज देनेवाला करे वनवासी वैश्य प्रबन्ध से रहितहोकर नाश को पाते हैं इस कारण उन वैश्यों में बड़ी मृदुता से कामकरे हे राजन् ! वैश्यों की रक्षा और मीठेवचनों से आश्वासन, दान, मान और बराबरभाग उनकी इच्छा के अनुसार करना योग्य है और उनमें बराबर फल को भोगना चाहिये जिससे कि वह देश के सब व्यवहार और खेती आदि की वृद्धिकरें इस कारण युक्तिपूर्वक वैश्योंपर साधारण महसूल लगावे और सबस्थानों में मंगल करना यह बात वैश्यों में ही सुगमतापूर्वक है इनके समान कोई उत्तम नहीं है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जब समर्थ राजा भी खज़ाने की इच्छाकरे तब कैसा कर्मकरे वह कृपा करके कहिये भीष्मजी बोले कि धर्म का चाहनेवाला प्रजा की वृद्धि में प्रवृत्त राजा देश, काल और बुद्धि के पराक्रम के अनुसार

प्रजा को उपदेश करे राजा जैसे उनके और अपने कल्याण को माने उसी प्रकार के कर्मों को सबदेश में जारी करे देश को शहद निकालने के समान दुहै जैसे कि मधुमक्खी वृक्ष को और बछड़ा गौ को दुहता है और थनों को पीड़ित करके नहीं काटता है इसी प्रकार राजा जोंक के समान देश को मृदुता से पिये और जैसे व्याघ्री पुत्रों को हरण करे उसी प्रकार काटे और पीड़ा न दे जैसे तीतर चोंचवाला चूहा और सदैव पैरों को मृदुतापूर्वक काटता है उसी प्रकार देश को पानकरे अर्थात् उससे मालगुज़ारी ले थोड़ी २ मालगुज़ारी से वृद्धि पानेवाली प्रजापर पहिले थोड़ी भेज बढ़ावै फिर क्रम २ से अधिक करके ख़ज़ाने की वृद्धिकरे बोझा लेजाने के योग्य बैलों को सिखाता हुआ वस्तुवों की वृद्धि करे और बड़ी युक्तिपूर्वक सुगमता से पाशों को धारण करावे अर्थात् इसप्रकार से प्रजा को वशीभूत करे पाशों से जुदेहोतेही शीघ्र मरजायँगे क्योंकि कठिनता से स्वाधीन होनेवाले हैं इससे उचित युक्तियों से भोगने के योग्य हैं इसी हेतु सब प्रारम्भ कर्म हरएक आदमी में कठिनता से होते हैं उत्तमपुरुषों को मीठे वचनों के द्वारा विश्वास कराके दूसरे भारवाहकता के योग्य मनुष्य भोगने के योग्य हैं तदनन्तर उन उत्तमपुरुषों के द्वारा उन भारकशी के योग्य आदमियों को परस्पर में पृथक् करके मीठेवचनों से विश्वास कराके विना उद्योग सुखपूर्वक भोगे हरस्थान में बे समय पर महसूल उनपर नहीं जारी करे समय और बुद्धि के अनुसार क्रमपूर्वक मीठेवचनों से नियत करे मैं मायारहित उन युक्तियों को कहता हूं कि विनायुक्ति के स्वाधीन करना घोड़ों को क्रोध युक्त करता है शराबख़ाने के लोग और वेश्याओं के मिलानेवाले और नीच स्वभाव से धर्म नष्टकरनेवाले, कुटिनी स्त्री, ज्वारी अथवा जो कोई इसप्रकार के पुरुष हैं और देश को नष्ट करनेवाले हैं वह सब दण्ड के योग्यहैं देश में वर्तमान ऐसे लोग कल्याणरूप प्रजा को पीड़ा देनेवाले हैं विना आपत्ति के किसी से कुछ कोई मांगने के योग्य नहीं हैं मनुजीने पहिलेही यह जीवों की मर्यादा कही उसके अनुसार कर्म करें जो इस लोक में कर्म नहीं करते हैं वह निस्सन्देह नाश को पावेंगे समर्थ राजा जो इनको सुमार्ग में नियत नहीं करता वह उस पाप के चौथेभाग को भोगता है यह श्रुति है उस पाप को ऐसे भोगता है जैसे कि पुण्य को जो पापी हैं वह सदैव राजा से दण्ड के योग्य हैं जो इनको दण्ड नहीं देता है वह राजा पापात्मा है जैसे कि राजा धर्म के चौथे भाग को भोगता है उसी प्रकार पाप के चौथे भाग को भी भोगता है शराबख़ाने आदि स्थानों में प्रसंग करना ऐश्वर्य को नाशकरता है काम में प्रवृत्त पुरुष सब नष्टकर्मों को त्याग करे प्रीति में फँसा हुआ पुरुष मद्य, मांस वा दूसरे का धन और स्त्रियों को हरण करता है और वैसीही आज्ञा जारी करता है या वैसेही शास्त्र को दिखलाता है

जिन में कि गृहस्थाश्रम के सामान नहीं हैं वह उसको आपत्ति के लिये चाहते हैं उनको क्रोधरहित हो धर्म और दयापूर्वक देना योग्य है तेरेदेश में ठग और चोर न होयँ यह लोग इन प्रजाओं के मारनेवाले हैं इनसे ऐश्वर्य नहीं होसक्ता जो जीवों पर दयाकरते हैं और प्रजाकी वृद्धि करते हैं वह लोग तेरेदेशमें वृद्धि पावें जीवों के नाशकारी वृद्धि मतपावें और नियत महसूल से अधिक लेनेवाले अधिकारी दण्ड के योग्य हैं दूसरे अधिकारी उन भेजदेनेवालों को इत्तिला देकर भेज का धन दाखिल करावें खेती, रक्षा, गौ, व्यापार और जो दूसरा इसीप्रकार का कोई कर्म है उनको बहुत मनुष्यों से करावे दूसरी दशा में कर्म का नाश हो जो खेती, गोपालन, व्यापार में भी कर्म करनेवाला मनुष्य कुछ संशय को पाता है उससे राजा की निन्दाहोती है धनीलोगों को खानेपीने की वस्तु और वस्त्रादि से प्रसन्नकरे और यह कहै कि तुम मेरी प्रजापर अनुग्रह करो हे युधिष्ठिर! यह धनवान् नाम राज्य का बड़ा अंगहै और सबजीवों में प्रधानहै जो ज्ञानी, शूर, धनी, स्वामी, धर्मकरनेवाला, तपस्वी, सत्यवक्ता, बुद्धिमान् है वह प्रजाकी रक्षाकरता है इससे सबजीवों में प्रीतिमान् हो और सुहृद्भाव, दया, अक्रोधता को पालनकरो इसप्रकार सुहृद्भाव, सत्यकथन में प्रवृत्त मित्र खज़ाने पराक्रमी सेना से संयुक्त पृथ्वी को पावोगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि तेरेदेश में वनस्पति और खाने के योग्य फलों को कोई न काटे क्योंकि ज्ञानियों ने यह धर्म कहाहै कि मूल और फल ब्राह्मणों का धन है ब्राह्मणों से जो शेषरहै उसको दूसरे लोग खायँ अन्य मनुष्य किसी दशा में भी ब्राह्मणों को बिना दिये हुये न लें हे राजन्! जो वेदपाठी ब्राह्मण अपनी जीविका से पीड़ित होकर देश त्यागने की इच्छाकरे तब उसकी और उसकी स्त्री की जीविका विचार करे और जो वह ब्राह्मण नहीं लौटे उसदशा में ब्राह्मणों की सभा में कहे कि अब यह संसार किस मर्यादा में काम करेगा तो निस्सन्देह लौटेगा जो इसपर भी उत्तर नहीं दे तो उसके पीछे कहना चाहिये कि पिछला अपराध क्षमा करना योग्य है यह सनातनधर्म है यह मनुष्यों का कथन मगमकर में श्रद्धा नहीं करूं यह बात ठीक नहीं अवश्य करताहूं जो आजीविका नियत करनेपर भी देश को त्यागकरे तो भोगपदार्थों से निमन्त्रणकरे और जो आजीविका कहीं कारण देश को त्यागे तब उसको नियत करे यहां जीवों की जीविका खेती, गोपालन, व्यापार और स्वर्ग और तीनों वेद हैं वह जीवों को परिपालन करते हैं उनके क्षीण होने से उनके शत्रुरूप जो चोर हैं उनके

मारने के वास्ते ब्रह्माजी ने क्षत्रियकुल को उत्पन्न किया इससे हे राजन्! तुम शत्रुवों को विजय करो और प्रजाकी रक्षाकर यज्ञों से देवताओं का पूजन करके युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ो जो राजा रक्षा के योग्य पुरुषों की रक्षा करता है वह राजाओं में उत्तम है हे युधिष्ठिर! राजा को सदैव सबप्रजा से ज्ञात होना चाहिये आदमी आदमी को कैसे भोगे अपने आदमियों से दूसरों को और दूसरों से अपने आदमियों को रक्षाकरना अथवा अपने आदमियों की अपनेही आदमियों से सदैव रक्षाकरो हे राजन्! अपने को सब ओर से रक्षित करके पृथ्वी की रक्षाकरो ज्ञानियों ने इस सब को आत्मारूप मूल रखनेवाला कहा मेरा प्रतिवन्धक कौन है और व्यसनवालों से मेरा स्नेह क्यों है और विना गिरायाहुआ शत्रु कौन है और मुझको कहां से दोष लगता है यह सदैव विचारकरे दूतलोग दिनके अन्त में वृत्तान्त को कहते हैं या नहीं कहते हैं प्यारे और गुप्त दूतों से पृथ्वी को संयुक्त करे और जो मेरे वृत्तान्त को जाने उस दशा में कहते हैं या नहीं कहते हैं मेरे देश और राज्य में यश अच्छा मालूम होता है या नहीं और जो पुरुष धर्मज्ञ धैर्यवान् और युद्ध में पीठ न फेरनेवाले क्षत्रियों के देश में गुज़ारा करते हैं और जो राजा के पास नौकर हैं सबमन्त्री और मध्यस्थ पुरुषों में जो तेरी प्रशंसा करे या पीछे से निन्दाकरे उन सब का सत्कार करावो और अच्छे प्रकार से सबका प्रसन्न करना असम्भव है क्योंकि सब जीवों में शत्रु मित्र और उदासीन होते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि भुजाओं के ज़ोर में और गुणों में समान पुरुषों के बीच कौन कैसे अधिकहोय और फिर वह सबमनुष्यों को आज्ञावर्ती कैसेकरे भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! जो चेष्टा करनेवाले जीव स्थिर जीवों को भक्षण करते हैं इसी प्रकार डाढ़ रखनेवाले विना डाढ़वालों को खाते हैं और डाढ़ में विषरखनेवाले क्रोधयुक्त सर्प अन्यसर्पों को खाते हैं इनसे और शत्रुवों से राजा सदैव सावधान रहै यह सब गिद्धके समान अचेत होकर गिरते हैं तेरे देश में कर लगने के कारण पीड्यमान व्यापारी भयभीत तो नहीं होते हैं और वनवासी मनुष्य थोड़े से धन के बदले बहुत सी वस्तुवों को मोल तो नहीं लेते अत्यन्त पीड्यमान रोनेवाले क्या देश को तो नहीं त्यागते जो राज्य के धुर को उठाते हैं वह दूसरों काभी पोषण करते हैं यहांके दान से देवता, पितरगण, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पक्षी, पशुआदि सब का जीवन होता है हे भरतवंशिन्! यह देशकी रीति और राजाओं की रक्षा तुम से वर्णनकी इस प्रयोजन में वर्तमान होकर फिर कहूंगा ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नब्बेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि बड़े ब्रह्मर्षि अंगिरावंशी प्रसन्नचित्त उतथ्यऋषि ने जिन वचनों को युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के लिये वर्णन किया उस बड़े ब्रह्मज्ञानी उतथ्यऋषि ने जिस प्रकार से उसको उपदेश किया वह सब मैं तुझ से कहता हूं उतथ्यजी बोले कि राजा धर्म के लिये होता है न कि इच्छापूर्वक कर्म करने को हे मान्धाता ! तुम इसको जानो कि राजा लोक का रक्षक है जो राजा धर्म को करता है वह देवभाव के लिये कल्पना कियाजाता है जो अधर्म को करता है वह नरक को जाता है जीव धर्म में नियत होते हैं और धर्म राजा में वर्तमान होता है जो साधु राजा उसको उपदेश करता है वह पृथ्वी का स्वामी है बड़ा धर्मात्मा धनी राजा धर्मरूप कहाजाता है राजा धर्मरूप नहीं है जहां ऐसा कहाजाता है वहां देवता निन्दा को पाते हैं अपने धर्म में वर्तमान पुरुषों के मनोरथ सिद्धहुये मालूम होते हैं सब संसार उसी मंगल में वर्तमान होता है जब धर्मरूप रीति का नाश होता है तब बड़ा अधर्म वर्तमान होता है जब पाप नहीं हटाया जाता है तब अहर्निश भय उत्पन्न होता है हे तात ! जब पाप नहीं रोकाजाता है तब धर्म से साधुवों की मर्यादा भी घटती है कि यह धन मेरा है अथवा यह मेरा नहीं और जब पाप की प्रबलता होती है तब मनुष्यों की स्त्री, गौ, क्षेत्र, स्थान दृष्टि नहीं आते तब देवता पूजा को और पितर स्वधा को नहीं जानते हैं और अतिथि भी नहीं पूजेजाते और व्रतकरनेवाले ब्राह्मण भी वेदों को नहीं प्राप्तकरते और वेदपाठी ब्राह्मण यज्ञों को विस्तृत नहीं करते शस्त्रों से घायलहुये के समान जीवों का चित्त भय आदि से व्याकुल होता है ऋषियों ने आप दोनों लोकों को देखकर राजा को उत्पन्नकिया कि यह संसारी जीवों का अच्छा पालन करेगा जिसमें पालनशक्ति विराजमान होती है उसको राजा कहते हैं और जिसमें धर्म लुप्तहोता है उसको देवताओं ने वृषिल कहा भगवान् का धर्मवृष नाम है जो उसको बन्दकरता है उसको देवताओं ने वृषिल जाना इसकारण धर्म की अधिक वृद्धिकरे धर्म की वृद्धि होनेपर सब जीव सदैव वृद्धि को पाते हैं और जिस के नाशवान् होनेपर सब नाश को पाते हैं इसहेतु धर्म का लोप नहीं करना योग्य है हे राजन् ! धर्म धन से या धारण से जारी होता है यह निश्चय है उस धर्म को निषिद्ध कर्मों का नाशकरनेवाला कहा ब्रह्माजी ने जीवों की वृद्धि के लिये धर्म को उत्पन्न किया इसकारण प्रजा के उपकारार्थ धर्म को करे इसीसे धर्म को महाउत्तम कहा, हे पुरुषोत्तम ! राजा वही उत्तम है जो प्रजा को धर्म का उपदेश करता है और काम, क्रोध को त्यागकर धर्म को पालन करे धर्म राजाओं का बड़ा कल्याण करनेवाला है हे मान्धाता ! ब्राह्मण

धर्म का उत्पत्तिस्थान है इसहेतु उनको सदैव पूजे मित्रता से पृथक् राजा ब्राह्मणों की इच्छाआदि को पूर्णकरे उन्हों की इच्छा पूर्ण न करने से राजा को भय उत्पन्नहोता है मित्र वृद्धि को नहीं पाते और शत्रुवों की भी वृद्धि होजाती है विरोचन के पुत्र राजा बलि ने अज्ञानता से सदैव ब्राह्मणों में दोष लगाया इस कारण उससेवह लक्ष्मी जुदीहुई जो उसके पास प्रतापवाली थी। फिर वह लक्ष्मी उस से पृथक् होकर इन्द्र के पासगई जब उसने इन्द्र के पास लक्ष्मी को देखा तो बड़ा शोच कर पश्चात्ताप करने लगा हे समर्थ! दूसरे के गुण में दोष लगाने का और अहंकार करने का यह फल है सो हे मान्धाता! सावधान रहो कि यह प्रतापवाली लक्ष्मी तुम को त्याग नहींकरे लक्ष्मी का पुत्र दर्प अहंकार नाम अधर्म से उत्पन्न हुआ है यह श्रुति है हे राजन्! उससे बहुत से देवता और असुर नाश कियेगये और बहुत से राजऋषि भी नाश कियेगये हे भरतवंशिन्! उस अहंकार को विजय करके राजा होता है ऐसा निश्चय जानो और उस से हाराहुआ दास होता है सो तुम अहंकार के साथ अधर्म का सेवन मतकरो वही बात करो जो सत्य है हे मान्धाता! जो बहुतकाल पर्यन्त वर्तमान रहा चाहते हो तो मद्य से प्रमत्त पाखण्डी लोगों का संग और उन से मिले हुये के सेवन को त्याग करो पकड़े हुये मन्त्री से और स्त्री, पहाड़, कुटिल मार्ग और अगम्य स्थान, हाथी, घोड़ा, सर्प आदि से सदैव चैतन्य रहना चाहिये रात्रि के फिरने को त्यागकरो अदानता, अहंकार, कपट, क्रोध इत्यादि का त्यागकरो हे राजन्! विनाजाने नपुंसक और स्वतन्त्र अन्य की स्त्री और कन्याओं के साथ विषय को न करो वर्णों के मेल होने से कुलों में पापी, राक्षस, नपुंसक, अंगहीन, विक्षिप्त उत्पन्न होते हैं और अन्य प्रकार के भी मनुष्य उत्पन्न होते हैं जब राजा असावधानी करता है तब राजा को प्रजा की वृद्धि में अधिक कर्म करना उचित है अचेत क्षत्रिय को महादोष उत्पन्न होता है और प्रजा को वर्णसंकर करनेवाले अधर्म की बड़ी वृद्धि होती है गर्मी में सर्दी वर्तमान होती है और शरदऋतु में सर्दी वर्तमान नहीं होती वर्षा का न होना या अधिक होना और रोग प्रजा में वर्तमान होते हैं उस दशा में धूम्रकेतु और घोर ग्रह आदि सामने प्रकट होते हैं और राज्य के नष्ट करनेवाले बहुत उत्पात दृष्टि आते हैं जो आत्मा की रक्षा किये विना राजा प्रजा की भी रक्षा नहीं करता है उस की प्रजा नाश को पाती है तब वह भी नाश को पाता है एक के धन को दो लेते हैं और दो के धनको दूसरे अन्य बहुत से लोग लेते हैं और कुमारियां बहुत गुप्त करलीजाती हैं तब राजा का दोष कहा जाता है जब राजा धर्म को त्यागकर असावधानी से कर्म करता है तब मनुष्यों में एक की भी मर्यादा नियत नहीं होती है कि यह मेरा है॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

इक्यानबेवां अध्याय ॥

उतथ्य बोले कि समयपर वर्षा करनेवाला पर्जन्य और धर्म करनेवाला राजा जो यह सम्पत्ति होती है वह सुख से प्रजा को पोषण करती है जो धोबी वस्त्र या दुशाले आदि के मैल दूरकरने को नहीं जानता है वह उत्पन्न भी अनुत्पन्न सा है इसीप्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के मध्य में भी यही बात है और वर्णों में चौथा शूद्र जो नानाप्रकार के कर्मों में वर्तमान है उस में भी यही बात है अर्थात् अपने धर्मों के विपरीत धोबी के समान है सेवा करना शूद्र में, खेती करना वैश्य में और दण्डनीति राजा में और ब्रह्मचर्य, तप, मन्त्र और सत्यता ब्राह्मणों में वर्तमान है उनके बीच में जो क्षत्रिय पवित्र वस्त्र के समान प्रजा की नेक प्रकृति को जानता है वह पिता के समान प्रजापति है हे भरतवंशिन्! राजा के सब चलन सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग रूप हैं राजा ही युग कहाजाता है चारो वर्ण और चारो आश्रमों का धर्म इसी प्रकार चारो वेद यह सब अज्ञानता को प्राप्त होते हैं जब कि राजा अचेत होता है तीनों वेद तीनों अग्नि और दक्षिणा सहित सब यज्ञ मोह को प्राप्त होते हैं राजाही जीवों की वृद्धि का करनेवाला है जो धर्मात्मा है वह वृद्धि करनेवाला है और जो अधर्मी है वह नाशकर्ता होता है राजा की भार्या, पुत्र, भाई, बन्धु और सुहृद्जन सब मिलकर शोच करते हैं जब राजा अचेत होता है, राजा को अधर्मरूप होने से हाथी, घोड़े, ऊंट, खच्चर, गधे और सब जीव पीड़ा पाते हैं हे मान्धाता! ईश्वर ने पराक्रम को निर्बल के लिये उत्पन्न किया क्योंकि निर्बलही बड़ाजीव है जिस में सब वर्तमान हैं हे राजन्! यश निर्बल जीव को सेवन करता है और जो जीव उसके कुल में हैं वह सब राजा को अधर्म में प्रवृत्त होने से शोच करते हैं निर्बल और मुनि, सर्प की जो आंख है उसको क्षमा के अयोग्य मानताहूं इस से निर्बल को पीड़ा मतदो हे तात! तुम सदैव जिनका अपमान हुआ हो उनको निर्बलजानो निर्बलों के नेत्र तुम को बन्धुओं समेत नाश न करेंगे निर्बल से नष्टहुये राजा के कुल में कुछ भी नहीं रहता मूलतक भस्म कर देता है इससे निर्बल को पीड़ा मतदो निश्चय करके निर्बल सबलसे उत्तम है क्योंकि पराक्रमी को निर्बल से नष्टता के विशेष कुछ प्राप्त नहीं होता अपमान कियाहुआ वा घायलहुआ अथवा पुकारनेवाला मनुष्य जो रक्षक को नहीं पाता है वहां देव का रचाहुआ दण्ड राजा को मारता है हे पुत्र! तुम पराक्रमी होकर निर्बल मनुष्यों को मतभोगो अर्थात् बल से उनसे भेंट मतलो और तुम को निर्बल के नेत्र ऐसे भस्म न करें जैसे कि मकान को अग्नि जिन को मिथ्या दोष लगाया गया उन रोनेवाले आदमियों के जो अश्रुपात होते हैं वह उनके

मिथ्या बोलने से उनके पुत्र और पशुवों को मारते हैं जो वह पाप आप को न होगा तो पुत्रों को प्राप्त होगा वा पोतों में फल होगा किया हुआ पाप पृथ्वी के कर्म के समान शीघ्र नहीं फैलता जिस स्थानपर निर्बल घायल होता है वहां दैव का रचाहुआ महाभयानक वज्रपात होता है जब देशवासी योगी ब्राह्मणों के समान बराबर भिक्षुकरूप होकर भिक्षा को मांगते हैं उसप्रकार के मनुष्य राजा का नाश करते हैं जब राजा के देश में बहुत से नौकर लोग अन्याय से कर्मकर्ता होते हैं वह राजा का बड़ा पाप है जब विपरीत युक्ति राजा इच्छा धन के आधीन होकर दुःख से प्रार्थना करनेवाले पुरुषों का धन आदि छीन ले वह राजा का महानाश करनेवाला है वृक्ष बड़ा उत्पन्न होता है और वृद्धि को पाता है तब जीवों का आश्रय होता है और जब वृक्ष काटाजाता है और जलाया जाता है तब आश्रयी जीव महादुःख पाते हैं जब राज्य में राजगुणों के कहनेवाले मनुष्य उत्तम धर्म और संस्कार को करते हैं तब राजा की वृद्धि होती है और धर्म में असावधानी होने से उनका किया हुआ अधर्म राजा के पुण्य को नाश करता है और पाप का भागी करदेता है जिस स्थान पर सत्पुरुषों के जानेहुये पापात्मा लोग फिरते हैं वहां कलियुग राजालोगों को अपने आधीन करता है जब राजा नीचमनुष्यों को दण्ड देता है या सच्चेमार्ग में चलता है तब उसका राज्य वृद्धि पाता है जो राजा मन्त्रियों को यथायोग्य सत्कार करके दूरदर्शकता की सलाह से युद्ध में प्रवृत्ति करता है उस राजा का देश वृद्धि पाता है और सम्पूर्ण पृथ्वी को बहुत काल तक भोगता है जो कर्म श्रेष्ठ है और अच्छे प्रकार कहाहुआ वचन है उसको भी राजा अच्छेप्रकार से विचार कर पूजता हुआ उत्तम धर्म को पाता है जब भागों का विभाग करके भोगता है और मन्त्रियों का अपमान नहीं करता है और अहंकारी और पराक्रमी को मारता है तब राजा का धर्म कहाजाता है जब देह, चित्त और वचनों से सब की रक्षा करता है और पुत्र के भी अपराध को क्षमा नहीं करता वह राजा का धर्म कहा जाता है जब पराक्रमी राजा अच्छे प्रकार से भागों को विभाग करके मनुष्यों को भोगता है अर्थात् उन पर आज्ञा करता है तब वह बलवान् होते हैं यह भी राजा का धर्म कहाता है जिस स्थान में कर्म, वचन से पापात्मा प्यारे की भी क्षमा न करे वह राजा का धर्म कहाजाता है जब राजा प्रधान व्यापारियों की पुत्र के समान चारो ओर से रक्षा करता है और मर्यादा को नहीं तोड़ता वह राजा का धर्म कहाता है जब श्रद्धायुक्त राजा इच्छाद्वेष को त्यागकर दक्षिणा के योग्य यज्ञों को करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है जब राजा मनुष्यों की प्रसन्नता को उत्पन्न करता दुःखी, अनाथ और वृद्धों के नेत्रों के अश्रुपात को साफ़ करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है मित्रों की वृद्धि और शत्रुवों

को पीड़ादेता है और साधुवों को अच्छेप्रकार से पूजता है वह राजा का धर्म कहाजाता है प्रीति से सत्यता की रक्षा को करता और सदैव धर्म को जारीकरता अतिथि और पोषण के योग्य मनुष्यों को तृप्त करता है वह राजा का धर्म कहाजाता है दण्ड और पारितोषिक यहदोनों जिस राजा में वर्तमान होयँ वह इस लोक और परलोक में फल को पाता है हे मान्धाता! यह यमराजरूप धर्मात्मा राजा पुरुषों का बड़ास्वामी है इन्द्रियों को स्वाधीन करता ऐश्वर्य को पाता है और अजितेन्द्रिय नष्ट होता है जब ऋत्विज्, पुरोहित और आचार्य को अपमानरहित सत्कार करके अच्छे प्रकार से पोषण करता है वह राजा का धर्म कहा जाता है यमराज सब जीवों को अधिक दण्ड देता है उसीप्रकार राजा को भी कर्म करना चाहिये और प्रजा भी विधिपूर्वक सन्मार्ग में लाने के योग्य है हे पुरुषोत्तम! राजा सब प्रकार से इन्द्र के समान गिनाजाता है वह जिस धर्म को देखता है वही धर्म है क्षमा, बुद्धि, धैर्य, ज्ञान और सदैव सावधानी से जीवों को शिक्षा करो सबजीवों को स्वाधीन करना और दान, मान, मीठेवचन आदि की भी शिक्षाकरो तुम को सुखपूर्वक पुरवासी और देशवासी रक्षा करने के योग्य हैं असावधान राजा प्रजा की रक्षा में कभी समर्थ नहीं होता हे पुत्र! यह राज्य नाम बड़ा कठिन भार है इसकारण दण्ड का जाननेवाला ज्ञानी और शूरवीर राजा रक्षा करने को समर्थ होता है दण्ड न जाननेवाले नपुंसक व अज्ञान राजा से भी रक्षा करना असम्भव है पण्डित, कुलीन, सावधान, भक्त और बहुत शास्त्र के जाननेवाले मन्त्रियों के साथ तपस्वी और आश्रमियों के सब ज्ञानियों की परीक्षा करो इन बातों के पीछे तुम सब जीवों के उत्तम धर्मों को जानोगे अपने देश में और परदेश में तेरा धर्म नाश को नहीं पावेगा क्योंकि अर्थ और काम से धर्मही उत्तम है इससे धर्मात्मा इस लोक और परलोक में सुख से वृद्धि को पाता है अच्छे प्रकार से पूजित मनुष्य स्त्री और पुत्रों का भी त्याग करते हैं जीवों को स्वाधीनता में करना दान, मीठेवचन, भ्रान्ति का त्याग और पवित्रता यह सबगुण राजा के ऐश्वर्य करनेवाले हैं हे मान्धाता! तुम इन गुणों को कभी मत भूलो अपना और शत्रु का दोष देखनेवाला राजा सावधान होता है शत्रु के दोष को नहीं देखै और शत्रु के समान दोषों को करे यह कर्म इन्द्र, यमराज और वरुण देवता का है और सब राजऋषियों का भी है इससे तुम भी इसको करो और राजऋषियों से सेवित कर्म में सावधान होकर मोक्ष के लिये दिव्य मार्ग में प्रवृत्त हो और देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व आदि दोनों लोकों में धर्म पर आरूढ़ राजा की कीर्ति करते हैं भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्! उस उतथ्यऋषि से उसप्रकार कहे हुये उस मान्धाता ने शंकारहित होकर उन सब कर्मों को किया और सम्पूर्ण पृथ्वी को उस अकेले ने विजय किया हे राजन्! इसी

प्रकार आप भी मान्धाता के समान अच्छे प्रकार धर्म करके पृथ्वी की रक्षाकरो इससे स्वर्ग में स्थान पावोगे ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

बानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि धर्म में प्रवृत्त होनेवाला धर्मात्मा राजा किस प्रकार से कर्म करे यह आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर एकप्राचीन इतिहास कहता हूं जिसको तत्त्वार्थज्ञाता वामदेव ऋषि ने गाया ज्ञानी, पवित्र, धैर्यवान् राजा वसुमता ने ब्रह्मर्षि वामदेवजी से पूछा कि हे भगवन् ! धर्म, अर्थ से संयुक्त वचनों के द्वारा मुझे आप उपदेश करिये जिससे कि मैं उस कर्म को करके धर्म से च्युत न होऊं यह सुनकर तप करनेवालों में उत्तम तपस्वी वामदेवजी ने उस सुवर्णवर्ण ययाति के पुत्र नहुष के समान सुखपूर्वक विराजमान राजा से यह कहा कि धर्मपूर्वक कर्मकरो धर्म से उत्तम कोई कर्म नहीं धर्म में वर्तमान राजाही इस पृथ्वी को विजय करते हैं जो राजा धर्म को प्राप्त किये हुये धन से उत्तम मानकर धर्म की वृद्धि में प्रवृत्त होता है वह धर्म से शोभायमान होता है जो अधर्म का देखनेवाला राजा पराक्रम में प्रवृत्त होता है उससे धर्म और अर्थ शीघ्रही हट जाते हैं और जिसके मन्त्री दुष्ट और पापी हैं वह धर्म का नाश करनेवाला लोक में मरा हुआ है अर्थात् अपने बालबच्चों समेत शीघ्र नाश को पाता है धन को सुमार्ग में न लगानेवाला इच्छाचारी अपनी प्रशंसा करनेवाला राजा सब पृथ्वी को भी पाकर शीघ्र नष्ट होता है और कल्याण का प्राप्त करनेवाला और अन्य के गुण में दोष न लगानेवाला जितेन्द्रिय ज्ञानी राजा ऐसे वृद्धि को पाता है जैसे कि नदियोंसे समुद्र की वृद्धि होती है हे राजन्! वह पृथ्वी का स्वामी अपने को सदैव ऐसा माने कि मैं धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रों से भी पूर्ण नहीं हूं इन सब में लोकयात्रा वर्तमान है अर्थात् इनसे संसार का प्रबन्ध होता है इन धर्म आदि में प्रवृत्त राजा यश, कीर्ति, लक्ष्मी सहित प्रजाको पाता है इसप्रकार जो धर्म में संयुक्त हो धर्मार्थ का विचारनेवाला राजा अर्थों को विचारकर सेवन करता है वह निश्चय करके बड़े ऐश्वर्य को पाता है दान न करनेवाला प्रजापर प्रीति न रखनेवाला विनाविचार कर्म का अभ्यास रखनेवाला प्रजा को दण्ड देता शीघ्र नाश को पाता है जो अज्ञानी राजा बुद्धि से पाप करनेवाले को नहीं देखता है वह अपमान युक्त हो नरक को भोगता है और जो राजा सत्कार करनेवाला दानी, शुद्धप्रजा के आधीन रहनेवाला है उसके व्यसनों को मनुष्य ऐसे दूरकरते हैं जैसे कि अपने दुर्व्यसन को धर्म में जिस का गुरु नहीं है और दूसरों से भी नहीं पूछता वह स्वतन्त्रता से सिद्ध होनेवाले

लाभ में बहुतकालतक सुख को नहीं भोगता है और जो आप अर्थों का देखनेवाला और धर्मों में गुरु को और लाभ में धर्म को उत्तम माननेवाला है वह राजा बहुत कालतक सुख को भोगता है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

तिरानबेवां अध्याय ॥

वामदेवजी बोले कि जिस स्थान पर बड़ापराक्रमी राजा निर्बल पर अधर्म करता है उसके कुल के लोग भी उसी कर्म को करते हैं उस पापी और पाप के जारी करनेवाले राजा के समान कर्मकर्ता होते हैं जिस देश के मनुष्य शिक्षित नहीं होते हैं वह देश शीघ्रही नष्ट होता है मनुष्य स्वकर्मी राजा के कर्म से निर्वाह करते हैं उस राजा के भाई बन्धु उस गोमार्ग में बर्तमान राजा की क्षमा नहीं करते जिस स्थानपर विनाविचार कर्म करनेवाला कुछ निकृष्ट कर्म करे वह शास्त्र के विपरीत लक्षण रखनेवाला राजा शीघ्रही नाश को पाता है जो क्षत्रिय दूसरे के स्वाधीन होनेवाले और स्वतन्त्र क्षत्रियों के अच्छे आचरण की हुई वृत्ति पर वर्तमान नहींहोता है वह क्षत्रियधर्म से जुदा होता है जो राजा पहिले समय में उपकार करनेवाले और वर्तमान में शत्रुता करनेवाले राजा को क़ैद करके शत्रुता से सत्कार नहीं करता है वह क्षत्रियधर्म से नष्ट होता है और जो समर्थ राजा अच्छेप्रकार सुख को प्राप्तकरे और आपत्तिकाल में उस आपत्ति को दूर करने का उपायकरे वह जीवों का प्यारा होकर लक्ष्मी से रहित नहीं होताहै और वह मनुष्य जिससे कि कोई विरुद्धभाव रखता हो और फिर उससे सुहृद्भावकरे वह थोड़े ही समय में उसका प्यारा होजाता है और जो शत्रु भी हो वह भी भलाईकरे और निरर्थक विवाद का त्यागकरना और विनामांगे भलाई को करना इच्छा, क्रोध, शत्रुता आदि से धर्म को न छोड़ना प्रश्नों में न्याय के विपरीत उत्तर का न देना और अकथनीय बात को मुख से न कहना शीघ्रता न करना गुणों में दोष न लगाना आदि बातें शत्रु को स्वाधीन करती हैं मित्र के साथ अतिप्रसन्न शत्रु के साथ क्रोधयुक्त प्रजा की वृद्धि चाहनेवाला आपत्ति में दुःखी नहीं होता है जो राजा नौकर आदि अपने मनुष्यों की भलाई को अपने गुण से करता है उसके सब काम सिद्ध होते हैं और लक्ष्मीवान् रहता है विपरीत कर्मों का न करनेवाला, भलाई में प्रवृत्त, भक्त और सावधान नौकर को राजा सदैव सेवनकरे और बुद्धिमान्, आज्ञाकारी, पवित्र, समर्थ और प्रीति करनेवाले मनुष्य को बड़े अधिकार पर नियत करे इन गुणों से संयुक्त जो नौकर राजा को प्रसन्नकरे उस स्वामी के कार्यों में सावधान पुरुष को माल के अधिकार पर नियत करे और जो राजा कि अस्वस्थचित्त, लोभी, दुराचारी, मूर्ख, छली,

दुःखदायी, दुर्बुद्धि, अल्पशास्त्रज्ञ, बड़े कर्मों का त्यागने वाला, मद्यपी, द्यूत, स्त्री और शिकार में प्रवृत्त पुरुष को बड़े अधिकार पर नियत करता है वह लक्ष्मीसे रहित होता है जो राजा रक्षित होकर रक्षा के योग्य मनुष्यों की रक्षा करता है उसकी प्रजा वृद्धिपाती है और निश्चय बड़ेपद को भोगता है और जो राजा कि दूसरे राजाओं को शुभचिन्तक गुप्तदूतों के द्वारा देखता है वह राजा वृद्धि को प्राप्त होता है पराक्रमी के साथ बुराई करके यह विश्वास न करे कि मैं दूर हूं क्योंकि बाज़ के समान अचेत मनुष्यों पर गिरते हैं जिसकी जड़ पक्की है और बुद्धि निर्दोष है वह अपने पराक्रम को जानकर निर्बलों को अधिकारों पर नियत करता है न कि अधिक पराक्रमियों को पराक्रम से पृथ्वी को पाकर धर्म से प्रजापालन करे और धर्म में स्थित राजा युद्ध में शत्रुवों को मारे यह सब मरणपर्यन्त होना चाहिये इस में कुछ हानि नहीं है इस कारण धर्म में वर्तमान राजा धर्म से प्रजा-पालन करे क़िलेआदि का बनाना युद्ध करना और धर्म का उपदेश करना स-लाह करना समयपर सुख देना इन पांचो बातों से पृथ्वी की वृद्धिहोती है यह गुण जिसके रक्षित हैं वह राजा राजाओं में उत्तम है इस धर्म में सदैव वर्तमान राजा इस पृथ्वी को आधीन करता है यह पांचो अकेले राजा से देखने के योग्य नहीं राजा उन पांचो में सबको नियत करके बहुत समयतक पृथ्वी को भोगता है देश के मनुष्य उस दानी, न्यायी, मृदुतायुक्त, पवित्र पुरुष को जोकि मनुष्यों का त्याग नहीं करता है राजा करते हैं जो पुरुष अपनी राय को त्याग करके अपने कल्याणकारी ज्ञान को सुनकर उसको प्राप्त करता है उसको लोक राजा करते हैं जो राजा मित्र के वचन को विरुद्धता से नहीं मानता है और सदैव बे मन से उसके शत्रुवों से विपरीत वचनों को सुनता है और जो सदैव दूसरे राजा के विजय किये हुये या न विजय किये हुये राजाओं और बुद्धि-मानों की सेवन की हुई लाभ की युक्ति को सेवन नहीं करे वह क्षत्रियधर्म से हीन होता है कर्म में प्रवृत्त राजा क़ैद किये हुये मन्त्री, स्त्री, पहाड़ और टेढ़े और क-ठिन स्थान, हाथी, घोड़ा, सर्पआदि से सदैव अपनी रक्षाकरे जो राजा प्रधान मन्त्रियों को त्याग करके नीच पुरुषों को प्यार करता है वह पीड्यमान दुःख को पाकर अन्त में कुशलता को नहीं प्राप्त होता है और जो राजा कल्याण गुणों में संयुक्त अपने सजातियों की शत्रुता से वृद्धि नहीं करता वह अदृढ़ात्मा और दृढ़ क्रोधी मृत्यु के समीपही वर्तमानहोताहै और जो राजा गुणोंसे युक्त हृदय से प्यारे पुरुषों को भी उनका अभीष्ट करने से आज्ञाकारी करता है वह बहुत कालतक कीर्तिमान् होता है और जो बे समय धन का व्यय नहीं करे और शत्रु के ऊपर कभी क्रोधयुक्त न होवे और मित्र के साथ भी बहुत प्रसन्न न होवे और देह के सुखदायी कर्म में प्रवृत्त होवे और सदैव यह विचारकरे कि इन राजाओं

में कौन राजा तो प्रीति करनेवाले हैं और कौन भय से शरणागत हुये और कौन से उदासीन होकर दोष रखनेवाले हैं और पराक्रमी होकर कभी किसी भी स्थानपर निर्बल का विश्वास न करे यह राजा गिद्धके समान अचेत राजा के ऊपर गिरते हैं जो पापात्मा मनुष्य सब गुणों से भराहुआ प्यारे वचन बोलनेवाले स्वामी से भी शत्रुता करता है उस मनुष्य पर विश्वास नहीं करे इस प्रकार नहुष के पुत्र राजा ययाति ने राजाओं की यह गुप्तविद्या कही यह विद्या मनुष्यों के देश में जारी होकर बड़े २ शत्रुओं को मारती है॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

चौरानबेवां अध्याय॥

वामदेवजी बोले कि राजा विनाही युद्ध के विजय को बढ़ावे क्योंकि युद्ध से विजय करना मध्यम कहाजाता है राज्य के मूल दृढ़ न होने से अप्राप्त को कभी न चाहै निर्बल मूल राजा को लाभ होना नहीं कहाजाता है जिसका देश धनाढ्य और राजा को प्यारा माननेवाला प्रसन्न मन्त्रियों से संयुक्त है उस राजा का मूल दृढ़ होता है जिसके योद्धा सन्तुष्ट हों और उसके प्यारे मीठेवचनों से प्रसन्नहों वह राजा थोड़ेही दण्ड से पृथ्वी को विजय करता है जिसके पुरवासी, देशवासी, धनी और अनाज आदि रखनेवाले जीवोंपर दया करनेवाले हैं वह राजा दृढ़मूल रखनेवाला है जब राजा अपने प्रताप के समयतक अधिक माने उस समय वह बुद्धिमान् शत्रु के देश और धन के विजय करने की इच्छाकरे और जो राजा भोगों में उदयमान जीवोंपर दयावान् शीघ्रकर्मी रक्षितात्मा होता है उसकी विजय अत्यन्त होती है जो राजा अच्छेप्रकार वर्ताव करनेवाले अपने मनुष्यों से मिथ्या बोलता है वह अपने को ऐसे मारना चाहता है जैसे कि फरसे से वन काटाजाता है सदैव न मारनेवाले राजा के शत्रु नाश नही होते परन्तु जो राजा क्रोध के मारने को जानता है उस का कोई शत्रु नही होता जो काम अच्छे लोगों के विरुद्ध है उसको ज्ञानी पुरुष नही करे और जिस भलाई को विचारे उसी में अपने को प्रवृत्त करे जो राजा दूसरों की इच्छापूर्णता के साथ अपने सुखों को प्राप्त करता है और दूसरे लोग उसका अपमान नहीं करते और आप भी कभी दुःखी नही होता ऐसी वृत्तिवाले मनुष्यों में जो राजा वर्तमान रहै वह दोनों लोकों का विजय करके पूरी विजय में प्रवृत्त होता है भीष्मजी बोले कि वामदेवजी के ऐसे समझाये हुये राजा ने उन सब बातों को किया इसीप्रकार तुम भी कर्म करके दोनों लोकों को निस्सन्देह विजय करोगे॥ १३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुर्नवतितमोऽध्यायः॥ ९४॥

पंचानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो क्षत्रिय युद्ध में किसी अन्य क्षत्रिय को विजय करना चाहे उसको विजय करने में क्या धर्म करना चाहिये यह आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि सहाय रखनेवाला वा असहाय राजा देश में आकर कहे कि मैं तुम्हारा राजा हूं तुम्हारी सदैव रक्षा करूंगा मेरा धर्मरूप राजअंश दो अथवा क्या कहते हो वह प्रजा उस आये हुये राजा को स्वीकार करे तो कुशल है और जो वह क्षत्रिय न होयँ और किसीप्रकार का विरुद्ध करें तो वह विपरीतकर्मी सबप्रकार से दण्ड और शासना के योग्य हैं दूसरा मनुष्य उस क्षत्रिय को रक्षा करने में भी अत्यन्त असमर्थ और अशस्त्री जानकर शस्त्र को हाथ में लेता है यह भी बहुधा होता है युधिष्ठिर ने कहा कि जो क्षत्रिय राजा क्षत्रिय के सम्मुख जाय उस को किस प्रकार से युद्ध करना चाहिये भीष्मजी बोले कि जो क्षत्रिय युद्ध में कवच आदि नहीं धारण किये है उससे युद्ध नहीं करना चाहिये एक को एकही से युद्ध करना योग्य है जो वह शत्रु कवच धारण किये हुयेही आवे तो इस को भी कवच धारण करना योग्य है और जो वह सेना समेत आवे उस दशा में उस को सेना समेत बुलावे और जो वह छल से युद्ध करे तो उस से आप भी छलकरे और धर्म से युद्ध करे तो धर्महीं से उसे हटावे घोड़े की सवारी से रथी के सम्मुख न जाय रथी रथके सम्मुख जाय किसीप्रकार की आपत्ति में शस्त्रघात न करना चाहिये और भयभीत वा विजय किये हुये पर घात न करना चाहिये बड़ा बाण और करणी नाम बाण विष का भराहुआ न हो यह शस्त्र नीच लोगों के हैं बुद्धि के अनुसार युद्ध करना श्रेष्ठ है मारने की इच्छा करनेवाले शत्रु की रक्षा न करे जब साधुवों के विरोध से साधुलोग व्यसनी होगये तब निर्बल और असन्तान किसी दशा में भी मारने के योग्य नहीं है शस्त्र और कवच जिस के खण्डित हों और मृतकरूप सवारी में सवार आपत्ति में पड़ा हो और अपने देश में चिकित्सा के योग्य होय और घरमें पहुँचने के योग्य हो वह विना घायल छोड़ देने के योग्य है यह सनातनधर्म है इसकारण धर्महीं से युद्ध करना चाहिये यह स्वायम्भुव मनु ने कहा है जो धर्म सत्पुरुषों के मध्य में सत्पुरुष करते हैं उस में नियत होकर उसका नाश न करे जो धर्म रूप प्रण करनेवाला क्षत्रिय अधर्म से विजय करता है वह छली पापात्मा आप अपना घात करता है यह कर्म नीचों का है असाधु को शुभकर्म से विजय करे क्योंकि धर्म सेही मरना उत्तम है और पापकर्म से विजय करना अच्छा नहीं हे राजन्! किया हुआ अधर्म पृथ्वी के समान शीघ्रफल नहीं देता वह अधर्म जड़ों

को और बड़ी २ शाखाओं को नष्ट करता हुआ प्राप्त होता है पापी पापकर्म से ही धन को पाकर प्रसन्न होता है चोरी से वृद्धि पानेवाला और धर्म को नहीं माननेवाला पवित्र मनुष्यों को हँसता है पापात्मा पापही में सना रहता है और श्रद्धारहित होने से भी नष्ट होता है वरुण के पाशों से बँधाहुआ अपने को सदैव जीवता सा मानता है हवा से पूर्ण मशक चर्म के समान मोटा देह शुभ कर्म में प्रवृत्त नहीं होता है वह मूलसहित ऐसे नष्ट होता है जैसे नदी के तट के वृक्ष इसकी पीछे से सब निन्दा करते हैं इससे राजा धर्म सेही विजय और धन को चाहे॥ २२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

छानबेवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि राजा को अधर्म से पृथ्वी का विजय न करना चाहिये कौन सा राजा अधर्म से जीत को पाकर सन्तुष्ट होता है अधर्म से संयुक्त विजय और स्वर्ग दोनों नाशवान् हैं हे राजन्! यह विजय राजा को और पृथ्वी भर को पीड़ा देती है टूटे कवचवाले और तेरे आधीन हूं ऐसे वचन कहनेवाले हाथ जोड़े हुये शस्त्रत्याग कियेहुये शत्रु को पकड़कर नहीं मारे और जो पराक्रम से विजय कियाहुआ है उस राजा से युद्ध नहीं करे और वर्षपर्यन्त उसको समभावे तदनन्तर उसका पुत्र राजाहोवे और पराक्रम से लाई हुई कन्या एक से पहिले पूछने के योग्य नहीं कि तू हम को वरैगी या दूसरे को वरैगी अर्थात् विपरीत कहनेवाली कन्या को अपने घर में न रहने दे इसीप्रकार सब धन के विषय में भी कर्मकरना चाहिये जो दूसरे का धन छल से हरण कियागया और चोर का भी न गिनाजाय तो वह खर्च के योग्य है उस धन से ब्राह्मणलोग दूध को पियें और बैलों को भी जोड़ें अर्थात् सवारी करें जब घातकरने के योग्य पुरुष चोर न ठहरे तो क्षमा के योग्य होता है अर्थात् वह धन के फेर देने के योग्य है राजा राजा से युद्ध करने के योग्य है ऐसा धर्म कहाजाता है राजा के सिवाय दूसरा वर्ण किसी दशा में भी राजा के सम्मुख शस्त्र न चलावे जब दोनों ओर की सन्धि का चाहनेवाला ब्राह्मण दोनों सेनाओं के मध्य में होय तब उचित युद्ध न होना चाहिये उनदोनों में से जो ब्राह्मण को उल्लंघन करता है वह सनातन मर्यादा को तोड़ता है और जो क्षत्रियों में विजयी पुरुष मर्यादा का उल्लंघनकरे वह क्षत्रिय क्षत्रियों में अयोग्य अर्थात् जाति से निकालने के योग्य और सभा में प्रवेश करने के अयोग्य होता है जो विजय की इच्छा करनेवाला राजा धर्मलोप और मर्यादा के तोड़ने से उसीरीतिपर कर्म न करे उस समय धर्म से प्राप्त हुई विजय से अधिक कौन लाभ होगा वह विना विचारे विजय आदि को करके

शीघ्रही अपने विजय कियेहुये को मीठेवचन और भोगदान से प्रसन्नकरे यह राजाओं की नीति उत्तम है कटुवचनों से आज्ञा में वर्तमान कियेहुये अपने देश से अप्रसन्न और व्यसनों के समूहों की आपत्ति के चाहनेवाले शत्रु उसके समीप वर्तमान हों वह शीघ्रही आपत्तिकाल में उन शत्रुवों के आज्ञाकारी होते हैं हे राजन् ! जो राज्य के व्यसनों के चाहनेवाले यद्यपि सब ओर से तृप्त भी होयँ तोभी शत्रुछल से ठगने के योग्य नहीं होते और किसी दशा में वार्तालाप से भी विरुद्ध करने के योग्य नहीं कभी अत्यन्त घायल वा शत्रु अपने जीवन को भी त्यागकरे इसीप्रकार राजा थोड़े धनयुक्त देश से भी तृप्त होता है और उस प्रकार का होकर पवित्र जीवन को भी बहुत मानता है जिस राजा का देश वृद्धियुक्त धनी और राजा का आज्ञाकारी है और जिसके मन्त्री नौकर आदि प्रसन्न हैं वह राजा दृढ़मूल रखनेवाला है ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य और अन्य शास्त्रज्ञ पूजने के योग्य जिस राजा के पूजेजाते हैं वही राजा लोक का जाननेवाला कहा जाता है इन्द्र ने इसीरीति से पृथ्वी को प्राप्त किया इसीरीति से राजा लोग इन्द्रलोक को विजय किया चाहते हैं हे युधिष्ठिर ! राजा प्रतर्दन ने भारी युद्ध में विजय करके पृथ्वी के सिवाय अन्न, धन, ओषधियों को भी सदैव हरण किया राजा दिवोदास ने अग्निहोत्र के शेष बचे हुये हव्य और भोजन को खाया इसकारण से अप्रतिष्ठित हुआ तात्पर्य यह है कि इनवस्तुवों को नहीं हरना चाहिये और राजा नाभाग ने वेदपाठी और तपस्वियों के धन के सिवाय राजाओं के समूह सहित सबदेशों को दक्षिणा में दिया हे युधिष्ठिर ! धर्मज्ञ प्राचीन राजाओं के जो नानाप्रकार के धन हुये वह सब मुझ को प्रिय हैं ऐश्वर्य का चाहनेवाला पृथ्वी का राजा विद्याओं के प्रताप से विजय को प्राप्त करे छल और कपट से न चाहे ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! निश्चय करके क्षत्रियधर्म से अधिक कोई पापयुक्त कर्म नहीं है क्योंकि राजा युद्ध करने में वैश्य आदि लोगों को मारता है और पृथ्वी का स्वामी राजा किस कर्म से अपने लोकों को विजय करता है यह आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि राजा लोग पापियों को दण्ड देने और साधुवों का पोषण करने से और यज्ञ दानादि से पवित्र निर्मल होते हैं विजय की इच्छा करनेवाले राजा लोग जीवों को पीड़ा देते हैं फिर विजय को पाकर प्रजा की वृद्धि करते हैं और दान, यज्ञ, तपआदि के बल से पापों को दूर करते हैं उनका पुण्य जीवों के कल्याण के लिये वृद्धि पाता है जैसे

कि खेत का निराव करनेवाला निरायेहुये खेत को काटकर अनाज, भूसा आदि को जुदा करता है परन्तु अनाज नष्ट नहीं होता इसीप्रकार शस्त्रों के मारनेवाले राजा लोग मारने के योग्य शत्रुवों को बहुत प्रकार से मारते हैं उनका यही महाप्रायश्चित्त है जो फिर जीवों की रक्षा को करते हैं जो राजा धन खर्चने के द्वारा जीवों को मारने आदि दुःख से और चोरों से रक्षा करता है वह प्राणदान से धन का देनेवाला सुखदायी पोषक निर्भयरूप दक्षिणायुक्त सब यज्ञों से पूजन करनेवाला है वह राजा इस लोक के कल्याणों को भोगकर इन्द्र की समानता को पाता है जो राजा ब्राह्मणों के प्रयोजन के लिये अपने देहरूपी यज्ञस्तम्भ को ऊंचा करके शत्रुवों से युद्ध करता है वही महादक्षिणावाला यज्ञ है उससे श्रेष्ठ कोई पुरुष नहीं है युद्ध में जितने शस्त्र उसकी देह के चर्म को छेदते हैं वह उतनेही लोगों को जो कि अविनाशी और सब इच्छाफल को पूर्णकरनेवाले हैं भोगता है युद्ध में उसकी देह से जो रुधिर आदि निकलता है उस दुःख से वह सबपापों से छूटता है युद्धमें सन्तप्त क्षत्रिय जिन कष्टों को सहता है उसी दुःख से उस के बड़े तप का फल प्राप्त होता है यह धर्मज्ञों का कहाहुआ है युद्ध में भयानकरूप धर्मात्मा पुरुष शूरवीर से रक्षा को चाहते हुये ऐसे पीछे को वर्तमान होते हैं जैसे पर्जन्य नाम मेघ के पीछे वर्षा से जीविका चाहनेवाले वर्तमान होते हैं शूरवीर होकर उसीप्रकार रक्षा करे जिस से कि भय जाता रहै और अपने मनुष्यों को शत्रुवों के सम्मुख न करे किन्तु आप सम्मुख होके उन को पीछे की ओर करे वह भी महापुण्य है और वह लोग उस उपकार के कारण सदैव उसको नमस्कार करें अथवा संसार के समान युद्ध करें वह पहिले के समान नहीं हैं युद्ध में सेना की चढ़ाइयां होनेपर समान पुरुषों में भी बड़ा अन्तर देखने में आता है अर्थात् कोई सम्मुख होता है कोई नहीं शूर पुरुष स्वर्गमार्ग में वर्तमान होकर शत्रुवों के सामने गिरता है और जो भयभीत है वह भागता है इस कारण प्राणसंकट में साथियों को त्याग करे हे तात ! ऐसे नीच मनुष्यों को आगे मतकरो जो युद्ध में साथियों को छोड़कर कुशलतापूर्वक घर को जायँ जिन के प्रधान इन्द्रदेवता हैं वह देवता उन के कल्याण को करते हैं जो पुरुष साथियों के त्याग से अपने प्राणों की रक्षा चाहता है उस को काष्ठ वा पाषाण आदि से मारे अथवा तृण की अग्नि से भस्मकरे और ऐसे क्षत्रियों को पशुवों के समान मारे जो कफ, मूत्र छोड़ता दुःख विलाप करता शय्या परमरै वह क्षत्रियों का अधर्मरूप बिना घायल देह के साथ नाश को पाता है इसके इस कर्म को प्राचीनलोग बुरा कहते हैं हे तात ! शूरवीर अभिमान रखनेवाले क्षत्रियों का घर में मरना प्रशंसा के योग्य नहीं होता वह अचेतता दुःखरूपी अधर्म है यह दुःख और महाकष्ट है जो

पापी पुरुष विपरीत सुस्त दुर्गन्धित देहयुक्त पुत्र आदि का शोच करता और पुकारता नीरोगों की इच्छा करता है और मृत्यु को भी चाहता है परन्तु वीर, अहंकारी लोग ऐसी मृत्यु के योग्य नहीं हैं क्षत्रिय युद्धों में शत्रुवों का नाश करके जातिवालों से घिरा हुआ तीक्ष्ण शस्त्रों से पीड़ित मृत्यु के योग्य है इच्छा क्रोध से भराहुआ शूर ही कठिन युद्ध को करता है और शत्रुवों से घायलहुये अंगों को नहीं जानता है वह युद्ध में मरण को पाकर संसार में कीर्तिमान् अपने उत्तम धर्म को प्राप्त करके इन्द्र की समानता को पाता है जीवन का त्यागी शूरपुरुष सब युक्तियों से युद्ध में वर्तमान पीठ को नहीं फेरता है वह इन्द्र की समानता को पहुँचता है और शत्रुवों से घिराहुआ जहां तहां घायल शूरवीर जो कष्ट को नहीं मानताहै वह अविनाशी लोकों को प्राप्तहोताहै ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! मरण को पाके युद्ध करनेवाले मुख न मोड़नेवाले शूरों के कौन लोक होते हैं यह आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! मैं इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास कहता हूं जिसमें राजा अम्बरीष और इन्द्र के प्रश्नोत्तर हैं नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष ने बड़ीकठिनता से प्राप्त होनेवाले स्वर्ग में जाकर इन्द्र के साथ बैठेहुये अपने मन्त्री को और दिव्य प्रकाशवान् ऊपर २ चलनेवाले उत्तम विमान में बैठेहुये अपने सेनापति उस सुदेव की ऋद्धि को दृष्टिगोचर करके आश्चर्ययुक्त होकर इन्द्र से कहा कि मैं सागरान्त सम्पूर्ण पृथ्वी को रीति के अनुसार शिक्षा करके और धर्म की इच्छा से चारों वर्णों के धर्मों में शास्त्र के अनुसार कर्मकर्ता और ब्रह्मचर्य गुरुसेवा आदि आचार से वेदों को और धर्म से शुद्ध राजशास्त्र को पढ़कर खाने पीने की वस्तुवों से अतिथियों को और इसीप्रकार श्रद्धापूर्वक पितरों को वेदपाठ की दीक्षा से ऋषियों को और उत्तम यज्ञों से देवताओं को तृप्त करके शास्त्र की विधि से क्षत्रियधर्म में वर्तमान होकर देव को देखता युद्ध में विजय करता था हे देवराज, इन्द्र ! प्राचीन समय में यह बड़ा शान्तात्मा सुदेव नाम मेरा सेनापति युद्ध में प्रवीण था यह किस कारण से मुझ से अधिकार का पानेवाला है इसने न तो मुख्ययज्ञों से पूजन किया और न विधि के अनुसार ब्राह्मण तृप्तकिये वह अब मुझ से किस कारण से अधिक है इन्द्र बोले कि हे तात ! इस सुदेव का युद्धरूप एक यज्ञ बड़ा हुआ और जो दूसरा क्षत्रिय युद्ध करता है उस का भी यही यज्ञ है अर्थात् जो कवच पहिने शस्त्रधारी सब युद्धकर्ता दीक्षित होकर सेनामुखको पाकर युद्धरूप यज्ञके अधिकार में वर्तमान होते हैं अम्बरीप ने

कहा कि यज्ञ में कौन हविष्य और क्या घृत है कौन दक्षिणा है कौन ऋत्विज् कहा है हे इन्द्र ! यह आप मुझ से कहिये इन्द्र बोले कि इस युद्धयज्ञ में हाथी ऋत्विज्, घोड़े अध्वर्यु, शत्रुवों का मांस हविष्य और रुधिर घृत कहा जाता है उसमें शृगाल, गिद्ध, काकोल पक्षी सदस्य हैं यही यज्ञ के शेषबचे घृत को और हविष्य को भोजन करते हैं और प्रास, तोमरों के समूह, खड्ग, शक्ति, फरसा जोकि प्रकाशित तीक्ष्ण विषों में बुझाये हुये होते हैं वह उस यज्ञ के स्रुच् नाम पात्र हैं वेगयुक्त लम्बे चौड़े तीक्ष्ण परकाया के भेदन करनेवाले सीधे पैने विष में बुझायेहुये जो बाण हैं वही बड़ास्रुवा है युद्ध में हाथी के चमड़े से मढ़ाहुआ हाथीदांत की मूठवाला हाथी की सूंड़ का काटनेवाला खड्ग उस यज्ञ का स्फिग् है प्रकाशवान् निशित लोहमयी तीक्ष्ण परासशक्ति दुधारा खड्ग और फरसों से मारना उस यज्ञ की द्रव्य हैं युद्ध में विनासमय फैलनेवाला कुलीनों की देह से उत्पन्न होनेवाला जो बहुत सा रुधिर शीघ्रता से पृथ्वी पर गिरता है वह वृद्धिकर्ता सब मनोरथों की पूर्ण करनेवाली पूर्णाहुति होती है सेनामुख में काटौ छेदौ यह जो शब्द सुनेजाते हैं उसको सामग ब्राह्मण यज्ञके साममन्त्रोंसे यमलोक में गाते हैं और शत्रुवोंका सेनामुख उस यज्ञ का हविर्धान अर्थात् साकल्य रखने का पात्र होता है और कवचधारी हाथी घोड़े आदि का जो समूह है वह यज्ञ में श्येनचित्तनाम अग्नि होती है और युद्ध में हज़ारों को मारकर जो कबन्ध उठता है वही खदिर का अष्टकोणवाला यज्ञस्तम्भ कहाजाता है और उस युद्ध में वचन से बुलाये हुये अंकुश से चलाये हुये हाथी वषट्काररूप तलनाद से पुकारजाते हैं और उस युद्ध में ब्राह्मण का धन चोरी जाने पर प्यारे देह को त्याग कर जाता है यह शब्द जो गाया जाता है वही त्रिसामा नाम दुन्दुभी है और देहरूप स्तम्भ को छोड़कर वह यज्ञ अत्यन्त दक्षिणावाला है जो शूर स्वामी के निमित्त सेनामुख पर पराक्रमकरे और भय से मुख न फेरे उसको लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे हैं नीले चर्म से मढ़ेहुये खड्ग परिघ नाम अस्त्रों के समान भुजाओं से जिसकी वेदी रचीगई है उसके भी लोक मेरेही सदृश हैं जिसको कि किसी सहायक की इच्छा नहीं और सेना के मध्य विजय में वर्तमान है उसके लोक ऐसे हैं जैसे मेरे जिस युद्धकर्ता की रुधिरसमूह रखनेवाली नदी भेरीस्वरूप मेढ़क और कछुवा रखनेवाली और वीरों के हाड़रूप कंकड़वाली अगम्या रुधिर मांसरूपी कीचड़ से भरी खड्ग ढालरूपी प्लव नाम नौकावाली भयानक मरे शिररूप शैवल, शाद्वल रखनेवाली और मरेहुये घोड़े, हाथी, रथरूप संग्रामवाली पताका और ध्वजा रूप वृक्ष बेत रखनेवाली और हाथियों की बहानेवाली रुधिररूप जल से पूर्ण तीर के मनुष्यों को अगम्य मृतक हाथीरूप नक्रवाली परलोक की ओर

बहनेवाली कल्याणरूप दुधारा खड्गरूप बड़ी नौका रखनेवाली गिद्ध, कंक समूहरूपी बल ध्वावाली मृतकभक्षियों से सेवित भयभीतों को मूर्च्छा देनेवाली भूमि में जो युद्ध जारी होता है वही उस यज्ञ का अवभृथस्नान है जिस की वेदी शत्रुवों के शिर की बनाई हुई होती है और घोड़े हाथियों के कन्धों से भी संयुक्त होती है उसके लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे, शत्रुवों का सेनामुख जिसका कि स्त्रियों से भरा हुआ महल है ज्ञानियों ने अपनी सेना को उसका हविर्धान अर्थात् साकल्यपात्र कहा और युद्धकर्ता सदस्यों की दक्षिणा है और उत्तर दिशा उसका आग्नीध्र है उस शत्रुरूप स्त्री रखनेवाली सेना में सब लोक वर्तमान हैं जब व्यूह में दोनों ओर से आकाश आगे होता है वही उसकी वेदी इस प्रकारके यज्ञों समेत है और तीनोंवेद तीनों अग्नि हैं जो भयभीत मुखमुड़ा युद्धकर्ता शत्रु के हाथ से मारा जाता है वह प्रतिष्ठा से खाली होकर निस्सन्देह नरक को जाता है जिसके रुधिर की आधिक्यता से वेदी डूबजाय और मरे शिर, मांस, हाड़ से पूर्ण होय वह परमगति को पाता है जो युद्धकर्ता सेनापति को मारकर उसकी सवारी पर सवार होता है वह विष्णु के समान चरण उठानेवाला समर्थ युद्धकर्ता बृहस्पतिजी के समान है जो युद्धकर्ता सेनापति या उसके पुत्र को अथवा जो उस सेना में पूजितहोय इनमें से किसीको जीता पकड़ लाता है उसके लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे, युद्ध में मरनेवाले शूर को किसी दशा में भी शोच नहीं वह मृतक शोच से रहित शूर होकर सब लोकों में प्रतिष्ठा को पाता है उस मृतक के अन्न, जल, स्नान, सूतक आदि करना नहीं चाहते हैं उसके लोकों को मुझ से सुनो शीघ्रता करनेवाली हजारों श्रेष्ठ अप्सरा उस युद्ध में मृतकहुये शूरवीर के सम्मुख दौड़ती हैं और कहती हैंकि यह हमारा स्वामीहोय यही तप का पुण्य और सनातनधर्महै और जो युद्धको रीतिके अनुसार करे उसके चारो आश्रमहैं वृद्ध, बालक, स्त्री और मुखमोड़नेवाला मारने के योग्य नही है जो मुख में तृण रखनेवाला हो और कहे कि मैं तेरा हूं उसको भी मारना नहीं योग्य है मैं जम्भ, वृत्र, बल, पाक, शतमायावी, विरोचन, दुःख से हटाने के योग्य नमुचि, बहुमायावी, शम्बर, विप्रचित्तिदैत्य आदि सब दानव और प्रह्लाद को युद्ध में मारने के पीछे देवताओं का स्वामी हुआ भीष्मजी बोले कि इन्द्र के इस वचन को सुनके राजा अम्बरीष ने युद्धकर्ताओं की और अपनी सिद्धियों को नेत्रों से देखा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिस

में राजा प्रतर्दन और मिथिलापुरी के राजा ने युद्ध किया हे युधिष्ठिर! जैसे युद्ध में यज्ञोपवीतधारी मैथिली राजा जनक ने युद्धकर्ताओं को विजय किया उसको समझो सब तत्त्वों के ज्ञाता मैथिली राजा जनक ने अपने योगबल से युद्धकर्ताओं को स्वर्ग और नरक दिखलाये कि युद्ध में निर्भय शूरों को प्रकाशवान् गन्धर्वों की कन्याओं से पूर्ण सब मनोरथों के पूर करनेवाले अविनाशी लोक हैं उनको देखो और युद्ध में मुख मोड़नेवाले मनुष्यों के यह लोक सम्मुख हैं और सदैव के लिये अपकीर्ति है इससे निस्सन्देह उद्योग करना योग्य है इनको देखकर तर्क से असंयुक्तबुद्धि होकर शत्रुवों को विजय करो और प्रतिष्ठारहित होकर नरक में मतपड़ो शूरों को स्वर्गद्वार में जाने के लिये देह के स्नेह का त्यागनाही मूलकारण है हे शत्रुहन्ता! उस राजा से इसप्रकार कहेहुये उन युद्धकर्ताओं ने राजा को प्रसन्न करके युद्ध में शत्रुवों को विजय किया इससे ज्ञानी पुरुष को सदैव युद्ध में आगे होना चाहिये हाथियों में रथों को और रथों में अश्वारूढ़ों को और अश्वारूढ़ों के मध्य में कवचधारी और शस्त्रधारी पदातियों को वर्तमान करना चाहिये जो राजा इसप्रकार व्यूह रचता है वह सदैव शत्रुवों को विजय करता है हे युधिष्ठिर! इससे ऐसा कर्म सदैव करना चाहिये अत्यन्त क्रोधयुक्त सब युद्धकर्ता युद्ध में शुभकर्म को चाहते हैं वह सेनाओं को क्षोभयुक्त करें जैसे कि सागर को मगर दोलायमान करता है और परस्पर में नियत करके व्याकुल युद्धकर्ताओं को प्रसन्न करें और विजय कीहुई पृथ्वी की रक्षाकरें परास्तहोनेवालों का पीछा नहीं करे हे राजन्! फिर लौटआनेवाले और जीवन से निराश होनेवाले युद्धकर्ताओं की चढ़ाई असह्य है इस कारण बहुत पीछा न करे शूरवीर भागे हुवों के ऊपर घात नहीं करते इससे उनका पीछा न करे चलनेवाले जीवों का भोजन स्थिरजीव हैं और दाढ़ रखनेवालों का भोजन बिन दाढ़ रखनेवाले हैं प्यासों का अन्न जल है और शूर का अन्न नपुंसक है समान पीठ वा पेट और हाथ पैर रखनेवाले भयभीत युद्ध करनेवाले पराजय को पाते हैं इस कारण भय से पीड्यमान युद्धकर्ता दण्डवत् करके फिर हाथ जोड़ के शूरों के सम्मुख वर्तमान होते हैं यह लोक सदैव पुत्र के समान शूरों की भुजाओं में रक्षा कियागया है इस हेतु से शूरवीर सब दशाओं में प्रतिष्ठाके योग्यहैं तीनोंलोकों में शूरतासे उत्तम कोई बात वर्तमान नहीं है शूर सबकी रक्षाकरताहै और सब शूरही में वर्तमान हैं॥ १८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनवनवतितमोऽध्यायः॥ ९९॥

सौवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! विजय की इच्छा करनेवाले राजा लोग धर्म

को कुछ पीड़ा देकर भी सेना की चढ़ाई करते हैं वह आप मुझ से कहिये भीष्म जी बोले कि क्षत्रियों का कर्म धर्मही से वर्तमान है इसीप्रकार दूसरे कहते हैं कि मरण के निश्चय से वर्तमान है और कोई कहते हैं कि अच्छेलोगों के आचार से वर्तमान है इसीप्रकार राजा के भय दिखलाने से भी वर्तमान है अर्थ, धर्म में शुद्ध अर्थवाले उपाय धर्मों को कहूंगा क्योंकि चोरजातिवाले वे मर्याद और नष्ट करनेवाले होते हैं उन चोरों का नाश और सब कर्मों के सुधारने के लिये वेद में कहीहुई युक्ति को कहूंगा उन युक्तियों को मुझ से सुनो हे भरतवंशिन् ! दोनों बुद्धि सीधी और टेढ़ी जानने के योग्य हैं ज्ञाता होकर कुटिलों का संग न करे और आनेवालों को जानले शत्रु भेद के द्वारा राजा के पास घूमते हैं राजा उस छल को जानकर शत्रुओं के समान उनको पीड़ा देता है हे कुन्तीनन्दन ! हाथी, बैल और अजगरों के चमड़े और सिल्लीबाण तोमर आदि कण्टकनाम वस्तु और सब धातु और कवच और चमड़ा और श्वेत, पीतरंगके वस्त्र और पीतरक्त वर्म और पताका ध्वजा नानाप्रकार के रंगों से रँगी हुई दुधारा खड्ग, तेजधार फरसा, ढाल यहसब सामान बहुत प्रकार के विचार करने चाहिये युद्ध के योग्य शस्त्र और युद्ध के निश्चय करनेवाले युद्धकर्ता विचार कियेजायँ चैत्र वा मार्गशिर के महीने में सेना की चढ़ाई उत्तम गिनीजाती है तब पृथ्वी पकी खेतीवाली और जल से पूर्ण होती है उस समय नतो अधिक सर्दी और न गर्मी होती है इसकारण उस समय में अथवा शत्रुवों के व्यसन में सेना की चढ़ाई करे शत्रु के पीड़ा देने में यह सेनायोग उत्तम है जल तृण से संयुक्त सीधाचलने के योग्य वह मार्ग प्रशंसा कियाजाता है जिसके इधर उधर के स्थान बुद्धिमान् और वनवासी दूतों के द्वारा अच्छे प्रकार से मालूम होगये हों वन में जाने का ऐसे विचार न करे जैसे कि हिंसक जीवों के भय से मृगगण नहीं जाते इसहेतु विजय की इच्छाकरने-वाले राजालोग उन वनवासियों को सेना में भरती करते हैं कुलीन समर्थ पदाती सेना को भी आगे करे सेना का निवासस्थान जलसंयुक्त अगम्य एकही मार्गवाला श्रेष्ठ कहाजाता है इससे सम्मुख आनेवाले शत्रुकी रोक होती है आकाश अर्थात् मैदान से वन में निवास करना अधिक लाभकारी है जहां युद्ध में कुशल बहुत से गुणीपुरुष होयँ वहां समीपही सेना का निवास-स्थान होना चाहिये वन के निवासस्थान के सम्मुख से सेना का उतरना पदा-तियों को गुप्त नियत करना फिर समीप आनेवाले शत्रु के ऊपर आघात करना योग्य है जोकि आपत्ति के लिये रक्षा का स्थान हो सप्तर्षियों की ओर पीठ करके पर्वतों के समान निश्चल होकर युद्धकरें इस रीति से शत्रुओं को विजय करें चाहे वे शत्रु कठिनता से भी विजय के योग्य हों जिस ओर की हवा हो

और सूर्य इन्द्र जिस दिशा में हों उधरही विजय है हे युधिष्ठिर! युद्ध में इन तीनों में से एक से एक उत्तम है जो युद्ध में कुशल मनुष्य हैं वह कीच, जल, ढेले, पुलआदि से रहित सम पृथ्वी को घोड़ों के युद्ध में अच्छा कहते हैं कीच और गर्त से रहित पृथ्वी रथों के लिये भी उत्तम कही जाती है छोटे वृक्ष और जल सहित पृथ्वी हाथी की सवारी के युद्ध में श्रेष्ठ समझी जाती है बहुत से गढ़ और घने जंगलवाली वांस और बेतों से पूर्ण पहाड़वाली सजल पृथ्वी पदातियों के योग्य होती है हे भरतवंशिन्! बहुत पदाती रखनेवाली सेना दृढ़ होती है और बहुत रथ घोड़े रखनेवाली सेना वर्षाके विना सूखे दिनों में उत्तम समझी जाती है बहुत पदाती और हाथी रखनेवाली सेना वर्षाऋतु में प्रशंसा के योग्य होती है इन गुणों को अच्छे प्रकार विचारकर देश काल को संयुक्त कर न क्षत्रिय आशीर्वाद पानेवाला राजा अच्छे प्रकार विचारकर चलता है वह उत्तम चढ़ाई करके सदैव विजय को पाता है सोतेहुये पिपासायुक्त शान्तचित्त और युद्ध से पृथक् होनेवालों को नहीं मारे अशस्त्री, रोते हुये, भागे हुये, भोजन करनेवाले, युद्धकर्ताओं कोभी न मारे इसीप्रकार व्याकुल, अचेत घायल, टूटेअंग, शान्तता से पृथक्हुये कर्म का प्रारम्भ करनेवाले, गुप्तसुरंग या अन्य युक्तियों से तपेहुये और घासआदि के लिये घूमनेवाले डेरों के रक्षक और पहरादेनेवाले सदैव से घरपै रहनेवाले जोकि द्वारोंपर वर्तमान हों अथवा मन्त्री के द्वारपर जो कोई समूह के स्वामी हैं इन सबको भी कभी न मारे जो युद्धकर्ता शत्रु की सेना को परास्त करते हैं और अपनी सेना को नियतकरते हैं वह समान भोजनपानवाले दूनेमासिक करने के योग्य हैं दश २ योद्धाओं में एक २ स्वामी नियत करना योग्य है इसीप्रकार सौ २ युद्धकर्ताओं के ऊपर अधिपति नियत करना चाहिये तदनन्तर आलस्य को दूरकरके शूरपुरुष को हजारयोद्धाओं का नियन्ता बनावे सब बड़े २ अधिकारियों को इकट्ठा होकर यह कहना योग्य है कि हमलोग प्रतिज्ञापूर्वक शपथखाते हैं कि हम विजय के लिये परस्पर में पृथक् होकर युद्ध को त्याग नहीं करेंगे और जे कोई भयभीत हैं वह यहीं से लौटें जो लोग अपने नियत कियेहुये अधिपति को युद्ध में मारडालें ऐसे लोग युद्ध में भागे हुये अपने मनुष्यों को नहीं मारें क्योंकि युद्ध में अपनी रक्षा को करता अपनेही पक्ष को मारता है भागजाने में धनका नाश और अपने मरण के साथ अपकीर्ति और अयश है पुरुष के भागने में चित्त के विरोधी दुःखदायी वचन सुनने में आते हैं हमारे शत्रुवों में जो विपरीत दशावाला ओठ, दन्त रखनेवाला सबशस्त्रों को त्यागेहुये शत्रुवों से घिराहुआ है उसको सदैव धनकी हानि और मरणआदि प्राप्त हो जो युद्ध में मुखफेरते हैं वह नीच मनुष्य हैं वह केवल भीड़ बढ़ाने ही मात्र को हैं अर्थात् उनका जन्म निरर्थक है वह इस लोक, परलोक

दोनोंलोकों से गये हैं प्रसन्नचित्त शत्रु भागनेवाले के सम्मुख दौड़ते हैं हे तात! विजयी मनुष्य नमस्कार और प्रशंसाओं से प्रसन्नचित्त भागनेवाले शत्रु का पीछा करते हैं युद्ध में वर्तमान शत्रु जिसकी नेकनामी का विध्वंस करते हैं उस दुःख को मारनेसेभी अधिक असह्य जानताहूं विजय को सब धर्म और सुख का मूल जानो भयभीतों की मृत्युघात है उसके सम्मुख शूरपुरुषही जाता है युद्ध में जीवन से निराश स्वर्ग को चाहनेवाले विजय करते या मरते सिद्ध गति को पाते हैं इसप्रकार से शपथ खानेवाले और जीवन से निराश निर्भय वीरपुरुष शत्रु की सेना को मँझाते हैं ढाल, तलवार रखनेवाले पुरुषों की सेना आगेहोय और पीठ की ओर शकटों की भीड़ और स्त्रियांमध्य में होयँ उस पुर में भी जो वृद्ध मनुष्य आगेबढ़ेहुये हों वह शत्रुवों के मारने के निमित्त पदातियों की रक्षाकरें जो प्रथमही पराक्रमी और साहसी समझे गये हैं वह आगे को वर्तमान होयँ अन्य मनुष्य उनके पीछेहोयँ और युक्ति भयभीतों को भी प्रसन्न करना चाहिये चाहे वह केवल भीड़बढ़ानेही के लिये सम्मुख वर्तमान हों थोड़े युद्धकर्ताओं को इकट्ठा करके लड़वावे और बहुत से युद्धकर्ताओं को इच्छानुसार फहलावे थोड़े योद्धाओं की सेना बहुत से युद्धकर्ताओं के साथ सूचीमुख होय बे मर्याद चढ़ाई या दौड़ होनेपर बीच अर्थात् मिलाप हो या मिथ्या हो तो दोनों भुजाओं को पकड़कर पुकारे कि शत्रु ने पराजय पाई पराजय पाई मेरेमित्रों की सेनाआई निर्भय होकर आघात करो भयानक शब्दों को करते हुये पराक्रमी शत्रुवों को पीड़ादें और आगे चलनेवाले मनुष्य सिंहनाद और कलकला, ककच, गोविषाण, भेरी, मृदंग, पणव, आनक इत्यादि बाजों का शब्द करें ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसेनानीतिनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकसौएकका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह! कैसा स्वभाव, आचरणरूप कवच, शस्त्र रखनेवाले मनुष्य युद्ध के योग्य हैं भीष्मजी बोले कि यहां कुल, देश, आचार आदि से प्राप्त होनेवाले शस्त्र और सवारी कही जाती हैं उसीप्रकार वीरपुरुष आचरणकर्ता कर्मों में प्रवृत्त होता है गन्धारी, सिन्धी, सौवीरदेशी नखरप्रास से युद्ध करनेवाले निर्भय और महापराक्रमी होते हैं उन वीरों की सेना सब के पारहोनेवाली है उन्हीं नरजातियों के क्षत्रिय सब शस्त्रों में कुशल और पराक्रमी होते हैं और पूर्वदेशीय हाथियों के युद्ध में प्रवीण माया से लड़नेवाले हैं इसीप्रकार यवन, काम्बोज और मथुरादेशवासी हैं यह भुजाओं के युद्ध में महाप्रबल हैं और दक्षिणात्य लोग तलवार चलाने में प्रवीण हैं सब स्थानों में बहुधा शूर पराक्रमी प्रसिद्ध उत्पन्न होते हैं उनके लक्षण मुझ से सुनो

कि जिनके वचन सिंह, शार्दूल समान इसीप्रकार चाल भी इन्हीं के तुल्य कबू‐
तर, सर्प के समान नेत्र रखनेवाले सब शूर और शत्रुवों के मथनेवाले होतेहैं मृग
के समान स्वर, हाथी के समान उत्तम नेत्रधारी, निरहंकारी, प्रमादी, मुखपर क्रोध
रखनेवाले, अल्पबुद्धि, किंकिणी और मेघ के समान स्वर कोई २ ऊंटके समान
टेढ़ीनोक नाक और जिह्वा रखनेवाले दूरतक पीछा करनेवाले विडाल के समान
कुबड़ी देह रखनेवाले मृतकों को खानेवाले सूक्ष्म केश और त्वचा रखनेवाले
शीघ्रगामी चपलतायुक्त होते हैं वह कठिनता से जीते जाते हैं कितनेही गो
के समान नीची आंखवाले और मृदुप्रकृति घोड़े के समानगति और शब्दवाले
हैं वह विजयी होते हैं जो अतिदृढ़देह उन्नतस्कन्ध चौड़ीछाती स्थिरस्वभाव
होते हैं वह मनुष्य बाजों के बजने से क्रोधयुक्त होते हैं और प्रसन्नचित्त होकर
युद्धकरते हैं गम्भीर और निकले हुये पीतवर्ण नकुल के समान नेत्र भृकुटीसं‐
युक्त मुख देह की प्रीतिरहित शूर ऊंचाललाट मांसरहित ठोढ़ी रखनेवाले भुजा
पर वज्र और उंगलियोंपर चक्र रखनेवाले दुर्बल हाड़ों की मालारूप पुरुष युद्ध
के होने में तीव्रता से सेना में प्रवेश करते हैं वह हाथी के समान मतवाले कठि‐
नता से विजय कियेजाते हैं और पिंगलवर्ण देदीप्त केशान्त मोटेगाल ठोढ़ी
मुख ऊंचेकन्धे मोटीगर्दन विकटरूप स्थूलदेह ऊंचेसुन्दर सुग्रीवनाम घोड़े और
गरुड़ की समान उछलनेवाले देह शिर टेढ़ा वृषभ के समान मुख और दांत
उग्रस्वर क्रोधयुक्त युद्ध में शब्दकर्ता अधर्मी घोर भयंकररूप होते हैं यहभी देह
की प्रीतिरहित सेना के आगे करने के योग्य हैं वह अपनी इच्छा से विरुद्ध
जब देखते हैं तब शत्रुवों को मारते हैं वह अधर्मी दुराचारी हैं इनको जीतना
मीठेवचनों से होताहै यह राजा के ऊपर भी इसीप्रकार क्रोध करते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

एकसौदोका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम ! विजयी सेना की कौन सी सू‐
रत उत्तम होती है भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! विजयी सेना की जो उत्तम
सूरत है वह मैं कहताहूं कि प्रथम दैव के क्रोधहोने और समय की लौटपौटसे
उसके जाननेवाले पुरुष ज्ञानरूप दिव्य नेत्रोंसे उसको देखते हैं उसके ज्ञाता
पुरोहित आदि पुरुष इसस्थानपर प्रायश्चित्त वृद्धि को और जप, होम मंगलोंको
करते हैं और शत्रुवों को मारते हैं हे युधिष्ठिर ! जिस सेना में युद्धकर्ता और
सवारियां बहुत साहसी होती हैं निश्चय करके उस सेना को विजय प्राप्तहोती
है जिसके पीछे की ओर वायु बहती है इसीप्रकार इन्द्रधनुष सूर्य की किरणें
और बादल पीछे की ओर होते हैं और गीदड़, काग, गिद्ध सब अनुकूल

होकर सेना का पूजन करतेहैं तब उत्तमसिद्धि होती है और जिससमय ऊपरकी ओर प्रकाशवती ज्वाला रखनेवाली प्रदक्षिणावर्त शिखा रखनेवाली निर्धूम अग्नि जिसमें आहुतियों की पवित्र सुगन्धि होती है वह होनहार विजय का लक्षण है और जहां गम्भीर शब्द और बड़े शब्दवाले शंख भेरी आदि बाजे बजते हैं और युद्धाकांक्षी लोग अनुकूल होते हैं यह भी होनेवाली विजय का रूप है यात्रा की इच्छासंयुक्त युद्धाभिलाषी लोगों के चलने के समय उनके पीछे और बायें मंगली पशु होते हैं और वह दाहिनी ओर आते दृष्टिपड़े तो अवश्य युद्धकर्ताओं की सिद्धिहोती है और जो आगेआते दृष्टिपड़े तो युद्ध से निषेध करना सूचन करते हैं और जब हंस, क्रौञ्च, शतपत्र, चाव नाम पक्षी मांगलिक शब्दों को करते हैं और युद्धकर्तालोग प्रसन्न और बलवान् होते हैं तब होनेवाली विजय का लक्षण जानो और जिनकी सेना के योद्धाओं के प्रकाशवान् अस्त्र, शस्त्र, यन्त्र, कवच, ध्वजा और मुख ऐसे प्रकाशित और प्रफुल्लितहों जिनको कठिनता से कोई देखसके वह भी अवश्य शत्रुत्रों को विजय करते हैं और जिनके युद्धकर्ता वृद्धों की सेवाकरनेवाले निरहंकारी परस्परमें मित्र भीतर बाहरसे एकसा भाव रखनेवाले हैं यह भी विजय होने का लक्षण है और जहां चित्तरोचक शब्द, स्पर्श, गन्ध घूमते हैं और युद्धकर्ताओं में धैर्यता वर्तमान होती है वह विजय का मुख है प्रवेशकरनेवाले युद्धकर्ता के बायें ओर का काग शुभदायी होता है और प्रवेश करनेकी इच्छाकरनेवाले को दक्षिणकाग फलदायी है और पीछे से मनोरथको सिद्ध करता है और आगे होने से निषेध करता है हे युधिष्ठिर! चतुरंगिणी सेना को पारितोषिक आदि से प्रसन्न करके प्रथम तो सामनाम नीति सेही कामकरो फिर युद्ध का उद्योग करो यह साधारण विजय है जिसका कि नाम युद्ध है और युद्ध में जो व्यूह की इच्छा से विजय है उसके सिद्धान्त को ईश्वर जानता है पराजय होनेवाली बड़ी सेना कठिनता से रोकने योग्य है जैसे कि जल का महावेग और भयभीत मृग रोकने योग्य नहीं होता बाजे पराक्रमी रुरुनाम मृगसमूह के समान बड़ीसेना परास्त हुई सुनकर बुद्धिमान् युद्धकर्ता भी पृथक् होजाते हैं एकएक को जाननेवाले अतिप्रसन्नचित्त प्राण के त्यागी युद्ध में श्रेष्ठ निश्चय करनेवाले पचास शूर भी शत्रु की सेना को मारते हैं इस पृथ्वीपर निश्चययुक्त पूजित कुलीन मिलेहुये अठारह युद्धकर्ताभी अच्छे प्रकार शत्रु को विजय करते हैं समर्थ होनेपर किसी दशा में भी युद्ध को स्वीकार न करना चाहिये जो पुरुष साम, दान, भेद, नीति को करते हैं उनका युद्ध उत्तम कहाजाता है सेना के देखने सेही भयभीतों को महादुःख होता है समीप आनेवाले युद्ध को जानकर जो सम्मुखता को जाते हैं उन युद्धकर्ताओं के विजय के अंग फड़कते हैं उससमय स्थावर, जंगम जीविसमते

देश भर पीड्यमान होता है और अस्त्रों की उष्णता से मनुष्यों के देह की मज्जा पीड़ापाती है वारंवार उन शत्रुवों के पास युद्धसंयुक्त साम का पैग़ाम पहुँचाना चाहिये शत्रुवों से अत्यन्त पीड्यमान होकर वह लोग सब ओर से सन्धि को चाहते हैं और शत्रुवों के जो मित्र हैं उनके भेद के लिये दूतलोगों को भेजे और जो राजा अपने से बड़ा है उसके साथ सन्धिही करना योग्य कहा जाता है उसकी इसप्रकार की पीड़ा दूसरी रीति से करनी असम्भव है जैसे कि शत्रु को सब ओर से पीड़ा दीजाती है निश्चय है कि साधुपुरुषों को क्षमा और धैर्यता प्राप्तहोती है और असाधुपुरुषों को कभी नहीं होती इससे हे राजन्! तुम धैर्य और अधैर्यता के प्रयोजन को समझो कि विजय करके धैर्यता करनेवाले राजा का यश बड़ीवृद्धि को पाता है और महाअपराध में भी शत्रुलोग विश्वास करते हैं शम्बरनाम असुर शत्रु को पीड़ादेकर क्षमा को अच्छा जानता था क्योंकि जो लकड़ी नहीं तपाई गई है वह फिर सुखदशा को प्राप्त होती है आचार्य लोग इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं और यह साधुपुरुषों का उपदेश भी नहीं है बल्कि बिना क्रोध और नाश के शत्रु अपने पुत्र के समान शिक्षा के योग्य हैं हे युधिष्ठिर! उग्ररूप राजा सबका शत्रु होता है और मृदुस्वभाव को भी अपमान करते हैं इस कारण दोनों को काम में लावे और घात की इच्छा करनेवाला घात करता हुआ भी चित्तरोचक वचन कहे और घात करके शोचता और रोता हुआ कृपा करके कहे कि यह मेरा अभीष्ट नहीं है जो तुम युद्ध में मेरे मनुष्यों से मारे गये और वारंवार समझाये हुये यह मेरे लोग मेरे कहने को नहीं करते हैं बड़े कष्ट की बात है क्योंकि जीवन की इच्छा करनेवाला ऐसा योद्धा मारने के अयोग्य है युद्ध में मुख न मोड़नेवाले श्रेष्ठ पुरुष बहुत कम होते हैं और जिसके हाथ से यह युद्ध में मारागया है उसने मेरी इच्छा के विरुद्ध किया इन वचनों को कहकर मारनेवालों को एकान्त में पूजन करे मारनेवाले और मृतक पुरुषों का अपराधी जो अप्रिय करे उस दशा में मनुष्यों को स्वाधीन करना चाहता हुआ भुजा को पकड़कर रोदन करे इसप्रकार सब दशाओं में मीठेवचन बोले धर्मज्ञ और निर्भय राजा मनुष्यों का प्यारा होता है उसी में सब जीव विश्वास को करते हैं वह विश्वासी और राजसिंहासन पर वर्तमान राजा नियत समय तक पृथ्वी के भोगने को समर्थ होता है इससे पृथ्वी के भोगने की इच्छा करनेवाला राजा छलरहित होकर सब जीवों को अपना विश्वास दिलावे और सब ओर से अच्छी रक्षा करे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौतीनका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! पृथ्वी का राजा प्रारम्भ में मृदु कठिन और महापक्षवाले राजा के साथ कैसे बर्ताव करे उसको मुझ से कहो भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में बृहस्पति जी और इन्द्र का प्रश्नोत्तर है शत्रु के वीरों को मारनेवाले देवताओं के इन्द्र ने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! सावधान राजा शत्रुवों के साथ किस प्रकार से बर्ताव करे मैं उनको बिना पीड़ा दिये कैसे स्वाधीन करूं दोनों सेनाओं के परस्पर युद्ध होने से साधारण विजय होती है प्रतापवती प्रकाशरूपा लक्ष्मी मुझको किस कर्म के करने से त्याग नहीं करे यह सुनकर धर्म, अर्थ, काम के जाननेवाले बृहस्पति जी ने उत्तर दिया कि शत्रु को भी युद्ध से स्वाधीन न करना चाहिये यह वह अज्ञानी लोग करते हैं जो क्रोधी और अधैर्यवान् हैं मारनेवाले राजा को शत्रु को सावधान करना अयोग्य है क्रोध के भय प्रसन्नता को आत्मा के बीच में अन्तर्गत करके विश्वासरहित विश्वासी के समान शत्रु का सेवन करे सदैव प्यारे वचन कहे और कोई अप्रिय बात न करे निरर्थक शत्रुता से अलग रहे और अप्रिय वचनों को ऐसे त्याग करे जैसे कि बहेलिया पक्षियों की सी बोली बोलकर पक्षियों को आधीन करता है हे इन्द्र! इसीप्रकार कर्मकर्ता राजा शत्रुवों को आधीन करके मारे क्योंकि शत्रुवों को परास्त करके सुख से कोई नहीं सोता है दुष्टात्मा शत्रु ऐसे जागता रहता है जैसे उठी हुई संकर नाम अग्नि थोड़ी विजय के लिये युद्ध न करना चाहिये विश्वास देकर मनोरथ सिद्ध करनेवाला राजा शत्रु को आधीन करके और मन्त्र जाननेवाले महात्मा मन्त्रियों से सलाह करके अपमानयुक्त हृदय से अजय फिर समय पाकर राज्य के चलायमान होनेपर इस पर घातकरे और काम पूरे करनेवाले मनुष्यों के द्वारा सेना को रक्षक बनावे आदि अन्त मध्य का जाननेवाला शत्रुता को गुप्तरक्खे और सेना की संख्या का जाननेवाला उसकी सेनाओं को विरुद्ध करे इसी प्रकार भेद दान और विष आदि औषधों से प्रयोजन को सिद्धकरे और शत्रुवों से सन्धिकरना न चाहे और बहुत काल तक मौके मौके को देखे फिर शत्रुवों को मारे और काल की इच्छा करनेवाला समय व्यतीत करे जिससे कि शत्रु विश्वासयुक्त हों शत्रुवों को शीघ्र न मारे विजय में सुहृद देखने के योग्य है वह चित्तके कांटे को नहीं उखाड़ता है और वचनों से घाव नहीं उत्पन्न करता वह समय पर वर्तमान होने से घात करता है हे देवेन्द्र! मारने की इच्छा करनेवाले पुरुष को शत्रुवों के विषय में फिर समय नहीं मिलता है जो समय

के इच्छावान् पुरुष को समयही उल्लंघन करे फिर वह समय उस कर्म करने के इच्छावान् पुरुष को कठिनता से मिलता है साधुवों के किये हुये कर्म को अंगीकार करता पराक्रम को प्राप्त करे और वे समय मित्र को प्राप्त करे और प्राप्त होने पर पीड़ा न दे कर्मकर्ता राजा काम, क्रोध और अहंकार को त्याग करे वारंवार शत्रुवों के दोषों की इच्छा करे और हे इन्द्र! दण्ड में मृदुता, सुस्ती, भूल और अच्छेप्रकार से नियत कीहुई माया मूर्ख अज्ञानी को पीड़ा देती है इन चारों को दूर करके छल से रहित विचार न करता शत्रुवों के ऊपर घात करने को समर्थ होता है जो एक मन्त्री गुप्त करने के योग्य हो उसी से मन्त्र कहना योग्य है मन्त्रीलोग गुप्त बात को चित्त में रखते हैं और परस्पर में सुनाते भी हैं पहिला मन्त्री राज्य के गुप्तविचार में असमर्थ है यह विचारकर फिर दूसरे मन्त्रियों के साथ सलाह करे जो शत्रु दूर हैं उनपर पुरोहित के द्वारा ब्रह्मदण्ड का प्रयोग करावे और जो सम्मुख आवे उसपर चतुरंगिणी सेना चढ़ावे राजा जब तब समयपर उस उस शत्रु के ऊपर सामआदि युक्तियों को वर्ते प्रथम भेद को फिर इसीप्रकार शान्तता को भी संयुक्त करे समय पर बलवान् शत्रु का आज्ञावर्ती होजाय सावधान कर्म में प्रवृत्त आपही उस असावधान के घात को करे प्रणाम, दान, मान समेत मीठेवचनों से वार्तालाप करता हुआ शत्रु का सेवन करे और उसको कभी शंकायुक्त न करे राजा शंकावान् शत्रुवों के स्थानों को सदैव त्याग करे अर्थात् उनपर विश्वास न करे वह अप्रतिष्ठित शत्रु इस संसार में सावधान रहते हैं हे देवताओं में श्रेष्ठ! इससे अधिक उत्तम कोई कठिन कर्म नहीं है जैसे कि व्याकुलचित्त पुरुषों का ऐश्वर्य होता है इसी प्रकार नाना प्रकार के स्वभाव रखनेवालों का भी ऐश्वर्य कहाजाता है इस से युक्ति में प्रवृत्त होकर उद्योग करता है परन्तु वह मित्र और शत्रु को विचार ले मनुष्य मृदुचित्त राजा का भी अपमान करते हैं और कठोरप्रकृतिवाले से व्याकुल और भयभीत होते हैं तुम कठोरप्रकृति मत हो और अत्यन्तमृदु भी न हो अर्थात् कठोर मृदु दोनों समय २ पर होना योग्य है जैसे सब प्रकार से पूर्ण अमोघ जल के किनारे पर नगर को छिद्र के द्वारा सदैव पीड़ा है उसी प्रकार असावधान राजा को भी पीड़ा होती है हे इन्द्र! एक साथ बहुत से शत्रुवों के सम्मुख युद्ध न करे साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा उनमें से हरएक को आधीन करके शेष बचे हुये शत्रुवों के साथ उत्तमयुक्ति करे और जो वह बुद्धिमान् राजा समर्थ नहीं होता है उस दशा में सब युक्तियों को प्रकट करे जब कि बड़ी सेना, घोड़े, हाथी, रथ, पैदलों से व्याप्त बहुत से यन्त्रों की रखनेवाली प्रीतियुक्त छह अंग रखनेवाली होय और जब शत्रु से अधिक अपनी बहुत प्रकार की वृद्धि माने तब प्रकट होकर बेविचारे चोरोंपर घात करे क्योंकि पराक्रमी शत्रुवों

के ऊपर सदैव सामकरना प्रशंसा के योग्य नहीं है न मृदुता न सेना की चढ़ाई न खेती का नाश न विष से जल आदि को दूषित करना और फिर स्वभाव से विचारना भी नहीं अर्थात् कपटरूप दण्डही उत्तम है नाना प्रकार की माया और उस माया से परस्पर में दूसरे शत्रुवों की चढ़ाई कराना और छल को करे और सेना की चढ़ाई से अपनी बदनामी न करे कार्यकर्ता मनुष्यों के द्वारा कार्य में प्रसक्तचित्त पुरुषों को पुर और देशों में भ्रमण करावे उन पुरों में बुद्धि के अनुसार नियत कीहुई नीति को संयुक्त करते हुये राजा लोग उन में जाकर वहां के सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को विजय करते हैं हे इन्द्र! राजा लोग अपने मन्त्रियों को गुप्त धन देकर और प्रत्यक्ष भोगों को छीनकर और यह बात प्रसिद्ध करके कि मेरे दुष्ट मन्त्री मुझ को छोड़कर अपने दोषों से दूसरे राजाओं में संयुक्त हुये फिर उनको पुर और देशों में नियत करते हैं उसीप्रकार दूसरे शास्त्रज्ञ गुणी सुन्दर शिक्षित भाषा और प्रवन्ध रचना में प्रवीण पण्डितों के द्वारा शास्त्र की रीतियों के अनुसार मारनेवाले देवता को पुरों में स्थापन करे इन्द्र बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम! दुष्ट के कौन २ चिह्न होते हैं और कैसे दुष्ट को जाने यह आप मुझ से वर्णन कीजिये बृहस्पतिजी बोले कि जो मनुष्य पीछे दोषों को कहता है और अच्छे गुणों में दोष लगाता है और दूसरे की प्रशंसा में मौनहोकर मुख फेरता है मौन होनेपर भी उसको दुष्ट जाननाचाहिये जो उस मौनहोने में कोई कारण भी नहीं होता है वारंवार श्वास लेना, ओठों का काटना, शिर का हिलाना और वारंवार मिलाप को करता है और शत्रु के समान बातें करता है और स्वीकार कियेहुये कर्म को पीछे नहीं करता है और देखीहुई बात को नाहीं करता है और अलग होकर कहता है तब जानना चाहिये कि अब यह अनुकूल नहीं है अधिकतर आसन शयन और सवारी में उस के भाव देखने के योग्य हैं मित्र के पीड्यमान होने में पीड़ित होना और प्रीति करना यही मित्र का लक्षण है उस के विपरीत शत्रु जानने के योग्य है क्योंकि वह शत्रु के चिह्न हैं हे देवेन्द्र! इन कहेहुये दुष्टपुरुषों का स्वभाव बड़ाबलवान् है इसे तुम जानो यह दुष्टों का विज्ञान तुम से कहा इससे तुम शास्त्र के तत्त्वार्थ को समझकर बुद्धि के अनुसार कर्म करो भीष्मजी बोले कि शत्रु के नाश करने में प्रीतिचित्त उस इन्द्र ने बृहस्पतिजी के इस सत्यवचन को वैसेही किया और समय पर विजय के निमित्त जाकर शत्रुवों को परास्त किया॥ ५३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्र्युत्तरशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

एकसौचारका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि मन्त्रियों के हाथ से पीड्यमान खज़ाने और सेना से रहित

धार्मिक राजा अर्थों को न पाकर सुख को चाहता कैसे कर्मकरे भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर राजा क्षेमदर्शी का इतिहास तुझ से कहताहूं उस को समझो प्राचीन समय में सेना से रहित राजकुमार राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनि के पास गया और कष्टरूप होकर राजा ने उस से पूछा हे ब्रह्मदेव ! अर्थ में भाग पाने योग्य वारंवार उद्योग करनेवाला मुझसा पुरुष राज्य को न पाकर क्या करने के योग्य है चोरी, दूसरे की शरण, नीच आचार और मरण के सिवाय क्याकरे इस को आप मुझ से कहिये तुम से धर्मज्ञ और सर्वज्ञ पुरुषों की शरण में जाकर मनुष्य प्रीति और शोकको त्याग ज्ञानरूप धन को पाकर इच्छा से वैराग्य को पाता है और वैराग्यवान् होकर सुखपूर्वक वृद्धि को पाता है जिनका सुख धन आदि के आधीन है मैं उनको शोचता हूं स्वप्न के समान मेरे बहुतसे अर्थ नष्ट होगये जो बड़े अर्थों को त्याग करते हैं वह बड़े कर्मकर्ता हैं हमसरीखे भी असत्पुरुष उन के करने को समर्थ नहीं होते सो हे ब्राह्मण ! मुझ सरीखे दुःखी पीड्यमान लक्ष्मीरहित पुरुष को जो यहां दूसरा सुख है उसको वर्णन करो इस बात को सुनकर कालकवृक्षीय मुनि ने राजा क्षेमदर्शी को उत्तर दिया कि तुम विज्ञानी को प्रथमही यह बुद्धि करनीचाहिये कि यह और मैं और जो कुछ मेरा है वह सब नाशवान् है तुम जो मानतेहो कि यह कुछ है सो कुछ भी नहीं है इसको जानो कष्टरूप आपत्ति को प्राप्तहोकर ज्ञानीपुरुष इसप्रकार पीड्यमान नहीं होता है जो भूत है वह सब भविष्यत्काल में नहीं है इसप्रकार जानने के योग्य बातों को जाननेवाले तुम अधर्मों से बचोगे प्राचीन राजाओं के समूहमें जो कुछ सम्पत्तिथी और जो पहिलेही पहिले राजा के पासहुई वह सब तेरी नहीं है उसको जानकर कौन दुःखीहोगा यह होकर नहीं होता न होकर होगा शोक में धन के लानेकी सामर्थ्य नहीं है इससे कभी शोक न करो हे राजन् ! अब तेरा पिता और पितामह कहां है अब तुम उनको नहीं देखते न वह तुमको देखते हैं तुम अपनी नष्टता को देखके उनको क्या शोचते हो बुद्धिसे जानलो कि अवश्यमरेंगे और मैं तुम और तुम्हारे मित्र और शत्रु सब अवश्यमरेंगे और सब का नाशहोगा जो बीस या तीस वर्ष की अवस्था के हैं वह सौ वर्ष से पहिलेही मरजायँगे जो पुरुष बहुत से धन से भी पृथक् न होसके ऐसी दशा में मेरा वह धन नहीं है इसप्रकार उस को मानकर अपने अभीष्ट को करे और जो प्राप्त नहीं हुआ है उसको भी जाने कि यह मेरा नहीं है और जो हाथ से जातारहा हो उसको भी अपना न जानो और जो प्रारब्ध को बलवान् मानते हैं उनको पण्डित समझो वही सत्पुरुषों के आश्रयस्थान हैं वह अन्नरहित भी जीते हैं और जो राज्य पर शासन करता है वह भी जीता है बुद्धि और उद्योगसंयुक्त मनुष्य तेरे समान और तुझ से अधिक भी हैं वह तेरे समान शोच नहीं करते हैं इसहेतु भी शोचको त्यागो

क्या तुम बुद्धि और उद्योगों के द्वारा इन मनुष्योंसे उत्तम अथवा समानहो राजा बोले हे ब्राह्मण! वह सब राज्य विना उद्योग के प्राप्तहुआ महाकाल से हरण कियाजाता है यह मैं शोचता हूं हे तपोधन! जीविका का हेतु प्राप्त होने से मैं जीवन करता हुआ मानो नदी से हरेहुये उस राज्य के इस शोकरूपी फल को देखता हूं मुनि बोले कि हे क्षेमदर्शिन्! तुम उसीप्रकार के होजावो जो भूत और भविष्यत् के यथार्थ को विना शोचे प्राप्तहोनेवाले अर्थोंको चाहते हैं और अप्राप्त अर्थों को कभी नहीं चाहते हैं और प्रत्यक्ष को अनुभव करते तुम अप्राप्त अर्थों को मतशोचो हे कौशल, राजन्! जिसप्रकार प्राप्तहोनेवाले योग्य अर्थों से लोग प्रसन्न होते हैं उसीप्रकार तुम भी आनन्दित होते हो क्या लक्ष्मी से रहित तुम अपने शुद्धस्वभाव से शोच नहींकरते हो पूर्व कर्मों से अभागी, दुर्बुद्धि सदैव ईश्वर की निन्दा करता है और मनोरथ पूर्ण करनेवाले पुरुषों से ईर्षा करता है और दूसरे धनवान् मनुष्यों को भी नीच और नालायक मानता है इसीहेतु से यह फिर दुःख में प्रवृत्त होता है हे क्षेमदर्शिन्! आये को पुरुष माननेवाले मनुष्य ईर्षा और अहंकार में डूबते हैं सो तुम उनकेसमान ईर्षावान् मत हो जो लक्ष्मी दूसरे के पास है और तेरे पास नहीं है उसको तुम क्षमा करो बुद्धिमान् पुरुष सदैव दूसरे के स्थान पर अर्थात् शत्रुवों के पास भी सत्यलक्ष्मी को भोगते हैं सत्यलक्ष्मी भी शत्रुवों के ही पास से प्राप्त होती है योगधर्म के जाननेवाले धर्मचारी पण्डित मनुष्य लक्ष्मी और पुत्र पौत्र आदि को दूर करते हैं दूसरी प्रकृति के मनुष्यकर्म और साधन की इच्छा से नवीन कर्म के प्रारम्भ करनेवाले पुरुष को देखकर और उसको महाकष्ट से प्राप्तहोनेवाला मानकर त्यागकरते हैं सो तुम ज्ञानीरूप होके इच्छाकरने के अयोग्य दूसरे के आधीन वर्तमान नाशवान् अर्थों को चाहते हुये दुःख से विलाप करते हो ऐसी बुद्धि के चाहनेवाले तुम उनका त्यागकरो क्योंकि अनर्थ वस्तु अर्थरूप से और अर्थ अनर्थरूप से देखने में आनेवाली हैं धन का नाश कितनेही मनुष्य के मनोरथ सिद्ध होने के लिये होता है दूसरा पुरुष उसको अत्यन्त आनन्द मानकर लक्ष्मी को चाहता है कोई लक्ष्मी से क्रीड़ा करता हुआ दूसरे कल्याण को नहीं मानता है इसप्रकार से उस इच्छावान् का प्रारम्भकर्म नष्ट होता है और जो कष्टसाध्य प्रयोजन चित्त से नाश को प्राप्त होता है तब अर्थ से रहित होकर प्रारम्भ करनेवाला मनुष्य वैराग्य को पाता है कल्याणरूप कुलवान् कोई पुरुष धर्म को प्राप्तहोकर परलोक के सुख को चाहते हैं वह लौकिक धर्म से वैराग्य पाते हैं और कोई मनुष्य धन के लोभ में भरेहुये जीवन को त्यागकरते हैं वह पुरुष धन के प्रयोजन के सिवाय जी, वन को नहीं मानते हैं उन्हों की कृपणता और निर्बुद्धिता को देखो कि जीवन को नाशवान् भी जानकर मोह से अर्थदृष्टि में पड़े हुये हैं नाशहोनेवाले, धनस-

मूढ़ के रखनेवाले, मृत्युपानेवाले और अन्त में वियोगहोनेवाले संयोग के होनेपर कौन चित्तको लगावे हे राजन्! पुरुष धनको अथवा धन पुरुषको अवश्य त्याग करता है इससे कौन बुद्धिमान् दुःखी होगा दूसरों के भी सुहृद्जन और सबधन नष्ट होजाते हैं हे राजन्! बुद्धिसे मनुष्यों की और अपनी आपत्ति को जानो इन्द्रियों को रोको चित्त को थांभो वचनों को स्वाधीनकरो इन निर्बल शत्रुरूप केवल देखने ही मात्र को उत्पन्न होनेवाले अर्थों में निषेध करनेवाला वर्तमान नहीं है देशकाल से पृथक् अर्थों के जानने से बड़ेज्ञान से तृप्त तुझसा शूरपुरुष पीछे शोच नहीं करता है चपलतारहित मृदुस्वभाव जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ निश्चय-पूर्वक ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त थोड़े धन को चाहता हुआ शोच नहीं करता तुम निर्विवेक और पापरूप निर्दयवृत्ति दोषों से भरेहुये नपुंसकों के योग्य कापाली वृत्ति के प्राप्तकरने को योग्य नहीं हो तू वाग्जित् चित्त को जीतनेवाला सब जीवोंपर दयावान् महावन में मूलफलों को भोजन करके अकेलाहोकर क्रीड़ा कर पण्डित का यह कर्म ईषादण्ड अर्थात् हलकी लकड़ी के समान एकाकी वन में क्रीड़ाकरनेवाले दन्तीहाथी के समान है वह वन में ऐसे तृप्त नहीं होता जैसे कल्लोलवान् महाह्रद आपही स्थिरहोता है मैं इसी दशावाले पुरुष के जीवन को सुखरूप देखता हूं हे राजन्! धनकी प्राप्ति न होने और दैव के आधीन होनेपर मन्त्री से रहित राजा का आप क्या कल्याण मानते हो॥ ५२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुरुत्तरशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

एकसौपांचका अध्याय॥

मुनि बोले कि हे क्षत्रिय! तुम जो अपनी जाति में कुछ वीरता देखते हो उस नीति को राज्य मिलने के लिये तुम से कहता हूं तुम उसके करने में समर्थ होकर कर्म भी करोगे उसको आद्योपान्त सुनो मैं कारण समेत कहूंगा जो इस कर्म को करोगे तो बड़े अर्थवाले राज्य और राजमन्त्रों सहित महालक्ष्मी को पावोगे जो आप को अभीष्ट होय तो कहूं राजा बोला कि हे भगवन्! आप नीति को कहिये मैं वीरता में प्रवृत्त हूं अब आप के साथ यह मेरा मिलाप सफल हो मुनि बोले कि कपट, काम, क्रोध, भय को त्याग हाथजोड़कर शत्रुवों को भी सेवन करो उनको बड़ी सावधानी और पवित्र कर्मों से आधीन करो सत्यप्रतिज्ञ राजा मासिक के द्वारा धन तुझ को देने के योग्य है तुम सबजीवों में विश्वास-पात्र और उसकी भुजारूपहोगे तदनन्तर तुम बड़े उत्साहयुक्त व्यसनों से रहित पवित्र सहायकों को पावोगे अपने शास्त्र का जाननेवाला, चित्त का जीतनेवाला, जितेन्द्रिय राजा अपने को दुःख से रहित करता है और प्रजा को प्रसन्न

करता है उस धैर्यवान् श्रीमान् राजा से सत्कार पानेवाले तुम सब जीवों में विश्वासपात्र और उस राजा की बड़ी भुजारूप होकर सुहृद्गणों को प्राप्त होकर श्रेष्ठ मन्त्रियों से सलाह करके बीच के राजाओं को शत्रुवों से प्रतिकूल करके बेलपत्र से बेलपत्र भेदनकरो अथवा दूसरों से सलाह करके इस राजा जनक की सेना को घात करावो और जो सुन्दर स्वभाववाली अलभ्य स्त्री, वस्त्र, शय्या, आसन, सवारी और बड़े मोल के स्थान, पशु, पक्षी, रस, गन्ध, फल आदि हैं उनमें उसको प्रवृत्तकरो जिससे कि शत्रु की नष्टता होय और जो निषेधित और अनिषेधित वस्तु हैं उनको नीतिज्ञ पुरुष शत्रु को कभी न जनावे हे राजन्! तुम शत्रु के देश में क्रीड़ा करो कातामृग और काग की युक्तियों से शत्रुवों में मित्रभाव को करो और पराक्रमियों के साथ उसका विरोध करवावो उद्यान और बड़े मोल के शयन आसन आदि को तैयार करावो और भोगों के आनन्द के द्वारा इसके खज़ानों को खाली करावो एक गोदानकरने की शिक्षाकरो और यज्ञ के करने के लिये ब्राह्मणों का पूजनकरो वह ब्राह्मण स्वस्तिवाचन आदि से तेरा उपकार करेंगे और उस शत्रुको भेड़िये के समान भोगेंगे निस्सन्देह पुण्यशील मनुष्य परमगति को पाता है और स्वर्ग में पवित्रतमस्थानको पाताहै हे कौशल, राजन्! खज़ाने के खालीहोनेसे मनुष्य शत्रु के आधीन होता है धर्म, अधर्म दोनों में प्रवृत्त पुरुष का खज़ाना जोकि फल और अर्थ का मूल है नाश को पाता है शत्रु के सम्मुख श्रेष्ठ मनुष्य के कर्म को न कहो किन्तु इसके समक्ष में दैव की प्रशंसाकरो निस्सन्देह दैव का माननेवाला अर्थात् उद्योग न करनेवाला शीघ्र नष्ट होता है और शत्रु को विश्वजित् यज्ञ कराके धनसे खाली करावो फिर पीड्यमान होकर उसके महावन को जानेपर तुम मनोरथ को सिद्ध करोगे योगधर्म जाननेवाले पवित्र किसी आचार्य को इसके सम्मुख करो जो वह त्यागकर संन्यासधर्म को प्राप्त करे तो सब शत्रुवों की मारनेवाली सिद्ध औषधों के योग से उसके हाथी, घोड़े और मनुष्यों को मारो यह बात महाकपटी, छली, बुद्धिमान् किसी दूसरे मनुष्य से करानी योग्य है॥ २४॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

एकसौछहका अध्याय॥

राजा बोला कि हे ब्राह्मण! मैं छलकपट से जीवन नहीं चाहता हूं मैं अधर्म युक्त बड़े अर्थों को भी नहीं चाहता हे भगवन्! मैंने पहिलेही इसको त्याग किया है जिस कर्म से मुझमें कोई सन्देह न करें और सबकी वृद्धिहोय उसी वृत्ति से जीवने की इच्छाकरता हूं इसके विपरीत आप को भी कहना अयोग्य है

मुनि बोले कि हे राजन् ! तुम इस गुण से संयुक्त हो जैसा कि तुम कहते हो हे सर्व-दर्शिन् ! तुम स्वभाव और बुद्धि से संयुक्त हो मैं तुमदोनों शत्रु मित्रों के प्रयोजन में उद्योग करूंगा तेरे और उसके मिलाप को ऐसाकरूंगा जोकि सदैव वर्तमान और अविनाशी होगा इसप्रकार के दयावान्, कुलवान्, बहुत शास्त्रों के जानने वाले, राजनीति के ज्ञाता को कौन राजा मन्त्री न करे और जोकि तुम राज्य से भ्रष्ट कियेगये और बड़े २ व्यसनों में प्रवृत्तहुये हे क्षत्रिय, दयावन् ! तुम श्रेष्ठचलन से जीवन करना चाहते हो हे तात ! वह सत्यवादी राजा जनक मेरेघर में आवैगा तब मैं इसको आज्ञा दूंगा वह निस्सन्देह उसको करेगा फिर मुनि ने राजा जनक को बुलाकर यह वचन कहा कि यह क्षत्रिय राज-कुल में उत्पन्न हुआ है और इसके अन्तःकरण की बात मैं जानता हूं यह शरदऋतु के चन्द्रमा और आदर्श के समान शुद्धचित्त है मैं इसमें कोई पाप नहीं देखता हूं सब प्रकार से मेरा परीक्षा कियाहुआ है इसके साथ तू सन्धिकर इसपर ऐसा विश्वासकर जैसा कि मुझमें करता है मन्त्री के विना राज्य में तीनदिन भी शासन करना या आज्ञादेना योग्य नहीं है हे राजन् ! शूर या बुद्धिमान् मन्त्री होना चाहिये उन दोनों शूरता और बुद्धि से दोनों लोकों को देखो और राज्य के प्रयोजन को भी देखो लोक में किसी स्थानपर धर्मात्माओं की ऐसी अन्यगति नहीं है यह राजपुत्र महात्मा और सत्पुरुषों के कर्मों को करता है तू इसको अपने साथ रखने को स्वीकारकर यह धर्म को सम्मुख करनेवाला राजा तेरे शत्रुवों के बड़े समूहों को पकड़ेगा और जो यह तुम्हारे सम्मुख होकर युद्ध करे तो वह क्षत्रिय का मुख्यधर्म है बाप दादों के स्थानपर युद्ध में वर्तमान होकर तेरे विजय करने की इच्छाकरे तो विजयरूपी व्रत के चाहनेवाले तुम भी इससे युद्धकरो अपनी वृद्धि में प्रवृत्त होकर तुम मेरी आज्ञा से युद्ध के विनाही उसको अपने आधीनकरो इससे तुम अयोग्य लोभ को त्याग करके धर्म को देखोगे शत्रुता की इच्छा से अ-पना धर्म त्यागकरना योग्य नहीं है हे तात ! सदैव जय और अजय नहीं होती इस कारण शत्रुलोग भोजन आदि के द्वारा आधीन करने के योग्य हैं अपनी जाति में भी जय और अजय दृष्टिमें आनेवाली है हे तात ! नाश करनेवाले पुरुषों को नाश करनेवाले अन्य पुरुषों से भय होता है यह सब बातें सुनकर राजा जनक ने उन क्षेमदर्शी ऋषि से विधिपूर्वक पूजन सत्कार करके प्रतिष्ठा-पूर्वक यह वचन कहा कि बड़ाज्ञानी जैसा कहै और बड़ाशास्त्री जैसा वर्णनकरे और वृद्धि चाहनेवाला जो कहै वही दोनों लोकों का देनेवाला वचन है मुझको जो २ आप की आज्ञा हुई है वह सब मैं करूंगा इसी में कल्याण है इस में विचारना मेरा अयोग्य है तदनन्तर राजा जनक ने कौशल राजा को बुला-

कर यह वचन कहा कि मैंने धर्म और नीति से संसार को विजय किया परन्तु हे राजाओं में उत्तम ! मैं तेरे निजगुणों से पराजयहुआ आप अपना अपमान न करके विजय कियेहुये के समान विराजमान रहो मैं तुम्हारी बुद्धि का अपमान नहीं करता हूं और न तुम्हारे पराक्रम का अपमान करता हूं और यह भी नहीं मानता हूं कि मैं विजय करता हूं आप विजयी होनेवालों के समान काम करो हे राजन् ! बुद्धि के अनुसार अच्छे प्रकार पूजेहुये तुम मेरे घर को भी चलो तब वह परस्पर में विश्वासी दोनोंराजा ऋषि का पूजन करके घर को गये तदनन्तर राजाजनक ने कौशल राजा को शीघ्रता से अपनी राजधानी में लाके उस पूजन योग्य को पाद्य, अर्घ, मधुपर्क से पूजा और इसकी प्रसन्नता के लिये अपनी पुत्री से विवाह करके उसके यौतुक में अनेक रत्नआदि दासी दास दिये यह राजाओं का उत्तम धर्म है और जय पराजय सदैव नहीं होती ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपुनःकालकवृक्षीयनामषडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौसातका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे परन्तप ! तुमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्म, चलन और धन, उद्योग, जीविका के हेतु और फलों को कहा और राजाओं के धन खज़ाने और खज़ाने की वृद्धि विजयमन्त्रियों के गुणवृत्ति और नौकरों की वृद्धि को कहा छहगुणों का गुण इसीप्रकार सेनावृत्ति दुष्ट का ज्ञान और सत्पुरुषों का लक्षण कहा और समान न्यून अधिक पुरुषों का जो ठीक लक्षण है और अच्छी वृद्धिपानेवाले राजा को मध्यम पुरुष की प्रसन्नता के लिये जैसे बर्तना चाहिये वह भी वर्णन किया और शास्त्र के अनुसार उपदेशरूप साधारण युक्ति से राज्य से भ्रष्टहुये का पोषण और आजीविका को धर्मपूर्वक वर्णन किया और विजय की इच्छा करनेवाले राजा के चलन को भी वर्णन किया है ज्ञानियों में उत्तम ! इसीप्रकार समूहों की आजीविका को सुना चाहता हूं और हे पितामह ! जैसे गणसमूह अच्छी वृद्धि पाते हैं और विरुद्ध नहीं करते और शत्रु को विजय करना चाहते हैं और मित्रों को प्राप्त किया चाहते हैं मैं उन समूहों की नष्टता को देखता हूं जो विरोधता का मूल रखनेवाली है और बहुत मनुष्यों से मन्त्र का छिपाना कठिन है उसको मैं पूर्णता के साथ सुना चाहता हूं जिसरीति से वह विरोधी न हों वह आप कहने को योग्य हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह दोनों लोभ और क्रोध उन समूह व घराने और राजाओं की शत्रुता को बढ़ानेवाले हैं अकेला राजा लोभ को करता है तदनन्तर समूह क्रोध को करता है वह दोनों भ्रष्टता से नाश को प्राप्त होते हैं वह दूतों के द्वारा अथवा मन्त्रबल से पृथ्वी का भेजदेने से और साममन्त्र के तोड़ने से भ्रष्टता और

नाश से और भयकारी युक्तियों से परस्पर पीड़ा देते हैं मिलकर जीविका का निमित्त प्राप्त करनेवाले धन के लेने से शत्रु होजाते हैं विमन और शत्रु होकर वह सब भय से शत्रु के आधीन होते हैं और शत्रुवों के समूहों में नाशपाते हैं और विरोधी शत्रुवों से सुगमतासे विजय होते हैं इस कारण समूहवाले लोग सदैव एकता से उद्योग करें क्योंकि मिलेहुये समूह के पराक्रम और उद्योगों से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उन मिलकर जीविकाकरनेवालों से दूसरे देश के मनुष्य मित्रता करते हैं ज्ञानीपुरुष परस्पर में प्रीतिरखनेवालों की प्रशंसा करते हैं और व्यवहार आदि में एकमतवाला समूह आनन्दपूर्वक वृद्धि को पाता है शास्त्र के अनुसार धर्मिष्ठ व्यवहारों को नियत करके बुद्धि के अनुकूल उनको देखने से सब समूह बड़ी उत्तम वृद्धिपाते हैं पुत्र और भाइयों को शासना और शिक्षा करते और शिक्षापानेवालों को पोषण आदि करते हुये सदैव उत्तम वृद्धि को प्राप्त करते हैं हे महाबाहो! दूत और सलाह के विषय का विचार करते खजाने की वृद्धि में सदैव प्रवृत्तहोनेवाले समूह को सब ओर से वृद्धि होती है हे राजन्! कार्य में सदैव प्रसक्त समूह की बड़े उत्साहवाले स्वकर्मनिष्ठ उद्योगी बुद्धिमान् लोग प्रशंसा करते हैं और शास्त्र में प्रवीण शस्त्रविद्या के ज्ञाता महाधनी भी बड़ाई करते हैं और क्रोध, विरोध, भय, दण्ड, पीड़ा, घात इत्यादि बातें समूह को शीघ्रही शत्रु के आधीन करती हैं इस निमित्त उक्तबातों से रहित समूह प्रशंसापूर्वक मानने के योग्य है और संसार के बड़े २ प्रबन्ध और कार्य इन समूहों के आधीन हैं सो हे युधिष्ठिर! जो गुप्तविचार में श्रेष्ठ हैं उनपर दूतों को नियत करना चाहिये सब समूह मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं हैं इन उत्तम समूहों से मिलकर परस्परमें समूह का अभीष्ट करना चाहिये पृथक् वा विरोधी वा भिन्न २ होनेवाले समूह का उनके विपरीत करना चाहिये और परस्पर में विरोधी केवल अपनीही सामर्थ्य से कर्म करनेवाले समूहों के धनआदि अर्थ नाश होजाते हैं और अनर्थ प्राप्त होजाते हैं पण्डितलोग उनको शीघ्रही धमकाकर आज्ञा करने के योग्य हैं कुलों में उत्पन्न होनेवाले उपद्रव कुलों के वृद्धों से दूर नहीं किये जायँ तो गोत्रभर का नाश करते हैं वह दोष समूह में विरोध का कारण है जो समूह के सबलोग परस्पर में एकसी बातचीत नहीं करते यह भी हानि का कारण है फिर वह सब हैं जो धन, बुद्धि और युक्तिबल से कर्मकरें उस दशा में विरोध के कारण या अपनी अज्ञानता से वह समूह शत्रुवों के हाथ से मारेजाते हैं इस हेतु से समूहों के मिलाप को रक्षा का बड़ा आश्रय कहते हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

एकसौआठका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन् ! यह धर्ममार्ग बड़ा और बड़ी २ शाखाओं का रखनेवाला है इस देश में धर्मों के मध्य कौन कर्म बड़ी धैर्यता से मानने के योग्य है और आपने कौनसा कर्म बड़ा माना है उसी को मैं भी करके इस लोक परलोक दोनों में धर्म प्राप्त करूं भीष्मजी बोले कि माता पिता और गुरुवों का पूजन मेरे चित्तसे बड़ा प्रिय है इसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य इस लोक में यशस्वी, प्रतापी होकर उत्तम लोकों को प्राप्त करता है हे तात, युधिष्ठिर ! अच्छे पूजित महात्मालोग जिस बात की आज्ञा दें वह चाहे धर्म, अधर्म या विपरीत भी हो करना योग्य है उनकी आज्ञा विना कोई धर्म न करे वह लोग जिस बात की आज्ञा करें वही निश्चय धर्म है यह माता, पिता, गुरु तीनों लोकरूप, आश्रमरूप, वेदरूप और तीनों अग्निरूप हैं निश्चय करके पिता तो गार्हस्पत्य अग्नि हैं और माता दक्षिणाग्नि और आहवनीय नाम अग्नि गुरु हैं यह तीनों अग्नियों का समूह बड़ा है इन तीनों में भ्रान्ति न करता पुरुष तीनों लोकों को तरता है अर्थात् पिता के पूजन से इस लोक को और माता के पूजन से परलोक को और नियमपूर्वक गुरु के पूजन से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है सो हे युधिष्ठिर ! इन तीनों के साथ अच्छे प्रकार बर्ताव कर इससे तीनों लोकों में यश पावेगा और महाफलवाले धर्म को भोगेगा इससे भोजन और कर्मों में अधिकता न करेगा और न दोष लगावेगा तो तेरा बड़ा कल्याण होगा सदैव सेवा करनाही बड़ा उत्तम कर्म है हे तात ! तुम कीर्तिमान्, पुण्यवान् और यशस्वी होकर उत्तम लोकों को पावोगे जिसके यह तीनों पूजित होंगे उसका तीनों लोकों में आदर होगा और जिसके यह तीनों पूजित नहीं हैं उसके सब कर्म निष्फल हैं हे परन्तप ! जिसके यह तीनों गुरु सदैव नहीं पूजेजाते हैं उसका न यह लोक है न परलोक है और इस लोक परलोक दोनों में इसका यश नहीं प्रकाश पावेगा और न परलोक में इसको दूसरा कल्याण है मैंने अन्य सब कर्म करके इन तीनों को अधिक किया तब मेरा सौगुने से हजारगुना होगया इसी कारण हे युधिष्ठिर ! मुझे तीनों लोक प्रकाशित हैं उत्तम आचार्य दश वेदपाठियों से श्रेष्ठ है और उपाध्याय दश आचार्यों से अधिक है और पिता दश उपाध्यायों से अधिक है और माता दश पिता और पृथ्वी और मुझसे भी वृद्धता में वा बड़ाई में अधिक होती है माता के समान गुरु नहीं है परन्तु पिता से गुरु बड़ा है यह मेरा मत है क्योंकि माता, पिता जन्म दिलाते और देह को उत्पन्न करते हैं और आचार्य से होनेवाला जो उत्तम जन्म है वह दिव्य और अजर अमर है उपकार करनेवाले माता, पिता, गुरु यह तीनों

सदैव अवध्य हैं अर्थात् मारने योग्य नहीं हैं उसको करके वह दोषी नहीं
होता और न वह इसको दोष लगाते हैं देवताओं ने धर्म के निमित्त महर्षियों
के साथ उद्योग करनेवाले उन पुरुषों को जाना है जो आचार्य वेदों को कहता
अमृत को देता सत्कर्म से कृपा करता है उसी को माता, पिता अपने और उस
के लोक को जानते हैं इस हेतु से शत्रुता से रहित जो विद्यावान् होकर कर्म
और मन से गुरु की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं वह विरोधता से नाश को प्राप्त होते
हैं उनका पाप भ्रूणहत्या से भी अधिक है संसार में उनसे विशेष दूसरा पापकर्ता
नहीं है क्योंकि जैसे वह गुरु से वृद्धि पाने के योग्य है उसीप्रकार गुरु भी
उनकी ओर से पूजन के योग्य है इस हेतु से वह गुरु उस प्राचीन धर्म चाहने-
वाले पुरुष को युक्ति से पूजन अर्चन और भागदेनेयोग्य हैं जिस कर्म से पिता
को प्रसन्न करता है उससे पृथ्वी पूजित होती है और जिस कर्म से उपाध्याय
को प्रसन्न करता है उससे वेद पूजित होते हैं इसीकारण गुरु माता, पिता से
भी अधिक पूजनीय है गुरुवों के पूजित होने से पितर समेत ऋषि और देवता
भी प्रसन्न होते हैं इससे सर्वथा गुरु पूजनीय हैं किसी चलन से भी गुरु अप-
मान के योग्य नहीं है जैसा गुरु मोक्ष के पदपर पहुँचानेवाला है वैसा माता,
पिता से नहीं होसक्ता यह ज्ञानियों का मत है वह सब अपमान के योग्य नहीं
हैं उनके कर्मों में दोष नहीं लगावे महर्षियों समेत देवताओं ने गुरुवों के
सत्कार को उत्तम कहा है जो पुरुष मन और कर्म से उपाध्याय, पिता और माता
से शत्रुता करते हैं उनका पाप भ्रूणहत्या से अधिक है लोक में इससे अधिक
कोई पापकर्ता नहीं है जो पालाहुआ बड़ा होनेवाला अपनी योनि से उत्पन्न
हुआ पुत्र माता, पिता का पोषण नहीं करता है वह पाप निश्चय करके भ्रूण-
हत्या से भी अधिक है संसार में इससे भी अधिक पाप करनेवाला दूसरा नहीं
है मित्र से शत्रुता करनेवाला, उपकार का भूलनेवाला, स्त्री को मारनेवाला,
गुरुहन्ता इन चारों के प्रायश्चित्तों को हम नहीं सुनते हैं जो इस संसार में पुरुष
से करने योग्य है वह सब विधिपूर्वक कहा यह सब धर्मों का सार तुमसे कहा
इससे अधिक कल्याणकारी दूसरा नहीं है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

एकसौनवका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! धर्म में प्रवृत्त होने को इच्छावान् पुरुष किस
प्रकार से कर्म करे यह आप मुझसे वर्णन कीजिये हे राजन् ! सत्य और
मिथ्या यह दोनों संसार को वृत्तरूप घेरे हुये हैं धर्म को निश्चय करनेवाला
पुरुष दोनों में से किसको करे सत्य क्या है और मिथ्या क्या है और प्राचीन

धर्म क्या है किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या बोलना चाहिये भीष्मजी बोले कि सत्यवचन उत्तम है सत्य से अधिक कुछ नहीं है हे युधिष्ठिर! लोकों की जो बुद्धि है उसको कहता हूं जहां मिथ्या सत्यके समान हो और सत्य मिथ्या के समान हो वहां सत्य बोलना उचित नहीं किन्तु मिथ्याही बोलना योग्य है ऐसा अज्ञानी बालक जो सत्य और असत्य के मूल को नहीं जानता वह नष्टता को प्राप्त होता है जहां सत्यता नष्टपने से मिली हुई है वहां सत्य और मिथ्या को अच्छे प्रकार निश्चय करके धर्मका जाननेवाला होता है और नीच अज्ञानी व हिंसा करनेवाला पुरुष भी बहुत बड़े पुण्य को प्राप्त करता है जैसे बहेलिये ने पक्षियों की प्यारी बोली बोल कर पक्षियों के घात से स्वर्ग को पाया क्या आश्चर्य है कि जो अज्ञानी धर्म का न जाननेवाला धर्म की इच्छा करनेवाला भी बड़े पुण्य का भागी होजाय जैसे कि श्रीगंगाजी पर कौशिक ने मोक्ष प्राप्त किया था अर्थात् कौशिक उल्लू ने गंगाजीपर सर्पों के हज़ारों अण्डों को तोड़कर पुण्य प्राप्त किया था यह तुम्हारा प्रश्न उस प्रकार का है जिस में धर्म बड़ा और लम्बा है जिसकी संख्या करनी कठिन है सो इस धर्मलक्षण में निश्चय करते हैं कि वह किस रीति से होता है जीवों की वृद्धि के लिये धर्म का वर्णन किया जो कर्म जीवों की वृद्धि से संयुक्त है वह निश्चय धर्मही है प्रजा की रक्षा से धर्म कियागया और धर्म से प्रजा रक्षित है जो प्रजाकी रक्षा में प्रवृत्त होय वह भी निश्चय करके धर्म है किसी ने कहा कि सब धर्म वेदोक्त हैं दूसरे मनुष्यों ने कहा कि नहीं हम इसकी निन्दा नहीं करते क्योंकि सब नहीं किया जाता है अर्थात् देशकाल के अनुसार कर्म कियाजाता है अन्याय की रीति से हरलेने की इच्छा रखनेवाले जो पुरुष किसी के धनको चाहते हैं उस धनको उन्हों से न कहना चाहिये यह भी निस्सन्देह धर्महै जहां मौनता से जानबचे वहां किसी प्रकार से भी वार्तालाप न करे बोलने के स्थानपर न बोलने से भी अवश्य शंका करते हैं वहां मिथ्याबोलना सत्य से भी अच्छा है जहां शपथ के खाने से पापों के सम्बन्ध से छूटता है यही निर्धार कियागया वहां सम्भवहोय तो किसी दशामें भी उन पापियों को धन न देनाचाहिये क्योंकि पापियों को दियाहुआ धन दाता को भी पीड्यमान करता है प्रतिवादी के पकड़ने से अपना रुपया लेने की इच्छा करनेवाले वादी का विवाद झूठा होने के लिये गवाहलोग ऐसे स्थानपर जो वार्तालाप करैं वहां कहने के योग्य वचन को न कहने से वह सब मिथ्यावादी हैं प्राणत्याग और विवाह में मिथ्याबोलना योग्य है अधर्म के कारण दूसरों की सिद्धि को चाहता दूसरों के धनकी रक्षाके लिये नीचधर्म भक्षक होताहै प्रतिज्ञा करके देनाचाहिये जो न दे तो धन का पचानेवाला दास

हो जो कोई धर्मका साधनकरनेवाला धर्म्यरूप नियम से भ्रष्ट होजाय उस मार्ग में वह शरणागत पुरुषभी दण्ड के द्वारा मारने के योग्य है वह दिव्यधर्म से भ्रष्ट आसुरीधर्म में वर्तमान हुआ वह छली अपने धर्म को छोड़कर उस आसुरीधर्म से जीतारहना चाहता है वह छल से जीवनेवाला पापी सब रीतियों से मारने के योग्य है सब पापियों को धनही अच्छा लगता है निश्चय करके धर्म जरा अच्छा नहीं लगता है वह क्षमा के अयोग्य अधर्मी मनुष्य देवता और मनुष्यों से पृथक् कियेहुये प्रेत के समानहैं यज्ञ और तप से रहित पुरुषों से तेरी मित्रता मतहो क्योंकि उनके संगसे धन के नाश के द्वारा बड़ा दुःख होताहै और जीवन में सन्देह होता है यह धर्म तुझको मानना चाहिये इसप्रकार बड़ी युक्ति से उस छली को समझाना चाहिये परन्तु पापियों का किसी धर्म में निश्चय नही है यह जानो जो पुरुष उस दशावाले पुरुष को मारे वह पाप में संयुक्त नहीं होता है क्योंकि अपनेही कर्म से वह मृतक माराजाता है जो कोई मनुष्य उन घातबुद्धि मनुष्यों के विषय में इस नियम को करे कि मैं उनको मारूंगा वह श्रेष्ठ है जैसे कि काग और गिद्ध हैं वैसेही वहलोग हैं जोकि कपट से अपने दिन पूरे करते हैं वह देहत्यागने के पीछे इन काग आदि की योनियों में उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य जिसमें जैसा बर्ताव करताहै उसमें उसीप्रकार बर्ताव करना चाहिये वही धर्म है छली छलसेही पीड़ा देनेयोग्य है और नेकचलन नेकचलन से पीड़ादियाजाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौदशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जहां तहां उन २ कारणों से जीवों के दुःखी होने पर जिस प्रकार से उन आपत्तियों से पार होय उसको आप कृपा करके कहिये भीष्मजी बोले कि जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण शास्त्रोक्त आश्रमों में बुद्धि के अनुसार निवास करते हैं वह आपत्तियों से पारहोते हैं कपटयुक्त कर्म नहीं करतेहैं और जिनकी बुद्धि की वृत्ति नियमों में लगी है और इन्द्रियों को स्वाधीन करते हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिन निन्दा पानेवालों ने निन्दा नहीं की और जिन दुःख पानेवालों ने किसीको दुःख नहीं दिया और दानकरते हैं और किसीसे दान नहीं लिया वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो सदैव अतिथियों को घर में निवासकराते हैं और दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाते हैं और सदैव वेद के पाठ का अभ्यास करते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो धर्म में कुशल अपने माता, पिता के पूजन में प्रवृत्त रहते हैं और दिवस का सोना त्यागकरते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो पुरुष मन,

वचन, कर्म से पापको नहीं करते हैं और जीवों को नहीं सताते हैं वह विपत्तिसे पार होते हैं और जो राजा रजोगुण से संयुक्त हो लोभ से किसीके धनको नहीं हरते हैं और इन्द्रियों की चारो ओर से रक्षा करते हैं वह आपत्तियों से निवृत्त होते हैं और जो पुरुष अग्निहोत्र में प्रवृत्त होकर केवल ऋतुकाल में ही अपनी धर्मपत्नी में विषयादि करते हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो शूर मृत्यु के भय को त्यागकर युद्ध में धर्मपूर्वक विजय चाहते हैं वह आपत्तियों से पार होतेहैं और जो पुरुष प्राणत्याग होने पर भी सत्यवचनों को कहतेहैं और जीवों के प्राणरूप हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिनके कर्म सत्यप्रयोजनवाले हैं और सत्यवक्ताहैं और जिनके धनआदि अच्छेप्रकार सुरक्षितहैं वह आपत्तियों को तरते हैं इस लोक में जो वेदपाठी ब्राह्मण अनध्यायों में वेद के पाठों को नहीं करते हैं और तपोनिष्ठहैं वह महातपानेवाली आपत्तियों से पार होते हैं और जो ब्रह्मज्ञानविद्या और वेदव्रतमें परायण कौमार ब्रह्मचर्यव्रत को तपते हैं वह विपत्तियोंसे छूटते हैं और जो शान्त रजोगुण और शान्त तमोगुण और महात्मा सतोगुण में प्रवृत्त हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिनसे कोई भय नहीं करता और न वह किसी का भय करते हैं और यह लोक जिनका आत्मारूप है वह विपत्तियों से पार होते हैं और जो पुरुषोत्तम सन्त दूसरे की लक्ष्मी से दुःखी नहीं होते हैं और विषयादि भोगों को त्यागेहुये हैं वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो श्रद्धावान् शान्तपुरुष सब देवताओं को नमस्कार करते हैं और सबधर्मों को सुनते हैं वह कष्ट से तरने के योग्य स्थानों को तरते हैं जो अपनी प्रतिष्ठा को नहीं चाहते हैं और दूसरों की प्रतिष्ठा करते हैं और प्रतिष्ठा के योग्य पुरुषों को नमस्कार करते हैं वह कष्टसाध्य स्थानों से तरते हैं जो सन्तान के चाहनेवाले पुरुष अत्यन्तपवित्रचित्त से तिथि २ में श्राद्धों को करते हैं वह दुस्तर स्थानों को तरते हैं और जो क्रोध को रोकते हैं और क्रोधयुक्त पुरुषों को शान्त करते हैं और जीवोंपर क्रोध नहीं करते हैं वह दुस्तर स्थानों से पार होते हैं और इस लोक में जो मनुष्य जन्म से लेकर मरणपर्यन्त मांस और मदिरा को त्यागकरते हैं वह कठिन स्थानों को तरते हैं और जिन्हों का भोजन शरीर की यात्रा के लिये और विषय सन्तान के लिये और वचन सत्य कहने के निमित्त है वह दुस्तर स्थानों से पार होते हैं और जो भक्तजन सब जीवों के ईश्वर, जगत् के उत्पत्तिस्थान, अविनाशी, नारायणदेव का ध्यान करते हैं वह दुस्तरस्थानों से पारहोते हैंऔर यह कमलरूप, रक्तनेत्र, पीताम्बरधारी, महाबाहु, भाईबन्धुसम्बन्धियों का शुभचिन्तक ऐसा अविनाशी है वह प्रभु अचिन्त्यआत्मा, पुरुषोत्तम, गोविन्दजी इच्छा करके इनसब लोकों को चर्म के समान लपेटे वही वैकुण्ठरूप दुर्धर्ष पुरुषोत्तम आप के और अर्जुन के प्यारे हित में वर्तमान हैं जो भक्त इस

लोक में इस नारायण हरि की शरण होते हैं वह इस लोक में दुस्तर स्थानों को निस्सन्देह तरते हैं इसमें विचारना नहीं और जो पुरुष इस दुर्गातितरण को वेदपाठों से पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते हैं वह दुस्तरस्थानों से पार होते हैं हे अनघ! मैंने करने के योग्य कर्मों का आशय तुम से कहा जिसके द्वारा मनुष्य इस लोक में महादुस्तरस्थानों से पार होते हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकसौग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! असौम्य पुरुष अर्थात् अज्ञानी पुरुष सौम्य रूप और सौम्य पुरुष असौम्यरूप दृष्टिआनेवाले हैं हम इसप्रकार के पुरुषों को कैसे जानें भीष्मजी बोले कि यहां मैं इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में व्याघ्र और शृगाल का प्रश्नोत्तर है उसको सुनो प्राचीन समय में पूरिका नाम पुरी में श्रीमान् पौरक नाम राजा हुआ जोकि दूसरे की हिंसा में कठोरचित्त निर्दयी नीचपुरुष था उसने मरने के पीछे मनके विरुद्ध गति को पाया अर्थात् पूर्वजन्म के दोष से उसने शृगाल अर्थात् स्यार की योनि को पाया फिर उसने पिछले जन्म के ऐश्वर्य को स्मरण करके बड़े वैराग्य को पाया दूसरे जीवों के लायेहुये मांस को भी नहीं खाता था सब जीवों में हिंसारहित सत्यवक्ता महादृढव्रत रखनेवाला था उसने समय के अनुसार पृथ्वी पर गिरेपड़े हुये फलों से निर्वाह किया श्मशानभूमि में उस स्यार को रहना स्वीकार हुआ उसने जन्मभूमि की प्रीति से दूसरे निवासस्थान को पसन्द नहीं किया उसकी पवित्रता को न सहनेवाले उसकी जातिवालों ने प्यारे वचन कहकहकर उसकी बुद्धि को विपरीत करना चाहा और कहा कि रौद्रपितृवन में निवास करके तू पवित्रता को चाहता है यह तेरी विपरीत बुद्धि है जब कि तुम मांसभक्षी हो तो हमारे समान होजावो हम तुम को भोजन देंगे पवित्रता को दूर करके जो तेरा भोजन है वही खा उस सावधान ने उनके वचन को सुनकर मीठे और व्यौरेवार कारणों समेत मृदुतापूर्वक उत्तर दिया कि मेरी उत्पत्तियां अप्रमाण हैं अर्थात् इन्द्रियों की मर्यादा से रहित हैं और कुल का नाम स्वभाव से प्रसिद्ध होता है इससे मैं उन कर्मों को चाहता हूं जिनसे कि यश की प्रसिद्धि होती है जो मेरा निवास श्मशान में है मेरी समाधि को सुनो कि आत्मा कर्म को सफल करता है और आश्रम धर्म का कारण नहीं है जो पुरुष आश्रम में द्विज को मारे वह क्या पातक नहीं है अथवा अन्य आश्रमी को गोदान करे वह दियाहुआ क्या निरर्थक होता है आप अपने अर्थ लोभ से केवल मांस खाने में मन लगाये हुये हैं परिणाम में तीन दोष हैं

अज्ञानी जीव उनको नहीं देखते हैं इसकारण असन्तोषता से निन्दित कीहुई और धर्म के नाश से दूषित इस लोक और परलोक में बे मर्यादा आजीविका को स्वीकार नहीं करता हूं प्रसिद्ध पराक्रमी शार्दूल ने उसे पवित्र और पण्डित जानके अपने योग्य पूजित कराके आप उसको प्रधानता में नियत करना चाहा और बोला हे ज्ञानिन्! तुम प्रसिद्धचलन हो मेरे साथ राज्य को पावो इच्छाभोजन और बड़े सामानों को भोगो हम क्रोधप्रकृति प्रसिद्ध हैं आप को जतलाते हैं तुम मृदुता के साथ अपने हित और कल्याणों को चाहोगे यह सुनकर स्यार ने बड़ी नम्रता से शार्दूल के वचन की प्रशंसा करके यह वचन कहा कि मेरे विषय में जो आप का वचन है वह आप सरीखे मृग-राज के योग्य है जो आप धर्म, अर्थ में कुशल पवित्र सहायकों को तलाश करते हो हे वीर! मन्त्री न रखनेवाले अथवा देह के शत्रु दुष्ट मन्त्रीवाले राजा से राज्य करना असम्भव है प्रीति रखनेवाले नीतिज्ञ परस्पर शुभचिन्तक सहायता करनेवाले विजय की इच्छा रखनेवाले अपलचित्त नम्र ज्ञानी और मन का अभीष्ट करने में प्रवृत्त साहसी सहायकों का ऐसा पूजन करो जैसे कि आचार्यों का और वृद्धों का होता है इससे हे मृगेन्द्र! सन्तोष के सिवाय मुझे दूसरी बात स्वीकार नहीं है मैं सुख भोग और उनसे सम्बन्ध रखने-वाले ऐश्वर्य को नहीं चाहता हूं जो मेरा स्वभाव तेरे नौकरों से मेल न खायगा वह मेरे विषय में बुराई करनेवाले होंगे और तुम को मेरा शत्रु बनादेंगे दू-सरे तेजस्वियों का भी मिलाप प्रशंसा के योग्य नहीं है मैं आत्मावान् श्रेष्ठ महाभाग पापकर्म में भी सहनशील दूरदर्शी उन्नताकांक्षी बड़ादानी महाबली कर्मकर्ता और प्रारब्धवान् सफलकर्म का करनेवाला हूं मैं थोड़े सामान से भी सन्तोष करसक्ता हूं और दुःखरूप जीविका मैंने प्राप्त नहीं की और सेवा में भी अज्ञानी हूं अपनी इच्छा से वनचारी हूं राजा के सम्मुख निन्दा से उत्पन्न होने-वाले सब दोष उसके शरणवालों को प्राप्त होते हैं और वनवासियों की व्रतचर्या भंग और क्रोध से पृथक् है राजा के बुलायेहुये नौकर के हृदय में जो भय उ-त्पन्न होता है वह भय वन में मूल फल खानेवाले सन्तोषी पुरुषों के हृदय में उत्पन्न नहीं होता है बिना परिश्रम के मिलनेवाला जल और सुस्वादु भोजन अथवा अन्त में भयकारी दोनों वस्तुओं को विचारकर देखता हूं कि वहीं सुख है जिस में निस्सन्देहता है इतने नौकर अपराध के कारण राजाओं से दण्ड नहीं दिये गये जितने कि नौकर दूसरों की बुराई से अपराधी होकर नष्टहुये हे मृगेन्द्र! जो यह मेरे करने के योग्य है और जो तुम मानते हो तो मैं प्रतिज्ञा कियाचाहता हूं जैसे कि मेरे साथ करनाचाहिये मेरे बालबच्चे आप पालने को योग्य हैं और हित-कारी वचन आप के सुनने के योग्य हैं और जो मेरी आजीविका विचार की

गई है वह तुम्हारे पास अच्छेप्रकार से वर्तमान होय मैं कभी तेरे दूसरे मन्त्रियों के साथ सलाह नहीं करूंगा नीतिज्ञ इच्छावान् शत्रु मेरे विषय में विपरीत कहेंगे और अकेला एकान्त में केवल आपही से मिलकर हितकारी वचन कहूंगा तेरी जाति के कागजों में हित और अहित पूछने के योग्य नहीं होऊं मेरे साथ सलाह करके मन्त्री आप के हाथ से मारने के योग्य नहीं और क्रोधयुक्त होकर तुम मेरे समीपी लोगों को दण्ड मतदो व्याघ्र ने उसकी सब बातों को स्वीकार किया और स्यार ने प्रधानता का अधिकार पाया प्राचीन नौकर एकमत होकर इसप्रकार से बड़े अधिकार के पानेवाले अपने काम में पूजित उस स्यार को देखकर अकस्मात् विरोधी हुये इन दुर्बुद्धियों ने मित्रता की बुद्धि से उस स्यार को विश्वासपूर्वक प्रसन्न करके दोष लगाना चाहा दूसरे के धनों के हरनेवाले वह सब पूर्वसमय में विरुद्धकर्मी थे अब स्यार के स्वाधीन रहनेवाले वह किसी प्रकार की द्रव्य के लेने को समर्थ नहीं हुये वह स्यार विरोध चाहनेवालों से कथाओं के द्वारा लुभाया जाता था और बड़े धन से उसकी बुद्धि लुभाई जाती थी परन्तु वह बड़ाज्ञानी अपने धैर्य से चलायमान नहीं हुआ इसीप्रकार दूसरों ने उसके नष्ट करने की सलाह करके वहां मृगराज का अभीष्ट जो मांस तैयार किया था उन्हों ने आप जाकर उसके घरमें रखदिया इस निमित्त कि वह चोर ठहराया जाय और जिसने वह सलाह की वह उसको विदित होगया परन्तु किसी हेतु से उसने क्षमा किया और प्रधानता प्राप्त करनेवाले स्यार ने यह विचार किया कि यहां मित्रता करनेवाले तुझ को नाश न करने चाहिये भीष्मजी बोले कि भूखे और खाने के वास्ते उठेहुये मृगराज को भोजन के निमित्त जो मांस भेंट करना चाहिये था वह दृष्टि न पड़ा मृगराज ने हुक्म दिया कि चोर को ढूंढ़ना चाहिये छलियों ने उसका वर्णन मृगराज के सम्मुख किया कि आपका मन्त्री जो कि अपने को पण्डित और ज्ञानी मानता है उसने छिपाया शार्दूल स्यार की चपलता को सुनकर क्रोधित हुआ और उसके मारने को स्वीकार किया तब पहिले मन्त्री उस अपने शत्रु को देखकर बोले कि यह हम सबकी जीविका खोने में लगा हुआ है फिर उन्हों ने निश्चय करके उसके कर्म को भी वर्णन किया कि उस का जब यह कर्म है वह क्या काम नहीं करसक्ता स्वामी ने पहिले जैसा सुना था वैसा नहीं है यह केवल वार्ता से धर्मिष्ठ है परन्तु स्वभाव से निर्दयी है यह पापी कपटरूप धर्म रखनेवाला और मिथ्या आचार परिग्रह रखनेवाला है इसने अपने कार्य के लिये भोजन के अर्थ व्रतआदि में परिश्रम किया यह अविश्वासी है यह हम आप को दिखाते हैं यह कहतेही शीघ्र उस स्यार के घर में से मांस को लाकर व्याघ्र को दिखाया तब व्याघ्र ने उस मांस का चुराना जानकर और उनके

वचनों को सुनकर आज्ञादी कि स्यार को मारो तब व्याघ्र की माता अपने पुत्रकी बातों को सुनकर मृगराज को हित की बात समझाने को उसके पास आई और कहा कि हे पुत्र! कपट और छल से संयुक्त यह बुराई तुम को स्वीकार न करनी चाहिये क्योंकि पवित्रराजा भी पापात्मा और ईर्षा करने-वालों के दोषसे दोषी होता है कोई ऊंचे अधिकारवाले को चित्त से नहीं चाहता है अधिकारही शत्रुता उत्पन्न करनेवाला है पवित्र और स्वकर्मनिष्ठ नौकर में और स्वकर्मी वनवासी पवित्र मुनि में भी दोष लगायाजाता है मित्र, उदासीन और शत्रु नाम तीनपक्ष उत्पन्न होते हैं पवित्रमनुष्य लोभों के शत्रु और पराक्रमीपुरुष नपुंसकों के शत्रु कहेजाते हैं और पण्डित मूर्खों के और बड़े धनी निर्धनलोगों के और धर्मिष्ठ पुरुष अधर्मियों के स्वरूपवान् कुरूपों के शत्रु समझे जाते हैं बृहस्पतिजी के मत से मूर्ख लोभी और कपट से जीवनकर-नेवाले अपने को पण्डित माननेवाले ऐसे बहुत से मनुष्य निर्दोषी को दोष लगाते हैं जो कि तेरे खाली मकान से उस मांसको चुरालिया और दियाहुआ नहीं चाहता है अच्छा है तबतक विचारकरो सभासद जो अयोग्य हैं वह योग्य-रूप और जो योग्य हैं वह अयोग्यरूप दीखते हैं और नाना प्रकार के चित्त-वाले दीखते हैं इन्हों में परीक्षा करनी योग्य है आकाश पृथ्वी के समान और पट्वीजना अग्नि के समान दृष्टिपड़ता है वास्तव में आकाश पृथ्वी नहीं है और न पट्वीजने में अग्नि है इस कारण नेत्रों से भी देखाहुआ प्रयोजन परीक्षा लेने के योग्य है परीक्षा करके विवादों का प्रकट करनेवाला पीछे पश्चात्ताप नहीं करता है हे पुत्र! यह कठिन बात नहीं है जो स्वामी दूसरे को मरवावे लोक में समर्थ पुरुषों की क्षमा प्रशंसा के योग्य शुभकीर्ति को क्या वि-ख्यात करनेवाली है हे पुत्र! तुमने इसको इस अधिकार पर नियत किया और सामन्तों में भी प्रसिद्धहुआ पात्र मनुष्य कठिनता से मिलता है यह तेरा शुभ-चिन्तक जीतारहै जो राजा दूसरे के दोषों से भिन्न या पवित्र नौकर को दण्ड देता है वह दोष से संयुक्त मन्त्रीवाला आप से आप शीघ्र नाश होजाता है स्यार के उस शत्रुसमूह में से कोई धर्मात्मा आया और उसने सब छलकरने का भेद वर्णनकिया तब वह स्यार मृगराज से प्रीतिमान् और पूजित होकर बड़ेस्नेह और मिलाप के साथ शुद्ध जानकर दण्डपाने से छूटा फिर नीतिशास्त्रज्ञ और क्रोध से दुःखित स्यार ने मृगराज को पूजकर देह के त्याग के लिये नियम करना चाहा पूजा से पूजन करते और प्रीति से प्रफुल्लित नेत्रवाले उस शार्दूल ने उस धर्मिष्ठ स्यार को निषेध किया तब स्यार ने नम्रतापूर्वक भ्रान्तचित्त उस शार्दूल को देखकर अश्रुपातयुक्त गद्गद वचनों से कहा कि मैं पहिले आप से पूजित हुआ और पीछे से भी सत्कार किया गया दूसरों के अधिकार पर

नियत होनेवाला मैं आप के पास निवास करने के योग्य नहीं हूं व्याकुल अधिकारहीन प्रतिष्ठारहित नौकर और जो अधिकारी कि शत्रुवों से दुःखी किये गये और लोभी, क्रोधी, भयभीत और जिसको निकृष्टकर्मों का दोष लगाया गया और जो अहंकारी होकर ऐश्वर्य को चाहनेवाला है और जो जीविका त्याग करनेवाला है और जो बहुत व्यसनों के मिलने से दुःखी है और जो कोई धनधान्यसहित गुप्त हुआ है वह सब अप्रीतिकारी और निर्धन हैं फिर तुम अप्रतिष्ठित अधिकाररहित नौकर के विश्वास को कैसे पावोगे और मैं कैसे रहसकूंगा तुमने मुझ को समर्थ जानके परीक्षा लेके लिखपढ़ अधिकार पर नियत किया फिर प्रतिज्ञाओं को तोड़कर मेरा अपमान किया पहिले सभा में जो श्रेष्ठप्रकृतिवाला प्रसिद्ध हुआ उस की प्रतिज्ञा पालन करनेवाले राजा को अप्रशंसा न करनी चाहिये यहां इसप्रकार मुझ अपमान पानेवाले में विश्वास को नहीं पावोगे और तुझ अविश्वासी में मेरे चित्त की व्याकुलता प्रकट होगी मैं शंकायुक्त और भयभीत हुआ और मेरे शत्रु म्लानचित्त असन्तोषी मेरे दोष को देखनेवाले हैं और यह काम बहुत कपट छलवाला है शत्रु दुःख से मिलाप करनेवाला होता है और मिलाप करनेवाला दुःख से शत्रु होता है जो प्रीति कि मिलाप और विरोध नाम दोनों विशेषण रखनेवाली है वह उसके साथ वर्तमान नहीं होती है अर्थात् वह प्रीति स्वामी के अभीष्ट को नहीं करती है कोई स्वामी के प्रिय करने में दृष्टि नहीं आता है अपने और दूसरे के प्रयोजन के कारण गर्जित होते हैं शुद्धचित्त नौकर बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं मनुष्य का जानना कठिन है क्योंकि राजाओं का चित्त स्थिर नहीं है समर्थ और शंका से रहित मनुष्य सौ में से एक मिलता है एकाएकी मनुष्यों का नियत करना और अकस्मात् अधिकार से छुड़ादेना प्रतिष्ठादेना और बुराभला कर्म करना बुद्धि की न्यूनता है इसप्रकार से वह स्यार धर्म, अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले मीठेवचनों को कहकर राजा को प्रसन्न करके वन को चलागया फिर वह बुद्धिमान् स्यार उस मृगराज की शिक्षा को स्वीकार न करके देह त्याग के नियम में नियत होकर देह को त्याग स्वर्ग को गया ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एकसौबारहका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे सर्वधर्मभृतांवर! राजा को क्या करना चाहिये और किस कार्य को करके सुखी होता है इसको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले अच्छा श्रवण करो मैं कार्य के एक निश्चय को कहता हूं जैसे कि इस लोक में राजा को करनाचाहिये और वह करके सुखी होता है इसप्रकार से

न करना चाहिये जैसे कि हम ऊंट के बड़े वृत्तान्त को सुनाते हैं हे युधिष्ठिर! उसको समझो प्रजापति यज्ञ में एक जातिस्मर नाम बड़ा ऊंट हुआ वह महाव्रतवाला ऊंट वन के बीच बड़ी तपस्या करनेलगा उसके तप से समर्थ ब्रह्माजी प्रसन्नहुये और वरमांगनेको इच्छाकरवाई तब ऊंट बोला कि हे भगवन्! जो आप प्रसन्न हैं तो मेरी गर्दन लम्बी होजाय क्योंकि मैं सौयोजन से अधिक चरने को जाता हूं वरदायी ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसाही होय यह उत्तम वर पाकर ऊंट अपने वनको गया तब उस निर्बुद्धि ने वरके पाने से आलस्य किया और काल के मारे उस दुरात्मा ने चरने के निमित्त जाना भी छोड़दिया किसी समय परिश्रम से शान्त होकर अपनी सौयोजन की गर्दन को फैलाकर चरनेलगा दैवयोग से उससमय बड़ी वायु चली तब वह पशु अपनी लम्बी गर्दन को गुफा में रखकर बैठगया फिर सब संसार को व्याप्त करती हुई महावृष्टि हुई तब तो शीत में डूबाहुआ भूख और थकावट से दुःखी जल से पीड्यमान एक शृगाल अपने बालबच्चों समेत उस गुफा में आबैठा तो हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! भूख से महाव्याकुल थकेहुये मांसाहारी शृगाल ने इधर उधर देखकर उस ऊंट की गर्दन को भक्षणकिया जब ऊंट ने अपने को भक्षणहुआ जाना तब महादुःखी हो गर्दन को सिकोड़ने का विचार किया जबतक उस पशु ने गर्दन को ऊपर नीचे की ओर सिकोड़ा तब तक उस स्त्री संयुक्त शृगाल ने गर्दन को भक्षण करडाला तब वह शृगाल ऊंटको मार भक्षण करके आंधी और वर्षा के बन्दहोने पर गुफाके मुख से बाहर निकला इसप्रकार उस निर्बुद्धि ऊंट ने अपना जीव गँवाया आलस्यके करनेसे इसप्रकार के दोषहोते हैं इससे तुम जितेन्द्रिय होकर इसप्रकार के आलस्य को चित्त से दूर करके उद्योगपूर्वक कर्म करो मनुजी ने विजय को बुद्धिरूपी मूल रखनेवाली कहा है इससे बुद्धि से होनेवाले काम उत्तम हैं और शूरता से होनेवाले मध्यम और बड़ीभारी जमात से होनेवाले काम निकृष्ट गिनेजाते हैं बुद्धिमान् जितेन्द्रिय राजा का राज्य दृढ़ होताहै मनुजी ने अत्यन्त इच्छावान् की पूर्ण विजय को भी बुद्धिरूपी मूल रखनेवाली कहा है हे युधिष्ठिर! इस लोक में शास्त्रज्ञ सभासद् रखनेवाले राजा का गुप्त मन्त्र और परीक्षा लेकर कर्म करनेवाले के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं यह सम्पूर्ण पृथ्वी बुद्धि रखनेवाले राजा से राज्य करने के योग्य है हे युधिष्ठिर! प्राचीन समय में यह वचन बुद्धि के ज्ञाता सत्पुरुषों का कहा गया है और मैंने भी शास्त्रकी दृष्टि से तुम को कहा कि तुम बुद्धि के अनुसार कर्म करो॥ २१॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः॥ ११२॥

एकसौतेरहका अध्याय॥

हे पितामह! कठिनता से प्राप्त होनेवाले राज्य को पाकर फिर साधन न करनेवाला होकर अत्यन्त वृद्धिपानेवाले शत्रु के पास कैसे निवासकरे भीष्म जी बोले कि हे भरतवंशिन्! यहां एक प्राचीन इतिहास कहता हूं जिसमें नदियों के और समुद्र के प्रश्नोत्तर हैं कि असुरों के आश्रयस्थान नदियों के स्वामी समुद्र ने अपने उत्पन्न होनेवाले सन्देह को नदियों से पूछा कि हे नदियो! तुम जल से पूर्ण अपनी तरलधार के वेग से जड़समेत बड़े २ भारी वृक्षों को उखाड़कर यहां लाती हो उनमें छोटीदेह और जड़ रखनेवाला तुम्हारे तटोंपर होनेवाला बेत का वृक्ष कभी नहीं देखागया उसको तुम अनादर से नहीं लाती हो अथवा तुम्हारा कोई उपकार किया है जिससे तुम उसको नहीं उखाड़ती हो इसका कारण तुम सबसे मैं सुना चाहता हूं कि क्यों नहीं बेत का वृक्ष तुम्हारे किनारों को छोड़कर यहां आता है वहां नदियों में से श्रीगंगाजी ने समुद्र को ऐसा उत्तर दिया जोकि सार्थक और श्रेष्ठ और सहेतु था कि जो यह स्थावरवृक्ष अपने २ स्थानों में नियत हैं वह सब हमारी शत्रुता से स्थान को त्याग करते हैं परन्तु बेत हमारी शत्रुता से नहीं स्थान त्यागता इसका कारण यह है कि यह बेत का वृक्ष हमारे वेग को आते हुये देखकर झुकजाता है और वह वृक्ष नहीं झुकते फिर वह बेत का वृक्ष नदी का वेग हटजाने पर स्थान पाकर जमजाता है और नियमपूर्वक सदैव जितेन्द्रिय और अनुकूलहोकर झुकता है कभी उपद्रव नहीं करता इस कारण वह नहीं आता है जो ओषधी वा वृक्ष वा गुल्म हवा और जल के वेग से हिलतेझुलते रहते हैं वह नष्ट नहीं होते हैं भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य अत्यन्तवृद्धियुक्त और पकड़ने या मारने में समर्थ शत्रु के वेग को पहिले नहीं सँभालता है वह शीघ्र नष्ट होता है जो ज्ञानी शत्रु के और अपने सार असार पराक्रम को जानता हुआ विचरता है वह नाश को नहीं पाता है इसीप्रकार बुद्धिमान् मनुष्य जब शत्रु को महाबलवान् जानता है तो बेत वृक्ष के समान नम्र होकर रहता है यही बुद्धिमत्ता के चिह्न हैं॥ १४॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

एकसौचौदहका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! सभा के मध्य में पण्डित, मूर्ख, बुद्धिमान्, मूढ़, कठोर मनुष्य जो असभ्य वचन कहें उनको सुनकर राजा क्या करे भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर! सुनो जिस प्रकार यह प्रयोजन सिद्ध कियाजाता है वह यह बात है कि इस लोक में शुद्धचित्त मनुष्य सदैव अज्ञानी के कठोर

वचनों को सहता है कठोरवचन कहनेवाले मनुष्यपर क्षमा करने से उसके पुण्य का भागी होता है और वह क्षमावान् मनुष्य अपने पाप को क्रोधयुक्त मनुष्य पर छोड़ता है रोगी और टिटिहरी के समान अयोग्य वचन कहनेवाले को क्षमा करे सबसे शत्रुता रखनेवाला पुरुष फल को नहीं पाता है वह मनुष्य उस पापकर्म के साथ सदैव अपनी प्रशंसा करता है कि अमुक योग्य पुरुष से मैंने सभा में यह कहा और उसने सुनकर मृतक समान लज्जायुक्त होकर शिर को नीचा करलिया प्रशंसा के अयोग्य कर्म से प्रशंसा करनेवाला निर्लज्ज होता है ऐसा नीचपुरुष युक्ति से क्षमा करने के योग्य है सदैव निर्बुद्धि जो २ कहैं वह ज्ञानी को क्षमा करने केही योग्य है प्राकृतमनुष्य की निन्दा और स्तुति से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जैसे कि वनमें निर्बुद्धि काग के अयोग्य शब्द करने से जो पापकर्म के प्रकटकरने पर वचनोंही से दूसरे के दोष को साबित करता है उस समय उसका प्रयोजन वचनों ही से होजायगा अर्थात् उस मिथ्या दोष लगानेवाले को शापदे वहां मारने का व्यापार नहीं होता है वह मनुष्य मोर के समान गुप्त अंगों को दिखाताहुआ कर्म और वचन आदि के व्यापार से प्रत्यक्ष कहता है कि मेरी माता के पेट में अन्य मनुष्य ने वीर्य डाला है, लोक में जिसके कहने और करने के योग्य कुछ भी नहीं है बुद्धिमान् पवित्र मनुष्य उस निर्बुद्धिता में फँसेहुये के साथ वार्तालाप कभी न करे जो मनुष्य नेत्रों के सामने गुणों का कहनेवाला है और परोक्ष में निन्दा करताहै वह लोक में ज्ञान धर्म से नष्ट होकर कुत्ते के समान है ऐसा मनुष्य जो परोक्ष में निन्दा करता है वह सौ मनुष्यों को भी जो दान देता है और होम करता है उसके फल को क्षणमात्र में नष्ट करता है इस कारण ज्ञानी मनुष्य शीघ्रही उस प्रकार के पापात्मा और असाधुपुरुषों को त्याग करे शिष्टलोगों के मध्य में दुर्वचनों को कहता दुरात्मा पुरुष दोषों को ऐसे प्रकट करता है जैसे कि सर्प अपने फन को जो अज्ञानी उस दुष्टकर्मों को बदला देने की इच्छा करता है वह महादुःख में डूबता है शान्तचित्त मनुष्यों की निन्दा करनेवाले को कुत्ते और गर्जनेवाले मतवाले हाथी के समान त्याग करे, अज्ञानियों के मार्ग में वर्तमान इन्द्रियों के वशीभूत नम्रतारहित शत्रुभाव रखनेवाले सदैव ऐश्वर्य के चाहनेवाले पापबुद्धि मनुष्यों को धिक्कार है ऐसे लोगों के कठोरवचन सुनकर तुम उनको उत्तर मत दो और क्रोधयुक्त मतहो जो स्थिरबुद्धि मनुष्य हैं वह नीचसंगी उत्तमपुरुष की निन्दा करते हैं वह क्रोधयुक्त थप्पड़ मारे या धूलि और भूसे से ढकदे और दांत निकालकर भयभीत भी करता है यह सब बातें अज्ञानी, क्रोधी, निर्दयी मनुष्य में होती हैं जो मनुष्य सभा में दुष्टात्मा दुर्जन मनुष्य की करी हुई निन्दा को क्षमाकरे और सदैव इस

दृष्टान्त को भी पढ़े वह वचनरूप अप्रियता को नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

एकसौपन्द्रहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, पितामह ! मेरा यह बड़ा संशय है वह आप मिटाने के योग्य हैं आप हमारे कुल के उत्पन्न करनेवाले हो हे तात ! दुरात्मा पुरुषों की यह बातें आपने वर्णन कीं इस कारण तुमको बतलाताहूं कि जो राजतन्त्र का हितकारी है कुल का उदयकारी है वह वर्तमान या भविष्यत् काल में मंगल और वृद्धि का करनेवाला पुत्र पौत्रादि को पराक्रमी करनेवाला देश की वृद्धि करनेवाला है और जो खानेपीने की वस्तुवों में देह की हितकारी हैं वह सब आप कहिये और जो राजा राज्याभिषेकयुक्त अपने देश में मित्र और सुहृद्जनों से संयुक्त है वह प्रजा को कैसे प्रसन्न करे और जो राजा इन्द्रियों को आधीन न करने से उनकी प्रीति के आनन्द में मग्न हठी होकर नीचों के ऐश्वर्य का चाहनेवाला है उसके घरानेवाले नौकर विरुद्धता को प्राप्त होते हैं वह राजा नौकरों के उद्योगों से प्राप्त होनेवाले धन आदि से संयोग नहीं पाता है हे बुद्धि में बृहस्पतिसमान ! आप मेरे इस संशय के दूर करने के निमित्त बड़ी कठिनता से जानने के योग्य राजधर्म को कहिये हे पुरुषोत्तम ! तुम हमारे कुलकी वृद्धि के चाहनेवाले हो और एक बड़े ज्ञानी विदुरजी जो सदैव हमको उपदेश करते हैं मैं तुम से कुल का हितकारी और राज्य की वृद्धि का उदय करनेवाला वचन सुनकर सुखपूर्वक अमृत से तृप्त हुये के समान आप को उत्तर दूंगा, सब गुणों से सम्पन्न समीप रहनेवाले नौकर कैसे होने चाहिये, कैसे कुलीन और किसप्रकार के नौकरों के साथ राज्यकाम कियाजाता है, नौकरों से रहित अकेला राजा रक्षित नहीं होता है और यह राज्य और सब प्रजा भी रक्षित नहीं होती है कुलीन राजा उनको चाहता है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन् ! अकेले राजा से राज्य करना असम्भव है हे तात ! साथी न रखनेवाले राजा से कोई अर्थ सिद्ध होना असम्भव है और अर्थ प्राप्त करने पर भी सदैव रक्षाकरना असम्भव है जिसके सबनौकर ज्ञान और विज्ञान में पण्डित शुभचिन्तक कुलीन और प्रीति रखनेवाले हैं वही राज्य के फल को पाता है जिस राजा के मन्त्री कुलीन और गुप्तधन लेकर शत्रु से मिलनेवाले नहीं हैं और साथ रखनेवाले राजा को सलाह देनेवाले शान्तस्वभाव और समय के जानने में पण्डित हैं, व्यर्थकर्मों के न करनेवाले कालज्ञान में विशारद गतबातों का शोच नहीं करनेवाले हैं वह राजा राज्यफल को भोगता है जिसके नौकर सुख

दुःख में एकभाव होकर सहायक और प्रियकारी हैं और राज्य के विचार में तत्पर होकर सत्यवक्ता हैं वह राजा राज्य के फल को भोगता है, जिसके पासके रहनेवाले मनुष्य सदैव पीड्यमान नहीं होते हैं और शिष्ट और कुलीनों का शरण्य है वह राजा राज्यफल को भोगता है जिस राजा के खज़ाने का संचय उन मनुष्यों से वृद्धि कियाजाता है जोकि खज़ाने की वृद्धि करनेवाले विश्वासित और सदैव सन्तोषी हैं वह राजाओं में उत्तम है जिसके नौकर गुप्तधन लेने से शत्रुता न करनेवाले विश्वासित खज़ाने की वृद्धि में लगे हुये पात्ररूप निर्लोभी अन्न आदि के गोदाम में गुणयुक्त हों और नगर में जिसका कारोबार श्रेष्ठ और अदालतों में शंख की स्मृति के अनुसार जिसका निर्णयकरना देखने में आताहो वह राजा अपने धर्मफल को भोगनेवाला है जो राजा मनुष्यों को पारितोषिक आदि के द्वारा स्वाधीन करनेवाला राजधर्मों का ज्ञाता षड्वर्ग को काम में लाता है वह धर्म के फल को भोगता है॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

एकसौसोलहवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जोकि लोक में बड़ा दृष्टान्तरूप और सदैव सत्पुरुषों को करने के योग्य है वह इसी प्रयोजन के समान तपोवन में मैंने सुना है और उत्तम ऋषियों ने परशुरामजीसे कहा है वह यह है कि हिंसकआदि जीवों से व्याप्त किसी महावन में मूलफलके आहार करनेवाले, सावधान, जितेन्द्रिय, दीक्षावान्, शान्तचित्त, वेदपाठी, पवित्र, व्रतों से विशुद्धआत्मा, सदैव सतोगुणवृत्ति एक ऋषि थे उन बुद्धिमान् आसनबद्ध विराजमान ऋषि के शुद्धचित्त को जानकर सब वनचारी जीव उनके सम्मुख वर्तमान हुये उनमें सिंह और व्याघ्रों का समूह और निर्दयी मदोन्मत्त बड़े २ हाथी और नानाप्रकार के व्याघ्र, गैंड़े, रीछ और अन्य बहुत से भयानक पशु थे वह सब रुधिर, मांस के खानेवाले उसके सखा हुये और शिष्यों के समान उस ऋषि के दासरूपहोकर प्रियकारी हुये और सब उनको सखा मानकर अपने २ स्थानों को चलेगये वहां गांव का रहनेवाला एक कुत्ता भी था वह नहीं गया वहीं उनकी रक्षा में रहा वह पशु भक्त प्रीतिमान् सदैवव्रत करने से बलहीन फल, मूल, जल का आहार करनेवाला शान्तरूप अच्छे जीवों की सूरत था वह वृक्ष की जड़ में बैठेहुये ऋषि की प्रीति में बँधाहुआ मनुष्य केसे भाव को पहुँचा तदनन्तर रुधिरभक्षी, मृत्युकाल के समान पराक्रमी, निर्दयी और कुत्ते के निमित्त अत्यन्तप्रसन्न द्वीपी नाम व्याघ्र सम्मुखआया और जिह्वा से ओठों को चाटता, पिपासायुक्त, पूंछ को हिलाता, क्षुधायुक्त हो उसने उस कुत्ते के मांस

को चाहा और हे युधिष्ठिर! वहां जीवन की इच्छा करनेवाले कुत्ते ने उस निर्दयी को आताहुआ देखकर मुनि से कहा कि हे महाराज! यह कुत्तोंका शत्रु द्वीपी नाम व्याघ्र मेरे मारने को आता है इससे आप मेरी रक्षाकरिये यह सुनकर मुनिने कहा कि तुझ को इस द्वीपी व्याघ्र से कभी भय न करनाचाहिये हे पुत्र! यह द्वीपी अपने स्वरूपवाले ही से जुदा होता है यह कहकर उस कुत्ते को द्वीपी के स्वरूप में प्रविष्ट किया जिसका रंग सुनहरा चित्रविचित्र अंग चलायमान दाढ़ होकर निर्भय वन में रहनेलगा जब द्वीपीने उस पशु को अपने समान सम्मुख देखा तो क्षणभरमेंही उसका मित्र हुआ उसके पीछे महाभयानक बड़े दांत और मुख को चाटताहुआ एक व्याघ्र उस द्वीपी व्याघ्र के मांस की इच्छा से उसके सम्मुखआया द्वीपी ने उस क्षुधातुर वनचारी हिंसक व्याघ्र को देखकर मुनि की शरणली तब मुनि ने उसको व्याघ्र बनादिया तब उस शार्दूल ने उसको देख कर नहीं मारा फिर तो उस कुत्ते ने व्याघ्ररूप पराक्रमी मांसाहारी होकर मूल,फलों के खाने की इच्छा नहीं की ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषोडशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

एकसौसत्रहका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि मारेहुये मृगों से तृप्त होकर पर्णशाला के समीपी वृक्ष की जड़पर वह व्याघ्र निर्भय होकर बैठा था दैवयोग से बादल के समान काला मतवाला मेघ समान गर्जना करनेवाला एक हाथी आया तब वह व्याघ्र उस हाथी के भयानक शब्द से भयभीत होकर ऋषिजी के पास जाकर शरणागत हुआ फिर उस महामुनि ने व्याघ्र को हाथी के रूप में समाधिस्थ किया और वह हाथी उस पर्वताकार हाथी को देखकर भयभीत हुआ फिर वह हाथीरूप आनन्द युक्त हो कमल खण्डों से अलंकृत पद्मरेणु से भूषित गेंड़ों के समूहों में विचरने लगा इस आनन्द में इसको बहुत दिवस व्यतीत हुये थे कि पर्वत की कन्दरा में उत्पन्न होनेवाला हाथियों का नाशक मृगेन्द्रों का राजा महाभयानक केशरी सिंह उस देश में आया उस आते महामृगेन्द्र को देख भयभीत कम्पितदेह उस हाथी ने फिर मुनि की शरणली तब उस गजेन्द्र को मुनि ने सिंहरूप बनाया तब वनवासी सिंह उसको देखकर भयभीत हुआ और वह बनाहुआ सिंह मुनि के आश्रम मेंही रहा तब अन्य वनवासी जीव मारे भय के तपोवन के सम्मुख दृष्टि नहीं पड़े दैवयोग से सब जीवों का मारनेवाला महाबली रुधिरभक्षी सब जीवों का भयकारी आठ पैर ऊंचे नेत्रवाला वनवासी शरभ उस सिंह के मारने के लिये उस मुनि के आश्रम में आया तब फिर मुनि ने उस सिंह को मतवाला शरभ बनाया उसको देखकर वह वनवासी शरभ भी भयभीत होकर तपोवन

से भागा फिर वह कुत्ता शरभरूप से आश्रम में रहनेलगा और सदैव मुनि की शरण में आनन्द करनेलगा तब उस शरभ को देख सब वन के जीव जिधर तिधर भागे और यह शरभ भी फल, मूलोंका भोजन त्यागके मांसाहारी होगया और कुत्ते की योनि से उत्पन्न उस शरभ ने सब उपकारों को भूलकर उस मुनि को मारना चाहा फिर मुनि ने ज्ञानचक्षुसे जानकर उस शरभ से कहा कि हे कुत्ते! तैंने कुत्ते से द्वीपीरूप और द्वीपी से व्याघ्ररूप और व्याघ्र से मतवाला हाथीरूप और हाथीहोकर सिंहरूप और सिंहरूप से शरभरूप को पाया मैंने बड़ीप्रीति से तुझ को नाना रूपों में बदला और हे पापिन्! तू मुझसे निरपराधी को मारना चाहता है इस कारण तू उसी अपने कुत्ते की योनि में प्राप्त होजाने के योग्य है तदनन्तर वह मुनियों का शत्रु, दुष्टात्मा, अज्ञानी शरभ फिर कुत्ता होगया ॥२३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

एकसौअठारहका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि पूर्वरूप को प्राप्त होनेवाले उस कुत्ते ने बड़ा कष्ट पाया और ऋषि का फटकाराहुआ पापी वन से भी निकालागया इसप्रकार बुद्धिमान् राजा सत्यता, पवित्रता, स्वरूपता, शास्त्रज्ञता, चलन, रीति, कुलीनता, शान्तता, दया, पराक्रम, प्रभाव, प्रीति, क्षमा आदि सबगुणों को जानकर जो नौकर जिस अधिकार के योग्य होय उसपर नियतकरे और उसकी अच्छेप्रकार से रक्षाकरे, विना परीक्षालिये मन्त्री भी राजा को नियत नहीं करना चाहिये अन्य कुलवाले मनुष्यों से राजा सुखपूर्वक आनन्द और वृद्धि नहीं पाता है निरपराध होनेपर कुलीन नौकर को दण्डदेना राजा को पापयुक्त करता है, अच्छे लोगों की प्रीति से कठिन अधिकार का पानेवाला अन्य घराने का प्राकृत मनुष्य धमकाने से शत्रु होजाता है सुशिक्षित, कुलीन, बुद्धिमान्, ज्ञानविज्ञान में पूर्ण, सबशास्त्रों का ज्ञाता, क्षमावान्, देशी, कृतज्ञ, बलिष्ठ, शान्तचित्त, नम्र, सुशील, निर्लोभी, मासिकपर सन्तोषी, स्वामीके मित्रों का ऐश्वर्य को चाहनेवाला, देशकाल का ज्ञाता, जीवों की प्रसन्नता करनेवाला, सदैव अपने काम में प्रवृत्त, शुभचिन्तक, निरालस्य, आचारवान्, अपने देश की सन्धि,विग्रह के विषयों में प्रवीण, राजा के त्रिवर्ग का जाननेवाला, पुरवासी और देशवासियों का प्यारा मन्त्री होना चाहिये॥

शत्रु की सेना का छिन्नभिन्न करनेवाला, व्यूहों की मुख्यता का जाननेवाला, सेना के प्रसन्न करने में चतुर, देह और अंगों की चेष्टा की मुख्यता का जाननेवाला, यात्रा के कुशल हाथियों की शिक्षा की मुख्यता का ज्ञाता, अनुत्तरज्ञानी, वेद के अनुसार कर्मकर्ता, जितेन्द्रिय, पराक्रमी, उचितकर्मी,

शुद्ध मनुष्यों से संयुत, सुमुख, सुनेत्र, नीतिज्ञ, गुणचेष्टायुक्त सेना का अधिपति नियत करना चाहिये ॥

शीघ्रकर्मी, सूक्ष्म आशय का जाननेवाला, शुद्ध और मृदुभाषी, पण्डित, शूर, धनी, देशकाल का जाननेवाला ऐसे मन्त्री को जो राजा नियत करता है और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाता है उसका राज्य ऐसे वृद्धि पाता है जैसे कि चन्द्रमा की किरणें, ऐसे गुणों से संयुक्त, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा और प्रजापालन में प्रवृत्त राजा वृद्धिपाने के योग्य है, पण्डित, क्षमावान्, पवित्र, देशकाल का जाननेवाला, सेवाकरनेवाला, शास्त्रज्ञ, शास्त्रों का सुननेवाला, उत्तर प्रत्युत्तर और खण्डन मण्डन में कुशल और शास्त्र का स्मरण रखनेवाला, धारणा बुद्धिवाला, न्याय के अनुसार वार्तालाप करनेवाला, जितेन्द्रिय, सदैव प्रियभाषी और शत्रुओं पर भी क्षमावान्, दानविषय में आप कर्म करनेवाला, श्रद्धावान्, सुखदर्शन, पीड्यमान के हाथ में देनेवाला, स्वामी के हित में प्रीतिमान्, अमात्य कर्म में सावधान, निरहंकारी, सत्संगी, राज्य के कामों का देखनेवाला, कार सर्कारी करनेपर मन्त्रियों को पारितोषिक देनेवाला, भक्तों का प्यारा, मनुष्यों की शिष्टाचारी करनेवाला, स्थिरचित्त, प्रसन्नमुख, सदैव नौकरों की इच्छा रखनेवाला, क्रोधरहित, महासाहसी, योग्य दण्ड देनेवाला, न कि दण्ड से रहित धर्म के कामों की शिक्षा करनेवाला, दूतरूप नेत्र रखनेवाला, प्रजा के वृत्तान्तों का जाननेवाला, सदैव धर्म व अर्थ में कुशल, सैकड़ों गुणों से भराहुआ जो राजा है वह चाहने के योग्य है और हे युधिष्ठिर ! युद्धकर्तालोग भी सब गुणों से व्याप्त श्रेष्ठ मनुष्य राज्य के पोषण में सहायक खोजने के योग्य हैं और ऐसेही मनुष्यों की वृद्धि चाहनेवाला राजा कभी अपमान न करे और जिसके युद्धकर्ता युद्ध में अहंकारी, कृतज्ञ, शस्त्रविद्या में प्रवीण, धर्मज्ञ, निर्भय, हाथी और रथ की सवारी में कुशल, बाण और अस्त्रविद्या में पूरे हैं उसी राजा की यह पृथ्वी है, जो राजा सबके प्रसन्न और आधीन करने में प्रवृत्त युद्ध और उद्योग आदि का अभ्यास रखनेवाला और मित्रों से संयुक्त होता है वह राजा राजाओं में उत्तम है, हे भरतवंशिन्! जिसके मनुष्य स्वाधीन हों उन एकहज़ार अश्वारूढ़ों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी विजय के योग्य है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकसौउन्नीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो राजा इसप्रकार कुत्ते के समान नौकरों को अपने २ स्थान और अधिकारोंपर नियत करता है वह राज्यफल को भोगता है, सत्कार कियाहुआ कुत्ता अपने योग्य स्थानों को उल्लंघन करके बड़े अधिकार पर

नियत करना न चाहिये क्योंकि वह अपने स्थान से ऊंचे अधिकार पर पहुँचकर दूसरी भूल करता है, अपने स्वाभाविक गुणों से संयुक्त, अपने कामों में अच्छा प्रवृत्त मन्त्री नियतकरने के योग्य है अन्यस्थानपर राज्य के कार्य पूरे होने के योग्य नहीं हैं जो राजा नौकरों के लिये उनके योग्य अधिकारों को देता है वह राजा नौकरों के गुणों से संयुक्त राज्य के फल को पाता है शरभ शरभ के स्थान में बड़ा सिंह सिंह के स्थान पर और व्याघ्र व्याघ्र के स्थान पर और द्वीपी द्वीपी के स्थान में बुद्धि के अनुसार योग्य अधिकारों पर नियत करके फिर उन नौकरों को विपरीत रीति से नियत करना अयोग्य है जो निर्बुद्धि राजा प्रमाण से बाहर नौकरों को विपरीत अधिकारों पर नियत करता है वह प्रजा को प्रसन्न नहीं करता है सबगुणों का चाहनेवाला उन मनुष्यों को नियत न करे जो अज्ञानी, नीच, अल्पबुद्धि, अजितेन्द्रिय और अकुलीन हैं जो आदमी साधु, कुलीन, शूर, ज्ञानी, दूसरे के गुण में दोष नहीं लगानेवाले, पवित्र, चतुर हों और नीच न हों वह सदैव करने के योग्य हैं जो दासरूप प्रीतिमान् हैं शान्त, शुद्ध और स्वाभाविक उपकारी हैं और अपने स्थान से अलग नहीं कियेगये हों वह राजाओं के प्राणरूप होने चाहिये, सिंह ही सदैव हो और सिंह ही पीछे की ओर हो जो सिंह नहीं है वह सिंह के साथ सिंह के समान फल को पाता है जो सिंह कुत्तों से घिराहुआ सिंह के कर्मफल में चित्त लगा रहा है वह कुत्तों से सेवा कियाहुआ सिंह का फल भोगने को समर्थ नहीं होता हे राजन्! इसप्रकार ज्ञानी, शूर, बहुत शास्त्र का जाननेवाला राजा कुलीन पुरुषों के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी के विजयकरने को समर्थ होता है हे युधिष्ठिर! जो निर्बुद्धि, विद्यारहित, मिथ्यावादी और निर्बल हों ऐसे नौकर राजा लोगों को फलों में नियत करने के योग्य नहीं हैं राजा ऐसे नौकरोंको दिलासा और भरोसादे जोकि स्वामी के कामों में प्रवृत्त और राजा के हितकारी बाण के समान विना रोक के चलते हैं उद्योग में प्रवृत्त होकर राजाओं की ओर से खज़ाना सदैव रक्षा के योग्य है राजा लोग खज़ाने को मूल समझनेवाले हैं और खज़ानाही वृद्धि करनेवाला होता है तेरा गोदाम अनाज आदि से भराहुआ सदैव सत्पुरुषों को सुपुर्द हो और तुम धन धान्य को उत्तम माननेवाले हो और युद्ध में कुशल तेरे नौकर सदैव काम में प्रवृत्त रहैं यहां हाथियों के चलाने आदि में कुशलता इच्छा कीजाती है हे कौरवनन्दन! तुम जाति और बान्धवों की ओर दृष्टिकरनेवाले मित्र सम्बन्धियों से संयुक्त और पुरवासियों के मनोरथों की सिद्धि चाहनेवाले हो, हे तात! तेरी यह दृढ़बुद्धि प्रजालोगों में हितकारी है मैंने कुत्ते के दृष्टान्त को वर्णन किया अब क्या सुनना चाहते हो॥ २०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः॥ ११९॥

एकसौबीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! तुम ने बहुत से राजाओं के वह चलन व्यवहार वर्णन किये जो कि प्राचीन समय में राजधर्म के जाननेवाले प्राचीन आचार्यों ने कहे वही वेदोक्त सनातनधर्म ब्योरेवार वर्णन किया हे पितामह ! राजधर्मों के विशेष उन धर्मों को भी कहिये जिनको अच्छेप्रकार से धारण करसकें भीष्मजी बोले कि सब जीवों की रक्षाही को क्षत्रियों का धर्म माना है उसको जिस प्रकार से करना योग्य है वह मैं कहता हूं कि जैसे मोर चित्रविचित्र परों को धारण करता है उसीप्रकार धर्मज्ञ राजा भी बहुत प्रकार के रूपों को प्रकटकरे जैसे तीव्रता, कुटिलता, सत्यता और सीधेपने को धारण करता है वैसे ही न्याय और बुद्धिबल में प्रवृत्त होकर सुख को पाता है जिस प्रयोजन में जैसे रूप से मनोरथ सिद्ध होता जाने उसी वर्ण और रूप को दिखावे बहुरूप राजा का सूक्ष्मअर्थ भी पीड़ा को नहीं पाता है, सदैव गुप्तवार्ता का रक्षा करनेवाला ऐसाहो जैसे कि शरद्ऋतु का मौन हुआ मोर होता है शास्त्र में प्रवीण श्रीमान् राजा शुद्धवचन और शुद्ध देहवाला हो और आपत्ति के द्वारों पर सावधानी से ऐसे वर्तमानहो जैसे कि वर्षा से उत्पन्न होनेवाले पर्वतों के जल झरनों पर वर्तमान होते हैं और सिद्ध ब्राह्मणों का शरणागत हो, अर्थ की इच्छा करनेवाला राजा शिखा को धर्मध्वजारूप करे और दण्ड में सदैव सन्नद्ध होवे और उसको बड़ी सावधानी से करे लोक की आमद और खर्च को देखके बड़े वृक्षवाले वन को निचोड़े अर्थात् धनरूप रस को लेवे, अपने समूह में शुद्धचित्त होवे और शत्रु के खेतों को घोड़े आदि के पैरों से सत्यानाश करे और अपने पक्ष को खूबदेखे शत्रु के मित्रों को चाहे और शिकारबाज़ी के बहाने से खूब भ्रमण करताहुआ शत्रुवों के पक्षवालों को ऐसा कम्पायमान करे जैसे कि वनों में फूलों को ऊंचे और वृद्धि पानेवाले पहाड़ों की समानता रखनेवाले राजाओं को नष्टकरे और अविज्ञात स्थान में प्रवेश करके गुप्तयुद्ध को करे और जैसे वर्षाऋतु में सायंकाल के समय मोर निर्जन स्थान में गुप्त होता है इसीप्रकार मोर के समान स्त्रियों के साथ महल में निवासकरे परन्तु कवच को नहीं त्यागे आप अपनी रक्षाकरे, दूतों के बतायेहुये स्थानों पर शत्रु के लायेहुये वर्णरूप पाशों को अपनी देह से जुदाकरे कठिनता से निश्चय होनेवाले पाश ज्ञान होनेपर उस कपटभूमि को पाकर अपने को उससे मिलावे तब नष्टता को प्राप्त होता है उन बड़े विषभरे क्रोधी मनुष्यों को मारे जो कि कुटिलता किया करते हैं शत्रु की सेना के पक्षों का नाशकरे और दृढ़मूल रखनेवाले मन्त्री और शूरों को नियतकरे और सदैव मोर के समान इच्छा के अनुकूल उत्तम कर्मों

को करे और सब ओर से बुद्धि को ऐसे प्राप्त करे जैसे कि घनेवनों में टीड़ियों का समूह वृक्षों को बेपत्ते करता है इसप्रकार से राजा मोर के समान अपने राज्य की रक्षाकरे और वह चतुर मनुष्य नीति उत्पन्न करनेवाली बुद्धि को धारणकरे और अपनी बुद्धि से चित्त को स्वाधीन करना और दूसरे की बुद्धि से दृढ़ निश्चय करना और शास्त्र से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि के द्वारा अपने गुणों का प्राप्त होना यह शास्त्र का प्रयोजन है शत्रु को मीठेवचनों से विश्वास दिलावे और अपनी सामर्थ्य को देखे, अपने विचार से अपनी बुद्धि को भ्रमावे जो कि सामनीति से संयुक्त बुद्धि रखनेवाला हो और कर्तव्य, अकर्तव्य कर्मों का जारी करनेवाला हो उस गम्भीरबुद्धि पण्डित को योग्य उपदेश होने पर उपदेश का करना वृथा है अर्थात् उपदेश की आवश्यकता नहीं है चाहे वह ज्ञानी बुद्धि में बृहस्पतिजी के भी समान हो और निर्बुद्धिताके बाद को करे वह शीघ्रही ऐसे विश्वास को प्राप्त होता है जैसे कि जल में डाला हुआ गर्मलोहा सर्दी को प्राप्त होता है, राजा अपने और दूसरे के सब कामों को जो कि शास्त्रों से उपदेश हुयेहों जारीकरे प्रबन्ध की रीतियों का जाननेवाला राजा मृदुस्वभाव ज्ञानी और शूर को और जो दूसरे महाबलवान् हैं उनको अपने राज्य के कामोंपर नियतकरे फिर अपने योग्य अधिकारों पर नियत होनेवाले पुरुषों को देखकर उनसब का ऐसा द्रष्टा हो जैसे कि वीणा के बड़े स्वर को देखता है धर्मों की अविरोधता से सबका हितकरे जो राजा यह मानता है कि यह मेरा है वह पर्वत के समान अचल है प्रिय, अप्रिय को समानकर निर्णय को बुद्धि में दृढ़ नियत करके धर्म की ऐसे रक्षाकरे जैसे कि सूर्य बड़ी किरणों को धारण करके प्रजा का पोषण करता है प्रकृति देश और घराने के जाननेवाले नम्रभाषी तरुणावस्था में निर्दोषी हितसंयुक्त व्याकुलतारहित निर्लोभी शिक्षावान् शान्तचित्त धर्मों में कुशल, धर्म, अर्थ के रक्षक पुरुषों को राजा सब अधिकारों पर नियतकरे कर्म में प्रवृत्त राजा इसप्रकार से राज्य के कामों की प्राप्तहोनेवाली यात्रा में कुशल हो और प्रसन्नचित्त दूतों से संयुक्त हो उस सफल क्रोध हर्षवाले और राज्यकार्य के देखनेवाले खज़ाने पर अपना विश्वास रखनेवाले राजा को यह धन से पूर्ण पृथ्वी महाधन ऐश्वर्य की देनेवाली है जिसकी कृपालुता प्रकट है और दण्ड उचित है और जिसका देश और देह रक्षित है वह राजा राजधर्मों का जाननेवाला है और जैसे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणों से संसार को देखता है उसीप्रकार सदैव अपने देश को देखे और दूतोंसमेत अपनी प्रजा के सब वृत्तान्तों को जाने उसीप्रकार अपनी बुद्धि से कर्म करे, राजा अपने वर्तमान समय को जानकर अपने धन को नहीं वर्णन करे वह बुद्धिमान् गौ, भैंस के समान देश को प्रतिदिन दुहे, जैसे क्रमपूर्वक

भौंरा रस को पीता है उसी प्रकार राजा धन को लेकर संचयकरे, जो धन रक्षित धन से अधिक होय उसको धर्म के कामों में खर्चकरे जो राजा कि शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान् है वह खज़ाने से धन को कभी न दे, थोड़ेधन का और शत्रु के मनुष्यों का अपमान नहीं करे, बुद्धि से आत्मा को जाने और निर्बुद्धियोंपर विश्वास न करे धैर्यता, चातुर्यता, जितेन्द्रिय होना, बुद्धि, देह, पृथ्वी, शूरता और देशकाल में असावधान न होना यह आठ बातें थोड़े या बहुत धन में वृद्धिकारक हैं, घृत से सींचीहुई थोड़ी अग्नि भी वृद्धि पाती है और एकबीज हज़ार रूप से उत्पन्न होता है इसकारण बड़ी आमद और खर्च को सुनकर थोड़े धन का अपमान न करे बालक, तरुण, वृद्ध कैसाही जो शत्रु है वह असावधान रहनेवाले पुरुष को सदैव मारता है दूसरा राज्य का चाहनेवाला काल के द्वारा उसकी जड़ को काटता है, जो कालज्ञ है वह राजाओं में श्रेष्ठ इसकी कीर्ति को हरण करके धर्म का नाशकर अर्थ में इसके बड़े पराक्रम को नष्ट करता है, विरोधी शत्रु निर्बल अथवा बलवान् कैसाही हो उससे राजा असावधान न रहै संचित धन की नष्टता वा वृद्धि वा रक्षा वा ऐश्वर्य और विजय आदि को जानकर शत्रु से सन्धिकरे या युद्धकरे इसहेतु से बुद्धिमान् राजा अपनी बुद्धि से रक्षा कियाजाता है, प्रकाशित बुद्धि पराक्रमी को मारती है और बुद्धि से वृद्धि पानेवाली सेना रक्षित रहती है और वृद्धि पानेवाला शत्रु भी बुद्धि से पीड़ा को पाता है जो काम बुद्धि के अनुसार होता है वही उत्तम है पण्डित निर्दोष और सब मनोरथों का चाहनेवाला राजा थोड़े पराक्रम से भी उनको प्राप्त करता है अपने को इच्छाओं से संयुक्त चाहता है अर्थात् लोभी और अहंकारी होता है वह कल्याण के पात्र को थोड़ा भी नहीं भरता है इसकारण प्रजा का प्यारा राजा सब से राज्य की भेज ले व प्रजापर बिजली के समान गिरकर देरतक पीड़ादेने से भी पराक्रमी नहीं होता विद्या, तप और बहुतसा धन यह सब उद्योग से मिलसक्ते हैं और बुद्धि के आधीन हैं इस कारण से उद्योग को बड़ाजाने जिस देह में इन्द्र, विष्णु, सरस्वती आदि देवता और सब जीव सदैव निवास करते हैं इसहेतु से ज्ञानी मनुष्य देह का अपमान नहीं करे लोभी पुरुष को सदैव दान के द्वारा मारे लोभी दूसरे के धन से शान्त नहीं होता है जो निर्धन हैं वह सबकर्म के फल सिद्धकरने में लोभी हैं वह सुख के लोभ से धर्म, भोग, पुत्र और स्त्री की इच्छाकरते हैं इसलोक में लोभी पुरुष के भीतर सब दोषही होते हैं इसकारण राजा लोभी को अधिकारों पर नियत नहीं करे पूरी बुद्धि से नीचपुरुष को चेतावै है इसलिये ज्ञानी राजा शत्रुवों के प्रारम्भ कर्म और सब अर्थों को भी नष्टकरे हे युधिष्ठिर! ब्रह्ममण्डली में मुख्य वृत्तान्त का जाननेवाला मन्त्रियों से रक्षित कुलीन राजा सामन्तों को

अपने आधीन करने को समर्थ है बुद्धिसंयुक्त मिश्रित कहेहुये राजधर्मों को बुद्धि से समझो, जो राजा गुरु के पास जाकर इन धर्मों को हृदय में धारण करे वह संसार की रक्षाकरने को समर्थ है जिस राजा का सुख अनीति उत्पन्न दैव से मिलनेवाला बुद्धि के अनुसार हठ से वर्तमान दीखता है उसको उत्तमगति और राज्य के सुख प्राप्त नहीं होते धनों से उत्तमबुद्धि और संसार से पूजित शूरता आदि गुणों से सम्पन्न युद्ध के बीच पराक्रम में देखेहुये पुरुषों का समूहों में देखकर सावधान राजा चढ़ाईकरनेवाले शत्रुओं को निशान करके थोड़ेदिनों में ही मारता है नानाप्रकार के मार्ग और कामों से युक्तियों को देखे और विना युक्ति के राय को संयुक्त नहीं करे, निर्दोषी मनुष्योंमें भी दोषों का देखनेवाला राजा उत्तमधन और सुन्दर कीर्ति और धन को अच्छे प्रकार से नहीं भोगता ज्ञानी राजा मित्रों की अच्छी परीक्षा लेकर जिन दो मित्रों को विचार करके एकही अधिकार पर नियत करे उन दोनों के मध्य में जो भारीबोझे को उठावे उसकी प्रशंसाकरे मेरेकहेहुये उन राजधर्मों के ऊपर ध्यान करो और मनुष्यों की रक्षाकरने में बुद्धिको प्रवृत्तकरो तुम सुख से पुण्य के फल को पावोगे हे राजन्! सबलोक धर्मही को मूल जानता है ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकसौइक्कीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने यह सनातन राजधर्म कहा और दण्ड बड़ासमर्थ है सब दण्डों में वर्तमान है देवता, ऋषि, महात्मा, पितृ, यक्ष, राक्षस, पिशाच, साधुगण और अधिक करके लोक में सबजीव और पशुपक्षियों के मध्य बड़ातेजस्वी सर्वव्यापी दण्डही उत्तम है आप ने इसप्रकार कहा है कि देवता, असुर, मनुष्य, जड़, चैतन्य जीवों के साथ सम्पूर्ण संसार को दण्ड में वर्तमान देखो सो हे पितामह! मैं इसको मूल समेत जानना चाहता हूं कि दण्ड कौन है, कैसा है कैसा रूप है और उसका मुख्यस्थान कौनसा है और किसका आत्मा है कैसे उत्पन्नहुआ और क्या आकृति है और प्रजा के मध्य किस प्रकार जागता है आदि अन्त में रक्षा करता हुआ जागता है पहिले कौनरूप से जानाजाता है और दण्ड का कौनसा नाम उत्तम है, दण्ड किसमें नियत करनेवाला है और इसकी कौन गति कहीजाती है इन ग्यारह प्रश्नोंमें दण्ड कौन है इसका उत्तर भीष्मजी देते हैं कि हे युधिष्ठिर! सुनो जो दण्ड है और जैसे व्यवहाररूप है और जिसके आधीन है केवल वही दण्ड है और हे तात! अच्छीतरह धर्म का प्रकट करनेवाला व्यवहार इच्छा कियाजाता है, लोकों में सावधान बुद्धि राजा के धर्मका लोप कैसे नहीं होता, जैसे कि इसप्रकार के व्यवहार का

वह कर्म इच्छा कियाजाता है जिस में कुमार्ग के द्वारा दूसरे के धन का लेना नहीं होता है हे राजन्! प्राचीनसमय में मनुजी ने भी आदि में इसको कहा, प्रिय, अप्रिय जिसमें समान हैं उस जारी कियेहुये दण्ड से जो राजा अच्छे प्रकार से प्रजा की रक्षा करता है केवल वही धर्म है और प्राचीन समय में जिसप्रकार मनुजी ने यह वचन कहा है और जो मैंने कहा वह ब्रह्माजी का महावचन है यह वचन प्रथम कहागया इस हेतु से इसको पहिला वचन जानो, इसलोक में वह दण्ड व्यवहार के प्रकट करने से व्यवहार नाम कहा जाता है अच्छे प्रकार जारी होनेवाले दण्ड में तीनवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम बराबर जारी होते हैं रूप से अग्नि के समान प्रकट होनेवाला अर्थात् रुद्ररूप दण्ड परम देव है वह दण्ड नीले कमल की समान श्याम चार दाढ़ चार भुजा आठ चरण बहुत से नेत्र तीक्ष्णकर्ण खड़ेरोम देहवाला जटाधारी दो जिह्वा रखनेवाला रक्तमुख मृगराज के चर्म का धारण करनेवाला है वह अजय दण्ड सदैव इस उग्ररूप को धारण करता है अर्थात् खड्ग, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मुसल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, दुधारा, खड्ग, लोष्ट और इसलोक में जो कोई शस्त्र हैं उनका रूप मूर्तिमान् दण्डही भेदता, छेदता, पीड़ादेता, घात करता, चीरता, गिराता, मारता, चारोंओर दौड़ता घूमता है खड्ग से घात करनेवाला और तीक्ष्ण कवच रखनेवाला दुःख से धारण होनेवाला लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ विजयरूप धर्मरूप हाकिम और सनातन व्यवहाररूप है शास्त्र, ब्राह्मण और मन्त्ररूप प्राचीन धारणा बुद्धिवाले आचार्यों में उत्तम धर्मरक्षक अविनाशी देवता सीधा चलनेवाला सदैव गमन करनेवाला सबसे पहिले उत्पन्न होनेवाला असंग रुद्र का पुत्र मनु बड़ा कल्याण करनेवाला है हे युधिष्ठिर! दण्ड के यह सब नाम कहे अब दण्ड के मुख्यरूप को कहते हैं कि दण्डही भगवान् विष्णु हैं और दण्डही प्रभु नारायण हैं सदैव महारूप को धारण करता महापुरुष कहाजाता है अब दण्ड को शक्तिरूप वर्णन करते हैं जिसप्रकार ब्रह्मकन्याओं को लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, दण्डनीति और जगद्धात्री कहते हैं यह सब दण्डही बहुत से रूप धारण करनेवाला है अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, बल, निर्बल, प्रारब्धहीन, प्रारब्धी, पुण्य, पाप, गुण, अवगुण, इच्छा, अनिच्छा, ऋतु, मास, रात्रि, दिवस, क्षण, सावधानी, असावधानी, प्रसन्नता, क्रोध, शान्तचित्त, बाहर, भीतर, प्रारब्ध, उद्योग, मोक्ष, बन्धन, भय, निर्भय, हिंसा, अहिंसा, तप, यज्ञ, संयम, विष, निर्विष, अन्त, आदि, मध्यकी क्रियाओं का प्रपंच, अहंकार, भूल, एकता, कपट, धैर्य, न्याय, अन्याय, बल, अबल, विरुद्धता, व्यय, अव्यय, नम्रता दान, काल, अकाल, मिथ्या, बुद्धिमानी, सत्य, श्रद्धा, अश्रद्धा, नपुंसकता, निश्चय, लाभ, हानि, विजय, पराजय, कठोरता, नम्रता, मृत्यु

शास्त्र, अशास्त्र, शत्रु, अशत्रु, कार्य, अकार्य, निन्दा, अनिन्दा, लज्जा, निर्लज्ज, धनी, निर्धनी, तेज, कर्म, पण्डिताई, सामर्थ्य, वचन, बुद्धिमानी, सिद्धान्त इत्यादि इस दण्ड के बहुतरूप हैं जो इस लोक में दण्ड नहीं होय तो परस्पर में एकएक को मारडालें हे युधिष्ठिर ! दण्ड के ही भय से परस्पर नहीं मारते हैं इस लोक में दण्ड से प्रतिदिन रक्षित प्रजा राजा की सदैव वृद्धि करती हैं इसहेतु से दण्ड का स्थान बड़ा है यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है किसका आत्मा है किसप्रकार उत्पन्नहुआ और किस रूप का है इन तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हैं हे राजन् ! इस लोक को दण्ड शीघ्र वर्तमान करता है ऐसे निश्चयवाला धर्म है और वह ब्राह्मणों में वर्तमान होता है किसप्रकार जागता है इसका उत्तर देते हैं कि धर्मसंयुक्त ब्राह्मण देवताओं से संयुक्त होते हैं यज्ञ वेदों से उत्पन्न हुआ और देवताओं को प्रसन्न करता है और प्रसन्न होकर देवता सदैव इन्द्र से वार्तालाप करते हैं इन्द्र प्रजा पर कृपा करके अन्न को देता है सब जीवों के सदैव अन्नमय प्राण हैं इसी के बल से प्रजा नियत रहती है इनके बीचमें दण्ड जागता है ऐसे प्रयोजनवाले दण्ड ने क्षत्रियरूप को पाया सदैव सावधान अविनाशी दण्डप्रजा की रक्षा करताहुआ जागता है ईश्वर पुरुष, प्राण, पराक्रम, धन, प्रजापति, भूत, आत्मा, जीव इन आठ नामों से भी कहने में आता है ईश्वर ने इस राजा में वह दण्डनीति और ऐश्वर्य धारण किया है जो कि पराक्रम से संयुक्त है और सदैव पांचरूप रखनेवाला है वह पांचरूप यह हैं धर्म, व्यवहार, धर्मेश्वर, जीव, रूप, कुल, महाधनी, मन्त्री, बुद्धि और सब प्रकार के जो पराक्रम कहेगये सो हे युधिष्ठिर ! इन आठ दिव्य पदार्थों के द्वारा दूसरा बल अर्थात् खज़ाने की वृद्धि प्राप्त करनी चाहिये हाथी, घोड़े, रथ, पदाती, नौका उसी प्रकार नौकर या बेगारी देशीवस्तु कम्बलआदि यह आठ अंग रखनेवाला पराक्रम कहा अथवा सेना और राज का दण्डही अंग है इसके विशेष शेषवार्ता युक्त दण्ड के अंग रथ के सवार, हाथी के सवार, अश्वसवार, मन्त्री, वैद्य, भिक्षुक, अदालत के हाकिम, मुहूर्त रखनेवाले दैवचिन्तक, खज़ाने के मित्र यह सब सामान हैं सात प्रकृति और आठअंगों समेत इसका देहकहागया है जो लोक में दण्ड का ज्ञाता है वह राज का अंग है और दण्डही उत्पत्तिस्थान है ईश्वर ने किसी कारण से बड़ीयुक्ति के साथ क्षत्रिय को दण्ड सुपुर्द किया यह समदर्शी दण्ड सनातन है संसार की रक्षा और अपने धर्म के नियतरखने के निमित्त ब्रह्माजी का दिखायाहुआ धर्म राजाओं को महापूजनीय है इसीप्रकार वादी और प्रतिवादी के कारण पैदाहुआ दूसरा व्यवहार है इसी निमित्त जो व्यवहार मनोरथों से भराहुआ देखागया उसका नाम भर्तृप्रत्यय लक्षण है फिर व्यवहार वेदोक्त और वेदमूल कहाजाता इसीप्रकार दूसरा व्यवहार कुलाचार

से संयुक्त और शास्त्रोक्त है जो यह पहिला भर्तृप्रत्यय लक्षण नाम दण्ड कहा वह हम राजा लोगों में जानना चाहिये इस हेतु से दृष्टिआनेवाला दण्ड भी व्यवहाररूप कहागया है और जो व्यवहार कहागया है वह वेदोक्त है जो वेद से प्रकट होनेवाला है वह गुणदर्शन नाम धर्म है जो कि कर्म के कारण से ज्ञानियोंने धर्म के लिये उपदेशाकिया हे राजन्! ब्रह्माजी का दिखाया हुआ दण्ड प्रजा का रक्षक है वह सत्यबुद्धि और ऐश्वर्य का बढ़ानेवाला दण्ड तीनों लोकों को धारण करता है जो दण्ड है वह देखाहुआ हमारा सनातन व्यवहार है जो व्यवहार देखा गया वह वेद है यह निश्चयपूर्वक निर्णय कियागया है जो वेदहै वही धर्म है जो धर्म है वही सत्यमार्ग है पितामह ब्रह्माजी पहिले प्रजापतिहुये तब संसारकेस्वामी देवता असुर राक्षस मनुष्य और सर्पोंसमेत सब लोकों के ईश्वरहुये इस कारण यह भर्तृप्रत्यय लक्षण नाम हमारा व्यवहार जारीहुआ इसी कारण उन ब्रह्माजीने इस व्यवहारदर्शी वचन को कहा माता, पिता, स्त्री, पुरोहित यह सब उस राजा की ओर से दण्ड के योग्य हैं जो राजा अपने धर्म से राज्य पै नियत है ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एकसौबाईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हम यहां इस प्राचीन इतिहास को भी कहते हैं कि अंग देशों में महातेजस्वी वसुहोम नाम राजा प्रसिद्धहुआ सदैव धर्म का ज्ञाता महा-तपस्वी वह राजा अपनी रानी समेत उस मुंजपृष्ठपर्वतपर गया जो पितृ और देव ऋषियों से पूजित था वहां हिमालय के शिखरपर सुवर्ण पर्वत के समान मुंजावट में जहां श्रीरामचन्द्रजी ने जटाहरण उपदेशाकिया था हे राजेन्द्र! तभी से वह तेजव्रतवाले ऋषियों ने उस रुद्रसेवित देश का नाम मुंजपृष्ठ रक्खा तब वहां वेदोक्त बहुत गुणों से संयुक्त और ब्राह्मणों का प्यारा वह राजा देवऋषियों के समान होताहुआ दैवयोग से इन्द्र का प्रतिष्ठित मित्र शत्रुहन्ता महाप्रतापी राजा मान्धाता उसके पास आया वह मान्धाता उस वसुहोम राजा के पासजाकर नम्रता-पूर्वक दण्डप्रणाम करके उसके आगे वर्तमानहुआ वसुहोम ने भी पाद्यअर्घ दिया और सप्तांग रखनेवाले राज्य की कुशल को पूछकर उस राजा मान्धाता से जो कि प्राचीन समय में सत्पुरुषों से सेवित और बुद्धि के अनुसार धर्म में प्रवृत्त था कहा कि हे राजन्! आप का क्या शिष्टाचार करूं तब मान्धाता ने उस महाज्ञानी वसुहोम से कहा कि हे राजन्! तुम ने बृहस्पति जी के सब मत को पढ़ा और इसीप्रकार शुक्रजी के भी शास्त्र को जाना सो मैं यह जानना चाहता हूं कि दण्ड किसप्रकार उत्पन्न होता है क्या वह पहिले जागता है या उत्तम कहाजाता है वह दण्ड क्षत्रियों में कैसे नियतहुआ यह आप मुझ से

कहिये मैं आप को गुरुदक्षिणा दूंगा वसुहोम ने कहा कि हे राजन्! जिसप्रकार से संसार का वशकरनेवाला धर्म का आत्मा सनातन नीतिदण्ड प्रजा की रक्षा के लिये उत्पन्नहुआ उसको सुनो कि यज्ञ की इच्छा करनेवाले ब्रह्माजी ने जब अपने योग्य ऋत्विज् को नहीं पाया तब उसने अपने गर्भ को बहुत वर्षों तक शिरमें धारण किया और हज़ार वर्ष के पीछे वह गर्भ छान लेतेही गिरपड़ा वह क्षुपनाम प्रजापतिहुआ और वह उसके यज्ञ में ऋत्विज् हुआ उस ब्रह्मयज्ञ के जारी होने पर प्रधानरूप के देखने से वह दण्ड अन्तर्धान हुआ अर्थात् दीक्षारूप में नियतहुआ उस दण्ड के अन्तर्धान होने पर प्रजाओं की मिलावटहुई तब योग्य अयोग्य कर्म और भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुवों का विवेक नहीं रहा और भोजन करने न करने के योग्य वस्तु भी वर्तमान नहीं हुई तो सिद्ध कहां से होय एक दूसरे को मारता था उस समय भोग्य अभोग्य स्त्री का विचार नहीं होता था अपना और दूसरे का धन समान गिनते थे परस्पर में ऐसे घात करते थे जैसे कि कुत्ते मांस को टुकड़े २ करते हैं पराक्रमी निर्बलों को मारते थे ऐसी सब मर्यादा वर्तमान हुई तब ब्रह्माजी ने सनातन वरदायी भगवान् विष्णुदेवता और महादेवजी को अच्छे प्रकार से पूजन करके यह कहा कि हे केशवजी! आप यहां कृपाकरिये यहां वर्णों का मिलाप जैसे न हो वही आप कीजिये तदनन्तर देवताओं में उत्तम त्रिशूलधारी भगवान् शिवजी ने देरतक ध्यान करके अपने आत्मारूप दण्ड को अपनी देह से उत्पन्न किया उस धर्म चरण से नीतिनाम देवी सरस्वती उत्पन्नहुई उसने तीनों लोकों में दण्डनीति को प्रसिद्ध किया फिर भगवान् शिवजी ने देरतक ध्यान करके समूहों का एक २ स्वामी नियत किया अर्थात् इन्द्र को देवताओं का स्वामी और सूर्य के पुत्र यमराज को पितरों का स्वामी और कुबेरजी को धन का और राक्षसों का स्वामी किया और सुमेरु को पर्वतों का और महासमुद्र को नदियों का स्वामी बनाया जल और असुरों के समूह का वरुणजी को स्वामी नियतकिया फिर मृत्यु को प्राण का ईश्वर और अग्नि को तेजों का स्वामी किया प्रभु ईशान महात्मा महादेव विशालाक्ष सनातनदेव को भी रुद्रों का स्वामी नियत किया वशिष्ठजी को ब्राह्मणों का अग्नि को वसुवों का सूर्य को तेजों का चन्द्रमा को नक्षत्रों का स्वामी किया अंशुमान् को वीरुधों का और द्वादशभुजधारी षण्मुख कुमार स्कन्द को देवता आदि सब जीवों का राजा किया उत्पत्तिनाशकारक काल को चार प्रकारवाली मृत्यु और दुःख सुख का स्वामी बनाया कुबेरजी राजाओं के राजा हुये और शूलधारी शिवजी सबरुद्रों के स्वामी हुये और समीपही उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मपुत्र क्षुप नाम को प्रजाओं के सब धर्मधारियों का बड़ा स्वामी किया उसके पीछे महादेवजी ने बुद्धि के अनुसार उस यज्ञ के जारी होने पर धर्म के

रक्षक दण्ड को विष्णुजी के सुपुर्द किया और विष्णु ने अंगिरा ऋषि को दिया अंगिरा ने इन्द्र और मरीचि को दिया मरीचि ने भृगुजी को दिया भृगुजी ने उस सावधान दण्ड धर्म को ऋषियों को दिया ऋषियों ने लोकपालों को दिया और लोकपालों ने क्षुप को दिया क्षुपने सूर्य के पुत्र मनुजी को दिया उन्हों ने अपने पुत्रों को दिया और कहा कि न्याय के अनुसार विचारकर धर्म से दण्ड जारी करना चाहिये अपने आप स्वतन्त्रता से दुष्टों का दण्ड देना दण्ड नहीं है जुर्माना लेना बाहरी कर्म है अर्थात् केवल भयभीत करने के निमित्त है खज़ाने की वृद्धि के लिये नहीं है अंगों से रहित करना देहघात और देह की अनेक पीड़ादेना देह को गिराना और देश से निकालना छोटेकारणों से नहीं होता है सूर्य के पुत्र मनु ने उनसे वर्णन किया कि यह दण्ड क्रम से प्रजा की रक्षापूर्वक सदैव जागता रहता है और इन्द्र भी जागते हैं और इन्द्र से अग्नि देवता जागते हैं प्रथम वरुणदेवता जागते हैं वरुण से प्रजापति प्रजापति से नीतिरूप धर्म जागता है धर्म से ब्रह्माजी का पुत्र सनातन व्यवसाय नाम जागता है व्यवसाय से चारो ओर रक्षा करता हुआ तेज जागता है उस तेज से ओषधियां और ओषधियों से पहाड़ जागते हैं पहाड़ों से रस और रसों से गुण और निर्ऋति देवी जागती है निर्ऋति से सब ज्योतियां जागती हैं ज्योतियों से वेद की प्रतिष्ठा और उस से हयग्रीव प्रभु जागते हैं उस हयग्रीव से प्रभु पितामह ब्रह्माजी जागते हैं ब्रह्माजी से भगवान् महादेव शिवजी जागते हैं शिवजी से विश्वेदेवा और विश्वेदेवाओं से ऋषि ऋषियों से चन्द्रमा चन्द्रमा से सब सनातन देवता और देवताओं से लोक में ब्राह्मण जागते हैं और ब्राह्मणों से राजा लोग जागते हैं वही धर्म से संसार की रक्षा करते हैं और राजाओं से स्थावरजीव और प्रजा के लोग जागते हैं उन्हों में दण्ड जागता है ब्रह्माजी के समान तेजस्वी दण्ड सब को धर्षण करता है और काल आदि, मध्य, अन्त तीनों समय जागता है सबलोकों के ईश्वर महादेव शिवजी महाराज सदैव जागा करते हैं यह दण्ड आदि, मध्य, अन्त इन तीनों समयों में प्रसिद्धहुआ धर्म का जाननेवाला राजा न्याय के अनुसार इसको करे भीष्म जी बोले कि जो मनुष्य वसुहोम के इस मत को सुने और सुनकर अच्छेप्रकार से काम में लावे वह सब मनोरथों को सिद्धकरे हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर ! यह दण्ड धर्मसे विरुद्ध होनेवाले सब लोगों को बदला देनेवाला मैंने तुझ से कहा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्वाविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

एकसौतेईसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे तात ! मैं धर्म, अर्थ, काम के निश्चय को सुना चाहता हूं

संसार का सब कार्य किन २ वस्तुओं में नियत होता है धर्म, अर्थ, काम का मूल क्या है तीनों का उत्पत्तिस्थान क्या है वह परस्पर में संयुक्त होते हैं और किसप्रकार से जुदे २ होजाते हैं भीष्म जी बोले कि जब मनुष्य शुद्ध-चित्त होते हैं तब पृथ्वी पर धर्म को आगे करनेवाले अर्थ, धर्म, काम यह तीनों ऋतुकाल में बुद्धि के अनुसार स्त्री के गर्भाधान में निश्चय आकर संयुक्त होते हैं दैव से मिलाहुआ अर्थ, धर्म का और काम, अर्थ का मूल कहा जाता है और सबका मूल संकल्प कहाजाता है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तीनों संकल्प से उत्पन्न होते हैं और संकल्प विश्वरूप है और सब विषय आहार सिद्धि के निमित्त हैं और निवृत्ति मोक्ष इस त्रिवर्ग का मूल कहाजाता है अर्थात् आदि में मोक्ष के लिये इन तीनों का वर्णन है धर्म से देह की रक्षा है और अर्थ धर्म के निमित्त होता है और काम ऋतु फलवाला है ऐसी दशा में वह सब रजोगुणप्रधान हैं धर्म नीरोगता के निमित्त है और अर्थ धर्म की इच्छा के लिये है काम इन्द्रियों की तृप्ति के लिये है इनतीनों में जो श्रेष्ठ होय उसको सेवनकरे अर्थात् धर्म चित्त की शुद्धि के निमित्त और अर्थ निष्काम कर्म के लिये और काम केवल देह के ठहरने के निमित्त है इसप्रकार से करना चाहिये इन धर्म, अर्थ, काम तीनोंको चित्त से भी त्याग न करे फिर स्वरूप को क्यों त्यागेगा तप से विमुक्त होकर इन सब धर्म आदि से पृथक् होना चाहिये अर्थात् फल की इच्छा से इनको न करे किन्तु अकाम करे मोक्ष में त्रिवर्ग की यह श्रेष्ठ बुद्धि है अर्थात् निष्ठा है जब कि मनुष्य उसको प्राप्त करसके इस प्रयोजनसे कि धर्मसे अर्थ है और अर्थ से धर्महै अज्ञान नीच बुद्धि से दृष्टिआनेवाला अज्ञानी धर्म अर्थ के फलको नहीं पाताहै अब धर्म आदि के रजोगुणको दिखलाते हैं धर्म की प्रवृत्ति फल की इच्छा है और दान भोग का प्राप्त न करना अर्थ की प्रवृत्ति है और काम प्रीतिरूप प्रवृत्ति का रखनेवाला है फिर अपने गुणों से पृथक् वह त्रिवर्ग चित्तशुद्धि आदि के द्वारा ब्रह्मानन्दरूप फल को देता है तीनों प्रश्नों को कहकर चौथे प्रश्न को इतिहास के द्वारा कहता हूं उस प्राचीन इतिहास में कामन्दक ऋषि और आगरिष्ट राजा का प्रश्नोत्तर है आगरिष्ट राजा ने मर्यादा भंग करके कामन्दक ऋषि से पूछा कि हे ऋषे! जो काम मोह से युक्त राजा पाप को करता है उसके पाप दूर होने का कौन सा उपाय है जो मनुष्य अज्ञानता से अधर्म को धर्म जानकर सेवन करे उस प्रसिद्ध मनुष्य को किस प्रकार से राजा सुमार्ग में लावे कामन्दक ने उत्तरदिया कि जो पुरुष धर्म अर्थ को त्याग करके कर्म में ही प्रवृत्त रहता है वह इसलोक में धर्म अर्थ के त्यागने से ज्ञान-भ्रष्ट होता है और ज्ञानभ्रष्ट होने से मोह को प्राप्त होकर धर्म अर्थ को नाश करता है जब राजा उन दुराचारी दुष्टमनुष्यों को दण्ड नहीं देताहै तब लोक ऐसा व्याकुल

होता है जैसे कि घर में बैठेहुये सर्प से व्याकुल हो प्रजा ब्राह्मण और साधु उसकी इच्छा के अनुसार कर्म नहीं करते हैं इस कारण से संशय को प्राप्त होकर इसीप्रकार से घात को प्राप्त होता है वह अपमान और निन्दायुक्त होकर दुःखरूप जीवन को पाता है निन्दित जीवने से मनुष्य का मरना उत्तम होता है उस निन्दित के करने योग्य कामों को कहते हैं इस स्थान में आचार्यों ने उस पापीको तीनों वेद और ब्राह्मणों का सत्कार करना कहा है वह धर्म में बड़ा चित्तलगावे और बड़े घराने में विवाह करे शान्त क्षमावान् ब्राह्मणों का भी सेवन करे इस लोक में सुख से बैठाहुआ जपकरे और सदैव जल से देह की शुद्धि रक्खे पापियोंको त्याग करके धर्मात्माओं को साथ बैठावे और मीठेवचनों से उनको प्रसन्न करे और दूसरे की प्रशंसा करके सदैव कहै कि मैं तेरा हूं इसप्रकार से पाप से निवृत्त होकर शीघ्र सबका प्रिय होता है और गुरु जिस परमधर्म को कहैं उसके करने से भी निश्चय परमकल्याण को पाता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयोविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

एकसौचौबीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे नरोत्तम ! पृथ्वीपर मनुष्य यह कहते हैं कि धर्म का आदिकारण सुशीलता है इस कारण मुझ को बड़ा सन्देह है जो वह हमारे जानने के योग्यहोय तो आप कृपा करके कहिये कि वह सुशीलता किसप्रकार से प्राप्त होती है और उसका क्या लक्षण है भीष्मजी बोले कि हे महाराज युधिष्ठिर ! प्रारब्ध और पराक्रम से प्राप्त होनेवाली तुम्हारी लक्ष्मी को और इन्द्रप्रस्थ में सभा के मध्य भाइयों समेत तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर महादुःखी हो ईर्षा से भरेहुये दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से प्रार्थनापूर्वक जो वचन कहा उस को सुनो कि अपने स्थान में बैठेहुये धृतराष्ट्र को अकेला देखकर ईर्षायुत दुर्योधन ने सभा का सब वृत्तान्त जब सुनाया उसको सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे पुत्र ! क्यों दुःखी होता है अपना मनोरथ कह फिर मैं उसका योग्य उत्तर दूंगा हे शत्रुवों के विजय करनेवाले ! तुम ने बड़े ऐश्वर्य को पाया सब भाई मित्र सम्बन्धी तुम्हारे आज्ञाकारी हैं और तुम बहुमूल्य वस्त्रों को देह में धारण करते हो और मांस ओदनों का भोजन करते हो नानाप्रकार के घोड़ोंपर सवार होते हो तुम्हारा देह क्यों पाण्डुवर्ण और दुर्बल है दुर्योधन ने कहा कि वह दश हज़ार महात्मा स्नातक ब्राह्मण युधिष्ठिर के घर सुवर्ण के पात्रों में नित्य भोजन करते हैं हे तात ! शत्रुपाण्डवों की दिव्य फूल फलों से संयुक्त उस उत्तम सभा को और तीतर के समान चित्रित घोड़ों को और नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों को और कुबेर के समान अमोघ धन को देखकर शोचकरताहूं धृतराष्ट्र बोले कि

हे नरोत्तम, पुत्र! जो तुम उस लक्ष्मी को चाहते हो या उससे अधिक चाहते हो तो तुम शीलवान् होजावो क्योंकि शील से तीनोंलोक निस्सन्देह विजय होने के योग्य हैं लोक में शीलवानों को कोई वस्तु अप्राप्त नहीं होती देखो मान्धाता ने एक दिन में जनमेजय ने तीन दिन में नाभाग ने सात दिन में सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया यह सब राजा शीलवान् और दयायुक्त थे इस हेतु से उनके गुण से मोललीहुई के समान आप से आप पृथ्वी प्राप्त हुई दुर्योधन ने कहा कि हे पिता! मैं सुनाचाहता हूं कि वह शील किसप्रकारसे प्राप्त होता है जिसके द्वारा उन राजालोगों को शीघ्रता से पृथ्वी प्राप्तहुई धृतराष्ट्र बोले कि हे दुर्योधनपुत्र! मैं इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसको प्राचीन समय में शीलयुक्त होकर नारदजी ने वर्णनकिया और प्रह्लाद दैत्य ने शीलवान् होकर महात्मा इन्द्र का राज्य छीनलिया और तीनोंलोकों को स्वाधीन किया तब इन्द्र ने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजी से कहा कि मैं कल्याण को जानना चाहता हूं तब बृहस्पतिजी ने मोक्षसम्बन्धी महाउत्तम ज्ञान उस देवराज इन्द्रको सुनाया और कहा कि इतनाही कल्याण है इन्द्र ने फिर पूछा कि इससे अधिक भी कोई ज्ञान होता है बृहस्पतिजी बोले कि हे तात! महात्मा भार्गव शुक्रजी का ज्ञान अधिक है तू वहां ज्ञान को प्राप्तकर तेरा भला होगा तदनन्तर उस तपस्वी इन्द्र ने वह महाज्ञान श्रीभार्गव शुक्रजी से प्राप्तकिया और प्रार्थनापूर्वक पूछा कि महाराज इससे अधिक भी कोई कल्याण है तब सर्वज्ञ शुक्रजी ने कहा कि महात्मा प्रह्लाद का ज्ञान अधिक है यह सुनकर इन्द्र प्रसन्नहुआ और ब्राह्मण का रूप बन कर प्रह्लाद से जाकर कहा कि मैं कल्याण को जानना चाहता हूं प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण! मुझ तीनों लोक के राज्यवाले को अवकाश नहीं है इसहेतु से तुम को उपदेश नहीं करसक्ता फिर ब्राह्मण ने कहा कि जब आप को अवकाश हो तब सुना चाहता हूं फिर वह प्रह्लाद उस ब्रह्मवादी के ऊपर प्रसन्न हुआ और स्वीकार करके उसने शुभकाल में ज्ञानतत्त्व को दिया ब्राह्मण ने भी अपने चित्त की इच्छानुसार उस गुरुवृत्ति को न्यायपूर्वक प्रीति से किया उस प्रह्लाद से बहुधा इसने पूछा कि आपने तीनों लोकों का राज्य कैसे पाया वह सब मुझ से कहिये तब प्रह्लाद ने यह वचन कहा कि मैं राजा हूं इस अहंकार से वचन कभी नहीं कहता हूं नीतिशास्त्र के वक्ता ब्राह्मणों को दानदेकर उन से वार्तालाप करता हूं वह विश्वासयुक्त होकर सदैव वे मुझ से वार्तालाप करते हैं और शास्त्र को देते हैं और मुझ शुक्रनीति के मार्ग में प्रवृत्त सेवा करनेवाले और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाले धर्मात्मा क्रोधजित् के चित्त को शास्त्रों से ऐसे सींचते हैं जैसे कि मक्खियां शहद को सो मैं जिह्वाग्रवर्ती विद्यावान् ब्राह्मणों के वचनरूपी रसों का आस्वादन करनेवाला अपने सजातियों पर

ऐसे आज्ञा करता हूं जैसे कि चन्द्रमा नक्षत्रोंपर करता है पृथ्वीपर यही शीलादि गुण अमृतरूप हैं यही कल्याण है और कहा कि हे ब्राह्मण ! मैं तेरी गुरुभक्ति से प्रसन्न हूं तेरा भला हो तू अपने अभीष्ट को मांग मैं तुझ को दूंगा तब उस ब्राह्मण ने कहा कि आप ने मेरा सब कार्य किया तब प्रसन्न होकर प्रह्लाद ने कहा कि वर को लो तब ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् ! जो आप मुझ से प्रसन्न हैं और जो मेरा अभीष्ट चाहते हो तो आप का सा शील मुझ में होय यही मेरी प्रार्थना है यह सुनकर दैत्येन्द्र प्रसन्न तो हुआ परन्तु वर के देने में उसको बड़ा भय हुआ और जाना कि यह थोड़े तेजवाला नहीं है तब विस्मित प्रह्लाद ने कहा कि ऐसाही हो और वर देकर दुःखी हुआ और वर लेकर उस ब्राह्मण के चलेजाने पर प्रह्लाद को बड़ी चिन्ता हुई और उस को निश्चय नहीं हुआ फिर उस के चिन्ता करने से छायारूप महातेजस्वी देहधारी तेजरूप शील ने उसकी देह को त्याग किया तब प्रह्लाद ने उस महारूप और देहधारी से पूछा कि आप कौन हैं उस ने उत्तर दिया कि मैं शील हूं तुम से अलग होकर जाता हूं और हे राजन् ! मैं उस उत्तम ब्राह्मण की देह में प्रवेश करूंगा जो शिष्यता में होकर बहुत कालतक तेरेपास वर्तमान रहा ऐसा कहकर वह शील अन्तर्धान हुआ और इन्द्र की देह में प्रविष्टहुआ उस तेज के चलेजाने के पीछे दैत्येन्द्र की देह से वैसा ही दूसरा रूप और बाहर निकला उससे भी पूछा कि आप कौन हैं उसने कहा कि मैं धर्म हूं जहां वह उत्तम ब्राह्मण है वहांही मैं भी जाता हूं क्योंकि जहां शील है वहां मैं हूं तदनन्तर तीसरा रूप उस महात्मा प्रह्लाद की देह से निकला जब उससे भी पूछा कि आप कौन हैं तब उसने कहा कि हे असुरेन्द्र ! मैं सत्य हूं मैं अब धर्म के पास जाता हूं इसके अनन्तर चौथा पुरुष निकला उसने भी पूछने पर कहा कि मैं व्रत हूं जहां सत्य है वहीं मैं भी रहता हूं इसके जाने के पीछे उसकी देह से एक बड़ाशब्द प्रकट हुआ उसने भी पूछने से कहा कि मैं पराक्रम हूं जहां व्रत है वहीं मैं भी हूं यह कहकर वहां गया जहां व्रत था उसके पीछे उसके देह से प्रकाशरूप देवी निकली उसने भी पूछने से कहा कि मैं लक्ष्मी हूं हे सच्चे वीर ! मैं आप तेरे पास आई हूं तुझ से त्याग कीहुई जाती हूं पराक्रम के पीछे चलनेवाली हूं फिर तो महात्मा प्रह्लाद को महाभय हुआ और पूछा कि हे लक्ष्मि ! कहां जावोगी हे देवि ! तुम सत्यव्रती और लोक की माता हो यह ब्राह्मण कौन है मैं इसको अच्छे प्रकार से जानना चाहताहूं लक्ष्मी बोली वह इन्द्र है उसीने आप से शिक्षा पाई है हे समर्थ ! तेरा तीनों लोकों का ऐश्वर्य उसने लेलिया और हे महाराज ! तुम ने शीलही से तीनों लोक विजय किये थे देवराज ने उसको मूल कारण जानकर तुझ से लेलिया और हे महाज्ञानिन् ! धर्म, सत्य, व्रत, पराक्रम

और मैं सब शीलही को मूल कारण कहते हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! लक्ष्मी समेत वह सब ऐसा कहकर चलेगये यह इतिहास सुनकर दुर्योधन ने फिर अपने पिता से पूछा कि हे कौरवनन्दन! मैं शील की मुख्यता को जानना चाहता हूं और जैसे शील प्राप्त होता है उस युक्ति को भी मुझ से कहो धृतराष्ट्र बोले कि महात्मा प्रह्लाद ने प्रथमही उसको युक्ति के साथ कहा है उसके मिलने का ब्योरेवार वृत्तान्त सुनो कि देह, मन और वचनों से सबजीवों के साथ शत्रुता का करना अनुग्रह और दान करना यही सदैव शील कहाजाता है जो युक्तिकर्म दूसरों का और अपना हितकारी न हो अथवा जिस कर्म से लज्जा युक्त होनापड़े उसको कभी न करे सब काम ऐसे करे जिस से सभा में प्रशंसा पावे हे कौरवोत्तम! यह शील ब्योरेवार तुझ से कहा हे राजन्! कदाचित् कोई मनुष्य शीलरहित होकर लक्ष्मी को पाते हैं वह बहुतकाल तक उसको नहीं भोगसक्ते अर्थात् निर्मूल होती है धृतराष्ट्र बोले कि हे पुत्र! जो तुम युधिष्ठिर की लक्ष्मी से भी उत्तम लक्ष्मी को चाहते हो तो इसको मूलसमेत जानकर शीलवान् हो भीष्मजी बोले कि इसप्रकार धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र से कहाइससे तुमभी इसको करो तदनन्तर इसके फल को पावोगे॥७१॥

इति श्रीमहाभारतेशन्तिपर्वणिराजधर्मेचतुर्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१२४॥

एकसौपच्चीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! तुम ने पुरुष की देह में शील को प्रधान कहा आशा और अनाशा यह दोनों कैसे हुई इसको भी आप कहिये क्योंकि इस महासंशय का दूर करनेवाला आप के समान कोई दूसरा नहीं है हे समर्थ, तात! दुर्योधन से मुझे बड़ी आशा थी कि युद्ध वर्तमान होने पर विना ही युद्धकरने के आधाराज्य देगा सब मनुष्यों को बड़ी २ आशा उत्पन्न होती हैं उनके निष्फल होने से निस्सन्देह मृत्यु है सो हे राजेन्द्र! उस दुरात्मा दुर्योधन ने मुझ निर्बुद्धि को निराशा किया इस मेरी निर्बुद्धिता को देखो मैं आशा को वृक्षयुक्त पहाड़ से अथवा आकाश से भी बहुत बड़ी मानता हूं यद्यपि वह आशा साधारण भी है तो भी चिन्ता के योग्य कठिनता से विजय होनेवाली है और दुर्लभ होने से विचार करता हूं कि उससे अधिक दुर्लभ क्या है॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थान में सुमित्र और ऋषभ के सम्पूर्ण इतिहास को तुमसे कहता हूं हैहय देश का सुमित्र नाम राजऋषि जब शिकार को गया और तीक्ष्ण बाण से किसी मृग को बेधकर उसके पीछे चला तब वह महापराक्रमी मृग उस बाण को लेकर चलागया और राजा भी बड़े वेग से उस मृगराज के पीछे दौड़ा तदनन्तर वह शीघ्रगामी मृग पृथ्वी के नीचे

गया और एक मुहूर्तमात्र में ही वह सममार्ग में वर्तमान हुआ तब वह तरुण-वय कवचधारी पराक्रमी राजा नद, नदी, पल्वल आदि वनों को उल्लंघन करता हुआ उसके पीछे चला तब वह मृग इच्छावान् राजा को वारंवार मिलकर फिर बड़ेवेग से सम्मुख आता और बहुत से बाणों से भिदाहुआ भी वह वनचारी मृग क्रीड़ा करताहुआ सम्मुखही आता था इसीप्रकार वह मृगराज वारंवार वेग-वान् होकर दूरजाजाकर फिर सम्मुख आता था तब उस शत्रुहन्ता राजा ने उसके मर्मों के छेदनेवाले महाघोर तीक्ष्णधारवाले बाणों को धनुष में लगाकर छोड़ा तदनन्तर वह मृगराज कुछ दूरपर जाकर उसके बाणमार्ग को छोड़कर हँसता हुआ ठहरगया उस तीक्ष्णप्रकाश बाण के पृथ्वी में गिरने से मृग महावन में घुसगया और राजा भी शीघ्रता से चला ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

एकसौछब्बीसका अध्याय ॥

भीष्म जी बोले कि इस दौड़धूप के पीछे राजा महावन में प्रवेश करके तपस्वियों के आश्रमों को प्राप्त होकर परिश्रम के कारण बैठगया तब ऋषियों ने इस क्षुधापिपासायुक्त धनुर्धारी राजा को देखकर बुद्धि के अनुसार मिलकर उसका पूजन किया तब राजा ने उनके आतिथ्यपूजन को स्वीकार करके तप की उत्तम वृद्धि को सब तपस्वियों से पूछा तब उन तपोधन ऋषियों ने उसके वचन का उत्तर देकर उसके प्रयोजन को पूछा कि हे कल्याणरूप, राजन्! किस सुख के लिये खड्ग धनुष बाण धारणकिये पदाती होकर इस वन में आये हो इसका कारण कहो कि तुम कहां से आये और किस कुल में उत्पन्नहुये और क्या तुम्हारा नाम है यह सब हमसे कहो तब उसने अपनी दौड़धूप का कारण उन सब ब्राह्मणों से वर्णनकिया कि मैं मित्रों का प्रसन्नकरनेवाला हैहय देशियों के कुलमें उत्पन्न हुआ बाणों से हज़ारों मृगयूथों को मारता घूमता हूं मन्त्री और रानी समेत मैं बड़ी सेना समेत था मेरे बाण से भिदाहुआ भालसंयुक्त देहवाला मृग जाता है मैं दैवइच्छा से उस भागनेवाले मृग के पीछे इस वन में आगया हूं इसीसे शोभा और आशा से रहित परिश्रम से पीड़ित आप के सम्मुख वर्तमान हूं इससे कठिन दूसरा कौन दुःख होगा जो परिश्रम से पीड्यमान आशारहित राज्यचिह्नों के बिना मैं आप लोगों के आश्रम में आया हे तपोधन ऋषियो! राज्य के चिह्न और पुरका त्याग उस कठिन दुःख को ऐसा नहीं उत्पन्न करता है जैसे कि मेरी नष्ट हुई आशा इतनी बड़ी है कि बड़ापहाड़ हिमालय वा महासमुद्र और आकाश भी उसके एक भाग को नहीं पासका इसीप्रकार हे महाऋषियो! मैंने भी आशा के अन्त को नहीं पाया

आपसरीखे तपोधन ऋषि सब जानते हैं आप बड़े महाभाग हैं इसकारण अपने सन्देह को पूछता हूं कि जो मनुष्य आशावान् होकर सन्तुष्टता को प्राप्त हुआ होय ऐसा लोक में प्रतिष्ठा के साथ कौन बड़ा है उस को मूल समेत सुना चाहता हूं इस संसार में दुर्लभपदार्थ क्या है जो यह बातें सदैव गुप्त रखने के योग्य नहीं हैं तो शीघ्रकहिये विलम्ब न करिये और उत्तम ऋषियों में गुप्त रखने के योग्य वचनों को तुम से नहीं सुना चाहता हूं और जो इसमें किसीप्रकार का आप के तप में विघ्नहो तो मौनता प्राप्तकरो या कहना है तो कहो क्योंकि मैं समर्थ को भी मूलसमेत सुना चाहता हूं उसको भीआप वर्णन करें ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषड्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

एकसौसत्ताईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उन ऋषियों में से मन्दमुसक्यान करते महाब्रह्मर्षि ऋषभदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! मैं तीर्थाटन करताहुआ श्रीनारायण के दिव्य आश्रम में पहुँचा जहां क्रीड़ा के योग्य बद्री और वैहायस नाम ह्रद हैं वहांही अश्वशिरा सनातन वेदों को पढ़ते हैं वहां मैं प्रथमही ह्रद में जाकर देवपितृतर्पण करके पीछे आश्रम को गया और नरनारायण के पासही एक स्थान में निवास किया वहां चीर मृगचर्म को धारण किये महादुर्बल तनु नाम ऋषिको आतेहुये देखा तो हे राजन्! वह दूसरे मनुष्यों की देह का अष्टमांश था मैंने ऐसा दुर्बल देहवाला भी कोई नहीं देखा कि जिसका देह कनिष्ठ उँगली के समान पतलाथा वैसेही हाथ पैर मुख भुजा और शिर के बाल अपूर्व देखने के योग्य थे और उसी देह के सदृश शिर आंख कानभी थे और उसके सब अंग और वचन भी देहकेही अनुरूप थे मैं उस दुर्बलदेह को देखकर भयभीत होकर दुःखीहुआ और उसके दोनों चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़के सम्मुख हुआ और अपने नाम गोत्र पिता को कहकर उसके बतायेहुये एक आसनपर बैठ गया फिर उस धर्मध्वज तनु ने ऋषियों के मध्य में उन कथाओं को कहा जो कि धर्म, अर्थ से संयुक्तथीं उसकी कथाही के समय में एक कमललोचन नाम राजा सेना और स्त्री समेत शीघ्रगामी घोड़ों की सवारी से आपहुँचा वह अतिदुःखी, यशस्वी, श्रीमान्, वीरदेवमणि का पुत्र वनमें गुप्तहोनेवाले अपने पुत्र भूरिदेवमणि को स्मरण करता हुआ कि उस पुत्र को यहां देखूंगा वहां देखूंगा इसप्रकार आशा में बँधाहुआ यह वचन कहताहुआ इस वन में घूमता था कि निश्चय इसी महावन में मेरा धार्मिक बड़ा पुत्र अकेला गुप्तहुआ मुझको दृष्टि आना कठिन है यही वारंवार कहता था कि उसका देखना मुझको कठिन है और मेरी आशा बड़ी है उससे जुदा होकर मैं मरने की इच्छा करता हूं यह

कहता हुआ आपहुँचा और इस बात को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ तनुमुनि एक मुहूर्तमात्र ध्यान में मग्नहुये उन ध्यानकरनेवाले ऋषि को देखकर महादुःखी मन से धीरे २ वारंवार इस वचन को राजा ने कहा कि हे देवऋषे! कठिनता से विजयहोनेवाला कौन है और आशा से बड़ा कौन है यह सब आप प्रकट करके मुझसे कहिये मुनि बोले कि पहिले समय में उस तेरे पुत्र भूरिदेव मुनिने बाल्यबुद्धि में नियतहोकर अपनी अभाग्यता से किसीसमर्थ ऋषि का अपमान किया था अर्थात् सुवर्ण के कलश और वल्कल के वस्त्रों को देना कहकर उस राजकुमार ने अपमान करके फिर उनको लाकर नहीं दिये और हे राजन्! जैसे तुम थकगये हो उसीप्रकार थकाहुआ वीरदेवमणि भी पीड्यमान हुआ था यह वचन सुनकर वह राजा उस लोकपूजित ऋषि को दण्डवत् करके दुःखी और निराशहुआ तदनन्तर उस महर्षि ने अर्घ्यपाद्य को लेकर वन से सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि के अनुसार उस सब को राजा की भेंट किया तिसपीछे वह सब मुनि उस राजा को घेरकर ऐसे बैठगये जैसे कि सप्तऋषि ध्रुवजी को घेरते हैं और राजा से सब वृत्तान्त पूछा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

एकसौअट्ठाईसका अध्याय ॥

राजा बोले कि मैं वीरदेवमणि नाम राजा सब दिशाओं में प्रसिद्ध हूं अपने पुत्र भूरिदेवमणि के खोजने को वन में आया हूं हे ब्राह्मणोत्तम! वह मेरा इकलौता बालक लड़का दृष्टि नहीं आता ऋषभमुनि बोले कि यह राजा का वचन सुनकर उस तनुऋषि ने उत्तर नहीं दिया मौनहोकर शिर झुकालिया हे राजेन्द्र! पहिले समय में उस राजा ने उन तनुऋषि का बड़ा अपमान किया था फिर वह अपमान बड़े तप से दूर हुआ अर्थात् यह संकल्प किया कि किसी राजा का अथवा दूसरे वर्णों का भी दान नहीं लूंगा और यह बात ठहराके कि वर्तमान होनेवाली आशा अज्ञान मनुष्य को चलायमान करदेती है मैं उस आशा को दूर करूंगा यह दृढ़करलिया तदनन्तर वीरदेवमणि ने फिर उस महात्मा ऋषि से पूछा कि आशा में क्या बात हीन होजाती है और इस लोक में क्या दुष्प्राप्य है आप धर्म, अर्थ के द्रष्टा हैं इससे आप कृपा करके कहिये तब महात्मा तनुऋषि वह सब वृत्तान्त राजा को स्मरण कराके बोले कि हे राजेन्द्र! आशा की कृशता के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है मैंने उस आशाकी कठिनता को राजाओं से कहा है राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण! मैं आप के वचन से आशा की कृशता और अकृशता का होना जानता हूं परन्तु उस का दुर्लभ होना वेदवचन के समान है अर्थात् आशा ने जिस को जीता

वही कृश है और जिसको नहीं जीता वही पुष्ट है हे महाज्ञानिन्! मेरे चित्त में बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है उसको आप दूर करने को समर्थ हैं तुम से अधिक कौन कृशांग है इसको कहना आप उचित समझें तो कहिये कृशतनु बोले यह चाहै दुर्लभ है या नहीं है परन्तु जो इच्छावान् धैर्यता को पावे वही बड़ा दुर्लभ है और जो इच्छावान् का अपमान नहीं करता वह महादुर्लभ है जो समर्थ और योग्यता के अनुसार सत्कार करके अभीष्ट सिद्ध नहीं करता और जिसकी आशा सब जीवों में लगीहुई है वह मुझ से अधिक दुर्बल है उपकार को भूलनेवाले निर्दयी और आलसी आदमियों में और शत्रुता करनेवाले मनुष्यों में जो आशा वर्तमान है वह मुझ से अधिक दुर्बल है जो एक पुत्र-वाला पिता पुत्र के गुप्त होने या मरनेपर उसके वृत्तान्त को नहीं जानता उस की आशा मुझ से भी अधिक दुर्बल है पुत्र के उत्पन्न होने के समय स्त्रियों की और पुरुषों की आशा और उसीप्रकार धनीलोगों की जो आशा है वह मुझ से भी न्यून है तरुणाई में होकर उस तरुणाई से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओं को सुनकर विवाह के चाहनेवालों को जो कन्याओं की आशा है वह मुझ से अधिक दुर्बल है तब उस राजा ने अपनी रानी समेत ऋषि के पास जाकर दोनों चरण छुये और कहा कि आप को प्रसन्न करके पुत्र से मिलना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम! आप ने जो कहा वह सब सत्य है इसमें सन्देह नहीं तब तनुऋषि ने हँसकर अपने शास्त्रबल से शीघ्रही उसके पुत्र को बुलादिया और राजा को अपराध मुक्त कर अपने को धर्मरूप दिखाके वन की यात्रा की हे राजन्! मैंने प्रत्यक्ष देखा और उनके इन वचनों को सुना इससे तुम भी इस महा-निकृष्ट आशा को त्याग करो भीष्मजी बोले कि हे राजन्! तब महात्मा ऋषभ के ऐसे वचन सुनकर राजा सुमित्र ने महादुर्बल आशा को दूर किया हे कुन्तीपुत्र! तुम भी इस मेरे वचन को सुनकर हिमालयपर्वत के समान दृढ़ हो मुझ कष्टयुक्त से तुम्हीं प्रश्न करनेवाले और सुननेवाले हो इससे मेरी बातें सुन कर दुःखी होने के योग्य नहीं हो ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेऽष्टाविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

एकसौउन्तीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! आप की वार्तालापों से अभी मेरी तृप्ति नहीं होती है जैसे कि अमृतपान से और उसीप्रकार से ध्यान लगारहा हूं जैसे समाधि में पुरुष ध्यानावस्थित होता है इस कारण हे पितामह! पहिले उसी धर्म को कहिये जो आप के वचनरूपी अमृतपान से पूर्णता को नहीं पहुँचता है भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में

गौतमऋषि और यमराज का प्रश्नोत्तर है गौतमजी के महाआश्रम पारियात्र ना
पर्वत में जितने दिवस गौतमजी ने तपस्या की उसको मुझ से सुनो कि स
सहस्रवर्ष पर्यन्त महाउत्तम तपस्या की उस तप को देखकर लोकपाल यमरा
आदि देवता मुनि के पास गये तब वह महामुनि यमराजजी को देखकर सा
धान होकर हाथ जोड़कर सम्मुख बैठगये धर्मराज ने उनसे सुन्दर वचन क
कर अपनी प्रसन्नता दिखाई और कहा कि हम तुम्हारा क्या मनोरथ करें गौत
जी ने कहा कि कौन कर्म करके माता पिता से अनृण होय और पुरुष कि
प्रकार से दुष्प्राप्य लोकों को पाता है यमराज बोले कि तप से पवित्र देह औ
सत्यधर्म में प्रवृत्त पुरुष को प्रतिदिन नियम के साथ माता पिता का पूज
करना चाहिये और पूर्ण दक्षिणावाले बहुत से अश्वमेधयज्ञों से पूजन करन
चाहिये इस कर्म से पुरुष को अपूर्व लोकों की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोनत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

एकसौतीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह ! मित्रों से रहित बहुत शत्रु रखने-
वाले और धनागार से रहित विना सेनावाले की कौन गति है दुष्टमन्त्री को
साथ रखने और सबप्रकार से हतराज्य और सलाहकारों से दिव्य उत्तमगति
को न देखनेवाले दूसरे के देशपर चढ़ाई करनेवाले शत्रु के मर्दन करनेवाले
पराक्रमी के साथ युद्ध में प्रवृत्त, निर्बल और अरक्षित देशवाले और देशकाल
के न जाननेवाले राजा की कौन गति है और जहां देश को अधिक पिड़ा देने से
साम और भेद भी प्राप्त न हो वहां क्या धन से प्राप्तहोनेवाला जीवन या शुभकर्म
अथवा अर्थ अनरीति से भी प्राप्त होने के योग्य है भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर !
तुम ने बड़े गुप्तधर्म को पूछा विना तुम्हारे पूछे इस धर्म को कभी इच्छा से नहीं
कहना चाहता हूं हे राजन् ! शास्त्र के वचनों से सूक्ष्मधर्म और बुद्धि से सुनकर स
दाचारों को करके किसी २ स्थान में कोई साधु होता है बुद्धिरूप कर्म से धनी
होता है या नहीं होता है इसीप्रकार का यह प्रश्न है अपनी बुद्धि से निश्चय
करने के योग्य है हे राजन् ! राज्य के कामों के जारीकरने के निमित्त आप राजाओं
के आपद्धर्म में बहुत सी युक्तियों को सुनो मैं धर्म के कारण ऐसे धर्म को प्राप्त नही
किया चाहता हूं जो युक्ति प्रजा के दुःख से स्वीकार कीजाती है और पीछे मरण
समान है अर्थात् आपत्तिकाल में भी प्रजा की पीड़ा से उत्पन्न होनेवाली अग्नि
राजा के प्राण सेना और धन को नष्ट करके लौटती है सबके मतों का निश्चय
पाकर पुरुष जैसा २ शास्त्र को देखता है वैसेही वैसा ज्ञाता होता है फिर
विज्ञान को चाहता है अज्ञानता से पुरुष की अनुद्योगता प्रकट होती है और

अच्छी विज्ञता से भी उद्योग सिद्ध होता है वह युक्ति बड़े ऐश्वर्य की उत्पन्न करनेवाली है तू इस वचन को सन्देह और निन्दारहित होकर सुन राजा का खज़ाना खाली होने से सेना का अभाव उत्पन्न होता है इससे राजा धन को ऐसे पैदाकरे जैसे कि झिरनों से जल इकट्ठा होता है और समयपाकर प्रजा का पोषण करे यही सनातनधर्म है यह धर्मरूप युक्ति पहिले लोगों ने की है और हे राजन्! समर्थों का दूसरा धर्म है और आपत्तिकालों में दूसरे धर्म हैं विना खज़ाने के भी धर्म प्राप्त होता है परन्तु धर्म से आजीविका बड़ी है निर्बल राजा धर्म को पाकर न्याय में प्रवृत्त जीविकाको नहीं पाता है इसकारण से सेना और पराक्रम का प्राप्त होना केवल धर्महीसे नहीं होता है इस निमित्त आपत्तिसमय में अधर्म भी धर्मलक्षण सुना जाता है और उस धर्म में अधर्म उत्पन्न होता है यह पण्डितों का कथन है उस आपत्तिकाल के पीछे क्षत्रिय को क्या करना चाहिये जिससे कि वह धर्मग्लानि को पाकर शत्रु के वशीभूत न हो ऐसे स्थान में वह कर्म करना कहा है जिससे कि अपनी कोई हानि न हो किसी पराक्रम से अपने या दूसरे के धर्म को नष्ट न करे किन्तु अनेक युक्तियों से अपने को आपत्ति से पार करना चाहिये वह यह है कि उससमय धर्म के ज्ञाता पुरुषों का निश्चय धर्म की प्रवीणता है और भुजबल से उद्योग करना क्षत्रिय में बुद्धिमत्ता गिनी जाती है क्षत्रिय को अपनी आजीविका के रोकने पर तपस्वी और ब्राह्मणों के विशेष और किसका धन लेना योग्य है और किसका अयोग्य है जैसे कि पीड़ित होकर ब्राह्मण यज्ञ के अयोग्य मनुष्यों को यज्ञ करावे और अभोज्य अन्नों को भोजनकरे ऐसाही यह भी कर्म है इसमें सन्देह न समझो पीड़ित पुरुष का कौन द्वार है और शास्त्र के विरोधियों का कौन मार्ग है बुद्धिमान् जब पीड़ित होता है तब दुर्द्वार होकर भागता है जिस राजा के खज़ाने और सेना की ग्लानि से सब लोक की नष्टता है उस की कोई भिक्षा नहीं नियत कीगई और न वैश्य, शूद्र की आजीविका उस को नियत हुई सजातियों से चाहना न करनेवाले राजा की वह जीविका है जो कि अपने धर्म के योग्य है पहिले कल्पशास्त्र के जाननेवाले राजा की जीविका आपत्तिकाल में गौण कल्प से योग्य है आपत्तिमान् को धर्म के विपरीत जीवन करना यह बात आजीविका के नष्ट होने से ब्राह्मणों में भी देखी गई है तो किस कारण से क्षत्रिय के करने में सन्देह है इसप्रकार सदैव निश्चय कियागया वह क्षत्रिय भी अच्छे पुरुषों से बल के द्वारा धन को लेने से किसीप्रकार की पीड़ा को न पावे क्षत्रिय को प्रजा का रक्षक और पीड़ा देनेवाला कहा है इसीकारण अच्छे प्रकार से रक्षा करनेवाले क्षत्रिय को धन लेनाचाहिये हे राजन्! विना पीड़ा के किसी की आजीविका नहीं है यहां तक कि वन में वर्तमान घूमनेवाले अकेले

मुनि की भी जीविका विना पीड़ा के नहीं है हे कौरवोत्तम ! क्षत्रिय को प्रारब्ध मेंही लिखीहुई जीविका पर सन्तोष करके रहना योग्य नहीं है तो रक्षा करनेवाले राजा को तो सन्तोष से रहना सदैव अयोग्य है आपत्ति में राजा को और देश को परस्पर में अन्योन्य रक्षा करनी चाहिये यह सनातनधर्म है जैसे कि राजा आपत्तिकाल में देश की द्रव्य और ओषधियों आदि से रक्षा करता है उसीप्रकार कोई व्यसन में राजा कीभी रक्षा देश को करनी अवश्य है खज़ाना, दण्ड, सेना, मित्र और देश की अन्य वस्तुवों के संचय को क्षुधा से संयुक्त राजा दूर नहीं करे बीज को तक़ावीधन के द्वारा प्राप्त करना चाहिये यह धर्मज्ञों का कथन है इसस्थान पर बड़ीमायावाले शम्बर दैत्य का यह शास्त्र कहागया है जिसका देश आजीविका न पाने से पीड़ा पाता है अथवा जो राजा थोड़े मनुष्यों समेत दूसरे के देश से जीवन करनेवाला है उस राजा के जीवन को धिक्कार है खज़ाना और सेना राजा का मूल है और केवल खज़ाना सेना की जड़ है और धर्म प्रजाओं की जड़ है इसहेतु से सबधर्मों का मूल खज़ाना है यहां दूसरों को पीड़ा न देकर खज़ाने की वृद्धि सम्भव नहीं फिर सेना कहां से होगी वह राजा उसके लिये प्रजा को पीड़ा देखकर दोष का भागी नहीं है यज्ञकर्मों में यज्ञ के लिये अकार्य भी कियाजाता है इस कारण राजा दोष के योग्य नहीं है आपत्तिकाल में दूसरा कर्म अर्थात् प्रजा को पीड़ा देना धन के लिये होता है और पीड़ा न देना विपरीत अर्थात् अनर्थ का हेतु होता है और हाथीआदि का पोषण धन के नष्ट होने के निमित्त होता है यह सब धन के ही कारण होते हैं इसप्रकार शास्त्रज्ञ मनुष्य बुद्धि के अनुसार निश्चय को विचारता कर्मकर्ता होय जैसे कि पशु आदि यज्ञ के कारण होते हैं और यज्ञ धन का संस्कार है इस से पशु यज्ञ और संस्कार यह तीनों मोक्ष के निमित्त होते हैं और यज्ञ के साधन कहेजाते हैं इसीप्रकार दण्ड खज़ाने के लिये और खज़ाना सेना के निमित्त और सेना शत्रु के विजय के लिये और तीनों मिले हुये देश की वृद्धि के लिये हैं इस स्थानपर धर्मतत्त्व के प्रकट करनेवाले दृष्टान्त को कहता हूं यहां जो शत्रु हैं वह यज्ञस्तम्भ को काटते हैं और कितनेही सामन्तलोग वृक्षों को भी अवश्य काटते हैं वह वृक्ष भी गिरते समय अपने नीचे की वनस्पतियों को मारते हैं इसीप्रकार जो मनुष्य बड़ेखज़ाने के शत्रु हैं उनको भी विनामारे सिद्धि नहीं प्राप्तहोती धन के ही द्वारा दोनों लोक और सत्यता आदि धर्म वचन को विजय करता है और विना धन के मृतक समान है इससे हे युधिष्ठिर ! यज्ञ के निमित्त अनेक युक्तियों से धन को प्राप्तकरे इसप्रकार से कार्य कारण दोनों में दोष नहीं होता है हे राजन् ! यह धन की प्राप्ति और त्याग दोनों एक मनुष्य में कभी किसी प्रकार से भी सिद्धि को कहीं प्राप्त होते धनवान् लोगों को वन में

कभी कोई नहीं देखता अर्थात् जो धनी लोग हैं वह त्यागी नहीं होते हैं और जो त्यागी हैं वह धनी नहीं होते इस पृथ्वीपर जो कुछ यह धन दृष्टि पड़ता है उसको मनुष्य चाहते हैं कि यह मेरा होय इससे हे राजन्! राजधर्म से अधिक कोई धर्म नहीं है वही राजाओं का धर्म कहागया और आपत्ति के लिये इसके विपरीत कहागया कोई दान और कर्म से और तपस्वी तप से कोई बुद्धि की चतुराई से धन के समूह को पाते हैं निर्धन को निर्बल और धनवान् को पराक्रमी कहते हैं तात्पर्य यह है कि धनवान् को सब वस्तु प्राप्त होसक्ती हैं खज़ाना रखनेवाला सब आपत्तियों से तरसक्ता है जैसे धन से धर्म, अर्थ, काम और परलोक की प्राप्तिहोती है वैसेही इस लोक के आनन्द प्राप्त होते हैं इस निमित्त उस धन को धर्म सेही प्राप्तकरे अधर्म से कभी न करे ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारतेशतसाहस्र्यांवैयासिक्यांशान्तिपर्वणिराजधर्मे त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

इति शान्तिपर्वराजधर्मसमाप्तम् ॥

अथ महाभारत भाषा ॥

शान्तिपर्व ॥

आपद्धर्म ॥

पहिला अध्याय ॥

श्रीगणेशजी और नरोत्तम श्रीनारायणजी और सरस्वती देवी और व्यास जी को नमस्कार करके फिर जय को वर्णन करते हैं पहिले अध्याय में यह वर्णन किया है कि सेना की चढ़ाई करनेवाला राजा आपत्तिकाल में प्रजा को पीड़ित करके भी धन से ख़ज़ाने को पूरा करके आपत्ति से निवृत्त हो अब वर्तमान राजा आपत्ति के आनेपर क्या करे इस विषय में युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि अनाज आदि के गोदाम और खज़ाने से रहित दीर्घसूत्री बान्धवों पर दयावान् अर्थात् राज्य और जिसका मन्त्र प्रकट होगया हो और राज्य करने में शंका युक्त गढ़ से बाहर निकलकर युद्ध करने में असमर्थ जिसके ग्रामदेश शत्रुवों ने परस्पर में विभाग करलिये और देशों को शत्रुवों ने परस्पर में विभाग करलिया हो और धन के समूहों से खाली मित्रों से भिन्न और सब मन्त्रियों से रहित शत्रु की सेना से घिराहुआ पराक्रमी शत्रु से व्याकुलचित्त राजा का कौन सा कर्म शेष रहजाता है उसको कहिये—भीष्मजी बोले कि जो धर्म अर्थ में कुशल चढाई करनेवाला राजा विजय की इच्छा करनेवाला होय तो शीघ्र ही उससे सन्धि करे और अपने प्राचीन पुरुषों के ग्राम और नगरों को शत्रुने विजय करलिये हों उनको सामनीति से छुड़ावे और जो पराक्रमी पाप का निश्चय करनेवाला अधर्म से विजय करने की इच्छा करता हो उससे भी अपने थोड़े बहुत ग्राम देकर सन्धिकरे अथवा राजधानी को त्यागकर धन के द्वारा आपत्ति से उद्धार हो फिर जीवता हुआ उन राजगुणों से संयुक्त धनों को इकट्ठा करे जो

आपत्ति कि धन और सेना के त्यागने से दूर होती जानपड़े तो अर्थ धर्म का जाननेवाला कौन पुरुष धन के सिवाय अपने को त्यागकरे अर्थात् ऐसे समय में सेना और धन के त्यागने से सब अपनी २ रक्षा को उचित जानते हैं महलों को भगाना चाहिये नहीं तो शत्रु के आधीन होनेवाले धन में क्या प्रीति है समर्थ होकर आप उसके स्वाधीन न होय युधिष्ठिर बोले कि मन्त्री आदि के क्रोधयुक्त होने से और देश गढ़ आदि शत्रु के आधीन होने से और ख़ज़ाने के नष्ट होने और गुप्तमन्त्रों के प्रकट होने में कौन कर्म शेष रहता है—भीष्मजी बोले कि मन्त्री आदि के धर्मज्ञ होनेपर सन्धि की शीघ्र ही इच्छा करे अथवा शीघ्र ही महावीरता प्रकट करे जब ऐसा होता है तब शत्रु का हटाना शीघ्र ही होता है अथवा धर्मयुद्धकर मरजाने में परलोक की प्राप्ति होती है सब पृथ्वी का रक्षक राजा ऐसी थोड़ी सेना से भी पृथ्वी को विजय करता है जो प्रीतिमान् स्नेहयुक्त और प्रसन्नचित्त हो मरकर स्वर्ग को जाय अथवा मारकर पृथ्वी को विजय करे वह युद्ध में प्राणों को अच्छेप्रकार त्याग करके इन्द्र के लोक को प्राप्त होता है मृदुता के गुण प्राप्त करने के निमित्त लोकप्रसिद्ध शास्त्र को बुद्धि से प्रकट करके विश्वास से विश्वास को पाकर मृदुता करे और युक्ति से विश्वासित हो जो मन्त्रियों के क्रोध से सामनीति होना असम्भव हो अर्थात् मेलहोना कठिन हो तब मिलमिलाकर क़िले से भागने की इच्छा करे और थोड़ेदिन देश को छोड़कर उत्तम सलाह के द्वारा फिर पराक्रम को करे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! सब के उपकारी उत्तम राजधर्म के नष्ट होने और सब पृथ्वी की जीविका चोरों के आधीन होजानेपर और उस नीचसमय के आने में ब्राह्मण स्नेह से अपने पुत्र पौत्रादि को नहीं त्याग करे उस दशा में कैसे निर्वाह करे भीष्मजी बोले कि उस दशा में विज्ञान के पराक्रम में नियत होकर जीवन करे क्योंकि यह सब संसारी वस्तु साधुवों के लिये हैं असाधुओं के निमित्त कुछ भी नहीं है जो पुरुष अपने को सेतु बनाकर नीचों से धन लेकर सत्पुरुषों को देता है वही आपद्धर्म का जाननेवाला है हे राजन् ! संसार की रक्षा करनेवाले का धन है इसकारण यह शोचकर कि यह मेरा ही है अपने लिये अनिच्छा करके पालन धर्म को करता विना दियेहुये धन को भी लेले जो पूरीबुद्धि के बल से पवित्र मनुष्य निन्दितकर्मों में भी प्रवृत्त होता है वह जीविका की पूर्णबुद्धि रखनेवाला और विद्वान् है उसकी निन्दा कौन करसक्ता है जिनकी आजीविका बल से उत्पन्न होनेवाली है उन्हीं को दूसरी आजीविका

श्रेष्ठ नहीं मालूम होती है हे युधिष्ठिर! बलवान् मनुष्य अपने बल से सम्मुख हो-जाते हैं और यह शास्त्र आपद्धर्म के योग्य वर्तमान है इसको इसप्रकार से काम में लावे और शास्त्रों का ज्ञाता बुद्धिमान् पुरुष भी इससे उत्तम शास्त्र में कुशल होता है अर्थात् जो अपने वा शत्रु के देशी मनुष्य दण्ड के योग्य हैं उनसे धन को लेना चाहिये राजा आपत्तिकाल में शुभकर्मी ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्यआदि पूज्य ब्राह्मणों को धनदण्ड आदि के सिवाय मारे नहीं क्योंकि उनके मारने में दोषी होता है यह लोकमर्यादा है और सनातन नेत्र हैं इसकारण इस मर्यादा का माननेवाला उसको देशों में फिरावे चाहे वह उत्तम हो या अनुत्तम हो बहुत से ग्रामवासी परस्पर में क्रोधयुक्त होकर कहें राजा उनकी न तो वचनों से अप्रतिष्ठा करे और न मारे गुरु आदि की निन्दा न करनी चाहिये और न किसी दशा में सुननी चाहिये ऐसे स्थान में दोनों कान बन्द करने योग्य हैं यह निन्दा करना नीचों का ही स्वभाव है और सन्त लोग सत्पुरुषों में गुणों केही कहनेवाले होते हैं जैसे कि सुन्दर बोलनेवाले सीधे सुशिक्षित अच्छे लोगों को सवार करनेवाले दो बैल धुर को उठाकर ले चलते हैं उसीप्रकार राजा भी कर्म करे जिस २ रीति से उसके बहुत से सहायक होते हैं उसीप्रकार दूसरे मनुष्य यह मानते हैं कि धर्मरूप आचार बड़ा है जो दूसरे पुरुष शंख के लेख को प्रमाण मानते हैं वह इसप्रकार से चाहते हैं कि मित्रता और लोभ से भी ऐसे वचन नहीं कहना चाहिये इस स्थानपर धर्म के विपरीत कर्म करनेवाले गुरु आदि के दण्ड को आर्ष अर्थात् ऋषियों का वचन कहते हैं परन्तु ऐसे प्रकार का कोई प्रमाण दृष्टि नहीं आता तात्पर्य यह है कि गुरु आदि कभी दण्ड के योग्य नहीं हैं देवता धर्म के विपरीतकर्मी नीचमनुष्य को दण्ड देते हैं इसी कारण वह राजा किसी मिष के द्वारा गुरु आदि से धन को लेकर नष्टता को प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि जब दैव गुरु आदि को दण्ड देता है उस दशा में राजा उस दण्ड देने से अलग होजाय और जो वेदोक्त धर्म सब ओर से प्रतिष्ठा के योग्य और सत्पुरुषों से सेवित स्मार्त धर्म और सदैव से प्राप्त होनेवाले कुलदेवता आदि से स्वीकार कियेहुये धर्म और इनतीनों हेतुवों के न होनेपर भी अपने हृदय का अभीष्ट जो धर्म है उस को निश्चय करता है तब ऋत्विज् आदि के दण्ड देने में उसका सम्मत नहीं होता है जो चारों गुणों से संयुक्त धर्म को कहे वह धर्म का जाननेवाला है सर्पके समान धर्म का खोज ढूंढ़ना कठिन है जिसप्रकार घायल मृग के चरण-चिह्न पाकर उसके स्थान को पाता है और रुधिर की आधिक्यता से उसको देखता है उसीप्रकार धर्म को देखो और युक्ति से ऐसे दूसरों को प्राप्तकरावे जैसे कि सत्पुरुषों से उपदेश पायेहुये पुरुष को इस रीति से धर्ममार्ग पर चलना

योग्य हैं और यही राजऋषियों का चलन है सो हे युधिष्ठिर! तुम भी इसी प्रकार से चलो ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! अपने देश और दूसरे के देश से धन को उत्पन्न करे क्योंकि धन सेही धर्म होता है और राज्य की भी दृढ़ता होती है इस हेतु से धन को इकट्ठा करे और सत्कारपूर्वक उसकी सबप्रकार से रक्षा करे और फिर अच्छे २ कामों में खर्च करे यह सनातनधर्म है पवित्र शौचक्रियावाले अथवा निर्दय मनुष्य से धन कभी इकट्ठा नहीं होसक्ता साधारण स्थान पर नियतहोकर धन को बटोरे विना पराक्रम धन नहीं और धन के विना सेना नहीं और विना सेना के राज्य कहां और राज्य के विना राजलक्ष्मी कहां होसक्ती है बड़े आचारवान् पुरुष के पास लक्ष्मी का न होना मरण के समान है इसकारण राजा खज़ाना, सेना और मित्रों की वृद्धि अच्छे प्रकार से करे खज़ाने से रहित राजा का अपमान होता है और उसके मनुष्य थोड़ेमासिक से प्रसन्न नहीं होकर इसके काम को भी उत्साहपूर्वक नहीं करते हैं लक्ष्मी के कारण राजा बड़ी सत्क्रिया को पाता है वह इसके पापों को ऐसे ढकती है जैसे कि स्त्री के गुप्तअंगों को वस्त्र आच्छादन करता है पहिले समय के अपमान कियेहुये मनुष्य इसके ऐश्वर्य को देखकर दुःखी होते हैं और कुत्तेआदि के समान इसके मारने को बराबर बैठते हैं हे राजन्! ऐसे राजा को सुख कहां होसक्ता है उद्योग करे सुस्ती न करे क्योंकि युक्तिपूर्वक उद्योगही करना मनुष्य का धर्म है और असमर्थ होने या अपना बुरासमय होने में भागजाय पर किसी के साथ निकृष्टकर्म न करे वन में जाकर मृगयूथों के साथ घूमे नहीं तो बे मर्याद होकर चोरों के साथ घूमे हे भरतवंशिन्! दुष्टकर्मों में चोरों की सेना सुगमता से प्राप्त होती है बहुत सी बे मर्यादा से सबमनुष्यों को व्याकुलता होती है और निर्दयकर्म करनेवाले चोर भी शंका करते हैं इस से मनुष्यों के चित्त की प्रसन्नता करनेवाली मर्यादा को नियत करे वह मर्यादा इस लोक के छोटे अर्थों में भी पूजित होती है प्राकृत पुरुषों का यह निश्चय है कि न यह लोक है न परलोक है नास्तिक और भयभीत पुरुषों को विश्वास होना ऐसा कठिन है जैसे कि सत्पुरुष को चोरों से विश्वास नहीं होता दूसरे का धन हरना भी अहिंसा है इसको कहता हूं कि जैसे चोरों की मर्यादा होने से सब जीव प्रसन्न होते हैं उसीप्रकार युद्ध न करनेवाले का मारना और दूसरे की स्त्री का पुरुष उपकार को भूलजाना ब्राह्मण के धन का लेना और सर्वस्वहरण करना कन्या को

चुराना गांवों को अपने स्वाधीन करके उनका स्वामी वनजाना और दूसरे की स्त्री से सम्भोग करना यह सब बातें चोरों में निन्दित हैं चोर इनको त्याग करे जो मनुष्य इस चोर के विश्वास के निमित्त उस से मिलाप करते हैं वह चोर उसके विश्वास होजाने पर स्थान आदि को पाकर उसके धन और बालबच्चों को नाश करते हैं ऐसा निश्चय जानके अपने स्वाधीन हुये भी चोरजाति को शेष न छोड़ना चाहिये अपने को पराक्रमी समझकर जो उनको बाक़ी छोड़देते हैं तो वह बाक़ी के मनुष्य उस नाशकर्ता को वेबाक़ी करेंगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष इस स्थानपर धर्म के अनुवचन को कहते हैं कि धर्म अर्थ अच्छेबुद्धिमान् क्षत्रिय के दृष्टिगोचर होता है ऐसे स्थानपर यह विचार न करनाचाहिये कि यह धर्म है या अधर्म है क्योंकि धर्म का उपदेश ऐसा गुप्तफलवाला है जैसा कि भेड़ी का खोज कभी किसी ने धर्म अधर्म के फल को नहीं देखा इससे पराक्रम कोही प्राप्त करने की इच्छा करे क्योंकि यह बात निश्चय है कि यह सब संसार पराक्रमी केही आधीन है इस लोक में पराक्रमी राजा लक्ष्मी सेना और मन्त्रियोंकोपाता है जो धनरहित है वह पतित है अर्थात् अपने धर्म का करनेवाला नहीं है और जो इससे भी अल्प है वह उच्छिष्ट के समान है पराक्रमी में बहुत कुमार्गों को देखकर भय से कुछ नहीं कियाजाता है वह पराक्रम और धर्म दोनों सब अधिकार में नियत होकर बड़े २ भयों से रक्षा करते हैं मैं धर्म से पराक्रम को अधिक मानता हूं क्योंकि पराक्रमही से धर्म जारी होता है धर्म पराक्रमही में ऐसे वर्तमान है जैसे कि पृथ्वीपर चेष्टा करनेवाले जीव धर्म पराक्रम के पीछे ऐसे वर्तमान होता है जैसे कि धुवां वायु के आधीन होता है यह धर्म पराक्रम में वर्तमान होकर स्वतन्त्र ऐसे नहीं है जैसे कि वृक्ष में लगीहुई लता धर्म इसप्रकार पराक्रमियों के आधीन है जैसे भोगी लोगों के आधीन सुख होता है पराक्रमियों को कोई अप्राप्त वस्तु नहीं है और उनके आगे सब पवित्र हैं कुमार्गी और निर्बल की रक्षा नहीं होती है क्योंकि उससे सबलोग ऐसे व्याकुल होते हैं जैसे कि भेड़िये से राज्य से भ्रष्ट अपमानयुक्त मनुष्य दुःखरूप जीवन को पाता है जो जीवन निन्दित है वह मरण के समान है जो कोई ऐसा कहे कि पाप और कुवृत्ति के कारण बान्धवों ने इसको त्याग किया इस बात से वह अत्यन्तदुःख पाता है वह वचनरूप भालों से चारो ओर से घायल है इस पाप

के दूरहोने का उपाय आचार्यलोग ऐसा कहते हैं कि तीनों वेदों का पाठकरे और ब्राह्मणों की उपासना करे और नेत्र, वचन, कर्म आदि से सबको प्रसन्न करके महाउदारता प्रकट करे और बड़ेकुल में विवाह करे और अपनी हीनता करके दूसरे की प्रशंसा करे अथवा स्नान, जप, स्तोत्र आदि से प्रसन्नचित्त पवित्र और मृदुस्वभाव होकर दूसरों को प्रसन्न करे बुराई न करे बड़े कठिन कर्म को करके वारंवार लोगों से कीहुई अपनी प्रशंसा को सुनी अनसुनी करके ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच में निवासकरे इसप्रकार के आचरणों से वह पापरहित होकर सबका प्रिय होसक्ता है और अपूर्व सुख को भोगताहुआ एक उपकारही मात्र के करने से ऐसे गुणवाला राजा लोक में प्रतिष्ठा को पाता है और दोनों लोकों में बड़े २ फलों को भोगता है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस से मर्यादायुक्त चोर भी नरक को नहीं पाता है, शिकार करनेवाला बुद्धिमान् शूरवीर शास्त्रज्ञ होकर शास्त्र की रीति से हिंसा करनेवाला वेद ब्राह्मणों का रक्षक आश्रमियों के धर्म की रक्षा करनेवाले क्षत्रियों का रक्षक एक कायव्य नाम निषाद का पुत्र था उसने निषादी स्त्री में क्षत्रिय से उत्पन्न होकर चोरजाति मेंही सिद्धि को पाया वह वन के मृगोंपर अहर्निश क्रोध करनेवाला और मृग की जाति के जीवों की बुद्धि का ज्ञाता निषादों में पण्डित सब काल और देश का जाननेवाला सदैव पारियात्रपर्वतपर विचरनेवाला सबजीवों के धर्मों का जाननेवाला सफलबाण और शस्त्रधारी था उस अकेले ने बहुत सी कठिन सेनाओं को विजय करके वृद्ध, अन्ध, बधिर अपने माता पिता का वनमें पूजन किया और मधु, मांस, मूल, फल और अनेकप्रकार के अन्नों के भोजनों से सत्कारपूर्वक उनको तृप्तकिया और प्रतिष्ठा के योग्य पुरुषों की सेवा करके वनवासी ब्राह्मण संन्यासी लोगों के निमित्त उसी वन में मृगों को मारकर उनके भेंटकिये जो पुरुष चोरजाति की शंका से इससे नहीं लेतेथे उन्हों के घरमें वह प्रातःकालही भोजन रखकर चला जाता था, निर्दयकर्मी चोरों के समूहों ने इसको अपना मालिक बनाना चाहा और कहा कि हे मुहूर्त देश काल आदि के जाननेवाले, ज्ञानिन्, शूर और दृढ़व्रतवाले ! तुम हम में मिलकर हम सबके बड़े अधिपति होजावो और जो हम को आज्ञा करोगे वही हमसबलोग करेंगे तुम माता पिता के समान न्याय की रीति से हम सबकी रक्षाकरो कायव्य बोला कि तुम भयभीत स्त्री को, बालक को, तपस्वी को और युद्ध न करनेवाले को मत मारो और

स्त्रियां कभी पराक्रम से पकड़ने के योग्य नहीं होतीं सब दशा में जीवधारियों के मध्य स्त्रियां अवध्य हैं, सदैव ब्राह्मणों का कल्याण विचारना योग्य है और उनके आनन्द के लिये युद्धकरना भी उचित है सत्यता को कभी नष्ट न करना चाहिये और किसी के विवाहादि कार्यों में विघ्न मत करो क्योंकि विवाहादि में देवता, अतिथि, पितृ पूजेजाते हैं सब जीवों में ब्राह्मण अदण्ड्य है और उन ब्राह्मणों की वृद्धि सब प्रकार से करनी चाहिये वह ब्राह्मण क्रोधयुक्त होकर जिसका नाश करना चाहते हैं उसका रक्षाकरनेवाला तीनोंलोक में कोई नहीं होता है, जो ब्राह्मणों की निन्दा करे और उनके नाश को चाहे उसका नाश ऐसे शीघ्र होता है जैसे कि सूर्योदय में अन्धकार का नाशहोता है इन ब्राह्मणों में बैठाहुआ सब प्रकार से राजफल की इच्छा करे कि जो व्यापारी हम को नहीं देंगे उससे उन लोगों को चोरी लगेगी क्योंकि यह दण्ड निश्चय करके कुकर्मियों के नाश के निमित्त नियत कियागया है खजाने की वृद्धि के लिये नहीं कियाहुआ है जो श्रेष्ठ लोगों को पीड़ा देते हैं उनका मारनाही दण्ड कहागया है जो कोई देश के नाश से अपनी वृद्धि करते हैं वह ऐसे मारेजाते हैं जैसे मृतक के साथ कीड़े मारेजाते हैं और जो चोर धर्मशास्त्र के अनुसार कर्म करें तो वह चोरजाति में भी शीघ्र सिद्धि को पाते हैं भीष्मजी बोले कि इतनी बातें सुनकर उन चोरों ने उस कायव्य की शिक्षा और आज्ञा को किया तब सबलोग पापों से निवृत्त होकर वृद्धि को प्राप्त हुये साधुवों की भलाई और चोरों को पापकर्मों से निवृत्त करके कायव्य ने बड़ी सिद्धि प्राप्त की जो पुरुष इस कायव्य के चरित्र को सदैव विचार करेगा वह वनवासी जीवों से कभी भयभीत न होगा हे राजन्! जिसको सबजीवों से भय न हो और नीचों से भी कभी भय न करे वही वन का राजा है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष ब्राह्मणों की कही हुई कथा को कहते हैं कि राजा जिन २ से धन को इकट्ठा करता है उनमें यज्ञ करनेवालों का और देवताओं का धन न हरनाचाहिये, क्षत्रियराजा चोरों का और यज्ञ न करनेवालों का धन हरसक्ता है क्योंकि यह प्रजा और राज्यभोग क्षत्रियों के ही हैं धन भी क्षत्रियों का ही है अन्य किसी का नहीं है वह धन इसके पराक्रम और सेना के वास्ते अथवा यज्ञ के निमित्त होता है भोगने के अयोग्य इन्धन आदि और भोजन के योग्य चावल इत्यादि और ओषधियों को काटकर पकाते हैं जो पुरुष हविष्यान्न से देव, पितृ, मनुष्यों

का पूजन नहीं करता है उस स्थल में धर्मज्ञ पुरुषों ने धन को निष्फल कहा है हे राजन्! धर्मज्ञ राजा पहिले धन को हरणकरे तदनन्तर लोक को प्रसन्न करे इसप्रकार करनेवाला राजा शोकरूप नहीं होता, जो पुरुष अपने देह को सेतु बनाकर असाधुवों से धन लेकर साधुवों को देता है वही सब धर्मों का ज्ञाता है अपनी सामर्थ्य से ऐसेप्रकार से संसार को विजय करे जैसे कि उद्भिज्ज चेंटी आदि जीव धीरे २ दूरतक चलेजाते हैं जैसे कि डांस मच्छर और चेंटियों के अण्डे अपने आप उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार यज्ञ न करनेवाला पुरुष भी वारंवार पैदा होता है और जैसे डांसआदि जीवों को पशु अलग करते हैं वैसेही यज्ञ न करनेवालों को त्यागना चाहिये और जैसे बहुत पिसावट से पृथ्वी की रेणु महीन होजाती है उसी तरह इस लोक में धर्म भी सूक्ष्म से सूक्ष्म होजाता है॥ ११॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेषष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सातवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य भविष्यत् बात को पहिले ही करनेवाला है और जो समय पर बुद्धि के अनुसार कार्य करता है यह दोनों सुखपूर्वक वृद्धि को पाते हैं दीर्घसूत्री सदैव नष्टता को पाता है इसस्थानपर इस उत्तम व्याख्यान को कहता हूं जोकि दीर्घसूत्री को करने और न करने के योग्य कर्म के निश्चय के विषय में कहा है, हे राजन्! किसी बड़े गहरे तालाब में मित्रभाव के साथ रहनेवाले तीन मत्स्य थे उन तीनों में से एक तो प्राचीन वृत्तान्तों का जाननेवाला दूसरा समय पर बुद्धिमत्ता प्रकट करनेवाला और तीसरा दीर्घसूत्री था किसी समय मछली मारनेवालों ने चारो ओर से नीचाखोदकर उसके जल को खाली किया तब वह दूरदर्शी उस तालाब को खाली होता देखकर अपने दोनों मित्रों से बोला कि सब जलजीवों की यह आपत्ति उत्पन्न हुई है सो जबतक मार्ग में कोई दोष न आवे तबतक दूसरे किसी अन्यस्थान को चलना चाहिये हे मित्र लोगो! जो पुरुष सम्मुख आनेवाली किसी आपत्ति को अच्छी नीति से निवृत्त करे वह संशय से रहित होता है जो तुमलोगों को यह बात स्वीकार होय तो चलो उनमें से दीर्घसूत्री ने कहा कि ठीक है परन्तु शीघ्रता न करनी चाहिये यह मेरी पक्कीराय है तदनन्तर समयपर बुद्धि प्रकटकरनेवाले ने दूरदर्शी से कहा कि समय वर्तमान होनेपर मेरा कोई काम न्याय के विपरीत नहीं होता है तवतो महाबुद्धिमान् दूरदर्शी वहां से नालियों के मार्ग होकर किसी बड़े गहरे तालाब को गया तदनन्तर मछुवों ने उस तालाब को खाली करके बड़ी २ युक्तियों से मछलियों को पकड़ा उनमें वह दीर्घसूत्री भी पकड़ा गया वहां रस्सियों से मछलियों के बांधने पर वह समयपर बुद्धि प्रकट करनेवाला भी उनमें आकर घुस

गया और सब को जाल में लेकर वह मत्स्यघाती चलदिया और उसने उन सब पकड़ीहुई मछलियों को देखा तदनन्तर मछलियों के धोने के समय यह बुद्धिमान् मत्स्य रस्सी से निकलकर गम्भीर जल में चलागया और उस निर्बुद्धि असावधान दीर्घसूत्री की मृत्युहुई इसीप्रकार जो पुरुष सम्मुख आयेहुये समय को नहीं जानता है वह दीर्घसूत्री मत्स्य के समान शीघ्र ही मृत्यु को पाता है और जो अपने को बुद्धिमान् समझकर प्रारम्भ में अपने कल्याण को नहीं करता है वह ऐसे सन्देह में पड़ता है जैसे कि समयपर बुद्धि प्रकट करनेवाले ने पाया और जो आगामी होनेवाले कर्म को करता है और समयपर बुद्धि को प्रकट करता है वह दोनों सुख से वृद्धि को पाते हैं और दीर्घसूत्री का नाश होजाता है काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात, मास, पक्ष, छहोंऋतु, कल्प, चारो प्रकार के वर्ष, पृथ्वी, देश, काल यह सब समय के विभाग हैं इनकी सूक्ष्मता दृष्टि नहींआती है जो पुरुष मनोरथसिद्धि करने के लिये ध्यान करता है वह अपने ही प्रकार से जानता है ऋषियों ने यह दोनों धर्म अर्थ और मोक्ष के शास्त्र और मनुष्यों के स्वीकृतशास्त्रों को ऋतु कहा है परीक्षा लेकर करनेवाला और कर्म का करनेवाला दोनों अच्छे प्रकार से प्रयोजन को सिद्ध करते हैं देश और काल चित्त के रोचकहैं इससे इन्हीं से फल को पाता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आपने सर्वोत्तम बुद्धियों का वर्णन किया प्रथम वह है कि जिससे भविष्यत् बात ज्ञात होजाय द्वितीय वह कि समयपर आपत्ति से बचे तृतीय नाश करनेवाली दीर्घसूत्रियों की बुद्धि है हे पितामह ! अब मैं आप से उस बुद्धि को सुनाचाहता हूं जिससे कि शत्रु से घिराहुआ राजा मोहयुक्त न हो और जो राजा धर्म अर्थ में प्रवीण और धर्मशास्त्र का पण्डित हो ऐसा कौन है उसको आप कहिये मैं इन सब को बुद्धि के अनुसार सुना चाहता हूं पूर्वसमय के खेद पायेहुये बहुत से शत्रु आपत्ति में संयुक्त अकेले भी होकर राजा के नाश को चाहते हैं, बड़े पराक्रमियों से सब स्थानोंपर क़ैद करने के योग्य निर्बल और असहाय राजा कैसे वर्तमान होने को योग्य है और शत्रु मित्र को कैसे प्राप्त करता है यहां शत्रु मित्र के मध्य में कैसे कर्म करना चाहिये इसीप्रकार जिस पुरुष का लक्षण जानागया है ऐसे मित्र को शत्रु होजाने पर कैसे काम करे जिससे कि सुख को प्राप्त हो, किसको मित्र और किसको शत्रु करे और शत्रुओं में वर्तमान वीर पराक्रमी भी किसप्रकार से वर्ताव करे इन सब बातों को आप विचारपूर्वक कहिये भीष्म जी बोले हे युधिष्ठिर, पुत्र ! यह

सुखदायी प्रश्न तेरे पूछने योग्य है इसको व्यौरेसमेत मैं कहता हूं कि कार्यों के सामर्थ्ययोग से शत्रु मित्र होजाता है और मित्र शत्रु होजाता है यह बात सदैव से चली आई है इसकारण देशकाल को जानकर योग्यायोग्य कर्म के निश्चय करने में विश्वास करना चाहिये और आतंकबन्ध घातइत्यादि को अच्छे प्रकार से करे और बुद्धिमान् शुभचिन्तकलोगों से सदैव मेल और स्नेह रखना चाहिये और शत्रुवों से भी सन्धि करनीचाहिये क्योंकि अपने प्राणों की रक्षा अवश्यहै जो मूर्ख शत्रुवों से सदैव मेल नहीं रखता है वह किसी अर्थ और फल को नहीं पाता जो पुरुष अपना अर्थ समझकर शत्रु से सन्धि करता है और मित्र के साथ शत्रुता करता है वह बड़े भारी फल को पाता है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें वट वृक्ष के समीप रहनेवाले बिलार और चूहे का परस्पर विवाद है कि किसी बड़े वन में एक बड़ाभारी बरगद का वृक्ष था जिसकी बड़ी २ लता उसको घेरेहुये थीं और अनेक प्रकार के पक्षियों के समूहों से व्याप्त था उसकी सघनछाया में अनेक सर्पादिक विषवाले जीव और मृगों का निवासस्थान था वहां एक पलित नाम चूहा भी उसकी जड़ में सौ मुखवाले छिद्र में निर्भय रहता था और पक्षियों का घातक लोमश नाम बिलार उस वृक्ष की शाखापर रहता था वहां एक बहेलिया सूर्यास्त के समय उस वृक्ष के नीचे जाल बिछाकर प्रतिदिन घर को चलाजाता था और प्रातःकाल जब आता था तब रात्रि के फँसेहुये मृग उसमें पाता था दैवयोग से एक दिन वह बिलार उसमें फँसगया उस बड़े पराक्रमी अपने शत्रु के फँसजाने पर वह पलित नाम चूहा निर्भय होकर इधर उधर फिरनेलगा तब बहुत दिनों से आकांक्षी घूमनेवाले चूहे ने उस जाल के समीप पड़ेहुये मांस-खण्ड को देखा और जालपर चढ़कर उसको खाया और उस फँसेहुये अपने वैरी बिलार के सिवाय उसने एक नौले को और उलूकपक्षी को देखा यह दोनों भी चूहे के शत्रु थे और चूहे की गन्धपाकर ओठों को चाटतेहुये चूहे की खोज में इधर उधर फिरनेलगे तब चूहे ने चारो ओर से अपने को शत्रुवों से घिराहुआ देखकर महाचिन्तायुक्त होकर यह विचार किया कि ऐसे मृत्यु के वर्तमान होने से और चारो ओर से भयभीत होनेपर अपनी वृद्धिचाहनेवाले को किसी प्रकार काम करना चाहिये जिससे कि आपत्ति में पड़ेहुये जीव अपनी आपत्ति दूर करके उत्तम जीवन प्राप्तकरें यदि पृथ्वीपर जाऊं तो नौला भक्षण करेगा और जो यहांही बैठा रहूंगा तो उलूक खाजायगा और फांसियों के कटने से बिलार भोजन करेगा ऐसी दशा में मुझ सरीखा बुद्धिमान् मोह करने के योग्य नहीं है क्योंकि मैं जहां तक बनेगा वहां तक जीवने का उद्योग करूंगा बुद्धिमान् नीतिज्ञ लोग बड़ी आपत्ति में भी फँसकर चिन्ता में मग्न नहीं होते हैं इससे

अब मैं इस स्थान पर बिलार के सिवाय दूसरे उपाय को नहीं जानता हूं यह मेरा शत्रु आपत्ति में है और इस समय में उसका बड़ा काम करसक्ता हूं अब तीन शत्रुवों से घिरा हुआ अपने जीवन के लिये क्या काम करूं इस से इस बिलार अपने शत्रु की शरण में जाता हूं नीतिशास्त्र की रीति से इसकी शरण में जाकर इसके अभीष्ट को वर्णन करूं जिसके द्वारा अपनी बुद्धिमत्ता से इन सब शत्रुवों से बचूं यह मेरा शत्रु बड़ी आपत्ति में है जो यह मूर्ख अपना प्रयोजन सिद्धकरने के लिये मेल करने को तैयार होजाय अर्थात् महादुःखी होकर जो मुझ से मित्रता करे तो आपत्ति में पड़ेहुये जीवन की इच्छा करनेवाले उस पराक्रमी शत्रु से भी मिलाप करनायोग्य है जो कि समीप वर्तमान हो ऐसा आचार्यलोग कहते हैं कि पण्डित शत्रु भी श्रेष्ठ है और मूर्ख मित्र भी अच्छा नहीं और मेरा जीवन इस बिलार से है मैं अपने बचने के लिये इस बिलार से कहूंगा तो यह शत्रु भी मिलाप से पण्डित होजायगा ऐसा मन में विचारकर बड़ीमीठीवाणी से चूहे ने बिलार से कहा कि हे बिलार ! मैं मित्रता से पूछता हूं कि तुम जीते हो मैं तेरा जीवन चाहता हूं हम दोनों का कल्याण सुगम है हे स्वामिन् ! तुम को भय न करना चाहिये तू सुख को अधिक भोगेगा मैं तुझ को इस बन्धन से छुटादूंगा जो मुझ को न मारे यहां एक कठिन उद्योग मुझ को दृष्टिपड़ता है जिसके द्वारा तुझ को छुटाऊंगा और मेरा भी कल्याण होगा मैंने अपने और तेरे लिये खूब विचारकर यह युक्ति शोची है इसीमें हमदोनों का कल्याण है हे बिलार ! यह नौला और पापात्मा उलूक मुझ को नहीं मारते हैं इसी से मेरा कल्याण है परन्तु यह चपलनेत्र नौला मुझ को देखता है और शब्द करता है और वृक्ष की शाखापर बैठा हुआ यह उलूक भी देखता है मुझ को इनसे बड़ा भय है सातचरण साथ चलने से सत्पुरुषों की मित्रता होती है सो तुम पण्डित हो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा तुम मेरे मित्र हो अब तू भय मतकर हे मित्र, बिलार ! तुम मेरे काटने विना फन्दे से नहीं निकलसक्के जो तुम मुझ को न मारोगे तो मैं तेरे फन्दों को काटूंगा तुम अपने वृक्षपर जावो और मैं वृक्ष की जड़ में जाऊं क्योंकि हम तुम बहुतकाल से इस स्थान में रहते हैं जिसका कोई विश्वास नहीं करता और कहीं आप भी विश्वास नहीं करता ऐसे चित्तवालों की पण्डित प्रशंसा नहीं करते हैं इसकारण हमदोनों की मित्रता बड़ी होय और सदैव हमदोनों का मिलाप रहै इस स्थान पर पण्डितलोग समय पर प्रयोजन उल्लंघन करने की प्रशंसा नहीं करते हैं यहां इस अर्थयुक्ति को सुनो कि मैं तुम्हारे जीवन को और तुम मेरे जीवन को परस्पर चाहते हो जैसे कि कोई पुरुष काष्ठ के द्वारा महागम्भीर नदी से पार उतरता है वह उस काष्ठ को भी तारता है और उसके द्वारा आप भी तरता है इसीप्रकार

हमारा तुम्हारा योग है मैं तुम को तारूंगा और तुम मुझ को तारोगे ऐसी उचित बातें करके वह चूहा चुप होगया तब वह पण्डित बिलार बड़े मीठेवचनों से उसकी प्रशंसा करके बोला कि हे सौम्य! तेरा भला हो मैं प्रसन्न होता हूं जो तुम मेरा जीवन चाहते हो तो इस कल्याण को करो इस में विचार मतकरो मैं इस कठिन फन्दे में फँसा हूं और तुम मुझ से भी अधिक आपत्ति में फँसे हो हमदोनों आपत्ति में हैं मिलाप करने में विलम्ब न करनाचाहिये और हे मित्र! समय के अनुसार जिस कर्म से सिद्धि प्राप्त होगी उसीको करूंगा मेरी आपत्ति की निवृत्ति करने से तेरा उपकार व्यर्थ न होगा मैं निरहंकारी भक्त हूं शिष्य के समान तेरी भलाई करूंगा यह सुनकर उस पलित चूहे ने यह हितकारी वचन कहा कि आप ने जो बात कही वह आप सरीखे जीव में आश्चर्यकारी नहीं है प्रयोजन के सिद्ध करने को जो युक्ति मैंने नियत की है उसको सुनो मैं तेरे पास आता हूं मुझ को नौले से बड़ा भय है सो तुम मुझ को मत मारो क्योंकि मैं तेरी रक्षा करने में समर्थ हूं और उलूक भी मुझ को चाहता है उस नीच से भी मेरी रक्षा करो हे मित्र! मैं सत्य २ शपथ करता हूं मैं तेरी फांसी को काटूंगा तब उस लोमश नाम बिलारने ऐसे सार्थक वचनों को सुनकर उस पलित नाम चूहेकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम मेरे प्राण के समान मित्र हो तुम्हारा सदैव भला हो जल्द फन्दों को काटो हे ज्ञानिन्! तेरी कृपा से बहुत दिनतक जीऊंगा और जो २ मुझ से इसके बदले में चाहैगा वह सब तेरे लिये करूंगा हे मित्र! जल्दी से हमारा तेरा मिलाप हो इस आपत्ति से जल्दी छुड़ा मैं तेरे अनेक उपकार करूंगा भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से दोनों विश्वसित होगये तब चूहा उसकी बग़ल में फन्दे काटने को आया और बिलार से निर्भय होकर उस की छाती के नीचे ऐसे शयन किया जैसे कि विश्वासी माता पिता के साथ सोता है उस चूहे को बिलार के नीचे चिपटा हुआ देखकर वह नौला और उलूक दोनों निराश हुये और उनकी ऐसी प्रीति देखकर वह दोनों महाआश्चर्य करनेलगे और उस चूहे को अपने पराक्रम और उद्योग से पकड़ने को असमर्थ हुये और उसका पकड़ना असम्भव जानकर शीघ्रता से अपने २ स्थानों को चलेगये तब उस पलित ने बहुत धीरे २ उस बिलार की फांसियोंको काटा तब उस बिलारने चूहेसे कहा कि हे सौम्य, मित्र! क्यों नहीं शीघ्रता से काटता और अपने सिद्ध मनोरथ का क्यों अपमान करता है हे शत्रुवों के मारनेवाले! जल्दी से फांसियों को काट सामने से वह चाण्डाल आता है तब चूहे ने उस से कहा कि हे मित्र! चुप होजावो तुम को शीघ्रता न करनी चाहिये क्योंकि हम समयके जाननेवाले हैं समय त्याग नहीं किया जाता विना समय करनेवाले का प्रारम्भकर्म सिद्ध नहीं होता है और समयपर करने से वही प्रारम्भकर्म शीघ्र ही सिद्ध होता है

वे समय तुझ फांसी से छूटेहुये से मुझ को भय है इससे समयतक राहदेख शीघ्रता क्यों करता है जब उस शस्त्रधारी चाण्डाल को समीप आता देखूंगा तब साधारण भय होनेपर तेरी फांसियों को काटूंगा फांसी से छूटते ही तुम अपने जीवन के निमित्त वृक्ष परही चढ़ोगे तब मैं अपने बिल में जाऊंगा और आप अपने वृक्ष पर बैठोगे तब चूहे से अपने हितकारी ऐसे वचनों को सुनकर बिलार बोला कि हे मित्र! प्रीति से करनेवाले साधुलोग इसप्रकार नहीं करते हैं देखो जैसे मैंने तुम को शीघ्र ही आपत्ति से छुटाया उसीप्रकार तुम भी मुझ को शीघ्रता से छुटावो और जो तुम प्राचीन शत्रुता से देर करते हो सो देखो कि तुम्हारा जीवन मेरेकारण से सिद्ध हुआ और जो कोई अज्ञानता से मैंने तुम्हारे साथ पहिले पाप किया हो उसको क्षमा करो और चित्त से द्वेष को त्यागकर मेरा काम करो तब उस शास्त्रज्ञ चूहे ने शास्त्र की बुद्धि से फिर श्रेष्ठवचन कहा कि हे बिलार! मैंने तुझ स्वार्थी का वचन सुना और तुम भी मुझ अपने स्वार्थी को जानते हो जो मित्र भयकारी के समान मिलनेवाला है और जो भय से हितकारी है वह कार्य बहुत विचार के साथ ऐसे करने के योग्य है जैसे कि सर्प के मुख से हाथ विचार करने के योग्य है जो पुरुष पराक्रमियों से मिलाप करके अपनी रक्षा नहीं करता है उसकी बात उसके प्रयोजन को सिद्ध नहीं करसक्ती है जैसे कि भोजन किया हुआ अपथ्य—न तो कोई मित्र है न कोई किसी का शुभचिन्तक है प्रयोजन से ही मित्र और शुभचिन्तक होते हैं प्रयोजन से प्रयोजन ऐसे बांधाजाता है जैसे कि हाथियों से जंगलीहाथी—कार्य होजाने पर कोई उपकार को नहीं ध्यान करता है इस कारण सब कामों को पूरा नहीं करता दिन में भयभीत होकर आप भी मुझ पर घात नहीं करसकोगे और भागने में प्रवृत्त होगे बहुत से फन्दे काटे हैं एकही फन्दा बाक़ी है हे लोमश! मैं उस को भी बहुतशीघ्र काटूंगा विश्वासयुक्त रहो इसीप्रकार से वार्तालाप करते २ रात्रि व्यतीत हुई और बिलार को भय उत्पन्न हुआ तिस पीछे प्रभात के समय विकृत काला और पीलावर्ण महाघोर रूप कुत्तोंको साथ लिये शंकुकर्ण चौड़ा भयानक महामलिन घोरदर्शन हाथमें शस्त्रलिये परिघ नाम चाण्डाल दृष्टिपड़ा तब महाभयभीत होकर बिलार ने कहा कि अब क्या करेगा तदनन्तर वह दोनों नौला और उलूक जो निराश होकर चले गये थे फिर उस समूह में आये और उस बिलार और चूहे को देखते थे कि चूहे ने बिलार का वह बाक़ी फन्दा भी काट डाला और बिलार बड़ी शीघ्रता से पेड़पर चढ़गया फिर पलितचूहा भी बिल में घुसगया तब वह चाण्डाल क्षणमात्र ठहरकर उस जाल को लेकर चलागया तब बिलार ने बिल में बैठेहुये उस चूहे से यह कहा कि हे मित्र! जीवदान देकर मित्रता मे मेरे पास क्यों नहीं आते हो जो मनुष्य पहिले मित्रता करके पीछे

पास नहीं आता है वह निर्बुद्धि बड़ी आपत्तियों में कष्ट से भी मित्रों को नहीं पाता है हे मित्र! तैंने अपनी सामर्थ्य से मेरे ऊपर उपकार किया इससे मुझ से मित्रता भोगो मेरे इष्टमित्र बान्धव भी तुमको ऐसे पूजेंगे जैसे कि शिष्यलोग अपने प्यारे गुरु को पूजते हैं और मैं अपने सब कुटुम्ब समेत तुझ जीवदान देनेवाले को सदैव पूजूंगा उपकार को जानकर कौन पुरुष है जो उसकी सेवा न करे आप मेरे देह, प्राण, घर आदि के स्वामी हो और मेरे मन्त्री होकर पिता के समान मुझ को उपदेश करो हम शपथ खाते हैं हमसे आप कभी भय न करें यद्यपि हम पराक्रम में तुम से अधिक हैं परन्तु तुम शुक्रजी के समान गुरु हो इस से पराक्रमी सलाह में प्रवृत्त हो बिलार के ऐसे २ वचनों को सुनकर चूहे ने साफ़ २ अपना हितकारी वचन कहा कि मैंने सब तुम्हारी बातें सुनी अब मुझ को जैसा मालूम होता है उस मेरी बात को भी सुनो कि शत्रु जानने और पहिंचानने के योग्य हैं लोक में यह अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानियों का वचन सुनने में और देखने में आता है कि मित्र शत्रुरूप हैं और शत्रु मित्ररूप हैं वह काम क्रोध से संयुक्त हुये नहीं पहिंचाने जाते हैं प्रत्यक्ष में न कोई शत्रु है न मित्र है मित्र और शत्रु दोनों सामर्थ्य के योग से उत्पन्न होते हैं जो अपने प्रयोजन के लिये जिसके पास जीवन करता है और जीवन में कोई दुःख नहीं पाता है वह तबतक ही उसका मित्र बना रहता है जबतक कि कोई विपरीतता न होवे प्रत्यक्ष है कि मित्रता स्थिर नहीं है और शत्रुता भी अविनाशी नहीं है मित्र और शत्रु सब अर्थयुक्तियों से उत्पन्न होते हैं किसीसमय की विपरीतता में मित्र शत्रु होता है और शत्रु मित्र होजाता है अपना प्रयोजनही महाबली है जो मित्रों में विश्वास करता है और शत्रुवों में विश्वास नहीं करता है और जो अर्थयुक्ति को न जानकर प्रीति करनेवालों में इच्छा करता है उसकी बुद्धि शत्रु या मित्र में अवश्य चलायमान होगी अविश्वस्तों में अधिक विश्वास न करे विश्वास से उत्पन्न होनेवाला भय मूल को भी काटडालता है अर्थयुक्तिसे ही पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे, सम्बन्धी, बान्धव आदि सब उत्पन्न होते हैं और पतित होनेवाले पुत्र को माता पिता भी त्याग करते हैं सब संसार अपनी आत्मा की रक्षा करता है तुम अपने अर्थकी सरिता देखो हे ज्ञानिन्! जो बन्धन से छूटने के पीछे वदला है वह साधारण है निस्सन्देह तुम सुगमता से अपने शत्रु को प्राप्त कियाचाहते हो इस बड़े बरगद से उतरते हुये तुम ने चपलता से पहिले से बिछाये हुये जाल को नहीं जाना चपल पुरुष जब अपनाही नहीं है तो दूसरों का कैसे होगा इस कारण चपल मनुष्य अवश्य सबकार्यों का नाश करता है जो तुम इन मीठेवचनों को कहते हो कि आप मेरे प्यारे हो तो मित्र होने के उस सम्पूर्ण कारण को ब्यौरेवार मुझ से

सुनो कि कारण ही से मित्रता प्राप्त होती है और कारण ही से शत्रु भी हो जाता है यह जीवलोक अपने स्वार्थ का चाहनेवाला है कोई किसी का प्यारा नहीं है सगेभाई या स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति होती है मैं इस लोक में किसी की प्रीति को विना कारण के नहीं जानता हूं जो किसी हेतु से भाई या स्त्री क्रोधयुक्त होजाते हैं तो वह स्वभाव से प्रसन्न भी होजाते हैं दूसरा मनुष्य प्रसन्न नहीं होता कोई धन से कोई मीठेवचन से कोई मन्त्र, होम, जप आदि से प्रसन्न होता है सब मनुष्य कार्य के निमित्त प्रीति करते हैं हमारी तुम्हारी प्रीति कारणसे हुई है वेकारण नहीं हुई मैं जानता हूं कि उस कारण स्थान के नाश होने से वह प्रीति दूर होजाती है, वह कौन सा कारण है जिससे मैं आप का प्यारा हुआ, भोजन के प्रयोजन के सिवाय भी उस स्थान पर हम वुद्धिमान् हैं समय कारण को वदलता है और अपना प्रयोजन उसके पीछे वर्तमान होता है ज्ञानी अपने प्रयोजन को जानता है और ज्ञानी के समान संसार कर्मकरता है वुद्धिमान पण्डित होकर तुम को ऐसा न कहना चाहिये तुमसरीखे समर्थ मनुष्य का यह प्रीति का कारण अयोग्य है इस कारण सन्धि और विरोध में स्थिरस्वभाव होकर मैं प्रयोजन के मित्र से अलग होता हूं जैसे कि वादलों के रूप क्षण २ में वदलते रहते हैं इसीप्रकार आपभी शत्रु होकर मेरे मित्र होते हो और फिर शत्रु होजावोगे इन युक्तियों की चपलता को देखो तभीतक हमारी मित्रता रही जवतक कि पूर्वसमय में मित्रता का कारण वर्तमान था उस समयसे मिलीहुई मित्रता जातीरही तुम जन्म सेही मेरे शत्रु हो सामर्थ्य के योग से मित्रता होगई उस कार्य को सम्पूर्ण करके स्वभाव ने शत्रुता को पाया सो मैं शास्त्रज्ञ होकर अपने को तेरे जाल में कैसे फँसाऊं यह मुझे समझावो मैं तेरेवल से छूटा इसीप्रकार आप भी मेरे पराक्रम से जालसे छूटे परस्पर में कृपाहोने से फिर मिलाप नहीं है हे विलार ! अब जैसे तुम अभीष्ट सिद्ध किये हो उसीप्रकार मैं भी सिद्धमनोरथ हूं अब भक्षण करने के सिवाय कोई काम मुझ से तेरा नहीं है मैं भोज्यवस्तु हूं आप भोक्ता जीव हैं मैं निर्वल हूं आप पराक्रमी हैं भिन्न २ पराक्रमियों का परस्पर में मेल नहीं होता सो मैं तेरी इस वुद्धि को जानता हूं जो जाल से छूटने के पीछे तुझ में उत्पन्न हुई तुम निश्चय करके सुगमता से भोजन को चाहते हो भोजनही के लिये तुम जाल में फँसे थे अब उससे छूटकर फिर गृहस्थाश्रम से दुःखी हो मुझे निश्चय है कि तुम अपनी विद्यावुद्धि के वल से मुझ को भक्षण करना चाहते हो मैं तुझ को जानता हूं यह तेरे भोजन का समय है सो मुझ से मिलाप करके भोजन चाहते हो जो तुम मुझ से मित्रता करतेहो तो तुम भी स्त्री और पुत्रों में संयुक्त हो और मेरी सेवा करने की युक्ति करते हो सो हे मित्र ! वह तेरे स्त्री पुत्र मुझ को तेरे साथ देख-

कर कब खाने से छोड़ेंगे इस से मैं तुझ से नहीं मिलूंगा मिलाप करने का जो कारण था वह तो समाप्तहुआ अब जो उपकारको तुम स्मरण करतेहो तो साव-धान होकर मेरी भलाई को ध्यान में रक्खो नीच, दुःखी और भोजन को चाहने-वाले शत्रु के देश को कौन बुद्धिमान् जाता है मैं दूरही से तेरा भय करता हूं क्षणमात्र में तेरा भोजनरूप कल्याण होजाऊंगा चाहे विश्वासयुक्त हो या अत्यन्तप्रसन्न हो परन्तु समयपर यही कर्म होगा क्योंकि पराक्रमी की समीपता किसी २ समयपर दुःखदायिनी भी होती है इससे हे लोमश ! मैं तुम से नहीं मिलूंगा अपनी आशा दूरकरो और जो तुम उत्तमकर्म को जानते हो तो चित्त से प्रीति रक्खो मुझ को शान्तचित्त पापी पराक्रमी से अवश्य डरना योग्य है जो तुम अपने मतलबी होजावो तो मैं तुम्हारा क्या करसक्ता हूं मैं इच्छा के अनुसार सबवस्तु दूंगा परन्तु देह को नहीं दूंगा क्योंकि देह के पीछे सन्तान,राज्य, रत्न, धनभी त्याग करने के योग्य हैं सब धन को भी त्यागकर बुद्धि के अनुसार देह की रक्षा करे धन रत्नों के ऐश्वर्य को पाकर मित्र के पास वर्तमान हो और धन की प्राप्ति के अनुसार अपने जीवन का निर्वाह करो, धन और रत्नों के समान अपने देह को कोई नहीं देने की इच्छा करता है स्त्री और धन से भी अधिक अपना आत्मा रक्षा के योग्य है—जो पुरुष अपने आत्मा की रक्षा में प्रवृत्त अच्छी परीक्षा करके कर्म करते हैं उन पुरुषों को अपने दोष से प्राप्त होनेवाली आ-पत्ति कभी नहीं होती है, जो निर्बल अपने पराक्रमी शत्रु को अच्छेप्रकार से जानते हैं उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है तब तो बिलार ने लज्जायुक्त होकर उस पलित चूहे से यह वचन कहा कि पलित मैं तुझ से सत्य २ शपथ खाता हूं मित्र से शत्रुता करना महानिन्दितकर्म है और तुम जो मेरे अभीष्ट को चाहते हो इस से मैं तेरी इस बुद्धि को श्रेष्ठ जानता हूं तुम ने अपने प्रयो-जन के लिये अथवा मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि करके अपूर्वबातें मुझ से कहीं सो हे मित्र ! तुम मुझ को प्रतिकूल जानने के योग्य नहीं हो क्योंकि प्राणदान से मैं तुझ को मित्र बनाता हूं मैं गुण और धर्मों का जाननेवाला अच्छेप्रकार तेरे उपकार को जानता हूं मित्रों से प्रीति रखता हूं और विशेष करके तेरा भक्त हूं इस कारण तुम मेरे साथ विचरने के योग्य हो तेरे त्यागने से मैं बान्धवों समेत प्राणत्याग करूंगा जब कि यह मेरा विचार है तो आप को भय करना कभी नहीं योग्य है यह सुनकर चूहेने फिर उत्तर दिया कि आपसाधु हैं परन्तु मैंने अर्थशास्त्र पढ़ा है इस से शत्रुपर विश्वास कभी नहीं करसक्ता तेरी प्रशंसा और धन के देने से भी मैं तेरे आधीन नहीं होसक्ता अरे भाई ज्ञानी पुरुष विना प्रयोजन शत्रु के आधीन नहीं होते हैं इस प्रयोजन में शुक्रजी की दो गाथाओं को सुनो कि जहां साधारण शत्रु है वहां पराक्रमी के साथ मेल करके सावधानी

से युक्तिपूर्वक कर्म करे और मनोरथ सिद्ध करके भी विश्वास न करे, अविश्वासी में विश्वास न करे और विश्वासी में भी अधिक विश्वास न करे, सदैव दूसरों को अपना विश्वास दिलावै परन्तु आप किसी दूसरे का विश्वास न करे इस कारण चाहिये कि सब दशाओं में अपने आत्मा की रक्षा करे धन और पुत्र देह सेही उत्पन्न होते हैं अविश्वासही को नीतिशास्त्र का उत्तम आशय कहते हैं इससे मनुष्यों पर विश्वास न करनाही अपना बड़ा हित है विश्वास न करनेवाले निर्बलभी पराक्रमियों के हाथ से नहीं मारे जाते हैं और विश्वासी पराक्रमी भी होकर निर्बलों के हाथ से मारेजाते हैं इससे हे विलार ! मुझ को अपना आत्मा तुझ सरीखे जीवों से सदैव रक्षा के योग्य है तुम को भी उचित है कि पापी चाण्डाल से अपनी रक्षा करो उसके यह वचन सुनतेही वह विलार भयभीत होकर वृक्ष को त्यागकर शीघ्रही बड़ी तीव्रता से भागा वह पलित चूहा अपनी बुद्धि की सामर्थ्य से ऐसे वचन सुनाकर दूसरे बिल में चलागया इसप्रकार से इस निर्बल चूहे ने अपनी प्रबलबुद्धि से बहुत से पराक्रमी शत्रुवों को स्वाधीन किया परिडत होकर समर्थ शत्रु से सदैव सन्धि करे मैंने क्षत्रियधर्म चूहे और विलार के दृष्टान्त से तुम को सुनाया अब हे युधिष्ठिर ! इस का आशय भी मुझ से सुनो कि उन दोनों विरोधियों ने परस्पर में प्रीति करी और फिर परस्पर में मेल करने की भी उन दोनों में इच्छाहुई ऐसे स्थान में ज्ञानी पुरुष बुद्धि के बल से अच्छे प्रकार मिलाप करता है ज्ञानी भूल से भी अज्ञानियों के साथ मिलाप करता है इस कारण निर्भयता के समान भयभीत और विश्वासी के सदृश विश्वास को नहीं करता सावधान पुरुष चलायमान नहीं होता है और जब चलायमान होता है तब नाश को प्राप्त होता है समय पर शत्रु से सन्धि और मित्र से विरोध भी करना चाहिये यह सन्धि के जाननेवालों ने वारंवार कहाहै हे युधिष्ठिर ! इस को जानकर शास्त्रके अर्थ को निश्चय करके कर्म में प्रवृत्त प्रसन्नचित्त होकर भयसे पूर्वही भयभीतके समान कर्म करो, क्योंकि भयपूर्वक सावधानी से उद्योग करने से बुद्धि उत्पन्न होती है और सम्मुख न आनेवाले भय में भयभीत होनेवालेको भय नहीं प्राप्त होता है और विश्वासयुक्त निर्भय से भी बहुत बड़ाभारी भय उत्पन्न होता है— जो पुरुष सदैव निर्भय होकर घूमताहै उसको बड़ी युक्ति से मन्त्र देनाचाहिये कि अच्छेप्रकारसे जाननेवाला वह पुरुष अज्ञानी के समान उन लोगोंके पास जाय जोकि ऐश्वर्यवान् हैं भयभीत विश्वासी के समान विश्वास करने के कारण निर्भय के समान कार्यों की श्रेष्ठता को पाकर मिथ्याकर्म नहीं करता है हे युधिष्ठिर ! मैंने इसप्रकार यह इतिहास कहा इसको समझकर तुम मित्रोंमें बुद्धि के अनुसार कर्म करो अर्थात् उत्तम बुद्धि और शत्रु मित्र के अन्तर को

जानकर सन्धि और विरोध के समय अपना बचाव जानके शत्रु को साधारण जाने पराक्रमी से मेलकर मिलाप में युक्ति के साथ कर्मकरो और मनोरथ सिद्ध करके विश्वास न करो—हे राजन्! यह नीति त्रिवर्गसे मिलीहुई है इसको काम में लावो और फिर इस शास्त्र से प्रजा की अच्छी रक्षा करके सावधानहो और तेरी यात्रा भी ब्राह्मणों के साथ हो क्योंकि ब्राह्मण लोग इस लोक और परलोक में महाकल्याणरूप हैं और यही धर्मज्ञ और कृतज्ञ पूजित होकर भला करनेवाले हैं इनका पूजन करने से परम कल्याण और कीर्ति को प्राप्तहोगे और न्याय-पूर्वक परम्परा के समान घराने की सन्तानों को भी पावोगे—इस नीतिके अनु-सार राजालोगों को शत्रुवों के बीचमें बर्ताव करना चाहिये॥ २२१॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाबाहो! आपने मन्त्र अर्थात् सलाह का वर्णन किया कि शत्रुवों पर विश्वास नहीं है जो राजा किसी पर विश्वास न करे तो कैसे अपने सब राज्यकर्म करे और विश्वास से राजाओं को बड़ाभय उत्पन्न होता है पृथ्वी का राजा विश्वासरहित होकर कैसे शत्रुवों को विजय करता है इस अवि-श्वस्तता के वृत्तान्त को सुनकर मेरे चित्त में बड़ी अज्ञानता है इससे मेरे सन्देह को दूरकरिये भीष्मजी बोले कि हे राजन्! सुनो कि राजा ब्रह्मदत्त के महल में पूजनी नाम पक्षी की स्त्री के साथ राजासे वार्तालाप के द्वारा जो वृत्तान्तहुआ वह यह है कि काम्पिल्य नाम नगर में राजा ब्रह्मदत्त के राजमहल में पूजनी नाम पक्षिणी बहुत दिवस से रहती थी यद्यपि वह तिर्यग्योनि में उत्पन्नहुई थी परन्तु सब सिद्धान्तों की ज्ञाता होकर सम्पूर्ण जीवों की भाषा जीव जीव के समान जानती थी (जीव जीव के पक्षियों की बोली से शुभ अशुभ जाननेवाला होता है) उसी महल में उस पूजनी में एकतेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ और उसीसमय राजा के भी पुत्र हुआ तब वह पक्षिणी समुद्र के तटपर जाकर दोनों बालकों के निमित्त दो फल लाई वह अमृत के समान सुस्वादु तेज बल का बढ़ानेवाला एक फल अपने पुत्र को और दूसरा राजकुमार को दिया उस फल से राजकु-मार की बड़ी वृद्धि हुई एक दिन धात्री की गोद में बैठेहुये राजकुमार ने उस पक्षी के बच्चे को देखा और लड़कपन से उस के पास जाकर उससे खेलने लगा और खेलते २ उस खाली मकान में उस पक्षी को मारकर धात्री की गोदी में आबैठा तदनन्तर वह फललानेवाली पूजनी आपहुँची और उस अपने बच्चे को राजकुमार से माराहुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा और महाव्याकुल शोकसे अश्रुपात करती हुई उस पूजनी ने यह वचन कहा कि क्षत्रिय में न मिलाप है न प्रीति

है यह क्षत्रियलोग कारण से मीठेवचन कहकर दमदिलासा दिया करते हैं और अपना मनोरथ करके उसको त्याग करते हैं सबप्रकार से अनुपकारी अकृतज्ञ क्षत्रियों का विश्वास न करना चाहिये बुराई करके भी निरर्थक दिलासा देते हैं अब मैं भी इस शत्रुता का बदला दूंगी साथ उत्पन्न होकर बड़े होनेवाले और साथ भोजन करनेवाले और शरणागत में आनेवाले इन तीनों को मारने से तीन प्रकार का पातक है ऐसा कहकर दोनों पंजों से राजकुमार की दोनों आंखों को फोड़कर आकाश में जाकर यह वचन कहा कि इच्छा से किये हुये पाप का फल इस लोक में शीघ्रही होता है अर्थात् जैसा कर्म किया वैसा फल पाया क्योंकि कर्म का लोप नहीं होता जोकि किया हुआ पाप कर्मकर्ता में दृष्टि नहीं आता है तो उसके पुत्र पौत्रादि में अवश्य दृष्टिआता है राजा ब्रह्मदत्त ने अपने पुत्र को आंखरहित देखकर और जैसे कर्म का तैसाही फल जानकर उस पूजनी से यह कहा कि निश्चय हमारी ओर का दुष्कर्म है और तेरी ओर से उस कर्म का बदला है वह दोनों बराबर हुये सो हे पूजनी ! यहां से मत जावो पूजनी बोली कि एकबार अपराध करनेवाले को उसी स्थान में शरण होनेवाला कर्म ज्ञानीलोग अच्छा नहीं समझते ऐसे स्थान से अलगही होना कल्याणकारी है सदैव दमदिलासा देने से शत्रु का विश्वास न करे नहीं तो वह अज्ञानी शीघ्रही माराजाता है क्योंकि शत्रुता दूर नहीं हुई परस्पर में शत्रुता करनेवालों के पुत्र पौत्रादि को मृत्यु मारती है और पुत्र पौत्रादि के नाशहोने से उसके परलोक का भी नाश करती है शत्रु से अविश्वास करना सबप्रकार से सुखकारी है विश्वासघातियों का विश्वास कभी न करना चाहिये अप्रमाणिक में कभी विश्वास न करे और प्रमाणिक में भी अधिक विश्वास न करे विश्वास से उत्पन्न होनेवाला भय मूल समेत काटता है दूसरों को इच्छा के समान विश्वास करावे परन्तु दूसरों का विश्वास न करे बान्धवों में माता पिता सबसे श्रेष्ठ हैं और स्त्री वीर्य ग्रहण करने से और पुत्र वीर्यरूप होने से श्रेष्ठ गिनेजाते हैं भाई शत्रु है जिस को धन से प्रसन्न करना पड़ता है वह आत्माही अकेला मित्र होकर सुख दुःख का भोगनेवाला है परस्पर में शत्रुता करनेवालों का स्नेह शुद्ध नहीं होता है वह सब बातें दूर हुईं जिनके कारण मैं वहां रहती थी, धन और प्रतिष्ठा से पूजित पहिले बुराई करनेवाले जीव का चित्त अविश्वासी होता है और अपना कर्म मुझ सरीखे निर्बल की रक्षा करता है जिस स्थान पर पहिले प्रतिष्ठा हो और पीछे अपमान हो उस स्थान में चाहे शत्रु बहुत सी प्रतिष्ठा भी करे परन्तु बुद्धिमान् वहां कभी न रहे, मैं तेरे महल में बहुत कालतक अच्छे प्रकार से प्रतिष्ठा पूर्वक रही अब यह शत्रुता उत्पन्न हुई इससे आनन्द पूर्वक शीघ्रही

जाती हूं ब्रह्मदत्त ने कहा कि जो जीव कर्म के बदले कर्म करे उस स्थान पर अपराधी नहीं है उससे अऋण होता है इससे हे पूजनी! निवास करो कहीं मतजावो पूजनी बोली कि कर्ता और कर्म की मित्रता फिर नहीं होती है क्योंकि उस स्थान पर कर्ता और कर्म का हृदयही जानता है ब्रह्मदत्त बोला कि कर्ता और कर्म की मित्रता फिर भी होती है शत्रुता के दूर होने से फिर वह पाप को नहीं भोगता है पूजनी ने कहा कि शत्रुता का दूर होना वर्तमान नहीं है मैं दमदिलासा दीजाती हूं यह विश्वास न करे क्योंकि लोक में विश्वासही से माराजाता है इस कारण अलग होना भी कल्याणकारी है जो लोग कि बड़े तीव्रशस्त्रों से भी विजय नहीं होसके वह मीठेवचन और दिलासा से पकड़ेजाते हैं जैसे कि हाथी हथिनियों के द्वारा ब्रह्मदत्त बोला कि जीव नाश करनेवाले जीवों में भी साथ निवास करने से प्रीति उत्पन्न होती है और परस्पर विश्वास होता है जैसे कि चाण्डाल के साथ कुत्ते का होताहै परस्पर शत्रुता करनेवालों के सहवास होने से मृदुतायुक्त शत्रुभाव से ऐसे नहीं होता है जैसे कमल पर वर्तमान जल पूजनी बोली शत्रुता पांच स्थानों से उत्पन्न होती है उसको पण्डितही जानते हैं प्रथम तो स्त्री के कारण से, दूसरी पृथ्वी से, तीसरी वचनों से, चौथी स्वाभाविकीय, पांचवीं अपराध से उत्पन्न होनेवाली शत्रुता के स्थान पर बल और अबल के दोष को जानकर विशेषकर क्षत्रिय की ओर से प्रकट वा अप्रकट वांछित वस्तु का देनेवाला मारने के योग्य नहीं है परन्तु इस लोक में शत्रुता करनेवाले मित्र में भी विश्वास न करना चाहिये जैसे कि लकड़ी में गुप्त अग्नि होती है उसीप्रकार शत्रुता भी गुप्त रहा करती है हे राजन्! क्रोध की अग्नि न धन देने से न कठोर और मीठेवचनों से किन्तु शास्त्रों से शान्त होती है जैसे कि सागर की वड़वानल अग्नि हे राजन्! शत्रुता से प्रकट होनेवाली अग्नि और अपराध से उत्पन्न होनेवाला कर्म भी शत्रुको विध्वंस किये विना शान्त नहीं होता है, पहिले निन्दा करनेवाले और पीछे धनप्रतिष्ठा से सत्कार पानेवाले को मित्र करने के योग्य विश्वास नहीं होता है क्योंकि निर्बलों को अपना कर्महीरक्षा करता है किसी बुराई के कारण जैसे मैं तुझपर विश्वास नहीं करती हूं और वैसेही आप भी मुझपर विश्वास नहीं करते हो, मैं तेरे घर में रहती थी परन्तु अब नहीं रहूंगी ब्रह्मदत्त बोला कि करने और न करने के योग्य अनेक काम काल से कियेजाते हैं यह सब कर्म समयपर होते हैं इस लोक में कोई किसी का अपराध नहीं करता है जन्म मृत्यु दोनों बराबर वर्तमान होते हैं यह कालही पैदा करता है और वही मारता है कितनेही एकही साथ परस्पर में मारेजाते हैं दूसरे परस्पर नहीं मारेजाते हैं जैसे अग्नि इन्धन को भस्म करता है इसीप्रकार काल सब को भस्म करता है हे पक्षिणि! हम और तुम दोनों किसी का कोई

कारण नहीं है कालही संसार के सुख और दुःख को उत्पन्न करता है इससे हे पूजनी! बड़ी प्रसन्नता से अविनाशी होकर यहां निवास करो तुम ने जो किया वह मैंने क्षमा किया और हमारे करने को तुम भी क्षमा करो पूजनी बोली कि जो काल ही से सब होता है तो एक को एक से शत्रुता न होनी चाहिये बान्धव किस कारण से मरेहुये बान्धवों के द्वारा हानि को पाते हैं जो कालही से सुख दुःख और हानि लाभ हैं तो प्राचीनसमय में देवता और राक्षसों में क्यों परस्पर युद्ध हुआ जो कालही सब का हेतु है तो वैद्य रोगियों को औषधों से क्यों चिकित्सा करते हैं और जीवों के शोक से पीड्यमान क्यों विलाप को करते हैं किस कारण से कर्तालोगों में धर्म वर्तमान है तेरे पुत्र ने मेरे पुत्र को मारा वह मेरे हाथ से मारागया तदनन्तर हे राजन्! मैं तेरे हाथ से मारने के योग्य हूं मैं पुत्रके शोक से तेरे पुत्र के साथ पापकर्मा हुई मैं तेरे हाथ से जैसे मारने के योग्य हूं उस को ब्यौरेसमेत सुनो मनुष्य पक्षियों को भोजन और क्रीड़ा करने के लिये चाहा करते हैं उनको पक्षियों को पकड़ना या मारना इस के सिवाय तीसरा मिलाप हितकारी नहीं है यह सब जीवघात और बन्धन के भय से मोक्षतन्त्र में रक्षावान् हैं वेद के ज्ञाताओं ने दुःख को मरण के उत्पात से उत्पन्न होनेवाला कहा है प्राण सब को प्यारा है और पुत्र सब के प्रिय हैं सब दुःख से डरते हैं और सुख सब को अभीष्ट है हे ब्रह्मदत्त! बुढ़ापा होना और धन का हाथ से जाना यही दुःख है और अप्रिय के साथ भी रहना दुःख है और हितूबान्धवों से पृथक् रहना भी दुःख है घात और बन्धन से उत्पन्न होनेवाला दुःख है, स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाला दुःख है इसीप्रकार देह से उत्पन्न होनेवाला भी दुःख है, विरोधी पुत्र से सदैव दुःख है, ऐसे २ दुःखों को जानकर भी इन्हीं बातों में अधिक प्रवृत्त होता है कितनेही अज्ञानी लोग दूसरे के दुःख को दुःख नहीं मानते हैं जो दुःखको नहीं जानता है वह बड़े मनुष्यों में वाद करता है और जो अपने देह में सब दुःखों का जाननेवाला है वह दूसरे में भी वैसाही मानता है और दुःख से पीड़ित होकर शोच भी करता है वह कैसे कहने को समर्थ हो हे ब्रह्मदत्त! जो तुम ने मेरा उपकार किया और जो मैंने तुम्हारा किया वह बहुत कालतक भी चित्त से दूर होने को असम्भव है हमदोनों का काम परस्पर में है अब सन्धि नहीं होसक्ती पुत्र को याद करके तेरी शत्रुता नवीन होगी, जो शत्रुता के समीप होकर मित्रता चाहता है वह इसप्रकार कभी नहीं होती जिसप्रकार टूटी मिट्टी के पात्र की सन्धि नहीं होती है अपने प्रयोजन के शास्त्र जाननेवाले जीवोंपर विश्वास करना निश्चय करके शोक का उदय करनेवाला है प्राचीनसमय में शुक्रजी ने प्रह्लादजी से दो कथा कही हैं कि जो जीव शत्रुवों के सत्यवचन अथवा मिथ्यावचनों पर श्रद्धा करता है तो

वह श्रद्धा करनेवाले ऐसे मारे जाते हैं जिसप्रकार लोभरूपी शहद से सूखेतृणों से ढकीहुई पृथ्वी पर गिरनेवाले लोग दुःख से होनेवाली घराने की शत्रुता दूर नहीं होती है परन्तु उसमें शिक्षा समाधान करनेवाले बहुत होजाते हैं हे राजन् ! शत्रुताओं को करके दमदिलासा देते हैं परन्तु किसी समय उस को ऐसे मारते हैं जैसे कि भरेहुये घड़े को पत्थर पर राजा इस लोक में किसी का पाप करके सदैव विश्वास न करे क्योंकि दूसरों का अपमान करनेवाला विश्वास से दुःख को भोगता है ब्रह्मदत्त बोला कि कोई भी विश्वास के विना मनोरथों को सिद्ध नहीं करसक्ता है और न कुछ इच्छा करसक्ता है लोग पूरे भय से सदैव मृतक के समान रहते हैं, पूजनी बोली कि जिस के दोनों पैरों में फोड़ा फुंसी है और पैरों से चलता है उसके दोनों पैर घायल होते हैं जो पुरुष पीड्यमान नेत्रों से हवा की ओर देखता है उसकी आंखों को वह हवा महापीड़ा देती है जो पुरुष कुमार्ग को प्राप्त होकर अपने पराक्रम को जानकर भूल से उसमें चलता है उसका जीवन उसी मार्ग में समाप्त होता है, जो वर्षा न होना जानकर खेत को जोतता है वह खेती के फल को नहीं पाता है, जो पुरुष तिक्त, कषाय, मधुर आदि रसों को विचारपूर्वक पथ्य से खाता है वह नीरोग होता है और जो पुरुष पथ्य भोजन को छोड़के परिणाम को न जान के अज्ञानता से दुष्टभोजन को खाता है उसकी मृत्यु होती है प्रारब्ध और उद्योग परस्पर में एक एक की रक्षा में वर्तमान हैं बड़े साहसी पुरुषों के कर्म श्रेष्ठ हैं, नपुंसक लोग प्रारब्ध को ही रोया करते हैं सब को अपनी वृद्धिकरनेवाला काम करनाचाहिये चाहे वह सुगम हो या कठिन हो क्योंकि निकम्मा निर्धन मनुष्य सदैव अनर्थों से ग्रसित होता है इस से सब को त्याग करके पराक्रम करना चाहिये मनुष्यों को अपने हित के लिये सब धन भी त्यागना योग्य है विद्या, शूरता, विज्ञता, वैराग्य, धैर्य यह सब देह के साथ उत्पन्न होनेवाले मित्र कहेजाते हैं अर्थात् इस लोक में इन गुणों के द्वारा गुणी होते हैं सुवर्ण, रत्न, छत्र, स्त्री और सुहृद्जन यह सब हितकारी हैं इनको सब स्थानोंपर पुरुष पाता है और ज्ञानी पुरुष उनको सर्वत्र पाकर सब स्थलों में विराजमान होता है कहीं उसको कोई नहीं डराता है और जो कोई डराता भी है तो वह भय नहीं करता है बुद्धिमान् का थोड़ा भी धन वृद्धि को पाता है और असावधानी से करनेवालेका कर्म अचेतता से रुकावट को पाता है प्रीति में बद्ध निर्बुद्धि मनुष्यों के मांसों को खोटी स्त्रियां अपने अपराधों से पीड़ा देती हैं अर्थात् ऐसे सुखादेती हैं जैसे कर्कश मनुष्य को उसकी सन्तान यह घर, क्षेत्र, मित्र, देश अपना है इसप्रकार की बुद्धि की विपरीतता में मनुष्य पीड़ित होते हैं रोग और दुर्भिक्षता के कारण अपने देश से भागकर दूसरे

स्थान में रहने को जाय या सदैव सुरक्षित होकर रहै इससे हे राजन्! मैं दूसरे स्थान में जाऊंगी यहां रहने को चित्त से नहीं चाहती हूं क्योंकि मैंने तेरे पुत्र के साथ यह बहुत पापकर्म किया है खोटीभार्या कुपात्रपुत्र अन्यायीराजा खोटीमित्रता खोटानाता और खोटादेश इन सब को दूरही से त्याग करे क्योंकि कुपात्रपुत्र में विश्वास नहीं कुभार्या में रति नहीं खोटेराज्य में सुख नहीं खोटे देश में जीविका नही सदैव निर्मूल मित्रतावाले खोटेमित्र में मिलाप नहीं धन के नाश होने से खोटी नातेदारी में अपमान होता है जो प्यारे वचन कहती है वही भार्या है जिस से सुख उत्पन्न होता है वही पुत्र है जिस में विश्वास है वही मित्र है जिसमें जीवन होता है वही देश है जिस देश में अन्याय और भय नही है और कठिन आज्ञा देनेवाला राजा निर्धनों की रक्षा करना चाहता है उसी गुणवान् धर्मज्ञ राजा के पास भार्या, देश, मित्र, पुत्र, नातेदार, बान्धव होते हैं धर्म न जाननेवाले राजा के दण्ड से प्रजा नष्ट होती है क्योंकि राजा धर्म, अर्थ, काम का मूल है इस कारण से बड़ी सावधानतापूर्वक राजाको प्रजा की रक्षा करनी चाहिये पृथ्वी के छठेभाग को लेकर अच्छे प्रकार से खर्च करे जो प्रजा की रक्षा नही करता है वह राजा चोर है जो राजा आप अपनी निर्भयता को प्रकट करके धन के लोभ से उसको प्रमाण नहीं करता है वह अधर्मी सब प्रकारके लोभसे पापी होकर नरक को जाता है और जो राजा अपनी निर्भयता प्रकट करके प्रमाणपूर्वक धर्म से प्रजापालन करता है वह राजा सब का सुखदायी है प्रजापतिमनुजी ने माता, पिता, रक्षक, गुरु, अग्नि, कुबेर, यमराज इन सात राजा के गुणों का वर्णन किया है जो राजा प्रजा के ऊपर कृपा करता है वह पिता के समान है उस के साथ मिथ्याकर्म करनेवाला मनुष्य तिर्यग्योनि की यातना को पाता है जो माता के समान वृद्धि को चाहता है और दुखियाओं का पोषण करता है और अग्निके समान शत्रुओं को ऐसे भस्म करता है जैसे कि यमराज पापियों को दण्ड देता है मित्रों में धनों को त्याग अर्थात् उनको देता कुबेर के समान है मनोरथों का देनेवाला है और धर्म का उपदेश करने से गुरु के समान और चारो ओर से रक्षा करने से रक्षक है, जो राजा अपने गुणों से पुरवासियों और देशवासियों को प्रसन्न करता है और देश की रक्षा से उस की प्रजा दुःखी नहीं होती है वह देश भर का प्यारा होकर इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द भोगता है जिसकी प्रजा करों के देने से पीड़ित भयभीत होकर सदैव अनर्थों से नाश होती है वह राजा भी नाशहो-जाता है जिसकी प्रजा अधिक वृद्धि पाती है वह राजा स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाता है हे राजन्! बलवान् से विरोध करना कभी कोई अच्छा नहीं कहता है जिसका विरोध बलवान् से होता है उसका राज्य कहां और सुख कैसे होसक्ता

है ऐसा कहकर वह पक्षिणी राजा को खूब जतलाकर अपनी दिशा को गई हे राजन्! यह मैंने पूजनी के साथ ब्रह्मदत्त का वर्णन किया अब दूसरी कौन सी बात सुनाचाहता है ॥ ११२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह! युग के अन्त में लोक के धर्मक्षीण होने से चोरों से पीड्यमान होनेपर राज्य में किस प्रकार से वर्तमान होना चाहिये भीष्म जी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर मैं तुझ से उस नीति का वर्णन करता हूं जोकि आपत्तिकालों में उपकारिणी होती है कि समयपर दया को भी त्यागकर जैसे कि कार्य करना चाहिये प्रथम इस स्थान में इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजा शत्रुंजय और भरद्वाजऋषि का परस्पर में प्रश्नोत्तर है सौवीर देश में महारथी राजा शत्रुंजय होताहुआ उसने किसी समय भरद्वाज ऋषि के समीप जाकर अर्थ के निश्चय को पूछा कि महाराज अप्राप्त वस्तु की इच्छा कैसे करनी उचित है और प्राप्तहुई वस्तु को कैसे बढ़ावै और वृद्धि को प्राप्तहुई वस्तु की कैसे रक्षाकरे और उस रक्षितवस्तु को कैसे खर्चकरे अच्छे प्रकार से निश्चय कियेहुये अर्थ के लिये अर्थनिश्चय को पूछेहुये ब्राह्मण ने इस सहेतुक उत्तमवचन को उस से कहा कि सदैव दण्ड जारी करनेवाला और उद्योग करनेवाला कोई दोष न करनेवाला और दूसरे शत्रुवों के दोषों का देखनेवाला और उनके दोषों का पकड़नेवाला होना चाहिये-सदैव दण्डधारी राजा के मनुष्य अत्यन्त भयभीत होते हैं इस कारण सब जीवों को दण्ड से ही स्वाधीन करे मुख्यता के देखनेवाले पण्डितलोग दण्डही की प्रशंसा करते हैं इसीहेतु से चारो नीतियों में दण्डही उत्तम कहाजाता है, जिस देश का मूल काटागया उसमें सबके जीवन का नाश हुआ जब कि वृक्ष का बीजही नष्ट होगया तो उसकी शाखा कहां से नियत होगी-बुद्धिमान् पण्डित राजा को उचित है कि पहिलेही शत्रु के पक्ष की जड़ को काटडाले तदनन्तर उसके सहायकों को मारे और उसके मूल को अपने स्वाधीन करे-आपत्तिकाल के आनेपर नेक सलाह और सुन्दर पराक्रम और युद्ध को करके समय पाकर विना विचारे युक्ति के साथ भाग भी जाय केवल बातें तो मृदुता से करे परन्तु हृदय में छुरे के समान रहै और सफ़ाई के साथ वार्तालाप करनेवाला होवे और काम क्रोध को त्याग करे अपना काम शत्रु के आधीन होजानेपर विश्वास के साथ सन्धि न करे और बुद्धिमानी से अपना काम सिद्ध करके शीघ्रही उस से पृथक् होजाय-मित्रों के समान मीठेवचनों से शत्रु को

विश्वासयुक्त करे और सदैव उससे ऐसा भय करता रहै जैसे कि सर्पयुक्त घर से करते हैं शत्रुवोंको बुद्धि के अनुसार विजय करे और उन को व्यतीत वृत्तान्तों से दृढ़ताकरावे और दुर्बुद्धि को भविष्यत् होनेवाले वृत्तान्तों से विश्वास करावे और पण्डित को उस समय के योग्य वचनों से धीरज करावे हाथ जोड़ना शपथखाना मीठेवचन बोलना भी उचित है और शिर को झुकाकर नमस्कार करना भी योग्य है और ऐश्वर्य के चाहनेवाले को शत्रु की सफ़ाई अश्रुपातों से भी करनी योग्य है जबतक समय अनुकूल न हो तबतक शत्रु को अपने कन्धे की सवारी में भी लेचले और समय वर्तमान होनेपर इस प्रकार से मारे जैसे कि पत्थरपर घट को मारते हैं हे राजेन्द्र! एक मुहूर्त पर्यन्त तिन्दुक आलापवत् क्रोधाग्नि में संयुक्त होजाय बहुत से मनोरथों का चाहनेवाला पुरुष कृतघ्नी मनुष्यों से अर्थसम्बन्ध न करे क्योंकि अर्थी पुरुष तो भोगने को समर्थ होता है और मनोरथ सिद्ध करनेवाला अपमान करता है इसी कारण से सबकामों को पूरा न करावे और कोकिल, शूकर, पर्वत, खाली मकान, नट और भक्त मित्र का जो कल्याणकारी कर्म है उस को करे अर्थात् कोकिल तो अपने बालबच्चों का पोषण दूसरेसे चाहता है इसीप्रकार राजा भी रक्षाआदि कर्म प्रजा से करावे और वराह जड़ को खोदता है इसीप्रकार शत्रुवों की जड़ राजा उखाड़े और मेरु पर्वत में दृढ़ता और उल्लंघन का न होना है इसीप्रकार राजा अपनी दृढ़बुद्धि को चाहै खाली मकान से प्रयोजन धन की आमदनी है और नट से बहुत रूप धारण करना प्रयोजन है और भक्त मित्र अपने मालिक का उदय चाहता है इसीप्रकार राजा को भी अपनी प्रजा का उदय करना योग्य है मिलाप करनेवाला सदैव उठ उठकर शत्रु के घर में जाकर उसकी कुशलक्षेम पूछाकरे चाहै कुशल न भी हो तोभी पूछे और सुस्त, नपुंसक, भगनेवाले संसारकी बातों से भयभीत और सदैव प्रारब्धही का भरोसा करनेवाले मनुष्य कभी मनोरथों को सिद्ध नहीं करसक्के, शत्रु जिसके दोष को न जाने परन्तु शत्रु के दोषों को आप जाने कछुवे के समान अपने अंगों को छिपाये रहै और अपने दोषों की रक्षा करै और बगले के समान अर्थों को विचार करताहुआ सिंह के समान पराक्रम करके भेड़िये के समान मारकर खरगोश के सदृश भागे और मद्यपान, पांसा, स्त्रीसंग, शिकार, गीत, वाद्य आदि को बड़ी युक्तिपूर्वक करे और बहुत से प्रसंगों का करना महादोष है धनुष को तृणरूप बनाकर मृगों की शय्यापर शयन करे समयपर सूझता भी अन्धा और बधिर बनजाय और अपनी बुद्धिमानी से देश काल को अनुकूल जानके पराक्रम करे क्योंकि देशकाल के अनुकूल हुये विना पराक्रम करना वृथा होजाता है अपनी सबलता निर्बलता को और समय असमय को और परस्पर के बल को

अनुमान करके उस कर्म में प्रवृत्त हो जो राजा दण्ड के द्वारा झुकेहुये शत्रु को अपने स्वाधीन नहीं करता है वह अश्वतरी के गर्भ के समान अपनी मृत्यु को प्राप्त करता है सुन्दर पुष्पित होकर अफल हो और फलवान् होकर कठिनता से चढ़ने के योग्य हो कच्चे पके आम की सूरत बने परन्तु कभी मुरझायाहुआ न बने आशा को समयपर होनेवाली समझे और उसको विघ्न में न डाले और विघ्न को निमित्त के द्वारा और निमित्त को हेतु के द्वारा वर्णन करे, जबतक भय सम्मुख न आवे तबतक भयभीत के समान कर्म करे और आयेहुये भय को देखकर निर्भय के समान दूर करना चाहिये, मनुष्य संशयपर चढ़े विना कल्याण को नहीं देखसक्ता जब संशयपर चढ़कर जीवतारहता है तभी कल्याण को देखता है सम्मुख न आयेहुये भय को अच्छेप्रकार से जाने और सम्मुख में वर्तमान हुये भय को दूर करे फिर उसकी वृद्धि के भय से कुछ शेषरहे के समान देखे सम्मुख में वर्तमानकाल के सुख का त्यागना और पीछे से प्राप्तहोने की आशा करना यह बुद्धिमानों का मत नहीं है जो शत्रु के साथ मिलाप करके विश्वासपूर्वक सुखसे सोता है वह वृक्ष की सब से ऊंची नोकपर से सोताहुआ गिरकर सावधान होता है जैसे बने तैसे मृदु और कठोरकर्म के द्वारा अपने दीनआत्मा को बचावे और समर्थहोकर धर्मकरे, जो शत्रुवों के शत्रु हैं उन सबसे स्नेहकरे और शत्रु के नियत कियेहुये दूतों को और अपने जासूसों को भी जानना अवश्य है अपना जासूस शत्रुका विना जाना गुप्त नियत करना चाहिये पाखण्डी तपस्वियों को शत्रु के देशमें प्रवेश करादे, उद्यान विहारस्थान-प्याऊआदि पीने के स्थान-प्रवेशस्थान-तीर्थस्थान और सभा आदि के स्थानों में वह मनुष्य आते हैं जोकि मारण आदि कर्मरूप धर्म रखनेवाले महापापी संसार के कण्टक हैं उनको पहिंचान २ कर स्वाधीन करे अथवा मारडाले और अविश्वस्त मनुष्यों में विश्वास न करे और विश्वस्त में भी अधिक विश्वास न करे परीक्षा किये विना विश्वास करने से भय प्राप्त होता है, सिद्धान्तरूप कारण से शत्रु को विश्वास दिलाकर फिर किसीसमय राज्य के चलायमान होनेपर उसको मारे, विना सन्देह में भी सन्देह करे और सन्दिग्ध मनुष्यपर तो सदैवही सन्देह करतारहै, असन्दिग्ध से भी उत्पन्न होनेवाला भय मूल समेत को काटता है सावधानी और मौनता, काषायवस्त्र, जटा, मृगचर्मआदिसे शत्रुवों को विश्वास कराके भेड़िये के समान घात करे, पुत्र, भाई, पिता, मित्र आदि भी जो प्रयोजन में हानिकारक हों वह ऐश्वर्य चाहनेवाले राजा से मारने के योग्य हैं, अहंकारी कर्तव्य अकर्तव्य के न जाननेवाले कुमार्गगामी गुरु भी शासनारूपी दण्ड के योग्य हैं, तीक्ष्णचोंचवाले पक्षी के समान अभ्युत्थान और नमस्कार वा कुछ देने से शत्रु के फूल, फलों को नाशकरे, शत्रु के मर्मस्थानों को न काटकर और भयकारी कर्म को

भी न करके जो मछलीमारों के समान न मारे तो बड़ी लक्ष्मी को नहीं पाता है, जन्मसेही शत्रु मित्र नही होते केवल सामर्थ्य के होनेसे शत्रु मित्र उत्पन्न होजाते हैं, शोकयुक्त वचनों को कहता हुआ भी शत्रु नही छोड़ने के योग्य है, प्रथम तो अपराधी को मारे उसमें दुःख न माने और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाले मनुष्य को इकट्ठा करके कृपा करना चाहिये और ऐश्वर्य का चाहनेवाला उनको युक्तिपूर्वक दण्ड भी देसक्ता है, जो घात करता हुआ प्यारे वचन कहे और घात करके प्यारे उत्तर को भी दे और तलवार से शिर को काट शोच करके रोदन करे, मीठेवचनपूर्वक प्रतिष्ठा और सहनशीलता से उनको अपने सामने करे, ऐश्वर्य चाहनेवाले को यह पुरुषों की प्रसन्नता करने के योग्य है सूखी शत्रुता को नहीं करे नदी को भुजाओं से इसप्रकार न तरे जैसे कि गौ के सींग का खाना निरर्थक और आयुर्दाय का घटानेवाला दांतों का तोड़नेवाला नीरसता का देनेवाला है, धर्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग तीनप्रकार की पीड़ा रखनेवाला है अर्थात् धर्म से अर्थ की और अर्थ से धर्म की और काम से अर्थ धर्म दोनों की पीड़ा होती है और इनके फल भी इसीप्रकार के हैं अर्थात् धर्म का फल अर्थ और अर्थ का काम और काम का फल इन्द्रियों का प्रसन्न करना है, धर्मका फल चित्त की शुद्धि और अर्थ का फल यज्ञ और काम का फल केवल जीवन यह सब फल उत्तम हैं ऐसे फल को जानकर पीड़ा को त्याग करे जैसे कि ऋण का शेष और अग्निशेष है उसीप्रकार शत्रुवों के शेष भी वारंवार बढ़ते हैं इस कारण किसीप्रकार की बाकी को न छोड़ना चाहिये जैसे वृद्धि पायाहुआ ऋण वर्तमान होता है उसीप्रकार हाराहुआ शत्रु और ध्यान न कियेहुये रोग भी बड़े भय को उत्पन्न करते हैं विपरीत रीति से कर्म न करना चाहिये सदैव सावधानरहै, अच्छेप्रकार न निकाला हुआ कांटा भी बहुत कालतक पीड़ा देता है, मनुष्यों के मारने और मार्गों के दोषी करने और स्थानों के तोड़ने आदि से शत्रु के देश को नष्ट न करे, गिद्ध के समान दीर्घदृष्टि बगले के समान निश्चेष्ट कुत्ते के समान जागनेवाला और चोर का जाननेवाला सिंह के समान पराक्रमी और निर्भय और काक के समान दूसरे की अंगचेष्टाओं को जाननेवाला हो और सर्प के समान अकस्मात् शत्रु के गढ़ आदि में प्रवेश करे और शूरभयकारी शूरवीर को हाथजोड़ने से और भेद करके और लोभी को धन से अपनी ओर करे, समान से युद्धकरना योग्यहै, प्रतिष्ठित नौकरों के मिलाने से और शत्रुवों की ओर से अपने मित्रों के बहकानेपर विरोध वा अविरोधता में भी मन्त्रियों की चारो ओर से रक्षाकरे, यह मृदुस्वभाव है ऐसा जानकर अपमान करते हैं और उग्रस्वभाव जानकर भयभीत होते हैं इस कारण से तेजीके समय तेज होजाय और नरमी के समय नरम होजाना योग्य है नरमी से तो नरम को काटे

क्योंकि नरमी से भय उत्पन्न करनेवाला राजा शत्रु को मारता है नरमी से सब काम सिद्ध होते हैं इसीसे नरम आदमी बड़ा तीव्र होता है जो समय पर मृदु और क्षमावान् होता है वह सब कामों को सिद्ध करके शत्रु को भी विजय करता है पण्डित के साथ विरोध करनेवाला यह विश्वास न करे कि मैं दूर वर्तमान हूं क्योंकि बुद्धिमान् की दोनों भुजा लम्बी होती हैं वह घायल होकर भी उन दोनों भुजाओं से मारता है, जिसका पार होना नहीं है उसको नहीं तरना चाहिये-जिस को दूसरा हरले उसको नहीं हरे-जिसकी जड़ को नहीं उखाड़े उसको नहीं खोदे-जिसके शिर को नहीं गिरावे उसको नहीं मारे-मैंने आपत्तिकाल से सम्बन्ध रखनेवाला यह वचन कहा इसको पुरुष कभी न करे परन्तु शत्रु की ओर से युद्ध के लिये बुलाये जाने पर अवश्य करे-हित चाहनेवाले ब्राह्मण के बुद्धि के अनुसार कहेहुये वचनों को सुनकर बड़े बुद्धिमान् सुतीर देश के राजा ने उन वचनों को उसीप्रकार करके बान्धवों समेत राजलक्ष्मी को भोगा ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! सब लोकों से उल्लंघन कियेहुये उत्तमधर्म के नष्ट होने और अधर्म धर्मरूप होने और धर्म अधर्मरूप होने में मर्यादा का नाश होने और निश्चयधर्म के नियत न होने से राजाओं और दूसरे आदमियों से भी लोक के पीड्यमान होनेपर सब रक्षास्थानों के विरोधी शास्त्र होने में कर्मों के नाश होने और काम लोभ मोह से भय के देखने से अविश्वास और भयभीत होने, छल से घायल होने और परस्पर में छल करने से, देशों में अग्नि लगने और ब्राह्मणों के अत्यन्त पीड़ित होने और मेघों से वर्षा न होने में परस्पर भेद के उठने से पृथ्वी की सब जीविका चोरों के आधीन होने और नीच काल आनेपर ब्राह्मण कौन सी आजीविका करके अपने पुत्र पौत्रादि समेत आपत्तियों में जीवन करे इसको आप कृपा करके कहिये और हे परन्तप ! लोक के पापरूप होजाने पर राजा किसप्रकार से कर्म करे और कौन रीति से धर्म अर्थ का नाश न हो-भीष्मजी बोले कि हे महाबाहो ! मनोरथों को सिद्ध करके उनकी रक्षा करना और अच्छी वर्षा का होना यह सब राजा को दृढ़ रखनेवाली हैं-प्रजाओं में रोगों का होना और मरण आदि सब भय भी राजा को ही मूल रखनेवाले हैं और हे राजन् ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह सब भी राजमूल हैं यह निश्चय मेरा मत है तब प्रजाओं का दोष उत्पन्न करनेवाले उस काल के निकट आने पर पूर्णबुद्धि के पराक्रम में दृढ़ होकर जीवन करना योग्य है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें चाण्डाल के घर में

बिश्वामित्र ऋषि और चाण्डाल से वार्तालाप हुई थी कि त्रेता और द्वापर के सन्धि में दैव के रचेहुये विधान से बारह वर्ष का भयानक दुर्भिक्ष संसार में प्राप्त हुआ अर्थात् त्रेता के अन्त में और द्वापर के प्रारम्भ में बड़ी वृद्धि पाईहुई प्रजापर इन्द्र ने वर्षा नहीं की और बृहस्पतिजी तिरछे हुये और विपरीतचिह्न-वाले चन्द्रमा दक्षिणमार्ग को गये तब धूम भी नहीं हुआ तो बादल कहां से होय नदियों में बहुत कम जल रहगया और कितनीहीं तो गुप्त होगई और सरोवर, नदियां, कुवें, झिरने भी ईश्वर की आज्ञा से कुरूप होगये तब पृथ्वी इसप्रकार की होगई कि छोटे तालाब तो सूखगये और प्याऊ आदि बन्द हो-गई यज्ञ वेद बन्द होकर वपट्रूप मंगल से रहित हुये खेती और गौवों की रक्षा नष्ट होगई दूकानों में वस्तुवों का बेचना बन्द होगया यज्ञस्तम्भ की सा-मग्री गुप्त हुई और महाउत्सवों का नाश हुआ अस्थियों के ढेरों में भूतों के शब्द होने से सब लोग व्याकुल थे जिसके नगर ग्राम और बहुत से स्थान समाप्त हुये कहीं विष से कहीं शस्त्रों से कहीं दुःखी राजाओं से और परस्पर के भय से भी मनुष्यों से रहित होकर उजाड़ होगये और देवताओं के मन्दिर भी नहीं रहे और वृद्धमनुष्यों का अपमान होता था गौ, भेड़, बकरी, भैंसों से रहित परस्पर में घायल थे जिसमें ब्राह्मण और रक्षा करनेवाले मारेगये और ओषधियों के समूह नष्टहुये और सब पृथ्वी वृक्षों के सूखने से श्मशान के समान अगम्या होगई यहां तक हुआ कि उस महाकाल के समय में परस्पर में मनुष्य मनुष्य को खाने लगे ऋषि लोग भी अपने २ नियम और अग्नि देवता आदि को अत्यन्त छोड़ आश्रमों को त्याग इधर उधर को भागगये तदनन्तर क्षुधा में आतुर बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्र भी आश्रम को त्यागकर चारो ओर को दौड़े स्त्री पुत्रों को किसी बसेहुये स्थान में छोड़कर भक्ष्य अभक्ष्य को एकसा जानकर अग्नि और स्थान से रहित हुये दैवयोग से इधर उधर फिरते हुये उस ऋषि ने कहीं जीवों के घातक किसी चाण्डाल के स्थान को पाया वह स्थान फूटे कलशों से भराहुआ कुत्ते के चर्म छेदनेवाले यन्त्रों से व्याप्त शूकर और गधों की टूटी हड्डियों और कपालों से संयुक्त मृतकों के वस्त्रों से घिराहुआ नरों की मालाओं से शोभित सर्प की कांचलियों के हारों से चिह्नित मठवाला मुर्गों के अत्यन्त शब्दों से पूरित और गधों के शब्द से परस्पर में शब्द करके युद्ध करनेवाले और शब्द करनेवाले गधों के वचनों से और उलूक पक्षियों की ध्वनि और देवमन्दिरों से संयुक्त लोहे के घण्टों से भूषित कुत्तों के समूह से घिरा हुआ था उस घर में भोजन के खोज में महाव्याकुल हो विश्वामित्र पहुँचे वहां जाकर भी भिक्षा मांगनेवाले विश्वामित्र ने फल मूल मांस आदि कोई वस्तु नहीं पाई तब तो महादुःखी हो भूख से निर्बल विश्वामित्र घबराके पृथ्वी

पर गिरपड़े और चिन्ता करके विचार किया कि मैं कौन सा उत्तम कर्म करूं और कैसे मृत्यु नहीं होती वहां विश्वामित्र ने चाण्डाल के घर में शीघ्रता से मन्त्र के काटेहुये कुत्ते के मांस के खण्डों को फैलाहुआ देखा तब यह विचार किया कि मुझ को यहां से चोरी करना चाहिये क्योंकि अब प्राण बचाने की कोई अन्य युक्ति नहीं है आपत्तिकाल में चोरी करना भी बुद्धि से उचित जाना गया है और वेदपाठी ब्राह्मण को प्राण की रक्षा के निमित्त चोरी करना योग्य है प्रारम्भ में नीच से लेना योग्य है तदनन्तर बराबरवाले से लेना ठीक है इसीप्रकार अप्राप्त होनेपर धार्मिक और श्रेष्ठपुरुष से भी लेले सो मैं बुरे कर्म के पूरे करने के निमित्त इसको चुराता हूं दान के दोष से चोरी के दोष को अधिक नहीं जानता हूं इससे मैं कुत्ते की जंघा को चुराऊंगा हे राजन्! ऐसा विचार करके वह महामुनि उस घर में सोगये जहांपर कि चाण्डाल था चाण्डाल के घर के सब मनुष्यों को सोता जानकर बहुत धीरेपनसे उठकर फिर कुटीमें प्रवेशकर गये तब आंख से नेत्र बन्द किये वह चाण्डाल यह बोला कि चाण्डालका घर भर सोजानेपर कौन जंघाओं को हिलाता है यहां मैं जागता हूं सोता नहीं हूं मैं तुझे मारूंगा यह भययुक्त वचन कहा तबतो भयभीत होकर अकस्मात् विश्वामित्र ने उससे कहा कि हे चाण्डाल! मैं विश्वामित्र हूं भूख से आया हूं मुझ को मतमार यह ऋषि का वचन सुनकर भयभीत हो वह चाण्डाल शयन से उठा और आंखों से अश्रुपात करके हाथ जोड़कर विश्वामित्रजी से बोला कि हे ब्राह्मण! इस जंघा के विषय में आप की क्या इच्छा है फिर धैर्यता देकर विश्वामित्र ने उस मातंग नाम चाण्डाल से कहा कि भूखा और निर्बल हूं इससे कुत्ते की जंघा को हरूंगा मुझ अर्थी ने पापकर्म की बुद्धि की है बुभुक्षित को कोई लज्जा नहीं है मुझ को क्षुधा दोष का भागी करती है इस से कुत्तेकी जंघा को हरूंगा मेरे प्राण पीड़ायुक्त हैं और क्षुधा से मेरा बल नाश होता है निर्बल अचेत होकर भक्ष्याभक्ष्य के विवेक से पृथक् हूं सो अधर्मरूप कर्म को जानकर भी कुत्ते की जंघा को हरूंगा जब तुम्हारे मकान में घूमता हुआ भिक्षा को नहीं पाया तब पापयुक्त कुत्ते की जंघा को हरण करना चाहा है पदार्थों का पवित्र करनेवाला देवताओं का मुखरूप अग्नि पुरोहित है जैसे कि वह सबको भोगनेवाला है इसीप्रकार मैं ब्राह्मण भी उसके समान होकर सर्वभक्षी हूं मुझ को तुम धर्मपूर्वक जानो तब चाण्डाल बोला कि हे महर्षे! मेरे वचन को सुनो और उसके सिद्धान्त को जानकर कर्म करो जिससे कि धर्म का नाश न हो हे ऋषे! मैं आप के भी धर्म को कहूंगा जो मैं कहूं उस को सुनो बुद्धिमान् लोग कुत्ते को शृगाल से भी नीच कहते हैं और उसकी जंघा भी उसके सब अंगों में निकृष्ट हैं इससे यह धर्मनिन्दित है जो कि

चाण्डाल के धन का लेना भक्ष्यरहित वस्तु का है यह आपने ठीक निश्चय नहीं किया इससे बहुत श्रेष्ठ होगा कि तुम प्राण की रक्षा के निमित्त दूसरी वस्तु को विचारो इस मांस के लोभ से आप के तप का नाश होगा ज्ञानी से ही धर्म नियत किया गया है इसे धर्म में अधर्मसंयुक्त करना अयोग्य है तुम धर्म को मत छोड़ो निश्चय करके तुम धर्मधारियों में उत्तम हो यह चाण्डाल का वचन सुनकर क्षुधा से पीड़ित महामुनि ने फिर उत्तर दिया कि मुझ निराहार और दौड़नेवाले का बहुत बड़ा समय व्यतीत हुआ और मेरे प्राणों की रक्षा में कोई युक्ति वर्तमान नहीं है पीड्यमान पुरुष जिस युक्ति अथवा कर्म से जीता रहै वही करे और समर्थ होकर धर्म को करे, क्षत्रियों का धर्म इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला है और ब्राह्मणों का धर्म अग्नि से सम्बन्ध रखनेवाला है वेद रूप अग्नि मेरा पराक्रम है मैं भूख को दूर करने के लिये इसको भक्षण करूंगा जैसे जीवन रहै वही काम करना योग्य है मृत्यु से जीना उत्तम है क्योंकि जीवने से धर्म करेगा सो मैं जीवन के लिये अभक्ष्य को भी खाना चाहता हूं फिर जीवन पाकर अपने धर्म को करूंगा और विद्या तप आदि के द्वारा पापों को ऐसे दूर करूंगा जैसे कि बड़े अन्धकार को सूर्य दूर करता है चाण्डाल ने कहा कि इस मांस का खानेवाला बड़ी अवस्था को नहीं पाता है और न प्राणों को पाता है अमृत के समान गुणकारी नहीं है तुम दूसरी भिक्षा को मांगो आप का चित्त कुत्ते के मांस खाने को कभी मत हो कुत्ते ब्राह्मणों के अभक्ष्य हैं विश्वामित्र बोले कि हे चाण्डाल ! ऐसे दुर्भिक्ष के समय में कुत्ते के मांस के सिवाय दूसरा मांस सुगमता से नहीं मिलसक्ता है और मेरे पास धन भी नहीं है भूख से पीड़ित निराशा होकर मैं इसी कुत्ते के मांस में षट्रसों का स्वाद मानता हूं चाण्डाल बोला कि पंचनख रखनेवाले जीव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों को अभक्ष्य हैं जैसे कि आप शास्त्र को प्रमाण मानते हो वैसेही इस अभक्ष्य में चित्त को मत चलावो, विश्वामित्र बोले कि यह निश्चय है कि भूखे अगस्त्यजी ने वातापी नाम असुर को भोजन किया मैं भी आपत्ति में पड़ाहुआ भूख से कुत्ते की जंघा को भक्षण करूंगा, चाण्डाल ने कहा कि आप दूसरी भिक्षा का उद्योग करो इसके खाने को आप योग्य नहीं हैं सर्वथा यह कर्म आप के योग्य नहीं है विश्वामित्र ने कहा कि निश्चय करके श्रेष्ठ पुरुष धर्म में कारण हैं मैं उसी चलनपर कर्म करता हूं मैं पवित्र भोजन से भी अधिक इस जंघा को मानता हूं चाण्डाल बोला कि जो नीचों ने किया वह सनातनधर्म नहीं है आप को अयोग्य कर्म करना न चाहिये तुम छल से पाप मत करो विश्वामित्र बोले पाप को और निषिद्धकर्म को ऋषिलोग अच्छा नहीं मानते परन्तु मैं विश्वजाति होने से कुत्ते और मृग

को समान मानता हूं इस हेतु से इस श्वानजंघा के मांस को अवश्य भक्षण करूंगा, चाण्डाल बोला कि ब्राह्मणों से प्रार्थना किये हुये उस अगस्त्य ऋषि ने उस दशा में ब्राह्मणों के निमित्त जो कर्म किया वही धर्म निष्पाप है ब्राह्मण सब रीति से रक्षा के योग्य हैं विश्वामित्र बोले कि यह मुझ ब्रह्मज्ञानी का देह मेरा मित्र और प्यारा है और संसार में बड़े पूजन के योग्य है उसके पोषण की इच्छा करनेवाला मैं इस मांस को हरता हूं मैं इसप्रकार की निर्दयता का भय नहीं करता हूं, चाण्डाल बोला कि मनुष्य इच्छा से देह को त्याग करते हैं परन्तु किसी स्थानपर अभक्ष्य में बुद्धि को नहीं चलाते हैं और हे बुद्धिमन्! इस लोक में पुरुष धर्म में विजयी होने से सब मनोरथों को प्राप्त करते हैं तुम भी निराहारी होकर सब कामनाओं को पूर्णकरो, विश्वामित्र बोले कि देह के त्यागने से संशय उत्पन्न होता है और कर्मों की नष्टता होती है इससे यह अयोग्य बात है मैं फिर पापों को दूर करूंगा इस निमित्त इस अभक्ष्य को भक्षण करूंगा देह में अभिमान न रखनेवाले पुरुष में प्रत्यक्ष महापुण्य है और आत्मा में ऐसा मोह करना दोष है जैसा कि कुत्ते के मांस में होता है यद्यपि यह बात है और मैं संशयात्मा होकर भक्षण करता हूं तो भी जैसा तू है वैसा मैं नहीं हूंगा, चाण्डाल बोला कि यह पाप मेरी राय से गुप्त करने के योग्य है और जो पापी और अन्य ब्राह्मण के समान आप से निन्दायुक्त कठोरवचन कहता हूं और छल करनेवाला हूं इसको क्षमाकरिये-विश्वामित्र बोले कि मेढ़कों के रोदन करने पर भी गौवें जल को पीती हैं धर्म उपदेश करने में तेरा अधिकार नहीं है तू अपनी प्रशंसा मत कर चाण्डाल बोला कि मैं शुभचिन्तक होकर उपदेश करता हूं हे ब्राह्मण! तुम में मेरी बड़ी कृपा है इसमें आपका कल्याण है इससे मेरी बात को मानो और लोभ से पाप को मत करो, विश्वामित्र ने कहा कि जो तुम मेरे मित्र और सुख के चाहनेवाले हो तो मुझ को आपत्ति से छुटावो मैं तुम को धर्मात्मा जानता हूं कुत्ते की जांघको छोड़ो चाण्डाल ने कहा कि मैं इस मांस को उत्साह से आप को नहीं दियाचाहता हूं और अपने हरेहुये अन्न के दानों को भी उत्साहपूर्वक नहीं चाहता हूं क्योंकि इस कर्म से हम दोनों पापसंयुक्त होकर नरक में जायँगे अर्थात् दान देनेवाला मैं और दान लेनेवाले तुम ब्राह्मण हो विश्वामित्र बोले कि अब मैं इस पापकर्म को करके बड़ी पवित्रता से रहूंगा और पापरूप आत्मा में धर्म ही को प्राप्त करूंगा इन दोनों में जो बड़ी बात हो उसको कहो, आत्माही सब धर्मकार्यों का साक्षी है जो इस में पाप है वह तुमहीं जानते हो जो पुरुष इस कुत्ते के मांस को भोजन करने की वस्तु के समान करसके उसको त्याग करना क्या योग्य है यह मेरा सिद्धान्त है और लेने और खाने में यद्यपि दोष है परन्तु प्राणत्याग के समय यही दोष अदोष होजाता है अर्थात् उस समय

अभक्ष्य भी भक्ष्य होजाता है जिस स्थान में अभक्ष्य किया है वहां उसके निषेध करनेवाला वचन उत्तम नहीं है क्योंकि उस अभक्ष्य के भक्षण में हिंसा और मिथ्यापन नहीं है कुछ थोड़ी निन्दा से वह हिंसा और मिथ्या के समान अधिक निन्दा के योग्य नहीं है चाण्डाल बोला कि जो इसके खाने में प्राण का पोषणही करना आप को अभीष्ट है तो ऐसी दशा में ईश्वर और उत्तम धर्म आप को प्रमाण नहीं है हे द्विजेन्द्र! इस हेतु से तो भक्ष्य और अभक्ष्य में कोई दोष नहीं मानना योग्य है विश्वामित्र बोले कि अभक्ष्य खानेवाले का पाप हिंसा के समान नहीं देखने में आता है मद्य के पान करने से अधिकार से गिरता है यह शास्त्र का वचन केवल अज्ञानमात्र है, जिसप्रकार स्त्रीप्रसंग आदि कर्म हैं उसी प्रकार यह भी है-केवल थोड़े से पाप से पुण्य का नाश नहीं होता है हां थोड़े पाप की उत्पत्ति होती है परन्तु ब्राह्मणधर्म में हानि नहीं होती चाण्डाल बोला कि श्रेष्ठ चलनेवाले ज्ञानी को चाण्डाल के घर में बुरे कर्म के द्वारा बिना दी हुई वस्तु पीड़ा देती है और जो हठ से कुत्ते के मांस को लेता है उसको दण्ड भी क्षमा करने के योग्य है अर्थात् मैं देनेवाला उसके फल को नहीं पाऊंगा ऐसा कह कर वह मातंग चाण्डाल मौन होगया और विश्वामित्र ने कुत्ते की जंघा को हरण किया तदनन्तर उस जीवन की इच्छा करनेवाले महामुनि ने उस कुत्ते के अंग को हाथ से ले जाकर आश्रम में अपनी स्त्री के साथ खाना चाहा तिस पीछे यह बुद्धि हुई कि मैं पहिले बुद्धि के अनुसार देवताओं को तृप्त करके फिर इसको इच्छापूर्वक खाऊंगा तब महामुनि ने ब्राह्मणबुद्धि से अग्नि को प्रज्वलित करके इन्द्राग्नि से सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि के द्वारा आप चरु को सिद्ध किया और देव पितरों का पूजन प्रारम्भ किया और इन्द्रादि देवताओं का आवाहन करके बुद्धि और कर्म के अनुसार उसके जुदे २ भाग किये उसी समय पर सब प्रजा को जीवदान देतेहुये इन्द्र ने बड़ी वर्षा की और ओषधियों को उत्पन्नकिया और विश्वामित्र ने तपस्या से पापों को भस्म करके बड़े काल में महासिद्धि को पाया और कर्म को बन्द करके उस हव्य को आप न खाया और देवता पितरों को तृप्त करके प्रसन्न किया इसीप्रकार दुःखसंयुक्त जीवन की इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् साहसी युक्तियों के ज्ञातालोग अनेक उपायों से आपत्ति-काल में अपने को बचावे इस बुद्धि में प्रवृत्त होकर सदैव जीवन करने के योग्य है जीवन से ही मनुष्य पुण्य को प्राप्तहोकर कल्याण को भोगता है इसी कारण हे कुन्तीनन्दन! शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मज्ञानी को धर्म और अधर्म निश्चय करने के समय बुद्धि में स्थिर होकर इस संसार में कर्म करना योग्यहै॥ १०२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणयापद्धर्मेएकादशोऽध्यायः॥ ११॥

बारहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि जो मिथ्या के समान श्रद्धा से रहित घोरकर्म करने के योग्य उपदेश किया ऐसी दशा में यह चोरों की मर्यादा है जिसको मैं त्याग करता हूं अर्थात् चोरों को धिक्कार न करना चाहिये इससे मैं अचेत होकर मोह को प्राप्त होता हूं मेरा धर्म पक्का नहीं किया इससे आप को विश्वास कराता हुआ भी निश्चय को नहीं पाताहूं भीष्मजी बोले कि मैंने शास्त्र से सुनकर तुझ को यह धर्म उपदेश किया यह बात नहीं है यह बुद्धि की निष्ठा पण्डितोंने कल्पना की है, राजा को जहां तहां से बहुतसी बुद्धि प्राप्त करना चाहिये यह लोकयात्रा एकदेशीयधर्म से जारी नहीं होती है हे कौरव! बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला धर्म और सत्पुरुषों का आचार सदैव जानने के योग्य होता है उन सब प्रयोजनों में मेरे प्रयोजन को सदैव जानो उत्तम बुद्धिमान् विजय की इच्छा रखनेवाले राजा लोग कर्म करते हैं इसलिये राजा को जहां तहां से बुद्धि के द्वारा धर्म प्राप्त करनेके योग्य हैं क्योंकि एकदेशीयधर्म से राजाका धर्म प्राप्त नहीं होताहै पहिले से शिक्षा न पाईहुई बुद्धि निर्बल राजा को कहीं से प्राप्त होती है अर्थात् नहीं प्राप्त होती है- एक काम में दो प्रकारके प्रयोजनों का न जाननेवाला राजा दो प्रकारवाले मार्ग में कष्टपाने के योग्य है इससे हे राजन्! पहिलेही दो प्रयोजनवाली बुद्धि जानने के योग्यहै, ज्ञानी राजा पीछेकरने के योग्य बातको निश्चय करके करावे उस कर्म को मनुष्य धर्मरूप जानते हैं परन्तु ज्ञानदृष्टि से धर्म नहीं होता कोई सच्चे कोई झूठे ज्ञानी विज्ञानी हैं उसको ठीक जानकर सत्पुरुषोंके ज्ञान को स्वीकार करता है धर्म के विरोधी लोग कहते हैं कि अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र के विरुद्ध है वह आदर के योग्य नहीं है वह अर्थरहित अर्थशास्त्रों की अप्रमाणता को प्रकट करते हैं और जो पुरुष विद्या, यश, काम से जीवन की इच्छा रखते हैं अर्थात् तीनों को उदरपूर्ण करने के निमित्त प्राप्त करते हैं वह सब पापी और धर्मके शत्रु हैं अल्पबुद्धि मन्दप्रारब्धी लोग मुख्य बात को ऐसे नहीं जानते हैं जैसे कि शास्त्र में अकुशल और सब स्थानों में अयुक्ति से करनेवाले और शास्त्रों के दोष देखनेवाले पुरुष शास्त्रों को चुराते हैं अर्थात् विपरीत वर्णन करते हैं इसकारण से विद्याओं का जानाहुआ अर्थ अच्छे प्रकारसे प्राप्त नहीं होता दूसरे की विद्याओं की निन्दा करने से अपनी विद्या को प्रसिद्ध करते हैं वह वचनरूप अस्त्र शस्त्र रखनेवाले निष्फल हैं जिनकी विद्या असार है उनलोगों को विद्या वेचनेवाला राक्षसों के समान जानना चाहिये सत्पुरुषों से जारी कपट से किया हुआ धर्म नाश को पाता है-धर्मका निश्चय केवल वचन और बुद्धिसे नहीं है यह हमने सुना है बृहस्पतिजी के इस ज्ञान को इन्द्र ने आप कहा है यहां कोई वचन विना हेतु

के नहीं कहा जाता है फिर इस दूसरे अच्छी नीतिवाले पुरुष शास्त्र से इसको निश्चय नहीं करते हैं, इस लोक में कितनेही ज्ञानियों ने यात्राको ही धर्म कहा है इसी कारण पण्डितलोग सत्पुरुषों से अच्छेप्रकार उपदेश कियेहुये धर्म को आप शास्त्रोक्त वचनों से निर्णय करें हे राजन् ! सभा के मध्य ज्ञानी पुरुष का कहाहुआ शास्त्र क्रोध और मोह से नाश होजाता है वेदोक्त बुद्धि से प्राप्त हुये जो वचन हैं उनसे दूसरा मनुष्य अज्ञान और ज्ञान प्राप्त होने के कारण केवल वचन ही को अच्छा मानता है अर्थात् तर्कणाओं से उसको निश्चय नहीं करता है अन्य लोग मानते हैं कि इस युक्तिसे इस शास्त्रमें दोष लगाया गया है इसलिये निष्फल है यह बात भी केवल अज्ञान से है पूर्वसमय में इस संशय का दूर करनेवाला यह वचन कहा है कि वह संशयरूप ज्ञान भी उसप्रकार का है जैसे कि नहीं अर्थात् नहीं होने के समान है इस हेतु से उस संशय को निर्मूल करके काटने के योग्य हो, जो आप मेरे इस नीतियुक्त वचन को नहीं मानते हो यही अयोग्य है क्योंकि तुम हिंसात्मक कर्म के लिये उत्पन्न होकर उसको नहीं विचारते हो हे पुत्र ! तुम मुझ को ही देखो कि दूसरे मनुष्य जिस प्रयोजन को अच्छा नहीं समझते वह पृथ्वी भर के चाहनेवाले राजालोग मेरी निन्दा करते हैं कि यह हिंसा करनेवाला है और जो मैंने उनको स्वर्गलोक में पहुँचाया वह उन्हीं के कल्याण के लिये है कुछ अपने निमित्त नहीं है इसको वह नहीं जानते हैं-बकरा, घोड़ा, क्षत्रिय यह सब ब्रह्माजी ने बराबर उत्पन्न किये अर्थात् दोनों प्रकार के यज्ञों में देह के त्यागने से मोक्ष के अधिकारी बनाये गये हैं इस कारण जीवों की कोई यात्रा बराबर सिद्ध होती है मारने के अयोग्य पुरुष के मारने में जो दोष है वही मारने के योग्य मनुष्य के न मारने में भी कहा है निश्चय करके जिसको यह त्याग करे वही मर्यादा है जैसे कि भेड़ियों के समान परस्परमें भक्षण करनेवाली प्रजा घूमती है उसीप्रकार से तीव्रबुद्धि राजा अपने धर्म में प्रजाओं को नियत करे जिसके देश में चोर मनुष्य दूसरे के धन को ऐसे हरते हैं जैसे कि काक जल से मछलियों को वह राजा निश्चय करके क्षत्रियों को कलंक लगानेवाला है हे राजन् ! कुलीन, वेदज्ञ मन्त्रियों को नियत करके धर्म से प्रजा को पालन करतेहुये तुम सम्पूर्ण पृथ्वीपर राज्य करो जो राजा राज्य के कर्मों से रहित संसार से विपरीत कर को लेता है उस युक्ति के न जाननेवाले क्षत्रिय कुल को नपुंसक कहते हैं इस लोक में रूप वा उग्रतारहित राज्य के योग्य नहीं होता है किन्तु धर्म से प्रशंसा को पाता है तुम उग्ररूप होकर मृदु होजाओ, यही क्षत्रियधर्म कठिन है और मेरी प्रीति तुझ में वर्तमान है तुम हिंसात्मक कर्म में उत्पन्न हुये हो इससे राज्य को धर्मपूर्वक करो हे राजन् ! आपत्तिकाल में सदैव नीच को दण्ड और योग्य मनुष्यों का पोषण करना चाहिये यह बुद्धिमान्

शुक्रजी का वचन है युधिष्ठिर बोले हे पितामह! जो यह मर्यादा है कि जिसको कोई दूसरा उल्लंघन नहीं करे वह आप मुझ से वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि विद्यावृद्ध तपस्वी शास्त्र के आचार विचार में प्रवीण ब्राह्मणों का भी सेवन करे यही पवित्र और उत्तम है देवताओं में जो तेरी वृत्ति है वही सदैव ब्राह्मणों में हो हे राजन्! क्रोधयुक्त वेदपाठी ब्राह्मणों से बहुधा कर्म कियेगये हैं उनमें प्रीति करने से बड़ी कीर्ति होती है परन्तु प्रीति करने से बड़ा भय है वेदपाठी ब्राह्मण प्रीति में तो अमृत के समान और क्रोध में विष के सदृश होते हैं ॥३८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणयापद्धर्मेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाशास्त्रज्ञ, ज्ञानिन्, पितामह! शरणागतके ऊपर कृपा करनेवाले का जो धर्म है उसको मुझ से कहो-भीष्मजी बोले कि हे राजन्! शरणागत के पोषण करने में बड़ा धर्म है तुम को ऐसा प्रश्न पूछना योग्य है हे राजन्! शिवि आदि राजाओंमें शरणागतों पर कृपा करनेसे बड़ी२ सिद्धियों को प्राप्त किया सुना जाता है कि किसी कपोत ने शरण में आयाहुआ शत्रु न्याय से पूजा उसको अपने मांस का निमन्त्रण दिया युधिष्ठिर बोले कि कपोत ने शरण में आयेहुये अपने शत्रु को अपने मांस से कैसे तृप्त किया और उसका फल उसको क्या हुआ भीष्मजी ने कहा कि भार्गव जी ने राजा मुचुकुन्द से जिस कथा को कहा इस दिव्य पाप दूर करनेवाली कथा को सुनो कि पूर्वसमय में राजा मुचुकुन्द ने बड़ी नम्रतापूर्वक भार्गवजी से यह प्रयोजन पूछा था तब भार्गवजी ने राजा से यह कथा कही जैसे कि कपोत ने सिद्धि को पाया भार्गव जी ने राजा मुचुकुन्द से कहा कि तुम एकाग्रचित्त होकर मुझ से इस कथा को सुनो कि किसी महावन में नीच आचारवान् काल के समान घोररूप एक चिड़ीमार घूमताहुआ निकला वह काकोल प्रकार करके कौवे के समान काला रंग लाल नेत्र बड़ी जंघा छोटेपैर बड़ा मुख और तीव्र नखवाला था उसका कोई मित्र बान्धव नहीं था क्योंकि इसी हिंसाकर्म से उन सबने उसको त्याग किया था ज्ञानियों को पापआचारवाला मनुष्य दूर से ही त्याग करने के योग्य है जो आत्मा को विष फांसी आदि से मारना चाहता है वह कैसे दूसरे का हितकारी होगा जो मनुष्य निर्दयी दुष्टबुद्धि जीवों के प्राण हरनेवाले हैं वह सब की समान जीवों के भयकारी होते हैं वह सदैव जाल को लेकर पक्षियों को वन में मारकर बेचा करता था इसीप्रकार इस नष्टकर्म को करते बहुत समय व्यतीत हुआ तब भी उसने धर्म को नहीं जाना भार्या समेत सदैव क्रीड़ा करनेवाले उस अज्ञानी को दूसरी जीविका अच्छी नहीं मालूम होती थी एक दिन उस वन में

बड़ी आंधी आई उसके कारण आकाश बादलों से पूर्ण बिजली की चमकसे शो-भायमान हुआ और एक मुहूर्त में ही ऐसा ढकगया जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों से भरी नौका सागर में ढकजाती है और ऐसी वर्षा हुई कि क्षणमात्र में पृथ्वी जल से डूबगई तब वह व्याध शीत से महाव्याकुल हो वन में चारो ओर घूमा परन्तु कोई आश्रयस्थान नहीं पाया और वन के सब मार्ग जल से गुप्त होगये तब तीव्र वर्षा से पीड़ित पक्षी भी गुप्त हुये मृग सिंह वराह आदि पशु अपने २ स्थानों में रक्षा पानेवाले हुये और वह व्याध शीत के मारे शिथिल अंगों से चल न सका तब उसने सर्दी से व्याकुल पृथ्वीपर पड़ेहुये किसी कपोत पक्षी को देखा उस पापात्मा ने उसको पीड़ायुक्त देखतेही पिंजरे में डाला और वन-खण्डों में मेघ के समान किसी नीलवृक्ष को देखा जो कि पक्षियों का आश्रय-रूप था वह वृक्ष ईश्वर ने दूसरों के हित के लिये साधु के समान उत्पन्न किया था थोड़े काल पीछे आंधी निवृत्त हुई और आकाश में निर्मल नक्षत्र दीखनेलगे तब उस शीत से व्याकुल व्याध ने निर्मल आकाश को देखकर दिशाओं को देखा और यह विचार किया कि इस स्थान से मेरा घर दूर है इस कारण वहां रहने के विचार से उस वृक्ष से हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक यह वचन कहा कि इस वृक्ष पर जो देवता हैं उनकी शरण लेता हूं यह कहकर वह व्याध पृथ्वी में पत्ते बिछाकर सोगया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! उस वृक्ष की शाखा पर अपूर्व रोम रखनेवाला एक कपोत पक्षी अपने इष्टमित्रों समेत बहुत काल से रहता था उसकी भार्या प्रातःकाल चुगने को गई थी वह नहीं लौटी और रात्रि को देखकर वह पक्षी महादुःखी होकर कहनेलगा कि बड़ी हवा और वर्षा हुई और मेरी प्यारी नहीं आई इसका कारण क्या है जो अबतक नहीं लौटी वन में वह जीती रहै क्योंकि उसके विना यह मेरा घर उजाड़ है चाहे पुत्र, पोते, नौकर, चाकर बड़े बूढ़ों से पूर्ण भी घर हो उसको घर नहीं कहते केवल स्त्री सेही घर कहा जाता है और स्त्री से खाली घर वन के समान माना है जो वह रक्तनेत्र अपूर्व देह मीठेशब्द-वाली मेरी प्यारी नहीं आती है तो मेरा भी जीना वृथा है वह ऐसी पतिव्रता है जो विना मेरे भोजन कराये भोजन नहीं करती है और मेरे स्नान के विना स्नान नहीं करती और मेरे वर्तमान होनेविना वर्तमान न होवे और मेरे सो-जानेपर सोती है और प्रसन्न होनेपर प्रसन्न होती है दुःखी होनेपर दुःखिनी और दूरजानेपर मुख मैला करती है और मेरे क्रोध होनेपर प्यारे वचनों को कहती है

पतिव्रत रखनेवाली है जिसकी भार्या ऐसी हो वह पुरुष धन्य है वह तपस्विनी सुख थके और पीड़ावान् को जानती है और शान्तचित्त भक्तिपूर्वक प्रीति रखने-वाली यशस्विनी है जिसकी प्यारी वृक्ष की जड़पर भी होती है वह घर है उसके विना महल भी वन के सदृश निश्चय कियागया है धर्म, अर्थ और काम की विपत्तियों में भार्या पुरुष की सहायता करनेवाली है और इसके परदेश जाने पर वही विश्वास करनेवाली है इस लोक में स्त्रीही पुरुष की उत्तम लक्ष्मी कही जाती है इस संसार में असहाय मनुष्य को स्त्रीही सहायता देनेवाली है उसी प्रकार रोग से संयुक्त सदैव दुःख से पीड़ित आदमी को स्त्री के सिवाय कोई औ-षध नहीं है लोक में धर्मों के बीच भार्या के समान सहायक नहीं है बन्धु भी भार्या के समान नहीं होते जिसके घर में नेकचलन और प्यारे वचन कहने-वाली भार्या नहीं है उसको वनही जाना चाहिये क्योंकि उसको घर से वन ही अच्छा है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेचतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसप्रकार विलाप करनेवाले कपोत के करुणावचनों को सुनकर व्याध से पकड़ी हुई कपोतिनी ने वचन कहा कि मैं बड़ी प्रारब्धिनी हूं जो मेरा पति मेरेगुणों को कहता है चाहे मैं अच्छी हूं या बुरी हूं जिस स्त्री से पति प्रसन्न नहीं है वह स्त्री मानने के योग्य नही है पति के प्रसन्न होने से स्त्रियों के सब देवता प्रसन्न होते हैं निश्चय करके पतिदेवता सब से उत्तम है जिसका साक्षी अग्नि है जैसे फूल, फलवाले वृक्ष दावानल से भस्म होते हैं उसीप्रकार वह स्त्री भी भस्म होती है जिस का कि पति प्रसन्न नही होता है तब महादुःखित व्याध से पकड़ी हुई कपोतिनी अपने पति से बोली कि मैं तुम्हारे कल्याण को कहती हूं तुम इसको सुनकर उसीप्रकार करना हे पते ! तुम शरणागत के बड़े रक्षक हो आपके निवासस्थान में शरणागत यह व्याध सोता है यह सर्दी और क्षुधा से पीड़ित है उसका पूजन करो जो कोई ब्राह्मण को अथवा लोकमाता गौ को मारे और जो शरणागत को मारे तीनों का पाप बराबर है कपोतजाति के धर्म से हमारी जीविका नियत कीगई है तुमसरीखे ज्ञानी पुरुषसे वह वृत्ति न्यायके अनुसार करनेके योग्य है जो कुटुम्बी सामर्थ्य के अनुसार धर्म को करताहै वह मरकर अविनाशी लोकों को पाता है ऐसा सुनते हैं सो हे कपोत ! अब तुम कुटुम्बवाले हो अपनी देह में दया को धारण करके धर्म अर्थ के साथ उसका पूजन ऐसा करो जिस से इसका चित्त प्रसन्न हो और मेरे निमित्त दुःख मत करना अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त दूसरी स्त्री को प्राप्त

करना ऐसा वचन कहकर उस पिंजरे में से पति की ओर को देखा ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जब उस व्याकुलनेत्र पक्षी ने पत्नी के धर्म और युक्ति पूर्वक वचनों को सुना तब बड़ी प्रसन्नता से संयुक्त होकर उस घातक को देख कर बुद्धि के अनुसार पूजन किया और बोला कि अब तेरा आगमन मंगल दायी हो आप कोई प्रकार से शोच न कीजिये क्योंकि यह आपही का घर मैं आप को नम्रतापूर्वक कहता हूं कि आप मेरे शरण में आयेहो जो आपकी इच्छा हो सो करूं घर में शत्रु को भी आनेपर योग्य आतिथ्यधर्म करना चाहिये जैसे कि काटनेवाले पर वृक्ष अपनी छाया को दूर नहीं करता है इसीप्रकार शरणागत का आतिथ्य बड़ी युक्ति से करना चाहिये गृहस्थ को पंचयज्ञ और आतिथ्यधर्म बड़ी प्रसन्नता से करना चाहिये जो पुरुष गृहस्थाश्रम में मोह से यज्ञों को नहीं करता है उसका न यह लोक है न परलोक होता है सो आप चिन्ता को दूर करके जो मुझ से कहोगे वही मैं करूंगा व्याध ने पक्षी के इस वचन को सुनकर कहा कि मुझे सर्दी बड़ी पीड़ा देरही है उसका उपाय करो यह व्याध से सुनतेही पक्षी पृथ्वी पर पत्तों को बिछाकर पराक्रम के अनुसार अग्नि लेने को गया और बड़ी शीघ्रता से अग्नि को लेआया तदनन्तर उसने सूखे पत्तों के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उस शरणागत व्याध से कहा कि अब तुम विश्वासयुक्त होकर अपने सब अंगों को सेंको तबतो व्याध ने बहुत प्रसन्न होकर अपने अंगों को तपाया जब अग्नि से प्राण बचे और प्रसन्न हुआ तो फिर उस पक्षी से कहा कि अब क्षुधा से पीड्यमान होकर तेरे दियेहुये आहार को चाहता हूं यह सुनतेही पक्षी ने यह वचन कहा कि मेरे पास कोई सामान नहीं है जिसके द्वारा तेरी क्षुधा को मिटाऊं हम वनवासी सदैव मिलजानेवाले भोजन से आनन्दपूर्वक जीवते हैं मुनियों के समान हमारे पास भी भोजन इकट्ठा नहीं है ऐसा कहकर वह पक्षी रूपान्तर हुआ और चिन्ता करनेलगा कि किसप्रकार कर्म करना चाहिये और अपनी जीविका की निन्दा करता शोचग्रस्त हुआ फिर क्षणमात्र में सावधान होकर उस पक्षी ने व्याध से कहा कि थोड़े काल में ही मैं तुझ को तृप्त करूंगा तू मुहूर्तभर और बाट देख बड़ी प्रसन्नता से और बहुत से सूखे पत्तों में अग्नि को प्रज्वलित करके यह वचन बोला कि मैंने पूर्वसमय में महात्मा, ऋषि, देवता पितरों का अतिथिपूजन में बड़ा धर्म सुना है मैं आप से सत्य २ कहता हूं आप कृपा करिये इससेही निश्चय करके मेरी बुद्धि अतिथि के पूजन में प्रवृत्त हुई

तदनन्तर वह पक्षी उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करगया व्याध ने पक्षी को अग्नि में घुसा देखकर चिन्ता की कि मैंने यह क्या किया इससे मुझ को निश्चय करके महाघोर नरक होगा और अपने कर्म की निन्दा करके उस दशावाले पक्षी को देखकर इसप्रकारका बहुत सा विलाप किया ॥ २६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि तब उस महादुःखित व्याध ने अग्नि में पड़ेहुये पक्षी से यह वचन कहा कि मुझ निर्दयी निर्बुद्धि ने ऐसा क्यों किया इससे मुझ जीवनेवाले को सदैव पातक होगा अपनी निन्दापूर्वक वारंवार यही शब्द कहा कि मैं अपनी निर्बुद्धि और पापबुद्धि से अनेक उत्तमकर्मों को त्याग कर पक्षियों का घातक हुआ अब मुझ निर्दयी को धिक्कार के साथ यह उपदेश है कि भस्म होनेवाले महात्मा कपोत ने अपना मांस मुझको दिया सो मैं भी अपने प्यारे प्राणों समेत स्त्री और पुत्र आदि को इसीप्रकार त्याग करूंगा महात्मा कपोत ने मुझ को धर्म उपदेश किया है अब से लेकर जीवनपर्यन्त सब भोगों से रहित अपने देह को ऐसा सुखाऊंगा जिसप्रकार कि ग्रीष्म ऋतु में बहुत छोटा सरोवर सूखजाता है क्षुधा, पिपासा, आतप का सहनेवाला दुर्बल और हड्डियों से तनाहुआ बहुत प्रकार के व्रतों के द्वारा परलोक से सम्बन्ध रखनेवाला कर्म करूंगा आश्चर्यकारी देह के दान से अतिथिपूजन इस कपोत ने दिखाया इस कारण धर्म को करूंगा क्योंकि धर्मही परमगति है जैसा धर्म इस धर्मिष्ठ उत्तम कपोत में देखा वह कहीं किसी में नहीं सुना वह बीभत्सकर्मी व्याध इसप्रकार से कहकर और बड़ी दृढ़ता से व्रत में परायण हो संन्यासधर्म में प्राप्तहोकर चलदिया और अपनी लाठी शलाका जाल और पिंजरे को डाल दिया और उस पकड़ीहुई कपोतिनी को छोड़दिया ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस व्याध के चलेजानेपर दुःखी व्याकुल उस कपोतिनी ने पति को स्मरण करके यह कहा कि हे पते ! मैं तेरे अप्रिय को कभी स्मरण नहीं करती हूं सब विधवा स्त्रियां जो कि बहुत बेटेवाली होती हैं वह शोचती हैं विधवा तपस्विनी स्त्री बान्धवों की ओर से शोच के योग्य होती हैं मैं तुझ से बहुत प्यार कीगई और बड़े मान से पूजित हुई मैं तेरे साथ सुन्दर मीठे सुगम और चित्तरोचक वचनों के साथ पहाड़ों की कन्दरा और नदियों के झरने और

वृक्षों की उत्तम शाखाओं पर क्रीड़ा करनेवाली हुई और तेरे साथ आकाश में सुखपूर्वक चलती थी सो हे पते ! वह आगे का सुख मुझ को अब कुछ भी नहीं है पिता संख्यावाली वस्तु को देता है भाई, लड़के भी संख्याही की वस्तु को देते हैं और असंख्यवस्तु देनेवाले पति का कौन नहीं सत्कार करेगा पति के समान सुख और नाथ नहीं है निश्चय करके सब धनों को त्याग करके स्त्री का रक्षास्थान पतिही है हे नाथ ! तेरे विना मैं यहां जीवन करना नहीं चाहती पति के विना कौनसी पतिव्रता स्त्री जीने की इच्छा करती है ऐसे अनेक करुणा विलाप के वचन कहके वह भी अग्नि में प्रवेश करगई मरने के अनन्तर उसने अपूर्व बाजूबन्दयुक्त विमान में बैठे शुभकर्मी महात्माओं से पूजित अनेक आभूषण वस्त्रों से अलंकृत श्रेष्ठकर्मी पुरुषों के अनेक विमानों से घिराहुआ अपने पति को देखा फिर वहां स्वर्ग में वर्तमान होकर उत्तम विमान में बैठा अपनी भार्या समेत क्रीड़ा करनेलगा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! उस व्याधने भी उन दोनों कपोत कपोतिनी को विमान में बैठाहुआ देखा और उस गति को खूब विचार करके चाहा कि मैं भी इसप्रकार के तप से परमगति को प्राप्त करूं यह बुद्धि में विचारताहुआ चल दिया और सबसे ममता त्याग संन्यासी होकर वायु का भोजन करनेलगा और अनेक सुन्दर पक्षियों से व्याप्त अनेक रंग के कमलों से शोभित उसने किसी सरोवर को देखा जिसके देखतेही तृष्णा इसकी जातीरही तब बड़े २ व्रतों से देह को कृश करके वह व्याध हिंसक जीवों से व्याप्त किसी निर्जन महावन में पहुँचा वहां वन के कांटों से घायल रुधिर से भराहुआ फिरनेलगा दैवयोग से वृक्षों की रगड़से उस वन में दावानल अग्नि लगी और उस महाप्रचण्ड अग्नि ने सब पशु, पक्षी, वृक्ष और लताओं समेत उस कानन को भस्म किया उस समय वह व्याध भी देह को शुद्धकर मोक्ष के निमित्त उस अग्नि के सम्मुख दौड़ा और जाकर उसमें भस्म होगया और मरने के पीछे उसने बड़ी सिद्धि को पाया अर्थात् अपने को स्वर्ग में जाकर यक्ष गन्धर्वों से सेवित इन्द्र के समान शोभायमान देखा इसप्रकार से कपोत कपोतिनी उस व्याध समेत स्वर्ग को गये इसीप्रकार जो कोई स्त्री पति की इच्छा के अनुसार कर्म करती है वह कपोतिनी के समान शीघ्रही स्वर्ग में जाकर शोभायमान होती है यह कपोत कपोतिनी और व्याध का पूर्व वृत्तान्त शुभकर्म से उत्तमगति पाने का है जो इसको सदैव सुनै सुनावैगा उसका पाप नष्ट होगा हे युधिष्ठिर ! यह बड़ा

धर्म है इस कथा के कहने से गौ ब्राह्मण मारनेवाले की भी गति होती है परन्तु जो शरणागत को मारता है उसका प्रायश्चित्त भी नहीं होसक्ता है जो पुरुष इस पवित्र पाप के दूर करनेवाले इतिहास को सुनता है या सुनाता है वह दुर्गति को त्याग स्वर्ग को जाता है ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेएकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! अज्ञानता से जो पाप करै वह कैसे पाप से छूटता है भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं उस ऋषियों के कहे हुये पुराण को तुझ से कहता हूं जो शौनक के पुत्र इन्दोत ने राजा जनमेजय से कहा है कि परीक्षित का पुत्र राजा जनमेजय महापराक्रमी हुआ उसने अज्ञानता से ब्रह्महत्या को किया था इस कारण पुरोहित समेत ब्राह्मणों ने उसको त्यागदिया तव वह राजा महाशोक से पीड़ित वन को गया और वहां जाकर अपने पाप का पश्चात्ताप करके शुद्धि के लिये उसने तपस्या की और देश २ के ब्राह्मणों से उसने अपनी हत्या के निवृत्त होने को पूछा वह धर्म की वृद्धि करनेवाला इतिहास तुझ से कहता हूं कि पापकर्म से दुःखित वह राजा जनमेजय जब वन को गया और वन में घूमतेहुये उसने शौनक के पुत्र इन्दोत को पाकर उस के दोनों चरण पकड़लिये तब उस ऋषि ने उस राजा की बड़ी निन्दा की और कहा कि हे बड़े पाप और भ्रूणहत्या करनेवाले ! यहां क्यों आया है तुम हमारे पास क्या करसक्ते हो मुझ को तुम कभी मत स्पर्श करो जावो २ तुम्हारे रहनेसे हम प्रसन्न नहीं हैं तेरे देह की गन्धि रुधिर के समान है और तेरा मुख मृतक के तुल्य है अकल्याणवान् कल्याणवानों के समान मृतक जीवतेहुये के समान घूमता है ब्राह्मण को मार अपवित्र आत्मा पाप कोही विचारता जागता, सोता है और बड़े आनन्द में वर्तमान होता है हे राजन् ! तेरा जीवन निष्फल है तू बुरे कर्म के लिये उत्पन्न हुआ है पिता माता आदि तप, देवपूजन, नमस्कार और क्षमायुक्त होकर पुत्रों की इच्छा करते हैं और उनसे अपना बड़ा कल्याण चाहते हैं देख तेरे पिता का वंश तेरे कारण से नरक को गया उन माता पिता की तुझ से सम्बन्ध रखनेवाली सब आशा वृथा हैं जिनके पूजन से स्वर्ग और कीर्ति होती है उन ब्राह्मणों के तुम शत्रु हो तुम इस संसार को त्यागकर अपने पापकर्म से विनाशवान् होकर ऐसे स्थान पर शिर के वल वर्षों तक गिरोगे जहां पर लोहे के समान मुख रखनेवाले गिद्ध और शतकण्ठों से छेदे जाते हैं फिर वहां से अलग होकर पापयोनि को पावेगा और हे राजन् ! जो तुम यह

मानते हो कि यह लोक नहीं है तो परलोक कहां से होगा इस बात की याद तुझ को यमलोक के दूत दिलावेंगे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि यह बात जनमेजय ने सुनकर उस मुनि से कहा कि आप मुझ निन्दायोग्य की निन्दा करतेहो और धिकार के योग्य को धिकारी देते हो मैं इसी के योग्य हूं यह मेरा पाप है अग्नि में बैठेहुये के समान भस्म होरहा हूं अपने पाप को स्मरण करके मेरा चित्त प्रसन्न नहीं होता है निश्चय है कि मेरे पाप से उत्पन्न होनेवाली भाल यमराज से भी अधिक घोर भय को पाकर पार निकलजायगी मैं उस भाल को बिना उखाड़े कैसे जीवनको समर्थहूं हे शौनक जी ! आप सब क्रोध को त्यागकर मेरे सम्मुख बात करो मैं ब्राह्मणों का बड़ा भक्त था इसको फिर कहूंगा यह वंश बनारहै इसका नाश न हो, ब्रह्महत्या करनेवाले और अपकीर्ति पानेवाले हमलोगों का रहना वेद की रीति से एकमत प्राप्त होने के योग्य नहीं है आपको अपमान करके फिर सनातन वचन कहता हूं कि आप मेरी इसप्रकारसे रक्षा करो जिसप्रकार योगीजन निर्धनों की रक्षा करते हैं-यज्ञ न करनेवाले मनुष्य किसी दशा में भी परलोक को नहीं पाते हैं और पुलिन्द शबर नाम म्लेच्छों के समान नरकवासियों के समीप वर्तमान होते हैं जो मुझ सरीखे अज्ञानी शरण में आयेहुये की निन्दा करै वह पण्डित नहीं है हे शौनक ! जैसे पिता पुत्रपर प्रसन्न होता है उसीप्रकार आप मुझपर कृपाकरिये शौनक ने कहा कि क्या आश्चर्य है जो अज्ञानीपुरुष अयोग्य कर्म करे उसके ऊपर पण्डित अवश्य क्रोध नहीं करते ज्ञानमहल पर चढ़कर शोच के अयोग्य पुरुष दूसरे मनुष्यों को ऐसे शोचता है जैसे पहाड़ पर बैठा मनुष्य पृथ्वी के मनुष्यों को ज्ञान से जानता है-जो साधुवों में प्रीति नहीं रखता है और उनकी आंखों से गिराहुआ है और पहिले साधुवों से धिकारी को पायाहुआ है वह ज्ञान को नहीं पाता है उसप्रकार के पुरुष में दूसरे मनुष्य आश्चर्य को नहीं करते हैं ब्राह्मण का बल वेद और उसका माहात्म्य शास्त्रों में है वह तुम को मालूमहै तुम यहां शान्त होकर कर्म करो और ब्राह्मण तुम्हारा रक्षक हो हे तात ! क्रोधरहित ब्राह्मणों का जो कर्म है वह परलोक का हितकारी पापयुक्तभी हो, ऐसी दशा में भी धर्म को ही समझो जनमेजय बोले कि हे शौनकजी ! मैं पाप से पश्चात्ताप करता हूं और धर्म को लोप नहीं करता हूं मुझ कल्याण चाहनेवाले सेवकपर प्रसन्न हूजिये-शौनकजी बोले कि हे राजन् ! मैं छल और अहंकाररहित तेरी प्रीति को चाहता हूं तू धर्म को याद करके सब

जीवों की वृद्धि में वर्तमान हो मैं लोभ दुःख भय आदि से तुझ को शिष्य नहीं बनाता हूं तुम ब्राह्मणों समेत मेरे उन दैवी सत्यवचनों को सुनो मैं किसी से धन की इच्छा नहीं रखता हाहा धिक्कार धिक्कार ऐसे सब जीवों के पुकारने से तुझ को धर्म से शिष्य करता हूं सुहृद्जन मुझ को धर्म से अज्ञानी जानकर त्याग करेंगे और मुझ पर महादुःखी होंगे मेरे चित्त के प्रयोजन को कोई ज्ञानी ही पुरुष जानेंगे वह ब्राह्मण मेरे कारण से जिसप्रकार कुशलता को पावें उसी प्रकार तुम को करना योग्य है हे राजन्! ब्राह्मणों की अविरोधता का प्रण करो, जनमेजय बोला कि हे वेदपाठिन्, शौनक! मैं कभी वचन चित्त कर्म से ब्राह्मणों से विरोध नहीं करूंगा और मैं आप के दोनों चरणों को स्पर्श करके कहता हूं॥ २२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेएकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

बाईसवां अध्याय॥

शौनक बोले कि तुम बड़े पराक्रमी होकर धर्म को देखते हो और विद्यावान् प्रसन्नचित्त होकर पाप से व्याकुलचित्त हो इस कारण मैं तुझ से धर्म को कहता हूं कि राजा प्रथम भयानकरूप होकर फिर अपने चलन से जीवोंपर कृपा करता है वह अपूर्वतर है वह सम्पूर्ण प्रजा को नष्ट करता है यह सब संसार कहता है तुम ऐसे अन्यायी होकर धर्म को ही देखते हो इससे तुम बहुत काल तक भोज्य वस्तुवों को त्याग करके तपस्या में प्रवृत्त होजावो हे जनमेजय! अधर्म से अपमानयुक्त राजाओं की यह अपूर्व वार्ता है कि जो दान करनेवाला धनवान् हो और तपस्यारूपी धन का रखनेवाला कृपण हो यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि जो आदि अन्त में विचार नहीं किया यही सम्पूर्ण कार्पण्यता है जो कर्म ध्यानपूर्वक होता है उस में गुण है हे राजन्! यज्ञ, दान, दया, वेद, सत्यता यह पांचो और अच्छे प्रकार कियाहुआ तप सब पवित्र हैं यही राजाओं का पवित्र और उत्तम धर्म है इन गुणों से तू मोक्षधर्म को प्राप्त करेगा पवित्र देश की यात्रा उत्तम और पवित्र कही जाती है इस स्थान पर राजा ययाति का कहा हुआ इतिहास कहते हैं जो आदमी अपनी आयु और जीवन को प्राप्त करे और बड़ी युक्ति से यज्ञ करके फिर तपस्या को करे वह तप कुरुक्षेत्र के समान पवित्र है और कुरुक्षेत्र से सरस्वती को और सरस्वती से तीर्थों को और तीर्थों से पृथूदक को पवित्र वर्णन किया है जिन तीर्थों में स्नान और जलपान करके जीवन्मुक्त होजाय वह महासरोवर पुष्कर, प्रभासक्षेत्र, कालोदक आदि तीर्थ हैं और सरस्वती दृषद्वती दोनों का संगम और मानसरोवर यह बड़े तीर्थ हैं उन सब तीर्थों में वेदपाठ और जप

का अभ्यास करनेवाला आचमनपूर्वक स्नान करे मनुजी ने कहा है कि पवित्र पुरुषों का धर्म त्याग है और उससे भी अधिक संन्यास है इस स्थान पर सत्यवान् के बनाये हुये इतिहास को कहता हूं जैसे कि बालक सत्यवक्ता है और पाप पुण्य का कर्ता नहीं है इसीप्रकार इस लोक में सब जीवों के मध्य ब्रह्म से उत्पन्न होनेवाले अर्थात् ब्रह्मस्वरूप पुरुषों को सुख नहीं है तो फिर संसार के कुसंग से सब पापों के प्राप्त करनेवाले पुरुषों को कैसे होगा अर्थात् वह दोनों कल्पित हैं पुण्य पाप के समाप्त होने पर त्याग करनेवालों का जीवन कल्याणकारी है राजाओं के कर्मों में जो उत्तम कर्म है वह तुझ से कहूंगा तुम धैर्यता और दानों से स्वर्ग को विजय करो जिसको धैर्यता और इन्द्रियों के जीतने की सामर्थ्य है वह मनुष्य धर्म का स्वामी है तुम ब्राह्मणों के अर्थ और सुख भोगने के निमित्त पृथ्वी की रक्षा करो क्योंकि तुम ने पहिले इनको तिरस्कार किया था अब इनको प्रसन्न करो और शपथ करो कि मैं ब्राह्मणों को नहीं मारूंगा तू अपने कामों में उद्योग करके परमकल्याण को कर कोई राजा तो वर्फ़ अग्नि और यमराज के समान होता है और कोई राजा हल और वज्र के समान होता है मैं सदैव रहूंगा ऐसा विचारकर नीचपुरुषों का निष्फल संग न करना चाहिये अर्थात् नाश की इच्छा करके कभी नीचों का संग न करे पश्चात्ताप के करने से विपरीत कर्म का पाप दूर होता है यह फिर नहीं करूंगा ऐसा निश्चय करलेने से भी पाप से निवृत्त होता है मैं धर्म ही को करूंगा यह संकल्प करके भी अपने पाप से उद्धार होता है ऐश्वर्य चाहनेवाले को अपना कल्याण करना चाहिये जो सुगन्धियों का सेवन करते हैं वह उसी सुगन्धि के रखनेवाले होते हैं जो दुर्गन्धियों के रखनेवाले हैं वह उसीप्रकार की दुर्गन्धि रखनेवाले होते हैं तप में प्रवृत्त होने से पुरुष शीघ्रही पाप से छूटता है जिसको दुष्टकर्म का दोष लगाया गया हो वह एक वर्ष पर्यन्त अग्नि की उपासना करके पाप से पृथक् होता है भ्रूणहत्या करनेवाला तीन वर्ष अग्नि की उपासना करके पाप से निवृत्त होता है महासरोवर पुष्कर प्रभास आदि तीर्थों की यात्रा को करके सौ योजन चलने से भी भ्रूणहत्या दूर होती है जितने जीवों को मारे उतने ही मरनेवाले जीवों को छुड़ाने से वह जीवघाती पापों से निवृत्त होता है तीन ऋचा अघमर्षण की जल में गोता लगाकर पढ़े उसको अश्वमेध और अवभृथ स्नान के समान मनुजी कहते हैं उससे शीघ्रही पाप नष्ट हो सत्कार को पाता है और सब जीव भी जड़ और गूंगे के समान इसको प्रसन्न करते हैं हे राजन् ! देवता और असुरों ने देवगुरु बृहस्पतिजी से आदरपूर्वक पूछा कि हे महर्षे ! तुम धर्म से उत्पन्न होनेवाले सुखरूपी फल को जानते हो उसीप्रकार परलोकसम्बन्धी दुःख को

भी जानते हो जिस योगी के वह दोनों सुख दुःख बराबर होयँ उन दोनों की विजय भी वहां बराबर होसक्ती है या नहीं, धर्म की प्रकृति रखनेवाला पुरुष किसप्रकार से पाप को दूर करता है, बृहस्पतिजी बोले कि जो पहिले अज्ञानता से पाप को करके फिर बुद्धि से पवित्र कर्मों को करता है वह कर्म का अभ्यासी उस पाप को ऐसे दूर करता है जैसे कि देह से मैले वस्त्र को दूर करते हैं-पाप करके यह माने कि मैं कर्ता नहीं हूं अर्थात् देह के अहंकार से पृथक् है वह श्रद्धायुक्त दूसरे के दोष गुण में दोष न लगानेवाला कल्याण को प्राप्त होता है जो पुरुष साधुवों से प्रकट होनेवाले दोषों को ढकता है वह भी कल्याणभागी होता है-जो पुरुष पाप को करके कल्याण को प्राप्त करता है वह इसप्रकार कल्याण को करता हुआ सब पापों को दूर करता है जैसे कि सम्पूर्ण अन्धकार को प्रातःकाल का सूर्य दूर करता है-भीष्मजी बोले कि शौनक के पुत्र इन्दोत ने राजा जनमेजय से ऐसा कहकर बुद्धि के अनुसार अश्वमेधयज्ञ कराया तबवह जनमेजय निष्पाप होकर कल्याणयुक्त देदीप्यमान अग्नि के समान रूपवान् शत्रुहन्ता होकर अपने नगर में जाकर ऐसे पहुँचा जैसे कि आकाश में पूर्णचन्द्रमण्डलयुक्त चन्द्रमा होता है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आप ने देखा या सुना है कि कोई मृतक होकर फिर जिया इसको कृपा करके कहिये भीष्मजी बोले कि एक प्राचीन इतिहास जिस में गिद्ध और शृगाल का वर्णन है उसको सुनो कि प्राचीन समय में नैमिप देश में किसी ब्राह्मण का बालक बड़े नेत्रवाला कष्ट से प्राप्त होनेवाला बालग्रह से पीड़ित होकर मरगया तब उस घराने के मूलधनरूप मृतक बालक को उसके भाई बन्धु महाव्याकुल शोक से अश्रुपात करते हुये श्मशानभूमि के पास लेकर वर्तमान हुये और शोक से उस बालक को पृथ्वी पर रखकर करुणा करके रोदन करनेलगे वारंवार उस बालक के वचनों को याद कर कर मारे मोह के उसको वहां छोड़कर लौट जाने को समर्थ नहीं हुये उन के विलाप के वचन सुनकर एक गिद्ध उन से बोला कि लोक में इकलौते पुत्र को छोड़कर जावो यहां विलम्ब न करो यहां हज़ारों स्त्री पुरुषों को बान्धव लोग छोड़ २ कर सदैव चलेजाते हैं और सुख दुःख से भरे हुये सब संसार को देखो मिलना और बिछुड़ना क्रम से सब को होनेवाला है जो लेकर आते हैं वह जीव भी अपनी अवस्था की संख्या से मृत्यु होते हैं तुम इस गिद्ध शृगाल काकादि व्याप्त महाभयानक भूमि से चले जावो

काल को पाकर कोई इष्टमित्र फिर नहीं जिया है जीवों की ऐसी ही गति है इस में जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्यही मरेगा कौन पुरुष मृत्यु से बचाकर मृतक को जिलासक्ता है लोक का सब काम करके अन्त को सूर्य भी अस्तंगत होता है पुत्र के स्नेह को त्यागकर अपने २ स्थानों को जावो तदनन्तर गिद्ध के वचनों से वह सब बान्धव पुकारे और रोकर लड़के को छोड़कर चल दिये और निराशा होकर अर्थ के निश्चय करने को मार्ग रोककर वर्तमान हुये तब कौवे के समान काला एक शृगाल बिल में से निकलकर उन सब मनुष्यों से बोला कि निश्चय करके मनुष्य निर्दय हैं अरे मूर्खो! यह सूर्य वर्तमान है प्रीति करो भय मत करो अब बहुत रूप रखनेवाला मुहूर्त है कभी २ मृतक भी जीता है तुम पुत्रभाव की प्रीति से पृथक् हो निर्दय होकर अपने इस बालक को श्मशान में छोड़कर किस कारण से जाते हो इस मीठेवचनवाले बालक में तुम्हारा स्नेह नहीं है जिसकी केवल बातों ही से खुशी होते थे तुम देखो कि जैसे पशु पक्षियों की अपने पुत्रों में प्रीति होती है उनको अपने पुत्रों के पोषण के सिवाय कोई फल नहीं प्राप्त होता है पुत्रों में प्रीति रखनेवाले पशु पक्षी कीट आदि जीवों को पोषण करने का कोई फल ऐसे प्राप्त नहीं है जैसे कि परलोकगति में वर्तमान मुनियों के यज्ञ और क्रियाओं का फल प्रकट नहीं होता अर्थात् वह फल ईश्वर में वर्तमान होता है पुत्रों से क्रीड़ा विनोद करनेवालों को इस लोक परलोक दोनों में कोई फल नहीं देखने में आता है परन्तु सन्तान को पोषण करते हैं प्यारे पुत्रों के न देखनेवाले उन जीवों को शोक वर्तमान नहीं होता है और न बड़े होकर अपने पिता माता का पोषण करते हैं मनुष्य की प्रीति कहां से है जिनका शोक किया जाय इस अपने पुत्र को त्याग कर कहां जावोगे कुछ समय तक नेत्रों से जल बहावो और प्रीति से देखो इसप्रकार की चित्तरोचकता अधिक करके उस मनुष्य को त्यागना कठिन है जोकि सुख से भ्रष्ट और प्यारी वस्तुवों समेत श्मशानभूमि में वर्तमान हो, जिस स्थान पर बान्धव वर्तमान होते हैं वहां दूसरा कोई नहीं ठहरसक्ता है प्राण सब को प्यारे हैं और सब प्रीति को जानते हैं-तिर्यग्योनि के जीवों में भी सत्पुरुषों की प्रीति जैसी होती है उसको भी देखो ऐसे कमलमुख कोमल बालक को छोड़कर तुम कैसे घर को जाते हो जैसे कि हाल के विवाह कियेहुये स्नानपूर्वक अलंकृत दूलह को यह शृगाल के वचन सुनकर वह सब भाई बन्धु उस मृतक बालक के लेने को लौटे तब गिद्ध बोला कि अरे निर्बुद्धिलोगो! तुम इस नीचबुद्धि शृगाल के बहकाने से क्यों लौटे आते हो और पंचभूतों से बने प्राणरहित काठरूप बालक को क्या शोचते हो तुम अपनी आत्मा को क्यों नहीं शोचते निश्चय करके उग्र तप करो जिससे पाप से छूटो तप से सब प्राप्त होसक्ता

है विलाप करने से क्या होगा सब अनिष्ट देह के साथही उत्पन्न हुयेहैं जिसके कारण यह बालक अत्यन्त दुःख देकर जाता है धन, गौ, रत्न और सन्तान भी तप से ही प्राप्त होते हैं और वह तप योग से प्राप्त होता है जिसप्रकार अपने कर्म से उत्पन्न होनेवाले सुख दुःख जीवों को प्राप्त होते हैं उसीप्रकार सब जीव सुख दुःखों को साथ लेकर उत्पन्न होता है पिता के कर्म से पुत्र और पुत्र के कर्म से पिता संयुक्त नहीं होता है सब अपने अच्छे बुरे कर्मों से बँधेहुये इस मार्ग होकर जाते हैं तुम युक्तिपूर्वक अधर्म को चित्त से दूर करके धर्म को करो और समय के अनुसार देवता और ब्राह्मणों में बर्ताव करो शोक और दुःख को त्याग करो और पुत्र के स्नेह से अलग होकर इसको आकाश में त्याग करके फिर शीघ्रता से लौटो जो पुरुष बुरे भले कर्म को करता है उसी को भोगता है इस में बान्धवों से क्या सम्बन्ध है बान्धवलोग यहां अपने प्यारे बान्धव को त्याग करके वर्तमान नहीं रहते हैं और अश्रुपात कर करके प्रीति को त्यागकर वह अपने २ घर को जाते हैं ज्ञानी या मूर्ख धनी वा निर्धन यह सब बुरे भले कर्म के द्वारा काल के वशीभूत होते हैं शोचने से क्या होगा और मृतक को क्या करोगे सबको बराबर देखनेवाला काल धर्म से सबका स्वामी है तरुण, वृद्ध, बालक आदि सब जीव कर्म में बँधेहुये मृत्यु के आधीन होते हैं यह संसार ऐसा है शृगाल ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि अल्पबुद्धि गिद्ध ने पुत्र के स्नेह में भरेहुये शोचग्रस्त तुम लोगों की प्रीति कम करदी जो यह समूह स्पष्ट विश्वासित और अच्छेप्रकार से कहेहुये वचनों से कठिन प्रीति को त्यागकर जाता है और दुःख का स्थान है कि पुत्र का वियोग और श्मशान के सेवन से पुकारनेवाले आदमियों का ऐसा बड़ा दुःख है जैसे कि बछड़ों के वियोग होने से गौवोंको दुःख होता है अब मैं पृथ्वी के मनुष्यों के शोक को खूब जानता हूं प्रीति के कारण मेरे भी अश्रुपात हुये उद्योग सदैव करना चाहिये फिर वह दैव के योग से सफल होता है प्रारब्ध और उद्योग दोनों दैव के द्वारा प्राप्त होते हैं सदैव प्रीति करना चाहिये विना प्रीति के सुख नहीं होता अर्थ की सिद्धि बड़े उद्योग से होती है तुम क्यों निर्दयी के समान जाते हो अपने वीर्य से उत्पन्न आत्मारूप पितरों का वंश पैदा करनेवाले पुत्र को वन में छोड़कर कहां जाते हो तुम सूर्यास्त के समय पुत्र को ले जावोगे या यहां पर वर्तमान होगे फिर गिद्ध बोला हे मनुष्यो ! अब मेरी अवस्था हज़ार वर्ष से अधिक व्यतीत हुई मैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक किसी को जीता नहीं देखता हूं मृतक जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं और जन्म लेते ही मरजाते हैं और इधर उधर घूमतेहुये भी मरजाते हैं इसीप्रकार तरुण, वृद्धावस्था में भी मरते हैं इस लोक में पशु पक्षी जड़ चेतन जीव और पहाड़ों के भी प्रारब्ध नाशवान् हैं क्योंकि अवस्था आगे नियत होती है प्यारी स्त्री से वियोग और पुत्र के शोक

से संयुक्त दुःखी मनुष्य सदैव शोक करते घर को गये हज़ारों इष्ट, मित्र, शत्रु, प्यारे, कुप्यारे लोगों को बान्धवलोग यहां छोड़कर चलेगये इस काष्ठतुल्य मृतक पुत्र को तुम त्याग करो यह मृतकरूप जीव दूसरी देह में पहुँच गया इस कारणसे इस निर्जीव को छोड़कर नहीं जाते हौ यह प्रीति निरर्थक है और परिश्रम निष्फल है यह न आंखों से देखता न कानों से सुनता है क्यों नहीं इसको त्याग करके जल्दी घर को जाते हो मोक्षधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले कारणयुक्त मेरे कठिन वचनों से समझाये तुम अपने २ घर को चलेजावो हे मनुष्यो ! निश्चय ज्ञान विज्ञान से संयुक्त सलाह को सुनकर लौट जावो बालक को देखकर और चरित्रों को शोचकर शोक दूना होजाता है इस वचन को सुनकर सब मनुष्य लौटे तब शृगाल ने शीघ्रही आकर उस पड़ेहुये बालक को देखा और मनुष्यों से कहा कि तुम गिद्ध के वचन से इस सुवर्णवर्ण भूषणों से अलंकृत पितरों के पिण्ड देनेवाले पुत्र को क्यों त्यागे जाते हो, प्रीति शोक से अलग नहीं है निश्चय इस मृतक के त्याग से तुमको खेद होगा सुनते हैं कि शम्बुक शूद्र के मरने पर ब्राह्मण का बालक धर्म को पाकर सच्चे पराक्रमी रामजी से जिलाया गया उसीप्रकार से राजर्षि श्वेत का पुत्र मृत्युवश हुआ फिर इस बालक को धर्मनिष्ठ श्वेत ने जिलाया उसीप्रकार कोई देव मुनि सिद्ध हो और शोचग्रस्त तुम लोगों पर करुणा करे तो यह भी बचे इसप्रकार से कहेहुये शोक से पीड़ित पुत्र पर प्यार करनेवाले वह सब लोग लौटे और अपनी गोदी में बालक का शिर रखकर बड़ा भारी विलाप किया उनकी विलापयुक्त वाणी को सुनकर गिद्ध ने कहा कि अश्रुपात से भीजा देह हाथ के छूने से घायल और धर्मराज के प्रयोग से बड़ेभारी स्वप्न में प्रवृत्त कियेगये तप से भरेहुये धनी महाबुद्धिमान् सब मनुष्य मृत्यु के आधीन होते हैं यह वह मृतकों का नगर है जहां बान्धवलोग सदैव हज़ारों बालक और वृद्धों को त्याग करके पृथ्वी पर अहर्निश दुःख भोगते रहते हैं हठ को छोड़ चित्त से शोक को दूर करो अब इसका जीवन कैसे होसक्ता है मृतक और देह के त्यागनेवालों का फिर देह नहीं वर्तमान होता है सैकड़ों शृगाल की मूर्तियों के देने से भी यह बालक सैकड़ों वर्ष तक भी जिलाना असम्भव है जो ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द आदि में से कोई इसको वरदान दें तो यह बालक जीवे और आप के इस रोदन के अश्रुपातों से नहीं जीसकेगा मैं तुम बान्धव शृगाल आदि जितने हैं वह सब धर्म अधर्म को साथ लेकर यहां इस मार्ग में वर्तमान हैं अप्रिय मनुष्य दूसरे की स्त्री और जीवों की शत्रुता अधर्म मिथ्या इत्यादि बातों को ज्ञानी पुरुष त्याग करे तुम धर्म की सत्यता और न्यायशास्त्र के अनुसार गुण और जीवों पर बड़ी दया और निश्छलता को युक्ति से निश्चय करो, जो पुरुष माता पिता बान्धव सुहृद आदि को जीवता नहीं

देखते हैं उनके धर्म में विपरीतता है, जो बालक नेत्रों से नहीं देखता है और किसीप्रकार की अंगचेष्टा भी नहीं करता है उस की अवस्था पूर्ण होजाने में तुम शोक करके क्या करोगे यह सुनकर शोच में डूबे हुये वह बान्धव बालक को पृथ्वी में छोड़कर घर को चले शृगाल बोला कि सब जीवों का नाश करनेवाला यह नरलोक भय उत्पादक और कठिनता से क्षमा किया जाता है यहां जैसे सुहृद् बान्धव आदि से वियोग है उसीप्रकार जीवन भी थोड़ा है बहुत से कुप्यारे जो परोक्ष में निन्दा और अप्रिय बोलनेवाले दुःख और शोक के बढ़ानेवाले पुरुषों से संयुक्त इस प्रकट संसार को देखकर यह नरलोक एक मुहूर्त भी मुझ को अच्छा नहीं लगता है तुम सरीखे अज्ञान लोगों को धिक्कार है जो गिद्ध के कहने से पुत्र से निर्मोही होकर घर को जाते हो हे शोकयुक्त मनुष्यो ! लौटो इस पापी गिद्ध के अशुद्ध वचनों को सुनकर क्यों जाते हो सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख है यहां सुख दुःख से संयुक्त इस संसार में एक बात बराबर नहीं होती है अज्ञानियो ! इस कुल के शोभा देनेवाले स्वरूपवान् बालक को छोड़कर कहां जाते हो मैं इस रूपवान् तरुणतायुक्त बालक को निस्सन्देह चित्त से जीवता देखता हूं हे मनुष्यो ! इसका नाश नहीं है निश्चय तुम इसको आनन्द से पावोगे अब बालक के शोक से दुःखी मृतक के समान आप लोगों को जाना उचित नहीं है सुखको प्राप्त करके और धारण करके निर्बुद्धियों के समान पुत्र को त्यागकर कहां जावोगे-भीष्मजी बोले कि हे राजन्! इसप्रकार शृगाल के अमृतरूपी वचनों को सुनकर उन सब बान्धवों ने मध्य के बसेरे को पाया और अपने प्रयोजन के निमित्त उसके पास वर्तमान हुये गिद्ध बोला कि यह श्मशानभूमि प्रेत यक्ष राक्षसों से व्याप्त भयकारी नौला आदि जीवों से शब्दायमान भयानक घोरसूरत नीले बादल के समान प्रभायुक्त इसमें मृतक को त्याग करके प्रेतक्रिया में प्रवृत्त हो जबतक सूर्य अस्त नहीं होता है तबतक सब ओर के मार्ग साफ़ हैं इससे इसी शुद्धमार्ग में प्रेतक्रिया को करो बाज़ पक्षी कठोर शब्द करते हैं और भयकारी शृगाल बोलते हैं मृगेन्द्र प्रसन्न होते हैं और सूर्य अस्ताचल को जाता है चिता के नीले धुवें से वृक्ष रंगीन होते हैं, श्मशानभूमि में निराहार देवता गर्जते हैं इस भयानकरूप देश में भस्म से भरेहुये देह और कुरूप से रुधिरभक्षी राक्षस तुमको रात्रि में डरावेंगे यह कठिनस्थान है इसमें अब भय उत्पन्न होगा इस काठरूप बालक को त्यागो और शृगाल के वचनों को विचारो, जो तुम शृगाल के निष्फल और मिथ्यावचनों को सुनोगे तो बेहोश होकर नाश को पावोगे-शृगाल बोला ठहरो यहां डरना न चाहिये जबतक सूर्य का उदय है तबतक इस प्यारे पुत्र में अप्रीति नहीं करना योग्य है तुम विश्वास करके कुछ समय तक देखो जबतक सूर्य है तबतक कच्चे

मांसभक्षी गिद्ध से तुम को क्या प्रयोजन है जो तुम गिद्ध के वचनों पर विश्वास करोगे तो तुम्हारा पुत्र नहीं जीवेगा फिर गिद्ध ने कहा कि सूर्यास्त हुआ शृगाल ने कहा नहीं हे राजन्! अपने काम में प्रवृत्त वह दोनों गिद्ध और शृगाल भूख प्यास से थकेहुये शास्त्र का सहारा लेकर चुप होगये-विज्ञानी और पण्डित लोग उन गिद्ध और शृगाल के अमृतरूपी वचनों से चलते थे और ठहरजाते थे फिर शोक में भरेहुये वह सब लोग ठहरगये और उन दोनों चतुरों की चतुराई से वह सब काम करनेलगे तदनन्तर वादी प्रतिवादी गिद्ध और शृगाल और उन मनुष्यों के सम्मुख श्रीमहादेवजी ने आकर दर्शन दिया और सबसे कहा कि मैं वर का देनेवाला हूं तब सबने हाथ जोड़के कहा कि आप हमारे इकलौते पुत्र को जीवदान दीजिये तब शिवजी ने जल से पूर्ण नेत्रों समेत उस बालक की सौ वर्ष की उमर करदी उसीप्रकार सब के उपकारी शिवजी ने शृगाल और गिद्ध को भूख के नाश करने का वरदान दिया और वह लोग लड़के को जीवदान कराके बड़ी प्रसन्नतापूर्वक श्रीशंकरजी को नमस्कार करके घर को गये तात्पर्य यह है कि बड़ी प्रीतिपूर्वक पूर्णनिश्चय से और देवों के देव शंकरजी की प्रसन्नता से शीघ्रही फल प्राप्त होता है-दैवसंयोग और बान्धवों के निश्चय को देखो और दुःखी भूखे प्यासे मनुष्यों के अश्रुपात का साफ़ होना देखो थोड़े ही समय में बड़े निश्चय को करके शोक से दुःखी मनुष्यों ने महादेवजी की प्रसन्नता से बड़ेभारी सुखरूप कल्याण को पाया जो इस अध्याय को चित्त से सुनता है उसको इसीप्रकार के अनेक कल्याण होते हैं ॥ १२२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेत्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! जो निर्बल मिथ्यावादी असावधान मनुष्य हैं वह अपनी अज्ञानता से अयोग्य वचनों के द्वारा सदैव सम्मुख वर्तमान नेकी बदी करने में समर्थ उद्युक्त शत्रु के साथ विरोध करके अपने बल के घमंड से क्रोधयुक्त सम्मुख आनेवाले शत्रु के उखाड़ने की इच्छा से कैसे कर्म करे भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में शाल्मली वृक्ष और हवा का संवाद है-हिमालय पर्वतपर एक शाल्मली का बहुत बड़ा वृक्ष था जिसकी बड़ी २ शाखाओं में अनेक उपशाखा थीं वहां धूप से पीड़ित थकेहुये मतवाले हाथी और अनेक प्रकार के पशुजीव निवास करते थे उसकी मुटाई दोसौ गज़ की बड़ी छायावाला तोता मैना आदि पक्षियों से शब्दायमान फल पुष्प युक्त था दैवयोग से उस उत्तम वृक्ष के नीचे वनवासी व्यापारियों का समूह और विदेशी तपस्वी इकट्ठे हुये थे वहां

नारदजी ने आकर उस वृक्ष से कहा कि आश्चर्य है कि तुम चित्तरोचक क्रीड़ा के योग्य हो हे शाल्मले, वृक्ष! हम तुझसे सदैव प्रसन्न रहते हैं और तेरी छाया में बड़े २ मतवाले हाथी आदि अनेक वन के पशु आनन्द से विश्राम लेते हैं और तेरी शाखाओं को मैं किसीप्रकार के वायु से टूटता नहीं देखता क्या वायु तुम्हारा मित्र है और तुझपर प्रसन्न है जिससे कोई तुम्हारा बिगाड़ नहीं करता तीक्ष्ण वायु सैकड़ों बड़े २ वृक्ष और पर्वतों के शिखर और अनेक स्थानों को अपने २ स्थानों से हटादेता है अतिसुगन्धित पवित्र वायु देवता, पाताल, सरोवर, नदी और सागरों को प्रसन्न करता है वायु देवता तुम को मित्रता से रक्षा करते हैं इसी से तुम फलपुष्पयुक्त भी रहते हो और तेरी सुन्दर शाखाओं में यह प्रसन्नचित्त पक्षी कल्लोलें करते हैं इन सब पक्षियों के शब्द ऋतु २ के अनुसार मीठे और मनभावने सुनाई देते हैं और इसीप्रकार यह मतवाले गर्जनेवाले हाथी आदि जीव भी तेरे आश्रम में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं तुम इन सब बातों से सुमेरुपर्वत के समान शोभा देरहे हो तप से सिद्ध तपस्वी और भिक्षुक ब्राह्मणों के द्वारा तुझ को स्वर्ग के समान मानता हूं ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

हे शाल्मले! भयकारी सर्वव्यापी वायु देवता बिरादरी के नाते से या मित्रता से तुम्हारी सदैव रक्षा करते हैं इससे हे वृक्ष! तुम वायु देवता के दास हो और मैं तेरा हूं ऐसा सदैव दीनवचन कहते हो इसी से वायु देवता तुम्हारी रक्षा करते हैं मैं ऐसा कोई वृक्ष पर्वत स्थान पृथ्वी पर नहीं देखता हूं जो वायु से पीड़ित न हो शाल्मली बोला हे ब्राह्मण! वायु न मेरा मित्र है न बन्धु है और न मेरा शुभचिन्तक है इसीप्रकार ईश्वर भी नहीं है जो सब की रक्षा करता है हे नारदजी! मेरा और वायु का तेज बल कठिनता से सहने के योग्य है वायु देवता पराक्रम में मेरे अठारहवीं कला के भी समान नहीं हैं वह पवन वृक्ष पर्वत स्थानों को तोड़ता हुआ मेरेही बल से रोकागया है वायु देवता को बहुधा मैंने पराजय किया इससे हे नारदजी! मैं क्रोधयुक्त वायु से भी नहीं डरता हूं नारद जी बोले कि हे शाल्मले! यह तेरा समझना मिथ्या है क्योंकि पवन के समान कोई जीव पराक्रमी नहीं है इन्द्र, वरुण, यमराज, कुबेर यह भी बल में वायु देवता के समान नहीं हैं तो तुम कैसे होसक्ते हो और इस पृथ्वीपर जो कोई जीव चेष्टा करता है वह सब चेष्टा करनेवाले वायु देवता ही हैं यही देवता सब में व्याप्त होकर जीवमात्रों को चेष्टा कराता है और विपरीत से व्याप्त होकर विपरीत चेष्टा भी करादेता है सो तुम ऐसे पराक्रमी देवता का पूजन नहीं करते हो इस से यह

बुरी बात है जो स्वाभाविक गुण से रहित है और शास्त्र की जाननेवाली मेधा बुद्धि जिसकी नष्ट है वह बड़ी बकवाद करता है और क्रोध आदि से आच्छादित निष्प्रयोजन बात करता है तेरे ऐसे वचनों से मुझ को क्रोध उत्पन्न हुआ मैं तेरे खोटे वचनों को वायु देवता से कहूंगा हे दुर्बुद्धे ! चन्दन, स्यन्दन, शाल सरल, देवदारु, बेत, धन्वन आदि अनेक पराक्रमी और ज्ञानी वृक्ष हैं वह सब भी वायु देवता की ऐसी निन्दा नहीं करसके वे सब वायु देवता के और अपने बल को जानते हैं इससे वह बड़े २ उत्तम वृक्ष भी वायु देवता को नमस्कार किया करते हैं तुम अपने मोह से वायु देवता के अत्यन्त पराक्रम को नहीं जानते हो जो यह बात ऐसेही है तो वायु देवता के सम्मुख जाऊंगा ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र ! ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी ने शाल्मली से ऐसा कहकर उसकी सब बातों को वायु से कहा कि हिमालय के ऊपर एक शाल्मली वृक्ष है वह बड़ी जड़ और छाया रखनेवाला है वह तुम्हारा अपमान करता है उसने बड़ी निन्दा के वचन जो तुम को कहे हैं वह मैं तुम्हारे आगे कह नहीं सक्ता हे वायु देवता ! मैं तुम को सब देव दानव राक्षसों से भी बड़ा पराक्रमी और क्रोध में यमराज से भी अधिक जानता हूं यह नारद के वचन सुनतेही वायु देवता क्रोधयुक्त हो उस शाल्मली से जाकर यह वचन बोले हे शाल्मले ! तैंने नारदजी से मेरी निन्दा की है मैं अपना पराक्रम तुझ को दिखलाऊंगा और जो ब्रह्मांजी ने तेरे नीचे विश्राम किया उसी विश्राम करने से यह मेरी कृपा तेरे ऊपर है हे दुर्बुद्धे ! इसी कारण से बचा हुआ है तू अपने पराक्रम से नहीं बचा है जो तू मुझ को दूसरे प्राकृत जीवों के समान जानता है मैं अपनी आत्मा को दिखाता हूं जिससे तू कभी मेरी निन्दा न करेगा तब शाल्मली ने हँसकर उत्तर दिया कि हे वायु देवता ! तुम अपना पूरा पराक्रम मुझ को दिखावो मुझ पर क्रोध मतकरो और जो क्रोध करोगे तो मेरा क्या करसक्ते हो हे वायु ! यद्यपि आप समर्थ हैं परन्तु मैं आप से कभी नहीं डरता मैं तुम से पराक्रम में अधिक हूं इससे तेरा भय मुझ को ज़रा भी नहीं है क्योंकि जो बुद्धि के बली हैं वही पराक्रमी होते हैं जो देह से ही बलिष्ठ हैं वह बली नहीं समझेजाते हैं यह वचन शाल्मली से सुनकर वायु ने कहा कि मैं कल अपना बल तुझ को दिखाऊंगा तदनन्तर रात्रि वर्तमान हुई और वायु के समान अपने को न जानकर शाल्मली ने ध्यान करके कहा कि मैंने नारदजी से जो २ वचन कहे वह सब मिथ्या हैं मैं वायु से निर्बल हूं वही पराक्रमी है निश्चय करके जैसा कि

नारदजी ने कहा है सो ठीक है अर्थात् वायु देवता बड़े बलवान् हैं और मैं निस्सन्देह दूसरे वृक्षों से भी निर्बल हूं सो मैं बुद्धि में नियत होकर वायु से अपने भय को दूर करूंगा जो वन के वृक्ष भी उस बुद्धि में नियत होकर ठहरें वह भी सदैव वायु के कोप से बचेंगे इस में सन्देह नहीं है परन्तु वह अज्ञानी इसको नहीं जानते हैं इसी से क्रोध भरा वायु इन वृक्षों को हिलाता है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस शाल्मली वृक्ष ने व्याकुल होकर अपनी छोटी बड़ी शाखा और गुद्दों को अपने आप गिरादिया सब फल पुष्प और शाखा आदि के दूर करनेवाले शाल्मली ने प्रातःकाल के समय आनेवाले वायु देवता को देखा कि श्वासों से बड़े २ वृक्षों को गिरातेहुये क्रोधाग्नि में भरेहुये उस स्थान में आये जहांपर कि वह शाल्मली वृक्ष था उस के फल पुष्प और शाखाओं को गिराहुआ देखकर बड़े प्रसन्नचित्त मन्द मुसुकान से यह वचन बोले कि हे शाल्मले! मैं भी क्रोध से तुम को ऐसाही करनेवाला था तुम ने आप शाखाओं के दूरकरने से अपने को दुःख में डाला अपने बुरेविचार से फूल, फल, शाखाओं से रहित सूखे गिरेहुये तुम मेरे पराक्रम के आधीन कियेगये तब शाल्मली महालज्जायुक्त होकर नारदजी ने जो कहा उस वचन को स्मरण करके महादुःखित हुआ हे राजेन्द्र! इसीप्रकार अज्ञानी राजा भी निर्बल होकर बलवानों से जो विरोध करता है वह शाल्मली वृक्ष के समान दुःखी और लज्जायुक्त होता है इस कारण निर्बल राजा पराक्रमी राजा से विरोध ऐसा न करे जैसा कि शाल्मली ने वायु से किया-हे महाराज! महात्मा लोग दुष्टता करनेवालों पर शत्रुता प्रकट नहीं करते हैं और धीरे २ अपने पुरुषार्थ को दिखलाते हैं-दुर्बुद्धि मनुष्य बुद्धि से जीवन करनेवाले मनुष्य से शत्रुता न करे क्योंकि उसकी बुद्धि ऐसे प्रवेश करजाती है जिसप्रकार घास में अग्नि-हे राजन्! जैसे पुरुषों में बुद्धि के समान कोई वस्तु नहीं है इसीप्रकार इस लोक में बल के समान कोई नहीं है इसी हेतु से बालक, विक्षिप्त, अन्धे, बहिरे और अपने से अधिक बलवान् से क्षमा करे हे युधिष्ठिर! वह बात मैं तुझ में देखता हूं हे राजेन्द्र! युद्ध प्रवृत्त होनेपर ग्यारह अक्षौहिणी सेना पराक्रम में महात्मा अर्जुन के समान न हुई सब सेना के योद्धा पराक्रम में नियत होकर युद्ध में घूमनेवाले इन्द्र के पुत्र यशस्वी अर्जुन के हाथ से मारेगये और पराजय दियेगये-हे राजन्! यह राजधर्म और आपद्धर्म ब्यौरेसमेत तुम से कहे अब और क्या सुना चाहते हो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम, पितामह! पाप का जो नियत स्थान है और जिससे पाप जारी होता है मैं उसको व्यौरे समेत सुना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र! पाप के रहने के स्थान को सुनो केवल लोभ ही बड़ा ग्राह है लोभही से पाप जारी होता है इसी से पाप अधर्म और महादुःख प्राप्त होता है जिस लोभ से मनुष्य पाप करते हैं वही छल का मूल है लोभ से ही क्रोध होता है और उसी से काम जारी होता है लोभ से ही मोह छल अपमान और पराधीनता प्राप्त होती है अधैर्यता, निर्लज्जता, धनक्षय, धर्मनाश, अपकीर्ति, चिन्ता आदि भी लोभ ही से जारी होते हैं-त्याग न करना, अत्यन्त तृष्णा और विपरीतकर्मों में जो २ बातें होती हैं यह सब और कुल विद्या का अहंकार और रूप वा ऐश्वर्य का मद, सब जीवों से शत्रुता और उनका अपमान अविश्वस्तता, कुटिलता, परधन का हरना, दूसरे की स्त्री से सम्भोग करना, वचनवेग, चित्त का वेग, निन्दा का वेग, उपस्थ इन्द्रिय और उदर का वेग, मृत्यु का भयानक वेग, ईर्षा का बलिष्ठ वेग, दुःख से विजय होनेवाला हत्या का वेग, दुःख से हटाने योग्य रिस का वेग, असह्य कानों का वेग, निन्दा, अपनी हीनता, मित्रता और पाप दुःख से प्राप्त होनेवाला व्याज इसी प्रकार विना विचारे होनेवाली सब कार्यों की क्रिया यह सब लोभ से उत्पन्न हैं, बालअवस्था, कुमारअवस्था और तरुणअवस्थावाले पुरुष भी अपने कर्म को नहीं त्याग करते हैं हे राजन्! यह लोभ वृद्ध से वृद्ध पुरुष का भी कम नहीं होता है और प्रतिदिन के लोभ से भी ऐसे पूर्ण नहीं होता जैसे महागम्भीर नदियों के जल से समुद्र नहीं अघाता जो लोभ से प्रसन्न और काम से तृप्त नहीं होता है, वह भी उसी के समान है, हे राजन्! जो देवता, गन्धर्व, असुर, महासर्प और सब जीवों के समूहों से मुख्यता के साथ नहीं जानाजाता है वह लोभ मोह समेत जितेन्द्रिय मनुष्य से विजय करने के योग्य है-हे राजन्! कपट, शत्रुता, निन्दा, दुष्टभाव, मित्रता यह अवगुण अशुद्ध अन्तःकरणवाले लोभियों के होते हैं बड़े ज्ञानी पुरुष बहुत बड़े शास्त्रों को भी धारण करते हैं और सन्देहों को भी दूर करनेवाले होते हैं और जो निर्बुद्धि हैं वह दुःख को प्राप्त होते हैं शत्रुता और क्रोध से भरे हुये उत्तम पुरुषों के आचार से रहित अन्तःकरण से निर्दयी प्रत्यक्ष में मृदुभाषी तृणों से ढकेहुये कूपों के समान धर्म के छल से दूसरों को मारनेवाले धर्मध्वजा रखनेवाले नीच मनुष्य जगत् को ठगते हैं, धर्म अधर्म से दूसरों को प्रसन्न करनेवाले हेतुबल में प्रवृत्त पुरुष इन बहुत से मार्गों को उत्पन्न करते हैं और लोभ ज्ञान में नियत होकर सत्पुरुषों के मार्गों को नाश

करते हैं-दुरात्मा लोभियों से हरेहुये धर्म की जो २ मर्यादा भिन्न २ होती हैं वह भी इसीप्रकार से प्रसिद्ध होती हैं, हे राजन्! अहंकार, क्रोध, धन आदि का मद, निद्रा, प्रसन्नता, शोक यह सब दुष्ट गुण लोभी मनुष्य में दृष्टि आते हैं तुम इनको सदैव लोभ से भरेहुये नीच जानो और जिन्हों में संसार के आवागमन का भय नहीं है और परलोक की चिन्ता नहीं है और प्रिय अप्रिय विषयों में जिन का चित्त नहीं है और सदैव शिष्टाचार में प्रवृत्त हैं और प्रत्यक्ष में शान्तचित्त हैं और सुख दुःख को समान जानते हैं और उच्चस्थानी और दानी हैं और किसी से प्रतिग्रह को नहीं लेते और दयावान् होकर पितृ, देवता और अतिथियों के पूजन में सदैव सावधान हैं वह वीर सबके उपकारी धर्मरक्षक जीवमात्र के हितकारी प्राण तक देनेवाले हैं वह धर्मव्यापार करनेवाले मार्ग से भी हटाने के योग्य नहीं हैं उनका वह चलन कभी नष्ट नहीं होता है जोकि पहिले साधुवों से चलाया हुआ है-जो पुरुष भय का उत्पन्न करनेवाला नहीं है और चपलता, रुद्रता से रहित सतमार्ग में वर्तमान हैं और अहिंसाही परमधर्म है ऐसे मनुष्य सदैव साधुवों से सेवनयोग्य हैं, जो काम क्रोध से रहित ममता अहंकार आदि से पृथक् सुन्दर व्रत और मर्यादाओं में वर्तमान हैं उन्हों की उपासना करके धर्म को पूछो, हे राजन्! उनका धर्म धन के और कीर्ति के निमित्त नहीं है किन्तु देह की भोजनादि सब क्रिया करने के योग्य हैं ऐसा समझकर करतेहैं उन में भय, क्रोध, चपलता, शोक आदि अवगुण नहीं हैं और धर्मध्वजी भी नहीं हैं न किसी पाखण्डकर्म में प्रवृत्त हैं, लोभ मोहादिक से रहित सत्य कहनेवाले हैं उनसे मिलाप करो ऐसे पुरुषों का चलन कभी भ्रष्ट नहींहोता है-जो पुरुष हानि, लाभ होने में शोक, हर्ष नहीं करते और ममता अहंकाररहित सतोगुण में वर्तमान समदर्शी हैं उन दृढ़पराक्रमी सतोगुणी पुरुषों को हानि, लाभ, सुख, दुःख, प्रिय, अप्रिय, जीवन, मरण सब बराबर हैं, तुम जितेन्द्रिय सावधान धर्म के प्यारे होकर बड़े २ महानुभावों का पूजन करो पूर्व के अच्छे संस्कारियों से सब कर्म कल्याणकारी होते हैं और अज्ञानियोंके सब कर्म अशुभदायक होते हैं॥ २५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

उन्तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आप ने अनर्थों का उत्पत्तिस्थान वर्णन किया अब ज्ञान को भी यथायोग्य सुना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि जो अज्ञान से पाप को करता है और अपने नाश को नहीं जानता है और श्रेष्ठकर्मी पुरुषों से शत्रुता करता है वह संसार में वर्तमान होकर निन्दा को पाता है और मोह से नरक और दुर्गति को प्राप्त होता है और दुःख से पीड़ित आपत्तियों में

डूबजाता है युधिष्ठिर ने कहा कि मैं अज्ञान की प्रवृत्ति, स्थान, वृद्धि, हानि, उदय, मूलयाग, गति, काल, कारण, हेतु इत्यादि को ब्यौरेसमेत सुना चाहता हूं और जो दुःख प्राप्त होता है वह अज्ञान से होता है-भीष्मजी बोले कि प्रीति, विरोध, मोह, हर्ष, शोक, अहंकार, काम, क्रोध, अपमान, सुस्ती, आलस्य, इच्छा अनिच्छा, कष्ट अन्य की वृद्धि में दुःखपाना यही अज्ञान है अर्थात् यह अज्ञान केही रूप हैं-पापियों की जो हिंसाआदि किया हैं वह पापरूप हैं इस जारी होने वाले पाप की जिन वृद्धि आदि को तुम पूछते हो उसको ब्यौरे समेत कहता हूं कि यह दोनों अज्ञान और लोभ एकसा दोष और फल देनेवाले हैं इससे दोनों समान हैं लोभ से अज्ञान प्रकट होता है और पापकर्म से लोभ की वृद्धि होती है, समानता में समान और न्यूनता में न्यून होता है उदय में उदय होकर नाना प्रकार की गतियों को प्राप्त करता है अब सातवें प्रश्न का उत्तर कहते हैं कि अज्ञानरूप लोभ की जड़ मोह है और योग्यायोग्य के विचारकर्म के निश्चय से मोहसंयोगी अज्ञानयोग है और कालात्मा रूप से अज्ञान की गति है इसीप्रकार लोभ के घटने और वृद्ध होने से कारण और काल होता है उस कारण के ज्ञान से लोभ प्रकट होता है और लोभ से अज्ञान उत्पन्न होता है इसीप्रकार लोभही से सब दोष प्रकट होते हैं इस निमित्त लोभ को अत्यन्त त्याग करे-राजा जनक, युवनाश्व, वृषदर्भ और प्रसेनजित लोभ के ही नाश से स्वर्ग को गये इसीप्रकार अन्य बहुत से राजा भी वैकुण्ठवासी हुये इससे हे कौरवेन्द्र! तुम यह प्रत्यक्ष होकर लोभ को त्याग करोगे तो इस लोक परलोक दोनों में आनन्द पूर्वक विचरोगे ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे धर्मात्मन्, पितामह! वेदपाठ और जप के उद्योग करने वाले इच्छावान् पुरुष का इस लोक में क्या कल्याण होताहै और नानारूप धारण करनेवाले इस संसार में कल्याण को मानते हैं और यहां वहां जो कल्याण है उसको भी मुझ से कहिये और यह बड़ा धर्ममार्ग बहुत शाखावाला है उसकी जो बड़ी जड़ है उसको भी ब्यौरे समेत कहो भीष्मजी बोले कि बहुत अच्छा इसको भी कहता हूं जिससे कि तेरा कल्याण होगा, जैसे कि प्राणी अमृत का पान करके तृप्त होता है उसीप्रकार तू भी ज्ञान से तृप्त होगा देखो महर्षियों की कही हुई धर्म की बहुत सी रीतियां हैं वह लोग अपने २ विज्ञान से वर्तमान होकर परमकाष्ठाओं को करते हैं निश्चय करके देखनेवाले महात्माओं ने प्रत्यक्ष शान्तचित्त को कल्याणकारी कहा है मुख्य करके ब्राह्मण का प्रत्यक्ष में शान्त

चित्त होना सनातनधर्म है शान्तचित्त होने से उसके कर्म की सफलता अच्छे प्रकार से होती है शान्तचित्त होने से तेज की वृद्धि और अत्यन्त पवित्रता होती है पापरहित तेजयुक्त पुरुष मोक्ष को पाता है शान्तचित्त से बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं है यह चित्त की शान्तता लोक में उत्तम और सब धर्मों में श्रेष्ठ है हे राजन् ! प्रत्यक्ष शान्तचित्त होने से बड़ा फल पाता है अर्थात् इस लोक और परलोक में बड़े सुख को पाता है शान्तचित्त मनुष्य सुख से सोता जागता लोकों में घूमता चित्त से प्रसन्न और साफ़ रहता है और जो पुरुष शान्तचित्त नहीं है वह सदैव दुःख को पाता है और अपने दोषों से बहुत से अनर्थ करता है चारो आश्रमों में प्रत्यक्ष शान्तचित्त को ही उत्तम व्रत कहते हैं अब उसके चिह्न कहता हूं जिन पुरुषों की चित्त की शान्तता अच्छे प्रकार से उदय होनेवाली है उनमें धैर्यता, क्षमा, अहिंसा, समानदृष्टि, सत्यता, शुद्धभाव, इन्द्रियनिग्रह, चातुर्यता, मृदुता, लज्जा, अचपलता, उदारता, अक्रोधता, सन्तोष, प्रियवचन, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, गुरुपूजन और जीवों पर दया, दुष्टमनुष्यों से निर्विवादता, प्रशंसा, निन्दा आदि का त्याग यह सब बातें भी होती हैं और काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, दुष्टता, ईर्षा, अभिमान आदि बुरे गुण भी उनमें कभी नहीं होते हैं इच्छारहित, अविनाशी, प्रशंसनीय, सुखों से तृप्त न होनेवाला और अन्य के गुण में जो दोष नहीं लगानेवाला पुरुष है वह समुद्र के समान किसीप्रकार से तृप्त नहीं होता है मैं तुझ में प्रीति रखता हूं तुम मेरे हो और मुझ में प्रीति रखते हो उसीप्रकार मैं भी उनमें स्नेह रखता हूं यह सब बातें और पहिली नातेदारी का संयोग इत्यादि बातों को जितेन्द्रिय नहीं सेवन करता है लोक में जो नगर और वन से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं उनको और निन्दा स्तुति को जो पुरुष काममें नहीं लाता है वह मुक्त होता है, जो पुरुष सब के मित्र सुन्दर प्रकृति शुद्धचित्त और ब्रह्मज्ञानी हैं वह अनेक प्रकार के दुस्संगों से रहित होकर स्वर्ग में बड़े फल को पाते हैं श्रेष्ठचलन, सुप्रकृति, शुद्धचित्त, आत्मज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष इस लोक में सत्कार को पाकर परलोक में परमगति को पाता है इस लोक में जो शुभकर्म हैं और सत्पुरुषों से किये गये हैं वह ज्ञान से भरे हुये मुनियों के मार्ग स्वाभाविक सिद्ध होते हैं जो घर से निकलकर वन में वर्तमान होकर ज्ञानसंयुक्त जितेन्द्रिय काल को देखता विचरता है वह ब्रह्मज्ञान के जानने को समर्थ होता है जो जीवों से निर्भय है और उससे जीव निर्भय हैं उस देह से निरभिमानी पुरुष को कहीं भय नहीं होता जो कर्मों को भोगों के करने से नाश करता है और उनको संचय नहीं करता है वह सब जीवों में समदर्शी होकर जीवों को निर्भय दान करे उसका मोक्ष ऐसे गुप्त होता है जिसप्रकार आकाश में पक्षियों की

और जल में जलजीवों की गति नहीं मालूम होती है जो पुरुष घरों को त्याग कर मोक्ष को ही सेवन करता है उसके तेजरूप लोक बहुत दिनतक कल्पना किये जाते हैं, सब कर्मों को त्याग बुद्धि के अनुसार तप को विसर्जन कर नानाप्रकार की विद्याओं को त्याग सबको छोड़कर पवित्र इच्छावान् सब लोकों में जानेवाला अर्थात् माया के आवरण से पृथक् शुद्धचित्त आत्मज्ञानी अनिच्छावान् पुरुष इस लोक में सत्कार को पाकर स्वर्ग को प्राप्त करता है और जो ब्रह्माजी का स्थान ब्रह्मसमूह से उत्पन्न होनेवाला हृदयकमल में वर्तमान है उसको शान्तचित्त होकर प्राप्त करता है उस ब्रह्मज्ञान में वर्तमान ज्ञानी सब जीवों के प्यारे पुरुष को संसार के आवागमन का भय नहीं होता है तो परलोक का भय कैसे होगा शान्तचित्त होने में एक दोष के सिवाय दूसरा नहीं मालूम होता है वह एक दोष भी बड़े गुणवाला है सन्तोषी पुरुष को सन्तोष के प्रभाव से बड़े २ लोक भी सुगम हैं हे युधिष्ठिर ! जितेन्द्रिय पुरुष को वन से क्या प्रयोजन है उसीप्रकार अजितेन्द्रिय को भी क्या लाभ है जितेन्द्रिय जहां रहै वही वन और आश्रम है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इस वचन को सुनकर राजा युधिष्ठिर ऐसे प्रसन्न हुये जैसे कि अमृत से अच्छा तृप्तहुआ मनुष्य आनन्द को पाता है ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इन सबका मूल तप ही है पण्डितलोग ऐसा कहते हैं कि तप न करनेवाला अज्ञानी पुरुष क्रिया के फल को नहीं पाता है ब्रह्मा जी ने इस सब सृष्टि को तप से ही उत्पन्न किया है और ऋषियों ने भी तपसे ही वेदों को प्राप्त किया है तप से ही अन्न फल मूल हैं सिद्धलोग तप से ही तीनों लोकों को देखा करते हैं रोगों की नाशक औषधें और नाना प्रकार की क्रिया तप से ही सिद्ध होती हैं जो साधन है उसका भी मूलकारण तप है जो कुछ कि कठिनता से प्राप्त होता है वह सब भी तपही से होता है ऋषियों ने भी निस्सन्देह तपही से ऐश्वर्य को पाया है मद्यपान करनेवाला, भ्रूणहत्या करनेवाला, गुरु की शय्या पर सोनेवाला पुरुष अच्छे प्रकार के तपेहुये तप से पाप से निवृत्त होता है बहुत रूप रखनेवाले तप के द्वारा कर्म को करता हुआ निवृत्तमार्ग में वर्तमान पुरुष का तप अनशनव्रत से उत्तम नहीं है और अहिंसा, सत्यता, दान, जितेन्द्रिय आदि होकर अनशन करने से अधिक कोई व्रत नहीं है दान से अधिक कर्म नहीं है दान के समान कोई गति नहीं है तीनों वेदों से कोई उत्तम नहीं है संन्यास तपों में उत्तम तप है इस लोक में स्वर्ग और धर्म

की रक्षा के लिये इन्द्रियों की रक्षा करते हैं इस कारण अर्थ और धर्म में अनशन से उत्तम तप नहीं है ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और सब स्थावर जंगम जीव यह सब तप को ही उत्तम पद देनेवाला जानते हैं और तपही से सिद्ध होते हैं और देवता लोग भी तपही से सब के पूजनीय हुये, यह तप के आठ भाग रखनेवाले फल हैं तप और निश्चय से देवभाव भी प्राप्त होना सम्भव है ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ब्रह्मऋषि,पितृ, देवता आदि सब सत्यधर्म की प्रशंसा करते हैं आप उस सत्यधर्मको कहिये और सत्यका लक्षण और स्वरूप क्या है और कैसे प्राप्त होता है और सत्य को कैसे करके क्या होजाता है सोभी कृपा करके मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि चारों वर्ण के धर्मों का संकर अर्थात् मिलावट प्रशंसा के योग्य नहीं होता है परन्तु सब वर्णों में सत्यही अपने स्वरूपको कभी नहीं बदलता है सत्पुरुषों में भी सत्यही धर्म सनातन गिनाजाता है इससे सत्यही नमस्कार के योग्य परमगतिरूप है सत्यही धर्म तप योग और सनातन ब्रह्म है और सब सत्यही में वर्तमान है इससे सत्यही उत्तम युग है इस स्थान पर सत्यके ठीक २ आचारों को लक्षण समेत क्रमपूर्वक कहता हूं और जिसप्रकार से सत्य की प्राप्ति होती है उसको भी सुनो हे भरतवंशिन् ! सब लोकों में सत्य तेरह प्रकार का है अर्थात् सत्य, समता, दम, अमत्सरता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, श्रेष्ठता, धैर्यता, दया, अहिंसा यह तेरह सत्य के स्वरूप हैं और इन सत्य आदि शब्द के अर्थों को सुनो कि सत्य अविनाशी प्राचीन रूपान्तररहित है और सब धर्मों से अविरुद्ध होकर योग के द्वारा प्राप्त होता है इसीप्रकार इच्छा द्वेष आदि काम क्रोध को नाश करके प्रिय अप्रिय शत्रु आदि में जो समदृष्टि है उसको समता कहते हैं और सिवाय आत्मा के किसी दूसरे की इच्छा न करना गम्भीरता, धैर्यता, अभयता, रोगशमन यह दम के रूप हैं और ज्ञान से प्राप्त होता है और दान धर्म में जो शान्तचित्त है उसको अमत्सरता कहते हैं वह अमत्सरता सदैव सत्य में वर्तमान होने से प्राप्त होती है जो साधु सहने असहने की प्रिय अप्रियता को क्षमा करता है वह सत्यवक्ता होकर प्रतिष्ठाको पाता है जो बुद्धिमान् बड़े कल्याण को करता है और अप्रसन्न कभी नहीं होता सदैव शान्तता से बोलनेवाला और उदार है उसको धर्म से लज्जा प्राप्तहोती है जो धर्म अर्थ के लिये और लोकसंग्रह के लिये क्षमा करता है वह तितिक्षा और क्षान्ति कही जाती है और धैर्य से प्राप्त होती है जो स्नेह और विषयों का त्याग

है उसी रागद्वेषरहित पुरुष का त्याग कहाता है जो देहाभिमान और स्नेह से रहित पुरुष बड़ी युक्ति से कर्म को करता है वही जीवों की श्रेष्ठता है, सुख दुःख में रूपान्तर को नहीं पाना यही धृति कहाती है ऐश्वर्य का चाहनेवाला ज्ञानी उसका सदैव सेवन करे और क्षमावान् सत्यवक्ता पुरुष को तो सदैव प्राप्त करनी उचित है राग द्वेष और क्रोध से रहित पण्डित धृति को प्राप्त करता है मन वाणी कर्म से किसी जीवपर शत्रुता न करना और दानपूर्वक कृपा करना यह सत्पुरुषों का सनातनधर्म है, हे राजन्! यह तेरह स्वरूपवाले पृथक् २ गुण एक सत्यही का लक्षण रखनेवाले हैं वह यहां सत्यही का सेवन करके वृद्धि को पाते हैं सत्य का अन्त अकथनीय है इस कारण वेदपाठी ब्राह्मण, देवता, पितरों समेत सत्यही की प्रशंसा करते हैं सत्य के समान धर्म नहीं और मिथ्या के समान पाप नहीं है सत्य धर्म की श्रुति है इस से सत्य को गुप्त न करे सत्य के दान और दक्षिणावाले यज्ञों को और त्रेता अग्निहोत्रवाले वेदों को और जो अन्य धर्म के निश्चय हैं उन सबको प्राप्त करता है हज़ार अश्वमेध एक ओर और दूसरी ओर एक सत्य को रक्खे तो उन हज़ार अश्वमेधों से सत्यही अधिक होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तेंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! जिस कारण से कि क्रोध, काम, शोक, विधित्सा, परासुत्व, लोभ, मत्सरता, ईर्षा, निन्दा, असूया, कृपा, भय इत्यादि उत्पन्न होते हैं उसको मूल समेत मुझसे कहिये भीष्मजी बोले हे महाराज, युधिष्ठिर! जीवों के जो महापराक्रमी यह तेरह शत्रु कहे गये वह सब इस संसार में चारोंओर से मनुष्यों की उपासना करते हैं और असावधान मनुष्यों को पीड़ा देते हैं और मनुष्यों को अचेत देखते ही भेड़ियों के समान बड़े पराक्रम से मारते हैं तब उनसे दुःख और पाप जारी होता है इससे हे युधिष्ठिर! मनुष्य इनके उदय होने और स्थिर होने और नाश होने को अच्छे प्रकार से जाने हे राजन्! इच्छा में जो क्रोध की उत्पत्ति है उसको मैं मूलसमेत प्रारम्भ से कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि जब लोभ से क्रोध उत्पन्न होकर दूसरों के दोषों से महातीव्र होता है तब क्षमा के कारण ठहरा रहता है अर्थात् रुका रहता है उसी से दूर भी होजाता है संकल्प से काम पैदा होता है और सेवन किये जाने से बड़ी वृद्धि को पाता है जब ज्ञानी संकल्प को त्यागता है तब उस का काम नाश होता है असूया क्रोध लोभ आदि यह सब मध्यवर्ती स्वरूप कहे जाते हैं वह सब जीवों पर दया करने और शास्त्र की आज्ञा से निवृत्त होते हैं यह असूया दूसरे में दोष लगाने से उत्पन्न होती है और बुद्धिमानों के तत्त्वज्ञान से दूर होती

है और अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला मोह पाप के प्रतिदिन करने से जारी होता है और ज्ञानियों में रहकर शीघ्र नाश होजाता है और भिन्न २ शास्त्रों के देखने से विधित्सा अर्थात् कर्म के प्रारम्भ की इच्छा उत्पन्न होती है उस का नाश तत्त्वज्ञान से होता है और प्रीति से शोक उत्पन्न होता है और उस देहधारी के वियोग से जब उस को निरर्थक देखता है तब उस का शीघ्र ही नाश होता है और परासुता अर्थात् दुष्टकर्म के आधीन होना क्रोध लोभ और अभ्यास से वर्तमान होती है वह सब जीवों पर दया और वैराग्य से निवृत्त होती है और सत्यता के त्यागने और शत्रुवों के सेवन से ईर्षा उत्पन्न होती है यह ईर्षा साधुवों की सेवा से नष्ट होती है और कुलज्ञान और ऐश्वर्य से मद उत्पन्न होता है वह इन कुल आदि के अच्छे प्रकार जानने से शीघ्र दूर होजाता है इच्छा प्रसन्नता आदि से ईर्षा उत्पन्न होती है वह दूसरे जीवधारियों की बुद्धि से निवृत्त होती है और भ्रान्ति के कारण धर्मरहित पुरुषों के जो अस्वीकृत और शत्रुता सम्बन्धी वचन हैं उनसे निन्दा उत्पन्न होती है वह संसार को देखकर अर्थात् जीवमात्र की मुख्यता को जानकर शान्त होजाती है जो पुरुष अपने विरोध करनेवाले प्रबल शत्रु को बदला देने में समर्थ नहीं होता उस की अत्यन्त निन्दा होती है वह दया से निवृत्त होती है और सदैव दुःखों को देखकर कृपा उत्पन्न होती है वह धर्म की निष्ठा के जानने से शान्त होजाती है और सदैव जीवों के अज्ञान से लोभ दृष्टि आता है वह लोभ भोगों की अनियतता को देखने और जानने से दूर होता है इन तेरह दोषों को अन्तःकरण की शान्तता से विजय करना कहा है यह तेरह धृतराष्ट्र के पुत्रों में थे सो तुझ सत्यता के चाहनेवाले ने वृद्धों की सेवा से उनको विजय किया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशिन्, पितामह! मैं सदैव सत्पुरुषों के दर्शनों से दया को अच्छे प्रकार से जानता हूं परन्तु निर्दय लोगों को और उनके कर्मों को नहीं जनता हूं जैसे कांटे, कुवें, अग्नि को पुरुष त्याग करते हैं उसीप्रकार निर्दयकर्मी मनुष्यों को लोग त्याग करते हैं इससे निर्दय मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों का नाशकर्ता है इस कारण हे पितामह! आप उसके धर्म निश्चय को कहिये, भीष्मजी बोले कि जिसके कर्म की प्रीति और करने की इच्छा निन्दित होती है वह ईश्वर का ठगा हुआ अपने को पुकारता है जो ऐसा कर्म करता है वही यह जानता है, दान देकर अपनी श्लाघा करनेवाला, समतारहित, नीचकर्मी; स्नेह दिखाकर छलनेवाला और भागोंका विभाग अच्छे

प्रकार से न करनेवाला, अहंकारी, कर्मफल चाहनेवाला, काक के समान छलदृष्टि रखनेवाला, सब पर सन्देहयुक्त, कृपण, अपनी जातिवालों की प्रशंसा करनेवाला, आश्रमों का सदैव शत्रु और वर्णसंकर करनेवाला, हिंसायुक्त, गुण अवगुण में विवेक न रखनेवाला, बहुत अस्तव्यस्त वचन बोलनेवाला, असाहसी, महालोभी, निर्दयी मनुष्य धर्म के अभ्यासी गुणवानों को पापी जानता है और अपनी दुश्शीलता से किसी पर विश्वास नहीं करके गुप्तदोषवाले का दोष प्रकट करनेवाला, दोषों के समान होने पर भी अपनी आजीविका के निमित्त नष्ट करके उपकार करनेवाले को ठगाहुआ शत्रु मानता है और समयपर उपकार करनेवाले के लिये धन देकर दुःखी होता है, भक्ष्य, पेय आदि जो अच्छे भोजन हैं उनको जो पुरुष सबके देखतेहुये भोजन करता है वह निर्दयी कहाजाता है, जो पुरुष प्रथम ब्राह्मणों को देकर अपने मित्रों समेत भोजन करता है वह मरकर स्वर्ग को पाता है और इस लोक में भी बड़े सुख को भोगता है हे राजन् ! यह निर्दयी मनुष्यों का वर्णन तुझसे कहा यह ज्ञानी पुरुषों को सदैव त्यागने के योग्य है ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो पुरुष चोरों के धन से रहित यज्ञ करनेवाला सब वेदान्त का ज्ञाता आचार्य और पितरों के कार्य के निमित्त वेदपाठ के लिये भी उद्योग करनेवाला है वह धर्मभिक्षुक ब्राह्मण साधु कहाता है इन निर्धनों को धनदान और विद्यादान देना योग्य है और अन्य ब्राह्मणों में भी दक्षिणा दान देना योग्य है वेदी से बाहर कचा अन्न भिन्न ब्राह्मणों को भी देना योग्य है राजा सब रत्नों को जैसा उचित है वैसेही दानकरे ब्राह्मण, वेद, बहुत दक्षिणावाले यज्ञ यह सब सदैव परस्पर ऐश्वर्य और आचारवाले अपने गुण से विजय करते हैं जिस के पास बालबच्चों के पोषण के निमित्त तीन वर्षतक के लिये अन्न वर्तमान है चाहे इससे अधिक भी हो वह यज्ञ में अमृतपान करने के योग्य है जो यज्ञ करनेवाले को यज्ञ का एकभाग स्त्री आदि के कारण रुकजाय तब धर्मिष्ठ राजा उस ब्राह्मण के धन को यज्ञ के निमित्त लेले जो वैश्य यज्ञ से रहित अमृत का भोजन करनेवाला नहीं है और बहुत से पशुवों को रखता है उसके कुटुम्ब से यज्ञ के लिये उसके धन को लेले परन्तु शूद्र के घर से इच्छापूर्वक कभी कुछ न ले क्योंकि यज्ञों में शूद्र का धन नहीं ग्रहण किया गया है जो अग्निहोत्र का न करनेवाला सौ गौवों का रखनेवाला है अथवा यज्ञों का न करनेवाला हजार गौवों का रखनेवाला है राजा उन दोनों के भी कुटुम्ब से विना

विचारे धन लेसक्ता है राजा सदैव दान न करनेवालों से प्रसिद्ध करके धन को ले ऐसे कर्म करनेवाले राजा के धर्म में न्यूनता नहीं होती है इसीप्रकार यह भी जानो कि तीन दिन व्रत करनेवाले को नीचकर्मी पुरुष के घर से भी एक दिन का भोजन हरना चाहिये जिसका कि शेष दूसरे दिन को न बचे, पूछनेवाले या न पूछनेवाले ब्राह्मण से राजा को यह बात कहना योग्य है कि हे ब्राह्मण ! तू खेत, बाग़, खिरियान या जहां से मिले वहां से लेले, धर्मज्ञ राजा धर्म के द्वारा उसको दण्ड न दे राजा की अज्ञानता से ब्राह्मण भूखा प्यासा कष्ट सहता है अर्थात् ब्राह्मण के निराहार रहने में राजाही को दोष है शास्त्र और स्वभाव को अच्छे प्रकार से जानकर इस की जीविका के हेतु को विचार करे और उस की चारो ओर से ऐसी रक्षा करे जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है, जो वनपशु आदि यज्ञ को न करे तो प्रतिवर्ष नियम से वैश्वानरीय यज्ञ को करे क्योंकि अनुकल्प नाम धर्म उत्तम होता है फिर केवल धर्मवादी आपत्तियों में मरण से भयभीत होकर विश्वेदेवा, साध्यगण, ब्राह्मण और महर्षि लोगों करके गौणधर्मी कियाजाता है परन्तु प्रथम कल्प के करने को समर्थ जो पुरुष अनुकल्प धर्म से कर्म करता है उस निर्बुद्धि को परलोक का कोई फल प्राप्त नहीं होता, वेद का ज्ञाता ब्राह्मण राजा से यह बात न कहै कि मैं ब्राह्मण हूं क्योंकि धन और राजबल से ब्राह्मण का निज पराक्रम बहुत बड़ा है इसी कारण से ब्रह्मवादी ब्राह्मणों का तेज राजा को सदैव बड़ी कठिनता से सहने के योग्य है इस हेतु से कि ब्राह्मण को कर्ता शास्ता विधाता देवता लोग कहते हैं जो ब्राह्मण के सम्मुख अकल्याणकारी वचन कभी न कहे और रूखे वचनों को जिह्वा से भी नहीं उच्चारण करे वह क्षत्रिय अपने भुजबल से आपत्ति से तरता है, वैश्य शूद्र धन के द्वारा और ब्राह्मण हवन मन्त्रादि के पराक्रम से आपत्ति को तरता है, कन्या, तरुण स्त्री, मन्त्र का न जाननेवाला, मूर्ख, असंस्कृत अग्नि में आहुति का डालनेवाला यह सब होम करनेवाले यजमान समेत नरकगामी होते हैं इसकारण वेदोक्त बुद्धि से अग्निस्थापन में कुशल वेद में पूर्ण ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञ कराना योग्य है, श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष जिन पवित्र कर्मों को करे उन में विना दक्षिणावाले यज्ञों से पूजन नहीं करे विना दक्षिणावाला यज्ञ सन्तान, पशु और स्वर्ग का नाश करता है और इन्द्रियों समेत यश, कीर्ति, आयु का भी नाश करनेवाला है, जो कोई विना अग्निहोत्री ब्राह्मण रजस्वला स्त्री से सम्भोग करता है अथवा जिन का हवन वेदपाठी ब्राह्मण से रहित है वह सब पापकर्मी गिने जाते हैं, जिस ग्राम में एकही कूप है उस में वृषलीपति ब्राह्मण बारह वर्ष रहकर शूद्रकर्मी होजाता है और जो अविवाहिता स्त्री को अपनी शय्या पर बैठाता है यह सब वृद्ध क्षत्रिय वैश्य शूद्र को अपने से बड़ा

मानकर तृणों पर शयन करने से जैसे पवित्र होते हैं उसीप्रकार यहां मेरे वचनों को सुनो कि जो ब्राह्मण नीचवर्ण के साथ मकान आसन आदि में विहार करनेवाला एक रात्रि में जितना पाप करता है उतने पाप को तीन वर्ष व्रत करने से वह धोता है, हे राजन्! स्त्रियों में विवाह के समय गुरु के और अपने जीवन के लिये निन्दायुक्त वचन नहीं मारता है, श्रद्धावान् पुरुष को शुभ विद्या नीच से भी प्राप्त करनी योग्य है और सुवर्ण को अशुद्ध मनुष्य से भी विना विचारे लेले और स्त्रीरत्न को दोषी कुल से भी लेलेना उचित है और विष के द्वारा भी अमृत को पिये स्त्रीरत्न धर्म से ऐसे निर्दोष हैं जैसे जल, वर्णों के संकर होने पर वैश्य भी गौ ब्राह्मणके मनोरथों की सिद्धि और अपनी रक्षा के निमित्त शस्त्रोंको हाथ में ले मद्यपान, ब्रह्महत्या, गुरुशय्या पर सोना यह तीनों जब कि जानकर किये होयँ तो इन की शुद्धि किसी प्रायश्चित्त से नहीं होसक्ती, सुवर्ण चुराना वा ब्राह्मण का धन चुराना यह पातक हैं, मद्यपीना और अगम्या स्त्री में भोग करना, पतितों से स्नेह करना, ब्राह्मणी से भोग करना यह सब पाप शीघ्र ही पतित करते हैं, पतित के साथ एक वर्ष विचरने से पतित होता है परन्तु पतित को यज्ञ कराने पढ़ाने और विवाहादि सम्बन्ध करने से शीघ्र ही पतित होता है साथ, सवारी, आसन, भोजन आदि के कारण शीघ्र पतित नहीं होता अर्थात् पतित के साथ एक वर्ष तक भोजन आदि करने से पतित होता है इनके सिवाय जो पाप हैं उनका प्रायश्चित्त होसक्ता है जब कि रीति के अनुसार प्रायश्चित्त करके फिर किसी काल में पाप को न करे उन पतितों के मरने और दाहादि क्रिया न होने पर भी उनका अन्न सुवर्णादि विना विचार के भी हर लेना योग्य है धार्मिक राजा धर्म से ऐसे मन्त्री और गुरुओं को भी त्याग करे, जो कि पतित होने से प्रायश्चित्तादि कर्मों के योग्य नहीं हैं उनके साथ बैठना न करे, अधर्म करनेवाला धर्म और तप से पापों को दूर करता है चोर को चोर कहने से उतनाही पाप होता है और जो चोर नहीं है उसको चोर कहने से दूना पाप का भागी होता है पति के सिवाय अन्य से सम्भोग चाहनेवाली कन्या ब्रह्महत्या के तीसरे भाग को पाती है, इस लोक में जो पुरुष ब्राह्मणों की निन्दा करके बाण आदि से घायल करे वह उस दुष्टा कन्या के शेष पाप को पाता है क्योंकि ऐसा कर्म करने से वह पाप बहुत वृद्धि पाता है सैकड़ों वर्ष तक प्रतिष्ठा को नहीं पाता है अर्थात् प्रेतयोनि से नहीं छूटता है और हज़ार वर्ष पर्यन्त नरक भोग करता है इस कारण ब्राह्मण की निन्दा नहीं करनी योग्य है और कभी उस को घायल न करना चाहिये ब्राह्मण के घायल होने से जितनी धूलि उस के रुधिर से भीजे उतने ही वर्ष तक वह नरक को भोगता है भ्रूणहत्या का करनेवाला युद्धभूमि में शस्त्रों से पवित्र होता है अथवा देदीप्यमान अग्नि में

अपनी देह के होमने से पवित्र होता है मद्य पीनेवाला मनुष्य उष्णमद्य को पीकर पाप से छूटता है अथवा उस उष्णमद्यपान से मृत्यु पाकर पवित्र होता है और वेदपाठियों के लोकों को पाता है, दुष्टात्मा और पापात्मा पुरुष गुरुशय्या पर वर्तमान होकर लोहे की स्त्री को बग़ल में देकर सोने से मृत्युपाकर पवित्र होता है अथवा अपनी शिश्नेन्द्रिय को वृषणों समेत अपने हाथ में लेकर उत्तर दिशा की ओर चलाजाय अथवा ब्राह्मण के निमित्त प्राणों को त्याग करने से भी पवित्र होता है अथवा अश्वमेध, गोमेध और अग्निष्टोमयज्ञों के द्वारा अच्छे प्रकार अमृत को पीकर इस लोक परलोक दोनों में पूजित होता है इसीप्रकार ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य सदैव अपने को प्रसिद्ध करता हुआ बारह वर्ष तक कपाली ब्रह्मचारी मुनि होकर फिरे अथवा इसीप्रकार से तप करे तो ब्रह्महत्या के दोष से निवृत्त होता है इसीप्रकार गर्भवती स्त्री को गिरावे तो उस के मारने से ब्रह्म-हत्या से दूना पाप होता है, मद्य पीनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचारी के समान भोजन शयन करता तीन वर्ष से अधिक तक अग्निष्टोमयज्ञ से ईश्वर का पूजन करे अथवा एक बैल और हज़ार गोदान करके पवित्रता को प्राप्त करे, वैश्य को मार कर दो वर्ष तक एक बैल और सौ गोदान करने से पवित्र होता है और शूद्र को मारकर एक वर्ष तक एक बैल और सौ गोदान करने से पाप से छूटता है कुत्ते शूकर गधे को मारकर उक्त शूद्र व्रत को करे और बिल्ली, चाष, मेंढक, काक, सर्प, चूहे को मारकर भी शूद्र व्रत से निवृत्त होता है अब मैं दूसरे प्रायश्चित्तों को क्रमपूर्वक कहता हूं कि अज्ञानता से कीट आदि जीवों के मारने से जो छोटे २ पाप होते हैं वह सब पश्चात्ताप ही के करने से निवृत्त होते हैं गो-हत्या के सिवाय प्रत्येक हत्या के पाप का प्रायश्चित्त एक वर्ष तक करे, वेदपाठी की स्त्री से भोग करने में तीन वर्ष और दूसरे अन्य की किसी स्त्री में कुकर्म करने से दो वर्ष का प्रायश्चित्त है अथवा चौथे काल में भोजन करनेवाला व्रतपूर्वक ब्रह्मचारी हो तीन दिन केवल जलपान करके स्थान और आसन से पृथक् होकर विहार करे तो पाप से निवृत्त होता है इसीप्रकार किसी का अप-मान करनेवाला अथवा अग्नियों का दूषित करनेवाला वा विना कारण माता, पिता, गुरु को त्याग करता है वह धर्म के निश्चय के अनुसार पतित होता है, स्त्री को कुचालिनी होने से अधिकतर प्रबन्ध में रखकर केवल वस्त्र और भोजन देना योग्य है और दूसरे की स्त्री से सम्भोग करने में जो पुरुष का व्रत है वही इस स्त्री से भी करावे, जो स्त्री अपने ब्राह्मण पति को त्याग करके दूसरे नीच पुरुष को प्राप्त करलेती है उसको राजा बड़े मैदानी मकान में कुत्तों से पीड़ित करवावे और उस के जार पति को भी लोहे की गर्मशय्या पर सुलवावे और काष्ठ लगावे जिस से कि वह कुकर्मी जलजाय यह पति त्यागनेवाली स्त्रियों का

दण्ड कहा है वह दोषी कदाचित् एक वर्ष तक इस प्रायश्चित्त को न करे तो उसका दोष दूना होता है उसके साथ मिलनेवाली स्त्री नव वर्ष तक व्रत को करे और उस का पति मुनियों का व्रत धारण करके पृथ्वी पर घूमता हुआ पांच वर्ष तक भिक्षाको मांगे, बड़े भाई से पहिले अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई और जो स्त्री कि छोटे भाई को विवाही जाय और जिनका कि अधर्म से विवाह हो वह सब पतित कहे जाते हैं यह सब उस व्रत को करें जिस को कि वीर का मारनेवाला करता है और पाप दूर करने के लिये एक मास तक चान्द्रायण वा कृच्छ्र व्रत को करे बड़े भाई से पहिले विवाह करनेवाला छोटा भाई उस अपनी स्त्री और पुत्रवधू को सम्भोग से पहिलेही उस बड़े भाई के सुपुर्द करे जिसका कि विवाह नहीं हुआ है फिर बड़े भाई से आज्ञा लेकर विना विचारे उन को लेले इसप्रकार से वह दोनों भाई और स्त्री पाप से निवृत्त होते हैं, गौ के सिवाय दूसरे पशुवों की हिंसा में दोष नहीं होता है क्योंकि पुरुष को पशुवों का स्वामी और पोषण करनेवाला कहते हैं गोवध करनेवाला चर्म समेत गौ की पूंछ को धारण करके मृत्तिका का पात्र हाथ में लिये सब लोगों से अपने पाप को कहता हुआ प्रतिदिन सात घरों से भिक्षा मांगकर भोजन करे तो बारह दिन में पवित्र होता है और पाप दूर होने के लिये एक वर्षतक इसी व्रत को करे इसप्रकार से प्रायश्चित्त करे अथवा धनवान् होकर दान करे, जो नास्तिकतारहित हैं उन को एक गोदान के भी देने से पाप से निवृत्ति होती है, कुत्ता, शूकर, मनुष्य, मुर्गा, गधा यह सब मांस और मूत्र विष्ठा के खाने से भी संसार के योग्य गिने जाते हैं, यज्ञ में अमृत का भोजन करनेवाला ब्राह्मण कदाचित् मद्य पीनेवाले की गन्धि को सूंघले तो तीन दिन उष्णजल और तीन दिन उष्णदूध और तीन दिन वायुभक्षण करके शुद्ध होता है यह सब सनातन प्रायश्चित्त कहे गये हैं परन्तु प्रायश्चित्त अज्ञानता से ही करने का होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेपञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि खड्गयुद्ध में प्रवीण नकुल ने कथा समाप्त होनेपर शरशय्या पर वर्तमान अपने पितामह से यह कहा कि हे पितामह ! इस लोक में धनुष नाम शस्त्र उत्तम है और मेरा खड्ग अत्यन्त तीव्रधार है तो धनुष के टूटजाने और घोड़ों के नष्ट होनेपर युद्ध में साधु लोगों की चारों ओर से रक्षा करना खड्ग से सम्भव नहीं है तब अकेला खड्गधारी वीर उन धनुष गदा शक्तिधारियों के पीड़ा करने को क्या समर्थ है यह मेरा सन्देह बड़ा चमत्कारी है कि सब युद्धों में कौन सा युद्ध उत्तम है और खड्ग कैसे किसने किस प्रयोजन

कट २ कर गिरे और दानव महापीड़ित होकर पराजय हुये और परस्पर में पुकारते हुये इधर उधर को चलेगये कुछ तो पृथ्वी में कुछ पहाड़ों में कुछ आकाश और जल में प्रवेश करगये और पृथ्वी पर उनके मांस रुधिर की कीच होगई और पृथ्वी उनके बोझ से हलकी होगई इन दैत्य दानवों को मार रुद्रजी ने अपने इस उग्ररूप को त्याग फिर कल्याणरूप को धारण किया तदनन्तर सब महर्षि और देवगणों ने विजयी शब्दों से शिवजी की स्तुति की फिर प्रसन्न होकर शिवजी ने सबकी रक्षा के निमित्त विष्णुजी को दिया विष्णु ने मरीचि को और मरीचि ने महर्षियों को, महर्षियों ने इन्द्र को और इन्द्र ने लोकपालों को, लोकपालों ने सूर्य के पुत्र मनुजी को देकर कहा कि तुम मनुष्यों के ईश्वर हो इससे खड्ग की जन्मभूमि संसार की रक्षा करो जोकि देह और चित्त के कारण धर्मरूप मर्यादा को उल्लंघन करनेवाले दण्ड को विभाग करके धर्म से रक्षा के योग्य हैं स्वतन्त्रता से कठोरवचन सुनाना और जुर्माना लेना देह को अंगभंग करना वा मारना यह छोटे कारणों से नहीं होता है इससे यह कठोरवचन आदि का कहना खड्ग के ही समान है यह उपदेश करो खड्ग के ऐसे प्रमाणवाले रूपों को वे मर्यादापने से रक्षाकरो तदनन्तर मनुजी ने अपने पुत्र क्षुपको उत्पन्न करके प्रजाओं की रक्षा के निमित्त वह खड्ग दिया क्षुपने इक्ष्वाकु को दिया इक्ष्वाकु ने पुरूरवा को, पुरूरवा ने आयु को, आयु से नहुष ने पाया, नहुष ने ययाति को, ययाति ने पुर को, पुर से अमूर्तरयसने पाया, उससे राजा भूमिशय को. उससे भरत ने, उस से ऐलविल को, ऐलविल से धुन्धमार ने, धुन्धमार से काम्बोज ने, उससे मुचुकुन्द ने, मुचुकुन्द से मरुत ने, मरुत्त से रैवत ने, रैवत से युवनाश्व ने, युवनाश्व से रघुने, उस से इक्ष्वाकुवंशी हरिणाश्व ने, हरिणाश्व से शौनक ने, शौनक से औशीनर ने, उससे यादव भोज ने, यदुवंशियों से शिबि ने, शिबि से प्रतर्दन ने, प्रतर्दन से अष्टक ने, अष्टक से पृषदश्वने, पृषदश्व से भारद्वाजऋषिने, उनसे द्रोणाचार्य ने, उनसे कृपाचार्यने, कृपाचार्यसे भाइयों समेत तुमने पाया उस खड्ग का नक्षत्र कृत्तिका है और देवता अग्नि है रोहिणी गोत्र युक्त रुद्रजी उसके बड़े गुरु हैं अब खड्ग के आठ गुप्तनामों को मुझ से सुनो उन नामों के उच्चारण करने से सदैव विजय को पाता है (श्लोक)

असिर्विशसनःखड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भोविजयश्चैवधर्मपालस्तथैवच॥

हे माद्रीनन्दन! यह खड्ग सब शस्त्रों में उत्तम है यह महेश्वरजी ने जारी किया इसके निश्चय को पुराण कहते हैं तदनन्तर शत्रुहन्ता राजा पृथु ने अवलीन धनुष को धारण किया उसी ने पृथ्वी को दुहकर बहुत प्रकार की वनस्पति और खेती उत्पन्न की उस वेनपुत्र पृथु ने धर्म से पूर्व के समान चारों ओर से इस पृथ्वी की रक्षा की यह वह आर्षकथा है कि जो युद्धविद्या में पण्डित हैं वह

सदैव इसका पूजन करते हैं और सबको करना योग्य है हे नकुल ! यह खड्ग की उत्पत्ति और उसकी प्राप्ति प्रथम कल्प है इसको मैंने ब्यौरे समेत ठीक २ तुझ से कहा इस खड्ग के साधन के सुनने से पुरुष कीर्ति को पाता है और अन्त में स्वर्ग के अनन्त सुखों को भोगता है ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इसप्रकार कहने से मौन युधिष्ठिर ने घर में जाकर विदुरजी समेत अपने भाइयों से यह पूछा कि धर्म, अर्थ, काम में लोभवृत्ति वर्तमान है उन तीनों में उत्तम, मध्यम, निकृष्ट कौन २ हैं त्रिवर्ग अर्थात् काम, क्रोध, लोभ तीनों की विजय के निमित्त किसमें आत्मा को लगाना चाहिये आप यथार्थता से कहने के योग्य हो तब धर्मशास्त्र के ज्ञाता विदुरजी ने प्रथम यह वचन कहा कि शास्त्र का बहुत पढ़ना, तप, दान, श्रद्धा, यज्ञ, क्रिया, क्षमा, निष्कपटता, दया, सत्य, इन्द्रियों का निग्रह यह दश आत्मा की सम्पत्ति हैं तू इनकोही प्राप्त कर कभी चित्त को चलायमान मत करो धर्म अर्थ का भी यही मूल है और मेरा भी यही आश्रय है ऋषि लोग धर्म से पार होते हैं सब लोक भी धर्म में ही नियत हैं देवता लोग भी धर्म से बढ़े और अर्थ भी धर्म में ही नियत है इससे हे राजन् ! ज्ञानी लोग कहते हैं कि धर्म उत्तम गुण और अर्थ मध्यम और काम निकृष्ट गुण कहाजाता है इस कारण सावधान आत्मा और धर्मप्रधानपुरुष ऐश्वर्यवान् होना चाहिये और जैसे कि अपनी आत्मा में व्यवहार करे उसीप्रकार सब जीवों में भी वर्ताव करना चाहिये वैशम्पायन बोले कि विदुरजी के पीछे अर्थशास्त्र के ज्ञाता अर्जुन बोले कि हे राजन् ! यह कर्मभूमि है यहां उन वार्ताओं की ही प्रशंसा कीजाती है यथा खेती व्यापार गौ की रक्षा नानाप्रकार की शिल्पविद्या इत्यादि सब कर्मों की मर्यादा अर्थ है यह वेद की भी श्रुति है कि बिना अर्थ के धर्म और काम नहीं वर्तमान होते हैं अर्थवान् पुरुष विषयों के द्वारा उत्तमधर्म के आराधन करने और काम के भोगने को समर्थ होता है यह अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषों को अगम है यह भी श्रुति है कि धर्म और काम यह दोनों अर्थ के अंग हैं यह दोनों अर्थ की सिद्धि से ही सिद्ध होते हैं उत्तमजाति के लोग उस अर्थवान् पुरुष की सदैव ऐसे उपासना करते हैं जैसे कि सब जीव ब्राह्मण की सेवा करते हैं जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले सावधानचित्त निष्पाप जितेन्द्रिय मुण्ड निस्तन्तु ब्रह्मचारी भी अर्थकी इच्छा से पृथक् २ निवास करते हैं काषायवस्त्र और दाढ़ी मूंछ रखनेवाले लज्जावान् पण्डित शान्त सब परिग्रहों से रहित भी होकर कोई अर्थ की इच्छा रखते हैं

के लिये उत्पन्न किया खड्ग के प्रथम आचार्य को कहिये यह बुद्धिमान् द्रोणाचार्य के शिष्य नकुल के प्रश्न को सुनकर भीष्मजी ने उसकी बड़ी प्रशंसा करके उत्तर दिया कि हे माद्रीनन्दन ! तुम अपने प्रश्न का उत्तर सुनो कि प्राचीन समय में यह सब संसार दिव्य जलरूप स्थिरता समेत आकाश से रहित नाम चिह्न के विना धरातल पै वर्तमान अन्धकारयुक्त शब्द स्पर्श रहित अत्यन्त गम्भीररूप अपरम्पार था तब ब्रह्माजी ने पैदा होकर वायु, अग्नि, सूर्य, आकाश, स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी को और चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, लव, क्षण, काल इत्यादि को उत्पन्न किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने लोक में वर्तमान देह को धारण करके उत्तम २ पुत्रों को उत्पन्न किया मरीचि, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अंगिरा इन सप्तऋषियों को और समर्थ ईश्वर शिवजी को प्रकट किया और इसीप्रकार प्राचेतस गोत्रीय दक्ष ने भी साठ कन्याओं को उत्पन्न किया उन सब ऋषियों ने सन्तान के निमित्त ग्रहण किया उनसे सब संसारी जीव, देवता, पितृगण, गन्धर्व, अप्सरा और अनेक प्रकार के राक्षस, पशु, पक्षी, मछली, बन्दर, रीछ आदि महासर्प और जल थल के पक्षियों का समूह और अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज आदि चारो प्रकार की सृष्टि स्थावर जंगम संसार उत्पन्न हुआ सब के उत्पन्न करने के पीछे ब्रह्माजी ने सनातन वेदोक्तधर्म को जारी किया उस धर्म में देवता, आचार्य, पुरोहित, द्वादश सूर्य, अष्टवसु, एकादशरुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, भृगु, अत्रि, अंगिरा, सिद्ध, काश्यपगोत्रीय तपोधन वशिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, नारद, पर्वतऋषि, बालखिल्यऋषि, प्रभास, सिकित नाम ऋषि, घृतिपा, सोमपा, वायव्य, वैश्वानर, मरीचिपऋषि, अकृष्टहंस, अग्नि से उत्पन्न होनेवाले वानप्रस्थ, प्रश्नीनाम ऋषि यह सब ब्रह्माजी के उपदेश में वर्तमान हुये फिर क्रोध लोभ से संयुक्त दानवेन्द्रों ने ब्रह्माजी की उस आज्ञा को उल्लंघन करके धर्म का त्याग और नाना हानि कीं हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, विरोचन, शम्बर, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, नमुचि, बलि यह सब और अन्य दैत्य दानवों के गण धर्ममर्यादा को त्याग करके क्रीड़ा करनेवाले हुये और जो अधर्म का निश्चय करनेवाले थे वह सब एकही जाति में थे जैसे कि देवता और हम सब लोग इसप्रकार के धर्म में नियत होकर देवता और ऋषियों से ईर्षा करनेलगे और जीवों पर दया और प्रियबातों को नहीं किया तीनों युक्तियों को बड़ी बुद्धिमानी के साथ जारी करके दण्ड से ही प्रजाओं को आधीन किया तब असुरों के मुख्य लोगों की उनसे एकता नहीं हुई तदनन्तर ब्रह्मऋषियों के सम्मुख वर्तमान ब्रह्माजी हिमालय के उस शिखर में जहां कमलों के समान नक्षत्र चमकते थे और सौ योजन के विस्तार में

मणिरत्नों के समूहों से अलंकृत था उसपर संसार के प्रयोजन की सिद्धि के लिये वर्तमान हुये वहां हज़ार वर्ष के पीछे कल्प में कही हुई यथार्थ विधि के अनुसार अच्छे प्रकार से ठीक २ करीहुई यज्ञ की उस रचना को ब्रह्माजी ने किया जो विधि के अनुसार यज्ञ करनेवाले यज्ञ में प्रवीण समिध् और देदीप्यमान अग्नियों से संयुक्त प्रभायुक्त सुवर्ण के यज्ञपात्रों से शोभित अच्छे २ देवगणों से व्याप्त यज्ञमण्डलवाला और ब्रह्मऋषि सदस्यों से शोभायमान होती है वहां मैंने ऋषियों के मुख से बड़े भयकारी वृत्तान्त को सुना कि चन्द्रमा और नक्षत्रों के उदय से आकाश के समान निर्मल अग्नि के सदृश फैलाहुआ नीलकमल के समान रूप तीक्ष्ण दाढ सूक्ष्म उदर ऊँचाई में कठिनता से प्राप्त योग्य महापराक्रमी जिसके प्रकट होतेही सब पर्वतों समेत पृथ्वी प्रबल तरंगवाले समुद्रसंयुक्त कम्पायमान हुई और महाउल्कापात से वृक्षों की शाखा टूट २ गिरनेलगीं और चारों दिशाओं से अशुभ वायु चलनेलगी और सब जीव भय के मारे पीड्यमान हुये तब इस महाउत्पात को देखकर ब्रह्माजी ने महर्षि, देवता, गन्धर्व आदि से कहा कि यह महातेज मेरेही ध्यान करने से उत्पन्न हुआ है तदनन्तर वह तेज लोक की रक्षा और असुरों के मारने को अपने तेजरूप को त्यागकर खड्गरूप होगया जिसकी निर्मल तीव्रधार थी और काल मृत्यु के समान ऊंचा था तब ब्रह्माजी ने उस अधर्म के हटानेवाले तेजरूप खड्ग को वृषध्वज नीलकण्ठ जी को दिया और रुद्रजी ने उस खड्ग को पाकर अपना ऐसा दूसरा रूप धारण किया जो चार भुजायुक्त पृथ्वी पर बैठेहुये भी मस्तक से सूर्य को स्पर्श करनेवाला बड़ी दृष्टि महालिंग मुख से अग्नि को निकालते अनेक रक्त नील पाण्डुवर्णों को बदलते स्वर्णमय उत्तम चमकदार कृष्णमृगचर्म धारण किये सूर्य के समान एक नेत्र को ललाट में धारण करके अत्यन्त पिंगल वर्ण दो नेत्रों से शोभायमान था तदनन्तर महापराक्रमी त्रिशूल हाथ में लिये भगदेवता के नेत्र फोड़नेवाले देवदेव महादेवजी कालाग्निरूप खड्ग को लिये देदीप्यमान ढाल को उठाकर नाना प्रकार के मार्गों में घूमे और युद्ध की इच्छा से खड्ग को आकाश में घुमाते महाशब्द से अट्टहास करते हुये महाभयकारी रुद्ररूप हुये तब उस रुद्ररूप शिवजी को देखकर सब दैत्य दानव युद्ध के लिये उनके सम्मुख गये और उनपर पाषाण और उल्कापात किये और महातीव्र शस्त्रों की वर्षा की तदनन्तर इन महाउग्रतेजस्वी रुद्र के स्वरूप को देखकर वह दैत्यों की सेना कम्पायमान होकर अचेत हुई और सबों ने अकेले रुद्रजी को हज़ारों की समान समझा क्योंकि उन महाशत्रुओं में छेदते, भेदन करते, पीड़ित करते, काटते, फाड़ते अकेले खड्ग लिये ऐसे घूमे जैसे कि सूखे वन में दावानल अग्नि सबको भस्म करती घूमती है उनके तीव्र खड्ग से दैत्यों के अंग

और भविष्यत् काल में वृद्धि करने को समर्थ है जहांपर मित्र होते हैं वहां धन की वृद्धिपूर्वक नातेदार बान्धव लोग वर्तमान नहीं होते यह मेरा मत है सुननेवाले और हितकारी सुहृद् लोग दुर्लभ हैं हे धर्मभृतांवर! इन सब का आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि मित्रता के योग्य और अयोग्य पुरुषों को सुनो कि लोभी, निर्दयी, अधर्मी, अकर्मी, शठ, नीच, पापचलन, सन्दिग्धचित्त, अनुद्योगी, दीर्घसूत्री मिथ्यावादी, लोकनिन्दित, गुरु की स्त्री से सम्भोग करनेवाला, व्यसनी, माता पिता आदि का त्याग करनेवाला, दुरात्मा, निर्लज्ज, सब की ओर पापदृष्टि से देखनेवाला, नास्तिक, वेदनिन्दक, भ्रान्तचित्त, कार्य में संलग्न, कामी, असत्यवादी, सब का शत्रु, अनाचारी, कठोर, निर्बुद्धि, ईर्षाकरनेवाला, पाप का निश्चय करनेवाला, दुस्स्वभाव, दुष्ट अन्तःकरण, छली, मित्रद्रोही, दूसरे के धन की इच्छा करनेवाला, जो अपनी सामर्थ्य के समान दान देनेवाले से अप्रसन्न होनेवाला, मित्र को धैर्यता से अलग करनेवाला, अकारण क्रोधी, अचेत, अकारण शत्रु, अकल्याणकारी, मित्रों का त्यागनेवाला, अपने स्वार्थ के लिये मित्रों के साथ बैठनेवाला, अज्ञानता से थोड़ी अनुपकारी, अप्रिय बात से मित्रता से शत्रुता करनेवाला, प्रत्यक्ष में मित्र और भीतर से शत्रुता करनेवाला, टेढ़ी दृष्टि से देखनेवाला और विपरीतदृष्टिवाला, उपकार से तृप्त न होनेवाला, दूसरे को अपने समान बनानेवाला, मद्यप, शत्रु, क्रोधी, अभीष्ट न मिलने से दूसरे को दुःख का देनेवाला, मित्र से शत्रुता करनेवाला, जीवहिंसा करनेवाला, कृतघ्नी, छिद्रान्वेषी इन पुरुषों से कभी मित्रता न करनी चाहिये और मित्रता करने के योग्य पुरुषों को भी मुझ से सुनो कुलवान्, मधुरभाषी, ज्ञान विज्ञान में कुशल, रूप में रूपवान्, गुणवान्, निर्लोभी, श्रमी, सन्मित्र, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, लोभ ईर्षारहित, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सदैव उद्योगी, कुलीन के पुत्र, कुल के तारनेवाले दोषों से रहित प्रसिद्ध होयँ उन्हीं लोगों से राजा को प्रीति रखनी योग्य है हे राजन्! सामर्थ्य के अनुसार आचार करनेवाले अच्छे प्रकार से तृप्त होते हैं विना स्थान क्रोध न करनेवाले, अकस्मात् प्रीति न त्यागनेवाले, प्रीति करनेवाले, जो अर्थ में पण्डित होकर चित्त से भी विरोधी नहीं होते हैं और अपने हृदय को कष्ट भी देकर मित्रके कार्य में प्रवृत्त होते हैं जिसप्रकार कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता है उसप्रकार जो मित्रों से प्रीति नहीं छोड़ते और निर्धन होने में स्त्रियों पर क्रोध, लोभ, मोह से अप्रीति नहीं प्रकट करते हैं वह धर्मशील, विश्वासी लोग अपने मित्रों को भी अप्रीति नहीं दिखलाते हैं मृत्तिका और सुवर्ण को एकसा माननेवाले मित्रों में दृढ़बुद्धि, स्वतन्त्रतारहित, स्वामी के अर्थ को सदैव उत्तम माननेवाले

जो पुरुष अपने मनुष्यों की रक्षा करते शास्त्रों से कर्म करते हैं ऐसे उत्तमपुरुषों से जो राजा स्नेहपूर्वक मिलाप करता है उसका राज्य चन्द्रमा की चांदनी के समान वृद्धि को पाता है सदैव शास्त्रोक्त करनेवाले क्रोधजित् युद्धमें पराक्रमी जन्म से ही उत्तम गुण स्वभाव युक्त श्रेष्ठपुरुष भी मिलाप के योग्य हैं-हे राजन् ! जो गुण दोषयुक्त मनुष्य मैंने कहे उनमें भी जो उपकार को भूलनेवाले मित्रघाती और नीच हैं वह दुराचारी त्यागने के योग्य हैं यह सब का मत है युधिष्ठिर बोले कि मैं मिलाप से सम्बन्ध रखनेवाले इतिहास को मुख्यता से सुनना चाहता हूं और जो आपने मित्र से शत्रुता करनेवाला और उपकार का भूलनेवाला कहा उस को भी मुझ से कहो-भीष्मजी बोले कि मैं उस प्राचीन इतिहास को तुम से कहता हूं जो उत्तर दिशा में म्लेच्छ लोगों में हुआ कि मध्यदेश का रहनेवाला वेदों से अज्ञान कोई ब्राह्मण वृद्धियुक्त गांव को देख कर भिक्षा की इच्छा से उस में पहुँचा वहां गांव में दस्यु जातिवाला कोई महाधनी सब वर्णों के विभागों का ज्ञाता ब्राह्मणों का भक्त सत्यप्रतिज्ञ और दान में प्रीति रखनेवाला था उस के घरमें जाकर इस ब्राह्मण ने रहने के लिये स्थान और बर्षौड़ी खर्च के निमित्त भिक्षा मांगी तब उस धनी ने ब्राह्मण को बहुत से वस्त्र और एक नवीन स्थान दिया और एक तरुण स्त्री दासी करके दी हे राजन् ! इसप्रकार वह गौतम ब्राह्मण दस्यु से सब पदार्थ पाकर उस स्थान में उस तरुण दासी से विहार करनेलगा और दासी के कुटुम्बपोषण को भी उस ने प्राप्त किया और बहुत दिन तक उस धनी के स्थान में आनन्दपूर्वक रहा वहां उस गौतम ब्राह्मण ने बाणविद्या में बड़ी कुशलता प्राप्त की और वन में जाजाकर हंसों को उसीप्रकार से मारता था जैसे कि दस्यु लोगों के समूह मारा करते थे तब तो वह गौतम महाहिंसा में प्रवृत्त होकर उन दस्यु जाति के समान होगया इसीप्रकार अनेक जीवों की हिंसा करतेहुये बहुत दिन गौतम को व्यतीत हुये तब एक दूसरा ब्राह्मण उस देश में आया वह जटा और मृगचर्म को धारण किये वेदपाठ और जप को उत्तम जाननेवाला पवित्रात्मा अवस्था के अनुसार भोजन करनेवाला वेदज्ञ ब्राह्मणों का रक्षक वेद में पूर्ण था वह उस गौतम का स्वदेशी और परममित्र था और शूद्रान्न को त्याग कर अपने मित्र गौतम के घर को खोजता फिरता था और उस गांव को चारो ओर से ढूंढ़ा फिर गौतम के घर को पाकर उस में प्रवेश किया तब गौतम ने भी आकर मिलाप किया और उन हंसों का बोझ कन्धेपर रखनेवाले धनुर्बाण हाथ में लिये शस्त्रधारी रुधिर से भरा देह राक्षसी सूरत घर के द्वार पर वर्तमान महानिन्दित कर्मों से घर में आकर महालज्जायुक्त होकर आनेवाले ब्राह्मण ने कहा कि तुम कुलीन ब्राह्मण होके अज्ञानता से यह क्या कर्म करते हो और तुम

कोई स्वर्ग का मनोरथ करते हैं और कुलीन शास्त्रज्ञ लोग अपने २ धर्म में प्रवृत्त हैं कोई आस्तिक कोई नास्तिक कोई पूरे जितेन्द्रिय हैं अर्थशास्त्र का न जानना अन्धकाररूप है और उसमें विज्ञता होना प्रकाशरूप है जो पुरुष भोगों से दास आदि को और दण्डों से शत्रुवों को विजय करता है वही अर्थवान् है यह मेरा मत है तुम इन दोनों नकुल और सहदेव को वचन वाक्य और क़रार से जानो वैशम्पायन बोले कि अर्जुन के पीछे धर्म अर्थ में प्रवीण माद्री के पुत्र नकुल, सहदेव ने उत्तम वाणी से कहा कि बैठता, सोता, घूमता और नियत मनुष्य भी नानाप्रकार की युक्तियों से धन के समूह को दृढ़ता संचय करे इस दुष्प्राप्य और महाप्यारे धन के प्राप्त होने पर इस संसार में निस्सन्देह सम्पूर्ण मनोरथों को प्रत्यक्ष होकर प्राप्त करता है जो अर्थ धर्म से मिला है अथवा धर्म से अर्थ मिला है वह दोनों आपको निश्चयकरके अमृत के समान हैं इसकारण यह दोनों संसार में हम को अभीष्ट हैं अर्थ से रहित पुरुष को काम की सिद्धि और धर्म से रहित पुरुष को अर्थ की सिद्धि नहीं होसक्ती जो पुरुष धर्म, अर्थसे रहित हैं उनसे संसार भय करता है इस कारण धर्मरूप दानी लोगों से और जितेन्द्रिय पुरुषों से वह मनोरथ सिद्ध होने के योग्य है हमारे वचनों में विश्वास करनेवाले जीवों में सबही कल्पना किया जाता है प्रथम तो धर्म को अच्छे प्रकार से करे तदनन्तर धर्मसंयुक्त अर्थ को प्राप्त करे फिर काम को सिद्ध करे वह फल अर्थवान् ही का है वैशम्पायन बोले कि अश्विनीकुमार के पुत्र यह वचन कहकर चुप हुये तब भीमसेन ने यह वचन कहा कि काम से रहित पुरुष अर्थ, धर्म और इच्छा इन तीनों को नहीं चाहता है इस कारण कामही प्रधान है काम से संयुक्त ऋषिलोग फल मूल भोजन करे शान्तचित्त वायुभक्षी हो अच्छे नियमवान् तप में प्रवृत्त होते हैं बहुतेरे वेद उपवेदों में संयुक्त जप में नियत श्रद्धा, यज्ञ, क्रिया, तप, दान और दान लेने में प्रवृत्त हैं और कोई व्यापारी, कृषिकर्मी, गोपाल, कारव, शिल्पी, देवकर्म करनेवाले यह सब कामही से कर्मों में प्रवृत्त हैं और कितनेही कामना करनेवाले पुरुष समुद्र में भी प्रवेश करते हैं इससे कामही नानारूप धारण करनेवाला है और सब काम से ही विस्तार पानेवाला है कामात्मा के सिवाय कोई जीव न था न है न होगा। हे महाराज! यह प्रत्यक्ष है कि इस में धर्म अर्थ अच्छे प्रकार से वर्तमान हैं जैसे कि दही का तत्त्व मक्खन है उसीप्रकार अर्थ धर्म का सिद्धान्त काम है खल से तेल उत्तम है और मीठे से घृत उत्तम है काष्ठ से फूल फल श्रेष्ठ हैं इसीप्रकार धर्म अर्थ में काम सर्वोत्तम समझा जाता है जिसप्रकार फूल से मधु रस निकलता है उसीप्रकार इन धर्म अर्थों से काम उत्तम गिनाजाता है काम ही धर्म अर्थ का उत्पत्तिस्थान है और काम ही उन का रूप है विना काम केवल अर्थ से ही स्वादिष्ठ भोजन नहीं होता और विना

काम के ब्राह्मणों को भी कोई दान नहीं करता है और काम विना नाना प्रकार की लोकचेष्टा भी नहीं देखने में आती इस कारण यह कामही त्रिवर्ग मुख्य में जानाजाता है हे राजन्! तुम काम को पाकर सुन्दर वस्त्र और भूषणों से अलंकृत मद से मतवाले होकर प्यारी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करोगे तव जानोगे कि कामही सब में उत्तम है यह मेरा सिद्धान्त है इससे धर्म, अर्थ, काम तीनों सदैव सेवन के योग्य हैं और जो पुरुष एकही को चाहता है वह निकृष्ट है और जो त्रिवर्ग में सब ओर से प्रीति करनेवाला है वह सब में उत्तम है यह कहकर अनेक गुणसम्पन्न महावीर भीमसेन भी चुप होगये तव महाप्राज्ञ धर्मधुरन्धर धर्मराज युधिष्ठिर क्षणमात्र इनके वचनों को विचारकर यह वचन बोले कि निस्सन्देह आप सबलोग धर्मशास्त्र के ज्ञाता और प्रमाण जाननेवाले हो और मुझ इच्छावान् के लिये जो वचन कहा वह मैंने सुना हे समानबुद्धिवाले, भाइयो! मेरे इस वचन को सुनो कि जो मनुष्य निश्चय करके पाप, पुण्य, अर्थ, धर्म और काम में प्रीति करनेवाला नहीं है वह निर्दोषी सुवर्ण मृत्तिका को समान जाननेवाला पुरुष दुःख सुख और अर्थसिद्धि से निवृत्त होता है जन्म मरण से संयुक्त वृद्धावस्था को प्राप्त विपरीत दशा में पड़े जीव उन गुरुओं के समझाये हुये फिर मोक्ष कीही प्रशंसा करते हैं जिनको कि हम नहीं जानते हैं संसार में प्रीतिमान् पुरुष को मुक्ति नहीं होती है यह भगवान् ब्रह्माजी का वाक्य है ज्ञानी पुरुष मोक्ष में ही चित्त को लगाये रहते हैं इस कारण प्रिय अप्रिय दोनों को न करे यह बात उत्तम है कि मैं अपनी इच्छा के समान असावधान नहीं हूं जैसे मुझ को सबों ने प्रवृत्त किया उसीप्रकार के करता हूं ईश्वर या प्रारब्ध सब जीवों को कर्मों में प्रवृत्त करता है वह ईश्वर या प्रारब्ध महाबलवान् है इसको तुम सब जानो न पाने के योग्य अर्थ को कर्म के द्वारा नहीं पासक्ता है जो होनहार है वही होता है, त्रिवर्गरहित पुरुष भी मोक्ष को पाता है इस कारण वह गुप्त ज्ञान मोक्ष के निमित्त है वैशम्पायन बोले कि इन चित्तरोचक उत्तम २ वचनों को सुनकर सब लोगों ने राजा युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े और उनके वचनों की प्रशंसा की फिर प्रसन्नचित्त युधिष्ठिर ने भी अपने सब भाइयों की प्रशंसा की और भीष्मजी से जाकर फिर उत्तम धर्मों को पूछा ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणयापद्धर्मेसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, कुरुवंशियों के प्रीति बढ़ानेवाले, पितामह! मैं कुछ प्रश्न करता हूं उनके उत्तर आप कहने को योग्य हैं कि कैसे मनुष्य सौम्य होते हैं और कैसे लोगों से उत्तम प्रीति होती है और कौनसा पुरुष वर्तमान

मध्यदेशी होकर दस्यु के भाव को कैसे प्राप्त हुये तुम अपने प्राचीन वृद्धों को स्मरण करो कि कैसे वेद में कुशल थे उन के वंश में ऐसे कलंकी तुम उत्पन्न हुये इस से अपने स्वरूप और कुल को ध्यान करके इस महानिन्दित कर्म का त्यागकर इस स्थान में मत रहो तब उस गौतम ने बड़े विचार के साथ उसको उत्तर दिया कि हे मित्र ! मैं निर्धन हूं और वेद को भी नहीं जानता हूं और तुम धन के निमित्त यहां आये हो सो हे महाज्ञानिन्, वेदज्ञ ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतकृत्य हुआ अब रात्रि को आप निवास करिये कल प्रातःकाल हम दोनों अपने देश को चलेंगे वह ब्राह्मण घृणायुक्त किसी वस्तु का स्पर्श न करके वहां रहा और भोजन के विषय में बहुत सत्कार करने पर भी न खाया ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्याय. ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! उस रात्रि के अन्त में उस ब्राह्मण के जाने पर वह गौतम समुद्र के समीप गया वहां मार्ग में वर्तमान समुद्र के व्यापारियों को देखा और उन के साथ होकर सागर की ओर चला दैवयोग से वह जन-समूह किसी पहाड़ी गुफा के समीप मतवाले हाथियों से मारागया और यह ब्राह्मण मारे भय के घबराकर उत्तरदिशा को गया और अपने देश से दूर उस समूह से पृथक् होकर गुप्त होजाने के समान अकेला जंगल में फिरनेलगा फिर मार्ग को पाकर समुद्र के समीप एक वन को पाया जो कि क्रीड़ायोग्य दिव्य प्रफुल्लित वृक्षों से शोभित सब ऋतुवों के फलयुक्त नन्दनवन के समान यक्ष किन्नरों से सेवित शाल, ताल, तमाल और चन्दन अगर के वृक्षों से महा-सुगन्धियुक्त था वहां पर्वतों के सुन्दर शिखरों पर नाना प्रकार के पक्षी शब्द करते थे और मनुष्य का सा मुख रखनेवाले समुद्र और पर्वतों में उत्पन्न होने-वाले भूलिंग नाम पक्षी भी देखे उनके सुन्दर मधुर शब्दों को सुनता हुआ वह गौतम ब्राह्मण वहां आया जहां अच्छी क्रीड़ा के योग्य वन में सुवर्ण की रज से निर्मित उत्तम प्रकाशवती भूमि में एक बड़ा ऊंचा वटवृक्ष था जिसकी शो-भायमान शाखा महासुन्दर छत्राकार थीं और उसकी जड़ उत्तम चन्दन के जलों से सींचीहुई थी वह प्रफुल्लित शोभायमान वृक्ष कल्पवृक्ष के समान था गौ-तम उस अपूर्व उत्तम वृक्षको देखकर प्रसन्न हुआ और उसके नीचेबैठगया उसके नीचे सुगन्धियुक्त तीनों प्रकार की वायु चलनेलगी उस आनन्ददायी वायु के कारण वह सोगया और सूर्यास्त होनेपर सन्ध्या के समय वहां एक उत्तम पक्षी ब्रह्मलोक से अपने स्थान को आया वह नाड़ीजंघ नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मा जी का परममित्र बड़ाज्ञानी कश्यपजी का पुत्र बगलों का राजा था जिसको

पृथ्वी के लोग राजधर्मा कहते थे वह महासुन्दर प्रतापवान् देवकन्या का पुत्र शुद्ध किरीट आदि सुवर्ण रत्नों के आभूषणों से अलंकृत सूर्य के समान प्रकाशमान था उस पक्षी को देखकर गौतम बड़ा आश्चर्ययुक्त हुआ और भूख प्यास से व्याकुल थकेहुये ने मारने की इच्छा से उसकी ओर को देखा तब वह राजधर्मा बोला हे ब्राह्मण ! तेरा आना सफल हो तू मेरे घर पै प्रारब्ध से आया है और अब सूर्यास्त होकर सन्ध्या वर्तमान हुई और तुम निर्दोषी प्यारे अतिथि होकर मेरे घर में आये हो सो प्रातःकाल के समय तुम मुझ से पूजित होकर प्रसन्नता से अपने घर को जावोगे ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेएकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! तब तो शोचदृष्टि से संयुक्त गौतम ने उसके मधुरवचनों को सुनके बड़ा आश्चर्य करके उस राजधर्मा को देखा तब राजधर्मा बोला कि हे ब्राह्मण ! मैं कश्यप जी का पुत्र हूं और मेरी माता दक्ष की पुत्री है और तुम गुणवान् अतिथि हो इससे तुम्हारा आना सफल हो यह कह कर उस राजधर्मा ने बुद्धि में देखेहुये कर्म से उसका सत्कार करके शाल के पुष्पों के समान दिव्य कुशासन को दिया और जो मछलियां राजा भगीरथ के रथ से इधर उधर होकर गंगा जी से सेवित देशों में घूमती थीं उनको उसके भोजन के लिये देने का विचार किया और बड़ी २ मछलियां उसके भोजन को दीं और उसके श्रम दूरकरने को भोजन के पीछे बड़े आनन्द से अपने परों से वायु करी फिर विश्राम से बैठेहुये गौतम से गोत्र को पूछा तबउसने कहा कि मैं गौतम हूं वेद की कोई वार्ता नहीं कही फिर उसने मृदुपत्तों की शय्या बनाई और उसपर गौतम को सुलाया फिर उस राजधर्मा ने पूछा कि आप का आना कैसे हुआ तब गौतम ने कहा कि हे महात्मन्, ज्ञानिन् ! मैं निर्धन हूं और धन के लिये समुद्रपार जाने की इच्छा करता हूं तब उस काश्यप ने कहा कि हे ब्राह्मण ! सन्देह मत करो तुम मनोरथ समेत घर को जावोगे सो हे प्रभो ! अर्थसिद्धि चार प्रकार की हैं जैसा कि बृहस्पति जी ने कहा है प्रथम तो प्राचीन अर्थात् बाप दादों से, दूसरी ईश्वर या प्रारब्ध से, तीसरी सफल कर्म करने से, चौथी मित्र से प्राप्त होनेवाली है सो मैं तेरा मित्र उत्पन्न हुआ हूं और मेरी मित्रता तुझ में है सो मैं वही विचार करूंगा जिससे कि तू धनवान् होजायगा फिर प्रातःकाल के समय उस प्रसन्न ब्राह्मण से यह कहा कि हे सौम्य ! तुम इस मार्ग होकर जावो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा यहां से तीन योजन पै राक्षसों का बड़ा राजा महाबली विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध मेरा मित्र है सो

हे ब्राह्मण ! तुम मेरे कहने से उसके पास जावो वह तुम को निस्सन्देह अभीष्ट धन देगा यह सुनकर परिश्रमरहित हो अमृत के समान फल खाता हुआ उसके पास चला और मार्ग में चन्दन, अगर, दालचीनी, तेजपत्र इत्यादि वृक्षों को देखता चलदिया और उस मेरुव्रज नाम नगर में पहुँचा जो पर्वत का द्वार और परकोटा खाई आदि से शोभित पर्वतों केही यन्त्रों से वेष्टित था वहां पहुँ-चतेही उस बुद्धिमान् दनुजपति को मालूम हुआ कि यह प्रीतिमान् अतिथि मित्र की ओर से भेजा हुआ आया है तब उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि उस गौतम को शीघ्रही यहां लेआवो तब उसके मनुष्य गौतम का नाम पुकारते नगर के द्वार पर आये और उससे कहा कि शीघ्रही चलो राजा विरू-पाक्ष तुम को देखना चाहता है तब बड़ी तीव्रता से वह गौतम चला और उसके असंख्य धन को देख आश्चर्यित होता हुआ राजमहल को गया ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वहां जाकर वह ब्राह्मण राजा से पूजित होकर उत्तम आसन पर बैठाया गया-जहां भी राजा विरूपाक्ष ने ब्राह्मण से गोत्र प्रवर वेद और ब्रह्मचर्य पूछा परन्तु उसने सिवाय गोत्र के और कुछ नहीं कहा तब उनके रहने के स्थान को पूछा कि हे ब्राह्मण ! तू कहां का रहनेवाला है और तेरी ब्रा-ह्मणी कौन गोत्रवाली है मुझ पर विश्वास करके निर्भय होकर अपना सब वृ-त्तान्त कहो-गौतम बोला कि मैं मध्यदेश में उत्पन्न हुआ हूं और मेरा स्थान शबरजातिवाले मनुष्य के घर में है मेरी भार्या शूद्रा पुनर्भू है यह मैं तुझ से सत्य २ कहता हूं-भीष्मजी बोले कि इस बात को सुनकर राजा ने विचार किया कि मेरा कर्म अच्छा कैसे होगा और इसका कार्य कैसे बनेगा निश्चय है कि यह जन्म से तो ब्राह्मण है और उस महात्मा का मित्र है उस काश्यपगोत्रीय ने मेरे पास भेजा है वह मेरा रक्षक है इससे मैं उसके अभीष्ट को अवश्य करूंगा वह मेरा भाई बान्धव और चित्त से मित्र है अब कार्त्तिकी पूर्णमासी को मेरे घर हज़ार ब्राह्मण भोजन करेंगे वहां यह भी भोजन करेगा और मुझे इसको धन देना योग्य है और यही पवित्र दिन है और यह अतिथि है और धन भी संकल्प कियाहै अब दान करनाही योग्यहै तदनन्तर क्षौमवस्त्रधारी एकहज़ार स्नातक ब्राह्मण भी आगये तब उस विरूपाक्ष ने शास्त्र की रीति से जैसे अभ्युत्थान करना योग्य है उसीप्रकार उनका अभ्युत्थान किया और उनके चरण धोकर उनके निमित्त उत्तम पवित्र कुशासन बिछवादिये और यथायोग्य अपने २ आसनों पर राजा से पूजित होकर बैठगये फिर तिल जल कुशों से पूजेगये

और विश्वेदेवा समेत पितर और अग्नि स्थापन किये गये और चन्दन पुष्प अक्षतों से भी सुन्दर रीति से पूजन करके ऐसे विराजमान हुये जैसे कि नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा फिर सुवर्ण के थालों में अन्न मिष्टान्नयुक्त नानाप्रकार के सुस्वादुभोजन ब्राह्मणों को परोसेगये आषाढ़ी या माघ की पूर्णमासी को बहुत से ब्राह्मण उसके घरपर सुन्दर बनायेहुये भोजनों को पाते थे और विशेष करके कार्त्तिकी पूर्णिमा को ब्राह्मणों को धन का भी दान करता था अर्थात् सुवर्ण, रजत, मणि, बहुमूल्य मोती, हीरा, वैडूर्य, मृगचर्म और दक्षिणा में रत्नों के ढेरों को धरकर यह कहा कि अपनी इच्छा के अनुसार इन रत्नों को लो और जिन २ सुवर्ण के पात्रों में तुम ने भोजन किया है उनको लेकर अपने २ घर को जाओ यह सुनकर सब ब्राह्मणों ने अपनी २ इच्छा के अनुसार उन रत्नों को लिया जब शुभरत्नों से और सुन्दर वस्त्रों से शोभित वह ब्राह्मण उसके सत्कार से प्रसन्न होकर चलनेलगे तब फिर ब्राह्मणों से कहा कि हे ब्राह्मण लोगो ! अब कभी तुम को राक्षसों से भय न होगा प्रसन्न होकर अपने २ अभीष्ट देशों को जाओ देर मतकरो तब ब्राह्मणलोग चारोंओर को चलेगये और गौतम भी सुवर्ण के बोझ को लेकर शीघ्रता से उस वट के वृक्ष के नीचे आया और भूख प्यास से थकित पीड्यमान होकर बैठगया फिर वह राजधर्मा उसके पास आया और कुशल पूछकर गौतम को प्रसन्न किया और अपने परों की वायु से उसके श्रम को दूर किया और पूजन करके भोजन का भी आतिथ्य किया तब उस भोजन करनेवाले गौतम ने चिन्ता की कि मैंने लोभ मोह से इस सुवर्ण के बड़े भारको लिया है और दूर मुझ को जाना है और मार्ग में प्राण का धारण करनेवाला कोई भोजन मेरे पास नहीं है मैं कैसे प्राणों को धारण करूंगा इस की चिन्ता करके मार्ग में भोजन के योग्य कोई वस्तु न देखके उस अकृतज्ञ ने मन में यह विचार किया कि मेरे समीप यह बगलों का राजा बड़े मांस से भरा वर्तमान है इसी को मारकर साथलेकर शीघ्र जाऊंगा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मे एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वह पक्षियों का राजा राजधर्मा उस गौतम के समीप रक्षा करने के लिये प्रकाशमान अग्नि को स्थापन करके विश्वासयुक्त होके सोगया और वह कृतघ्नी दुष्टात्मा जो पहिलेही से उसके मारने के विचार में था उसने एक सूखी लकड़ी से उसको सोते में मारा और मारने के पाप दोष को मन में भी नहीं विचारा और बहुत प्रसन्न होकर उसके परों को अलग करके अग्नि में भूनकर उसको बांध सुवर्णसमेत घर को चला तब दूसरे दिन के अन्त में

विरूपाक्ष ने अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र! मैं अब पक्षियों के राजा राजधर्मा को नहीं देखता हूं क्योंकि वह पक्षी सदैव पूर्वाह्ण सन्ध्या में ब्रह्माजी के दर्शनों को प्रतिदिन जाता है तब मुझ को देखेविना कभी घर को नहीं जाता है सो दो दिन से मेरे घर को नहीं आया इस कारण से मेरे चित्त में सन्देह है उस मेरे मित्र को देखना चाहिये मत कहीं उस वेदपाठ से रहित जपहीन हततेज हिंसा धर्मवाले उस नीच ब्राह्मण ने तो उस को नहीं मारा यही मुझ को सन्देह है अर्थात् वह निर्बुद्धि दुष्टाचारी है इसको मैंने उसके लक्षणों से जाना है वह निर्दयी भयकारी रूप दुष्ट चोरों के समान नीच गौतम वहां गया है उसी से मुझ को सन्देह होगया है सो हे पुत्र! तुम शीघ्र जाकर उस राजधर्मा को घर में देखो कि वह जीवता है या नहीं यह पिता की आज्ञा पातेही उसका पुत्र बहुत से राक्षसों समेत शीघ्रता से वहां पहुँचा तो राजधर्मा के देह के पक्ष पृथ्वी में पड़ेहुये खाली वृक्ष को देखा यह वृत्तान्त देखकर वह राक्षस का पुत्र रोदन करके बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसके पकड़ने को गया और समीपही उसने गौतम को पकड़ा और राजधर्मा के देहसमेत उस पापकर्मी दुष्ट गौतम को राजा के सम्मुख किया वह राजा उस को देखकर मन्त्री और पुरोहितों समेत महारुदन करनेलगा और उस के महल की स्त्रियां और नगर के सब छोटे बड़े स्त्री पुरुष भी बड़े शोकयुक्त होकर रोदन करनेलगे तब राजा ने पुत्र को आज्ञा दी कि इस पापी को मारो और अपनी २ इच्छा के सदृश इसके मांस को खण्ड २ करो क्योंकि यह दुष्टात्मा पापाचार पापकर्मी तुमलोगों के मारने के योग्य है राजा की इस आज्ञा होनेपर महापापी गौतम के मांस का भक्षण किसी ने नहीं करना चाहा तब यह विचार किया कि इस नीच पापी को दस्युजातिवालों को देना चाहिये और यही विचार राजा से निवेदन करके शिर झुकाकर कहा कि हे राजन्! आप इसका पाप हमारे भक्षण के देने को योग्य नहीं हो तब राजा ने कहा कि ठीक है अब यह कृतघ्नी पापात्मा गौतम दस्युजातिवालों को दियाजाय तब उसके टुकड़े २ करके दस्युलोगों को दिया उनलोगों ने भी उस पापी को भक्षण करना न चाहा इससे सिद्धान्त यह है कि कृतघ्नी पुरुष के मांस को राक्षस भी कोई नहीं भक्षण करता हे राजन्! ब्रह्महत्या करनेवाला, मद्यपीनेवाला, चोरी करनेवाला और व्रत का त्यागनेवाला ऐसे लोगों का तो प्रायश्चित्त हो भी सक्ता है परन्तु कृतघ्नी मनुष्य के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है और ऐसेलोग जो कि मित्र से शत्रुता करनेवाले कृतघ्नी और हिंसा करनेवाले हैं उनका भोजन मांसभक्षी जीव और कीड़े भी नहीं करते ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वण्यापद्धर्मेद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तेंतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस को इसप्रकार दण्ड देकर उस राक्षसों के राजा ने उस बकराज की चिता को रत्न और वस्त्रों से अलंकृत नाना सुगन्धियों से युक्त ब-नाया और दाहक्रिया करके मृतकक्रियाओं को किया उसी समय शुभकारी दाक्षा-यणी देवी सुरभी के रूप में चिता के ऊपर वर्तमान हुई उसके थनों से बहुतसा दूध उस की चिता में गिरा उस दूध के प्रभाव से वह पक्षियों का राजा जीउठा और वहां से उठकर अपने मित्र विरूपाक्ष से मिला तदनन्तर देवराज इन्द्र भी विरूपाक्ष के पुर में आये और विरूपाक्ष से कहने लगे कि यह राजधर्मा अपने प्रारब्ध से जीगया है और वह प्राचीन इतिहास विरूपाक्ष को इन्द्र ने सुनाया कि जैसे ब्रह्माजी ने राजधर्मा को शाप दिया था अर्थात् जब राजधर्मा ब्रह्माजी के पास नहीं गया तब क्रोधयुक्त होकर ब्रह्माजी ने राजधर्मा से यह कहा कि अरे अज्ञानी, बगले ! जो मेरी सभा में तू नहीं आया इससे थोड़ेही समयमें मारा जायगा इसी कारण गौतमके हाथसे यह मारागया और अमृत के सींचने से फिर यह जीउठा यह सुनकर राजधर्मा ने इन्द्र देवता को नमस्कार करके यह वचन कहा कि हे देवेश्वर ! जो तुम बुद्धि से मेरे ऊपर अनुग्रह करते हो तो हे पुरुषो-त्तम ! मेरे प्यारे मित्र गौतम को भी फिर जीवदान दो तब इन्द्र ने प्रसन्न हो-कर उस गौतम को भी अमृत सींचकर जिलाया तब वह राजधर्मा सुवर्णपात्र युक्त उसको देखकर बड़ी प्रीतियुक्त हो उस मित्र से मिला और उस पापकर्मी को धन समेत विदा करके अपने स्थान को गया और पूर्व के समान फिर राजधर्मा ब्रह्मलोक को गये और ब्रह्माजी ने इस महात्मा को आतिथ्यधर्म से पूजन किया और उस गौतम ने भी उस दस्युजाति के राजा के स्थान को पाकर अपनी उसी दासी शूद्रा में पापी पुत्रों को उत्पन्न किया तब देवताओं के समूह ने उसे महाघोर शाप दिया कि अरे पापिन् ! तू बहुत दिनतक कुत्तेकी योनि में पुत्रों को उत्पन्न करके महाघोर नरक को पावेगा क्योंकि तू कृतघ्नी उपकार का भूलनेवाला है हे राजन् ! पहिले समय में यह वृत्तान्त तुम से नारद जी ने कहा था और मैंने उसको यथार्थ स्मरण करके बुद्धि के अनुसार तुम से कहा कि कृतघ्नी पुरुष को नतो यश है न स्थान है और न सुख है वह कभी श्रद्धा के योग्य नहीं है न उसके लिये कोई प्रायश्चित्त है अधिक करके पुरुष को मित्र से शत्रुता न करनी चाहिये क्योंकि मित्र से शत्रुता करनेवाला घोरनरक में गिरता है और कृतज्ञ और सदैव मित्रता चाहनेवाले मित्र को ईश्वर सदैव ऐश्वर्यवान् करता है मित्र सेही सब मनोरथ और प्रतिष्ठापूर्वक भोगों को भो-गता है और आपत्तियों में भी मित्रोंही के द्वारा उद्धार होता है इससे बुद्धिमान्

मनुष्य उत्तम सत्कारों से मित्र का पूजन करे पापी अकृतज्ञ निर्लज्ज मित्र से शत्रुता करनेवाला कुलनाशक पापकर्मी नीच मनुष्य ज्ञानियों को त्यागने के योग्य है हे राजन्, युधिष्ठिर ! यह उपकार भूलनेवाले पापात्मा मित्र से विरोध करनेवाले का वृत्तान्त तुझ से विधिपूर्वक कहा अब क्या सुनना चाहता है वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर से जब भीष्मजी ने कहा तब युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वएयापद्धर्मेत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इति शान्तिपर्वआपद्धर्मसमाप्तम् ॥

अथ महाभारत भाषा ॥

शान्तिपर्व मोक्षधर्म ॥

पूर्वार्धप्रारम्भः ॥

श्लोक श्रीमन्महाभारतशान्तिपर्वान्तर्मोक्षधर्मस्य विशुद्धभाषाम् ॥
करोमि कालीचरणाभिधोऽहं भाषाप्रबन्धेन जगद्धिताय १

पहिला अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने राजधर्म और आपद्धर्मों को बड़ी उत्तमता से वर्णन किया अब आप आश्रमों के श्रेष्ठधर्मों को वर्णन कीजिये- भीष्मजी बोले कि सब आश्रमों में श्रेष्ठ धर्म और ज्ञान देहही से नियत किया गया है उनके फलों को मैं कहता हूं तुम चित्त को एकाग्र करके सुनो कि धर्म के अनेक मार्ग हैं किसी मार्ग से धर्म करो सब सफल होते हैं सब का फल क्रम २ से मोक्षही से सम्बन्ध रखता है इस लोक का कियाहुआ धर्म बहुधा शीघ्रता से फलीभूत नही होता परन्तु दूसरे लोक में जन्मान्तर के द्वारा अवश्य प्राप्त होता है और जो धर्म ज्ञानपूर्वक इस लोक में किया जाता है उसका फल इसी देह से प्राप्त होता है सो हे युधिष्ठिर! जो पुरुष जिस २ विषय में जैसा २ निश्चय करता है उसी में अपना कल्याण मानता है और जो कदाचित् इस मेरे कहने से तुझ को शंका हुई हो तो यही सिद्धान्त समझना कि केवल धर्म का फल दृष्टिगोचर नहीं होता है किन्तु ज्ञानयुक्त धर्म का ही फल प्रत्यक्ष होता है तो धर्मकरना व्यर्थ है औरज्ञानही करना सार है इसका तात्पर्य यह है कि जो इस लोक में कामना के निमित्त धर्म को करते हैं उनको इसीलोकमें फल की प्राप्ति होती है क्योंकि धर्म के अनेक मार्ग कहे हैं इससे कभी सन्देह करना योग्य नहीं है और उत्तमलोग भी सदैव कहते हैं कि क्रिया कभी निष्फल नहीं होती है, पुत्रादि

की कामना, स्वर्ग की कामना, वेदान्तविचार की कामना इन तीनों में से जिस कामना में पुरुष का निश्चय होता है उसी में फल की इच्छा करता है अन्य में वासना नहीं करता और जैसे २ तृण के समान संसार को असार नाशवान् समझाजाता है तैसेहीतैसे सुखदायीवैराग्य बुद्धि में आताजाता है तब संसार को दुःखमय जानकर बुद्धिमान् लोग मोक्ष होने के यत्न को करते हैं, यह बात सुनकर युधिष्ठिर बोले कि यह आपने कहा सो सत्य है परन्तु अब यह भी कृपा करके समझाइये कि माता, पिता, धन, पुत्र, स्त्री इन सब के नष्टहोने से जो शोक उत्पन्न होता है उसकी निवृत्ति किस रीति से होती है भीष्मजी बोले कि माता, पिता, धन, स्त्री, पुत्रादि के नष्टहोनेपर संसार को अनित्य दुःखमय विनाशवान् जानके शोक के दूर होनेका उपाय करे अर्थात् चित्त से खेद को दूर करे इस तुम्हारे सन्देह के दूरकरने के निमित्त ज्ञान का देनेवाला एक प्राचीन इतिहास तुम से कहता हूं कि पूर्वसमय में पुत्र के शोक से महापीड़ित एक सेनजित नाम राजा था उसको शोक से महाव्याकुल देख एक शुभचिन्तक ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! तू क्या मूढ़ निर्बुद्धियों के समान शोच कररहा है तेरे शोच को देखकर तेरे सब बान्धव तेरे भी शोच को करेंगे और हम तुम सब नौकर चाकर, इष्टमित्र और जितने स्थावर जंगम जीव हैं सब अपनी २ देह और इन्द्रियों समेत वहांहीं जायँगे जहां से कि आये थे इससे ज्ञानमार्ग में प्रवृत्त धैर्यवान् होकर शोक को दूरकरो सेनजित बोला कि हे ब्राह्मण! वह कौन से उत्तमज्ञान, धर्म, तप, बुद्धि इत्यादि हैं जिनसे कि आप को कभी शोक नहीं सताता है ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! तुम संसार में जितने उत्तम मध्यम निकृष्ट अनेक जीवों को देखते हो सब दुःखोंही से भरे हैं इससे पण्डित बुद्धिमान् पुरुष कर्मकोही दुःखसुख का देनेवाला समझकर कभी हर्ष शोक को नहीं करते इस में एक कारण और कहता हूं उसको चित्त लगाकर सुनो और सदैव चित्त में विचारो कि यह जो जीवात्मा है वह नित्य है अविनाशी है और ईश्वर का प्रतिबिम्बरूप है वह न तेरा है न मेरा है जो देह का आत्माही अपना नहीं है तो धन,पुत्र,स्त्री,माता,पिता,पृथ्वी, स्थान आदि हमारे कैसे होसक्ते हैं और जब हम से कोई सम्बन्ध नहीं है तो हमारा उनपर प्रेमभी व्यर्थ है ऐसी बुद्धि के अनुसार ज्ञान होने से हे राजन्! हम को कभी शोक हर्ष नहीं बाधा करते, जैसे कि दो काष्ठ बहते२ समुद्र में मिलजाते हैं और फिर जल की तरंग से पृथक्२ होजाते हैं ऐसेही यह जीवों का समागम और पुत्र, पौत्र, स्त्री, ज्ञाति, बान्धव आदि का होना है इससे हे राजन्! यह सब पुत्रादि दुःख केही हेतु हैं ऐसा जानकर इनमें स्नेह कभी न करना चाहिये और जो तेरा पुत्र था वह ईश्वर केही घर से आया था और वहीं फिर चलागया अब तू किस का शोच करता है वह न तुझ

को जानता है न तू उसको जानता है तो शोच किसका है अब मैं पूछता हूं कि तू अच्युत के प्रतिबिम्ब को शोचता है या उसके शरीर को शोचता है जो देह को शोचता है तो देह जड़ है जैसे उसको शोचता है वैसेही काठ पाषाण का भी शोच करनाचाहिये और जो अच्युत के आभास को शोच करता है तो वह अच्युत एकही है परन्तु सब जगत् में व्याप्त है, तृष्णा से दुःख होता है और तृष्णा के नाश से सुख होता है दुःख के अन्त मे सुख और सुख के अन्त में दुःख इसीप्रकार यह दोनों दुःख और सुख मनुष्य के पीछे चक्र के समान फिरते रहते हैं इसी कारण से हे राजन् ! तुम को भी सुख के अन्त में दुःख हुआ है और इस दुःख के पीछे अवश्य तुम को सुख की भी प्राप्ति होगी क्योंकि न सदैव सुख रहता है न दुःख रहेगा यह शरीर दुःख और सुख का स्थान है और मनुष्य जिस २ शरीर से जो २ कर्म करता है उसके फल को उसी २ देह से भोगता है हे राजन् ! ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर संगही उत्पन्न होते हैं और अनेक रूप प्रकाश करके संसार में भी साथ ही साथ रहते हैं और संग ही संग दोनों का विनाश भी होता है जो पुत्ररूपी स्नेह की रस्सी से बँधे हैं वह ऐसे नष्ट होजाते मैंने देखे हैं जैसे कि रेत पर का बँधा हुआ सेतु जल से शीघ्र नष्ट होजाता है स्नेह के कारण तिल के समान कोल्हू में अज्ञानी लोग पिसते हैं उसीप्रकार मनुष्य संसारी स्नेहरूपी भार के द्वारा अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले क्लेश से पीड़ित होकर इस संसारचक्र में सदैव पीड़ा पाते हैं मनुष्य अपने पुत्र स्त्री आदि के पोषण के वास्ते पापकर्म को करते हैं वह दोनों लोक में महादुःखों को भोगते हैं अर्थात् उस कर्ता के पाप पुण्य को वह स्त्री पुत्रादि नहीं भोगते वह केवल उसके धन के भोक्ता हैं सब मनुष्य पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब में चित्त से प्रवृत्त होकर ऐसे शोक के समुद्र में डूबे हुये हैं जैसे वृद्ध जंगली हाथी कीच में और हे युधिष्ठिर ! धन, जाति, बान्धव आदि के नष्ट होने में दावानल के समान बड़ा भारी कष्ट प्राप्त होता है यह सब दुःख सुख ऐश्वर्य और नाश दैव के आधीन है तात्पर्य यह है कि पुत्रादि के नष्ट होने पर उनमें ममता न करनी चाहिये मित्र के साथ विना स्वार्थ के प्रीति और उपकार करनेवाला या मित्र के साथ शत्रुता रखनेवाला मित्र, शत्रु, सुबुद्धि, निर्बुद्धि कैसाही होय दैव सेही सुख दुःख को पाता है अर्थात् दैव को न माननेवाले धनाढ्य होने पर भी सुख की प्राप्ति में दुःखी होते हैं और दैव को माननेवाले धनाढ्य न होने पर भी लोभ के त्यागने से सुखी होते हैं सुख दुःख के देनेवाले मित्र शत्रु नहीं हैं और धन आदि की प्राप्ति में बुद्धि कारण नहीं है और सुखों के मिलने में धन उपयोगी नहीं है और धन की प्राप्ति में बुद्धि और नाश में अज्ञानता समर्थ कारण नहीं हैं तत्त्व का

जाननेवाला इस भोग के योग्य प्रपंच की उत्पत्ति और सिद्धान्त को जानता है और जोकि बुद्धिमान्, अज्ञान, शूर, भयभीत, अल्पज्ञ, दूरदर्शी, निर्बल, पराक्रमी, दैव का माननेवाला है उसको सुख प्राप्त होता है, गौ अपने बछड़े की है स्वामी की है और चोर की भी है परन्तु जो पुरुष उसके दूध को पीताहै वह निश्चय करके उसी की है तात्पर्य यह है कि उस में दूरकी ममता होना वृथा है इसी कारण आवश्यकता से अधिक इच्छा न करनी चाहिये जो पुरुष महाअज्ञानी हैं और जिन्हों ने बुद्धिमानों से भी बढ़कर ऐश्वर्य पाया अर्थात् निर्विकल्प समाधि में हैं वे मनुष्य आनन्दपूर्वक वृद्धि को पाते हैं और जो भेद के देखनेवाले हैं वह कष्ट को पाते हैं जो पण्डित लोग सिद्धान्तों में रमते हैं वह मध्य में नही प्रवृत्त होते हैं यहां सिद्धान्त की प्राप्ति को सुख और सिद्धान्त के मध्य को दुःख समझना योग्य है जो बुद्धि के सुख को प्राप्तकरनेवाले हैं और सुख दुःख ईर्षा आदि से रहित हैं उनको अर्थ और अनर्थआदि से कभी पीड़ा नहीं होती और जो पुरुष बुद्धिरहित अज्ञानता में डूबे हुये हैं वह दुःखों को भी पाते हुये अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, अज्ञानी पुरुष अहंकार में भरे हुये सत् असत् के न जाननेवाले कामादि दोषों से युक्त दूसरे की अप्रतिष्ठा या नाश करने से ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे कि स्वर्ग में देवताओं के समूह परिणाम में दुःख रखनेवाले सुख को जानकर दुःख ही ज्ञानसाधन के अनुष्ठान में उत्साहयुक्त सुख का उदय करनेवाला है इसीप्रकार आत्मा आदि लक्ष्मीयुक्त ऐश्वर्य के साथ ज्ञानी पुरुष में ही निवास करते हैं आलस्ययुक्तों में कभी नहीं नियत होते दुःखशोकात्मक चित्त का जीतनेवाला पुरुष प्राप्त होनेवाले प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख को समान जानकर सहता है पण्डित के सिवाय अज्ञानी पुरुष में प्रतिदिन हजारों शोक भय उत्पन्न हुआ करते हैं और स्वयंसिद्ध ज्ञानी बुद्धिमान् शास्त्र के अर्थों में दोष न लगानेवाला शास्त्रज्ञ शान्तचित्त जितेन्द्रिय पुरुष को शोक कभी स्पर्श नहीं करसक्ता है ऐसी बुद्धि में प्रवृत्त हो निष्कामचित्त होकर ज्ञानी पुरुष विचरता है जो ब्रह्म संसार की उत्पत्ति स्थिति लय का कारण है उस में जो लगा हुआ ज्ञानी है उसको शोक कभी नहीं स्पर्श करता है जिस देहके किसी अंग के कारण शोक दुःखादि ताप होयँ उस अंग को भी जबकि काट डालना योग्य है तो स्त्रीपुत्रादि किस गणना में हैं जब कुछ ममता कल्पना कीजाती है तभी शोक दुःखादि उत्पन्न होते हैं विषयों में से जिस २ विषय को त्यागता जाता है उस से सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है और विषयी पुरुष विषयों के साथ नाश को प्राप्त होता है, लोक में जो विषयादि सुख हैं और स्वर्ग के जो बड़े सुख हैं वह सब मिलकर लोभ के त्यागने पर वैराग्य नाम सुख के सोलहवें भाग के भी

समान नहीं हैं, वैराग्यवान् पुरुषको यह जानना चाहिये कि प्रथम देह का किया हुआ शुभ अशुभ कर्म ज्ञानी अज्ञानी वा शूर पुरुष को स्वतः सेवन करता है निश्चय करके इसीप्रकार यह प्रिय अप्रिय सुख दुःख जीवों के चारो ओर वर्तमान होते हैं इस बुद्धि में प्रवृत्त होकर गुणीपुरुष प्रसन्न होता है जो सब विषयों को त्यागकर क्रोधरहित होता है और यह चित्त से उत्पन्न होकर हृदय में वृद्धिपूर्वक वास करनेवाला क्रोधरूप जीवों के देह में नियत होता है उसको ज्ञानीलोग मृत्युरूप कहते हैं अर्थात् जन्म मरणवाले संसारका द्वार मानते जब इच्छाओं को सब प्रकार से कछुवे के अंगों के समान देह में लय करता है अर्थात् वह योगी हार्दाकाश नाम कारण ब्रह्म में प्रवेश करता है तब यह जीवात्मा सब उपाधियों से रहित उस अपने स्वरूप में जहां केवल आत्माही का प्रकाश है वहां अखण्ड चिन्मात्र को देखता है और माया के आवरण को त्याग करता है और जब ममता से कुछ कल्पित होता है, तब वह सब दुःखों के निमित्त प्राप्त होता है, जब आत्मा में चित्त के लय करने पर भय नहीं करता और न इससे कोई भयभीत होता और इच्छारहित होने से किसी से शत्रुता भी नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, सत, असत, शोक, हर्ष, भय, निर्भय, प्रिय, अप्रियता को अत्यन्त त्याग करके महाशान्तचित्त होता है और जब धीरपुरुष मन, वाणी, कर्म से जीवों में हिंसाआदि पापों को नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, जो कुबुद्धियों से कठिनता से भी त्याग नहीं होसक्ती है और जैसे २ वह वृद्ध होते हैं तैसे २ वह भी दृढ़ होतीजाती है और जो प्राणान्तक महारोगरूपी तृष्णा की आधिक्यता है उसके त्यागने से मनुष्य सदैव आनन्दयुक्त रहता है इस विषय में एक पिंगला नाम वेश्या के कहेहुये इतिहास को कहता हूं कि जैसे उसने दुःख के समय में भी सनातनधर्म को पाया उस को सुनो कि जब उस वेश्या को अपने स्थानपर निजप्यारे पुरुष से वियोग हुआ तब महादुःखी होकर उसने अपनी आत्मा में शान्तिबुद्धि को धारण किया तात्पर्य यह है कि वैराग्य का मुख्यकारण दुःखही है पिंगला ने अपने चित्त में विचारा कि मैं बहुतकाल से उस निर्विकार स्वामी ईश्वर को भूली हुई थी जो सदैव हृदय में रमण करनेवाला विद्यमान अच्युत अनूपरूप कान्त है उसको मैंने अपनी अज्ञानता से ऐसे ढकदिया था कि कभी नहीं जानागया एक थूण रूप अज्ञान में अविद्यारूप जो यह शरीर है वह अत्यन्त दुःखदायी है उसके नासिकादिक नवो द्वारों को मैं अपनी ज्ञानरूपी विद्या से चारो ओर से ढक दूंगी तब अपने हृदय के रमण करनेवाले प्यारे कान्त को बाहर न जानेदूंगी फिर उस आत्मलाभ से सब इच्छाओं के प्राप्त होने पर मुझ अनिच्छावान् को त्यागने के योग्य वह धूर्तमनुष्य अज्ञानरूप कान्त कान्ताभाव से कैसे ठगेंगे,

इसप्रकार से विदितहोकर अब मैं जागती हूं तात्पर्य यह है कि जिसने तत्त्व को पाया है वह विषयों से आकर्षण नहीं होता है और दैवयोग से जो पिछले पापकर्म हैं वह भी नष्ट होजायँ मैं विषयों से रहित ज्ञान को प्राप्तहुई हूं इससे जितेन्द्रिय हूं जो विषयभोग से पृथक् है वह सुखपूर्वक सोता है वही परमसुख है इस कारण पिंगला भी धन की आशा को विषयभोग से रहित करके आनन्द-पूर्वक सोती है भीष्मजी ने कहा कि हे युधिष्ठिर! तब ब्राह्मण के ऐसे सहेतुक वचन सुनकर राजा सेनजित आत्मतत्त्व की निष्ठा में वर्तमान होकर बहुत प्रसन्नहुआ ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आशा जीतकर मोक्ष की इच्छा करना यह आपने प्रथम अध्याय में वर्णन किया अब आप मेरे इस सन्देह को निवृत्त करिये कि जीवों के नाश करनेवाले इस काल के मध्य में वृद्धावस्थाआदि अनेक देह के रोगों से देह के नष्ट होने पर मनुष्य किस कल्याण को प्राप्तकरे, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं पिता पुत्र के संवादवाले प्राचीन इतिहास को तुझ से कहता हूं कि किसी वेदपाठी ब्राह्मण के पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ा बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ मेधावी जिसका नाम था उसने अपने पिता से यह कहा कि हे पिता! जब असत् सत् का ज्ञान प्राप्त होजाय तब मनुष्य को क्या करना उचित है यह मुझ से आप वर्णन कीजिये क्योंकि मनुष्यों की आयुर्दाय क्षीण होतीचलीजाती है पिता ने कहा कि हे पुत्र! जो तुम ने प्रश्न पूछा वह बहुत उत्तम है उसको समझ कर मैं कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि ब्रह्मचर्य से वेदों को पढ़ कर पितरों की पवित्रता के निमित्त पुत्रों को उचित है कि अग्नियों को स्थापन करके पुत्रोत्पादन करे फिर विधिपूर्वक अग्नियों में यज्ञ करे तदनन्तर मुनि रूप होकर वन में वास करे इस धर्म में प्राप्त होने से बड़े आनन्द को पाता है पुत्र ने कहा कि इसप्रकार मृत्यु से घायल होने और वृद्धावस्था से घिरजाने और क्षण २ में अवस्था व्यतीत होनेपर धैर्यवान् के समान आप वार्ता कहते हैं यह मुझ को आश्चर्य होता है पिता बोले कि लोक किसप्रकार किससे घायल और किससे व्याप्त है और कौन सफल होते हैं पुत्र ने कहा कि यह लोक मृत्यु से घायल है और वृद्धावस्था से घिराहुआ है बड़े कष्ट की बात है कि यह अहर्निश व्यतीत होतेजाते हैं तुम क्यों नहीं सावधान होते हो और यह दिनरात निष्फल आते जाते हैं अर्थात् अवस्था घटती जाती है परन्तु मृत्यु नियत नहीं होती अर्थात् क्षण २ में समीप आती जाती है इस को जानकर भी

मायाजाल से आच्छादित में किसप्रकार भ्रमण करता वाट देखूं बुद्धिमान् मनुष्य को जानना चाहिये कि दिनरात के अन्त में आयुर्दाय घटतीजाती है तब वह दिनरात भी निष्फल हैं जब इच्छा की अपूर्णता मेंही मृत्यु आजाती है तब बिन जल मछली के समान कौन सुख को पाता है सफल कर्मों के फलों को प्राप्त करनेवाले और आत्मा के विशेष दूसरीओर चित्त लगानेवाले पुरुष को मृत्यु ऐसे लेजाती है जैसे कि सिंहनी गौ के वछड़े को, तुम अब भी अपना कल्याण करो इस समय को व्यर्थ व्यतीत मत करो क्योंकि मृत्यु करने के योग्य कर्मों को न करने पर भी आकर्षण करैगी कल के काम को आज करो और रात्रि के काम को प्रातःकालही करो चाहे किसी का काम होचुका हो या न होचुका हो मृत्यु मुख फाड़ेही वैठी है कौन जानता है कि कब किसकी मृत्यु होती है इससे तरुणाई में ही धर्म का अभ्यास करे क्योंकि निश्चय करके जीवन नाशवान् है, धर्म करने से इस लोक में कीर्ति और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है मोह से भरा हुआ पुरुष पुत्र स्त्री के निमित्त कर्तव्य अकर्तव्य कर्मों को करके उनका पोषण करता है उस गृहस्थ के नाना जंजालों में फँसेहुये पुरुष को मृत्यु ऐसे उठा ले जाती है जैसे कि सोतेहुये मृग को सिंह उठा लेजाता है निन्दित वस्तुवों के ग्रहण करनेवाले और इच्छाओं में प्रवृत्त पुरुषों को काल ऐसे उठा लेजाता है जैसे कि पशु को व्याघ्र उठा लेजाता है, यह तो किया और यह करने के योग्य है यह आधा है और आधा वाकी है इसप्रकार के लोभ में फँसेहुये मनुष्य को मृत्यु अपने आधीन करलेती है कर्मों के फल को आप न पानेवाले और व्यापारी नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र वा दूकान आदि में आसक्तचित्त मनुष्य को मृत्यु अवश्य लेजाती है, अबल, सबल, शूर, भयातुर, पण्डित और सब मनोरथ न सिद्ध होनेवाले मनुष्य को मृत्यु लेजाती है, जब कि देह में मृत्यु बुढ़ापा रोग आदि अनेक दुःख लगेहुये हैं तो धैर्यवान् के समान कैसे आप वर्तमान हैं मृत्यु देह के नाश के ही निमित्त प्रकट हुआ है और बुढापा देह के अंगों को शिथिल करता है और सब स्थावर जंगम जीव इन दोनों मृत्यु बुढ़ापे से संयुक्त हैं और स्त्री पुत्रादि में जो प्रीति है यही मृत्यु का मुख है और जो एकान्त स्थान है वह देवताओं के बन्धन का आलय है और अपने जनसमूहों में जो प्रीति है यही सदैव बांधनेवाली रस्सी है और शुभकर्म करनेवाले इस रस्सी को सदैव काटकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और पापी इसको नहीं काटते हैं; जो पुरुष मन, वचन, वाणी और श्राद्धादिक कर्मों से जीवों को नहीं मारता है न किसी को मारने की अनुमति देता है वह धन और जीवन के नाश करनेवाले जीवों से नहीं माराजाता है न उनकी समानता को पाता है, मृत्यु की आनेवाली सेना को सिवाय सत्य के कोई पराजय नहीं करसक्ता है यद्यपि सत्य असत्य

का नाश करनेवाला है तो भी सबको असत्य का त्यागनाही योग्य है और सत्यही में मोक्ष वर्तमान है इस हेतु से सत्यव्रत का करनेवाला सत्ययोग में प्रवृत्त गुरु और वेद के वचनों को प्रमाण माननेवाला सदैव शान्तचित्त पुरुष उसी सत्य से मृत्यु को भी विजय करसक्ता है देह में मोक्ष और मृत्यु दोनों वर्तमान हैं मोक्ष सत्य से और मृत्यु असत्य से प्राप्त होती है मैं अहिंसक सत्यवक्ता काम क्रोध रहित सुख दुःख में समान परोपकारी हो हिरण्यगर्भ की समान मृत्यु को विजय करूंगा और देवयान मार्ग में शान्तियज्ञ के द्वारा प्रीतिमान् अर्थात् निवृत्तमार्ग में कुशल हो शान्तचित्त ब्रह्मयज्ञ में नियत उपनिषदों के अर्थ का ज्ञाता मुनियों के वचनों से यज्ञ करके चित्त का यज्ञ करनेवाला हूंगा जैसे कि पिशाच अपने देह के त्याग करने से पूजन को करता है उसीप्रकार मुझ सरीखा ज्ञानी विनाशवान् हिंसायुक्त पशुयज्ञों से पूजन करने को योग्य है अर्थात् नहीं है तात्पर्य यह है कि पशु आदि के देह को भी अपनाही देह समझकर कैसे नाश करूं जिसका मन वचन सदैव ब्रह्म में अर्पित हो और तप, त्याग, सत्य भी होय वह ज्ञानी निश्चय करके ब्रह्म को पाता है विद्या के समान नेत्र नही और सत्य के समान तप नही और राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है हे पिता! जो आश्रमों की परम्परा आपने वर्णन की वह मोक्षमार्ग में व्यर्थ होती हैं ब्रह्म में ब्रह्मरूप से उत्पन्न ब्रह्मरूप असन्तान होकर भी ब्रह्मही में उत्पन्न हूंगा सन्तान मेरी मुक्ति वैसी नहीं करसक्ती है जैसी कि एकान्त में स्थित और प्रशंसायुक्त गुरुपूजनादि से होती है ब्रह्मभाव, सत्यता, शान्तचित्तता, मन वाणी से हिंसारहित होना, शुद्धभाव इत्यादि से अधिक दूसरा ब्राह्मण का धन नहीं है इन सब कर्मों से पृथक् तुम को धनों से और बान्धव स्त्री आदि से क्या प्रयोजन है बुद्धि में स्थित आत्मा को खोजो और आपके पिता पितामह आदि कहां गये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! जैसे इस पुत्र के कहने के अनुसार उसके पिता ने किया उसीप्रकार तुम भी करो॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

तीसरा अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! आपने जो कहा कि मोक्षसाधन यज्ञ के द्वारा धन से होता है और निर्धनलोगों को मोक्ष होना कठिन है यह सुनकर मुझको आश्चर्य हुआ कि धनी और निर्धनी जो अपने शास्त्र के अनुसार कर्म करते हैं उन धनाढ्य लोगों का कौन रूप है और किसप्रकार से सुख दुःख की प्राप्ति होती है और निर्धनों को भी दुःख सुख की कैसी प्राप्ति है

इसको आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं कि जिसको इस लोक में शान्तवृत्ति जीवन्मुक्त सम्पाक ऋषि ने वर्णन किया है कि प्राचीन समय में निर्धनता से साधारण वस्त्र धारण किये भोजन की अभिलाषयुक्त प्रतिकूल स्त्री से पीड्यमान संसार से वैराग्यवान् किसी ब्राह्मण ने सम्पाक ऋषि से कहा कि इस संसार में उत्पन्न होनेवाले पुरुष को जन्म से ही नानाप्रकार के दुःख सुख सताते हैं जो कदाचित् दैव सुख दुःख के बीच में इसको प्राप्त करके एक मार्ग में लेजाय तो ऐसी दशा में दुःखपाकर दुःखी न होय और न सुख पाकर सुखी होना योग्य है चित्त के आत्मारूप होने से सदैव अनिच्छायुक्त भी इच्छावान् होकर धैर्य से योग के भार को उठाकर अपने मोक्ष की समानता में नहीं प्राप्त होता है क्योंकि तुम चित्तके जीतनेवाले नहीं हो धन स्त्री आदि से रहित चारो ओर को घूमता हुआ सुख को भोगेगा और वही आनन्दपूर्वक सोता और उठता है और अकिंचन होकर लोक में सुखरूप मोक्ष के समीप निर्विघ्न रहता है शत्रुवों से रहित कल्याणरूप मार्ग कठिनता से प्राप्त होता है परन्तु इच्छावानों को सुगम है इस संसार में अकिंचन सिद्ध वैराग्यवान् ज्ञानी के समान मैं तीनों लोक में किसी को नहीं देखता हूं मैंने ज्ञानियों की अकिंचनता को और राजाओं के राज्य को अच्छे प्रकार से तुला में तोला तो अकिंचनताही गुणों में राज्य से अधिक हुई अकिंचनता और राज्य में यह बड़ी मुख्यता है कि धनी तो ऐसा भयभीत रहता है मानो मृत्यु के मुख मेंही वर्तमान है और धन के त्यागने से इस अनिच्छावान् विमुक्त के विघ्न, अग्नि, मृत्यु और चोर आदि प्रकट नहीं होते हैं ऐसी इच्छा से घूमनेवाले शय्यारहित पृथ्वी पर शयन करनेवाले भुजारूप तकिया रखनेवाले निवृत्त पुरुष को देवता लोग भी अच्छा कहते हैं जो धनवान्, क्रोधवान्, निर्बुद्धि, कुटिलदृष्टि, रूक्ष और पाप मुखपर भृकुटी रखनेवाला दांतों से ओठों को काटता क्रोधाग्नि से कठोर बोलनेवाला होता है वह जो पृथ्वी को भी देना चाहता है तोभी कौन उसके देखने की इच्छा करेगा जो लक्ष्मीवान् होकर सदैव अज्ञानी को मोहित करता है उसके चित्त को लक्ष्मी ऐसे हरलेती है जैसे कि शरदृऋतु के बादल को वायु हरलेती है तदनन्तर इस धनी को रूप और धन का यह अहंकार होता है कि मैं बड़ा कुलीन हूं और सिद्ध हूं केवल मनुष्यही नहीं हूं इन तीनों कारणों से इसका चित्त असावधान होता है और उनमें अत्यन्त टक्कर खाया हुआ पिता के संचित धन को खर्च करके निर्धनता से धन आदि की चोरी को अच्छा मानता है उस बेमर्याद अर्थात् जहां तहां चोरी करनेवाले को राजालोग ऐसे दण्ड देते हैं जैसे कि बहेलिया बाणों से मृग को इसीप्रकार से इस लोक में नानाप्रकार के दैवीदुःख

और देह को स्पर्श करनेवाले दाह आदि भी मनुष्य को प्राप्त होते हैं लोक के धर्म को देह आदि के साथ तुच्छ करके उन अवश्य होनेवाले दुःखों की चिकित्सा बुद्धि से करे-विना त्याग के सुख और मोक्ष की प्राप्ति और निर्भयतापूर्वक शयन को भी नहीं करता है और सबको त्यागकर आनन्दपूर्वक सुख भोगता है यह हस्तिनापुर में सम्पाक नाम ब्राह्मण से मैंने सुना है इससे मैंने भी त्याग ही को उत्तम माना है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो कर्म के प्रारम्भ करने की इच्छा करनेवाले पुरुष को धन प्राप्त न हो वह धन के लोभ में भराहुआ क्या करके सुख को पावे-भीष्मजी ने कहा कि हानि, लाभ, प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा को समानकर धन आदि के निमित्त परिश्रम करके सत्यता, वैराग्यता आदि में अनिच्छा जिस पुरुष की होती है वही मनुष्य सुखी है-वृद्धों ने मोक्ष के निमित्त इन पांच पदों को कहा है यही स्वर्ग धर्म और सबसे उत्तम सुख माना है यहां एकप्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कि वैराग्यपूर्वक मंकी ने कहा है कि धन के चाहनेवाले वारंवार आशारहित होकर मंकी नाम मनुष्य ने कुछ शेष धन से छकड़े में जोड़ने के योग्य दो तरुणबैलों को मोललिया तो वह दोनों बछड़े जुये के लगने में बड़े सीखेहुये निकले और एक ऊंट को बैठाहुआ देखकर अकस्मात् दौड़े तो वह ऊंट महाक्रोधित होकर उन दोनों बछड़ों को उनके कन्धों के बीच से उठाकर बड़ी शीघ्रता से दौड़ा उस पराक्रमी ऊंट से उठाये हुये उन बछड़ों को मृतक हुआ देखकर वह मंकी बोला कि चाहे जैसा श्रद्धावान् कर्मकरनेवाला चतुर भी मनुष्य होय परन्तु विना दैव के दियेहुये धन को कठिनता से भी नहीं प्राप्त करसक्ता प्रथम मुझ मनोरथरहित सावधानचित्त और मनोरथ सिद्ध करनेवाले के इस उपद्रव को जोकि बछड़े और ऊंट के कारण उत्पन्न हुआ है देखो कि कुमार्ग के द्वारा मेरे बछड़े उछल २ कर ऐसे चले थे जैसे कि किसी ने दोनों हाथों से ताली वजाई और उसमें कौवा दबजाय अर्थात् काकतालीयन्याय होगया कि मेरे प्यारे दोनों बछड़े मणिके समान ऊंटके कन्धेपर लटकते हैं इसी को मुख्यदैव कहते हैं उसकी नाहीं में कोई उद्योग और पराक्रम नहीं होसक्ता अथवा जो किसी समयपर उद्योग भी बनपड़े तो वह भी उद्योग दैवाधीनही होजाता है अर्थात् उद्योग का फल नष्ट होने पर उद्योग भी प्रारब्ध सेही सिद्ध होता है इस कारण सुख के चाहनेवाले को वैराग्यही प्राप्त करना उचित है क्योंकि अर्थसाधन की आशा का त्यागनेवाला वैराग्यवान् पुरुष आनन्द से सोता है-गुरुजनक के स्थान से जानेवाले

सर्वत्यागी श्रीशुकदेवजी ने भी कहा है कि जो पुरुष सब कामनाओं को प्राप्त करे अथवा त्याग करे ऐसे स्थान में सब कामनाओं के मिलने से उसको सर्वत्यागही अधिक है–प्राचीन समय में भी किसीने सब कर्मों के प्रारम्भ के अन्त को नहीं पाया है–अज्ञानी का लोभीदेह जीवन में वृद्धि को पाता है हे इच्छा-वान्, मन ! तू सब कर्मों के प्रारम्भों को त्यागकर आन्तर्यस्वस्थचित्तता को प्राप्तकर वारंवार छलेजाने से दुष्प्राप्य वैराग्य को प्राप्तकर हे धन के चाहनेवाले, मन ! जो तुझसे मेरा नाश न होसके तो मेरे साथ इसप्रकार से क्रीड़ा करके मुझ को निरर्थक लोभ में संयुक्त मत कर तेरा धन वारंवार मिला और नष्ट हुआ अरे मूर्ख ! तू कभी भी इस धन की इच्छा को त्यागेगा यह मेरी बड़ी अज्ञानता है जो मैं तेरा क्रीड़ारूपी मृग बनाहुआ हूं क्योंकि इच्छारहित होनेपर कभी कोई भी पुरुष दूसरे की आधीनी नहीं करसक्ता है पहिले और दूसरे किसी मनुष्य ने भी इच्छा के अन्त को नहीं पाया है इस कारण मैं सब कर्मों के प्रारम्भ को त्याग करके सावधान होकर जागता हूं हे काम ! तेरा हृदय वज्र सा कठोर है जो हज़ारों अनर्थों से व्याप्त होकर भी खण्ड २ नहीं होता है मैं तुझ को और तेरे अभीष्ट को जानता हूं और तेरे प्रिय को भी चाहता हुआ भी मैं आत्मा में सुख को नहीं प्राप्त करसक्ता हूं और तेरे मूल को भी जानता हूं निश्चय करके तू संकल्प से उत्पन्न होता है मैं जब किसी बात का भी मनोरथ न करूंगा तो तू मूल समेत नाश होजायगा–धन की इच्छा सुखदायिनी नहीं है उसके कारण बड़ी चिन्ता प्राप्त होती है जब कि धन जाता है तब मृत्यु के समान खेद होता है देह की प्रीति त्यागने से जो दूसरों के निमित्त धन को नहीं पाता है उससे अधिक क्या दुःख है जो प्राप्त होने से भी तृप्त नहीं होता है अर्थात् वारंवार खोजा ही करता है धन लोभ को ऐसे बढ़ाता है जैसे कि तृषा को उत्तम गंगाजल यही तृष्णा मेरा नाश करनेवाली है हे काम ! मैं सावधान हूं मुझे छोड़दे जो यह इन्द्रिय आदि का समूह मेरी देह में वर्तमान है वह चाहे इच्छानुसार रहे या नष्ट होजाय परन्तु यहां तुम सरीखे काम के लोभियों में मेरी प्रीति नहीं है इस कारण से कामना को त्याग करके सत्यवाले सतोगुण में वर्तमान हूं और मैं अपने चित्त और देह में सब जीवों को देखता हूं और योग में बुद्धि को शास्त्र में चित्त को और ब्रह्म में मन को लगाकर राग द्वेष से रहित नीरोग सुखपूर्वक विहार करूंगा जिस से कि तुम फिर मुझको इसप्रकार के दुःखों में संयुक्त न करोगे क्योंकि मुझ तेरे भ्रमायहुये को दूसरी गति नहीं है हे काम ! तुम लोभ, शोक, परिश्रम के सदैव उत्पत्तिस्थान हो मैं भी जानता हूं कि धन के नाश में सबसे अधिक दुःख है। निर्धन मनुष्य की जातिवाले और मित्रलोग भी निन्दा करते हैं विना धन के मनुष्य में हज़ारों अपमान के साथ कठिन दोष हैं धन में जो

सुख का अंश है वह भी दुःखमय है धनी पुरुष को चोरलोग नानाप्रकार से भयभीत करके दण्डपूर्वक कष्ट देते हैं यह मैं बहुत काल से जानता हूं कि धन की लालसा महादुःखदायिनी है यह पुरुष जिस २ कामना में प्रवृत्त होता है उस २ को स्वाधीन करता है—तत्त्व का न जाननेवाला अज्ञानी दुःख से तृप्त होनेवाला अयोग्य अग्निरूप होता है तुम सुलभ दुर्लभ दोनों को नहीं जानते हो पाताल के समान पूर्ण न होनेवाले तुम मुझको दुःखों में डाला चाहते हो इससे मैं तुझ से मिलने के योग्य नहीं हूं अब धनक्षय और दैव की इच्छा से वैराग्यवान् होकर परमनिवृत्ति को प्राप्त करके कामनाओं की वासना नहीं करता हूं और यहां बड़े २ क्लेशों को सहकर भी अज्ञानता से ऐसे सचेत नहीं होता हूं मानो धन के नाश से ठगाहुआ महाभारी तप में प्रवृत्त अंगों में शयन करता हूं हे काम! मैं चित्त की सब वृत्तियों को त्याग करके तुम को सब ओर से त्याग करता हूं सो तुम मुझ से कभी स्नेह मत करो—मैं अपमान करनेवालों की क्षमा और दुःखदायियों को कभी दुःख न देकर सबके प्यारे वचनों को कहूंगा और यथालाभ सन्तोष करके तुझ अपने शत्रु को कभी न चाहूंगा वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब जीवों में दयावान् होना इत्यादि गुणों से सम्पन्न मुझ को जानो इस हेतु से मुझ मोक्षकामनावाले को काम, लोभ, क्रोधादि में मत प्रवृत्त करो क्योंकि मैं सतोगुण में वर्तमान हूं और काम लोभ से रहित होकर अब मैं बहुत प्रसन्न हूं और अज्ञान व लोभ के कारण दुःख को कभी न पाऊंगा—जो पुरुष इच्छा आदि को त्यागता है वह सुखी होता है सदैव काम के ही आधीन होनेवाला पुरुष दुःखही पाता है थोड़े रजोगुण में प्रवृत्त होकर मनुष्य योगइच्छा में चित्त को चलाता है और जो दुःख है वह काम क्रोध से उत्पन्न होनेवाला अमित और निर्लज्ज है मैं ब्रह्म में ऐसे प्रवेश करता हूं जैसे कि ऊष्म ऋतु में शीतलता हृदय में दुःख से रहित कर्मों की निवृत्ति को पाकर सिद्ध सुख को प्राप्त होता हूं लोक में विषयरूप सुख और स्वर्गसम्बन्धी महाआनन्द है यह दोनों उस सुख के षोड़शांश के भी समान नहीं हैं जोकि लोभ के नाश से प्राप्त होता है मैं सूक्ष्मदेह से सातवें काम को बड़े शत्रु के समान मारकर और अविनाशी ब्रह्मलोक को पाकर राजा के समान सुख को भोगूंगा ऐसी बुद्धि वर्तमान होकर मंकी ने सब कामनाओं को त्याग बड़े ब्रह्मानन्द में प्राप्त होकर वैराग्य को पाया और निश्चय करके बछड़ों के नाशहोने से काम के मूल को काटकर बड़े सुख को भी पाया ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थान में इस प्राचीन उपाख्यान को कहता हूं कि जिसको त्यागवान् राजा जनक ने कहा है कि मेरा पंचकोप लक्षणयुक्त धन असंख्य है अर्थात् देश, काल, वस्तु से पृथक् है मुझ शुद्धआत्मारूप का वह कुछ नहीं है अर्थात् रस्सी में सर्प के समान भ्रान्ति के सदृश मुझ में कल्पित है इस कारण मिथिलापुरी को अग्नि में भस्म होने पर भी मेरी कुछ हानि नहीं है इस स्थान पर बोध्यऋषि ने भी यह श्लोक वैराग्य के विषय में कहा है उसको सुनो कि राजा ययाति ने वैराग्य से शान्तिरूप शास्त्रज्ञ बोध्यऋषि से पूछा कि हे महाज्ञानिन्! आन्तर्यस्वस्थता होने के लिये मुझ को उपदेश करो कि तुम किस ज्ञान को विचार करके शान्त औरसुखी होकर विचरते हो बोध्यऋषि ने कहा कि मैं किसी को न उपदेश करता हूं न आज्ञा देता हूं उसके लक्षणों को कहता हूं उस से अपने आपही विचार करो कि पिंगला नाम वेश्या, कुरर नाम पक्षी सर्प वन में भ्रमर का घूमना, वाण बनानेवाला, कुमारी यह छह मेरे गुरु हैं और आशा अथवा विषयभोग बड़े प्रबल हैं और विषयों का त्यागना ही बड़ा सुख है—पिंगला वेश्या तो विषयभोगों को त्यागकर सुखपूर्वक सोती है—मांसवाले कुरर नाम पक्षी को मांस न खानेवाले पक्षियों से दुःखी देखकर दूसरा कुररपक्षी मांस के त्यागने के द्वारा आनन्द से वृद्धि को पाता है—घर का बनाना सदैव दुःखदायी है कभी सुखदायी नहीं होता, सर्प दूसरे के बनाये हुये बिल में घुसकर आनन्द से रहता है, भिक्षावृत्ति में लगेहुये मुनिलोग भ्रमर पक्षियों के समान जीवों से शत्रुता न रखने के कारण निर्विघ्न रहते हैं वाण बनाने में संलग्न किसी वाण बनानेवाले ने समीप में आये हुये राजा को भी नहीं जाना इसीप्रकार ब्रह्म में तदाकार होना चाहिये, बहुत से मनुष्यों में सदैव कलह होती है और दो पुरुषों का अवश्य विवाद होता है इसलिये चूड़ी रखदेनेवाली कुमारी के समान अकेला ही विचरूंगा॥ १२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

छठवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे व्रतज्ञ, शोकरहित, पितामह! ज्ञानीलोग किस व्रत को करके पृथ्वी में विचरें और इस संसार में मनुष्य किस कर्म को करके उत्तमगति को पाता है—भीष्मजी बोले कि यहां भी एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें अजगरवृत्ति मुनि का और प्रह्लाद का संवाद है बुद्धिमान् राजा प्रह्लाद ने राग द्वेष से रहित किसी दृढ़चित्त ब्राह्मण से पूछा कि तुम आत्मनिष्ठ, शुद्ध,

मृदु, जितेन्द्रिय होकर कर्म को प्रारम्भ किये विना अदोषदृष्टि, सत्यवक्ता, वाद प्रतिवाद में तत्पर, तत्त्वज्ञ होकर भी बालक के समान विचरते हो हानि लाभ में दुःखसुखरहित सदैव तृप्तपुरुष के समान किसी वस्तु को प्रिय अप्रिय न मान कर किसी को अपमान नहीं करते हो और कामादि के वेग से प्रजाओं के लूटने से खेदरहित चित्त धर्म, अर्थ, काम के कार्यों में कूटस्थ के समान दृष्टि पड़ते हो उस कूटस्थ को सुनिये कि धर्म अर्थ में अनियत काम में भी बर्ताव न करनेवाले इन्द्रियों के भी विषय को अनादर करके भोजन करते हुये साक्षी के समान जीवन्मुक्त होकर विचरते हो और हे ब्रह्ममुने ! आप का तत्त्वदर्शन शास्त्र और उसपर अभ्यास करना क्या है इसको मेरे कल्याण के अर्थ शीघ्रता से कहिये तब उस शास्त्रज्ञ ऋषि ने प्रह्लाद से यह सार्थक वचन कहे कि हे प्रह्लाद ! जीवों की न्यूनाधिकता और नाश को विना कारण के देखो अर्थात् माया के नाश होने से और सब दृश्यमान पदार्थों को ब्रह्ममय होने से द्वैतता सिद्ध नहीं होती है इसी से हर्षविषादरहित हूं सब पदार्थ स्वाभाविक प्रकट होकर वर्तमान हैं और सब आत्मसत्ता में ही संयुक्त हैं इस हेतु से किसी संसारी वस्तु को देखकर प्रसन्न नहीं होता और यही जानें कि यह संसार मिथ्या है इसप्रकार से तत्त्वदर्शी लोग आत्मभाव को सिद्ध करके अन्तर्दृष्टि से भी संसार को अनित्य और मिथ्या कहते हैं हे प्रह्लाद ! योगसे वियोग प्राप्त होनेवाले मनुष्यों को और अन्त में नाशवान् धन के समूहों को देखो कि मैं इसी कारण से कहीं चित्त को नहीं लगाता हूं—तीनों गुणों से संयुक्त जीव मृत्तिका से स्वरूपान्तर होनेवाले घट के समान नाशवान् हैं इस उत्पत्ति नाश के देखने और जाननेवाले ज्ञानी को कोई बात करने के योग्य नहीं है—दूसरे को भी दृष्टि से इस संसार को नाशवान् ही प्रसिद्ध करते हैं महासमुद्र के जल में उत्पन्न होनेवाले सब बड़े छोटे देहवाले जीवों का भी क्रमपूर्वक नाश देखने में आता है और हे असुरेन्द्र, प्रह्लाद ! पृथ्वी के भी सब स्थावर जंगम जीवों के भी नाश को सब ओर से देखता हूं और अन्तरिक्षचारी पक्षियों की भी मृत्यु को देखता हूं पराक्रमी जीवों की भी मृत्यु नियत समयपर होती है और आकाश के छोटे बड़े नक्षत्रों को भी नियत समयपर पतन होते देखता हूं इसप्रकार जीवों को मृत्युवश देखता हुआ सब में ब्रह्मसत्ता जानकर ज्ञानी होकर आनन्द से सोता हूं और स्वतः मिलनेवाले बड़े ग्रास को भी खाता हूं और कभी विना भोजन के भी बहुत दिनतक सोता हूं अर्थात् समाधि में वर्तमान होता हूं मैं अनेक गुणवाले अन्नों से बहुत भोजन फिर थोड़ा २ क्रम से घटाताहुआ यहां तक कि कुछ भी नहीं खाता हूं और इसकी अप्राप्ति में कभी धन खल मांसादि अनेक प्रकार के भोजनों को भी खाता हूं कभी पलँग पर कभी पृथ्वीपर सोता हूं कभी शय्या महल में जहां सनसूत्र और कोमल मृगचर्म

को ओढ़ता बिछाता हूं कभी २ बहुमूल्यवस्त्रों को भी धारण करता हूं दैवइच्छा से प्राप्त होनेवाले किसीप्रकार के भी वस्त्रों को त्याग नहीं करता हूं और इस कठिनता से प्राप्तवस्तु को रक्षापूर्वक भी नहीं रखता हूं पवित्र होकर इस अजगर व्रत को करता हूं यह व्रत बड़ा दृढ़ मृत्यु का विरोधी कल्याणकारी शोकरहित अत्यन्त पवित्र ज्ञानियों करके स्वीकृत अज्ञानियों से असेवित और अस्वीकृत है और बुद्धि में सावधान स्वधर्म से नाश न होनेवाला सन्धियोग करनेवाला दोनों लोक का जाननेवाला भय, मोह, लोभ, राग, द्वेष आदि से पृथक् इस पवित्र अजगरव्रत को करता हूं जिसमें भोजन पान करने की जो फल आदि वस्तु विपरीत दशा में प्राप्त देशकालवाली हैं वह नियत नहीं हैं और जो हृदय का सुखरूप विषय के नानालोभों से सेवन नहीं किया गया है अर्थात् यह करूं यह करूं इस लालसा से निरादरयुक्त धन न पानेवाले दुःखी मनुष्य को तत्त्व बुद्धि से अच्छे प्रकार से विचार कर शुद्ध अन्तःकरण से इस अजगरव्रत को करता हूं इस लोक में धन के लिये उत्तम अनुत्तम मनुष्यों के आश्रित बहुत प्रकार के दुःखी मनुष्यों को देखकर शान्तचित्त हो सिद्धान्त से इन सुख, दुःख, लाभ, हानि, राग, द्वेष, मृत्यु, जीवन को दैवाधीन देखकर भय राग अहंकार से रहित धैर्यवान् विचारवान् बुद्धियुक्त श्रेष्ठ फल के पानेवाले अजगर सर्पों को देखकर और शयन भोजन के नियम से रहित स्वाभाविकीय शान्तचित्तता नियम व्रत में दृढ़ सत्यता, पवित्रतायुक्त सब फलों से रहित प्रसन्न ज्ञानी होकर विषयवासना से पृथक्चित्त जितेन्द्रिय शुद्ध अन्तःकरण होकर इस अजगर व्रत को करता हूं यह अजगरव्रत सबको इसप्रकार से प्यारा वर्णन करते हैं और बुद्धिमान् कीर्ति चाहनेवाले पण्डित जो तर्कशास्त्र के ज्ञाता हैं वह भी इस अतर्क्य आत्मतत्त्व को बहुत प्रकार से उत्तम कहते हैं कि यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से निश्चय होनेवाला जगत् अज्ञानी मनुष्यों की ओर से आत्मा से पृथक् माना गया है तो उस जगत् का हेतु काल गुण देश आदि से निश्चय न होनेवाला दोषरहित देश से सम्बन्ध रखनेवाला है उसको शास्त्रयुक्तियों से विचारकर तृष्णारूपी दोष से पृथक् होकर मैं मनुष्यों के मध्य में विचरता हूं—भीष्मजी बोले कि इस लोक में जो महात्मा ज्ञानी पुरुष राग, भय, लोभ, मोह, क्रोध से पृथक् होकर इस अजगरव्रतरूप क्रीड़ा को करेगा वह सुखपूर्वक विहार करेगा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! अजगरव्रतरूप और आत्मभावलक्षणवाली प्रतिष्ठा कौनसी है और भाई बन्धु या मणि, मन्त्र, औषध, कर्म, धन,

ज्ञान आदि को भी मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि जीवों की अहिंसारूप प्रतिष्ठा को ज्ञान समझो इसी ज्ञान को बड़ा लाभकारी लोक में कल्याणरूप सत्पुरुषों ने स्वर्ग माना है ऐश्वर्य के नष्ट होनेपर राजा बलि, प्रह्लाद, नमुचि, मंकी आदि ने भी ज्ञान से ही मनोरथों को सिद्ध किया है उस ज्ञान से उत्तम कौन पदार्थ है इस स्थान पर उस पुराणकथा को भी कहता हूं जिसमें इन्द्र और काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण का संवाद है किसी अहंकारी धनवान् वैश्य ने किसी व्रती काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण को रथ की टक्कर से गिरादिया तब वह गिरकर महापीड्यमान क्रोधयुक्त हुआ और अधीर होकर बोला कि मैं मरजाऊंगा क्योंकि इस संसार में विना धन के जीवन निष्प्रयोजन है उस मरने की इच्छा करनेवाले मूर्च्छित अचेत लोभी ब्राह्मण शृगालरूप होकर इन्द्रने कहा कि सब जीवमात्र और देवतालोग नरयोनि को ही चाहा करते हैं और नरों में भी ब्राह्मण वर्ण को श्रेष्ठ जानते हैं हे काश्यपगोत्रीय! तुम वेदपाठी ब्राह्मण मनुष्य हो इस उत्तम देह को पाकर अज्ञानता से मरने के योग्य हो सब लाभ अहंकार से संयुक्त हैं अर्थात् वास्तव में सत्य नहीं हैं यह सत्यश्रुति है तुम सन्तोषी होकर लोभ से ऐसे उत्तम देह का अपमान करते हो बड़ा आश्चर्य है कि जिनके हाथ हैं उनकी यह मनोरथों की सिद्धता देखीजाती है—जैसे कि तुम धन की इच्छा करते हो उसीप्रकार हम हाथवालों की इच्छा करते हैं क्योंकि हाथ के प्राप्त होने के सिवाय दूसरा कोई विशेष लाभ नहीं है हे ब्राह्मण! देखो कि हम हाथ के न होने से न तो कांटा निकालसक्के और न देह में पीड़ा देनेवाले मच्छर मक्खी आदि को मारसक्के हैं हाथ रखनेवाले मनुष्य देह में दंश करनेवाले अनेक दुःखदायी कीटों को मारते हैं और वर्षाऋतु बर्फ़ और धूप आदि से अपने को स्थान आदि बनाकर रक्षा करते हैं और अन्न, वस्त्र, शय्या, वायु आदि के सुख को भी भोगते हैं और संसार में पृथ्वी और बैल आदि को स्वाधीन करके भोगते हैं और सवारी में लाते हैं और अनेक प्रकार के भोग भी हाथोंही के द्वारा अपने स्वाधीन करते हैं हे मुने! जिनके मुख, जिह्वा, हाथ, पैर आदि नहीं होते हैं वही मनुष्य देह के त्याग को करते हैं तुम इसके योग्य नहीं हो क्योंकि तुम प्रारब्धाधीन न तो शृगाल हो न सर्पादि कीड़े न मेंढक न किसी पापयोनि में पैदा हो हे काश्यप! इतने पदार्थों के होते भी तुम अधैर्यता करते हो तुम सब प्राणियों में उत्तम ब्राह्मण होकर क्षमावान् क्यों नहीं होते तुम मेरी दशा को देखो कि विनाहाथों के यह कीड़े मुझ को काटते हैं और कुछ नहीं करसक्का मैं इस अयोग्य देह को भी नहीं त्यागसक्का क्योंकि न जानें इससे भी निकृष्ट कोई पापयोनि में उत्पन्न होजाऊं मैंने पापयोनि में से इस शृगाल देह को पाया है इससे भी अधिक बहुत सी पापयोनियां हैं—कोई तो जन्म से

ही बड़े सुखी हैं और कोई अत्यन्तदुःखी हैं इस संसार में किसी को सर्वसुखसम्पन्न नहीं देखता हूं मनुष्य धनवान् होने के पीछे राजा होने की इच्छा करते हैं राज्य से देवभाव को देवभाव से इन्द्रपद को चाहते हैं इससे तुम धनवान् होकर राजपद इन्द्रपद पाने पर भी सन्तोष नहीं करोगे लोभ ऐसा प्यारा है कि उससे कोई तृप्त नहीं होता जैसा कि तुम में शोक है वैसेही प्रसन्नता भी है यही दुःख सुख सबमें हैं इसमें विलाप करना व्यर्थ है अर्थात् अपने उत्तम कुल में वर्तमान होकर आनन्द से शोक को दूर करसक्के हो सब कर्म और कामनाओं की मूल बुद्धि को और इन्द्रियों के समूह को देह में स्वाधीन करके ऐसे निर्भय होजावो जैसे कि मनुष्य पिंजरे में पक्षियों को बन्द करके उनके भागजाने आदि नहीं सुना जाता है क्योंकि वास्तव में एक शिर और दो हाथ होते हैं इनके सिवाय जो हैही नहीं तो उसके काटने का भय भी नहीं है तात्पर्य यह है कि जो तीनों काल में अद्वैत है तो भय भी नहीं है निश्चय है कि अज्ञानी पुरुष की इच्छा कहीं उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वह स्पर्श और देखने सुनने से भी प्रकट होती है तुम मद्य और लद्वाकू नाम पक्षी के मांस को स्मरण नहीं करते हो इनसे अधिक कोई भक्षण की वस्तु कहीं नहीं है हे काश्यप! पहिले समय में जीवों में जो दूसरे प्रकार के भोजन वर्तमान हुये और जिनको तुम ने भोजन नहीं किया उन भोगों का भी ध्यान तुम को नहीं होता है इस में सन्देह नहीं है कि देह के निर्वाह योग्य भोजन से अधिक भोजन करने न छूने और न उसके देखने का जो नियम है वह निस्सन्देह पुरुष का कल्याणकारी है हाथ रखनेवाले पराक्रमी धनीलोगों को भी मनुष्यों ने ही स्वाधीन किया है वह लोग वारंवार के घात और बन्धन से दुःख को पाते हुये भी निस्सन्देह क्रीड़ायुक्त होकर प्रसन्न होते हैं तात्पर्य यह है कि होतव्यता में दुःख को न मानना चाहिये बहुत से भुजाओं के बली शास्त्रज्ञ धैर्यवान् मनुष्य निन्दित और दुःखरूप आजीविका को करते हैं और दूसरी भी आजीविका करने की इच्छा करते हैं वह भी अपने कर्मानुसार होतव्यताही गिनीजाती है देखो म्लेच्छ चाण्डाल भी अपनी देह को नहीं त्यागना चाहता है सब अपनी २ योनियों में प्रसन्न हैं हे काश्यप! पक्षाघात से अयोग्य हाथ रखनेवाले अथवा किसी रोग से पीड्यमान मनुष्यों से अपने को सब प्रकार से उत्तम समझो कि तुम देह से नीरोग सर्वांगधारी उत्तम कुलीन अनिन्दित कलंकरहित वर्तमान हो इससे धर्म के निमित्त उठो और देह को त्याग न करो जो तुम मेरे वचन को मानोगे तो विवेकसहित चित्तशुद्धि को पावोगे इससे सावधान होकर वेदपाठ अग्निसंस्कार सत्यता शान्तता उदारता आदि में प्रवृत्तहोकर किसीसे ईर्षा न करो—जो कोई वेदपाठी यजन याजन आदि कर्मों को करते हैं वह शोचरहित

कल्याण के भागी होते हैं और अनेक उत्तम यज्ञों को करके सुखपूर्वक विहार करते हैं शुभनक्षत्र तिथि मुहूर्त में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ दानादि करके सन्तान की इच्छा में उद्योग करते हैं और इसके विपरीत अशुभ नक्षत्रादि में उत्पन्न होनेवाले लोग आसुरीयोनि में प्राप्त होकर यज्ञों से रहित होते हैं मैं पहिले समय में पण्डितों का विरोधी और वेदशास्त्र की निन्दा करनेवाला था और आन्वीक्षिकी नाम तर्कविद्या जो सब ओर से पुरुषार्थरहित है उसमें प्रीतिमान् हेतुवचनों का बोलनेवाला होकर साधुस्वभाव में कारणरूपही वचन बोलता था और वेदोक्तवचनों के विरुद्ध कठोरवचन कहनेवाला और वेदवचनों में ब्राह्मणों का उल्लंघन करनेवाला मूर्खता से सब में शंका करनेवाला महानास्तिक पण्डिताई में अहंकार करनेवाला था उसी कर्म के फल से यह शृगालयोनि मुझे प्राप्त हुई है कभी ऐसा भी ईश्वर करेगा कि मैं इस शृगालरूप नीचयोनि से छूटकर मनुष्ययोनि में भी प्राप्त होजाऊंगा तो मैं यज्ञ दान तप से प्रीतिमान् योग्यायोग्य का ज्ञाता और त्याज्य योग्य को त्याग करनेवाला होजाऊंगा तब उस आश्चर्य में भरेहुये काश्यप मुनि ने उठकर उससे कहा कि बड़ा आश्चर्य है कि तुम इस योनि में ऐसे बुद्धिमान् और कुशल हो यह कहकर ध्यानपूर्वक उसको देखा तब देवेन्द्र शचीपति इन्द्र को जाना और बड़ी विधि से उसका पूजन किया और पूजा पाकर इन्द्र अपने स्थान को गये ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि अजगरव्रत के प्राप्त करने में देह के अभिमान दूर करने के निमित्त ज्ञानही कारणरूप है और ज्ञान बुद्धि का ऐसा रूपान्तर है जैसा कि दूध से दही का रूपान्तर होता है वह समय पर आपही प्राप्त होजायगा फिर दान यज्ञ से क्या प्रयोजन है और हे पितामह ! जो ज्ञान इष्ट और कियाहुआ तप गुरु की सेवा आदि बुद्धि की प्राप्ति के कारण होते हैं उनको भी मेरे अनुष्ठान के योग्य आप कहिये भीष्मजी बोले कि अनर्थयुक्त बुद्धि के कारण चित्त पाप में प्रवृत्त होता है और अपने पापकर्म के कारण नरक भोगना पड़ता है पापात्मा दरिद्री लोग दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष क्लेश से क्लेश भय से भय और मरण से मरण को भी भोगते हैं अर्थात् वारंवार उनको सहते हैं और उत्सव से उत्सव स्वर्ग से स्वर्ग और सुख से सुख को पाते हैं और जो श्रद्धावान् जितेन्द्रिय शुभकर्मी हैं वह धनवान् हैं नास्तिक मनुष्य हाथों में हथकड़ी पहिरे सर्प हाथी आदि से अगम्य मार्ग में चोरों से भयभीत होकर जाते हैं इससे अधिक कौनसा दुःख होगा जो पुरुष देवता अतिथियों के प्यारे दानी साधुओं के कृपापात्र हैं वह चित्त को जीत

कर योगियों के मार्ग में नियत होते हैं वह योगमार्ग विघ्नरहित योग्य दान के समान है मनुष्यों में जिनका धर्म सुख का कारण नहीं है वह खेतों में गर्मी से पकेहुये अन्न के समान और पक्षियों में मच्छर के समान हैं जिस २ पुरुष ने जो २ कर्म पूर्व में किये हैं वही उनके साथ रात्रिदिन बने रहते हैं और शीघ्रता से दौड़ने के समय दौड़ते हैं और नियत होनेवाले साथ नियत होते हैं चलनेवाले के साथ चलते हुये प्रतिबिम्ब के समान पुरुष के समान होते हैं पूर्व में अपने २ जैसे २ कर्म जिसने किये हैं उनको अकेलाही भोगता है ऐसे कर्मवाले लोगों को कालपुरुष चारो ओर से खींचता है और जैसे कि अपनी २ ऋतु के समय फल फूल फूलते हैं उसीप्रकार काल भी अपने समय को कभी नहीं चूकता है अर्थात् कर्म का फल समयपर अवश्य होता है प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, हानि, लाभ, नाश, उदय, प्रारब्ध यह वारंवार होनहार के पीछे रूपों को बदलते हैं गर्भ से लेकर मरणपर्यन्त अपनी आत्मा से उत्पन्न होनेवाले पिछले देह के सम्बन्ध से दुःख सुख को भोगता है बाल, वृद्ध, तरुण कोई हो जो जिस समय जैसा २ कर्म करता है वह उसी २ दशा में अपने कर्मों के शुभ अशुभ कर्मफलों को भोगता है जैसे कि गौ का बछड़ा हजारों गौवों में से अपनी माता को पहिंचानता है उसीप्रकार से पिछले जन्मों का कियाहुआ कर्म भी कर्ता को पहिंचान लेता है कीच में बिगड़ा हुआ वस्त्र जैसे जल से साफ़ होता है इसीप्रकार से उपवासपूर्वक तप करनेवालों को अत्यन्त सुखकारी मोक्षरूप फल प्राप्त होता है तपोवन के बीच बहुत कालतक कियेहुये तपकेद्वारा उन धर्मों से निष्पाप होनेवाले पुरुषों के सब मनोरथ ऐसे सिद्ध होते हैं जिसप्रकार आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के चरण दृष्टि नहीं पड़ते उसीप्रकार से ब्रह्मज्ञानियों की भी गति है अर्थात् वह महापुरुष ब्रह्मलोक के जाने की इच्छा नहीं करते हैं किन्तु उनके शुद्धप्राण ब्रह्म में लय होजाते हैं निन्दापूर्वक वचन कहने के अपराधों को क्षमा करके कुशलता से अपने योग्य हित को करना चाहिये अर्थात् उस कर्म के द्वारा सब वासनाओं के उदय से श्रेष्ठबुद्धि प्रकट होती है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ऊपर के आठ अध्यायों में क्रम से वर्णन किया है कि पूर्वावस्था में इच्छा को त्याग हिंसारहित परिग्रहभिन्न शुभकर्म करनेवाला ज्ञानी अजगरीव्रत में वर्तमान ब्रह्मविद्या का अधिकारी होना और समय पर आत्मतत्त्व का भी वर्णनकर ब्रह्म को अद्वैत प्रतिपादन करके ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म ठहराया फिर कार्य कारण के न होने से संसार की उत्पत्ति

को अनहोना मानकर युधिष्ठिर ने फिर प्रश्न किया कि हे पितामह ! यह सब स्थावर जंगम कहां से उत्पन्न हुये हैं और प्रलय में किसको प्राप्त होते हैं इसको आप मुझ से वर्णन कीजिये कि यह सागर, आकाश, पर्वत, बादल, पृथ्वी, अग्नि, वायु समेत संसार किस से उत्पन्न हुआ है जीवों की उत्पत्ति और वर्णों का विभाग होकर उनके शौचाशौच धर्माधर्म विधि किस २ प्रकार से हुई है और जीवों का जीवात्मा कैसा है और जो मुक्त हुये वह किसमें लय हुये इस लोक से परलोक पर्यन्त का यह वृत्तान्त वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें भृगुजी ने प्रश्न करनेवाले भारद्वाज ऋषि से शास्त्र को वर्णन किया है कि भारद्वाज ऋषि ने प्रकाशवान् कैलास के शिखरपर महातेजस्वी भृगु महर्षि को बैठेहुये देखकर यह प्रश्न किया कि यह सागर, बादल, पर्वत आदि अनेक स्थावर जंगम जीवों सहित संसार किस से उत्पन्न हुआ है और पंचतत्त्व कहां से हुये और जीवों की उत्पत्तिपूर्वक वर्णन विभाग कैसे और कहां से हुआ है और शौचाशौच उनमें कैसे और कहां से हुआ है और धर्माधर्म और जीवों का जीव क्या है और जो मुक्त हुये वह किस में लय हुये और होते हैं यह सब इस लोक से परलोक पर्यन्त आप मुझ से वर्णन कीजिये तब भृगुजी ने कहा कि सब से प्रथम मानस नाम प्रकाश जो महर्षियों से जानागया वह आदि अन्त रहित देव दानवों से अभेद्य अजर अमर है और वृद्धि क्षय जन्मादि से रहित सदैव एकरूप अव्यक्त होकर प्रसिद्ध है उसी से जीवों की उत्पत्ति और नाश होता है तात्पर्य यह है कि निर्जीव गुणवाले चैतन्य नहीं होते अर्थात् उसी अव्यक्तदेव ने प्रथम महान्त को उत्पन्न किया फिर महान्त से अहंकार को, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी को उत्पन्न किया स्थूलतत्त्ववाले चार प्रकार के जीवों की अहंकार से उत्पत्ति है जो आकाशादि पांचतत्त्व सब में वर्तमान हैं वही महातेजस्वी ब्रह्म विराट्रूप है जिसके पहाड़ अस्थि, पृथ्वी मांस मज्जा, समुद्र रुधिर, आकाश उदर, वायु श्वास, अग्नि तेज, नदी नाड़ियां और अग्नि सूर्य चन्द्रमा नेत्र, आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण, दिशा भुजा हैं यह अचिन्त्य आत्मा सिद्धों से भी कठिनता से जानाजाता है और अनन्त नाम से प्रसिद्ध सब जीवमात्रों का आत्मारूप अहंकार में वर्तमान यह विष्णुभगवान् अशुद्ध अन्तःकरणवालों से कष्टसाध्य सब जीवों के उत्पन्न करने के निमित्त अहंकार को उत्पन्न करनेवाले हैं और इसी से यह विश्व हुआ यही तेरे प्रश्न का उत्तर है और दूसरा प्रश्न जो तेरा है कि संसार किससे उत्पन्नहुआ उसका उत्तर ऊपर ही दिया है कि विराट्रूप से उसमें वर्तमान है उसका मिलना नियतस्थान पर है अथवा सबस्थानपर है इसका उत्तर फिर देंगे भारद्वाजने कहा कि आकाश दिशा

पृथ्वी वायु इनका क्या परिमाण है इसको भी मूलसमेत वर्णन कीजिये भृगुजी बोले कि सिद्ध देवताओं से सेवित क्रीड़ायोग्य भवनों से युक्त जो यह आकाश है उसका अन्त नहीं है जहांतक कि सूर्य की किरणें जाती हैं उस से ऊपर और नीचे सूर्य और चन्द्रमा दृष्टि नहीं आते वहांपर देवताही अपने तेजों से सूर्य के समान प्रकाशवान् तेजस्वी अग्नि के सदृश तेजवाले हैं वह तेजस्वी देवता भी इस आकाश के अन्त को नहीं जानते हैं एक से एक ऊपर अपने २ तेजों से प्रकाशवान् लोकों से और अनेक देवताओं से यह आकाश व्याप्त है चौड़ाई का भी प्रमाण अनन्त है इसको सुनो पृथ्वी के अन्त में समुद्र और समुद्र के अन्त में अंधेरा है, अंधेरे के अन्त में जल और जल के अन्त में अग्नि वर्तमान है, रसातल के अन्त में जल और जल के अन्त में सर्पराज उसके अन्त में फिर आकाश और आकाश के अन्त में फिर जल है इसप्रकार से जलरूप भगवान् दीखते हैं परन्तु जल, अग्नि, वायु आदि के मण्डल का अन्त देवता भी कठिनता से जानसक्ते हैं अग्नि, वायु, पृथ्वी, तल, वरुण आदि आकाश से होते हैं और तत्त्वों के न देखने से विभाग को प्राप्त होते हैं अर्थात् वास्तव में सव आकाशरूप हैं परन्तु मुनिलोग नानाशास्त्रों में इसप्रकार से इस त्रिलोकी का परिमाण सागर समेत कहते और पढ़ते हैं कि जो अदृश्य और अगम्य है उसका क्या परिमाण कहना चाहिये जिसके जानने को देवताओं की भी गति नहीं है वह अनन्त विश्वरूप प्रलय की दशा में योगनिद्रा करके सबको अपने में लय करता है फिर जागने के समय वृद्धि को पाता है अर्थात् आदि, अन्त, मध्य में भी एकरूप होकर नहीं है अर्थात् ब्रह्मरूप है दूसरा कौन पुरुष है जो उसप्रकार के ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर जानने के योग्य हो अर्थात् कोई नहीं है क्योंकि मृगतृष्णा के बीच रस, रूप, जल और स्पर्श को कौन करसक्ता है तदनन्तर उनके स्थूल, सूक्ष्मरूप की नाभिकमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये वही सर्वज्ञ मूर्तिमान् धर्मरूप प्रभु पहिले प्रजापति सर्वोत्तम हैं भारद्वाजजी बोले कि जो ब्रह्माजी कमल से उत्पन्न हुये हैं तो उनसे पूर्व होने के कारण कमल क्यों नहीं बड़ा है और आप ब्रह्माजी को ही सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाला कहते हैं इसमें मुझ को सन्देह है भृगुजी ने कहा कि मनुष्य देव की जो मूर्ति है उसने ब्रह्मारूप को प्राप्त किया है उसके आसन विधान के निमित्त पृथ्वी ही कमलरूप कहीजाती है उस कमल का जो एक भाग आकाश की ओर को ऊंचा है उसका सुमेरु पर्वत नाम है उसके मध्य में वर्तमान होकर लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जगत् को उत्पन्न करते हैं॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेनवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशवां अध्याय ॥

भारद्वाजजी बोले कि हे भृगुजी ! सुमेरु पर्वत पर वर्तमान होकर ब्रह्माजी सृष्टि को किसप्रकार से उत्पन्न करते हैं क्योंकि जीवों की उत्पत्ति तो अपने २ वीर्यों से उत्पन्न दृष्टि आती है उसमें उसकी क्या ईश्वरता है इसको आप वर्णन कीजिये भृगुजी बोले कि मानस नाम देवता ने जीवों की रक्षा के निमित्त नानाप्रकार की सृष्टि को मन से उत्पन्न किया है अर्थात् वह सत्यसंकल्प है इससे वहां वीर्य की कुछ आवश्यकता नहीं है प्रथम जल को उत्पन्न किया वही जल सब जीवों का प्राणरूप है उसी से सब की वृद्धि होती है और उसके विना सब का नाश होता है उसी से सब व्याप्त है और पृथ्वी, पर्वत, मेघ और मूर्तिमान् जो अन्य पदार्थ हैं सब उसी जल से उत्पन्न जानो भारद्वाज बोले कि यह जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि कैसे उत्पन्न हुये हैं इस सन्देह को आप निवृत्त कीजिये भृगुजी ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! पूर्वकाल में ब्रह्मकल्प अर्थात् ब्रह्मलोक के कल्प के प्रारम्भ में महात्मा ब्रह्मऋषियों के समूह में भी संसार की उत्पत्ति के विषय में बड़ा सन्देह हुआ था तब आज्ञा हुई थी कि ध्यान योग में वर्तमान होना चाहिये यह सुनकर वह ब्राह्मण हृदयकमल की ओर ध्यान लगाकर निरोधरूप योग में नियत होकर स्थिर हो वायुभक्षण के आधार से दिव्य शतवर्ष पर्यन्त वर्तमान हुये वहां हृदयकमल में हार्दाकाश के द्वारा दिव्य रूप सरस्वतीजी प्रकट हुई और वेदरूप वाणी उन सबके कानों में पहुँची तो प्रथम हार्दाकाश में गुरु की युक्ति के द्वारा और स्थूलदेह से भिन्न सूक्ष्मदेह के चित्त धारण करने से श्यामरूप अचल अनन्त आकाश जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, वायु नहीं है सोताहुआ सा दृष्टि आया फिर कुछ अन्धकार दूर होने पर पुरुष को तृष्णायुक्त होने से जल की इच्छा होते ही जल उत्पन्न हुआ उस के पीछे वायु उत्पन्न होती ऐसी दृष्टिपड़ी जैसे कि विना छिद्र का घट विना शब्द के देखने में आता है उस पात्र को जल से पूर्ण होते ही वायु शब्दायमान करती है इसीप्रकार जल से आकाशपर्यन्त व्याप्त होने से शब्दायमान वायु समुद्रतल को फाड़कर उछलती है और समुद्र की पूर्णता से उत्पन्न होनेवाला वायु आकाश स्थान को पाकर चारो ओर को घूमता है और कहीं शान्ति को नहीं पाता है फिर उस वायु और जल के बढ़ने से प्रकाशवान् तेजस्वी और पराक्रमी ऊंची शिखा रखनेवाला अग्नि आकाश को अन्धकार से रहित करके उत्पन्न हुआ वह अग्नि वायु से मिलकर जल को आकाश की ओर उछालता है और वायु के ही योग से वह अग्नि बादलरूप होजाता है उस आकाश में जानेवाले जल का जो दूसरा रस नीचे को वर्तमान होता है वह अग्नि वायु से संयुक्त

होकर पृथ्वीरूप होजाता है यहां सब रस गन्धादि और जीवों के उत्पत्तिस्थान को सब वस्तुवों की उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी समझो ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि जो यह पांच धातु पंचतत्त्वों में ब्रह्माजी ने प्रथम उत्पन्न किये उन्हीं महाभूतों से यह सब लोक आच्छादित है इसमें सन्देह है कि जब ब्रह्माजी ने हजारों भूतों को उत्पन्न किया है तो केवल पांचही भूतों का होना कैसे सिद्ध हुआ अर्थात् ब्रह्माजी के उत्पन्न कियेहुये आकाशादि पंचधातु स्वप्न के समान मध्यवर्ती हैं वह अपनी मर्यादा से अलग होकर बाहर के लोकों के ढकने-वाले कैसे होसक्के हैं अर्थात् किसीप्रकार से नहीं होसक्के भृगुजी बोले कि जो अत्यन्तता से रहित हैं उनके लिये महाशब्द नियत हैं उनसे जीवों की उत्पत्ति होती है इसी कारण वह महाभूत कहे जाते हैं देह की चेष्टा, वायु, छिद्र, आकाश, उष्णता, अग्नि, रुधिर आदि सब जल हैं और मांस, अस्थि आदि कठोर वस्तु देह में पृथ्वी है इन हेतुवों से देह पंचतत्त्वात्मक कहा जाता है इन प्रकारों से सब स्थावर जंगम जीव पंचभूतों से संयुक्त हैं—श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पर्श, दृष्टि आदि सब इन्द्रिय हैं भारद्वाज बोले कि जो स्थावर जंगम जीव पंचभूतात्मक हैं तो स्थावर जीवों में भी पंचतत्त्व दृष्टि पड़ते हैं या नहीं उष्णता और चेष्टा से रहित ठोस वृक्षों के देह में पांच धातु मुख्यता से मिलती हैं वह वृक्ष न देखते हैं न सुनते हैं न गन्ध रस आदि के जाननेवाले हैं वह कैसे पंचतत्त्वात्मक हैं जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु और आकाश का भाव न होने से वृक्ष पंचभूतात्मक नहीं मालूम होते हैं, भृगुजी बोले कि ठोस वृक्षों में भी आकाश निस्सन्देह है क्योंकि सदैव उनमें फल फूल प्रकट होते हैं तात्पर्य यह है कि उनमें फल फूलों की प्रकटता और रस का होना विना आकाश के असम्भव है और ऊष्मा से छाल और फल फूल कुम्हिलाते हैं और गिरते हैं इस कारण स्पर्शेन्द्रिय भी उनमें वर्तमान है—वायु अग्नि और बिजली के शब्दों से फल फूल गिरते हैं इस कारण उनमें श्रवणेन्द्रिय भी है क्योंकि शब्द के सुनने से ही फल फूलों को गेरते हैं—लता वृक्षों से लिपटती है और सब ओर को जाती है और दृष्टि के विना मार्ग नहीं है इससे वृक्षादि में चक्षुरिन्द्रिय भी है उसीप्रकार पवित्र अपवित्र गन्धि और नानाप्रकार की धूपों से ही नीरोग होकर पुष्पित होते हैं इस हेतु से वृक्षों में घ्राणेन्द्रिय भी वर्तमान है जड़ों से जल के पीने और रोगों के देखने से और रोगों की चिकित्सा होने से वृक्षों में रसनेन्द्रिय भी वर्तमान है जैसे कि कमल अपने नाल से ऊपर को जल खीचता है उसीप्रकार वृक्ष भी

वायु के योग से अपनी जड़ों के द्वारा जल को पीता है और सुख दुःख होने और खण्डित शाखा उत्पन्न होने से वृक्षों में जीवों को देखता हूं इस निमित्त उन में जड़ता नहीं मालूम होती उसके पिये हुये जल को वायु और अग्नि पचाती है और आहार के रस से कोमलता और अंगों की दृढ़ता प्राप्त होती है सब जंगम जीवों के देहों में पांच धातु पृथक् २ नियत हैं उन्हीं से देहों की चेष्टा होती ही है त्वक्, मांस, अस्थि, गुदा, नाड़ी इन पांचो का एकत्वरूप देह में पृथ्वी है उसीप्रकार देहधारियों की देह में अग्नि, तेज, क्रोध, ऊष्म, चक्षु, जठराग्नि यह पांचो अग्निरूप हैं कान, नाक, मुख, हृदय, अन्न आदि का कोष, प्राणियों के देह में यह पांचो धातु आकाशतत्त्व से उत्पन्न हैं—कफ, पित्त, पसीना, मज्जा, रुधिर यह पांच प्रकार के जल सदैव प्राणियों के देह में वर्तमान होते हैं और प्राणी जैसे प्राण से चेष्टा आदि करता है उसीप्रकार वक्तृत्वशक्ति से प्राप्त होनेवाले उद्योग को भी करता है अपान चला करता है समान हृदय में वर्तमान है उदान से श्वास लेता है और कण्ठादि स्थान के विभाग से वार्तालाप करता है इस संसार में यह पांचो इन्द्रियां देहधारियों में चेष्टा करती हैं जीवात्मा घ्राणेन्द्रियरूप पृथ्वी से गन्धि के गुणों को जानता है और रसना जल से रस को जानती है और चक्षुरिन्द्रिय से रूप का ज्ञान होता है स्पर्शेन्द्रिय से वायु के द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये आकाशादि पंचतत्त्वों के गुण हैं और गन्ध के गुण जो ब्यौरेवार वृद्धों ने वर्णन किये हैं उनको भी विधिपूर्वक कहता हूं कि इष्ट, अनिष्टगन्ध, मधुर, कटु, निर्हारी, शहद, स्निग्ध, रूक्ष, विशद यह गन्धसम्बन्धी नवगुण पृथ्वी के हैं अग्नि नेत्रों से देखता है और वायु से स्पर्श को जानता है और शब्द स्पर्शरूप रस यह भी गुण पृथ्वी में कहे हैं अर्थात् जो मुख्य पांच गुण हैं उनमें से रस के गुण मुझ से सुनो उस रस को प्रसिद्धबुद्धि ऋषियों ने अनेक प्रकार से कहा है मधुर, लवण, तीक्ष्ण, कषाय, अम्ल, कटु यह जलरूप रस छह प्रकार के हैं और शब्द स्पर्श रूप इन तीन गुणों से युक्त अग्नि कही जाती है ज्योतिरूप के द्वारा देखने से रूप अनेक प्रकार के हैं—लघु, दीर्घ, स्थूल, चतुष्कोण, सूक्ष्म, गोल, श्वेत, कृष्ण, रक्त, नीला, पीला, हरित, कठोर, चिक्कण, स्वच्छ, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, मृदु, दारुण यह सब गुण अग्नि के हैं और स्पर्शगुण भी बहुत प्रकार का है उष्ण, शीत, सुखरूप, दुःखरूप, स्निग्ध, विशद, तीक्ष्ण, मृदु, चिक्कण, लघु, अतिविस्तृत और वायु के मुख्य गुण शब्द और स्पर्श हैं उन्हीं के यह ग्यारह भेद हैं इसीप्रकार आकाश में भी केवल शब्दही एक गुण है परन्तु उस एक के भी बहुत भेदों को कहता हूं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम, निषाद यह आकाश से उत्पन्न होनेवाले सात गुण हैं वह अपने ऐश्वर्य अर्थात

व्यापकता से पटहादि बाजों में भी वर्तमान हैं मृदंग, शंख, भेरी, बादल की गर्जना, रथ, जड़, चेतन का भी जो कोई शब्द सुना जाता है वह इन्हीं के अन्तर्गत में समझो इसप्रकार से आकाशजन्य शब्द बहुत प्रकार का कहाजाता है इन वायु के गुणों के द्वारा आकाश से उत्पन्न होनेवाला शब्द कहा है इन रुकावटों से रहित पवन के गुणों से शब्द जानाजाता है और भित्ति आदि की रुकावट से वह शब्द नहीं सुनाई देता है और छाल आदि वस्तु गोलकरूप इन्द्रियों की धातु से सदैव स्पर्श को पाते हैं और जल, अग्नि, वायु यह सदैव देहों में जागते हैं यही तीनों देह के मूल हैं और प्राण को आश्रय करके इस लोक में वर्तमान हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥

देह और इन्द्रिय आदि का पंचतत्त्वरूप होना वर्णन किया अब ज्ञानक्रिया शक्तिवाले विज्ञान और प्राण का भी पंचतत्त्वरूप होना वर्णन करते हैं क्योंकि वह चैतन्य आत्मा से पृथक् है यह सुनकर भारद्वाज ने कहा कि हे भृगुजी! आप इसको सिद्ध करिये कि देह में निवास करनेवाली अग्नि पंचभूतरूप देह को पाकर किसप्रकार से प्रकट होती है और प्राण भी उस देह को पाकर स्थान भेद से किसरीति से देह को चेष्टित करता है भृगुजी बोले कि हे निष्पाप, ब्राह्मण! मैं उस वायु की गति को तुझ से कहता हूं जो प्राणियों के देह को चेष्टित करती है कि अग्नि और चैतन्य विज्ञान और प्राणों की ऐक्यतारूप जीव है वही सब जीवों का आत्मा सनातन पुरुष है अर्थात् उपाधियुक्त होने से जीव और निरुपाधि होने में ब्रह्मरूप है वही जीवों का चित्त बुद्धि अहंकार और विषयरूप होजाता है इसप्रकार से वह देह प्राण से चेष्टा करता है और जीवन प्राप्त होने के पीछे समान नाम वायु से चेष्टित कियाजाता है वह समान वायु अपनी गति में समानरूप होकर प्राण जठराग्नि में वर्तमान हो अन्न को परिपाक कर उस के रस को अपने २ स्थान को पहुँचाता है और अपानरूप होकर गुदा और शिश्नेन्द्रिय में प्राप्त होकर मूत्र पुरीष को जारी करताहुआ घूमता है और उसी प्रकार कण्ठ में रहनेवाला उदान और सब शरीर में फिरनेवाला व्यान भी वर्तमान है वह समान वायु से चेष्टित मांस आदि में व्याप्त जठराग्नि रस धातु दोष को विपरीतरूप करता नियत होता है और अपान प्राण के मध्य में उन दोनों के योग से समान प्राप्त करनेवाले प्राण से कोष्ठाग्नि और नाभिमण्डल में नियत जो है जठराग्नि वह अन्नआदि को अच्छे प्रकार से परिपक्व करता है वह पकाहुआ अन्न इसप्रकार से शरीर में व्याप्त होता है कि मुख से लेकर वायु

तक जिसके अन्त में गुदेन्द्रिय है वही प्राण के चलने का मार्ग प्रसिद्ध है उस बड़े मार्ग से दूसरे अन्य प्राणमार्ग उत्पन्न होते हैं और जीवों के देह में व्याप्त होकर नियत होते हैं उन मार्गों से सब अंगों में प्राणों के पहुँचने से उन प्राणों समेत घूमनेवाली जठराग्नि का भी मेल होता है तब वहां ऊष्मा से अग्नि जानना योग्य है वही देहधारियों के अन्न को पचाती है, प्राणों के परस्पर में सन्निपात होने से सन्निपात उत्पन्न होता है जब अग्नि के वेग से चलनेवाला वायु गुदा के पास टक्कर खाता है तब प्राण ऊपरको आकर अग्निको उछालता है तात्पर्य यह है कि प्राण के रोकने के द्वारा जठराग्नि का भय दूर होता है इस से प्राण रोकने के योग्य हैं क्योंकि जठराग्नि के रुकने से सब इन्द्रियों का रुकना होता है इसको कहते हैं कि पक्क अन्न का स्थान नाभि के नीचे है और कच्चे अन्न का स्थान नाभि के ऊपर है और देह की नाभि के मध्यवर्ती जठराग्नि में सब इन्द्रिया वर्तमान हैं इसीप्रकार सब रस हृदय से तिर्छे और नीचे ऊपर को चलते हैं और दशप्राणों से लगीहुई नाड़ियां अन्न के रसों को लेजाती हैं यह मुख से लेकर वायु इन्द्रिय तक योगियों का मार्ग है जिसके द्वारा उस परमपद को प्राप्तहोते हैं परिश्रम को विजय करनेवाले जिन समदर्शी पण्डितों ने सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से मस्तक को पाके वहां आत्मा को नियत किया है इसीप्रकार प्राणधारियों के प्राण अपान नाम होकर सब मार्गों में प्राणनिरोधरूप योग में वर्तमान हैं इसका अनुष्ठान करने से ब्रह्म ऐसे अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है जिसप्रकार थाली में रक्खीहुई अग्नि होती है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि जो वायु ही जीवनमूल हो चेष्टा करती है श्वास लेती है बोलती है तो जीवन का होना निरर्थक हुआ और जठराग्नि अग्निरूप है और उससे ही अन्न पचता है और अग्निही उसको पचानेवाली है इसकारण से भी जीव निरर्थक है जब मृतकदेह में जीव नही रहता है तब वायु भी उसको त्याग देती है और ऊष्मा का नाश होजाता है जो जीव वायुरूप है अथवा उस वायु से उसका योग है और वायुमण्डल के समान दृष्टि पड़नेवाला है उस दशा में वह जीव पवनों के साथ प्राप्तहोगा और वायु को प्रधान रखनेवाले इस तत्त्व समूह से उसका योग है इस कारण से भी वह इससे पृथक्है और देह के नाश होतेपर वह इसप्रकार तत्त्वरूप है जैसे कि समुद्र में तांबा पत्थर आदि गिरने में पत्थर से पृथक् तांबा ही जल के ऊपर दृष्टि आता है जीव ब्रह्म का अंश है इस सन्देह को निवृत्त करते हैं कि कूप में जल डाले और अग्नि में दीपक रक्खे

जैसे कि इन दोनों का नाश होताहै उसीप्रकार यह भी नाशको पाताहै तात्पर्य यह है कि देह के नाश होनेपर ब्रह्म में प्राप्त होनेवाले जीव के स्वरूप का नाश ऐसे होता है जिसप्रकार समुद्र में नदियों के रूप का नाश होता है इस पंचतत्त्वात्मक देह में जीव कहां से पृथक् है उन पांचोमें से एक का नाश होने से जैसे चारो की स्थिति नही रहती है वैसे ही इस जीवका भी नाश होजाता है तात्पर्य यह है कि पंचतत्त्व का समूह ही जीव है जो भोजन न करने से शीघ्र नष्टता को प्राप्त होता है और श्वास रोकने से वायु और वायुस्थानों के रोकने से आकाश नाश को प्राप्त होता है और भोजन न करने से अग्नि का नाश होता है और नानाप्रकार के रोग और क्लेशों से पृथ्वी की न्यूनता होती है उन्हों में एक के भी पीड्यमान होनेपर संघात अर्थात् देह के तत्त्व आदि नाशको पाते हैं उन पंचतत्त्व के पृथक् २ होनेपर जीव न सुनता है न चेष्टा करता है न कहता है इससे ज्ञात हुआ कि संघातही जीवहै इस कारण परलोक आदि नहीं है तो दान आदि भी करना वृथा है इसको कहते हैं कि जो इस संकल्प से किया जाताहै कि यह गौ मुझ परलोकनिवासी को तारेगी यह कहकर जो जीव मरता है वह किसको तारेगी जब गोदान देनेवाला और लेनेवाला दोनों समान हैं वह इसी लोक में नाश को प्राप्त होते हैं उन्हों का मिलाप कहां होसक्ता है पक्षियों के खायेहुये और पर्वतों से गिरेहुये और अग्नि से भस्मीभूतों का फिर जीवन कहां से होसक्ता है जैसे कि जड़ से टूटेहुये वृक्ष नहीं जमते हैं तो उसके बीजही वृक्ष के स्वरूप को धारण करते हैं परन्तु मृतक फिर जन्म नहीं लेताहै सब से पहिले समय में केवल बीजही को उत्पन्न किया था जिसने कि इस देहरूप को प्राप्त किया मृतक से मृतक नही जीते परन्तु बीज से बीज वर्तमान होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि जीव का, दान का और कर्मका नाश नही है सदैव प्राणी दूसरे देह को पाता है और पूर्वदेह का नाश होता है देह में वर्तमान जीव उस देह के नाश होने में नाश को नही पाता है जैसे कि काष्ठ के भस्म होजाने से अग्नि दृष्टि नहीं पड़ती उसीप्रकार जीव भी देह के नष्ट होने में दिखाई नहीं देता तात्पर्य यह है कि केवल दृष्टि न पड़ने से वस्तु का नाश मानना योग्य नहीं है भारद्वाज बोले कि जैसे अग्निका नाश नहीं होता उसीप्रकार उसका भी जैसे नाश नहीं होता है उसको मैं कहताहूं कि इन्धन के जलजाने से वह अग्नि नहीं रहताहै, इससे मैं जानताहूं कि जिसका गमनरूप और नियतस्थान नहीं है तो इन्धन से पृथक् यह बुझीहुई अग्नि नाश को पाती है, भृगु जी बोले कि जैसे

काष्ठ के भस्म होनेपर अग्नि नहीं मिलती और रक्षास्थान से रहित आकाश में प्राप्त होने से कठिनता से ग्रहण करने के योग्य है उसीप्रकार देह के त्याग करने पर आकाश के समान वर्तमान जीव सूक्ष्मता से ऐसे नहीं पकड़ा जाता है जैसे कि काष्ठ के अन्तर्गत अग्नि को नहीं पकड़सक्के—अग्निरूप विज्ञान प्राणों को धारण करता है उसी विज्ञानरूप को जीव जानना चाहिये—वायु से नियत रहनेवाली अग्नि श्वास के रोकने से दृष्टि से गुप्तता को पाती है उस शरीराग्नि के गुप्त होनेपर जड़रूप पड़ाहुआ देह पृथ्वीरूप को पाता है उसकी लयरूप स्थान पृथ्वी है उसीप्रकार सब स्थावर जंगम जीवों की वायु आकाश के पीछे चलती है और उस वायु के पीछे अग्नि चलती है उन तीनों के एक होने से दो पृथ्वी पर नियत होते हैं जहां आकाश है वहां वायु है और जहां वायु है वहां अग्नि है वह तीनों दृष्टि से अलक्ष हैं इस कारण उन का नाश जानना कठिन है इसीप्रकार जीव भी अरूप है तो उसका नाश कैसे निश्चय करसक्के हैं भारद्वाज बोले कि हे निष्पाप! जो देहों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं तो उनमें जीव कैसे लक्षणवाला है इसको आप समझाइये और जो प्राणियों के देहों में पंचभूतरूप पांच विषयों से संयुक्त पंचज्ञानों से चैतन्य जीव है उसकी मुख्यता को मैं जानना चाहता हूं और मांस, मेदा, नाड़ी और अस्थियों के समूहवाले देह के नाश होनेपर जो जीव नहीं पाया जाता है और पंचतत्त्व से मिलाहुआ देह चैतन्य नहीं है उस दशा में देह और चित्त के खेद में कौन उस पीड़ा को जानता है और जो कहते हैं कि जीव सुनता है परन्तु वह चित्त के व्याकुल होने में कानोंसे नहीं सुनता है इस कारण जीव निरर्थक है, चित्त संयुक्त सब मनुष्य नेत्र से दृष्टि पड़नेवाली वस्तु को देखते हैं और चित्त की व्याकुलता में देखती हुई आंखें भी उसको नहीं देखती हैं फिर निद्रा के वशीभूत होकर न देखता, न सूंघता, न सुनता, न बोलता, न रस के स्पर्श आदि को जानता है इस देह में कौन क्रोध करता, कौन शोच करता, कौन भय करता, कौन प्रसन्न होता, कौन इच्छा करता, कौन ध्यान करता, कौन शत्रुता करता और कौन बात करता है भृगुजी बोले कि इस देह में पंचतत्त्व से पृथक् कोई वस्तु नहीं है केवल अन्तरात्मा ही देहकी चेष्टा करता है वही रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि गुणों को जानता है और पूर्व में जो कह आये हैं कि चित्त के व्याकुल होने में नहीं सुनता है उस पर कहते हैं कि पांच गुण-युक्त जो अन्तरात्मा है वह पंचतत्त्वात्मक देह में सब जगह वर्तमान है वही इस देह के सुख दुःखों को जानता है उसके वियोग से देह को कुछ ज्ञान नहीं होता है तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति और समाधि में चित्त आदि देह में रहते हैं परन्तु विना अन्तरात्मा के अपना काम नहीं करसक्के हैं जब कि रूप

और स्पर्श नहीं होता न अग्नि में उष्णता होती है तब अग्नि के शान्त होने और देह के त्याग होजानेपर अन्तरात्मा का नाश नहीं होता है अब स्थूल शरीर के नाश को कहकर सूक्ष्म शरीर के नाश को कहते हैं कि यह सब दृश्यमान पदार्थ जलरूप हैं और जलशरीरधारी की मृत्यु है उन जलरूपों में चित्तसम्बन्धी आत्मा ब्रह्मा आदि सब जीवों में लोक का उत्पन्न करनेवाला है वही प्रकृति के गुणों से संयुक्त क्षेत्रज्ञ कहलाता है और माया से रहित होकर परमात्मा कहाजाता है उस आत्मा को सब लोकों का सुखरूप जानो वह स्थूल सूक्ष्म शरीर में ऐसे वर्तमान है जैसे कि कमल पर अम्बुकण होता है, तुम अर्थवाले परमात्मा को सदैव सुखरूप जानो और इन सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण को जीव के गुण जानो तात्पर्य यह है कि आवरण प्रवृत्ति प्रकाश आदि का अभिमानी जो क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा है वही परमात्मा है जीव को भोग सामग्री को चैतन्य के साथ रखते हैं और जो जीव का गुण चेष्टा करता है उसको सर्वात्मा ब्रह्म चेष्टा देता है वह कैसा है कि क्षेत्र के जाननेवाले ज्ञानी उसको इस जीव से उत्तम अर्थात् असंसारी कहते हैं उसी में सातो भवनों को उत्पन्न करके अपने से व्याप्त किया है यह अज्ञानियों ने मिथ्या कहा है कि देह के नाश में जीव का नाश नहीं है अर्थात् मृतक होकर जीव दूसरे देह में प्रवेश करता है उसका देह का त्यागनाही मृत्युरूप है परन्तु उसका नाश नहीं है इसप्रकार अज्ञान से ढकाहुआ सबभूतों में अर्थात् देह इन्द्रियों आदि में व्याप्त होकर घूमता है वह तत्त्वदर्शी ज्ञानियों की सूक्ष्म और उत्तम बुद्धि के द्वारा देखाजाता है रात्रि दिन योग में आरूढ़ अल्पभोजी शुद्धान्तःकरण ज्ञानी उस अविनाशी आत्मा को आत्माहीमें देखता है, चित्त की शुद्धता से शुभ अशुभ कर्मों को त्याग करके शुद्धान्तःकरण ज्ञानी आत्मा में नियत होकर आनन्दरूप मोक्ष को पाता है—सब जीवोंकी देह में चित्त से प्रकट होनेवाला अग्नि अर्थात् प्रकाशरूप परमात्मा पुरुष जीव कहाजाता है—यह ब्रह्मसृष्टि ब्रह्मज्ञान के निश्चय करने के निमित्त प्रकट हुई है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि जीवों की उत्पत्ति आदि को कहकर अब वर्णों के विभागों को कहते हैं यहां पहिले कहा है कि चित्त की शुद्धता से मोक्ष को पाता है और चित्त की शुद्धि अपने धर्म का फल है इस कारण भृगुजी ने धर्म का वर्णन करना चाहा और कहा कि पहिले ब्रह्माजी ने अपने तेज से सूर्याग्नि के समान तेजस्वी ब्रह्मनिष्ठ सनकादिक और मरीचि आदि प्रजापतियों को

उत्पन्न किया फिर स्वर्ग की प्राप्ति के लिये प्रभु ने सत्य, धर्म, तप, सनातन वेद के आचार, शौच आदि को विचार किया तिस पीछे देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महाउरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्यों को उत्पन्न करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जीवसमूहों के जो नाना वर्ण हैं उन को भी पैदा किया ब्राह्मण का वर्ण श्वेत अर्थात् सतोगुणप्रकाशात्मक जितेन्द्रिय प्रकृति–क्षत्रियों का वर्ण लाल अर्थात् रजोगुणप्रवृत्त्यात्मक शूरता तेज युक्त प्रकृति–वैश्यों का वर्ण पीला रजोगुण तमोगुण से मिलाहुआ खेती आदि निकृष्टकर्म करनेवाली प्रकृति–इसीप्रकार से शूद्र का वर्ण काला तमोगुण से आवर्णित आत्मा प्रकाश प्रवृत्ति रहित प्रकृतिवाला उत्पन्न किया–भारद्वाज ने कहा कि जो चारो वर्ण की जाति से वर्णविभाग हुआ है वह नहीं है क्योंकि निश्चय करके सब वर्णों का वर्णसंकर दृष्टि आता है हम सब को काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, चिन्ता, क्षुधा आदि की पीड़ा होती है तो किसप्रकार से वर्णों का विभाग कियाजाता है पसीना, मूत्र, विष्ठा, कफ, पित्त, रुधिर आदि सबके देह से गिरते हैं तो कैसे वर्णों का विभाग जाने पशु, वृक्ष, पर्वत आदि की जाति अनेक हैं तो इन असंख्य वर्ण रखनेवालों का निश्चय कहां से होसक्ता है भृगु जी बोले कि वर्णों का विवेक नहीं है क्योंकि ब्रह्माजी ने प्रथम यह सब जगत् ब्राह्मणजातिवाला ही उत्पन्न किया था फिर अपने २ कर्मों से वर्णों को पाया जो ब्राह्मण कामी, भोगी, उग्रप्रकृति, क्रोधी, विनाविचार कर्म करनेवाले धर्म को त्यागकर रजोगुणी हुये वह क्षत्रियवर्ण होगये–जो गौवृत्ति में नियत रजोगुण तमोगुण से संयुक्त खेती से निर्वाह करनेवाले अपने धर्म को त्यागनेवाले हुये वह वैश्यवर्ण होगये–हिंसा मिथ्या से अनुरागी लोभी सब कर्मों से जीविका करनेवाले शोचरहित तमोगुणी हुये वह शूद्रवर्ण में वर्तमान हुये इन कर्मों से भी पतितकर्मी ब्राह्मणों ने अन्य २ वर्णों को पाया उन चारो वर्णों को धर्म और क्रिया का करना निषेध नहीं है जिन चारो वर्णों के लिये ब्रह्माजी ने वेदरूप सरस्वती को उत्पन्न किया उन्हों ने लोभ से अज्ञानता को पाया अर्थात् शूद्रभाव से वेद के अधिकार से बाहर होगये जो ब्राह्मण वेदोक्त अनुष्ठान में नियत हैं उन वेद धारण करनेवाले और सदैव व्रत नियम करनेवालों का तप नाश को नहीं प्राप्त होता है जो उत्तम वेद को नहीं जानते हैं वह नीच ब्राह्मण हैं उन्हों के अनेक प्रकार के जन्म बहुधा स्थानों में हुआ करते हैं और जो पिशाच, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकार की म्लेच्छजाति हैं वह ज्ञान विज्ञान रहित अपनी इच्छा के अनुसार ज्ञानचेष्टा रखनेवाले संसार को वेदोक्त करनेवाली अपने कर्म के निश्चय में प्रवृत्त प्रजा उत्पन्न होती हैं प्राचीन ऋषियों के तप से दूसरे नवीन ऋषि उत्पन्न किये जाते हैं और जो आदिदेव से उत्पन्न

ब्रह्ममूल अविनाशी धर्म में परायण हैं वह मानसी सृष्टि कही जाती है॥२०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि हे ब्राह्मणोत्तम, भृगुजी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारो वर्ण किस २ कर्म से होते हैं इस को आप कृपा करके वर्णन कीजिये-भृगुजी ने कहा कि जो पुरुष जातिकर्म आदि अड़तालीस संस्कारों से संस्कार कियाहुआ पवित्र वेदपाठ में प्रवृत्त अपने छह कर्मों में सावधान है अर्थात् स्नान सन्ध्या, जप, होम, देवपूजन, अतिथिपूजन, बलिवैश्वदेव इन छह कर्मों का करनेवाला है और शौचाचार में वर्तमान देवता और ब्राह्मणों से शेष बचेहुये अन्नादि को विधिपूर्वक भोजन करनेवाला गुरु में प्रीतिमान् सदैव व्रत करनेवाला सत्यधर्मपरायण है और जिसमें सत्यता, ज्ञान, अशत्रुता, अहिंसा, लज्जा, दया, तप आदि अनेक उत्तम बातें दृष्टि आती हैं उसको ब्राह्मण कहते हैं-जो हिंसायुक्त युद्ध आदि कर्म को सेवन करता है और वेदपाठ में प्रवृत्त दान देने और राज्य के कर लेने में तत्पर है वही क्षत्रिय है-जो पशुवों के होने से शीघ्र प्रतिष्ठा को पाता है और कृषि दान आदि में श्रद्धावान् पवित्र वेदपाठ में प्रवृत्त है उसको वैश्य कहते हैं-सदैव सब वस्तुवों के भोजन में प्रीतिमान् और सब कर्मों का करनेवाला अपवित्र वेदत्यागी आचार से रहित है वही शूद्र कहा जाता है-जो ब्राह्मण के गुण शूद्र में दृष्टि पड़ें और ब्राह्मण में वर्तमान न हों ऐसी दशा में शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं गिना जायगा-सब युक्तियों से क्रोध लोभ को जीतना और चित्त को चलायमान न करना यही ज्ञान सब ज्ञानों से पवित्र है, कल्याण के नाश में उद्युक्त वह दोनों क्रोध लोभ आत्मा से रोकने के योग्य हैं, सदैव लक्ष्मी को क्रोध से रक्षा करे और तप की मत्सरता से रक्षा करे, विद्या को मानापमान से, आत्मा को अज्ञानता से रक्षा करे हे ब्राह्मण! जिसके सब प्रारम्भकर्म फल से रहित हैं और सब कर्म फल के त्यागरूप अग्नि में होमे गये हैं वह त्यागी और बुद्धिमान् है, सब जीवों की हिंसा न करनेवाला सब की मित्रता प्राप्त करे और परिग्रहों को त्याग करके बुद्धि से जितेन्द्रिय हो ऐसे शोकरहित स्थान में वर्तमान हो जोकि दोनों लोकों में भय से रहित है सदैव तप करनेवाले शान्तचित्त सावधान मन पुत्रादि के स्नेह से विरक्त दुर्विजय को विजय करने के अभिलाषी मनहीं से विचार करने के योग्य हैं इसप्रकार जीवधारी के अनुष्ठान के योग्य योग को कहते हैं, जो २ इन्द्रियों से ग्रहण कियाजाता है वह व्यक्त अर्थात् माया रूप है यही मर्यादा है और जो इन्द्रियों से बाहर अन्य कारणों से प्राप्त करने के

योग्य है वही अव्यक्त जानने के योग्य है अर्थात् उसका साक्षात्कार होना चाहिये—विश्वास के विना जो प्राप्त होने के अयोग्य हो तो गुरु आदि के और वेद के वचनों में विश्वासयुक्त होकर उस में तदाकार होके चित्त को प्राण में और प्राण को ब्रह्म में धारण करे—वैराग्य सेही निर्वाण मोक्ष होता है क्योंकि निष्पाप ब्राह्मण वैराग्यही से आनन्दरूप ब्रह्म को पाता है अब योग के अधिकारी को कहते हैं उसको सुनो कि जो ब्राह्मण सदैव शौच आदि सत्य आचारवान् सब जीवोंपर दया करता है वही ब्राह्मणलक्षणयुक्त है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि ब्राह्मण का धर्म श्वेतवर्ण और शूद्र का धर्म कृष्णवर्ण यह पूर्व में कहा अब उन दोनों रूपों को कहते हैं कि ब्रह्म का प्राप्त करनेवाला वेद सत्य है सत्य तप है सत्यही संसार को उत्पन्न करता है सत्यही लोकों का धारण करनेवाला है सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति है—मिथ्या अविद्या आदि का रूप है इसीसे नरक में पड़ता है अविद्यादि में लिप्त अज्ञान से आच्छादित पुरुष प्रकाश को नहीं देखते हैं यहां स्वर्ग को प्रकाशरूप और नरक को अन्धकार रूप कहा है और उनदोनों से युक्त तमोगुण को सत्य मिथ्या से मिश्रित कहा है यहदोनों सब संसारियों को प्राप्त होते हैं उसमें जो सत्य है वही धर्मरूप प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सत्य है उसमें जो मिथ्या है वह अधर्म है जो अधर्म है वही तम है जो तम है उसी को अन्धकार कहते हैं ज्ञानीपुरुष इस संसार की उत्पत्ति को देखते हुये देह और चित्त के सम्बन्धी सुख दुःखों से मोह को नहीं प्राप्त होते हैं इस स्थान पर ज्ञानीपुरुष तो मोह से अवश्य निवृत्ति करे क्योंकि इस लोक परलोक में संसारियों का सुख विनाशवान् है जैसे कि राहु से ग्रसित चन्द्रमा का प्रकाश नहीं होता है उसीप्रकार अविद्या से निन्दित जीवों का सुख नाश होता है अर्थात् गुप्त होजाता है वह संसारीसुख अनेक प्रकार का कहाजाता है जैसे कि देह और चित्त आदि का सुख है इस लोक परलोक में प्रकट और अप्रकट फलवाले कर्म सुख के लिये वेद में इसप्रकार से कहे गये हैं कि कोई कर्म इस त्रिवर्ग से उत्तम नहीं है क्योंकि उस त्रिवर्ग का फल अतिउत्तम है वह आत्मा का मुख्यगुण काम न्यायशास्त्रवालों का स्वीकृत है और धर्म अर्थ जिस प्रधान सुख के गुणरूप हैं उसी के निमित्त कर्म का प्रारम्भ कियाजाता है इस सुख का उदय धर्म से है और प्रारम्भकर्म सब सुखों के लिये है—भारद्वाज बोले कि आपने जो यह सुखों की उत्तम मर्यादा वर्णन की हम उसको स्वीकार नहीं करते क्योंकि इन योग ऐश्वर्यों में वर्तमान ऋषियों का

कर्म निष्फल नहीं है, जो काम नाम मुख्य गुण है उसको वह ऋपिलोग नहीं चाहते हैं सुनाजाता है कि तीनों लोकों के उत्पन्न करनेवाले प्रभु ब्रह्माजी अकेले ही तप में प्रवृत्त होते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्माजी ईप्सित सुखों में आत्मा को नहीं धारण करते हैं और श्रीमहादेवजी ने भी सम्मुख आयेहुये कामदेव को अनंगरूप से ही शान्त किया इस से हम जानते हैं कि इस को महात्माओं ने नहीं स्वीकार किया है क्योंकि उनलोगों का वह अद्भुत मुख्य गुण नहीं है और ईश्वर में भी यह गुण नहीं पाया गया है क्योंकि भगवान् ने आप कहा है कि सुख से श्रेष्ठ नहीं है, लोकों का कथन दो प्रकार के फलों का प्रकट करनेवाला है कि अच्छे कर्म से सुख और नष्ट कर्म से दुःख प्राप्त होता है–भृगुजी बोले कि इस स्थान पर इस बात को निश्चय समझो कि अज्ञान से अविद्या प्रकट हुई इस कारण अविद्या में पड़ेहुये मनुष्य अधर्म पर ही आरूढ़ होकर धर्मयुक्त कर्म नहीं करते वह निश्चय करके क्रोध, लोभ, हिंसा, मिथ्या आदि से ठगेहुये इस लोक और परलोक में सुख को नहीं पाते हैं और नानाप्रकार के रोग और पीड़ाओं को भोगते हैं–घात बन्धनादि के दुःख और क्षुधा पिपासा परिश्रमादि की पीड़ाओं से दुःखीचित्त वर्षा वायु और शीतोष्ण की न्यूनाधिकता से उत्पन्न होनेवाले भय और देहों के कष्टों से दुःखी होते हैं और बान्धवों के वियोग और धन के नाश होने के दुःखों से मन्दादर जरा मृत्यु से उत्पन्न अनेक कष्टों को सहते हैं जो पुरुष इन चित्त देहादि के दुःखों से अलग रहता है वह सुख को जानता है–यह दोप स्वर्ग में नहीं होते हैं वहां पुरुष ऐश्वर्यवान् ही रहता है स्वर्ग में बड़ी सुखदायी वायु है वहां क्षुधा, तृषा, जरा, थकावट और ऊष्मा नहीं है केवल सुख ही सुख है यह दोनों दुःख सुख इसी लोक में हैं नरक दुःखरूप परमपद मोक्ष सुखरूप है, जैसे कि सब जीवों की उत्पन्न करनेवाली अविद्या सब क्लेशों की मूल है वैसे ही स्वर्ग में उसीप्रकार की स्त्रियां हैं और पुरुष ब्रह्माजी हैं जो कि अपनी पुत्री के पीछे कामवश होकर दौड़े और शिवजी ने उनका शिर काटा इस स्थान पर वीर्य ही तेजरूप है पूर्वसमय में ब्रह्माजी ने इस संसार को उत्पन्न किया इस के जीवमात्र अपने २ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तात्पर्य यह है कि मोक्ष का सुख सब से उत्तम है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

भारद्वाज बोले कि मोक्ष को कठिन जानके चित्तशुद्धि के द्वारा मोक्षकारक पवित्रकर्मों में प्रवृत्त होके जो २ कर्म करे उनमें दान, धर्म, आचरण, श्रेष्ठतप, वेदपाठ, जप, होम आदि का क्या फल है इसको आप कृपाकरके वर्णन कीजिये

भृगुजी ने कहा कि होम से पाप दूर होताहै वेदपाठ और जपसे उत्तमशान्ति उत्पन्न होती है-दानसे भोगों की अक्षयता होती है-तपसे स्वर्ग की प्राप्ति है इस लोक और परलोक के निमित्त दान दो प्रकार का है कि सत्पुरुषों के निमित्त जो दान दिया जाता है वह तो परलोक में मिलता है और नीचों को जो दान दिया जाता है उसका भोग इस लोक में भोगता है जैसा दान होगा वैसाही फल भी होगा—भारद्वाज बोले कि किसका कैसा धर्माचरण है धर्म का क्या लक्षण है और कितने प्रकार का है भृगुजी बोले कि जो ज्ञानी अपने धर्मआचरण में प्रवृत्त होते हैं उनको स्वर्गफल की प्राप्ति होती है और जो विपरीत आचरण करता है वह अज्ञानता को पाता है, भारद्वाज बोले कि हे ब्रह्मर्षिजी ! प्राचीन समय में जो यह चारो आश्रमों का धर्म नियत किया उन चारो आश्रमों के मुख्य २ आचरणों को आप कृपाकरके वर्णनकीजिये—भृगुजी ने कहा कि लोक के हितकारी ब्रह्माजी ने पूर्वहीं धर्म की रक्षा के लिये चारो आश्रमों को उपदेश किये हैं उनमें गुरुकुल को प्रथम आश्रम कहते हैं इस आश्रम में अच्छे प्रकार के शौच, व्रत, नियम, संस्कार आदि से शुद्धअन्तःकरण पुरुष दोनों सन्ध्याओं में सावधान सूर्य अग्नि और देवताओं का उपस्थान करके निद्रा आलस्य अयुक्तियों को त्यागकरके गुरु को दण्डवत् करे फिर वेद के पढ़ने में अर्थ का विचारकरना इन सब बातों से अन्तःकरण को शुद्धकर तीनों सन्ध्याओं में स्नान करके ब्रह्मचर्य, अग्निसेवन, गुरुसेवा और सदैव भिक्षाकरना और भिक्षावस्तुओं को गुरु के अर्पण करे तदनन्तर अन्तरात्मा से गुरु के उपदेश वचनों से कर्म में प्रवृत्त होकर गुरु की आज्ञा से वेद पढ़ने में उद्युक्त होजाय यहां यह कहाजाता है कि जो द्विज गुरु को अच्छेप्रकार से पूजन करके वेद को प्राप्त करे उसको स्वर्ग की प्राप्ति होती है और अन्तःकरण भी निर्मल होता है अर्थात् सत्यसंकल्प से सिद्धि प्राप्ति होती है गार्हस्थ को दूसरा आश्रम कहते हैं अर्थात् उस अच्छेप्रकार से उदयहोनेवाले सब आचारलक्षण को कहते हैं कि गुरुकुल में निवास करनेवाले श्रेष्ठआचरणी अपनी स्त्री में रति और उसको फल पुत्रादि के चाहनेवाले पुरुषों का गृहस्थाश्रम कहाजाता है उसीमें धर्म, अर्थ, काम इन तीनों की प्राप्ति होतीहै उस त्रिवर्गसाधन को ध्यान करके निन्दारहित कर्मों के द्वारा धन को प्राप्त करके वेदपाठ या जपसे प्राप्तहोनेवाले या ब्रह्मर्षियों से नियत अथवा खानि से उत्पन्नहोनेवाले मणि सुवर्णआदि या नियमों के द्वारा ईश्वर की कृपा से प्राप्तहोनेवाले मुनियों के हव्यकव्यरूपी धन से वह गृहस्थी गृहस्थधर्म में प्रवृत्त होवे उसी को सबआश्रमों का मूल कहते हैं क्योंकि जो गुरुकुलनिवासी संन्यासी और जो दूसरे संकल्प से व्रत नियम और अनुष्ठान के करनेवाले हैं उनकी भिक्षा बलि और पुत्रआदि के भागों का विभाग इसी आश्रम से होता है वानप्रस्थों

का धर्म बहुधा धन का त्यागना अथवा फलमूलों का भोजन करना है निश्चय है कि यह लोग साधुवृत्ति सुपथ्य खानेवाले वेदपाठ और जप का अभ्यास करनेवाले पृथ्वीयात्रा में देशों को पर्यटन करते हैं उन्हों के समीप जाकर प्रतिष्ठा करके आदर करना और उनसे निर्दोषवार्ता को कहना योग्य है आनन्द और श्रद्धापूर्वक सामर्थ्य के अनुसार आसन शय्या आदि देना उचित है यहांपर यह धर्म उचित है कि जिसका अतिथि घर से निराशा होकर लौट जाता है वह अपना पाप उसको देकर और उसका पुण्य आप लेकर जाता है इस गृहस्थाश्रम में यज्ञादिकों से देवता भी प्रसन्न होते हैं तर्पण से पितृ और विद्याभ्यास से ऋषि और सन्तान से प्रजापतिजी प्रसन्न होते हैं यहांपर यह बात करना योग्य है कि प्रीतिपूर्वक सब जीवों से कानों के सुखदायी वचन कहना योग्य है और दूसरे का दुःख दूर करनाचाहिये क्योंकि कठोर वचन, अपमान, अहंकार, कपट, हिंसाआदि महानिन्दित कर्म हैं और हिंसा न करना सत्य बोलना क्रोध न करना यही सब आश्रमों का तप है इस प्रीतिधर्म में माला भूषण वस्त्र तैलादिमर्दन सदैव उपभोग नृत्य, कर्णरोचक गीत वाद्य और नेत्रों के सुख रूप दर्शनों की प्राप्ति और भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय आदि अनेक रसों का भोजन उपभोग अपने विहार से सन्तोष और यथेच्छ सुखों की प्राप्ति है, जिसके गृहस्थ आश्रम में सदैव त्रिवर्गगुण की सिद्धि है वह इस लोक के श्रेष्ठ सुखों को भोगकर उत्तम पदवी को पाता है जो गृहस्थ उंछवृत्ति रखनेवाला अपने धर्माचरण में प्रीतिमान् चित्त की वृत्तियों का रोकनेवाला है उसको स्वर्ग की प्राप्ति सुगमता से होती है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि वानप्रस्थ भी धर्म को करतेहुये पवित्र तीर्थ, नदी, झिरनों पर मृग, भैंसा, वराह, शार्दूल, जंगली हाथियों से पूर्ण निर्जन वनों में तपकरते विचरते हैं, गृहस्थों के वस्त्र भोजन और उपभोगों के त्याग करनेवाले वन के फल मूल ओषधी आदि से नाना प्रकार के उचित भोजन करनेवाले स्थान, आसनयुक्त, पत्थर, पथरीली, कंकड़ीली रेतीलीआदि पृथ्वीपर सोनेवाले कांस, कुशा, मृगचर्म और भोजपत्रों के धारण करनेवाले शिर, मुण्ड, दाढ़ी, मूछ, नख और रोमयुक्त देह समय पर स्नान करके पृथ्वी में हवन का अनुष्ठान करनेवाले लकड़ी, कुशा, फूल, दक्षिणा के शुद्ध करने में विश्राम लेनेवाले शीत, उष्ण, वर्षा, वायु के सहनेवाले नाना प्रकार के नियम उपभोगयुक्त चारों ओर को

घूमना और अनुष्ठान की विधि से शुष्कमांस, रुधिर, चर्म, अस्थि सहित धैर्यवान् होकर शेष अवस्था को व्यतीत करते हैं—ये जो इस ब्रह्मऋषियों के नियत किये हुये आचार पर चलता है वह अग्नि के समान दोषों को भस्म करके दुष्प्राप्य लोकों को विजय करता है तदनन्तर संन्यास धर्म है उसमें अग्नि, धन, स्त्री, शय्याआदि भोगों की सामग्री को त्याग करके आत्मा को निस्संग करके प्रीति की फांसियों को काटकर संन्यासी होते हैं मिट्टी पत्थर सुवर्ण आदि को समान माननेवाले त्रिवर्गी पुरुषों में बुद्धि न लगानेवाले शत्रु मित्र उदासीन को बराबर देखनेवाले स्थावर जंगम और चारो खानि के जीवों से मन, वाणी, चित्त से शत्रुता न करनेवाले स्थानरहित पहाड़, पुलिन, वृक्ष और देवालय आदि में विचरनेवाले कार्य वश से ग्राम नगरों में क्रम से एक रात्रि पंचरात्रि निवास करते हैं फिर उन ग्राम नगरों में प्रवेश करके प्राणों की रक्षा के लिये उन द्विजन्माओं के अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के स्थानों के समीप निवास करें जहां रसोई आदि प्रबन्ध होचुका हो वहां पात्ररहित भिक्षावृत्ति में काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह, कृपणता, कपट, निन्दा, अभिमान, हिंसा आदि से रहित यह कर्म करे कि सब जीवों को निर्भय करके विचरे और किसी स्थान में किसी जीव को उससे भय न हो और वेदपाठ और अग्निहोत्र को अपने शरीर में नियत करके अपने मुख में भिक्षा से प्राप्त होनेवाले हव्यों से देह की अग्नि में आहुति दे ऐसे अग्निहोत्र करनेवाले मुनियों के लोकों को जाते हैं अथवा भिक्षासे मिलनेवाले हव्यों से प्राणाग्नि में हवनकर अग्नि के समान प्रकाशित देह में वर्तमान जीव को अपने मुख में अर्थात् ब्रह्म में लय करके एकता प्राप्त करे तो वह अग्निहोत्र का त्यागी ब्रह्मज्ञानियों के लोकों को पाता है जो पवित्र संकल्प से रहित बुद्धिवाला ब्राह्मण वेदोक्त मोक्ष आश्रम में विचरता है वह उस ब्रह्मलोक में जो निरिन्धन अग्नि के समान शान्तिरूप है प्रवेश करता है भारद्वाज बोले कि इस लोक से परलोक सुनाजाता है परंतु प्राप्त नहीं होता है मैं उस परमात्मा को साक्षात्कार करना चाहता हूं आप इसके करने के योग्य हैं, भृगु जी बोले कि उत्तर में हिमवान् महापवित्र सर्वगुणसम्पन्न है वही परलोक कहा जाता है वह निष्पाप सत्य इच्छा सत्यसंकल्प और सब कामनाओं के उपभोग के योग्य परमात्मा रूप है उस स्थान पर समाधि में होकर वह पुरुष जाते हैं जो कि पापकर्मों से रहित पवित्र निर्मल देह लोभ मोह से विमुक्त और उपद्रवों से रहित हैं, वह देश स्वर्ग के समान है उसमें यह शुभगुण वर्तमान हैं कि समाधि के समय तो अविनाशी है और रोगों का स्पर्श नहीं है और अनात्मा रूप स्त्रियों में लोभरहित आत्मा रूप स्त्री में प्रीतिमान् है निर्जन है, और परस्पर में पीड़ारहित संकल्पजन्य द्रव्यों में आश्चर्यरहित है वहां अनात्मन्न

अधर्मभी नहीं है, निस्सन्देह वहां योग और कर्म का किया हुआ फल प्रत्यक्ष मिलता है खानेपीने की वस्तुवों से पूर्ण आसन आदि से युक्त महलों के और घरों के रहनेवाले सब ईप्सितों से पूर्ण सुवर्णादि के भूषणों से भूषित कितने ही पुरुष तो वहां से लौटआते हैं और कितनेही योगियों को परमात्मा में सब इच्छाओं का लयकरना प्राप्त होता है—अब सामान्य योग का वर्णन करते हैं कि कितनेही पुरुष तो बड़े परिश्रम से प्राणों को धारण करते हैं और कितनेही योगरूप ऐश्वर्य को पाकर धर्म में प्रवृत्त हैं कितनेही छली हैं अर्थात् बाह्यभोगों के कारण योगजन्य धर्म का नाश करनेवाले हैं इसी कारण से वह धर्मात्मा और छली दोनों सुखी दुःखी हैं क्योंकि कोई निर्धन कोई धनवान् हैं अर्थात् योग धर्म के द्वारा दूसरे के उपकार से उत्पन्न होनेवाले धर्मरूप धन की वृद्धि करनेवाले हैं और धन के कारण इस लोक में मनुष्यों का परिश्रम भय मोह गृहस्थादि की कठिनता और लोभ पैदा होते हैं, इस लोक में धर्म अधर्म के करनेवाले बुद्धिमान् बहुत प्रकार के मनुष्य हैं जो ज्ञानी उन दोनों को जानता है वह पाप में नहीं फँसता है, कपटयुक्त छल, चोरी, निन्दा, दूसरे के गुणों में दोषलगाना, अप्रतिष्ठा, हिंसा, निर्दयता, मिथ्या आदि दोषों का जो सेवन करता है उसका तपरूपी धर्म नाश होता है और जो इन दोषों से रहित है उसके तप की वृद्धि होती है, इस लोक में धर्म अधर्म रूप कर्म से बहुत प्रकार की चिन्ता होती है यह लोक कर्मभूमि है यहां शुभ का शुभ और अशुभ का अशुभ फल होता है प्राचीन समय में इसी पृथ्वी पर देवता और ऋषियों समेत ब्रह्माजी ने यज्ञ और तप से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में वास किया यह ब्रह्मलोक पृथ्वी का उत्तम और पवित्र भाग है इस में रहनेवाले मनुष्य जो शुभकर्मों को करते वह वहां प्रकाशवान् होते हैं और जो विपरीत कर्म करनेवाले हैं वह तिर्यक्आदि योनि में महापापों को भोगते और लोभ मोह में फँसे इसी संसार में घूमते हैं और जो जितेन्द्रिय होकर मन वचन देह से गुरु की उपासना करते हैं वही ज्ञानी सब लोकों के मार्ग को अर्थात् सगुण निर्गुणब्रह्म को ठीक जानते हैं, यह वेद से प्रकट होनेवाला धर्म का आशय तुम से वर्णन किया कि जो लोक के धर्म अधर्म को जानता है वही बुद्धिमान् है—भीष्मजी बोले कि जब भृगुजी ने भारद्वाजजी को ऐसे उपदेशपूर्वक धर्म का वर्णन किया तब भारद्वाजजी ने अत्यन्तप्रसन्न होकर भृगुजी का पूजन किया सो हे महाज्ञानिन्, राजायुधिष्ठिर ! यह संसार की सब उत्पत्ति तुझ से कही अब और क्या सुनना चाहता है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! आप ने आचार योग मिलाहुआ कहा अब कृपा करके स्पष्टता से ब्यौरेसमेत आचार बुद्धि का वर्णन कीजिये, भीष्म जी बोले कि हे धर्मज्ञ! तुम मेरे कहने से सर्वज्ञता को प्राप्त होकर सुनो कि असन्त दुराचारी दुर्बुद्धि विना विचारे कर्मकरनेवाले प्रसिद्ध हैं और आचार का लक्षण रखनेवाले सन्त लोग हैं अर्थात् उनका स्वरूप आचारही से जाना जाता है जो मनुष्य गोशाला राजमार्ग और अन्नादि में मूत्र पुरीष को नहीं करते हैं वह उत्तम हैं, यह मनुष्यों का आवश्यकधर्म है कि आवश्यक विष्ठा-मूत्र को त्यागे और दन्तधावन आदि से निवृत्त हो आचमनपूर्वक नदी आदि में स्नान करे फिर देव, पितृ, मनुष्यों का तर्पण करके सूर्य का उपस्थान करे और सूर्य के उदय होजानेपर कभी न सोता रहै पूर्वाह्ण और सन्ध्याकाल की सन्ध्या के आदि में सूर्य के प्रकाश में गायत्री का जप करे और पूर्वाभिमुख हो-कर हाथ, पैर, मुख शुद्ध करके आर्द्रभोजन को मौन होकर करे और भोजन की वस्तु की निन्दा न करे भोजन के पीछे आचमन करके उठे और रात्रि के समय पैरधोकर सोवे, यह आचार लक्षण देवऋषि नारदजी ने कहा है, यज्ञशाला आदि पवित्र देश गौ, बैल, देवालय, चौराहा, स्नान कियेहुये ब्राह्मण आदि को मार्ग में मिलने से प्रदक्षिणाकरे कुटुम्बसमेत कुटुम्बी का भोजन अतिथि के भोजन के समान समझाजाता है अर्थात् भोजन में न्यूनाधिकता न करनी चाहिये-प्रातःकाल सायंकाल के समय भोजन करना मनुष्यों को वेदोक्त है इसप्रकार से करनेवाला व्रत के फल को पाता है और दोनों समय के मध्य में भोजन करना वेद में नहीं कहा है इसीप्रकार से होम के समय होम करे और ऋतुकाल में अपनी स्त्री के पास जाय एक स्त्री रखनेवाला ज्ञानी ब्रह्मचारीही कहलाता है ब्राह्मणों के भोजन से बचाहुआ अन्न ऐसा प्रशंसनीय है जैसा कि माता का हृदय हित-कारी होता है उस अन्न की उपासना सन्त लोग करते हैं इसीसे उनको ब्रह्म की प्राप्ति होती है अर्थात् आहार की सिद्धि ब्रह्म को प्राप्त करनेवाली है, यज्ञ की वेदी बनाने के लिये मृत्तिका खोदना और तृणों का छेदना चावल निकालने के लिये नखों से यज्ञ के शेषमांस को काटकर खानेवाला, सदैव जूठेमुख अमृत पान करनेवाला, फल का चाहनेवाला ब्रह्म को नहीं प्राप्त करता है, जो मांस खाना छोड़ाचाहे वह यजुर्वेद के मन्त्रों से संस्कार किये मांस को और असंस्कृत मांस को और श्राद्ध से बचेहुये मांस को भी नहीं खाय अर्थात् हिंसायुक्त कर्म न करे अपने देश में या परदेश में अतिथि को कभी भूखा न रक्खे अवश्य भोजन करावे अन्न आदि श्रेष्ठ फल को प्राप्त करके गुरु पिता आदि वृद्धों

को भेंट करे और गुरु लोगों को आसन, पूजन, दण्डवत् करने से कीर्ति और लक्ष्मी प्राप्त होती है उदयकाल के सूर्य को और अन्य की नग्न स्त्री को कभी न देखे और एकान्त में ऋतुकाल सम्बन्धी दिवसों में सदैव स्त्रीसंग करे—तीर्थों की गुप्तबात गुरु है और पवित्रवस्तुवों की गुप्तवस्तु अग्नि है और सत्पुरुषों का किया हुआ सबकर्म उत्तम है और गौ की पुच्छ का स्पर्श करना सदैव पुण्यकारी है, सायंकाल प्रातःकाल ब्राह्मणों को दण्डवत् करना शास्त्र का उपदेश है जब देखे तब अच्छा प्रश्न करे, देवस्थान में, गौवों के मध्य मे, और ब्राह्मणों के वैदिक स्मार्त कर्म के अनुष्ठान में और वेदपाठ आदि भोजन कर्म में यज्ञोपवीत को बायें कन्धेपर रक्खे अर्थात् सव्य रहै जैसे कि दूकानों की बेचने की वस्तु साफ़ और उज्ज्वल होती है और खेतों की खेती नियत करके अनाज की वृद्धि कीजाती है और इन्द्रियों को उनके ईप्सित विषयों में प्रवृत्त कियाजाता है उसीप्रकार सायंकाल प्रातःकाल बुद्धि के अनुसार वेदपाठी ब्राह्मणों के पूजन की इच्छा करना चाहिये तात्पर्य यह है कि दूकान के देखने आदि के समान ब्राह्मणों का पूजन प्रत्यक्ष फलवाला है, भोजन कराने में दाता सदैव सम्पन्न कहाता है और भोजन करनेवाला सुसम्पन्न कहाता है उसीप्रकार जल पिलाने में दाता तर्पण और पीनेवाला सुतर्पण है और तस्मैभोजन कराने में दाता स्मृत और भोजन करानेवाला सुश्रृत बोला जाता है उसीप्रकार कृषरान्न के लेनेदेने में यवाग्वां बोलना योग्य है हजामत बनवाने में, छींकलेने में, स्नान पूजन में ब्राह्मणों को दण्डवत् करना महारोगों का करनेवाला है—सूर्य के सम्मुख मूत्र न करे, अपनी विष्ठा को न देखे, स्त्री के साथ सोने और भोजन करने को त्यागकरे वृद्धों का नामलेना अथवा तुम शब्द कहना दोनों न करे छोटे और बराबरवालों के नाम का लेना वा तुम शब्द कहना दोष नहीं है पाप चलन पुरुषों के नेत्र आदि का फिरना उनके पापी हृदय के प्रकट करता है बड़े मनुष्यों में प्रत्यक्षपाप का छुपाना नाश को करता है—अज्ञानी पुरुष जानबूझकर किये हुये पाप को छिपाते हैं उस पाप को जो मनुष्य नहीं देखते हैं तो देवता अवश्य देखते हैं—पापी का छिपाया हुआ पाप पापी केही सम्मुख आता है और धर्मात्मा से गुप्त किया हुआ अधर्म धर्मात्माही के आगे आता है, अज्ञानी इस लोक के किये हुये पाप को स्मरण नहीं करता है वह पाप शास्त्रोक्त बातों के न माननेवाले कर्ता पर होता है जैसे कि राहु चन्द्रमा को घेरता है उसीप्रकार पाप अधर्मी को घेरलेता है आशा से संचय किया हुआ धन दुःख से भोगाजाता है मृत्यु उसको धन के भोगने का समय नहीं देती है और ज्ञानीलोग उस को बुरा कहते हैं, ज्ञानियों ने सब जीवों का धर्म मानसी कहा है अर्थात् जो चित्त से किया जाय इस कारण सब जीवों पर चित्त से दया करे

अर्थात् सब को निर्भय करे धर्म में किसी का साथ न करे क्योंकि धर्म में कोई साथी नहीं है केवल शुद्धबुद्धि से ध्यान योगरूप धर्म को करे इस में कोई सहायता क्या करेगा धर्महीं मनुष्य और देवताओं का उत्पत्तिस्थान है और हृदयाकाश नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मलोक में अमृतरूप कैवल्यमोक्ष कारण है और अपूर्व देह की प्राप्ति में धर्म सेही उन धर्म करनेवालों को सुख मिलता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जो यह अध्यात्म नाम पुरुष का धर्मरूप कर्म इस लोक में विचारा जाता है उसको आप मुझ से कहिये और यह जड़ चैतन्य रूप विश्व कहां से उत्पन्न हुआ और प्रलय में कैसे लय होता है उसको भी कृपा करके कहिये-भीष्मजी बोले कि हे पाण्डव ! जो तुम इस अध्यात्म को मुझ से पूछते हो उस महाकल्याणकारी अध्यात्म सुख को तुझ से कहता हूं कि यह ब्रह्मज्ञान जिस में कि उत्पत्ति लय संयुक्त है वह आचार्योंने दिखाया है जिस को कि पुरुष लोक में जानकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मानन्द को पाता है और फल की सिद्धि होती है वही जीवों का हितकारी है-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचतत्त्व सब जीवों की उत्पत्ति और लय के स्थान हैं जिस आनन्दस्वरूप से पंचभूत उत्पन्न हुये वह बराबर उसी में लय होते हैं वह पंचभूत जरायुज आदि चारो प्रकार के जीवों से ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे कि समुद्र की लहरें यहां जरायुज आदि से आकाश आदि की उत्पत्ति और लय को वर्णन करके उनका आनन्दरूप होना कहा है और स्वप्न आदि के समान आकाश आदि तत्त्वों को कल्पित होना कहा है-जिसप्रकार कछुवा अंगों को फैलाकर अपने में लय करलेता है उसीप्रकार से जीवात्मा देहादि प्राप्त करनेवाले तत्त्वों को फिर आकर्षण करता है, पंचतत्त्वात्मक जीवों से पंचतत्त्वों की उत्पत्ति कैसे होसक्ती है क्योंकि पुत्र से पिता की उत्पत्ति नहीं होसक्ती इस के विषय में कहते हैं कि ईश्वर ने सब जीवधारियों में पंचमहाभूतों को उत्पन्न किया और पंचभूतों में वह अन्तर भी पैदा किया है जिस को कि देहाभिमानी होकर नहीं देखता है जैसे कि स्वप्न का देखनेवाला स्वप्नगत दृष्ट वस्तु को सत्यही जानता है और जागने पर मिथ्यारूप जानता है-इसीप्रकार देह के अभिमान दूर होने पर आत्मा के सिवाय सब वस्तुवों को मिथ्या समझता है अब इस बात को सिद्ध करते हैं कि जीव ही सब की उत्पत्ति का कारण है जैसे कि घट की उत्पत्ति में मृत्तिका कारणरूप है इसीप्रकार शब्द, श्रवण और देहों के छिद्र यह तीनों आकाश से उत्पन्न होते हैं और स्पर्श, चेष्टा, त्वचा

यह तीनों वायु से पैदा होते हैं और रूप, नेत्र, अन्नादि का परिपाक होना यह तीन प्रकार तेज से होते हैं रस, शीतलता, जिह्वा, यह तीनों जल के गुण हैं सूंघने के योग्यवस्तु, घ्राणेन्द्रिय, देह यह तीनों पृथ्वी के गुण हैं यह पंच महाभूत और छठा मन कहाजाता है सो हे भरतवंशिन्! जो इन्द्रियां कि पंच महाभूतों में संयुक्त हैं और चित्त उनकी वृत्ति रूप है सातवीं बुद्धि आठवां क्षेत्रज्ञ साक्षी है, पांचो इन्द्रियां तो विषय प्राप्त करने के निमित्त और चित्त सन्देह करने को बुद्धि निश्चय करने को और क्षेत्रज्ञ साक्षी के समान वर्तमान है दोनों चरणों के तलुवों से शिखातक जो नीचेऊपर दीखता है वह सब उदर आकाशादि साक्षी चैतन्य से व्याप्त होनेवाला जानो—इसप्रकार बुद्धि आदि के साक्षी का ब्रह्मभाव कहकर इस बुद्धि आदि से संयुक्त महाभूतों की उत्पत्ति कही यह युक्त और श्रुति से विचार करने के योग्य है, अब इस बात को कहते हैं कि पुरुषों को पांचो इन्द्रियां और चित्त बुद्धि यह सातो अच्छेप्रकार से जानने के योग्य हैं और जो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण हैं वह अप्रकट भी उन इन्द्रियों से उत्पन्न होकर उनमेंही वर्तमान हैं, ज्ञानी मनुष्य विचार से इस त्रिगुणा त्मक माया को अथवा बुद्धि को आकाश आदि भूतों का और जरायुज आदि जीवों का उत्पत्ति और लयस्थान अच्छेप्रकार से जानके वैराग्य विवेक के क्रम से उत्तमसुख अर्थात् ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं अब भूतों के उत्पत्ति और लय के स्थानों को कहते हैं कि तमोगुण से बुद्धि वारंवार विषयात्मक कीजाती है इस कारण बुद्धिही चित्त वा पंचेन्द्रिय और स्थूल सूक्ष्म पंचभूतरूप है उस बुद्धि के नाश होने में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, चित्त और इन्द्रियों के विषय आदि कैसे बाक़ी रहजायँगे—यह जड़ चैतन्यमय जगत् उसी बुद्धि का रूप है बुद्धि के लय और प्रकट होने में इसप्रकार बुद्धिरूप दिखलायाजाता है, कि वह बुद्धि जिसके द्वारा देखती है वह नेत्र हैं, और जिससे सुनती है वह कान, जिस से सूंघती है वह घ्राण और जिससे रस पीती है वह रसना कहलाती है और जिससे स्पर्श होता है वह त्वक् इन्द्रिय है, यह बुद्धि भी चिदाभास से संयुक्त होकर कर्तापन और कारणपने को प्राप्त करती है और जब बुद्धि में कोई इच्छा उत्पन्न होती है तब वह चित्तरूप होजाती है, बुद्धि के अधिष्ठान पांच प्रकार के हैं उन्हीं को भिन्न २ विषयवाली पांचो इन्द्रियां कहते हैं; चैतन्य आत्मा अपनी स्वरूपसत्तामात्र से उन इन्द्रियों को कर्म में प्रवृत्त करता है; चैतन्य आत्मा में नियत होनेवाले बुद्धि सुख, दुःख, मोह इन तीनों भावों को पाती है और सुख दुःख मोह में वर्तमान होकर बुद्धि चित्त में प्रवेश करती है और चित्त के द्वारा इन्द्रियों के विषयों में भी प्रवृत्त होती है यह सर्वात्मा बुद्धि सुख दुःखादि भावों को उनका आत्मारूप होनेपर भी उल्लंघन करके ऐसे वर्तमान होती है जैसे

कि नदियों का स्वामी समुद्र अपनी लहरों से बेला को उल्लंघन करता हुआ वर्त्तमान होता है तात्पर्य्य यह है कि इस प्रकार बुद्धि से उत्पन्न होनेवाले देह इन्द्रिय, विषय जो कि योग के द्वारा बुद्धि में लयहोतेहैं उनके संस्कार ब्रह्माकार बुद्धि से अन्तर्द्धान होते हैं, आत्माकार वृत्तिवाली बुद्धि के निर्गुण सिद्ध होने पर उसकी दशा को कहते हैं कि सुख आदि भाव से पृथक् होनेवाली बुद्धि चित्त में सत्तामात्र वर्त्तमान होती है अर्थात् पूर्णज्ञान में मोक्षरूप सूक्ष्म होती है फिर उत्थान कालपर प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धि के भाव को प्राप्तहोता है सबका आशय यह है कि जैसे तैल जलरूप होजाता है उसीप्रकार लयहो नेवाली बुद्धि रजोगुण रूपी शीत से तैलके समान फिर सूक्ष्म रूप को प्राप्तहोती है और जबतक प्रारब्ध कर्म का नाश नहीं होता तबतक अविद्या रूप देहादिकों को प्रकट करती है प्रारब्ध नाशहोने के पीछे कैवल्यमोक्ष प्रत्यक्ष होती- है तब वह रजोगुण रूप बुद्धि सब इन्द्रियों को कर्म में प्रवृत्त करती है फिर सतोगुण रूप बुद्धि विषयों के मुख्य रूप को पहिंचानती है और तमोगुण से उत्पन्न होनेवाला भाव रागादि दोषों में प्रवृत्त होता है—सतोगुण प्रीति रूप, रजोगुण शोक रूप, तमोगुण मोहरूप है इसलोक में जो२भाव शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषाद आदि हैं वह सब इनतीनों गुणों में वर्त्तमान होते हैं यहसब बुद्धि की गति तुमसे कही बुद्धिमान् को सब इन्द्रियां जीतनी योग्य हैं यह तीनों गुण सदैव जीवों में रहते हैं इसीसे सब जीवों में तीनहीं प्रकार की पीड़ा देखने में आती है उसको सात्त्विकी, राजसी, तामसी बोलते हैं सतोगुण सुख रूप, रजोगुण दुःखरूप और यह सुख दुःख तमोगुण से मिल के सुख दुःख रूप नहीं होते किन्तु मोह के करनेवाले होते हैं फिर जो दुःख से मिला है और अपनी प्रीति करनेवाला नहीं है वहां यह जानना चाहिये कि रजोगुण युक्त कर्म हुआ है किसी बात की चिन्ता न करे अर्थात् दुःख को गिनती में नहीं गिने—यह सात्त्विकी गुण बड़ी कठिनता से प्राप्तहोते हैं, तृष्णा, दुःख, शोक, लोभ अक्षमा—यह रजोगुण के लक्षण हैं, अपमान, मोह, प्रमाद, अर्थात् भूल स्वप्न, अर्धस्वप्न इत्यादि नानाप्रकार के तमोगुण बड़ी अभाग्यता से उत्पन्न होते हैं दुःप्राप्य वस्तुओं में भी प्राप्तहोने वाला बहुत से विषयोंमें एकबार ही प्रवृत्त होनेवाला प्रश्नकर्त्ता, और संशयात्मक चित्त, अथवा जिसके चित्त की वृत्ति रुकगई है वह इसलोक परलोक में सुख का भोगकरता है—उस सूक्ष्मरूप बुद्धि बल और क्षेत्रज्ञ साक्षी के अंतर को देखो कि उनमें एकतो गुणों को पैदाकरता है दूसरा नहीं करता है जैसे कि मशक अर्थात् मच्छर और गूलर यह दोनों परस्पर में सदैव एकत्रहोते हैं उसी प्रकार उनबुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनों का संयोग है वह दोनों स्वभाव से भिन्न सदैव मिले रहते हैं जैसे कि जल में मछली रहतीहै

उसी प्रकार वह दोनों संयुक्त हैं गुणतो आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा सबगुणों को जानता है तात्पर्य्य यह है कि गुण जड़ रूप हैं और आत्मा चैतन्य रूप है इसीप्रकार पुरुष उनगुण अर्थात् देह अहंकारादि का द्रष्टा है और उनको अपने से भिन्न नहीं मानता है-वह परमात्मा उन चेष्टाओं से रहित अज्ञान इन्द्रिय बुद्धि के द्वारा दीपक के समान अर्थों को प्रकाश करता है-बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ देखता है उसबुद्धि और क्षेत्रज्ञ का यह प्राचीन सम्बन्ध है, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का सम्बन्ध वर्णन में नहीं आसक्ता इसको कहते हैं कि बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का कोई आधार नहीहै क्योंकि क्षेत्रज्ञ असंग और निर्गुण है और बुद्धि मिथ्या और चित्त की उत्पन्न करनेवाली है उसके जड़ रूप गुणों को कभी पैदानहीं करती अर्थात् वह गुण अपने कार्य्य समेत सब मिथ्या हैं-अब अध्यास निवृत्ति की युक्ति को कहते हैं कि जब उस बुद्धि की इन्द्रिय को अच्छे प्रकार से स्वाधीन करता है अथवा रोकता है तब उसका आत्मा ऐसे प्रकाश करता है जैसे कि घट में प्रज्वलित दीपक होता है, जो ज्ञानी अपने स्वाभाविक कर्मों को त्याग करके केवल आत्मा में प्रीति रखनेवाला ध्यान शील मुनि होकर सबजीवों का आत्मारूप होता है अर्थात् जो इस प्रकार से जानता है कि मैं ब्रह्म हूं वह सर्वरूप होता है और इसीसे उत्तम गति को पाता है-जैसे कि हंस पक्षी जल में नहीं भीजता है उसी प्रकार ज्ञानी देहादि भूतों में घूमता है, इसप्रकार के इस आत्मरूप स्वभाव को अपनी बुद्धि से विचारकर समदर्शी और मित्रता से पृथक् मनुष्य हर्ष शोक रहित होकर विहार करता है, इसी ज्ञानी की जीवन्मुक्ति को कहते हैं कि जो पुरुष आत्मस्वरूप योग से संयुक्त है वह सदैव गुणों को अपने ऐश्वर्य्य बल से ऐसे उत्पन्न करता है जैसे कि सूत्र को मकड़ी उत्पन्न करती है वह गुण तार के समान जानने योग्य हैं यह दृष्टांत एकता के निमित्त वर्णन किया इस प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष जिसका देह प्रारब्ध कर्म से बना है पूर्व्व संस्कार के कारण सन्मुख वर्त्तमान गुणों से देखने के समय उत्पत्ति को देखता योग, ऐश्वर्य्य, आत्मा आदि से अथवा निर्विकल्प ध्यान से वर्त्ताव करता है यह तो पूर्व्वकहा और प्रारब्ध कर्म्म के समाप्त होनेपर गुणघटके समान निवृत्तहोते हैं अथवा रस्सी के सर्पके समान पीड़ादेते हैं इस बातको विचारते हैं और नाशरूप होनेवाले गुण निवृत्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में निवृत्ति नहीं पाईजाती है वह परोक्ष अनुमान से सिद्धि होती है अर्थात् नानाजीव माननेवाले व्यवहार की रोक से निवृत्ति होना नहीं मानते हैं और दूसरे एकजीव माननेवाले निश्चय करते हैं कि निवृत्ति होजाती है अर्थात् अपने अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला जो प्रपञ्च है उसके नाश होने में अत्यन्त निवृत्ति ऐसे होजाती है, जैसे कि स्वप्न में दृष्ट आनेवाली वस्तु जागते

ही नष्ट होजाती हैं इन दोनों को दिखाकर इन में से एक मत को शास्त्र में अच्छे प्रकार से विचारकर बुद्धि के अनुसार निश्चय करे अर्थात् ध्यान से साक्षात्कार करे—क्षेत्रज्ञ और बुद्धि के अन्तररूपी हृदयकी गांठको खोल अर्थात् दोनों को एक करके सुख पूर्वक वर्त्तमान होकर संदेहरूपी शोच को न करे—क्षेत्रज्ञ में बुद्धि के धर्म दुःख आदि हैं और बुद्धि में क्षेत्रज्ञ के धर्मदृष्ट पड़ते हैं इससे बुद्धि से होनेवाला जो अन्तर है उसको त्याग करे जैसे कि मलिन देहवाला मनुष्य पूर्ण नदी में स्नान करने से देह की पवित्रता को पाते हैं उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष इस ज्ञान को प्राप्त करके शुद्धता को प्राप्त होते हैं, जैसे महानदी के पार को जानेवाला अत्यन्त दुःख को पाता है वह मिथ्या नहीं है किन्तु नौका आदि के द्वारा पार को जाता है उसीप्रकार तत्त्वज्ञान का जाननेवाला ज्ञान से ही संसार को तरता है जिन्हों ने इस प्रकार से हृदयरूपी आकाश के मध्यवर्त्ती विषयों से पृथक् आत्मा को जाना है वही उत्तम ज्ञान को पाते हैं, सबजीवों के उत्पत्ति और लय का स्थान ब्रह्म को जान कर धीरे २ सूक्ष्म बुद्धि से विचारकर जो पुरुष त्याग को करता है वह सुनने और विचार करने से ध्याननिष्ठ तत्त्व को देखनेवाला और आत्म दर्शन के सिवाय कहीं देखने की इच्छा न करनेवाला होता है—अपवित्र, मिथ्यावादी मनुष्यों से कठिनता से प्राप्त होनेवाला आत्मदर्शन इन्द्रियों के द्वारा नहीं होसक्ता है इसको जान के ज्ञानी होवे—ज्ञानी का दूसरा लक्षण क्या है अर्थात् कोई नहीं ज्ञानी लोग इसी को जानकर निर्विघ्नता पूर्वक कर्मों से निवृत्त होते हैं अज्ञानियों का जो बड़ा भयकारी संसारी दुःख है उससे ज्ञानियों को भय कभी नहीं होता है—किसी की मोक्ष रूप गति अधिक नहीं है अर्थात् सब की बराबर है गुणों के स्वीकार और अलंकार से असमानता होती है जो पुरुष कर्म को फल की अनिच्छा से करता है वह पहले किये हुये पापों को दूरकरता है पूर्वजन्म के और वर्त्तमान के कर्म उसज्ञानी के अनीप्सित को सबप्रकार से उत्पन्न नहीं करते हैं तो यहां अभीष्ट को कैसे करेंगे अर्थात् कर्म मोक्ष में कारण रूपनहीं है—काम, क्रोध, लोभरूप, विषयों से जर्जरीरूप लोक को देखनेवाला मनुष्य धिक्कारी देता है वह निन्दित कर्म उस व्यसनी को यहां सब योनियों में पैदा करता है—लोक में अच्छे प्रकार से मिलकर व्यसनी लोगों को देखो कि पुत्र स्त्रियों आदि के शोचनेवाले हैं और सारासार के विवेक के जाननेवाले और शोक से रहित पुरुषों को देखो जिन्हों ने सत्पुरुषों के उन दोनों क्रमसुक्ति और सदैव मुक्तियों को जाना है ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर ! मैं चार प्रकार के ध्यानयोग को तुम से कहता हूं जिनको कि इसलोक में महर्षि लोग जानकर सनातन मोक्षसिद्धि को पाते हैं, ज्ञान से तृप्त निर्वाण मोक्ष में शांतचित्त योगी इसप्रकार से ध्यान को करते हैं जैसे कि अच्छे अनुष्ठानवाले कियाकरते हैं—हे युधिष्ठिर ! आत्मरूप में चारोंओर से नियत होकर संसारी दोषों से रहित पुरुष फिर संसार में नहीं आते हैं, शीतोष्णता के सहनेवाले सदैव प्रकाश में नियत लोभ आदि से रहित और शौच सन्तोषादि कर्म्मों के करनेवाले हैं और जिनके स्थान स्त्री आदि के संग से और पक्षपात से रहित और चित्त की शुद्धि करनेवाले हैं उन स्थानोंपर ध्यान से मन को लगाकर एकाग्रता प्राप्तकरे और इन्द्रियों को दमन करके काठ के समान वर्त्तमान होजाय—कान से शब्द को न सुने—त्वचा से स्पर्श को न जाने—नेत्र से रूप को न पहिंचाने—जिह्वा से रसका आस्वाद न करे और घ्राण से सबगन्धों को त्यागदे वह पराक्रमी योगी ध्यान से पांचों इन्द्रियों को दमन करनेवाले इन विषयों को नहीं चाहैं तदनन्तर वह ज्ञानी पंचवर्ग्गों को हृदय में रोककर पांचों इन्द्रियों समेत व्याकुल चित्त को आत्मा में लयकरे, ज्ञानीपुरुष प्रथम उस चित्त को जोकि विषयों में घूमने का अभ्यासी पांच द्वारवाला चेष्टायुक्त विषयों में भी चेष्टा रहित है उसको हृदयाकाश में देहादिके अवलम्बन से रहित करके चारप्रकार के ध्यानमार्ग्ग में धारणकरे—जब यह ज्ञानी चित्त और इन्द्रियों को पिण्डीभाव करता है यह पिण्डीकर्म्म मुख्य ध्यानमार्ग है, इसको मैंने तुम से कहा—उस जीवात्मा के जो चित्त, बुद्धि, पंचेन्द्रिय समेत सातअंग हैं उनमें छठाअंग जो चित्त है वह प्रथम रोकेजाने से भी ऐसे चेष्टा करेगा जैसे कि बादल में घूमनेवाली बिजली—और पत्तेपर ठहरा हुआ और सब ओर से चलायमान अम्बुकण होता है उसीप्रकार ध्यानमार्ग्ग में नियत होकर चित्त भी चलायमान होता है वह थोड़े समयतक तो ध्यानमार्ग्ग में वर्त्तमान होता है फिर नाड़ीमार्ग्ग में जाकर भ्रान्तियुक्त चित्तवायु के समान होजाता है—योग मार्ग्ग में कष्टपानेवाला भी उससे चित्त को न हटावे, और निरालस्य दूसरे की वृद्धि का सहनेवाला होजाय फिर ध्यानयोग का जाननेवाला ध्यान के द्वारा चित्त को समाधान करे—प्रथम योग का अनुष्ठान न करनेवाले मुनि का विचार रूपी ध्यान या विवेक अथवा वितर्क नाम ध्यान प्रारम्भ में अधिकार के भेद से प्राप्त होता है अर्थात् चित्त से कल्पित सुन्दर पीताम्बर आदि के रूप में चित्त का लगाना नीचवालों का विचार है वह भी सविचार और निर्विचार के नाम से दो प्रकार का है, जब शब्दार्थ के लिखने के साथही भक्ति

होती है वह उत्तम है और उस शब्दार्थ के विना जो होती है उसमें दूसरा विचार है, सवितर्क और निर्वितर्क नाम दो प्रकार के स्थूलालम्बन में यह भेद अधम अधिकारियों के योग्य है-चित्त से क्लेशपानेवाला मुनि समाधिनिष्ठ हो और उससमाधि से प्रीतिरहित न होकर अपनेहित को ही करे जैसे कि धूल, भस्म, और गोबर के खात आदि की मूर्ति जल के योग से जल्दी नहीं बनसक्ती है परन्तु जैसे कि कुछ दिन पीछे उनमें चिकनाई आदि होने से मूर्ति बनजाती है इसीप्रकार सबइन्द्रियों को एकरूपकरे और क्रम से उसके अंगों के त्यागने से चित्तरूप करे वह पुरुष अच्छे प्रकार से शांति अर्थात् निर्विकल्पता को पाता है अर्थात् वितर्क से विचार को पाता है, विचार से आनन्द को, आनन्द से समता को, समता से कैवल्यभाव को पाता है यह क्रमयोगशास्त्र में प्रसिद्ध है-हे युधिष्ठिर! इसप्रकार प्रथम बुद्धिवाला आप ही चित्त और पांचों इन्द्रियों को ध्यानमार्ग में नियतकरता है अर्थात् इनसब को लय करके सदैव के योग से आप भी शांति को पाता है, नरलोक और देवलोक की किसी पदवी से उससुख को नहीं पाता है जो सुख कि चित्तरोकनेवाले योगी को होता है उस सुख से संयुक्त ध्यान कर्म्म में प्रीतिमान् योगी इस प्रकार उसद्वैत से पृथक् कैवल्यरूप ऐक्यता को पाते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि तुम ने चारों आश्रमों का हितकारी धर्म्म कहा उसी प्रकार राजधर्म्म आदि अनेक प्रकार के धर्म्मों के उत्पत्ति स्थान और भिन्न २ प्रकार के बहुत से इतिहास वर्णन किये-हे महाज्ञानिन्! आप से मैंने बहुत सी धर्म्म संबंधी कथाओं को सुना अब मैं आप से जप करनेवाली की फल की प्राप्ति को सुना चाहता हूं कि जप करनेवालों को क्या फल होता है और उनका निवास कहां होता है और जप करनेवाला पुरुष वेदान्त का विचार करनेवाला है या योगी और कर्म्म करनेवाला है और यह सांख्य है या योग या क्रिया बुद्धि है यह क्या ब्रह्मयज्ञ की बुद्धि है यह जप क्या कहाजाता है यह सब मुझ से कहो मैंने आप को सर्वज्ञ माना है-भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में यमराज कालपुरुष और ब्राह्मण आदि का प्राचीन वृत्तांत है-मोक्षदर्शी मुनियों ने जो दोनोंसांख्य और योग कहे उन के मध्य वेदांत के विषय में तर्क ही वर्त्तमान है अर्थात् संन्यासियों को जप की आवश्यकता नही है वह उपासना के अधिकार से भी बढ़कर उत्तमपद को प्राप्त हुये क्योंकि सब वेदवचन ब्रह्म में नियत शांतरूप वैराग्य से संयुक्त हैं समदर्शी

मुनियों ने जो सांख्ययोग कहे यह दोनों मार्ग भी जप के उपकारी हैं अर्थात् चित्तशुद्धि के द्वारा तत्त्वमसि वाक्य का अर्थ जानने से आलम्बनरूप योग में प्रणव का जप उपकारी है और वह मार्ग्ग जप का उपकारी भी नहीं अर्थात् साक्षात्कार में जप की आवश्यकता नहीं है हे राजन्! जैसे सुनाजाता है उसी प्रकार से यहां कहाजाता है इन दोनों मार्गों में भी चित्त का रोकना और इन्द्रियों का जीतना, सत्यता, अग्निसेवा, एकांतवासी, महात्माओं का सेवन, ध्यान, तप, विषयों में दोषदृष्टि होना, दम, क्षमा दूसरे के गुणों में दोष न लगाना अनुकूल भोजन, विषयों का जीतना, मितभाषी, देहेन्द्रिय का जीतना, यह प्रवर्त्तक यज्ञ है अर्थात् स्वर्गादि का देनेवाला है, और निवर्त्तक यज्ञ यह है कि जैसे ब्रह्मचारी जपकरनेवाले का कर्म्म समाप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्तहोती है वही निवर्त्तकयज्ञ है उसकी यह रीति है कि चित्त की जो समाधि ऊपर वर्णन करचुके हैं उसको कर्म के द्वारा फल से रहितकरे अर्थात् निवृत्तिमार्ग को जो कि गुप्त प्रकट आलंबन का आश्रय न करनेवाला शुद्ध चिन्मात्र है उसको पाकर नियत हो—अब मार्ग प्राप्तहोने को कहते हैं—कि हृदय कमल से कुशा के समान जो नाड़ियां निकलकर संपूर्ण देह में फैली हैं उन प्रकाशात्माओं से भरीहुई नाड़ियों पर विराजमान आगे ऊपर नीचे और चारोंओर कुशाओं से व्याप्त उसकुशाजालरूप हृदय पिण्ड के मध्यमें यह पुरुष कुशाओं से ढकाहुआ है अर्थात् दीपक के समान तेज के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है वही सबका प्रकाश करनेवाला और आत्मा है—चित्त को बाहर के विषयों से पृथक् करे और अन्तर्य विषयों को त्यागकरे चित्त से जीवब्रह्म की एकता को प्राप्त करके चित्त को चित्त में लय करे क्योंकि चित्त कूटस्थ ब्रह्म का रूपांतर नहीं है और मायामिथ्या है इस कारण वह इनदोनों में लयनहीं होता है उससमदर्शी बुद्धि से हितकारी संहिता को जपकरताहुआ शुद्ध ब्रह्म को ध्यान करता है फिर समाधि में नियत होकर वह पुरुष चित्त की स्थिरता के पीछे उसको भी त्यागकरता है यहां वह शुद्धचित्त विचार से जितेन्द्रिय और योगियों की इच्छायुक्त ब्रह्म नाम का रखनेवाला ज्ञानी संहिता बल की रक्षा से ध्यान को उत्पन्न करता है—राग, मोह से रहित सुख दुःखादि योगों से जुदा वह पुरुष न शोचता है न शान्तचित्त होता है वह कर्म्मों का कर्मफल उत्पन्न करनेवाला नहीं है यही मर्य्याद है—कहीं अहंकार के योग से चित्त को प्रवृत्त नहीं करे—धन के प्राप्त करने में प्रवृत्त अहंकार युक्त और कर्म रहित न होवे ध्यान क्रिया को उत्तम माननेवाला ध्यान में प्रवृत्त और निश्चय रखनेवाला ध्यान के आलम्बन में समाधि को प्राप्त करके उसको भी क्रम क्रम से त्याग करता है उसदशा में वह सबका त्यागकरने वाला अनिच्छा से प्राणों को त्याग करता है वह आनन्द

रूप ब्रह्म में प्राप्त होता है अर्थात् उसके प्राण पितृयान और देवयानों के द्वारा चेष्टा नहीं करते हैं वह तद्रूप होजाता है चाहे ब्रह्मरूप सुख का सेवन भी न चाहे तौ भी वह मार्ग में वर्त्तमान ब्रह्मलोक की ओर चेष्टा करता है परन्तु कहीं जन्म नहीं लेता है आत्मारूप बुद्धि से अच्छेप्रकार ब्रह्म में नियत होकर शान्तरूप जरा मृत्यु से पृथक् रजोगुण रहित अविनाशी आत्मा को वह पुरुष प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रयोविंशातितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! यहां आप ने जप करनेवालों की उत्तम गति प्राप्तहोने का वर्णन किया सो उनकी एक ही गति है अथवा दूसरी भी कोई गति है—भीष्मजी बोले कि हे राजन्, युधिष्ठिर! तुम जपकरनेवालों की उस दूसरी गति को सावधान चित्तहोकर सुनो जैसे कि वह बहुत प्रकार के नरकों को जाते हैं कि जो जपकरनेवाला पहले कहेहुये वचनों के अनुसार कर्म नहीं करता है और इसलोक में अपूर्ण जप का करनेवाला है वह नरक को जाता है, श्रद्धा प्रीति रहित अप्रसन्न चित्तहोकर जपकरनेवाला भी अवश्य नरक को जाता है अहंकार करनेवाले सबमनुष्य नरक में जाते हैं, दूसरे का अपमान करनेवाले भी नरक को जाते हैं, जो मोह से भराहुआ मनुष्य चित्त की इच्छा के अनुसार जप करता है उसकी जिस फल में प्रीति होती है वह वहां २ उसके भोगने को जन्मलेता है फिर उन्माद आदि में वह जप करनेवाला इच्छा करता है वही उसका नरक है उससे उद्धार नहीं होता है उन उन्माद आदि विभूतियों में राग से मोहित होकर जप करता है ऐसी दशा में जिसफल की उसको इच्छा होती है वहां उसका फल भोगने के लिये जन्म लेता है—दुष्टभोगों में बुद्धि लगानेवाला और भोगों के परिणामवाले दुःखों का न जाननेवाला चलायमान चित्तहोता है और चलायमान गति को पाता है अर्थात् नरक को जाता है अज्ञानी बालक जप करनेवाला मोह को पाता है और उस मोह से नरक को जाता है वहां जाकर शोचकरता है मैं करता हूं इस प्रकार जो दृढ़ग्राही जापक जप करता है और वैराग्यवान् नहीं है परन्तु बहुत से भोगों को त्याग कियेहुये है—वह नरक को जाता है, युधिष्ठिर बोले कि जो स्वाभाविक चित्तवृत्ति से रहित ब्रह्म में स्थित है ऐसा जापक किस प्रकार देह के साथ ब्रह्म में प्रवेश करता है भीष्मजी बोले कि काम से ढकीहुई बुद्धि के कारण बहुत नरक और उस बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाले दोषरागादिक और उत्तम जप का करना यह सब वर्णन किये ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुर्विंशातितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जप करनेवाला किस प्रकार नरक को जाता है इस मेरे चित्त के शोक को आप दूरकरिये—भीष्म जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तुम धर्म्म के अंश से उत्पन्न और स्वभाव से धर्म्मनिष्ठ हो तुम सावधान होकर मेरे कहेहुये वचनों को सुनो—कि यह जो परमउत्तम देवताओं के उत्तमस्थान नाना वर्णों के निवासरूप अनेकफलों के देनेवाले हैं और वैसे ही दिव्य कामचारी विमान और सभा हैं और क्रीड़ा के उद्यान आदि में सुवर्ण सदृश कमलशोभित हैं और चारों लोकपाल शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेवा, साध्यगण, अश्विनीकुमार, रुद्र सूर्य, अष्टवसु, इसी प्रकार दूसरे देवताओं के जो लोक हैं वह सब परमात्मा से पृथक् स्थान होने से नरकरूप हैं, परमात्मा का परमधाम तो निर्भय अविनाशी स्वभाव सिद्ध दोष रहित बाह्याभ्यन्तर से शुद्ध आनन्दमय कालरूप ब्रह्म और स्वर्ग आदि का ईश्वर है शुद्ध आत्मारूप को पानेवाला ज्ञानी उस ब्रह्मरूप स्थान को पाकर शोच से रहित होता है परमधाम ऐसा है और वह नरक वैसे हैं—यह सब नरक ठीक २ तुम से कहे गये इस लोक में उस परमधाम की अपेक्षा सब नरक रूप हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

जप करनेवाले के स्वाधीन यमराज आदि होते हैं वह आप समेत दूसरों को तारता है उसको सत्यता आदि की रक्षा करनी योग्य है और छल आदि भी त्याग करने योग्य हैं इन बातों को दो अध्यायों में वर्णन करेंगे युधिष्ठिर ने कहा कि आप ने पूर्व्व में कालमृत्यु, यमराज राजा इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का संवाद वर्णन किया सो इसके भी कहने को आप सामर्थ्य हैं—भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं इस में भी सूर्य्य के पुत्र यमराज और इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का वृत्तांत है दूसरे उसी प्रकार के काल और मृत्यु का भी वर्णन है उसको मुझ से सुनो और उन्हों का वह संवाद भी जिस प्रकार जिस स्थानपर हुआ उसको सुनो—कि कोई जप करनेवाला धर्मवृत्ति ब्राह्मण बड़ा यशस्वी शिक्षा कल्पादि छः अंगों का जाननेवाला महाज्ञानी कौशिक गोत्री पिप्पलादि नाम वेद के छः अंगों में उसका अपरोक्ष ज्ञान था वह वेदों में पूर्ण होकर हिमालय के मूल में वर्त्तमान था वहां संहिता को जप करते उस सावधान ब्राह्मण ने अति उत्तम ब्राह्मण के योग्य तप को किया, इस नियम से इसके हज़ार वर्ष व्यतीत हुये तब साक्षात् देवी भगवती ने उसको दर्शन दिया

और कहा कि मैं प्रसन्न हूं उस ब्राह्मण ने जप में मौनहोकर उससे कुछ नहीं कहा तब तो देवी सावित्री ने उसकी निरपेक्षता से बहुत प्रसन्न होकर उसके जप की अत्यन्त प्रशंसा की तब वह जप को समाप्त करने वाला धर्मात्मा उठ कर मस्तक को नवाकर देवी के चरणों पर गिरपड़ा और यह वचन बोला कि हे देवि ! तुम प्रारब्ध से मेरेऊपर प्रसन्न हो इससे मुझ को दर्शन दिया और मेरे देखने को आई जो आप मेरेऊपर प्रसन्न हैं तो मेराचित्त जपमें प्रवृत्त हो सावित्री बोली कि हे जप करनेवालों में उत्तम, ब्रह्मऋषि ! तू क्या चाहता है तेरी क्या प्रसन्नताकरूं तू अपने अभीष्ट को अच्छे प्रकार से कह मैं सब पूर्ण करूंगी जब देवी ने ऐसा कहा तब उस धर्मज्ञ ब्राह्मण ने वारंवार यही कहा कि मेरी यह जप की इच्छा वृद्धि को पावे और प्रति दिन चित्त में नियमबढ़े तब देवी ने इसे मधुरवचन से कहा कि यहतेरा अभीष्ट सिद्ध होगा और यह दूसरावर भी दिया कि तुम नरकयुक्त विनाशवान् होने से उसस्वर्ग को नहीं जाओगे जहां कि उत्तम ब्राह्मण जाते हैं अर्थात् उस ब्रह्मलोक को जाओगे जो कि स्वभाव सिद्ध और निर्दोष है इसकारण से कि तैंने यही इच्छा मुझ से की है कि मेरा चित्त जपही में प्रवृत्त रहे इसहेतु से मेरी कृपा से तुझ को वही प्राप्त होगा और तुम सावधानता पूर्व्वक चित्तको एकाग्र करके जप में प्रवृत्त हो तेरेसमीप धर्म, काल, मृत्यु, यमराज यह सब आवेंगे तब धर्म के विषय में तेरा और उनका शास्त्रार्थ होगा—भीष्मजी बोले कि इस प्रकार भगवती कहकर अपने भवन को गई और ब्राह्मण भी उसी प्रकार से दिव्य शतवर्षतक जप करने में वर्त्तमान रहा और चित्त से जितेन्द्रिय क्रोध रहित सत्यवक्ता दूसरों के गुणों में दोष नहीं लगाता था फिर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण का वह नियम समाप्त होने पर साक्षात् धर्म देवता ने प्रसन्न मूर्ति होकर आप दर्शन दिया और कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम मुझ धर्म को देखो मैं तेरे देखने को आया हूं इस जप का फल जो तुम ने पाया है उसको मुझ से सुनो कि तुम ने पृथ्वी स्वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाले सब लोकों को विजय करके देवताओं के भी सब लोकों को उल्लंघन करोगे इससे प्राणों को त्यागो तुम को इच्छा के समान लोकों की प्राप्ति होगी ब्राह्मण बोला हे धर्म ! मुझ को लोकों से कोई प्रयोजन नहीं है तुम आनन्द से चलेजाओ और हे समर्थ ! मैं बहुत सुख दुःखवाले दूसरे देह को उत्पन्न नहीं करना चाहता अर्थात् इसीदेह से मुक्तहोना चाहता हूं—धर्म ने कहा हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम को अवश्य देह त्यागना योग्य है और हे अनघ ! तुम स्वर्ग में बसोगे या और कुछ चाहते हो—ब्राह्मणबोला कि हे समर्थ ! मैं आत्मा के देहविना स्वर्ग को नहीं चाहता हूं हे धर्म ! तुम जाओ आत्मा के विना स्वर्ग जाने में मेरी श्रद्धा है धर्म्म बोले कि देह में चित्तलगाना त्यागकरो और शरीर को त्याग करके सुखी हो रजोगुण

से पृथक् लोकों में जाओ जहां किसी बात का शोच नहीं है, ब्राह्मण बोला कि हे महाभाग! मैं जपताहुआ रमण करूंगा सनातन लोकों से मुझको क्या लाभ है इससे हे धर्म! मुझ को देहसमेत स्वर्ग जाना चाहिये या नहीं, तात्पर्य्य यह है कि सदेह स्वर्ग को जाना जप के फलसे न्यून है—धर्म बोले हे ब्राह्मण! जो तुम देह का त्यागना नहीं चाहते हो, देखो यह कालमृत्यु और यमराज तेरे पास आये हैं—तदनन्तर यमराज और कालमृत्यु ने उसमहाभाग ब्राह्मण के पासजाकर यह कहा कि अच्छेप्रकार तपेहुये और विधिपूर्व्वक कियेहुये इस तेरे तप की यह उत्तम फल की प्राप्ति है मैं यमराज हूं तुम से कहता हूं फिर कालपुरुष बोले कि इस जप का फल उत्तम जैसा कि चाहिये था उसी प्रकार से किया तेरे स्वर्गजाने का काल है मैं कालपुरुष तेरे पास आया हूं मृत्युबोली कि मुझ आई हुई को रूपवान् मृत्यु जानो हे ब्राह्मण! मैं काल की भेजीहुई तेरेलेने को यहां आई हूं ब्राह्मण ने कहा कि काल, यमराज, मृत्यु और महात्मा धर्म का आना शुभ हो आप का क्याकार्य्यकरूं भीष्मजी बोले कि यह कहकर उनका अर्घ्यपाद्य करके प्रसन्नता पूर्वक यहबोला कि मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार आप की क्या सेवा करूं इसी अंतर में तीर्थयात्रा करताहुआ राजा इक्ष्वाकु भी दैवयोग से वहांगया जहांपर कि वहसब वर्त्तमान थे वहां उस राजर्षि ने सबको यथायोग्य प्रणाम पूजनादि करके कुशल प्रश्नपूछा तब उस ब्राह्मण ने भी राजा का पाद्यअर्घ्य आसनादि से सत्कार करके यह प्रश्नकिया कि हे महाराज! आप का आना कल्याणकारी हो आप का जोअभीष्ट है उसको यहां मैं अपनी सामर्थ्य के समान किया चाहता हूं आप आज्ञा दीजिये राजा ने कहा मैंराजा हूं तुम ब्राह्मण हो जब तुम अपने छओं कर्मों में वर्त्तमान हो तब सुवर्ण रत्नादि धनों में से कौन सा आप को दूं उसको आप मुझ से कहिये, ब्राह्मण बोला कि हे राजन्! ब्राह्मण दो प्रकार के हैं और धर्म भी दो भेद का है प्रवृत्त और निवृत्त इस कारण मैं दान लेना नहीं चाहता हूं जो दानलेनेवाले पवित्र ब्राह्मणहैं उन्हीं को आपदानदीजिये मैं दान नहींलूंगा आप को क्या अभीष्ट है और मैं क्या करूं और हे राजाओं में उत्तम! जो आप अपना मनोरथ कहैं उसको मैं अपने तपके बल से पूराकरूं, राजा बोला कि हे ब्राह्मणोत्तम! मैं क्षत्रिय हूं मैं इसवचन के कहने को नहीं जानता हूं कि मुझ को दो, हमइसप्रकार के कहनेवाले हैं कि हमको युद्धदान दो ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! जैसे तुम अपने धर्म से प्रसन्न हो उसी प्रकार हम भी अपने धर्म में प्रसन्न हैं परस्पर में कोई अन्तर नहीं है जो आप को अभीष्ट है वहीकरो, राजा ने कहा कि हे विप्रवर्य! तुमने जो कहा कि मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूंगा तो मैं आप से मांगता हूं कि इस अपने जप का फलमुझ को दीजिये, ब्राह्मण ने कहा कि जो आप कहते हैं कि मैं सदैव युद्ध की ही याचना करता

हूं तो हमारे साथ में कोई युद्धनहीं है फिर ऐसी याचना क्योंकरते हो राजा बोला कि ब्राह्मण वज्ररूप वचन कहनेवाले होते हैं और क्षत्रिय लोग भुजबल से जीवते हैं सो हे ब्राह्मण! यह वचनरूप कठिनयुद्ध मेरा आप के साथ है ब्राह्मण ने कहा कि हे राजेन्द्र! अब भी मेरा वही प्रण है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार क्या दियाजाय आप कहिये मैं सामर्थ्य होनेपर दूंगा विलम्ब न कीजिये—राजा ने कहा कि जो आप मुझ को दिया चाहते हैं तो आप ने जो दिव्यशतवर्ष तक जप किया है उसका फल मुझ को दो, ब्राह्मण बोला कि उसजप के श्रेष्ठफल को लो जो मैंनेजपा है तुमविना विचार के उसके आधे फल को पाओ—और जोतुममेरा सबफल चाहते हो तो सब जप का फल लो राजा बोला आप का कल्याण हो मैंने जो जप के फल की इच्छा की वह आप ने पूर्ण की अबयह भी बतलाइये कि इस जप का क्याफल है ब्राह्मणबोला कि मैं फल की प्राप्ति को नहीं चाहता हूं मैंने जो जप किया वह मैंने दिया यह धर्म, काल, यम, मृत्यु इसकेसाक्षी हैं राजा बोला कि इस धर्म का अज्ञातफल मेराक्या उपकार करेगा जो तुम जप के धर्मफल को मुझ से नहीं कहते हो इस से हे ब्राह्मण! उस फल को आपही भोगें मैं नहीं चाहता हूं ब्राह्मण बोला कि दूसरे के विपरीत वचनों को स्वीकार नहींकरूंगा मैंने इस जप का फल तुम को दिया हे राजर्षे! अब मेरा और तेरा वचनप्रमाण है मैंने कभी जप के फलकी इच्छा नहीं की इससे हे राजेन्द्र! मैं किसप्रकार जपके फल को जानूंगा तुमने मांगा मैंने दिया मैं अपने वचन को दोषी नहीं करूंगा सत्यता पर दृढ़ताकरो अब जो तू मेरे वचनों को नहीं करेगा तो मिथ्या बोलने से तुम को बड़ा अधर्म होगा—हे शत्रुहन्ता! जैसे तू मिथ्या बोलने के योग्य नहीं उसीप्रकार मैं भी अपने वचन को मिथ्या नहीं करसक्ता—जो आपसच्चे हैं तो जैसे कि मैंने पहले विना विचारे देने को कहा उसीप्रकार विना विचार के उसको आप भी लीजिये तुम ने यहां आकर जप के फल को मांगा मैंने उसको दिया और तुम उसको लो और सत्यता में भी वर्त्तमान हो जो मिथ्या बोलता है उस का न यह लोक है न परलोक है और अपने पितरों को भी नहीं तारेगा तो इनके पीछेवालों को कैसे तारेगा हे पुरुषोत्तम! इसलोक परलोक में जैसे सत्यता उद्धार करती है उस प्रकार यज्ञों का फल दान और नियम आदि नहीं तारते हैं हजारों लाखों वर्षतक जो तपकिये गये या करे जायँगे वह सबसत्य से अधिक नहीं हैं सत्य प्रणव रूप ब्रह्म है और सत्यही प्रणव रूप तप है—सत्यही प्रणव रूप यज्ञ है—सत्यही प्रणव रूप ज्ञान है—सत्यही वेदों में जागता है—सत्यही में श्रेष्ठफल भी है—सत्यही से धर्म और शान्तचित्त है—सत्यही में सब वर्त्तमान है—सत्यही वेद, वेदांत, विद्या, बुद्धि, व्रत, नियम है—उसीप्रकार ॐकार भी सत्यरूप है—जीवों

की उत्पत्ति सत्यरूप है—सत्यही से वायु सन्मुख आती है—सत्यही से सूर्य्य प्रकाश करता है—सत्यही से अग्नि भस्म करताहै—सत्यही में स्वर्गवर्त्तमान है—यज्ञ, तप, वेद, स्तोत्र, मंत्र और सरस्वती यह सबसत्यरूप हैं हम ने सुना है कि धर्म और सत्य एक तुला में तोलागया तोसत्यही अधिक हुआ जहां धर्म है वहांसत्य है सब सत्य ही से वृद्धिपाते हैं हे राजन्! तुम किस कारण मिथ्या कर्म किया चाहते हो सत्य में चित्त को स्थिरकरो मिथ्याकर्म मतकरो तुम इस शुभ वचन को क्यों मिथ्या करते हो हे राजन्! जो तुममेरे इसजप के फल को नहीं चाहोगे तो धर्म से रहित होकर लोकों में भ्रमते डोलोगे, जो प्रतिज्ञा करके देना नहीं चाहता है और जो याचना करके लेनानहीं चाहता है यह दोनों मिथ्या कर्म हैं तुम ऐसे मिथ्याकर्म करने के योग्य नहीं हो राजा बोला हे ब्राह्मण! युद्ध करना और प्रजापालन करना यही क्षत्रियका धर्म्म है—क्षत्रिय दान देनेवाले कहे जाते हैं—मैं आप के दान को कैसे लूं ब्राह्मण बोला कि हे राजन्! मैं तुम को जबरदस्ती नहीं करता हूं कि तुम लो और न देने को तेरे घरगया तुम यहां आकर याचना करके क्यों नहीं लेते हो धर्म्म बोले कि तुमदोनों मत झगड़ो मुझआये हुये धर्म को जानों ब्राह्मण दान के फल से और राजा सत्य के फल से संयुक्त है स्वर्ग्ग देवता बोले कि हे राजेन्द्र! तुम मुझे आप आयेहुये रूपवान् स्वर्ग को जानों तुमदोनों मतझगड़ो क्योंकि दोनों समान फलवाले हो राजाबोला कि स्वर्ग ने मेरा काम किया तुम जैसे आये हो वैसे स्वर्ग को जाओ, जो ब्राह्मण स्वर्ग को जाना चाहता है तो मेरे संचितफल को लो—ब्राह्मणबोला कि जोमैंने बाल्यावस्था में अज्ञानतासे हाथ पसाराहो तो ऐसीदशा में तेरेदान को लूं मैं संहिता अर्थात् प्रणव गायत्री को जपकरता निवृत्ति लक्षणवाले धर्म की उपासना को करूंगा हे राजन्! बहुतकाल से मुझ संसार के त्यागनेवाले को आप कैसे लुभाते हैं मैं आप अपने काम को करूंगा तुझ से फल को नहीं चाहता हूं मैं तप और वेदपाठ का अभ्यास रखनेवाला दानलेने से निवृत्त हूं—राजाबोला कि हे ब्राह्मण! जो तुम ने जप के उत्तम फल को दिया उस दशा में हमदोनों का जो कुछ फल है वहहम दोनों को साझे में आधा २ हो—ब्राह्मण दानलेने में प्रवृत्त हैं और राजवंशी राजा दाता है सो हे ब्राह्मण! जो तुमने धर्म को सुना है तो ऐसी दशा में हम दोनों को फल साझे में हो चाहे हम दोनों साथ में न भोगें जो मुझपर तेरीकृपा है तो मेरे किये हुये धर्म को लेकर मेरे फल को पाओ भीष्मजीबोले कि इसके पीछे कुरूप और मैलेवस्त्र पहरे दो पुरुष सम्मुख वर्त्तमान हुये और दोनों परस्पर में झपट और पकड़कर एक ने दूसरे से कहा कि तू मेरा ऋणीनहीं है दूसरे ने कहा कि मैं तेराऋणी हूं यहहम दोनों का झगड़ा है और यहराजा न्याय करनेवाला हमारा न्यायी

है—मैं यह सत्य कहता हूं कि आप मेरेऋणी नहीं हो और तुम मिथ्या कहते हो कि मैं तेरा ऋणियां हूं अत्यंत दुःखीहोकर उनदोनों ने राजा से यह कहा कि आप ऐसा न्यायकरो जिसमें हमदोनों निन्दित न हों उनदोनों पुरुषों में से विरूप ने कहा कि हे राजन्! मैं विकृत के एक गोदान के फल का ऋणी हूं सो मैं देता हूं और विकृत नहीं लेता है विकृत ने कहा कि हे राजन्! यह विरूप मेरा कुछ नहीं रखता है यह तुझ सत्यज्ञ से मिथ्याबोलता है राजाबोला हे विरूप! तुम किस वस्तु के इसके ऋणी हो यह मुझ से कहो मैं न्याय से झगड़ा निपटाऊंगा यह मेरा चित्त कहता है—विरूपबोला कि इस के ऋण को आप ध्यान देकर सुनिये हे राजन्! इस विकृत ने धर्म की प्राप्ति के लिये एक तपस्वी वेदपाठी ब्राह्मण को सुन्दर गौदान में दी और मैंने इससे इस गोदान के फल को मांगा और इस विकृत ने अत्यंत शुद्ध अंतःकरण से मुझ को दिया तदनंतर मैंने अपनी पवित्रता के लिये शुभकर्म किया कि सवत्सा बहुतदूध देनेवाली दो कपिला गौ मोललेकर उंछवृत्ती ब्राह्मण के अर्थ बुद्धि और श्रद्धा के अनुसार अर्पणकरीं अब मैं इसके गोदान फल के द्विगुण फल को अभी देता हूं सो हे राजेन्द्र! इस विषय में हमदोनों में से कौन अपराधी और कौन निरपराधी है हमदोनों झगड़ालू तेरेसमीप आये हैं धर्म से या अधर्म से हम दोनों का निर्णय करो जिसप्रकार मुझ ने इसको दिया और यह मेरेदान को नहीं चाहता है अब आप यहां वर्त्तमान होकर हम दोनों को न्याय में नियतकरोगे फिर विरूप ने विकृत से कहा कि तुम अपने दिये ऋण को मुझ से क्यों नहीं लेते हो जैसे तुम ने दिया है वैसेही लो देर न करो—विकृत ने कहा कि तुम ने कहा था कि मैं ऋण लेता हूं तब मैंने भी कहा था कि मैं देता हूं अब यह मेरा ऋणीनहीं है वहांजाय जहां ऋण चाहता है—राजाबोला कि तुम इसके देनेपर नहींलेते हो यह बात मुझ को विरुद्ध ज्ञातहोती है तुम मेरीराय से निस्संदेह दण्ड के योग्य हो विकृतबोला हे राजर्षे! मैंने इसको देदिया अब फिर किसप्रकार से लूं जो इसमें मेरा अपराध समझो तो दण्ड की आज्ञा दो विरूप ने कहा कि जो तुम मेरेदिये हुये को नहींलोगे तो यह धर्म का जाननेवाला राजा तुम को दण्डदेगा विकृत ने कहा कि मैंने तुम्हारे मांगनेपर गोदान के फल को दिया अब मैं उसको किसप्रकार से फेरलूं आप जाइये मैं आपको आज्ञादेता हूं—ब्राह्मण बोले हे राजन्! तुम ने इनदोनों के इस वर्णन को सुना, मैंने जो तेरे साथ प्रतिज्ञा करी है उसको विचार कियेहुयेलो—राजा बोला कि इनदोनों का कर्म कलांतर बड़ा प्रशंसनीय है और जापक ब्राह्मण के सिद्धांत को दृढ़ करनेवाला है यह कैसे होगा जो अब ब्राह्मण का दियाहुआ नहींलेताहूं तो मुझको भी बड़ा अधर्म क्यों नहीं होगा तब राजऋषि ने उनदोनों से कहा कि तुम मनोरथ

सिद्ध करके जाओगे अब यहां मुझ को पाकर राजधर्म मिथ्या नहीं होगा राजाओं को यह बड़ा निश्चय है कि अपना धर्म अवश्य रक्षा के योग्य है-ब्राह्मण का धर्म कठिनता से करने के योग्य मुझ निर्बुद्धि में प्रवृत्त हुआ-ब्राह्मण बोला कि मुझ को योग्य था कि तुम ने याचना की और मैंने स्वीकार किया हे राजन्! जो तुम नहीं लोगे तो मैं अवश्य शाप दूंगा-राजाबोला कि राजधर्म को धिक्कार है यहां जिस के विषय में यह नीति है अर्थात् दान लेने का अधिकार नहीं और मुझे उसके जप का फल लेना योग्य हुआ तो वहमेरे धर्म के समान कैसे होगा मैंने पूर्व के विपरीत यहहाथ धरोहड़ के लिये पसारा-हे ब्राह्मण! जो मेराऋण आप रखते हैं उसको दीजिये ब्राह्मण बोला कि प्रणव व्याहृति सहित गायत्री का जपकरते में मैंने जो कोई गुण प्राप्त किया और जो कुछ यहां मेरा धन है उस सबको लो-राजा बोला कि हे ब्राह्मण! यह जल मेरे हाथ में गिरा वह मेरा हो वा बांटे में हो आप उसको लीजिये-विरूप बोला कि हम दोनों काम और क्रोध हैं आप को हम दोनों ने इस विषय में प्रवृत्त किया तुम ने जो साझे का शब्द कहा इस हेतु से तेरे और इसके लोक बराबर हैं यह कुछ ऋणद नहीं है काल, धर्म, मृत्यु और हम दोनों काम क्रोध ने तेरीबुद्धि जानने की इच्छाकरी तेरेसमक्ष में परस्पर के निर्णय में सब झगड़ा किया गया तुम अपने कर्म से जहां चाहते हो उन्हीं विजय कियेहुये लोकों को जाओ-भीष्मजी बोले कि मैंने तुम को जपकरने वालों के फल की प्राप्ति दिखाई जैसे कि उस जापक ब्राह्मण ने सूर्य्यलोक आदि को विजय करके मोक्षगति को पाया संहिता का पाठ करनेवाला ब्राह्मण परमेष्ठी ब्रह्माजी को प्राप्त होता है अर्थात् उन के शरीर में सायुज्य मुक्ति को पाता है या जप करनेवाला अग्निलोक में या सूर्य्य में प्रवेश करता है और वहां तेजसरूप से रमता है और रागादि से रहित होकर उनके गुणों को प्राप्त करता है-जैसे कि चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी और आकाश की देह में प्रवेश करनेवाला और रागवान् पुरुष उन्हीं के गुणको प्राप्त करता हुआ वहांपर वर्त्तमान रागवान् होता है तब संशय को पाता है वह उस उत्तम अविनाशी ब्रह्म को चाहता हुआ फिर उसी में प्रवेश करता है उस अमृत से अमृत को अर्थात् कैवल्य मोक्ष को प्राप्त करनेवाला इच्छा रहित बुद्धिमान् अहंकार को त्यागकर ब्रह्मरूप हर्षशोक रहित सुखी शान्तरूप द्वैतता से पृथक् आवागमन से रहित एक अविनाशी जरामृत्यु से अदूषित ब्रह्मरूप स्थान को पाता है वह चित्त के प्रत्यक्षागम अनुमान के विना है क्योंकि रूप गुण सम्बंध और जड़भाव से हीन छः उर्मियों से और प्राणादि सोलह गुणों से पृथक् कारण ब्रह्म को उल्लंघन कर उस पुरुष को प्राप्त होता है तब वह रागरूप पुरुष उस पुरुष की प्राप्ति को नहीं जाता है ऐसी दशा में उस सर्वात्मा कारण ब्रह्म का अभिमानी

होता है वह जिस कामना को चाहता है अथवा अनिच्छावान् वा सब प्रकार से पृथक् होकर सुखपूर्वक उस निर्गुण ब्रह्म में रमता है—इसप्रकार जप करनेवाले की गति कही और क्या सुननाचाहते हो ॥ १२८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! उस विरूप के कहने के पीछे उस विकृत ब्राह्मण ने और राजा ने क्या वार्त्तालाप करी उसको आप मुझ को समझाइये भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! उस ब्राह्मण ने ऐसाही होगा यह स्वीकार करके और पूजनीय यमराज, काल, मृत्यु और स्वर्ग का यथोचित पूजन करके पूर्व में जो अन्य ब्राह्मण वहां इकट्ठे हुये थे उन सबको शिर से दण्डवत् कर राजा से यह कहा कि हे राजन् ! तुम इस फल में संयुक्त होकर प्रतिष्ठा को पाओ और आप से आज्ञालेकर मैं फिर जप का प्रारम्भकरूं क्योंकि मुझ को श्रीशारदाजी ने वरदिया है कि तेरी जप में सदैव श्रद्धा रहै, राजाने कहा कि हे ब्राह्मण ! जो जपकरने में तेरी श्रद्धा है और बिनाफल के इस प्रकार की सिद्धि है तो तुम मेरेसंगचलो और जप के फल को प्राप्तकरो ब्राह्मण ने कहा कि वहां सबके सामने बहुत बड़े उद्योग के समान फलवाले हम दोनों साथ ही जायँगे जहां कि हमारी गति है—वहां देवताओं के ईश्वर इन्द्र देवता उन दोनों के निश्चय को जानकर देवता और लोकपालों समेत उनके सन्मुख गये—और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, बहुत से बड़े २ बाजेवाले, नदी, पर्व्वत, समुद्र और अनेक प्रकार के तीर्थ, तप, संयोग, विधि, वेद, स्तोम, सरस्वती, नारद, पर्व्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, गन्धर्व्व, चित्रसेन अपने परिवार गणों समेत, नाग, सिद्ध, मुनि, देवों के देव प्रजापति—विष्णु, शेष यहसब देवता आये और नाना प्रकार के बाजों से आकाश में मंगल शब्द करनेलगे और उन दोनों महात्माओं के ऊपर पुष्पों की वर्षाहुई और अप्सराओं के समूह नाचने गाने लगे तदनन्तर उस रूपवान् स्वर्ग ने ब्राह्मण से यह वचन कहा कि हे बड़भागी ! तुम्हारी पूर्णसिद्धि हुई और हे राजन् ! आप की भी इसी प्रकार की सिद्धिहुई यह सुनकर दोनों ने एकसाथही विषय करने वाली इन्द्रियों का संहारकिया और मूलाधार से कुण्डली को उठाकर ऊपर ऊपर के चक्रों के विजय क्रम से पांचोप्राणों को हृदय के अनहद चक्र के मध्य में नियत करके अर्थात् रोककर उसमें नियत चित्त को एकरूप प्राप्त करनेवाले दोनों प्राणों में धारण करके नियत किया और पद्मासन होकर भृकुटी के नीचे नासिका के अग्रभाग को देखते हुये उन दोनों ने धीरे २ प्राण अपान को चित्त के समेत दोनों

भृकुटी के मध्य दृष्टि को स्थिर किया उसी प्रकार दृष्टि को नियत किये हुये सावधान चित्त को एकाग्र करके निश्चेष्ट देह होकर मस्तक में धारण किया तदनन्तर ज्योति की बड़ी ज्वाला उस महात्मा ब्राह्मण के ब्रह्मरन्ध्र को फोड़ कर स्वर्ग को गई उसी प्रकार चारों ओर से सब जीवों का बड़ा हाहाकार हुआ तब वह ज्योति देवताओं से पूजित और प्रशंसित होकर ब्रह्माजी में प्रवेश करगई- फिर ब्रह्माजी ने आसन से उठकर उस प्रादेशमात्र पुरुष को अभ्युत्थान देकर उस तेज से कहा कि आनन्द पूर्व्वक आये यह कहकर दूसरे मीठे वचन यह कहे कि जप करनेवाले और योगियों का फल बराबर है परन्तु इन में जप करनेवाले की अधिक प्रतिष्ठा है, आनन्द से निवास करो यह कहकर बराबर चैतन्य किया अर्थात् जीवब्रह्म अर्थात् अपनी और उसकी एकता को जताया-तिस पीछे वह ब्राह्मण तप से पृथक् होकर ब्रह्माजी के मुख में प्रवेश करगया, और राजा मान्धाता भी उसी बुद्धि से भगवान् ब्रह्मा जीमें प्रवेश करगया, तब देवताओं ने ब्रह्माजी को दण्डवत् करके कहा कि हम लोग इसी निमित्त आये थे कि जाप का फल देखें सो देखा कि आपने योगी और जापक को समान फल दिया यह दोनों वहां प्राप्तहुये जहां कि अनन्तसुख है ब्रह्माजी बोले कि जो पुरुष महास्मृति अर्थात् मनुस्मृति आदि शुभ स्मृतियों का पाठ करता है वह मेरी लोकता को पाता है और जो पुरुष योग में प्रीतिवान् होता है वह भी इसी प्रकार देह के अन्त में मेरेलोकों को पाता है तुम अब अपने लोकों को जाओ मैं तुम्हारे भी अभीष्टों के निमित्त सिद्धि को साधन करूंगा यह कहकर ब्रह्माजी अंतर्द्धान होगये और देवता अपने २ लोकों को आये हे राजन् ! वह सब महात्मा प्रसन्न चित्त होकर धर्म्म का सत्कार करके चलेगये यह जपकरनेवालों का फल और गति तुम से वर्णन किया अब क्या सुना चाहते हो ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! ज्ञान योग का फल वेदों का फल उसी प्रकार अग्निहोत्रादि नियम का क्याफल है और जीवात्मा कैसे जानने के योग्य है यह सब आप मुझ से वर्णन कीजिये-भीष्मजी बोले कि यहां मैं इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में प्रजापति मनुजी और बृहस्पति महर्षि का संवाद है देवताओं में अतिउत्तम महर्षि बृहस्पतिजी ने अपने गुरु प्रजापतिजी से दण्डवत् करके यह प्रश्न किया कि हे भगवन् ! जिसके निमित्त कर्मकाण्ड जारीहुआ और ब्रह्मज्ञान होने से जिस के फल की प्राप्ति है ऐसा जो जगत् का कारण है और मन, वाणी, चित्त से बाहर होने के कारण वेद वचनों से प्रत्यक्ष

नहीं होता उस को आप ठीक २ मुझ से वर्णन कीजिये-अर्थ शास्त्र और मंत्रशास्त्र और वेद के जाननेवाले पुरुषों के बहुत यज्ञ और गोदानों के जो फलरूप सुख सेवन कियेजाते हैं वह क्या वस्तु हैं और किस रीति से प्राप्त होते हैं वह कहां और किस देश में हैं अथवा परमात्मा है पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्ष आदि वायु, अन्तरिक्ष, जलजीव, जल, स्वर्ग, और देवता पर्यन्त जिस से उत्पन्न हुये उस पुराणपुरुष को भी आप वर्णन कीजिये और जिस के लिये मनुष्य ज्ञान की इच्छा करता है और उस ज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली मिथ्या प्रवृत्तिहोती है और मैं भी उस महापुराणपुरुष को नहीं जानता हूं तो निरर्थकप्रवृत्ति को कैसे करूं ऋग्, यजु, सामवेदों की और नक्षत्रों की गति निरुक्त और शिक्षा कल्प समेत व्याकरणों को भी पढ़कर भूतों की प्रकृति को अर्थात् आत्मा को नहीं जानता हूं सो आप साधारण शब्दों के द्वारा इनसब को और ज्ञान में वा कर्म में जो फल है उस को और देहधारी जो यह जीवात्मा देह से पृथक् होता है और फिर जैसे देह को पाता है वह सब आप वर्णन कीजिये-मनुजी बोले कि जो जिसको प्यारा है वह सुख और जो अप्रिय है वही दुःख कहाजाता है और किसी के अभीष्ट का न होना होजाय इस निमित्त कर्म्मकाण्ड जारीहुआ और प्रिय अप्रिय मुझ को नहीं व्यापे इस निमित्त ज्ञानरूप कर्म्म बुद्धि जारी हुई-अर्थशास्त्र जाननेवालों का जो फल है उनको कहते हैं कि वेद में जो कामना को प्रधान रखनेवाले कर्म योग हैं अर्थात् सफल कर्म हैं उनसे रहित होकर मोक्ष को पाता है परन्तु नानाप्रकार के जो कर्म्म मार्ग वैदिक लौकिक हैं उन में प्रवृत्त सुख का चाहनेवाला पुरुष स्वर्ग को अथवा नरक को पाता है-बृहस्पति जी बोले सुख और दुःख दोनों में सुख प्याराहै और दुःख कुप्यारा है अर्थात् त्यागने के योग्य है वह इच्छा इस इच्छावान् को कर्म के अभ्यास में प्रवृत्तकरती है मनुजी ने कहा कि इन इच्छाओं से रहित अर्थात् ब्रह्मज्ञान आदि की इच्छा से ब्रह्म में लयहोता है इस निमित्त कर्म्म बुद्धिजारी हुई फल की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को वह कर्म्म योग बन्धन में डालता है इसी कारण इन इच्छाओं को त्याग के ब्रह्मज्ञान के ही निमित्त कर्म्म करे चित्त आदि और निष्फल कर्म्म से वृद्धि युक्त अर्थात् प्रीति आदि दोषों के दूरकरने से प्रकाशमान् सत् असत् विषयों का ज्ञाता सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष उस परब्रह्म को पाता है जो कि श्रेष्ठ होकर कर्म्म मार्ग से पृथक् इच्छा नहीं रखता है-यह सब सृष्टि चित्त और कर्म्म से उत्पन्नहुई है यह चित्त और कर्म्म दोनों संसार के देनेवाले भी ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग हैं और लोकों से सेवित हैं क्योंकि वह वेदोक्त कर्म्म अविनाशी और नाशवान् हैं वहां चित्त से फल का त्यागकरनाही मोक्ष का हेतु है दूसरा कोई नहीं है, जैसे कि निशा के अन्त में अर्थात्

प्रातःकाल के समय अन्धकारसे रहितहो नेत्र अपनेही तेज से सबसंसार केत्यागने के योग्य कांटेआदि को देखता है उसीप्रकार विज्ञान गुण से मिलाहुआ ज्ञान अशुभ कर्म्म को देखता है या जैसे सर्प कुशाओं की नोकों को त्याग करता है उसी प्रकार क्रोध को जानकर सर्व्वथा त्याग न करता है वहां जोकोई गिरता है तो अज्ञानही से गिरता है इससे ज्ञान में ही उत्तम फल को समझना योग्य है बुद्धि के अनुसार पढ़ाहुआ मंत्र सम्पूर्ण शास्त्रोक्त यज्ञ दक्षिणा अन्न का बड़ा दान और देवताओं के ध्यान आदि में चित्तकी एकाग्रता इनपांचप्रकार के कर्म्मों को फल के समान कहते हैं—अब कर्म्म कर्त्ता के स्वभाव से भिन्न कर्म्मों के फल को कहते हैं कि करने के योग्य कर्मवेद की रीति से त्रिगुणात्मक अर्थात् सात्त्विकी, राजसी, तामसी, कहाते हैं इस हेतु से मंत्र भी त्रिगुणात्मक हैं क्योंकि मंत्रही के साथ कर्म्म हैं, बुद्धि भी तीनप्रकार की है क्योंकि आत्माकी इच्छा करने वाला वा स्वर्ग की कामनावाला अथवा अन्य के मारणादि प्रयोग की इच्छा करने वाला यह तीनों पुरुष यज्ञकरते हैं और चित्त से फल की प्राप्ति भी तीन प्रकार की है उसी प्रकार फल का भोगनेवाला देहधारी भी तीन प्रकार का है अर्थात् सुखी दुःखी, अज्ञान और शब्द, रूप पुण्य रसस्पर्श इसी प्रकार उत्तम गन्ध है उनका अधिकारी जीवधारी पुरुष है परन्तु यह कर्म्म फल प्राप्त होनेवाले लोक में मिलता है तात्पर्य्य यह है कि उस अदृष्ट कर्मफल से दृष्टगोचर ज्ञान फलही श्रेष्ठहै—देह से जो २ कर्म्म करता है वह दूसरे देह मेंही अच्छे प्रकार से उसके फल को भोगता है क्योंकि देहही सुखालय और दुःखालय है अर्थात् बिना देह के आत्मा सुख दुःख से पृथक् है इसी कारण देह के अभिमान से पृथक् होना मोक्ष है देह के कर्म्मों से मोक्ष नहीं होती है जो कर्म कि वचन के द्वारा करता है उसको वचनही से भोगता है और चित्त से जो कर्म करता है उसके फल को चित्तमेंही नियत होकर भोगेगा, कर्म फल का चाहनेवाला पुरुष जैसे सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी कर्मफल को इच्छा से करता है उसी २ रीति से गुण संयुक्त पुरुष अच्छे बुरे कर्म्म फल को भोगता है जैसे कि मछली प्रवाह रहित जल के पीछे चलती है उसी प्रकार पिछले जन्म में किया हुआ कर्म्मफल प्राप्त होता है और शुभफल में सुखी और अशुभ में दुःखी होना यही अज्ञानता है इस से आत्माही श्रेष्ठ है जिस से कि यह जगत् उत्पन्न हुआ चित्त के जीतनेवाले पुरुष उसको जानकर संसार को त्याग उस ब्रह्म को पाते हैं जो मंत्र शब्दों से प्रकाश नहीं करता है उसकी श्रेष्ठता को सुनो कि वह रसों से और नाना प्रकार के गंधादिकों से और शब्द स्पर्शरूप से पृथक् पकड़ने में नहीं आता है और गुप्त होकर तीनों गुणों से पृथक् उसी एकाकी ने प्रजाओं के पांचों विषयों को उत्पन्न किया है और पुल्लिङ्ग, स्त्री लिंग, नपुंसक

लिंग इन तीनों से रहित सत्प्रधान परमाणु आदि भी नहीं है और असत् भी नहीं है सदसत् माया सबल भी नहीं है उसी अविनाशी को ब्रह्मज्ञानी लोग देखते हैं उसका कभी नाश नहीं है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि उस अविनाशी ब्रह्म से आकाश अर्थात् माया सबल ब्रह्म उत्पन्न हुआ उससे वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से सब सूक्ष्म और अस्थूल उत्पन्न हुये और पृथ्वी पर जगत उत्पन्न होता है इन पृथ्वी रूप देहों से जल को पाकर जल से अग्नि को, अग्नि से वायु को, वायु से आकाश को वह आत्मारूप परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं और जो आत्मारूप नहीं हैं वह आकाशरूप माया सबल से लौट आते हैं वह अक्षर ब्रह्म शीतोष्णता रहित मृदुत्व कठिनत्व विना मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्तादिरसों से, विगत श्रेष्ठ आत्मभाव शब्द गंधादि का भी रखनेवाला नही है और स्पर्शेन्द्रिय जिस स्पर्श को जानती है और रसना रस को जानती है, घ्राण गंधों को और दोनों कानशब्दों को, और नेत्ररूपों को देखते हैं परन्तु उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नहीं देखते हैं जिस को कि योग रहित अज्ञानी पुरुष नहीं पाते हैं जिह्वा को रसों से, घ्राण को गंध से, दोनों कानों को शब्द से, त्वचा को स्पर्श से, नेत्रों को रूप गुण से पृथक् हटाकर अपने आत्मारूप श्रेष्ठ ब्रह्म को देखता है उस आत्मारूप को उन मुनियों ने करता आदि का समूह उत्पत्ति का कारण आत्मारूप कहा है जो समूह करता है और जिसके द्वारा देश, काल, कारण, स्वरूप, सुख, दुःखहोते हैं उसी के अनुसार उद्योग प्रारम्भ किया जाता है और जिस को राग द्वेष या ईश्वर की इच्छा से प्रारम्भ कर के उसका दर्शन और प्राप्ति आदि करता है इस कारण करता—कर्म हेतु कर्म्म, देश, काल, सुख, दुख, प्रवृत्ति, प्रारम्भ, कर्म्म नाम, उद्योग, राग, गति, ईश्वर आदि के समूह का हेतु जो चिन्मात्र है वही स्वभाव है—वह कौन हेतु है जिसके कारण से प्राचीन जीव और ईश्वर का कार्य्यरूप होना कहा जाता है यह शंका करके कहते हैं कि जो व्यापक ईश्वर नाम हुआ और साधक जीव नाम हुआ और मंत्रार्थ के समान लोक में भी वर्त्तमान है अर्थात् एक होकर बहुत रूपों से दृष्टि पड़ता है और सब का कारण है अपने एकही रूप से सब को प्रकट करने वाला है वह परमकारण आनन्दरूप ब्रह्म है और शुद्धब्रह्म ईश्वर के विषय में अवान्तर कार्य्यरूप है अर्थात् प्रीतिकराने के लिये केवल मध्यवर्त्तीवस्तु है इसी हेतु से वह शुद्ध ब्रह्म इस कार्य्य रूप से दूसरा है इस प्रकार स्वभाव की परम कारणता को कहकर ज्ञानात्मा को

कहते हैं कि जैसे कोई मनुष्य अपने कर्मों से अच्छे बुरे फल को विना रोकटोक के पाता है उसी प्रकार उत्तम अनुत्तम देहों में अपने कर्म्म से उत्पन्नहोनेवाले पाप पुण्यों से यह चैतन्य स्वभावनाम परम कारण ज्ञान बँधाहुआ है जैसे कि अग्नि से प्रकाशित वृक्ष की नोकपर नियत दीपक दूसरों को प्रकाश करता है वैसेहीवृक्ष की जड़में रक्खाहुआ दीपकप्रकाश नहीं करता उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप दीपकसे संयुक्त पंचेन्द्रिय रूपवृक्ष प्रकाश रहित होकर ज्ञान दीपक से प्रकाशित और चैतन्य के प्रकाश से प्रकाश को करते हैं—जैसे राजा के नियत किये हुये बहुत से मंत्री पृथक् प्रमाण को कहते हैं उसीप्रकार देहों में पांचइन्द्रियां ज्ञानरूप के मुख्यअंग होते हैं वह ज्ञानरूप स्वभाव अर्थात् आत्मभाव उनसे उत्तम है, जैसे अग्नि की ज्वाला—वायु का वेग—सूर्य्य की किरणें—नदियों का जल—यह सब अच्छे प्रकार से घूमते जाते हैं उसीप्रकार के जीवात्मा के भी देह हैं तात्पर्य्य यह है कि देहों में चित्त से बँधा हुआ ज्ञान देह की नाश अवस्था में नाश को नहीपाता है जैसे कि कोई मनुष्य करसे को लेकर लकड़ी में अग्नि और धुवां को नहीं देखते उसीप्रकार देह की पीठ और हाथ पैरों को काटकर उसको नहीं देखते हैं, आत्मा उससे ऐसा पृथक् है जिसप्रकार युक्त से उनलकड़ियों को मथकर अग्नि और धुवां को देखे उसीप्रकार ज्ञानी जीवात्मा एकही समय उस श्रेष्ठ आत्मभाव को उत्तम बुद्धि से देखता है, जैसे कि स्वप्न में पृथ्वीपर पड़ेहुये अपने देह को अपने से पृथक् देखता है उसी प्रकार चित्त बुद्धि से मिलाहुआ दशइन्द्रिय पंच प्राण से संयुक्त अर्थात् अपने रूप से पृथक् देह को अपने से जुदा न समझनेवाला एक देह से दूसरी देह में जाता है यह श्रेष्ठ आत्मा उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, मृत्यु आदि से संयुक्त नहींहोता है वह अदृष्ट कर्म्मफल से युक्तहोकर इसमृतक देह से दूसरीदेह में जाता है, नेत्र से आत्मा के रूप को नहीं देखता है न स्पर्श करता है अर्थात् वास्तव में भोगने वाला न होने से असंग है उनइन्द्रियों से कार्य्य को साधन नहीं करता है वह इन्द्रियां भी उसको नहीं देखती हैं और वह उनको देखता है अर्थात् उनका साक्षी है—जैसे कि कोई प्रज्ज्वलित अग्नि के सामने संताप से उत्पन्न होनेवाले रूप को पाता है और दूसरे रूप को नहीं धारण करता है उसी प्रकार इस आत्मा का वह रूप देह में भी दृष्टपड़ता है तैसेही मनुष्य इस देह को त्याग कर दूसरे अदृश्य शरीर में प्रवेश करता है—महाभूतों में देह को त्यागकर दूसरे देह सम्बन्धी रूप को धारण करता है अर्थात् उस देह के धर्म्मों को आत्मा में मानता है फिर यह शरीरी देह को त्याग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में चारों ओर से प्रवेश करता है और नानाप्रकार के निवास स्थान रखनेवाली कर्म में वर्त्तमान पांचों इन्द्रियां पांचों गुणों को प्राप्त करती हैं श्रोत्र इन्द्रिय आकाश के शब्द गुण को, घ्राण पृथ्वी के गन्ध गुण को, नेत्र

अग्नि के गुणरूप को, जिह्वा जल के गुण रसको, त्वचा वायु के स्पर्श गुण को प्राप्त करती है अर्थात् पांचों इंद्रियां पांचो आकाशादि तत्त्वों में और पांचों तत्त्व पांचोंइन्द्रियों में निवास करते हैं और चित्त बुद्धि के पीछे चलता है, और बुद्धि स्वभाव के पीछे चलती है, इसकारण विषयों की उत्पत्तिस्थान इन्द्रियां हैं, उनकाकारण चित्त और चित्त की कारण बुद्धि है और उस बुद्धि का कारण चैतन्य आत्मा इसक्रम से सब वासनाओं से पूर्ण बुद्धि में सब वर्त्तमान हैं उस बुद्धि के पृथक् न होने से चैतन्य आत्मा फिर संसारी होता है जो दूसरा अच्छा बुरा कर्मकिया उसको कर्माधीन प्राप्तहोनेवाले दूसरे नवीन देह में प्राप्त करता है—अर्थ और बुद्धि आदि चित्त के पीछे चलते हैं जैसे कि जल के जीव अपने जल प्रवाह के अनुसार जाते हैं जैसे कि नौकापर चलने वाले को नदी के किनारे के वृक्ष आदि चलते से दृष्टपड़ते हैं और छोटी वस्तु दूरदर्शी यन्त्रके द्वारा बड़ी मालूम होती है—उसीप्रकार चैतन्य पुरुष बुद्धि मार्ग में प्राप्त होता है अर्थात् चेष्टारहित भी चंचलमाया के कारण चेष्टायुक्त मालूम होता है और सूक्ष्महोकर भी बुद्धि में संयुक्त होने से विराट् आदि रूपवान् दृष्टपड़ता है और अपने अज्ञान से अकेला भी बहुत रूपवाला देखने में आता है और जैसे कि ऐनक आदि के रहित होने से मुख्यरूप दिखाईदेता है उसीप्रकार वह आत्मा बुद्धि मार्ग से पृथक् होने में शुद्ध चिन्मात्र है तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मज्ञानही उसअनादि भ्रांति रूपमाया के नाश करने को समर्थ है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि चित्त और इन्द्रियों से संयुक्त जो चैतन्य जीव है वह बहुत काल तक प्रथम प्राप्त होनेवाले विषयों को स्मरण करता है परन्तु उन इन्द्रिय आदि के लयहोने पर अपने मुख्य स्वभाव को प्राप्त होता है फिर वह बुद्धिरूप सब से उत्तम चैतन्य रूप आत्मा कहाता है अर्थात् वास्तव में बुद्धि से पृथक् है जैसे कि वह आत्मा एकही समय या बहुत समय पर इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों को अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है उसी रीति से चेष्टावानों में भी घूमाकरता है, वह साक्षी है उसी कारण से वहएकही श्रेष्ठआत्मा है तात्पर्ययह है कि आत्मा बुद्धि आदि का प्रकाशक है और बुद्धि आदि आत्मा के प्रकाशकनहीं हैं वह चेष्टारहित भी चेष्टावान् पदार्थों में घूमता है इसकोसिद्धकरते हैं कि यह आत्मा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण अर्थात् त्रिगुणात्मक जागृतआदि बुद्धि के स्थान और गुण अपूर्व दुःख सुख रूपों को जानता है अर्थात् केवल साक्षीरूप है भोक्ता नहीं है वह इसप्रकार से इन्द्रियों में प्रवेशकरता है जैसे कि अग्नियुक्त इन्धन

में वायु का प्रवेश होता है उसको न आंख देखसक्ती न त्वचा स्पर्श करसक्ती क्योंकि वह आत्मा इन्द्रियों की भी इन्द्रिय है वह कानों से भी नहीं सुनाजाता और शास्त्र के अनुसार जो आत्मा का दर्शन है उसमें जैसी आकृति का दर्शन है वही नाशवान् है श्रोत्रादि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्य से अपने २ विषयों को देखती हैं उस आत्मा को नहीं देखती हैं वह सर्व्वज्ञ और सर्वदर्शी आत्मा उन सब को देखता है, जैसे कि मनुष्यों ने प्रथम हिमालय पर्व्वत के फलों को और चन्द्रमाकी पीठ को नहीं देखा इतनी बात सेही यह नहीं कहसक्के कि वह नहीं है उसीप्रकार यह सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप आत्मा जोकि पहले नेत्रों से दृष्ट नहीं आया इतनी बात से भी यह न कहना चाहिये कि वह नहीं है जैसे कि चन्द्रमा में दृष्ट करताहुआ भी संसार के प्रतिविम्ब चिह्न को नहीं देखता है अर्थात् यह जगत् ही चन्द्रमा में दृष्टपड़ता है इसबात को नहीं जानता है इसी प्रकार का यह आत्मज्ञान है जो आत्मा है वही ब्रह्म है इसहेतु से वहज्ञान उत्पन्न नहींहुआ है यहबात ठीकनहीं है क्योंकि आत्मज्ञानही सर्व्वोत्तम स्थान है तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्म को जानकर विपरीत रीति से मानते हैं इससे शास्त्र की आवश्यकता है, ज्ञानीलोग आदि अन्त में बुद्धि से रूपवान् को विनारूप देखते हैं अर्थात् वह जिससे प्रकट हुआ है उसी मूल को मानते हैं उस आदि अन्त का देखने वाले पुरुष सूर्य्य की गति को देखते हैं अर्थात् मण्डल को तो चलायमान और मण्डल के भीतर वर्त्तमानसूर्य्य को अचल देखते हैं, उसीप्रकार बड़ेज्ञानी पुरुष अज्ञानता से दूरवर्त्ती आत्मा को बुद्धिरूपी दीपक से दीखते हैं और समीपवर्त्ती प्रपञ्च को जानने के योग्य ज्ञानरूप ब्रह्म में लय किया चाहते हैं निश्चय है कि विना उद्योग के कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, जैसे कि मछलीमार सूत के जालों से मछलियों को बांधते हैं और जैसे मृगों के द्वारा मृगों का पकड़ना और पक्षियों के द्वारा पक्षियों का पकड़ना होता है और हाथियों से हाथी पकड़े जाते हैं इसीप्रकार जानने के योग्य ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म प्राप्तहोता है तात्पर्य यह है कि सजातियों के द्वारा सजाती पकड़ा जाता है जो कि ज्ञान भी उसज्ञान स्वरूप का सजाती है इससे वह ब्रह्म की प्राप्ति में उपयोगी है, सर्पही सर्प के खोजों को देखता है यह हम ने श्रवण किया है इसीप्रकार जानने के योग्य और कारण नाम देह में नियत आत्मा को सूक्ष्म देहों के भीतर ज्ञान से देखता है, जबबुद्धि की वृत्ति से आत्मदर्शन हुआ तब आत्मा की जड़ता सिद्धहुई इस शंका को इस प्रकार से निवृत्त करते हैं कि जैसे इन्द्रिय इन्द्रिय के जानने की उत्साह नहीं करती है उसीप्रकार पराबुद्धि उस जानने के योग्य आत्मा को नहीं देखती है आशय यह है कि वेदान्त की प्राप्ति के लिये बुद्धि की वृत्ति की व्याप्ति है फल की नहीं है वृत्तिरूप उपाधि के दूर होने में भी इसको ब्रह्महा कहते

है, जैसे चन्द्रमा अमावस के दिन देह रहित होने से दृष्ट नहीं पड़ता है और उस समय उसका अभाव नहीं होता है उसी प्रकार देहवान् आत्मा को भी जानो प्रत्यक्षदेह से पृथक् न मालूम होनेवाला चन्द्रमा ऽमावास्या को प्रकाश नहीं करता है ऐसेही वृत्ति या देह से जुदा यह आत्मा भी दिखाई नहीं देता है जैसे कि चन्द्रमा दूसरे आकाश को प्राप्तहोकर फिर प्रकाश करता है उसीप्रकार आत्मा भी दूसरे देह को पाकर फिर अपना प्रकाश करता है, प्रत्यक्ष देह का जन्म वृद्धि नाश पायाजाता है वह चंद्रमंडल का धर्म्म है उस आत्मा का नहीं है, जैसे कि उत्पत्ति वृद्धिदशा से एक पुरुषही जानाजाता है उसीप्रकार अमावास्या के दिन गुप्तहोनेवाला चंद्रमा भी फिर देहधारी होकर एकही दृष्ट पड़ता है उसी प्रकार बालदशा आदि और देह के रूपान्तर में भी एकही आत्मा है-देह और आत्मा का सम्बन्ध तीनोंकाल में नहीं है इसबात को इसप्रकार सिद्ध करते हैं कि जैसे अन्धकार चन्द्रमा को स्पर्शकरता या त्यागकरता दृष्टनहीं पड़ता है उसीप्रकार आत्मा को देहकास्पर्श करनेवाला वा त्याग करनेवाला जानो जिसप्रकार वहअन्धकार चन्द्रमा और सूर्य से संयुक्त देखाजाता है उसीप्रकार आत्मादेह से संयुक्त मालूमहोता है अर्थात् देह और आत्मा का प्रकाश परस्पर में सम्बन्ध रखनेवाला है जैसे कि चंद्र सूर्य से भिन्न वह राहुप्रकाश नहीं करता है उसीप्रकार देह से पृथक् आत्मा भी प्रकाश नहीं करता है जैसे अमावास्या के दिन सूर्य से संयुक्त चंद्रमा नक्षत्रों से मिलता है उसीप्रकार देह से पृथक् आत्मा कर्म्म फल से संयुक्त होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि जैसे स्थूल देह सोजाता है और स्वप्न में लिंग शरीर चेष्टाकरता है और मृतक ही स्थूल शरीर से पृथक् होकर विचरता है उसी प्रकार का संसार है और इन्द्रियों से संयुक्त लिंग शरीर भी सोजाता है और सुषुप्ति में अर्थात् स्वप्नावस्था से पृथक् अवस्था में ज्ञान विचरता है, लिंग शरीर के नाश में उससे पृथक् होकर विचरता है वैसेही मोक्ष है, जानने के योग्य आत्मा को ज्ञान से जानकर अज्ञान से छूटता है और वह ज्ञान इन्द्रियों के जीतने से होता है उसको इसरीति से सिद्ध करते हैं कि जैसे शुद्धजल में नेत्र से रूप को देखता है उसीप्रकार इन्द्रियों की सफाई से ज्ञान के द्वारा आत्मा को देखता है और जिसप्रकार उसजल के हिलने पर रूप को नहीं देखसक्ता है उसीप्रकार इन्द्रियों की व्याकुलता में ज्ञान से आत्मा को नहीं देखता है अविद्या अज्ञान से पैदा होती है और अविद्याही से चित्त खींचाजाता है और चित्त को दूषित होने में

चित्त से मिली हुई पांचों इन्द्रियां भी दोषयुक्त होजाती हैं—अज्ञानता से भराहुआ और इन्द्रियों के विषयों में डूबाहुआ जीवात्मा तृप्ति को नहीं पाता है और अदृष्ट के समान विषय भोग के लिये फिर जन्म लेता है—इसलोक में मनुष्य की इच्छा पापों से नाशनहीं होती है जब पाप का नाश होता है तबइच्छा भी नाशहो-जाती है विषयों के योग से साधन के विपरीत सुखदुख की इच्छा करताहुआ पुरुष सनातन ब्रह्म के आश्रय से ब्रह्म को नहीं पाता है और पापकर्म के नाश होनेपर पुरुषों को ज्ञानउत्पन्न होता है और जैसे शुद्धआदर्श में मुख को देखता है उसी प्रकार बुद्धि में आत्मा को देखता है—और विषयों में प्रवृत्तइंद्रियों से दुःखी होता है और उन स्वाधीन होनेवाली इन्द्रियों से सुखी होता है इस कारण चित्त के द्वारा विषयों से इन्द्रियनाम आत्मा को हटावे अर्थात् अपने वश में करे—चित्त इन्द्रियों से प्रथम है और उसचित्त से महाउत्तम बुद्धि है और बुद्धि से उत्तमोत्तम ज्ञान अर्थात् जीवात्मा है और उस जीवात्मा से श्रेष्ठतम परमात्मा है तात्पर्य्य यह है कि परम्परा से एक को दूसरे में लय करता हुआ ब्रह्मभाव को प्राप्तकरे, उस लयता के निमित्त उत्पत्ति के क्रम को कहते हैं उसगुप्त और शुद्ध चिन्मात्र से ज्ञानात्मा उत्पन्नहुआ उस से बुद्धि, बुद्धि से चित्त, चित्त से पांचों इन्द्रियां और उन पांचों से शब्द आदि विषय उत्पन्नहुये वह चित्त इन्द्रिय आदि से संयुक्त होकर शब्दादिकों को देखता है, जो पुरुष उन शब्दादि विषयों को और सब प्रत्यक्ष वस्तुओं का त्याग करता है वह मायासम्बन्धी स्थूल सूक्ष्मादि शरीरों को त्यागकर अविनाशी एकत्वभाववाली मोक्ष को पाता है, जैसे कि सूर्य्य उदय होकर किरणें प्रकट करता है और अस्तहोकर उस किरण मण्डल को अपने में लय करता है, उसीप्रकार से जीवात्मा किरणरूप इंद्रियों के द्वारा देह में प्रवेशितहोकर और पांचों इंद्रियों के विषयों को पाकर अन्त में आत्मरूप को पाता है—अब वारंवार उस के देहधारी होने के कारण को कहते हैं—कर्म्म में नियत वारंवार विषयों में प्रवृत्तहोनेवाला यह जीवात्मा सुख आदि कर्म्म फल को पाता है क्योंकि उसनेप्रवृत्ति प्रधानकर्म्म अर्थात् पितापन को प्राप्तकिया इस हेतु से निवृत्ति धर्म्म को कहते हैं कि विषयभोग से पृथक् जीवात्मा की विषय रूप इच्छादिक दूरहोजाती हैं परंतु वासनारूप रस का नाशनहीं होता है वह भी आत्मा को देखकर नष्टहोजाता है जब बुद्धि उन विषयों के द्वारा जिनके कि गुण कर्म्म हैं चित्त में वर्त्तमान होती है, तब वह चित्त ब्रह्म को प्राप्तहोता है और उसी में लयहोजाता है और वहबुद्धि उसपरब्रह्म में प्रवेशकरती है जोकि स्पर्श, गंध, रूप, रसादि से रहित चित्त से बाहर है—अब अध्यायभर के आशय को समझो कि सबरूपतो चित्त में लय हैं और चित्तबुद्धि में और बुद्धि ज्ञान जीवात्मा में लयहोते हैं और जीवात्मा परब्रह्म में लय होजाता है इन्द्रियों से

चित्त की शुद्धि नहीं होती और चित्तबुद्धि को नहींजानता और बुद्धिआत्मा को नहींजानती है परंतु वह सूक्ष्मआत्मा सबको देखता है ॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

मनुजीबोले कि देह के रोग और चित्त के खेद वर्त्तमान होनेपर जिसके होतेहुये विचारयोग करने को समर्थ नहीं होता उसको चिंता नहीं करे अर्थात् निर्भय होकर उसकोदूरकरे दुःख का यही उपाय है कि उसकी चिंता न करे क्योंकि चिन्ताकरने से सन्मुख आता है और अधिक वृद्धिपाता है, बुद्धि से चित्त के खेद को दूरकरे और औषधियों से देह के रोगों को दूरकरे यहपूर्णबुद्धिवाले की सामर्थ्य है बालक बुद्धि अज्ञान से समता को नहीं प्राप्तहोती—तरुणता, स्वरूप, जीवन, धनसमूह, नीरोगता, बांधवों में निवास यह सबबातें सदैव नहीं रहतीं अर्थात् सब नाशवान् हैं इनमें पंडित कभी इच्छा न करे—अकेला मनुष्य सबइलाके का दुःख शोचने को योग्य नही है इससे शोचरहित उपाय करे इस जीवन में सुख से अधिकतर दुःख है यहनिस्सन्देह बात है कि इन्द्रियों के विषयों में प्रीति करनेवाले की भूल से अनिच्छा से मरण होता है, जो मनुष्य इन दोनों सुखदुःखों को त्यागकरता है वहअपारब्रह्म को प्राप्तकरता है और ब्रह्म प्राप्त करनेवाले पण्डित शोच नहीं करते हैं सबप्रकार के धन दुःखसेही मिलते हैं और वह रक्षा के कारण सुखदायीनही हैं और दुःखमेंप्राप्त नहींहोते हैं इनके नाशकीचिंता न करे इसप्रकार दुःख के दूरकरने की युक्ति वैराग्य को कहकर सुख मिलने की युक्ति ब्रह्मात्मज्ञान को कहते हैं, जब ज्ञानजानने के योग्यहुआ तब चित्त को उसज्ञान का गुण अर्थात् धर्मजानो और जबवह चित्त ज्ञानेन्द्रियों से मिलता है तब बुद्धि वर्त्तमान होती है—बुद्धि का जो लयकरना है वही ब्रह्म की प्राप्ति है इसको कहते हैं कि जबकर्मों से उत्पन्न होनेवाले संस्कारों से मिली हुई बुद्धि चित्त में वर्त्तमानहोती है तब ब्रह्मज्ञान होता है वहबुद्धि, ध्यानयोग से प्राप्त होनेवाली समाधि से उदयहोती है—वह गुणवती बुद्धि अज्ञान से विषयों में वर्त्तमान होती है जैसेकि पहाड़ के शिखर से निकलकर जलनदियों में प्राप्त होता है, जब ध्यान को जोकि सबकामूल है चित्त में पाता है तबब्रह्मजानाजाता है जिसप्रकार पत्थरपर सुवर्ण की रेखा, जो ब्रह्मज्ञानइसप्रकार से जानाजाता है जैसे कि पत्थरपर सुवर्ण की रेखा ऐसी दशा में उसकी चैतन्यता प्रकट नहींहोती यह शंका करके कहते हैं कि चित्त जो इन्द्रियों के विषयों का दिखलानेवाला है वह समक्ष गुणों का अपेक्षीहोकर निर्गुण को नही दिखलासक्ता है, इनइन्द्रियरूप सब द्वारों को बंद कर के संकल्प मात्र से नियत हो उनको बुद्धि में लय करके

इस आत्मा रूप एकाग्रता को पाकर उस अद्वैतता से ब्रह्म को पाता है, इस लय के क्रम को युक्ति से भी सिद्ध करते हैं, शब्दतन्मात्रा आदि अपंचीकृत भूतनाम है उनका नाशसुषुप्ति में होनेपर उनके कारणरूप महाभूत नाशहोते हैं इसीतरह चित्तकारण में लयहोनेवाला कार्य अपने दोष से कारण को भी दोषसंयुक्त करता है जैसे कि जल में डालाहुआ पारा जल के खार को अपने उत्पन्नकिये हुये रस से दूषित करता है इस संदेह को कहते हैं कि जब निश्चयात्मक रूप गुण से संयुक्त अहंकार में घूमनेवाली बुद्धि चित्त में वर्त्तमान होती है तब बुद्धि भी चित्तरूप होजाती है, मीठाजल निमक के परे का कारण नहीं होता इसकारण वहदोष अन्य वस्तु के मिलाने से होता है जब त्रिगुणात्मक चित्त अहंकार रूप कहाजाता है तब अन्यपदार्थ निर्गुण में लय होनेवाला भी अपने धर्म से दूषित करता है इसशंका को ध्यान से सुनो कि वह अहंकार जब रूपआदि विषयों के साथ गुणों को प्राप्तकरता है तब सबगुणों को लय करके निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करता है जब बुद्धि आदि का लयनहीं होता है तब उनमें लय होनेवाला चित्त स्वप्नावस्था और प्रलय में फिर उठखड़ा होता है क्योंकि उसके कारण का तो नाश नहींहुआ आशय यह है कि रस्सी में सर्प की भ्रांती के समान होने से वह माया ब्रह्म को दूषित नहीं करसक्ती और अव्यक्त नाम आदि जो चैतन्य के गुण हैं उनका स्वरूप कहना कठिन है उसको भी कहते हैं यहां विज्ञान में उस माया के समान कोई दृष्टांत नही है, जहां कि वचन का व्यापार नहीं उस विषय को कौन प्राप्त करसक्ता है इसीकारण से सगुण आदि से उत्पन्न होनेवाले साक्षात्कार से आत्मतत्त्व को निश्चय करना चाहिये ऊपर कहीहुई रीति से तत्त्वदर्शी का गुप्तप्रकट एकसा है उस में कोई अंतर नहीं है जैसे कि सुवर्ण और सुवर्ण के कुण्डल दोनों एक हैं और पृथक् भी हैं इसीप्रकार यहभी है—विषयों से रहितहोने से बुद्धि ब्रह्म को पाती है, जैसे कि पांचोंइन्द्रियां स्वप्नावस्था में अपने कर्मों से छूटजाती हैं उसीप्रकार परब्रह्म भी कारण को त्यागकर जन्मांतर रूप और माया से परे है—इसप्रकार जीवात्मा स्वभाव से संसार की ओर वर्त्तमान होते हैं और संसार से निवृत्ति होनेपर परब्रह्म की ओर लौटते हैं अर्थात् ब्रह्मभाव को पाते हैं और स्वर्गादिक को भी पाते हैं जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहंकार, अभिमान इनसब को भूत कहते हैं, सदैव प्रवाहयुक्त आकाशादि का नाशकहां से है इस शंका को निवृत्त करते हैं कि इस भूतसमूह की पहली उत्पत्ति प्रधान से होती है, और दूसरी उत्पत्ति बीज अंकुर की रीति से होती है ज्ञानी पुरुष पंचतन्त्र एकादश इन्द्रिय और अहंकार से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति को रोकता है अर्थात् विशेष को अविशेष में लयकरता है, धर्म्म से कल्याण की वृद्धिहोती है और अधर्म से अकल्याण बढ़ता है और

संसार की प्रीति में फँसाहुआ मनुष्य समयपर माया के लय को करता है और वैराग्यवान् ज्ञानी मुक्ति को पाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

तैंतीसवां अध्याय ॥

मनुजी ने कहा कि जब अपने विषयों समेत पांचोंइन्द्रियां चित्त बुद्धि से संयुक्त स्वाधीन होती हैं तब वहब्रह्म इसप्रकार दृष्टपड़ता है जैसे कि मणि में प्रविष्टसूत्र होता है आत्मा की एकता सिद्ध करने के लिये इसदृष्टांत से सब स्थानों में आत्मा की व्याप्ति को कहते हैं फिर जिसप्रकार वहखान का सोना स्वर्ण मुद्रिका आदि में भी वर्त्तमान होता है और मोती मूंगों के दानों में भी होता है उसीप्रकार आत्मा अपने कर्मों से गौ, घोड़ा, मनुष्य, हाथी, मुर्गा, कीट, पतंगों के देहों में चित्तलगानेवाला है, यह जिस २ देह से जो २ कर्म्मकरता है उस २ देह से वैसेही फल को पाता है, एकरसवाली पृथ्वी औषधिरूप अर्थ के अनुसार होती है उसीप्रकार कर्म्मों के पीछे चलनेवाली बुद्धि है जिसका कि साक्षी आत्मा है—बुद्धि के अनुसार कर्म की इच्छा होय और उस इच्छा के अनुसार उद्योगहोय और उद्योग के अनुसार कर्महोय उसके पीछे कर्मरूप मूल रखने वाला फलहोय, फल को कर्म से उत्पन्न होनेवाला जाने उसीप्रकार कर्म को बुद्धि आदि से और उस बुद्धिआदि को जीवात्मा से उत्पन्न होनेवाला जाने, वह जीवात्मा जड़ चैतन्यरूप है अर्थात् जीव जड़ और आत्मा चैतन्य है, ज्ञान बुद्धि आदि और संचितकर्मों के नाश होनेपर जो दिव्यफल ब्रह्मज्ञान नामप्राप्त होता है वहजानने योग्य ब्रह्म में वर्त्तमान है अब जानने के योग्य ब्रह्म के स्वरूप को कहते हैं योगी जन उसको देखते हैं और विषयों में बुद्धि लगानेवाले अज्ञानी उसबुद्धि में वर्त्तमान ब्रह्म को नहीं देखते हैं इसलोक में पृथ्वी रूप से जलरूप बड़ा है जल से अग्नि, अग्नि से वायु, वायु से आकाश बड़ा है और उससे भी बड़ा चित्त है चित्त से बुद्धि, बुद्धि से बड़ा काल है काल पुरुष से वह विष्णुभगवान् श्रेष्ठ है, जिसका कि यह सब जगत् प्रकट है उस ईश्वर का आदि, मध्य, अंत नहीं है वह अविनाशी आदि मध्य अंत के न होने से सब दुःखों से पृथक् है उसको परब्रह्म कहते हैं वह ज्योति परमपद है उसको जानकर काल पुरुष के देश से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं यह मुक्त पुरुष गुणों में प्रकाश करते हैं, ब्रह्मनिर्गुण होने के कारण उन गुणों से प्रधान है इसी प्रकार निवृत्ति लक्षणवाला धर्ममोक्ष के लिये कल्पना कियाजाता है अब वेदपाठ धर्म्म को दिखाते हैं—यजुर्वेद और सामवेद की ऋचा कारणरूप देहों में जिह्वा के अग्र-भागोंपर वर्त्तमान होती हैं इसी हेतु से युक्ति से होनेवाली और विनाशवान् हैं

यहबात ब्रह्म में विपरीत हैं इस निमित्त ब्रह्म उसको नहीं चाहता है ब्रह्म युक्ति से सिद्धहोनेवाला नहीं है और आदि मध्यान्त रहित होकर यजु सामवेदों की ऋचाओं का आदि कहाजाता है और जब आदि है तो अंत अवश्यही होगा इससे ब्रह्म अनादि कहा है आदि अन्त न होने से वहब्रह्म अनंत अविनाशी है और अविनाशी होने से आनन्दरूप है इसीकारण मानापमान से पृथक् है इस उन्नीस श्लोक से बत्तीस तक का अभिप्राय है कि मन और आत्मा के संग होने में मन का धर्म आत्मा में नही होता—जिस में सत्वगुण प्रधान है वहमन जब प्रकृति को प्राप्तहोता है तब प्रकृति और गुणों को त्यागकर निराकार को प्राप्त होकर उसी निराकार में मिलजाता है, वह निराकार देखने में नहीं आता है तो उसको दृष्टांतों से मुझे बताइये मनुजी ने कहा कि जो कहने में और देखने में नही आता उसको दृष्टांतों से कैसे बतलासक्के हैं इससे जो अव्यक्त और निराकार आत्मा है उस में श्रवण मनन निदिध्यासनादि से विचारकरे फिर अपने में और ब्रह्मभाव में कुछ भेद न रक्खे वह निश्चय ब्रह्मज्ञान को पाता है जो सर्वगुण रहित मति से ब्रह्मज्ञान में तत्पर है वह अवश्य ब्रह्म की प्राप्ति करते हैं और जो गुणसमेत बुद्धि से ध्यान करते हैं वहकभी ब्रह्म को नहीं प्राप्तहोते, जैसे कि सुषुप्ति अवस्था में इन्द्रिय और कर्मों से रहित होते हैं उसीप्रकार माया से जो पृथक् रहते हैं वह ब्रह्म को पाते हैं जो मनुष्य इस संसार में प्रकृति से युक्त हैं वह ज्ञान के उदय होने से स्वधर्मनिष्ठ हो माया को त्याग ब्रह्म में मिलजाते हैं—जब प्रलयहोती है तबअज्ञानीजन प्रकृति में मिलते हैं और जो ज्ञानवान् हैं वह निराकार ब्रह्म में मिलजाते हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेमनुबृहस्पतिसम्वादेत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवां अध्याय ॥

ब्रह्म के साक्षात्कार को मोक्ष का कारण आप ने ऊपर वर्णन किया उस में सगुण ब्रह्म का ज्ञान होने से निर्गुण का दर्शन होता है इस निमित्त पहले महर्षियों के मुख से श्रीकृष्णजी को परमात्मारूप सुनकर श्रीकृष्णजी के गुणों का कीर्त्तन करने के निमित्त राजायुधिष्ठिर ने कहा कि हे भरतर्षभ, महाज्ञानिन्, पितामह ! मैं कमल लोचन श्रीकृष्णजीको जानना चाहता हूं कि वह अविनाशी ईश्वर अजन्मा सर्वव्यापी सब जीवों के उत्पत्तिस्थान और नाशवान् देह के धर्मों को त्यागे नारायण इन्द्रियों के स्वामी गोविंद और केशव जिन का नाम है, भीष्मजीबोले कि हे राजन् ! मैंने परशुरामजी, देवर्षि नारदजी और व्यासजी के वचन से इसप्रयोजन को सुना है—हे तात ! महातपस्वी असित, देवल, वाल्मीकि, मार्कण्डेय ऋषि इत्यादि इन गोविन्दजी के अनेक अद्भुत महात्मों को कहते हैं,

हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! यह श्रीकृष्णजी सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म्म के स्वामी ईश्वर प्रभु पूर्णरूप देहों में निवास करनेवाले व्यापकसर्वरूप बहुतप्रकार से सुनेजाते हैं, लोक में ब्राह्मणों ने इसशार्ङ्ग धनुषधारी महात्मा में जो जो माहात्म्य निश्चयकिये उनको सुनो कि उसभूतात्मामहात्मा ने पंच महाभूत होकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को प्रकटकिया, और वेद में लिखा है कि वह संसार को उत्पन्न करके उसी में आप प्रविष्ट हुआ इस आशय को सिद्ध करते हैं कि उन सबजीवों के ईश्वर ने पृथ्वी आकाशादि को उत्पन्न करके जल में निवास किया, जाग्रत आदि दशा के अन्त में नाश होनेवाली जीव सृष्टि को कहते हैं उसजल में शयन करनेवाले सब वासनारूप उस पुरुषोत्तम ने सबजीवों के पहले अहंकार को उत्पन्नकिया, वह भूत भविष्य काल और जीवों को धारण करता है, उसके पीछे उस महाबाहु पुरुषोत्तम विष्णु की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ वह सूर्य्य के समान रूपवान् था उस कमल में सबजीवों के पितामह सब दिशाओं को प्रकाश करतेहुये भगवान् ब्रह्मा जी उत्पन्न होतेभये उनके पैदाहोनेपर अंधकार से प्रथम उत्पन्नहोनेवाले योग का विघ्नकर्त्ता मधुनाम महाअसुर उत्पन्नहुआ उस भयंकर और भयानक रूप को पुरुषोत्तम चिदात्मा ने ब्रह्माजी की प्रशंसा करते २ मारडाला उसके मारने से सब देवता, दानव, मनुष्यों आदि ने उस पुरुषोत्तम का नाम मधुसूदन रक्खा फिर ब्रह्माजी ने मानसी पुत्र उत्पन्नकिये उनके यहनाम हैं दक्ष, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलहक्रतु, योगी और अज्ञानियों की मानसी उत्पत्ति एक सी है तो भी सावधान चित्त योगियों की उत्पत्ति दुःखदायीनहीं है, अज्ञानियों की उत्पत्ति विपरीतता से दुःखदायी है क्योंकि ज्ञान और अज्ञान सेही मोक्ष और बंधनहोता है यह प्रसिद्ध है जैसे कि प्रजापतिजी के असुर और देवता पुत्र हैं जिनमें छोटेपुत्रदेवता और बड़ेपुत्र असुर हैं वह परस्पर में शत्रु हैं परन्तु शम दमादिगुणों से देवता उनको विजयकरते हैं और बड़ेगिनेजाते हैं और कामआदि दुर्गुणों से संयुक्त असुरपराजयहोते हैं, तात्पर्य्य यह है कि कामआदि को असुर और शम, दमादि को देवता जानना चाहिये हे तात! बड़े भाई मरीचि ने मानसी तेजस्वी और ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम कश्यपनामपुत्र को उत्पन्नकिया और हे युधिष्ठिर! ब्रह्माजी ने मरीचि से भी प्रथम होनेवाले पुरुष को अंगूठे से उत्पन्नकिया वह दक्षप्रजापति नाम से प्रसिद्धहुये प्रथम उनप्रजापतिजी के तेरहपुत्रियां उत्पन्न हुईं उन सब में दिति बड़ी थी उनसब के मरीचि के पुत्रमहात्मा कश्यप जी पतिहुये उसके पीछे दक्ष ने दशपुत्रियां उत्पन्न करके धर्म को व्याहदीं उसधर्म के पुत्र बड़े तेजस्वी अष्टवसु, एकादशरुद्र, विश्वेदेवा, साध्य और मरुद्गण उत्पन्न हुये, उनके सिवाय दक्ष की सत्ताईस कन्या और हुई उन सबके पति चन्द्रमा

हुये-उन छोटीकन्याओं ने गंधर्व, घोड़ी, पशु, गौ, किंपुरुष, मछली और पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्षों को उत्पन्नकिया और अदिती ने महाबली देवताओं को उत्पन्नकिया उनमेंहीं प्रभु वामनजी ने अवतारलिया उनवामन जी ने असुरों से तीनचरण पृथ्वीमांगकर देवताओं की वृद्धि की और दानवों की पराजयहुई और आसुरीप्रजा दिति से उत्पन्नहुई दनुनामस्त्री ने विप्रचित्ति आदि दानवों को उत्पन्न किया और दिति ने महाबली असुरों को उत्पन्न किया, मधुसूदनजी ने दिन, रात्रि, काल, ऋतु, प्रातःकाल, सायंकाल आदि को उत्पन्न करके बादल और स्थावर जंगमजीवों समेत पृथ्वी को उत्पन्न किया तदनन्तर महाप्रभु श्रीकृष्णजी ने मुख से असंख्य ब्राह्मणों को पैदाकिया-भुजाओं से क्षत्रियों को-जंघाओं से वैश्यों को और चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया इस प्रकार चारों वर्णों को उत्पन्न करके समष्टि अहंकार को सबजीवों का स्वामी किया फिर उसीपुरुषोत्तम ने वेदविद्या के विधाता ब्रह्माजी को और भूत और मातृगणों के स्वामी विरूपाक्षजी को उत्पन्नकिया फिर विष्णुजी ने पापीजन और पितरों के स्वामी यमराज को और सबधन के स्वामी कुबेरजी को उत्पन्न किया इसी प्रकार जलजीवों के और जलमात्र के स्वामी वरुणजी को उत्पन्न किया और इन्द्र को सब देवताओं का स्वामी बनाया जहां तक जीवते रहने की जीवों की इच्छा हुई तबतक जीते रहे और यमराज का भय नहींहुआ उन सबमें विषय धर्मनहीं था केवल संकल्प सेही संतान उत्पन्न होती थी तदनंतर त्रेता युग में स्पर्श से सन्तान उत्पन्न होती थी उनमें भी विषयधर्म नहींहुआ परंतु द्वापर में प्रजाओं का धर्म विषयहुआ इसीसे कलियुग में मनुष्यों को दण्ड प्राप्तहुआ इसप्रकार से यहजीवों का स्वामी सर्वव्यापी कहाजाता है और हे पुत्र, युधिष्ठिर ! नरोत्तम, अन्धक, गोह, पुलिन्द, शवर, चुचुक यहसब मनुष्य जाति के लोग मद्रकों समेत दक्षिण देशों में रहनेवाले हैं और यौनक, अंबोज, गान्धार, किरात, शवर यहसब उत्तर के देशों में रहनेवाले हैं, हे राजन् ! यह पापात्मा चांडाल काक और गधेके समान धर्मधारी इसपृथ्वीपर घूमते हैं और हे युधिष्ठिर ! यह मनुष्य सतयुग में इस पृथ्वीपर नहीं रहते हैं त्रेता युग से इनकी वृद्धिहोती है, फिर उसमहाघोर संध्याकालके वर्त्तमान होनेपर राजालोग परस्पर में युद्धादिकों को करते हैं इसप्रकार से यहसंसार महात्मा विष्णुजी से प्रकट हुआ इस देवदेव का वृत्तांत सबलोकों के घूमनेवाले देवऋषि ने मुझ से कहा और श्रीकृष्णजी की प्राचीनता को आपभीमाना इसप्रकार से यह सत्य पराक्रमी कमल लोचन केशव जी भी ध्यानगम्य हैं यह केवल मनुष्यही नहीं हैं किन्तु साक्षात्परमात्मा हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेभीष्मयुधिष्ठिरसंवादेचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! पहले कौन प्रजापति हुये और कौन से महाभाग ऋषि हरएक दिशा में विघ्नों के नाशकर्त्ता हुये, भीष्मजी बोले कि हे भरतर्षभ! सुनो सबसे पहले स्वयंभू ब्रह्माजी हैं और उनब्रह्माजी के सातपुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु और महाभाग वशिष्ठ जो ब्रह्मा जी के ही समान हैं पुराणों से निश्चय किये हुये यहसात ब्रह्माजी के पुत्र हैं इन के पीछे सब प्रजापतियों को जानो, अत्रि के वंश में उत्पन्न ब्रह्मयोनि सनातन भगवान् प्राचीन वही हुये उनसे प्राचेतसनाम दशपुत्रहुये उनदशों का एकपुत्र दक्षप्रजापति नामहुआ लोक में उसके दो नाम कहेजाते हैं अर्थात् दक्ष और (क) मरीचि के पुत्र कश्यपजी हुये उनके भी दो नाम बोले जाते हैं अर्थात् अरिष्टनेमि, और कश्यप अत्रि का औरसपुत्र पराक्रमी श्रीमान् राजा सोमहुआ जोकि हज़ार दिव्य युगोंतक चारोंओर से सेवितहोगा हे राजन्! भगवान् अर्य्यमा और उनके पुत्र जो चन्द्रमा हैं वहसब भुवनों के उत्पन्न करने वाले देवता स्वामीरूप हैं और राजा शशिविन्दु की दशहजार स्त्रियां थीं उसने प्रत्येक स्त्री में एक २ हजार पुत्र उत्पन्न किये इसप्रकार से उस महात्मा के एक किरोड़ पुत्र हुये वहकिसी दूसरे प्रजापति को नहीं चाहते हैं यह राजा शशिविन्दु की संतान की संख्या प्राचीन ऋषिकहते हैं और संकल्प से हुये हैं, यहप्रजापतिजी का बड़ावंश वृष्णिवंश का उदयकरनेवाला है, यहतोयशस्वी प्रजापति वर्णन किये इसके पीछे तीनों भुवनों के ईश्वर देवताओं को कहता हूं कि भव, अंश, अर्यमा, मित्र वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, महावल, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवों विष्णु कहेजाते हैं यही कश्यपजी के पुत्र द्वादशसूर्य हैं, नासत्य, दस्र यहदोनों अश्विनीकुमार भी कहेजाते हैं यह दोनों आठवेंसूर्य्य महात्मा के पुत्र हैं, पहले वह देवता और नानाप्रकार के पितृ देवताकहे, त्वष्टाकापुत्र बड़ा यशस्वी श्रीमान् विश्वरूप है अजैकपाद, अहिर्बुध्नि, विरू-पाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त, पिनाकी, अपरा-जित यहग्यारहरुद्र हैं और महाभाग आठवसु प्रथमही कहे गये, प्रजापति मनुजी के पहले इतने प्रकार के देवता प्रकटहुये वहदेवता और पितृ नाम से दो भेद के हैं प्रथम शील और यौवन से उत्तम हैं और दूसरे शुद्धभाव में उत्तम हैं आदि से देवताओं के गण मरुतनाम हैं इसीप्रकार से विश्वेदेवा और अश्विनीकुमार हैं उनमें अदिति के पुत्र क्षत्रिय और वैश्य मरुतदेवता हैं और उग्रतपस्वी अश्विनीकुमार शूद्र कहेजाते हैं और अंगिरावंशी देवता ब्राह्मण कहेजाते हैं सब देवताओं के यह चार वरणकिये जो पुरुष प्रातःकाल उठकर

शुद्धता पूर्वक इनदेवताओं का अच्छेप्रकार से स्मरण करे वह अपने कियेहुये या दूसरे की प्रीति से कियेहुये सबपापों से छूटता है, यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औषज, कक्षीवानवल, अग्निरस यह सब मेधातिथि के पुत्र हैं और कण्वऋषि के बर्हिषद हैं इसीप्रकार तीनोंलोकों के उत्पन्न करनेवाले सप्तऋषि पूर्वदिशा में वर्त्तमान हैं और उन्मुच, विमुच, स्वस्ति और पराक्रमी आत्रेय प्रमुच, इध्मवाहु, भगवान् दृढ़व्रत, मित्रावरुणी के पुत्र और प्रतापी अगस्त्य यहसब ब्रह्मर्षि लोग सदैव दक्षिण दिशा में वास करते हैं—उषंगु, कवष, धौम्य, पराक्रमी, परिव्याध्र, एकतद्वित, त्रित यह तीनों ब्रह्मर्षि और अत्रि के पुत्र प्रभु भगवान् सारस्वत यह महात्मा पश्चिम दिशा में नियत हैं, अत्रि, वशिष्ठ महर्षिकश्यप, गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, कौशिक, और ऋचीक के पुत्र भगवान् जमदग्नि यह सातों उत्तर दिशा में वर्तमान हैं यह सब तेजस्वी लोग चारों दिशा में वर्णन किये, लोकों के उत्पन्न करनेवाले यह महात्मा साक्षीरूप हैं रक्षाचाहनेवाला मनुष्य जो इन का कीर्त्तन करेगा वह सब पापों से छूटेगा और आनन्द से अपने स्थान को जायगा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे युद्ध में सत्य पराक्रमी, पितामह ! इन अविनाशी श्रीकृष्ण जी के सम्पूर्ण गुण तेज और पूर्वसमय में जो कियाहुआ कर्म है उस को और तिर्य्यक्योनि में प्रभुने कैसे किस निमित्तरूप को धारण किया यह सब बातें व्योरे समेत आप मुझ से वर्णन कीजिये मुझे सुनने की बड़ीउत्कण्ठा है— भीष्मजी बोले कि पूर्व समय में आखेट करताहुआ मैं मार्कंडेयजी के आश्रम में प्राप्त हुआ वहां हजारों मुनियों को वैठाहुआ मैंनेदेखा कि उन मुनियों ने देख कर मधुपर्क से मेरा पूजन किया मैंने उस पूजा को लेकर ऋषियों को प्रसन्न किया वहां कश्यप महर्षिजी ने जो कथा कही वह आनन्ददायी कथा तुम चित्तलगाकर सुनो—पूर्वकाल में दानवों में उत्तम क्रोध लोभ में प्रवृत्त नर्कासुर आदि सैकड़ों महाबली असुर पराक्रम के मद में मदोन्मत्त होगये और देवताओं से ईर्षा करके महादुःख देनेलगे तब महापीड़ावान् होकर देवता और ऋषियों ने महाबली घोररूप दैत्यों से व्याप्त पृथ्वी को भी महापीड़ित देखा कि मारे बोझ के डूबनेहीवाली थी यह दशा देखकर सब देव ऋषियों ने भयभीतहोकर ब्रह्माजी से यहसब वृत्तांत इसप्रकार से कहा कि हे ब्रह्मन् ! हम दानवों से कैसे बचें तब ब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने बुद्धि से विचार किया है कि यह दानव लोग बड़े २ वरों को पाकर पराक्रम और अहंकार से युक्त देव देव पुरुषोत्तम

विष्णुजी को नहीं जानते हैं और पृथ्वी के नीचे वसते हैं वह इनकी अनीति को देख वराहरूप बनकर वहांहीं इनको मारेंगे यह ब्रह्माजी की सुखदायी वाणी को सुनकर हृदय का शोच दूरकर चित्त में प्रसन्न हुये, तदनन्तर श्रीविष्णुजी वराह का रूप धारणकर वहां गये जहां कि पृथ्वी में सबदनुजों का समूहरहता था वहां राक्षसों ने इसवराहरूप विष्णु को देखकर बड़े २ पराक्रम करके उसको पकड़ने की इच्छा की और पकड़कर चारोंओर से खींचनेलगे जब उनके बल से वह नहीं चलायमान हुये तब वराहजी ने महाभयानकरूप करके ऐसाघोर शब्द किया कि तीनोंलोकों में व्याप्त होगया और इन्द्रादिक देवता महाभय भीत होकर विचार करनेलगे कि यहशब्द कहां से हुआ परन्तु किसी ने इस भेद को नहींजाना सर्पलोक में भी सब महा भयभीत हुये और ज्ञान सबके जाते रहे ऐसे शब्द के सुनतेही सब दैत्य महा भययुक्त हो पृथ्वी में गिरपड़े और अपने २ पुरुषार्थों को सबने त्याग दिया उससमय वराहरूप ने महाउग्ररूप धारण करके उनके अस्थि, मांस, मज्जा, रुधिर आदि को अपने तीव्र नखों से विदीर्ण किया तब सब देवता घबरायेहुये उदासचित्त होकर ब्रह्माजी से यहवचन बोलते हुये कि हे जगत्पते, ब्रह्माजी ! यह महाभयानक घोर शब्द कहां से और किसने किया जिसको सुनकर सब संसार व्याकुल होगया उसको आप कृपा करके कहिये, इतने में वराहजी भी दैत्यों को मार महाक्रोधरूप धारण किये पृथ्वी से बाहर निकले तब ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि देखो यही वराह-रूप विष्णु भगवान्जी तुम्हारी रक्षा के निमित्त धारणकर दैत्यों का नाश करके आते हैं इन्होंनेही दैत्यों के मारने के निमित्त वह भयानक शब्द किया था तुम अपने चित्त में चिन्ता को मतकरो और आनन्दपूर्वक अपने स्थानों को जाओ सो हे युधिष्ठिर ! जिन श्रीमधुसूदन विष्णुजी ने वराहरूपधारण किया वहयही कमललोचन योगेश्वर महात्मा सबजीवों के उत्पन्न करनेवाले जगत्पति श्री कृष्णजी हैं यही कालरूप होकर नाशकरते हैं यह वराहअवतार धारण करने का कारण तुम से कहा अब क्या सुनना चाहते हो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि प्रथम तीनअध्यायों में वह ईश्वर की उपासना वर्णन की जिससे कि शीघ्रयोग सिद्धि होती है और योग में जो रोग दुःखादि प्रकट होते हैं उनका नाश होता है अब आप प्रधान योग को कृपा करके कहिये जिससे कि मोक्ष की प्राप्ति होय—भीष्मजी बोले कि इसस्थान में उस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें शिष्य और गुरु का परस्पर में मोक्ष सम्बन्धी संवाद है—

बड़े सावधान बुद्धिमान कल्याण के खोजी किसी शिष्य ने किसी महा तेजस्वी ऋषियों में उत्तम महात्मा जितेन्द्रिय आचारवान् ब्राह्मण को मिलकर उन के दोनों चरणों में शिर झुकाकर हाथ जोड़कर उनसे यह वचन कहा कि हे महात्मन्! जो आप मेरी उपासना से प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरेसंदेह को दूर कीजिये कि मैं कहां से आया और आप कैसे और कहां से उत्पन्न हुये इस को और इस परमश्रेष्ठ ब्रह्म को वर्णन कीजिये और सब जीवों में और पुरुषों में उत्तम दशा, विपरीतता, नाश, उदय इत्यादि बातें कैसे सदैव हुआ करती हैं और वेदों में भी जो लौकिक और न्यायिक वचन हैं उन को भी आप कहने को योग्य हैं—गुरुजी बोले कि हे महाज्ञानिन्, शिष्य! तुम इस वेद की गुप्त और उत्तम ब्रह्म विद्या को जो कि सब विद्या और शास्त्रों का धन है अर्थात् धन के समान रक्षा के योग्य वा उपकारी है उसको सुनो कि वेद और संसार का आदि प्रणवरूप सर्व व्यापी श्रेष्ठ वासुदेवही सत्यता ज्ञान क्षमा शान्त चित्त और शुद्धभाव रूप हैं जिसको कि वेद के जाननेवालों ने सम्पूर्ण रूप और देहों में निवास करनेवाला सनातन सर्व व्यापी उत्पत्ति प्रलय का करता गुप्त और अविनाशी ब्रह्म कहा है वही श्रीकृष्णजी हैं ब्राह्मण, ब्राह्मण से क्षत्रिय, क्षत्रिय से वैश्य, वैश्यों से शूद्र, शूद्र से कहने के अधिकारी हैं इस से तुम इस इतिहास को मुझ से सुनो तुम श्रीकृष्णजी की कथा के सुनने से कल्याणभागी होगे वह परमात्मा कृष्ण आदिअन्त रहित उत्पत्ति लय का कारण कालचक्र रूप है इस सब जीवों के ईश्वर में तीनों लोक चक्र के समान घूमते हैं इसी को केशव पुरुषर्षभ कहते हैं, जिस रूपांतर दशा रहित ने पितृ, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्यों को और वेद, शास्त्र, सनातन लोक धर्म्म और प्रलय का स्थान रूप सबल माया को भी उत्पन्न किया जिसप्रकार कि ऋतुओं के बदलने में नानाप्रकार के रूप दिखाई देते हैं उसीप्रकार यज्ञों में बहुत से भाव प्रकट होते हैं इस को सिद्ध करते हैं कि यज्ञों के मध्य में जो जो काल के योग से प्रकट होता है उस उस विषय में व्यवहार बुद्धि से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान प्राप्त होता है यज्ञ के अन्त में इतिहास समेत गुप्त होनेवाले वेदों को ब्रह्माजी से उपदेश पानेवाले महर्षियों ने अपने तप के द्वारा प्राप्त किया, वेद के ज्ञाता भगवान ब्रह्माजी हैं और वेदान्त जाननेवाले बृहस्पतिजी हैं और जगत् का उपकारी नीति शास्त्र भार्गव शुक्रजी ने निर्माण किया, गांधर्व वेद को नारदजी ने, धनुष धारण को भरद्वाज ने, देव ऋषियों के चरित्रों को गार्गी ऋषि ने, आयुर्वेद को कृष्ण और अत्रिऋषि ने जाना उन्हीं कहनेवालों ने न्याय सांख्य पातंजलि शास्त्र भी कहे युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणों से जो ब्रह्म का वर्णन कियागया उसीकी तुम उपासना करो वह परम ब्रह्म आदि

कारण रहित है, उसको देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना वह अकेलाही षडैश्वर्य्यवान् सबका धारण करता सर्व देह निवासी प्रभु परमेश्वर अपने को आपही जानता है और नारायण से उत्तम ऋषियों के समूह देवता, असुर और प्राचीन राज ऋषियों ने उस पुरुषोत्तम सब दुःखों के औषधि रूप ब्रह्म को जाना है-जब प्रकृति इस पुरुष के मन की इच्छा के भाव को उत्पन्न करती है और यह जगत पहलेही धर्म्म अधर्म्म से संयुक्त है इसीकारण भ्रमता है जैसे कि हेतु-रूप तेलबत्ती के होने से एकदीपक से हजारों दीपक वर्त्तमान होजाते हैं उसी प्रकार प्रकृति भी प्रारब्ध के योग से सृष्टि को उत्पन्न करती है और अनन्त भाव से हानि को नहीं पाती है, अब सृष्टि की उत्पत्ति को कहते हैं कि प्रथम अव्यक्त से कर्म्म संयुक्त बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है यह आठ मूल प्रकृति हैं इनमेंही जगत वर्तमान है, इस पुरुष का उत्पत्ति स्थान आठरूपवाली प्रकृति से रूपांतर दशा के साथ पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पांचविषय और सोलहवां चित्त और एकचित्त का विषय यहसब उत्पन्न हुये श्रवण, त्वचा, घ्राण, रसना, चक्षु, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और दोनों चरण, गुदा, लिंग, हाथ, नाक यह पांच कर्मेन्द्रिय हैं इनके पांचो कर्म्म भी इन्हीं में वर्त्तमान हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन सब को च्युतरूप जानना चाहिये अर्थात् चित्त के ज्ञापक हैं वहचित्त सब इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है उन शब्दादिकों में चित्तही सर्वइन्द्रिय रूप है इसको सिद्ध करते हैं कि रस का ज्ञान जिह्वा से वार्त्तालाप वाक्इन्द्रिय से कहीजाती है यह चित्तही है उसी प्रकार नानाप्रकार की इन्द्रियों से संयुक्त सब आभ्यन्तरीय सुख, दुख, बुद्धि इत्यादि और बाहरी आकाशादि उसीप्रकार अव्यक्त अर्थात् महत्तत्त्व आदि भी चित्तही है, दशइन्द्रिय, पंच तत्त्व और चित्त इन सोलह देवताओं को विभागी जानें जो कि देहों में ज्ञान उत्पन्न करने वाले परमात्मा की उपासना करते हैं उसीप्रकार जिह्वा जल का कार्य्य है पृथ्वी गन्ध का कार्य्य श्रोत्रइन्द्रिय आकाश का, चक्षुइन्द्रिय अग्नि का कार्य्य है सबजीवों में स्पर्श करने वाली त्वक्इन्द्रिय को वायु का कार्य्य जानों, चित्त सतोगुण का कार्य्य और सत्त्वगुण अव्यक्त से उत्पन्न होता है इस कारण बुद्धिमान् पुरुष सब को सब जीवों के आत्मारूप ईश्वर में वर्तमान समझे सत्त्व वा ईश्वर जड़ चैतन्य समेत सब जगत को धारण करते हैं और वह सब मिल के उस कूटस्थ ब्रह्म के आश्रय हैं जो प्रकृति से भी प्रधान है वह महात्मा पुरुषोत्तम नौद्वारवाले सर्वभाव सम्पन्न पवित्र पुर में व्याप्तहोकर शयन करता है इसी कारण से वह पुरुष कहा जाता है वह जरामृत्यु रहित अरूप रूपवान इनदोनों रूपों से उपदेश होनेवाला व्यापक

सगुण सूक्ष्मरूप होकर सबजीव और गुणों का आश्रय स्थान है, जैसेकि छोटा बड़ा कैसाही दीपक हो वह प्रकाश करनेवाला है उसीप्रकार सबजीवों में उस ज्ञानात्मा पुरुष को भी जानो-जिसके द्वारा श्रोत्रइन्द्रिय सुनती है और जानने के योग्य को जानता है वही आत्मा सुनता और देखता है यह देह उसके शब्द ज्ञानादि का कारण है जानने वाला नहीं है सब कर्म्म भी वही करनेवाला है-जैसे कि लकड़ी में व्याप्त अग्नि उसके तोड़ने छोरने पर भी दृष्टनहीं आता है, उसीप्रकार देह में वर्त्तमान आत्मा योग से ही दृष्ट पड़ता है, योग के अभ्यास में देह का सम्बन्ध दूरनहीहोता है, इसको सिद्ध करते हैं कि जैसे नदियों में जल भरा है और सूर्य्य में किरणें हैं और सदैव प्रचलित हैं उसी प्रकार सबजीवों के देह हैं, जैसे पांचों इन्द्रियों समेत आत्मा स्वप्नावस्था में देह को त्याग करजाता है उसी प्रकार देह के अंत में इसदेह को छोड़कर आत्मा दूसरे देह में प्रवेश करता है यह बात शास्त्र से वा योग से जानीजाती है अर्थात् दूसरे देह में आत्मा का जाना स्वप्न के समान है-अपने किये हुये प्रबल कर्म्म से प्राचीन देह का त्याग होता है और उसी कर्म्म से दूसरा भी देह प्राप्त होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाया जाता है, जैसे कि देह को त्याग कर वह एकदेह से दूसरे देह में प्रवेश करता है उसीप्रकार अपने कर्म्म से उत्पन्न होनेवाले दूसरे जीवों के समूह को कहता हूं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारप्रकार के जड़ चैतन्य जीव ऐसे हैं कि जिनके दूसरे देह का मिलना प्रकट नहीं होता और न उनके पूर्वदेह का वियोग प्रकट होता है अर्थात् दोनों स्वप्न के तुल्य हैं दूसरे स्थान में जाने के समान नहीं हैं इसमें यहहेतु है कि इसका उसप्रकार का लक्षण प्रकटनहीं है देह चित्त के कारण से आत्मारूप है अर्थात् दूसरे चन्द्रमा के समान उसीमेंकल्पित है और देह की प्राप्ति और त्याग में भी आत्मारूप है, जैसेकिपीपल के बीज में प्राप्त बड़ावृक्ष बीच में प्रकट व वर्त्तमान दृष्टपड़ता है उसीप्रकारअव्यक्त से चित्त की उत्पत्ति है अर्थात् आदि अन्त और मध्य में भी आत्मा ही है, जैसे कि जड़रूप लोहा चुम्बक पत्थर की ओर दौड़ता है इसी प्रकार पिछले संस्कार से उत्पन्न होनेवाले कर्म्मों के धर्म्म और अधर्म्म आदि का उदय और इसी प्रकार की जो दूसरी अविद्या आदि हैं वह भी देह के सन्मुख दौड़ती हैं उसी प्रकार अव्यक्त अर्थात् अविद्या से उत्पन्न होनेवाले जड़रूप भाव चारों ओर से एकत्र इकट्ठे होते हैं इसी प्रकार चैतन्य और कर्त्तारूप जीवात्मा के भाव बुद्धि चित्त आनन्दादि जो ब्रह्म का

दर्शन कराने वाले हैं वह सब भी इकट्ठे होते हैं, वीर्य और रुधिर के योगआदि से देह बुद्धि आदि दृष्टपड़ते हैं फिर किस प्रकार स्वप्न के समान अकस्मात दूसरी देह का प्राप्तहोना है इसशंका को निवृत्त करते हैं—चैतन्यधातुजीव के विना पृथ्वी आकाशादि पंचतत्त्व, प्राण, शम, दम और काम आदि प्रकट नहीं हुये और इसअज्ञान की उपाधि से संयुक्त जीव की उपासना भी नहीं की फिर जीव में उसका कैसे सम्बन्ध निश्चय होसक्ता है, इसकारण से इसजीव में पृथ्वी आदि की तादात्मता है वह अज्ञान कर्म्म और माया का कार्य्य है यह वेद में कहा है, क्योंकि वहप्राचीन जिसकी आदि नहीं और सर्वव्यापी चित्त की उत्पत्ति का कारण वाणीसेपरे है उसकी पूर्व्व वासनाही उसको जतलाती है, वह जीव का स्वरूप वासनाओं से संयुक्त कर्मों का संचय करनेवाला है जिस वासना और कर्म्म से यह आदि अन्त रहित बड़ा चक्र वर्त्तमान है, उसमें मन इन्द्रियों समेत जीव गिरकर तबतक भ्रमता है जब तक कि बुद्धि की स्थिरता नहीं होती फल की वासना से जो २ कर्म्मकियेजाते हैं वह आगे देहप्राप्त होने के हेतु हैं, जितने कर्महेतु और सब मायादिक हैं उनका योग जब क्षेत्रज्ञ से होता है तब देह के मिलने से यह सब भी परस्पर में मिलजाते हैं हे शिष्य! जो पुरुष ईश्वर के आश्रय में पूर्व देह को त्यागते हैं वह लोकान्तर को प्राप्त होते हैं जब जीव लोकान्तर को जाता है तब उसके संग रजोगुण तमोगुण नहीं जाते हैं उसके साथ केवल सतोगुणही जाता है इस विषय को ज्ञानी पुरुषही जानते हैं संग में जाते हुये भी रज और वायु के समान पृथक् है, ज्ञान प्राप्तहोने से आपेको जानता है जबआपे को जानताहै तब देह नहीं पाताहै॥ १७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जिसप्रकार से यह प्रवृत्त लक्षणवाला धर्म्मसब को स्वीकार होता है उसी प्रकार उन विज्ञानी ब्रह्मज्ञानियों को विज्ञान के सिवाय दूसरा कोई तत्त्व नहीं भाता है वेद के ज्ञाता पुरुष जोकि वेदोक्त कर्म्मों में प्रवृत्त हैं वह बहुत कम हैं वह बड़ेज्ञानी प्रयोजन की महत्त्वता से उत्तममार्ग्ग को चाहते हैं यह चलन सत्पुरुषों की शिक्षा से निन्दायोग्य नहीं होता अर्थात कर्म्म उसज्ञान योग में प्रवेश होने का कारण है और यहब्रह्मज्ञान वह वस्तु है जिसको प्राप्त होकर उत्तम मोक्ष को पाता है रजोगुण, तमोगुण, क्रोध, लोभ आदि गुणों से संयुक्त देहाभिमानी पुरुष अज्ञानता से सब स्त्री पुत्रादि परिग्रहों को प्राप्त करता है इस कारण मोक्ष का चाहनेवाला अपवित्र कर्म्म नहीकरे कर्म्म से ब्रह्मज्ञान की इच्छा को उत्पन्न करता शुभलोकों को न चाहे अर्थात फल के त्यागसमेत पवित्र

चित्त होने के निमित्त कर्म्मों को करे चित्त की पवित्रता न होने से यह दोष होते हैं जैसे कि लोहे से युक्त सुवर्ण पकहुये विना शोभित नहीं होता है उसी प्रकार जिसचित्तने रोगादि दोषों को विजय नहीं किया उसका विज्ञान उदय नहीं होता है, जो पुरुष धर्म्ममार्ग्ग को उल्लंघन करके काम क्रोध के अनुसार कर्म्म करता है और लोभ से अधर्म्म को करता है वह अपने साथियों समेत नाश को पाता है इसी हेतु से पुरुषप्रीति की आधिक्यता से शब्दआदि विषयों को प्राप्तनहीं करे, क्योंकि यहां एक को एक से क्रोध हर्ष और भूल उत्पन्न होती है देह के पंचभूतात्मकहोने और चित्त के राजसी तामसी होनेपर यह किसकी प्रशंसा करता है और क्या कहताहुआ किसकी निन्दाकरता है अर्थात् किसी की नहींकरता है, अज्ञानीलोग रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादिकों में प्रीति करते हैं और अपनी विपरीत बुद्धि से पृथ्वी के गुण देह को नहीं जानते हैं; देह के भस्मीभूत होने में युक्ति कहते हैं जैसे कि मृत्तिका का स्थान मृत्तिका सेही लीपाजाता है इसीप्रकार यहपृथ्वी से उत्पन्न होनेवाला देह मृत्तिका के विकार अन्नादिक से पुष्टता को पाता है, मधु, तैल, दूध, घृत, मांस, लवण, धान, फल, मूल यह सब जल के द्वारा मृत्तिका के रूपान्तर रूप विकार हैं, और जैसे कि वन में निवास करनेवाला संन्यासी मुट्ठीअन्न आदि से प्रसन्न नहीं होता उसीप्रकार ग्रामादिकों के वे स्वाद भोजनों से अप्रसन्न देह के निर्वाह के लिये प्राप्तकरे, उसी प्रकार संसार रूपी वन में निवास करता परिश्रम में संयुक्त कुटुम्बी यात्रा के निर्वाह के निमित्त अन्न को ऐसेभोजनकरे जैसे कि रोगी औषधी का सेवन करता है आशययह है कि इन्द्रियों की प्रीति के लिये भोजन नहींकरे इसप्रकार कुटुम्बी और संन्यासी के वैराग्य को मुट्ठी अन्न आदि में प्रकट करके दोनों आश्रमों के योग्य मोक्षधर्म्म को कहते हैं—सत्य बोलना मृत्तिका और जल से बाहर की शुद्धि और चित्तशुद्धिसे भीतर की पवित्रता, शुद्धभाव, वैराग्य, वेदपाठ आदि से उत्पन्न होनेवाला तेज, चित्त के विजय करने में शूरता, शास्त्र सुनने से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि, क्षमा, धैर्यता, ज्ञान विवेक, तप, उदारचित्तता, सन्मुख आनेवाले संन्यासी वा संसारीभाव या विषय स्वरूप को अच्छेप्रकार से विचारकर शान्तचित्त इन्द्रियजित् होनाचाहिये—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से मोहित अज्ञानीजीव चक्र के समान घूमते हैं इसकारण अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले दोषों को अच्छेप्रकार से विचारकरे, अज्ञानमयदुःखदायी अहंकार को अत्यन्तता से त्यागकरे—क्योंकि पंचमहाभूत और सत्त्व, रज, तम यह तीनोंगुण, तीनोंलोक ऐश्वर्योंसमेत अहंकार में फँसे हुये हैं अर्थात् अहंकार से कल्पित हैं, जैसे कि इस लोक में सावधानकाल ऋतुसम्बन्धी गुणों को दिखलाता है इसीप्रकार पंचभूतों में अहंकार को कर्म्म

का जारी करनेवालाजाने, अज्ञान से उत्पन्नहोनेवाले अप्रकाश और महामोह उत्पन्न करनेवाले अहंकार को जाने फिरसुखदुःख से मिलेहुये सतोगुण रजोगुण को जानेहर्ष, चित्तशुद्धि, आनंदयुक्तप्रीति, निस्सन्देहहोना, धैर्य्यता, स्मरणता यहसब सतोगुण के रूप हैं—और काम, क्रोध, अविवेक, लोभ, मोह, भय, दुःख इत्यादि सब रजोगुण के स्वरूप हैं—शोक, अप्रीति, स्वतंत्रता, अहंकारता, तीक्ष्णता इत्यादि सब तामसी गुण हैं, इसप्रकार के दोषों की हानिलाभ को विचारकर उसआत्मा में वर्त्तमान हरएकगुण को अच्छे प्रकार से विचारकरे अर्थात् कौनदोष है कौन नाश हुआ कौन शेषरहा इन सबबातों को सदैव विचारकरे, युधिष्ठिर बोले कि पूर्व में मोक्ष की इच्छा करनेवालों ने चित्त से कौन से दोष दूरकिये और किस बुद्धि से निर्बलकियेगये और कौनसी कठिनता से त्याग किये जाते हैं कौन लौट आते हैं और कौन अज्ञान से निष्फल हैं और ज्ञानीकिसबुद्धि और कारणों से गुणों के बलाबल को विचारकरे इस मेरे सन्देह को हे पितामह! आप दूर करिये—भीष्मजी बोले कि अत्यंत शुद्धात्मा पुरुष दोषों को मूल से उखाड़ने के द्वारा मुक्तहोता है, जैसे कि धार रखनेवाला औजार लोहे की बेड़ियों का काटने वाला है उसीप्रकार विचार से शुद्धहोनेवाली बुद्धि के द्वारा पैदाहोनेवाली दोषयुक्त अविद्यादिक भी नाशहोजाती हैं अर्थात् उनको नष्टकरके आप भी शान्ति को पाती है चौथेप्रश्न का उत्तर कहकर तीसरे प्रश्न का उत्तरदेते हैं, रजोगुण, तमोगुण, काम, मोह इत्यादि से पृथक् शुद्ध-रूप सतोगुण यह सब देह के उत्पन्नकरनेवाले बीज रूप हैं उन में से दृढ़ चित्त ज्ञानी को ब्रह्म में मिलानेवाला केवल सतोगुणही है, पहले प्रश्नका उत्तर कहते हैं—कि ज्ञानी को रजोगुण तमोगुण त्यागकरने योग्य हैं क्योंकि रजोगुण तमोगुण रहित बुद्धि से परमात्मा को पाता है अथवा सांख्यशास्त्रवाली बुद्धि को स्वाधीन करने के लिये मन्त्रयुक्त यज्ञादिकों को करे अर्थात् उससे चित्तशुद्धि होती है और चित्त शुद्धि से मोक्ष होती है. वेदोक्त कर्म्मों में भी काम क्रोध के कारण राजसी तामसी कर्म्म त्याज्य हैं सात्त्विकी कर्म्म में प्रवृत्त रहना योग्य है इस विषय को तीन श्लोकों में कहते हैं, रजोगुण के द्वारा अधर्म्म युक्त कर्मों को प्राप्त करता है वह रजोगुणी कर्म्म अर्थ से संयुक्त होते हैं उन्हीं से सबकामनाओं की इच्छाहोती है और तमोगुण से उनकर्मों को सेवन करता है जो कि क्रोध से उत्पन्न होनेवाले लोभ हिंसा में प्रीतियुक्त आलस्य निद्रा में प्रवृत्त करते हैं और सतोगुण में वर्त्तमान ब्रह्म का आश्रय करनेवाला श्रीमान् निर्मल श्रद्धा और विद्यायुक्त जीवात्मा सतोगुणी शुद्ध भावों को देखता है॥२२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३९ ॥

चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! रजोगुण, तमोगुण से लोभ, मोह, क्रोध, भय, अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं उनके नाश करने से पवित्र होता है—शुद्ध-भाव का फल जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान है इसी कारण शुद्ध पुरुषों ने उस विभु परमात्मा अविनाशी सर्वव्यापी निराकार रूप को देवताओं में श्रेष्ठतर जाना और शुद्धपुरुष अबभी जानता है, उसकी माया से मनुष्य ज्ञान विवेक रहित होकर अचेत होते हैं उस व्यग्र बुद्धि से वा अज्ञानता से वह मनुष्य क्रोध अथवा व्यग्र चित्तता को पाते हैं फिर काम, क्रोध, लोभ, मोह से संयुक्त होकर पूजन आदि करने में अहंकार को करके कर्म्मों को करते हैं, उन कर्मों के द्वारा राग में भरेहुये शोक को उत्पन्न करते हैं और जन्म मरण को अंगीकार करके कर्मों के प्रारम्भ से सुख दुःख को पाते हैं और जन्म से कर्मों की दृढ़ता को पाते हैं और वीर्य्य, रुधिर से उत्पन्न मूत्र विष्ठा और रुधिर में भरेहुये होते हैं फिरलोभ में आसक्त क्रोध इत्यादि से दूषित उन्हीं से पार उतरने की इच्छा करते वर्त्तमान होते हैं वहां स्त्रियों को तो तंतुवाह अर्थात् कोलियों के समान संसाररूपी वस्त्र के तार को तानाबाना बुननेवाली जाने, वह स्त्रियां स्वभाव से क्षेत्ररूप हैं और पुरुष क्षेत्रज्ञरूप है अर्थात् जैसे प्रकृति क्षेत्रज्ञ को अपने स्वरूप से गुप्त करती है इसी प्रकार यह स्त्रियां जीवात्मा को संसार में स्वाधीन करती हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष अत्यन्तता से उनको त्याग करें अथवा उनके पास न जावें यह स्त्रियां घोररूप कृत्या अर्थात् शत्रु के मारने को मन्त्ररूप शक्ति हैं और अज्ञानियों को अचेत करती हैं और रजोगुण में अन्तर्गत हैं और इन्द्रियों की सनातन मूर्त्ति हैं अर्थात् इन्द्रियों से कल्पित हैं इसी हेतु से उन स्त्रियों से सम्बंध रखनेवाले प्रीतिरूप वीर्य्य से उत्पन्न होते हैं, अब जिस प्रकार अपनी देह में पैदा होनेवाले और अपने में से पृथक् कीड़ों को देह से जुदाकरते हैं उसी प्रकार पुत्रभावरूप रखनेवाले आत्मजरूपी कीड़ों को त्यागकरे, स्वभाव और कर्म्म-योग के द्वारा वीर्य और पसीने से जीव उत्पन्न होते हैं उनको बुद्धिमान् लोग त्यागकरें, इस रीति से त्याग के योग्य को कहकर जानने के योग्य वस्तु को कहते हैं कि प्रवृत्ति और प्रकाशरूप रजोगुण, सतोगुण यह दोनों तमोगुण में अन्तर्गत होजाते हैं वह अज्ञान नाम तमोगुण ज्ञान में नियत बुद्धि और अहं-कार का जतलानेवाला होता है, अहंकार और बुद्धि से मिला हुआ वह अज्ञान जीवात्माओं को देह के मिलने में बीजरूप है उस कार्य्य के साथ ज्ञान का बीज अर्थात् अधिष्ठान रूप जो ज्ञान है उसी का जीव नाम है वह अज्ञान से मिला हुआ ज्ञान बीज रूप है इस हेतु से कि वह काल से मिलेहुये कर्म्म के साथ

संसार का घुमानेवाला है, यह जीव या ईश्वर जैसे कि स्वप्न में चित्त के साथ देहधारी के समान रमता है उसीप्रकार यह देहवान् आत्मा कर्म से उत्पन्न होनेवाले गुणों के कारण माता के उदर में उसको पाता है जिसका कि आगे वर्णन है अर्थात् मांस पिण्ड रूप राग युक्त होकर पूर्ववासना से मिलकर चित्त के साथ जिस २ इन्द्रिय को स्मरण करता है वह इन्द्रिय बीजरूप कर्म और अहंकार से उत्पन्न होती है जब इसकी शब्द में प्रीति होती है तब श्रोत्र इन्द्रिय उत्पन्न होती है इसीप्रकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में प्रीति होने से चक्षु, जिह्वा, घ्राण, त्वचा यह सब क्रम से उत्पन्न होती हैं अर्थात् सबवासना से उत्पन्न होती हैं इसीप्रकार प्राण, अपान, व्यान, समान, उदाननाम पांचोंप्रकार की इन्द्रियों से देह का सब व्यापार होता है इसप्रकार से दशोंइन्द्रियों समेत पुरुषउत्पन्न होता है अर्थात् गर्भ में इन्द्रियों के अंगीकार करने से दुःख को पाता है और देह के अभिमान से उसदुःख की अधिकवृद्धि होती है इसीप्रकार देहत्यागने में कष्ट को भी पाता है इन हेतुओं से दुःखों का त्यागही योग्य है क्योंकि उन दुःखों का रोकनेवाला मुक्ति को पाता है इन्द्रियों की उत्पत्ति नाश दोनों रजोगुण में हैं ज्ञानी इसको विचार कर बुद्धि के अनुसार शास्त्र रूप नेत्रों से काम करे तात्पर्य यह है कि रजोगुण रूप प्रवृत्ति के रोकने और इन्द्रियजित होने से दुःख की रुकावट होती है, ज्ञानेन्द्रियां विषयों को पाकर भी निर्लोभी पुरुष को व्याप्त नहीं करती हैं और उन इन्द्रियों से पृथक् वह जीवात्मा फिर देहों के प्राप्त होने को योग्य नहीं होता ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजन्! मैं इस स्थानपर शास्त्र रूप नेत्रों से उपाय को कहता हूं तुम इसी विज्ञान से कर्म को करना अर्थात् शम, दम आदि गुणों से कर्म करने में मोक्षरूप गति को पाता है, सबजीवों में पुरुष उत्तम गिना जाता है, पुरुषों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मणों में भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मण उत्तम होते हैं वह ब्राह्मण सब जीवों के आत्मारूप सर्वज्ञ सर्वदृष्टा वेदज्ञ और शास्त्र के तत्त्वार्थ निश्चयकरनेवाले हैं, जैसे कि अन्धा अकेला मनुष्य मार्ग में दुःखोंको पाता है उसी प्रकार अज्ञानी लोग भी इस संसार में हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष सब से अधिक हैं—इसप्रकार से उपाय जाननेवालों की प्रशंसा करके उन के गुणों को कहते हैं अर्थात् धर्म की इच्छाकरने वाले शास्त्र के अनुसार उन धर्म्मों का सेवन करते हैं जिनका कि मोक्ष में कोई भेद नहीं है वह आगे लिखेहुये गुणों को करते हैं वह धर्म्मज्ञ सब धर्म्मों में इन शुभ गुणों को जतलाते

हैं देह, वाणी, चित्त इत्यादि की पवित्रता, क्षमा, सत्यता, धैर्य्यता, स्मरण यह जो ब्रह्मचर्य कहा वह ब्रह्मरूप है वह सब धर्म्मों से उत्तम है उसी से मोक्ष को पाते हैं जोकि पंचप्राण, चित्त, बुद्धि, दश इन्द्रियों को समूह के योग से और शब्द स्पर्श से पृथक् है और कान से सुनना आंख से देखना, वचन से कहना जिस में जारी हुआ वह ब्रह्मचारी चित्त से दृढ़ रहनेवाला विषयेन्द्रियों से रहित है अर्थात् वह शब्द से कहने योग्य विकल्प अवस्था है और जिस दोष से रहित ब्रह्मचर्य को बुद्धि से निश्चय करता है वह मूर्द्धा से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि से निश्चय किया हुआ सन्देह रहित परोक्ष ज्ञान है, ब्रह्मचर्याश्रों के फल को परम्परा पूर्व्वक कहते हैं, पूर्णवृत्तिवाला उस मोक्षको पाता है जिसका लोक ब्रह्म है और बीचवाला सत्यलोक को पाता है और छोटी वृत्ति में वर्त्तमान ज्ञानी ब्राह्मण का जन्म लेता है और ब्रह्मचर्य बड़ी कठिनता से प्राप्तहोता है उसके उपाय को मैं कहता हूं ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होनेवाले वृद्धि पानेवाले रजोगुण को अपने में से पृथक्करे, स्त्रियों की कथा को न सुने, न कभी उनको नंगा देखे, इस निमित्त कि उनके दर्शनों से निर्बल मनुष्यों में कभी रजोगुण प्रवृत्त होजाता है, जिसके देह में प्रीति उत्पन्न होजाय वह कृच्छ्रव्रत को करे, और वीर्य की वृद्धि से अत्यन्त पीड़ित होने में जल में प्रवेशकरे, जब स्वप्न में वीर्यपतन होजाय तब जल में वर्त्तमान होकर अघमर्षण नाम ऋचा को तीनबार जप करे, ज्ञानी मनुष्य ज्ञान से संयुक्त उदार चित्तता के द्वारा इसप्रकार देह के अभ्यन्तर्गत रजोगुण रूपी पाप को अत्यन्त नष्ट न करे, जिसप्रकार देह में वर्त्तमान मल पवित्र वस्तुओं से मिला निच्छिद्र जकड़ा हुआ है उसीप्रकार देह में नियत आत्मा और देह को दृढ़ बन्धनवाला जाने, नाड़ियों के जालों से जैसे रस मनुष्यों के वात, पित्त, कफ, रुधिर, चर्म्म, मांस, अस्थि शिराओं को और देहों को तप्त करता है, इस देह में पांच इन्द्रियों के गुण को बहानेवाली दश नाड़ियों को समझो जिन से हजारों एक से एक नाड़ी उत्पन्न होती हैं इसप्रकार यह नाड़ीरूप नदियां जिन में रजोगुण रूपी जल भरा है नियत समयतक देहरूपी समुद्र को तृप्त करती हैं जैसे कि समुद्र को नदियां भरती हैं इस देह में चित्त के बीच एक नाड़ी मनोवाह नाम है जो कि मनुष्यों के संकल्प से पैदा होनेवाले वीर्य को सब अंगों से छोड़ती है उसके पीछे चलनेवाली नाड़ियां सब अंगों को तपानेवाली हैं, वह तैजसगुण को बहातीहुई नेत्रों में प्राप्तहोती हैं जैसे कि दूध में गुप्त घृत मथन दण्डों से मथाजाता है उसीप्रकार देह के संकल्प से पैदाहोनेवाले मथन दण्डों से वीर्य भी मथाजाता है इसी प्रकार स्वप्न में भी चित्त के संकल्प से उत्पन्न होनेवाली प्रीति रूपा स्त्री जिसप्रकार प्राप्तहोती है उसीप्रकार इसकी मनोवाह नाड़ी संकल्प से पैदाहोनेवाले

वीर्य्य को देह से प्रकट करती है इसवीर्य की उत्पत्ति को भगवान् अत्रि महर्षि ने जाना है जिसकी कि तीनस्थानों में उत्पत्ति है अन्नरस, मनोवाह, नाड़ी और संकल्प और इन्द्र इसकादेवता है इसहेतु से वहइन्द्रही कहा जाता है निश्चय करके जिनपुरुषों ने वीर्य की गति को जो कि जीवों को वर्णसंकर करने वाली है विचारकिया है वह प्रीतिरहित और वासना से रहित देह की उत्पत्ति को नहीं पाते हैं, जो कि चित्त के द्वारा योगबल से निर्विकल्प भावको पाकर मनोवाह में अन्त समय में प्राणों को चलायमान करताहुआ मुक्तहोता है, वह केवल देह के निर्वाह के निमित्त कर्म्म करनेवाला है, न.श और देहसम्बन्धके लिये कर्म्म और मुक्ति देनेवाले योगमार्ग को कहकर जीवन शक्ति उत्पन्न करनेवाले ज्ञानमार्ग्ग को कहते हैं अर्थात् चित्त सेही ज्ञान होता है चित्त ही उत्पत्ति रूप होता है क्योंकि ब्रह्मज्ञानियों का चित्त प्रणव की उपासना से सिद्ध अनादि माया के रूप वासना से पृथक् प्रकाशित होजाता है इसकारण इसलोक में उसचित्त के नाश के लिये निवृत्तिरूपकर्म को करे और रजोगुण तमोगुण को त्याग कर जैसे बने तैसे मोक्ष को प्राप्तकरे, जिसको युवा स्था में ज्ञानप्राप्त हो और वृद्धावस्था में न्यून न होगया हो उसचित्त के वेग को अर्थात् संकल्प को वह पुरुष विरक्त बुद्धि से स्वाधीन करता है, अत्यन्त कठिन और अगम्य मार्ग को, जिसमें देह इन्द्रिय आदि गुणबन्धन हैं उनको निबटाकर जैसे दोषों को देखे उसीप्रकार उनसे पृथक् होकर मोक्ष को पाता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि परिणाम में दुःखदायी स्पर्शादि इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्त चित्त जीव पीड़ा को पाते हैं, और जो महात्मा उन में प्रसक्त चित्त नहीं हैं वह मोक्ष को पाते हैं बुद्धिमान् लोग इस संसार को जन्म, मृत्यु, जरा, रोग दुःख और चित्त के क्लेशों से व्याप्त देखकर मोक्ष के निमित्त उपायकरे, मन वाणी और देह से पवित्र अहंकार रहित शान्तरूप ज्ञानी और संन्यासी होजाय और अनिच्छावान् होकर सुखपूर्व्वक घूमे अथवा जीवों की करुणा से चित्त के बन्धन को देखे वहां भी संसार को कर्म्म रूप फल जानके त्यागकरे, जो शुभ अशुभ कर्म्म किया है उस को भोगता है इसकारण बुद्धि, मन, वाणी, और देह से शुभकर्म्मों को करे वह शुभ कर्म्म यह हैं कि अहिंसा, सत्यता, सब जीवों में सत्यभाव, क्षमा, दीनदयालुता जिस में यह गुण होते हैं वह सुख को पाता है-इसी हेतु से ब्रह्मज्ञान के द्वारा सब जीवों में स्थिर चित्तता को धारण करे जो पुरुष सबजीवों के सुखदायी इस उत्तम धर्म्म को दुःख से पृथक् होने

का कारण रूप जानता है वह सर्वज्ञ सुखी होता है इस हेतु से ब्रह्मज्ञान के द्वारा स्थिर चित्त को जीवों में धारणाकरे दूसरे की बुराई कभी नहीं विचारे और जो राज्य आदि वस्तु अपने योग्य नहीं हैं उनकी इच्छा न करे और नाशवान् स्त्री पुत्रादि का शोच न करे सकल उपायों से चित्त को ज्ञान के साधन में प्रवृत्त करे और वह मनोहर ज्ञान सकल प्रयोगवाले वेदान्त वाक्यों से प्राप्त होता है शुभ वचन कहने के इच्छावान् और सूक्ष्म धर्म्म को देखनेवाले पुरुष की ओर से ऐसाकर्म्म करना चाहिये कि वह सत्य युक्त और परनिन्दा रहित अन्य के सुखदायी वचन को सदैव कहे, सावधान चित्त पुरुष को ऐसा वचन बोलनाचाहिये जो शठता से रहित कठिनता से पृथक् दयायुक्त क्रूरता रहित संक्षिप्त हो, संसार देह से बँधाहुआ है जो अप्रीतिता से वार्त्ताकरे तब बुद्धियुक्त चित्त के सहित तामसकर्म्म अर्थात् हिंसा आदि को कहदे—आशय यह है कि जो पुण्य पाप हैं वह अपने मुख से कहने पर नाश होजाते हैं, जो पुरुष रजोगुण में प्रवृत्त इन्द्रियों के विषयादि कर्म्मों में प्रवृत्त होता है वह इसलोक में दुःखों को पाकर नरकगामी होता है इस हेतु से अपने मनवाणी देह से अपने धैर्य्यता को प्राप्तकरे (अब कर्म्म के त्याग को दृष्टान्त समेत दो श्लोकों में कहते हैं) कि जैसे मांस के बोझ को लेचलनेवाले चोर जिसओर को जाते हैं उस दिशा को राज्य भय से शत्रु जान के उसमांस को त्यागकर कल्याण दिशा को जाते हैं और जैसे वह पकड़े नहीं जाते उसीप्रकार अज्ञानी पुरुष अविद्या से सम्बन्ध रखनेवाले कर्मों को साथलेकर काम आदि के सन्मुख चलनेवाले संसारी भय को जान कर और उन रजोगुणी तमोगुणी कर्मोंको त्याग करके फिर मोक्षको पाते हैं निस्सन्देह जो पुरुष चेष्टा से रहित सब स्त्रीपुत्रादि परिग्रह से रहित एकान्तवासी, अल्पाहारी, तपस्वी, सावधान इन्द्रिय, ज्ञान से नष्ट क्लेशवाला, योगांगों के अनुष्ठान में प्रवृत्त होने वाला बुद्धिमान् है वह शान्तचित्त के द्वारा परमगति मोक्ष को पाता है, जोपुरुष धैर्यमान् और बुद्धिमान् है वह बुद्धि को स्वाधीन करे और उस बुद्धि से संकल्प विकल्पात्मक चित्त को स्वाधीन करे और उस चित्त के द्वारा विषयों को रोंके—अब योग के आवान्तर फल को कहते हैं—इन्द्रियों को आधीन करके चित्त को स्वाधीन करनेवाले योगी के देवता बड़ीप्रसन्नता से प्रकाशमान होकर उसी योगी में लय होजाते हैं जिसका चित्त उनदेवताओं से तदाकारहोता है उसीका ब्रह्म अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है और बुद्धि में इन्हों के लयहोने पर ब्रह्मभाव के लिये कल्पना किया जाता है या योगी ऐश्वर्य के प्रकट करने से प्रत्यक्ष न होजाय तब योगतन्त्र से अनुष्ठान का प्रारम्भ करे तंत्रोक्त योगका अनुष्ठान करता हुआ जिसरूप से उत्तम वृत्तिहोवे उसीको काम में लावे और गोधूमचूर्ण अर्थात् गेहूं का आटा, कौमारी, सत्तू, शाक, यव

का सत्तू, मूल, फल इत्यादि जो भक्षण के योग्य हैं उनको बहुधा भोजन करे परंतु योग को प्रकट न करे देशकाल के अनुसार भोजन के उस सात्त्विकी नियम की परीक्षा करके उसकी प्रवृत्ति के समान कर्म करे जो कर्म जारी होजाय उसके रोकने से योग में विघ्न न डाले इसीप्रकार धीरे २ ज्ञानयुक्त कर्म को अग्नि के समान वृद्धिकरे इस रीति से ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सूर्य के समान अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है, आत्मा से अभिन्न ज्ञान के प्रकाश से खालीहोना नहीं होसक्ता है फिर वह क्यों नहीं प्रकाश करता है यह शंका करके कहते हैं कि ज्ञान का अधिष्ठान अज्ञान तीनों लोकों में वर्त्तमान होता है इसी हेतु से बुद्धि का अनुगामी ज्ञान अज्ञान से गुप्त कियाजाता है इससे निश्चय हुआ कि जिस के अंग हैं वह अंगों सेही प्रकाशकरता है और जो अंग रहित है वह प्रकाशनहीं करता इसी हेतु से इस अज्ञान का प्रकाश न करताही प्रकाश करना चाहिये इस शंका को कहते हैं तीनों दशाओं से पृथक् उपाधि से रहित आत्मा को दशाओं में मिलाहुआ मान से दोषलगता हुआ भी उसको नहीं जानता है उनके पृथक् भाव और पृथक्भाव के सिद्धांत का जाननेवाला संसारी प्रीति से रहित पुरुष मुक्ति को पाता है काल का विजयकरनेवाला ज्ञानी जरामृत्यु को जीतकर उस अविनाशी ब्रह्म को पाता है जिसमें कि कभीनाश और न्यूनता नहींहोती है ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तेंतालीसवां अध्याय॥

पिछले अध्यायों में वर्णन कियागया कि योग और ऐश्वर्य्य को अनुभव करके वा न करके ब्रह्म में लय होता है अब अनुभव ऐश्वर्य्य की निन्दाकरते हैं–भीष्मजी बोले कि सदैव शुद्ध ब्रह्मचर्य के करने में इच्छायुक्त और स्वप्न के दोषों को देखनेवाले पुरुष को निन्दा करनी कभी न चाहिये, यह जीवात्मा स्वप्न में रजोगुण तमोगुण से संयुक्त होता है और दूसरे देह में प्रवेश हुआसा इच्छा रहित घूमता फिरता है उसस्वप्न की औषधि जागरण को कहते हैं, ज्ञान के अभ्यास से जागरण होता है वह सदैव वारंवार विज्ञान में प्रवेश करने से विचार के निमित्त जागता है यहां पूर्व्वपक्ष करनेवाले ने कहा है कि स्वप्न में दृष्ट आनेवाला देह आदि पदार्थ क्या है सत्य है या मिथ्या है वह विषयवान् के समान दिखाई देता है जैसे कि आकाश में वर्त्तमानसूर्य जल में वर्त्तमान सा दिखाई देता है इसी प्रकार जाग्रत् अवस्थावाले देह आदि भी स्वप्नदशा में दूसरे प्रकार से दृष्टआते हैं इतनीही बात से स्वप्न की निर्विषयता नहीं इसको शंका करके कहते हैं कि इन्द्रियों के लयहोजानेपर जीवात्मा देहवान् के

समान वर्त्तमान होता है, इसस्थान में यहकहाजाता है कि जैसा यह है उसको योगेश्वर हरि जानते हैं इसीप्रकार इस युक्ति से संयुक्त अर्थ को महर्षि लोग भी वर्णन करते हैं अर्थात् जैसे कि वेद में लिखा है कि इसयोगी के संकल्प से पितृ आदि प्रत्यक्षहोते हैं इसीप्रकार हमारे संकल्प से आकाशादि के जीव इत्यादि हैं और स्वप्नदशा भी संकल्पमात्र है, ज्ञानियों ने सब जीवों में प्रसिद्ध स्वप्न को इन्द्रियों के परिश्रम से जो कि जाग्रत अवस्था में होता है उस को कहा है और चित्त के लय न होने से उस स्वप्नदशा में आगे लिखे हुये श्लोकों के दृष्टान्त को कहा है निश्चय करके कार्य में चित्त लगानेवाले का संकल्प जाग्रत अवस्था में भी होता है और जैसा मनोरथ का ऐश्वर्य है उसीप्रकार स्वप्नावस्था में भी वह संकल्प चित्त में वर्त्तमान होता है अनेक जन्मों के संस्कार से विषय में चित्त लगानेवाला पुरुष स्वप्न आदि की दशा के ऐश्वर्य को पाता है वह उत्तम पुरुष साक्षी आत्मा चित्त के सब गुप्त वृत्तान्तों को जानता है अर्थात् प्रकाश करता है, बुद्धि आदि के भीतर पिछले कर्म से जो २ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण वर्त्तमान होता है और चित्त जिस कर्म में प्रवृत्त होता है तब सूक्ष्म तत्त्व उस २ को उसके सन्मुख प्रकट करते हैं उस रूप दर्शन के पीछे निस्सन्देह जैसे सुख आदि का उदय होय उसीप्रकार राजसी, तामसी, सात्त्विकी गुण भी समय के अनुसार उसके सन्मुख वर्त्तमान होते हैं तदनन्तर अज्ञान से उन वात, पित्त, कफ से सम्बन्ध रखनेवाले देहों को राजसी, तामसी भावों से देखते हैं उसको भी कठिनता से पारहोने के योग्य कहा, प्रसन्नेन्द्रियों से जब मानसी संकल्पों को करता है तो चित्त स्वप्न के वर्त्तमान होनेपर प्रसन्न होताहुआ उस २ वस्तु को देखता है, वह व्यापक अशुद्ध चित्त सब जीवों में वर्त्तमान है उसको आत्मा के प्रभाव से जाने क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं आशय यह है कि आत्मज्ञान से सर्वज्ञ होजाता है इसप्रकार स्वप्नदशा को कहकर सुषुप्तिदशा को डेढ़ श्लोक में कहते हैं—स्वप्न देखने में जो २ स्थूल देहरूपी द्वार हैं वह चित्त में गुप्त है उस देह में नियत होकर सोता है और उस अहंकार में अपने उस आत्मा को भी पाता है जोकि अव्यक्त सत्य, असत्यरूपवाली सबल माया में साक्षीरूप और सब जीवों का आत्मा रूप है उस सुषुप्तिदशा में आत्मा को अहंकार आदि गुणों से स्पर्श करनेवाला जानो अर्थात् सुषुप्ति में शुद्ध साक्षी के मध्य में अहंकार आदि लय होजाते हैं क्योंकि वह सब उस आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं, अब सम्प्रज्ञात नाम दशा को कहते हैं, जो पुरुष चित्त के संकल्प से ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य को च.हे उसको चित्तशुद्धि जाने, क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं तात्पर्य यह है कि शुद्ध चित्तही ईश्वर है इसप्रकार विषय आदि के विचार से संयुक्त चित्त इसप्रकार का होता है, और ज्ञान से उत्तम

ब्रह्म को पानेवाला चित्त सूर्य के समान प्रकाशित अर्थात् ज्ञानरूप होता है इस स्थान पर जीवात्मा के दोप्रकार के ब्रह्मभाव को कहते हैं जीवात्मा तीनों लोकों का उत्पत्ति स्थान अर्थात् सगुण ब्रह्म है और अज्ञान के अन्त में महेश्वर अर्थात् शुद्धब्रह्म है देवताओं ने तप आदि के करने में निवास किया और असुरों ने तप के नाश करनेवाले अहंकार और कपट आदि में प्रवृत्ति करी अर्थात् रजोगुणी, तमोगुणी देवता और असुरों से वह ब्रह्म प्राप्त नहींहोसक्ता इस ब्रह्म को देवता असुरों से गुप्त करके ज्ञान स्वरूप वर्णन किया है, सत्त्व, रज, तम यह तीनों देवता और असुरों के गुण हैं परन्तु इनमें केवल सत्त्व गुण तो देवताओंका है और शेष रजोगुण तमोगुण असुरों के हैं, वह ब्रह्म गुणों से परे ज्ञानस्वरूप स्वयं प्रकाशवान् और व्यापक है जिन शुद्ध चित्त ज्ञानियों ने ध्यान आदि से उस को जाना है वही ज्ञानी परमगति को पाते हैं, ज्ञान चक्षु से युक्ति के द्वारा केवल इतनाही कहना सम्भव होसक्ता है अथवा उस अविनाशी को प्रत्याहार से अर्थात् विषयों को इन्द्रियों से खींचने के द्वाराजान सक्ता है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चवालीसवां अध्याय ॥

अब सावधान से ब्रह्म की प्राप्ती को कहते हैं, भीष्मजी बोले कि वहपुरुष परब्रह्म को नहींजानता है जो स्वप्नावस्था सुषुप्त्यवस्था सगुण, निर्गुणब्रह्म इन चारों को नहींजानता, व्यक्त अव्यक्त अर्थात् जगत् और चिदात्मा और जो तत्त्व है उसको श्रीनारायणजी ने अच्छे प्रकार से वर्णन किया है कि व्यक्त संसार को तो मृत्यु का मुखजाने और अव्यक्त ब्रह्म को अविनाशी यहनारायण ऋषि ने प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म कहा, उसी कर्म्मफल में जड़ चैतन्ययुक्त तीनों लोक वर्त्तमान हैं और निवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म ब्रह्महीं है वहप्रत्यक्ष और प्राचीन है, रजोगुणरूप ब्रह्माजी ने प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्म को कहा है, प्रवृत्ति धर्म्म संसार में फिर लौटाकर लानेवाला है और निवृत्ति धर्म्म मोक्षरूप है, सदैव चैतन्य आत्मतत्त्व का विचार करनेवाला और संसार से मुक्तिहोने के मूल के देखने की इच्छा रखनेवाला निवृत्ति धर्म्म में पूर्णमुनि उस ब्रह्मगति को पाता है वहां तीनों का विचारकर के आगे की लिखीहुई युक्तिको जाने अर्थात् अव्यक्त जो प्रधानमाया और क्षेत्रज्ञ पुरुष यह दोनों जानने के योग्य हैं और जो इन माया और पुरुष से दूसरा है उसको भी जाने वह बड़ा परमात्मा है, दुःखादि से रहित उसपरमात्मा को ज्ञानीपुरुष लक्षणों के द्वारा साक्षात्कारकरे क्योंकि वह प्रधान और क्षेत्रज्ञ दोनों आदि अंत से रहित विनारूप के हैं और प्राचीन

चेष्टारहित वृद्धसे भी वृद्ध हैं दोनों के यहगुण एक से हैं इसीप्रकार गुणों से रहित भी है, उत्पत्ति धर्म्मयुक्त और उसी त्रिगुणात्मिका मायासे, विपरीत क्षेत्रज्ञ के मुख्य लक्षण को जाने वह प्रकृति के विकारका देखनेवाला किन्तु आप दृष्ट न आनेवाला विषय और सब गुणों से पृथक् है, प्रधान और क्षेत्रज्ञ की एकता वा विपरीत गुणों को कहकर जीव ईश्वर के एक से गुणों को कहते हैं—यह दोनों चेष्टा रहित होने से पकड़ने में नहीं आते क्योंकि पुरुष और निराकार में निश्चयकरके उन रूपरहित जीव ईश्वर का विभाग किसरीति से है यह शंकाकरके उनका विभाग उपाधि सम्बन्धी है स्वाभाविक नहीं है इस प्रयोजन से कहते हैं कि दृष्टि की समानता और स्वीकारता जतलानेवाला और प्रत्यक्ष का कारण हैं वही करता है उसी से शास्त्रोक्त और लौकिक कर्म्मों की सिद्धि है वहकरता जैसे २ इन्द्रियों और साधनों से जो २ कर्म्म करता है उसी २ प्रकार उस योनि देनेवाले कर्म्म के साथ जानाजाता है इसप्रकार व्यवहार द्वारा करता तीसरा है वास्तव में नहीं है इसको दृष्टान्त सहित वर्णन करते हैं, को हम इस शब्द से कहाजाता है कि मैं कौन हूं जैसे कि अपने को कुन्ती का पुत्र न जानकर कर्ण ने कहा कि कुन्ती का पुत्र कौन है तब सूर्य्य देवता से अपने को निश्चय कुन्ती का पुत्रजान के कहा कि मैं कुन्ती का पुत्र हूं इसीप्रकार अज्ञानी पूंछता है कि ब्रह्मकौन है और ज्ञानी जानता है कि मैं ब्रह्म हूं इसप्रकार से एक ही वस्तु में ज्ञान और अज्ञान के भेद से दो बातें भेद खुलनेवाली उत्पन्न होती हैं, इसीप्रकार दृष्ट आनेवाली वस्तु में भी यह है वह है यह दोनों गुण पाये जाते हैं ऐसेही जीव ईश्वर में जानो, जैसे कि दिस्तारबन्द मनुष्य तीनवस्त्रों से संयुक्त होता है उसी प्रकार यह आत्मा वस्त्रों के समान ढकनेवाले स्थूल सूक्ष्म कारण रूप देहों से गुप्त होता है और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से ढका हुआ है तात्पर्य्य यह है कि जैसे कि दिस्तारबन्द तीनों वस्त्रों से पृथक् है उसी प्रकार जीवात्मा तीनों देह और तीनों गुणों से पृथक् है इसकारण चारों प्रधान पुरुष के गुण हैं, इनचारों को जानकर जो करने के योग्य है उसको कहते हैं—हृदय आकाश में ब्रह्म में प्रकट होनेवाली लक्ष्मी को चाहनेवाला और चित्त से पवित्र देहधारी पुरुष देह और इन्द्रियों के उग्रनियमों से अनिच्छावान् होकर तपकरे, उस चैतन्य के प्रकाश से संयुक्त आंतरीय तप से तीनोंलोक व्याप्त हैं आकाश में सूर्य्य और चन्द्रमा तप सेही प्रकाश करते हैं क्योंकि वेद में बाह्य आकाश और हृदयाकाश दोनों समान हैं इसी कारण से योगियों का साक्षात्कार सिद्ध होता है, तप का फल ज्ञान है स्वरूप ब्रह्म है वह तपलोक में प्रसिद्ध है तप का जो कर्म्म उन रजोगुण, तमोगुण का नाश करनेवाला है अर्थात् वैराग्य के साथ वेदांत श्रवण नाम है वह असावधानरूप है, अब मुख्य

तप को कहते हैं ब्रह्मचर्य और हिंसारहित होना देह का तप कहाजाता है, मन वाणी को अच्छे प्रकार से आधीन करना चित्त का तप कहाजाता है, जो अन्य बुद्धि जाननेवाले ब्राह्मणों से अंगीकृत है वह उत्तम है क्योंकि आहार के नियम से इसका रजोगुणी पाप नाश होता है और इसकी इंद्रियां विषयों से वैराग्य को पाती हैं इसकारण से उतनीही लेनाचाहिये जितनी कि उसको आवश्यकता हो अर्थात् भोजन से अधिक धनआदि को न लेवे इस बुद्धि के न होने पर मोक्ष में जो सुगमरीति है उसको कहते हैं अन्त के समयपर पूर्ण उपाय से उस ज्ञान को प्राप्तकरे जो ज्ञान कि योग से संयुक्त चित्त के साथ धीरे २ प्राप्त होता है वह सुगमरीति यह है कि अन्तसमयपर काशी सेवनकरे क्योंकि काशी के बीच देहत्यागकरने में रुद्रजी के मुखसे तारक मन्त्र का उपदेश होने के द्वारा मुक्ति होती है इससे अंतसमयपर ईश्वर के उपदेश से ज्ञान को प्राप्त करे, रजोगुण से पृथक् यह जीवात्मा समाधि में स्थूल शरीर का त्यागकरनेवाला भी देहधारी होकर विचरे जोकि कार्यों से अबद्ध बुद्धि है, वैराग्यसे उत्तम भोगों में अनिच्छावान् वह जीवात्मा प्रकृति में लयहोता है अर्थात् प्रकृति से सर्वोपरि पुरुष को नहीं पाता है त्यागकरने तक देह से सावधान रहने और तीनों देहों के नाश होने से शीघ्रही मुक्ति को पाता है जीवात्मा पूर्वोक्तकर्म मुक्ति को पाते हैं इसका वर्णन करते हैं, सदैव जीवों की उत्पत्ति उसीप्रकार अज्ञान के नाश को मूल रखनेवाली है अर्थात् देह के अभिमान से जुदे होनेवाले जीवों का अज्ञान और कर्मनाश न होने से सदैव जन्म मरण होता रहता है और शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार उदय होनेपर धर्म और अधर्म वर्त्तमान नहीं होते हैं अर्थात् पूर्ण सिद्धिवाले के पिछले पापों का नाश और आगे के कर्मों का स्पर्श न होना प्राप्त होता है इसीकारण से उत्पत्ति कारण के विना मुक्तिहोती है, और शुद्धब्रह्म का साक्षात्कार न होनेपर संसारी अनर्थों से मिलता है इस को कहते हैं जो पुरुष ज्ञानकी विपरीतता में वर्त्तमान है अर्थात् अनात्मा में आत्मबुद्धि करके वर्त्तमान है वहमहत्तत्त्वादि की उत्पत्ति नाश में बुद्धि रखनेवाले हैं अर्थात् विपरीत बुद्धिवाले पुरुषों में मोक्ष कथा भी नहीं होती दृढ़आसन होकर देह को धारणकरनेवाले और बुद्धि के द्वारा चित्त के विषयों को रोकनेवाले इन्द्रियों के गोलक नेत्रआदि से पृथक् अन्नमयादिकों को वो त्यागकरनेवाले योगी उन प्राण इन्द्रिय आदि को उपासना करते हैं अर्थात् आत्मारूप विचारते हैं, यह सब ब्रह्मलोक में नियतहोते हैं इसकारण श्रेष्ठ ब्रह्म को पाकर उस में आपही बुद्धि से शास्त्र के अनुसार जानता है कोई शुद्ध अंतःकरण योगी उन तीनोंदेहों से पृथक् अपनी महत्तत्ता में नियतशुद्धब्रह्म को उपासना करता है, कोई पुरुष श्रीकृष्णआदि रूप से संयुक्त आत्मा को स्वामी सेवकभाव

से उपासना को करते हैं, कोई सबल अविद्या को उपासना करते हैं और कोई सबल से उत्तम निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं अर्थात् लगातार अनुभव को सिद्ध करते हैं वह ब्रह्म बिजली के समान एकबार प्रकाश करनेवाला रूपांतर दशा से रहित है, यह पांचों उपासनावाले अपने पापों को तप से भस्म करके अंतकाल में शीघ्र वा क्रम से परमगति को प्राप्त होते हैं शास्त्ररूप नेत्रों से उन भेद और उपासनावालों की सूक्ष्म द्वैतता को विचारकरें और स्थूल देह से प्रीति रहित संन्यासी को तीनों देहों से पृथक् ब्रह्मरूप मोक्ष को पाते इसप्रकार जाने अथवा उस योगी को हृदय आकाश से श्रेष्ठतर ईश और सूत्रात्माजाने, वेदोक्त उपासनामें चित्तलगानेवाले नाशवान् लोक से छूटजाते हैं वह रजोगुणरूप ब्रह्म से पृथक् हैं इसकारण वेदजाननेवाले मनुष्योंने उस धर्म को कहा है जिस में ब्रह्महो प्राप्तिस्थान है, जैसे ज्ञान की उपासना करनेवाले वह सब पुरुष मोक्ष को पाते हैं जिनका कि ज्ञान रागादि से रहित होकर अचल उत्पन्न होता है उसीप्रकार वह लोग भी उत्तम लोकों को पाते हैं और वैराग्य के द्वारा मोक्ष को पाते हैं और जो शुद्ध ज्ञान से तृप्त इच्छा से रहित हैं वह भक्ति के द्वारा उस सर्वैश्वर्य्यवान् अजन्मा सर्वव्यापी हृदयाकाश में वर्त्तमान अव्यक्तरूप को पाते हैं, और जीवन्मुक्त पंचकोशों में वर्त्तमान आत्मा में नियत हरि को जानकर फिर लौटकर संसार में नहीं आते किंतु उस अविनाशी उत्तम स्थान को पाकर आनन्द भोगते हैं, यह संसार है भी और नहीं भी है अर्थात् सर्प और रस्सी के समान होना न होना जानकर वाणी से कहने योग्य नहीं है आशय यह है कि मिथ्यारूप लोभ में भराहुआ सब जगत् चक्र के समान घूमता है जैसे कमल का मृणाल सब प्रकार से मृणाल में अन्तर्गत है उसी प्रकार लोभ सब देहों में सब रूपों से वर्त्तमान है जैसे कि सुई से सूत्र के द्वारा वस्त्र बांधाजाता है उसी प्रकार संसार संबंधी लोभ रूपी सुई के सूत्र से देह बांधाजाता है, लोभ त्यागने का उपाय यह है कि जो पुरुष प्रकृति और प्रकृति के रूपांतर तत्त्वों को और सनातन पुरुष को यथार्थ जानता है वह लोभ से पृथक् होकर मुक्त होता है, इस मोक्ष साधन को जीवों की रक्षा के निमित्त संसार के उत्पत्ति स्थान भगवान् नारायण ऋषि ने स्पष्टता से कहा है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! मिथिलापुरी के राजा जनक ने कौन से व्रत को करके संसार के विषय भोगों को त्यागकर मोक्ष को पाया भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर व्रत संयुक्त एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस व्रत को

जानकर राजा जनक ने मोक्ष को पाया, एक जनकवंशी जनदेव नाम मिथिलापुरी का राजा था वह ब्रह्म प्राप्ति करनेवाले धर्म्मों के विचार में प्रवृत्त था उस के स्थान में नानाप्रकार के शौचाचारी आश्रमी लोग उपासना के धर्म्मों को पृथक् २ दिखाते हुये इकट्ठेहुये उनमें कोई तो देह के नाश से अपना नाश कहते थे और कोई देह के नाश कोही नहीं मानते थे उन दोनों के वर्णन से राजा प्रसन्न नहीं होता था क्योंकि वह सिद्धि में वर्त्तमान आत्मतत्त्व का माननेवाला था वहां एक पंचशिख नाम महामुनि आये उनसे राजा जनक ने संसार के मोक्ष का वृत्तांत पूछा अर्थात् राजा ने पूछा कि हे महामुने ! जैसे सुषुप्ति दशा की मूर्च्छा में पूर्व स्मरण नहीं रहता उसी प्रकार मोक्ष में भी पूर्व स्मृति नहीं रहती है और सुषुप्ति अवस्था अज्ञान से होती है और ज्ञान से मोक्ष अवस्था होती है यह बात बड़े २ महात्मालोग वर्णन करते हैं तो ज्ञान और अज्ञान में क्या न्यूनाधिकता हुई जो ज्ञान अज्ञान में कोई न्यूनाधिकता नहीं है तो ज्ञान के निमित्त अनेक क्लेशों का सहना व्यर्थ है भीष्मजी बोले कि जनक के ऐसे वचन सुनकर पंचशिख मुनि ने कहा कि हे राजन् ! मैं ज्ञान और अज्ञान का निर्णय तुझ से कहता हूं तू सावधानचित्त होकर सुन—जब अज्ञान के द्वारा आत्मा के बीच बुद्धि आदि आरोपित कियेजाते हैं तब उसका अभाव होजाता है, और जब ज्ञान से आत्मा को जानता है तब सब अनर्थ मिटजाते हैं उन अनर्थों के मिटजाने से निर्विकार शुद्ध आनन्दमय ब्रह्म और श्रेष्ठ बुद्धि का उदय होजाता है तब बुद्धि आदि का अभाव भी नहीं होता है इसहेतु से ज्ञान के उपाय में क्लेश करना व्यर्थ नहीं है हे राजन् ! अब देहादिक के अनात्मा सिद्धकरने को देहादिक के मूल वृत्तांत को कहता हूं कि देह में यह जो पंचधातु हैं वह तबहीतक एकत्र रहती हैं जबतक कि यह प्राणी जीवता है यह पांचों धातुओं का संघात देहादिकों का मूल है इनको हे राजन् ! तुम अनात्मा रूप जानो ॥

सो० बुद्ध्यादिक सब जौन तौनहु सर्व अनातमा ।
इनमाहीं क्षिति रौन आत्मभाव सो दुखित अति ॥
दो० जाने इन्हें अनात्मा मैं अरु मम यह भाव ।
जौन बुद्धि सों कहत हैं रहत न सो नर राव ॥

अब यहां सांख्यशास्त्र का उत्तम विचार कहना योग्य है उसको सुनो उस विचार को जो तुम करोगे तो अवश्यही मोक्षधर्म को प्राप्तहोगे, अर्थात् जो पुरुष मोक्ष को चाहै वह सबका त्याग करे क्योंकि जो त्यागरहित मोक्ष को चाहता है वह महादुःखों को प्राप्तहोता है, देखो द्रव्य के त्यागने से सबकर्म होजाते हैं और भोग के त्यागने से सबव्रत होजाते हैं और सबसुखों के त्यागने से सब प्रकार की तपस्या और योग होजाते हैं सब वस्तुओं के त्यागने से

यह सब धर्म होजाते हैं हे राजन्! जो मनुष्य सर्वत्यागके मार्गको जानते हैं वह उस मार्ग को चलकर मोक्ष को पाते हैं ज्ञान से इन्द्रियों समेत बुद्धि के ऊपर मन को भी त्यागना योग्य है क्योंकि मन में कर्मेन्द्रिय बलयुक्त होकर चपलता करती हैं इससे बुद्धि के त्याग में सबका त्याग होता है, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, चित्त और श्रवण का शब्द यह सब ज्ञान में भी होते हैं इनसबों का कर्त्ता चित्त है, आकाश के आश्रित श्रोत्र और श्रोत्र के आश्रित शब्द है जिह्वा के आश्रितरस और जल के आश्रित जिह्वा है इसीप्रकार सबइन्द्रियां भूतों के आश्रित हैं और इन्द्रियों के आश्रित विषय हैं और सब इन्द्रियां मन के आश्रित हैं इसी से मन-ही सबका आधाररूप है हे राजन्! दशों इन्द्रियों के जो ज्ञानकर्म हैं उन सब को मन ही जानता है इससे इन सबका राजा ग्यारहवां मन और बारहवीं बुद्धि है जो मनको भी जानती है इन बारहों से ज्ञानीलोग आत्मा को पृथक् मानते हैं, हे राजन्! जाग्रत अवस्था में जो विषय देखा और सुना है उसे सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा स्वप्नावस्था में गुणों के साथहोकर जीवात्मा प्रत्यक्षही के समान अपने समीप देखता है वहां सब इन्द्रियों का राजा चित्तमत से युक्तहोकर आत्मा को उससे भिन्न करदेता है इन्द्रियों से आत्मा को पृथक् होने से सुखरूप नीचतामस नाम उत्पन्न होता है इससे सुषुप्ति और मोक्षमें समान आनन्द मालूम होता है परन्तु सुषुप्ति में नाशवान् सुख है और मोक्ष में सदैव अविनाशी सुख है और सुषुप्ति में अहंकारादिक सबहोते हैं मोक्ष में नहीं होते और हे राजन्! सब भूतादिकों के समुदाय को क्षेत्र कहते हैं और उससमुदाय के आधार को क्षेत्रज्ञकहते हैं, वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों कर्मों के प्रभाव से मिलजाते हैं इनमें किसको सत्य और किसको असत्य समझे, परन्तु जबतक यह कर्म का प्रभाव है तभीतक यह सब भी हैं परन्तु जब कर्म का अंशभी नहीं रहता तब इनका भी चिह्न नहीं रहता, जैसे कि नदी नदआदि समुद्र में मिलने से अपने नाम और रूप को त्यागदेते हैं इसीप्रकार यह सबभी ब्रह्म में लयहोने से अपने नाम और रूपों को खोबैठते हैं, जो मोक्षरूपी बुद्धि को जानते हैं, वह आत्मा को प्राप्त होते हैं, जैसे कि कमल के पत्ते में जलस्पर्श नहीं करता उसी प्रकार मोक्षवाले पुरुष में कर्मों का स्पर्श नहीं होसक्ता जैसे कि सर्प कांचली को डालकर चलाजाता है उसीप्रकार मुक्त मनुष्य दुःखों को त्यागकर चलेजाते हैं इन पंचशिख के वचनों को सुनकर राजा जनक बहुत प्रसन्नहुआ, इसमोक्ष के निश्चय को जो कोई पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह उपद्रवों से रहित होकर आनन्दों को पावेगा॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चशिखवाक्यपाखण्डखण्डनोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४५॥

छियालीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि महर्षि प्रबोधित राजा जनकजी ने फिर यह प्रश्नकिया कि हे भगवन्! शरीर त्याग समय में संसार और मोक्ष की क्या अवस्था होती है यह संसार ज्ञान और अज्ञान शब्दों से कहने के योग्य नहीं फिर रज्जु सर्पवत् इस अल्प संसार के सुख की प्रत्याशा करनाही निष्फल है यह शंका करके राजा जनकजी बोले हे द्विजश्रेष्ठ! मरण पश्चात् जीव की क्या संज्ञा होती है और तब अज्ञान अथवा ज्ञान क्या करते हैं हे द्विजोत्तम! सब उच्छेद और निष्ठहोते हैं इसपर विचारकरो तो सजग और अचेत मनुष्य अज्ञान और ज्ञान-भेद में क्या करेंगे प्राणियों में तो अलग होना और अविनाशियों में मिलाप होना है फिर यहां कौन पुरुष किस फल के लिये तत्त्व में निश्चय करे और उस के लिये परिश्रम करे भीष्मजी बोले कि उसअज्ञान सेठ के और भ्रान्तियुक्त दुःखी राजा से शान्ति वचनद्वारा पंचशिखा कवि ने यह कहा यहां जन्ममरण कुछ नहीं है-यह चैतन्य इन्द्रियों और शरीर का संयोग कर्म्म प्रधान्यता से होता है शरीर को अनात्मा कहने के लिये उसकी प्रकृतियों को कहते हैं धातु पांच प्रकार की हैं जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी वे स्वभाव से एकत्र स्थित होते हैं और स्वभाव सेही भिन्न होजाते हैं आकाश वायु और अग्नि के स्नेह और उन्हीं पांच धातुओं के समाहार से शरीर प्राप्त होता है शरीरांतर्गत बुद्धि अग्नि और प्राण यह तीनों सब कार्य्य साधक होते हैं और इन्द्रिय और इन्द्रियों के मनोरथ और स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और विकार इत्यादि धातु यह सब इन्हीं तीनों से निकले हैं-कान, छूने की इन्द्रिय, जिह्वा, आंख और नाक यह पांचों इन्द्रिय हैं और इनका आदि कारण चित्त है वहां विज्ञान करके युक्त चेतना की तीन भुजा हैं जिनको सुख दुःख और अदुःख असुख कहते हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच सद्गुण मरण पर्य्यन्त ज्ञानसिद्धि के लिये होते हैं उन गुणों में कर्म्म, संन्यास और मोक्ष का कारण स्थित है उस तत्त्व निश्चय को मोक्ष का बीज और श्रेष्ठ मोक्ष देने से अनन्त और ब्रह्म में ज्ञान उत्पन्न करने से ब्रह्मरूप कहा इस ज्ञान समूह को आत्मा रूप से देखनेवाले पुरुष के विरुद्धदर्शियों से भी अनन्त दुःख शांति को नहीं प्राप्त होता जो दृष्टि पड़े वह अनात्मा है उस कारण अहंकार ममता यह दोनों बातें वर्त्तमान नहीं होती हैं फिर आनेवाले दुःख का प्रस्ताव किस आधार पर होगा इस स्थल पर उस अनुपम त्याग शास्त्र को शोच में वारंवार सहस्रों मोतियों द्वारा लाना चाहिये जिनका तेरे मोक्षार्थ वर्णन किया जायगा मुक्ति के लिये सर्व कर्म्मों का त्याग युक्त है नित्यही मिथ्या

विनीत दुःखभागी होते हैं द्रव्य त्याग के लिये कर्म्मों को और भोग त्याग के लिये वृत्तों को और सुख त्याग के लिये तप को और सर्वत्याग के लिये योग का उपदेश करते हैं दुःख नाश के लिये उस सर्वत्याग का यह मार्ग वतलाया है जिसका कोई भेद नही है और त्याग के न होने में दुर्गति होती है जिनका छठवां मन है उन पांच ज्ञान इन्द्रियों को बुद्धि में जोड़ कर उन पांच कर्म्म इन्द्रियों को जिनका छठवां प्राण शक्ति है त्याग करै दोनों हाथों को कर्म्म इन्द्रिय और दोनों पांवों को गति इन्द्रिय जानना चाहिये प्रजोत्पत्ति और आनन्द में लिंग इन्द्रिय और विष्ठा त्याग में गुदा को कहा वाक् इन्द्रिय वाक्य वोलने के लिये जाननी चाहिये—मन को इन पांचों से सम्मिलित जानै इस प्रकार मन को त्याग करै और बुद्धिद्वारा शीघ्र ग्यारह इन्द्रियों को छोड़ देवे वाक् मन के त्याग करने में कर्म्म इन्द्रियों का त्याग हुआ और बुद्धि के त्याग करने में मन के साथ ज्ञान इन्द्रियों का त्यागहुआ दोनों कान शब्द और चित्त यह तीनों कर्म्म कर्ण इन्द्रियके कारण हैं इसीप्रकार रूप, रस और गन्ध में भी तीन २ कारण हैं इसीप्रकार शब्दआदि विषयों के ज्ञान होने में यह पन्द्रह गुण कारण होते हैं जिसके द्वारा यह तीनप्रकार का भाव, कर्त्ता, कर्म, करण भिन्न अभिप्राय के साथ सम्मुख उपस्थित हुआ वे तीनों भी सात्त्विकी, राजसी, तामसी में हैं जिन के मध्य सवका साधन करनेवाले तीन प्रकार के अनुभव वृद्धि को प्राप्त हुये प्रसन्नता, प्रीति, आनन्द, सुख, शांतचित्तता आदि सतोगुण के धर्म्म हैं असंतोष, परिताप, शोक, लोभ, क्षमा, रजोगुण के धर्म हैं अविवेक, मोह, प्रमाद, निद्रा, स्वप्न यह तमोगुण के धर्म हैं यहां जो कोई शरीर अथवा मन में प्रीति युक्तहोवे—वह सात्त्विक भाव में है इसीप्रकार उसका त्यागकरै जो आगे लिखाजावेगा जो आत्मा में असंतुष्ट अप्रीतिकरै है वह रजोगुण प्रवृत्त है जो देह और मन में मोह युक्त है उसको तमोगुणी जानो इसीप्रकार शब्दआदि विषय और ज्ञान इन्द्रियों का शिरोमणि चित्तरूप होना कहा चित्त के त्याग से गुण और इन्द्रिय और विषयों का त्यागहोता है इस ज्ञान के लिये अव आकाश आदि तत्त्वरूपी विषय और इन्द्रियों का भिन्न न होना अर्थात् एक रूप होना कहते हैं इनके वश करने से आकाश आदि वश होते हैं इस आशय के लिये दो श्लोक लिखते हैं—आकाश में शरणार्थ श्रोत्र इन्द्रिय आकाशरूप ही है और श्रोत्र इन्द्रिय में शरणार्थ शब्द है आकाश तत्त्वही है इस अवस्था में शब्द और श्रोत्र यह दोनों विज्ञान के विषय नहीं इसी प्रकार आंख, जिह्वा, नाक आदि पांचों स्पर्शरूप सम्बंधरखते हैं वे सव शब्द व आकाश आदि स्मरणात्मक चित्तरूप हैं वह चित्त भी निश्चयात्मक मन का रूप है अर्थात् चित्त के वश होने से सव वश को प्राप्तहोते हैं सवके मनरूप होने में जगतही को

कहते हैं इन पांचों इन्द्रिय व पांचों विषयों में प्राप्त होनेवाला ग्यारहवां चित्त होता है उसको जानों सूक्ष्म इन्द्रिय भी पहिले सुने के आगम से अस्मरण करती हुई भी तीनों गुणों से युक्त फिर नहीं लौटती जो तम से ढकाहुआ चित्त जिसका कोई निश्चय नहीं और जो शीघ्रही संहार होसक्ता है अपने शरीर में ग्रहण करते हैं उसको पण्डितलोग तामस कहते हैं जो चित्त तमोगुण युक्त और परवर्ती प्रकाशात्मक आत्मा को छिपाता है और जो नाश योग्य है वह शरीर में युगपद भाव को नाश करता है इसी तरह से अपने कर्म का प्रत्यय गुण प्रसंख्यात हुआ किसी २ में बर्तता है और किसी में निवृत्त रहता है अध्यात्म की चिन्तना करनेवाले इसी को समाहार क्षेत्र कहते हैं मनमें जो भाव स्थित होता है वही क्षेत्र कहाता है ऐसा होते हुये स्वभावही से वर्त्तमान सब प्राणियों में हेतु से उच्छेद और शाश्वत कैसे होता है जैसे नदियां समुद्र में जाके अपनी पहली रीति को छोड़ देती हैं ऐसेही प्राणी को भी मरने के अनंतर समझिये ऐसा होते हुये मरण के अनन्तर फिर क्या संज्ञा होती है और जीव के सब ओर से ग्रहण हुये देह में प्रविष्ट होने से कैसी संज्ञा होती है इस विमोक्ष बुद्धि आत्मा को जो जानता और अप्रमत्त होके ढूंढता है वह अनिष्ट कर्म फलों से लिप्त नहीं होता जैसे जल से सींचाहुआ कमल का पत्र नहीं कुम्हिलाता फिर प्रजा निमित्त जो दृढ़ फँसरी हैं तिनसे छूटके जब सुख दुःख को छोड़ता है तब आगे की गति को प्राप्त होता है फिर वेद और आगम के मंगलों से बुढ़ापा और मृत्यु के भय से निर्भय सोता है एक परमेश्वरही में आसक्त प्राणी जैसे पुण्य या पाप के नाश हुये से और निमित्त फल के भी नाश होने से चिह्न रहित निर्मल आकाश में स्थित होके परमेश्वर ही को देखते हैं जैसे ऊन का बीननेवाला ऊन के डोरे के नाश में निर्भय सोता है ऐसेही विमुक्त पुरुष दुःख को छोड़के निर्भय सुख से सोता है जैसे रुरु नामक जीव पुराने सींगों को छोड़के नये सींग धारण करता है और सर्प पुरानी त्वचा को छोड़के नई त्वचा ग्रहण करता है तैसेही विमुक्त प्राणी दुःख को छोड़के सुखी होता है जैसे जल में गिरेहुये वृक्ष को पक्षी छोड़के निर्भय दूसरे वृक्ष में बैठता है तैसेही मुक्त पुरुष सुख दुःख को छोड़के श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है इस मैथिल पंचशिख के मुख से निकलेहुये अमृत के तुल्यपद जिस में ऐसे गान को सुनके और सबको देखके निश्चय अर्थ और शोचरहित राजाजनक परम सुखी होके विचरते भये इस मोक्ष के निश्चय को जो सदैव देखता और पढ़ता है वह उपद्रवों से दुःखित नहीं होता जैसे कपिलदेवजी को पायके राजा जनक सुखी हुये तैसेही वह पुरुष सुखी होता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! क्या करने से सुख और क्या करने से दुःख और क्या करने से लोक में निर्भय होकर विचरता है भीष्मजी बोले कि इसका उत्तर अंतर्गत होजायगा अब पूर्वकथा का शेष वर्णन करता हूं कि इस पंचशिख महर्षि के समझाये हुये राजा जनक ने फिर प्रश्न किया कि देह के त्यागने के समय संसार और मोक्ष की कौनसी दशा होती है–भीष्मजी बोले कि इन्द्रियों का जो जीतना है उसको दम कहते हैं उसी की प्रशंसा सब वेदज्ञ और धर्मज्ञ ऋषि लोग करते हैं इसदम के साधन को सब लोग करें और विशेष करके ब्राह्मण तो अवश्यही करे जो इन्द्रियों का दमन नहीं करता है उसकी क्रिया कोई सिद्ध नहीं होती, क्रिया की सत्यता और तपस्या यहदोनों दमही में वर्त्तमान हैं दमही तेज की वृद्धि करता है दमही अनेकपवित्रताओं को करता है दमही निष्पाप और निर्भय होकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है दमकरनेवाला संसार में भी जब-तकरहैगा तबतक आनन्द से रहैगा, जो क्रोधीजन होता है वहतेजस्वी नहीं होता किन्तु उसीको अन्य जनों से सदैव भय उत्पन्न हुआ करता है, जो कच्चे मांसको खाता है उसका नाम क्रव्याद अर्थात् राक्षस होता है उस से जैसा भय होता उसी प्रकार मनुष्योंसेभी होना प्रसिद्ध है उन मनुष्यों के उपद्रवों के दूर करने के नि-मित्त लोकेश ब्रह्माजी ने राजा को पृथ्वीपति बनाया, आश्रमी धर्मों से जो २ फलहोते हैं उससेभी अधिक दम करनेवालों को धर्महोता है जिनपुरुषों के कि दम का उदयहोता है उनके चिह्न मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं कि अदीनता, सन्तोष, आस्तिकबुद्धि, मृदुता, अरुष्टता, अहंकारकात्याग, गुरुपूजा, अनसूया, जीवों में विशेषदया, स्तुतिनिन्दा से रहितहोना असत्यवाद का त्या-गना, निर्वैरता, रागादिक की वार्त्ताओं का त्यागना, सर्वकामनाओंका त्याग, शीलवान् सुव्रती, चुगली का त्यागना यह सब लक्षण दमवाले के हैं इसलोक में दमवाले का बड़ासत्कार होता है और देह के अन्त में उत्तमस्वर्ग की प्राप्ति होती है सुंदरसरलस्वभाववान् होकर सब जीवों का हित विचारे किसी से शत्रुता न करे सबसे मीठेवचनों को कहे नतो किसी जीव को डराता है न कभी आप कहीं डरता है उसदमवाले कोसबजीव देखकर बड़ेप्रेम को करते हैं सबलोग समीप आकर प्रणाम करते हैं और बहुत से सम्मुख होकर खड़ेहोते हैं, बहुत से अर्थ में हर्ष न करे और अनर्थ में शोच भी कभी न करे हे राजन्! वही दमी है, सबकोई तामसी बुद्धिमान् नहीं कहाता प्रशंसा और बड़ीक्षमा, सन्तोष, शान्ति, प्रियवाणी इनबातों को दुष्ट मनुष्य नहीं पाता है, विनाकाल कोई नहीं मरता है और दमी पुरुषही निर्भय होकर लोक में विचरता है॥ ५३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४७॥

अड़तालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! आप ने हिंसा को निषेध किया परंतु वेद में यज्ञादिकों को हिंसायुक्त कहा यह संदेह और यज्ञदीक्षा, मंत्रदीक्षासे युक्त तीनों वर्ण द्विजन्मा जो इसहव्य और अन्न मांसादिक को इस मनोरथ के निमित्त जो वेद के ब्राह्मण में लिखा है भोजनकरते हैं इसका ब्योरा मुझे समझाइये—भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! वेद के विपरीत व्रत करनेवाले पुरुष भोजन के अयोग्य मांसादिक को भोजन करनेवाले कामचारी हैं अर्थात् इस लोक में पतित गिनेजाते हैं और वेदोक्त कर्म्मों में भोजन करनेवाले दीक्षा में लिखेहुये फल के लोभी हैं अर्थात् वहभी स्वर्ग को पाकर फिरनीचे पतितहोंगे युधिष्ठिर ने कहा कि हे महाराज ! संसारी मनुष्यों ने जो इसव्रतको तपकहा है सो तप है या और कुछ है—इस प्रकार से दूसरे के पीड़ा देनेवाले यज्ञादिकों की निन्दा करके देहको पीड़ा देनेवाले मोक्ष की इच्छावालों के विरुद्ध व्रतआदिके निन्दा के विषय में भीष्मजी ने उत्तरदिया कि संसारी महीने और पक्ष के व्रतादिक से जो तपमानते हैं वहतप आत्मविद्या का विघ्नरूप है उस तपको सत्पुरुष नहीं करते अब आत्मविद्या का उपकारी तप वर्णन करते हैं जीवहिंसावाले कर्म्मों का त्याग और प्राणियों की रक्षा यहीउत्तम तप है, अब गृहस्थ के तप को सुनो बहुकुटुम्बी भी सदैव व्रत करनेवाला और ब्रह्मचारी होता है, वेदपाठी ब्राह्मण सदैव मुनि है और देवतारूप भी है वह धर्म चाहनेवाला सदैव निद्रा जीतनेवाला मांस भोजन रहित पवित्रता से रहै, देवता अतिथियों का सत्कार करनेवाला सदैव अमृत भोजन करै और श्रद्धा पूर्वक देव ब्राह्मणों का पूजकहो, युधिष्ठिर ने कहा कि कैसे व्रत करके ब्रह्मचारी होय और विघसान्न को भोजन करके कैसे अतिथियों को पूजे—भीष्मजी बोले कि जो सदैव प्रातःकाल सायंकाल भोजन करनेवाला है और मध्य में भोजन नहीं करता है वह सदैव उपवासी होता है ब्राह्मण ऋतुकाल में ही स्त्रीसंग करनेवाला ब्रह्मचारी होता है, जो मनुष्य सदैव सत्यवक्ता और ज्ञानी होता है वह निरर्थक मांस को न खाय वह भी मांस का न खानेवाला ही समझा जाताहै सदैव दानी पवित्र दिवस में न सोनेवाला जागरण करनेवाला समझाजाता है, जो मनुष्य अतिथि और बालबच्चों के भोजन के पीछे आप भोजन करता है वह केवल अमृतका भोजन करनेवाला है, जोब्राह्मण विना अतिथि भोजन कराये भोजन नहीं करता है अर्थात् निराहार रहता है उस निराहारता से उसको स्वर्ग प्राप्तहोता है, जो पुरुष देवता पितृ अतिथि और बालबच्चों से शेष बचे हुये अन्नादि को भोजन करता है वह विघसाशी कहा जाता है, ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में उसको अनेक लोकों की प्राप्ति होती है और अप्सरादिके आनन्दों

को देखता चारोंओर घूमता है, जो पुरुष देवता पितरों के साथ उपभोग करते हैं और अपने पुत्रपौत्रादि के साथ क्रीड़ा करते हैं उनको वह उत्तमगति प्राप्त होती है कि जिससे अधिक कोई गति नहीं है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उनचासवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! इस लोक में जो शुभ अशुभ कर्म कैसाही हो वह फलीभूत होता है उनका कर्त्ता पुरुष है वा नहीं है यह संदेह आप मेरा निवृत्त कीजिये, भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में कि प्रह्लाद और इन्द्र का प्रश्नोत्तर है, कि फल की इच्छा रहित, निष्पाप, कुलीन, शास्त्रज्ञ, आलस्य विना, निरहंकारी, सतोगुणी, जितेन्द्रिय, धर्मानुरागी, निन्दास्तुतिरहित, सावधान, सब जड़चैतन्यों के लय प्रलय करनेवाले परमात्मा के ज्ञाता अप्राप्ति में शोकरहित प्राप्ति में हर्षरहित सुवर्ण मृत्तिका को समान माननेवाले महापंडित सर्वज्ञ इत्यादि अनेक गुण युक्त एकान्त में विराजमान प्रह्लादजी की बुद्धि की परीक्षा करने की इच्छा करके इन्द्र ने उनके निकट जाकर उनसे यह कहा कि कोई पुरुष मनुष्यों में जिन गुणों के द्वारा सबका प्यारा होता है वह सब गुण तुम में वर्त्तमान देखता हूं और तेरी बुद्धि बालकों के समान विदित होती है यहां तुम आत्मा को जानकर किस साधन को श्रेष्ठतर मानते हो, हे प्रह्लाद! पाशों से बँधाहुआ, राज्य से उतराहुआ, शत्रुओं के स्वाधीन, लक्ष्मीरहित, शोच के योग्य, स्थान पर शोच नहीं करते हो हे दैत्यपुत्र, प्रह्लाद! तुम ज्ञानलाभ या धैर्यता से अपने दुःख को देखते भी बुद्धि में सावधान हो यहइन्द्र के वचन सुनकर उस सर्वज्ञ महापंडित प्रह्लाद ने स्पष्टवाणी से यह कहा कि यहां सांख्य के मत से कर्त्तापने को असुख्य करते है, जो पुरुष जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानता है उसको अज्ञानता से बंधन होता है और जो जीवात्मा का देखनेवाला है उस को कभी बंधन नहीं होता, सब भाव, अभाव, स्वभावही से जारी होते हैं और इसीप्रकार प्रीति भी स्वभाव केही द्वारा होती है इसकारण इस में पुरुषार्थ नहीं है अर्थात् रथ आदि के समान जड़ प्रकृति में भोगमोक्षरूप सामर्थ्य नहीं है तात्पर्य यह है कि जो कर्त्ता है वही भोक्ता है आत्मा में भोक्तापन जानना केवल भ्रान्तिरूप है, चुम्बक पत्थर के समान उदासीन पुरुष की सत्तामात्र से संसार की प्रवृत्ति है या नहीं इस शंका का समाधान करते हैं कि भोगमोक्षरूपी पुरुषार्थ के न होने से कोई कर्त्ता नहीं है इस देह में अपने आप कर्म न करनेवाले उस आत्मा का कभी अविद्या से अभिमान न होवे कि मैं कर्त्ता हूं, जो पुरुष शुभ अशुभ कर्मों

का कर्त्ता आत्मा को मानता है उसकी बुद्धि दोषयुक्त है तत्त्वों की जाननेवाली नहीं है इससे हे युधिष्ठिर! जो पुरुष निश्चय करके अपने कल्याण में कर्त्तारूप होता है उसके आरंभ कर्म सिद्धहोते हैं और कभी पराजय नहीं होती, उपाय करनेवाले पुरुषों के अनिष्टों की वर्त्तमानता और इसवस्तु का वर्त्तमान न होना दृष्टिपड़ता है इसीकारण पुरुषार्थ नहीं है, हम कितनेही पुरुषों के अनिष्टों का प्राप्तहोना और अभीष्टों का वियोग विना उपाय के देखते हैं उनका प्राप्तहोना स्वभाव से होता है, कितनेही बड़े बुद्धिमान् लोग निर्बुद्धि कुरूप मनुष्यों से धन की प्राप्ति को चाहते हैं और आज्ञाकारी बने रहते हैं, जब कि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव सेही होते हैं तब वहां कौन किस के अभिमान का कारण है अर्थात् वहां यह अभिमान नहीं है कि मैं सुखी हूं अथवा कर्त्ता भोक्ता हूं मोक्षरूप आत्मज्ञान स्वभावही से होता है अर्थात् बन्धन के निर्मूल होने से उसकी औषधरूप मुक्ति भी अज्ञानसेही कल्पना की जाती है यह मेरा मत दृढ़ है उसके विपरीत मेरी बुद्धि नहीं है बादल के समान ईश और काल के स्थानपर नियत प्रकृति साधारण कारण है और बीज के समान कर्म असाधारण है इस शंका को कहते हैं, इस लोक में शुभाशुभ फल का योग और सब विषयों को कर्मों से मिलेहुये मानते हैं इसको मैं कहता हूं तुम सुनो जैसे काक ओदन भक्षणकरना जानता है इसीप्रकार सब कर्म स्वभाव केही लक्षण हैं अर्थात् स्वभावही उनका बतलानेवाला है जो पुरुष विकाररूप धर्मों कोही जानता है और परा प्रकृति को नहीं जानता है उसकी अज्ञानता से बन्धन होता है और परा प्रकृति के साक्षात्कार करनेवाले पुरुष को बन्धन नहीं होता है, ब्रह्मज्ञानी को बन्धन क्यों नहीं होता है इस के विषय को कहते हैं—यहां स्वभाव से उत्पन्न होनेवाले निश्चय के जाननेवाले ज्ञानी का अहंकार क्या करेगा अर्थात् कर्त्तृत्वभाव को अपने में सम्बन्धदेना अहंकारादि का कारण है उसके न होने से अहंकारादि भी नष्टरूप हैं और हे इन्द्र! मैं सब धर्म बुद्धि को और जीवों के नाश को भी जानता हूं इसहेतु से शोच नहीं करता हूं यह निश्चय करके नाशवान् है, ममता, अहंकार और इच्छा से पृथक् वासनारहित आत्मरूप में नियत देहाभिमान न होने से आत्मरूप से मैं अविनाशी जीवों के उत्पत्ति और लय में परब्रह्म को देखता हूं, हे इन्द्र! मुझ जितेन्द्रिय ज्ञानी इच्छा लोभ से रहित अविनाशी ब्रह्मदर्शी का उपाय आदि वर्त्तमान नहीं है प्रकृति के विकार में रागद्वेषरहित हूं और अपने उस शत्रु को भी नहीं देखता हूं जो अब मुझ को ममता में प्रवृत्त करे और जानने के योग्य विज्ञान और ज्ञान में मेरा कर्म वर्त्तमान नहीं है अर्थात् मैं सिद्ध दशा में नियत हूं इन्द्र ने कहा कि हे प्रह्लाद! जिसप्रकार से यह ज्ञान होता है और शान्ति को प्राप्तहोता है उस युक्ति को मुझ से समझाकर

कहो, प्रह्लाद बोले कि हे इन्द्र! जो पुरुष विस्मरणतारहित शुद्धभाव और बुद्धि की नम्रता से वृद्धों की सेवा करता है वह मोक्ष को पाता है जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं सबस्वभावही से हैं और स्वभाव सेही ज्ञान वा शान्तता को पाता है यह प्रह्लाद के वचनों को सुनकर इन्द्र ने बड़ा आश्चर्य्य किया और प्रसन्नता से प्रीतियुक्त होकर उसकी प्रशंसा की और उस दैत्येन्द्र का पूजन करके अपने लोक को गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेइन्द्रप्रह्लादसंवादेएकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचासवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! जिस बुद्धि से लक्ष्मीरहित होकर कालदण्ड से पीड़ित राजालोग पृथ्वी में घूमते हैं उसका वर्णन आप मुझ से कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर भी एक पुरातन इतिहास कहता हूं जिस में इन्द्र और विरोचन के पुत्र राजा बलि का संवाद है, इन्द्र ने सब असुरों समेत राजा बलि को विजय करके ब्रह्माजी से हाथ जोड़कर पूछा कि हे ब्रह्मन्! दान करते हुये जिस का धन कभी कम न हुआ उस बलि को मैं नहीं पाता हूं उस को मुझ से कहिये इस बलि ने वायु, वरुण, सूर्य्य, चन्द्रमा और अग्नि रूप हो सब जीवों को तपाया और जलरूप होकर गुप्त हो सब दिशाओं को प्रकाशित किया और उसीने समय के अनुसार जल की वर्षा भी की उस बलि का आप वर्णन कीजिये वह मेरे हाथ नहीं आता, ब्रह्माजी बोले कि हे इन्द्र! यह तेरी बात अच्छी नहीं है जो तू इसप्रकार से पूछता है और पूछीहुई बात को मिथ्या नहीं कहना चाहिये इस हेतु से बलि का वृत्तान्त तुझ से कहता हूं कि वह जीवोत्तम बलि किसी उजड़े फूटे स्थान में ऊंट, गधे, बैल अथवा घोड़ों में होगा, इन्द्र बोले कि हे ब्रह्मन्! जो मैं उस एकान्तस्थान में बलि से मिलूं तो उसको मारना योग्य है या नहीं यह आप मुझ को उपदेश दीजिये ब्रह्माजी बोले हे इन्द्र! बलि को कभी न मारना क्योंकि वह मारने के योग्य नहीं है, तुम उससे इच्छा के अनुसार कारण पूछने के योग्य हो, भीष्मजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्माजी के समझाने से शोभायुक्त इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर पृथ्वी पर घूमनेलगा तदनन्तर उस इन्द्र ने गधे की सूरत में किसी उजड़ेहुये मकान में बैठाहुआ राजा बलि को देखा और जैसा कि ब्रह्माजी ने कहा था उसीप्रकार से पूछा कि हे दैत्य! तुम गधे की योनि में होकर तृण खानेवाले हुये यह तेरी योनि नीच है इसमें तू शोचता है या नहीं बड़े कष्ट की बात है कि मैं तुम को शत्रुओं के आधीन तेज, बल, लक्ष्मी से रहित इष्टमित्रों से जुदा गुप्तरूप में देखता हूं किसीसमय तुम हजारों सवारियों के साथ अपने जाति कुटुम्ब इष्ट

मित्रों से व्याप्त सबलोकों को तपातेहुये हमलोगों को तुच्छ समझते चलते थे और बड़े २ मुखिया दैत्य तेरे आज्ञावर्त्ती थे तेरे राज्य में पृथ्वी विना बोये जोते भी अन्न को उत्पन्न करती थी और अब इस दुःख में हो इसको शोचते हो या नहीं जब बहुत से भोगों को भोगकर तुम समुद्र के पूर्वी तटपर नियत हुये तब तेरा चित्त कैसा था कि हजारों देवांगना तेरे सम्मुख खड़ी होकर नृत्य करती थी और हजारों वर्ष तक प्रतिदिन सुवर्ण और कमलों के अनेक आभूषण पहरे नाचाकरीं हे दानवेश्वर! अब तेरा चित्त कैसा है उससमय तेरा रत्नजटित छत्र भी अद्वितीय शोभायमान था तेरे यज्ञस्तम्भ सुवर्णके थे और हजारों गन्धर्व सप्तस्वरों से गान को करते थे उसयज्ञ में हजारों गोदान ब्राह्मणों को देता था उससमय तेरी क्या बुद्धि थी जब दण्ड के फेंकने की बुद्धि से उतनेही विस्तार में तुमने सम्पूर्ण पृथ्वी को भ्रमणकिया तब तेरे हृदय में क्या था हे असुरेन्द्र! मैं तेरे भृंगारपात्र छत्र, चमर, व्यजन और ब्रह्माजी की दीहुई माला को नहीं देखता हूं राजाबलि ने कहा कि हे इन्द्र! तुम मेरे भृंगारपात्र छत्र, चमर, व्यजन को और ब्रह्माजी की दीहुई माला को भी नहीं देखते हो तुम मूल प्रकृति में अन्तर्द्धान होकर मेरे रत्नादिकों को पूछते हो जब मेरा उदयकाल आवेगा तब उन सब वस्तुओं को देखोगे यह तेरा पूछना व्यर्थ है और कुल के योग्य नहीं है कि तुम ऐश्वर्य्यवान् होकर मुझ भ्रष्ट राज्यलक्ष्मी वाले को लज्जायुक्त किया चाहते हो ज्ञानी ज्ञान से तृप्त और शान्त बुद्धिवाले पुरुष दुःखों में नहीं शोचते हैं और न प्रताप के उदय में प्रसन्न होते हैं हे इन्द्र! तुम प्राकृत बुद्धि से अपनी प्रशंसा करते हो जब मेरे समान होनहार में फँसोगे तब इसप्रकार नहीं कहोगे॥ ३०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

इक्यावनवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! इसबात को सुनकर भी इन्द्र ने हँसतेहुये ही फिर उस सर्प के समान श्वासलेनेवाले राजाबलि से यह वचन कहा कि जो तुम हजारों सवारियों समेत अपने सजातियों से संयुक्त सब लोकों को तपाते और हम को तुच्छ समझते जाते थे अब जातिवालों से और मित्रों से त्यागेहुये अपनी इस कठिन दशा को देखकर शोचते हो वा नहीं और पहिले समय में लोकों को अपने आधीन करके अतिप्रीतियुक्त हो इस बाहर की विपरीत दशा को देखकर शोचते हो या नहीं राजा बलि बोले कि हे इन्द्र! यहां धर्म के रूपान्तरवाले समय से इस विपरीतता को देखकर शोच नहीं करता हूं क्योंकि निश्चय करके यह सब नाशवान् है हे देवराज! इसीकारण मैं शोच नहीं

करता हूं और यह मेरा गधे का रूप पाप से नहीं है किन्तु समय की लौटपौट से है जीवन और देह जन्म के साथही उत्पन्न होते हैं और दोनों साथही साथ वृद्धि पाते हैं मैं इस गधे के भाव को पाकर देह के धर्म्मों से रहित नहीं हूं जब कि मुझे इतना ज्ञान है तो मुझ विज्ञानी को पीड़ा कैसे होसक्ती है, जो मरण है वह जीवों की निष्ठा है आत्मा की नहीं है जैसे कि समुद्र नदियों की निष्ठा है अर्थात् परागति है हे इन्द्र! उसपरागति के जाननेवाले मनुष्य मोह को नहीं पाते हैं जो पुरुष रजोगुण और मोह में फँसेहुये इसको इसप्रकार से नहीं जानते हैं और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती हैं वह दुःख को पाकर पीड़ित होते हैं पुरुष बुद्धि के लाभ से सब पापों को दूरकरता है और पाप से पृथक् बुद्धि को पाता है और बुद्धिमान् शुद्धहोता है अर्थात् मोह से उत्पन्न होनेवाली स्याहीको त्याग करता है जो उसबुद्धि से रजोगुण तमोगुण में प्रवृत्तहोते हैं वह वारंवार जन्मधारण करते हैं और उन रजोगुण आदि से चलायमान कृपणहोकर वह लोग दुःखों को पाते हैं मैं अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, जीवन, मरण के फल को बुरा नहीं कहता हूं और न उसकी इच्छा करता हूं निर्जीव देह को मारता है कुछ जीवात्मा को नहीं मारता जो कोई मनुष्य मारता है अर्थात् कहता है कि मैं देह का दूसरा कर्त्ता हूं वह विनाशवान् और जड़ है वह दोनों अर्थात् एक बाधक दूसरा बाध्य नहीं जानते हैं अर्थात् अज्ञानी हैं हे इन्द्र! जो कोई मारपीट से विजय करके अभिमान करता है वह अवर्तीही होता है अर्थात् मुख्य कर्त्ता नहीं है क्योंकि उसको कर्त्ता बुद्धिही बनाती है तात्पर्य्य यह है कि कर्तृत्वता बुद्धि सेही सम्बन्ध रखती है आत्मा से नहीं रखती है जगत् की कर्तृत्वता पुरुष में नहीं है इसको सिद्ध कहते हैं अर्थात् लोक की उत्पत्ति और नाश को कौन करता है कि माया से उत्पन्न होनेवाले चित्त ने उसकी उत्पत्ति और नाश को किया और उस चित्त का कर्त्ता आत्मा नहीं है कोई औरही है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यह पांचों तत्त्वही स्थूल सूक्ष्मशरीर के उत्पत्तिस्थान हैं उसमें कौन विलाप करना है जो बड़ा विद्वान्, छोटा विद्वान्, सबल, अबल, सुरूप, कुरूप, भाग्य, अभाग्य इन सबको गम्भीर काल अपने तेज से जैसे स्वाधीन करता है उसकाल के स्वाधीन वर्तमान होने पर मुझ विज्ञानी को क्या पीड़ा है अर्थात् वह सब गुण चित्त और देह के हैं आत्मा से कुछ सम्बन्ध नहीं है तो पीड़ा क्या होसक्ती है, कालात्मा ईश्वर के नाश कियेहुये को अग्नि आदि से फिर भस्मकरता है और मृतक को पीछेमारता है प्रथम नाश पायाहुआही नाशित होता है और प्राप्त होने के योग्य पदार्थ को मनुष्य पाता है इस विधाता और पुण्य पाप से जुदे काल का कोई देश नहीं है तो पार कहां से होसक्ता है और वार भी दिखाई नहीं देता है यह सब में विचारताहुआ भी उसके अन्त को नहीं देखता हूं हे शचीपते! जो काल मेरे देखते

हुये जीवों का नाश न करे ऐसी दशा में मुझको प्रसन्नता अहंकार और क्रोध हो सक्ता है तुम इस उजड़े एकान्त स्थान में तृणभक्षी मुझ गर्दभरूप को मिलकर और जानकर निन्दा करते हो मैं इच्छाकरताहुआ अपने अनेक प्रकार के भयकारी रूपों को बदलूंगा तुम उन मेरे रूपों को देखकर भाग जाओगे, काल सबको अपने आधीन करता है और कालही नाश करता है उसीसे सब उत्पन्न हुआ है इससे हे इन्द्र! तुम अभिमान मत करो हे इन्द्र! पूर्वसमय में मेरे क्रोधहोनेपर सब जगत् पीड़ित होता था मैं इस लोक के सनातन धर्म्मों को भी जानता हूं अर्थात् वृद्धि और क्षय रूप को जानता हूं उसको भी इसीप्रकार से विचारो, बुद्धि से आश्चर्य्य में मत पड़ो ऐश्वर्य्य और उसका उदय लक्ष्मी अपने आधीन में नहीं है जैसे कि पूर्वसमय में तेरा चित्त बालकों के समान था वैसा अब भी है यह अच्छीतरह से विचार करो और नैष्ठिकी बुद्धि को प्राप्तकरो, देवता, मनुष्य, पितर, सर्प, गन्धर्व, राक्षस यह सब मेरे स्वाधीन थे इनसब बातों को तुम भी जानते हो उस दशा से इस दशा को भी नमस्कार है जिस में विरोचन का पुत्र राजाबलि है इसप्रकार बुद्धि और मत्सरता से मोहित जीव मेरे आज्ञावर्ती थे हे शचीपते! मैं उस बात को और अपनी नष्टता को नहीं शोचता हूं इसप्रकार की मेरी निश्चित बुद्धि है मैं ईश्वर की आधीनता में नियत रहता हूं वह महाकुलीन दर्शन के योग्य प्रतापवान् राजा मंत्रियों के साथ दुःख से जीवता तुम को दृष्टि पड़ता है यह ऐसाही होनहार था सो हुआ इसीप्रकार अकुलीन अज्ञान नष्ट उत्पत्तिवाले राजमन्त्रियों समेत सुख से जीवता दृष्टिपड़ता है उसकी वही होतव्यता है हे इन्द्र! कल्याणी स्वरूपा स्त्री अभागिनी दृष्टि आती है और दूसरी कुलक्षणी कुरूपा स्त्री भाग्यवाली दृष्टि आती है हे वज्रधारिन्! जो तुमने इस दशा को प्राप्त होकर यह नहीं किया तो हम भी ऐसी दशावाले हैं यह हम ने भी नहीं किया और यह धनाढ्यता अथवा दरिद्रता मेरा कर्म्म नहीं है वह काल के क्रम से कियाहुआ होताहै इसीप्रकार तुझ श्रीमान् यशस्वी तेजस्वी वज्रधारी ऊपर गर्जना करनेवाले आनन्दपूर्वक विराजमान को भी मैं एक मुष्टिका से गिरासक्ता हूं जो इसप्रकार गधे का रूप न होऊं और काल मुझ को धर्षण न करके नियत न हो तो सब काम करसक्ता हूं यह हमारे पराक्रम का समय नहीं है यह शांति का समय प्राप्त है काल सबको नियत करता है और पकाता है जो दानव असुरों से पूजित मुझ को काल प्राप्त हुआ उस दशा में किस गर्जनेवाले और दूसरे के तपानेवाले पुरुष को प्राप्त नहीं होगा, हे देवराज! मुझ अकेले ने सब द्वादश सूर्य्यों के तेजों को धारण किया और मैंही बादलरूप से जल को भी धारण करता था और वर्षाता था और मैंही सूर्य्यरूप होकर तीनों लोकों को संतप्त करके प्रकाशित करता था और संसार की श्रेष्ठ प्रकार से रक्षा को करता था और दण्ड देना और

लेता था और लोकों में प्रभु ईश्वर होकर अपराधियों को पकड़ता और बुरेमार्गों से बचाता था हे देवराज ! अब वह मेरा ऐश्वर्य्य जातारहा और मुझ काल की सेना से घिरेहुये का सब ऐश्वर्य्य दृष्टि नहीं पड़ता है हे शचीपते, इन्द्र ! मैं कर्त्ता नहीं हूं और न तुम हो और न कोई दूसरा है सब लोक काल के क्रम से और दैवइच्छा से भोगेजाते हैं आयुर्वेद जाननेवाले मनुष्यों ने उस काल पुरुष को ऐसा कहा है कि वह काल महीना पक्ष आदि से विदित होता है और उसका आश्रय माया सबलब्रह्म है ऋतुद्वार हैं अर्थात् उसकी प्राप्ति के साधन हैं वायु मुख है अर्थात् प्रथम प्राप्ति के योग्य हैं अथवा वायु के स्थान में वर्षशब्द हो उसका यह अर्थ है कि वर्षा करनेवाला धर्म्ममेघनाम ध्यान उसका मुख है अर्थात् निर्विषय ध्यान से मिलने के योग्य है कितनेही जीवन्मुक्त मनुष्यों ने बुद्धि से न कि शास्त्रबल से इस सर्वकाल नाम ब्रह्म को ध्यान के योग्य कहा है अर्थात् ध्यान में पूर्ण ब्रह्म का आना असंभव है क्योंकि वह अद्वैतता में गिना जाता है इसीसे इस ध्यान के पांच विषय अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों को पांचप्रकार से वर्णन करूंगा अर्थात् वेद में प्राप्तकरूंगा जैसे कि कहावत है कि यह पुरुष अन्नरसरूप पक्षी है उसका यह शिर है यह दाहिना और बायांपक्ष है यह आत्मा है यह पुच्छ है वह जानने के योग्य है परन्तु वह ब्रह्म नहीं है क्योंकि अनात्मा है आत्मा ब्रह्म है और वेद में जो कहा है कि यह सब आत्मा है इसको दोष लगाने से हम कहते हैं कि आत्मा में सब प्रकाश इस रीति का है जैसे कि सीपी में चांदी का आभास जैसे कि स्फटिक में पद्मराग इन्द्रनीलमणि आदि दृष्टि पड़ते हैं फिर ध्यान करते २ अन्त में केवल स्फटिकही शेषरहजाता है उसीप्रकार बुद्धि और चैतन्य में ईशसूत्र विराट् का अध्यास होता है वहां देह का अभिमान दूरहोनेपर मैं विराट् हूं यह अध्यास शेष रहजाता है उसकी निवृत्ति होनेपर मैं सूत्रात्मा हूं यह अध्यास होजाता है उसके भी निवृत्तहोनेपर मैं ईश हूं यह अध्यास नियत होता है उसके भी निवृत्त होने पर चित्त और वाणी के विषय से रहित चिन्मात्र शक्ति के समान शेषरहता है वह तर्क से प्राप्त न होनेवाला शास्त्र से प्राप्तहोकर भी अगम्यब्रह्म महासमुद्र के समान आदि अन्त और वारापार न रखनेवाला एकरस है और जैसा कि शंख और चांदी का श्वेतरूप होता है वैसारूप धारण किये है और जन्म मृत्यु से पृथक् भी संसार रूप से नाशवान् और जीवरूप से अविनाशी है बुद्धि आदि में अपने प्रतिबिम्ब को प्रवेश करके आप चिह्नरहित भी है जो तत्त्वज्ञ मनुष्य हैं वह उसको उपाधिधर्म्म से स्पर्शरहित मानते हैं वह षडैश्वर्य्यवान् ईश्वर तत्त्वों की विपरीत सूरत का मिथ्यापन और आश्रय अथवा दुःखादि दुर्भाग्यता को अपने में अविद्या के द्वारा मानता है यह अविद्या से प्रकट होनेवाला

दुःखादि आत्मा को प्राप्त होने के लायक नहीं है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म से फिर दूसरा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रकट नहीं होता है सब जीवों की गति को पाकर कहांजायगा वह भागनेवाले से त्यागहोने के योग्य नहीं है और निश्चल होता भी उससे पृथक् नहीं होता है अर्थात् सदैव प्राप्त होने से चित्तशक्तिमात्र सब इन्द्रियां पांच प्रकार से उसको नहीं देखती हैं कितनेही पुरुषों ने इसको अग्निरूप कहा और कितनोंही ने प्रजापति और कितनेही उस कालपुरुष को ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्व और परदिन और मध्याह्न मुहूर्त्त भी कहते हैं एक होनेपर भी उस काल को बहुतप्रकार का कहते हैं यह सब बातें जिसके आधीन हैं उसीको मुख्यजानो हे शचीपते ! बल पराक्रम में पूर्ण जैसे तुम हो वैसे हज़ारों इन्द्र होचुके यह महाबली कालरूप समय आनेपर तुझ सरीके बल में मतवाले देवराज को भी आधीन करेगा वही सदैव इस सब दृश्यादृश्य को आधीन करता है, इसकारण हे इन्द्र ! तुम सावधानचित्त हो वह कालपुरुष हम से तुम से पुरुषों से और पूर्व पूर्वजों से हटाने के योग्य नहीं है न होगा। इस अनुपम राजलक्ष्मी को पाकर जो कोई जानता है कि यह मेरेपासही रहेगी वह मिथ्या है क्योंकि इस का नाम चंचला है यह एकही स्थानपर कभी नहीं रहती तुझ से भी महाउत्तम हज़ारों इन्द्रों के पास यहराजलक्ष्मी नियतहुई और सबको त्यागकर मुझ को भी प्राप्त हुई फिर यह तुम को भी उसी प्रकार का जानकर कभी दूसरे के पास जायगी ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

बावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसके पीछे महात्मा बलि की देह से स्वरूप युक्त प्रकाशमान लक्ष्मी को निकलते हुये इन्द्र ने देखा उस तेज से प्रकाशमान लक्ष्मी को देखकर बड़े आश्चर्य युक्त होकर प्रसन्ननेत्र हो देवराज इन्द्र ने बलि से पूछा कि हे बले ! यह अपने तेज से प्रकाशमान चूड़ा केयूर धारणकिये शोभायमान स्त्री जो तेरी देह से निकली और वर्त्तमान है वह कौन है बलि ने कहा कि हे इन्द्र ! मैं इस आसुरी वा दैवी अथवा मानुषी को नहीं जानता हूं तुम इससे पूछो या न पूछो या जो इच्छा हो सो करो इन्द्र बोले कि हे पवित्रालय, शोभायमान, चूड़ाधारिणि, स्त्री ! तुम कौन हो मुझ अज्ञानी से अपना वर्णन करो हे तेज से प्रकाशित ! तुम इस उत्तम दैत्य को त्याग करके मेरे पास वर्त्तमान हो सो कौन हो हे सुभ्रु ! तुम अपनावर्णन मुझ से करो लक्ष्मी बोली कि मुझ को न विरोचन जानता था और न यह विरोचन का पुत्र बलि मुझ को जानता है तुम मुझ को भूति लक्ष्मी श्री जानो हे इन्द्र ! न तो तुम मुझ को जानते हो न सब देवता

जानते हैं इन्द्रने कहा हे दुःसह ! इस बलिके पास बहुतकाल से निवास करनेवाली सती तुम मेरेकारण या इस बलि के कारण से दैत्यराज को त्यागती हो यह बात क्या है लक्ष्मी बोली हे इन्द्र ! मुझ को किसीप्रकार से भी धाता धारण नहीं करता है और विधाता धारणकरता है इसको काल ने प्राप्त किया है तुम इसका अपमान मतकरो इन्द्र बोले हे पवित्रालय, देवि ! तुम ने राजाबलि को किसकारण और किसरीति से त्यागकिया और मुझ को क्यों नहीं त्यागकिया, लक्ष्मी बोली कि मैं सत्यता, दान, व्रत, तप, पराक्रम और धर्म्म में वर्त्तमान हूं इन गुणों को सुनकर राजाबलि ने मुख फेरलिया इस ने पहिले समय में ब्राह्मणों का भक्त सत्यवादी जितेन्द्रिय होकर फिर ब्राह्मणों की निन्दाकरी और उच्छिष्टभरे मुख से घृत का स्पर्शकिया और सदैव यज्ञ करनेवाला होकर काल से पीड़ित अज्ञान बुद्धि ने संसार के लोगों से कहा कि मुझ को भी पूजनकरो इस कारण से मैं इस से पृथक्होकर तेरेपास निवासकरती हूं सावधान मनुष्य से मैं तपस्या और बल के द्वारा धारण करने के योग्य हूं इन्द्र बोले कि हे पद्मालय, देवि ! देवता मनुष्य और सब जीवों में कोई पुरुष भी है जो अकेला आप के धारण करने को समर्थ हो लक्ष्मी बोली कि कोई देवता, गंधर्व, असुर, राक्षस ऐसा नहीं है जो अकेला मुझे धारण करने को समर्थ होय, इन्द्र ने कहा हे देवि ! तुम जिसप्रकार सदैव मेरेपास नियत रहो उस रीति को मुझ से वर्णन कीजिये मैं तेरेइस सत्यवचन को पूराकरूंगा लक्ष्मी ने कहा कि हे इन्द्र ! मैं जिस प्रकार से तेरेपास सदैव रहूंगी उसको मुझ से सुनो कि तुम वेदोक्त बुद्धि से मेरे चार भाग करो,इन्द्र ने कहा कि मैं अपने बल पराक्रम के अनुसार तुम को धारण करूंगा हे लक्ष्मीजी ! आप के सन्मुख मैं कभी बे मर्यादा न होऊंगा जीवधारियों में मनुष्यों का पोषण करने वाली आधाररूप पृथ्वी है वह तेरे चरण को सहैगी क्योंकि वह समर्थ है यह मेरा मत है, लक्ष्मी बोली कि मैंने वही चरण रक्खा है जो पृथ्वी पर नियत है हे इन्द्र ! इसीकारण से मेरे दूसरे चरण को अच्छे प्रकार से नियत करो, इन्द्र बोले हे चारों ओर घूमनेवाली ! मनुष्यों में जारी रहनेवाले जल हैं वह भी तेरे चरणों को सहैं क्योंकि जल भी क्षमाकरने को बहुत योग्य है लक्ष्मी ने कहा कि मैंने वही चरण रक्खा है जो कि जल में नियत है अब तू मेरे तीसरे चरण को अच्छी रीति से रख, इन्द्र ने कहा कि जिस में वेद, यज्ञ और देवता वर्त्तमान हैं वह अग्नि तेरे तीसरे चरण को सुन्दर रीति से धारण करैगी, लक्ष्मी बोली हे इन्द्र ! मैंने वही चरण रक्खा है जो कि अग्नि में नियत है अब मेरे चौथे चरण को अच्छा नियत करो- इन्द्र बोले कि मनुष्यों में जो निश्चय करके संत, वेद, ब्राह्मणों के भक्त और सत्यवक्ता हैं वह तेरे चौथे चरण को धारणकरें क्योंकि संत बड़े सहनशील होते हैं पृथ्वी ने कहा कि मैंने वही चरण रक्खा जो संतों में

नियत है, धन, तीर्थादि में पुण्य यज्ञादिकर्म्म, विद्या, यही चारों लक्ष्मी के चरण हैं जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि और संतों में वर्त्तमान हैं, इन्द्र बोले कि निश्चय करके इसलोक में जीवों के मध्य जो पुरुष मुझे धारण किये हुये तुझ सती को दुःखदेगा वह मारने के योग्य है यह सुनकर लक्ष्मी से हीन दैत्यों के राजा बलि ने कहा कि जो मेरुनाम प्रकाशित पर्वत स्वर्ग में है उसके पीछे ब्रह्मलोक है और पूर्वादि चारों दिशाओं में इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम इन चारों देवताओं की पुरी हैं वह चारोंपुरी मेरु के चारोंओर घूमनेवाले सूर्य्य की किरणों से प्रकाशमान हैं जिस पुरीका नाश वर्त्तमान होता है वहां सूर्य्य प्रकाश नहीं करते हैं विश्वासियों को सूर्य्य का दृष्ट आना उदय और दृष्ट न आना अस्त मालूम होता है जब पूर्व में उदय होता है तब पश्चिमदेशनिवासियों को अस्त मालूम और जब उत्तर-वासियों को मध्याह्न के समय उदय होना मालूम होता है तब दाक्षिणात्य लोगों के यहां अर्द्धरात्रि होती है इसीप्रकार दक्षिण आदि में भी जानना चाहिये ऐसी दशा में जब पूर्व में प्रकाशहोता है तब मेरु की प्रदक्षिणा बराबर होने से सूर्य्य दूसरी दिशा में भी प्रकाशकरता है इसहेतु से जबतक पूर्व में प्रकाश करता है तबतक दक्षिण में इसकहने से जितने काल में पूर्व की नष्टताहोगी उससे दूने काल में दक्षिण की होगी ब्रह्माजी का जो दिन है उसके सोलहभाग किये जाँय उन में के पहिले भाग में पूर्व की हानि, दो भाग में दक्षिण की, चार भाग में पश्चिम की, आठ भाग में उत्तर की, तब देखनेवालों के वर्त्तमान न होनेपर सूर्य्य का उदय अस्त जो कि दर्शनीय और अदर्शनीय रूप है नहीं होता है किंतु मध्याह्नही रहता है अर्थात् बराबर ब्रह्महीलोक को प्रकाश करता है क्योंकि उससमय दूसरी पुरी वर्त्तमानता नहीं होती, उसीको वर्णन करते हैं कि जब एकस्थान अर्थात् ब्रह्मलोक में वर्त्तमान सूर्य्य मेरुपहाड़ की पीठ से नीचे की ओर वर्त्तमान लोकों को प्रकाशकरेगा तब ब्रह्माजी के मध्याह्न समय के पीछे वैवस्वतमनु का अधिकार भ्रष्टहोने से सावर्णिनाम मनु के होनेपर राजाबलिही इन्द्र होगा अथवा वैवस्वतमन्वन्तर के आठभाग करके उनमें ऊपर के क्रम के अनु-सार अष्टपुरियों के भ्रष्टहोनेपर दूसरे मन्वन्तर में राजाबलि इन्द्रहोगा उसीप्रकार जब मध्याह्न के समय सूर्य्य प्रकाशमान होगा अर्थात् चारोंपुरी नष्टहोजायँगी फिर देवता और असुरों का युद्धहोनेवाला है तब मैं तुम को विजयकरूंगा, इन्द्र बोले कि, हे बले ! मैं ब्रह्माजी से आज्ञादिया हूं इससे मैं आप के मारने के योग्य नहीं हूं इसीकारण वज्र को तेरे मस्तक पर नहीं मारता हूं हे दैत्येन्द्र, महाअ-सुर ! तुम इच्छानुसारजाओ तेरा कल्याण हो मध्य में वर्त्तमान सूर्य कभी नहीं तपावेगा अर्थात् चारोंपुरी की नष्टता कभी न होगी प्रथमही ब्रह्माजी की ओर से इससूर्य का नियम नियत किया गया है यह सूर्य सत्यकर्म से संसार को तपाता

हुआ बराबर चलता है उसका स्थान छःमहीने तक उत्तर और छःमहीने दक्षिण को होता है सूर्य जिस मार्ग से शीत और उष्णता को उत्पन्न करता हुआ लोकों में घूमता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! इन्द्र से इसप्रकार कहाहुआ राजावलि दक्षिणदिशाको गया और इन्द्र उत्तरदिशा को चलकर राजावलि के इससाहंकारी वचन को सुनकर आकाश को चढ़ा ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

तिरपनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! इस निरहंकारता के विषय में और एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में इन्द्र और नमुचि का संवाद है किसी समय इन्द्र ने लक्ष्मी से रहित समुद्र की समान स्थिरता में युक्त जीवों के उत्पत्ति लय के जाननेवाले नमुचि से कहा कि हे नमुचि ! पाशों से बँधे स्थान से भ्रष्ट शत्रुओं के स्वाधीन वर्त्तमान लक्ष्मी से रहित तुम शोचते हो या नहीं शोचते हो, नमुचि ने कहा कि दूर न होनेवाले शोच से देह को पीड़ा होती है उससे शत्रु बहुत प्रसन्न होते हैं शोक में किसी की सहायता नहीं है, इसकारण हे इन्द्र ! मैं शोच नहीं करता हूं क्योंकि निश्चय करके यह सब नाशवान् हैं शोक से स्वरूप की नष्टता होती है और शोभा की हानि होती है और शोकही से आयु वा धर्म नष्ट होते हैं इस अनिच्छा से उत्पन्न होनेवाले दुःख को त्याग करके ज्ञानी मनुष्य को हृदय में वर्त्तमान आत्मा और अपने कल्याण को चित्त से ध्यान करना योग्य है, पुरुष जब कल्याण में चित्त को करता है तब उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं एकही स्वामी है दूसरा कोई नहीं है वह स्वामी गर्भ में शयन करनेवाले पुरुष को उपदेश करता है उसी से कर्मों में प्रवृत्त पुरुष होता है जैसे कि ढलाव के स्थान से जल बहता है, मुझ को भी जैसी आज्ञाहुई उसी कर्म को करता हूं, मोक्ष बन्धन अथवा सत्य मिथ्या इन सब के मध्य में ज्ञान मोक्ष को श्रेष्ठ जानता हुआ सिद्ध नहीं कर सक्ता हूं जैसे कि धर्मरूप उत्तम आशाओं में ईश्वर ने कर्म करना कहा है उस को उसी प्रकार से करता हूं, मनुष्य जिसप्रकार से उसको प्राप्त करना योग्य समझता है उसी २ प्रकार से प्राप्त करता है जैसी होतव्यता होती है वैसाही सब होता है, ईश्वर ने जहां २ बराबर गर्भों में अपने को निवेशित किया है वहां वहां हीं निवास करता है क्योंकि उसके आधीन हैं मुझको जो यह जन्म प्राप्त हुआ सो मेरा होनहार था जिसका इसप्रकारसे चित्त में ज्ञान है वह कभी मोह को नहीं पाता है, काल के क्रम से प्राप्तहोनेवाले सुख दुःखों से पीड़ित मनुष्यों में कोई विपरीत नहीं जानता जिस से कि किसी नालिश को करे सब बुद्धिमान् पुरुष यही कहते हैं कि हमहीं अपने दुःखों के

कर्ता हैं फिर नालिश किसकी किसको करें किस देवता असुर और वन में निवास करनेवाले मुनि वेदज्ञों को आपत्ति नहीं आती है अर्थात् सब को प्राप्त होती है लोक में जो सत् असत् अर्थात् सत्य मिथ्या वस्तु के जाननेवाले हैं वह निर्भय रहते हैं और पण्डित मनुष्य क्रोध नहीं करता है न संसार में चित्त को लगाता है न पीड़ा पाता है न खुश होता है और दुःख से हटाने के योग्य दुःखों में शोच भी नहीं करता है और स्वभाव से हिमालय पर्वत के समान अचल होकर नियत है, जो मनुष्य उत्तम मनोरथों से और समय के सुख दुःखों से विस्मरण नहीं होता और सुख दुःखों को समान गिनता है वह मनुष्य बड़ा धुरन्धर गिनाजाता है, जैसी २ दशा को पुरुष प्राप्तकरे उसमें दुःखी कभी न हो किन्तु उसी में निर्वाह करे और बड़े भारी चित्त में उत्पन्न होनेवाले दुःखदायी कष्टों को देह से दूरकरे, अब विवेक की कठिनता को सुनो कि वह सभा वेद और स्मृतियों के न्याय और अन्याय की खोलनेवाली है उसको पाकर कभी भय नहीं करता है, जो बुद्धिमान् धर्मतत्त्वों को जानकर उसको प्राप्त करता है वह पुरुष धुरन्धर है अर्थात् सभासदों में उत्तम है आशय यह है कि धर्म्मतत्त्व भी कठिनता से प्राप्त होता है तो ब्रह्मतत्त्व क्यों नहीं दुःख से प्राप्तहोगा, ज्ञानी के कर्म्म ऐसे हैं जिन का फल आगे को समझ में आना कठिन है ज्ञानी मोह के समय मोह को नहीं पाता है, इस गृहस्थाश्रम से रहित गौतम ऋषि इसी प्रकार की आपत्तियों को पाकर उनके दुःखों से मोहित नहीं हुआ, तात्पर्य्य यह है कि मैं तेरे समान अजितेन्द्रिय और चित्त के आधीन नहीं हूं किन्तु गौतम ऋषि के समान चित्त का जीतनेवाला हूं, मनुष्य मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, उपाय, स्वभाव, रीति और धन आदि से दुर्ग्राह्य वस्तु को नहीं पासक्ता है अर्थात् चित्त की सावधानता को नहीं पाता है उसमें क्या शोच है, पूर्व्व समय में ईश्वर ने इस प्रकार जन्मलेनेवाले का जो विधान किया है उसी के अनुसार कर्म्म करूंगा मृत्यु मेरा क्या कर सक्ती है, प्राप्त होनेवाले सुख दुःखों को अवश्य पाता है और यात्रा के योग्य देशों को भी जाता है और प्राप्त होने के योग्य को प्राप्त होता है जो मनुष्य इसको सम्पूर्णता से अच्छेप्रकार जानकर मोह को प्राप्त नहीं होता है वह सब दुःखों से निवृत्त होकर धन का स्वामी होता है ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चौवनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! बन्धुओं समेत राज्य के नाश होने में महा कठिन आपत्तियों में डूबेहुए मनुष्य का कल्याण करनेवाला क्या है इस बात को आप कहने के योग्य हैं क्योंकि इसलोक में हे भरतर्पभ ! आपही हमारे

अद्वैतवक्ता हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! पुत्र, स्त्री, सुख, धन से पृथक् और कठिन आपत्ति में पड़ेहुए मनुष्य को धैर्यही सुख का देनेवाला है सदैव धैर्ययुक्त पुरुष नाश को नहीं पाता है और शोकरहित सुख को पाता है और देह की उत्तम नीरोग्यता को भी धारण करता है वह देह की नीरोग्यता से और सात्विकी वृत्ति में नियत होकर पूर्ण लक्ष्मी को पाता है उसको धैर्य ऐश्वर्य और कर्मों में निश्चय भी प्राप्त होता है, इस स्थानपर फिर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं उसमें भी इन्द्र और बलि के प्रश्नोत्तर हैं कि देवासुर के युद्ध जारी होने में दैत्य दानवों के नाशपूर्वक सबलोकों को विष्णुजी में व्याप्त होनेपर इन्द्र को देवराज पदवी मिली तब इन्द्र देवताओं के पूजित हुये उस समय चारों वर्ण नियतहुये और तीनों लोकों की वृद्धिहुई तब ब्रह्माजी समेत ग्यारहरुद्र, आठवसु, द्वादशसूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, सब ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, आदि से व्याप्त इन्द्र अपने चार दांतवाले ऐरावतपर सवार होकर तीनों लोकों में घूमे और घूमते हुये समुद्र के तटपर किसी पहाड़ की गुफा में विराजमान राजा बलि को देखा और समीपगया उस बलि ने इस बड़ी धूमधाम समेत इन्द्र को देखकर कुछ भी शोच न किया और न दुःखी हुआ तब इन्द्र ने उस सावधान निर्भयस्वरूप राजा बलि से कहा कि, हे दैत्य, बले! तुम शूरता से या वृद्धों के सेवन से अथवा अपने चित्त की शुद्धता से पीड़ारहित हो यह बड़ा कठिन कर्म है कि शत्रुओं के आधीन अपने स्थान से भ्रष्ट राजलक्ष्मी से पृथक् होकर भी तुम किसके बल से भय के स्थान में भी निर्भय हो पूर्व समय में अपने बाप दादे के राज्यपर अधिकारी होकर अब तुम उसराज्य को शत्रुओं से छीनाहुआ देखकर क्यों शोच नहीं करते और वरुण के शापों से बँधे वज्र से घायल स्त्रीधनरहित भी क्यों नहीं शोच करते ऐसा कौन है जो तीनों लोकों के राज्य भ्रष्ट होने पर जीवने का उत्साह करे ऐसी दुःखदायी मर्मभेदी इन्द्र की अनेक बातें सुनकर उस इन्द्र को निरादर करके विरोचन का पुत्र राजा बलि यह वचन बोला कि हे इन्द्र! मेरे आपत्ति के होने से तुझ को प्रशंसाकरने की क्या आवश्यकता है अब तुम वज्र उठाये दीखते हो किसीसमय तुम ऐसे असमर्थ थे कि भागते फिरते थे अब दैवयोग से इन्द्रपद पाकर तेरे सिवाय दूसरा कौन ऐसे निर्दयवचनों को कहने के योग्य है जो कोई अपने बलवान् शत्रु को स्वाधीन करके उसपर करुणा करता है वही पुरुष है ज्ञानियों के बीच में दो पुरुषों का विवाद निर्णय नहीं होता है उनमें एक हारता है और एक जीतता है हे देवेश! यह तेरा स्वभाव ईश्वर ने कि सब जीवों का स्वामी तेरे बल पराक्रम से विजय होय और यह हमारा कर्म नहीं है न तुम्हारा है जो तुम या दूसरा ऐसी दशा में हो और हम ऐसी दशा में हुए अब जैसे तुम

हो वैसाही मैं भी था और जैसे अब हम हैं वैसेही तुम भी होगे तुम यह न समझो कि मैंने बड़ाकर्म किया क्योंकि समय की विपरीतता से पुरुष सुख दुःख को भोगता है और तुम ने भी समय की विपरीतता सेही इंद्रपद पाया है कुछ अपने पुरुषार्थ से नहीं पाया कालने जैसे मुझे प्राप्त किया है उसी प्रकार तुझ को भी अवश्य करेगा कभी मैं तेरे समान नहीं कभी तू मेरे समान न होगा, पुरुष का सुखदायी माता पिता से अधिक कोई नहीं है विद्या, तप, दान, मित्र, बांधव यहसब उस काल से पीड़ित मनुष्य की रक्षा नहीं कर सके मनुष्य बुद्धि बल के विशेष सैकड़ों उपाय और अनर्थों से भी होनहार सुख दुःख के दूरकरने को समर्थ नहीं होसके हैं, समय के विपरीतपने से दुःखी मनुष्यों का कोई रक्षक नहीं है हे इन्द्र! इसी को दुःख जानो जो तुम मानते हो कि मैं इसका कर्त्ता हूं, जो मनुष्य कर्त्ता होजाय तो वह कभी उत्पन्न भी न हो फिर कर्त्ता की उत्पत्ति होने के कारण वह कर्ता भी असमर्थ है मैंने भी तुझे काल से विजय किया था और अब काल से तैंने भी मुझ को विजय किया है काल ही कर्म के फल में वर्तमान पुरुषों को प्राप्त होनेवाला है, कालही जीवों की संख्या करता है और एक को एक से पृथक् करता है, हे इन्द्र! तुम प्राकृत बुद्धि से नाशको नहीं जानते हो, अपने कर्म्मों से प्रतिष्ठा पानेवाले लोग तुम को बहुत मानते हैं, काल से पीड़ित मुझ सा पुरुष लोक की प्रवृत्तियों को जानता कैसे मोहित होकर शोच को करे और भ्रान्ति पावे मुझकाल से व्याप्त या मेरे समान पुरुष की बुद्धि टूटी नौका के समान पीड़ा को पाती है, मैं तुम और अन्य भी बहुत से देवेन्द्र होंगे वह सब भी सैकड़ों इन्द्रों के प्राप्त होनेवाले मार्गों में जायँगे, अन्त के समय तुझ शोभायमान विजयी को भी काल ऐसेही भ्रष्ट करेगा जैसा कि मुझ को किया है, देवताओं के हर एक यज्ञ में हज़ारों इन्द्र काल से व्यतीत होगये यह कालही कठिनता से उल्लंघन के योग्य है और जो तुम इन्द्रासन को पाकर अपने को बड़ामानते हो सो यह कालही जीवों के उत्पत्तिस्थान ब्रह्माजी के समान तुम को भी प्रतिष्ठित मानता है यह किसी का अचलस्थान नहीं है, तुम निर्बुद्धिता से जानते हो कि यह मेरा है हे देवेन्द्र! तुम अविश्वस्त में विश्वास करते हो और चल को अचल मानते हो तुम मोह से राजलक्ष्मी को चाहते हो कि यहमेरी है यहतेरी है न मेरी है न दूसरों की सदैव है यह हज़ारों को उल्लंघन करतीहुई तुझ में प्राप्तहुई है सो कुछकाल तक यह चंचल तुझ में नियत होकर जैसे कि गौ स्थान को बदलती है उसीप्रकार तुझ को भी छोड़कर फिर दूसरे को प्राप्तहोगी बहुत से राजा व्यतीत होगये जिनकी संख्या करना कठिन है हे पुरंदर! दूसरे तुझ से भी अधिकगुणवान् होंगे, यह पृथ्वी पूर्वसमय में वृक्ष, औषधि, वन, आकररत्न, और जीवोंसमेत जिनसे भोगीगई उन पुरुषों को अब

नहीं देखता हूं अर्थात् राजापृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनपेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्सु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैऋति, सकोच, बरीताक्ष, वराह, अश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित, प्रतिरूप, वृषाण्ड, विस्कर, मधु, हिरण्यकश्यप, कैटभ, यह सब दैत्येश और दानव नैऋति समेत और अन्य बहुत प्राचीनवृद्ध और उनसे भी प्रथम होनेवाले दैत्येन्द्र, दानवेन्द्र और जिन २ को सुनते हैं यह सब पृथ्वी को भोगकर चलेगये इससे कालही बड़ापराक्रमी है सबने सैकड़ों यज्ञों से उसका पूजन किया केवल तुम्हीं शतक्रतु नहीं हो वह सब धर्म्म में पूर्ण सदैव यज्ञकरनेवाले अंतरिक्षगामी सन्मुख युद्धकरनेवाले देह से दृढ़परिघ के समान भुजावाले सैकड़ों माया धारणकरने में समर्थ कामरूप थे अर्थात् स्वेच्छा से रूप धारणकरनेवाले थे वह कभी युद्ध में पराजित नहीं सुनेगये वेदव्रत में परायण सत्यवक्ता और शास्त्रज्ञ थे सब में सबका अभीष्ट ऐश्वर्य्य पाया उन महात्माओं को भी अपने ऐश्वर्य्य का कभी अभिमान नहीं हुआ सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार दानी और मत्सरता से रहित थे, सब ने जीवधारियों में जैसा वर्त्ताव योग्य था वैसाही किया दक्षप्रजापति के महाबली पुत्र प्रतापी हुए वह भी कालने आकर्षण किये, हे इंद्र ! तुम जब इस पृथ्वी को भोगकर फिर त्याग करोगे तब तुम अपना शोक दूरकरने को समर्थ न होगे कामभोगों में जो इच्छा है उसको त्यागदो और लक्ष्मी से उत्पन्न होनेवाले इस अहंकार को भी त्यागो इसी प्रकार से तुम राज्य के नष्टहोने में शोक को न सहसकोगे तुम को चाहिये कि शोच के समय अशोच और हर्ष के समय हर्षरहित होजाओ, भूत और भविष्य को त्याग करके वर्त्तमान वस्तु से निर्वाह करो क्योंकि सदैव कर्म्म में प्रवृत्त मुझ से सावधान को जो काल प्राप्त हुआ, हे इन्द्र ! क्षमाकरो वह थोड़ेही काल में तुम को भी प्राप्त होगा हे इन्द्र ! तुम यहां मुझ को डराकर अपने वचनों से घायल करते हो यह काल पहिले मुझ को सताकर अब तेरे भी पीछे दौड़ता है इसीहेतु से प्रथम काल से मेरे घायल होनेपर तुम गरजते हो इसलोक में युद्ध के बीच तुझ क्रोधी के सम्मुख कौन वर्त्तमान होने को समर्थ है और हे इंद्र ! पराक्रमी काल के प्राप्त होनेपर हजार वर्षतक तुम नियत रहोगे, जब मुझ से पराक्रमी के सब अंग सावधान नहीं रहे तब मैं इंद्रासन से उतारा गया और तुम को स्वर्ग का इन्द्र बनाया इसबड़े जीवलोक में समय के लौटने से उपासना के योग्य हुआ, अब तुम किस कर्म्म से इंद्र हो और हम किस अपराध से राज्य से भ्रष्ट हुए, कालही कर्त्ता और नाशकर्त्ता है और सब निरर्थक हैं, ज्ञानी पुरुष ऐश्वर्य्यवान् होने वा न होने अथवा दुःख सुख होने न होने में सुखी दुःखी नहीं होते हे इंद्र ! तुम

मुझको जानते हो और मैं तुमको जानता हूं तुम अपनी प्रशंसा हमसे क्यों करते हो क्यों काल से निर्लज्ज होते हो पूर्व समय में तुम मेरे पराक्रम और उपायों को जानते थे जो युद्धों में मैं करता था हे शचीपते ! मैंने पूर्व समय में बारह सूर्य्य, ग्यारह रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, वसुओं समेत देवासुरयुद्ध में विजय किये इसको तुमभी जानते हो, मैंने युद्ध में बल से भागनेवाले देवता सब परास्त किये और जंगल वा जंगल के जीवों समेत अनेक पहाड़ों को हाथ से उठा २ नगरों समेत तेरे मस्तक पर फेंककर तोड़डाले अब मुझे क्या करना सम्भव है निश्चय करके काल कठिनता से पारहोनेवाला है नहीं तो तुझ वज्र-धारी को अभी मुष्टिका से मारने का उपाय करता यह मेरा पराक्रम का समय नहीं है किन्तु शांति का समय आया है इसीकारण से हे इन्द्र ! मैं तुमसे अधिक असहिष्णु होकर तुमपर क्षमा करता हूं सो तुम काल के विपर्यय से उस कालाग्नि से व्याप्त होकर काल की फांसी में बंधे हुए मुझको अपनी प्रशंसा सुनाते हो, यह वह पुरुष श्याम वर्ण लोक से दुर्ग्राह्य रुद्र काल मुझको बांध-कर ऐसे नियत है जैसे कि रस्सी से पशु को बांधकर कोई वर्त्तमान हो, हानि, लाभ, सुख, दुःख, काम, क्रोध, ऐश्वर्य्य, नष्टता, मारना, पकड़ना, मोक्षहोना इत्यादि सब बातें काल से प्राप्तहोती हैं न मैं कर्त्ता हूं न तू कर्त्ता है जो कर्त्ता है वह सदैव सब का स्वामी है वह कालवृक्ष में होनेवाले फलों के समान हम सब को पकाता है, पुरुष जिन २ कर्म्मों के करने से सुख को प्राप्त करता है फिर उन्हीं कर्मों को करता काल केही कारण दुःखों को भी भुगतता है, काल का जाननेवाला पुरुष काल से स्पर्श कियाहुआ शोच के योग्य नहीं है इस कारण से मैं शोच नहीं करता हूं, शोक में किसी की सहायता नहीं है जब शोच करनेवाले का शोक दुःख से दूर नहीं करसक्ता है तब शोच को कौन करे इसी कारण से अब मैं शोच नहीं करता हूं इतनी बलि की बातें सुनकर इंद्र ने क्रोध को रोककर यह वचन कहा कि वज्र समेत हाथ के उठने और वरुण के पाशों को देखकर किसकी बुद्धि भय से पीड़ित न होगी और यह तेरी तत्त्वदर्शी अचला बुद्धि मारनेवाली मृत्यु से भी पीड़ा नहीं पाती है निश्चय करके तुम सच्चे परा-क्रमी हो और अपने धैर्य्य से भय नहीं करते हो और इस संसार को अस्थिर जानके कौनसा देहधारी विषयों में विश्वास करेगा मैंभी इसीप्रकार इसलोक को नाशवान् जानता हूं, जोपुरुष उसघोररूप अविनाशी गुप्त प्रकट कालाग्नि में वर्त्तमान है वह कभी नहीं छूटसक्ता है चारों ओर से जीवों को तपानेवाले लोक को विनाशवान् जानता हूं, और फिर न लौटनेवाले काल के पंजे से न-छूटता को प्राप्त पुरुष मोक्ष नहीं होता है क्योंकि वह सावधानकाल अचेत जीवों में सदैव जागता है, पूर्वकाल में बड़े उपाय सेभी वह प्राचीन सनातन धर्म्म

और सब में समान वर्त्तमान वह काल किसी से उल्लंघन होने के योग्य नहीं देखा वह काल न दूर होसक्ता है और न बदलसक्ता है जो काल दिन, रात, मास, पक्ष, क्षण, काष्ठादि कला विकलाओं को ऐसे इकट्ठा करता है जैसे व्याज की जीविकावाला व्याज का संचय करता है, अब यह करूंगा कल वह करूंगा इसप्रकार के कहनेवाले पुरुष को प्राप्तहोनेवाला काल आकर्षण करलेता है और जैसे कि नदी का वेग वृक्ष को गिराता है उसीप्रकार यह भी गिरालेजाता है, अर्थ भोग स्थान ऐश्वर्य्यादिक सब नाश होजाते हैं, काल आकर जीवलोक के जीवन को लेजाता है सब संसार विनाशवान् और अनियत है तेरी वह अचल और तत्त्वदर्शिनी बुद्धि पीड़ा से रहित है, इस जगत् में बलवान् काल से दबाकर पकड़ने पर भी इसको चित्त से ध्यान नहीं करता है कि मैं पहिले समय में ऐसा था यह ऐश्वर्य्यवान् नष्टहुआ इस वचन से चित्त को चलायमान नहीं करता है यह संसार, ईर्षा, क्रोध, लोभ, अहंकार, इच्छा, द्वेष, भय, मोहादिकों से अज्ञानता को पाता है परन्तु आप तत्त्वभाव के ज्ञाता बुद्धिमान् ज्ञान तप से संयुक्त हो, प्रत्यक्ष में काल को ऐसे देखते हो जैसे कि हाथ में लिये आंवले को देखा करते हैं हे विरोचन के पुत्र! तुम काल के मुख्य चरित्रों के ज्ञाता सब शास्त्रों में प्रवीण बुद्धिमान् ज्ञानियों के चाहनेवाले हो मैं मानता हूं कि यह सब लोक आप की बुद्धि से व्याप्त है सब ओर से मुक्तहोकर विचरतेहुये किसी बन्धन में नहीं पड़ते और तुमको रजोगुण तमोगुण भी आधीन नहीं करसक्के हर्ष शोक से रहित तुम आत्मा की उपासना करते हो सब जीवों में समभाव शान्तचित्त तुम को देखकर तुम में मेरी बुद्धि दयालुतायुक्त उत्पन्न हुई है मैं ऐसे ज्ञानी को बन्धन दशा में कभी नहीं मारना चाहता हूं दयाही उत्तम धर्म्म है तुम में मेरी दया है और यह तेरी वरुणपाश समय के विपरीत होने में पृथक् होगी हे महाअसुर! प्रजाओं की अभाग्यता से तेरा कल्याण हो जब पुत्रवधू वृद्धसास को अपनी सेवा में प्रवृत्त करेंगी और पुत्र अपने पिता को अज्ञानता से काम करने को भेजेगा और शूद्र ब्राह्मणों से पैर धुलवावेंगे और ब्राह्मणी स्त्री को निर्भय होकर अपनी स्त्री बनावेंगे और उत्तम पुरुष अपने वीर्य को विपरीत योनि में डालेंगे और वर्णसंकर होजायँगे और कांसी के पात्रों से बलिकर्म होने लगेगा और चारों वर्ण बे मर्याद होजायँगे तब तेरा एक २ पाश क्रमपूर्वक देह से अलग होगा मुझ से तुझे कोई भय नहीं है समय को देखते हुये सुखी निर्विघ्न स्वस्थचित्त नीरोगतापूर्वक विचरो या जहां चाहो वहां रहो उससे ऐसे वचन कहकर देवेश इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर बड़ी प्रसन्नता से असुरों को विजयकर महाइन्द्र पदवी पाकर चलेगये और वहां सब देवताओं ने उसकी स्तुति की और देव ब्राह्मण आदि से पूजित स्वर्ग में इन्द्रासन को पाकर महा आनन्दयुक्त हुये ॥ ११९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह, राजा भीष्मजी ! ऐश्वर्यवान् होनेवाले और नष्टता को प्राप्त होनेवाले पुरुषों के जो मुख्य और प्रथम चिह्न हैं उनको आप मुझ से वर्णनकीजिये, भीष्मजी बोले कि तेरा कल्याण हो चित्तही से ऐश्वर्य होनेवाले और भ्रष्टहोनेवाले मनुष्यों के प्रथम चिह्नों को तुम से वर्णन करता हूं हे युधिष्ठिर ! इसस्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें कि लक्ष्मीजी और इन्द्र का संवाद है कि ब्रह्माजी के समान महातेजस्वी तपोमूर्त्ति श्रीनारदजी ब्रह्मलोकवासी ऋषियों की समानता में प्राप्तहोकर बड़े तप के तेज से गुप्त और प्रकट दोनों लोकों को देखते स्वेच्छाचारी हो तीनोंलोकों में घूमे, कभी प्रातःकाल उठकर पवित्रजल में स्नानकरने की इच्छा से ध्रुवजी के द्वार पर वर्त्तमान श्रीगंगाजी के तटपर पहुंचे और उस आकाशगंगा पर उतरे वहां देवऋषियों से पूजित पाकासुर और शम्बर के घाती वज्रधारी सहस्राक्ष इंद्रजी भी उस देवऋषियों से व्याप्त श्रीगंगाजी पर आये वहदोनों जितेन्द्रिय स्नान जप आदि क्रिया से निवृत्त होकर कंचन के समान उसनदी के रेत में किसी टापूपर बैठगये इस बात से सिद्ध है कि स्वर्गवासी लोग भी स्नान जप आदि कर्म करते हैं वहां बैठकर उन दोनों पवित्रात्माओं ने उत्तम कर्मवाले देवऋषि और महर्षियों की कहीहुई कथा को वर्णन किया और भूतकालीन कथाओं को कहते हुये वह दोनों सावधान हुये फिर उन दोनों ने हजारों किरणों से व्याप्त उदयहुये सूर्य्य को पूर्णमंडलयुक्त देखकर उठकर उपस्थान किया और उसी सूर्य्य के समीप अन्य सूर्य के समान एक ज्योति भी जो कि प्रज्वलित अग्नि के सदृश देदीप्यमान थी दृष्ट पड़ी वह गरुड़रूप सूर्य के ऊपर रचित चारोंओर से नियत विष्णु के समान उनदोनों के सम्मुख तीनोंलोकों को प्रकाशकरता किरणों से अनुपम देदीप्यमान थी उसके भीतर रूपवान् शोभायुक्त नाना अलंकारों से भूषित श्वेत माला पहरे कमलदल में वर्त्तमान साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी को देखा कि वह अपने उत्तम विमान में से उतरकर देवेश इंद्र और नारदजी के पास आई उन को देखतेही इंद्र और नारदजी हाथ जोड़कर खड़ेहोगये और बड़ी विधि से उनका पूजन करके इस वचन को कहा कि हे सुन्दरि ! तुम कौन हो और किस निमित्त यहां आई हो और कहां को जाओगी, लक्ष्मीजी बोलीं कि तीनों पवित्रलोकों में सब स्थावर जंगम जीव मेरे प्रकाश को चाहा करते हैं और मेरे लिये अनेक बुद्धियों से उपाय करते हैं सो मैं कमल में उत्पन्न होकर सूर्य की किरणों से संसार को व्याकुल देख उनके आनन्द देने को उत्पन्नहुई हूं जो कि मैं पद्मा श्री और पद्ममालाधारी लक्ष्मी भगवती हूं हे बलिध्वंसिन् ! मैंहीं श्रीलक्ष्मी, श्रद्धा, मेधा,

सन्निति विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, और मैंहीं तेरी विभूति हूं स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृति भी मैं हीं हूं मैंही विजयी राजाओं की सेनाओं की अग्रध्वजाओं पर धर्मशीलोंकी आश्रयस्थान देशपुरों में विजय से शोभित युद्धों में और मुख न मोड़नेवाले शूरवीर राजाओं के पास सदैव निवास करती हूं और बड़े बुद्धिमान् वेदज्ञ धर्मशील ब्राह्मणों के पोषण करनेवाले सत्यवक्ता गुरु के वचनों से कर्म करनेवाले दानशील पुरुषों के पास भी सदैव वर्त्तमान रहती हूं, और पूर्व समय में मैं सत्यधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले असुरों के पास नियत थी फिर उनको कुमार्गगामी जानकर तेरे पास रहती हूं, इन्द्र बोले कि हे सुमुखि! तुम कैसे चलनवाले दैत्यों के पास वर्त्तमान थी और फिर क्या देखकर तुम दैत्य दानवों को त्यागकर यहां आई लक्ष्मीजी बोलीं कि मैं धैर्यवान् अपने धर्म्म में दृढ़स्वर्गमार्ग में क्रीड़ा करनेवाले जीवों में प्रीतिमान् हूं दान, वेदपाठ, यज्ञ, पूजन, पितृ देवताओं का पूजन, गुरु अतिथियों का सत्कार और सत्यगुण वर्त्तमान होने से वही असुर बहुत शुद्ध स्थान रखनेवाले स्त्री से अजित हवन करनेवाले गुरुसेवापरायण जितेन्द्रिय वेद ब्राह्मणों के भक्त और सत्यवक्ता हुये और श्रद्धावान् क्रोधरहित दानी दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाले पुत्र मन्त्री और स्त्री के पोषण करनेवाले ईर्षा रहित थे कभी ईर्षा से परस्पर में इच्छावान् न हुये वह पण्डित अन्य के उत्कर्ष में कभी चित्त को म्लान नहीं करते थे दानी योग्य भेजलेनेवाले अच्छे बुरे अनाथ दुःखी आदि के ज्ञाता बड़ेपारितोषिक देनेवाले सत्यवक्ता दृढ़भक्त और जितेन्द्रिय थे नौकर और मंत्रीआदि के प्रसन्न रखनेवाले प्रियभाषी, सिद्धमनोरथी लज्जावान् और व्रतपरायण थे, सदैव पर्वों में तीर्थादिस्नान, दान, यज्ञ, धर्म्म करनेवाले चंदनादि सुगन्धित वस्तुओं से अंगशोभित करके व्रत और तप के अभ्यासी प्रसन्नचित्त और ब्रह्मवादी थे प्रातः काल के समय शयन नहीं करते और सोते में जिनके कभी सूर्य का उदय नहीं हुआ और रात्रि के समय जिन्हों ने दही और सत्तू नहीं खाया और ब्रह्मवादी हो प्रातःकाल घृत को देखकर घर से निकले और मंगली पदार्थों को भी देखा ब्राह्मणों का भी पूजन किया सदैव धर्म्मकर्त्ता और दान नहीं लिया और अर्द्धरात्रि पर शयन किया उसीप्रकार दिवस में कभी न सोये, दुःखी, अनाथ, वृद्ध, निर्बल, रोगी और स्त्रियों पर करुणा करते उनके भागों को सदैव विभाग किया और सदैव भयभीत उद्विग्न और व्याकुलचित्त भय से पीड़ित निर्बल असमर्थ दुःखीलोगों को और जिनका धन जातारहा उनको प्रतिदिन विश्वास कराते थे और धर्म्मही में प्रवृत्त एक दूसरे को नहीं मारते थे और गुरुवृद्धों की सेवाआदिकर्मों में आसक्तचित्त थे और सब बुद्धि के अनुसार पितृ, देवता, और अतिथियों के पूजक थे और सत्यता, तप, व्रत में प्रवृत्त होकर देवताआदि से शेषबचेहुये अन्न को और उत्तम

भोजन को भी अकेले नहीं खाते थे और अन्य की स्त्री के पास भी नहीं जाते थे और जीवों में ऐसे दया करते थे जैसे कि अपनी आत्मा में, और आकाश में पशुओं में, विपरीत योनियों में, और पर्वों में कभी वीर्यपतन नहीं किया, हे इन्द्र ! उनमें इनगुणों के विशेष दान करना, सावधानी और सीधेपने से उत्साह करना निरहंकार होना, उत्तम प्रीति, शांत, स्वभाव, पवित्रता, मृदुभाषण, मित्रों से द्रोह न करना इत्यादि अनेकबातें उत्तम थीं, मैं पूर्व समय में जीवों की उत्पत्ति के प्रारम्भ से बहुत से यज्ञों के विपरीत होने तक इस प्रकार के गुणवाले दानवों के पास वर्त्तमान रही, तदनन्तर समय की विपरीतता में उनके गुण विपर्य्यय होने से काम क्रोध लोभ के आधीनहोनेवाले असुरों की देहों से बाहर निकलनेवाले धर्म को मैंने देखा और बड़े बलवान् होने से अहंकारयुक्त होकर उन्हों ने वृद्धों की निन्दा की और कथापुराण कहनेवाले वृद्ध सभासदों का हास्य किया और अपने स्थानों में बैठेहुये उन पराक्रमियों ने पास आनेवाले वृद्ध सत्पुरुषों का सत्कारपूजन इत्यादि भी पूर्व के अनुसार नहीं किया और पिता के वर्त्तमान होने में पुत्र स्वामी होता था और स्वामी सेवकभाव को पाकर अपने को बड़े लज्जावान् प्रसिद्ध करते थे इसीप्रकार जो पुरुष धर्म से रहित निन्दित कर्म के द्वारा बड़े मनोरथों को प्राप्तकरते हैं वैसेही कर्मों में इन की भी इच्छा हुई और रात्रि के समय उच्चस्वर से अप्रियवार्त्ताओं को भी कहा तब अग्नि ने अपने प्रकाश को कम किया और पुत्रों ने पिता के विपरीत और स्त्रियों ने अपने स्वामियों के विपरीत कर्म को किया, और माता, पिता, वृद्ध, आचार्य्य, अतिथि, गुरु आदि का प्रतिष्ठापूर्वक मान सत्कार और बालकों का लालन न करके भिक्षा बलि से रहित आपही अन्न को भोजन करते थे अन्नादिक का विभाग न करके पितृ, देवता, अतिथि, ब्राह्मण और गौओं को न पूजकर भोजन करते थे उसी प्रकार उनके रसोइयां ने भी चित्त, कर्म, वाणी से पवित्रतापूर्वक काम नहीं किया फलेहुये धानों को कौवे और चूहों ने भोजन किया दूध उघड़ा रक्खा और जूठे मुख से असुरोंने घृत का स्पर्श किया, बालबच्चेवाली स्त्री ने कुदाल, दरान्त, बांस का पात्र जूठे कांसी के और पीतल आदि के पात्रादि सामान को नहीं देखा और गिरने के योग्य महल आदि की दीवारों को नहीं बनवाते थे और पशुजीवों को बांधकर घास जल आदि से पोषण नहीं करते थे जानबूझकर बालकों के भोजन को खाया और नौकर चाकर आदि को तृप्त न करके भोजन किया और केवल अपनेही निमित्त खीर, मोहनभोग, पूप, पूरी आदि अनेक पक्वान्नोंको बनवाया और देव पितरों के उद्देश विना मांस को भक्षण किया और सूर्यास्त के समय निद्रायुक्त हुये और प्रातःकाल सायंकाल सब समयों में शयन करनेलगे और घर २ में कलह वर्त्तमान हुई और नीचों में बैठ श्रेष्ठ पुरुषों की

उपासना त्यागकरदी और विपरीतधर्मी पुरुषों ने परस्पर में आश्रमीलोगों से शत्रुता की वर्णसंकर होगये किसी बातका शोच विचार नहीं रक्खा जो ब्राह्मण वेदज्ञ थे और जो प्रत्यक्ष में वेद नहीं जानते थे वह सब अत्यन्त प्रतिष्ठा और अपमान में अन्तररहित और मुख्यता से पृथक् हुये अर्थात् सब एक लाठी से हांकेगये और अनेक भूषण वस्त्रादि को अपमान से देखते थे स्त्रियों ने पुरुषों का और पुरुषों ने स्त्रियों का रूप धारण करके नानाखेलों में चित्त को लगाया, धन ऐश्वर्य्यों में प्रवृत्त असुरों ने नास्तिकता से पूर्व पूजा के योग्यों को देना बन्द किया कभी धन के संशय में मित्र से मित्रने भी मांगना प्रारम्भ किया और उस मित्र ने अपने प्रयोजन के लिये बड़े मूर्खों के समूहों में अपने धनको वृथा खोया, श्रेष्ठ वर्णों के मध्य में व्यापार करनेवाले मनुष्य दूसरे के धन मारलेने में इच्छा करते देखे और शूद्रलोग भी तपस्या करनेलगे और कितनेही पुरुष ब्रह्मचर्य्यव्रतके विना पढ़ते थे और कोई २ मिथ्याव्रत भी करते थे, शिष्य गुरुकी सेवारहित थे और कोई २ गुरु भी शिष्य के मित्र होगये और उत्साहरहित वृद्ध माता, पिता, पुत्रों से भोजन को चाहते स्वाधीन हुये और देवज्ञ और शान्तचित्त ज्ञानीलोग कृषिकर्म्मों को करनेलगे और मूर्खों ने श्राद्धों में भोजन किया गुरुकी आज्ञा शिष्यों ने नहीं की वहू ने सास श्वशुर के विद्यमानहोने में नौकरोंपर आज्ञा की, स्त्री ने पति पर हुक्मचलाया और पति को बुलवाकर आज्ञा देती थी पिता ने पुत्र के चित्त को बड़े उपाय से बचावकिया चोर और राजाओं ने धन को हरा पुण्यश्लोक ईश्वर के न माननेवाले और गुरु की स्त्री से प्रीति करनेवाले पापीमनुष्य और मित्र के पोषित भी होकर मित्र की निन्दा करनेवाले हुये, निषिद्ध वस्तुओं के खाने में प्रीति मान अमर्याद होने से तेज और प्रताप से हीन हुये विपरीत समय में इसप्रकारके आचरण करनेवाले उन असुरों के पास में निवास नहीं करती हूं और हे देवेन्द्र! तुम्हारे पूजने के पीछे देवता लोग भी सब मुझको पूजेंगे, जहां मैं रहूंगी वहां मुझसे विशेष मेरी बड़ी प्यारी और आज्ञाकारी सात देवी हैं और आठवीं जया नाम देवी है वह आठ रूपों से तेरे घर आवेंगी, उनके यह नाम हैं आशा, श्रद्धा, धृति, क्षांति, विजिति, सन्नति, क्षमा और हे इन्द्र! इनके आगे चलनेवाली आठवीं वृत्ति है यह सब और मैं असुरों को त्याग करके तुम्हारे देश में आई हूं हम उन देवताओं के पास निवास करेंगी जिनका अन्तरात्मा धर्म्मनिष्ठ है यह लक्ष्मी जी के वचन सुन देवऋषि नारदजी और इन्द्र ने उसकी प्रसन्नता के अर्थ अनेक स्तुतियों से आनन्द दिया तदनन्तर उस देवमार्ग में वायु का बड़ा वेग हुआ उस में नानाप्रकार की ऐसी सुगन्धियां थीं जिनसे देहकी सब इन्द्रियों को आनन्द होता था और बहुत से देवतालोग भी पवित्र स्थानों में निवास करते वर्त्तमान

हुये और लक्ष्मी जी के पास बैठेहुये इन्द्र के दर्शनों की लालसा करते थे फिर इन्द्र और नारदजी हरे घोड़ेवाले सुन्दर रथ में सवार होकर देवसभा को गये और इन्द्र की अंगचेष्टा को चित्त से विचारते देवल के देखनेवाले नारदजी ने महर्षियों समेत श्रीलक्ष्मीजी के आने की कथा को लक्ष्मी के अर्थ वर्णन किया फिर उस प्रकाशमान स्वर्ग से अमृत की वर्षा हुई और पितामह ब्रह्माजी के भवन में विना बजाये दुन्दुभी के शब्द हुये और दिशाओं में प्रकाश होगया इन्द्र ने ऋतु के अनुसार पृथ्वी पर वर्षा करी और कोई पुरुष धर्ममार्ग से न हटा और देवताओं की विजय से पृथ्वी उर्वरा और रत्नों की आकरों से शोभित हुई, यज्ञादिकर्मों में क्रीड़ा करनेवाले और पवित्रकर्मी पुरुषों के शुभमार्ग में सम्पूर्ण मनुष्य चित्त से प्रवृत्त हुये मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस बड़े धनाढ्य और अच्छे साहसी हुये; वायु से पृथक् होनेवाले वृक्ष से भी कभी बे समय पर फूल नहीं गिरा तो फल कैसे गिरे और किसी का वचन दुःखदायी और भयकारक नहीं हुआ, ब्रह्मसभा में वर्त्तमान ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले जो पुरुष सब मनोरथों के दाता इन्द्र आदि देवताओं से किये हुये लक्ष्मीजी के इस पूजन को पढ़ते हैं वह लक्ष्मी को पाते हैं हे युधिष्ठिर! जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने कहा अब तुम खूब विचार करके सिद्धांत के पाने के योग्य हो ॥ ९६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! किंसस्वभाव, आचार, विद्या और पराक्रमवाला मनुष्य उस ब्रह्मलोक को पाता है जो कि प्रकृति से परे और निश्चल है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्मों में सावधान अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष प्रकृति से परे अचल ब्रह्मलोक को पाता है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को सुनो जिसमें जैगीषव्य और असित देवल ऋषि का संवाद है, असित देवल ऋषि ने बड़े ज्ञानी धर्म्मशास्त्रज्ञ हर्षशोक से रहित जैगीषव्य से कहा कि हे अनघ! तुम न प्रसन्न होते न निन्दा से दुखी होते हो ऐसी तुम में क्या बुद्धि है और कहां से है और उसका मुख्यस्थान कौन सा है यह वचन सुनकर उस महातपस्वी ने देवल से वह वचन कहा जो कि संदेह से रहित बड़े सार्थक पदों से युक्त और पवित्र था कि हे ऋषियों में श्रेष्ठ! पवित्रकर्मी पुरुषों की जो गति, पराकाष्ठा, और शांति है उसको तुम से कहता हूं कि जो निन्दा और स्तुति करनेवाले मनुष्यों में एकभाव हैं और अपने ऐसे गुणों को वा नियम और कर्मों को गुप्त करते हैं वह निन्दा कियेहुये ज्ञानी लोग उस निन्दक को निन्दा के बदले उत्तर नहीं देते हैं और मारनेवालों को मारने के बदले मारना

नहीं चाहते और निष्प्रयोजन को नहीं शोचते और समय पर वर्त्तमान होने-वाले कर्मों को करके व्यतीत दशा को नहीं शोचते न प्रतिज्ञा करते हैं वह समर्थ और व्रतकरनेवाले ज्ञानी पुरुष पूजा के प्राप्त होने पर इच्छापूर्वक अर्थों में न्याय के अनुसार कर्मकर्त्ता होते हैं वह दृढ़विद्यावान् महाज्ञानी स्वभाव और चित्तके रोकनेवाले मन वाणी और कर्म से किसी समय भी अपराध को नहीं करते और ईर्षारहित हो परस्पर में मारपीट कभी नहीं करते वह पण्डित लोग दूसरे की वृद्धि आदि से कभी दुःखी नहीं होते हैं और न किसीकी अत्यन्त निन्दा और स्तुति को करते हैं और न कभी निन्दा स्तुति से विपरीत दशा को प्राप्त होते हैं वह शांतचित्त सब जीवों की वृद्धि चाहनेवाले न कभी क्रोध करते हैं न प्रसन्न होते हैं और कभी किसी समय पर भी अपराध नहीं करते हैं हृदय की गांठ को खोलकर सुखपूर्वक घूमते हैं जिनके कि बांधव नहीं हैं और न वह किसी के बांधव हैं अथवा न वह किसी के शत्रु न उनके कोई शत्रु हैं ऐसी वृत्तिवाले मनुष्य सदैव सुखपूर्वक जीवते हैं, हे ब्राह्मणोत्तम ! जो धर्मज्ञ धर्म में प्रवृत्त रहते हैं अथवा इस मार्ग से बाहर कियेगये हैं वह प्रसन्न होते हैं न चित्त से व्याकुल होते हैं मैं उस मार्ग में नियत हूं किसको किसप्रकार से निन्दा करूं निन्दा स्तुति से मेरी हानि लाभ कुछ नहीं है, तत्त्व का जानने-वाला ज्ञानी अपमान से ऐसा तृप्त होजाय जैसे कि अमृत से होता है और प्रतिष्ठासे ऐसा भय करे जैसे कि विष से करते हैं अपमान पानेवाला सुखसे सोता है और दोनों लोकों में निर्भय रहता है और सब दोषरहित होता है और जो अपमान करनेवाला है वह नष्ट होजाता है जो कोई ज्ञानी उत्तमगति को चाहते हैं वह इस व्रत को धारण करके सुख से वृद्धि को पाते हैं, जितेन्द्रिय पुरुष सब ओर से सब यज्ञों को प्राप्त करके ब्रह्मलोक को पाता है इस परमगति पानेवाले ज्ञानी के पद पर देव गन्धर्वादि कोई नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि पृथ्वीपर कौन सा मनुष्य सब संसार का प्यारा और जीवों का प्रसन्नकर्त्ता सब गुणसम्पन्न है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम ! मैं इस स्थानपर एक इतिहास तुमसे कहता हूं जिसमें नारदजी के विषय में श्रीकृष्णजी और उग्रसेन का संवाद है उग्रसेन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे केशवजी ! संसार नारदजी के कीर्त्तन को करता है और मैं भी मानता हूं कि वह गुणवान् हैं उनका वृत्तांत आप वर्णन कीजिये वासुदेवजी बोले कि हे राजन्, उग्रसेन ! मैं नारदजी के उत्तम गुणों को तुम से कहता हूं अर्थात् इस देह

का तपानेवाला अहंकार कुछ खेल के निमित्त नहीं है वह शास्त्र के अनुसार चरित्रों से युक्त है इसीकारण सब स्थानों में पूजित है नारदजी में अमित्रता, क्रोध, चपलता, भय इत्यादि नहीं हैं न उनमें दीर्घसूत्रता है वह बड़े उपासना के योग्य हैं काम या लोभ से इनके वचनों में कोई वे मर्यादगी नहीं है वह वेदांत की बुद्धि से सिद्धान्त के ज्ञाता शान्तचित्त समर्थ जितेन्द्रिय और सत्य-वक्ता हैं, तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, नम्रता, जन्म और तप से बड़े हैं इसीकारण सब स्थानों में पूजित हैं और उत्तमशीलवान् सुखरूप निद्रावान् श्रेष्ठ भोजन करनेवाले इच्छाचारी पवित्र प्रियभाषी और ईर्षा से रहित हैं वह बड़े कल्याण-कारी निष्पाप दूसरों के अनर्थों से अप्रसन्न वेद, श्रुति के आख्यानों से अर्थों को प्राप्त किया चाहते हैं क्षमावान् हैं और समान दृष्टि होने से कोई उनका प्रिय अप्रिय भी नहीं है चित्त के अनुसार वार्त्ता करनेवाले बहुत से शास्त्र और अ-पूर्व कथाओं के ज्ञाता पण्डित इच्छा और द्वेष से रहित उदारबुद्धि क्रोध लोभ से पृथक् हैं प्रथम धन की अभिलाषा में इनका मुख्यज्ञान नहीं हुआ इसीसे यह अत्यन्त निर्दोष हैं दृढ़भक्ति पवित्र बुद्धियुक्त शास्त्रज्ञ दयावान् और अज्ञान दोष से पृथक् हैं इसकारण सब स्थानों में पूजित हैं सब संगों में प्रवृत्तचित्त नहीं हैं और न आसक्तचित्त के समान दृष्टि आते बड़े संशय से रहित उत्तम वर्णन करनेवाले हैं इनकी समाधि कार्य के निमित्त नहीं हैं न किसी समय अपनी प्रशंसा करते हैं और हठ से रहित मृदु संभाषणकर्त्ता हैं इसी से सर्वत्र पूजित हैं, निन्दारहित लोक को नानाप्रकार की बुद्धियों को देखते संसर्ग विद्या में कुशल सब शास्त्रों की स्तुति करते अपनी इच्छापूर्वक निर्वाह करके सफल कालवान् और चित्त को जीतनेवाले हैं इन हेतुओं से सर्वत्र माननीय हैं परिश्रमी ज्ञानी समाधि से तृप्त न होकर सदैव योगी और सावधान हैं लज्जा-युक्त कल्याण के निमित्त दूसरों के कहने से काम में प्रवृत्त होते हैं और दूसरों के गुप्त भेदों को प्रकट न करनेवाले अर्थ लाभ से प्रसन्नतारहित और लाभ न होने में शोकदुःखरहित स्थिरबुद्धि संसार से विरक्त हैं इसी कारण वह सर्वत्र सब पुरुषों से माननीय हैं इन सब गुणसम्पन्न चतुर पवित्र नीरोग काल और अभीष्ट के जाननेवाले को कौन अपना मित्र और प्यारा न बनावेगा ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! मैं जीवों के आदि अन्त को और युग २ के ध्यान, कर्म, काल और अवस्था को और लोकतत्त्व अर्थात् लोक का वा-स्तवरूप वा आकाशादि पंचभूतों की उत्पत्ति और लय के स्थान को अत्यन्तता

से जानना चाहता हूं और यह भी निश्चय किया चाहता हूं कि यह उत्पत्ति और प्रलय कहां से होती है हे कौरवेन्द्र! जो आप की कृपा हमारे ऊपर है तो वर्णन कीजिये, प्रथम ब्रह्मर्षि भरद्वाजजी के सन्मुख भृगुजी के वर्णन किये हुए उत्तम ज्ञान से मेरी उत्तम बुद्धि योग धर्म्म मे निष्ठायुक्त दिव्यरूपवाली हुई इसी हेतु से फिर पूछता हूं आप विस्तार समेत कहने के योग्य हैं, भीष्मजी बोले कि, इस स्थान में एक प्राचीन इतिहास तुझ से कहता हूं जिसको कि भगवान् व्यासजी ने प्रश्न करनेवाले अपने पुत्र से वर्णन किया अर्थात् व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी ने सांगवेद और उपनिषदों को पढ़कर धर्म्म के पूर्ण दर्शन से नैष्ठिककर्मों की इच्छा करके कृष्णद्वैपायन व्यासजी जो धर्म्म अर्थ के निस्सन्देह ज्ञाता हैं उनसे पूछा कि सब जीवसमूहों का ईश्वर जो काल, ज्ञान, अविद्यासम्बन्धी रूप धारण करके जीव भी कहलाता है उसको और ब्राह्मणों के जो कर्म हैं उनको मुझ से कहने के योग्य हैं भीष्मजी ने कहा कि इस प्रकार से पूछे हुए धर्म्म अधर्म्म और ब्रह्म के ज्ञाता व्यासजी ने पुत्र शुकदेवजी से इस सब भूत भविष्य वृत्तान्त को कहा कि हे पुत्र! वह आदि अन्त रहित प्रकाशमान जरावस्था और रूपान्तर से पृथक् अविनाशी जैसे जीवों करके ईश्वर कहाजाता है वह अजन्मा तीनों कालों से पृथक् न जानने के योग्य ब्रह्म संसार की उत्पत्ति से प्रथम वर्त्तमान होता है, अब दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं कि पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त्त जो कि सूर्यसम्बन्धी कला के दशवें भाग से संयुक्त हो वैसे तीस मुहूर्त्त का एक दिन और रात होय यह प्रमाण मुनियों से नियत हैं और तीस रात्रि दिन को एकमास और बारह मास को एक वर्ष और गणितज्ञ पुरुष दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों के होने को वर्ष कहते हैं, सूर्य नरलोक में दिन रात को विभाग करते हैं रात्रि शयन करने को और दिन कर्म करने को है मनुष्यों का एक मास पितरों का एक दिनरात होता है फिर उन दोनों का यह विभाग है कि शुक्लपक्ष उनका दिन कर्म करने को और कृष्णपक्ष उनकी रात्रि शयन के निमित्त है और मनुष्य का एक वर्ष देवताओं का एक दिन रात है उन दोनों के यह विभाग हैं कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि है और पूर्व में जो मनुष्यों के दिनरात कहे उनके वर्षों की संख्या करके ब्रह्माजी के दिनरात को कहता हूं और सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के क्रम से दिव्य वर्षों को भी कहता हूं सतयुग चार हजार वर्षों का होता है और उसकी संध्या उतनेही सैकड़े अर्थात् चारसौ वर्ष की और संध्यांश भी चारसौही साल का है शेष बचेहुए संध्या और संध्यांशयुक्त तीनोंयुगों में हजार और सैकड़े में एक २ चरण अर्थात् चौथाई भाग कम होजाता है यह

वर्ष इन सदैव वर्त्तमान सनातन लोकों को धारण करते हैं हे तात ! यह काल नाम चार युग की सूरत आदि अन्त रहित जीवरूप चित्तरूप उपाधियों के योग से चार प्रकार का भी वास्तव में सर्व विकार से पृथक् ब्रह्मही है और ब्रह्मज्ञानियों का जाना हुआ है, सतयुग में चारोंचरण रखनेवाला सब धर्म सत्य वर्त्तमान होता है उसका कोई शास्त्र अधर्मयुक्त नहीं जारी होता है, दूसरे युगों में वेदोक्त धर्म एक चरण से कम होजाता है चोरी, निन्दा, मिथ्या और शठता आदि से अधर्म की वृद्धि होती है, सतयुग में मनुष्य नीरोग और सब मनोरथों के सिद्ध करनेवाले चारसौ वर्ष की अवस्थावाले होते हैं, त्रेतायुग में आयु का एक चरण कम होजाता है इस युग में वेद वचन युग के अनुसार नष्टता को प्राप्त होते हैं अवस्था आशीर्वाद और वेद के जो फल हैं वह भी न्यूनता को पाते हैं, सतयुग में औरही धर्म हैं इसीप्रकार त्रेता द्वापर आदि में भी पृथक् २ धर्म होते हैं, सतयुग में तप को प्रधान किया है त्रेता में ज्ञान उत्तम है द्वापर में यज्ञ को और कलियुग में केवल दान ही श्रेष्ठ रक्खा है पण्डित लोगों ने इन युगों की बारह हज़ार संख्या कही है उसकी हज़ार आवृत्ति को ब्रह्माजी का एक दिन कहते हैं और उतनीही रात्रि है इस दिन के प्रारम्भ में ईश्वर विश्व को प्रकट करता है और रात्रि के प्रारम्भ से प्रलय में प्रवृत्त ध्यानावस्थित होकर योग-निद्रा में होता है और उस निद्रा से रात्रि के अन्त में जागता है, जिन्हों ने ब्रह्माजी के दिन रात को युगों की हज़ार २ चौकड़ी जानी है वही दिनरात के जाननेवाले हैं, और हम लोगों में भी इसी उत्पत्ति और प्रलय को दिखलाते हैं, प्रलय के समय निद्रा से व्याकुल होकर ब्रह्माजी इस अविनाशी आत्मस्वरूप को विकारवान् करते हैं अर्थात् उससे अहंकार को उत्पन्न करते हैं और अहं-कार से व्यक्तात्मक चित्त को पैदा करते हैं, तात्पर्य यह है कि काल और आकाशादि चित्तरूप हैं और योगनिद्रा से जगने की दशा में उत्पत्ति और नाश होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

उनसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, जो ब्रह्म है वह सूक्ष्मवासनारूप और बीजरूप है क्योंकि इस अकेलेही से यह सब जड़चैतन्यात्मक जगत् उत्पन्न हुआ वह ईश्वर प्रातःकाल के समय जगकर महत्तत्त्वों की कारणरूप अविद्या से जगत् को उत्पन्न करता है उत्पत्ति से प्रथम महत्तत्त्व हुआ फिर वही शीघ्रता से व्यक्त-रूप चित्त वर्त्तमान होता है फिर उसी चित्तरूप कर्त्ता ने दूरगामी बहुत प्रकार से चलनेवाला संकल्पविकल्पात्मक होकर चैतन्य आत्मा को ढककर चित्त से

उत्पन्न होनेवाली सात वस्तुओं को उत्पन्न किया वही उत्पत्ति की इच्छा से चलायमान चित्त बहुत प्रकार की सृष्टि को उत्पन्न करता है उसी चित्त से आकाश उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द है रूपान्तर होनेवाले आकाश से वायु उत्पन्न हुआ वह सब सुगन्धियों का चलानेवाला पवित्र और पराक्रमी है उसका गुण स्पर्श है फिर उस रूपान्तर होनेवाले वायु से प्रकाशमान ज्योति हुई जिससे कि अग्नि उत्पन्न हुआ उसका गुण रूप है उस रूपान्तर प्राप्त होनेवाले तेजरूप अग्नि से रसात्मक जल उत्पन्न होता है, जल से गन्ध पृथ्वी और सब की उत्पत्ति कही जाती है, पहिले २ सब तत्त्वों के गुण पिछले २ तत्त्वों को प्राप्त करते हैं उन भूतों में जो भूत जितने कालतक जिस मार्ग से वर्त्तमान होता है वह भूत उतने समयतक उतने गुणवाला कहा जाता है यहां प्रथम आधे श्लोक में वर्णन होनेवाली दशा सूक्ष्मतत्त्वों में भी जानना चाहिये और स्थूल तत्त्वों में पंचीकरण के पीछे सब पांचों गुण वर्त्तमान होते हैं पंचीकरण यह है कि एक तत्त्व के दो भाग किये पहिला भाग तो उसी तत्त्व से सम्बन्धित रक्खे और दूसरे भाग के चार विभाग करके चारों तत्त्वों में मिला दियेजायँ यही विभाग पांचों तत्त्वों में करना चाहिये, जो कोई पुरुष जल में गन्ध जानकर अज्ञानता से कहै कि जल में ही गन्ध है तब जल और वायु में वर्त्तमान गन्ध को पृथ्वी में भी जाने, यह सात रूपयुक्त और पृथक् २ अनेक प्रकार के पराक्रमी सब मिलकर सृष्टि के उत्पन्न करने को समर्थ न हुये किन्तु परस्पर सब मिलकरही रक्षा करनेवाले हुए और सब ने अपने २ अंशों से शरीररूप को उत्पन्न किया इस कारण आत्मा पुरुष कहाजाता है अर्थात् पुर देह को समझो और जो उस देहरूप पुर में बसे वह पुरुष कहाता है इन स्थूल तत्त्वों के एकत्र होने से मूर्त्तिमान् देह उत्पन्न होता है यह देह सोलह वस्तुओं से बनता है वह सोलह यह हैं पंच भूत, चित्त, दश इन्द्रियां, सूक्ष्मतत्त्व, महत्तत्त्व, अहंकार यह सब और भोग से और शेष कर्म्म के संयोग से इस देह में प्रवेश करते हैं इस प्रकार से स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर के प्रवेश को कहकर उसमें जैसे चैतन्य का प्रवेश होता है उसको भी सुनो वह सब जीवमात्रों का स्वामी प्रथम सब देहों को लेकर तप करने के लिये उसमें प्रवेश करता है उस जीवरूप प्राप्त करनेवाले को प्रजापति ब्रह्म कहा वही जड़ चैतन्य जीवों को उत्पन्न करता है फिर वही ब्रह्माजी देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों को उत्पन्न करते हैं १४ लोक, नदी, समुद्र, दिशा, पर्वत, वृक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प आदि को उत्पन्न करते हैं अनाशवान् आकाशादिक और नाशवान् घट इत्यादि और सब जड़ चैतन्योंको पैदा करते हैं और उन सब जीवों के जो पिछले कर्म्म पूर्व देह के वर्त्तमान थे वही बारंबार उत्पन्न होनेवाले मनुष्य किन्नर आदि अपने उन्हीं कर्म्मों के फल को

प्राप्त करते हैं और हिंसात्मक पापों से रहित कठिन साधारण धर्म्म, अधर्म्म, सत्य, मिथ्या आदि गुणों के कारण जन्म लेनेवाले उनको पाते हैं इसहेतु से उनको वही अच्छा लगता हैं, महाभूत देह और इन्द्रियों के नानाप्रकार के भोजन और विषयों को ईश्वरही रचता है, कितने ही मीमांसा जाननेवाले पुरुषों ने कर्म्मों में पुरुष कीही सामर्थ्य को कहा है अर्थात् कर्म्मही प्रधान किया है और कितनेही लोग दैव प्रधान कहते हैं उनके मत से ग्रहही अच्छे बुरे फल के देनेवाले हैं और भूतचिन्तकों ने स्वभावही को प्रधान कहा है अर्थात् उपाय कर्म्म और दैव यह तीनों फलवर्त्ती स्वभाव से पृथक् नहीं हैं उनका जुदा २ मानना कोई विवेक नहीं है और कई मतवाले अपने २ मत के अनुसार कहते हैं परन्तु सिद्धान्त मत यह है कि जो पुरुष रजोगुण तमोगुण से रहित सम्परिज्ञात नाम दशा में अर्थात् यथार्थविचारावस्था में वर्त्तमान हैं वह यही सिद्धान्त देखते हैं कि ब्रह्मही सबका उत्पत्तिकारक है—अब ब्रह्मप्राप्ति के साधन और फल को ढाई श्लोकोंमें वर्णन करते हैं कि जीवों का तप ही मोक्ष का कारण है उसका मूल चित्त का और इच्छा का रोकना है उस योग से सब मनोरथों को प्राप्त करसक्ता है, तप से उस ईश्वर को पाता है जो कि जगत् को उत्पन्न करता है ब्रह्मभाव को पानेवाला वह योगी सब जीवों का स्वामी होता है, ऋषियों ने दिन रात्रि तपस्या करने के द्वारा वेदों को प्राप्त किया अर्थात् पूर्वजन्म में पढ़ेहुए वेदों को योगबल से प्राप्त किया और ब्रह्मा जी ने आदि अन्त रहित विद्या को ईश्वर से उपदेश पाकर शिष्यों की शिक्षा के द्वारा जारी किया, ऋषियों के नाम और वेदों में जो उत्पत्तियां हैं और जीवों का अनेकरूप होना और कर्म्मों का जारी होना इन सब बातों को उस ईश्वर ने वेद के शब्दों से उत्पत्ति की आदि में पैदाकिया वेदों में जो शुद्ध ऋषियों के नाम और उत्पत्ति हैं उनको वह अखिलात्मा ईश्वर अपनी रात्रि के अन्त में दूसरों के निमित्त विचार करता है अर्थात् वेद में भविष्य काल का वर्णन है, नाम, भेद, तप, कर्म्म, यज्ञ, आख्या, आलोक यह सब लोक की सिद्धियां हैं, आत्मसिद्धि, दश साधनसंपन्न वेदों में कही जाती है—अब अंतरङ्ग मोक्षसाधन को कहते हैं कि वेदोक्त कर्म्मों में जो कठिनता से प्राप्त होने के योग्य ब्रह्म वेददर्शी ब्राह्मणों से कहाहुआ और उन वेदोक्तकर्मों के अन्त में अर्थात् उपनिषदों में जिसप्रकार से वह ब्रह्म साफ २ कहागया है वह ब्रह्म कर्म्म योग के द्वारा दृष्टपड़ता है लक्षण के योग्य ब्रह्मस्वरूप को दिखलाते हैं, देह का अभिमान रखनेवाली जीव की द्वैतता कर्म से पैदा होनेवाली है अर्थात् कर्म्म के थकनेपर शयनदशा को समाधि नहीं कहसक्ते वह द्वैतता,सुख, दुःख,शीत, उष्ण आदि का जोड़ों से संयुक्त है और आत्मा की मोक्ष विज्ञान से है पुरुष विज्ञान के बल से त्यागकरता है, शब्दब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों जानने के योग्य हैं,

शब्दब्रह्म की पूर्ण उपासना से पुरुष परब्रह्म को पाता है अब दूसरों को निन्दा-युक्त करके प्रणव उपासना की प्रशंसा करते हैं, पशुहिंसायुक्त यज्ञों के करनेवाले क्षत्रिय लोग हैं और हवि से यज्ञ करनेवाले वैश्य हैं और तीनों वर्ण की सेवारूप यज्ञ करनेवाले शूद्रलोग हैं, ब्राह्मण तपरूप यज्ञ करनेवाले हैं परन्तु यह यज्ञों की रीति त्रेतायुगमें थी और सतयुग में नहीं होती थी क्योंकि सतयुग में स्वतः सिद्धि होजाती थी और द्वापर वा कलियुग में ऐसे यज्ञों में उपद्रव होते हैं द्वैतता से रहित धर्म रखनेवाले अर्थात् अद्वैत निष्ठा रखनेवाले लोग सतयुग में तपकोही करते हैं वह ऋग्, यजुः, साम वेदों को और फलयुक्त यज्ञों को विचार के द्वारा अनात्मारूप स्वर्ग आदि का देनेवाला देखकर योगमार्ग को ही अंगीकार करते हैं वह वेद और शास्त्र जड़ चैतन्य स्थावर जंगम जीवों के शिक्षा करनेवाले होते हैं आशय यह है कि त्रेतायुग में सतयुग के समान मनुष्यों की धर्म्म में प्रवृत्ति अपने आप नहीं होती, त्रेतायुग में वेद यज्ञ वर्ण और आश्रम दृढ़ हुए फिर वह द्वापरयुग में उमर की न्यूनता से नष्ट होते हैं कलियुग में सब वेद दृष्ट पड़ते हैं और नहीं भी दृष्टआते हैं वह वेद केवल अधर्म्म से पीड्यमान यज्ञों के साथ गुप्त होजाते हैं उस सतयुग में जो धर्म्म ब्राह्मणों में दृष्ट आता है वह धर्म्म अब भी चित्त के जीतनेवाले योगनिष्ठ वेदान्त और तपयुक्त वेदज्ञ ब्राह्मणों में नियत है इसकारण वह सतयुगरूप हैं, अब त्रेतायुग के व्यवहारको सुनो कि स्वधर्म्मनिष्ठ वैदिक ब्राह्मण वेदोक्त धर्म्म से व्रत और तीर्थयात्रा आदिको इच्छानुसार करते हैं और स्वर्ग की कामना से यज्ञादिक भी करते हैं और द्वापर में पुत्रादि की कामना से यज्ञ करते हैं और कलियुग में शत्रु के नाश की इच्छा से यज्ञ करते हैं, जैसे कि वर्षाऋतु में वर्षा के होने से स्थावर जंगम जीवों की वृद्धि होती है उसीप्रकार हरएक यज्ञ में धर्म उत्पन्न होते हैं और नाश को पाते हैं और जैसे नानाप्रकार के रूपवाले चिह्न ऋतु के बदलने में दृष्टआते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा और रुद्र आदि में उत्पत्ति और नाश की सामर्थ्य वृद्धि पाती है, चारोंयुग के रूप रखनेवाले पुरुष का अनेक प्रकार का होना और आदि अन्त रहित होना हमने प्रथमही तुम से कहा वही कालपुरुष सृष्टि को उत्पन्न करता है और मारता है, स्वभाव सेही जो सुख दुःख रखनेवाले चारोंप्रकार के जीव वर्त्तमान होते हैं उन सबका उत्पत्तिस्थान काल है वही काल उनको धारण और पोषण करता है और वही जीवरूप होता है अर्थात् आपही भूतात्मा है, उत्पत्ति, काल, क्रिया, यज्ञ, श्राद्धादि, वेद यज्ञादि का कर्त्ता, कार्य, क्रिया, फल यह सब कालात्मा पुरुष हैं हे पुत्र! जो तुम ने मुझ से पूछा वह सब मैंने वर्णन किया॥ ८५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

साठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि अब क्रम से प्राप्त होनेवाली प्रलय को कहता हूं अर्थात् दिवस के अन्त में और रात्रि के प्रारम्भ में कालात्मा ईश्वर में संसार लय होता है इसको सुनो कि जैसे ईश्वर इस संसार को आत्मासम्बन्धी कारण में नियत करता है उसीप्रकार आकाश में सूर्यनारायण अग्निसंयुक्त हो अपने तेज से इस संसार को भस्म करते हैं तब यह सम्पूर्ण संसार सूर्य्य और अग्नि की ज्वालाओं से अग्नि के समान संतप्त होता है पृथ्वी के सब जड़, चैतन्य, स्थावर, जंगम जीव तो प्रथमही नाश होजाते हैं अर्थात् पृथ्वी के समान रूप होजाते हैं तदनन्तर सब जीवों के नाश होने के पीछे वृक्ष तृण आदि से रहित पृथ्वी कछुये की पीठ के समान दृष्टपड़ती है जब जल इस पृथ्वी के गन्धगुण को आकर्षण करता है तब गन्धरहित पृथ्वी लयके योग्य होती है अर्थात् गन्धरूप कठोरता जाने से जल के समान होजाती है फिर यहां लहरें लेता और महाशब्द करता अमोघ जल ही जल होजाता है फिर अग्नि जलों के गुणों को आकर्षण करलेता है तब अग्नि गुण से जल अग्नि में उपराम पाता है अर्थात् अग्निरूप होजाता है जब अग्नि की ज्वाला आकाश में सूर्य्य को ढकती है तब यह आकाश ज्वालाओं से व्याप्त अग्नि के समान होजाता है फिर वायु अग्नि के गुण को आकर्षण करती है तब अग्नि शान्त होजाती है और वायु का बड़ा वेग होता है तब वायु अपने उत्पत्तिस्थान शब्दतन्मात्रा को पाकर नीचे ऊपर तिरछे दशों दिशाओं में चेष्टा करता है जब आकाश भी वायु के गुण स्पर्श को अपने में लयकरता है तब वायु शान्त होता है फिर शब्दगुणवाला आकाश वर्त्तमान होता है रूप, रस, गन्ध, स्पर्शरहित अरूपशब्दगुणवाला सबलोक में शब्द करनेवाला आकाश वर्त्तमान होता है शब्द आदि और स्थूलरूप सब वस्तुओं को प्राप्त और सूक्ष्मचित्त अपने से उत्पन्न होनेवाले शब्द को जोकि आकाशका गुण है अपने मेंही लयकरता है यह चित्त विराट्से सम्बन्धरखनेवाली प्रलय है अर्थात् विराट् चित्त से कल्पित है और उसी चित्त में लय होजाता है— अब सूत्रात्मा की प्रलय को कहते हैं—जब हमलोगों से सम्बन्ध रखनेवाला व्यष्टि चित्त उस अपने ज्ञानवैराग्यरूप में प्रवेश करके नियत होता है तब चन्द्रमा उस चित्त को लय करता है चित्त के लय होने और चन्द्रमा के नियत होनेपर पूर्व में जो ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रणव की उपासना कही है और भूत शुद्धि में भी ऊपर लिखेहुए क्रम से स्थूलतत्त्वों के समूहरूप विराट् को जो कि आकार का रथ है लय करके और सत्र आत्मा से स्थूल शरीर को विस्मरण करके केवल चित्तरूप नियत करे वह बन्धन से रहित चन्द्रमा नाम उकारार्थ से

संयुक्त ऐश्वर्य्यवान् होता है योगी उस चन्द्रमानाम समष्टि चित्त को जो कि उकारार्थवान् और संकल्परूप देह का रखनेवाला है उसको बहुत समय में अपने स्वाधीन करता है वह संकल्प चित्त को लय करता है और उस संकल्प को मकारार्थवाला अहं ब्रह्मास्मि नाम उत्तम ज्ञान लय करता है, अब दो श्लोकों में ईश का भी लय वर्णन करते हैं, काल विज्ञान को लय करता है काल को बलनाम शक्ति लयकरती है बल शक्ति को महाकाल लयकरता है उस महाकाल को विद्या लय करती है अर्थात् स्वाधीन करती है अब उस विद्या के क्रम को सुनो कि वह ज्ञानी आकाश के उस शब्द को आत्मा में लय करता है वह नाद का उत्पत्तिस्थान और परब्रह्म का लयात्मक गुप्त और प्राचीनतायुक्त सब से उत्तम है तात्पर्य यह है कि सब जीव उसके रूप हैं उनके लय होने पर ब्रह्म ही शेष रहता है इस प्रकार से परमात्मारूप योगियों ने समझाने के योग्य और विद्यारूप शिष्य शुकदेवजी को देखकर यह निस्सन्देह पूर्णज्ञान का वर्णन किया हे युधिष्ठिर! इस प्रकार उत्पत्ति, प्रलय, प्रणव, अखण्ड, ब्रह्म है इसीप्रकार हज़ार चौकड़ी के प्रारम्भ में दिन और बराबर होना वर्णन किया गया ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवां अध्याय ॥

अब सांख्ययोग के अधिकारी को कहते हैं—व्यासजी बोले कि जीवों के समूह में जो स्वामी है उसका वर्णन किया अब ब्राह्मणों के कर्मों का वर्णन करता हूं उसको सुनो कि जिस के जातकर्मआदि संस्कार और दक्षिणावाले कर्मों की क्रिया होवै वह समावर्त्तन कर्म करने से प्रथम वेदपारग आचार्य होनेपर सब वेदों को पढ़कर गुरु की सेवा में प्रीति करनेवाला यज्ञों का ज्ञाता गुरुओंसे अनृण होकर समावर्त्तन कर्म करे फिर वह पुरुष गुरुकी आज्ञा लेकर चारों आश्रमों में से एक आश्रम में बुद्धि के अनुसार देह की अवधि तक नियत होय और स्त्रियों के पास सन्तान की उत्पत्ति वा ब्रह्मचर्य से वन में या गुरुकुल में अथवा संन्यासधर्म से अपनी अवस्था को व्यतीत करे, यह गृहस्थाश्रम सब धर्मों का मूल कहाजाता है इस आश्रम में ऐसा जितेन्द्रिय पुरुष जिसके अन्तःकरण के दोष नष्टता को प्राप्त हुए सब स्थानों में सिद्धि को पाता है फिर सन्ततियुक्त वेदपाठी यज्ञकर्त्ता तीनोंऋणों से निवृत्त पवित्रकर्मी होकर दूसरे आश्रमों को प्राप्त करे और पृथ्वी पर जिस स्थान को चित्त से अत्यन्त पवित्र जाने वहां निवास करे उस स्थान में उत्तम परमात्मा की प्राप्ति का उपाय करे, ब्राह्मणों का यश, तप, यज्ञ, विद्या उनके दान देने से बढ़ता है जबतक इसलोक में इसकी कीर्त्ति यश की उत्पन्न करनेवाली होती है तबतक वह पुरुष अपने पुण्य से

अनेक लोकों को भोगता है वेदपढ़े और पढ़ावे, यज्ञकरे, करावे, निरर्थक दान न ले, न दे, जब यज्ञ करनेवाले यजमान और शिष्य से वा कन्या से भी जो बड़ा धन प्राप्त हो उससे यज्ञ और दान को करे और अकेला भोजन कभी न करे, देवता, ऋषि, पितर, गुरु और भोजन की इच्छा करनेवाले वृद्ध, रोगी और गुप्त शत्रु से दुःखी और सामर्थ्य के अनुसार ऐश्वर्यवान् होने की लालसा युक्त पुरुषों का इस कुटुम्ब के पोषण के निमित्त दानलेने के सिवाय और कोई उत्तम उपाय नहीं है धन की सामर्थ्य न होनेपर भी इनसबको लाभ से देना योग्य है क्योंकि पात्र और पूजन के योग्य पुरुषों को कोई वस्तु अदेय नहीं होती अर्थात् सब वस्तु देनी योग्य हैं यहां तक कि जो उच्चैःश्रवा घोड़ा भी होय वह भी सत्पात्र योग्य पुरुषों को देना योग्य है बड़े व्रतवाला सत्यसिन्धु अपने वांछित मनोरथ को प्राप्त करके अपने प्राणों से ब्राह्मण के प्राणों की रक्षा करके स्वर्ग को गया, रन्तिदेव और सांकृती यह दोनों महात्मा वशिष्ठजी के अर्थ शीतोष्ण जल देकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित हैं, अत्रिवंशी बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न भी पूजन के योग्य ब्राह्मण को अनेक प्रकार के धन देकर अनन्तलोकों को गया, औशीनर का पुत्र शिबि, अपने अंगों को और अत्यन्त प्यारे औरस पुत्र को ब्राह्मण की भेंट करके उत्तम लोक को गया, काशी का पति राजा प्रतर्दन अपने दोनों नेत्र ब्राह्मण को देकर इसलोक के सुख को भोगकर अब परलोक में आनन्द करता है देवावृध राजा सुवर्ण की बहुमोल्य आठ शलाका युक्त दिव्यछत्र को ब्राह्मण के अर्थ देकर अपने देश निवासियों समेत वैकुण्ठ में विराजमान है, अत्रिवंशी महा तेजस्वी सांकृती अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश करके सब से उत्तम लोकों को गया, महाप्रतापी राजा अम्बरीष ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गोदान करके देशवासियों समेत स्वर्ग को गया, सावित्री और राजा जनमेजय दोनों अपने कुण्डल और शरीर को ब्राह्मणों के अर्पण करके उत्तम लोक को गये, वृषदश्व का पुत्र युवनाश्व अपने सबरत्न और प्यारी स्त्री वा सुन्दर स्थानों को दान करके स्वर्ग को गया, राजा विदेह ने निमिदेश को और परशुरामजी ने पृथ्वी को और राजा पगय ने नगरों समेत पृथ्वी को ब्राह्मणों को दान में दिया, वशिष्ठजी ने वर्षा न होने से सब जीवों को ऐसा जीवदान दिया जैसे कि ब्रह्माजी सब को जीव से रक्षाकरते हैं, करन्धम का पुत्र रुतात्मा अपनी मरुतनाम कन्या अङ्गिरा ऋषि को देकर शीघ्रही स्वर्ग को गया, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ब्रह्मदत्तनाम पांचाल देश का राजा ने एकशंख धन उत्तम ब्राह्मणों को दान देकर उत्तम लोकों को पाया, राजा मित्रसह भी वशिष्ठजी के निमित्त दमयन्ती नाम प्यारी स्त्री को देकर उस समेत स्वर्ग को गया, राजा सहस्राजित राजर्षि ब्राह्मण के निमित्त अपने

प्यारेप्राणों को त्यागकर स्वर्ग को गया, राजा शतद्युम्न सब अभीष्टों से पूर्ण सुवर्ण के महल मुद्गल ऋषि को दान देकर के स्वर्ग को गया, द्युतिमान् प्रतापी राजाशाल्व अपने देश और राज्य को ऋचीक मुनि को दान देकर उत्तम लोक को गया, लोमपाद राजर्षि अपनी शान्तानाम पुत्री को शृङ्गीऋषि के अर्थ दान करके सब मनोरथों से पूर्ण हुआ, मदिराश्वराजा अपनी सुन्दरी कन्या को हिरण्यहस्त ऋषि को देकर देवताओं से पूजित लोक को गया, बड़ा तेजस्वी राजा प्रसेनजित सवत्सा लक्ष गोदान करके उत्तम लोकको गया, यह और अन्य बहुत से महात्मा जितेन्द्रिय बुद्धिमान् राजा दान और तप के द्वारा स्वर्ग को गये; उनकी कीर्त्ति तबतक रहैगी जब तक कि पृथ्वी नियत है इनसबों ने दान यज्ञ और सन्तान के उत्पन्न करने के द्वारा स्वर्ग को प्राप्तकिया ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

बासठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि वेदों में वर्णन की हुई तीनप्रकार की विद्या को ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण वेद के अक्षर और अंगों से विचार करे छओं ऐश्वर्य और कर्म्मों में प्रवृत्त परमेश्वर इन वेद आदि में नियत है जो पुरुष वेदवचनों में कुशल ब्रह्मविद्या में पूर्ण बुद्धिमान् महाभाग हैं वह उस उत्पत्ति लय के स्थान ईश्वर को देखते हैं इसीप्रकार धर्म से कर्मकरे और उत्तम पुरुषों के समान क्रिया को करे, सत्पुरुषों से विज्ञान प्राप्तकरनेवाला श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जीवों के विना दुःखदिये अपनी जीविका को करे, जो सतोगुण में नियत और लोक में अपने धर्म से क्रियाकर्म को अच्छेप्रकार से सिद्धकरनेवाला है वह गृहस्थी ब्राह्मण उन छःकर्म्मों में नियत होता है, वह श्रद्धावान् बुद्धिमान् सावधान जितेन्द्रिय धर्म्मज्ञ ज्ञानीब्राह्मण बराबर पांचयज्ञों से पूजनकरे हर्ष क्रोध अहंकार से रहित ब्राह्मण पीड़ा नहींपाता है दान, वेदपाठ, यज्ञ, तप, लज्जा, शान्तचित्त इनसबगुणों के प्रत्यक्ष से तेज की वृद्धिकरता है और पाप को दूर करता है पापरहित धारणा बुद्धि का स्वामी अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष कामक्रोध को जीतकर ब्रह्मपद को प्राप्तकरे और अग्नि ब्राह्मण देवताओं को प्रणामकरे, और अकल्याण रूप वचन और अधर्मयुक्त हिंसा को त्यागकरे यह प्राचीन समय से प्राप्तहोनेवाली वृत्ति ब्राह्मण की कही जाती है, वेदान्त शास्त्र से कर्मों को करता हुआ कर्मों में सिद्ध होता है, बुद्धिमान् पुरुष पंचेन्द्रियरूप जल लोभरूप किनारे क्रोधरूप कीचवाली दुस्तर नदी को तरता है वह अत्यन्त मोहनेवाली सदैव सब ओर से वर्त्तमान काल और होनहार में दृष्टपड़नेवाले अविनाशी बड़े पराक्रम में भरे कर्म को देखे, स्वभावरूप नदी से उत्पन्न होनेवाला विस्तृत संसार पूर्वोक्त पराक्रम से

बराबर मोहाजाता है, वह नदी वर्षरूप घेरेवाला बड़ाजल रखनेवाली है जिसमें महीना तरंग—ऋतु वेग—पक्ष लता और तृण हैं, पलक खोलना और बन्द करना फेण और रात्रि दिन जल हैं काम घोर ग्राह और वेद यज्ञ इत्यादि उसमें नौका हैं, धर्म द्वीप हैं और जीवों का अर्थ काम यह जल की गम्भीरता है, सत्यवचन कहना किनारा है वह नदी हिंसारूप वृक्ष की बहानेवाली है वह ब्रह्म से प्रकट होती है इसनदी के द्वारा जीव यमलोक में खेंचलिये जाते हैं, बुद्धिमान् धैर्यवान् पुरुष इसनदी को ज्ञानरूप नौकाओं से सदैव पार होते हैं और ऐसी नौका न रखनेवाले अज्ञानी क्या करसक्ते हैं इससे यही युक्ति से सिद्धहुआ कि सिवाय ज्ञानी के दूसरानहीं तरसक्ता क्योंकि ज्ञानीसबस्थान पर दूरसेही गुणदोषों को देखता है, वह निर्बुद्धि अज्ञानी चलायमान चित्त कामात्मा पुरुष इस सन्देह को नहीं तरता है और जो वर्त्तमान हैं वह नहीं जाता है, नौका न रखनेवाला अज्ञानी पुरुष बड़े दोष को पाता है और कामरूप ग्राह के पंजे में फँसेहुये इस पुरुष को ज्ञान भी नौका नहीं है, इसकारण सावधान मनुष्य इस नदी से पार होने के लिये बड़ा उपायकरे इसका तरना यही है कि ब्राह्मण होजाय अर्थात् महात्माहोजाय, और शुद्ध पुरुषों में संस्कारों के साथ उत्पन्नहोनेवाला तीनोंवेद का ज्ञाता तीनकर्म का अर्थात् कर्म, उपासना, ज्ञान का करनेवाला है इसीहेतु से नदी से निकलने के उपाय में प्रवृत्तहोवे जैसे कि ज्ञान से पार होते हैं, संस्कारयुक्त जितेन्द्रिय सावधान चित्त ज्ञानी की सिद्धि इसलोक परलोक दोनों में होती है, किसी के गुणमें दोष न लगानेवाला क्रोधरहित गृहस्थी इन कर्मों में प्रवृत्तहो विघसान्नभोजी होकर सदैव पंचयज्ञों से पूजनकरे और सत्पुरुषों के आचरण क्रियायुक्त अहिंसापूर्वक निन्दारहित जीविका को करे, जो शास्त्र और विज्ञान की मुख्यता का ज्ञाता श्रेष्ठाचरण बुद्धिमान् अपने धर्म्म से क्रियावान् है वह भी कर्म के द्वारा संकरधर्म को नहीं करता है, क्रियावान्, श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, अन्य में दोष न लगानेवाला, धर्म्माधर्म्म का विवेकी, सब प्रकार से पारहोता है धैर्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, बुद्धिमान्, हर्ष, शोक, क्रोध, अहंकार से रहित ब्राह्मण भी अचेत नहीं होता है, यह ब्राह्मण की प्राचीन वृत्ति है कि ज्ञानभाव से कर्मों को करताहुआ सबस्थानों में सिद्धि को पाता है—इस लोक में धर्म का आकांक्षी अज्ञानी अधर्म को करता है अथवा वह शोचता हुआ अधर्मरूप धर्म को करता है और अधर्म को करके कहता है कि मैं धर्म करता हूं और अधर्म का चाहनेवाला धर्मकरता है दोनोंकर्मों को अच्छे प्रकार से न जानता वह देहाभिमानी निर्बुद्धि जन्म को लेता है और मरता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

तिरसठवां अध्याय॥

व्यासजी बोले कि पूर्वकहे हुए साधन के पीछे जो पुरुष नीचे लिखीहुई शान्तिनाम कैवल्य मोक्ष को स्वीकारकरे वह ज्ञानी ज्ञानरूप नौकारखनेवाला है धैर्य्यवान् और ध्यानजन्य साक्षात् कर्त्ता से निश्चय पानेवाले पुरुष ज्ञानरूप नौकाओं के द्वारा अज्ञानियों को तारते हैं और अज्ञानी किसी प्रकार से दूसरे को नहीं तारसक्के न आपतरसक्के, रागादि दोषों से रहित स्त्री आदि के संग से पृथक् मुनियोग के बारह सहायकों का सेवनकरे, प्रथम १ कंकड़, बालू, अग्नि इत्यादि दोषरहित निर्विघ्न शुद्धदेश में आसन जमावे–दूसराधर्म्म २ आहार, विहार, कर्म्म, सोना, जागना सामान्यहो–तीसराधर्म्म ३ अच्छेशिष्य हों, योग्य धन, सामर्थ्य के अनुसार उपाय, रागादि से पृथक्ता, गुरु और वेद के वचनों में विश्वास, नेत्रआदि इन्द्रियां, शुद्धआहार, स्वाभाविक विषय, प्रवृत्ति का संकोच, संकल्प विकल्पात्मक चित्त, जन्म मृत्यु जरारोग इत्यादि दोषों का दर्शन इनबारह पर इच्छावान् मुक्ति का चाहनेवाला पुरुष ध्यानकरे और मन, वाणी को बुद्धि से स्वाधीनकरे इससे उत्तमज्ञान प्राप्तहोता है–इसप्रकार बारह गुणों से युक्त अधिकारी को जो करनायोग्य है उसको कहते हैं कि ज्ञान से आत्मा को स्वाधीन करे इससे उसकी शान्ति अर्थात् कैवल्य मोक्ष होगी, अब योगफल को कहते हैं कि इनका साक्षी जो शान्त आत्मा है, उसी रूप की प्राप्त करनेवाला पुरुष या महापुरुष अथवा अविद्या असमता आदि पांचक्लेशों से शोधित हो वह इसरीति से महाअगम्य जरामृत्यु रूपसागर को तरता है, इस प्रकार इसयोग से जिसका फल शान्तानाम मोक्ष की प्राप्ति है आत्मा को परमात्मा में मिलाता ज्ञान की इच्छा करनेवाला भी शब्दब्रह्म को उल्लंघन कर कर्म्मकर्त्ता होता है अर्थात् परोक्षज्ञानवाला भी अपने कर्म्म त्याग से उत्पन्न होनेवाले दोषों को नहींपाता है, जिसरथ के सारथी के बैठने का स्थान यज्ञादिक धर्म्म है और श्रम वरूथ है और उपाय आसन और रागादि से पृथक्ता है अपान अश्वहै-प्राण युग है-प्रज्ञा आयु है-जीव बन्धन है-शीलता उसकी नेमि है अर्थात् चक्रधारा है–देखना, स्पर्शकरना, सूंघना और सुनना उसरथ के चारों घोड़े हैं शम, दम आदि गुणों में कुशलता उसकी नाभि है शास्त्र उसका चाबुक है और शास्त्रार्थ का निश्चय उसका सारथी है क्षेत्रज्ञ के अधिकार में नियत पराक्रम में पूर्ण श्रद्धा और चित्त की स्थिरता का धारण करनेवाला, त्यागी, नौकरों पर आज्ञा करनेवाला, मोक्ष का चाहनेवाला शुद्धमार्ग गामी, ध्यान गोचर और जीव से मिलाहुआ दिव्यरथ ब्रह्मरूपलोक में विराजमान है, वचन आदि से सावधान पुरुष उनधारणाओं को प्राप्तकरता है जो कि संख्या में सात

हैं इन सातों धारणाओं से इन्द्रिय और बुद्धि की धारणा अधिक हैं वह दोनों अहंकार में वर्त्तमान हैं, क्रमवाली बुद्धि के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अहंकार और अव्यक्त के ऐश्वर्य को प्राप्तकरता है पांव से जंघातक पृथ्वी का स्थान है और जंघा से लेकर गुदातक जल का स्थान है और गुदा से लेकर हृदय तक अग्नि का स्थान है और हृदय से भृकुटी पर्यन्त वायु का स्थान है और भृकुटी से मस्तक के अन्ततक आकाश का स्थान है पृथ्वी में लकार (ल) अक्षर के संयुक्तवायुको नियत करके संसार के कर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी को पांचघड़ीतक धारणा करके ध्यान करना इससे पृथ्वी विजयहोती है, जल के स्थान में (व) वकार अक्षर से संयुक्त प्राण को नियत करके पवित्रस्थान में पीताम्बरधारी शुद्ध स्फटिक के समान विष्णुजी को स्मरण करता पांचघड़ी धारणा करे उसधारणा के द्वारा सब इच्छाओं से निवृत्तहोता है, अग्नि में (र) रकार अक्षर से संयुक्त प्राण को नियत करके तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान तीन नेत्र रखनेवाले वरदाता भस्मधारी आनन्दमूर्त्ति रुद्रजी को स्मरण करता पांचघड़ी धारण करे वह अग्नि से भस्मनहीं होता है, वायुमण्डल में (य) यकार अक्षर और ईश्वर से संयुक्त प्राण को पांचघड़ी धारणकरे वह वायु के समान आकाश में चेष्टा करनेवाला होता है, आकाश में प्राण को नियत करके (ह) हकार अक्षर के ऊपर बिन्दुरूप आकाश स्वरूप महादेव आकाश में नियत चित्त से सदाशिवजी का ध्यान करे और एकमुहूर्त्ततक धारणाकरे यहां लकार आदि बीजों के स्थान पर क्रम से अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दु को नियतकरे इससे अव्यक्त धारण में छठवां नाद है उसके सन्मुख शुद्धब्रह्म शेषरहता है इसी प्रकार यहां भी प्रणव के द्वारा तीन २ प्राणायामों से ब्रह्मा आदि कार्य रूपों को अपने २ कारण में लयकरके अत्यन्त चित्तशुद्धि से नादके पास परमेश्वर को देखो और अहंकार की यह धारणा है कि स्थूलदेह से असंगहोकर यह सब मैंही हूं यह अभिमानहोना अहंकार की धारणा कहलाती है, "तत्त्वमसि" आदि वचनसे उत्पन्न होनेवाली विद्या के विना इस अहंकार की धारणा का लोपहोना अव्यक्त धारणा है युक्तिसे योग में प्रवृत्त योगियों के मध्य में जिसयोगी के नीचे लिखेहुए अनुभवकर्म्म जिसरीति से प्रकट होते हैं उसको और अपनी देह के भीतर ध्यान करनेवाले योगी की योगसम्बन्धी पृथिव्यादि सिद्ध्यर्थक नाम सिद्धि को वर्णन करता हूं प्रथम अनुभव कर्म्मों को कहताहूं जैसे कि गुरु की बताईहुई युक्ति से स्थूलदेह के अध्यास को त्यागकर सूक्ष्मता से आत्मा के लिखेहुए रूपों को देखता है उसीप्रकार देह से मुक्तपुरुष का पहिलारूप प्रकट होता है अर्थात् जैसे उस धुयें के गुप्त होने से दूसरारूप दर्शन जलरूप आकाश में होता है उसीप्रकार योगी अपने देह के भीतर देखता है जल के रूपान्तर में इसका

अग्निरूप प्रकाश करता है उस अग्नि के लय होनेपर वह वायु जो शत्रुरूप हो वृक्षस्थान पर्वतादिकों को भी भक्षण करता है प्रकाश करता है उसका रूप मकड़ी के तार के समान निराधार प्रकाशमान है, फिर वह योगी वायुजित होकर वायुसम्बन्धी सूक्ष्म श्वेत शुद्धस्वरूप को प्राप्तहोता है भृकुटियों के मध्य से लेकर मस्तक के अन्ततक आकाश का स्थान है उसमें मिलकर और लय होकर नीलरूप आकाशमात्र फहले के समान प्रकाश करता है जोकि मुक्ति की इच्छाकरनेवाले पुरुष के चित्त को शुद्ध करनेवाला शास्त्र ने वर्णन किया है, इनके शुद्धहोने पर जो फल उत्पन्नहोते हैं वह मैं तुम से कहता हूं, यहां शुद्ध होनेवाले योगी के पार्थिवऐश्वर्यों से यह संसार ऐसे धारण और पालन किया-जाता है, जैसे कि ब्रह्माजी देह के सब हाथ पांव आदि अंगों से सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, वायु के गुण को प्राप्त करनेवाला अकेला योगी पृथ्वी को चलायमान करता है और आकाशरूप को प्राप्त करनेवाला सबस्थानों में वर्त्तमान होने से आकाश में प्रकाश करता है और स्वरूप से गुप्तहोजाता है अर्थात् अरूपता से अन्तर्द्धान शक्ति को भी प्राप्त करता है, अब जल के जीतने के फल को कहते हैं कि वह जल रूप को प्राप्त करनेवाला योगी इच्छा से वापी कूप आदि को भी पीजाता है इसके तेजों का रूप दृष्टि नहीं पड़ता है और शान्तता को भी प्राप्तहोता है जो ऊपर लिखेहुए क्रम से पांचों तत्त्वों की विजय न हो तो भी अहंकार को विजय करने से पांचों स्वाधीन होजाते हैं, पांचों तत्त्व और छठे अहंकार के विजय होने से आत्मा रूप बुद्धि में ऐश्वर्य्यवान् सात धारणा होती हैं इस योगी को संशय विपर्यय से रहित पूर्णज्ञान प्राप्तहोता है, उसीप्रकार बुद्धि आदि रूप आत्मा को ब्रह्मभाव से जानता है, यहलोक जिस हेतु से ब्रह्मरूप को भूल जाता है उसीकारण से इसका व्यक्त नाम होता है, इस स्थान पर तुम उस विद्या को जिसमें अव्यक्त प्रधान है मुझ से ब्यौरेवार सुनो कि योग और सांख्य शास्त्र में पच्चीस तत्त्व कहेहुए हैं वह महत्तत्त्व से लेकर विकारों पर्यन्त तेईस तत्त्वों के समूह को व्यक्त कहते हैं जो उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, वृद्ध इन चार लक्षणों से संयुक्त हैं और जो इससे विपरीत अर्थात् जन्म वृद्धि आदि से रहित है उसको अव्यक्त कहते हैं और सांख्य शास्त्रवाले एकही जीव को प्रत्येक देह में पृथक् २ मानते हैं इस कारण उसकी मुख्यता को कहता हूं, दोनों जीव ईश्वर वेदों में और सिद्धान्तों में ब्रह्मरूप कहे गये जीव तो कार्य की उपाधि है और ईश्वर कारण की उपाधि है इस श्रुति के अनुसार जीव ईश्वर के विभाग को कहते हैं कि व्यक्त नाम जीव को चार लक्षण की उपाधि रखनेवाला और उन चारों वर्गों का इच्छावान् कहते हैं और ईश्वर को माया से ढका हुआ कहते हैं इसी प्रकार वह दोनों का च्युत अच्युत नाम है अब श्रुति के अनुसार

जीव ईश्वर के भेद को कहते हैं, यह दोनों जीव, ईश्वर, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ नाम श्रुति से दिखाये गये हैं, वेदों में दोनों को आत्मा कहा है, विषयों में प्रीति करनेवाले की ओर से उत्पत्ति क्रम के विपरीत घट आदि विषयों को लय करना चाहिये तात्पर्य यह है कि अज्ञानियों की ही समझ से जीव ईश्वर का मुख्य भेद है परन्तु ज्ञानियों की बुद्धि से वह दोनों बिम्ब और प्रतिबिम्ब के समान हैं इससे प्रतिबिम्बरूप जीव के लय होनेपर चिह्नमात्रही शेषरहता है, इसप्रकार तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त पुरुषों के लक्षणों को कहते हैं, समता और अहंकार से पृथक् सुख दुःख आदि योगों से रहित पुरुष जिसके कि सब संशय कटगये वह क्रोध नहीं करता है और शत्रुतारहित होकर न मिथ्या वचन कहता है, न किसी को शाप देता है और कठोर वचन, हिंसात्मक कर्म और चित्त से दूसरे की बुराई इन तीनों को त्याग करता है, सबजीवों में समदर्शी ज्ञानी ईश्वर की ओर तदाकार होजाता है इच्छावान् भी अनिच्छावान् है अर्थात् केवल शरीर के निर्वाह के लिये दूसरे विषयों को त्याग करके मुख्य विषय में वर्त्तमान है, निर्लोभ पीड़ा रहित जितेन्द्रिय कर्म्म से निवृत्त और पूर्ण वस्त्र से युक्त देह होता है इसकी इन्द्रियां इकट्ठी होती हैं और सत्यसंकल्प होता है सब जीवों का मित्र सुवर्ण मृत्तिका को समान माननेवाला धैर्यवान् प्रिय अप्रिय और निन्दा स्तुति को बराबर जाननेवाला सब मनोरथों से अनिच्छावान् ब्रह्मचर्य्य का दृढ़ व्रतरखनेवाला हिंसारहित वेदान्ती मुक्त होता है, योग के द्वारा जिन हेतुओं से मुक्त होते हैं उनको समझो कि जो योग के ऐश्वर्य्य को उल्लंघन करनेवाला होजाता है वह मुक्त होता है सांख्य वा योग दोनों फल में समान हैं इसको वर्णन किया इस प्रकार करने से निर्द्वन्द्व हो ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, सांख्य और योग के मध्य में सांख्य ही कल्याणकारक है इसको वर्णन करते हैं कि इस संसारसागर में गोते खाता और उछलता ध्यानीपुरुष ज्ञानरूप नौका को पकड़कर अपनी शान्ति अर्थात् मोक्ष के कारणरूप ज्ञान कोही आश्रय करे, शुकदेवजी बोले कि, मैं उसज्ञान को समझना चाहता हूं कि वह प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म है वा निवृत्तिवाला है जिसप्रकार कि दोनों जन्म मरण को बराबर तरता है उसी प्रकार उसको भी वर्णन कीजिये, इस स्थान में "अहंब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं इस अनुभव के होनेपर जड़ अहंकार और उसका प्रकाश वर्णन कियेजाते हैं वह दोनों आत्मा हैं यह भट्टों का वर्णन है, अहंकार का अर्थही आत्मा है प्रकाश उसका गुण है वह भी

तीनक्षण नियत रहनेवाला है यह तर्कशास्त्रवालों का सिद्धान्त है और आत्मा ही सदैव प्रकाशमान है अहंकार का अर्थ आत्मानहीं है यह सांख्य मत वालों का सिद्धान्त है आत्मा और अनात्मा में अनात्मा नियत है और देह के नाश में चिदात्मा का नाश होजाता है यह बौद्धलोगों का मत है, आत्माही सत्य है अनात्मा मिथ्या है यह वेदान्तवादियों का सिद्धान्त है और दोनों नहीं हैं यह शून्यवादी कहते हैं इससे आत्मा का अभाव होने में ज्ञान निरर्थक हो जाय इसनिमित्त उसमें दोषलगाने को व्यासजी बोले कि जो पुरुष अहंकार आदि को विना आत्मभाव के प्रकाश करनेवाला देखता सब शिष्यों को जिनकी युक्तियां ज्ञान से रहित हैं इसप्रकार के ज्ञान से उपदेश करके तृप्तकरता है वह अज्ञानी है, अब आत्मा के नाशनाम बौद्ध के सिद्धान्त को दोष लगाते हैं कि जिन बौद्धों के पूर्णनिश्चय के साथ स्वभावही कारण मानागया अर्थात् दहीआदि का कारण दूध है न कि अदृष्ट ईश्वर की कृपा है क्योंकि प्रत्यक्ष में वह नहीं दिखाईदेती इसस्थानपर कहते हैं कि वह बौद्ध मूंज को शुद्धकर उसके भीतर वर्त्तमान पहिले न देखीहुई सींक को भी नहीं पाते हैं क्योंकि मूंज में वर्त्तमान सींक भी दृष्ट नहीं पड़ती है अथवा द्वितीय पाठ में देह से पृथक् आत्मा को कहते हैं कि वेद में लिखा है कि आत्मा को देह से भिन्न ऐसे जाने जैसे कि मूंज में सींक होती है, इस वेद वचन को ऋषियों के सन्मुख सुनकर कुछ तत्त्व को नहीं पाते हैं किन्तु आचार्यों की उपासना न करनेवाले आपही ऐसी कल्पना करते हैं, स्वभाव से ही शून्य में संसार की भ्रांति है और स्वभाव से ही देहादि की उत्पत्ति है यह दोनों पक्ष भी निरर्थक हैं इसको कहते हैं—जो अल्प बुद्धि मनुष्य इसपक्ष का आश्रय लेकर और स्वभाव को कारण जानकर वर्त्ताव करते हैं वह कल्याण को नहींपाते हैं, मोह से उत्पन्न जो चित्त है उससे पैदा होनेवाला स्वभाव नाशवान् है आपस्वभाव सत्ता का कारण है यह एकपक्ष हुआ और अपना और दूसरों का भाव कारण है यह दूसरा पक्ष है, इन दोनों का न कहनाही सिद्धान्त है इसलोक में कृषिकर्मादि में खेती का काटना, सवारी, आसन और घर बुद्धिमान् से विचार कियेगये आशय यह है कि जो स्वभावही कारण है तो इसदशा में बुद्धि की चतुरता निष्फलहुई, ज्ञानियों के आज्ञाकारी ज्ञानी पुरुषही क्रीड़ास्थान घर और रोगों की औषधि को तय्यार करने वाले हैं, बुद्धि अर्थों से संयुक्त करती है और कल्याण करती है इसीसे बड़े २ अर्थों को भोगनेवाले राजालोग राज्यकरते हैं, जीवों से श्रेष्ठ चैतन्यआत्मा और माया को ज्ञानही से जानते हैं हे पुत्र ! विद्या से उत्पन्न होनेवाले जीवों के लयहोने का स्थान विद्याही है, इसप्रकार बुद्धिरूप उत्पत्ति और लय को कहकर व्यवहार को कहते हैं नानाप्रकार के सबजीवों के इन अण्डज, स्वेदज, जरायुज,

उद्भिज के चारोंप्रकार की उत्पत्ति को देखे और विचारकरे, जंगमजीवों को स्थावर जीवों से उत्तमजाने जो इन जड़ चैतन्य जीवों में चेष्टा होती है उन को बड़ी रक्षा से मुख्यतादेवे अर्थात् वृक्षआदि में देखना और सुनना आदि सिद्ध होता है परन्तु कभी प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं आते और वह गुण चेष्टावान् मनुष्यादि में प्रकट हैं इसकारण वह उनसे उत्तम हैं, चैतन्यजीवों के बहुत से पैर और दो पैर कहे बहुत पैरवालों से दो पैरवाले उत्तम हैं दो पैरवाले भी दो प्रकार के हैं एक पृथ्वीपर रहनेवाले दूसरे नभचारी उनमें पृथ्वी के रहनेवाले उत्तम हैं वह अन्नों को भोजन करते हैं वह पृथ्वी के दो पैरवाले भी दो प्रकार के हैं मध्यम और उत्तम उनमें जातिधर्म्म के धारण करने से मध्यम उत्तम हैं मध्यम भी दो प्रकार के हैं धर्म्मज्ञ, और अधर्म्मज्ञ, उनमें योग्यायोग्य कर्म्म के जानने से धर्म्मज्ञ उत्तम हैं, धर्म्मज्ञ पुरुष भी दो प्रकार के हैं वेदज्ञ और अवेदज्ञ, उनमें वेदज्ञ श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनमें वेद प्रतिष्ठावान् है वेदज्ञों के भी दो भेद हैं वेदार्थज्ञाता, और अज्ञाता, उनमें वेदार्थज्ञ सब धर्म्मों के धारण करने से उत्तम है जिनके द्वारा वेद में धर्म्मयज्ञ और फल विदित होते हैं क्योंकि सब वेदधर्म्मों के साथ वेदार्थज्ञाताओं से जारी कियेगये, अब उत्तमों का निर्णय करने को मध्यमों में भी उनकी गणना कराते हैं, वेदार्थ जाननेवालों को दो प्रकार का कहा, आत्मज्ञानी और अनात्मज्ञानी उत्पत्ति और नाश के जानने से आत्मज्ञानी उत्तम हैं जो पुरुष दोनों धर्म्मों को जानता है वह सर्वज्ञ और ब्रह्मज्ञानी है वह संन्यासीही सत्य संकल्प, पवित्रात्मा और ईश्वर है, देवताओं ने उस ब्रह्मज्ञान में नियत वेद शास्त्रों में, पूर्ण परब्रह्म में निश्चय करनेवाले को ब्राह्मणजाना है हे तात! ज्ञानी पुरुष उस दूसरे के चित्त में बाह्याभ्यन्तर नियत को अध्यग और अधिदैव समेत देखते हैं वही ब्राह्मण और देवता हैं यह विश्व उनमें प्रकट हुआ है और वर्त्तमान है अर्थात् वहसब उनके आधाररूप हैं उनके माहात्म्य की समानता किसी से नहीं होसक्ती वह ब्रह्मरूप सबप्रकार से श्रेष्ठ अन्त में मृत्यु और कर्म्म को उल्लंघन करके सब चारप्रकार की सृष्टि के ईश्वर हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पैंसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि जो पुरुष विना आत्मज्ञान के दान तप आदि कर्म्म को हज़ारों वर्षतक करता है वह दान आदि नाशवान् होता है इसकारण आत्मा का आकांक्षी उसकी प्राप्ति के लिये कर्म्मकरे, यह प्राचीनवृत्ति ब्राह्मण की कही जाती है और ज्ञानीपुरुषही सब स्थानोंपर कर्म्मों को करता है और सिद्धि को पाता है, जो इसकर्म्म में निस्संदेह हो ऐसीदशा में कर्म करना सिद्धि के ही

निमित्त होता है चाहै वह कर्म स्वभाव है अर्थात् नित्य है, अथवा ज्ञान उत्पन्न करने से सफल है इससंदेह के होने पर जो ब्राह्मण की ओर से उस पुरुष को ज्ञान उत्पन्न करनेवाला कर्म उपदेश कियाजाय तब वह वेद बुद्धि होजाती है अर्थात् आत्मज्ञान के लिये जो कर्म कियेगये उनसे भी सिद्धि होती है इन ईप्सित और अनीप्सित कर्मों की मुख्यता को सुनो कि बहुत से मनुष्यों ने इस जन्म और पिछले जन्म के कर्मों को कारण कहा है कोई दैव को कोई स्वभाव को कारण कहते हैं इस वर्णन से मीमांसक कालवादी शून्यवादी और बौद्धों के मतों को कहकर उनके विकल्प और समुच्चय को कहते हैं कि दृष्टादृष्ट, उपाय कर्म और दैव यहतीनों कालवृत्तियां शोभा से पृथक् २ हैं अर्थात् उन में एकही प्रधान है दूसरा कोई नहीं है उन के समुच्चय को कहते हैं, अब आर्हत मत को सुनो कि जीवों के अनेक प्रकार होने का क्या कारण है इसको कहें कि इसप्रकार का है सो नहीं कहसक्ता क्योंकि यह वाणी के विषय से दूर है तो यह भी इसप्रकार से नहीं कहसक्के क्योंकि वह वाणी के विषय से पृथक् नही है, और दोनों हैं यह भी नहीं कह सक्के और यह भी नही कहते कि वह दोनों कर्म दैव नहीं हैं क्योंकि दोनों से पृथक् कारण नहीं है वह आर्हित मतवाले सत्त्वस्थ नाम हैं, रजोगुण तमोगुण से पृथक् अन्तःकरणवाली संप्रज्ञात दशा में नियत होकर योगी ब्रह्म को कारणरूप देखते हैं, त्रेता द्वापर में और कलियुग में मनुष्य संदेह रखनेवाले होते हैं सब यज्ञों में तपस्वी तीनोंवेद ऋग् यजुः में भी भेद न देखनेवाले सब आदमी कामद्वेप रहित होकर तपस्या को करते हैं इसीकारण जो पुरुष तपधर्म युक्त सदैव तपनिष्ठ और श्रेष्ठ व्रत रखनेवाला है वह सब इच्छाओं को प्राप्त करता है, तप से उस ब्रह्म को पाता है जो ब्रह्मस्वरूप होकर संसार को उत्पन्न करता है, वह ब्रह्मरूप होनेवाला सब जीवमात्र का स्वामी होता है, वह ज्ञान क्या है, विद्या या कर्म से उत्पन्न होनेवाला या नाशवान् आत्मा इन में से पिछला स्वभाव के अपमान करने से त्याग किया है पहले में प्रमाण को दिखाकर मध्यवाले को त्याग करते हैं वह ब्रह्म कर्मकाण्डों में भी कहा है तो भी अज्ञात रहा, फिर वेददर्शियों ने वेदान्त शास्त्रों में विद्या से प्राप्त होनेवाले उस ब्रह्म को प्रत्यक्ष वर्णन किया वह ब्रह्म कर्मयोग में दृष्ट नहीं आता अर्थात् भृंगीकीट के न्याय से ब्रह्म की उपासना के द्वारा ब्रह्मभाव की प्राप्ति कहना उचित नहीं है, हिंसात्मक यज्ञ करनेवाले क्षत्रिय और हव्य से यज्ञ करनेवाले वैश्य और सेवारूप यज्ञ करनेवाले शूद्र और जपरूप यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण कहे हैं, ब्राह्मण जप यज्ञादि कर्म से ही निवृत्त होता है जप के विशेप दूसरा कर्मकरे या न करे क्योंकि ब्राह्मण (मैत्र) वर्णन कियाजाता है अर्थात् सबका मित्र कहा जाताहै, त्रेतायुगके प्रारम्भमें केवल वेद, यज्ञ, वर्ण और आश्रम थे यह द्वापर

युग में अवस्था की न्यूनता से प्रकारता को प्राप्त करते हैं वह वेद द्वापर और कलियुग में उपद्रवता से कलियुग के अन्त में दृष्ट आते हैं और नहीं भी आते हैं वहां अधर्म से पीड़ित अपने धर्म नाश होजाते हैं गौ, पृथ्वी, जल और सिद्धियों के जो रस हैं वह भी नष्टता को पाते हैं, वेद, वैदिकधर्म, और आश्रम अधर्म से गुप्त होजाते हैं, आश्रम दानलेने से स्थावर जंगम वस्तु लाभ के लिये बेंचीजाती हैं जैसे कि वर्षा सब पृथ्वी के जीवों को प्रसन्न करती है उसी प्रकार वेद प्रत्येक यज्ञ में सब ओर से वेदपाठियों के योगांगों को प्रकट करते हैं, जो सत्य यज्ञ आदि का रूप धारण करनेवाला जीवात्मा है उसका नानाप्रकार का होना निश्चय किया है कि वह आदिअंत रहित है और जो प्रथम मैंने तुझ से कहा वही सृष्टि को उत्पन्न करता है तात्पर्य यह है कि जीव तत्पदार्थ से पृथक् नहीं है, जो यह जीवों की उत्पत्ति और लय का स्थान है वही सबका स्वामी और अन्तर्यामी है, सुख दुःखादि से रहित बहुत से जीव ब्रह्मभाव से उसी में वर्त्तमान होते हैं, कालही उत्पत्ति, धैर्य, वेद, क्रिया का कर्त्ता और क्रियारूप है हे तात! जो तैंने पूछा वह सब मैंने कहा ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छयासठवां अध्याय ॥

अब सांख्य और योग के अन्तर को छयासठ और सड़सठ अध्याय में वर्णन करते हैं ॥

भीष्मजीबोले कि हे युधिष्ठिर! इसप्रकार महर्षि व्यासजी से सुनकर श्रीशुकदेवजी ने उनके वचनों की प्रशंसा करके मोक्षधर्म के सम्बन्धी इस प्रश्न को व्यासजी से पूछा कि बुद्धिमान् वेदपाठी यज्ञकर्त्ता ज्ञानी और परनिन्दारहित पुरुष उस ब्रह्म को कैसे पाता है जो कि वेद और प्रत्यक्ष अनुमानों से भी जाना नहींजाता है और जिस युक्ति से पुरुषों को चित्त और इन्द्रियों की अविकारता प्राप्त होती है उसको भी आप वर्णन कीजिये, व्यासजी बोले कि कोई पुरुष विद्या, तप, इन्द्रिय निग्रह और सर्व त्याग किये विना किसी प्रकार से सिद्धि को प्राप्त नहीं होसक्ता है, सब महाभूत प्रथम ब्रह्माजी की उत्पत्ति अथवा जीवों की उत्पत्ति से पृथक् हैं वह जीवात्माओं के समूह के मध्य देहाभिमान रखनें वाले अज्ञानीजीवों में बहुतप्रविष्ट हैं अर्थात् इनअज्ञानियों ने उनको आत्मारूप मानरक्खा है, पृथ्वी से देह, जल से रस, अग्नि से नेत्र, व्यान वायु प्राण, अपान में आश्रित है और देह के कर्णादि छिद्रों में आकाश वर्त्तमान है, योग के मत से आत्मा भोक्ता है कर्त्ता नहीं है, और सांख्य के मत से न भोक्ता है न कर्त्ता है उन में से पहले को दूसरे का सिद्धान्त रूप प्रकट करने को दोष लगाते हैं कि पाद इन्द्रिय में विष्णु, पान इन्द्रिय में इन्द्र, उनको कर्म्म में प्रवृत्त करने

वाले नियत हैं, जिसप्रकार राजा के रथआदि के पास युद्धकर्त्ता वर्त्तमान हों वहां युद्धकर्त्ताओं में वर्त्तमान जिसप्रकार हारजीत को और रथ में वर्त्तमान वृद्धि और हानि को अभिमान से राजा अपने में नियत करता है उसीप्रकार चैतन्य आत्मा देवता और इन्द्रियों में वर्त्तमान भोक्तापन आदि को अज्ञान से अपने में नियत करता है कि मैं भोगी आदि हूं जैसे कि नौकर में उसका अभिमान न होने से हारजीत नहीं होती उसी प्रकार विष्णु आदि में भोग भी नहीं है आत्मा में उसका दृष्ट पड़ना अज्ञान से है इस वर्णन से आत्मा का कर्त्ता और भोक्ता न होना निश्चय हुआ स्थानरूप दोनोंकानों में दिशा देवता और श्रोत्र इन्द्रिय और जिह्वा में वाक् इन्द्रिय औरउसकी देवता सरस्वती देवी वर्त्तमान है, दोनों कान, त्वचा, दोनों नेत्र, जिह्वा और पांचवीं नाक यह इन्द्रियां दर्शन आदि विषय प्राप्त कराने के लिये द्वार हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन विषयों को सदैव इन्द्रियों से पृथक्जाने चित्त इन्द्रियों को अपने २ कर्म्म में ऐसे प्रवृत्त करता है, जिसप्रकार सारथी अपने अधिकार में नियतहोकर घोड़ों को चलाता है उसी प्रकार हृदय में नियत जीवात्मा सदैव चित्त को कर्म्म में प्रवृत्तकरता है जैसे चित्त इनसब इन्द्रियों का ईश्वर है उसी प्रकार इस चित्त के उत्पत्ति और नाश में जीवात्मा समर्थ है,इन्द्रियां उनके विषय, स्वभाव, बुद्धि की वृत्ति, चित्त, प्राण, अपान और जीव सदैव जीवों की देह में वर्त्तमान रहते हैं बुद्धि का आश्रय जो पहिले देह को कहा वह भी नहीं है क्योंकि वह देह भी स्वप्नदशा के समान है फिर उसका आश्रय और स्वरूप क्या है, मूल प्रकृति ही उस अपनी रूपान्तर रखने वाली शब्दमात्र स्वरूपवाली बुद्धि का आश्रय है, चिन्ता उस बुद्धि का स्वरूप और आश्रय नहीं है चाहे गुण बुद्धि केही धर्म्म हो परन्तु यहपुरुष सात्त्विकी और राजसी है उसकी उपाधि से संयुक्त पुरुष में यह कहना सम्भव है इस शंका को कहते हैं—तेज बुद्धि को उत्पन्न करता है गुणों को नहीं करता है इससे वह आदिरहित वासना बुद्धि का कारण है गुण नहीं है यह सात्त्विकी है यह कहना परम्परा से भी होता है, जो चित्त को स्वाधीन करनेवाला है वह ब्राह्मण देह में सत्रहवीं चैतन्य आत्मा को जो कि सोलहगुण संयुक्त है चित्त के द्वारा बुद्धि में देखता है, यह आत्मा आंख और सब इन्द्रियों से भी देखने के योग्य नहीं है, यह बड़ा आत्मा प्रकाशमान चित्त के द्वारा प्रकाशकरता है, उस शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से रहित अविनाशी स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म देहों से पृथक् इन्द्रिय रहित आत्मा को मरण धर्म्मवाले शरीरों में देखे, जो पुरुष मरण धर्म्मवाले सब देहों में नियत अव्यक्त आत्मा को गुरु और वेद के वचनों के अनुसार देखता है वह देहत्याग के पीछे पूर्ण ब्रह्मभाव के निमित्त कल्पना किया जाता है, पण्डितलोग गौ, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल और विद्या कुल शिष्य आदि रखने

वाले ब्राह्मण में ब्रह्म कोही देखते हैं, वही अकेला बड़ा आत्मा जिससे यह सब संसार उत्पन्न हुआ है सब स्थावर जंगम जीवों में निवास करता है, अब योग फल को कहते हैं जब भूतात्मा जीव जीवमात्रों में आत्मा को देखता है अर्थात् यह सब मैंहीं हूं यह अनुभव करता है और सबजीवों को आत्मा में देखता है तब वह ब्रह्मभाव को पाता है, वेदवचन अपने स्वरूप में देशकाल से जितने रूप वाला है उतनाही जीव अपने स्वरूप में है क्योंकि वेद में लिखा है कि ब्रह्म जहांतक कि नाना प्रकार के रूपों से वर्त्तमान है उतनाही वेदवचन हैं जो पुरुष सदैव इस प्रकार से जानता है वह अविनाशी होने को कल्पना किया जाता है, जो सबजीवों का आत्मा और हितकारी हुआ उस अव्यक्त मुक्त पुरुष के मार्ग को देवता भी निश्चय करते २ मोह को प्राप्तहोते हैं जैसे आकाश में पक्षियों का और जल में जलजीवों का मार्ग दृष्ट नहीं पड़ता उसीप्रकार ज्ञानमार्ग है, अर्थात् प्रकृति का जितना सामान है वहसब क्रम से लयहोकर अचल वा अनन्त आत्मा बाकी रहजाता है फिर उसका क्या मार्गहोगा, काल अर्थात् जीवात्मा सबभूतों को आप अपनी आत्मा में लयकरता है और जिसपरमात्मा में वह काल रूप जीवात्मा लयहोता है उसको यहां कोई नहीं जानता है, वह परमात्मा ऊंचे नीचे तिरछे बायें दाहें नहीं है न कोई वस्तु है न यह कहसक्ते कि वहकहां से और कहांतक है तात्पर्य्य यह है कि किसी मुख्य स्थान का प्राप्त होना मुक्ति नहीं है यह सब संसार के लोग मुक्ति स्वरूप के मध्य में वर्त्तमान हैं इनलोकों के मध्य में कोई स्थान उससे बाहर नहीं है जो प्राप्त करने के योग्य हो, अगर धनुष से निकलेहुये बाण के समान बराबर चलाजाय तो भी ब्रह्म की सन्निकटता को नहीं प्राप्त होसक्ता और जो चित्त के समान शीघ्रगति हो तो भी उस सूक्ष्म से सूक्ष्म नहीं है न इससे कोई स्थूल से स्थूल है, वह सब ओर हाथ, पैर, आंख, शिर, मुख, कानयुक्त लोक में सबको ढककर वर्त्तमान है वही लघु से भी लघुतम है और वृद्धों का वृद्ध है सबजीवों में वर्त्तमान दृष्ट नहीं आता है, यह आत्मा का भाव क्षर अक्षर के नामसे दो प्रकार का है वही क्षर सब स्थावर जंगम जीवों में वर्त्तमान है और अक्षर भी दिव्य और अमृतरूप है और सब जड़चैतन्य जीवों का ईश्वर है सब उपाधि दोषों से रहित अचल आत्मा नवद्वारवाले पुर को पाकर हंसरूप होजाता है वह नवद्वार यह हैं महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, अविद्या, कर्म्म, पुर को प्राप्तहोकर हंसरूप इस प्रकार से होता है कि तत्त्वज्ञानियोंने अजन्मा परमेश्वर के देह में वर्त्तमान और उन महत्तत्त्व से सम्बन्ध रखनेवाले गति दुःख आदि और मनुष्य हैं वा पशु हैं यह कल्पना है इनबातों के इकट्ठहोने से हंसभाव को कहा, इस प्रकार आत्मा से क्षर अक्षर की उत्पत्ति और अक्षर के द्वारा क्षर की गति आदि को कहकर तत्त्वमसि वाक्य

की सिद्धि के साथ ज्ञानी की उपाधि न होने से उसकी गति का न होना वर्णन करते हैं कि जो जीवनाम अक्षरहंस शब्द करके कहागया वहरूपान्तर दशा से रहित अविनाशी ब्रह्महो है इस कारण ज्ञानी हंस उसरूपान्तर दशा से रहित परमात्मा को पाकर प्राण और जन्म को त्याग करता है ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सड़सठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि इसप्रकार सांख्यतत्त्व को कहकर योगियों का कर्म्म वर्णन करते हैं कि हे श्रेष्ठ पुत्र ! यहां सांख्यज्ञान से संयुक्त जो यहज्ञान मैंने तुमसे कहा सो सांख्यशास्त्र से उत्तम दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है फिर योगकर्म वर्णन करने से क्या प्रयोजन है यह शंका करके योग मत में ज्ञान शब्द के अर्थ को कहते हैं सब इन्द्रिय और चित्तबुद्धि की ऐक्यता और सर्वव्यापी आत्मा का ज्ञान यह श्रेष्ठ है यहज्ञान चित्त के जीतनेवाले निष्ठावान् आत्मा में प्रीतिमान् तत्त्वज्ञ, शास्त्र, यम, नियम आदि युक्त पुरुष से जानने के योग्य है, जो कि योग के पांचों दोषों को जिनको पण्डितों ने वर्णन किया है नाश करके जानसक्ता है वह पांचों यह हैं कि काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न, शान्तता से क्रोध को और संकल्प के त्यागने से काम को जीतता है और बुद्धि के विचार से धैर्यवान्पुरुष स्वप्न को और अपने धैर्य्य से लिंग उदर और दुष्टकर्म्मों से रक्षाकरे और हाथ पांव को नेत्र के द्वारा और नेत्र कानों को स्त्री आदि के देखने से और मनवाणी को यज्ञादि से भय को सावधानी से और कपट वा शठता को ज्ञानियों के सत्संग से रक्षाकरे; सावधान पुरुष सदैव इस प्रकार इनयोग के दोषों को विजयकरे और अग्नि ब्राह्मण का पूजन करे देवताओं को नमस्कारकरे और हिंसायुक्त चित्तके बिगाड़नेवाले काम प्रधान वचन को त्यागकरे, ब्रह्मज्ञान सेही मुक्ति प्रसिद्ध है केवल बुद्धि केही विरोध से मुक्तिनहीं होती यह शंका करके ब्रह्मशब्द के अर्थ को कहते हैं—बीजरूप प्रकाशमान सतोगुण प्रधान जो महत्तत्त्व है वही ब्रह्म है उसीब्रह्म का यह सब सारभूत है इसभूत का दृष्टकरनाही सब जड़चैतन्यों का प्रकटहोना है, ध्यान, वेदपाठ, सत्यता, श्रम, शुद्धभाव, संतोष, पवित्रता, बाहर भीतर से आचारनिष्ठ, शांतचित्त इनगुणों से तेज की बड़ी वृद्धिहोती है, और पाप निवृत्त होता है और सब इच्छा पूर्णहोकर तत्त्वज्ञान प्राप्तहोता है और राग द्वेष रहित अनायास प्राप्तिसे तृप्त निष्पाप तेजस्वी अल्पाहारी जितेन्द्रिय पुरुष काम क्रोध को आधीन करके महत्तत्त्व का लयस्थान प्रकृति को आधीनकरे वह सावधानचित्त इन्द्रियों को एकाग्र करके अर्थात् चित्त को विषयों से हटाकर बुद्धि में धारण करे अर्थात् संकल्परूप चित्त को रोके, इन्द्रियों के न रोकने में

दोषों को कहते हैं जो इस पांचइन्द्रिय रखनेवाले जीवात्मा की एकइन्द्रिय छिद्र रूप हो उसछिद्र से उसकी शास्त्रजन्य बुद्धि ऐसी गिरती है जैसे मशक से जल गिरता है, योगी पुरुष प्रथम चित्त को ऐसे आधीनकरे जैसे कि मत्स्यघाती जाल तोड़नेवाली मछली को करता है—तदनन्तर यती हो इन सब चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण आदि को रोककर चित्त में नियतकरे, और संकल्पों को त्याग करके चित्त को बुद्धि में धारणकरे, और पांचोंइन्द्रियों को चित्त में धारणकरे जब यह पांचों इन्द्रियां और छठामन बुद्धि में नियतहोते हैं और नाशवान् स्वरूपहोकर संकल्प से उत्पन्नहोनेवाली प्रवृत्ति को त्यागकरते हैं, तब ब्रह्म प्रकाशकरताहै, जहां आत्मा सूक्ष्मरूप बुद्धि में दृष्टपड़ता है वहां सब रूप सर्वव्यापीहोने से दिखाई देता है, उसको वह महात्मा ब्राह्मण देखते हैं जो कि बुद्धिमान् धैर्यवान् महाज्ञानी सब जीवों की वृद्धि में प्रवृत्त हैं, इसप्रकार श्रेष्ठनियमवाला योगी नियत समय में कर्म्मकरता और एकांत में अकेलाबैठाहुआ शुद्ध आत्मस्वरूप की ऐक्यता को प्राप्तहोता है—अब योग के विघ्नों को कहते हैं, बड़े मोह भ्रम इनदोनों को स्पर्श करनेवाला विषय दिव्यगन्ध का प्राप्तकरना, सुनना, देखना, अपूर्वरस, स्पर्श, शीत, उष्ण, वायु के समान शीघ्रगामीपने को और योगबल से सब शास्त्रों के अर्थ का ज्ञान दिव्यस्त्रियों के भोग आदि को पाकर वह तत्त्वज्ञानी उनको भी तुच्छ समझकर बुद्धिमेंही लयकरे आशय यह है कि बुद्धि से कल्पितहोने पर उनका लयबुद्धिमें भी होना उचितहै जितेन्द्रिय मुनि शिखर पहाड़, दृढ़मूलवाले वृक्ष अथवा अन्यवृक्ष के नीचे आसन जमावे और तीनोंकाल योग का अभ्यासकरे, जैसे पात्रों का चाहनेवाला मनुष्य पात्रों की रक्षाकरता है उसीप्रकार एकाग्रता करनेवाला इन्द्रियों के समूह को हृदय कमल में नियत करके सदैव ध्यानकरे और योग से चित्त को भयभीत न करे, जिसयुक्ति से इस चंचल चित्त को वशमें करे उसीको सेवनकरे और तद्रूपहोकर उससे चलायमान न हो, वह सावधान योगी निवास के लिये जीवों से रहित पहाड़ीगुफा और देवताओं के मकान और उजड़े स्थानों को प्राप्त करे और दूसरे का संग कर्म्म वचन चित्त से भी न करे उदासीन वृत्ति स्वल्पाहारी और हानिलाभ में और निन्दास्तुति में एकचित्त रहै लाभ में प्रसन्न न हो हानिमेंशोच न करे वायु के समान सबजीवों में समान धर्मीहोवे, इसप्रकार सावधानचित्त साधु समदर्शी सदैव योग में छःमहीने तक प्रवृत्त मनुष्य का शब्दब्रह्म अपने अर्थ का अपरोक्ष ज्ञानकरने से अत्यंत प्रकाश करता है सुवर्ण पाषाण को समान जाननेवाला योगी धन की प्राप्ति मेंपीड़ित मनुष्यों को देखकर धन के प्राप्तकरने में प्रीति न करे और अज्ञान न हो, इसमें श्रद्धावान्ही अधिकारी है इसका वर्णन करते हैं कि इस शांतचित्त रूप योग-मार्ग से शूद्र और धर्म्म जाननेवाली स्त्रियां भी परमगति को पाती हैं आशय

यह है कि तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों के अर्थ विचार रूप वेदान्त में तीनवर्ण अधिकारी हैं परन्तु शांतचित्त रूप योगमार्ग में स्त्री और शूद्रभी अधिकारी हैं चित्त और बुद्धि से संयुक्त अचल इंद्रियों के द्वारा जो पायाजाय वह अजन्मा पुराण और विपरीत दशा से रहित शांतसूक्ष्म से भी सूक्ष्म वृद्ध से वृद्ध अनंत रूप है, चित्त का जीतनेवाला पुरुष उस बुद्धि से मुक्ति को देखता है अब कर्म्म मुक्ति को कहते हैं कि बुद्धिमान् पुरुष इस वर्णनाकियेहुए महात्मा महर्षि के वचन को ध्यान से शब्द और अर्थयुक्त उपदेश जानकर और युक्ति से विचार कर महाप्रलय तक ब्रह्माजी की सारूप्य मुक्ति को पाते हैं, आशय यह है कि परोक्ष ज्ञानवाले शुद्धचित्त पुरुष ब्रह्माजी के साथ एक से भोगवाले होकर महा प्रलयपर ब्रह्माजी के साथ मुक्त होते हैं और अपरोक्ष ज्ञानवाले २४ श्लोक के अनुसार निर्गुण ब्रह्म के समता को पाते हैं॥ २५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

अड़सठवां अध्याय॥

अब ब्रह्मविद्या समाप्त हुई और कर्म्मों के साथ उसका समुच्चय खण्डन करने को शुकदेवजी ने प्रश्नकिया कि यह जो वेद का वचन है कि कर्म्मकरो और त्याग करो इस ब्रह्मज्ञान से किस दशा को जाते हैं और कर्म्म से किस को प्राप्त करते हैं यह दोनों वचन परस्पर में विरुद्ध से मालूम होते हैं इसको आप कृपा करके समझाइये, भीष्मजी बोले कि ऐसे शुकदेवजी के वचन सुनकर व्यास-जी ने पुत्र को उत्तर दिया कि यह कर्म्म और ज्ञानरूप दोनों विनाशी और अवि-नाशी मार्ग मैं तुम से कहता हूं, हे पुत्र! ब्रह्मज्ञान से जिस दशा को प्राप्त करते हैं और कर्म्म से जिसको प्राप्तकरते हैं उनको एक चित्त होकर सुनो कि दोनों में बहुतही अन्तर है, यह सत्य धर्म्मही कहागया इस स्थान पर जो कहें कि धर्म नहीं है उसकेही समान यह मेरा पक्ष होगा यह दोनों मार्ग वेद प्रतिष्ठित हैं निवृत्ति में प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म अच्छा वर्णन कियागया है अर्थात् जो प्रवृत्ति धर्म्म निवृत्ति धर्म्म का उत्पादक न हो तो अच्छा नहीं है, जीवात्मा कर्म्म से बन्धनको पाता है और ज्ञान से मुक्त होता है इसकारण पारदर्शी यती पुरुष कर्म्म को नहींकरते हैं, कर्म्मसेही फि[illegible] जन्म होता है जो कि सोलह अंगवाला है और ज्ञान से प्राचीन द्वैतता रहित अ[illegible]च्छारी ब्रह्मप्रत्यक्ष होता है,कर्म्म की प्रशंसा महा-अज्ञानी लोग करते हैं इस कारण वह लोग स्त्री आदि से रमणकरते शरीर रूप जंजालको प्राप्तकरते हैं, उत्तम धर्मों के देखनेवाले जिन पुरुषों ने उत्तम बुद्धि को प्राप्तकिया है वह कर्म्म की प्रशंसा ऐसे नहीं करते हैं जैसे कि नदी के जल का पीनेवाला कूप की प्रशंसा नहीं करता है, कर्म्म के फल से सुख दुःख और ऐश्वर्य

समेत नाश को पाता है और ज्ञान के फल से अशोचता को प्राप्त होता है जिस अखण्डब्रह्म में मिलकर न मरता है न जन्म लेता है. अर्थात् अहङ्काररूप जीव स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और फिर जन्म नहीं लेता न उसमें प्रविष्ट होकर वर्त्तमान रहता है अर्थात् जीवगुण नाश होकर शुद्ध आत्मारूप शेष रहजाता है, जिस दशा में वह ब्रह्म जीव ईश्वर की द्वैतता से रहित होता है वह श्रेष्ठ और गुप्त अचल रूपांतर दशा से अदृष्ट सुगमता से प्राप्त होनेवाला अविनाशी है, सब स्थानों में समदर्शी सर्वमित्र सब जीवों के उपकारी ज्ञानी पुरुष हर्ष शोक आदि संकल्प से पीड्यमान नहीं होते हैं, हे पुत्र ! ज्ञानी पुरुष दूसरा है और कर्म्म कर्त्ता दूसरा है अमावस के दिन चन्द्रमा को सूक्ष्मकला से युक्त देखो आशय यह है कि वृद्धिक्षययुक्त यह संवत्सर नाम प्रजापति चन्द्रमा प्रत्येक मास में अमावस के दिन एक कला बाकी रहता है उसी प्रकार का कर्म्म कर्त्ताओं का ऐश्वर्य्य है सो आकाश में नवीन वक्रचन्द्रमा को देखकर याज्ञवल्क्य ऋषि से यह विधिपूर्वक कहा गया अनुमान कियाजाता है, जो दश इन्द्रिय और चित्त इन ग्यारह विकारस्वरूप और कर्म्मरूप कलाओं के भार से संयुक्त मूर्त्तिमान् है उस व्यष्टिजीव को त्रिगुणात्मक कर्म्म का फल और चन्द्रमा के समान वृद्धिनाशवाला समझा है, उसजीव उपाधिरूप चित्त में जो प्रकाशमान चैतन्य नियत है वह ऐसा है जैसे कि कमलपत्र में जलबिन्दु होता है उस योग से प्राप्त होनेवाले चित्तजीव को क्षेत्रज्ञ परमात्मा अविनाशी जानो, और यह सतोगुण रजोगुण तमोगुण जीव के गुण हैं और जीव को आत्मा का गुण जाने और उस आत्मा को परमात्मा का गुण जाने जड़ चैतन्य रूप जीव जड़भाग के त्यागकरने से ब्रह्महीहै आप जड़रूप चेतना से संयुक्त देह को जीव के गुण चैतन्य से संयुक्त कहते हैं इसकारण वह जीव सब को चेष्टा देता है और चैतन्य करता है क्षेत्रज्ञ का ज्ञाता जीव से परे उस परमात्मा को कहते हैं जिसने भूलोक आदि सप्त भुवनों को उत्पन्न किया है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि प्रधान से लेकर चौबीस तत्त्वरूप जो साधारण सृष्टि है वह आत्मा से है इसी प्रकार विषयों समेत इन्द्रियां भी बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं ईश्वर की सामर्थ्य से उत्पन्न होनेवाली सृष्टि उत्तम है और बंधनरूप होने से अनुत्तम है, जीव और ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली सृष्टि दो प्रकार की है उनमें बुद्धिरूप जीवीसृष्टि बंधन का कारण है मैं काल से संबंध रखनेवाले सत्पुरुषों के उस आचार को जिससे कि इस लोक में सन्त कर्म्मकर्त्ता होते हैं सुनना

चाहता हूं और वेद में कर्म्म करना और कर्म्मों का त्यागना दोनों परस्पर विरुद्ध बातें लिखी हैं इसको भी आप निर्णय करके सुनाइये, क्योंकि मैं लोकरीति की मुख्यता का जाननेवाला और देहाभिमान का त्यागनेवाला गुरु के उपदेश से पवित्र बुद्धि का संस्कार करके अविनाशी आत्मा को देखना चाहताहूंगा, व्यासजी बोले कि जैसे पहिले आप ब्रह्माजी की ओर से जो वृत्ति विचार की गई वही प्राचीन ऋषियों करके काम में लाईगई आशय यह है कि ज्ञान के साथ कर्म्मों का समुच्चय नहीं है परन्तु कर्म्म समुच्चय होगा जैसे लिखा है कि कर्म्मों से बुद्धि को शुद्ध करके उस बुद्धि के द्वारा आत्मदर्शन को चाहै, परम ऋषिलोग ब्रह्मचर्य्य के द्वारा लोकों को विजय करते हैं इसकारण चित्त के द्वारा अपने कल्याण को चाहता वन में मूल फलों का भोक्ता बड़ातपस्वी पवित्र देश-गामी अहिंसायुक्त वानप्रस्थ आश्रम में समय पर भिक्षा करता हुआ ब्रह्मभाव के लिये कल्पना किया जाता है, शुभ अशुभ को त्यागकर किसी एक भोजन से तृप्त स्तुति और नमस्कार के व्यवहार से रहित अकेले वन में घूमो, शुकदेवजी ने कहा कि कर्म्म करो वा त्यागकरो यह जो वेद का वचन है वह परस्पर में विरोधी है तो कैसे शास्त्र से प्रमाणिक मानें, सो यह संदेह निवृत्त कीजिये कि दोनों प्रमाण किस प्रकार से हैं और कर्म्मों के विरोधों में मोक्ष कैसे प्राप्त होती है, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार महातेजस्वी शुकदेवजी के प्रश्न को सुनकर व्यासजी बोले कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी यह सब शास्त्र उप-देश के अनुसार कर्म्म करनेवाले परमगति को पाते हैं, जो अकेलाही बुद्धि के अनुसार इन आश्रमों का अनुष्ठानकरे और काम द्वेष से रहित हो वह ब्रह्मज्ञान के योग्य होता है यह चार पायेवाली ब्रह्मरूप नसेनी नियत है इस नसेनी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है, धर्म्म अर्थ में पण्डित किसी के गुण में दोष न लगानेवाला ब्रह्मचारी गुरु या गुरु के पुत्र के पास चौथाई अवस्थातक निवासकरे नीचे पृथ्वीपर सोवे और प्रातःकाल उठकर गुरु के घर में भृत्यकर्म्म करके और गुरु को जतलाकर गुरु के पास बैठे और सर्व कर्म्मकर्त्ता होकर दास होजाय, ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले पुरुष को गुरु के सब काम पूरेकरके फिर उनके पास पढ़ना चाहिये और आज्ञाकारी होकर असभ्यबात कभी न कहे और गुरुके पास बुलाने से प्राप्तहोवे, पवित्र और चतुरतायुक्त प्रिय वचन बोले और जितेन्द्रिय सावधान होकर नेत्रों से गुरु को देखे गुरु से पहले भोजन जलआदि को न ग्रहणकरे और स्थिर न होनेपर स्थिर न हो और गुरु के जागतेहुये शयन नहीं करे और नम्रता से गुरु के चरणछुए दाहिने हाथ से दाहेंचरण को और बायें हाथ से बायेंचरण को पकड़े गुरु से दंडवत् करके कहै कि हे भगवन् ! पढ़ाओ यह काम मैंने किया और यह करूंगा और जो आप आज्ञा देंगे उसको

करूंगा यह सब जतलाकर और बुद्धि के अनुसार प्रकट करके दूसरी बार भी गुरु से कहना चाहिये, और ब्रह्मचारी को जो २ रस गन्धादि सेवन करना वर्जित हैं उन सब को समावर्त्तनकर्म से निवृत्त होकर सेवनकरे यह ब्रह्मचारी के धर्म हैं इनको सदैव करताहुआ गुरु के सन्मुख वर्त्तमान हो और सामर्थ्य के अनुसार गुरु में प्रीति को प्रकटकरे फिर वह शिष्य एक आश्रम से दूसरे आश्रमों में कर्म के द्वारा प्रवृत्तहोवे वेद व्रत के उपवास से अवस्था के चतुर्थांश व्यतीत होनेपर गुरु को दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावर्त्तनकर्म करे और व्रती पुरुष धर्म-पत्नियों से संयुक्त युक्ति से अग्नियों को स्थापन करके अवस्था के दूसरे भाग में गृहस्थी होय ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि सुन्दरव्रतपरायण धर्मपत्नीसंयुक्त गृहस्थी पुरुष अग्नियों को स्थापन करके अपनी अवस्था के दो भाग तक घर में निवास करे, पण्डितों की ओर से गृहस्थियों की चार प्रकार की आजीविका कही हैं प्रथम तीन वर्ष तक के निमित्त अन्न का संचय करना उसको कुसूलधान्य कहते हैं दूसरा कुम्भधान्य अर्थात् कुंभकी पूर्णताके समान अन्न संचयकरना तीसरे एकदिन के खर्च के योग्य अन्न रखना चौथे उञ्छवृत्ति से अपनी आजीविका को प्राप्तकरे इन चारों में पहले पहले की अपेक्षा दूसरा उत्तम है, एक छःकर्म करनेवाला कर्मकर्त्ता होता है, दूसरा तीन कर्म से कर्मकर्त्ता होता है, एक दोकर्म से कर्मकर्त्ता होता है, चौथा ब्रह्मयज्ञ में अर्थात् जप वेदपाठ आदि में नियत होता है अब गृहस्थी के बड़े धर्मोंको कहते हैं, केवल अपने ही निमित्त भोजन न बनावे और देव पितृ यज्ञ के उद्देश के विना कभी पशुओं का घात न करे बकरी आदि जीवधारी और फलआदि निर्जीवों को यजुर्वेद के मंत्रों के द्वारा संस्कार करे और दिवस वा अगली पिछली रात्रि में कभी न सोवे और दोनों समय के भोजन के सिवाय मध्य में फिर भोजन न करे और ऋतुकालों के सिवाय स्त्री से भोग न करे और पूजन भोजन के विना कोई ब्राह्मण उसके घर में निवास न करे, इसीप्रकार उसके हव्य कव्य के धारण करनेवाले वह अतिथि भी सदैव पूजन के योग्य हैं जो कि वेदविद्या और व्रत में पूर्ण वेद के पारदर्शी धर्म से निर्वाह करनेवाले जितेन्द्रिय क्रियावान् और तपस्वी हों उन्हीं के पूजन के निमित्त हव्य कव्य भी कहागया है, और पाखण्ड के निमित्त नख आदि के बढ़ानेवाले अपनाधर्म विख्यात करनेवाले गुरु को न मानकर अग्निहोत्र के त्यागी इत्यादि, इसप्रकार के भी सब जीवों का भाग इसगृहस्थ को देना कहा है इसीप्रकार ब्रह्मचारी

और संन्यासी को भी गृहस्थ भोजनकरावे, सदैव विघसान्न और अमृत का भोजन करे जो हव्य के समान वा अन्यपदार्थ यज्ञ से शेषरहा हो उसको अमृत कहते हैं और जो गृहस्थी के बालबच्चे और वृद्ध अतिथियों को देकर शेषरहे उसको विघसान्न जानो उसका भोजन करनेवाला विघसाशी कहलाता है, अपनी स्त्री से प्रीति करनेवाला जितेन्द्रिय परनिन्दारहित धर्म में क्लेशादिरहित, ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य्य, मातुल, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बाल, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी, बांधव, माता, पिता, सगोत्री, स्त्री, भाई, पुत्र, भार्य्या और दास आदि के साथ भोजन के भाग के विषय में वाद न करे क्योंकि इनके वाद को त्यागने से पापों से निवृत्तहोता है, इन्हीं से विजय कियाहुआ सबलोगों को विजयकरता है निस्संदेह आचार्य्य ब्रह्मलोक का और प्रजापति के लोक का स्वामी है अतिथि इन्द्रलोक का स्वामी ऋत्विज देवलोक का अधिपति, बहन, कन्या, बधू आदि अप्सराओं के लोक में स्वामी हैं, जातिवाले वैश्व देवलोक में स्वामी हैं, नातेदार और बांधव दिशाओं में, और माता मामा पृथ्वीपर, और वृद्ध, बालक, रोगी, निर्बल आदमी आकाश में स्वामी हैं, आशय यह है कि जो जिस लोक का स्वामी है उसके अप्रसन्न करने में उन २ लोकों में हानि को पाता है, बड़ा भाई पिता के समान है, भार्या और पुत्र अपना देह हैं दास लोगों के समूह अपनी छाया हैं, कन्या परम कृपण है इसीकारण गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त बुद्धिमान् धर्माभ्यासी थकावट का विजयी और तप से रहित पुरुष इनसब बातों से निंदित सदैव क्षमाकरे कोई धर्मज्ञ पुरुष मनोरथसम्बन्धी यज्ञआदि को नहीं करे, गृहस्थी की तीन आजीविका हैं एकतो मुख्य तोल से अन्न संचय रखना उंछ, शिल, कापोती उन में पिछली २ कल्याण करनेवाली हैं, चारोंआश्रमों में भी एक से एक पिछले उत्तम समझो जिस प्रकार उनके नियम किये वह सब ऐश्वर्य की इच्छावाले को करने के योग्य हैं, कुंभधान्य शिल उंछ से निर्वाह करनेवाले कापोती नाम जीविका में प्रवृत्त हैं यह योग्य मनुष्य जिस देश में निवास करते हैं वह देश सब ओर से वृद्धि को पाता है, जो पीड़ारहित मनुष्य इनगृहस्थी की आजीविकाओं पर ध्यानपूर्वक कर्म्म करे वह अगले पिछले दश २ पुरुषाओं को तारता है, और चक्रवर्त्तियों के समान गति को पाता है यही गति जितेन्द्रियों की भी होती है, स्वर्गलोक उदारचित्तवाले गृहस्थियों का हितकारी है, विमानयुक्त स्वर्ग वेदसे देखाहुआ क्रीड़ायोग्य है, सावधानचित्त गृहस्थियों की स्वर्गही प्रतिष्ठा है इसी कारण यह गृहस्थधर्म्म स्वर्ग का देनेवाला ब्रह्माजी ने रचा है और भोग कियाजाता है, इस दूसरे आश्रम को क्रम से प्राप्त करके स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाता है मैंने तुम से तीसरे परमउदार वानप्रस्थों के उत्तमोत्तम बड़े आश्रम को कहा और जो देह के अभिमान दूरकरनेवाले वन-

वासी और गृहपति अपने अस्थिचर्मवाले देह को सुखानेवाले हैं उनके भी आश्रम को कहता हूं तुम चित्त से सुनो ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर! शास्त्र में ज्ञानियों से विदित की हुई गृहस्थी की आजीविका तुमसे वर्णन करी अब गृहस्थवृत्ति को क्रम से निन्दित करके जो आश्रम उत्तम कहा गया है उसको समझो कि इस स्त्रीसम्बन्धित गृहस्थवृत्ति से चित्त को हटाकर वानप्रस्थ आश्रम में आश्चर्यभूत तीसरी वृत्ति को कहता हूं जिनके कि सब लोक और आश्रम आत्मारूप हैं उन विचारवान् पवित्र कर्मियों के धर्म को सुनो, व्यासजी अपने पुत्र शुकदेवजी को आशीर्वाद देकर बोले कि जब गृहस्थ अपने मुखपर श्वेतकेश और पुत्र की संतान को देखे तब वन में ही निवास करे अर्थात् अवस्था के तीसरे भाग को वानप्रस्थ आश्रम में व्यतीत करे और देवपूजनपूर्वक उन अग्नियों का सेवन करे, जो आचारवान् सामान्यभोक्ता दिन के छठे भाग में भोजन करनेवाला सावधान हो वही अग्निहोत्र वही गौ वही यज्ञोंके सब अंग हैं यहां वनमें भी पंचमहायज्ञों के बीच लोहे की फार से रहित हल के जोतने से उत्पन्न धान जौ नीवार नाम जो मुनियों के अन्न और सब प्रकार के विघसान्न हैं उनको भोजनकरे और करावे, वानप्रस्थ आश्रम में भी यह चार आजीविका कही हैं कोई तत्काल प्रक्षालक अर्थात् शीघ्र भोजन निबटानेवाले कोई एक मास के भोजनार्थ अन्न संचय करनेवाले हैं कोई अतिथिपूजन और यज्ञ तंत्र आदि के निमित्त एक वर्ष के खर्च को और कोई बारहवर्ष के खर्च के लिये इकट्ठा करते हैं, वर्षा में स्थानरहित मैदान में तपकरनेवाले, हेमन्तऋतु में जल में नियत होनेवाले और उष्णऋतु में पंचाग्नि तपनेवाले मितभोजनवाले पृथ्वी पर सोते हैं एक पैर से खड़े रहते हैं स्थान और आसनों को भी त्याग देते हैं और यज्ञों में अभिषेक करते हैं, कोई दांत को ऊखल बनानेवाले हैं अर्थात् केवल दांत सेही चबाकर खाते हैं और कोई पत्थरपर कूटकर खाते हैं कोई कृष्णपक्ष में व्रत करके शुक्लपक्ष में यवागू नाम और अच्छे पके मूल आदि को एकवार खाते हैं कोई कृष्णपक्ष में जव आदि जो कुछ मिले भोजन करते हैं आशय यह है कि कोई फल कोई मूल कोई फूलों से न्याय के अनुसार निर्वाह करते हैं कोई वैखानस ऋषियों की गति में प्रवृत्त हैं उन ज्ञानियों की यह और अन्यप्रकार की भी अनेक दीक्षा हैं चौथा धर्म उपनिषद्सम्बन्धी साधारण है, जो सब आश्रमों में वर्त्तमान हो उसको साधारण कहते हैं, हे पुत्र! उस गृहस्थ और वानप्रस्थ से दूसरा आश्रम जो होता

है इसे यज्ञ में सब अर्थ के देखनेवाले ब्राह्मणों में से अगस्त्य, सप्तऋषि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांकृति, सुदिव, अतंडि, यथावास, कृतश्रम, अहोवीर्य, काव्य, तांड्य, मेधातिथि, बुध, बलवान्, कर्णनिर्वाक, शून्यवाल इत्यादि ऋषियों ने किया है इसीहेतु से वह सब स्वर्गवासी हुये, इसीप्रकार सत्यसंकल्प आदि प्रत्यक्ष धर्मकरनेवाले या यावरनाम गण स्वर्ग को गये, हे तात ! इसीप्रकार धर्मदर्शी उग्रतपवाले अन्य उत्तम ब्राह्मण वन में निवासी हुये और वैखानस, बालखिल्य और सैकतनाम ऋषि कृच्छ्रचान्द्रायणकर्म्मों के कारण आनन्द से रहित सदैव धर्म करनेवाले जितेन्द्रिय प्रत्यक्ष धर्मधारी वनके वासी भी स्वर्गवासी हुये वह प्रकाशवान् नक्षत्रों से भी अधिक प्रकाशित निर्भय दृष्टपड़ते हैं, वृद्धावस्था से निर्बल और रोग से अत्यन्त पीड़ित पुरुष अवस्था के चतुर्थांश बाकी रहने पर वानप्रस्थ आश्रम को त्यागकरे एकदिन में होनेवाले सब वेद और दक्षिणायुक्त यज्ञ को करके जीवनदशा में आप श्राद्ध आदि करनेवाला आत्मा में प्रीतिमान् आत्मा मेंही क्रीड़ा करनेवाला आश्रयी और अग्नियों का स्थापन करके सब परिग्रहों को त्याग संन्यासी होजाय बड़ा वैराग्य न होनेपर दूसरा पक्ष कहते हैं—शीघ्र होनेवाले ब्रह्मयज्ञ और दर्शपूर्णमास नाम यज्ञादि तबतक सदैव करै जबतक कि कर्मरूप यज्ञ से आत्मयज्ञ अर्थात् योगाभ्यास वर्त्तमान होता है, अब आत्मयज्ञ का स्वरूप कहते हैं—देह के त्याग पर्यन्त गार्हपत्य आहवनीय आदि तीनों अग्नियां जोकि मनचित्तमुखरूप हैं उनको पूजनकर मंत्र के द्वारा पांचोंप्राण के लिये पांच या छः ग्रासों को खाय उसके पीछे कर्म्मों से पवित्र वानप्रस्थ मृतक शिर देह और नखों को पृथक् करके एक आश्रम से दूसरे पवित्र आश्रम को प्राप्तकरता है, जो ब्राह्मण सब जीवों को निर्भय करके संन्यासी होता है उसके लोक तेजरूप हैं वह देह त्यागकर मोक्ष को पाता है अच्छे शील चलन वाला निष्पाप पुरुष इस लोक और परलोक में कर्म्म अनुष्ठान को नहीं चाहता है और काम क्रोध से रहित प्रिय अप्रियता से जुदा उदासीन पुरुष आत्मज्ञानी होता है अपने वेदान्तशास्त्र और सूत्र दोनों लोक को त्याग करके आत्मइच्छारूप आहवनीय और शिखा यज्ञोपवीत के त्याग से सम्बन्ध रखनेवाले मंत्र का पराक्रम रखनेवाला प्राप्त होनेवाले नियमें में पीड्यमान नहीं होय, आत्मज्ञानी की गति स्वेच्छाचारी होती है उस जितेन्द्रिय और धर्म्म में पूर्ण पुरुष के विषयमें संदेह नहीं है इसके अनन्तर उत्तम और सद्गुणयुक्त श्रेष्ठ पुरुष तीनों आश्रमों को तुच्छ कर उच्चस्थानी चौथे आश्रम का वर्णन किया अब जिसमें शमआदि वृत्ति अधिक हैं और मोक्ष का हेतु है उसको सुनो ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

बहत्तरवां अध्याय॥

पूर्व में वैश्वानर आत्मा की उपासना वर्णन की वह कर्म ढीले आदमी से होना कठिन है इस बात को मानकर शुकदेवजी ने यह प्रश्न किया कि इस वान-प्रस्थ आश्रम में इसप्रकार नियत होकर जानने के योग्य ब्रह्म की इच्छा करने वाले पुरुष की ओर से उस आत्मा का सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्म में ठीक २ तद्रूप होना किसप्रकार से सम्भव है व्यासजी बोले कि इन दोनों आश्रमों से चित्त शुद्धिरूप संस्कार को पाकर फिर आत्मा को ब्रह्म में लयकरना चाहिये जो पर-मार्थ करने के योग्य है उसको एकचित्त होकर सुनो, तीनों आश्रमों में चित्त के दोष को दूर करके सब आश्रमों में उत्तम पदवाले संन्यास आश्रम को धारणकरे, सो तुम इसप्रकार अभ्यास करके कर्म्म करो इसीप्रकार अन्य भी सुनो कि अकेला किसीको साथ न रखनेवाला शुद्धि के लिये धर्म्म को करे, जो अकेला देखता किसी पदार्थ को त्याग नहीं करता है अर्थात् सर्वव्यापी है और मोक्ष के सुखसे भ्रष्ट नहीं होता है वह अग्नि और स्थानरहित अन्न के निमित्त ग्राम को जाय, सावधानचित्त अल्पाहारी एक समय भोजन करनेवाला मुनि किसी वस्तु का संग्रह न करे कपाल का जलपात्र वृक्षों के मूल पर निवास गेरुवे वस्त्र एकाकी सब जीवों के राग द्वेष से पृथक् होना यह संन्यासी का लक्षण है, जिस में भयानक कोपयुक्त हाथी के समान वचन प्रवेश करते हैं वे वचन फिर कहने-वाले को प्राप्त नहीं होते हैं वह पुरुष कैवल्यमोक्षसम्बन्धी आश्रम में निवास करे, कभी किसी की मुख्यकर ब्राह्मण की निन्दा को न सुने न देखे न किसी दशा में आप करे, जिसमें ब्राह्मण की भलाई हो उसी को सदैव कहै, अपने संसारी रोगों की चिकित्सा करता निन्दारहित हो सदैव जिस अकेले से आकाश व्याप्त होता है और जिससे जनसमूह भी निर्जन स्थान के समान होता है देवता लोग उसको निर्दोष ब्राह्मण समझते हैं जिस किसी रोग से गुप्त देह और कोई अन्न से तृप्त और जहां योग हो वहांही शयन करनेवाला है उसीको देवता ब्राह्मण कहते हैं. जैसे कि सर्प से भयभीत होते हैं उसीप्रकार जनसमूहों से भय करता रहै और जैसे नरक से भय उत्पन्न होता है उसीप्रकार मिष्टान्न से भयभीत रहै और जैसे मृतकआदि से भय होता है उसीप्रकार स्त्रियों से भय करता रहै और मान से प्रसन्न न हो और अपमान में क्रोधरहित हो और सब जीवों को अभय देनेवाला हो, जो मृत्यु जीवन को न चाहै और समय की बाट आज्ञाकारी भृत्य के समान देखता रहै दोषरहित निर्दोषवक्ता सर्वपापरहित अशत्रु हो उसको क्या भय है जिससे सब जीव निर्भय हैं न किसी जीव से उस को भय है उस मोहरहित पुरुष को कहीं भय नहीं है, निर्भयता को कहकर

पूर्णानंदप्राप्ति को भी कहते हैं, जैसे कि हाथी के पैर में सबके चरण अंतर्गत होजाते हैं उसीप्रकार समाधि में वर्त्तमान योगी के स्थानपर इन्द्रियों के स्थान अन्तर्गत होजाते हैं इसप्रकार के सब धर्म्म अर्थ इस हिंसा से रहित और सब जीवों की निर्भयतारूप संन्यासयोग में लय होजाते हैं जो हिंसारहित होता है वह अविनाशी जीवन्मुक्त होता है, हिंसारहित समदर्शी सत्यवक्ता धैर्यवान् सावधान सब जीवों का रक्षास्थान वह पुरुष उस गति को पाता है जिस से कि उत्तम दूसरी गति नहीं है, इसप्रकार मृत्युरूप आत्मा के प्रत्यक्ष अनुभव से तृप्त अनिच्छावान् पुरुष को उल्लंघन करनेवाला नहीं है-क्योंकि वह पुरुष मृत्यु को उल्लंघन करजाता है, सब संगों से रहित आकाश के समान वर्त्तमान अदृष्ट अकेले घूमनेवाले शान्तरूपही को देवताओं ने ब्राह्मण कहा है, जिस का जीवन निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले पुण्य के निमित्त है और वह धर्म भी पास रहनेवाले पुत्र और मित्र आदि के लिये है और जिस के दिन रात्रि पुण्य के हेतु हैं अर्थात् समाधि परमेश्वरार्थ है उस अनिच्छावान् असावधानता रहित अपनी प्रशंसारहित नमस्कारादि से उत्पन्न होनेवाले सुख और वासनारूप बंधनों से रहित पुरुष को ब्राह्मण जानो सब जीव सुख में क्रीड़ा करते हैं और सब दुःखों का भय करते हैं उन कर्मों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले भय से दुःखी होनेवाले श्रद्धावान् पुरुष हिंसात्मक कर्मों को नहीं करें सब जीवों की निर्भयतारूप दान सब दानों से उत्तम होता है जो पुरुष प्रथमही हिंसात्मक कर्म को त्याग करता है और जीवों को निर्भय दान देता है वह मोक्ष को पाता है व्यतीत अध्याय के तेंतीस श्लोक के अनुसार खुलेहुये मुख में हव्य को नहीं होमता है अर्थात् वह योगी चित्त और इन्द्रिय आदि को आत्मा में होम करता है, सब जड़ चैतन्य जीवों की जो नाभि है वह तीनों लोक के आत्मा वैश्वानर का स्थान है उस लोक के मस्तक आदि अंगों से लेकर सब अंगोंतक वैश्वानर के अंग हैं वह वैकल्पित हैं, हृदय से लेकर नाभिपर्यन्त प्रादेशमात्र स्थान में आत्मा प्रकट है जो योगी इस चिन्मात्र में सब प्रपंच को होम करता है अर्थात् लय करता है देह में नियत इन देवताओं से युक्त सब लोकों में होमाहुआ अग्निहोत्र होता है अर्थात् उस होम से सब ब्रह्माण्ड तृप्तहोता है, जिन पुरुषों ने उस प्रकाशमान और अकार अर्थवाले सूत्रात्मा को और तीनों गुणवाली मकार अर्थयुक्त माया की उपाधि रखनेवाले ईश्वर को और सूक्ष्मतम और उपाधि से पृथक् ब्रह्मभाव को जाना है वह सब लोक में प्रतिष्ठावान् हैं समर्थ देवता उस मोक्षरूप को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके अंगरूप होते हैं, अब विद्या के फल को कहते हैं, जो पुरुष वेदों को और जानने योग्य यज्ञादिकों को और कर्मकाण्ड वा परलोक आदि को आत्मा में जानता है उसकी देवता भी सेवा किया

चाहते हैं, अब इसके पक्षीरूप का वर्णन करते हैं, किरणों से प्रकाशमान जो जीवात्मा उस पृथ्वी से अनुरागरहित और स्वर्ग में भी अचिन्त्यप्रभाव चिन्मात्ररूप ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रकाशित बहुतपक्षरूप देवताओं से संयुक्त पक्षी अर्थात् असंग और मोद प्रमोद नाम वृत्तिरूप दो पक्ष रखनेवाले पक्षी को देह के भीतर हार्द आकाश में हृदयकमल पर जानता है उसको देवता प्राप्त होते हैं उसके छः ऋतु तो नाभि हैं और बारह महीने आरे हैं और मावस संक्रांति आदि सुन्दर पर्व हैं यह विश्व जिसके मुख के ऊपर जाता है वह भ्रमण करनेवाला ईश्वर से युक्त अजर कालचक्र बुद्धि में नियत है, सुषुप्तिनाम अज्ञान जो कि जाग्रत और स्वप्न अवस्था का बीजरूप है और संसार का शरीर है और स्थूल सूक्ष्म सृष्टि को व्याप्त करता है उस अज्ञानरूप स्थूलसूक्ष्मरूप देह में जो जीव है वह देवताओं को तृप्त करता है वह तृप्त देवता इसके मुख को तृप्त करते हैं, वेद में कहा है कि इस मंत्र से जो पहले आहुति मुख में होमी जाती है उससे प्राण तृप्त होता है प्राण की तृप्ति से नेत्र तृप्त होते हैं और नेत्रों की तृप्ति से सूर्य तृप्त होते हैं सूर्य की तृप्ति से स्वर्ग तृप्त होता है, स्वर्ग की तृप्ति से स्वर्गसंयुक्त सूर्यलोक तृप्त होता है, फिर वह आहुति देनेवाला सन्तानपशुअन्नादि युक्तहोकर ब्रह्मतेज से तृप्त होता है, जो निर्गुण ब्रह्मभाव को न पाकर सगुण ब्रह्म में प्रवृत्त होता है उस की गति को कहते हैं, जिससे जीवमात्र निर्भय होते हैं और जीवमात्रों से वह आप भी निर्भय होता है वह उन निर्भय अनन्त लोकों को पाता है, जो लोक वास्तव में एकाकी तेजरूप और पुराण ब्रह्मलोक नाम से प्रसिद्ध है, जो ब्राह्मण अनिन्द्य और दूसरों की निन्दा नहीं करता है और अज्ञान वा अपवित्रता से रहित जिसके स्थूल सूक्ष्म पाप निवृत्त होजाते हैं वही ब्राह्मण उस परमात्मा को देखता है, वह पुरुष इस लोक और परलोक में भोगने के स्थानों को नहीं प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि केवल मोक्ष पाने से उसकी गति नहीं है इसकी जीवन्मुक्त की दशा को कहते हैं, क्रोध मोह से पृथक् मृत्तिका सुवर्ण को समान जाननेवाला प्रत्यक्ष ऐश्वर्य रखनेवाला राग द्वेष से रहित निन्दा स्तुतिरहित प्रिय अप्रियतारहित संन्यासी और उदासीनों के समान भोगों को भोगता नियत होता है॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

तिहत्तरवां अध्याय॥

व्यासजी बोले कि, प्रकृति के जो देह, इन्द्रिय, चित्त आदि विकार हैं उनके कारण यह क्षेत्रज्ञ आत्मा कर्तृत्व और भोक्तृत्व गुणों से गुणी है वह नेत्रआदि जड़रूप होने से आत्मा को नहीं जानते हैं अर्थात् आप प्रकाशमान नहीं

होसक्ते हैं परन्तु वह आत्मा उनको भी जानता है अर्थात् प्रकाश करता है आत्मा इस लोक में उन इन्द्रियों से जिनमें छठा चित्त है करने के योग्य कर्म को ऐसे करता है जैसे कि अच्छे सीखेहुए घोड़ों से सारथी सारथ्यकर्म को करता है, इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थों से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से परे अव्यक्त, अव्यक्त से परे चैतन्यात्मा है और चैतन्यात्मा से परे कुछ नहीं है वही काष्ठा और परमगति है, इसप्रकार सब जीवों में गुप्त आत्मा प्रकाश नहीं करता है और सूक्ष्मदर्शी ब्रह्मज्ञानियों की सूक्ष्म और तीक्ष्णबुद्धि से दृष्टिगोचर होता है, ध्यान ध्यानी ध्यानयोग्य और सब इन्द्रिय और उनके विषयों के विचाररहित बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा चित्त को महत्तत्त्व में लय करके ध्यान से उपराम हो "अहंब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं इस विद्या से शुद्ध ईश्वरभाव को लयकरनेवाला मुक्तचित्त कैवल्य मोक्ष को पाता है, इसके विपरीत पक्ष में दोष है उसको भी सुनो कि चित्त को सब इन्द्रियों के स्वाधीनकरनेवाला आत्मस्वरूप के स्मरण से पृथक् मरणधर्मवाला मनुष्य विषयों में प्रवृत्तचित्त होने से मृत्यु को पाता है सब संकल्पों को नाश करके चित्त को सूक्ष्मबुद्धि में प्रवेशकरे, बुद्धिमें चित्त को प्रवेश करके फिर काल इन्द्र पर्वत के समान अचल हो अथवा काल का नाश करनेवाला होवे, इस संसार में यतीपुरुष चित्त की शुद्धता से पाप पुण्य को त्याग करता है वह शुद्ध चिदात्मस्वरूप में नियत होकर बड़े सुख को भोगता है, चित्त की शुद्धि का यह लक्षण है कि जैसे स्वप्न में शयन और निर्वातस्थान में प्रकाशमान दीपक निश्चल होता है इसीप्रकार अगले और पिछले समय पर आत्मा को परमात्मा में संयुक्त करनेवाला अल्पाहारी अतिशुद्धचित्त योगी परमात्मा को आत्मा में देखता है यह उपदेश पुत्रानुशासन वेद में गुप्त बात है यह केवल अनुमान से विदित नही होता न केवल शास्त्र से जाना-जाता है यह अनुभव से प्राप्त होता है और आत्मज्ञान से सम्बन्ध रखता है सब धर्माख्यान और सब आख्यानों में जो सार है और कुछ ऊपर दश हज़ार वेद की ऋचाओं को मथकर यह ज्ञानरूप अमृत ऐसे निकाला है जैसे दही से मक्खन को और काष्ठ से अग्नि को निकालते हैं इसीप्रकार पुत्र के अर्थ यह ब्रह्मज्ञानियों का ज्ञान अच्छेप्रकार से निकालागया है, यह पुत्रानुशासन नाम शास्त्रज्ञान स्नातकों के आगे कहना योग्य है और ऐसे पुरुष से न कहना चाहिये जो इन्द्रिय के विषयों से अशान्तचित्त अवज्ञा करनेवाला वेदरहित उपदेश के अनुसार कर्मकर्त्ता न होकर निन्दकता सहित कुटिलप्रकृति हो, और न्यायशास्त्र से रहित अहंकारी को भी उपदेश न करना चाहिये, और बड़े शान्त तपस्वी दूसरे की स्तुति करनेवाले प्रियपुत्र शिष्य और उपासक के लिये यह गुप्त धर्म उपदेश करना चाहिये इस ज्ञान को किसी से विना परीक्षा किये न कहा

जाय यह ज्ञान रत्नजटित पृथ्वी से भी अधिक ब्रह्मज्ञानियों के मत से है इसीकारण यह अर्थ गोपनीय है, जो दिव्य आत्मज्ञान महर्षियों से देखागया और वेदान्तियों से गायाजाता है वह मैं तुम से कहता हूं हे पुत्र! जो तेरे चित्त में दूसरी बात वर्त्तमान है और उसमें जहां तुझे संशय है उसको भी मैं कहूंगा ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि, हे भगवन्! आप जिस ब्रह्मज्ञान को ठीक जानते हो उसको मुझ से वर्णन कीजिये व्यासजी बोले कि, हे तात! पुरुष का जो अध्यात्म पढ़ाजाता है उसको तुम से कहता हूं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचों महाभूत चारोंप्रकार की सृष्टि के जीवों में पृथक् २ ऐसे कल्पित हैं जैसे कि समुद्र में तरंगे होती हैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगों को फैलाकर खैंचलेता है उसी प्रकार पंचभूत देहरूप होनेवाले पंचमहाभूतों में नियत होकर नाश और उत्पत्ति रूपान्तरदशा को उत्पन्न करते हैं, छोटे तत्त्वों के रूप सब जड़ चैतन्य जगत् की उत्पत्ति प्रलय होनेपर उस देह के अन्तर्गत नियत तत्त्वसमूहों में लय होते हैं, हे तात! सब जीवमात्रों में पंच महाभूतही हैं परन्तु इनमें ईश्वर ने कुछ अन्तर किया है कारण यह है कि जिसकर्म के हेतु रूप होने में देह के त्यागने के समय जो ध्यान करता है वही प्राप्त करता है, शुकदेवजी बोले कि, देह के बुद्धि इन्द्रिय आदि अंगों मे जो अन्तर उत्पन्न किया है उसको किसप्रकार देखके अपने विषयों समेत इन्द्रियां किस गुणरूपयुक्त होती हैं और कैसे उनको देखना चाहिये व्यासजी बोले कि, इसको क्रम से ठीक २ मैं कहता हूं तुम सावधान होकर मुख्यसिद्धान्त को सुनो, शब्द श्रोत्र और देह के छिद्र यह तीनों आकाश से संयुक्त हैं प्राण, चेष्टा और स्पर्श यह तीनों वायु के गुण हैं रूप नेत्र और जठराग्नि यह तीनप्रकार की ज्योति कहीजाती है, रस, रसनेन्द्रिय और आर्द्रता यह तीनों जल के गुण हैं, सूंघने के योग्य वस्तु, घ्राणेन्द्रिय, और देह यह तीनों पृथ्वी के गुण हैं पंचभूत से सम्बन्ध रखनेवाली यह रूपान्तरदशा इन्द्रियसमूहों के समेत वर्णन की, वायु का गुण स्पर्श, जलका रस, अग्नि का रूप, आकाश का शब्द, पृथ्वी का गन्ध है मन, बुद्धि और स्वभाव यह तीनों अपनी योनिसे उत्पन्न होनेवाले हैं, सतोगुण आदि से श्रोत्रइन्द्रिय आदि स्वरूप को प्राप्त होनेवाले वह तीनों शब्दआदि गुणों को उल्लंघन नहीं करते हैं जिस प्रकार इसलोक में कछुआ अंगों को फैलाकर खैंचलेता है इसीप्रकार बुद्धि इन्द्रियों के समूह को उत्पन्न करके फिर अपने में लय करती है, पैर के तालुए से ऊपर और मस्तक से नीचे जिस देह को देखता है इन दृष्टरूप कर्मों में बुद्धिही उत्तम कर्मकर्त्ता

होती है अर्थात् मैं हूं यह अनुभव विषय बुद्धि का रूप है, बुद्धि विषयों के रूप को प्राप्त करती है और बुद्धिही इन्द्रियों के भी रूप को प्राप्त करती है वह मन समेत छः हैं, बुद्धि के न होने में इन्द्रिय और विषय कहां से प्रकट हों, मनुष्यों के देह में पांच इन्द्रिय और छठा मन कहाजाता है, बुद्धि को सातवां कहते हैं फिर आठवां क्षेत्रज्ञ है, नेत्र दर्शन के निमित्त है और मन संशय को करता है बुद्धि निश्चय करने को है क्षेत्रज्ञ सबका साक्षी है, रजोगुण, तमोगुण सतोगुण यह तीनों अपनी योनि से उत्पन्न होते हैं आशय यह है कि चित्त और उससे उत्पन्न इन्द्रिय आदि सब त्रिगुणात्मक हैं, सब देव मनुष्यादिक जीव में समान हैं इन गुणों को देखे और इनको जो प्रीति से संयुक्त बुद्धि में देखे उस अत्यन्त शान्त और शुद्ध को सतोगुण जाने, देह और चित्त में जो दुःख से संयुक्त हो उस स्थानपर जाने कि रजोगुण उत्पन्न हुआ, जो मोह से संयुक्त अज्ञान का विषय होवे उस तर्करहित जानने के अयोग्य को तमोगुण समझे, हर्ष, प्रीति, आनन्द, समदर्शी होना, बुद्धिमान् की सावधानी यह सातों के गुण सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होते हैं, अभिमान, मिथ्यावचन, लोभ, मोह, असंतोष यह रजोगुण के चिह्न हैं, यह भी सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होते हैं, इसीप्रकार, मोह, भ्रान्ति, शयन, आलस्य अज्ञानता यह सब इसी प्रकार सामने वर्त्तमान होते हैं यह तमोगुण जानने योग्य हैं, ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ॥

इसप्रकार बुद्धि का स्वाभाविक त्रिगुणात्मक होना कहकर कर्म्म से उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारों को कहते हैं, व्यासजी बोले कि, चित्त नानाप्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करता है बुद्धि उनको निश्चय करनेवाली है, हृदय अनुकूल और प्रतिकूल को जानता है यह तीन प्रकार के लिखे हुए कर्म्म हैं इसी कारण विषय इन्द्रियों से सूक्ष्म हैं और विषयों से सूक्ष्म चित्त और चित्त से सूक्ष्म बुद्धि और बुद्धि से सूक्ष्म आत्मा को माना है, मनुष्य की व्यावहारिक आत्मा बुद्धि है, जब बुद्धि आत्मा में आपही विपरीतदशा को करती है तब वह चित्तरूप होती है, इन्द्रियों के पृथक् २ विषय होने से बुद्धिही रूपान्तर करती है इस कारण वह सुननेवाली बुद्धि श्रोत्रइन्द्रिय को प्रकाश करती है और जो स्पर्श करती है वह स्पर्शेन्द्रिय कहीजाती है, देखनेवाली चक्षुरिन्द्रिय होती है और रस को प्राप्त करके रसनेन्द्रिय होती है और सूंघनेवाली होकर घ्राणइन्द्रिय हो जाती है यह सब पृथक् २ रूप बुद्धिही प्राप्त करती हैं इनको इन्द्रिय कहते हैं उनमें दृष्ट न आनेवाला चैतन्य आत्मा ईश्वररूप नियत होता है, पुरुष में

नियत होनेवाली बुद्धि तीनों सात्त्विकी आदि भावों में वर्त्तमान होती है, कभी हर्ष और कभी शोक में होकर इस लोक में कभी सुख दुःख से संयुक्त नहीं होती, यह भावात्मक बुद्धि उन तीनों भावों को उल्लंघन करके ऐसे वर्त्तमान होती है जैसे समुद्र लहराता हुआ किनारे को, जब इच्छावान् होती है तब मनरूप होती है बुद्धि में इन इन्द्रियगोलकों को गुप्त और परस्पर में पृथक् जाने, बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाली सब इन्द्रियां क्रम क्रम से सब की सब विजय करने के योग्य हैं, जो इन्द्रिय जब बुद्धि के साथ होती है तब पहिले निर्विभाग और एकरूप होनेवाली बुद्धि भी सतोगुण आदि भावों के साथ संकल्परूप चित्त में वर्त्तमान होती है तब बुद्धि से रक्षित इन्द्रिय संकल्प से उत्पन्न होनेवाले घट को अपना विषयरूप बनाती है इसीप्रकार क्रमपूर्वक रूप आदि विषयों को भी जानो परन्तु एक समयही नहीं करती है, इन तीनों में जो भाव वर्त्तमान होते हैं वह विषयों के अनुसार ऐसे प्रकट होते हैं जिसप्रकार रथ की नेमि अर्थात् चक्रधारा रथ के साथही होती है बुद्धि आदि उन सब सत्त्व आदि के रूप हैं परन्तु विषय नहीं हैं, विषयों के अलिप्त होने पर किसप्रकार इन्द्रियों से उनकी समीपता और उनसे घट आदि का ज्ञान होय इस शंका को कहते हैं कि बुद्धि तीनप्रकार की है एक तो सीप में चांदी का प्रकाश दूसरे घट आदि के व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली तीसरे ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाली इसी से वह बुद्धि सत्य, सत्यतर, सत्यतम इन तीन नामों से प्रसिद्ध हुई उनमें सत्यतर नाम बुद्धि ब्रह्मरूप है इससे चित्त इनस्थानों के अनुसार घूमनेवाली स्वतन्त्रता से उदासीन ब्रह्मरूप बुद्धिरूप इन्द्रियों के द्वारा विषय को ब्रह्मरूप करे अर्थात् ब्रह्म के छिपानेवाले अज्ञान का नाशकरे है इस अज्ञान के फल को कहते हैं, यह जगत् ऐसे स्वभाववाला है अर्थात् बुद्धि से कल्पित है इस बात को जानता मोह को नहीं पाता है आशय यह है कि जैसे जागनेवाला पुरुष स्वप्नादि के धन के नाश में शोक नहीं करता है न प्रसन्न होता है किन्तु सदैव पृथक् रहता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त अपवित्रचित्त पुरुष को इन्द्रियों के द्वारा आत्म-दर्शन होना असम्भव है जब चित्त के द्वारा उन इन्द्रियों की लगाम को अच्छे प्रकार से पकड़ता है तब इसका आत्मा ऐसे प्रकाश करता है जिसप्रकार दीपक से घटआदि रूप प्रकाश होते हैं उसी प्रकार इसको भी जानो, जैसे कि जल-चारी पक्षी जलपर घूमता है और उस में लिप्त नहीं होता है, उसीप्रकार विमुक्त आत्मा योगी प्राकृत पाप पुण्य से लिप्त नहीं होता है इसीप्रकार सब में चित्त न लगानेवाला ज्ञानी पुरुष विषयों को भोगता है और दोषों से लिप्त नहीं होता है आशय यह है कि जैसे ज्ञानी पुरुष पुत्रादि के नाश में शोक आदि को नहीं करता है इसीप्रकार देह से असंग योगी देह के कर्म्मों से लिप्त नहीं

होता है, पहिले किये हुए कर्म्मों को त्याग करके सब जीवों के आत्मारूप और गुणसमूह में चित्त न लगानेवाले जिस योगी की प्रीति सदैव आत्मा में है; आत्मा कभी बुद्धि और गुणों की ओर प्रवृत्त होता है, गुण तो आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा गुणों को अच्छेप्रकार जानता है वह निश्चय गुणों का उत्पन्न करनेवाला और साक्षी है इन सूक्ष्मबुद्धि और क्षेत्रज्ञ का यह अन्तर जानो, कि इन में एक तो गुण उत्पन्न करता है और दूसरा नहीं पैदाकरता है वह दोनों स्वभाव से पृथक् और सदैव संयुक्त हैं, जिसप्रकार मछली जल से पृथक् और संयुक्त होती है उसीप्रकार वह बुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनों संयुक्त हैं, जैसे कि मूंज में सीक पृथक् और युक्त भी है उसीप्रकार यह दोनों साथ और एक दूसरे से संयुक्त हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, बुद्धि विषयों को उत्पन्न करती है और ईश्वर क्षेत्रज्ञ विपरीत दशा करनेवाले सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों को उदासीन के समान देखता हुआ ऐश्वर्यपद पर नियत होता है वह सर्वस्वभावयुक्त है जो इन गुणों को पैदाकरता है, जैसे कि मकड़ी सूत्र को पैदाकरती है इसीप्रकार का गुण वह भी रखनेवाला है, तत्त्वज्ञान से गुप्त होनेवाले यह गुण लौटते नहीं हैं उन की फिर वर्त्तमानता नहीं पाई जाती है, आशय यह है कि रस्सी में सर्प का ज्ञान ध्यान से दूर होता है, फिर कभी रस्सी में सर्प्प की वर्त्तमानता नही होती इसीप्रकार यह गुण भी नष्ट होजाते हैं, कोई ज्ञानी पुरुष इसप्रकार से निश्चय करते हैं और दूसरे न्यायशास्त्रज्ञ इन गुणों के लौटने को निश्चय करते हैं, इन दोनों को विचार कर बुद्धि के अनुसार निश्चय करे इसी बुद्धि से आत्मा में आश्रय करे, आत्मा आदिअन्तरहित है सदैव मत्सरतारहित मनुष्य उस आत्मा को जानकर क्रोधहर्षरहित होकर विचरे इसप्रकार चिन्तारूप कर्म्म से बँधीहुई बुद्धिरूप हृदय की गांठ को काटकर निस्संशय जीवन्मुक्त पुरुष शोच से रहित सुखपूर्व्वक निवास करे, जैसे कि पूर्ण बहती नदी में गिरनेवाले अनपैराक पुरुष डूबने और उछलने से शोक को पाते हैं इसीप्रकार इस लोक को भी जानो परन्तु बुद्धिमान् तत्त्वज्ञ पुरुष थल में विचरता शोक से रहित होता है इसीप्रकार जो पुरुष अपनी आत्मा को आनन्दस्वरूप जानता है वह मनुष्य इसप्रकारसे सब जीवों का उत्पत्तिस्थान ब्रह्म की लय को जानकर और लौटपौट को अच्छीतरह विचारकर अर्थात् ईश्वर जानकर अद्वितीय सुख को पाता है मुख्य कर जन्मपानेवाले और शास्त्रोक्त आचारवाले ब्राह्मण का यह पूर्ण आत्मज्ञान

मोक्षरूप सुख को प्राप्तकरनेवाला है, इसको जानकर पाप पुण्य से पृथक् होता है, ज्ञानी का दूसरा लक्षण कहा है, इसको जानकर ज्ञानी लोग कर्मों से निवृत्त होकर मुक्त होते हैं, परलोक में जो अज्ञानियों का बड़ा भय है वह ज्ञानियों को नहीं होता है, ज्ञानी की जो सनातन गति होती है उस से अधिक किसी की नहीं होती है मनुष्य दोषों से युक्त स्त्री आदि वस्तु के भोग की निन्दा करते हैं और उस २ वस्तु को देखकर शोचकरते हैं उस स्थानपर शोच न करनेवाले ज्ञानियों को देखो जिन्होंने उन हर्ष शोक को क्रमपूर्वक जाना है, जो फल की वासनारहित कर्म्म को करता है वह उस कर्म्म का नाश करता है और जो पूर्व्व में किया है, वह दोनों उस कर्मकर्त्ता ज्ञानी के प्रिय अप्रिय को इसलोक में उत्पन्न नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि, इसलोक में धर्म्मों में उत्तम महाश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का प्राप्त करानेवाला जो धर्म्म है उसको आप कहिये व्यासदेवजी बोले कि, ऋषियों का कियाहुआ और सब धर्म्मों से श्रेष्ठ प्राचीन धर्म्म को तुमसे कहता हूं तुम चित्त से उसको सुनो, जैसे पिता बालक पुत्रों को स्वाधीन करता है उसीप्रकार बुद्धि और उपाय से उन इन्द्रियों को एकाग्र करे जो कि दुखदाई और सब ओर से दौड़नेवाली हैं, मन और इन्द्रियों की एकाग्रता में तपही उत्तम है और सब धर्म्मों से श्रेष्ठतर है वह धर्म्म उत्तम कहाजाता है कि उन सब इन्द्रियों को जिन में छठा मन है बुद्धि से स्वाधीन करके आत्मा से तृप्त और बहुत चिन्ता के योग्य को न मानकर नियत होजाय, जब बाह्याभ्यन्तर अर्थों से रहित इन्द्रियां सब के उत्पत्तिस्थान ब्रह्म में नियत होंगी तब तुम बुद्धि के द्वारा सनातन परमात्मा को देखोगे, जो ब्राह्मण महात्मा और ज्ञानी हैं वह उस उपाधिरहित सब के आत्मा परमात्मा को देखते हैं, जिसप्रकार फूलफल से युक्त बहुत शाखावाला वृक्ष अपनी दशा को नहीं जानता है कि मेरे फूलफल कहां हैं इसीप्रकार बुद्धि भी नहीं जानती है कि मैं कहां से आई और कहां को जाऊंगी और दूसरा सबका देखनेवाला अन्तरात्मा है वह देह के भीतर प्रकाशमान ज्ञानदीपक से आत्मा को देखता है तुम सर्वज्ञ होकर आत्मज्ञान से आत्मा को देखकर उपाधि से पृथक् होजाओ, तुम इसलोक में ब्रह्मज्ञान को पाकर पापरहित तप से पृथक् कांचली से छुटेहुए सर्प की समान सब पापों से निवृत्त हो जाओ, सब ओर बहुतप्रकार से बहनेवाली और लोकों को बहानेवाली पांच इन्द्रियरूप ग्रह और चित्तरूप संकल्पवाले किनारेवाली लोभ, मोहरूप, तृणयुक्त

कामक्रोधरूप सर्प और सत्यतारूप तीर्थवाली मिथ्यारूपी वचनों से व्याकुल क्रोधरूप कीचवाली अव्यक्त से प्रकाशित और अपवित्रचित्त पुरुषों से कठिनतापूर्वक पारहोनेवाली नदियों में उत्तम संसाररूपी नदी को अच्छी तरह से तरो यह संसाररूपी नदी अव्यक्त से प्रकट तीव्रधार अपवित्रचित्त पुरुषों से कठिनतापूर्वक पारहोने योग्य कामरूपी ग्राह से व्याप्त संसारसागर में वर्त्तमान वासनारूप पाताल से अगम्य अपने जन्म से प्रकट होनेवाली जिह्वारूप भ्रमरचक्र से भयानक जिसको कि बुद्धिमान् ज्ञानी धीर पुरुष तरते हैं उसका तरनेवाला सब ओर से मुक्त ज्ञानी पवित्र सर्वज्ञ और आत्मज्ञ उत्तम बुद्धि में नियत होकर ब्रह्महीं होगा सब संसार से उत्तम रीति से तरनेवाले निष्पाप विमलबुद्धि क्रोधरहित दयायुक्त प्रसन्नतापूर्वक तुम इन ज्ञानियों को ऐसे देखो जैसे कि पर्वत पर चढ़ा मनुष्य पृथ्वी के वर्त्तमान जीवों को देखता है, फिर सब सृष्टि के उत्पत्ति और लय के स्थानरूप ब्रह्म को देखोगे धर्म्मध्वज तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियों ने इस धर्म्म को जीवों के उपकारार्थ बहुत उत्तम जाना है, सर्वव्यापी आत्मा का यह ज्ञान जो कि पुत्र को उपदेश कियागया वह सावधान हितकारी और अपने आज्ञाकारी पुरुष को उपदेश करना योग्य है, हे तात! यह आत्मज्ञान बड़ा गोपनीय है जिस आत्मसाक्षी को मैंने बहुत स्पष्ट और यथार्थ वर्णन किया है, यह हर्षशोकरहित भूत भविष्य का उत्पत्तिस्थान और उनका रूप आत्मा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन तीनों में कोई नहीं है, इसको स्त्री पुरुष में से कोई भी जानकर पुनर्जन्म को नहीं पाता है, यह योगधर्म आत्मसिद्धि के निमित्त कहा जाता है, हे पुत्र! जैसे सब मत मुक्ति में समाप्त होते हैं उसीप्रकार यह मेरे वचन हैं—वह मत फलों के अन्तर होने से होते हैं और वाणी से परे होने से नहीं भी होते हैं इसीकारण सब तान्त्रिकों को यह शास्त्र स्वीकार करना योग्य है, हे उत्तम पुत्र! इसी हेतु से प्रीतिमान् शान्तचित्त भक्तिमान् पुत्र से प्रश्न कियाहुआ पुरुष इस शास्त्र को जिसको कि पिता ने पुत्र के सन्मुख वर्णन किया यथार्थ वर्णन करे॥ २५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

अठहत्तरवां अध्याय॥

व्यासजी बोले कि, गन्ध रस आदि सुखों की इच्छा न करे और उनके सिवाय मान कीर्त्ति और यश को भी नहीं चाहै ज्ञानी ब्राह्मण का यही व्यवहार है, सेवा करने का इच्छावान् ब्रह्मचारी सब वेदों को पढ़े जो पुरुष यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं को जानता है वह ब्राह्मण उत्तम पदवाला नहीं है किन्तु जो सब जीवों में सजातियों के समान सर्वज्ञ और सर्ववेदज्ञ अनिच्छावान् अर्थात्

ज्ञान से तृप्त है वह कभी नहीं मरता है अर्थात् मुक्त होकर जीवताही जीवन्मुक्त होता है इस अनिच्छा से वह ब्राह्मण प्रथमाधिकारी अवश्य है, नानाप्रकार के इष्टि और पूर्ण दक्षिणावाले यज्ञों को करके दया और अनिच्छा के अभ्यास विना किसी दशा में भी ब्रह्मभाव को नहीं प्राप्त होसक्ता है, जब यह निर्भय होता है और जीवमात्र इससे अभय होते हैं और इच्छा और शत्रुतारहित होता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, जब जीवमात्र में मन वाणी और कर्म से हिंसारहित होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, अकेला कामही बन्धन है यहां दूसरा बन्धन नहीं है कामबन्धन से छूटना ही ब्रह्मभाव के योग्य समझाजाता है, जैसे काले बादल से चन्द्रमा अलग होता है इसीप्रकार काल से अलग रजोगुण से पृथक् धैर्यवान् काल को चाहता अपने धैर्य से वर्त्तमान होता है, जैसे कि जल सब ओर से पूर्ण निश्चल समुद्र में प्रवेश करते हैं इसी प्रकार सब इच्छा जिसमें प्रवेश होती हैं वह शान्ति को पाता है अर्थ चाहनेवाला शान्ति नहीं पाता है, वही सत्य संकल्प और संकल्प से होनेवाली कामनाओं से शोभित है न कि स्वर्ग आदि का चाहनेवाला क्योंकि वह देहाभिमानी कामनाओं से स्व-र्गादिकों को पाता है तात्पर्य यह है कि थोड़े काल पीछे स्वर्ग से पतित किया जाता है, वेद का रहस्य हितकारी वचन है और उसका शिर गुप्त शान्तरूप प्रकट है और शान्तचित्त की प्रकटता दान है और दान का रहस्य तप है, नि-र्गुण ब्रह्म को पाकर सब गुप्त और प्रकट संसार के उल्लंघन करनेवाले और परम-पद पानेवाले को फिर आवागमन नहीं होता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उनासीवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, मानापमान और अर्थ धर्मादि गुणों का कर्ता पुरुष जो मोक्ष का चाहनेवाला होय तब उस शिष्य को पहिले यह बड़ा आत्मज्ञान गुण-वान् कहनेवाले से सुनना योग्य है, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पांचवीं पृथ्वी, भाव, अभाव, काल यह आठों इन पञ्चतत्त्वों से मिले हुए सब जीवों में नियत हैं देह के रूप के प्रकट करनेवाले वेदवचनों का जाननेवाला पुरुष देह के छिद्रों को आकाश जाने उस आकाश का रूप श्रोत्र इन्द्रिय को जाने और उसके विषय को शब्द जाने, चलना वायु का रूप है प्राण अपान उसके भेद रूप हैं स्पर्श को इन्द्रिय और विषय जाने ऊष्मा अन्न की परिपक्वता दीपक आदि का प्रकाश सन्तप्तता और पांचवां नेत्र यह सब गुण उसके रूप हैं और यही रक्त श्वेतादि रूप उसका विषय है पवित्र करना और पृथ्वी में प्रवेशकर उसके अंगों के जोड़ को निर्बल करके हलका रहना और रस यह तीनों जल के गुण

कहेजाते हैं रुधिर मस्तक और जो २ आर्द्रवस्तु हैं उनको जलरूप जानो, जिह्वा रसनेन्द्रिय कहाती है और रस जलों का गुण है और कठोर वस्तु हाड़ नख आदि डाढ़ी मूंछ शिरकेश शिरा और स्नायु नाम नाड़ी पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाली धातु और नाक नाम से प्रसिद्ध घ्राणेन्द्रिय यह विषय हैं और गन्ध नाम पृथ्वीरूप जानना चाहिये, पिछले सब तत्त्वों में पहिले तत्त्वों के गुण हैं अर्थात् आकाश का शब्द गुण, वायु में शब्दस्पर्श, अग्नि में शब्द, स्पर्श रूप जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पृथ्वी में गन्ध समेत पांच हैं इसीप्रकार सब प्राणियों में पहिले अविद्या, काम, कर्म्म, गुण कहे हैं मुनियों ने पञ्चतत्त्वों की उत्पत्तिको जाना है इन में नवां चित्त और दशवीं बुद्धि है ग्यारहवां आत्मा है वह अनन्त सर्वरूप और सर्वोत्तम कहा जाता है, बुद्धि निश्चयात्मक है और चित्त संशयात्मक है वह क्षेत्रज्ञ नाम जीवकर्मों के अनुमान से जानाजाता है, जो पुरुष इन कामरूप भावों से संयुक्त आत्मा को देखता है और वास्तव में सबसे अलिप्त जानता है वह सकल कर्म्म करता नहीं है तप का रहस्य त्याग, त्याग का रहस्य सुख, सुख का रहस्य सर्ग अर्थात् सगुण ब्रह्मभाव है, सर्ग का रहस्य शम है जो संतोष के द्वारा बुद्धि की निर्मलता को चाहै वही बुद्धि शान्ति का लक्षण है क्योंकि वह शोक सन्देह को लोभ के साथ संतप्त करके निर्बल करती है, शोक मोह और मत्सरता से पृथक् शान्त शुद्ध चित्त इन छओं गुणों का लक्षण रखनेवाला ज्ञान से तृप्त मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, इसप्रकार मुक्त पुरुष के लक्षण को कहकर मुक्ति के साधन को कहते हैं—जिन पुरुषों ने सतोगुणयुक्त सत्यता शान्तचित्तता दान, तप, त्याग, शम, इन छः गुण और श्रवण, मनन, निदिध्यासन और शास्त्र, अनुमान, अनुभव यह तीनों इच्छाओं से युक्त और देह में नियत आत्मा को देह की वर्त्तमान दशा में जाना है वह इस मुक्त लक्षण गुण को प्राप्त होकर देह में उस अजन्मा अविनाशी, स्वभावसिद्ध और ब्रह्म को प्राप्त होनेवाले अविनाशी सुख को पाते हैं अथवा पक्षान्तर में उपनिषद् नाम विद्या को प्राप्त होनेवाला पुरुष भी ध्यान आदि के क्रम से अविनाशी सुख को पाता है, वह उपनिषद् विद्या सदैव से अविनाशी आदि अनेक गुण रखनेवाली है, केवल शास्त्र के ही ज्ञान से मुक्ति नहीं होती किन्तु दूसरे साधन की भी आवश्यकता है उसको कहते हैं, यह पुरुष चित्त को कर्मरहित कर सब ओर से नियत करके जिस तुष्टिता को पाता है वह दूसरे प्रकार से प्राप्त करना कठिन और असम्भव है, जिस ब्रह्म के कारण विना भोजन के निर्धन भी तृप्त होता है और संसार से वैराग्यवान् भी बलवान् होता है जो उसको जानता है वही वेदज्ञ है, जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सावधानी से इन्द्रियों को रोककर ध्यान में नियत होता है वह आत्मा से प्रीति रखनेवाला कहाजाता है परमतत्त्वों में समाधि करनेवाले अनिच्छायुक्त

नियत पुरुष को सब ओर से सुख मिलता है, पञ्चतन्मात्रा, बुद्धि, महत्तत्त्व और प्रधानसमूह और स्थूलतत्त्व ग्यारह इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयसमूहों के त्याग करनेवाले मुनि के सुख से दुख ऐसे दूर कियाजाता है जैसे कि अंधकार सूर्य से दूर होता है, उस कर्म के उल्लंघन करनेवाले और गुणों के ऐश्वर्य्य से पृथक् विषयों से अलिप्त ब्राह्मण को जरा मृत्यु नहीं होती है इसीसे करुणायुक्त सब ओर से वैराग्यवान् राग द्वेष से रहित होता है, अर्थात् आत्मतत्त्व का जाननेवाला इच्छारहित होता है ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय ॥

इसप्रकार से पञ्चतत्त्व अविद्या काम कर्म चित्त बुद्धि इन दशरूपयुक्त देह है इसके विशेष अनन्त आत्माहै वहभी लिंगात्मा है इस भ्रम के निवृत्तके अर्थउसको भी दशों में ही वर्त्तमान सिद्ध करते हैं—व्यासजी बोले कि, स्थूल शरीर से पृथक् जीव को सूक्ष्मशरीरवालाकहा इसहेतु से शास्त्रज्ञ योगी उस लिंगात्माको शास्त्रोक्त कर्म से समाधि में देखते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं जैसे कि सूर्य की किरणें एकबार ही सब जगह घूमती हैं और नियत रहती हैं और गुरुकी युक्ति से दृष्टि पड़ती हैं इसीप्रकार जीवन्मुक्त लोग प्राचीन स्थूल शरीर को त्यागकर सूक्ष्मरूप से पृथ्वी पर घूमते हैं, जैसे कि जल में सूर्य का किरणमण्डल जिस रूपवाला विदित होता है उसीप्रकार सजीव देहों में सत्प्रधान लिंग उसी रूप वाला दृष्ट आता है, और वह योगी उसी को देखता है, जितेन्द्रिय और लिंग नाम देह के जाननेवाले योगीपुरुष अपने लिंग देह से उन स्थूल देहों से पृथक् सूक्ष्म शरीर रखनेवाले जीवों को देखते हैं वह योगी परकायप्रवेशनादि कर्म करने को समर्थ होते हैं, योग ऐश्वर्य जो कि जगत् कारण प्रधान का आत्मा रूप है उससे निवृत्त और कर्म से दीखनेवाले रजोगुण को त्याग करनेवाले सोते जागते हैं उन सब योगाभ्यासी पुरुषों के स्वाधीन वह लिंग शरीर सदैव होता है जैसा रात्रि में वैसाही दिन में स्वाधीनता को करते हैं उन योगियों का जीवात्मा सदैव गुणों के कार्य महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा नाम सात सूक्ष्म गुणों समेत इन्द्रलोक आदि में आनेजानेवाला और तीनों काल में विनाशवान् व्यवहार से अजर अमर होता है, इसप्रकार योगियों को सूक्ष्मशरीर का अपरोक्ष ज्ञान कहागया वह अज्ञानियों को भी प्राप्त है, चित्त बुद्धि से विजय कियाहुआ जीवात्मा स्वप्नावस्था में भी अपने और दूसरे के शरीर जोकि स्थूल शरीर से पृथक् हैं उनको जानता है और सुख दुःखों का भी ज्ञाता है परन्तु वहां भी सुख दुःखों को पाकर क्रोध लोभ से दुःखी होता है और बहुत

अर्थवान् होकर प्रसन्नचित्त होता है तब पुण्य भी करता है और जीवता सा दीखता है, प्रत्यक्ष है कि उस जठराग्नि के भीतर वर्त्तमान होकर गर्भरूप को धारण किया और दशमहीने तक माता के उदर में निवासी होकर भोजन की वस्तु के समान पेट में नहीं पचता है, तमोगुण रजोगुण से युक्त गिरे हुए मनुष्य उस परमेश्वर के अंश हृदयस्थ जीवात्मा को शरीरों के भीतर नहीं देखते हैं तो आत्मा की प्राप्ति कैसे होय उसका वर्णन करते हैं, उस आत्मा को चाहनेवाले पुरुष योगशास्त्र को जानकर सूक्ष्म और प्रलय में भी अविनाशी कारण नाम शरीर को उल्लंघन करते हैं आशय यह है कि योग से तीनों देह त्याग करनेवाले योगियों को आत्मा की प्राप्ति है, शाण्डिल्यऋषि ने पृथक् रूपवाले चार आश्रम के कर्मों के क्रम में समाधि के योग्य सब वृत्तियों के शान्तिरूप इस योग का वर्णन किया है, सात सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रिय, विषय, चित्त, बुद्धि, महत्तत्त्व, अव्यक्त, पुरुष, आत्मा को और छः अंगयुक्त महेश्वर को जानकर और त्रिगुणात्मक ज्ञान का रूपान्तर इस जगत् को जानकर गुरु, वेदवचनों के विचार से परब्रह्म को साक्षात्कार करता है ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि, इसप्रकार सूक्ष्म स्थूल देहों से पृथक् आत्मा को कहकर मूल अज्ञान से भी उसकी पृथक्ता वर्णन करते हैं कि हृदय में कामरूप वृक्ष अपूर्व है जो मोह के समूहरूप बीज से उत्पन्न क्रोध और अभिमानरूप शाखाओं से युक्त इच्छाकर्म्मरूप थांवले में वर्त्तमान अज्ञानरूप मूल और प्रमादरूप जल से सींचाहुआ है उसमें निन्दारूप पत्ते और पूर्व पापही सार हैं मोह चिन्ता शोकआदि डालियां भयरूप अंकुर और लोभरूपी मोहिनी लताओं से आच्छादित है लोहमयी पाश में बँधाहुआ महालोभी उसके फल के चाहनेवाले मनुष्य उस फल देनेवाले बड़े वृक्ष को चारों ओर से घेरकर समीप बैठते हैं, जो पुरुष उन पाशों को आधीन करके उस वृक्ष को काटता है वह उन दोनों प्रकार के दुःखों को त्यागकरता है विषय से सम्बन्ध रखनेवाला सुख भी दुःख है इस कारण दुःख को द्विवचन कहा है, जिस कारण से अज्ञानी उस वृक्ष को बढ़ाता है उसीकारण से वह इसप्रकार उसको मारता है जैसे कि विष की गांठ रोगी को मारती है, उस दृढ़ बीजवाले वृक्ष की जड़ निर्विकल्प समाधिरूप उत्तम तेज के द्वारा काटी जाती है, जो पुरुष केवलकाम की निवृत्ति और कामशास्त्र के बन्धन को जानता है वह दुःखों को उल्लंघनकर वर्त्तमान होता है, देहपुर और बुद्धि स्वामी और उस निश्चयात्मक बुद्धि का मन्त्री चित्त है वह शरीर में नियत है

चित्तरूप मन्त्री से बसाये गये इन्द्रियरूप पुरवासी हैं और इन्द्रियों का विषय धन है उन इन्द्रियरूप पुरवासियों के पोषण के अर्थ दान आदि बड़े यज्ञों का प्रारम्भ है उस कर्म्म के प्रारम्भ में दो दोष भयकारी हैं जो कि तमोगुण रजोगुण नाम हैं अर्थात् वह राजस, तामस, अहंकार, कर्म्मफल, सुख, दुःखको जैसे मन्त्री चित्त ने उत्पन्न किया हो वैसे भोगते हैं, यह चित्त बुद्धि अहंकार इस देहरूपी पुर के अधिपति हैं और तीनों उस सुख आदि रूप धन को परस्त्रीभोग आदि के द्वारा भोगते हैं उस दशा में अजिता बुद्धि भी चित्त के समान दोषों से लिप्त कहीजाती है, पुरवासी भी चित्तरूप मन्त्री से भयभीत होते हैं तब उनकी दृढ़-चित्तता भी नष्ट होजाती है और दोषवान् बुद्धि भी जिस धन पुत्रादि अर्थ को अपना हितकारी निश्चय करती है वह अर्थ दुःखदायी होकर नाश होजाता है, नाशवान् अर्थ भी दुःख का देनेवाला है उसको सुनो कि जब चित्त बुद्धिके द्वारा धनआदि को उनके नाश होने के पीछे शोचकर यादकरता है तब वह चित्त महापीड्यमान होता है, जब चित्त बुद्धि से पृथक् होता है तब केवल चित्त कहाजाता है परन्तु वास्तव में वही बुद्धि है इसीहेतु से चित्त के योग से बुद्धि में भी दुःख सुख होते हैं, अनात्मारूप बुद्धि और चित्त के दुःख में आत्मा की क्या हानि होती है इसको विचारकर कहते हैं—उस बुद्धि में प्रतिबिम्बरूप से नियत इस आत्मा को केवल रजोगुणही व्याप्तकरता है वह रजोगुण दुःखरूप फलका दाता है इसकारण वह चित्त रजोगुण से मित्रता करता है अर्थात् प्रवृत्ति के सन्मुख होता है और उन पुरवासी लोगों को पकड़कर रजोगुण के आधीन करता है ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ॥

इसप्रकार संसाररूपी कारागृह से मोक्ष होने के लिये व्यासजी की कहीहुई युक्ति के कहने को भीष्मजी उद्यत हुए—भीष्म उवाच—हे निष्पाप, पुत्र ! व्यासजी के मुख से निकला हुआ चैतन्य आत्मा की उपाधिरूप आकाशादि तत्त्वों का बड़ा विचार तुम बड़ी श्लाघा से सुनो, देदीप्य अग्नि के समान प्रकाशित अज्ञानरहित भगवान् व्यासजी ने उन अज्ञानढके धूमवर्ण शुकदेवजी से कहा कि, हे पुत्र ! इसकारण से मैं निश्चय किये हुए शास्त्र को कहता हूं कि निश्चलता, गुरुत्व, कठिनत्व, अन्नादि की उत्पत्तिस्थान, गन्ध अपनी प्रबलता से देहादि की वृद्धि करना गन्ध के प्राप्ति की सामर्थ्य एकत्र होकर दृढ होना, मनुष्यादि का रक्षास्थान और पञ्चभूतसम्बन्धी चित्त में जो धैर्य का भाग है यह सब पृथ्वीसम्बन्धी गुण हैं—शीतलता, आर्द्रता, जारी होना, सचिक्कणता,

शोभा, जिह्वा अर्थात् रसनेन्द्रिय की चेष्टा, बरफ़ आदि जलविकार, तन्दुलादि पाक यह सब जलसम्बन्धी गुण हैं—स्पर्श के योग्य होना, अग्नि का प्रकाश, ऊष्मा अन्न का परिपाक, शोक, रोग, शीघ्रगामिता, तीव्रता, ऊपर का बराबर जाना, यह सब अग्निसम्बन्धी गुण हैं—शीत उष्ण से रहित स्पर्श, वचन इन्द्रिय के गोलक, गमन में स्वतन्त्रता, पराक्रम, शीघ्रता, छूटना, श्वास का आना जाना, प्राणरूप से चैतन्य की उपाधिरूप होना, जन्म, मरण यह सब वायुसम्बन्धी गुण हैं—शब्द, व्यापकता, छिद्रत्व, आश्रयत्व, अनन्याश्रयत्व, स्पर्शरहित अव्यक्तता, एक दशा से दूसरी दशा में न होना,—यह आकाशसम्बन्धी हैं यह सब पचास गुण पांचों तत्त्वों से प्रकट हैं चित्त में नौ गुण हैं अर्थात् मण्डन करना, खण्डन करना, वार्त्तालाप में प्रवीणता, स्मरणता, भ्रान्ति, मनोरथवृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष आदि और व्याकुलता, प्रिय अप्रियता का नाश, निद्रारूप वृत्ति, समाधि से चित्त का रोकना, संशय प्रत्यक्ष आदि प्रमाण की वृत्ति इन पांचों को बुद्धि के गुण जानो, युधिष्ठिर ने कहा कि बुद्धि किसप्रकार से पांचों गुण रखनेवाली है और कैसे पांचों इन्द्रियों के गुण हैं हे पितामह ! इन सब मोक्षज्ञानों को मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि तत्त्वों के गुण पचास और बुद्धि के पांच पचपन हुए जो कि पांचोंतत्त्व भी बुद्धि के ही गुण हैं इससे सबको इकट्ठा किया तो साठ हुए वह सब गुण चैतन्य से संयुक्त हैं पञ्चतत्त्व और उनकी विभूतियों को अविनाशी ब्रह्म से मिला हुआ कहते हैं हे पुत्र! यहां उसको सदैव नहीं कहते हैं अर्थात् जैसे सीपी में चांदी होना नित्य नहीं है इसी प्रकार केवल चैतन्य के देखने के समय से विश्व की उत्पत्ति है, इसीकारण चैतन्य की सदैव एक दशा होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला जगत् रस्सी के सर्प की समान मिथ्या है, ब्रह्म अद्वैत सिद्ध होता है, यह ऊपर वर्णन किया हुआ वेदवचन के समान है इसको कहते हैं, हे पुत्र ! प्रथम लिखे हुए श्लोक में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में दूसरे वादियों ने जो वेद से विरुद्ध वचन तुम से कहा वह विचार से दोषयुक्त है अर्थात् युक्तिसहित भी अयुक्तिक है क्योंकि वेद का सिद्धान्त बड़ी युक्तिवाला है, परन्तु तुम इस लोक में मेरे कहे हुए उस सदैव नित्य सिद्ध ब्रह्म को ब्राह्मच ऐश्वर्य्य अच्छेप्रकार प्राप्त करके वृत्ति से रहित बुद्धिवाले हो ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तिरासीवां अध्याय ॥

शान्तबुद्धि होने से कल्याण है वह शान्ति मरणसमय पर स्वतः उत्पन्न

होजाती है क्योंकि स्मृति के अनुसार मृत्यु मौनरूप है फिर साधना से क्या प्रयोजन है यह शंका करके एक गाँव से दूसरे गाँव के जाने के समान जन्म मृत्यु हैं परन्तु वह मौनता उत्पत्ति नाश के समान केवल स्थूल देह से है सूक्ष्मदेह से नहीं है इसके विषय में मृत्यु और ब्रह्माजी के प्रश्नोत्तर वर्णन करते हैं— युधिष्ठिर बोले कि सेना के मध्य में जो मृतक छः महाबली राजा लोग वर्त्तमान हैं वह पृथ्वीपर सोते हैं उनमें हरएक भयकारी पराक्रमी दशहज़ार हाथी के समान बली था यह लोग युद्ध में पराक्रमी मनुष्यों के हाथ से मारेगये, मैं उस युद्ध में इन पुरुषों के किसी दूसरे मारनेवाले को नहीं देखता हूं वह पराक्रम तेजबल में युक्त थे फिर यह बड़े ज्ञानी निर्जीव सोते हैं और उन निर्जीवों में यह शब्द वर्त्तमान है कि वह मरगये, बहुधा ऐसे भयकारी पराक्रमी राजा लोग मरगये इसमें मुझ को संशय है कि मरगये यह शब्द कहां से उत्पन्न हुआ, हे देवस्वरूप, पितामह! मृत्यु किस की है स्थूल सूक्ष्म शरीर की है या आत्मा की है और किस पुरुष से उत्पन्न हुई और किसकारण संसार को मारती है यह सब मुझ को समझाइये—भीष्मजी बोले कि, हे तात! पूर्वकाल के सतयुग में एक अनुकम्पक नाम राजा हुआ वह युद्ध में क्षीणवाहन होकर शत्रु की सवारीपर शत्रु की स्वाधीनता में वर्त्तमान हुआ उसका हरिनाम पुत्र जो भगवान् के समान पराक्रमी था वह सेना और साथियों समेत युद्ध में शत्रुओं के हाथ से मारागया तब राजा अनुकम्पक जो शत्रु के स्वाधीनपुत्र शोकयुक्त और शान्तचित्त था उसने पृथ्वीपर स्वतः आये हुए नारदजी को देखा और अपने शत्रुवश और पुत्रशोक होने का सब वृत्तान्त नारदजी से वर्णनकिया तब तपोमूर्त्ति नारदजी ने उसके वचन सुनकर पुत्रशोक की दूरकरनेवाली कथा उससे वर्णन की अर्थात् नारदजी बोले कि हे राजन्! इस बड़े विषयवाली कथा को सुनो कि प्रजा उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माजी सृष्टिको उत्पन्न करके उसकी अत्यन्त वृद्धि को न सहसके, हे अधिकार संच्युत न होनेवाले, युधिष्ठिर! उससमय पृथ्वी जीवों से कहीं भी खाली न रही तब तीनों लोक जड़पदार्थ के समान अचल होगये और संसार के नाश के विषय की चिन्ता ब्रह्माजी के चित्त में उत्पन्न हुई और ब्रह्माजी ने विचार करके सृष्टि के नाश होने का कोई कारण न समझा और उनके क्रोध करने से इन्द्रियों के छिद्रों के द्वारा अग्नि प्रकट हुई तब ब्रह्माजी ने उस अग्नि के द्वारा सब दिशाओं को भस्म किया और भगवान् के कोप से उत्पन्न हुई अग्नि ने स्वर्ग, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र आदि चराचर जगत् को भस्म किया और सब स्थावर जंगम जीव भी भस्म होगये तब जटाधारी संसार के रक्षक श्रीशिवजी महाराज ब्रह्माजी के पास गये तब ब्रह्माजी शिवजी से मिलकर संसार के उपकारार्थ यह वचन बोले कि हे शिवजी! आप मेरी बुद्धि से सब

वरों के योग्य हो मैं तुम्हारे मन की इच्छा के समान तुम्हारा अभीष्ट करूंगा ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चौरासीवां अध्याय ॥

शिवजी बोले कि हे प्रभो, पितामह ! संसार की उत्पत्ति के निमित्त इस मेरी प्रार्थना को सुनो कि यह सृष्टि आपनेही उत्पन्नकरी है इसपर क्रोध न करिये हे ब्रह्मन् ! सब प्रजालोग आप के तेज की अग्नि से जलते हैं उनको देखकर मुझको दया उत्पन्नहोती है इनपर दया कीजिये, ब्रह्माजी बोले कि मैं कोप नहीं करता हूं और यह भी नहीं चाहता हूं कि सृष्टि का नाश होजाय यह सृष्टि का नाश पृथ्वी के बोझ उतारने को किया जाता है सो हे महादेवजी ! इस भार से क्रान्त भयभीत पृथ्वी को जल में डूबता हुआ जानकर यह युक्ति कीगई, जब बुद्धि के बड़े विचार से इस संसार की वृद्धिको न्यून करने का कोई विचार न पाया तब मुझ में क्रोध प्रवृत्त हुआ, शिवजी बोले कि हे देवेश्वर ! प्रसन्न हूजिये और संसार के नाश के निमित्त क्रोध को त्यागो जिससे कि सब जड़ चैतन्य जीव बचें सब छोटे बड़े सरोवर, नदी, तृण और चारों खान के जीव जलकर भस्म होगये अब आप प्रसन्न हूजिये यही वर मैं मांगता हूं, यह नाशवान् भस्म हुए जीव अब किसीप्रकार से उत्पन्न नहीं होंगे इसकारण आप अपनेही तेज से इस तेज को हटाओ और इनके वृद्धि की कोई दूसरी युक्ति विचारिये हे पितामह ! जैसे यह सब जीव बचें सोई कीजिये जिनकी स्त्रियां गौ आदि नष्ट होगई हैं वह नष्ट होवें, हे लोकेश्वरों के स्वामी ! मुझ को आप ने अधिदैव के अधिकारपर नियत किया है और सब संसार तुम्हाराही बनाया है मैं आप को प्रसन्न करके मरमरकर जन्म लेनेवाली सृष्टि को चाहता हूं, नारदजी बोले कि यह शिवजी के वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने उस तेज को अपने अन्तरात्मा में आकर्षण करलिया और उस अग्नि को भी अपने में लय करके जीवों के जन्म मरण को विचार किया आशय यह है कि जन्म मरण इन दोनों के होने से न पृथ्वी पर भार होगा न सृष्टि की अधिकता होगी इन सब बातों के पीछे उन ब्रह्माजी के शरीरी छिद्रों से एक स्त्री प्रकट हुई जिसके काले और लाल वस्त्र और काले भीतरी नेत्र और दिव्य कुण्डलों से शोभित दिव्य भूषणों से अलंकृत थी वह देह के छिद्रों से निकलकर दक्षिण दिशा में नियत हुई और उन दोनों विश्वेश्वर देवताओं ने उस शोभित कन्या को देखा सो हे संसार के पोषण करनेवाले, राजन्, युधिष्ठिर ! ब्रह्माजी ने उस कन्या को बुलाकर यह कहा कि, हे मृत्यो ! तुम को हमने स्मरण किया था सो तुम सब स्थावर जंगम जीवों को मारो और किसी पर दया मत करो सब छोटे

बड़ों को विनाश करो तुम मेरी आज्ञा से बड़े कल्याण को पाओगी यह ब्रह्मा का वचन सुनकर उस कमलमालाधारी स्त्रीरूप शोचग्रस्त मृत्यु ने बड़ा ध्यान करके अश्रुपात किया और मनुष्यों के आनन्द के निमित्त उन अपने अश्रुपातों को दोनों हाथों में भरलिया और प्रार्थना की और आंसू गिरने से सब जीवों का एकही वार नाश न हो यह अभिप्राय था ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पचासीवां अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, फिर वह दीर्घनेत्रवाली चित्त से दुःख को दूरकर हाथ जोड़ नम्र शिर से इसी प्रयोजन को कहनेलगी कि हे श्रेष्ठवक्ता, ब्रह्माजी ! तुम से उत्पन्न हुई मुझ सी स्त्री सब प्राणियों को भय उत्पन्न करनेवाली कैसे होसक्ती है, मैं अधर्म का भय करती हूं मुझ को धर्मरूप कर्म का उपदेश करो आप मुझ भयरूप अग्नि को विचार कर कल्याणरूप नेत्रों से देखो हे प्राणियों के स्वामी मैं उन निरपराधी बालक, वृद्ध, तरुण, पुरुषों को नहीं मारूंगी मैं आप को नमस्कार करती हूं आप मुझपर प्रसन्न हूजिये, प्यारे पुत्र, बराबर के भाई और माता पिता आदि को भी नहीं मारूंगी जिनके कि सम्बन्धी मारेगये वह शाप देंगे मैं उनसे भय करती हूं, दुखिया जीवों का अश्रुपातीय जल मुझ को बहुत वर्षोंतक सदैव भस्म करेगा मैं उनसे अत्यन्त भयभीत आप की शरण आई हूं हे देव ! पाप करनेवाले जीव यमलोक में गेरेजाते हैं इस से हे वरद ! मैं आप को प्रसन्न करती हूं मेरे ऊपर कृपाकरो हे लोकपितः ! मैं आप से यह चाहती हूं कि तुम्हारे प्रसन्नता के अर्थ मैं तपस्या करूं ब्रह्माजी बोले कि हे मृत्यु ! मैंने तुझ को संसार के नाश के निमित्त उत्पन्न किया है तुम जाओ सब संसार को मारो किसी बात का विचार मत करो यही बात अवश्य होगी कभी इस के विपरीत न होगी हे पापरहित, निर्दोष, स्त्री ! मेरे वचनों को मानकर जैसा कहा है वैसाही करो, फिर हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! इसप्रकार से आज्ञा पाई हुई मृत्यु ने उत्तर नहीं दिया और नम्रतापूर्वक ब्रह्माजी के सन्मुख नियत होगई और वारंवार आज्ञप्त होने से निर्जीव के समान अवाक् होगई तदनन्तर देवों के देव ईश्वर ब्रह्माजी आप से आप प्रसन्न हुए और मन्दमुसक्यानयुक्त होकर सब लोकों को देखा और देखतेही अपनी कृपा प्रकट की और सुनाजाता है कि ब्रह्माजी को क्रोधरहित देखकर वह कन्या उनके साम्हने से पृथक् चलीगई, हे राजेन्द्र ! तब वह मृत्यु सृष्टि के नाशकर्म्म को भूलकर वहां से चलकर शीघ्रही धेनुक नाम तीर्थ को गई और वहां महाउत्तम उग्रतप किया और पन्द्रह पद्म वर्षतक एक चरण से खड़ीरही फिर भी उन महातेजस्वी ब्रह्माजी ने उस उग्रतपवाली कन्या

से कहा कि हे मृत्यो ! तू मेरे वचन को कर यह सुनकर मृत्यु उनके वचन को ध्यान न करके फिर सातपद्म वर्षतक एकपैर से खड़ीरही फिर तेरहपद्म वर्ष खड़ी रही और अयुत वर्षतक मृगों के साथ घूमी फिर दो अयुत वर्षतक वायु के आधार से रही फिर मौनता में नियत हुई और आठ सहस्रवर्षतक जलमें निवास किया फिर वह कन्या कौशिकी नदी को गई वहां वायु और जल के आहार से नियम किया फिर वह श्रीगंगाजी और शुद्ध मेरु पहाड़ पर गई वहां काष्ठ के समान निश्चेष्ट सृष्टि के आनन्द की इच्छा से नियत हुई तदनन्तर हे राजेन्द्र! वह हिमालय के मस्तकपर जहां देवताओं ने यज्ञ किया था गई वहां भी एक निखर्व वर्ष तक अंगूठा विना लगाये खड़ीरही और बड़ी युक्ति से ब्रह्माजी को प्रसन्न किया तदनन्तर वहां लोकेश ब्रह्माजी ने आकर उससे यह कहा कि हे पुत्रि! यह क्या करती है मेरा वह वचन करो फिर मृत्यु ने भगवान् ब्रह्माजी से कहा कि, हे देव ! मैं सृष्टि को नहीं मारूं यह आप से प्रार्थना करती हूं, फिर तो ब्रह्माजी ने बड़े हठ से उस अधर्म से भयभीत मृत्यु से कहा कि हे मृत्यो ! तेरा अधर्म नहीं है तुम निस्संदेह प्राणियों को मारो मेरा वचन अन्यथा कभी नहीं होगा तेरे पास यहांही सनातनधर्म आवेगा मैं और सब देवता सदैव तेरी भलाई में प्रवृत्त हैं और इस दूसरे तेरे मनोरथों को देता हूं हम से पीड्यमान प्रजालोग तुझ को दोष न लगावेंगे, तुम पुरुषों में पुरुषरूप स्त्रियों में स्त्रीरूप और नपुंसकों में नपुंसकरूप होगी अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्तहोगी और तुम को पाप नहीं होगा, हे राजन् ! इसप्रकार आज्ञायुक्त भी उसमृत्यु ने हाथ जोड़कर फिर उस अविनाशी ब्रह्माजी से निषेध किया, तब ब्रह्मा ने फिर कहा कि तू मनुष्यादिकों को मार तुझ को दोष कभी न होगा मैं ठीक विचारपूर्व्वक करूंगा, हे मृत्यो ! मैंने जिन अश्रुपातों के कणों को जिनको पूर्व्व में तैंने अपने हाथों में धारण किया था घोररूप रोग बनाया है वह समय आनेपर जीवों को मारेंगे, तुम सब जीवों के अन्तसमयपर उन दोनों काम क्रोध को चलायमान करो अर्थात् उन के कर्म्मफल के द्वारा काम क्रोध प्रकट होनेपर तुम उनको मारो इसप्रकार से तुम को धर्म्म होगा और राग द्वेष से रहित तुम को अधर्म्म भी न होगा, तुम इसप्रकार से धर्म्मपालन करोगी और अधर्म में नहीं डूबोगी इसकारण इस अधिकार को अंगीकार करो और जीवों में काम को प्रवृत्त करके उनको मारो, तब मृत्युनाम स्त्री ने भयभीत होकर ब्रह्माजी से कहा कि बहुत अच्छा तब से वह मृत्यु जीवों के अन्तसमयपर उनमें काम क्रोध का प्रवृत्त करके प्राणों को अज्ञान कर मारती है, और मृत्यु के जो वह अश्रुपात रोगरूप हुए उनसे जीवन के अन्त में सब मनुष्यादि जीवों का देह पीड्यमान होता है इसकारण शोक मत करो और बुद्धि से समझो, जीवों की सब इन्द्रियां अपने व्यवहार के अन्त

में अर्थात् जाग्रतदशा के समाप्त होने पर सुषुप्ति में जीव ब्रह्म की एकता को प्राप्त होकर उस प्रकार जाग्रतअवस्था में प्रकट होती हैं जिसप्रकार से कि सब मनुष्य उन देवता इन्द्रियों के समान जीवन के अन्त में परलोक में जाकर फिर इस लोक में प्रकट होते हैं आशय यह है कि जाग्रत और स्वप्नावस्था के समान समाप्ति वा उत्पत्तिकर्म्म से जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं और तुम ने पूछा कि किसकी मृत्यु होती है उसका उत्तर सुनो कि भयकारी शब्द और रूप धारण करनेवाला बड़ातेजस्वी जो वायु है वह सब प्राणियों का प्राणरूप नाना प्रकार के देहों में वर्त्तमान और जीवों के देह के नाश में इन्द्रियों का राजा है इसकारण वह अपूर्व्व विलक्षण है तात्पर्य यह है कि शरीर की ही मृत्यु होती है प्राणात्मा की नहीं है, सब देवतालोग जिनका कि पुण्य समाप्त होता है वह पृथ्वीपर आनकर जन्म लेते हैं और सुन्दर कर्म्मवाले मनुष्य देवभाव को प्राप्त होते हैं हे राजाओं में उत्तम! इसीकारण से तुम अपने पुत्र का शोच मतकरो वह तुम्हारा पुत्र स्वर्ग को प्राप्त होकर आनन्द करता है, इस रीति से देवता से मिलेहुये काल के वर्त्तमान होनेपर जैसे चाहे वैसे मारनेवाली है और उसके अश्रुपात से उत्पन्न होनेवाले रोग इस लोक में समय आनेपर जीवमात्रों को मारते हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

छियासीवां अध्याय ॥

धर्म को न पाकर पाप में प्रवृत्त होता है, कोई पाप करनेवाले मनुष्य भी पापों से मुक्त नहीं होते हैं, आपत्तिकाल में पापवादी मनुष्य अपापवादी होता है और अधर्म करनेवाला धर्मात्मा होजाता है, धर्म की निष्ठा आचार है उसी के आश्रय होकर जानेगा जैसे कि अधर्म में डूबाहुआ चित्त चोरी के धन को लेता है और राजा से रहित देश में चोर दूसरे के धन को चुराता रहता है, जब दूसरे मनुष्य उसके धन को लेते हैं तब राजा को चाहता है तभी ऐसे लोगों की भी इच्छा करता है जो कि अपने धन ऐश्वर्य्य से प्रसन्न हैं, सब ओर से पवित्र मनुष्य निस्संदेह राजा के दरबार में वर्त्तमान होता है और अपनी अन्तरात्मा में कुछ पाप को नहीं देखता है, सत्य बोलना अच्छा है सत्य से उत्तम कोई बात नहीं है सत्य से ही सब धारण कियाजाता है और सत्यही में सब नियत हैं, पापियों को भी सत्य त्यागना अयोग्य है इस बात को डेढ़ श्लोक में सिद्ध करते हैं कि पाप करनेवाले दुष्ट आदमी पृथक् २ शपथ खाकर उस सत्य में नियत इन दो गुणवाले होते हैं, प्रथम द्वेष न करना दूसरे अधिक विवाद न करना, जो वह परस्पर में प्रतिज्ञा को त्यागकरें तो निस्संदेह नाश होजाय, दूसरे का धन न हरना योग्य है यह सनातनधर्म है, पराक्रमी मनुष्य उस पूर्वोक्त धर्म को निर्बलों का कियाहुआ मानते हैं जब प्रारब्धहीन होता है तब यह बात उसको अच्छी मालूम होती है और अधिकबलवान् सुखी भी नहीं होते हैं इसकारण तुम को कभी कुमार्ग में बुद्धि न लगानी चाहिये क्योंकि निर्दोष को नीचों से, न चोरों से, न राजा से भय होता है किसी का कुछ अप्रिय न करनाही निर्भय और पवित्रस्थानहै, चोर सब ओर से ऐसे भय करता है जैसे कि गांव में पहुंचनेवाला मृग चारों ओर से भयभीत होता है, बहुत प्रकार से किया हुआ अपना पाप दूसरे में भी देखता है, पवित्र और सदैव सब ओर से निर्भय मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सन्मुख आता है और अपने किसी बुरे कर्म को दूसरों में नहीं देखता है, जीवों के उपकार में प्रवृत्त पुरुषों ने इस धर्म को किया है और उनकाही कथन है कि दान करना योग्य है धनवान् मनुष्य उस धर्म्म को निर्धनों का कियाहुआ मानते हैं, जब मन्द प्रारब्ध होता है तब यह बात उनको अच्छी लगती है और धनवान् भी अत्यन्त प्रसन्न नहीं होते हैं, सावधान लोग धर्म्मलक्षण को कहते हैं जो पुरुष दूसरों से किया हुआ अपना अप्रिय कर्म्म नहीं चाहता है उसको अपना अप्रिय जानता दूसरे मनुष्यों के साथ नहीं करे जो मनुष्य किसी की स्त्री का जारमित्र है वह किसी से क्या कहने को योग्य है अर्थात् अपने कुकर्म्म से दूसरे को कुछ नहीं कहसक्ता और जो दूसरे का किया हुआ आप करे तो उसमें देर न करे, जो अपने जीवन को चाहे वह किसीप्रकार दूसरे को न मारे जो २ अपने से इच्छा करे उस २ को दूसरे का भी समझले,

निर्धनों को अपने खर्च से और शेषों को अपने भोगों से भाग दे, इसीकारण ईश्वर की ओर से ब्याज जारी हुआ है जिस सन्मार्ग में देवता सन्मुख हों उसी मार्ग में नियत हो अर्थात् शान्तचित्त, दान, दया में प्रवृत्त हो अथवा लाभ के समय परही धर्म्म में नियत होना श्रेष्ठ है, ज्ञानियों ने हिंसारहित सब कर्म्मों को धर्म्म कहा है हे युधिष्ठिर! धर्म्म अधर्म्म में इस लक्षण के वर्णन को विचारो, पूर्व्वसमय में ईश्वर ने यह लोकसंग्रह से युक्त धर्म्म प्रकट किया है और सत्पुरुषों का कर्म्म सूक्ष्म धर्म्म के प्राप्त के अर्थ निश्चय कियागया है, हे राजन्! यह धर्म्मलक्षण मैंने तुम से कहा इसकारण तुमको किसी दशा में भी कुकर्म में बुद्धि न लगानी चाहिये॥ २७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

सत्तासीवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, साधुओं से उपदेश और निश्चय कियाहुआ धर्म्मलक्षण सूक्ष्म और वेद से जानने के योग्य है समय के अनुसार मैं अपनी मति के अनुमान से कहता हूं, मेरे हृदय में जो बहुत से सन्देहकारी प्रश्न थे वह आप ने वर्णनकिये हे राजन्! अब यह प्रश्न मेरा छल से रहित है कि यह देहरूप प्राप्त होने वाले तत्त्व अपने आपही जिवाते उत्पन्न करते और देह के रूप से पृथक् भी करते हैं, जैसे वेद में लिखा है कि अन्न से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं और उसी से जीवते हैं और लयभी उसीमें होजाते हैं इसी हेतु से वह धर्म्म केवल मर्य्यादही मात्र से निश्चय नहीं होसक्ता, आपत्ति से मोक्ष होनेवाले का दूसरा धर्म्म है और आपत्ति में पड़ेहुओं का दूसरा है वह आपत्तियां मर्य्यादमात्र से जाननी असम्भव हैं, सदाचार माना है और सन्त पुरुष आचार लक्षणवाले हैं कैसे साधन और असाधन के योग्य जानें इससे सदाचार भी लक्षण से रहित है, प्राकृत मनुष्य अधर्म्म को करताहुआ धर्म्मरूप देखने में आता है और कोई संस्कारी मनुष्य धर्म्म को करता अधर्म्मरूप दिखाई देता है तात्पर्य्य यह है कि इस विषय में सदाचार भी निश्चय करना कठिन है फिर शास्त्रज्ञ मनुष्यों से उसका प्रमाण कहागया इससे वेदवचन भी यज्ञ के समान नाश को प्राप्त होते हैं यह हम ने सुना है आशय यह है कि समय के विभाग से धर्म्म के प्रसिद्ध करनेवाले वेद भी श्रद्धा के योग्य नहीं होते, सतयुग में दूसरे धर्म्म हैं, त्रेता, द्वापर में और कलियुग में और २ हैं मानों यज्ञ करनेवालों कीही सामर्थ्य के समान नियत कियेगये हैं वेदवचन सत्य हैं यह कहना केवल लोकरञ्जन है फिर सब ओर मुख रखनेवाले वेद आम्नायों से पूर्ण हैं, जो वह आम्नाय श्रुति हैं और इन स्मृतियों में उनका प्रमाण होना वर्त्तमान है स्मृति से भी वेद के

विपरीत होने में शास्त्रता कहां से होसक्ती है, पराक्रमी दुष्ट आचरणवाले पुरुषों से कियेहुए धर्म्म का जो स्वरूप बदलजाता है इस हेतु से उसका भी नाश होता है, हम जाने हैं वा नहीं जाने हैं और जानना सम्भव हो वा असम्भव हो जो छुरी की तीक्ष्णधार है वह पहाड़ों की अपेक्षा बड़ी भारी है कर्म्मकाण्ड पूर्व में गन्धर्वनगर के समान अर्थात् अपूर्व दृष्ट पड़ता है और पण्डितों से विचार कियाहुआ फिर नाश को पाता है अर्थात् कर्म्मफल मोक्षदायी नहीं है, हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! जैसे गौओं के निमित्त बनाहुआ छोटा तालाब खेत और क्यारी में काटकर लेजाने से शीघ्रही सूखजाता है इसीप्रकार कलियुग के अन्त में लोप होनेवाला वैदिकधर्म और स्मृतिधर्म्म दृष्ट नहीं आता है, कोई पुरुष फलयुक्त अग्निहोत्र को करते हैं कोई वेतन लेकर पढ़ाना आदि कर्म्म करते हैं और कोई अन्यप्रकार से धन लेने के लिये व्रतादिक करते हैं कोई छली बहुत से मनुष्य निरर्थक आचार को प्रतिपादन करते हैं और सेवन करते हैं, फल के चाहनेवाले अज्ञानियों का कहाहुआ कर्म्म शीघ्रही धर्म्मरूप होता है उन अज्ञानियों की दृष्टि से साधुओं में धर्म्म नहीं है और उन साधुओं को छली और विक्षिप्त कहते हैं और हास्य करते हैं, बड़ेलोग अपने ब्रह्मकर्म्म से पृथक् होकर राजधर्म्म में आश्रित हुये, कोई मुख्य आचार सब की भलाई के लिये वर्त्तमान नहीं होता है और उसी आचार से कोई २ विश्वामित्र के समान समर्थ होता है कि वशिष्ठादि को पीड़ा देता है फिर वही आचारवान् वशिष्ठादिसमान रूपवान् दृष्टपड़ता है, जिस आचार से कोई समर्थ होता है वह दूसरों को पीड़ा देता है इसकारण सब आचारों की विरुद्ध दशा को विचार करना योग्य है हे राजन्, युधिष्ठिर! इसप्रकार से श्रुति स्मृतियों का अप्रमाण कहकर अपने मत को कहते हैं, पूर्वकाल में जो धर्म्म प्राचीन पण्डितों से उपदेश कियाहुआ है उसी प्राचीन आचार से सनातन मर्य्यादा होती है॥ २०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

अट्ठासीवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें तुलाधार ने धर्म्मसम्बन्धी वचन जाजलि नाम ब्राह्मण से कहे हैं, वन के बीच महातपस्वी वनचारी किसी जाजलि नाम ब्राह्मण ने समुद्र के किनारे पर तपस्या की, वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, अल्पाहारी, मृगचर्म और जटा धारण किये मुनिरूप हो बहुत कालतक मैल, कीच आदि का धारण करनेवाला हुआ, हे राजन्! किसी समय वह महातपस्वी तेजधारवाले जल में निवास करनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्मऋषियों के लोकों में घूमता देखता फिरता था कभी

जल में बैठेहुए अपनी दृष्टि से वन पर्वतों समेत सब पृथ्वी को देखकर यह विचार किया कि इसलोक के जड़ चैतन्यों में मेरे समान कोई नहीं है जो मेरे साथ जल में नियत होकर आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रादि को देखे, इसीप्रकार जल में कहा करता था और राक्षसों की दृष्टि से गुप्त था, उससे पिशाचों ने कहा कि तुम को ऐसा कहना उचित नहीं है हे श्रेष्ठ, ब्राह्मण ! एक तुलाधार नाम यशस्वी वैश्यों का धर्म्म धारण कियेहुए काशी में रहता है वह भी इसप्रकार से नहीं कहसक्ता है जैसे कि तुम कहते हो पिशाचों के यह वचन सुनकर महातपस्वी जाजलि ने उत्तर दिया कि मैं उस यशस्वी तुलाधार को देखूंगा तब राक्षस उस ऋषि को समुद्र से उठाकर बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम ! तुम इस मार्ग में होकर जाओ, राक्षसों से यह सुनतेही बेमन होकर जाजलि चलदिया और काशी में तुलाधार से मिलकर यह वचन कहा, तब युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ! जाजलि ने पूर्वसमय में कौन सा कठिनकर्म किया था जिससे कि उसने ऐसी बड़ी सिद्धि को पाया यह आप मुझे समझाकर कहिये, भीष्मजी ने कहा कि उस जाजलि मुनि ने बड़ा घोर तप किया था और प्रातःकाल सायंकाल को स्नान आचमनादि कर्म्म बड़ी प्रीति से करता था और वेदविद्या से तेज में पूर्ण वानप्रस्थआश्रम की सब युक्तियों का ज्ञाता अग्नियों को अच्छेप्रकार से पूजता हुआ वेदपाठ और जप में प्रवृत्त होता था वन में तपयुक्त होकर उस ऋषि ने अपने धर्म को नहीं शोचा अर्थात् धर्म का किंचित् भी अहंकार नहीं किया वर्षाऋतु में बाहर शयन, हेमन्त में जलशयन ग्रीष्ममें वायु, घाम सहता परन्तु धर्म का अहंकार नहीं करता था इन बातों के विशेष उसकी बहुतप्रकार की दुःखशय्या इस पृथ्वीपर वर्त्तमान हैं और बहुत वर्षतक वर्षाऋतु में निराधार आकाश में नियत हुआ और बराबर अन्तरिक्ष मेंही जल को मस्तकपर लिया, और सदैव वन जाने से उसकी जटायें धूल में लिपटीहुई पाप से रहित गांठदार और जलसे आर्द्र रहीं, कभी वह निराहार, वायुभक्षी, महातपस्वी, सावधान, मुनि काष्ठ के समान नियतहुआ और कभी उस तप से चलायमान नहीं हुआ और हे युधिष्ठिर ! कलिंगनाम पक्षी ने उस काष्ठरूप जड़ के समान पड़े हुए पर घोंसले बनाये और जटाओं पर तृण के तारों से घोंसले बनानेवाले पक्षियों के जोड़े को अपनी दयालुता से निषेध नहीं किया, जब वह काष्ठरूप महातपस्वी अपने स्थान से चलायमान नहीं हुआ तब सुखपूर्वक विश्वास करनेवाले वह दोनों पक्षी आनन्द से निवास करनेलगे, हे राजन् ! वर्षाऋतु के व्यतीत होने पर शरदी के प्रारम्भ में उस काम से मोहित पक्षियों के जोड़े ने गर्भाधानबुद्धि से विश्वासित होकर उसके शिर में अण्डे दिये, और महातपस्वी मुनि ने जाना तब ऐसा देह को निश्चल किया कि कथंचित् भी नहीं हिला सदैव धर्म्मज्ञ ने

अधर्म्म को नहीं चाहा तदनन्तर वह दोनों पक्षी प्रतिदिन आकर उसके मस्तक पर विश्वासयुक्त हो बड़ी प्रसन्नता से निवास करनेलगे फिर अण्डों से पक्षी उत्पन्न हुए और उसी मस्तक पर बड़े हुए और जाजलि जरा न हिला उनके अण्डे बच्चों की रक्षाकरता वह व्रती धर्म्मात्मा चेष्टा से रहित सावधान रहा फिर वह बच्चे समयपर परवाले हुए और मुनि ने सपक्ष देहवाला जाना तब वह महाव्रती बुद्धिमान् मुनि वहां उन पक्षियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन पक्षियों ने भी अपने बच्चों को बड़ा समर्थ देखकर बहुत आनन्द माना और निर्भय पुत्रों समेत उसके शिरपर रहनेलगे और प्रतिदिन सायंकाल के समय लौटते हुए परवाले पक्षियों को देखा कि लौटकर फिर बराबर चलेजाते थे फिर माता से अलग होगये परन्तु जाजलि ने शिर न हिलाया इसीप्रकार सदैव दिन में चले जाकर सायंकाल को लौटकर वहांहीं निवास किया करते थे कभी छः दिन के पीछे भी आये तोभी जाजलि का शिर न हिला जब वह पराक्रमी पक्षी क्रम २ से बहुत दिनतक नहीं लौटे कभी महीनों तक नहीं लौटे तब वह जाजलि उठकर चलागया तदनन्तर उन पक्षियों के गुप्त होजाने पर उसने विचार किया मैं सिद्ध हूं और अहंकार भी प्रवृत्त हुआ और इसप्रकार गयेहुए पक्षियों को देखकर उनके पोषण करने से अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुआ और नदी में स्नान आचमन कर अग्नि को तृप्त किया फिर उदय होनेवाले सूर्य्य का अभ्युत्थान किया, और जप करनेवालों में श्रेष्ठ जाजलि ने मस्तकपर पक्षियों को बड़ा करके आकाश में भुजा का शब्द किया और सूचित किया कि मैंने धर्म्म को प्राप्त किया, उसके पीछे आकाशवाणी हुई कि हे जाजले ! तुम धर्म्म में तुलाधार के समान नहीं हुए महाज्ञानी तुलाधार काशी में है वह भी ऐसा कहने के योग्य नहीं है जैसा कि तुम कहते हो फिर वह मुनि ईर्षायुक्त होकर तुलाधार के दर्शन की इच्छा से पृथ्वी पर घूमा और जहां सायंकाल हुआ वहांही उसका घर था, फिर वह बहुत काल पीछे काशीपुरी को गया तो उसने दूकान की वस्तु को तोलता तुलाधार को देखा, मूलधन से निर्वाह करनेवाले अतिप्रसन्न उस वैश्य ने उस आतेहुए ब्राह्मण को देखकर उठकर कुशल मंगल पूछा और बोला हे ब्राह्मण ! तुम आते हो मुझे मालूम हुए हो सो हे ब्राह्मण ! मेरे वचन को सुनो, कि तुम ने सागर के अनूपदेश में आश्रय लेकर बड़ी तपस्या की और पूर्व्व में किसी दशा में भी अपने को धर्म्मवान् नहीं जाना फिर हे ब्राह्मण ! तुझ तप से सिद्ध होनेवाले के शिरपर शीघ्रही पक्षी उत्पन्न हुए और तुमने उनकी रक्षा करी जब वह पक्षवाले पक्षी भोजन के खोज में इधर उधर चलेगये तब पक्षियों के पोषण से अपने को तुम धर्म्मवान् समझनेलगे तब मेरे विषय का वचन तुम ने आकाश से सुना और आतुरता से यहां आये सो हे ब्राह्मणों में उत्तम !

आप का क्या शिष्टाचार करूं जो आप को अभीष्ट हो उसको कहिये ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, ऐसे तुलाधार के वचनों को सुनकर जाजलि नें कहा कि हे वैश्यपुत्र ! सब रस, गन्ध, वनस्पति, औषधि और उनके मूल फलों के बेचनेवाले तुम ने इस दृढ़बुद्धि को कहां से पाया सो हे बुद्धिमन् ! इसको ब्यौरे समेत मुझ से कहो यह जाजलि के वचन सुनकर धर्म अर्थ के मूल ज्ञाता तुलाधार वैश्य ने सूक्ष्मधर्म्मों को वर्णन किया, तुलाधार बोला कि हे जाजले ! मैं सनातन धर्म्म को रहस्य समेत जानता हूं मनुष्यों ने जिस धर्म्म को सब जीवों का उपकारी जाना है, जीवों के साथ शत्रुभाव न करना अथवा आपत्ति काल में थोड़ी शत्रुता से जीविका होती है वह उत्तम धर्म्म कहलाता है हे जाजले ! मैं उसीसे अपना निर्वाह करता हूं मैंने दूसरे के काटे हुए काष्ठ और तृणों से यह स्थान बनवाया है हे ब्राह्मण ! मैं लाक्षारस पद्मकतुंग नाम काष्ठ और कस्तूरी आदि गन्ध और मद्यरहित अनेक रसों को सत्यता से दूसरों के हाथ से मोल लेकर बेचता हूं, हे जाजले ! जो पुरुष सब का मित्र है और मन, वाणी, कर्म से सबकी भलाई में प्रवृत्त है वही धर्म्मज्ञ है, न मैं किसी को दुःख देता हूं न शत्रुता रखता हूं इच्छारहित सब जीवों में समान हूं यह मेरा व्रत जानो, और मेरी तराजू सबजीवों में एकसी नियत होती है, हे वेदज्ञ ! मैं लोक की अद्भुतता को देखता हुआ दूसरों के कर्म्मों की प्रशंसा करता हूं मुझको तुम समदर्शी और सुवर्ण मृत्तिका समान जाननेवाला समझो, जैसे बहिरे अन्धे और ग्रहभूतादि से ग्रसेहुए ऊर्ध्वश्वास लेनेवाले और देवताओं से गुप्त इन्द्रिय गोलकवाले होते हैं उसीप्रकार मुझ को जानो, जैसे कि वृद्धरोगी आदि विषयों से अनिच्छावान् होते हैं उसीप्रकार अर्थ कामादि भोगों में मेरी भी अनिच्छा होगई है, न किसीको भय देता न दूसरे से भयभीत होता इच्छा रहित शत्रुता से पृथक् होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब मन, वच, कर्म से सब जीवों में पापबुद्धि नहीं करता तब ब्रह्मभाव को पाता है, जो पुरुष सबजीवों को निर्भय करता है उसने भूतकाल में न जन्म लिया न आगे कभी लेगा परन्तु देह में अभिमान आने से सब धर्म्म नष्ट होजाते हैं, जो निरभिमान है वह ब्रह्म रूप अभय पद को पाता है कठोर वचन अथवा कठिन दण्ड बन्धनादि से सब लोक भय करता है उन सब को त्यागदे, जो वृद्धलोग पुत्रादियुक्त और कुलीन हैं वह शास्त्र के अनुसार कर्म्म करते हैं, जो हिंसारहित हैं हम उन महात्माओं के चलनपर चलते हैं अब श्रेष्ठों के आचार को प्रमाण करते हैं—किसी स्थान पर

सदाचार से विरुद्ध मोह को प्राप्त होनेवाला वेदोक्त धर्म्म परम्परा से प्राप्तभी ऐसे नष्ट होजाता है जैसे कि आपत्तिकाल में वामदेव विश्वामित्र के निन्दित आचार को देखकर बहुत से मतवाले मोह को प्राप्त होकर पाखण्डमत में प्रवृत्तहुए उस मोहरूपी कारण से विद्यावान् जितेन्द्रिय काम क्रोध का जीतनेवाला भी मोह को पाताहै अथवा पाठान्तर से यह अर्थ है कि वह सदाचार से रहित होता है, जो जितेन्द्रिय, शत्रुतारहित पुरुष चित्त से साधुओं का सत्संगी धर्म्म को करे वह ज्ञानी आचार से शीघ्रही धर्म्म को पाता है, जैसे कि लोकमें नदी के मध्य अपने आप बहाहुआ काठ आपही किसी दूसरे काठ से मिलजाता है इसीप्रकार कर्म्म के प्रभाव से पिता पुत्र आदि का योग और वियोग है, उस नदी में कभी विनाविचारे दूसरी लकड़ी तृण काठ और सूखा गोवर भी परस्पर में मिलजाते हैं, हे मुने ! जिस मनुष्य से कभी किसी स्थान में कोई जीव भयभीत नहीं होता है वह सदैव सब जीवों से निर्भयता को प्राप्त होता है और जिससे सब भय भेड़िये के समान करते हैं अथवा जैसे जलजीव बड़वानल से भयातुर होकर किनारे में आश्रय लेते हैं वह भयदायक पुरुष अभयता को नहीं पाता है इसीप्रकार यह अभयदायकरूप आचार जोकि प्रकट है इधर उधर से प्राप्त करना चाहिये जो सहायता रखनेवाला वा धनी है वह ऐश्वर्य्य और परलोक का हेतु है, उस निर्भयदान से पण्डितलोग उस सहायता और धन से युक्त पुरुषों को शास्त्रों में उत्तम वर्णन करते हैं जिसके हृदय में बाह्य सुख नियत है वह संसार में निर्भयतापूर्व्वक अपनी उत्तम कीर्त्ति उत्पन्न करते हैं और जो सावधान हैं वह उस निर्भयदान को ब्रह्मसम्बन्धी जानते हैं, सब तप, यज्ञ, दान और ज्ञानरूप वचनों से जिस २ फल को पाता है उसी फल को अभयदान देनेवाला भी प्राप्त करता है, जो पुरुष इस संसार में सब जीवों के लिये निर्भयदानरूप दक्षिणा को देता है वह सब यज्ञों से पूजन करनेवाला निर्भयतारूप प्रतिष्ठा को पाता है, जीवों का कोई धर्म अहिंसा से उत्तम नहीं है जिस मनुष्य से कभी किसी दशा में कोई जीव भय नहीं करता है वह सब जीवों से निर्भय रहता है और जिससे सर्प के समान संसार भयभीत रहता है वह इस लोक परलोक दोनों में धर्म्म को नहीं पाता है, सब जीवों के आत्मा रूप अर्थात् निर्व्विकल्प समाधि में नियत और अच्छेप्रकार से जीवों के देखनेवाले अर्थात् निकल्प समाधिमें वर्त्तमान वे चिह्न मार्ग में उसके चिह्न को ढूंढनेवाले देवता भी मोह को पाते हैं, जीवों के अभयरूप दान को सब दानों से श्रेष्ठ कहते हैं हे जाजले ! यह सब मैं सत्य ही सत्य कहता हूं, पूर्वोक्त दान की प्रशंसा के अर्थ सफलदान की निन्दा करते हैं वह सफल कर्म करनेवाला स्वर्गवासी होकर फिर पृथ्वीपर आता है मनुष्य कर्म्मों के नाश को देखकर सदैव उसकी निन्दा करते हैं, हे जाजले ! सूक्ष्म

धर्म्म निष्फल नहीं है इसलोक में ब्रह्म और स्वर्ग के निमित्त धर्म का बढ़ना वेद में नियत कियागया है आशय यह है कि स्थूलधर्म्म, यज्ञ आदि से दूसरा सूक्ष्मधर्म्म है, उसका ज्ञान सूक्ष्मता से असम्भव है क्योंकि मुख्य वस्तु को गुप्त करनेवाले बहुत हेतुवाले होते हैं दूसरे आचारों को यथार्थ जानकर उस सूक्ष्म धर्म को जानता है जो बैलों को बधिया करते हैं या नथनों को छेदते हैं बांधते हैं और बहुत से बोझों को लादकर लेचलते हैं मारते हैं और मारकर खाते भी हैं अथवा मनुष्य मनुष्य को दास बनाते हैं उनकी आप किसी प्रकार से निन्दा नहीं करते हो और पकड़कर क़ैद कराते हैं मारते हैं क़ैद करने और मारने में रात्रि दिन अपने देह और चित्त को जो खेद होता है उसको भी जानता है, पांच इन्द्रियां रखनेवाले जीवों में सब देवता निवास करते हैं अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, विष्णु, यमराज इत्यादि हैं उन जीवों को बेचकर मृतकों में क्या विचार करना है बकरा अग्नि रूप है—मेढ़ा वरुण रूप है—घोड़ा सूर्य रूप है—पृथ्वी विराट्रूप है—गौ और बछड़ा चन्द्रमारूप हैं—इनको बेचकर सिद्धि को नहीं पाता है, हे ब्राह्मण ! तेल घृत, शहद और औषधि के बेचने में भी क्या हानि है डांस मच्छरों से रहित देश में सुख से बड़े होनेवाले उन पशुओं को माता के प्यारे जानकर उनको अनेक प्रकार से स्वाधीन करके महाकीच के स्थान में जहां डांस मच्छरों के समूह होते हैं बांधकर लेजाते हैं और बोझ से पीड़ित होकर बैल आदि मृत्युवश होते हैं, मैं जानता हूं कि उस कर्म से भ्रूण हत्या भी अधिक नहीं है और लोग खेती को अच्छा मानते हैं परन्तु वह जीविका भी बड़ी निर्दयता का कर्म्म है, क्योंकि लोहे के फलवाला हल पृथ्वी और पृथ्वी के रहनेवाले जीवों का नाश करता है इसीप्रकार बैलों से युक्त रथ आदि को भी जानो, वेद में गौओं का नाम अघ्न्या है अर्थात् अवध्य है तो कौन उनको मारसक्ता है, जो बैल या गौ को मारता है वह महाशोकों को पाता है, ऋषि और यती लोगों ने राजा नहुष से जाकर कहा कि तुम ने गौमाता और बैल प्रजापति को मारा यह तुम ने अयोग्य कर्म किया है हम तेरे कारण पीड़ा को पावेंगे, हे जाजले ! उन महानुभाव ऋषियों ने नहुष के पाप से उत्पन्न होनेवाली एकसौ एक रोगरूप हत्या सब जीवों में व्याप्त करदी और ब्रह्महत्या करनेवाले नहुष से कहा कि हम तेरे हव्य को होम नहीं करेंगे हे जाजले ! उन सब तत्त्वार्थवेत्ता महात्मा शान्तरूप ऋषि और यतीलोगों ने अपने तप के द्वारा इसप्रकार के अकल्याणरूप घोर आचारों को प्रकट किया अर्थात् जब नहुष की भूल से एक सौ एक गौ हत्या रोगरूप होकर प्रजाओं में प्राप्तहुई तो जान-कर होनेमें तो अवश्य ही पाप प्रकट होगा तुम केवल अन्धपरम्परा को जान-कर हिंसारूप धर्म को नहीं जानते हो इसकारण धर्म को चाहनेवाला संसार

के किये हुए कर्म्म को नहीं करे, हे जाजले! जो मुझ को मारकर मेरी प्रशंसा करता है उस स्थानपर भी मेरा यह सिद्धान्त है कि यह दोनों भूल हैं क्योंकि मेरी बुद्धि से कोई प्रिय अप्रिय नहीं है, इस धर्म की ज्ञानी पुरुष प्रशंसा करते हैं और संन्यासधर्म के समान कहाजाता है और धर्मज्ञ पुरुषों की दिव्यदृष्टि से देखागया है॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥

नव्बेवां अध्याय॥

जाजलि बोला हे तराजू हाथ में लेनेवाले! तुम से जारी कियाहुआ यह धर्म्म स्वर्गरूप द्वार की आजीविका का बन्दकरनेवाला है, हे वैश्य! खेती से अन्न उत्पन्न होता है उसीसे तुम भी जीवते हो मनुष्य पशुआदि औषधियों के द्वारा जीवते हैं और यज्ञादिक कर्म होते हैं तुम नास्तिकता की बातें करते हो इसलोक में सिद्ध बात को त्यागकर कोई नहीं जीसक्ता, तुलाधार बोला कि हे जाजले, ब्राह्मण! मैं हिंसारहित जीविका को कहता हूं मैं यज्ञादि की निन्दा नहीं करता हूं और नास्तिक नहीं हूं वह यज्ञ नारायण विष्णु जानना कठिन है, ब्रह्मसम्बन्धी यज्ञ के और यज्ञ के दाता पुरुषों को भी नमस्कार है ब्राह्मण अपने योगरूप यज्ञ को त्याग करके क्षत्रियों के यज्ञ में ज्योतिष्टोमादि में प्रवृत्त हुए हे ब्रह्मन्! वेदवचनों को न जानके लोभी और धन में प्रवृत्त चित्त नास्तिक मनुष्यों से वह हिंसात्मक यज्ञ जारी कियागया वह ऐसा है कि जैसे भीतर से मिथ्या और प्रत्यक्ष में सत्यता विदित हो, तात्पर्य यह है कि विश्वास के लिये वेद में प्रशंसा के वचन कहेगये कारण यह है कि जो ज्ञान का अधिकारी नहीं है उसके लिये प्रशंसाकर्म्म फलदायी है क्योंकि कर्म्म के द्वारा चित्त की शुद्धि होने से ज्ञान भी प्राप्त होजाता है यह देना योग्य है या अयोग्य है ऐसा यज्ञ प्रशंसा के योग्य है इसीकारण हे जाजले! विपरीत दक्षिणा से लोभी यजमान को चोरी का अपराध होता है और अशुभकर्म्म उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार से क्षत्रिय यज्ञ की निन्दा करके ब्राह्मण यज्ञ के स्वरूप को कहते हैं कि जब उत्तमकर्म से प्राप्तहोनेवाला हव्य तैयारहुआ उस तीनप्रकार के हव्य से देवता तृप्त होते हैं, प्रथम नमस्काररूप द्वितीय जप और वेदपाठरूप तृतीय औषधिरूप हव्य से देवताओं की पूजा होती है यथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करने और कुयें, बावली, बाग आदि के बनवाने से साधु पुरुषों की सन्तान भी लोभादि अवगुणयुक्त उत्पन्न होती है, क्योंकि लोभियों से लोभी उत्पन्नहोते हैं और रागद्वेषरहित पुरुषों की सन्तान समदर्शी होती है यजमान और ऋत्विज् अपने को इच्छावान् वा अनिच्छावान् देखते हैं उसीप्रकार की उनकी सन्तान

भी होती है यज्ञ से ऐसी सन्तान पैदाहोती है जैसे कि आकाश से निर्मलजल उत्पन्न होता है अब इसका अभिप्राय लिखते हैं अर्थात् हे ब्राह्मण ! अग्नि में होमीहुई आहुति सूर्य्य के समीप जाती है सूर्य्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न और अन्न से सन्तान उत्पन्न होती हैं, इस अनिच्छावान् यज्ञ में निष्ठावान् प्राचीन वृद्धों ने सब मनोरथों को प्राप्त किया और संसार का उपकार चाहने से पृथ्वी विना परिश्रम उर्व्वरा होकर सब पदार्थों की उत्पन्न करनेवाली हुई उसीसे वीरुध्नाम लता हुई हैं, वह पुरुष आत्मयज्ञों में कुछ फल को नहीं देखते हैं और कभी यज्ञ का फल जानके सन्देह युक्त पूजन करते हैं वह लोग असाधु धूर्त्त लोभी और धन की इच्छावाले उत्पन्न होते हैं और पापकर्मों से नरक को जाते हैं और हे विप्रवर्य ! जो लोग वेद के प्रमाण को बुद्धि के वाद से अशुभ करते हैं वह इस लोक में सदैव पापात्मा और अज्ञानी हैं अर्थात् मोक्ष के निमित्त ज्ञान के अधिकारपर नहीं चढ़ते हैं, इसप्रकार तीन श्लोकों से निष्फल कर्म्म की प्रशंसा और धूर्त्त कुतर्कियों की निन्दा करके अब ज्ञानियों की दशा को कहते हैं—करने के योग्य कर्म्म करना योग्य है क्योंकि वह निश्चय वेदनिष्ठ कर्म्म है उसके न करने से ब्राह्मण भयकरता है फिर वह आत्मा में कर्तृत्वभाव को नहीं जानता है क्योंकि लोक में ऋत्विज् हव्य, मन्त्र अग्नि इत्यादि रूपों से ब्रह्मही वर्त्तमान है जो इस वात को जानता है वही ब्राह्मण है, इसप्रकार के ज्ञानी ब्राह्मण में कोई अंगरहित भी कर्म उत्तम है यह वेद से निश्चय सुनते हैं और आत्मध्यान के कारण से उस ज्ञानी के कर्म में सब भ्रष्टजीव कुत्ता, शूकर आदि का स्पर्शहोना भी अशुभ नहीं है परन्तु फल की इच्छा में प्रायश्चित्त है, इसप्रकार ज्ञानी के यज्ञकर्म की प्रशंसा करके दूसरे प्रकार के यज्ञों को भी कहते हैं कि सत्यता और शान्तचित्तता से यज्ञ करनेवाले परम पुरुषार्थ के लोभी धन और विषयों में तृप्त अर्थात् वैराग्यवान् मत्सरतारहित सब मनुष्य प्राप्त वस्तुओं के त्यागी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ज्ञाता तत्त्वज्ञ योगनिष्ठ प्रणव का जप करनेवाले पुरुष दूसरों को भी तृप्त करते हैं, वह प्रणवरूप ब्रह्म सब देवताओं का आत्मरूप ब्रह्मज्ञानी में नियत होता है हे जाजले ! उस ब्रह्मज्ञानी के तृप्त होनेपर विराट्रूप के अंगसम्बन्धी देवता तृप्त होते हैं, जैसे कि सब रसों से तृप्त मनुष्य किसी वस्तु को देखकर प्रसन्न नहीं होता इसीप्रकार पूर्णज्ञान से तृप्त होना भी सदैव को सुखकारी है, हमलोग धर्म के आश्रित सुख माननेवाले स्वामी की आज्ञा का निश्चय करनेवाले हैं हमारे विचार से बुद्धि में चिदाभास सूत्रात्मारूप प्राण विश्वव्यापक होने से बड़ा है उससे भी प्राणआदि का उत्पत्तिस्थान भूतात्मा बड़ा है ज्ञानी इसको विचारता है, शास्त्र से उत्पन्नज्ञान और अनुभव के रखनेवाले और संसार से पारहोने के

इच्छावान् सात्त्विकी पुरुष उस ब्रह्मलोक को पाते हैं जोकि पवित्र पुण्यदायक उत्तम कुलवान् पुरुषों से प्राप्त होने के योग्य शोक पीड़ा से रहित है वहां से फिर अधोगति नहीं पाते हैं वह स्वर्ग को नहीं जाते हैं और वेद अथवा धन से होनेवाले यज्ञों को नहीं करते हैं सत्पुरुषों के मार्ग पर चलते हैं और अहिंसायुक्त यज्ञों को करते हैं, उन्होंने वनस्पति, औषधि, फल, मूल को ही जाना है उनको धन चाहनेवाले लोभीऋत्विज् यज्ञ नहीं कराते हैं, फिर कर्म को पूरा करनेवाले संकल्प से आत्मारूप यज्ञ सामग्री विचार करनेवाले उन ब्राह्मणों ने संसार के उपकार की इच्छा से मानसी यज्ञों को ही किया है, इसीकारण लोभी ऋत्विज् उनके यज्ञ नहीं कराते किन्तु धन के लोभ से अयोग्यों को यज्ञ कराते हैं, और अन्य साधुओं ने अपने धर्म के करने से भी प्रजा को स्वर्ग में पहुंचाया है आशय यह है कि साधुलोग अपने धर्म से दूसरों का भी भला करते हैं, इस कारण मेरी बुद्धि सर्वत्र एकसी वर्त्तमान है, हे महामुने! इसलोक में ज्ञानी ब्राह्मण देवयज्ञ पितृयज्ञ के द्वारा जिन देवयान पितृयान मार्ग से जाते हैं चाहें वह दोनों देवयान मार्ग से ही जाते हैं तो भी उनमें धौमआदि मार्ग से जानेवाले का पुनरागमन होता है और ऋचीक आदि ज्ञानी के मार्ग से जानेवाले का आवागमन नहीं होता है सत्यसंकल्प ज्ञानियों के ऐश्वर्य्य को कहते हैं—इन ज्ञानीपुरुषों के चित्त की संकल्पसिद्धि से बैल आप सवारी में जोड़कर लेजाते हैं और गौ आप दूध देती हैं और वह आपही संकल्प से यज्ञकुम्भ को नियत करके पूरी दक्षिणावाले यज्ञों से पूजन करते हैं, जो इसप्रकार योग के अभ्यास से शुद्धचित्त होता है वह मधुपर्क में गोहिंसा करने को योग्य है, वह अज्ञानी लोग इसप्रकार से औषधियों से भी यज्ञ नहीं करते इसीहेतु से तर्कणापूर्वक ऐसे प्रकार का वर्णन तुम से करता हूं, और मिलेहुए संन्यासी के लक्षण को भी कहता हूं देवतालोग उसी को ब्राह्मण जानते हैं जो कि अनिच्छा से कर्म्म का प्रारम्भ करनेवाला नमस्कार, स्तुति आदि से पृथक् अधिकार से न डिगनेवाला और कर्म्मरहित हो, हे जाजले! शास्त्र सुनता न सुनाता यज्ञ न करता और ब्राह्मणों को दान न देता इच्छानुसार जीविका चाहनेवाला पुरुष किसी गति को नहीं पाता है, इस लक्षण को देवता के समान सेवन करके बुद्धि के अनुसार परमात्मा को प्राप्तकरे, जाजलि ने कहा कि हे वैश्य! हम ने इस आत्मयज्ञ करनेवाले पुरुषों की इस गुप्तवार्त्ता को नहीं सुना है यह कठिन बात है इससे तुम से पूछता हूं कि पहिले पुरुष इस योगधर्म्म के विचार करनेवाले नहीं हुए और विचारवान् ऋषियों ने भी इस परम धर्म्म को लोक में जारी नहीं किया हे वैश्य! जो आत्मारूप भूमिपर अज्ञानीलोग मानसी यज्ञ को प्राप्त नहीं करे तो वह किस कर्म्म से सुख को प्राप्त हों हे ज्ञानिन्! मैं तेरे वचनों पर विश्वास करता हूं

इसको मुझे समझाकर कहो, तुलाधार बोला कि, इन धूर्तों के यज्ञ भी श्रद्धा-रहित होकर नष्टरूप होते हैं वह कहीं भी यज्ञ के योग्य नहीं होते गौ घृत, दूध, दही मुख्यकर पूर्णाहुती से यज्ञ को पूर्णकरता है और जो उस वेदोक्त यज्ञ के करने में समर्थ नहीं हैं उनको पुच्छ, शृंग, चरणआदि से पोषण करते हैं अर्थात् गौ की पूछपर पितृतर्पण करने से और जल से सींग को धोकर स्नानकरने से और चरणों की रज से पापों का दूर होना और परलोक की प्राप्ति स्मृतियों में वर्णन की है, विना स्त्री के वेदोक्त यज्ञ कैसे होता है उसको सुनो कि हिंसारहित बुद्धि-युक्त घृतादिक द्रव्यों को देवार्पणकर श्रद्धारूप स्त्री को करता है यज्ञ का देवता के समान सेवन करके सर्वव्यापी विष्णु ब्रह्म को प्राप्त करै, सब पशुओं में पुरो-डासनाम हव्य पवित्र कहाजाता है अर्थात् पशुयज्ञ निन्दित है सत्यनदी सर-स्वती हैं और सब पर्वत पवित्र हैं और आत्मा तीर्थ है अर्थात् जहां आत्मयज्ञ है वहां सब तीर्थ हैं इसप्रकार के इन धर्म्मों को करता और कारणोंसमेत धर्म्म को चाहता वह पुरुष शुभलोकों को पाता है, भीष्मजी बोले कि वह तुलाधार युक्ति से मिला सदैव सत्पुरुषों से सेवित इसप्रकार के इन धर्म्मों की प्रशंसा करता था ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इक्यानबेवां अध्याय ॥

तुलाधार ने कहा कि सत्पुरुषों से वा असत्पुरुषों से सेवित मार्ग को प्रत्यक्ष कर इसपर चलोगे तब इसकी यथार्थता को जानोगे और यह बाजआदि अनेक पक्षी जो तेरे शिरपर उत्पन्न हुए चारोंओर को घूमते हैं और प्रत्येक स्थान पर घोसलों में बैठे हैं इन पक्षियों को फिर बुलाकर हाथ पैर सकोड़कर देह में चिपटे हुए देखो कि यह तेरे पोषण किये हुए पक्षी तुझ पितारूप से प्रीति भी करते हों तो निस्सन्देह तुम पिता हो अपने पुत्रों को बुलाओ तब उस जाजलि के बुलायेहुये पक्षियों ने धर्म्मवचनों से कहा, कि जिसका प्रारम्भ हिंसा से रहित है वह कियाहुआ कर्मफल इसलोक और परलोक में मिलता है और हिंसा वि-श्वासघातिनी है वह घायल विश्वास उस विश्वासघातिनी को मारता है, हानि लाभ में समान जितेन्द्रिय श्रद्धावान् शान्तचित्त यज्ञकरनेवाले पुरुषों का यज्ञ प्राप्त होता है आशय यह है कि कर्त्तापन और कर्मफल से पृथक् होते हैं, अब श्रद्धा की प्रशंसा सुनो हे ब्राह्मण ! यह श्रद्धा प्रकाशरूप चैतन्य आत्मा से स-म्बन्ध रखनेवाली है और सूर्य्यसमान प्रकाशित सतोगुण की पुत्री है वही पोषण करनेवाली है और अत्यन्त पवित्र योनि की देनेवाली है इसीहेतु मन वाणी से परे है अर्थात् जप दान से उत्पन्न धर्म्म से श्रद्धा श्रेष्ठ है, हे भरतवंशिन् !

वह श्रद्धा उस मन्त्र को जो कि स्वर वर्ण से अशुद्ध उच्चारण होने से नष्ट होता है रक्षा करती है और श्रद्धा से नाशवान् मन वाणी यज्ञआदि से रक्षा नहीं किये जासक्ते हैं इस स्थानपर ब्रह्माजी के कहे हुए इतिहास को कहता हूं जो पुरुष पवित्र हैं परन्तु श्रद्धावान् नहीं हैं और जो श्रद्धावान् हैं परन्तु पवित्र नहीं हैं यज्ञकर्म में देवताओं ने उन दोनों के धन को समान कहा है कृपण, वेदपाठी, दान का बड़ा देनेवाला, अनाज का बेचनेवाला इन सबके अन्नों को देवताओं ने समान कहा था परन्तु प्रजापति ब्रह्माजी ने उनके विचार को असिद्ध किया और कहा कि यह तुम्हारा विचार विपरीत है, बड़े दान के अभ्यासी पुरुष का अन्न श्रद्धा से पवित्र है और श्रद्धारहित का अन्न नष्टप्राय है इससे दानी का अन्न भोजन करने के योग्य है और कृपण वा अनाज बेचनेवाले का नष्ट है, श्रद्धारहित पुरुष देवताओं को हव्य भेंटकरने के योग्य नहीं है उसका अन्न भोजन करना अनुचित है यह धर्मज्ञों का उपदेश है, श्रद्धारहित होना महापाप है श्रद्धा महापातकों को नाश करती है और श्रद्धावान् पुरुष ऐसे पापमुक्त होता है जैसे कि कांचली को सर्प त्यागदेता है, जो निवृत्ति श्रद्धायुक्त है वह सब पवित्रगुणों में उत्तम है जिसके स्वभाव से दोष दूर होगये और श्रद्धावान् है वही पवित्र है, तप से उस को कुछ प्रयोजन नहीं है और व्रत और आत्मा से भी क्या प्रयोजन यह पुरुष श्रद्धारूप है सात्त्विकी, राजसी, तामसी इनमें से जैसी जिसकी श्रद्धा है वही उस का रूप भी है, धर्मार्थ के देखनेवाले सत्पुरुषों ने इस धर्म को अच्छे प्रकार से कहा है उस धर्म के जानने की इच्छावाले हमलोगों ने धर्मदर्शन नाम मुनि से धर्म्म को पाया, हे महाज्ञानिन् ! इस में श्रद्धा करो इसी से परब्रह्म को पावेगा हे जाजले ! श्रद्धावान् वेदवचनपर श्रद्धा करनेवाला धर्मात्मा और अपने मार्ग में नियतपुरुष श्रेष्ठतम है, तदनन्तर थोड़ेही काल में वह दोनों बड़े ज्ञानी अर्थात् तुलाधार और जाजलि हार्दाकाश ब्रह्म को पाकर सुखपूर्वक विहार करनेलगे अर्थात् योगऐश्वर्य से क्रीड़ा कियेहुए अपने कर्म से प्राप्त अपने २ देश को पाकर ब्रह्म के ध्यान में तत्पर हुए, अनेकअर्थों का देनेवाला तुलाधार का यह वचन है हे युधिष्ठिर ! इसजाजलि ने उस महाज्ञानी तुलाधार के वचनों से शान्ति पाई इस वृत्तान्त को तुमने सुना अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकोत्तरनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

बानबेवां अध्याय ॥

अब हिंसात्मक धर्म्म की निन्दा करने को भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको प्रजाओं के उपकारार्थ राजा विचख्नु ने कहा है, गवालम्भननाम यज्ञ में वृद्धदेहवाले बैल को देखकर और गौओं के

बड़े विलाप को सुनकर यज्ञशाला में नियत निर्दयी ब्राह्मणों के देखतेहुए उस राजा ने यह वचन कहा कि लोकों में गौओं के निमित्त कल्याण हो उसके पीछे यह वचन निश्चय किया कि हिंसात्मकयज्ञ क्षत्रियों का है ब्राह्मणों का दूसरायज्ञ है इसमर्याद से पृथक् होनेवाले अज्ञानी नास्तिक संशययुक्त चित्त यज्ञ सेही कीर्त्तिचाहनेवाले मनुष्यों की ओर से यह हिंसात्मक उपदेश कियागया है, धर्म्मात्मा मनुजी ने सब कर्म्मों में अहिंसाही को उत्तम कहा है मनुष्य अपनी इच्छा से वेद से बाहर पशुओं को मारते हैं आशय यह है कि हिंसात्मक कर्म्म अज्ञानियों के हैं क्योंकि वह फल की इच्छारखते हैं और जब उनको ज्ञान के कारण अनिच्छा होती है तब हिंसात्मक कर्म्म की उत्पन्न करनेवाली श्रुति अपने अर्थ के प्रकाश से उसको मोक्षमार्ग में नियत करती है, इसीकारण ज्ञानी पुरुष को वह सूक्ष्मधर्म्म प्रमाण के साथ करनाचाहिये, सब जीवमात्र में अहिंसाधर्म्म सब धर्म्मों से उत्तम मानागया है, कुटुम्बी की पांचहत्या निवृत्त न होने से कैसे अहिंसा होसक्ती है इसको कहते हैं कि गांव के सन्मुख निवास करके तेज व्रतवाला होकर और देवता से प्रत्यक्ष श्रुतियों के फल को त्याग करके गृहस्थियों के आचार से रहित होजाय क्योंकि नीचपुरुष ऐसे होते हैं कि उनका कर्म्मफल कर्म्म में प्रवृत्तहोने का कारणहोता है, जो आदमी यज्ञविटप और यज्ञकुम्भों को नियत करके निरर्थक मांसों को खाते हैं इस धर्म्म की प्रशंसा नहीं की जाती है, मदिरा, मांस, मत्स्य, मधु, आसव, कृसरोदन यह सब धूर्त्तों ने प्रवृत्त किया है श्रेष्ठलोगों में इसकी प्रवृत्ति नहीं है न वेदों में इसकी विधि है, मान, मोह, लोभ से यह इच्छा कल्पना की गई है ब्राह्मण सब यज्ञों में विष्णु कोही पूजनके योग्य मानते हैं और उनका पूजन चन्दन पुष्पों से कहा है और वेदों में जो यज्ञ के योग्य वृक्ष विचार कियेगये हैं वह सब अत्यन्त पवित्र बुद्धिमान् शुद्धचित्त पुरुषों ने नियत किये हैं और सब वस्तुओं से देवता का भी पूजन है, युधिष्ठिर बोले कि देह और आपत्ति यह दोनों भी परस्पर में विरोधी हैं अर्थात् आपत्ति तो देह को सुखाती है और देह आपत्ति का नाश चहती है फिर हिंसा से पृथक् और प्रारम्भ कर्म्मकरनेवाले देह का निर्वाह कैसे होसक्ता है, भीष्मजी बोले कि जैसे देह को पीड़ा न हो और मृत्यु के वश में न पड़े वैसेही कर्म्म में प्रवृत्त होकर सामर्थ्य के अनुसार धर्म्म को करे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

तिरानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! करने के योग्य कर्म की परीक्षा जल्दी या देर में किसप्रकार से करे, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीनइतिहास

को कहता हूं जिसमें अंगिराऋषि के कुल में उत्पन्न होनेवाले चिरकारी नाम ब्राह्मण का प्राचीनइतिहास है, हे चिरकारिन्! तेराकल्याण हो हे विलम्ब से कर्म्मकर्त्ता! तेराभला हो क्योंकि विलम्ब से करनेवाला बुद्धिमान् पुरुषकर्म्मों में अपराध नहीं करता है, बड़ाज्ञानी चिरकारीनाम ब्राह्मण गौतम ऋषि का पुत्र था वह सबकामों को विचारपूर्वक विलम्ब से करता था और अर्थसिद्धि को प्राप्तहोता था वह देर में ही अर्थों को विचारता और देर में ही जागता देर में ही करने के योग्य कर्म्मों को जानता था इसकारण से उसका नाम चिरकारी कहाजाता है, अल्पबुद्धि और अदूरदर्शी मनुष्य उस चिरकारी को सुस्त और निर्बुद्धि कहते थे, किसी समय उसके पिता ने क्रोधयुक्त होकर दूसरे पुत्रों को त्यागकर इससेही कहा कि तुम अपनी माता को मारो यह कहकर वह महातपस्वी गौतम जपनिष्ठ बिना विचार किये वनकोही चलेगये उस चिरकारी ने अपने स्वभाव के अनुसार देर में स्वीकार कर विलम्ब से कर्म्म करने के अभ्यास से विचारकर बड़ी चिन्ता की कि कैसे पिता की आज्ञाकरूं और कैसे माताको न मारूं और कैसे नीच के समान इस धर्म्मसंकट में न डूबूं पिताकी आज्ञामानना सर्वोपरि है और माता की रक्षाकरना अपना धर्म्म है इससे अब पुत्ररूपी अस्वतन्त्रता मुझ को महापीड़ा देरही है स्त्री को और मुख्यकर माता को मारकर कौन सुखीहोता है और पिता की आज्ञा को भंग करके कौन प्रतिष्ठा को पाता है, पिता का आज्ञाकारी होना योग्य है और माता की रक्षाकरना भी योग्य है यह दोनों योग्य कर्म्मों के सहनेवाले हैं मैं किसमार्ग से उनकी आज्ञाभंगआदि नहींकरूं, पिता अपने को गर्भ में प्रवेश करता है अर्थात् नियत करता है और माता में शील, चरित्र, गोत्र, कुल, समेत उत्पन्न होता है फिर मैं आप माता पिता की ओर से पुत्रत्व के अधिकार पर नियत कियागया मुझ को अज्ञान कैसे नहीं होय दोनों अपनी उत्पत्ति का हेतु मानता हूं, पिता ने जो जातकर्म्म में आशीर्वाद दिये और दूसरे कर्म्मों में जपादिक किये पिता, गुरु धर्म्मरूप पोषण और शिक्षारूपी गुणों से संयुक्त हैं जो पिता ने कहा वहीधर्म्म है उसी को वेदों ने भी उत्तमकहा है, पुत्र केवल पिता की प्रसन्नता का कारण है और पिता पुत्र का सर्वस्व है अकेला पिता देने के योग्य देह आदि को देता है इसकारण पिता का वचन मानना उचित है इसमें कुछ विचार न करना चाहिये, पिता की आज्ञामाननेवाले पुरुषों के पातक भी दूर होजाते हैं, वस्त्र भोजनादि वस्तु वेदशिक्षा लौकिक शिक्षा और गर्भाधान से सीमन्त आदिकर्म्मों के संस्कार होने में भी पिताही कारण है, पिता ही धर्म्म और स्वर्ग है पिताही तप और पिताही के प्रसन्न होने में सब देवता प्रसन्नहोते हैं, पिताने जो आशीर्वाद जिह्वा से दिये वह इस पुरुष को सेवनकरते हैं जब पिता प्रसन्न होता है तब सबपापों का प्रायश्चित्त

होजाता है, फूल बन्धन से छूटजाता है और फल वृक्ष से गिरपड़ता है परन्तु दुःख पानेवाला पिता पुत्र के स्नेह बन्धन से पुत्र को कभी नहीं छोड़ता है, यह पुत्र की विचारी हुई पिता की प्रतिष्ठा है और सर्वोत्तम स्थान है, अब मैं माता का विचार करता हूं, मेरे नररूप होने में जो यह नीच आज्ञा भंग सम्बन्धी समूह है जैसे अग्नि का उत्पत्तिस्थान अरणीकाष्ठ है इसीप्रकार इस समूह का उत्पत्ति स्थान मेरी माता है मातापुरुषों के देहों की अरणी है और सब दुःखी पुत्रआदि को सुखदेनेवाली है माता के वर्त्तमान होने में सनाथता नियत है और माता न होने में अनाथता होती है, निर्द्धन मनुष्य भी माता यह शब्द कहके घर में जाकर शोक से रहित होता है और माता के होने में इसको वृद्धावस्था भी पीड़ित नहीं करती है, जो पुत्रादि युक्त भी माता के शरण में है वह सौवर्ष के अन्त में भी दोवर्ष की अवस्था के समान आनन्द से विचरता है, माता समर्थ, असमर्थ, दुर्बल, स्थूल चाहै जैसा पुत्र हो उनकी रक्षाकरती है ऐसीरक्षा उस बुद्धि से अन्य मनुष्य नहीं करसक्ता, जब पुरुष माता से पृथक् होता है तबही वृद्ध होकर दुःख को पाता है और संसार उसकी दृष्टि में नष्ट सा मालूम होता है, माता के समान छाया नहीं माता के समान गति नहीं माता के समान रक्षा स्थान नहीं, माता के समान कोई प्यारा नहीं, उदर में धारणकरने से धात्री और उत्पन्न करने से जननी और अंगोंकी वृद्धिकरने से अंबा और वीरपुत्र उत्पन्न करने से वीरसू कहाती है, बालक का पोषणकरने से श्वश्रू है यह माता प्रत्यक्ष देह है वह ज्ञानी मनुष्य इस को नहीं मारता है जिसका शिर कटुतूमर के समान नहीं है सत्संग के समय स्त्री पुरुष दोनों यही मनाते हैं कि हमारे पुत्र स्वरूपवान् और दीर्घायु हों परन्तु जीवों का प्रयोजन माता में नियत है जो गोत्र है उसको माता जानती है और जिसका पुत्र है उसको भी माताही जानती है, गर्भ में धारण करने से माता की प्रीति और शुभ करना चाहिये और पुत्र पिता की सन्तान है तात्पर्य्य यह है कि माता पिता दोनों की आज्ञा मानना अवश्य है जो पुरुष आप प्रतिज्ञा पूर्वक पाणिग्रहण करके और साथ में धर्म को पाकर दूसरी स्त्रियों के पास जावेंगे वह पूजन और प्रतिष्ठा के योग्य नहीं हैं, तात्पर्य्य यह है कि मेरा पिता पतिव्रता का स्वामी है इससे पूजन के योग्य है, फिर पिता की आज्ञा से माता को मारना चाहिये यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री के पोषण करने से भर्त्ता और पालन करने से पति कहाजाता है इस गुण के न होने से न भर्त्ता है न पति है तात्पर्य्य यह हुआ कि भार्या के मारने का इच्छावान् और पोषण रक्षणादि गुण से पृथक् इस पिता की आज्ञा से माता को नहीं मारूंगा, कुचालिनी स्त्री मारने के योग्य है नहीं तो कुल में संकर होता है यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री इस प्रकार से भी अपराध रहित है पुरुषही अपराधकर्त्ता है पुरुषही परस्त्रीगमनादि बड़े २

दोषों को करता है, ऐसे पुरुष के साथ आनन्द मानने से स्त्री का भी अपराध है यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री का परम देवता दैवत कहा है उस के शरीर के समान इन्द्र को जानकर और देखकर अपना श्रेष्ठ अंग देदिया तात्पर्य्य यह है कि अपने भर्त्ता के रूपके समान अन्य मनुष्य को अपना भर्त्ता जानकर अपना देह देनेवाली मेरी माता का व्यभिचार दोष नहीं है, गर्भ से उत्पन्न कुल संकर के न होने से यह मारने के योग्य नहीं है, स्त्रियों का अपराध नहीं है पुरुषही अपराध कर्त्ता है सब बातों में पति के स्वतन्त्र होने से जबरदस्ती से होनेवाले व्यभिचार आदि में स्त्रियां अपराध नहीं करती हैं कामदेव को स्त्री में लगानेवाले इन्द्र काही प्रत्यक्ष दोष है मेरी माता का नहीं है यह निस्संदेह बात है आशय यह है कि इन्द्र के अपराध से माता का मरना न्यायविरुद्ध है इसप्रकार अज्ञानी पशुओं ने भी स्त्री को और पतिव्रता माता को मारने के अयोग्य समझा है, एक ही स्त्री के पास नियत पिता को देवताओं का समूह समझा है अर्थात् पिता के प्रसन्न करने से स्वर्ग की प्राप्ति है और देव मनुष्यों का समूह प्रीति से माता को प्राप्त होता है अर्थात् माता दोनों लोकों की देनेवाली और इसलोक में पोषण करनेवाली है अभ्यास और विलम्ब से करने के कारण बहुतविचार करतेहुए उसको बहुत समय व्यतीत होगया और उनका पिता भी आपहुंचा, बड़े ज्ञानी तपनिष्ठ मेधातिथि नाम गौतम स्त्री के अयोग्य मरण को विचारकर अत्यन्त दुःखित अश्रुपात डालतेहुए बोले और शास्त्रयुक्त धैर्य से शान्त हुए और पश्चात्ताप करने लगे कि तीनों लोक का ईश्वर इन्द्र ब्राह्मणरूपधारी अतिथिरूपी व्रत में नियत होकर मेरे आश्रम में आया वह मेरे वचनों से विश्वसित कियागया और कुशलक्षेम पूछकर पूजन किया गया और न्याय के अनुसार मैंने अर्घ पाद्य भी प्राप्तकिया और मैं आप से सनाथ हुआ यह वचन भी कहागया, इस निमित्त कि वह इस वचन से तृप्त होकर मुझपर प्रीति करेगा इस विचार में कामी इन्द्र की ओर से स्त्री दोष उत्पन्न होने से स्त्री की वे मर्यादगी नहीं है, इसप्रकार स्त्री समेत मैं और स्वर्गमार्गगामी देवेश्वर इन्द्र अपराधी नहीं हैं योगधर्म में जो असावधानी है वही अपराध करती है, दुःख को अधैर्य से उत्पन्न होनेवाला कहा है इसीकारण मुनिलोग ऊर्ध्वरेता होते हैं मैं अपने अधैर्य से अपमानयुक्त हुआ हूं और कुकर्मरूपी समुद्र में डूबा हुआ हूं, पतिव्रता स्त्री गर्भ का स्थान होने से और पोषण करने के हेतु भार्या नाम से प्रसिद्ध है उसको मारकर मुझ को कौन पार उतारेगा, बड़ा बुद्धिमान् चिरकारी जिसको भूल से मैंने मारने की आज्ञादी है वह चिरकारी ही मुझ को पातक से निवृत्तकरे अर्थात् रक्षाकरे, हे चिरकारिन्! तेरा कल्याण हो और भला हो और तुम चिरकारी हो इसकारण कि विलम्ब से काम के करनेवाले हो, मुझको और अपनी माता को और जो मैंने तप संचय किया

है इन सब को और अपने को पातक से रक्षाकरो और विलम्ब से कार्यकर्त्ता होना यह गुण तुम में स्वाभाविक है यह तेरा गुण तेरी बड़ी बुद्धि से सफल हो बहुत समय तक माता से इच्छा कियागया और बड़े कालतक गर्भ में धारण कियागया है चिरकारिन्! तुम अपने विलम्बयुक्त कार्य्यों को फलयुक्त करो तेरे विचार से बहुत काल तक रक्षा कियागया मनुष्य बहुत समय तक सोता है इससे हम दोनों के बड़े दुःख का विचार करो, हे राजन्, युधिष्ठिर! जब इसप्रकार से उस गौतमऋषि ने अपने चिरकारी पुत्र को सन्मुख वर्त्तमान देखा उसके पीछे बड़े दुःखी चिरकारी ने अपने पिता को देखकर शस्त्र को त्यागके मस्तक से प्रसन्न करने के लिये कर्म को प्रारम्भकिया तदनन्तर गौतम ने भी शिर के बल से पृथ्वीपर गिरे हुये उस पुत्र को और लज्जा से पाषाणरूप उस स्त्री को देखकर बड़े हर्ष को पाया, आश्रम में नियत उस महात्मा के हाथ से वह स्त्री मारी नहीं गई और मारडालने की आज्ञापानेवाला पुत्र भी निर्जन स्थान में चैतन्य रहा अर्थात् माता को नहीं मारा और अपने पिता की आज्ञा में अनुपस्थित खड्ग हाथ में लिये कार्य में नियत होनेपर और चरणों पर झुकेहुये पुत्र को देखकर पिता का यह सम्मत हुआ कि यह भय से शस्त्र धारण करने की चपलता को गुप्त करता है, फिर पिता ने कुछ कालतक प्रशंसा करके विलम्बतक मस्तक को सूंघते दोनों भुजाओं से मिलकर यह वचन कहा कि चिरंजीवी हो, इसप्रकार प्रीति की प्रसन्नतासहित उस महाज्ञानी गौतम ने पुत्र की प्रसन्नता के अर्थ फिर यह वचन कहा, कि हे चिरकारिन्! तेरा भला हो विलम्ब में कार्य्य करनेवाले बहुत समयतक जियो हे सौम्य, पुत्र! तेरे विलम्ब से आज्ञावर्त्ती होने से मुझ को दुःखी न होनापड़ा, यह कहकर पुत्र से इसकथा को कहा जोकि विलम्ब से कार्य्य करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषों के गुणों के विषय में है देर में मित्र को पकड़े और बनायेहुए मित्र को विलम्ब से त्यागकरे और देर में कियेहुए मित्र को विलम्बतक रखना उचित है, वह मनुष्य प्रीति, अहंकार, शत्रुता, पापकर्म, और करने के योग्य अप्रिय कर्म में प्रशंसा कियाजाता है जोकि चिरकारी अर्थात् विलम्ब से कार्य्य करता है, बान्धव, सुहृद, स्त्री जन नौकर आदि इन सब के गुप्त अपराधों में चिरकारी ही प्रशंसा कियाजाता है, हे भरतवंशिन्! इसप्रकार से गौतमजी पुत्रपर प्रसन्नहुये और पुत्र चिरकारी उन से आनन्दित हुआ, इसी हेतु से सब पुरुष अपने सब कार्य्यों को विचारकर विलम्ब तक निश्चय करके बहुत दुःखी नहीं होता है अर्थात् फिर पश्चात्ताप नहीं होता है, जबकि देरतक क्रोध को धारण करता है और देर में उस कर्म को निश्चय करता है ऐसी दशा में पश्चात्ताप पैदा करनेवाला कोई नहीं होता है, देरतक वृद्धों की उपासना करे, देरतक सन्मुख बैठकर पूजनकरे, देरतक धर्म का सेवन करे, देरतक धर्म को खोजकरे, देरतक ज्ञानियों के पास बैठे, देरतक श्रेष्ठ

पुरुषों का सेवन करे, देरतक चित्त को स्वाधीन करे, तो देरतक प्रतिष्ठा को पाता है धर्मसम्बन्धी वचन कहनेवाले भी दूसरे को देर में उत्तर दें तो देरतक दुःख को नहीं पाते हैं, इसके पीछे वह बड़े तपस्वी पुत्र समेत बहुत कालतक उस आश्रम में निवास करके स्वर्ग को गये ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चौरानवेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे सत्पुरुषों में श्रेष्ठ, पितामह ! जब हिंसाही धर्म है हिंसाही पाप है तो अपराधियों के दण्ड देनेवाले राजा को हिंसा कैसे होगी और विना दण्ड दिये संसार की रक्षा कैसे होय और राजा की रक्षा कैसे करे और किसको मारे किस को न मारे यह आप से पूछता हूं आप समझाकर कहिये, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें द्युमत्सेन और राजा सत्यवान् का संवाद है, पिता की आज्ञा से अपराधियों के मारनेपर उपस्थित होनेपर सत्यवान् ने यह वचन कहा जिसको कि पूर्व में किसीने नहीं कहा था, धर्म अधर्मरूप को और अधर्म धर्मरूप को वहां प्राप्त होता है जहांपर कि घातनामही धर्महोता है यह नहीं होने के योग्य है, द्युमत्सेन बोले कि, हे सत्यवन् ! जो न मारनाही धर्म है तो ऐसीदशा में अधर्म कौनहोगा जो चोर न मारेजायँ तो वर्णसंकर होजायँ, यह मेरा है और इसका नहीं है यह बात कलियुग सम्बन्धी वर्त्तमान होजायँ तीर्थयात्रा और व्यापारादिक व्यवहार भी मिटजायँ इस विषय में जो आप जानते हो वह मुझ से कहिये, सत्यवान् बोला कि यह तीनों वर्ण ब्राह्मणों के स्वाधीन करने चाहिये, इन धर्म्मपाश में बँधेहुए तीनों वर्णों के दूसरे अनुलोम प्रतिलोम से पैदा होनेवाले सूत मागध इत्यादि भी इसीप्रकार कर्म्म करेंगे उनमें जो २ पुरुष न्याय के विपरीत हों उनको प्रकट करदें कि यह मेरी आज्ञा को नहीं सुनते हैं राजा उनको दण्ड देगा, जिस शास्त्र में देह का नाश नहीं कहा है उसमें प्रवृत्त होना चाहिये सबप्रकार की बातों को और शास्त्र के अभिप्राय को बुद्धि के अनुसार न विचारकर हिंसात्मक शास्त्र के अनुसार कर्म्म न करना चाहिये, राजा चोरों को मारता है तो उनके साथ उनकी स्त्री माता पिता पुत्र आदि बहुत से मनुष्य निरपराध मारेजाते हैं इसीकारण किसी से आज्ञाभंग किया हुआ राजा अच्छे प्रकार से विचार करे, किसीसमय साधुओं के सत्संग से असाधु पुरुष भी उत्तम स्वभाव को पाता है और असाधुओं से भी श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है, निर्मूल न करना चाहिये क्योंकि यह सनातन धर्म्म नहीं है, थोड़े मारने का भी प्रायश्चित्त होता है, भय दिखाना, पकड़ लेना, कुरूप करना इत्यादि बातों से दण्डदेना चाहिये और उन भार्य्या पुत्रादि को पुरोहित की सभा मे उनके

अपराधी स्वामियों को मारकर दुःखी न करना चाहिये जब रक्षा की इच्छा करके वह चोर पुरोहित के पास जाकर यह कहैं कि हे स्वामिन्! हम फिर इस पाप को नहीं करेंगे तब छोड़देने के योग्य हैं क्योंकि ईश्वर की आज्ञा है कि दण्ड मृगचर्म का धारण करनेवाला मुण्ड ब्राह्मण भी उपदेश के योग्य है, बड़े आदमी बड़ा अपराध करें तब बराबर अपराध करनेपर छोड़ने के योग्य नहीं हैं, द्युमत्सेन बोले कि प्रजा के लोग जिस २ मर्य्याद में चलाने सम्भव हों वही धर्म तब तक कहाजाता है जबतक कि वह धर्म्म उल्लंघन नहीं किया जाता है, फिर धर्म्म के विपरीत चलने पर चोरों के न मारने में प्रजा का नाश होजाता है प्राचीन से प्राचीनसमय में संसार के लोग शासना योग्य होते थे क्योंकि वह मनुष्य बड़े मृदुस्वभाव सत्यवक्ता शत्रुता, क्रोध आदि साधारण रखते थे उस समय में धिक्कार दण्ड करनाही महादण्ड समझते थे फिर वचनदण्ड अर्थात् दश्युनाम आदिही दण्डनियत हुआ फिर आदानदण्ड अर्थात् जुर्माना दण्डहुआ अब कलियुग में मारनाही बड़ा दण्ड है कोई २ मनुष्य मारने से भी सुमार्ग में चलाने असम्भव हैं, चोर न मनुष्य का है न देव गन्धर्व्व पितरों का है फिर यहां कौन किसका है कोई किसीका नहीं है यह श्रुति है, वह चोर मृतक के भूषण आदि को लेता है और पिशाच से ग्रसित मनुष्य के भी वस्त्रादिक हरण करता है उन निर्बुद्धि और नाशवान् चोरों की बुद्धि में कौन शपथ आदि मर्य्याद को जारीकरे अर्थात् कोई नहीं जारी करसक्ता तात्पर्य्य यह है कि चोरों की जाति का कभी विश्वास नहीं है सत्यवान् बोला कि जो तुम हिंसा आदि से उन साधुओं की रक्षा करने को समर्थ नहीं हो तो उस दशा में किस यज्ञ के लाभ से उन चोरों के नाश को करतेहो आशय यह है कि वेद की श्रुति के अनुसार चारों वर्ण जो कि अपराधी मारने के दण्ड योग्य हों वह यज्ञ में मारने योग्य हैं क्योंकि वह यज्ञपशु होकर स्वर्ग को जाते हैं, राजालोग इस प्रकार के चोरों से लज्जा करते हैं इसकारण चौरकर्मी होकर संसार के प्रबन्ध के निमित्त बड़ी तपस्या करते हैं, भयभीत करीहुई प्रजा नेकचलन होती है, राजा अपराधियों को अपनी इच्छानुसार नहीं मारते हैं अर्थात् जो बध के योग्य होता है उसको यज्ञ में मारते हैं और उत्तम कर्म्म से ही प्रजा को भय दिखलाकर शिक्षा करते हैं, ऐसा राजा होने पर सब मनुष्य परम्परापूर्व्वक उसके चलन के अनुसार कर्म्मकर्त्ता होते हैं क्योंकि बहुधा मनुष्य अपने गुरु की मर्य्यादा पर चलते हैं जो राजा अपने चित्त को स्वाधीन किये विना दूसरों कोअपने स्वाधीन करना चाहता है मनुष्य उस राजा को जो कि पशुओं के मध्य में इन्द्रियों के स्वाधीन हैं हँसते हैं, जो मनुष्य कपट और मोह स राजा की कुछ आज्ञा भंग करे वह सबप्रकार से दण्ड के योग्य है वह उसीप्रकार दण्ड से और पाप से

निवृत्त होता है, अपराधी को दण्ड देने की इच्छा करनेवाले राजा को पहिले अपना चित्तही स्वाधीन करना योग्य है और अपराधी के भाई आदि को भी बड़े दण्डों से दण्ड देवे, जिस राज्य में पाप करनेवाला नीच मनुष्य बड़े कष्ट को नहीं पाता है वहां निश्चय करके पापीलोगों की वृद्धि होती है और धर्म का नाश होता है, हे तात ! इसप्रकार दयावान् ज्ञानी ब्राह्मण ने शिक्षा करी उसीप्रकार विश्वास देनेवाले पूर्व के महात्माओं से भी यही शिक्षा हुई है हे राजन् ! सतयुग में इस भूमण्डल को हिंसारूप दण्ड से भी स्वाधीन किया है, अर्थात् धिक्कार करना, कठोर वचन कहना, जुर्माना लेना, वध करना इन में एक २ दण्ड को क्रम से हरएक युग में जारी करे इसप्रकार धर्म के तीन चरण त्रेतायुग में प्राप्तकरे द्वापर में दो चरण से और कलियुग में एक चरण से और कलियुग के वर्त्तमान होनेपर मुख्य समय में राजा के कुकर्म से धर्म की सोलहवीं कला बाकी रहजाती है, हे सत्यवन् ! फिर हिंसारूप दण्ड देने से वर्णसंकर होते हैं, अवस्था सामर्थ्य और समय को निश्चय करके तपरूप दण्ड की आज्ञादे अर्थात् जैसे तप से पाप नष्ट होता है इसीप्रकार अपराधी दण्ड पाने से पवित्र होता है इसीकारण से तप का अर्थ दण्ड है, जैसे इसलोक में बड़े धर्मफल अर्थात् ज्ञान को ब्रह्मप्राप्ति के लिये त्याग नहीं करे उसीप्रकार का अहिंसारूप धर्म स्वायम्भूमनुजी ने जीवों के उपकारार्थ वर्णन किया है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चानबेवां अध्याय ॥

जीवों की अहिंसा से जो छः गुण का कारण योग था उसको कहा और हे पितामह ! जो धर्म दोनों ओर का गुणदायक हो उसको मुझ से कहिये, ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य, धर्म यह छः भग नाम हैं ये छओं जिसके पास हों और जो जीवों की उत्पत्ति नाश होना, मोक्ष, विद्या, अविद्या, को जानता है उसको भगवान् कहते हैं हे पितामह ! यह दोनों सन्मुख वर्त्तमान गृहस्थ धर्म्म और योग इन में कौन सा कल्याणकारी है, भीष्मजी बोले कि, यह दोनों गृहस्थ और योगधर्म बड़े कठिन हैं इनका पूरा करना बड़ा काम है परन्तु सत्पुरुषों के करने के योग्य और बड़े फल के देनेवाले हैं. मैं इन दोनों के प्रमाण को कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि यह धर्म अर्थ के संशय का हरनेवाला प्राचीन इतिहास है जिसमें कपिलजी का और गौ का संवाद है कि प्राचीन समय में राजा नहुप ने सनातन अचल आम्नाय को देखके त्वष्टा के निमित्त मधुपर्क में गोवध करना चाहा था यह हम ने श्रवण किया है कि उससमय महाज्ञानी उदारबुद्धि सतोगुणी शान्तचित्त कपिलजी ने इसप्रकार से

मारने को आगे की हुई गौ को देखकर अकस्मात् यह वचन कहा कि हे वेदो! तुमको धन्य है, स्यूमरश्मि नाम ऋषि ने उस गौ में प्रवेश होकर कपिल यती से यह कहा कि बड़ा आश्चर्य्य है कि वेदनिन्दित मानेगये तो अब हिंसारहित धर्म ज्ञान का निश्चय किससे कियाजाय, तपस्वीलोग उस सदैव ज्ञानरूप परमेश्वर के कहेहुए वेद को अत्यन्त आर्ष मानते हैं वह तपस्वी अत्यन्त ज्ञानी विज्ञान शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाले हैं और ईश्वर का कहाहुआ वचन मिथ्या नहीं हो सक्ता है, कपिलजी बोले कि मैं वेदों की निन्दा नहीं करता हूं और धर्म के विपरीत भी कभी न कहूंगा जुदे २ आश्रमों के कर्म एकही प्रयोजनवाले हैं, संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ यह सब परमपद को पाते हैं यह चारों सनातनमार्ग आत्मा को प्राप्तकरनेवाले माने हैं उनमें न्यूनाधिकता और एक से एक की श्रेष्ठता दिखलाने के निमित्त यह कहा है कि संन्यासी मोक्ष को, वानप्रस्थ ब्रह्मलोक को, गृहस्थी स्वर्गलोक को, और ब्रह्मचारी ऋषिलोक को पाता है, इसप्रकार जानकर सब स्वर्ग आदि अर्थों के निमित्त यज्ञ आदि को प्रारम्भ करे यही वेद का मत है इससे भिन्न कर्म्मों का प्रारम्भ न करे यह निष्ठावान् श्रुति भी कहीं २ सुनीजाती है, कर्म्म के प्रारम्भ न करने में दोष नहीं होता है और कर्म्म के प्रारम्भ में बड़ा दोष है इसप्रकार के नियत शास्त्रों में प्रधानता अप्रधानता जानना कठिन है, जो यहां कोई शास्त्र प्रत्यक्ष फलवाला और अहिंसा से श्रेष्ठतम वेदशास्त्र से विशेष है और आप उसको अनुभव से देखते होयँ तो कहिये, स्यूमरश्मिऋषि बोले कि, यह स्मृति है कि स्वर्ग कामनावाला सदैव यज्ञ करे इसमें प्रथम फल का संकल्प करके यज्ञ रचाया जाता है बकरा, घोड़ा, मेढ़ा, गौ और पक्षियों के समूह आदि का भोजन गांव और वन की औषधि है इसीसे इनके प्राणों की रक्षाहोती है यह श्रुति है इसीप्रकार प्रतिदिन प्रातःकाल सायंकाल अन्न नरों के अर्पण होता है पशु और धान्य यज्ञ के अंग हैं यह भी श्रुति है इनको ब्रह्माजी ने यज्ञों के साथही उत्पन्न करके यज्ञ से देवताओं को पूजा इसके सब जीव जो कि सातप्रकार के हैं परस्पर में एकसे एक उत्तम हैं उस उत्तम नाम विश्वरूप पुरुष को यज्ञों में लयादिक करने के लिये संस्कार से संयुक्त किया अर्थात् गौ, बकरा, मेढ़ा, मनुष्य, घोड़ा, खिचर, गधा यह गांव के पशु हैं और सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसा, हाथी, रीछ, हिरन यह सात वन के पशु हैं सबके पूर्व में विष्णु और फिर ब्रह्मा आदि ने यह यज्ञ का उपदेश किया है मुझ से बकरा घोड़ा आदि का मारना संभव है इस बात को जानकर कौन पुरुष प्राणियों को यज्ञ में मारने के निमित्त विचार न करेगा, यज्ञ में हिंसा दोष नहीं है इस बात को सिद्ध करके कहते हैं कि पशु आदिवृक्ष औषधि स्वर्ग कोही चाहते हैं और स्वर्ग यज्ञ के विना

मिलनहीं सक्ता, औषधि, पशु, वृक्ष, वीरुध् लता, घृत, दूध, दही, हव्य, पृथ्वी, दिशा, श्रद्धा, काल, यह बारह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और सोलहवां यजमान और इनका ग्रहपति अग्नि है वह सत्रहवां कहाजाता है, यह सब यज्ञ के अंग हैं और यज्ञही संसार की स्थिति का मूल है यह श्रुति है, गौ अपने घृत, दूध, दही, गोवर, फटादूध चर्म, बैल, पूंछ, सींग, और चरण आदि से यज्ञ को सिद्धकरती है अर्थात् पूर्ण करती है और जो २ अंग इस यज्ञ का कहाजाता है सब इसीप्रकार के हैं यह सब इकट्ठे होकरदक्षिणा पानेवाले ऋत्विजों के सहित यज्ञ को धारण करते हैं इन सबको इकट्ठा करके यज्ञ निर्माण करते हैं, वह सब यज्ञ केही निमित्त उत्पन्न हुए इस अर्थवाली श्रुति कही और सुनी जाती है इसीप्रकार सब प्राचीनलोग कर्मकर्त्ता हुए, जो पुरुष फल की अनिच्छा से पूजन करता है वह न हिंसा करता है न यज्ञकर्म का प्रारम्भ करता है और शत्रुता भी किसीसे नहीं करता है क्योंकि वह यज्ञ करने केही योग्य है, यह औषधि आदि यज्ञ के अंग और यज्ञ में वर्णित यज्ञ कुम्भादिक अपनी अलौकिक बुद्धि के अनुसार परस्पर में एक एक की सहायता करते हैं, मैं उस आम्नाय को आर्ष देखता हूं जिसमें वेद प्रतिष्ठावान् हैं ज्ञानीलोग वेद ब्राह्मण के विचार से उसको देखते हैं, यज्ञ में वह वेद के ब्राह्मणों से उत्पन्न होनेवाले हैं और ब्राह्मण में हीं वर्त्तमान हैं सब संसार यज्ञ के पीछे है और यज्ञ सदैव संसार के पीछे है, वेद के उत्पत्तिस्थान प्रणव, नमस्कार, स्वाहा, स्वधा, वषट् यह सब जिसकी ओर से सामर्थ्य के अनुसार होते हैं वह प्रयोग कहेजाते हैं उसके भय से इस लोक को तीनों लोकों में नहीं जाना इसबात को वेदसिद्ध और महर्षिलोग जानते हैं, ऋग्, यजु, साम और स्तोम इत्यादि विधि जिसमें सब होती हैं वह द्विज कहा जाता है, फिर अग्निहोत्र और सोमपान में जो फल ब्राह्मण को मिलता है या अन्य महायज्ञों से मिलता है उसको आप ज्ञान ऐश्वर्य्य से संयुक्त जानते हो, हे ब्रह्मन् ! इसीकारण यज्ञ करे और विचार सहित यज्ञ करावे स्वर्गके दाता ज्योतिष्टोमादि से पूजन करानेवाले पुरुष को देहत्यागने के पीछे बड़ा स्वर्गफल मिलता है, यज्ञ के न करनेवालों का न यह लोक है न परलोक है यह निश्चय है कि जो पुरुष वेदों के अर्थवाद को जानता है उसका दोनों प्रकार का अर्थवाद प्रमाण है क्योंकि एक अर्थवाद केवल प्रशंसारूप होता है जिसके द्वारा फलरहित कर्म्म करके शुद्धचित्त होकर मोक्ष का अधिकारी होता है और आत्मज्ञानी सबलोक और मनोरथों को प्राप्त करता है इसीकारण दोनों अर्थवाद समान हैं यह पूर्व्व पक्ष हुआ, ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

छानबेवां अध्याय ॥

कपिलजी बोले कि, हम नियमादि गुणयुक्त योगमार्ग में प्रवृत्त ज्ञानीलोग इस कर्मफल से उत्पत्ति और दृष्टिगोचर होने से अभावरूप ब्रह्माण्ड के साक्षात्कार आत्मा को प्राप्तहोते हैं और फलश्रुति को अर्थवाद कहा यह शंका करके कहते हैं कि सबभोग पदार्थों में इन योगों का संकल्प मिथ्या नहीं है अर्थात् इनके संकल्प सेही सब कुछ प्रकट होजाता है यह ज्ञान का फल हुआ आशय यह है कि ज्ञानी का आत्मज्ञान कर्म के अंगत्व भाव को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वहांपर आत्मा के सिवाय कोई दूसरा शेष नहीं रहता इसकारण आत्मज्ञान का फल अर्थवाद नहीं होसक्ता और दूसरा अर्थवाद कर्म्म में ज्ञानी की श्रद्धा करने के लिये होता है यह उत्तरपक्ष हुआ, वह ज्ञानीलोग शीतोष्णता से उत्पन्न हर्ष शोकादिरहित किसीको नमस्कार न करनेवाले स्वभावसिद्ध निर्म्मल अर्थात् आगामी दोष और पापों से रहित विचरते हैं वह मोक्ष सर्व त्याग और बुद्धि में निश्चय करनेवाले ब्रह्मिष्ठ ब्रह्मरूप ब्रह्म मेंही निवासकरनेवाले शोकरहित नाशवान् रजोगुण हैं उनके सनातन अभीष्ट अर्थों को अर्थात् नित्य शुद्धता से उत्तम गति को पाकर गृहस्थ आश्रम के धर्मों में उनका क्या प्रयोजन है, स्यूमरश्मि बोले कि, जो यह परम काष्ठा है या परमगति है तो भी गृहस्थियों को रक्षाश्रय होकर दूसरा आश्रम वर्त्तमान नहीं होता है, जैसे कि सब जीव अपनी २ माता के आश्रय होकर जीवते हैं इसीप्रकार अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर वर्त्तमान होते हैं, गृहस्थी यज्ञ करता है गृहस्थीही तप करता है और सुख की इच्छा से जो २ चेष्टा करता है उस धर्म्मफल का मूल गृहस्थाश्रम है, सब मनुष्य और जीवमात्र सन्तान उत्पन्न होने से प्रसन्न होते हैं दूसरे आश्रम में किसीप्रकार से भी संतान नहींहोसक्ती तृण, धान, औषधि आदि का मूल भी गृहस्थाश्रम है जैसे कि यज्ञ करने से वर्षा अन्नादि जीव क्रम से उत्पन्न होते हैं क्योंकि औषधिरूप प्राण से कुछ बाहर नहीं दृष्ट पड़ता है, किसका वचन सत्य नहीं है कि गृहस्थ आश्रम से मोक्ष नहीं है श्रद्धारहित अज्ञानी सूक्ष्मदृष्टि से पृथक् प्रतिष्ठारहित आलस्य परिश्रमयुक्त और अपने प्राकृतकर्मों से दुःखित अपण्डित मनुष्यों में से संन्यास में प्रवृत्त चित्त बाहर से उत्तम नहीं देखागया है, सनातनधर्म्म की अचल मर्यादा तीनों लोक की कारण है प्रत्यक्ष है कि वेदज्ञ ब्राह्मण भगवान् के समान जन्म सेही पूजाजाता है, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों में गर्भाधान से पूर्वही वेदोक्त मन्त्र जारी होते हैं और इसलोक परलोक सम्बन्धी साधन के योग्य सब कर्म्मों में निश्चय करके मन्त्रही साधक होते हैं, मृतक का दाह आदि

कर्म्म जो कि दूसरे जन्म से सम्बन्ध रखनेवाला है और जन्म लेनेवाले मृतक के लिये तर्पण श्राद्ध आदि में अन्न, जल, गोदान आदि का देना और वृषोत्सर्ग और और जल में पिण्डों का डालना इत्यादि सबकर्मों में बड़े तेजस्वी बर्हिषद नाम पितृगण और कव्य के भोजन करनेवाले पितर मन्त्रों कोही साधक मानते हैं और मन्त्रही कारण हैं इसप्रकार से कहनेवाले वेदों में कैसे किसी की मोक्ष है जब कि संसार के लोग देवता और ऋषि, पितरों के ऋणी हैं, निर्धन आलसी पण्डितों ने वह वेदवचनों के ज्ञान से रहित सत्य समान दीखने वाला मिथ्यारूप मोक्षस्वरूप जारी किया है, जो ब्राह्मण वेद और शास्त्रों के अनुसार यज्ञ करता है वह पाप से मुक्त और आकर्पण नहीं कियाजाता है और यज्ञ के द्वारा पशुओं समेत स्वर्ग को जाता है और कामनाओं से पूर्ण देव पितरों को तृप्त करता है, वेदों की निन्दा और छल से मोक्ष को नही पाता है वह पुरुष वेद में ही ब्रह्म को पाता है, कपिलजी बोले कि, दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास नाम यज्ञ ज्ञानी पुरुपों के हुए इन में सनातन धर्म्म हैं तात्पर्य्य यह है कि चित्तशुद्धि का चाहनेवाला बुद्धिमान्ही उनका अधिकारी है कर्म्म प्रारम्भ न करनेवाले बड़े धैर्य्यवान् वाह्याभ्यन्तर पवित्र ब्रह्मज्ञानी और अविनाशी होने की इच्छाकरनेवाले संन्यासीलोग ब्रह्म से ही देवता ऋषि तृप्तकरते हैं, सब जीवों के आत्मारूप और सब जीवमात्र के देखनेवाले परमपद के इच्छावान् चिह्न-रहित संन्यासियों के मार्ग में देवता भी मोह को प्राप्तहोते हैं, इस सर्वात्मा चिह्न-रहित शरीर के मध्यवर्त्ती आत्मा को गुरु के उपदेश से चारप्रकार का अर्थात् विराट्, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्धरूप इनभेदों से जानता है उसके चार द्वार अर्थात् दोनों भुजा, वचन, पीठ, लिंग, यही गुप्त करनेवाले हैं और देह, चित्त, मन, बुद्धि यह चारसुख भोग के साधन हैं इनचारों से देवताओं का भी मोह उत्पन्नहोता है इसकारण द्वारपाल अर्थात् भुजा इत्यादि का स्वामी ऐश्वर्यवान् होनाचाहिये पाशों से नही खेले न दूसरे का धन लेवे और विपरीत जन्मवाले का हव्य न लेवे अर्थात् उसको यज्ञ न करावे और बुद्धिमानी से न क्रोध युक्त हो न किसी पर चोटकरे गाली आदि न दे वृथा वार्त्तालाप न करे कठोरवचन और निन्दा न करे सत्यव्रत मितभाषी और सावधान हो और उसका वचन द्वार भी श्रेष्ठ होना चाहिये भोजन का अत्यन्तही त्यागी न हो मिथ्यावादी न हो लोभरहित साधुओं की संगतिकरे थोड़ा भोजनकरे इसप्रकार से उसके उदररूपी द्वार की रक्षा होती है हे वीर, युधिष्ठिर ! यज्ञ सम्बन्धिनी स्त्री को कभी पृथक् न करे अर्थात् दूसरी स्त्री के करने में भी उसको धर्म्म, अर्थ, काम में अविभागिनी नहींकरे और ऋतुकाल के विना स्त्री को नही बुलावे और दूसरे की स्त्री के रूप से सदैव परहेज करे कभी परस्त्री वासना आत्मा में न धारणकरे इसप्रकार से उसके लिंगरूप द्वार

की रक्षा होती है जिस बुद्धिमान् के लिंग, उदर, भुजा, वचन यह चारोंद्वार अच्छे दृढ़ होते हैं वही ब्राह्मण है और जिसके यह चारों द्वार रक्षित नहीं हैं, उस के तप आदि सब धर्म्म निष्फल होते हैं और वस्त्राच्छादन रहित विना अस्तरण शयनकर्त्ता भुजा कांखवाले शान्तरूप को देवता लोग ब्राह्मण जानते हैं, जो एकाकी दूसरों का ध्यान न रखनेवाला दुःख सुख के स्थानों में समभाव से निवास करनेवाला है उसको भी देवताओं ने ब्राह्मण कहा है और जिस से ब्रह्म की एकता जानी जाती है और जीवों की गति का जाननेवाला है और सब जीवों से निर्भय है और उससे भी सब निर्भय हैं वह सर्वात्मारूप है और दान यज्ञ क्रियाओं के चित्तशुद्धि आदि फल गुरु आदि से विना पूछे और कहे हुए ब्रह्मज्ञान को नहीं जानते हैं, और उस ब्रह्म को न जानकर दूसरे स्वर्गादिक फल को स्वीकार करते हैं, आश्रमियों का वेदान्त श्रवणादिरूप विचार अपने कर्म्मों समेत उस अज्ञान का भस्म करनेवाला होता है जोकि संसार का मूल है, उस आदि रहित सदैव मोक्ष के योग्य निश्चेष्ट फलयुक्त सदाचार में आश्रित होकर धर्म्मशास्त्रों में लिखेहुए किसी कर्म्म के करने को समर्थ न होते उन कर्म्मों को देखते हैं जोकि प्रत्यक्ष फल वाले हैं, पर ऐश्वर्ययुक्त अविनाशी और त्याग यज्ञ आदि कर्म्मों से फल की अनिच्छा रखनेवाले अनैकान्तिक हैं सावधानी और कामादि से पृथक्ता यह दोनों आचार आपद्धर्म्म से पृथक् हैं, तात्पर्य यह है कि यज्ञ आदि को विनाशवान् जानके ज्ञाननिष्ठों में प्रवृत्त हो स्यूमरश्मि बोले कि, कर्म्म को त्यागकरो इसपक्ष के होने पर जिसप्रकार वेद के प्रमाण हैं और जिस रीति से त्याग और वे त्याग फलयुक्त हैं वह दोनों मार्ग वेद में साफ कहे गये हैं अब आप ऐश्वर्य ज्ञान आदि से युक्त उसकी मुख्यता को मुझ से कहो, फिर अनुभव का प्रमाण करते हुए कपिलजी बोले कि, योग में जो ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग है उस में नियत होकर आप लोग यहां शरीर के होतेहुए प्रत्यक्ष देखते हैं और तुम सरीखे कर्मिष्ठ जिसको चाहते हैं वह इसलोक में किसरूप का प्रत्यक्ष है स्यूमरश्मि बोले कि, हे ब्रह्मन्! मैं स्यूमरश्मि हूं और ज्ञान सीखने को यहां आया हूं अर्थात् योग के द्वारा कल्याण की इच्छा से गौ में प्रवेश करके मैंने सत्यता से प्रश्न किया है अपने पक्ष सिद्धकरने को नहीं किया है आप छओं ऐश्वर्यवान् हैं इस से आप इस मेरे घोरसंशय को दूरकीजिये आप योगमार्ग में नियत प्रत्यक्ष देखरहे हैं और वह कौनसा प्रत्यक्षतम है किसकी आप उपासना करते हैं मैंने वेद के विपरीत बौद्ध, आर्हित, सौगत, कापालिक आदि शास्त्र से पृथक् आगम के अर्थ को बुद्धि के अनुसार जाना है वह आगम वेदवचन हैं और वेदार्थ को साफ करनेवाले पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, पातञ्जलि यह चारों भी आगम हैं

इनको अपने आश्रम धर्म्म के अनुसार उपासनाकरे तो आगम सिद्धहोता है और आगम के निश्चय से प्रत्यक्ष और अनुमान के अनुसार सिद्धि दिव्य भोग-प्राप्ति इत्यादि रूपवाली दृष्टआती है, इसप्रकार दूसरे का मतजानने के लिये अपने मतकी निन्दाकरते हैं हे वेदपाठिन्! जैसे कि नाव में बँधीहुई और नदी से वहाई हुई नाव पार नहीं लगाती है इसीप्रकार पहिले कर्म्मों की वासना से बँधी-हुई कर्म्मरूपी नौका किसप्रकार से अज्ञानियों को तारसक्ती है आशय यह है कि अज्ञानी जन्म मरणरूप प्रवाह के तरने को समर्थ नही हैं आप छओं ऐश्व-र्यवान् हैं और मैं शिष्यरूप वा अधिकारी हूं मुझे उपदेश करके प्रत्यक्षतम को समझाइये, कोई पुरुष कर्म्म की इच्छा से रहित नहीं है और न शोकरोगादि से पृथक् है, आप भी हमलोगों के समान प्रसन्नहोते हैं और शोचते हैं आप की इन्द्रियों के विषय भी सब जीवों के समान हैं इसप्रकार एकही सुख के चाहने-वाले चारोंवर्ण और चारों आश्रमों के व्यवहारी सिद्धान्त में कौन सा सुख अ-विनाशी है, कपिलजी बोले कि मोक्षशास्त्र की प्राप्ति के निमित्त जिस २ वैदिक अवैदिक शास्त्र को अच्छे प्रकार से अनुष्ठान करता है वह सब व्यवहारों में सफल है और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसशास्त्र में जिसका अनुष्ठान है अर्थात् शम दम आदि की प्राप्ति है उस २ शास्त्र में सब दोषों से रहित आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, साधन के अनुष्ठान से उत्पन्न ज्ञान सब संसार को आत्मा में मग्नक-रता है अर्थात् ज्ञानी को आत्मा के समानरूप करता है ज्ञान से पृथक् होकर जो वृत्ति वेदोक्त भी है वह जीवों को दुःखदायी होती है जन्म मरणरूपी प्रवाह के पारहोने से ज्ञानी आप से आप प्रत्यक्ष और सब रोगों से पृथक् हैं परन्तु आप सरीखे ज्ञानियों में कोई पुरुष द्वैततारहित आत्मज्ञान को पाता है, कोई मनुष्य शास्त्र को तत्त्वपूर्वक न जानकर कामद्वेष से युक्तहोने के कारण पराक्रम के द्वारा अहंकार के आधीन होते हैं, शास्त्रों के चोर और ब्रह्म के विषय में विपरीत वचन कहनेवाले शम दम आदि के अनुष्ठान से रहित मोह के फन्द में वर्त्तमान पुरुष शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त को न जानकर फल का होना नहीं देखते हैं आत्मज्ञान को सिद्ध करके ज्ञान ऐश्वर्यआदि गुण दूसरे को प्राप्त नहीं कराते हैं अर्थात् पाषाण के समान आप डूबते हैं वह दूसरे के निकालने को समर्थ नहीं होसक्ते उन शरीरों का जो अज्ञान है वही अज्ञान उनका रक्षा स्थान है जो जीव जैसी प्रकृतिवाला है वह उसी प्रकृति के आधीन होता है उसके काम क्रोध द्वेष कपट मिथ्यावचन अहंकार आदि जो प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं वह सदैव वृद्धि को प्राप्त होते हैं परमगति के चाहनेवाले और धारणा ध्यान समाधि-रूप नियम में प्रीतिमान् ज्ञानीलोग इसप्रकार से ध्यान करके पाप और पुण्य को अत्यन्त त्यागकरें, स्यूमरश्मि बोले कि, हे ब्रह्मन्! मैंने यह सब शास्त्र से वर्णन

किये क्योंकि शास्त्र को न जानकर वचनविलास जारी नहीं होते हैं, जो कोई आचार न्यायरूप है वह सब शास्त्र है यह श्रुति है और जो न्याय के विरुद्ध है वह शास्त्र नहीं है यह भी श्रुति सुनीजाती है, यह निश्चय है कि कोई वचन-विलास शास्त्र से रहित नहीं है वेदवचन से जो अन्य है वह शास्त्र नहीं है, यह भी श्रुति है, प्रत्यक्ष सिद्धि को माननेवाले बहुत से पुरुष शास्त्र से भिन्न सिद्धान्त को देखते हैं, आत्मा का अनुभव न होने से जिनकी स्वरूपनिष्ठा जातीरही और विषयों में जिनकी बुद्धि प्रवृत्त है वह तमोगुण युक्त जैसे कि बौद्ध शास्त्रोक्त दोषों को नहीं देखते हैं और शोचते हैं उसीप्रकार हमलोग भी शोचते हैं क्योंकि आपलोगों की इन्द्रियों के विषय शीत उष्णतारूप का स्पर्श सबजीवों में एकसा है अर्थात् सबको सुख दुःख देनेवाले हैं इसप्रकार एक सुख के जाननेवाले चारों वर्ण आश्रमियों के व्यवहारों में हमलोग तुम से शान्ति को प्राप्त कियेगये जोकि आप सिद्धान्त में अर्थात् सबप्रकार सब शास्त्रों के सिद्धान्त से मोक्ष को प्रकट करनेवाले वाद विवाद में समर्थ हैं परन्तु वह निष्ठा सब प्रकार से कर्म्म निवृत्त शान्तचित्त कोई ऐसे योगी पुरुषों से प्राप्त करनी सम्भव है जोकि देह के निर्वाह योग्य भोजन के विशेष दूसरी वस्तु से प्रयोजन न रखते हों, यह न्याय-शास्त्र से रहित लोकनिन्दित पुरुष से कहने के योग्यहै कि वेदवचन पर न चलने वाले की मोक्ष होती है यह कठिनकर्म्म जोकि दान, वेदपठन, यज्ञ, सन्तान की उत्पत्ति, और सीधापन है इसको इसप्रकार करने से भी जो मोक्ष नहीं है तो ऐसी दशा में कर्त्ता और क्रिया को धिक्कार है यह परिश्रम निरर्थक किन्तु दूसरी दशा में अर्थात् कर्म्मकाण्ड को निरर्थक कहने में नास्तिकता होती है और वेदों की क्रिया का त्याग होजाता है, हे भगवन् ! मैं इस कर्म्मकाण्ड का हेतु मोक्ष न होना अथवा मोक्ष का अंग होना ठीक २ सुना चाहता हूं हे ब्रह्मन् ! मैं आप की शरणमें आया हूं आप जिसप्रकार से जानते हों कृपा करके मुझे समझाइये॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवां अध्याय ॥

कपिलजी बोले कि, सब वेद लोकों को प्रमाण हैं वेद को विना उल्लंघन किये एक शब्दब्रह्म अर्थात् कर्म उपासनाकांड दूसरा परब्रह्म अर्थात् उपाधि-रहित सच्चिदानन्द यह दोनों ब्रह्म जानने के योग्य हैं शब्दब्रह्म में पूर्ण कर्म-कर्त्ता परब्रह्म को पाता है वेद के उपनिषद्कांड में जिस शरीर को गर्भाधान बुद्धि से उत्पन्न करता है वह देह को संस्कारयुक्त करता है क्योंकि गर्भाधान के मन्त्रों में यह आशीर्वाद होता है कि हे विष्णुजी ! योनि को कल्पनाकरो प्रजापति सींचो और धाता गर्भ को धारणकरो इन मन्त्रों से विष्णुआदि

देवताओं के समान ज्ञान ऐश्वर्य्यादि युक्त जीव उत्पन्न होता है, वेद और स्मृतियों के संस्कारों से पवित्र देहवाला ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के योग्य होता है इसलोक में कर्मों के फल इस चित्तशुद्धिरूप मोक्ष के योग्य को प्रत्यक्ष जानो उसका वर्णन तुम से करता हूं कि वह चित्तशुद्धिरूप फल केवल वेद से प्राप्त होनेवाला स्वर्ग के समान दृष्टि से गुप्त अथवा परम्परा का उपदेश नहीं है किन्तु लोकसाक्षी है—अनिच्छा से प्राप्त होनेवाले धन को त्याग करनेवाले निर्लोभी राग द्वेष से रहित पुरुष यह समझकर यज्ञों को रचते हैं कि यह धर्म्म है वही मोक्ष का साधन है और धनों का वही मार्ग है कि तीर्थ के समान पवित्र करनेवाले सत्पुरुषों को दान कियाजाय वह सत्पात्र अग्निहोत्र आदि कर्म्म, योगी पापकर्म्म रहित चित्त के संकल्प से बड़े शुद्ध, विषयों से पृथक्, ब्रह्मज्ञान में निश्चय रखनेवाले, क्रोध निन्दारहित, अहंकार ईर्षादि विना श्रवण, मनन, निदिध्यासन में निष्ठायुक्त, जन्म, कर्म्म, विद्या इन तीनों को शुद्ध रखनेवाले अपने कर्मों में प्रतिष्ठित, सबके प्यारे बहुत सी सन्तानवाले, राजाजनक आदि और ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य इत्यादि बुद्धि के अनुसार योगी समदर्शी सत्यवक्ता संतोषी ज्ञाननिष्ठ सत्यसंकल्पादि गुणयुक्त उपाधिरहित ब्रह्म में श्रद्धावान्हुए आदि से ही शुद्ध अन्तःकरण बुद्धि के अनुसार व्रती परस्पर में स्नेह रखनेवाले महादुर्गम स्थान में भी धर्म्म को करते हैं, प्राचीनसमय में मिलकर धर्म्म करनेवालों का जो सुख हुआ किसी दशा में भी उनका धर्म्म प्रायश्चित्त के योग्य नहीं हुआ, वह सच्चे धर्म्म में नियत होकर बड़े दृढबुद्धि समझे गये हैं बुद्धि से ही नहीं करते किन्तु शास्त्रोक्त कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपने निश्चय से धर्म्म में छल नहीं करते हैं कारण यह है कि जो प्रधानकल्प अर्थात् धर्म्म सत्ययज्ञ है उसीको सबने मिलकर किया कभी उनका प्रायश्चित्त करने के योग्य नहीं हुआ, उस रीति पर नियत पुरुषों का प्रायश्चित्त वर्त्तमान नहीं है अज्ञानी पुरुष का प्रायश्चित्त उत्पन्न होता है यह श्रुति है, इसप्रकार से अनेकप्रकार के प्राचीन यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण तीनों वेद के ज्ञाता गुरुसेवापरायण यशस्वी इच्छारहित ज्ञानी प्रतिदिन यज्ञों के करनेवाले हुए, उनके यज्ञ वेद और कर्म्मशास्त्र के अनुसार क्रमपूर्वक संकल्पयुक्त हुए उन काम क्रोध रहित कठिन आचारवान् अपने कर्मों में पवित्र शुद्धचित्त सत्यवक्ता पुरुषों का यज्ञादिकर्म ब्रह्मरूप हुआ हमारे निमित्त भी यही सनातन श्रुति है, उन बड़े बुद्धिमान् कठिनकर्म और आचारों के करनेवाले पुरुषों के तप अविद्या दूरकरनेवाले हुए, जो सदाचार आपत्ति धर्म्म से पृथक् काम क्रोध से अजित जिनमें किसी प्रकार की अमर्यादा नहीं हुई उस प्राचीन रूपान्तररहित एक आश्रमरूप सदाचार को ब्राह्मणों ने चारप्रकार का जाना है उसीको सन्तलोग बुद्धि के अनुसार पाकर परमगति

को पाते हैं इसकारण अन्य ब्रह्मचारियों ने गृहस्थी होकर फिर घर से निकल-
कर वन मेंहीं आश्रमलिया है वहां अधिकारी होकर संन्यास आश्रम में प्रवृत्त
हुए वह तेजस्वी ब्राह्मण स्वर्ग में नक्षत्रों के समान दृष्टआते हैं वैराग्य से भी
अगस्त्य, वशिष्ठादि ने ब्रह्मभाव को पाया यह वैदिक वचन है कि इसप्रकार के
लोग जो वारंवार योनियों में संसार को आते हैं वह प्रारब्धकर्म्म के कारण
कभी पापों के फल से योग नही पाते हैं तात्पर्य यह है कि देह को प्राप्तकरना
उनकी इच्छा के अनुसार एक घर से दूसरे घर में जाने के समान है, गुरु की
सेवा करनेवाला निश्चय में तदाकार ब्रह्मचारी भी इसी दशा का होता है
ऐसा योगी ब्राह्मण हो अर्थात् ब्रह्मज्ञानी के अर्थ के अनुसार ब्राह्मण होजाय
और दूसरा नाममात्र को ब्राह्मण हो, इसप्रकार से जिनके अन्तःकरण का दोष
नाशवान्हुआ उन पुरुषों के साक्षात्कार त्वम् पदार्थ और ज्ञान 'तत्त्वमसि' इस
महावाक्य से सब ब्रह्मरूपही हुआ, इसप्रकार की हमारी सनातन श्रुति है
आशय यह है कि सबका ब्रह्मरूप होना बनावट नहीं है किन्तु मुख्य और
सत्य है, उपनिषद् धर्म्म शम दमादि से लेकर समाधितक उन निर्लोभी निर्मल
मोक्षबुद्धि वर्णाश्रमी पुरुषों का चौथी अवस्थावाला परमात्मा है उस से सम्बन्ध
रखनेवाला सावधान है अर्थात् उसके सब अधिकारी हैं यह स्मृति है, शुद्धचित्त
और मन के रोकनेवाले ब्राह्मण उसको त्रयब्रह्मप्राप्ति कहते हैं संतोषवान्
संन्यासी ज्ञान का उत्पत्तिस्थान कहाजाता है अर्थात् और कोई उस की
योग्यता नहीं रखता सम्प्रदायक ब्रह्म साक्षात्कार वृत्तिवाला संन्यासियों का
धर्म्म प्राचीन है, वह धर्म्म दूसरे आश्रमों के धर्म्म में मिलाहुआ वा पृथक्
वैराग्य के अनुसार उपासना कियाजाता है वह धर्म्म उसके प्राप्त करनेवालों
के आनन्द का हेतु है अर्थात् सब मनुष्य उससे लाभ उठासक्ते हैं और जो पुरुष
रागी है वह इसमें पीड़ापाता है पवित्र मनुष्य ब्रह्मपद को चाहना संसार से
मुक्त होता है, स्यूमरश्मि बोले कि, जो पुरुष प्राप्त होनेवाले अपने धन से भोग
करते हैं, दान करते हैं यज्ञ करते हैं और वेद पढ़ते हैं अथवा जो पुरुष त्यागी
अर्थात् संन्यासी हैं इनमें सब से अधिक कौन स्वर्ग को प्राप्त करता है यद्यपि
गृहस्थ और संन्यास में सदाचार में प्रवृत्तपुरुषों का निवृत्ति ही धर्म्म है परन्तु देह
त्यागने के पीछे उनमें कौन अधिक है इस प्रश्न को हे ब्रह्मन्! मुझे कृपाकरिके
समझाइये, कपिलजी बोले कि, गुणभाव के प्राप्त करनेवाले सब परिग्रह शुभ हैं
परन्तु संन्यास के सुख को नहीं पाते इसको तुम भी देखते हो, स्यूमरश्मि बोले
कि आप निश्चय करके योगज्ञान में निष्ठा रखनेवाले हैं और गृहस्थी कर्म की
निष्ठा रखनेवाले हैं निष्ठा में सब आश्रमों की एकता कही जाती है अर्थात् सबका
निश्चय मोक्ष है इनमें एकता और द्वैतता में कोई मुख्यता नहीं दीखती है

हे भगवन् ! आप इसको मुझे समझाइये, कपिलजी बोले कि, स्थूल,सूक्ष्म शरीर की पवित्रता बुद्धि के अनुसार कर्म्म और ज्ञानमोक्ष के साधन में कर्मों से चित्त के दोष दूरहोने और शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान में ब्रह्मानन्दरस में नियत होने पर यह सब गुण उत्पन्न होते हैं, दया ऐश्वर्य्य में भी चित्त को स्वाधीन रखना चित्त को जीतना, सत्यबोलना, सत्यता हिंसा न करना, अहंकार शत्रुता रहित, लज्जा, शान्ति, कर्म का त्याग यह सब ब्रह्ममार्ग हैं इन्हीं से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, विद्यावान् मनुष्य चित्त से उस कर्म्मफल अर्थात् चित्तके दोष का दूरहोना और वैराग्य के उदय को जाने, सबओर से शान्त और अतिपवित्र ज्ञान में निश्चय करनेवाले तृप्त वेदपाठी ब्राह्मण जिस गति को पाते हैं उसीको परमगति कहते हैं इसप्रकार वेदों को जानने के योग्य ब्रह्मरूप कर्म्म को उसीप्रकार कर्म्मों को अनुष्ठान धर्म्म ज्ञान को जानकर वेद का ज्ञाता वर्णन किया इससे दूसरा पुरुष चमड़े की धौंकनी के समान तुच्छपुरुष कहनेवाला होता है वेद जाननेवालों ने सबको जाना है वेद में सब नियत हैं वेद मेंही सबकी वह निष्ठा है जो कि है और नहीं है अर्थात् वेद तीनों काल के वृत्तान्त का प्रकट करनेवाला है, पूर्व में ज्ञान को कहा अब जानने के योग्य को कहते हैं, सब शास्त्रों में एकही निष्ठा है वह यह कि यह जगत् पूर्ण प्रतीतिवाला है और बाधकाल में नहीं है, और तत्त्वज्ञानी की दृष्टि से यह दृश्यमान आकाशादि आदि मध्य अन्त युक्त है अर्थात् मिथ्या है और ज्ञानीलोगों के मत से सब दृश्यमान पदार्थ स्थिर हैं और सिद्धान्त में मिथ्यारूप भी अज्ञानियों की दृष्टि से दृढ़तम है, पुत्र, स्त्री, घर, धन, शरीर, मन, अहंकार तक के त्याग निर्विकल्प समाधि में नियत होनेपर आत्मा अच्छे प्रकार से प्राप्त होता है यह सब वेदों में लिखा है, उस मोक्षरूप संन्यासी में संतोष जो कि निरानन्द से लेकर ब्रह्मानन्द तक सब आनन्दों में वर्त्तमान हो नियत होता है, अब निर्व्वाण मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं, वह अविनाशी है और अरूप सरूप प्रपञ्च की मूर्त्ति है क्योंकि सब का उत्पत्ति स्थानही आत्मा है इसी से जाना हुआ है और जोकि जड़ चैतन्यरूप है इसीकारण जानने के योग्य है और पूर्ण कलावान् सुखरूप और सर्वोत्तम है शिव है, ब्रह्म है, और ईश के प्रकाश का कारणरूप रूपान्तर दशा से रहित और असंग है जितेन्द्रिय होने की शक्ति बुराई करनेवालेपर भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् सबकर्मों से वैराग्य यह तीनों शुभ हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के हेतु हैं, बुद्धिरूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों के इन तीनों गुणों से वह अकृत्रिम जगत् का कारण व असंग एकरूप अविनाशी प्राप्त होता है उस ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानी को नमस्कार है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवां अध्याय॥

जो पुरुष मोक्षधर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं है उसके निमित्त त्रिवर्ग में कौन श्रेष्ठतम है इस बात के निर्णय करने के निमित्त राजा युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! वेद इन तीनों धर्म, अर्थ, काम को कहते हैं उनमें किसका जानना उत्तम है उसको मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि, इस स्थान पर मैं इस प्राचीन इतिहास को तुम से वर्णन करता हूं जिसमें कुण्डधार नाम मेघ ने प्रीतियुक्त होकर अपने भक्त का उपकार किया, किसी निर्द्धन ब्राह्मण ने विचार किया कि फल की इच्छा से धर्म को करूंगा यह विचारकर उस आकांक्षी ने यज्ञ के निमित्त कठिन तपस्या को किया और निश्चय करके देवताओं का पूजन किया और भक्ति से देवपूजन करने से भी धन को नहीपाया फिर चिन्ता करके विचारनेलगा कि वह देवता कौन सा है जो कि मनुष्यों से सिद्ध किया गया हो वह मुझपर भी प्रसन्न हो फिर उसने मृदुचित्त से सन्मुख वर्त्तमान देवताओं के सेवक कुण्डधार नाम मेघ को देखा उस महाबाहु बादल के देखने से उसको भक्ति उत्पन्न हुई और समझा कि यह मेरा कल्याण करेगा क्योंकि यह स्वरूप ऐसाही है और देवता के समीप रहनेवाला है और अन्य किसी मनुष्य से संयुक्त नहीं है इससे यह शीघ्रही मुझ को धन देगा तदनन्तर उस ब्राह्मण ने कुण्डधार का धूप दीपादि से विधिपूर्वक पूजनकिया तदनन्तर थोड़े ही समय में उस मेघ ने प्रसन्न होकर उसके उपकार करने के लिये यह निश्चित वचनकहा कि ब्रह्महत्या करनेवाला, मद्यपीनेवाला, चोर, व्रतका खण्डित करनेवाला इन सबका प्रायश्चित्त होसक्ता है परन्तु उपकार को भूलनेवाले कृतघ्नी के लिये प्रायश्चित्त से शुद्धि नहीं होसक्ती है, आशा के पुत्र अधर्म, क्रोध निन्दा हैं और छल के पुत्र लोभादि हैं और कृतघ्नी पुरुष संतानहीन होते हैं, इसके पीछे कुशाओंपर सोनेवाले उस ब्राह्मण ने कुण्डधार के प्रभाव से स्वप्न में सब जीवों को देखा, सुखदुःख के अनुभव से पृथक् शान्तचित्त तप और भक्ति से शुद्ध उस ब्राह्मण ने रात्रि के समय उस कुण्डधार की भक्ति के फल को देखा, हे युधिष्ठिर! उसने महातेजस्वी महात्मा मानभद्र को जोकि याचकों को देवताओं से कहकर कर्मफल का दिखानेवाला था देखा वहां देवतालोग उत्तमकर्मों के अनेकफलों को देते थे और दुष्टकर्म वर्त्तमान होने पर पूर्व दियेहुए राज्य को भी फेरलेते थे हे भरतर्षभ! इसके पीछे बड़ा तेजस्वी कुण्डधार यक्षों को देखता हुआ पृथ्वीपर गिरा इसके पीछे बड़े साहसी उदार मानभद्र ने देवताओं के वचन से उस पृथ्वी पर पड़ेहुए कुण्डधार से कहा हे कुण्डधार! क्या इच्छा है कुण्डधार बोले कि जो देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं इस ब्राह्मणपर कुछ सुखदायी अनुग्रह

किया चाहता हूं क्योंकि यह ब्राह्मण मेरा भक्त है फिर मानभद्र ने देवताओं के वचनों से कुण्डधार को यह उपदेश किया कि उठ २ तेरा भलाहो और तेरी इच्छा पूर्ण हो जो यह ब्राह्मण धन की इच्छा रखता है तो इसको बहुत सा धन दे दो यह तेरा सखा ब्राह्मण जितना धन चाहता है मैं देवताओं के वचनों से उतनाही असंख्य धन देता हूं यह सुनकर कुण्डधार ने मनुष्यता को अनियत और नाशवान् विचारकर ब्राह्मण को तपस्या करने की सलाह दी और कहा कि हे धनदाता ! मैं ब्राह्मणों के निमित्त धन नहीं मांगता हूं किन्तु केवल भक्तों के वास्ते दूसरा अनुग्रह किया चाहता हूं अर्थात् रत्नों से पूर्ण पृथ्वी को भी भक्तों के लिये नही इच्छा करता हूं यह इच्छा है कि यह ब्राह्मण धार्मिक हो और इसकी बुद्धि सदैव धर्म्म में प्रवृत्त हो यह धर्म्मही से अपना निर्वाह करे, मानभद्र बोले कि देह के कष्ट से रहित यह ब्राह्मण धर्म्म के फल राज्य आदि अनेक प्रकार के भोगों को भोगे भीष्मजी बोले कि इस बात को सुनकर कुण्डधार ने धर्म्म केही निमित्त प्रार्थना बारंबार की इससे देवता उसपर प्रसन्न हुए तब मानभद्र बोले कि सब देवता जैसे तुम से प्रसन्न हैं उसीप्रकार इस ब्राह्मण से भी प्रसन्न हैं यह धर्म्मात्मा होकर धर्म्म में बुद्धि को लगावेगा फिर इस ईप्सित वर को पाय कुण्डधार प्रसन्न हुए तब उस ब्राह्मण ने उन सूक्ष्म वस्तुओं को जो कि इधर उधर और सन्मुख रक्खी हुई थीं और वैराग्यवान् देखकर उनसे इच्छा को हटाकर यह कहा कि यह कुण्डधार उत्तम कर्म्म को नही जानता है तो दूसरा कौन शुभ कर्म्म को जानेगा मैं धर्म्म से जीवन के लिये श्रेष्ठ वन कोही जाऊंगा भीष्मजी बोले कि तब उस उत्तम ब्राह्मण ने वैराग्य से और देवताओं की प्रसन्नता से वन में जाकर बड़ी तपस्या प्रारम्भ की और कन्दमूल फल भोजन करनेलगा और धर्म्म में अपनी बुद्धि को दृढ़ किया तदनन्तर कन्दमूलादि को त्यागकर वृक्षों के पत्ते खानेलगा फिर पत्ते भी त्यागकर जल काही आहार करनेलगा तदनन्तर बहुत समयतक वायु भक्षण करनेलगा फिर भी इसके प्राणों की कोई बाधा न हुई यही आश्चर्य हुआ धर्म्मवान् उग्रतपी वह ब्राह्मण बहुत समय में दिव्य दृष्टिवाला होगया फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर तप मेंही प्रवृत्त होगया और अपने पूर्व उत्तम विचार को करके मन में कहा कि जो मैं प्रसन्न होकर किसी को राज्य दूं वह थोड़ेही समय में राजा होगा और मेरा वचन मिथ्या न होगा तब तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उस कुण्डधार ने फिर दर्शन दिया और उस ब्राह्मण ने उस कुण्डधार का बुद्धि के अनुसार पूजन किया और आश्चर्य्य भी किया तब कुण्डधार ने कहा कि हे ब्राह्मण ! तेरे नेत्र दिव्य दृष्टिवाले हों तुम नेत्रों से राजाओं की गति और लोकों को देखो तब उसने अपनी दिव्यदृष्टि से नरक में फँसे हज़ारों राजाओं को देखा तब कुण्डधार ने

कहा कि जब तुमने प्रीति से मुझ को पूजा और तुम को खेद हुआ तो क्या हमारी प्रसन्नता का फल हुआ और स्वर्ग में केवल वही मनुष्य जाते हैं जिनमें देवताओं के से गुण होते हैं, भीष्मजी बोले कि, यह कुण्डधार की बातें सुनकर उस ब्राह्मण ने काम क्रोधादि अनेक दुर्गुणों को धारणकिये मनुष्यों को भी देखा तब कुण्डधार ने कहा कि सबलोग इस काम क्रोधादि से व्याप्त हैं और यही काम क्रोधादि देवताओं की आज्ञा से इस मनुष्य के विघ्नकारी होते हैं विना देवइच्छा कोई मनुष्य धार्मिक नहीं होता है तुम इन बातों के देने को तप के द्वारा आप समर्थ हो भीष्मजी बोले कि यह सुनकर वह ब्राह्मण कुण्डधार के चरणों में गिरपड़ा और कहा कि मुझपर बड़ा अनुग्रह किया पूर्व्वसमय में काम लोभादि युक्त होकर जो आप की प्रीति की मैंने निन्दा की उस को क्षमा कीजिये, तब कुण्डधार ने क्षमा किया यह वचन कहकर और उस ब्राह्मण से मिलकर वहीं अन्तर्द्धान होगया तब तप की शुद्धि से वह ब्राह्मण सबलोकों में घूमा, आकाश में चलना, ईप्सित मनोरथों का प्राप्त करना, इसके विशेष जो परम गति हैं उन सबको भी धर्म्म सामर्थ्य से और योग से प्राप्त किया, देवता, ब्राह्मण, सन्त, यक्ष, गन्धर्व, चारण, मनुष्य और अनेक सुकृती जीव इत्यादि कोही इसलोक में श्रेष्ठ कहते हैं परन्तु धनवान् कामी पुरुषों को नहीं कहते हैं, देवतालोग तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं इसहेतु से कि तेरी बुद्धि धर्म्म में तत्पर है, धर्म्म में तो सुख का समूह है और धनमें केवल सुखकी कलामात्रही है॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवां अध्याय॥

निष्काम धर्म्म की उत्तमता वर्णन हुई इस धर्म्म में हिंसा नहीं होती इस कारण इस अध्याय में हिंसायुक्त यज्ञों की निन्दा करते हैं युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! चित्त की पवित्रता या ईश्वर की भक्ति रखनेवाले अनेक यज्ञ और तपों में वह सुख धन आदि की इच्छारहित केवल धर्म्म के निमित्त नियत किया हुआ यज्ञ कैसे रूप का है, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर यज्ञ के विषय में उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण का प्राचीन वृत्तान्त जिसको नारदजी ने वर्णन किया है तुम से कहता हूं नारदजी ने कहा कि विदर्भ देशों में एक देश बड़ाधर्म प्रधान और श्रेष्ठ था वहां उञ्छवृत्तिवाला कोई तपस्वी ब्राह्मण था वह यज्ञ पूजन को सावधानहुआ वहां वन में श्यामाक, सूर्यपर्णी, सुवर्चला यह तीनों साग ही भोजन को मिलते थे यह तीनों साग नीरस और कटु थे परन्तु उस ब्राह्मण के तप के प्रभाव से वह सुस्वादु होगये और सब जीवों की हिंसा न होने से वन मेंही सिद्धि को पाकर मूल फलों सेही स्वर्ग सम्बन्धी यज्ञ किया, उसकी स्त्री

व्रत से निर्बल पवित्र पुष्कर धारणी नाम से प्रसिद्ध थी वह विवाहिता यज्ञपत्नी सती स्वामी के साथ पशुयज्ञ की चाहनेवाली हिंसायज्ञ को उत्तम जानकर स्वामी से विपरीत थी परन्तु स्वामी के शाप से भयभीत होकर उसके ही स्वभाव के अनुसार कर्म्म करती थी और उसका वस्त्र पुराने पंखों का बनाहुआ था उसने पति की आज्ञा सेवन में निष्काम यज्ञकिया वहां शुक्रजी के शाप से मृगरूप उसी ब्राह्मण के समीप आश्रित सन्मुख बैठेहुए धर्म्मराज ने उस ब्राह्मण से कहा कि यह तुम ने विपरीत कर्म्म किया, क्योंकि यह यज्ञ मन्त्रांग से रहित है अर्थात् इसमें श्यामाकनाम चरु से पशु बनालिया है मुख्य पशु नहीं है इस निमित्त तुम मुझे शीघ्रता से हवनकरो और आनन्दपूर्व्वक तुम स्वर्ग को जाओ तदनन्तर, यज्ञ में साक्षात्सावित्री जो कि सूर्य्य मण्डल की अधिष्ठात्री देवी है उसने उसको समझाया कि मेरे निमित्त तुम पशु को होमो इन दोनों के कहने पर भी उसने यही उत्तर दिया कि मैं अपने समीपी आश्रित मृग को नहीं मारूंगा और यज्ञ में निकृष्टकर्म्म हुआ ऐसा कहकर वह देवी भी लौटगई और रसातल के देखने की इच्छा से यज्ञ की अग्नि में प्रवेश करगई फिर उस हाथ जोड़े हुये मृग ने उस सत्यनाम ब्राह्मण से प्रार्थना की और सत्य ने उसपर हाथ फेरकर आज्ञा दी कि जाओ फिर वह हिरन आठचरण चलकर लौटआया और कहने लगा कि हे सत्य ! मैं चाहता हूं कि तू मुझ को हवन करदे इस निमित्त कि मेरी भी सद्गति होजाय तुम मेरे दिये हुए दिव्य नेत्रों से उत्तम अप्सरा और श्रेष्ठ गन्धर्वों के दिव्य विमानों को देखो तदनन्तर उस इच्छायुक्त ब्राह्मण ने नेत्रों से बड़ी देरतक पशु और यजमान सहित स्वर्ग गति को देखा और मृग को भी स्वर्ग का आकांक्षी देखकर स्वर्ग में नियत होने का विचार किया, वह धर्म्म देवता मृगरूप होकर बहुत कालतक वन में रहे और उस शाप के प्रायश्चित्त को किया और उसकी चित्त की वृत्ति में यह बात जो आई कि यह हिंसात्मक यज्ञ की बुद्धि नहीं है इसकारण से उसके बड़े तप की हानिहुई इसी हेतु से जानना चाहिये कि हिंसा यज्ञ की पूर्ण करनेवाली नहीं है, अब इस सन्देह को कहते हैं कि धर्म्म ने क्यों छलकिया अर्थात् उसके पीछे धर्म्म ने आप उस पुष्करधारणी स्त्री के उस नियत यज्ञ को पूर्ण किया और उस ब्राह्मण ने तप के द्वारा मोक्षपदवी को पाया, अहिंसा पूर्ण धर्म्म है और हिंसात्मक धर्म्म उत्तम नहीं है अब मैं उस सच्चे धर्म्म को तुझ से कहता हूं जो कि ब्रह्मवादी पुरुषों का है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

एकसौ का अध्याय ॥

अहिंसा धर्म्म है और वैराग्य के द्वारा मोक्ष का हेतु है इसको निश्चय करके

फिर युधिष्ठिर ने प्रश्नकिया कि किसप्रकार पापात्मा होता है और कैसे धर्म्म को करता है किसके द्वारा वैराग्य की प्राप्ति होती है और किसरीति से मोक्ष को पाता है, भीष्मजी बोले कि सब धर्म्म तेरे जानेहुए हैं तुम मर्यादा के निमित्त पूछते हो वैराग्य से मोक्ष को और पाप धर्म्म को मूलसमेत सुनो, कि पांचों विषयों का विज्ञान होने के निमित्त प्रथम इच्छा वर्त्तमान होती है उससे काम और द्वेष उत्पन्न होते हैं, फिर कामना की प्राप्ति के अर्थ और पाप दूर करने के लिये उपाय करताहुआ बड़े कर्म्म का प्रारम्भ करता है और इच्छानुसार सुगन्धियों का सेवन करना चाहता है उससे राग उत्पन्न होता है उसके पीछे द्वेष उत्पन्न होता है फिर लोभ मोह उत्पन्न होते हैं, लोभ, मोह और राग, द्वेष से युक्त पुरुष की बुद्धि अधर्म में प्रवृत्त होती है फिर छल से धर्म्म को करता है और छलसे ही अर्थ को चाहता है तब उसी में बुद्धि को करता है और पापकरना चाहता है फिर पण्डितों से निषेध कियाहुआ भी राग मोह से उत्पन्न कायिक, वाचिक, मानसिक इन तीनों प्रकार के अधर्म्मों को करता है अर्थात् पाप को विचारता है कहता है और करता है, उस अधर्मी के दोषों को साधुपुरुष कहते हैं और एकसी बुद्धि रखनेवाले पापीलोग परस्पर में मित्रता रखते हैं, ऐसापुरुष जब कि इसीलोक में सुख नहीं पाता तो परलोक में कैसे पावेगा इसप्रकार पापात्मा होता है, अब धर्म्मात्मा का वर्णन सुनो जैसे कि वह कल्पनारूप धर्म्मवाला दूसरे की भलाई प्राप्त करता है इसीप्रकार कल्याणरूप धर्म्म से बांछित गति को पाता है, सुख दुःख के पहिचानने में कुशल जो पुरुष बुद्धि से प्रथमही इन दोषों को देखता है और साधुओं का भी सेवन करता है उसके श्रेष्ठ आचरण और उत्तम अभ्यास से बुद्धि बढ़ती है और धर्म्म में प्रवृत्त होती है तब वह धर्म्म सेही निर्वाह करता है और धर्म्म से प्राप्त होनेवाले धनों में चित्त करता है अर्थात् जिसमें गुण देखता है उसी की जड़ को सींचता है और धर्मात्मा होता है फिर श्रेष्ठ मित्रों को और उत्तम धनों को पाकर इसलोक में आनन्द भोगकर परलोक में सुख को भोगता है और शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध में संकल्प सिद्धि को पाता है यह सब धर्म्म का फलजानो फिर हे युधिष्ठिर! वह धर्म्म के फल को पाकर प्रसन्न नहीं होता है तब उससे अतृप्त हो ज्ञानरूप नेत्र से वैराग्य को प्राप्त करता है, जब वह ज्ञान दृष्टियुक्त होकर रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि से भी मन को खींचता है और शोचरहित होता है तब इच्छाओं से निवृत्त होता है परन्तु धर्म्म को नहीं छोड़ता है और इसलोक को नाशवान् जानके स्वर्गादि धर्म्म फल के भी त्यागने का उपाय करता है फिर मोक्ष का चिन्तवन करता है और युक्ति से वैराग्य प्राप्तकर पाप कर्मों को त्यागता है, फिर धर्मात्मा होकर परम मोक्ष को पाता है, हे युधिष्ठिर! यह पाप धर्म्म मोक्ष और वैराग्य सब तुझ से कहा

इसी से तुम सब दशाओं में धर्म के कर्त्ता हो, क्योंकि धर्म्म में नियत पुरुषों को सनातन सिद्धि होती है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकसौएक का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! आपने जिस युक्ति से मोक्ष का वर्णनकिया उस युक्ति को न्याय के अनुसार सुना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि, हे बड़े ज्ञानिन्! मोक्ष के निमित्त अपनी बुद्धि को साक्षी रखनेवाला उपाय तुम में योग्य है उसीसे सब अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे घट के बनाने में जो बुद्धि होती है उस बुद्धि का घट के बनजाने पर कुछ प्रयोजन नहीं रहता उसीप्रकार जिनमें यज्ञ आदि उपाय हैं उन प्रवृत्ति धर्म्मों में दूसरा निवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होसक्ता किन्तु फल की इच्छा न रखनेवाले पुरुष का यज्ञादिक धर्म्म चित्तशुद्धि के द्वारा निवृत्तिधर्म्म का हेतु होता है तात्पर्य्य यह है कि निवृत्ति धर्म्म के वर्त्तमान होनेपर प्रवृत्ति धर्म्म की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि पूर्वीसमुद्र में जो मार्ग है वह पश्चिम को नहीं जाता है, मोक्षमार्ग एकही है उसको ब्यौरे समेत सुनो कि निवृत्ति धर्म की जो पराकाष्ठा योग है उसके वर्णन करने में प्रथम उसके साधन वर्णन करता हूं कि शान्तिता से क्रोध को और संकल्प के त्याग से काम को दूरकरे धैर्यवान् पण्डित सतोगुणी मनुष्य भगवत् के ध्यान आदि धर्म के सेवन से निद्रा आलस्य को त्यागे और सावधानी और चतुरता से संसार की अपकीर्त्ति के भय को निवृत्त करे और क्षेत्रज्ञ में मन लगाने से प्राण चेष्टा को रोके और धैर्य से इच्छा, काम, द्वेष को शरीर में न रक्खे और तत्त्वाभ्यास से भ्रम अज्ञान आदि अनेक संशयों को निकाले ऐसा तत्त्वज्ञानी ज्ञान के अभ्यास से निन्दा और प्रतिभा को दूरकरे अर्थात् अन्य का ध्यान न करे प्रयोजन यह है कि ब्रह्म काही ध्यान ब्रह्म कोही कहना ब्रह्म काही उपदेश और ब्रह्म कोही परस्पर में ज्ञानोपदेश करना इसी को ज्ञान का अभ्यास कहते हैं कामरहित शीघ्रता से पचनेवाले निरुपद्रव सतोगुणी भोजनों से रोगादि को दूररक्खे सन्तोष से लोभ मोह को और विषयों के अनर्थ देखके विषयों को त्याग करे, दया से अधर्म को, विचार से धर्म को और भविष्यत्काल से आशा को और अनिच्छा से अर्थ को त्याग करे और पण्डित मनुष्य अस्थिरता से प्रीति को योग से गृहस्थाश्रम को, दया से चित्त के अभिमान को, सन्तोष से लोभ को, युक्ति से आलस्य को, वेद विश्वास से विपरीत वाद को, मौनता से अनर्गल बकने को और छओं वर्ग के विजय करने की सामर्थ्य से भय को त्यागकरे, इन अंगों को कहकर अब प्रधानयोग

को कहते हैं कि बुद्धि से मन वचन को स्वाधीन करे और उस बुद्धि को ज्ञान शुद्धतम पदार्थ वा समष्टिबुद्धि से आधीन करे फिर इस ज्ञानरूप शुद्धतम पदार्थ को यह आत्मा ब्रह्महीही है इस वचन के द्वारा उत्पन्न होनेवाली वृत्ति से और उस बुद्धि की वृत्ति को भी परम चैतन्य के प्रकाश से आधीन करे तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को तमपदार्थ को ब्रह्माकार वृत्ति में, उसको शुद्धआत्मा में लय करके आत्मस्वरूप नियत होजाय, यह ज्ञान शान्त वृत्ति और पवित्र कर्म करनेवाले पुरुषसे जाननेके योग्य है, काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न को त्यागकर वाक्जित् पुरुष योग साधन के योग्य है, ध्यान, वेदपाठ, दान, सत्यबोलना, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता बाह्याभ्यन्तर शुद्धि, क्षुधा और इन्द्रियों का जीतना इत्यादि गुणों से तेज की वृद्धि होती है और पाप नष्ट होता है ऐसे पुरुष के संकल्प सिद्ध होते हैं और विज्ञान प्राप्त होता है, वह निष्पाप स्वल्प भोक्ता तेजस्वी जितेन्द्रिय पुरुष काम क्रोध को जीत कर उस स्थान को प्राप्तकरता है जिसमें ब्रह्माजी का भी लयहोता है, वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास से अज्ञानरहित वैराग्ययुक्त सन्तोष क्षमा की दृढ़ता से काम क्रोध का त्याग, परिपूर्ण काम होना, अहंकार से रहित होना निर्भयता और स्थानरहित होना और मन, वाणी, देह को आधीन करना यही पवित्र शुद्ध निर्मल सच्चा मोक्षमार्ग है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेयोगाचारवर्णनोनामएकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

एकसौ दो का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इस ब्रह्मपद प्राप्ति के विषय में इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिस में नारदजी और असित, देवलऋषि का संवाद है, नारद जी ने बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वृद्ध देवलऋषि को बैठा हुआ जानकर यह प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन्! यह जड़, चैतन्य, स्थावर, जंगम, जगत् कहां से उत्पन्न हुआ है और प्रलय में कहां समाजाता है, असित ऋषि बोले कि प्राणियों की बुद्धिवासना से चेष्टित परमात्मा उन कर्म फल के उदय होने के समय जिन से कि जीवों को उत्पन्न करता है और तत्त्वज्ञ पुरुष जिनको आकाशादि पञ्चभूत कहते हैं चारों युगों का आत्मा जीवबुद्धि से चेष्टावान् होकर उन्हीं पञ्चभूतों से जीवमात्रों को उत्पन्न करता है जो कोई पुरुष कहै कि इन पञ्चभूतों से पृथक् है वह मिथ्या है अर्थात् बुद्धि आदिरूप से ब्रह्मही प्रकट होता है और संसार का प्रत्यक्ष होना केवल दर्शनही मात्र है विचार से गुप्त होनेवाला वह ऐसे प्रकट नहीं है जैसे कि रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती है हे नारदजी! इन पञ्च तत्त्वों को रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के समान स्वभाव से आदि अन्त और

रूपान्तर रहित मोक्षपर्यन्त नियतरहनेवाला और महत्तत्त्व जो सतोगुण प्रधान प्रकाशरूप सूक्ष्मबुद्धि है उससे प्रत्यक्षहुआ जानो वही काल जीवात्मा है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचतत्त्व हैं महत्तत्त्व भी भूतभाव से इनमेंही गिनाजाता है तो उन तत्त्वों से श्रेष्ठतम नहीं हुआ, जब कि सीपी में चांदी कल्पना की जाती है ऐसी दशा में उस मिथ्या चांदी से सीपी पृथक् नहीं होती इसीप्रकार सब आत्माही है वास्तव में तत्त्व नहीं हैं, तत्त्वों से श्रेष्ठ न वेद युक्ति से हुआ न लौकिक अनुमानसे है जो कोई कहै कि तत्त्वोंसे उत्तम है वह अज्ञानता है उसको सब जीवों में निस्सन्देह वर्त्तमान जानो और यह छओं जिसके कार्य्यरूप हैं उसको असित अज्ञान जानो, यह पांचों तत्त्व और चतुर्युगरूप जीव पूर्व संस्कार अज्ञानआदि रहित और मोक्षपर्यन्त सदैव रहने वाले स्थावर जंगमजीवों के उत्पत्ति और लय के स्थान यह आठों हैं इन्हीं से उत्पन्न और इन्ही में लय होते हैं, यह जीव उन विनाशवान् तत्त्वों को देखकर नाश होता है अर्थात् विज्ञान घन जीव इन तत्त्वों से निकलकर उन तत्त्वों के पीछे नष्ट होता है अर्थात् उपाधि के नाशहोने पर शुद्ध आत्माही शेषरहजाता है उसका शरीर पृथ्वीरूप है श्रोत्र आकाशरूप से नेत्र सूर्य्य रूप से वायु से चेष्टा और जल से रुधिर उत्पन्न होता है आंख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा यह पांचों इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान पैदाकरनेवाले हैं इसको सूक्ष्मदर्शी सर्वज्ञ पण्डितों ने जाना है पञ्चेन्द्रिय पञ्च विषय और रूपादि विषय में पांच प्रकार से वर्त्तमान इन्द्रियों को देखना सुनना, सूंघना, स्पर्शकरना, स्वादलेना इत्यादि कर्म्मरूपों को पञ्चतत्त्वही जानो और रूप रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द यह उसी विज्ञान आत्मा के गुण हैं वह पांचों इन्द्रियों के द्वारा पांचप्रकार से सिद्ध किये जाते हैं, फिर उस विज्ञान आत्मा के गुण, रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श को इन्द्रियां नहीं जानती हैं उनको क्षेत्रज्ञ जानता है, अब क्षेत्र से क्षेत्रज्ञ के विभाग को कहते हैं मन इन्द्रिय समूह से श्रेष्ठ है उससे श्रेष्ठ चित्त है चित्त से श्रेष्ठ बुद्धि और बुद्धि से भी अधिकतर क्षेत्रज्ञ है जीव प्रथम इन्द्रियों के द्वारा अर्थों को जुदा २ जानता है फिर चित्त से विचारकर बुद्धि से निश्चयकरता है बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले विषयों को निश्चय करता है मन, इन्द्रिय समूह, चित्त, आठवीं बुद्धि इन आठों को आत्मविद्या के विचारनेवाले पुरुष ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं आशय यह है कि बुद्धि को इन्द्रियों में गिनने से क्षेत्रज्ञ को उपाधि रहित चिन्मात्रस्वरूप दिखाया है और हाथ, पैर, गुदा, लिंग और मुख यह पांचों कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं इनके काम सबको प्रसिद्ध हैं और छठवां पञ्च प्राण और बल है यह सब छः हुए मैंने ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय और उनके विषय शास्त्र की रीति से अच्छे प्रकार से वर्णन किये, जब परिश्रम से थककर इन्द्रियों को

कर्म्मों से वैराग्य होता है तब मनुष्य इन्द्रियों के त्याग से सोजाता है, जो इन्द्रियों के वैराग्य होनेपर चित्त को वैराग्य न हुआ तब उस दशा में विषयों को सेवनकरता है उसको स्वप्नदर्शन समझे, जो सात्त्विकी, राजसी, तामसी, वासना रूप विषय जाग्रत् अवस्था में हैं उन भोगदेनेवाले कर्मों से संयुक्त सात्त्विक आदि वासनारूप विषयों को स्वप्नदशा में भी कहते हैं अर्थात् जाग्रत् वासनाही उनकर्म्मों से उत्पन्न होनेवाली स्वप्नावस्था में दृष्टआती हैं, सुखकर्म्मों की सिद्धि ज्ञान वैराग्य धर्म्म यह सब सात्त्विक हैं सात्त्विक पुरुष की स्मृति इन असाररूप आनन्द आदि और वासनाओं को स्वप्न में स्मरण करती है, सात्त्विकी, राजसी, तामसी पुरुषों की जो कोई वासना कर्म्मगति में नियत हैं उनको स्मरणशक्ति स्वप्न में यादकरती है, अर्थात् वह स्मृतिरूप ज्ञान भी भोग देनेवाले कर्म्मों के कारण प्रत्यक्ष के समान दृष्टआता है उनदोनों वासनाओं का सुषुप्तिअवस्था में लयहोना प्रत्यक्ष है वह सदैव रहनेवाली अभीष्ट है आशय यह है कि सुषुप्ति अवस्था का सदैव रहनाही मुक्ति है, पूर्वोक्त चौदहइन्द्रिय सात्त्विक, राजस, तामस तीनों भाव यह सब सत्रहगुण हैं उनका अठारहवां देहाभिमानी आत्मा जो देह में है वह सनातन भोक्ता है, क्योंकि जीवों के देहसमेत उक्त सब गुण जिस भोक्ता में रक्षित हैं उसकी पृथक्ता में वह शरीर समेत नहीं हैं किन्तु पञ्चभूत सम्बन्धी एक समूह है अर्थात् बुद्धिवृत्ति रूप भोक्ता के साथ गुण और शरीर समेत पाञ्चभौतिक बीस गुण हैं आशय यह है कि जो इनका प्रकाशक अखण्ड ज्ञानस्वरूप है वह अनुभव क्षेत्रज्ञ समझो और इक्कीसवां प्राण इन सब समेत देह को धारण करता है वह प्राण देह के नाश में अपने प्रभाव से युक्त उस महान्काल का निवासस्थान है, जैसे कि कच्चाघटआदि बनता है और नाश होता है इसीप्रकार यह अनुभव प्रारब्ध पुण्यपाप के नष्टहोने पर संचित पापपुण्य से चेष्टावान् होकर समयपर अपने कर्म्मसंयुक्त देह में प्रवेश करता है, यह काल से प्रेरित क्षेत्रज्ञ जिसका दूसरा देह अविद्या कर्म्म काम से उत्पन्न है वह अपने पूर्व २ देहों को छोड़कर एकशरीर से दूसरे शरीर में ऐसे जाता है जैसे कि पुराने स्थान को छोड़कर नवीन स्थान में मनुष्य जाते हैं, सिद्धान्त का निश्चय करनेवाले ज्ञानी पुरुष शरीर सम्बन्ध से ज्ञात होनेवाली मृत्यु आदि में दुःखी नहीं होते हैं वास्तव में देह और पुत्रादि के साथ सम्बन्ध न होनेपर भी भ्रान्ति से सम्बन्धदर्शी संसार को इच्छा करनेवाले मनुष्य दुःखी होते हैं—पुत्रादि से असम्बन्धता वर्णन करते हैं—अर्थात् यह न तो किसी का है न इसका कोई वर्त्तमान है देह में दुःख सुख पैदा करनेवाला यहशरीरी सदैव अकेला रहता है—यह जीवात्मा उत्पन्न नहीं होता है न कभी नाश होता है यह कभी विद्या से कर्म के नाश होनेपर देह को त्यागके मोक्ष को भी पाता है तो भी प्रारब्धकर्म अवश्य

भोगने पड़ते हैं इसको कहते हैं प्रारब्ध कर्म के नाश होनेपर पाप पुण्य रूप देह को त्यागकर वह जीवात्मा जिसके तीनों देह नाशहुए वह ब्रह्मभाव को पाता है ज्ञान से संचितकर्म्म नाश होते हैं पाप पुण्य के नाश के लिये सांख्यशास्त्र का ज्ञान उपदेश कियाजाता है उस पुण्य पाप के नाशहोने और उसके ब्रह्मरूप होनेपर पण्डितलोग शास्त्रदृष्टि से उस जीवात्मा की परम गति को देखते हैं क्योंकि एक की कैवल्यमोक्ष दूसरे को दृष्टआना असम्भव है ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेनारदासितसंवादे द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौतीन का अध्याय ॥

सब अनर्थों का हेतु ज्ञान का नाशकरनेवाली तृष्णा और त्याग के द्वारा ममता के त्याग और नाश के विषय में ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! राजलक्ष्मी के निमित्त पापकर्मी निर्दयी हम लोगों के हाथ से भाई, चाचा, ताऊ, पुत्र, पौत्र, ज्ञाति, सुहृद् इत्यादि सब मारे गये जो यह तृष्णा अर्थ से उत्पन्न होनेवाली है उसको कैसे दूरकरूं हम सब लोग लोभ से पापकर्म्मी हुए, भीष्मजी बोले कि, इसस्थानपर एक प्राचीन इ-तिहास को कहता हूं जिसको राजा विदेह ने प्रश्न करनेवाले माण्डव्यऋषि से कहा है, कि बड़े आनन्द का स्थान है कि मैं अच्छे प्रकार से प्रसन्न हूं किसीका कुछ नहीं है इसी हेतु से मिथिलापुरी के अग्नि से भस्महोने पर मेरा कुछ भी नहीं भस्म होता है निश्चय करके ब्रह्मलोक के अन्ततक प्राप्त होनेवाले विषय विवेकी पुरुषों की दृष्टि से महादुःखदायी हैं वह अप्राप्त होने पर भी अज्ञानी लोगोंको सदैव मोहित करते हैं लोक में जो स्त्री आदि का काम सुख है और स्वर्ग सम्बन्धी महासुख है वह सब मिलकर उस सुख की सोलहवी कला के भी समान नहीं है जो कि ईर्षा के दूरहोने से प्राप्त होता है, जिसप्रकार बड़े होने वाले बछड़े का सींग बड़ा होता है उसीप्रकार वृद्धि पानेवाले धन से ईर्षा भी बढ़ती है, जब कुछ वस्तु मेरी है इसप्रकार कल्पित होती है फिर वही वस्तु नाश होनेपर दुःख का मूलहोती है, इच्छाओं के अनुसार कर्म्मकर्त्ता न होना चा-हिये क्योंकि इच्छाओं में प्रवृत्त होना निश्चय करके दुःखदायी है धन को पाकर दूसरों का उपकार करना योग्य है परन्तु देहसम्बन्धी इच्छा और धर्म्मों को त्याग करे ऐसा ज्ञानीपुरुष सबजीवों में आत्मा के समान होता है अर्थात् सब का सुख चाहे किसी का दुःख न देखे वह निवृत्त धर्म्मी, शुद्ध अन्तःकरणी, ज्ञानी, पुण्य पापों के समूह को त्यागकरता है, सत्य, मिथ्या, हर्ष, शोक, प्रिय, अप्रिय, भय, निर्भयता आदि को अच्छेप्रकार से त्यागकर सुख दुःख आदि से रहित निर्विकल्प समाधि में नियतहोय, जो निर्बुद्धियों से त्यागना कठिन है वह जरारहित प्राणों के सन्मुख रहनेवाला महारोग ईर्षारूप है उसके त्यागनेवाले पुरुष को आनन्द

होता है, धर्म्मात्मा पुरुष अपने सदाचार को चन्द्रमा के समान उज्ज्वल नीरोग देखता सुखपूर्वक इसलोक और परलोक में कीर्त्ति को पाता है, मार्कण्डेयऋषि राजा के इन वचनों को सुनकर प्रसन्नहुए और उसके वचनों की प्रशंसा करके मोक्षमार्ग में प्रवृत्तहुए युधिष्ठिर बोले कि, सबजीवों के भयदेनेवाले इसकाल के भ्रमण होनेपर किस कल्याण को प्राप्तकरे, भीष्मजी बोले कि, इसस्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें कि पुत्र के साथ पिता का प्रश्नोत्तर है हे कुन्तीनन्दन! वेदपाठ या जप में प्रवृत्त किसी ब्राह्मण का पुत्र था वह शास्त्र स्मरण रखनेवाली धारणा बुद्धि का स्वामी मेधावी नाम था मोक्षधर्म्म में पण्डित उस पुत्र ने वेदपाठ और जपकरनेवाले मोक्षधर्म्म रहित अपने पिता से प्रश्नकिया कि हे तात! धैर्य्यवान् पण्डित मनुष्य बहुत विषयों को जानकर क्या करे क्योंकि मनुष्यों की आयु बहुतशीघ्र नष्ट होजाती है और योग को भी यथार्थ ऐसे कहो जैसे कि मैं क्रमपूर्व्वक करसकूं पिताने कहा कि, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य से वेदों को पढ़कर पितरों की पवित्रता के लिये पुत्रों को उत्पन्नकरो अग्नियों को स्थापन करके बुद्धि के अनुसार यज्ञों का करनेवाला वन में जाकर मुनिवृत्ति होवे फिर ऐश्वर्यवान् होकर गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त होवे पुत्र ने कहा कि चारों ओर से इसप्रकार लोक के घिरजाने और घायल होने और सफल वस्तुओं के गिरनेपर आप कैसे घोर वचन कहते हो, पिता ने कहा कि, लोक कैसे घायल या मृतक है किससे घिरा है और कौन सफल होकर गिरते हैं हे पुत्र! मुझ को क्यों डराते हो, पुत्र बोला कि, यह जगत् मृत्यु से घायल या मृतक है और वृद्धावस्था से घिरा है और यह दिनरात गिरते हैं इनसब को तुम कैसे नहीं जानते हो, जब मैं भी जानता हूं कि मृत्यु नियत नहीं होती है तब ज्ञान से अपने हित को करता हुआ किसप्रकार से मैं बाट देखूंगा, जब कि प्रत्येक रात्रि के व्यतीत होनेपर आयुर्दा न्यून होती जाती है तब थोड़े जल में व्याकुल मछली के समान कौन सुख को पावेगा, वह मृत्यु फूलों के समान विषयों को प्राप्तकरने वाली और अन्य विषयों में प्रवृत्तचित्त मनुष्य को प्राप्तहोती है चाहे किसी ने मनोरथों को सिद्ध नहीं भी किया हो परन्तु घड़ीभर का भी अवकाश न देगी इससे उचित है कि जो काम कलका है वह उसीक्षणकरे अर्थात् विलम्ब कभी न करे जो कल्याण की बात हो उसको अभी करडालो बड़ासमय तुम को उल्लंघन न करजाय कौन जानता है कि अब किसकी मृत्यु का समय है मृत्यु कामपूरे न करनेपरही आकर्षण करलेती है मृत्यु का कोई ऐसा कारण नहीं विदितहोता जिससे कि जीवन का समय विदित हो इससे धर्म्मकरना ही ठीक है धन, पुत्र, स्त्री आदि में ही प्रवृत्त न रहै धर्म्म के समय धर्म्म ही निश्चय करे जिससे कि इसलोक परलोक दोनों में आनन्द पावे जब मृत्यु लेजाती है तब

इसके योग्य अयोग्य चित्त के मनोरथ रहजाते हैं विषयों में लगे और मनोरथों के पूर्ण न करनेवाले मनुष्यों को मृत्यु ऐसे निर्मूल करती है जैसे कि जल का वेग वनस्पति और कच्चे स्थानों का विध्वंस करता है अथवा जैसे भेड़िनी भेड़ को उठालेजाती है वैसेही मृत्यु सब के बीच में से जीवों को उड़ालेजाती है यह किया यह नहीं किया यह काम करना है ऐसे विचारवाले लोगों को और जिस ने अपने कर्म्मों का फल नहीं पाया उन खेत, दूकान, घर में आसक्त पुरुषों को और सबल, निर्बल, ज्ञानी, अज्ञानी, पण्डित, मूर्ख, इच्छा करनेवाले पुरुषों को और जरा व्याधि से ग्रसित महापीड़ित को भी मृत्यु ग्रासकरजाती है सिवाय सत्यब्रह्म के सब स्थावर, जंगम, जड़, चैतन्य मृत्यु के ही ग्रास हैं, जो वन है वही देवताओं का निवासस्थान है यह श्रुति है और ग्रामादिक में निवास करके पुत्र, स्त्री, धनआदि में प्रीति है वही इस पुरुष के बन्धन की रस्सी है श्रेष्ठलोग इस रस्सी को तोड़करजाते हैं और निकृष्टकर्म्म करनेवाले इसको नहीं तोड़ते, जब पुरुष मन, वचन, कर्म्म के द्वारा अपने धनजीवन के नाश होनेपर भी किसी जीव मात्र को नहीं मारता है वह कभी अन्यजीवों के हाथ से नहीं माराजाता है इस कारण सच्चेव्रत और आचार का रखनेवाला सत्यवक्ता जितेन्द्रिय समदर्शी पुरुष सत्यब्रह्म केही द्वारा मृत्युका जीतनेवाला होता है अमृतता और मृतता दोनों शरीर ही में नियत हैं अज्ञान से मृतता अर्थात् मृत्यु और ज्ञान से अमृतता अर्थात् अविनाशता को प्राप्तहोता है सो अहिंसायुक्त कामक्रोध रहित सत्य में आश्रित अविनाशी के समान मैं सुख से मृत्यु को त्यागूंगा, क्योंकि शान्तियज्ञ में प्रीतियुक्त जितेन्द्रिय ब्रह्मयज्ञ में नियत मन, कर्म्म, वाणी का यज्ञकरनेवाला मुनि होकर उत्तरायण समय में ऐश्वर्य्यवान् होऊंगा मुझ सरीका समझाहुआ मनुष्य हिंसात्मक पशुयज्ञों को कैसे करेगा, आत्मा में आत्मा ही से उत्पन्न आत्मा ही में निष्ठारखनेवाला सन्तानरहित मैं आत्मयज्ञकर्त्ता होऊंगा हे पितः! सन्तान मुझ को पारनहीं लगावेगी जिसके मन वाणी सदैव सावधान हैं और तप त्याग और योगभी होवे वह उनके द्वारा सब पाता है विद्या के समान नेत्र और फल नहीं है संसार की प्रीति के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है ब्रह्म की एकता और अविनाशी होना इसके विशेष ब्राह्मण का दूसरा धर्म्म नहीं है हे पितः! सदाचार में प्रवृत्त, दण्डविधान, साधुता और सफल कर्म्मों से वैराग्यवान् होकर जब तुम मरोगे तब तुम को धन, बान्धव, स्त्रियों से क्या प्रयोजन है इससे तुम हृदयस्थान में विराजमान आत्मा की इच्छाकरो भीष्मजी बोले कि, हे राजन्, युधिष्ठिर! पिता ने पुत्र के ऐसे वचनों को सुनकर वैसाही किया तुम भी इसीप्रकार सच्चेधर्म में प्रवृत्त होकर इसी कर्म को करो ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपूर्वार्द्धेपितापुत्रसंवादेद्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इति पूर्वार्द्ध समाप्तम् ॥

अथ महाभारत भाषा ॥

शान्तिपर्व मोक्षधर्म ॥

उत्तरार्धप्रारम्भः ॥

एकसौचार का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, ज्ञानीपुरुष कौन से आचारज्ञान से भरे स्वभाव और उन्नत स्थान का ज्ञाता होकर ब्रह्मरूप स्थान को पाता है क्योंकि पराप्रकृति रूपान्तर दशा से रहित है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्म्म अर्थात् अध्यात्मविद्या में प्रीतिमान् वह हितकारी जितेन्द्रिय पुरुष उस प्रकृति से भी ऊंचे राग द्वेष रहित रूपान्तर अवस्था से पृथक् एकरसवाले स्थान को पाता है जोकि कामरहित घर से बाहर मोक्ष आश्रम में वर्त्तमान होवे और निष्पाप संन्यासी मन, वाणी से भी दूसरे को दोषी न करे आगे पीछे कभी किसी स्थानपर किसी के अवगुण को न कहे हिंसारहित सूर्य्य के समान एकत्र स्थिर निवास न करे ईर्षा द्वेष से पृथक् सबकी कठोर और असह्यबातों को सहै कभी अहंकार न करे क्रोध उत्पन्न करा-नेवाले से भी प्यारे ही वचन बोले कोई गाली भी दे तब भी उसकी भलाईकरे जन समूहों में उनकी इच्छानुसार वर्त्तावकरे उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करे भिक्षा के निमित्त बहुत घरों में न घूमे प्रथम निमन्त्रित होकर किसी के यहां भोजन के लिये संन्यासी को जाना अयोग्य है किसी दशा में भी अपने मुख से कठोर वचन न कहे ऐसा दयालु हो कि अपने मारनेवाले पर भी प्रहार न करे निर्भयरहै और अपनी बड़ाई न करे जब घर में धुआं न होता हो अग्नि न जलती हो मनुष्यों ने भोजन न करलिया हो और लोगों का आना जाना बन्द होगया हो और भोजनपात्र हाथ में हो तब मुनि भिक्षा को चाहे केवल प्राणयात्रा केही योग्य भोजनकरे भोजन के पूरे न होने में हठ न करे न प्राप्त होने में अपनी हानि न समझे न लाभ होने में प्रसन्न हो सब के समान माला चन्दन आदि को भी न चाहे प्रतिष्ठित होकर भोजन न करे इस प्रकार का

संन्यासी आदर के लाभ की प्रशंसा न करे अर्थात् निन्दाकरे परन्तु अन्य के दोषों की निन्दा न करे न किसी गुण की प्रशंसाकरे सदैव सब से पृथक् आसन बिछावे निर्जनस्थान पेड़ की खोह वन गुफा और दूसरे से अज्ञात अथवा श्मशान भूमि को पाकर फिर दूसरे किसी स्थान में प्रवेश न करे योग के अनुकूल संग से ब्रह्मरूप होजाय और देवयान पितृयान गति से रहित रूपान्तर अवस्था विनाअच्छेबुरे कर्म्मों को न चाहनेवाला जापक, शान्त, सन्तोष, इन्द्रियनिग्रह, निर्भयता, मौनता, वैराग्य, सब को आत्मारूप जानना कच्चे अन्न फलादि से निर्वाहकरना चित्तबुद्धि से शुद्ध और अल्पाहारी, मन वचन क्रोध के वेग का सहना कामादि का रोकना रागद्वेष और निन्दास्तुति में समान बुद्धि इत्यादि गुणयुक्त, उदासीन, अशंक, गृहस्थ, वानप्रस्थ के समीप न ठहरनेवाला, स्त्री से अशक्त, स्थानरहित, समाधि में नियत होवे किसी समयपर भी गृहस्थ और वानप्रस्थ के घर में न ठहरे अनिच्छा लाभ में संतोष यह विज्ञानी संन्यासी सिद्धलोगों का मोक्षसाधन है इससाधन में अज्ञानीलोग दुःख पाते हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्धेचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

एकसौ पांच का अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह ! सब मनुष्य हम को धन्य २ कहते हैं परन्तु हमारी समान संसार में कोई भी दुःखी नहीं है क्योंकि मनुष्यों में जन्म पाकर लोकों के उत्पन्न करनेवाले देवताओं में दुःख देखागया है तो हम क्यों उस दुःखदायी संन्यास को करें इसकारण इन देहों का पानाही आपत्ति का मूल है और पञ्चप्राण, बुद्धि, मन और दशों इन्द्रियां यही सत्रह संसार के बन्धन हैं और काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न यह पांच योग दोष हैं और शब्दादि विषय और सत्त्वादि तीनोंगुण और पञ्चसूक्ष्मतत्त्व, अविद्या, अहंकार और कर्म्म यह आठकर्म्म हैं इनसब से पृथक् व्रत परायण मुनिलोग फिर जन्म को नहीं पाते हैं तो हमलोग कैसे राज्य को त्यागकर जायँगे अर्थात् संन्यास आश्रम को कैसे करसक्ते हैं, भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! दुःख का अन्त है अर्थात् दुःख के नाश को ही मोक्ष कहते हैं क्योंकि सब दृश्यपदार्थ और पुनर्ज्जन्मादि नाशवान् हैं और सब ऐश्वर्य्य भी चित्त के लगाने से मोक्ष के हानिकारक दोष हैं सो हे धर्मज्ञ ! तुम इनसब के विशेष अपने शमदमादि के अभ्यासरूप उद्योगही से समयपर मोक्ष को पाओगे, हे राजन् ! यह जीवात्मा सदैव के पाप पुण्य और सुख का स्वामी नहीं है और उस हर्ष शोकजन्य राग द्वेषरूप अज्ञान से भी रुका हुआ है इसकारण दैव से उत्पन्न सुखदुःखादि से व्याकुल न होने वाला पुरुष मोक्ष के निमित्त उपाय करे, जैसे कि रूपरहित वायु कृष्ण रक्तादि

धूलों से मिलकर उसीरंग से आकाश को रंगीन करता दृष्टि पड़ता है उसीप्रकार अविद्या रूप उपाधि से संयुक्त समस्तजीव अपने २ कर्म्मों से रंगीन होकर त्रिगुणातीत अपने मुख्य अन्तर्यामी को भी व्याप्त करके देहों में घूमते हैं, जब जीवात्मा ज्ञान अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूरकरता है तब सनातन ब्रह्म का प्रकाश होता है उस सनातन ब्रह्म को मुनिलोग कर्म्म उपासनादि उद्योग के विना ही सिद्ध होना कहते हैं अर्थात् जैसे कि कोई पुरुष अपने कण्ठ में पड़ी हुई मणि को भूलजाता है और फिर विचार से उसको पाता है उसीप्रकार का यह ब्रह्म भी है इसीहेतु से जो पुरुष जीवन्मुक्त हैं उनका सेवन तुम को और सब संसार को करनायोग्य है अर्थात् उनकी उपासना से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसी निमित्त सब ब्रह्मर्षि लोग ब्रह्म की उपासना करते हैं, हे भरतवंशिन् ! जिसप्रकार पूर्व्व समय में ऐश्वर्य्य के नाश होने पर वृत्रासुर ने इसी विषय में अपने चरित्रों को वर्णन किया उसको तुम चित्त से सुनो कि उस पराजित असहाय राज्यहीन बुद्धि में सावधान शत्रुओं में शोचरहित वृत्रासुर से शुक्रजी ने कहा कि हे दैत्य ! तुझ पराजित की कोई भी वस्तु नहीं है तब वृत्रासुर ने कहा कि मैं सत्य और तप के बल से जीवों के जन्म मोक्ष को निस्सन्देह जानकर न हर्ष करताहूं न शोक करता हूं, चारों युगसम्बन्धी जो पुण्य पापनाम धर्म्म अधर्म्म हैं उनसे चेष्टावान् और विवश जीव नरक में पड़ते हैं और सन्तोष गुणसंयुक्त जीवों को ज्ञानियों ने स्वर्ग के योग्य कहा वह उस पापपुण्य की संख्या रखनेवाले काल को व्यतीत करके कुछ शेष बचे हुए पाप पुण्यरूपी काल से वारंवार जन्म को लेते हैं और इच्छारूपी बन्धन में बँधे विवशजीव हजारों पशुपक्षियों के जन्मों को पाते हैं इसीप्रकार सब जीवमात्र चक्र में फिरते हैं और मैं इच्छा से रहित असुरारि ईश्वर का जाननेवाला हूं जैसा जिसका कर्म्म है उसीप्रकार का उसका देह वा ज्ञान होता है यह शास्त्र से निश्चय है कि पूर्व्व के ही कर्म्मों से देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जन्म को और स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख आदि प्रिय अप्रिय को प्राप्त करते हैं सबलोकों के जीव यमराज से ही दण्ड पाकर जन्म को पाते हैं सबलोग पूर्व्व में प्राप्त होनेवाले मार्ग्ग को सदैव प्राप्त करतेहैं अर्थात् स्वर्ग नरक में अपने कर्म्मों के फल सुख दुःख को पाकर फिर जन्म लेते हैं, वह समय चारों युग में उत्पन्न होनेवाले पाप पुण्य की संख्या से अंकित है और उत्पत्ति स्थिति का मुख्य स्थान है तात्पर्य्य यह है कि जो पुरुष निष्काम कर्म्म करता है वह इस मार्ग्ग में कभी नहीं आता है यह बातें सुनकर भगवान् शुक्रजी ने उस असुर के ज्ञान से आश्चर्यित होकर उसकी परीक्षा के निमित्त उसको उत्तरदिया कि हे बुद्धिमन्, वृत्रासुर ! तुम किस कारण से असुरभाव की निन्दा करनेवाले वचनों को कहते हो वृत्रासुर ने कहा कि यह बात आप के और अन्य ऋषियों

के प्रत्यक्ष है जैसे कि मुझ विजय के लोभी ने पूर्व्वकाल में बड़ी तपस्या की थी, मैंने अनेक ऋषि गन्धर्व्वों को विवशकर अपने तेज से तीनों लोकों को व्याप्त करके नष्ट किया और सब निर्भय जल, थल, आकाशचारी जीवों को वश में किया और तप के बल से बड़े २ ऐश्वर्य्यों को पाया हे भगवन्! वह सामान, ऐश्वर्य्य, तेज, बल अपने कर्म्मों से नाशवान् हुआ इसी हेतु से धैर्य्य में नियत होकर शोच नहीं करता हूं फिर मैंने उस षड़ैश्वर्य्यवान् पापों के दूर करनेवाले युद्ध के इच्छावान् महात्मा ईश्वर को इन्द्र के साथ में देखा वही सब की उत्पत्ति लयका आश्रय और सबका अन्तर्य्यामी है आदि अन्तरहित सर्व्वव्यापी है हे ईश्वर! निश्चय वह मेरे उस कर्म्म के शेष फल का उदय था जिसके विषय में कि आप से पूछना चाहता हूं कि बड़ा ऐश्वर्य्य किस ब्राह्मणादि धर्म्मों में नियत है और उत्तम ब्राह्मय ऐश्वर्य्य फिर कैसे सदैव वर्त्तमान रहता है अथवा दूरहोता है, जीव किससे जीवते हैं जिसमें कि फिर बुद्धि के अनुसार चेष्टा करते हैं अर्थात् कौन अन्तर्य्यामी है और जीव किस उत्तम फल को पाकर अर्थात् ज्ञान को पाकर ब्रह्मरूप होजाता है, अथवा किस यज्ञादिकर्म्म या ज्ञान उपासना से उस फल का पाना सम्भव है हे देव! यह सब आप मुझे समझाके कहिये हे राजन्, युधिष्ठिर! उसके उत्तर में जो शुक्रजी ने वर्णन किया है उसको तुम चित्त लगाकर मुझ से सुनो ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

एकसौछः का अध्याय ॥

शुक्रजी बोले कि, उस षड़ैश्वर्य्यवान् ज्योतिरूप अनेक भावभेद से प्रकट होनेवाले परमेश्वर को नमस्कार है जिसकी भुजाओं में आकाशसमेत पृथ्वी तल वर्त्तमान है और जिसका मस्तक अनन्त मोक्ष का स्थान है उस उत्तमसर्व व्यापी विष्णुभगवान् का माहात्म्य मैं तुझ से कहता हूं, यह दोनों इसप्रकार कहते ही थे कि इतने में धर्मात्मा सनत्कुमारजी भी संदेह के दूरकरने के लिये वहां आपहुंचे और वृत्रासुर और शुक्रजी से अभ्युत्थानपूर्वक पूजित होकर वह महात्मा सनत्कुमार बड़ों के योग्य उत्तमोन्नत आसनपर विराजमान हुए और शुक्रजी ने उनसे यह वचन कहा कि हे महाज्ञानिन्! आप इस दानवेन्द्र को विष्णु भगवान् का उत्तम माहात्म्य सुनाइये इतनीबात के सुनतेही उन्हों ने विष्णु के माहात्म्य युक्त अर्थवान् वचन उस बुद्धिमान् असुरेन्द्र से वर्णनकिये कि हे परंतप, दैत्य! जिस सर्वव्यापी विष्णु में सब संसार नियत है उसके माहात्म्य को सुनो कि वही सब स्थावर जंगम जीवों को उत्पन्नकर समय आनेपर अपने मेंही लय करता है फिर समयपर प्रकट करता है यह तो निमित्त का वर्णन है औरइसी में

लय होना और प्रकटहोना यही उपादान है इत्यादि गुणयुक्त विष्णु को जानना कठिन है इसकी प्राप्ति ज्ञानी के तप और यज्ञादि से असम्भव है यह केवल इन्द्रियों के संयम अर्थात् योग सेही प्राप्त होसक्ता है जो पुरुषोत्तम बाह्याभ्यन्तर कर्म्मों में अर्थात् यज्ञादि शम दमादि में चित्त से नियत है और बुद्धि से उन यज्ञादि को निर्म्मल करता है अर्थात् यज्ञादि से अपनी चित्तशुद्धि को करता है वह देह के अभिमान को त्याग आत्मलोक में प्राप्तहोकर मोक्ष को प्राप्तहोता है जैसे कि सुनार चांदी को अग्नि से शुद्धकरता है उसीप्रकार जीवात्मा अपने कियेहुए बहुत से यज्ञ और शमदमादि से सैकड़ोंवर्ष में अपने दोषों से निवृत्त होकर पवित्रहोता है और एकही जन्म में बडे २ उपायों से सिद्धि को पाता है जैसे अपनेदेह के मैल को थोड़े जल से धोता है उसीप्रकार बहुत से उपायों से दोष निवृत्तहोते हैं जैसे कि थोड़ेपुष्पों के समीप वर्त्तमान सरसों अपनी गन्ध को नहीं त्यागती उसीप्रकार निर्मल सूक्ष्मब्रह्म का दर्शन है और बहुतपुष्पों के समीपवाली सरसों जैसे अपनी स्वाभाविक गन्ध को त्यागती है उसीप्रकार सैकड़ों त्रिगुणात्मक दोष प्रसंगी पुरुषों के बुद्धि और अभ्यास से उत्पन्न हुए उपायों से दूरहोते हैं हे दानव ! जैसे उत्पन्न होनेवाले जीव कर्म्म से प्रीतियुक्त वैराग्यवान् भी कर्म्म के रागादि विषयों को प्राप्त करते हैं उसको सुनो, कि जो आदि, अन्त रहित पापों का नाशक सबका आश्रय परमात्मा नारायण है वही सबस्थावर, जंगम का उत्पन्न करनेवाला है उसकी सर्वात्मता कहने को नौप्रकार के गुणों की उत्पत्ति को कहते हैं वही सब देहधारियों में पञ्चतत्त्वात्मक होने से क्षर और जीवात्मारूप से अक्षर कहलाता है और मनसहित दशोंइन्द्रियां इन ग्यारह रूपों से जगत् की रचना करके अपने मेंही लय करलेता है एकता सिद्ध करने के लिये सब सृष्टि को नारायण काही अंग कहते हैं अर्थात् उसके चरण पृथ्वी, मस्तकस्वर्ग, दिशाभुजा, आकाश कान, सूर्यनेत्र, चित्त चन्द्रमा, ज्ञान में उसकी बुद्धि को जानो रस जल में और सब ग्रह उसकी भृकुटी के समीप हैं और नेत्रों के प्रकाश में नक्षत्रचक्र हैं दोनों चरणों में पृथ्वी है और रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण नारायण के रूप हैं और यही जगदात्मा नारायण आश्रमों को जप आदि कर्म्म का और संन्यासधर्म्म का स्वरूप फल है अर्थात् उसका मिलनाही मोक्ष है वेदों के मन्त्रआदि उसके शरीररोम हैं और प्रणवरूप सरस्वती है और बहुत से वर्णाश्रमों में नियत बहुत प्रकार का धर्म आत्मदर्शनरूप हृदय में वर्त्तमान है यही ब्रह्मधर्म्म सबसे श्रेष्ठ है वही तप, वही कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत है वही सत्य असत्य जगत को पैदाकरता है वही सब वेदशास्त्र और ग्रहादि से संयुक्त सोलह ऋत्विज्वाला यज्ञ है वही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही महादेव, वही अश्विनीकुमार, वही इन्द्र, वरुण, कुवेर भी है यह सब उसी एक

के अंगी हैं वह सब को विज्ञानवृत्ति से देखता है वही अद्वैत सब में प्रकाश कर रहा है इस ब्रह्म की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है इसको सुनो जितनेकाल में सृष्टि की उत्पत्ति और लय होती है उसको कल्प कहते हैं और बहुत से जीव हज़ारों कल्पतक जड़रूप होते हैं और बहुत से आनन्द से चररूप विचरते हैं हे दैत्य! यह असंख्य बावड़ी इस संसार की उत्पत्ति लय को प्रकट करती हैं यह प्रत्येक बावड़ी पांच सौ योजनलम्बी एककोस औंड़ी चारकोस चौड़ी अगम्य वृद्धियुक्त हो ऐसी बावड़ी के जल को बाल की नोक से प्रतिदिन एकबार जलकी बूंद निकालीजाय और उस बूंद के निकलने से जितने काल में उनका जल निबटे उतनेकाल में प्रलयहोना समझो इसप्रकार से भी संसार में एकही जीवका लय होता है अर्थात् एकजीव के मुक्तहोनेपर अथवा नाशहोने में असंख्य जीव होते हैं इस वर्णन से किसी दशा में भी संसार का नाश नहीं है, जीवात्मा के छः वरण परम प्रमाणरूप हैं पहिला कृष्णवर्ण तमोगुण की विशेषता और बाकी के दो गुण की परस्पर में प्रकटहोनेवाली कमी और बराबरी यह तो जड़जीव वृक्षादि हैं, दूसरा धूम्रवर्ण और बाकी के दोनों गुणों की न्यूनाधिकता यही पशु पक्षी हैं, तीसरा रजोगुण की अधिकता नीलवर्ण और शेषदोनों गुणों की कमी बराबरी यही मनुष्यादि हैं, मध्यमवर्ण पूर्व के प्रत्येक दो २ गुण की न्यूनाधिकता से प्रकट होनेवाले शम दम आदि गुण रक्तवर्ण हैं, वह प्रवृत्ति मार्गवालों के निमित्त सुखरूप हैं, बड़े साहसी ज्ञानियों के सतोगुण की आधिक्यता और शेष दोनों गुणों की परस्पर की न्यूनाधिकता स्वर्गरूप सुखदायी है, सतोगुण श्वेत, रजोगुण लाल, तमोगुण का कालारंग है इन तीनों की न्यूनाधिकता से अन्य पीत आदिरंग उत्पन्न होते हैं हे दैत्य! इनसृष्टियों में शुक्लनाम कौमार स्वर्ग रागद्वेष से पृथक् होने के कारण निर्मल पापरहित शोक से पृथक् मोक्ष को साधन करता है परन्तु वह बहुतही कठिनता से प्राप्तहोता है अर्थात् यह जीव उन योनियों से उत्पन्न हज़ारों जन्मों को पाकर सिद्धि को पाता है उसका वर्णन करते हैं—इन्द्र देवता ने जिस श्रेष्ठ शास्त्र के द्वारा जिस अनुभव आत्मारूप गति का वर्णन किया वही गतिरूप वर्ण धारण करनेवाले संसार का है इस प्रकार से वह वर्ण उसचारों युगों के रूपजीव से उत्पन्न होता है आशय यह है कि धर्म में प्रीतिमान् धर्म ही का आलम्बन करनेवाला अधर्म्मरहित अधर्म्म से ही प्रीतिमान् जीव इनचारों रूप से चारोंयुग का स्वरूप है और पूर्वसंस्कारके कारण गुणों में प्रवृत्त होता है हे दैत्य! यहां जीव पञ्चकर्म्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय चार अभ्यन्तरेन्द्रिय इन चौदहों के प्रयोजन से लाखों होजाते हैं और अर्थों के विभाग से भिन्नवृत्तिभी होती है उन सतोगुण प्रधान चौदह इन्द्रिय रूप से जीवों का ऊपर नीचे और सब ओर होना अथवा पृथक् होना समझो, अब सतोगुण

प्रधान न होने से दोनों को कहते हैं—जड़भाव होनेवाले कृष्णवर्ण की अधोगति है वह कृष्णवर्ण जीव नरक देनेवाले कर्म्म में प्रवृत्तहोता है इसी हेतु से नरक का भोगनेवाला होता है ऐसेही उनचौदह इन्द्रियों के कारण कुमार्ग में चलनेवाले का निवास भी नरक में होता है और बहुत कल्पतक रहता है फिर वह जीव एकलाख वर्ष घूमकर धूम्रवर्ण पशुपक्षियों में जन्म को पाता है शीतोष्णता से दुःखी सब ओर को भय और काल को देखनेवाला जीव उस योनि में निवास करता है और पाप के भोग के पूरेहोने पर विवेक बुद्धि से जब वह सतोगुण से संयुक्त होकर तमोगुण प्रवृत्ति को दूरकरता है तब अपनी बुद्धि से कल्याण के निमित्त उपाय करता है वह लालवर्ण अर्थात् अनुग्रह, स्वर्ग, शम, दमादि गुणों को पाता है और सतोगुण से पृथक् होने में नीलवर्ण मनुष्य के जन्म को पाकर नरलोक में आवागमन करता है, वह जीव वहांपर एक कल्पतक अपने कर्म्म जन्मबन्धन से खेद को पाता है वहां ऊपरचढ़नेवाला वह जीव सौकल्प के अन्त होनेपर पीतवर्ण देवभाव को पाता है अर्थात् सौ कल्पतक कभी मनुष्य कभी देवता होता है, हे दैत्य ! पीत वर्णवाला देवता हज़ारों कल्पों में भ्रमण करता हुआ भी विषयों से बँधाहुआ प्रत्येक कल्प में प्राप्तफलों को वास्तव में नरकनाम स्वर्ग में भोगता गतियों में घूमता नियत होता है वह सबगति संख्या में उन्नीस हज़ार हैं इस निमित्त इस जीव को नरक से अर्थात् भोग देने वाले कर्म्म से जुदाजानो आशय यह है कि स्वर्ग भी नाशवान् है और दूसरे जन्म में भी यही दशा है इसीकारण पक्षियों के जन्म के समान देवभाव भी भोग भूमि के होने से त्याग के योग्य है वह जीव लोक में सदैव विहार करता है उससे छूटकर मनुष्य देह को पाता है फिर देवभाव को पाता है पांचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त यह आठों अपने अर्थों के प्रत्यक्ष और लय के कारण हैं और अर्थों के विभाग से सैकड़ों होजाते हैं उन प्रत्यक्ष और लयादि को वह पाता है जोकि नरलोकों में नियत है वह इस संकल्प से उत्पन्न प्रत्यक्ष और लय के कारण कलियुग से भ्रष्टता को पाकर पृथ्वीपर सबसे छोटे वृक्षादि के रूप में जन्म लेता है, अब मुक्ति के उपाय को कहते हैं—वह मोक्ष का चाहनेवाला जोकि सातव्यूह रखने वाले दिव्य सात्त्विक शमदमादि की वृत्तियों के कारण सैकड़ों वृत्ति रखनेवाले हैं उन में आश्रित होकर प्रथम लालवर्ण अर्थात् शमदम आदि गुणों में अच्छे प्रकार से प्रवृत्त होता है फिर पीतवर्ण देवभाव को पाता है फिर बालक के समान शुक्लवर्ण रागद्वेष से रहित होता है फिर इसी शुक्लमार्ग्ग में दौड़ता है वह अष्ट पुरियों से उत्तम अर्चितम लोकों को पाता है, आशय यह है कि धूम्रमार्ग्ग से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है वही अर्चित और उससे भी ऊंचा ब्रह्मलोक अर्चितर कहाता है और उससे श्रेष्ठतर केवल ज्ञान सेही प्राप्त होनेवाला योगफलरूप

अचिंतम है, ब्रह्मज्ञानी इन आठों को चित्त से रोकते हैं इनके भी भेद पूर्वोक्त रीति के अनुसार छःहज़ार होजाते हैं अर्थात् वह अज्ञानदृष्टि से पृथक् २ भी ज्ञानियों के केवल चित्तरूप हैं हे महानुभाव! शुक्लवर्ण की जो गति है वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों दशाओं की रोधकरूप है अर्थात् तीनोंदशाओं की रोधकता तुर्यानाम अवस्था है क्योंकि उपाधिरहित होने से उसकी प्राप्ति नहीं कहसक्ते, इसप्रकार से जीवन्मुक्त पुरुष के भोग प्रारब्ध कर्म्म को जो कि हज़ारों प्रत्यक्ष और लय का रखनेवाला और अनिच्छा सेही इस देह में निवास करता है और योग ऐश्वर्य्य से प्राप्त दिव्यभोगों के त्याग करने में असमर्थ योगी दूसरे चार योगबल से ऐश्वर्य्यवान् और कर्म्म मुक्ति के स्थान महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक में निवास करता है क्योंकि वह उस शुक्लवर्ण रखनेवाले योगी की गति है जिसने उस गति की सिद्धि में भी शुद्ध ब्रह्म के साक्षात्कार से जीवन्मुक्ति को प्राप्त नहींकिया परन्तु उसके रागद्वेष नष्ट होगये तात्पर्य्य यह है कि योगसिद्धि भी जीवब्रह्म की एकता के ज्ञान से कर्म मुक्ति को प्राप्तहोता है, योगभ्रष्ट की गति को कहते हैं, जो योगी योग का अनुष्ठान अच्छीरीति से करने को समर्थ नहीं है वह शेष बचेहुए कर्म्म से युक्त सौकल्प तक इन्द्रिय, मन, बुद्धि में प्रवृत्त होकर निवासकरता है फिर वहां से लौटकर नरलोक में ऐसे मनुष्य का जन्म पाता है जो कि अच्छेकुल के व्यवहार और विद्या आदि में अतिकुशल हो फिर उस नरदेह को त्यागकर क्रम से उत्तम योनियों के प्राप्तकरने को जाता है अर्थात् पहिले अभ्यास के द्वारा पिछली २ योग भूमियोंपर चढ़ता है इसप्रकार से जानेवाला वह योगी सातबार लोकों में ब्रह्म लोकतक भोगता और घूमता है वह योगी समाधि और उत्थान से ऐश्वर्य्य को प्राप्तकरता है, फिर भूलोक आदि की बुद्धि और चित्त से इच्छा को और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान से लय करके और सब को दुःखरूप निश्चय करके जीवलोक में नियत होता है, तदनन्तर देह को त्याग रूपान्तर दशा से रहित अनन्त सिद्ध ब्रह्मस्थान को पाता है वह शिवजी महाराज का लोक है ऐसा शैवलोग कहते हैं और वैष्णव उसको विष्णुलोक कहते हैं और हिरण्यगर्भ उपासक उसको ब्रह्मलोक और शेषजी का लोक कहते हैं और सांख्यशास्त्र वाले उसको जीवात्मा का परम्पद कहते हैं और उपनिषद् मतवाले उसको प्रकाशमान चिन्मात्र सर्व्वव्यापी तुरीयरूप परब्रह्म परमात्मा का स्थान कहते हैं अब वादीप्रतिवादी समेत सब की स्वीकृत वृत्ति को कहते हैं संहारकाल में जिन जीवों के स्थूल सूक्ष्म कारण और चेष्टारूप देवगण और जो ब्रह्मलोक से दूसरे मध्यवर्ती प्रकृति आदि हैं यह सब देहसमेत ज्ञान से जब अत्यन्त भस्म होते हैं तब मोक्ष होकर ब्रह्म को प्राप्तहोते हैं, इसप्रकार आत्मज्ञान से उत्पन्न महा

प्रलय को कहकर आवान्तर प्रलय का कहते हैं—प्रलयकाल के समीप होनेपर देवभाव को प्राप्त करनेवाले और सम्पूर्ण कर्म्म फलों के न भोगनेवाले जीव पहिले कल्प के प्राप्तहुए अपने स्थानों को दूसरे कल्प में भी पाते हैं क्योंकि वेद वचनों के अनुसार सबकल्प पहिले कल्पों के समान होते हैं और जो देवभाव को प्राप्त करनेवाले जीव कल्प के अन्त में कर्म्मों के फलों को भोगचुके हैं वह सब सृष्टिके संहारकाल में दूसरे मनुष्यों की समान देह को प्राप्तकरते हैं—तात्पर्य्य यह है कि विना ब्रह्मज्ञान के सैकड़ों प्रलय में भी किया हुआ कर्म्म नाश नहीं होता है, जो जीव परम्परापूर्व्वक ब्रह्मलोक से पतन हुए वह क्रम से उन्हीं मनुष्यों की गति को पाते हैं और जो जीव कि उनके बल और रूप में समान हैं वह अपने २ अच्छेबुरे कर्म्मों के फल को विपरीतता के साथ प्राप्तकरते हैं, तात्पर्य्य यह है कि एकही कल्प में स्थिति अस्थिति दोनों होती हैं इसीकारण संसार से भयभीत मनुष्य को तत्त्वज्ञान में आश्रय लेना योग्य है, इसप्रकार विवेकयुक्त ब्रह्मविद्या को कहकर संसारी दशा को कहते हैं—वह ब्रह्मज्ञानी जबतक प्रारब्ध-कर्म्म को भोगता है तबतक उसके अंगों में उसकाही रूप सब संसार और दोनों शुक्लवर्ण वा दिव्यपरा अपरानाम माया वर्त्तमान रहती है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी को शुद्ध कैवल्य मोक्ष तकही सब जगत् है फिर नहीं है क्योंकि योग से शुद्ध-चित्त होकर और धारण, ध्यान, समाधिरूप संयम का अनुष्ठान करके यह सब दृश्यमान आकाशादि पञ्चइन्द्रिय के समान है, सदैव श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास से शुद्ध होकर निश्चय करता उस अविद्यारहित शुद्धचिन्मात्र भावपरमगति ब्रह्म को पाता है फिर ब्रह्म के साक्षात्कार के पीछे अविनाशी मोक्षस्थान को पाता है—वह ब्रह्म शुद्ध चैतन्यतर है फिर उस आकाश सदृश अरूप की प्राप्ति नहीं कहसक्ते इसी से वह दुःप्राप्य है, हे बुद्धिमन्, वृत्रासुर! यह मैंने जगदात्मा नारायण का बल पराक्रम तुझ से कहा—वृत्रासुर ने कहा कि मैं इस दशा को अच्छेप्रकार से देखता हूं इसमें मुझ को व्याकुलता नहीं है हे बड़े बुद्धिमन्! मैं तेरे इस वचन को सुनकर अविद्या और शोक मोह से रहित हूं हे महर्षे! इस बड़े प्रतापी अनन्त विष्णु का यह अत्यन्त पराक्रमयुक्त यकही सनातन स्थान है जिसमें सब संसार वर्त्तमान है—भीष्मजी बोले कि, हे कुन्तीनन्दन! उस वृत्रासुर ने इस प्रकार वचन कहकर उक्तरीति से आत्मा को ब्रह्म में लय करके उत्तम स्थान को पाया, युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! पूर्वसमय में जिसको सनत्कुमारजी ने वृत्रासुर से वर्णन किया वह षड़ैश्वर्य-वान् ज्योतिरूप यही श्रीकृष्ण हैं जो राजाओं के समान मूर्त्तिमान् सम्मुख वर्त्तमान हैं यह बात सुनकर ईश्वर में युधिष्ठिर को भ्रम न होने के निमित्त भीष्मजी ने कहा कि मैं मूल अधिष्ठान को कहता हूं जो उसके समान निराकार रूप से

नियतहुआ उसको मूलस्थायी कहते हैं वह चैतन्य महान् आत्मा माया से रहित भूमिरूप आधारस्थान है वही प्रथमहुआ फिर चैतन्यमाया शबलनाम पड़ैश्वर्य-वान् कार्यकारण का आत्मा होता है फिर स्थावर, जंगम, जड़, चैतन्य का आत्मा जीवरूप होता है यही दूसरा है वह भी अपनेतेज से दृष्ट आनेवाला तेजस नाम कार्य ब्रह्मता को प्राप्तहोकर वृक्ष होता है यह तीसरा हुआ उस ब्रह्माण्डरूप कार्य में नियत यह श्रीकृष्णजी बहुत बीजों के गर्भ फल के स्थान में चौथे हैं यही श्रीकृष्णजी उस कार्य कारणरूप वृक्ष बीजरूप भाव को उत्पन्न करते हैं इनका चित्त सत्यसंकल्पादि गुणों से भरा हुआ है उस मूलस्थायी चिन्मात्र के आठवें भाग से उत्पन्न इनमूर्त्तिमान् केशवजी को जानो यह अविनाशी हैं अर्थात् अविद्या के वर्त्तमान रहने तक इनका नाश नहीं है यह बुद्धिमान् चैतन्य के आठवें भाग से तीनोंलोकों को उत्पन्न करता है इसका आशय यह है कि मूलस्थायी तो पूर्ण चैतन्य है और माया सबल ब्रह्म माया के भाग की संप्रधानता से चैतन्य का आधा है और अविद्यारूप समष्टि कार्य्य तैजस में बीज का भाग आधा होने से चैतन्य का चौथाई है और व्यष्टि कार्य्य में देह आदि को पृथक् न मानने से आठवां भाग है यह बात हम लोगों में भी है क्योंकि उपाधिरहित होने से हमारी भी यही दशा होसक्ती है तो इनको भगवान् से कहना चाहिये इस शंका को कहते हैं—कि कर्म्मफल का स्वरूप ईश्वरता आदि श्रीकृष्णजी में योग्य है और हमलोगों में कच्चे फल के स्वरूप अनीश्वरता प्रकट है इसीकारण से हमलोग इनके समान नहीं होसक्ते—इनचारों की पृथक्ता अपने अज्ञान से है नहीं तो चारों एकशुद्ध चैतन्य हैं इसीको कार्य्यरूप संसार और कारणरूप कर्त्ता की एकता सिद्ध करने से दृढ़ करते हैं—जो मध्यवर्ती समष्टिकार्य्य आत्मा तीसरा है वह कल्प के अन्त में लय होता है और षडैश्वर्य्यवान् ईश्वर महापराक्रमी प्रभु अन्तर्य्यामी है वह भी अखण्ड एकरस ब्रह्म में लय होता है क्योंकि इस ईश्वर की अविनाशिता व्यवहार से है परमार्थ से नहीं है—शुद्ध चैतन्य ब्रह्माजी उस अखण्ड एकरस सदैव होनेवाले आत्मा को अविद्या के त्याग से प्राप्त करते हैं, वह अनन्त परमात्मा सब कारणों को अपनी सत्ता और स्फूर्त्ति देने से पूर्ण करता है और सदैव एकरूप वही उपाधि विशिष्ट श्रीकृष्णरूप से लोकों में घूमता है वह ऐसा भी हमारे समान उपाधि धर्म्मयुक्तों से नहीं रोका जाता है इसीकारण अहंकाररूप होकर जगत् को पैदा करता है यह महात्मा सबका आधाररूप है इसी में यह सब विचित्र जगत् ऐसे नियत हैजैसे कि बीज में वृक्ष और फल में बहुत से बीज होते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह ! मैं जानता हूं कि वृत्रासुर ने अपनी शुभगति को देखा उस आत्मगति के दर्शन से सुखी होकर शोच नहीं करता है और हे पितामह ! शुक्ल और शुक्ल-

वंश में उत्पन्न पशुपक्षी योनि में जन्म नरक से छुटा फिर लौटकर नहीं आता है, और देवभाव युक्त पीतवर्ण जिसमें रजोगुण अधिक तमोगुण सम और सतोगुण कम होता है अथवा लालवर्ण अनुग्रह स्वर्ग, शम, दमादि जिसमें रजोगुण अधिक सतोगुण सम तमोगुण कम होता है इन सब में वर्तमान मनुष्य अगर तामसी कर्मों में संयुक्त हो अर्थात् रजोगुण के समान होने से कभी आवरण प्रवृत्ति की आधिक्यता होय तो उससे पशुपक्षी के भी जन्म को देखे है और हम आपत्ति में फँसे दुःखरूप सुख में प्रवृत्त हैं इसकारण न जाने किस गति को पावेंगे नीलवर्ण वा कृष्णवर्णयुक्त नीचगति पावेंगे, भीष्मजी बोले कि हे पाण्डव ! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न प्रशंसनीय हो तुम देवलोकों में विहार करके फिर मनुष्यजन्म पाओगे अर्थात् समय पर सुखपूर्वक शरीर को त्याग देवभाव को प्राप्त सुख को भोग आनन्द से सिद्धरूप कहलाओगे चिन्ता मत करो तुम सब निर्मल हो ॥ ९६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौसात का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे तात ! बड़ा तेजस्वी वृत्रासुर प्रशंसा के योग्य है जिस में अपार विज्ञान और विष्णु भगवान् की ऐसी भक्ति वर्तमान है और विष्णु का अपार तेजोमय परमपद भी कठिनता से जानने योग्य है हे पितामह ! उसने उस पद को कैसे जाना मैं आप के कथन से श्रीकृष्णजी पर श्रद्धा करता हूं परन्तु फिर भी ठीक २ न जानने से मेरी बुद्धि में यह शंका है कि वह धर्म का अभ्यासी विष्णुभक्त वेदान्त के अर्थ विचार में महातत्त्वज्ञ ज्ञानी वृत्रासुर इन्द्र के हाथ से कैसे मारागया इसको कृपा करके वर्णन कीजिये और जिसप्रकार से युद्ध हुआ उसके भी सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है—भीष्मजी बोले कि, पूर्वसमय में इन्द्र अपने देवगणों के सहित रथों में बैठकर जाते थे कि दैवयोग से पर्वत के समान आगे खड़ेहुए वृत्रासुर को देखा वह उंचाई में पांच सौ योजन और कुछ अधिक तीन सौ योजन मोटा था वह त्रिलोकी से भी विजय करने के योग्य न था उसको देखकर सब देवता महाभयभीत होकर व्याकुल हो गये और इन्द्र भी उसके इस महाघोर अद्भुतरूप को देखकर निश्चेष्ट होगया फिर युद्ध के प्रारम्भ में देवता और असुरों के मुख और बाजों के महाशब्द हुए तदनन्तर सन्मुख इन्द्र को उद्यत (नियत) देखकर वृत्रासुर को भय और भय से उत्पन्न निश्चेष्टता इत्यादि सब जातीरही फिर देवराज इन्द्र और महात्मा वृत्रासुर का ऐसा घोरभयानक युद्धहुआ जो तीनोंलोकों का भयकारी था, खड्ग,

पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर और बड़े शब्दायमान अनेक अस्त्र, शस्त्र, धनुष, दिव्य अस्त्र, अग्न्यस्त्र और उल्कापातों से युद्ध हुआ तबतो देवतालोग असुरों के शस्त्रों से घायल होकर महाव्याकुल हुए उस युद्ध के देखने को ब्रह्मादिक बड़े २ देवता ऋषि गन्धर्व भी अपनी २ अप्सरा और स्त्रियों के साथ उत्तम २ अनेक विमानों में बैठकर आपहुँचे फिर उस वृत्रासुर ने आकाश में जाकर पाषाणों की वृष्टि से देवराज समेत सब देवताओं को ढकदिया तब देवताओं ने भी महाक्रोधित होकर अपने दिव्य बाणों से उस पाषाणवृष्टि को निवृत्त किया फिर वृत्रासुर ने महाक्रोधित होकर अपनी नाना प्रकार की मायाओं से देवराज को व्याकुल किया और इन्द्र घबराकर निश्चेष्ट होगया तब वशिष्ठजी ने वेदों की ऋचाओं के द्वारा उसको सावधान किया और कहा कि हे दैत्य और असुरों के मारनेवाले, देवेन्द्र! तुम देवताओं में श्रेष्ठ और तीनों लोक के पराक्रम से युक्त हो तुम क्यों असावधान होकर चेष्टारहित होगये हो और देखो यह भगवान् विष्णुजी, शिवजी, ब्रह्माजी और चन्द्रमा आदि अनेक ब्रह्मर्षिलोग भी वर्त्तमान हैं हे देवेन्द्र! तुम अन्य के समान मूर्च्छा को त्यागो और युद्ध में श्रेष्ठइच्छा करके शत्रु को मारो और हे देवराज! यह त्रिलोकी के स्वामी विष्णु भगवान् तुम को देखते हैं और यह बृहस्पति जी ब्रह्मर्षियों समेत तेरीही विजय के निमित्त दिव्य अस्त्रों से तुम को प्रतिष्ठा देरहे हैं— भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से वशिष्ठजी की प्रशंसा से इन्द्र में महाबल उत्पन्न हुआ फिर चैतन्य होकर इन्द्र ने बड़े योग में प्रवृत्त होकर उस दैत्य की माया को दूर किया तदनन्तर अंगिराऋषि के पुत्र बृहस्पतिजी और सब महर्षि वृत्रासुर के पराक्रम को देखकर महेश्वर जी के पास जाकर लोकों के आनन्द के निमित्त वृत्रासुर के विनाश की प्रार्थना करते भये तब षड़ैश्वर्य्यवान् जगत्पति शिवजी का तेज ज्वररूप होकर महाउग्रता से वृत्रासुर के शरीर में प्रवेश करगया और संसार के पालनकर्त्ता और सब लोकों में पूजित विष्णुजी ने इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया तब महातेजस्वी बृहस्पतिजी वशिष्ठजी और सब महर्षियों ने इन्द्र के पास आकर उसको समीप करके उससे सब ने एक चित्त होकर यह वचन कहा कि प्रभु इन्द्र तुम वृत्रासुरको मारो और शिवजी ने कहा हे इन्द्र! यह वृत्रासुर महापराक्रमी बड़ा लम्बा चौड़ा ज्ञान से विश्वात्मा रूप सर्वत्र वर्त्तमान प्रबल मायावी प्रसिद्ध है सो हे देवेश्वर! तुम योग में आरूढ़ होकर इस महाबली दुर्जय वृत्रासुर को मारो और इसका अपमान मतकरो इसने पराक्रम के लिये साठहजार वर्षतक तपस्या की है इससे ब्रह्माजी ने वरदिया है कि तू योगियों में श्रेष्ठ महापराक्रमी मायावी अतुल तेजधारीहोगा सो हे इन्द्र! यह मेरा तेज तुझ में प्रवेशहोताहै और तेरे वज्र में श्रीविष्णुभगवान् ने आप प्रवेश

किया है तुम इससंसार के व्याकुल करनेवाले वृत्रासुर को वज्र से मारो, इन्द्र ने कहा हे देवदेव, भगवन् ! मैं आप की कृपा से आप के देखतेही देखते इस महादुर्जय दैत्य को वज्र से मारूंगा, भीष्मजी बोले कि, फिर तो उसके देह में ऐसे तेजों के होने से देवता और ऋषियों के आनन्दकारी महाशब्द हुए जब बड़े शब्द की हज़ारों दुन्दुभियों के और शंख, मुरज, डिंडिमी के आनन्दकारी शब्द हुए तब असुरों को मूर्च्छा हुई और क्षणभर में सब माया नाश होगई तदनन्तर देवता और ऋषियों ने तप से भरा वृत्रासुर का देह जानकर अपने स्वामी इन्द्र की प्रशंसा की और अनुमति भी दी तब ब्रह्मर्षियों से स्तुतिकियाहुआ इन्द्र युद्ध के समय रथ में चढ़ा हुआ ऐसा तेजवान् हुआ कि उसके स्वरूप को कोई कठिनता से भी नहीं देखसक्ता था ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

एकसौआठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे महाराज ! तप से पूर्ण देह वृत्रासुर के शरीर में जो चिह्न प्रकट हुए उनको मुझ से सुनो, देदीप्य अग्नि के समान मुख और घोररूप होकर उसकी अपूर्व विवर्णता अर्थात् और का और रूप ऐसा होगया कि सम्पूर्ण अंगों में रोमहर्ष और बड़े २ श्वासा निकलनेलगे अर्थात् स्वरूप में मृतकता छागई और नाक मुख से बड़े २ श्वास निकले और उसके मुख से उसकी कल्याणरूप देवी निकली जो दूसरों को भयकारी दिखाई दी वह महाघोर देवी उसकी स्मृति अर्थात् स्मरणशक्ति थी उसके निकलतेही चारों ओर से उल्कापात होनेलगा और गृद्ध, कंक, बलाक इत्यादि पक्षी महाशब्द करनेलगे और वृत्रासुर के आस पास भ्रमण करनेलगे तिस पीछे युद्ध में देवताओं से प्रशंसित इन्द्र हाथ में वज्र धारणकर रथ में बैठ उस दैत्य को अच्छे प्रकार से देखने लगा तब उस उग्रतप महाअसुर ने जंभाई ली और अमानुष घोर शब्दकिया तभी इन्द्रने उसके वज्रमारा और उस कालरूप वज्र के लगतेही वृत्रासुर गिरा तब वृत्रासुर को मृतक जानकर देवताओं ने चारों ओर से जय जय शब्द किया और इन्द्रदेवता उसको मारकर विष्णुजी के साथ वज्रसमेत अपने स्वर्ग में आये तब वृत्रासुर की देह से ब्रह्महत्या बाहर निकली वह महाघोररूप, भयानकदांत, मलिनशरीर, काला पीला रंग, बिखरेहुएबाल, घोर नेत्रयुक्त कृत्या के समान कपालों की माला धारण कियेहुए रुधिरभरे वस्त्रों से आच्छादित थी उसने निकलतेही वज्रधारी इन्द्र की खोजकरी हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर ! थोड़ेकाल के पीछे लोकों के उपकार के हेतु इन्द्रदेवता स्वर्ग के सन्मुख चलेगये वहां उस ब्रह्महत्या ने उस निकलेहुए इन्द्र को देखकर पकड़लिया और

देह से चिपटगई उससमय इन्द्र महादुःखी होकर कमल की नाल में नियत होकर बहुतकाल व्यतीतकरते हुए और उस ब्रह्महत्या ने पैर की एँड़ी में होकर इन्द्र को बांधलिया तब उस तेजहीन इन्द्र ने उससे छूटने के लिये अनेक उपाय किये परन्तु किसी प्रकार से भी उस हत्या को दूर न करसका तब महाभयभीत होकर इन्द्र ने ब्रह्माजी के पास जाकर साष्टांग दण्डवत् की तब ब्रह्माजी ने उस उत्तम ब्राह्मण की हत्या से पकड़ेहुए इन्द्र को जानकर बहुत विचारकिया और मधुरस्वर से विश्वास देकर उस ब्रह्महत्या से कहा कि हे भवानि! तू इस इन्द्र को छोड़दे और मेरा कहना मानले और जो तेरा अभीष्ट हो उसको कहदे ब्रह्महत्या बोली कि तीनोंलोक के स्वामी और पूज्य के ऐसे वचनों से ही मैंने सब कुछ पालिया अब मेरे रहने को स्थान विचार कीजिये संसार की रक्षा की इच्छा करनेवाले आपही से यह मर्य्याद विचार कीगई यह बड़ीमर्य्याद आपने प्रकट की हे लोकेश्वर! धर्मज्ञ आप के प्रसन्नहोने से मैं इन्द्र से पृथक् होजाऊंगी आप मेरा स्थान नियत कीजिये, भीष्मजी बोले कि, फिर वहां ब्रह्माजी से ध्यानकियेहुए अग्नि उत्पन्न होकर ब्रह्माजी से बोले हे निर्दोष, ब्रह्माजी! मैं भी आप के आगे वर्तमान हूं जो मेरे योग्य काम हो वह आज्ञादीजिये ब्रह्माजी बोले कि, मैं इन्द्र के वचनों के लिये इस ब्रह्महत्या के बहुत से भाग करूंगा तुम इसके चौथे भाग को लो अग्निदेवता बोले कि हे ब्रह्मन्! मेरे मोक्ष का अन्त कौन होगा इसको विचारकरिये और मुख्यतासमेत मुझे सुनाइये ब्रह्माजी बोले हे अग्ने! जो अज्ञानी मनुष्य आप के किसी स्थानपर अग्निरूप तेज को पाकर पुरोडास आदि वीरुध्, औषधि, रस और सोमदूध आदि से पूजन नहीं करेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्रही प्राप्तहोगी और उसी में निवास भी करेगी हे अग्ने! तेरे चित्त का संताप दूरहोय जब हव्य कव्य भोजन करनेवाले अग्निदेवता ने ब्रह्मा के ऐसे वचन सुने तब उनकी आज्ञा के अनुसार वहीकिया फिर ब्रह्माजी ने वृक्ष औषधि तृणआदि को बुलाया और यही वचन उनसे भी कहा और वह सब भी अग्नि के समान पीड़ित न हुए और ब्रह्मा से बोले कि हे लोकों के पितामह! हमारी ब्रह्महत्या का क्या अन्तहोगा हम प्रारब्ध के मारे हुए हैं हमको आप पीड़ा देने के योग्य नहीं हो हे देव! हम सब ऊष्मा, शीत, वर्षा, वायु, छेदन, भेदन आदि अनेक दुःखों को अपने ऊपर सहते हैं हे त्रिलोकीनाथ! हम आपकी आज्ञा से अपने ऊपर हत्या को धारणकरेंगे आप हमारे मोक्ष का विचारकरिये, ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य किसी पूर्वकाल के वर्त्तमान होनेपर भूल से भी तुम्हारा छेदन भेदन करेगा उसपर यह ब्रह्महत्या प्राप्तहोगी यह सुनकर ब्रह्माजी की आज्ञा को अंगीकार करके वृक्ष, औषधि आदि भी दण्डवत् करके अपने २ स्थानों को चलेगये फिर ब्रह्माजी ने अप्सराओं को बुलाकर विश्वासयुक्त मीठेवचनोंसे कहा

हे उत्तमस्त्रियो ! यह ब्रह्महत्या इन्द्र से प्राप्तहुई है तुम मेरी आज्ञा से इसके चौथे भाग को लो, अप्सरा बोली हे देवेश्वर ! आप की आज्ञा से ब्रह्महत्या के लेने में हमारी मोक्ष के नियम को विचारो ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य रजस्वला स्त्रियों के साथ विषयकरेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्रलगैगी तुम्हारे चित्त का संताप दूर हो, यह सुनकर अप्सराओं के समूह भी ब्रह्मआज्ञा को अंगीकार कर बड़ी प्रसन्नता से अपने २ स्थानों को चलीगई तदनन्तर तीनोंलोक के स्वामी ब्रह्मा ने जलों को स्मरणकिया और वह भी आज्ञा पातेही शीघ्र आपहुंचे और सबने ब्रह्माजी को दण्डवत् करके यह वचन कहा कि हे शत्रुहन्ता, ब्रह्माजी ! हम आप की आज्ञा से सब आप के सन्मुख उपस्थित हैं हम को जैसी आज्ञा होय वह करें ब्रह्माजी बोले कि, यह बड़ी भयकारिणी ब्रह्महत्या वृत्रासुर से इन्द्र में आई है तुम इसके चौथेभाग को धारणकरो जल बोले कि हे प्रभो, लोकेश्वर ! हम को अंगीकार है परन्तु हमारे मोक्ष को भी आप विचारिये जिससे कि इसके कष्ट से हम छूटें ब्रह्माजी बोले कि जो बुद्धि से अज्ञानी मोहित होके इस विचार से कि यह जल थोड़ा है उसमें थूक, विष्ठा, मूत्र को करेगा उसको यह ब्रह्महत्या प्राप्त होकर उसी में निवास करेगी इससेही सत्य २ तुम्हारी मोक्ष होगी तदनन्तर हे युधिष्ठिर ! वह ब्रह्महत्या इन्द्र को छोड़कर बतलाये हुए उक्तस्थानों को गई इसप्रकार इन्द्र को ब्रह्महत्या हुई थी फिर इन्द्र ने ब्रह्माजी की आज्ञा लेकर अश्वमेध यज्ञ को रचा तब इन्द्र की शुद्धिहुई और बड़े २ हजारों शत्रुओं को मार उनकी लक्ष्मी ले इन्द्र ने बड़े हर्ष को पाया और वृत्रासुर के रुधिर से शिखण्डी उत्पन्न हुए वह दीक्षायुक्त तपोधन ब्राह्मणों के अभक्ष्य हैं हे कौरवनन्दन ! तुम भी सब प्रकार से इन ब्राह्मणों को प्रसन्नकरो यह ब्राह्मण इस पृथ्वीतल में देवता प्रसिद्ध हैं, और हे राजन् ! इसप्रकार से वह वृत्रासुर इन्द्र के हाथ से मारागया, उसी इन्द्र के समान पृथ्वीपर तुमभी विजयी और अजेय होगे जो पुरुष हरएक पर्वमें इन्द्र की इस दिव्य कथा को ब्राह्मणों के मध्य कहेंगे वह पाप से मुक्त होंगे यह वृत्रासुर और इन्द्र का परस्पर युद्ध और कर्म्म तुम से ब्योरे समेत कहा अब क्या सुनने की इच्छा है ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

एकसौनौ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानिन्, सर्वशास्त्रज्ञ, पितामह ! इस वृत्रासुर के वध में मुझ को बहुत सी तर्कणा उत्पन्न होती हैं हे निष्पाप, पितामह ! आपने कहा कि वृत्रासुर जब ज्वररूप तप से असावधान हुआ तभी इन्द्र ने वज्र से मारा तो

हे महाभाग ! यह ज्वर कहां से और किसप्रकार उत्पन्न हुआ इसका मूल से सब वृत्तान्त सुना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि, इस ज्वर की उत्पत्ति जो कि लोक में प्रसिद्ध है उसको सुनो कि सुमेरु पर्वत के शिखर ज्योतिपनाम सूर्यदेवता से सम्बन्ध रखनेवाले सब रत्नों से भरे तीनों लोकों से पूजित और अजित बड़े प्रभाववाले थे हे राजन् ! वहां पूर्वसमय में वह सुवर्ण के समान प्रकाशमान अनेक धातुओं से शोभित पर्यंक अर्थात् पलंग के समान वर्त्तमान थे वहां शिवजी महाराज आनकर सुशोभित हुए उनके साथ श्रीपार्वती महारानीभी वर्त्तमान थीं और महातेजस्वी अष्टवसु, देववैद्य अश्विनीकुमार, यक्ष, गुह्यक युक्त श्रीमान् राजराज कुबेरजी और महात्मा शुक्राचार्य भी शिवजी महाराज की सेवा उपासना में प्रवृत्त थे इनके विशेष सनकादि महर्षि और अंगिरा ऋषि आदिक देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, ऋषि और अप्सराओं के बहुत से समूह प्राप्त हुए और शीतल, मन्द, सुगन्ध सुखदायी वायु चलने लगी और सब प्रकार के वृक्ष ऋतुसम्बन्धी फलफूलों से आच्छादित थे और विद्याधरआदि तपोधन सिद्धलोग इत्यादि इन सबलोगोंने पशुपतिनाथजी को चारों ओर से व्याप्त करलिया और अनेक रूपधारी महापराक्रमी राक्षस पिशाच और देवताओं के शस्त्र लेचलनेवाले भी वर्त्तमान थे वहां अपने तेज से प्रकाशित भगवान् नन्दीश्वर देदीप्यमान त्रिशूल को लेकर देवताओं की आज्ञामें नियत थे और सब नदियों और तीर्थों में श्रेष्ठ श्रीगंगाजी भी शिवजी की उपासना में वर्त्तमान थीं कुछ समय के पीछे दक्षप्रजापति पूर्व कही हुई बुद्धि से यज्ञ करने के लिये दीक्षायुक्त हुए तदनन्तर इन्द्रादिक देवता इकट्ठे होकर उसके यज्ञ में जाने के निमित्त एकमत होके सुनते हैं कि हरिद्वार को चलगये उनको आकाशमार्गी विमानों में स्त्रियों समेत जाता देखकर महापतिव्रता श्रीसतीरूप पार्वतीजी ने अपने स्वामी पशुपतिनाथजी से कहा कि हे महाराज ! यह इन्द्रादिक सब देवता कहांजाते हैं हे तत्त्वज्ञ ! इसको आप वर्णन कीजिये, महादेवजी बोले कि हे महाभागे ! दक्षनाम प्रजापति अश्वमेधयज्ञको करता है वहांहीं यह सब देवता भी जाते हैं उमा बोली कि हे महाराज, महादेवजी ! आप इस यज्ञ में क्यों नहीं जाते हो अथवा किसी कारण से आपको जाना नहीं है, महादेवजीबोले कि हे पार्वति ! पूर्वसमय में देवताओं कानियत कियाहुआ हमारा यज्ञभाग इसने नहीं दिया था और उसी पूर्वविचार से देवता मुझ को यज्ञभाग नहीं देते हैं भगवती उमा बोलीं कि हे महाराज ! आप तेज, प्रताप, ऐश्वर्य्य, लक्ष्मी, बल, पराक्रम में सबसे उत्तम हो आप को यज्ञभाग न मिलने से मुझ को महाखेद है और मेरे रोम २ कँपते हैं यह कहकर महाक्रोधित होकर शिवजी के सन्मुख मौन होकर बैठी तदनन्तर शिवजी ने

पार्वती के चित्त की बात को जानकर नन्दीश्वर से कहा कि तुम ठहरो यह क-
हकर थोड़े ही समय पीछे योगेश्वर शिवजी ने अपने भयानकरूप अनुचगं के
साथ योगबल के द्वारा अकस्मात् उस यज्ञ को विध्वंसन किया बहुत से गणों में
से कितनो ही ने शब्दकिया कितनो ने हास्य कितनो ही ने मूत्रपुरीष और
कितनो ही ने यज्ञ की अग्नि में रुधिर छिड़का कितनो ने रूपान्तर और कितनेही
यज्ञस्तम्भ उखाड़ उखाड़ नाचनेलगे कितनो ने अपने नखों से यज्ञ के नौकरों को
निकाला जब चारोंओर से घायल यज्ञ मृग का रूप धारण करके आकाश की ओर
चला तब शिवजी उसरूप से जानेवाले यज्ञ को जानकर बाणयुक्त धनुष लेकर
उसके सन्मुख उपस्थितहुए और क्रोध से वेगयुक्त शिवजी के ललाट से महाभय-
कारीप्रस्वेदकण टपका उसके पृथ्वीपर गिरतेही कालाग्नि के समान एक महाभ-
यानक अग्नि उत्पन्न होगई उस अग्नि में एकपुरुष उत्पन्नहुआ जिसका छोटा
शरीर अत्यन्त रक्तनेत्र पिंगलवर्ण डाढ़ीमूंछ समेत महाभयकारी बिखरेबाल शरीर
में बहुत से रोम बड़ीभुजा लालवस्त्र पहिरे इस महाबली ने उस यज्ञ को ऐसे
मारडाला जैसे सूखेवन को अग्नि भस्म करडालता है, वह चारों ओर घूमता
देवता और ऋषियों की ओर भी भागा तब सब देवता भयभीत होकर दशों दि-
शाओं में भागे हे युधिष्ठिर ! उसके यज्ञभूमि में घूमने से पृथ्वीभर कंपायमान
हुई और संसार में हाहाकार मचगया यह दशादेखकर प्रभुब्रह्मा जी ने प्रत्यक्ष
होकर शिवजी से कहा कि हे प्रभो, शिवजी ! सब देवता आप को भी यज्ञ-
भाग देंगे हे देवेश्वर ! आप अपने इसतेज को लौटाओ, हे महादेव ! यह सब
देवता ऋषि आप के इसउग्रतेज से महाव्याकुल होरहे हैं हे देव ! यह जो पुरुष
आपके पसीने से उत्पन्नहुआ है वह ज्वरनाम होकर सबलोकों में घूमेगा, यह स-
म्पूर्ण पृथ्वी इस इकट्ठेतेज के धारणकरने को समर्थ नहीं है इसके बहुत से भाग
करदीजिये, यज्ञ में भाग विचार होनेपर शिवजी ने उन महातेजस्वी ब्रह्माजी से
कहा कि ऐसाही होगा और फिर पिनाक धनुषधारी शिवजी ने अपनी मन्द
मुसक्यान से बड़े आनन्द सहित यज्ञभाग को पाया, तब धर्म्मज्ञ शिवजी ने
जीवों की शान्ति के लिये उसज्वर के बहुत से भागकिये हे पुत्र, युधिष्ठिर ! उन
को भी सुनो कि हाथियों के शिरकादर्द, पहाड़ों का शिलाजीत, जलों की
काई, सर्पों में कांचली इन सब को ज्वर के भागजानो, खूराकनाम बैलों के
पैरों का रोग, पृथ्वीपर ऊषर, पशुओं का अन्धाहोना, घोड़ों के गले के छिद्र में
वर्त्तमान जो बारहमास है उसको और मोरों की शिखाओं के पृथक्होने को सब
पक्षियों के नेत्ररोग इत्यादि को महात्मालोग ज्वर बोलते हैं, भेड़बकरियों के
पित्तभेद को और सबप्रकार के तोतों का हिक्किकानाम रोग भी ज्वरकहाजाता
है हे धर्म्मज्ञ ! सिंहशार्दूलों में जो रोग है उसे भी ज्वर कहते हैं और मनुष्यों में

यह ज्वर ही नाम से प्रसिद्ध है यह ज्वर जन्म और मृत्यु और इनदोनों के मध्यवर्ती समय में भी मनुष्य के भीतर प्रवेश करता है यह महेश्वरजी का तेजरूप ज्वर बड़ाभयानक है और सबजीवों से नमस्कार और प्रतिष्ठा करने के योग्य है इसी ज्वर से पूर्ण होकर जब धर्मधारियों में श्रेष्ठ वृत्रासुर ने जम्भाई ली थी तब इन्द्र ने उसपर वज्रमारा उस वज्र ने वृत्रासुर में प्रवेश करके उसकी दो फांक करदीं वज्र से फाड़ाहुआ वह महायोगी महाअसुर विष्णुजी के सर्वोत्तम लोक में गया, उससमय उसी की विष्णुभक्ति से यह सब जगत् व्याप्त था इसी कारण उसने युद्ध में मरकर विष्णुलोक पाया हे पुत्र ! यह मैंने वृत्रासुरकी कथा के उपदेश से ज्वर का मूल वर्णनकिया अब क्या सुनना चाहता है, जो बड़े चित्तवाला अच्छा सावधान मनुष्य इसज्वरकी उत्पत्ति को प्रतिदिन सुनेगा वह रोगों से रहित और सुखीहोकर आनन्दयुक्त वांछित फलों को पावेगा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्धेनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

एकसौदश का अध्याय ॥

पूर्व में भगवान् श्रीकृष्णजी का रूप सिद्ध करने में पूर्णब्रह्म की प्राप्ति का द्वार वर्णनकिया अब इस अध्याय में इसबात को सिद्धकरते हैं कि दयावान् मूर्त्तिमान् परमेश्वर अपने शत्रुओं को दण्ड देकर फिर उसपर भी कृपाकरता है और भक्ति से परमेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त एकहजार आठनाम को कहते हैं मोक्षधर्म में इस के लिखने का यह प्रयोजन है कि वह एकहजार आठनाम भी शम दम आदि गुणों के समान मोक्ष के हेतुरूप हैं—राजा जनमेजय वैशम्पायनजी से पूछते हैं कि हे ब्रह्मन् ! वैवस्वत मन्वन्तर में प्रचेता के पुत्र दक्षप्रजापति के यज्ञका विध्वंस कैसे और किसकारण से हुआ, वह सर्वात्मा प्रभु शिवजी पार्वती के शोक के फल को मानकर कैसे क्रोधितहुए फिर कैसे उनकी कृपा से दक्ष ने यज्ञ को पूर्णकिया मैं इसका ठीक २ वृत्तान्त जानना चाहता हूं आप कृपा करके ब्योरेसमेत वर्णनकीजिये, वैशम्पायनबोले कि पूर्व्व काल में हिमाचल के पीछे सिद्ध, ऋषि, गन्धर्व और अप्सराओं से सेवित नाना प्रकार के वृक्षवल्ली आदि से संकुलित गंगाद्वारनाम शुभदेश में दक्षप्रजापति ने यज्ञ को रचाथा और पृथ्वी के सब मनुष्य पृथ्वीपर और स्वर्गवासी अन्तरिक्ष में गन्धर्वऋषि आदि सब बड़ी नम्रता से हाथजोड़ेहुए धर्म्मध्वजों में श्रेष्ठ दक्षप्रजापति के संमुख वर्त्तमानहुए, देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस, हाहा, हूहू और तुम्बुरु गन्धर्व और नारदऋषि, विश्वावसु, विश्वसेन और अनेक अप्सरा, बारहसूर्य्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, साध्य और मरुद्गण इत्यादिक यज्ञभागी इन्द्रसमेत सब आये और ऊष्मपा, सोमपा, धूमपा, आज्यपा,

ऋषि, पितर, ब्राह्मण आदि अन्यबहुत से चारों प्रकार की सृष्टि के लोग ब्रह्माजी के साथ आये इनके विशेष अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज यह चारों प्रकार के भी जीवआये और निमन्त्रणपूर्वक बुलायेहुए सब देवता अपनी २ स्त्रियों समेत देदीप्यमान विमानों में बैठेहुए विराजमानहुए उन सबको देखकर दधीचि ऋषि ने क्रोधयुक्त होकर यह वचन कहा, कि वह यज्ञ नहीं है और धर्म्म नहीं है जहांपर कि रुद्र भगवान् पूजेनहींजाते हैं इससे तुम निश्चय बांधेजाओ और मारेजाओ क्या समय की विपरीतबुद्धि है कि सन्मुख वर्त्तमान नाश को अपनी अज्ञानता से नहीं देखते हैं और महायज्ञ में सन्मुख उपस्थित महाघोर उत्पात को नहीं जानते हैं यह कहकर उस महायोगी ने ज्ञानरूप नेत्रों से जब देखा तो महादेव और वरदाता श्रीउमादेवी कोही देखा और उसदेवी के सन्मुख महात्मा नारदजी को भी देखा यह देखकर उसयोगी ने बड़ासन्तोष पाया और निश्चय करके जाना कि इन सब का एक मत है इसकारण सर्वेश्वर शिवजी को निमन्त्रण नहींदिया इसीसे उसदेश से कुछ हटकर दधीचि ने कहा कि अपूज्यों के पूजन से और पूज्यों के न पूजनकरने से नृघात के समान पाप होता है इसको मैंने न पहिले मिथ्याकहा न अब कभी मिथ्याकहूंगा मैं देवता और ऋषियों में बैठकर सत्य २ कहता हूं कि सब जगत् के स्वामी यज्ञ में प्रथम भागलेनेवाले सबके प्रभु शिवजी को तुम यज्ञ में आयाहुआ देखो, दक्ष ने कहा हमारे यज्ञ में ग्यारह स्थानों में वर्त्तमान बहुत से रुद्र हाथों में शूल धारण किये वर्त्तमान हैं यह सब गंगाजी से पूर्ण जटाधारी हैं मैं इन के सिवाय महेश्वरजी को नहीं जानता हूं, दधीचिऋषि बोले कि मैं जानता हूं कि यहीसबकी राय है इसी से शिवजी नहीं नौतेगये हैं, मैं शिवजी से बढ़कर जैसे किसीदेवता को उत्तम नहीं देखता हूं वैसेही यह भी देखता हूं कि यह दक्ष का बड़ायज्ञ भी नहीं होगा, दक्ष ने कहा कि सुवर्ण के पात्र में मन्त्र की विधि से पवित्र यह सम्पूर्णहव्य यज्ञेश्वर के निमित्त है इसभाग को अनुपम विष्णुदेवता के अर्पणकरूंगा यह विष्णुदेवता सबका आत्मारूप और आहवनीय है, देवीपार्वतीजी ने अपनेचित्त में विचार किया कि अब मैं किस दान नियम तपव्रतादि को करूं जिससे कि हमारे षड़ैश्वर्यस्वामी शिवजी आधे वा तीसरेभाग को पावें, तब तो अत्यन्त प्रसन्नचित्त शिवजी महाराज ने ऐसे विचारकरनेवाली अपनी प्राणप्यारी को व्याकुलता में व्यग्रचित्त देखकर कहा कि हे सूक्ष्मोदरि, सुन्दररूप, और विशाल नेत्रवाली! तू मुझ को नहीं जानती है कि यज्ञेश्वर में कौन सा वचन योग्य है, हे सुन्दरि! मैं अच्छे प्रकार से जानता हूं कि ध्यानरहित असन्तलोग मुझ को नहीं जानते हैं अब तेरे मोह से इन्द्रसमेत सब देवता और तीनोंलोक भी अज्ञानी हैं, यज्ञ में स्तुति करनेवाले ब्राह्मण मेरी स्तुति करते हैं और सामवेदी भी मुझी को गाते हैं

और ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण भी मुझी को पूजनकरते हैं और मेराभाग यज्ञ में कल्पना करते हैं—देवी बोली कि साधारण मनुष्य स्त्रियों में अपनी प्रशंसा और अहंकार को करता है, भगवान् बोले हे देवेश्वरि ! मैं अपनी प्रशंसा नहीं क-रता हूं हे कृशांगि ! अब तुम मेरी उस सृष्टि को देखो जिसको कि मैं यज्ञविध्वंस के निमित्त उत्पन्न करता हूं यह कहकर मुख से घोर प्रसन्नतावाले पुरुष को उत्पन्न किया और उससेकहा कि तुम दक्ष के यज्ञ का विध्वंसन करो यह सुनतेही उसने एकलीलाही मात्र से देवी के क्रोध के निवृत्तकरने को उन देवताओं के यज्ञ का विध्वंस किया और देवी के क्रोध से महाभयानकरूप महेश्वरी काली उत्पन्नहुई और अपना चरित्र दिखलाने को उस वीर के साथही चलीगई तिस पीछे शूरता में आत्मा के समान पराक्रम और रूपसंयुक्त रुद्र तेज सहित क्रोध-रूप अमितबल महा उग्रतेज रखनेवाली देवी का क्रोध दूर करनेवाले भगवान् वीरभद्रनाम ने शिवजी की आज्ञा को अंगीकार और दण्डवत् करके अपने अंग के रोम कम्पायके रोमीनाम गणों के स्वामियों को उत्पन्न किया वह सब गण रुद्रजी के समान भयानक और बलपराक्रम रखनेवाले थे तदनन्तर वह हज़ारों लाखों भयानकरूप और देहधारी गण दक्ष के यज्ञ के विनाशकरने को बड़ी शीघ्रता से दौड़े और महाकलकला शब्दों से आकाश को व्याप्तकरदिया उस शब्द के सुनतेही सब यज्ञ के देवता महाभयभीत और व्याकुलहुए पहाड़ फटे पृथ्वी कम्पायमान होकर वायु में घूमनेलगी और समुद्र उथल फुतल होने लगा उससमय अग्नि प्रकाशरहित हुई सूर्य्य प्रकाशमान नहीं हुए और चन्द्रमा समेत ग्रह नक्षत्रादि मन्दप्रभ होगये ऋषि देवता मनुष्य प्रकाश से रहित अन्धे से होगये ऐसे अन्धकार में उन अपमान पानेवाले गणों ने यज्ञ का नाशकिया और बहुत से दूसरेगण घोरघात करते थे और यज्ञस्तम्भों को उ-खाड़ २ फेंकते थे एक २ को पकड़कर मर्दन करतेहुए मारडालते थे, महावेग-वान् वायु के समान दौड़ २ घूमते थे यज्ञ के सब पात्र और आभूषणों को तोड़ २ चूर्णकरते थे, वह टुकड़े २ होने से ऐसे मालूम होते थे मानो आकाश में तारागण उत्पन्नहुए और दिव्य भोजन और पीने की वस्तुआदि पर्व्वत से पड़ेहुए दृष्टआते थे दूध की नदियों में घृत और खीर कीचड़ सी विदित होती थीं दही के समुद्रों में खांड़ बालूसी दिखाई देती थी और एकओर इक्षुरस की नदियां अत्यन्तही शोभित मालूमहोती थीं यह तो छओंरसों की दशा थी और नाना प्रकार के मांस और भोजन की वस्तु और चाटने चूसने की वस्तु इत्यादि सब पदार्थों को वह अनेकरूप के गण अपने नानाप्रकार के मुखों से खाते थे और फेंकते थे और अत्यन्त कुत्सित वचनों को कहते थे और वह कालरूपगण शिवजी के कोप से देवताओं की सेनाओं को चारोंओर से डराते मारते व्याकुल

करते थे और नानारूपों को धारणकिये क्रीड़ा करते थे और देवांगनाओं को पकड़ २ फेंकते थे ऐसे रुद्रकर्म करनेवाले वीरभद्र ने शिवजी के कोप से उस यज्ञ को जो कि देवताओं से अच्छेप्रकार रक्षित था इन उपायों से बहुत शीघ्र सब ओर से विध्वंस किया और सब जीवों का भयकारी महाघोर शब्दकरके यज्ञ के शिर को काट अत्यन्त प्रसन्नहुआ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता और दक्ष प्रजापति आदि सब प्रजापति हाथ जोड़कर बोले कि आप कौन हैं अपना वर्णनकीजिये, वीरभद्र बोले कि मैं रुद्र नहीं हूं और भोगने को भी यहां नहीं आया हूं सब जीवों के आत्मा प्रभु सदाशिवजी देवी के क्रोधकर्म को अंगीकार करके कोपयुक्त हुए हैं न मैं ब्राह्मणों के दर्शनों को आया न खेलक्रीड़ा को आया केवल तेरे यज्ञ विध्वंस करने को आया हूं मैं रुद्रजी के कोप से उत्पन्न हुआ वीरभद्र नाम से प्रसिद्ध हूं और देवीजी के कोप से उत्पन्नहुई यह भद्रकाली प्रसिद्ध है उस देवेश्वर के भेजेहुए हम यज्ञ के समीप आये हैं हे विप्रेन्द्र, दक्ष ! तुम उसी देवेश्वर शिवका आश्रयलो उसीकी शरण में तुम्हारा बचना है दूसरा कोई उपाय नहीं है क्रोध में भी देवताओं का वरदान उत्तम है और किसी का आनन्द में भी उत्तम नहीं है यह वीरभद्र के वचन सुनकर दक्ष ने महेश्वरजी को प्रणामकर इस स्तोत्र से प्रसन्नकिया—स्तोत्रं—प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् । महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् १ दक्षप्रजापतिर्यज्ञैर्द्रव्यैस्तैः सुसमाहितैः । आहूता देवतास्सर्वा ऋषयश्च तपोधनाः २ देवो नाहूयते तत्र विश्वकर्मा महेश्वरः । तत्र क्रुद्धा महादेवी गणांस्तत्र व्यसर्जयत् ३ प्रदीप्तयज्ञवाटे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु । तारागणमनुप्राप्ते रौद्रे दीप्ते महात्मनि ४ शूलनिर्भिन्नहृदयैः कूजद्भिः परिचारकैः । निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैरितस्ततः ५ उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः । पक्षवातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ६ यक्षगन्धर्वसंघैश्च पिशाचोरगराक्षसैः । प्राणापानौसंनिरुध्य वक्त्रस्थानेन यत्नतः ७ विचार्य्य सर्व्वतोदृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् । सहसा देवदेवेशो ह्यग्निकुण्डात्समुत्थितः ८ बिभ्रत्सूर्य्यसहस्रस्य तेजःसंवर्त्तकोपमः । स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ९ श्राविते च मखाध्याये देवानां गुरुणा ततः । तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः १० भीतशङ्कितवित्रस्तः सबाष्पवदनेक्षणः । यदि प्रसन्नो भगवान्यदि चाहं भवत्प्रियः ११ यदि वाहमनुग्राह्यो यदि वा वरदो मम । यद्दग्धं भक्षितं पीतमशितं यच्च नाशितम् १२ चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसम्भारमीदृशम् । दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन सुसंचितम् १३ तन्न मिथ्याभवेन्मह्यं वरमेतदहं वृणे १४ तथास्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः । धर्म्माध्यक्षो विरूपाक्षः त्र्यक्षो देवः प्रजापतिः १५ जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम् । नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषध्वजम् १६–७२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्धेदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

एकसौग्यारह का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे निष्पाप, पितामह ! दक्षप्रजापति ने जिन नामों से शिवजी की स्तुति की उनको मैं श्रद्धापूर्व्वक सुननाचाहता हूं भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! उन अपूर्व्वकर्म्मकर्त्ता और गुप्तव्रतधारी शिवजी के उननामों को सुनो जो कि प्रकट हैं और श्रद्धाविहीन पुरुषों से गुप्त हैं॥

स्तोत्र॥

युधिष्ठिर उवाच—यैर्नामधेयैः स्तुतवान्दक्षो देवं प्रजापतिः। वक्तुमर्हसि मे तात श्रोतुं श्रद्धा ममानघ १ भीष्म उवाच—श्रूयतां देवदेवस्य नामान्यद्भुतकर्म्मणः। गूढव्रतस्य गुह्यानि प्रकाशानि च भारत २ नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन। देवेन्द्रबलविष्टम्भ देवदानवपूजित ३ सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्व्वतः पाणिपादान्त सर्व्वतोक्षिशिरोमुख ४ सर्व्वतः श्रुतिमल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ५ गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोस्तु ते। शतोदरशतावर्त्त शतजिह्व नमोस्तु ते ६ गायन्ति त्वां गायत्रिणस्त्वामर्चन्त्यर्क्कमर्क्किणः। ब्रह्माणं त्वां शतक्रतुमूर्ध्वं खमिव मेनिरे ७ मूर्त्तौ हि ते महामूर्त्ते समुद्राम्बरसन्निभ। सर्व्वा वै देवता ह्यस्मिन् गावो गोष्ठइवासते ८ भवच्छरीरे पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्। आदित्यमथ वै विष्णुं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् ९ भगवन् कारणं कार्य्यं क्रियाकारणमेव च। असतश्च सतश्चैव तथैव प्रभवाप्ययौ १० नमो भवाय सर्व्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये नित्यं नमोस्त्वन्धकघातिने ११ त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरपाणिने। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः १२ नमश्चण्डाय कुण्डाय अण्डायाण्डधराय च। दण्डिने समकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः १३ नमोर्ध्वदंष्ट्रकेशाय शुक्लायावतताय च। विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः १४ नमोस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्य्याय सूर्य्यमालाय सूर्य्यध्वजपताकिने १५ नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने। शत्रुन्दमाय दण्डाय पर्णचीरपटाय च १६ नमोहिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च। हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः १७ नमोस्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः। सर्व्वायसर्व्वभक्षाय सर्व्वभूतान्तरात्मने १८ नमो होत्रेऽथ मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमो नाभाय नाभ्याय नमः कटकटाय च १९ नमोस्तु कृशनासाय कृशाङ्गाय कृशायच। संहृष्टाय नमस्तुभ्यं नमः किलकिलाय च २० नमोस्तु शय्यमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय मुण्डाय जटिलाय च २१ नमो नर्त्तनशीलाय मुखवादित्रवादिने। नाद्योपहारलुब्धाय गीतवादितशालिने २२ नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। कालनाथाय कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च २३ भीमदुन्दुभिहासाय भीमव्रतधराय च। उग्राय च नमो नित्यं नमोस्तु दशबाहवे २४ नमः

कपालहस्ताय चितिभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराय च २५ नमो विक्षतवक्राय खड्गजिह्वाय दंष्ट्रिणे। पक्काममांसलुब्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च २६ नमो वृषाय वृष्याय गोवृषाय वृषाय च। कटङ्कटाय दण्डाय नमः पचपचाय च २७ नमः सर्व्ववरिष्ठाय वराय वरदाय च। वरमाल्यगन्धवस्त्राय वरातिवरदे नमः २८ नमो रक्तविरक्ताय भावनायाक्षमालिने। सम्भिन्नाय विभिन्नाय छायायातपनाय च २९ अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ३० एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्ष्णे नमोस्तु ते। रुद्राय क्षुद्रलुब्धाय संविभागप्रियाय च ३१ पञ्चालाय सिताङ्गाय नमः शमशमाय च। नमश्चण्डिकघण्टाय घण्टायावघण्टघण्टिने ३२ सहस्राध्मातघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च। प्राणघण्टाय गन्धाय नमः कलकलायच ३३ हूंहूंहूंकारपाराय हूंहूंकारप्रियाय च॥ नमः शमशमे नित्यं गिरिवृक्षालयाय च ३४ गर्भमांसशृगालाय तारकायतराय च। नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च ३५ यज्ञवाहाय दान्ताय तप्यायातपनाय च। नमस्तटाय नद्याय तटानां पतये नमः ३६ अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजे तथा। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ३७ सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ३८ बालानुचरगोप्त्राय बालक्रीडनकाय च। नमोवृद्धाय लुब्धाय क्षुब्धाय क्षोभणाय च ३९ तरङ्गाङ्कितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च ४० वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथक्कर्मनिवर्त्तिने। नमोघुष्याय घोषाय नमः कलकलाय च ४१ श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। प्राणभग्नाय दण्डाय स्फोटनाय कृशाय च ४२ धर्मकामार्थमोक्षाणां कथनीयकथाय च॥ सांख्याय सांख्यमुख्याय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने ४३ नमो रथ्याविरथ्याय चतुष्पथरथाय च। कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ४४ ईशान वज्रसंघात हरिकेश नमोस्तु ते॥ त्र्यम्बकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोस्तु ते ४५ काम कामद कामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे। सर्व सर्वद सर्वघ्न सन्ध्याराग नमोस्तु ते ४६ महामेघचयप्रख्य महाकाल नमोस्तु ते। स्थूलजीर्णाङ्गजटिले वल्कलाजिनधारिणे ४७ दीप्तसूर्य्याग्निजटिले वल्कलाजिनवाससे। सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्य नमोस्तु ते ४८ उन्मादनशतावर्त्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज। चन्द्रावर्त्त युगावर्त्त मेघावर्त्त नमोस्तु ते ४९ त्वमन्नमन्नभोक्ता च अन्नदोन्नभुगेव च। अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक् पवनोऽनलः ५० जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्च तथोद्भिजाः। त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामचतुर्विधः ५१ चराचरस्य स्रष्टा त्वम्प्रतिहर्त्ता तथैव च। त्वमाहुर्ब्रह्मविदुषो ब्रह्म ब्रह्मविदां वर ५२ मनसः परमा योनिः खं वायुर्ज्योतिषां निधिः। ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ५३ हायिहायिहुवाहोइ हुवाहोइ तथा सकृत्। गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा ब्रह्मवादिनः ५४ यजुर्मयो ऋङ्मयश्च त्वमाहुतिमयस्तथा। पठ्यसे स्तुतिभिश्चैव वेदोप

निषदां गणैः ५५ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये । त्वमेव मेघसंघाश्च विद्युत्स्तनितगर्जितः ५६ संवत्सरस्त्वमृतवो मासोमासार्द्धमेव च । युगं निमेषाः काष्ठास्त्वं नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः ५७ वृक्षाणां ककुदोसि त्वं गिरीणां शिखराणि च । व्याघ्रो मृगाणां पततां तार्क्ष्योनन्तश्च भोगिनाम् ५८ क्षीरोदोह्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च । वज्रः प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ५९ त्वमेवद्वेष इच्छा च रागो मोहः क्षमाक्षमे । व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ६० त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी झर्झरी तथा । छेत्ता भेत्ता प्रहर्त्ता त्वं नेता मन्ता पिता मतः ६१ दशलक्षणसंयुक्तो धर्मार्थः काम एव च । गङ्गा समुद्राः सरितः पल्वलानि सरांसि च ६२ लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः । द्रव्यकर्मसमारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ६३ आदिश्चान्तश्च देवानां गायत्र्योंकारएव च ६४ हरितोरोहितो नीलः कृष्णो रक्तस्तथारुणः । कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ६५ अवर्णश्च सुवर्णश्च वर्णकारो ह्यनोपमः । सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च ६६ त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः । उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुर्भानुरेव च ६७ होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुम् । त्रिसौपर्णं तथा ब्रह्मयजुषां शतरुद्रियम् ६८ पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् । गिरिको हिण्डिको वृक्षो जीवो मुद्गल एव च ६९ प्राणः सत्त्वं रजश्चैव तमश्चाप्रमदस्तथा । प्राणोपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ७० उन्मेषश्चनिमेषश्चक्षुतं जृम्भितमेव च । लोहितान्तर्गता दृष्टिर्महावक्त्रो महोदरः ७१ शुचिरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः । गीतवादित्रतत्त्वज्ञो गीतवादनकप्रियः ७२ मत्स्यो जलचरो जाल्यो कलः केलिकलः कलिः । अकालश्चातिकालश्च दुष्कालः काल एव च ७३ मृत्युक्षुरश्च कृत्यश्च पक्षोपक्षक्षयं करः । मेघकालो महादंष्ट्रः संवर्त्तकवलाहकः ७४ घण्टोघण्टोघटीघण्टी चरुचेलीमिलीमिली । ब्रह्मकायिकमग्नीनां दण्डीमुण्डस्त्रिदण्डधृक् ७५ चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः । चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च यः ७६ सदा चाक्षप्रियो धूर्त्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः । रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिशो गिरिकप्रियः ७७ शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः । भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ७८ स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कारो नमो नमः । गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकस्तारकामयः ७९ धाता विधाता सन्धाता विधाता धारणो धरः । ब्रह्मातपश्च सत्यञ्च ब्रह्मचर्य्यमथार्ज्जवम् ८० भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः । भूर्भुवःस्वरितश्चैव ध्रुवोदान्तो महेश्वरः ८१ दीक्षितो दीक्षितःक्षान्तो दुर्दान्तो दान्तनाशनः । चन्द्रावर्त्तो युगावर्त्तः संवर्त्तः संप्रवर्त्तकः ८२ कामोविन्दुरणुस्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः । नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखोमुखः ८३ चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वग्निमुखस्तथा । हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् ८४ अधर्महा महापार्श्वश्चण्डधारो

गणाधिपः। गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृपेश्वरवाहनः ८५ त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोमार्गो मार्ग एव च। श्रेष्ठस्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पः कम्प एव च ८६ दुर्वारणो दुर्विपहो दुःसहो दुरतिक्रमः। दुर्धर्षो दुष्प्रकम्पश्च दर्विषो दुर्जयो जयः ८७ शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णक्षुज्जराधिधृक्। आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिरेव च ८८ मम यज्ञमृगव्याधो व्याधीनामागमोगमः। शिखण्डीपुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः ८९ दण्डधारस्त्र्यम्बकश्च उग्रदण्डोण्डनाशनः। विपाग्निपाः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पतिः ९० अमृतपास्त्वं जगन्नाथ देवदेवगणेश्वरः। विपाग्निपा मृत्युपाश्च क्षीरपाः सोमपास्तथा। मधुश्च्युतानामग्रपास्त्वं त्वमेव तुपिताद्यपाः ९१ हिरण्यरेताः पुरुपस्त्वमेव त्वंस्त्री पुमांस्त्वं च नपुंसकं च। बालो युवा स्थाविरो जीर्णदंष्ट्रस्त्वं विश्वकृद्विश्वकृतां वरेण्यः ९२ नागेन्द्रः शक्र एव त्वं विश्वकर्ता च विश्वकृत्। विश्ववाहो विश्वरूपस्तेजस्वी विश्वतोमुखः॥ चन्द्रादित्यौ चक्षुपी ते हृदयं च पितामहः ९३ महोदधिः सरस्वती वाग्बलमनलोनिलः। निमेपोन्मेपकर्मावैह्यहोरात्रप्रकाशकः ९४ न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते। माहात्म्यंवेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव ९५ या मूर्त्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्ति दर्शनम्। त्राहि मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ९६ रक्ष मां रक्षणीयोहं तवानघ नमोस्तु ते। भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा त्वयि ९७ यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशः। तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु नित्यशः ९८ यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाःसंयतेन्द्रियाः। ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ९९ जटिले दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे। कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः १०० यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु। कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः १०१ सम्भक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते पर्युपस्थिते। यः शेते जलमध्यस्थस्तम्प्रपद्येम्बुशायिनम् १०२ प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि। ग्रसत्यर्कञ्च स्वर्भानुर्भूत्वा मांसोभिरक्षतु १०३ येचानुपतिता गर्भा यथाभागानुपासते। नमस्तेभ्यः स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्तु मुदन्तु ते १०४ येङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्। रक्षन्तु ते हि मां नित्यं नित्यञ्चाप्याययन्तु माम् १०५ ये न रोदन्ति देहस्थाः देहिनो रोदयन्ति च। हर्षयन्ति न हृष्यन्ति नमस्तेभ्योस्तु नित्यशः १०६ ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च १०७ चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु तटेषु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च १०८ येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु १०९ रसातलगता ये च ये च तस्मै परं गताः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योस्तु नित्यशः ११० येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च। असंख्येयगुणा रुद्रा नमस्तेभ्योस्तु नित्यशः १११ सर्वभूतकरो यस्मात्सर्वभूतपतिर्हरः। सर्वभूतान्तरात्मा च तेनत्वन्न नि

मन्त्रितः ११२ त्वमेव हीज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः । त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ११३ अथवा मायया देव सूक्ष्मया तव मोहितः । एतस्मात्कारणाद्वापि तेन त्वं न निमन्त्रितः ११४ प्रसीद मम भद्रन्ते भवभावगतस्य मे । त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्म्मनस्त्वयि ११५ स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः । भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ११६ परितुष्टोस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत । बहुनात्र किमुक्तेन मत्समीपे भविष्यसि ११७ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ११८ अथैनमब्रवीद्वाक्यं लोकस्याधिपतिर्भवः । आश्वासनकरं वाक्यं वाक्यविद्वाक्यसंमितम् ११९ दक्ष दक्ष न कर्त्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति । अयं यज्ञहरस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुरातनम् १२० भूयश्च ते वरं दद्यां तं त्वं गृह्णीष्व सुव्रत । प्रसन्नवदनो भूत्वा तदिहैकमनाःशृणु १२१ वेदात्षडङ्गादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च युक्तितः । तपः सुतप्तं विपुलं दुश्चरं देवदानवैः १२२ अपूर्वं सर्वतोभद्रं विश्वतो मुखमव्ययम् । अब्दैर्दशाहसंयुक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितम् १२३ वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् । गतां तैरध्यवसितमत्याश्रममिदं व्रतम् १२४ मयापाशुपतंदक्ष शुभमुत्पादितं पुरा । तस्यचीर्णस्य तत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् १२५ तच्चास्तु ते महाभाग त्यज्यतां मानसो ज्वरः । एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः । अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः १२६ दक्षप्रोक्तं स्तवमिमं कीर्त्तयेद्यः शृणोति वा । नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् १२७ यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवाञ्छिवः । तथा स्तवो वरिष्ठोयं स्तवानां ब्रह्मसंमितः १२८ यशोराज्यसुखैश्वर्य्यकामार्थधनकाङ्क्षिभिः । श्रोतव्योभक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः १२९ व्याधितो दुःखितो दीनश्चोरग्रस्तो भयार्द्दितः । राजकार्य्याभियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् १३० अनेनैव तु देहेन गणानां समतां व्रजेत् । तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः १३१ न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः । विघ्नं कुर्युर्गृहे तस्य यत्रायं पठ्यते स्तवः १३२ शृणुयाच्चैव या नारी तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी । पितृपक्षे मातृपक्षे पूज्या भवति देववत् १३३ शृणुयाद्यः स्तवं कृत्स्नं कीर्त्तयेद्वा समाहितः । तस्य सर्वाणि कर्म्माणि सिद्धिं गच्छन्त्यभीक्ष्णशः १३४ मनसा वर्जितं यच्च यच्च वाचानुकीर्त्तितम् । सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्त्तनात् १३५ देवस्य च गुहस्यापि देव्या नन्दीश्वरस्य च । बलिं सुविहितं कृत्वा दमेन नियमेन च १३६ ततस्तु युक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् । ईप्सितांल्लभते सोर्थान्भोगान्कामांश्च मानवः १३७ मृतश्च स्वर्गमाप्नोति तिर्यक्षु च न जायते । इत्याह भगवान् व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ॥ १३८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एकसौबारह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह ! स्तोत्रपाठ आदि के द्वारा चित्तशुद्धि होने से ब्रह्मज्ञान प्राप्तकरना योग्य है यह आपने कहा परन्तु इससंसार में जिस पुरुष को अध्यात्मविद्या का ज्ञान वर्त्तमान है वह कैसे और कहां से प्राप्तहोता है उस को कृपा करके मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि, तुम बुद्धि के द्वारा जो उस को पूछते हो तो सब का विदित करनेवाला सर्वोत्तम ज्ञान है उसको मैं तुझ से बड़ी स्पष्टता से कहूंगा तू उसको चित्त लगाकर यथार्थता से सुन, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि यह पञ्च महाभूत सबजीवों के उत्पत्तिस्थान और नाशस्थान हैं, हे भरतवंशिन् ! सबजीवों का देह सूक्ष्म स्थूल गुणों का समूह है वह बुद्धि आदि गुण परमकारणरूप आत्मा में सदैव लय होते हैं और प्रकट भी होते हैं, इसी आत्मा से वह सब जीव उत्पन्न हुए और लय भी होते हैं इसी प्रकार जैसे सागर से लहरें उत्पन्न होती हैं वैसेही जीवों से पञ्चमहाभूत भी प्रकट होते हैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगों को फैलाकर समेटलेता है इसीप्रकार यह पञ्चभूत भी उन वृद्धजीवों के छोटे अंग हैं अर्थात् देखतेही गुप्त और प्रकट होने को समर्थ हैं, यह तो शरीर को पञ्चमहाभूतों से भराहुआ कहा—अब उसमें उन भूतों के अंशों का विवेक करते हैं—शरीर में जो शब्द है वह निश्चय आकाश का अंश है और देह की कठोरता पृथ्वी का अंश है प्राण वायु का अंश है, रस जल का, रूप अग्नि का अंश है, यह सब जड़ चैतन्य ब्रह्मरूप हैं प्रलय में उसी ब्रह्म में लय होते हैं और उत्पत्तिकाल में उसीसे उत्पन्न होते हैं यह केवल कथन-मात्रही है वास्तव में रस्सी में सर्प के होने और लय होने के समान है यह वेदान्तपक्ष है, पञ्चमहाभूतों के उत्पन्न करनेवाले अहंकार ने सब देहों में आका-शादि तत्त्व और विषयों को कल्पना किया है और देह के भीतर उन आकाशादि तत्त्वों में जो कार्यरूप दृष्ट होता है उसको कहता हूं, शब्द श्रोत्रेन्द्रिय और देह के छिद्र यह तीनों आकाश से उत्पन्न हैं रस, आर्द्रता, जिह्वा यह जल के गुण हैं, रूप, चक्षुरिन्द्रिय, जठराग्नि यह अग्नि के तीनों गुण हैं, सूंघने के योग्य गन्ध घ्राणेन्द्रिय और सब शरीर यह पृथ्वी के गुण हैं, प्राण, स्पर्श चेष्टा यह वायु के गुण हैं हे राजन् ! पञ्चतत्त्वों से उत्पन्न होनेवाले यह सब गुण वर्णन किये, और इन शब्दादि पन्द्रह वस्तुओं में उस मायाधीश ईश्वर ने सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीन गुण और चारोंयुग का आत्मा चिदाभास, जीव अपने विषयस्वरूप का निश्चय और छठा चित्त और अच्छीतरह कल्पना किये जो कफ वायु से ऊपर और मस्तक से नीचे देखते हो उस सब और में बुद्धि ही वर्त्तमान है अर्थात् वह बुद्धि शब्द से लेकर चित्ततक इकीस तत्त्वों का रूप

है, अब बुद्धि के सात रूपों को कहते हैं—मनुष्य में पांच इन्द्रियां छठा चित्त सातवीं बुद्धि और आठवां क्षेत्रज्ञ को कहते हैं यह बुद्धि से विलक्षण हैं, इन्द्रिय और इन्द्रियों का कर्त्ता उनके कर्म के विभाग से जानने के योग्य हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और वह सात्त्विक आदि भाव भी उन इन्द्रियों के कर्त्ता में आश्रित हैं अर्थात् उससे उत्पन्न हुए हैं, चक्षुरिन्द्रिय देखने को, चित्त सुनने को, बुद्धि निश्चयकरने को, और क्षेत्रज्ञ उदासीन चिन्मात्र कहाजाता है तमोगुण, सतोगुण, रजोगुण चारों युगों का आत्मा जीव और कर्म इन पांचों गुणों से बुद्धि वारंवार विषयों में प्राप्त कीजाती है बुद्धि ही सब इन्द्रिय और मन इत्यादि का रूप है और तमोगुण आदि का भी रूप है, बुद्धि न होने से गुणों का भी अभाव है देखने के कारण से चक्षुरिन्द्रिय, सुनने से श्रोत्रइन्द्रिय, सूंघने से घ्राणेन्द्रिय, रसों के स्वादलेने से रसनेन्द्रिय, छूने से स्पर्शेन्द्रिय यह सब बुद्धिही सब रूपों को करती है अर्थात् जब कुछ इच्छा करती है तब वह चित्त होजाती है, यह बुद्धि के पांच प्रकार के अधिष्ठान हैं इन्हीं को चित्त समेत विषयवाली इन्द्रिय कहते हैं इन्हीं के दूषित होनेपर बुद्धि भी दोषयुक्त होती है, साक्षीपुरुषमें नियत बुद्धि सात्त्विकआदि दुःखसुख में वर्त्तमान होती है कभी हर्ष कभी शोक कभी सुख से तृप्त नहीं होती है न कभी दुःख से वैराग्य को पाती है यह सर्वात्मा बुद्धि सुख, दुःख, मोह, इन तीनों भावों को उनका आत्मारूप होनेपर भी ऐसे उल्लंघकर वर्त्तमान होती है जैसेकि तरङ्गयुक्त समुद्र अपनी महावेला को अर्थात् मर्य्यादा को उल्लंघनकर वर्त्तमान होता है सुखआदि भाव से पृथक् होनेवाली बुद्धि सत्तामात्र चित्त में वर्त्तमान होती है अर्थात् पूरे ज्ञान में सूक्ष्मरूप होती है, फिर उत्थानकाल में प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धिभाव से वर्त्तमान होता है वड़ाहर्ष, अनुराग, आनन्द, सुख, चित्त की शान्ति यह सातों के गुण बड़ेउपाय से वर्त्तमान होते हैं, ईर्षा, शोक, अंगों का जलना, चिन्ता, अधैर्य, यह रजोगुण के चिह्न कारण और अकारण दोनों प्रकार से दिखाईदेते हैं, अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, समय, चेष्टा, अचेष्टा, भय अपने तपआदि की वृद्धि न करना शोक, मोह, निद्रा, अर्धनिद्रा यह नानाप्रकार के तमोगुण के चिह्न महाप्रारब्धहीनता से उत्पन्न होते हैं, देह और मन में जब अनुराग उत्पन्न होता है तब सात्त्विक भाव होता है और उसको विना ध्यानकिये जो दुःखी होकर प्रीति नहीं करता है वहां रजोगुणी कर्म जानो और भय करके चिन्ता न करे अर्थात् दुःख को कुछ न गिने, और मोहयुक्त देह और मन होय इस तर्कणा से रहित जानने के अयोग्य को तमोगुण जाने, यहां बुद्धि की जितनी गति हैं वह वर्णन करीं इन सबको जानकर ज्ञानी होजाय, उस सूक्ष्मबुद्धि और क्षेत्रज्ञ के अन्तरको समझो कि बुद्धि तो गुणोंको उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ गुणों को नहीं उत्पन्न करता है, इसप्रकार

स्वभाव से पृथक् वह दोनों सदैव ऐसे संयुक्त भी रहते हैं जैसे मत्स्य जल से पृथक् और मिलाहुआ होता है गुणों ने आत्मा को नहीं जाना परन्तु वह आत्मा सब ओर से गुणों को जानता है, जैसे कि अज्ञानी गुण और गुणीरूप से आत्मा और गुणों का योग जानता है उसीप्रकार गुणों का देखनेवाला पुरुष गुणों को आत्मारूप देखता है, इसके अनन्तर गुण किस में आश्रित रहते हैं उसको भी कहते हैं—बुद्धि का आश्रय अर्थात् उपादान नहीं है क्योंकि उसका कर्ता अज्ञान नाशवान् है सतोगुण आदि के कार्य्य महत्तत्त्वादि से अन्य गुण भी उत्पन्न होते हैं परन्तु उनगुणों को कभी कोई भी नहीं जानता है जैसे कि रस्सी के सर्प का कारण अज्ञान उसके कार्य्य से जान लियाजाता है परन्तु वास्तव में नही है और गुणों के मिथ्या होने से उसका कार्य्य भी दृष्ट नहीं पड़ता इस शंका को कहते हैं इन संसार के बुद्धि आदि गुण का आधार बुद्धिही है बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है क्षेत्रज्ञ देखता है इन बुद्धि और क्षेत्रज्ञ का संयोग प्राचीन है, यह ऐसे स्वभाववाला है उसको बुद्धि से जानकर हर्ष शोक मित्रता से रहित होकर मनुष्य विहारकरै, जड़ अज्ञान इन्द्रियां जिनमें मध्यस्थ बुद्धि है उनसे वह आवरण भंग कियाजाता है अर्थात् परदा अलग कियाजाता है वह इन्द्रियां दीपक के समान हैं तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियां दीपक बुद्धि कर्त्ता और चिदात्मा साक्षी है, यह स्वाभावसिद्ध है जैसे कि मकड़ी तारों को पैदा करती है उसीप्रकार बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है, इस हेतु से जो गुण बुद्धि से उत्पन्न होते हैं वह मकड़ी के तार की समान जानने योग्य हैं अर्थात् उसी का रूप हैं, नाशरूप गुण निवृत्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रवृत्ति नहीं जाती है आशय यह है कि उक्तरस्सी के सर्प की समान नाश को पाते हैं कोई ऐसा निश्चय करते हैं कोई प्रतिकूल निश्चय करते हैं, इस हृदय की दृढ़ चिन्तारूपी बुद्धि गांठ को खोलकर निस्सन्देह शोकरहित सुख से वर्त्तमान होजाय, जैसे कि थाह के न जाननेवाले अज्ञानी मोह से युक्त होकर संसाररूपी घोर नदी में गिरकर दुःख को पाते हैं उसीप्रकार बुद्धियोगरूप नौका का न जाननेवाला जीव भी कष्ट को पाता है, संसारनदी से पारजानेवाले ब्रह्मविद्या में कुशल धैर्य्यवान् ज्ञानी पुरुष दुःख को नहीं पाते हैं, ज्ञानियों को वह संसारी बड़ाभय नहीं होता है जो अज्ञानियों को है किसी की गति अर्थात् मोक्ष अधिक नहीं है सबकी मोक्ष बराबर है ज्ञानियों में कुछ भी परस्पर अन्तर नहीं होता है, ऐसे ज्ञानी के फल कहते हैं—यह ज्ञानी जो बड़े दोपवाले कर्म को करता है और जो इसने ज्ञानदशा से पूर्वमें किया है वह सब केवल ज्ञान सेही नाश होजाता है यह ज्ञानी अज्ञानदशा में जो दूसरे के कर्म्म में दोप लगाता है और रागादि दोपों को आप करता है उन दोनों बातों को ज्ञानदशा में नहीं

करता है अर्थात् आप दोषरहित होकर दूसरे के दोष को नहीं देखता है॥ ४६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेद्वादशोपरिशततमोऽध्यायः॥ ११२॥

एकसौतेरह का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! मनुष्य सुख दुःख और मृत्यु मे भय करते हैं यह दोनों जैसे हम को बाधा न करें वह उपाय आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें नारदजी और समंग ऋषि का संवाद है नारदजी बोले कि हृदय से दण्डवत् करते हो अर्थात् अत्यन्त नम्र हो और भुजाओं से तरते हो और बड़े संकट में भी आनन्द में रहते हो सदैव प्रसन्नचित्त और शोच से रहित दृष्ट आते हो आप के अव्याकुल चित्त या प्रियवस्तु के वियोग से उत्पन्न दुःख और भय को भी नहीं देखता हूं बालक के समान रागद्वेषरहित चेष्टाकरते हो सदैव तृप्तरूप सुखपूर्वक नियत हो, समंगऋषि ने उत्तरदिया कि हे प्रशंसा करनेवाले! मैं भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालों के सिद्धान्त को जानता हूं इसकारण चित्त से व्याकुल नहीं होता हूं, और लोक में फल के देनेवाले कर्म्मों को और विचित्रफलों को भी जानता हूं इसीकारण से कर्म्म के प्रारम्भ को त्यागकर फिर मोहित नहीं होता हूं, हे नारदजी! जैसे कि धन स्त्री से रहित विद्यारूपी धन से पूर्ण अन्धे, सिड़ी, मूर्ख मनुष्य जीवते हैं उसीप्रकार मुझ को भी निर्वाह करनेवाला समझो, नीरोगदेह, स्वर्गवासी, पराक्रमी और निर्बल मनुष्य पूर्वकियेहुए कर्म्मों के द्वारा जीवते हैं उसीकारण से हम को भी पूजन करते हैं, हज़ारों मनुष्य निर्वाह करते हैं कोई सागही खाकर जीवते हैं उसीप्रकार हम भी अपना निर्वाह करते हैं, हे नारदजी! जब हम शोक के मूल अज्ञान के अभावरूप होने से शोच नहीं करते तब यज्ञादिक धर्म्म अथवा लौकिक कर्म्मों से हम को क्या प्रयोजन है क्योंकि जब सुख और दुःख दोनों नाशवान् वस्तु हैं तब हम को वह कैसे आधीन कर सक्के हैं, ज्ञानी मनुष्य जिस मनुष्य को ऐसा कहते हैं कि उसकी इन्द्रियों की शुद्धता अर्थात मोहादिक से रहित होना ज्ञान का मूल है इन्द्रियां ही मोह करती हैं इसप्रकार से जो शोचता है वही ज्ञानी है और जिसकी इन्द्रियां ज्ञानविहीन हैं उसको ज्ञान का लाभ नहीं है, जो अज्ञानी धन आदि का अहंकारी है वही मोह में प्रवृत्त होता है इसकारण अज्ञानी मनुष्य का न यह लोक है न परलोक है दुःख सुख सदैव नहीं रहते हैं तो दुःख में शोच और सुख में अहंकार भी न करना चाहिये, मुझ सा आत्मज्ञानी इस संसाररूप और चारोंओर घूमनेवाले दुःख को कभी न माने प्रिय भोगों को और सुख को कभी न चाहै और दैवयोग से होनेवाले दुःख में चिन्ता न करे, योग में नियत होकर सुखादि

की चाहना न करे और अप्राप्तवस्तु की इच्छा न करे बहुत से अर्थ लाभ में भी प्रसन्न न हो और अर्थों के नाश में भी कभी व्याकुल न हो बान्धव धन सब शास्त्र और मन्त्र पराक्रम यह सब दुःख से नहीं बचासक्के शम दमआदि गुणों से ही शान्ति अर्थात् निर्विकल्पता को पाते हैं, जो योगी नहीं है उसके बुद्धि भी नहीं है और जो योग के विना सुख की भी प्राप्ति नहीं होती हे राजन्! मन प्राण और इन्द्रियों के कर्म्मों के रोकने में सामर्थ्य और दुःखका त्याग यही दोनों सुख-रूप हैं, योग में प्रवृत्ति होने के लिये लौकिक प्रिय वस्तुओं की निन्दा करते हैं प्रिय वस्तु प्रसन्नता और सुख को उत्पन्न करती है परन्तु फिर वही हर्ष सुख अहं-कार को बढ़ाती है उससे नरक होता है इसी हेतु से मैं उनको अत्यन्त त्याग करता हूं और उस सुख दुःख में इन शोक और भय आदिको मैं साक्षी के समान मोह उत्पन्न करनेवाला देखता हूं, और शोक और तप से पृथक् अर्थ, काम, तृष्णा और मोह को अत्यन्त त्याग करके इसपृथ्वीपर विचरता हूं मुझ को इस लोक परलोक में मृत्यु अधर्म्म आदि किसी से भी ऐसे भय नहीं हैं जैसे कि बड़े अमृत पीनेवाले को भय नहीं होता हे ब्रह्मन्, नारदजी! मैं अविनाशी योगरूप तप को करके ब्रह्म को जानता हूं इसीकारण से प्राप्तहोनेवाला शोक मुझ को पीड़ा नहीं देता है॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेत्रयोदशोपरिशततमोध्यायः ॥ ११३ ॥

एकसौचौदह का अध्याय ॥

उस ब्रह्मविद्या को जिसमें उपदेश ही प्रधान है सुनकर उसीको युक्तिप्रधान जानने की इच्छा से युधिष्ठिर बोले—हे पितामह! जिसने सब शास्त्रों के सिद्धान्त को नहीं जाना और सदैव संशय मेंही पड़ा हुआ है और उस आत्मदर्शन के निश्चय के लिये शम दमादि के अनुष्ठान को नहीं किया उसके कल्याण को आप कहिये, भीष्मजी बोले कि, ईश्वर में चित्त लगाकर गुरुकी पूजा और आ-चार्यों का सदैव पूजनकरे गुरु आदि से शास्त्रों का सुनना तदनन्तर शुद्ध ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाला कल्याण कहाजाता है, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें गालवऋषि और देवर्षि नारदजी का संवाद है, जिते-न्द्रिय और कल्याण की इच्छाकरनेवाले गालवऋषि ने उन मोह और ग्लानि से रहित वेदपाठी ज्ञानतृप्त नारदजी से कहा कि हे मुने! मनुष्य जिन गुणों से लोक में सब का प्यारा होता है उन सब गुणों को मैं आप में वर्त्तमान देखता हूं,इसप्रकार के आप सरीखे ज्ञानी हमसरीखे आत्मज्ञान न जाननेवाले अज्ञानियों का सन्देह दूरकरने के योग्य हो, करने के योग्य कर्म्मों की मुख्यता न होने से ज्ञान में एकसी प्रवृत्ति होती है इसनिमित्त जो करने के योग्य है उसको हम नहीं निश्चय करसक्के

इससे आप दान की मुख्यता को वर्णन कीजिये, जिसमें अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाला परिश्रम नहीं है उसको आश्रम ज्ञान कहते हैं और उसके जो साधक हैं उस को शास्त्र में आश्रम कहते हैं वह सब पृथक् २ आचारों के दिखानेवाले हैं हे भगवन्! सब मनुष्य भी उनको जानते हैं, शास्त्रों से उपदेश पायेहुए और अपने २ शास्त्रों को अंगीकार करनेवाले नानाप्रकार के मार्गों में चलनेवाले और अपने ही शास्त्रों से तृप्त ऐसे पुरुषों को देखकर सन्देह करनेवाले हमलोग कल्याण को नहीं पाते हैं, जो शास्त्र एकही होय तो कल्याण प्रकट हो और बहुत शास्त्रों केही कारण से कल्याण अत्यन्त गुप्त है, इस हेतु से मुझ को वह कल्याण बड़े २ संदेहों से भराहुआ दिखाई देता है हे भगवन्! उसको मुझे समझाकर उपदेश करो, नारदजी बोले कि, हे तात, गालव! जो चार आश्रम अर्थात् शास्त्र हैं उनसब को गुरु से पढकर विचारो और उन शास्त्रों के अनेकरूपवाले गुणदेश जो कि जहां तहां विपरीत रीति से नियत हैं उनको भी विचार करो जिसप्रकार दूसरे का धर्म्म गर्मशिलापर चढ़ना है वह हम को अधर्म्म है और हमारा धर्म्म पशु यज्ञादिक है वह दूसरों का अधर्म्म है यह विपरीत रीति से नियत धर्म्म हुआ, निस्संदेह जैसे स्थूलदृष्टि से देखेहुए वह शास्त्र अच्छे प्रकार से अभीष्ट आत्म-तत्त्व धर्म्म को प्राप्त नहीं कराते हैं उसीप्रकार दूसरे सूक्ष्मदृष्टि मनुष्यों ने शास्त्रों की परम गति को अच्छेप्रकार से देखा है। जो शास्त्र कल्याणरूप और संशय से रहित हैं और जीवों की निर्भयता देनेवालों को अनुग्रहरूप और हिंसा करने वालों को दण्डरूप तीनोंवर्गों का समूह है उसीको ज्ञानियों ने कल्याण रूप कहा है और पापकर्म्म से पृथक् सदैव पवित्र कर्म्म करना सत्पुरुषों से उत्तम व्यवहार वर्त्तना यह भी कल्याणरूप है, सबजीवों में मृदुता, व्यवहार में सत्यवक्ता, प्रिय-भाषण, देवपितरों को भागदेना, अतिथिसत्कार करना, बाल बच्चे नौकर चा-करों का पोषणकरना, अविनाशी, तत्त्वों का कहना सुनना यह सब और ब्रह्म प्राप्त करनेवाले ज्ञान कठिनता से प्राप्त होते हैं, जो जीवों का अत्यन्त उपकारी है मैं उसको सत्य ब्रह्म कहता हूं, अहंकार का त्याग, मोह का रोकना, संतोष अकेला घूमना, इन सबको अविनाशी कल्याण कहते हैं, धर्म्म से वेदों का प-ढ़ना, वेदान्तों का विचार करना, ज्ञान अर्थ के अनुभव की इच्छा भी कल्या-णदायी है और वह मनुष्यरूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श को किसी दशा में भी अधिक सेवन न करे जो अपना कल्याण चाहै, रात्रि में चलना दिन में सोना, आलस्य, निर्दयता, अहंकार, भोजनादि में न्यूनाधिकता, इन सब बातों को न करे जो कल्याण चाहै, दूसरे की निन्दा से अपनी प्रतिष्ठा न चाहै केवल अपने गुणों से ही नीचों से प्रतिष्ठा को चाहै, जो प्रतिष्ठावान् पुरुष अपने गुण और ऐश्वर्य्य के कारण दूसरे गुणवानों की निन्दा करते हैं वह बड़े

अज्ञानी हैं वह अपने अभिमान से बड़े लोगों को शिक्षा करतेहुए अपने को बड़ा मानते हैं, किसीकी निन्दा न करता हुआ अपनी प्रशंसारहित गुणी दयालु पुरुष ब्रह्म को पाता है न बोलने से पुष्पों की पवित्र गन्ध उठती है और आकाश में निर्मल सूर्य्य देवता विना बोले प्रकाश करते हैं, इसप्रकारके दूसरे जीव बुद्धि के द्वारा संसार में प्रसिद्ध हैं जो अधिकभाषण नहीं करते हैं वह लोक में यश को प्रकाशकरते हैं, मूर्ख मनुष्य केवल अपनी प्रशंसा से लोक में प्रकाश नहीं करता है, विद्यावान् मौन भी प्रकाशमान होता है ऊंचेस्वर से कहाहुआ भी असारशब्द निचाई को पाता है और धीरे भी कहाहुआ सुन्दर शब्द लोकों में प्रकाश करता है, अज्ञानी मूर्खों का कहाहुआ असारवान् बहुत बड़ा शब्द अन्तरात्मा को ऐसा दिखाता है जैसे कि सूर्य्य अपने अग्निरूप को, इसीकारण शास्त्रों के अन्तरों से नानाप्रकार रखनेवाली बुद्धि को निश्चय करते हैं, जीवों का जो बड़ा लाभ है वही हमको उत्तम दिखलाई देता है, विना पूछे किसी से कुछ न कहै और पूछाहुआ भी न्याय से विरुद्ध न कहै, शास्त्रों के स्मरण रखनेवाली बुद्धि का स्वामी ज्ञानीमनुष्य जड़ के समान बैठे और ऐसे मनुष्यों के मध्य में रहना चाहै जो सदैव धर्म्मकर्त्ता साधु दानी और अपने धर्म्म में प्रीति करनेवाले हों, जिस स्थान में चारोंवर्णों के धर्म्मों का योग हो वहां किसी दशा में भी निवास न करे जो अपना भला चाहै, कर्म्म का प्रारम्भ न करनेवाला, यथालाभसन्तोषी पुरुष इस लोक में पुण्यात्माओं में पुण्य और पापात्माओं में पाप को पाता है, जैसे कि जल अग्नि और चन्द्रमा के स्पर्श को पुरुष जानता है उसीप्रकार हम पाप पुण्य के स्पर्श को देखते हैं अर्थात् कुसंग और सुसंग पापपुण्य का देनेवाला है, देवता आदि से शेषअन्न के भोजन करनेवाले स्वादु को न देखते जो भोजन करते हैं और जो बुद्धिसम्बन्धी विषयों को भोगते हैं उनको कर्मबन्धन में बंधे हुए जानो, अब गुरु शिष्य के धर्मों का वर्णन करते हैं—गुरु आत्मज्ञान धर्म्म के चाहनेवालों को उपदेशकरे और अश्रद्धावान् को कभी न करे और जिस देश में अप्रतिष्ठापूर्वक गुरु को पूजते हैं ऐसे देश को ज्ञानी सदैव त्यागकरे, जहांपर कि गुरु और शिष्य की आजीविका अच्छेप्रकार से नियत हो और बुद्धि के अनुसार शास्त्रयुक्त हो ऐसे देश को कभी न त्यागे, जहां शास्त्र से विरुद्ध होकर लोग पण्डितों के मिथ्यादोषों को वर्णनकरें वहांपर अपनी प्रतिष्ठा चाहनेवाला कभी न रहै जिसस्थान पर लोभियों ने धर्म्मरूपी सेतुओं को तोड़ फोड़ डाला होय वहां और जहांपर कि लोग शोकरूपी अग्नि से व्याकुल हों कभी न जाय, शंका और मत्सरतारहित जहां अच्छेलोग धर्म्म को करते हैं वहां अवश्य जाय और उन धर्म्मकर्त्ता साधुओं में नियत होकर निवासकरे, जहां लोग धन आदि के निमित्त धर्म्म

करें वहांपर भी कभी न जाय क्योंकि वह पापकरनेवाले मनुष्य हैं, जिसस्थान में मनुष्य पापकर्म्मों को करके अपना जीवनकरते हों वहां से ऐसे शीघ्र अलग होजाय जैसे सर्प के स्थान से पृथक् होते हैं, जहां कोई पूर्वकर्म्म वासना से कठिन आपत्तिरूपी दुःख में पड़ाहुआ हो वहां आत्माभिलाषी को प्रायश्चित्त करना योग्य है, जिसदेश में राजा और राजा के मनुष्य छोटे बड़ों का अपमान करके बालबच्चों से पहले भोजन करनेवाले हैं ऐसे देश को भी ज्ञानी सदैव त्यागकरे, जिस देश में सदैव धर्म्म करनेवाले ब्रह्मरूप यज्ञ कराने और पढ़ाने में प्रवृत्त वेदपाठी प्रथम भोजन करते हैं ऐसे देश में सुख से निवासकरे, जिस देश में अच्छे प्रकार से अनुष्ठान किये हुए यज्ञों में स्वधा, स्वाहा, वषट्कार सदैव वर्त्तमान होते हैं उस देश में निस्संदेह निवासकरे जिस देश में ब्राह्मण आजीविका से दुःखी अपवित्र रहते दीखें उस निकटवर्त्ती देश को भी अवश्य ऐसे त्यागे जैसे कि विषयुक्त भोजन को त्यागते हैं, जिस देश में फल की इच्छारहित दान को मनुष्य करते हैं उस देश में ऐसे सावधानचित्त होकर निवासकरे जैसे कि चित्त का जीतनेवाला कर्म्मों से निवृत्त मनुष्य हो, जिस देश में अपराधियों को दण्ड और ज्ञानियों का सत्कार होता है वहां विचरे और पुण्यात्मा साधुओं में निवासकरे, जो मनुष्य जितेन्द्रियोंपर क्रोध करते हैं और साधुओं में दुराचारी हैं उन लज्जारहित लोभी मनुष्यों को बड़ाभारी दण्डदेना चाहिये, जिसदेश में सदैव धर्मपर नियत और कामनाओं का स्वामी राजा इच्छाओं को त्याग करके प्रजा का पालन धर्म्म से करता है उसदेश में भी विना विचारकिये निवासकरे, कल्याण न होने में भी प्रसन्नचित्त राजालोग सब देशवासियों को शीघ्र कल्याणयुक्त करते हैं, हे तात ! मैंने यह कल्याण तुझ से कहा और आत्मारूप कल्याण प्रधानता से वर्णन करना असंभव है ऐसी वृत्तिवाले सावधानचित्त पुरुष का कल्याण तपसेही प्रत्यक्ष होगा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेचतुर्दशोपरिशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

एकसौपन्द्रह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने सब तन्त्रों में सावधान अहिंसाप्रधान मोक्षधर्मों को सुनकर उसे राजाओं से करना कठिन जानकर भीष्मजी से प्रश्नकिया कि मुझ सा राजा कर्म्म में प्रवृत्त होकर किसरीति से पृथ्वीपर विचरे और सदैव किनगुणों से युक्त हो स्नेहबन्धन से छूटे, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसको अरिष्टनेमि ने पूछनेवाले राजासगर से वर्णन किया है, सगर ने कहा कि, हे ब्रह्मन् ! इस लोक में किस परमकल्याण को करके सुख को पाता है और किस रीति से शोच और व्याकुलतारहित होता है उसको

आप मुझे समझाइये इसप्रकार से पूछेहुए सर्वशास्त्रज्ञ अरिष्टनेमि ने अच्छेप्रकार से विचारकर उपदेश के योग्य इस वचन को कहा कि पुत्र, धन, धान्य, पशु इत्यादि में प्रवृत्तचित्त अज्ञानी पुरुष इसलोक में मोक्षरूपी सुख को नहीं पाता है जिसकी बुद्धि विषयों में मग्न और चित्त लोभ से व्याकुल है वह इस संसाररूपी रोग का इलाज करने को असमर्थ है वह अज्ञानी संसारी प्रीति की रस्सी में बँधाहुआ मोक्ष के योग्य नहीं समझाजाता है उन प्रीति के बन्धनोंको तुझ से कहता हूं कि समयपर पुत्रोंको उत्पन्न करके तरुण होनेपर उनका विवाहादि करके अपने निर्वाहकरने में समर्थ जानकर जीवन्मुक्त होकर सुखपूर्वक विचरो और दैवाधीन प्राप्तहोनेवाले विषयों में रागद्वेषरहित प्यारी स्त्री का सन्तानयुक्त पुत्रोंपर स्नेहकरनेवाली वृद्धाजान समयपर मोक्ष का विचारकर उसभार्य्या को त्यागकरदो, तुम बुद्धिके अनुसार इन्द्रियों से विषयों को भोगकर संतानयुक्त वा असंतान जीवन्मुक्त घूमो, उन विषयों में इच्छारहित सुखपूर्व्वक जीवन्मुक्त विहारकरो, यह विषयों के भोग के पीछे जो त्यागरूप मोक्ष का प्रयोजन है उसको मैंने तुझ से मिलाहुआ वर्णन किया अब ब्यौरेवार कहता हूं उसको सुनो कि लोक में प्रीतिरूपी बन्धन से छूट निर्भय होकर मनुष्य निस्संदेह सुख से विचरते हैं और विषयों में चित्त लगानेवाले लोग निस्संदेह विनाश को पाते हैं, इसीप्रकार इस लोक में भोजन का संचय करनेवाले कीड़े चींटी के समान नाशवान् हैं और भोजन में चित्त नहीं लगानेवाले सुखी हैं, तुझ मोक्षबुद्धि को अपने लड़के वालों के लिये यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि मेरे विना इनकी कौन दशा होगी, जीव आपही उत्पन्न होकर वृद्धि को पाता है और आपही सुख दुःख और मृत्यु को पाताहै, और माता पिता के द्वारा वा अपनी देहके द्वारा भोजन वस्त्रादि को भी आपही प्राप्त करता है, जिसको पूर्वसमय में नहीं प्राप्तकिया वह इसलोक में प्रारब्ध फल के विभागकरनेवाले ईश्वर से उत्पन्न और अपने कर्म्मों से रक्षित भोजनवाले सब जीव पृथ्वीके चारों ओर घूमते हैं आप मिट्टी के पिण्ड के समान सदैव दूसरे की आधीनता में नियत निर्बल आत्मवाले पुरुष का कौन सा कारण अपने बालबच्चों के पोषण और रक्षा में है, जब कि मृत्यु तेरे देखतेहुए बालबच्चों को बड़े उपाय करने पर भी मारडालती है वहां अपनी बुद्धि से समझना चाहिये कि इसीप्रकार पूरे पोषण किये विना रक्षारहित इस जीवते कुटुम्ब को छोड़कर पीछे भी मरेगा, जब सुखी वा दुःखी मृतक भाई, बन्धु, रिश्तेदार आदि को कभी नहीं जानता है तब अपनी आत्मा से समझना चाहिये कि जैसे मैं इन सुखी दुःखियों को नहीं जानता हूं और कोई प्रकार से उनकी सहायता नहीं कीजाती है उसीप्रकार वह भी मुझको न जानेंगे और न सहायताकरेंगे, जब घरके लोग तेरेजीतेहुए वा मरनेपर अपने कर्म्मसे उत्पन्न सुखदुःख

को भोगेंगे और तुम उनकी सहायताकर नहींसके इसीप्रकार वह भी तेरी सहायता नहीं करसके इसको जानकर अपना अभीष्ट प्रयोजन करना चाहिये, इस प्रकार हे पूर्णबुद्धिमन् ! इस लोक में कौन किसका है इसको निश्चय करनेवाले तुम मोक्ष में नियत होकर फिर भी सुनो, इस लोक में जिस देहधारी ने क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा, तृषा आदिभावों को जीता है वह सतोगुणी मुक्तरूप है, जो मनुष्य अज्ञानता से युवावस्था पाकर मद्यपान, स्त्री, शिकारमें आत्माको भूलकर प्रवृत्त नहीं होता है वह भी मुक्तिरूप है, प्रत्यक्ष है कि जो पुरुष सदैव दिनरात्रि में यह ध्यान करके दुःखी है कि अमुक भोगकरना चाहिये वह दोषबुद्धि कहा जाता है, इसीप्रकार जो सदैव सावधान पुरुष अपने चित्त के स्वभाव को स्त्रियों से मुक्त देखता है अर्थात स्त्री की इच्छा से पृथक् है वह भी बुद्धिके अनुसार मुक्त है, इस लोक में जो पुरुष जीवों के जन्म मरण और कर्म्मों को मूलसमेत जानता है वह मुक्त है देह के व्यवहारों के लिये हज़ारों लाखों छकड़े भरेहुए अन्नादिक भोजन को और सोने बैठने को महल पलंग को विचारता है अर्थात् इन सब वस्तुओं के समूहों को निरर्थकजानता है वह भी मुक्तहोता है, जो पुरुष इस प्रत्यक्ष संसार को मृत्यु से घायल रोगों से पीड़ित और आजीविका से दुःखी देखता है उसकी भी मुक्ति होती है, जो देखता है वह सन्तुष्ट और जो नहीं देखता वह नष्ट होजाता है और जो थोड़े में संतुष्ट है वह इसलोक में मुक्त है, यह सब भोजन करनेवाले और भोजन के रूप हैं जो पुरुष इसको विचारता है अर्थात् अपने को उन दोनों से पृथक् जानता है और मायारूप दुःखसुख के अपूर्वभाव से स्पर्श नहीं करता है वह मुक्तही है, जिस देहधारी की दृष्टि से शय्या, पलंग, पृथ्वी आदि समान हैं और शालिनाम धान और निन्दित भोजन जिसकी बुद्धि से बराबर हैं वह भी मुक्तरूप है अतसी के सूत्र का तृणों का, रेशमी वस्त्र, कम्बल, मृगचर्म आदि का वस्त्र जो समान समझता है वह मुक्तरूप है, जो पुरुष इस लोक को छः तत्त्वों से उत्पन्न जानता है अर्थात् विचारकर उसीप्रकार समदर्शी होकर वर्त्ताव करता है और जिसकी बुद्धिसे हानि, लाभ, सुख, दुःख, हार, जीत, इच्छा, अनिच्छा, भय, निर्भयता, व्याकुलता आदि समान हैं वह सवप्रकार से मुक्त है, इसीप्रकार रुधिर, मूत्र, विष्ठा आदि दोषों को और बहुतदोष रखनेवाले देह को देखकर भी मुक्त होता है, जो पुरुष वृद्धावस्था की झुर्री बालों की श्वेतता, निर्बलता, कुरूपता, कुब्जता आदि को देखता है और विचारता है वह भी मुक्त होता है, समय की लौटपौट से पुरुषार्थहीन होने पर अन्धता बधिरता और देह की निर्बलता को आप देखता है, वह मुक्त होता है जो पुरुष इस लोक से परलोक में जानेवाले ऋषि, देवता और असुरों को देखता है वह भी मुक्त है, ऐसे २ प्रतापवान् तेजस्वी बली हज़ारों

राजा महाराजा पृथ्वी को छोड़कर चलेगये उसके भी विचार करने से मुक्कहोताहै, लोक में कष्ट से प्राप्त होनेवाले प्रयोजनों को और साधारणता से प्राप्तहुई विपत्तियों को और कुटुम्ब के लिये मिलनेवाले दुःखों को जो देखता है और संसारमें पुत्रों की और मनुष्यों की गुणहीनता आदि बहुतसी अयोग्य बातों को देखकर कौनसा मनुष्य मोक्षकी प्रशंसा न करेगा, जो मनुष्य शास्त्र और लोकसे विदित है और मनुष्यता को निर्मूल समझता है वह सब प्रकार से मुक्क है, आप मेरे इस वचनको सुनकर बुद्धिकी व्याकुलता को त्यागक गृहस्थाश्रम वा मोक्षआश्रम में मुक्क के समान विचरो, उस ऋषि के ऐसे वचनों को अच्छेप्रकार से सुनकर मोक्ष से उत्पन्नहोनेवाले गुणों से युक्क उस राजा ने प्रजा का पालन किया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेपञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

एकसौसोलह का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे तात! मेरे हृदय में यह कौतूहल सदैव वर्त्तमान रहता है उसको भी हे पितामह! आप से सुनना चाहता हूं कि देवर्षि शुक्राचार्य्यजी महाबुद्धिमान् होकर असुरों के प्रिय और उपकारी और देवताओं के अप्रिय और अनुपकारी किसकारण से हुए इन शुक्रजी ने देवताओं के तेज को क्यों नाशकिया और दैत्य दानव देवताओं से किसकारण शत्रुभाव रखते हैं और देवताओं के समान तेजस्वी शुक्रजी का शुक्रनाम कैसे हुआ और कैसे वृद्धि पाई और आकाश मेंसे कैसे नहीं जाते हैं हे पितामह! इस वृत्तान्त को मैं यथार्थ और पूर्णता के साथ सुनाचाहता हूं, भीष्मजी बोले कि हे निष्पाप, युधिष्ठिर! जैसा कि मैंने बुद्धि के अनुसार पूर्वसमय में सुना है वह सब ठीक २ चित्त लगाकर सुनो यह भृगुवंशी प्रतिष्ठा के योग्य मुनि दृढव्रतवाले शुक्रजी किसी कर्म के कारण से देवताओं के अप्रियकारी हैं अर्थात् असुरलोग देवताओं को दुःख देकर भृगुपत्नी के आश्रम में छिपजाते थे उस आश्रम में जाने को असमर्थ देवताओं ने विष्णुजी की शरणली तब विष्णुजी ने चक्रसे भृगुपत्नी के शिर को काटा फिर मरने से बचेहुए असुरों ने शुक्रजी की शरणली अपनी माता के मरने से दुःखी होकर शुक्रजी ने असुरों को निर्भय करके देवताओं को पीड्यमान किया यही कर्मरूप कारण है, यक्ष राक्षसों के और धनों के स्वामी कुबेरजी इन्द्रदेवता के खज़ाने के अधिपति हैं उन कुबेरजी की देह में शुक्रजी ने अपने योगबल से प्रवेश करके उसको रोककर उसके धन को योगसिद्धि से हरलिया तदनन्तर उसधन के हरने से कुबेरजी को महादुःख हुआ और क्रोध से महाव्याकुल होकर वह कुबेरजी महादेवजी के पासगये और उन भव-रूपधारी देवताओं के स्वामी शिवजी से यह सब वृत्तान्त वर्णनकिया कि योगी

शुक्रजी ने मुझ को रोककर मेरा सब धन हरलिया और अपने उग्रतेज और योगबल से धन को लेकर निकलगया हे राजन्! कुबेर से इतनी बात के सुनतेही महायोगेश्वर शिवजी ने अत्यन्त क्रोध में युक्त होकर अरुण नेत्र करके त्रिशूल को धारण किया और इस उत्तम शस्त्र को लेकर बोले कि, वह कहां है शुक्रजी ने शिवजी के कर्म्म करने की इच्छा जानकर दूर से दर्शनदिया, फिर उस योगसिद्ध शुक्रजी ने महायोगी महात्मा शिवजी के क्रोध को जानकर जाने आने और रहने के स्थान को जाना योग से सिद्ध आत्मा शुक्रजी महेश्वरजी को विचारकर उग्रतप के द्वारा शूल की नोकपर दृष्टपड़े और वह तपोमूर्त्ति शुक्रजी धनुपधारी शिवजी को मालूम हुए देवेश्वर ने उस चरित्र को जानकर शूल को धनुपरूप करने के निमित्त हाथ से नीचे को नवाया फिर बड़े तेजस्वी के हाथ से शूल के झुकजाने पर उग्र धनुषधारी प्रभु शिवजी ने शूल को पिनाक धनुष कहा फिर देवताओं के स्वामी प्रभु उमापतिजी ने शुक्रजी को हाथों में वर्त्तमान देखकर मुख को खोलकरके बड़े धीरेपने से मुख में डाला वह तपसिद्ध महात्मा भृगुनन्दन शुक्रजी उन महेश्वरजी के पेट में पहुंचे और वहां विचरनेलगे अर्थात् अन्न के समान परिपाक नहीं हुए, युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! बड़े तेजस्वी शुक्रजी उन देवदेव महादेवजी के उदर में किस निमित्त विचरे और उन्हों ने कौनसा तपकिया था भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर! महाव्रतधारी शुक्रजी पूर्व्वसमय में जल के भीतर नियतहोकर प्रयुत और अर्बुद वर्षपर्यन्त स्तम्भरूप होकर वर्त्तमान रहे वहां कठिन तपस्या को करके उस महाह्रद से उठे तव देवताओं के देवता ब्रह्माजी उनके पास आये और तप की वृद्धिपूर्व्वक कुशल को पूछा और शिवजी ने भी कहा कि अच्छी तपस्या की और बड़े बुद्धिमान् अचिन्त्य आत्मा सदैव सत्यधर्म्म परायण शिवजी ने उस तपयोग के द्वारा शुक्रजी के महत्त्व को देखा उस तपोधन से युक्त पराक्रमी महायोगी शुक्रजी तीनोंलोकों में शोभायमानहुए, तदनन्तर योगात्मा शिवजी ध्यान योग में प्रवृत्तहुए इसकारण भयभीत होकर शुक्रजी उदर में छिपगये और वाहर निकलने की इच्छा से उसी उदर में नियत होकर उन्हों ने शिवजी की स्तुतिकरी और रुद्रजी ने उनको रोक लिया, तव उदर में वर्त्तमान महामुनि शुक्रजी ने उनरोकनेवाले शिवजी से वारंवार स्तुति करके प्रार्थना की कि मुझपर कृपाकरिये, उससमय महातेजस्वी शिवजी ने अपनी देह के सब छिद्रों को रोककर शुक्रजी से कहा कि इस लिंगके द्वार से तू निकलजा शुक्रजी ने सब द्वारों को बन्ददेखा और मारेतेज के जलनेलगे और व्याकुल होकर इधर उधर घूमनेलगे और लाचार होकर उसी लिंगद्वार में होकर निकले तभी से शुक्र यह नाम उनका प्रसिद्ध हुआ इसी लिंगद्वार से उत्पन्न होने के कारण

आकाश में होकर नहीं जाते हैं तेज से ज्वालारूप उन निकले हुए शुक्रजी को देखकर क्रोध में भरकर शिवजी शूल को फिर उठाकर उपस्थित हुए तब देवी पार्वतीजी ने अपने स्वामी रुद्रजी को निषेध किया शिवजी के रोकने पर शुक्रजी ने पार्वतीजी के पुत्रभाव को प्राप्तकिया देवी ने कहा कि हे स्वामिन्! इसने मेरे पुत्रभाव को पाया है इससे यह आपके हाथ से मारने के योग्य नहीं है और देवता के उदर से निकलनेवाला कोई नाश को नहीं पाता है, फिर तो देवी के ऊपर प्रसन्न हो शिवजी ने हँसकर वारंवार यह कहा कि यह इच्छापूर्व्वक जाय तदनन्तर महामुनि बुद्धिमान् शुक्रजी ने वरदाता शिव और पार्वतीजी को प्रणाम करके अभीष्ट गति को पाया, हे भरतवंशियों में उत्तम, तात, युधिष्ठिर! मैंने यह महात्मा भार्गवजी का चरित्र कहा जिसके सुनने की तुमको इच्छा थी॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेषोडशोपरिशततमोऽध्यायः॥ ११६॥

एकसौसत्रह का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह, महाबाहो! अब फिर उन कल्याणरूपों का वर्णन कीजिये मैं आपके अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हूं और हे तात! किस शुभकर्म्म को करके इसलोक परलोक दोनों में परमगति को पाता है इस को कृपा करके कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं वह संवाद कहूंगा जोकि पूर्व्वकाल में बड़े यशस्वी तेजस्वी राजा जनक ने महात्मा पराशर ऋषिजी से पूछा है कि इसलोक और परलोक में कल्याणकारी जीवों के जानने के योग्य क्या है तब सर्व्वधर्म्मज्ञ महातेजस्वी राजापर कृपालु पराशरजी ने यह वचन कहा कि इसलोक परलोक दोनों में धर्म्मही कल्याणरूप कहाजाता है ज्ञानीलोग इससे उत्तम किसीको नहीं कहते, धर्म्म को प्राप्त करके मनुष्य स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठा को पाता है, इस धर्म्म में निष्ठा करनेवाले पुरुष इसलोक में अपने कर्म्मों को इसकामना से करते हैं कि हम को धनकी प्राप्ति हो हे तात! इस लोक में चारप्रकार की आजीविका कही जाती हैं उन्हीं जीविकाओं को संसारीलोग करते हैं अर्थात् ब्राह्मण की जीविका दान लेना, क्षत्रिय की जीविका पृथ्वी की भेज लेना, वैश्य की खेती आदि वाणिज्य करना, शूद्र की आजीविका नौकरी करना सेवा करना, नानाप्रकार की रीतों से पापपुण्य को भोगकर देह के त्यागनेवाले जीवों की बहुत प्रकार की गति होती हैं अर्थात् पापियों का जन्म पशु पक्षियों में और पुण्यात्माओं को स्वर्ग मिलता है और पुण्य पाप के समान होने में मनुष्य का जन्म होता है और तत्त्वज्ञान से माया के दूर होने पर मुक्तिहोना होता है यही चारौगति हैं परन्तु इनके भेद बहुत से

हैं जिसप्रकार तांबे आदि के बर्त्तन चांदी, सोने के पानी से सुन्दर रंगीन किये जाते हैं इसी प्रकार पिछले कर्म्मों के पीछे चलनेवाला जीव पूर्व्व के कर्म्मों से रंग को पाता है विना बीज के कुछ उत्पन्न नहीं होता है और कर्म्म किये विना सुख की वृद्धि नहीं पाता है मनुष्य इस शरीर में वा दूसरे शरीर को पाकर उत्तम कर्म्म से सुख को पाता है चार्वाक कहता है कि मैं दैव को नहीं देखता हूं और उस पुण्य पाप का साधन भी नहीं है देवता गन्धर्व और मनुष्य स्वभाव सेही सिद्ध हैं देह के त्यागने के विना कर्म्म का फल नहीं पासक्ते वह मनुष्य उस कर्म्मफल के मिलने पर सदैव चारप्रकार के कर्मों को स्मरण करते हैं अर्थात् पाप, पुण्य, इच्छा, अनिच्छा यही चारप्रकार के कर्म्म हैं; लोक में सुख दुःख का कारण जो पाप पुण्य आदि कियाजाता है और वेद में जो यह वचन है कि पवित्र कर्म्म से पवित्र होता है यह केवल मन सन्तोष के निमित्त है यह बृहस्पति सरीखे वृद्धों का वचन नहीं है किन्तु उस पूर्व्वोक्त चारप्रकार के जैसे कर्म्म को करता है वैसेही फल को भी पाता है हे राजन्! यह कर्त्ता दुःख सुख या दोनों को पाता है क्योंकि कर्म्मका नाश नहीं होता, हे तात! इससंसार-सागर में डूबाहुआ मनुष्य तबतकही पक्षपात से रहित उत्तमकर्म्म में प्रवृत्त होता है जबतक कि वह दुःख से नहीं छूटता है, फिर दुःख से निवृत्त होकर सुख को भोगता है और उत्तम कर्म्मों के नाशहोने पर पापकर्म्म के फल दुःखों को भोगता है, शान्तचित्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष में सन्तोष, धैर्य्य, सत्यता लज्जा, अहिंसा और क्रोध स्त्री मद्यपान आदि से उत्पन्न व्यसनों से पृथक्होना प्रवीणता यह सब बातें सुख की देनेवाली हैं, जीव पापकर्म्म और शुभकर्म्म में भी नियम न करे किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मदर्शन के निमित्त समाधि में ध्यानलगावे, यह जीव किसी दूसरे के पाप पुण्य को नहीं भोगता है जैसा आप कर्म्मकरता है वैसाही फल पाता है, मनुष्य सुख दुःख के कारण पुण्यपाप को तत्त्वज्ञान के द्वारा आत्मा में लय करके दूसरे ज्ञानमार्ग से उन प्रियवस्तुओं को पाता है जो पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाले पुत्र, स्त्री, पशु, गृह, धन, बाग इत्यादि हैं वह दूसरेही मार्ग से जाते हैं अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष में सहायता नहीं करते हैं, मनुष्य दूसरेके जिस कर्म्म की निन्दा करता है उसको आप भी न करे जो योगी इसप्रकार से दूसरे में और अपने में दोषों का देखनेवाला है वह नियम पूर्व्वक निन्दा को स्वीकार करता है तात्पर्य यह है कि योगी स्नेह और निन्दा से पृथक् होजाय, जिसप्रकार निन्दा करनेवाला योगी निन्दा के योग्य है इसीप्रकार योग के विना वैरागी भी निन्दा के योग्य है इस बात को बहुत से दृष्टान्तों के साथ कहते हैं, भय करनेवाला क्षत्रिय, सब क्षेत्रों में भोजन करनेवाला ब्राह्मण, विना कर्म्मवाला वैश्य, सुस्तशूद्र, विद्या पढ़कर दुःखभाव गुरुपूजा आदि गुणों

से रहित, कुलीन सत्यता से रहित ब्राह्मण, दुराचारिणी स्त्री, केवल अपनेही निमित्त भोजनबनानेवाला, अज्ञानी बोलनेवाला, राजा के विना देश, संसार से स्नेह करनेवाला योगी, प्रजापर प्रीति न करनेवाला राजा, योगाभ्यास से रहित, यह सब लोग शोच और निन्दा के योग्य हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

एकसौअठारह का अध्याय ॥

परारारजी बोले कि, इसप्रकार से सुख दुःखका कारण पूर्व्वकर्म्म को जानकर सब कर्म्मों के नाश करने के लिये योग धर्म्म में प्रवृत्त होना हमने वर्णन किया अब उसकी टीका को कहते हैं कि जो मनुष्य चित्त देहरूपी रथ में जिसके इन्द्रियरूप घोड़े हैं उसको पाकर ब्रह्मज्ञानरूपी रस्सी के द्वारा विषयों को भी चैतन्यरूप देखता है वही बुद्धिमान् है अर्थात् सम्पूर्ण त्रिषयों को ब्रह्मरूप देखता है वह भी मोक्ष को पाता है, हे ब्रह्मन्! सब आलम्बन से रहित चित्त के द्वारा नियत वृत्ति से पृथक् पुरुष की भक्ति प्रशंसा के योग्य है वह भक्ति कर्म्म के त्यागी ब्रह्मज्ञानी से प्राप्तहोनेवाली होती है अपने समान परोक्षज्ञानी को नहीं प्राप्त होती है क्योंकि परोक्ष ज्ञानियों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश में अधिकार नहीं है हे राजन्! यह बात साधारण नहीं है इससे उसको पाकर विषयों के सेवन से पूरानहीं करे किन्तु उत्तमकर्म्म के द्वारा क्रम से उत्तमस्थान मिलने के लिये उपायकरे, वृत्रासुर की गीता में ऊंचे वर्ण से नीचेवर्ण में वर्त्तमान मनुष्य प्रतिष्ठा के योग्य नहीं है फिर जो सत्क्रिया को पाकर राजसी कर्म्म में प्रवृत्त होता है वह भी वैसाही है, शुभकर्म्म के द्वारा मनुष्य क्रम से वर्ण की उत्तमता को पाता है और उस दुर्ग्राह्य को न पाकर पापकर्म्म से अपना हीं नाश करता है, अज्ञान से कियेहुए पाप को तप के द्वारा नाशकरे अपने से किया हुआ पापकर्म्म दुःख को देता है इसहेतु से दुःखरूप फल का उदय करनेवाला पापरूप कर्म्म कभी न करे, जो पापरूप फल देनेवाला कर्म्म है चाहै वह बड़ा भी फल देनेवाला हो तो भी पण्डित और पवित्र मनुष्य उसको चाण्डाल के समान बुराजानकर कभी न करे, मैं पापकर्म्म के कठिनफल को देखता हूं वह यह है कि विपरीतदृष्टि मनुष्य को सदैव आत्मा अच्छा नहीं मालूम होता है अर्थात् देह कोही आत्मा जानता है, इसलोक में जिसअज्ञानी को वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है उसयोग में प्रवृत्त मनुष्य को उत्तम स्थान के न मिलने से महाशोच उत्पन्न होता है अथवा उसको मरने से भी बड़ा शोच प्रकट होता है अर्थात् नरकयातना भोगनी पड़ती हैं, जो वस्त्र वास्तव में पवित्र है और प्रत्यक्ष में विपरीतरंग से रँगाहुआ है वह शुद्ध होसक्ता है और किसी काले रंगसे रँगाहुआ वस्त्र बड़े उपायों से भी

शुद्ध नहीं होसक्ता है हे नरेन्द्र ! इसीप्रकार पाप को समझो अर्थात् कोई पाप तो दूरहोसक्ता है और कोई नहीं होसक्ता, जो मनुष्य आप जानबूझकर पाप को करके उसके प्रायश्चित्तसम्बन्धी शुभकर्म्म को करता है वह दोनों पाप पुण्य को पृथक् २ भोगता है अर्थात् जानबूझकर जो पाप कियाजाता है वह किसी प्रायश्चित्त से भी नाश नहीं होता, मनुष्य वेद के अनुसार शास्त्र की आज्ञा से अहिंसा के द्वारा उस हिंसा के दोष को दूरकरता है जोकि अज्ञानता से होगई है यह ब्रह्मवादियों का वचन है कि अहिंसा धर्म उसकी उस हिंसा को नहीं दूरकर सक्ता है जिसको कि उसने जानबूझकर इच्छा से किया हो वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों का भी यही वचन है परन्तु मैं इस बात को वहांतक देखता हूं जहांतक कि कियाहुआ कर्म्म वर्त्तमान है वह गुणयुक्त हो या बुद्धि से जानकर किया हो अथवा पाप से चाहो रहित हो तात्पर्य्य यह है कि जानके या विनाजाने कैसाही छोटा बड़ा कर्म्म कियाजाय वह विनाभोगे नाश नहीं होगा जिसप्रकार इस लोकमें चित्त और बुद्धि से विचारेहुए वह सूक्ष्म छोटे बड़े कर्म्म सफल होते हैं अर्थात् सुखदुःख आदि को देते हैं, इसीप्रकार अभ्यास कियाहुआ कर्म्मफल भी अविनाशी होता है और अज्ञानता से हिंसारूप कर्म्म से कियाहुआ काम थोड़े फलवाला और नरक से मिलानेवाला होता है, जो कर्म्म देवता और मुनियों से कियेगये हैं उनको धर्म्मात्मा पुरुष नहींकरे और उनको सुनकर निन्दा भी न करे आशय यह है कि जब कर्म्म का फल नष्ट नहीं होता ऐसी दशा में विश्वामित्रजी ने वशिष्ठजी के सौ पुत्र मारे उसका फल नरक उन्हों ने नहीं पाया यह संदेह करके उन देवता आदि के समान कर्म्मकर्त्ता न होना चाहिये क्योंकि उनके कर्म लौकिक नहीं हैं, हे राजन् ! जो पुरुष मन से अच्छेप्रकार विचारकर और अपने शरीर से उसका करना सम्भव जानकर शुभकर्म्म को करता है वह क-ल्याणों को देखता और भोगता है जिसप्रकार कच्चे मिट्टी के पात्र में जलरखने से मिट्टी के पात्र का नाशहोता है और पक्के में जलरखने से नाश नहीं होता उसी प्रकार पक्का योगी ब्रह्मानन्द से अविनाशीपन को पाता है आशय यह है कि उसतेजस्वी को जो कि पाप पुण्य में उदासीन है कर्म्म नष्ट नहीं करता है, जैसे कि रखनेवाले पात्र में जल भरकर ऊपर से दूसरा जल जब भराजाता है ऐसी दशा में उसजल की वृद्धि होनेपर जलही बढ़ता है इसीप्रकार से हे राजन् ! इसलोक में जो कर्म्म बुद्धि से युक्त कैसेही टेढ़ेसीधे हैं परन्तु पवित्र हैं वह भी वृद्धि को पाते हैं, इसप्रकार से संसारी धर्म्मों को कहकर राजाओं के धर्म्मों को कहते हैं प्रथम तो राजा को बड़े २ शत्रु जीतने योग्य हैं और उत्तमरीति से प्रजा का पालन करना उचित है और अनेक यज्ञों के द्वारा अग्नि स्थापन करना योग्य है अवस्था के मध्य में अथवा अन्त में वन में रहना चाहिये, शान्त

चित्त जितेन्द्रिय धर्म का अभ्यासी पुरुष जीवमात्र को आत्मा के समान देखे और हे नरेन्द्र! सुखपूर्व्वक मधुरभाषी होकर ब्रह्मप्राप्ति के निमित्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्मविद्या देनेवाले गुरुओं का पूजनकरे २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकसौउन्नीस का अध्याय ॥

पराशरजी ने कहा कि, जो कदाचित् तू यह शंका करताहोय कि मैं राजा होकर मुनियों का पोषण करनेवाला और उन्हों के योगफल का छठाभाग लेने वाला हूं मुझ को ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ गुरुओं के पूजने की क्या आवश्यकता है इस शंका को मैं निवृत्त करता हूं कि कौन किसके साथ उपकार करता है और कौन किसको देता है यह जीव आप अपनेही निमित्त कर्म्मों को करता है, जब गौरवता रहित माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्रादि को भी त्याग करता है तब अन्यनीच मूर्खों को क्यों नहीं त्यागेगा तात्पर्य्य यह है कि उपकार न करनेवाले अपने वृद्धजनों को भी त्यागकरते हैं इसकारण कोई किसी के साथ उपकार नहीं करता है, फिर अपने आनन्द के लिये क्या कर्म्मकरे इसको कहते हैं कि श्रेष्ठ मनुष्य को दानकरना और श्रेष्ठही से दानलेना दोनों समान हैं अर्थात् सत्पुरुष से दानलेना वेदोक्त दान की समान है, जो धन न्याय से मिला और न्याय से ही बढ़ाया गया हो उस धन की युक्तिपूर्व्वक धर्म्म के लिये रक्षा करना चाहिये, धर्म का चाहनेवाला मनुष्य हिंसात्मक कर्म्म के धन को इकट्ठा नहींकरे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब कामों को करे और धन की वृद्धि का विचार न करे, सावधान पुरुष अपनी सामर्थ्य से शीतलजल या उष्णजल को क्षुधा से पीड़ित अतिथि के देने से अन्नदान के फल को पाता है, महात्मा रन्तिदेव ने लोकेष्ट सिद्धि को अर्थात् सर्वप्रियभाव को पाया उसने केवल फल, मूल और पत्तों से ऋषियों का पूजन किया था और राजा शैब्य ने फलपत्रों से सूर्य्यदेवता को प्रसन्न किया था इसी से उच्चस्थान को पाया, मनुष्य अपने पुत्रादिक बाल बच्चों का और अतिथि, देवता वा नौकर चाकर आदि का ऋणी अर्थात् क़र्ज़दार उत्पन्न होता है इसकारण उनके क़र्ज़ को अदाकरे अर्थात् वेदपाठ आदि के द्वारा महर्षियों से और यज्ञकर्म्मादि के द्वारा देवताओं से और श्राद्धदान आदि के द्वारा पितरों से अनृण होना चाहिये और मनुष्यों के पूजन वेदशास्त्र पुराण आदि के सुनने विचारने और पञ्चयज्ञ में शेष अन्न के भोजन से जीवों के पोषण करने से आत्मा की अनृणता को प्राप्त करे और पुत्रादि के जातकर्म्म आदि संस्कार को बुद्धि के अनुसार प्रारम्भ सेही करना चाहिये, बड़े सिद्ध धनहीन मुनियों ने भी अग्निहोत्र को अच्छेप्रकार करके

सिद्धि को पाया है, हे महाबाहो ! अजीगर्त के पुत्र ने विश्वामित्र के पुत्रभाव को प्राप्तकिया और यज्ञभागी देवताओं को ऋग्वेद की ऋचाओं से प्रसन्न करके सिद्धि को पाया और उशना ने महादेवजी के प्रसन्न करने से शुक्र नामपाया और देवी पार्वती की स्तुति करने से यशी कीर्त्तिमान् होकर आकाश में विराजमान है, असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षीवान् और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी और आत्मज्ञानी ताण्ड्यजी, वशिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार, श्रुतश्रवा इन सावधान महर्षियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं से विष्णुजी को प्रसन्न करके उनकी कृपा से तप के द्वारा सिद्धि को पाया और बहुत से पूजन से विमुख सन्तों ने उसीकी स्तुति करके पूजन को पाया इसलोक में निन्दितकर्म्म करके वृद्धिकरनी अयोग्य है, जो अर्थ कि धर्म्मसंयुक्त हैं वही सच्चे हैं और जो अधर्म्म के साथ हैं उनको धिक्कार है इस लोक में धन की इच्छा से सनातन धर्म्म का त्याग नहीं करना चाहिये, जो धर्म्मात्मा अग्नि का स्थापन करनेवाला है वही श्रेष्ठ पुण्यात्मा है हे राजेन्द्र ! सब वेद तीनों अग्नियों में नियत हैं जिसकी जप गुरु पूजन आदिक क्रिया नष्ट नहीं होती हैं वह वेदपाठी अग्नि को अच्छेप्रकार से स्थापन करनेवाला है अग्निस्थापन न करना अर्थात् संन्यासधर्म्म लेना मोक्षरूप है, क्योंकि अग्निहोत्र भी कर्म्म ही है, हे नरोत्तम ! आत्मा और पोषण करनेवाले माता पिता और गुरु भी अग्नि हैं इसीसे वह बुद्धि के अनुसार सेवा के योग्य हैं, वृद्धों की सेवा करनेवाला विद्यावान् कामरहित साहसी धर्म्मयुक्त हिंसारहित मनुष्य अहंकार को त्यागकर सब को कृपादृष्टि से देखता है वह श्रेष्ठ पुरुष इस लोक में उत्तम पुरुषों से प्रशंसा कियाजाता है ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

एकसौबीस का अध्याय ॥

पराशरजी ने कहा कि, अपनी सहायता करनेवाला कोई दूसरा नहीं है इसीकारण अपनी भलाई के लिये अपनी खुदी को त्याग करके वृद्धों का सेवन करे यह ऊपर वर्णन किया अब वृद्धों की सेवा और सत्संग की प्रशंसा के प्रयोजन से शूद्रवृत्ति की उत्तमता वर्णन करते हैं, तीनों वर्णों से पञ्चशूद्रों की वृद्धसेवारूपी आजीविका जो कि निश्चय से युक्त और प्रीतिपूर्व्वक कीहुई होय सदैव सेवकों को धर्म्मात्मा करती है इसीकारण से अच्छी है, जो शूद्र की आजीविका बाप दादों से होनेवाली और प्राचीन नहीं है तो भी वह शूद्र तीनों वर्ण की सेवा के सिवाय दूसरी आजीविका को नहीं ढूंढ़े किन्तु सेवा ही करे सदैव सब दशाओं में धर्म्मदर्शी पुरुषों का मिलाप सन्तोष के साथ में शोभित

होता है पत्रों के साथ नहीं शोभित होता है यह मेरा मत है, जैसे कि उदया चल पर्वत में मणि और सुवर्ण आदि सूर्य्यदेवता की समीपता से प्रकाशित होते हैं, उसीप्रकार पञ्चवर्ण भी सत्पुरुषों की समीपता से प्रकाशित होते हैं श्वेतवस्त्र जैसे रंग से रँगाजाता है वैसाही रंग उसपर आता है इस को ऐसे प्रकार से समझो, कि गुणों में प्रीति करो और कभी दोषों में प्रीति न करो, इस लोक में जीवमात्रों का जीवन नाशवान् और अस्तव्यस्त है, जो सुख का चाहनेवाला दुःख में वर्त्तमान होकर पण्डित मनुष्य शुभकर्म्मों को प्राप्तकरता है वही शास्त्रों का देखनेवाला है, जो कर्म्म धर्म्म से रहित है वह चाहो बड़े फल वाला भी होय उसको बुद्धिमान् कभी न करे क्योंकि वह इसलोक में उत्तम कभी नहीं कहाजाता है, जो राजा हज़ारों गौओं को लूटकर विना पोषण कियेहुए दान करता है वह चोर राजा केवल संसारी प्रशंसाही का फलपाने वाला होता है ब्रह्माजी ने प्रथमही लोक से प्रतिष्ठापानेवाले धाता को उत्पन्न किया और धाता ने लोकों के पोषण में प्रवृत्त पर्जन्यनाम पुत्र को उत्पन्न किया वैश्य उसको पूजनकर पशु और कृषि आदि की रक्षाकरे वह सामान्य क्षत्रियों में रक्षा के योग्य है और ब्राह्मणों के भोगने के योग्य है सत्यवक्ता क्रोध और कृपणतारहित, हव्य कव्य में प्रयोगकरनेवाले, शूद्रों से भूमिशुद्धि आदि करनी चाहिये इसप्रकार से धर्म्म का नाश नहीं होता है धर्म्म के नाशहोने से प्रजा सुखी होती है और उनके सुख से स्वर्गवासी सब देवता आनन्द को पाते हैं, इसकारण जो राजा अपने धर्म्म से संसार की रक्षाकरता है और जो ब्राह्मण वेद को पढ़ता है वा जप करता है और जो वैश्य धन के संग्रहकरने में प्रवृत्त है वह प्रशंसा कियाजाता है जो जितेन्द्रियशूद्र सदैव तीनों वर्णों की सेवाकरता है वह भी प्रशंसा के योग्य है हे राजन्! उसके विपरीत करनेवाला नाश को पाता है प्राणों को कष्टदेकर तीनकाकिणी अर्थात् एकधेला भी दानकरना बड़ा फलदायक है फिर न्याय से इकट्ठी की हुई हज़ारों काकिणी क्यों नहीं फल देंगी जो राजा सत्कारपूर्वक ब्राह्मणों को दानकरता है और जैसीश्रद्धा से देता है उसीप्रकार से प्रबल फल को सदैव पाता है उस पात्र ब्राह्मण की तृप्ति के निमित्त जो सन्मुख होकर दान दियाजाता है वह सर्वोत्तम दान कहाजाता है और याचना करने से जो दान कियाजाता है उसको पण्डितलोग मध्यम दान कहते हैं जो दान अनादर से अथवा अश्रद्धा से दियाजाता है उसको सत्यवादी मुनिलोग अधमदान कहते हैं संसारसमुद्र में डूबाहुआ मनुष्य सदैव नानाप्रकार के उद्योगों से संसारसागर को उल्लंघनकरे और ऐसे उपाय करे जिससे कि गृहस्थाश्रम के फन्दे से छूटे ब्राह्मण शान्तचित्त होने से शोभा को पाता है क्षत्रिय शत्रुओं के विजयकरने से वैश्य धन की अधि-

क्यता से और शूद्रसेवा की हिम्मत से सदैव शोभा को पाता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे दानविषयवर्णनोनामविंश-त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकसौइक्कीस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, दान के द्वारा ब्राह्मणों को प्राप्तहोनेवाला अर्थ धन और युद्ध में विजयकरनेवाले क्षत्रिय को प्राप्त होनेवाला अर्थ धन और न्याय से वैश्य का संचित कियाहुआ अर्थ धन और सेवा से शूद्र के पास होनेवाला बहुत थोड़ा भी धनआदि अर्थ प्रशंसा के योग्य है वह सबके अर्थ धन धर्म्म करने के लिये बड़े शुद्ध और फल के देनेवाले हैं १ । २ शूद्र सदैव तीनोंवर्णों की सेवा करनेवाला कहाजाता है और आजीविकारहित ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के धर्म्मों करके पतित नहीं होता है ३ परन्तु जब ब्राह्मण शूद्र का धर्म्म करनेवाला होता है तब ऊंचे ब्राह्मणपने के अधिकार से नीचे अधिकार को पाता है अर्थात् ब्राह्मणत्व से रहित होता है और जब शूद्रको अपनी जीविका नहीं मिलै उस दशा में व्यापार करके अथवा पशुपालन, शिल्पविद्या से भी वह अपनी जीविका करसक्ता है यह भी शूद्र का कर्म्म विचारकियागया है कुतूहल के स्थान में स्त्रीरूप से उतरना कठपुतली आदि का तमाशा करना मद्य और मांस से जीवन करना धातु और चर्म्म की वस्तुओं का बेंचना, और जिस ने पूर्व में मद्य और मांस से जीविका नहीं करी है वह लोक में निन्दित जीविका से अपना निर्वाह न करे पहिले करनेवाले और पीछे से त्यागकरनेवाले को बड़ा अधर्म्म होता है यह श्रुति है (अपूर्विणा न कर्त्तव्यं कर्म्मलोके विगर्हितम् । कृतपूर्वन्तु त्यजतो महान्धर्म्मइतिश्रुतिः) धनवान् और अहंकारी से कियाहुआ पाप स्वीकार के योग्य नहीं है पुराणों में ऐसी भी प्रजा सुनीजाती है जो केवल धिक्कारही मात्र से दण्ड समझनेवाली जितेन्द्रिय धर्म्मही को उत्तम माननेवाली और न्यायधर्म्म निर्वाह करनेवाली थी हे राजन् ! इसलोक में सदैवसे धर्म्मही की प्रशंसा होती है धर्म्मप्रवृत्त मनुष्य पृथ्वीपर गुणोंकोही काम में लाते हैं हे तात, राजन्, जनक ! असुरों ने कामक्रोधादि के कारण इस धर्म्म को धारण नहीं किया इसीहेतु से वह अत्यन्त वृद्धिपाने पर भी नाश को प्राप्तहुए और रहेसहे प्रजाओं में आनमिले उन प्रजाओं का वह अहंकार जो धर्म्म का नाश करनेवाला है अच्छेप्रकार से प्रकटहुआ उसके पीछे उस अहंकारी प्रजा का क्रोध उत्पन्नहुआ तब उस क्रोध से भरीप्रजा का गुरु पूजनादिक धर्म्म लज्जायुक्त हुआ अर्थात् केवल गुरुपूजनादिक धर्म्म लज्जायुक्त होकर करते थे भक्ति से नहीं करते थे जब लज्जा भी जातीरही तब मोह उत्पन्नहुआ तदनन्तर मोहमें भरेहुए परस्परमें एकएकको

दुःख देकर पेटभरनेवाली उसप्रजा ने पूर्व के समान बुद्धिके अनुसार सुख को नहींपाया और उसधिकार दण्डमे उसप्रजा को कुछ लज्जा नहींहुई फिर देवता और ब्राह्मणों का अपमान करके नानाविषयों में प्रवृत्त हुई, इसप्रकार काम क्रोधादिक से प्रजा के बन्धन को दिखलाकर उससे छूटने के उपाय के लिये साधारण युक्ति को वर्णन करते हैं—उससमय पर शम दमआदि देवता उस गुणों में श्रेष्ठ अद्भुतरूपधारी शिवजी की शरण में गये जोकि ईश्वर से भी श्रेष्ठ और सेवायोग्य तीनोंदशा के अभिमानी विश्व, तैजस प्राज्ञनाम विराट्सूत्र अन्तर्यामी से भी उत्तम चौथा है और माया करके अनेकरूप धारण करता है और ज्ञान ऐश्वर्यादि गुणों से अधिक उस साक्षात्रूप ब्रह्म से व्यावृत आकाश में वर्त्तमान जो कामक्रोधरूप असुर वह उसके एकही बाण से आत्मारूप पृथ्वी पर गिरायेगये अर्थात् लय कियेगये वह बाण इन्द्रियरूप देवताओं के द्वारा वृद्धिपानेवाला तेज था और उन काम आदि का स्वामी भयानकरूप भय उत्पन्न करनेवाला और देवताओं का भी भय उत्पन्न करनेवाला महामोहनाम था वह हाथ में वर्त्तमान शूल के समान तीक्ष्ण अपनी स्वाधीनी में वर्त्तमान बुद्धि के द्वारा मारागया, उस महामोह के नाश होने पर जीवों ने पूर्व के समान वेदशास्त्रों को पढ़कर ब्रह्मभाव को प्राप्त किया अर्थात् जीवन्मुक्त होकर भी अनादि वासना के कारण से एक वेद की निष्ठा रखनेवाले हुए, तदनन्तर चैतन्य आत्मा को हृदयाकाश में इन्द्रियों की स्वामिता में अभिषेक करके अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ होने से जितेन्द्रिय होकर सप्तऋषियों ने मनुष्यों का दण्ड और पोषण विचार किया, जो सप्तऋषि संसार के अहंकार हैं उनसे भी ब्रह्मज्ञानी की उत्तमता को वर्णन करते हैं पञ्चज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि यही सप्तऋषि हैं इन सब ऋषियों के ऊपर हज़ार आरेवाला चक्र देह से पृथक् परमात्मा है वह देह में नियत है और पृथक् २ मण्डलों में षट्चक्रों के राजा गणेश आदि जो कि योग के विघ्नों के नाश करनेवाले हैं, वह वर्त्तमान हैं अब उस कामआदि के जीतने की कठिनता का वर्णन करते हैं जो बड़े कुल में उत्पन्न हुए वृद्ध से वृद्ध प्राचीनलोग हैं उनके हृदय से भी यह आसुरीभाव दूर नहीं होता है इस कारण से देहाभिमान रखनेवाले मनुष्य उन आसुरी गुणों में प्रवृत्त होने से आसुरीकर्म्मों में प्रवृत्तहुए, जो मनुष्य बड़े अज्ञानी हैं वह उन्हीं कर्म्मों में प्रवृत्त होते हैं और उनकोही जारी करते हैं और अब भी उन्हीं का अभ्यास करते हैं, हे राजन्! इसकारण से मैं शास्त्र से अच्छेप्रकार विचारकर तुम से कहता हूं कि जीव आत्मज्ञानही को प्राप्तकरे और हिंसात्मक कर्म्मों का त्यागकरे, बुद्धिमान् मनुष्य धर्म्म करने के निमित्त न्याय को त्यागकर वर्णसंकर से धन को प्राप्त नही करे क्योंकि उसमें कल्याण नहीं है भाइयों को प्यारा माननेवाले संसार

के रक्षक और जितेन्द्रिय होकर तुम अपनी प्रजा और नौकर चाकर और पुत्रादिकों को धर्म्म से पोषणकरो, प्रिय अप्रियता के योग में शत्रुता और मित्रता को प्राप्त करता है और हज़ारों जन्मोंतक इसी चक्र में फिरता है, इसकारण गुणों में प्रीतिकरो और दोषों में कभी स्नेह न करो जो गुणरहित और निर्बुद्धि है वह भी अपने गुणों से अत्यन्त प्रसन्न होता है, हे राजन् ! मनुष्यों में धर्म्म और अधर्म्म दोनों जारी हैं और मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों में इस प्रकार से नहीं हैं, धर्म्म का अभ्यास रखनेवाला ज्ञानी भोजन आदि की इच्छा से अथवा अनिच्छा से सदैव आत्मारूप मनुष्य या अन्यजीवों की अहिंसा से लोक में विचरे, जब उसका मन हृदय वासना से और अहंकार वा अज्ञानता से पृथक् होता है तब ब्रह्मानन्द को पाता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एकसौबाईस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, हे राजन् ! अब मैं तप की प्रशंसा करने के निमित्त गृहस्थाश्रम की निन्दा करता हूं—प्रथम गृहस्थ की यह धर्म्मबुद्धि वर्णन की अब तप की बुद्धि को सुनो कि बहुधा राजस, तामस, सात्त्विक भावों के कारण से गृहस्थी की ममता प्रीति से उत्पन्न होनेवाली होती है इस हेतु से इसलोक में गृहस्थाश्रम में नियत होकर मनुष्य को पशु, क्षेत्र, धन, स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर आदि प्राप्त होते हैं, इसप्रकार से उस आश्रम में प्रवृत्त और उनके नाश को होते हुए दृष्टिकरनेवाले उसगृहस्थी के रागद्वेषआदि अत्यन्त वृद्धि को पाते हैं, हे राजन् ! उस रागद्वेष से हारेहुए धन की स्वाधीनता में वर्त्तमान मनुष्य को मोह से उत्पन्न होनेवाली प्रीति अच्छेप्रकार से प्राप्तहोती है, संसारी प्रीति में फँसे हुए सब मनुष्य अपने को यथेष्ट लाभवान् और भोग करनेवाला मानकर स्नेह और स्त्रीप्रसंगादि सुखों के कारण से दूसरे लाभों को नहीं विचारते हैं, इसके पीछे लोभ में डूबेहुए वह मनुष्य संग से दासी दास आदि को बढ़ाता है और उन सब के पोषण के निमित्त व्याज आदि व्यापारों से धन की वृद्धि करता है, वह मनुष्य करने के अयोग्य कर्म्मों को भी जानबूझकर धन के लिये करता है और पुत्रादि के स्नेह में डूबा हुआ उनके नाशहोने में महाशोक करता है, तदनन्तर अहंकार और अहंबुद्धि से संयुक्त होकर अपनी पराजय को बचाता यश और स्त्री आदि की चित्त में इच्छा करता है अर्थात् अपने को भोगी मानकर उसी स्त्री आदि के कारण नाश को पाता है, और इसीप्रकार धन स्त्री आदि के नाश और देह मन के रोग सन्तापादि से उसको वैराग्य उत्पन्न होता है और जो बुद्धिमान् सनातन ब्रह्म के कहनेवाले उत्तम कर्म्म

की अभिलाषायुक्त संसारी सुखा के त्याग करनेवाले हैं, उनको सच्चा वैराग्य होता है और उस वैराग्य से आत्मज्ञान होता है आत्मज्ञान से शास्त्रदर्शन होता है और शास्त्र के अर्थोंपर दृष्टि होने से तप कोही कल्याणरूप जानता है, सारासार का विचारनेवाला नरेन्द्र मनुष्य कठिनता से मिलता है, जिसने स्त्री आदि से उत्पन्न होनेवाले सुखके निमित्त दुःखों को पाया वह उसमें दोष जानकर तप का करना निश्चय करता है, हे तात ! वह सावधान होकर उस शूद्र का भी तप कहाजाता है जो कि जितेन्द्रिय और तप के क्लेशों के सहनेवाले मनुष्य के स्वर्गमार्ग को वर्त्तमान करनेवाला है हे राजन् ! प्रथम बड़े ब्रह्मज्ञानी प्रजापतिजी ने किसी जन्म और किसी देश में व्रतों में निष्ठ होकर तपस्या से सृष्टि को उत्पन्नकिया, द्वादशसूर्य्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, उनचासवायु, विश्वेदेवा, साध्यगण, पितृगण, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध और अन्यस्वर्गवासी देवता आदि सब तपसेही सिद्ध हुए हैं, प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने तप के द्वारा जिन ब्राह्मणोंको उत्पन्नकिया वह प्रजा को उत्पन्न करते पृथ्वी और स्वर्ग में विचरते हैं जो राजालोग और गृहस्थीलोग इसनरलोक में बड़े कुल में उत्पन्न दृष्टआते हैं यह सब तप ही का फल है और जो रेशमी इत्यादि वस्त्र, सुन्दर भूषण, श्रेष्ठ सवारी, आसन और उत्तम भोजनादि की वस्तु हैं वह सब भी तप ही का फल है, जो इच्छा के समान और स्वरूपवाली अच्छी स्त्री हैं और महलों में निवास हैं वह भी तपही का फल है, उत्तम पलँग आदि यथेष्टभोग की उत्तम वस्तु भी श्रेष्ठकर्म्म करनेवालों केही होती हैं, हे परन्तप ! तीनों लोक में तप के विना कोई वस्तु की प्राप्ति नहीं है अर्थात् तप ही से सब पदार्थ मिलते हैं और जिनको तत्त्वज्ञान प्राप्तनहीं हुआ उनके तप के फल वैराग्यरूप हैं, हे राजन् ! उत्तम मनुष्य सुखी दुःखी कैसाही हो वह चित्त और विचारवाली बुद्धि से शास्त्र को विचारकर लोभ को सबप्रकार से त्याग करता है, असन्तोषी होना दुःख का मूल है और लोभ से इन्द्रियों में व्याकुलता होती है और उस से उसकी बुद्धि ऐसी नष्ट होती है जैसी कि अभ्यास न रखनेवाले की विद्या नाश होजाती है, जब बुद्धि में नष्टता होती है तब योग्यायोग्य कर्म्म का विचार नहीं करता है इसकारण मनुष्य सुख के नाशहोनेपर कठिन तपस्या करे, जो चित्त से प्यारा है वही सुख और जो चित्त से बुरा है उसीको लोक में दुःख मानते हैं किये और विनाकियेहुए तप का फल जो सुखदुःखनाम है उसको देखो अर्थात् विचारकरो कि शुद्ध तप का फल कल्याण है उसी से सुखों को भोगकर विख्यात होता है फल की इच्छा रखनेवाला मनुष्य ऊपरलिखेहुए फल को त्याग करके बड़े असह्य अपमान और दुःख वा विषयरूपी सुख को पाता है, जैसे इसकी

इच्छा कर्म्म धर्म्म तप और दान में उत्पन्नहोती है उसीप्रकार पापकर्म्मों को भी करके नरक को पाता है हे नरोत्तम ! सुख या दुःख में भी वर्त्तमान मनुष्य अपने गुरुपूजन आदि व्रतों से नष्टता को नहीं पाता है क्योंकि वह मनुष्य शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाला है, स्त्री आदि के स्पर्श में जो सुख होता है वह उतनीही देर तक नियत रहता है जितनी देर में कमान से निकलनेवाला तीर पृथ्वीपर गिरता है इसीप्रकार रसना आदि इन्द्रियों का भी सुख थोड़ेही कालतक होता है, फिर उस स्त्री आदि के नाश से इसको कठिन दुःखहोता है, सबसे उत्तम जो मोक्ष सुख है अज्ञानीलोग उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं, इसीकारण सब बुद्धिमानों के शम दम आदि गुण मोक्ष के निमित्त उत्पन्न होते हैं, धर्म्मवृत्ति में सदैव रहने के कारण काम अर्थ से मोहित नहीं होता है, सब बातें प्रारब्धाधीन हैं फिर उद्योग करना व्यर्थ है इस शंका के निवृत्त करने को दोनों की प्रशंसा करते हैं–प्रारब्ध से उत्पन्न होनेवाली जो स्त्री और खाने पीने भोगने की वस्तु हैं वह गृहस्थियों को भोगनी चाहिये और अपना धर्म्म बड़े उपाय से होने के योग्य है अर्थात् धर्म्म में उद्योग ही बलवान् है, प्रतिष्ठावान् कुलीन और सदैव शास्त्रार्थरूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों को यज्ञादिकक्रिया प्राप्त होनी सम्भव है और धर्म्मरहित चित्त से अज्ञानी पुरुषों की क्रिया असम्भव है, अब दोनों के कर्म्मों के भेदों को वर्णन करते हैं–मैं मनुष्य हूं इस अभिमान से कियाहुआ कर्म्म नाश होजाता है इसीकारण उन शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों का कर्म्म तपस्या के सिवाय दूसरा नहीं है, अब उन अज्ञानीलोगों के धर्म्म को सुनो–गृहस्थी अपने धर्म्ममें प्रवृत्त हव्यकव्यके लिये बुद्धिमानी के साथ यज्ञादिक कर्म्मों में निश्चय करे, जैसे सब नद नदी समुद्र में जाकर निवास करते हैं इसीप्रकार सब आश्रमी गृहस्थी के पास आश्रय लेते हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

एकसौतेईस का अध्याय ॥

राजा जनक बोले कि, हे महर्षे ! वर्णों में जो विभाग हैं वह किसकारणसे हुए उनको मैं सुनना चाहता हूं जो यह सन्तान पैदा होती है वह उसी पिता के रूप हैं यह श्रुति है ब्रह्मा की सन्तान सृष्टि ने कैसे दूसरे वर्ण को पाया अर्थात् सतोगुणी ब्राह्मण का पैदा होना योग्य है उससे रजोगुण प्रधान क्षत्री आदि कैसे उत्पन्न हुए पराशरजी बोले हे महाराज ! यह इसीप्रकार से है कि जो जिस से उत्पन्न हुआ वह वही है परन्तु तप के न होने से जातिभेद को पाया है अच्छे क्षेत्र और बीज से उत्तम और पवित्र सन्तान उत्पन्न होती है और नीच से नीच ही सन्तान होती है लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी के मुख भुजा जंघा और चरणों

से पुत्र उत्पन्नहुए हे तात, राजन्, जनक! ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हैं, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से, शूद्र चरणों से पैदाहुए हैं इसप्रकार से चारों वर्णों की उत्पत्ति है इनसे अन्य जो दूसरे हैं वे संकरवर्ण हैं उनके नाम क्षेत्ररथ, क्षत्रिय, अतिरथी, अंबष्ठ, उग्र, वैदेहिक, श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मागध, आयोग, कारण, व्रात्य, चाण्डाल यह सब इन्हीं चारोंवर्णों के अन्योन्य भोगों से उत्पन्न हुए हैं, भिन्न अंग न रखनेवाले अज्ञान से यह सब संसार उत्पन्नहुआ है यही सर्व्वत्र सुनाजाता है उसमें अंगों का विचार करना कहां से है यह शंका करके जनक ने कहा कि एक ब्रह्मा जी से सृष्टि के मनुष्यों की मिलीहुई आधिक्यता और गोत्र आदि की उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि इसलोक में अनेक गोत्र हैं, जहां तहां किसीप्रकार से पैदा होनेवाले मुनियों ने अपने मूल को पाया है जैसे कि कक्षीवान् से शूद्रा में उत्पन्नहोनेवाले पुत्रों ने ब्राह्मणवर्ण को पाया उसी प्रकार शुद्धयोनि में उत्पन्नहोनेवाले अन्य मनुष्य विपरीतयोनि में नियतहुए, पराशर जी बोले कि, हे राजन्! तप से शुद्ध अन्तःकरण महात्माओं की यह उत्पत्ति उस मनुष्य से जो कि रजोगुण तमोगुण में प्रवृत्त हो जानने के योग्य नहीं है, हे राजन्! मुनिलोगों ने जहांतहां पुत्रों को उत्पन्न करके फिर अपनेही तप से उनका ऋषिभाव विचार किया, पूर्व्वसमय में काश्यप गोत्री ऋषिशृंग मेरे पितामह वेदताण्डव, कृप, कक्षीवान्, कमठ, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतंग, दत, द्रुमद, मात्स्य इन सब ने तप के ही आश्रय से अपने मूल को पाया वह वेदज्ञ शान्तचित्त तप के ही द्वारा प्रतिष्ठित हुए, हे राजन्! सगुण ब्रह्ममें यह चार गोत्र अर्थात् नाम पैदाहुए अंगिरा, काश्यप, वशिष्ठ, भृगु, आशय यह है कि अंगिरा अंगों का रस है इसीकारण देवताओं ने उसका नाम अंगिरा रक्खा है और हम सब से अधिक जितेन्द्रिय होने से देवताओं ने वशिष्ठ नाम रक्खा यह श्रुति है, हे राजन्! इसीप्रकार से दूसरे सब गोत्र कर्म्म से और उनका नाम तप से विख्यात हुआ यह सब नाम गोत्र सत्पुरुषों के अंगीकार कियेहुए हैं, राजाजनक बोले कि हे भगवन्! आप प्रथम सबवर्णों के मुख्यधर्म्मों का वर्णन कीजिये फिर सर्वसाधारण धर्म्मों को कहिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, पराशर जी बोले कि हे राजन्! दानलेना यज्ञकराना और वेदपढ़ना यह तो ब्राह्मणों के मुख्यधर्म्म हैं और संसार की रक्षा करना यह क्षत्रियों का मुख्य धर्म्म है, खेती पशुपालन और व्यापारादि यह वैश्यों के मुख्यधर्म्म हैं हे भूप! यह तीनोंवर्ण द्विजन्मा कहेजाते हैं इनतीनों वर्णों के सिवाय शूद्र का कर्म्म पृथक् है, यहवर्णों के मुख्यधर्म्म वर्णन किये और इनके सिवाय सर्व्व साधारण वर्णों को सुनो उनको मैं विस्तार समेत कहता हूं, दया, अहिंसा, अप्रमादता, सब का भागदेना, श्राद्धकरना, अतिथि को भोजनदेना, सत्यबोलना,

क्रोध न करना, अपनी ही स्त्री पर सन्तोष करना, सदैव बाहर भीतर से पवित्ररहना, किसी के दोष को न कहना, आत्मज्ञान, शान्ति, यह सब धर्म्म सर्व्व साधारण हैं अर्थात् सब के लिये योग्य हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों द्विवाश संस्कार होने से संस्कारी हैं और इन पूर्व्वोक्त धर्म्मों के अधिकारी भी हैं और हे राजन्! यह तीनों अपने धर्म्म से विपरीत चलने में अपने २ अधिकार से अधःपतन होते हैं अर्थात् नीचेअधिकार में गिरते हैं और सतोगुण आदि से उत्पन्न होनेवाले गुण उस स्वकर्म्मनिष्ठ मनुष्य के आश्रित होकर वृद्धि को पाते हैं और शूद्र वेदोक्तधर्म्मों से रहित होता है इसी से वह अपने से नीचे अधिकार में नहीं गिरता है परन्तु उक्त दशप्रकार के धर्म्मों में इसको निषेध भी नहीं किया हे राजन्, जनक! वेदपाठी ब्राह्मण शूद्र को तीसरे जन्म में ब्राह्मण के समान मुक्त होनेवाला कहते हैं और वही वेदज्ञ ब्राह्मणलोग शूद्र को वैदेहिक कहते हैं मुख्य आशय यह है कि जो स्थूलशरीर को त्याग करके सूक्ष्म-शरीर को आत्मारूप जानते हैं वह विदेह कहलाते हैं और जो स्थूल सूक्ष्म दोनों देहों को त्याग करके प्रधाननाम कारण को आत्मारूप जानते हैं वह प्रकृति में लयहोनेवाले हैं और तीनोंशरीरों के त्यागकरनेवाले ब्राह्मण हैं, पहले की मुक्ति दो जन्म में दूसरे की एकजन्म में और तीसरे की शीघ्रही होती है इसकारण से ब्राह्मणों ने शूद्र को वेदहीन कहा है अर्थात् शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय के जन्म को पाकर ब्राह्मण होता है यज्ञ न करनेवाले शूद्र की चित्तशुद्धि होने से वह कैसे विदेह आदि होगा इसका कारण कहते हैं—कामादि दोषों को दूर करने की इच्छावाला अथवा आत्मा की निवृत्ति चाहनेवाला शूद्र सत्पुरुषों के शान्तचित्त दया आदि चलनपर नियत होकर विनामन्त्र पौष्टिकादि क्रियाओं को करके दोष के भागी नहीं होते हैं और अन्यलोग जिस २ उत्तमरीति चलन को अंगीकार करते हैं उसी २ प्रकार से इसलोक परलोक दोनों में आनन्द को भोगते हैं, राजा जनक ने कहा कि, हे महामुने! इस मनुष्य को कौन सा कर्म्म दोषयुक्त करता है इस मेरे संदेह को भी आप निवृत्त करिये, पराशरजी बोले कि, हे महाराज! निस्संदेह कर्म्म बिरादरी दोनों दोषों के उत्पन्न करनेवाले हैं इसके मूल को सुनो कि जो मनुष्य ज्ञाति और कर्म्म से दूषित कामों को नहीं करता है और जो ज्ञाति से दूषित मनुष्य पाप को नहीं करता है वह उत्तम पुरुष कहाता है राजा जनक ने कहा कि हे मुने! इसलोक में कौन से कर्म्म धर्म्मरूप हैं, जिनको सदैव करने से मनुष्य की हानि नहीं होती, पराशरजी ने कहा कि हिंसारहित धर्म्म ही इसलोक में मनुष्य की रक्षा करते हैं वह यह हैं कि तप से पृथक् उदासीन पुरुष अग्नियों को त्यागकर अर्थात् संन्यासी होकर क्रम से योगमार्ग में प्रवृत्त होके मोक्षरूप सुख को देखते हैं श्रद्धा और नम्रतापूर्व्वक दानयुक्त

होकर मनवाणी से शान्त शुद्धचित्तहोना, सूक्ष्मबुद्धि होकर सब कर्म्मों का त्यागना इन कर्म्मों से मनुष्य रूपान्तररहित स्थान को पाता है, हे राजन्! सबवर्ण धर्म्मरूप कर्म्मों को अच्छीरीति से करके सत्यवक्ता हो जीवलोक में भयकारी अधर्म्मों को त्यागकर स्वर्ग को पाते हैं इसमें किसीबात का विचार न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

एकसौचौबीस का अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि, इसलोक में भक्ति आदि से रहित मनुष्यों के पिता, मित्र, गुरु, स्त्री, आदि कोई भी इसकी सेवा आदि का फल देने को समर्थ नहीं होते हैं और पूर्णभक्त प्रियवादी शुभचिन्तक जितेन्द्रिय मनुष्य रक्षा सेवा आदि के फल को पाते हैं, मनुष्यों का श्रेष्ठ देवता पिता है पिता के कहने से माता संयुक्त समझना चाहिये और ज्ञान के लाभ को उत्तम कहते हैं और जिन्हों ने इन्द्रियों के विषयों को जीता वह ब्रह्मपद को पाते हैं, जो राजकुमार युद्धभूमि में जहां बाणरूप अग्नि का शस्त्र है उससे घायल होकर मरता है वह देवपूजित लोकों को पाता है और सुखपूर्वक स्वर्गफल को भोगता है, हे राजन्! जो मनुष्य थका हुआ, भयभीत, अशस्त्र, हाथजोड़े, रथ कवच आदि सामानसे हीन, विना शस्त्र प्रहार किये अथवा रोगग्रस्त सन्मुख आकर बालक या वृद्ध के समान प्रार्थना करनेवाला है ऐसे मनुष्य को कभी न मारे, हे राजन्! ऐसे क्षत्रिय के लड़के को जो रथ, शस्त्र, कवच युक्त शस्त्र को प्रहार करनेवाला अपनी समान का हे उसको मारे, इसलोक में समान या अपने से उत्तम पुरुष के हाथसे अपना मरण होना कल्याणरूप है और नीच नपुंसक और कृपण के हाथ से मरना निन्दित कियाजाता है, पापी पापकर्म्मवाले और नीचजाति के हाथ से मरना पापरूप कहाजाता है और उसका फल भी निश्चय नरक होता है, हे राजन्! मृत्यु के वशीभूत मनुष्य की कोई रक्षा नहीं करसक्ता है और जिसकी अवस्था बाकी है उसको कोई मार नहीसक्ता, इसलोक में माता आदि के किये हुए कर्म चाहें हिंसारूप ही होंय उनपर कभी ध्यान न करे और दूसरे के प्राणों से अपने प्राणों का पोषण नहीकरे हे तात! बन्धन का नाश चाहनेवाले या पक्षिरूप परमात्मा के द्वारा परमानन्द की इच्छा करनेवाले क्रियावान् सब गृहस्थियों का तीर्त्थोंपर मरना अच्छा है—अब हठ से तीर्त्थोंपर मरने की निन्दा करते हैं—जिस मनुष्य ने देह को पाकर हठजल प्रवेशादिक से अपने देह को त्याग किया उसका देह वैसाही है जैसा कि पूर्व में उत्पन्न होता है अर्थात् इस प्रकार से देह का त्यागनेवाला देह के कठिन दुःखों को पाता है यह हठमार्ग निन्दित है

क्योंकि यह मोक्षक्षेत्र में भी इस देह से दूसरेही देह में प्रवेश करता है फिर क्या इसकी मोक्ष नहीं है यह शंका करके कहते हैं—एक देह से दूसरे देह के मिलने में दूसरा कोई कारण वर्त्तमान नहीं है अर्थात् उस देह के गुण केवल भोगही होने और कर्म्मगुण न होने से दूसरे देह की उत्पत्ति नहीं है क्योंकि जीवों का वह यातनारूप देह मोक्ष के योग्य होकर रुद्र पिशाचादिकों में पूर्व्व कर्म्म फल के पूरेहोने के निमित्त संयुक्त होकर वर्त्तमान होता है वेदान्त विचार करनेवाले ज्ञानियों ने देह को शिरा और स्नायुनाम नाड़ी और हाड़ों का समूह अत्यन्त अपवित्र वस्तुओं से भराहुआ पञ्चतत्त्वात्मक वासनारूप विषयों के इकट्ठे होने का स्थान है ऐसा कहा है और परिणाम में मृत्यु होनेवाला सुन्दरतादिरूपों से रहित नाशवान् पूर्वसंस्कार से मनुष्यता को प्राप्त होनेवाला है, जीवात्मा से और चेष्टा से रहित जड़रूप देह जिसमें पञ्चतत्त्व अपने २ मूल कारणों में लयहुए पृथ्वी में मिलजाता है फिर योगादि कर्म्मों से प्रकट किया हुआ जहां तहां उत्पन्न होता है और स्थान २ पर मृत्यु को पाता है उसीप्रकार उसी का स्वरूप अपने कर्म्म के फल से दिखाई देता है, हे राजन्! फिर वह भूतात्मा कुछ समयतक जन्म नहीं लेता है और ऐसे भ्रमण करता है जैसे कि आकाश में बड़ा बादल घूमता है फिर इसलोक में उद्धार होकर जन्म को पाता है, उद्धार यह है कि चित्त से अधिक आत्मा है अर्थात् संकल्प से रहितहोना और संकल्प से पृथक् आत्मा में नियत होना मोक्ष का लक्षण है इन्द्रियों से प्रधान मन है और सब जीवों में चैतन्य जीव श्रेष्ठ हैं और चैतन्य चेष्टावान् जीवों में द्विपाद जीव उत्तम हैं और द्विपादों में भी द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों वर्ण श्रेष्ठ हैं और इन द्विज वर्णों में संतानयुक्त उत्तम हैं, प्रजाओं में योगी और योगियों में योग ऐश्वर्य्य से उत्पन्न होनेवाले निरहंकारी उत्तम हैं, मनुष्यों को यह पूर्ण निश्चय है कि संसार को मृत्यु प्राप्त होती है प्रजालोग सतोगुण आदि से युक्त कर्म्मों को कहते हैं, हे राजन्! जब सूर्य्यनारायण उत्तरायण हों तब शुभ नक्षत्र और मुहूर्त्त में जो पुरुष मरता है वह ब्रह्मलोक के पाने का अधिकारी है, पाप से निवृत्त हो मनुष्यों को विना दुःख दिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर्म करके कालजन्यमृत्यु से जो शरीर को त्यागता है वह भी उत्तम गति को पाता है, विष, फांसी, अग्नि, चोरों के हाथ से, मांसाहारी डाढ़वाले पशुजीवों से मरना प्रकृति मरण कहाजाताहै, आशय यह है कि दुःख से पीड़ित भी योगी इस अपमृत्यु को नहीं चाहै, इच्छा से उत्पन्न इन अपमृत्यु और इसी प्रकार की अन्य बहुत सी मृत्युओं को भी वह पुरुष नहीं पाते हैं जो कि पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, हे राजन्! पवित्र कर्म्म करनेवाले पुरुषों के प्राण सूर्य्यमण्डल को भेदकर जाते हैं और सामान्य धर्म्म करनेवालों के प्राण नरलोक नाम सामान्य मार्ग से जाते

हैं और निकृष्टकर्म्म करनेवालों के नीचे मार्ग जो पशुपक्षी योनि हैं उनमें जाते हैं, हे राजन्! पुरुष का शत्रु एकअज्ञानही है उससे अधिक कोई दूसरा दुःखदायी नहीं है उससे ही ढका और संयुक्त मनुष्य भयानक और भय के उत्पन्न करनेवाले कर्मों को करता है, उसी अज्ञान के नाश के लिये वेदोक्त धर्म्म में प्रवृत्त होकर वृद्धों के सत्संग से समर्थहोवे, हे राजपुत्र! वह अज्ञान नाम शत्रु बड़े उपायों से जीतने के योग्य है वह ज्ञानरूप बाण से घायल करकेही नाश कियाजाता है, ब्रह्मचारी तपस्या के द्वारा वेद को पढ़कर सामर्थ्य के अनुसार पञ्चयज्ञों को करके धर्म्म और मोक्ष मार्ग में नियत होकर वन को जाय, मनुष्य उपभोगों के न मिलने से अपनी हानि न करे हे राजन्! जीवों में भी मनुष्य देह पाना बड़ा उत्तम है यही जन्म आदि है इसी को पाकर शुभ लक्षणयुक्त कर्म्मों के द्वारा आत्मा की रक्षाहोना संभव है, इसी देह में वेद के प्रमाण से मनुष्य अनेक धर्म्म कर्म्म करसक्ता है, जो मनुष्य इस दुष्प्राप्य मनुष्य शरीर को पाकर उत्तम कर्म्म नहीं करता है और धर्म्म का अपमान करने वाला है वह दुराचारी कर्म्म से ठगाजाता है, जो मनुष्य सबजीवों को कृपादृष्टि से देखता है और सामर्थ्य के अनुसार दान मान सत्कार से उनका पोषण भी करता है और श्रेष्ठमीठे वचनों से प्रसन्न करता है वह सुख दुःख में समान होकर परलोक में प्रतिष्ठा को पाता है दान त्याग शान्तरूप श्रेष्ठ है और जल और तपस्यादि से शरीरको पवित्र करना चाहिये वह जल सरस्वती नदी पुष्कर नैमिष इत्यादि पृथ्वी के बहुत से तीर्थों में वर्त्तमान हैं, जिन पुरुषों के प्राण घरों में निकलते हैं उनको सवारी के द्वारा समीपी पुण्यक्षेत्र अथवा श्मशान भूमि में लेजाकर विधि से दाहादि कर्म्म करना उत्तम है, अमावास्या पूनों के अंगरूप यज्ञ को इष्टि कहते हैं और बालबच्चों के पोषणको पुष्टि कहते हैं इन दोनों को और यज्ञ करना कराना दान पवित्र कर्म्मों का प्रचार करना इत्यादि जो उत्तम कर्म्म हैं इनसबको यह मनुष्य आत्मा के निमित्त सामर्थ्य के अनुसार करता है और साधारण कर्म्म करनेवाले मनुष्य के कल्याण के निमित्त वेद के छओं अंग और धर्म्मशास्त्र धारण कियेजाते हैं, भीष्मजी ने कहा हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से पराशरजी ने राजा जनक से वर्णन किया ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

एकसौपच्चीस का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे तात! मिथिलापुरी के राजा जनक ने फिर भी धर्म्म के निश्चय की उत्तमता को पराशरजी से पूछा कि हे बड़े बुद्धिमन्, आप! कल्याण का क्या साधन है कौन गति है और कौन सा कर्म्म नाश नहीं होता

और कहां जाकर फिर यहां लौटकर नहीं आता है इसको आप कृपा करके समझाइये, पराशरजी बोले कि, हे चिन्मात्ररूप, जनक ! माया के सब पदार्थों से प्रीति न करना कल्याण का मूल है और ज्ञान का होना परमगति है और करी हुई तपस्या का नाश नहीं होता है क्षेत्र और सत्पात्र में बोयाहुआ अथवा दिया हुआ दान नाश नहीं होता है, जब अधर्मरूप फांसी को काटकर धर्म्म में प्रीति करता है तब निर्भयता करनेवाले दान को देकर संन्यास को धारण करके मोक्षरूप सिद्धि को पाता है यह चौथे प्रश्न का उत्तर हुआ, जो पुरुष हज़ारों गौ और घोड़ों को दान करता है और जीवमात्र को निर्भय दान देता है उसको सदैव निर्भयता प्राप्त होती है, बुद्धिमान् असंग पुरुष विषयों में नियत होकर भी पृथक्ही रहता है और दुर्बुद्धि मनुष्य सदैव नीच पुरुषों में और विषयों मेंही पड़ा रहता है, कमल के पत्ते के ऊपर जैसे जल की बूंद नहीं ठहरती है इसीप्रकार ज्ञानी को अधर्मस्पर्श नहीं करसक्ता है और काष्ठपर लाख के समान अज्ञानी महापापिष्ठ मनुष्य को स्पर्श करता है, ७ और दानरूप क्रिया के फल के चाहनेवाले और कर्म्म के करने के अभिमानी पुरुष को अधर्म्म कभी नहीं त्याग करता है, शुद्ध अन्तःकरण और आत्मज्ञान के विचारनेवाले पुरुष कर्म्मों के फल से कष्ट को नहीं पाते हैं जो कर्त्ता, पुरुष बुद्धि और कर्म्मेन्द्रियों के नष्टकर्म्मों को नहीं जानता है और अच्छे बुरे कर्म्मों के फलों में आसक्त चित्त है वह बड़े भय को पाता है, जो सदैव वैराग्यवान् और क्रोध का जीतनेवाला होता है वह विषयों में वर्त्तमान भी पापयुक्त नहीं होता है, जैसे नदीपर बाँधाहुआ सेतु चलायमान नहींहोता है किन्तु नदी की पुष्टि करता है इसीप्रकार सब रागों से रहित धर्म्मरूप सेतु रखनेवाला मर्य्यादा पुरुषोत्तम मनुष्य पीड़ा नहीं पाता है और उसके तप की वृद्धि होती है, हे राजेन्द्र ! जैसे कि सिद्ध मुनिलोग नियम के द्वारा सूर्य्यसम्बन्धी तेज को पाता है इसी प्रकार योग प्राप्त होनेपर यह जीव समाधि और ध्यान के द्वारा ब्रह्मभाव को पाता है, जब स्वर्ग की इच्छा करनेवाला मनुष्य स्त्रियों का त्याग करता है और स्थान धन सवारी और नानाप्रकार के उत्तम कर्म्मों को त्याग करता है अर्थात् उन कर्म्मों के फलों को नहीं चाहता है तब उसकी बुद्धि विषयों को नहीचाहती है, जिसप्रकार इसलोक में तिलों का गुण पृथक् २ फूलों के योग से बड़ी २ मनोहर सुगन्धिताओं को पाता है इसीप्रकार अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण मनुष्यों के सदैव अभ्यास के द्वारा सतोगुण उत्पन्न होता है, जो विषयों में बुद्धि लगानेवाला मनुष्य किसीप्रकार से भी अपनी श्रेष्ठता को नहीं जानता है वह सब भावों में प्रवृत्त चित्त से ऐसे खैंचा जाता है जैसे कि कांटे में लगे हुए मांस से मछली पकड़ी जाती है, यह नरलोक देह और इन्द्रियों के समूह आदि के समान स्त्री, पुत्र, पशु आदि का समूह है परस्पर में रक्षा स्थान

से रहित है अर्थात् केले के समान सार से रहित है, जैसे नौका जल में डूब जाती है इसीप्रकार यह भी डूब जाता है मनुष्य के धर्म्म का समय नियत नहीं है और मृत्यु भी मनुष्य की राह नहीं देखती इससे सदैव धर्म्म काही अभ्यास रखना उत्तम है मनुष्य मृत्यु के मुख में अपने को समझा करे, धर्म्म से चित्तशुद्धि होनेपर योगाभ्यास करना चाहिये इसको कहते हैं कि जैसे अन्धा अपने घर में अभ्यास सेही जाता है इसीप्रकार ज्ञानी योगी योगाभ्यास में चित्तको लगाकर उस गति को प्राप्त करता है, योग के न होने में अप्रियता को कहते हैं—मरना जन्म के लिये कहा और जन्म मृत्यु से संयुक्तही है अज्ञानी मोक्षधर्म्म को न जानता हुआ चक्र के समान मायामें घूमता है, और बुद्धिमार्ग में चलनेवाले मनुष्य को इसलोक परलोक दोनों में सुख होता है—विस्तार करने से क्लेश होता है और संक्षेपता से करना सुखकारी है सब विस्तार पराये निमित्त हैं और त्याग को आत्महितकारी कहते हैं, जैसे कमल के मृणाल की लगीहुई कीच शीघ्रता से अलग होजाती है वैसेही पुरुष का आत्मा उपाधिरूप चित्त से पृथक् होता है, चित्त से उत्पन्न होनेवाला संसार चित्त सेही नाश होजाता है इसको कहते हैं—चित्तही आत्मा को योगमार्ग में लाता है फिर वह योगी उस चित्तरूप आत्मा को परम काष्ठा में मिलाता है जब वह योग सिद्ध होता है तब उस परमात्मा को देखता है, जो मनुष्य इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त कर्म्मकरने को अपना कार्य्यरूप मानता है वह इन्द्रियों के विषयों में संयुक्त होकर अपने योगरूप कार्य्य से नष्ट होजाता है, अब योग से नष्ट होनेवाले की गति को कहते हैं—इस जगत् में ज्ञानी और अज्ञानी का आत्मा कर्म्मों के द्वारा आप नीची और तिर्यग्-गति को और स्वर्ग में इन्द्रलोक को पाता है, अब योगनिष्ठ मनुष्य की गति को कहते हैं—जैसे मट्टी के पात्र में पकाया हुआ जल आदि नष्ट नहीं होता है उसीप्रकार तप से तपाया हुआ देह ब्रह्मलोक तक विषय को व्याप्त करता है, जो आत्मा विषयों को प्राप्त करता है वह भोगता नहीं है अर्थात् निस्संदेह वह साक्षी है और जो चिदाभास जीवरूप आत्मा वैराग्यवान् होकर भोगों को त्यागकरता है वही उनकेभोगने को निश्चय करता है, वह साक्षीरूप आत्मा जिस हेतु से संयुक्त नहीं होता है उसको सुनो—कोहरे से ढकेहुए के समान उदर और लिंग की तृप्ति में प्रवृत्त जीवात्मा जन्म सेही अन्धे के समान मार्ग को नहीं जानता है, जैसे वैश्य समुद्र से अपने मूलधन के अनुसार धन को पाता है उसीप्रकार इस संसारसागर में कर्म्म और विज्ञान से जीव की गति होती है, इस कालप्रधान लोक में वृद्धावस्था रूप से घूमतीहुई मृत्यु जीवों को ऐसे निगलजाती है जैसे कि सर्प हवा को निगलता है, जन्म लेनेवाला जीव अपने कियेहुए कर्म्मफलों को पाता है विना कर्म्म के कोई प्रिय अप्रिय वस्तु

नहीं मिलसक्ती, सदैव अच्छे बुरेकर्म्म इस मनुष्य को प्राप्तहोते हैं, तत्त्वज्ञ पुरुषों का दूसराजन्म नहींहोता इसको कहता हूं देहधारी मनुष्य संसारसागर के किनारे को पाकर जल के सिवाय दूसरे का तरना निश्चय नहीं करता है और महासमुद्र में इसका गिरना कठिन दृष्ट पड़ता है, जैसे कि नौका बड़ेजल में मल्लाहरूपी चित्तवृत्ति से रस्सी के द्वारा खैंचीजाती है इसीप्रकार चित्त भी अपने विचार से देह को कर्म्म में प्रवृत्त करता है, जैसे कि सब नदियां समुद्र में मिलती हैं उसीप्रकार आदिप्रकृति चित्त के विचार के द्वारा एकताप्राप्त करती है, बहुत प्रकार की प्रीतिरूपी रस्सियों से बँधेहुए चित्त और अज्ञान के स्वाधीन मनुष्य दुःख को पाते हैं, जो देहरूप घर और बाह्याभ्यन्तरीय शुद्धिरूप तीर्थवाला बुद्धि के मार्ग में चलनेवाला शरीरी है उसको दोनों लोक सुखदायी हैं मोक्षमार्ग में यज्ञादिककर्म्म दुःखरूपही हैं और त्यागादि सुखदायक हैं, क्योंकि सबयज्ञादिक कर्म्म दूसरे के अर्थ हैं और त्यागादि अपने ही निमित्त होते हैं, योग के विघ्नरूप जो पुत्रादि की चिन्ता है उसको न करना चाहिये इस बात को कहते हैं-सब मित्रवर्ग संकल्प से उत्पन्न होते हैं और ज्ञातिसम्बन्धी लोग कारणरूप हैं अर्थात् पूर्व संस्काररूप हैं पुत्र, स्त्री, दास, दासीआदि अपने प्रयोजन के सिद्धकरनेवाले हैं, माता पिता किसीके काम नहीं आते हैं और दानरूप पाथेय है अर्थात् पथि का भोजन है यह जीव स्वर्ग में जाकर अपने कर्म्मफल को पाता है यह माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री और मित्रों के समूह ऐसे दृष्टपड़ते हैं जैसे कि अशर्फी के ऊपर मुख्यरेखा-जैसे पूर्व समय के निजकिये हुए पापपुण्य मनुष्य को अपना २ फलदेने के लिये प्राप्तहोते हैं इसीप्रकार अन्तरात्मा सन्मुख वर्त्तमान कर्म्म फलों को जानकर बुद्धि को प्रेरणा करता है, जो मनुष्य एकाग्रचित्त योगाभ्यासी शूर धैर्य्यवान् और परिडत है उसको कभी लक्ष्मी ऐसे त्याग नहीं करती है जैसे कि सूर्य्य को सूर्य्य की किरणें नहीं त्यागतीं, जिसकी प्रशंसायोग्य बुद्धि है वह मनुष्य परमेश्वर और परलोक के मानने वा निश्चय वा उपाय वा निरहंकारता आदिसे आस्तिक्य बुद्धिके द्वारा कर्म्मका प्रारम्भकरे वह कर्म्म मिथ्या नहीं होता है, सब जीव निश्चय करके गर्भ सेही अन्ततक अपने पूर्व्वकर्म्मों के फलों को प्राप्तकरते हैं इसकारण वह पाप पुण्य त्याग नहीं किये जासक्के हैं, मृत्यु अपने साथी जीवन के नाशकरनेवाले काल के साथ देह को ऐसे त्यागकराती है जैसे कि आरे से निकलेहुए काष्ठ चूर्ण को वायु उड़ादेता है, इसीकारण प्रारब्ध से मिलनेवाली मर्य्यादाओं से प्राणों को धारण करके मोक्ष केही निमित्त उपाय करना चाहिये, धनस्वरूप पुत्र, स्त्री, सुन्दरकुल आदि सुख अपने पूर्व कर्म्म केही फल के द्वारा पाता है तात्पर्य्य यह है कि इन पदार्थों के निमित्त उपाय न करे केवल आत्मतत्त्व के साक्षात्कार के निमित्त उपायकरे,

भीष्मजी बोले हे तात! इसप्रकार से पराशरजी से उपदेश पायाहुआ राजा-जनक अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

एकसौछब्बीस का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! इस संसारमें सत्यता,शान्तता और बुद्धिमत्ता इत्यादि गुणों से ज्ञानी मनुष्य की प्रशंसा करते हैं इसको आपने किसप्रकार माना है, भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर! इसस्थान में एकप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें साध्यों का और हंस का संवाद है, अजन्मा और नित्य प्रजापति ब्रह्माजी सुन्दर पक्षधारी हंसरूप होकर तीनों लोक में घूमते थे दैवयोग से घूमते हुए साध्य देवताओं के पास आये साध्य बोले हे पक्षिन्! हम सब साध्य देवता तुम को नमस्कार करके मोक्षधर्म्म को पूछते हैं क्योंकि आप निश्चय करके मोक्ष के जाननेवाले हैं आप को हमने पण्डित और ज्ञानियों से मोक्ष-धर्म्म का वर्णन करनेवाला सुना है आप की कीर्त्ति और प्रकर्षता विख्यात है आप किसको उत्तम मानते हैं और किसमें चित्त को रमाते हो हे महात्मन्! उसीका उपदेश हम को कीजिये और अनेककर्म्मों में से मुख्य एककर्म्म को बताइये जिसको करके मनुष्य संसार बन्धनों से छूटकर परमगति को पावे, हंस ने कहाकि अमृतपान करनेवाले देवताओं में यह बात करने के योग्य सुनता हूंकि तपस्या करना सत्यता पूर्वक शान्तचित्त होना चित्त कोजीतना और हृदय के रागादि दोषों को त्यागकर प्रिय अप्रियको समान जानना अर्थात् उनमें सुख दुःख न माननाचाहिये मर्म्मभेदी वचन न कहना नीच से शास्त्रको न पढ़ना दूसरे को व्याकुल करनेवाला भयकारी असभ्यवचन का न कहना यह वचनरूप बाणमुख से निकलते हैं उनसे घायल होकर मनुष्य अहर्निश दुःखी रहता है वह वचनबाण दूसरे के मर्म्मस्थान को ऐसा नहीं विदीर्ण करते जैसाकि कहने-वाले के मर्म्म को छिन्नकरते हैं उन वचनरूप बाणों को पण्डित मनुष्य कभी दूसरेपर नहींछोड़े जो अन्यमनुष्य इसको किसी प्रकार से वचनबाणों से घायल भी करे तब भी इसको शान्तिही करनी योग्य है जो अत्यन्त क्रोधरूप पुरुष को प्रसन्न कर देता है वह उसके पुण्य के फल को प्राप्तहोता है, जो पुरुष दूसरे की अप्रतिष्ठा करनेवाले क्रोध को अपने आधीन करता है वह निर्भय दूसरे की निन्दा न करनेवाला और प्रसन्नचित्त दूसरों के पुण्यों को लेता है, जो पुरुष गालीखाकर कुछ नहीं कहता और चोट खाकर क्षमाकरता है वही उत्तम है क्योंकि श्रेष्ठपुरुषों ने क्षमा सत्यता, सरलता और दया कोही उत्तमकहा है, सब का मत यह है कि वेद की गुप्तबात सत्यता है, सत्यवचनों की गुप्तबात अपनेमनकी

इच्छाओं का रोकना है और इच्छाआदि के रोकने की गुप्तवार्त्ता मोक्ष है, जो पुरुष मन, वचन, क्रोध, लोभ, उदर और काम की शक्ति को रोके मैं उसको ब्राह्मण और मुनि मानता हूं, क्रोधकरनेवालों में क्रोधरहित होना उत्तम है इसी प्रकार अशान्त पुरुषों में शान्तपुरुष श्रेष्ठहैं और जो मनुष्यता के गुणसे पृथक्हैं उनसे मिलनसार मनुष्य श्रेष्ठ हैं इसीप्रकार अज्ञानी से ज्ञानी अथवा ब्रह्म का जाननेवाला उत्तम है गाली देनेवाले को अपनी ओर से गाली न दे शान्तपुरुष का क्रोध इस गाली देनेवाले को नाशकरता है और पुण्य भी हरलेता है, जो अत्यन्त निन्दित वा प्रशंसित मनुष्य रूखे और अप्रिय वचन को नहींकहे और घायल कियाहुआ धैर्य्य से बदला नहीं लेता है और मारनेवाले के पाप को नहीं चाहता है उस पुरुष की इच्छा देवलोक में देवतालोग करते हैं अप्रतिष्ठा किया हुआ और प्रहार कियाहुआ और गाली दियाहुआ भी अपने समानवाले या अपने से बड़े या नीच की क्षमाकरे तो सिद्धि को पाता है, आशय यह है कि मैं भी सदैव वृद्धों का सेवन करता हूं मेरा लोभ प्रकट नहीं होता है और क्रोध और बड़ी आवश्यकता में भी धर्म्म से पृथक् नहीं होता हूं और विषयादिक की प्राप्ति के लिये देवताओं से भी याचना नहीं करता हूं, कोई मुझे शाप भी देता है तो मैं उसे शाप नहीं देता हूं इसलोक में शान्तस्वभावहोने को मैं मोक्ष का द्वार जानता हूं सो यह गुप्त ब्रह्म है इसको कहता हूं कि मनुष्यदेह से बढ़कर कोई कुछ नहीं है, जिसप्रकार चन्द्रमा बादलों से अलग होता है उसी प्रकार पापों से छुटा रजोगुण से रहित पण्डित मनुष्य समय को देखता धैर्य्य से सिद्ध होता है, जो सब का बड़ाहोता है औ ब्रह्माण्ड मण्डप का स्तम्भरूप है और जिसकी सबलोग प्रशंसा करते हैं वह जितेन्द्रिय देवताओं में मिलता है, ईर्षा करनेवाले लोग जैसे पुरुषों के दोषों को कहना चाहते हैं वैसे उनके कल्याणरूपी गुणों को नहीं कहना चाहते हैं, जिसके वचन और मन अच्छेप्रकार से आधीन हैं और वेद तप अर्थात् स्वधर्मनिष्ठ होना और त्यागप्राप्त है वह इस सब के फल को पावे हैं ज्ञानी पुरुष अज्ञानियों को गालीदेने और अप्रतिष्ठा करने से सावधान करसके इसीकारण दूसरे को नहींमारे और अपघात भी न करे, पण्डित मनुष्य अपमान से ऐसे तृप्तहोजाय जैसे कि अमृत पीने से संतुष्ट होता है क्योंकि अपमान पाया हुआ सुख से सोता है और अपमान करनेवाला नष्ट होजाता है, क्रोधयुक्त मनुष्य जो यज्ञ करता है वा दान देता है अथवा तप होम आदि करता है उसके सब धर्म्म को यमराज हरलेते हैं और क्रोधी का परिश्रम निरर्थक होता है हे उत्तम देवताओ ! जिसके लिंग उदर दोनोंहाथ और वचन यह चारोंद्वार अच्छेप्रकार बुरे कर्म्म से बचेहुए हैं वह धर्मज्ञ पुरुष है, सत्यता, शान्तचित्त होना, सरलता, दया, धैर्य्य, क्षमा इत्यादि का अच्छे

प्रकार से अभ्यास करनेवाला सदैव वेद पाठ या जप में प्रवृत्त इच्छारहित और एकान्तवासी है वह मोक्ष का अधिकारी है जैसे कि बछड़ा चारों थनों को पीता है उसीप्रकार इनसब गुणों को करताहुआ मोक्ष का अधिकारी होता है और मैंने सत्यता से बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं पाया, मैं घूमताहुआ मनुष्य और देवताओं से कहता हूं कि सत्यता स्वर्ग की नसेनी इसप्रकार की है जैसे कि समुद्र की नौका होती है, यह पुरुष जैसे लोगों के साथ रहता है और जैसे मनुष्यों का संग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसाही होता है, जो संतों का सेवन करता है अथवा तपस्वी या चोर की सेवाकरता है वह इसप्रकार से उनके आधीन होताहै जैसेकि कपड़ा रंगके आधीन होता है, देवता सदैव साधुओं से वार्त्तालाप करते हैं और मनुष्यों के विषयभोगों को देखना भी नहींचाहते हैं क्योंकि विषयादिक नाशवान् हैं देखो अमृतरूप चन्द्रमा भी सदैव एकरूप नहीं रहता अर्थात् घटता बढ़ता है और वायु भी समान नही होती तीव्र मध्यम धीरे चलती है इसी प्रकार न्यूनाधिक युक्ति विषयोंको जो जानता है, वही जाता है, रागद्वेष से रहित जैसे हो वैसेही हृदय में अन्तर्य्यामी पुरुषके वर्त्तमान होनेपर उसी अन्तर्य्यामी के ज्ञान से युक्त और सत्पुरुषों के मार्ग में नियत पुरुष से देवता प्रसन्न होते हैं अर्थात् जो अन्तर्य्यामी है वही जीव है यह श्रुतियां जीव ब्रह्म की एकता को सिद्ध करती हैं यह आत्मा ब्रह्म है मैं ब्रह्म हूं वह तू है इत्यादि श्रुति कहती हैं, जो मनुष्य सदैव लिंगेन्द्रिय और उदरपूर्ति में प्रवृत्त हैं वह चोर और सदैव कठोरवचन कहनेवाले हैं उनको देवतालोग प्रायश्चित्त के द्वारा दोषों से रहित भी जानकर दूरसेही त्याग करते हैं, जो मनुष्य नीचबुद्धि सर्वभक्षी कुकर्मी हैं उन से देवता कभी प्रसन्न नहींहोते, जो पुरुष सत्यव्रत कृतज्ञ और धर्म्म में प्रवृत्त हैं देवता उनको सुख विभाग करके सेवन करते हैं, बहुत बकने से मौनहोना कल्याणरूप है और सत्यवचन कहना दूसरा कल्याणरूप है, धर्म्मरूप वचन कहना तीसरा कल्याणवचन है, प्रियवचन कहना चौथा कल्याण है अर्थात् यह चारों एक दूसरे से उत्तम हैं, यह सुनकर साध्यलोगों ने पूछा कि जो ऐसाही है तो लोग क्योंनहीं कल्याणवचनों को कहते हैं और यह लोक किससे ढका हुआ है और काहे से प्रकाश नहीं करता है और किस कारण से मित्रों को त्यागता है और स्वर्ग को नहीं जाता है हंसरूप ने उत्तर दिया कि यह लोक अज्ञान से ढकाहुआ है ईर्षा आदिसे प्रकाश नही करताहै लोभसे मित्रोंको त्यागकरता है और कुसंग से स्वर्ग को नहीं जाता है, जिसका अज्ञान नाश होगया है उसके प्रकार के लक्षण पूछने के लिये साध्यों ने प्रश्नकिया कि ब्राह्मणों में कौनअकेला रमता है और बहुत मनुष्यों में कौन सा अकेला ज्ञानी सुख पाता है और कौन अकेला पराक्रमी या निर्बल है और इनमें कौन लड़ाई आदि को प्राप्त

नहीं करता है, हंस बोले कि, ब्राह्मणों में ज्ञानी अकेला रहता है और अकेला ज्ञानी बहुत मनुष्यों के साथ सुखी रहता है और अकेला ज्ञानी पराक्रमी और निर्बल भी है इनमें ज्ञानीही लड़ाई आदि को प्राप्त नहीं करता, साध्यों ने कहा कि ब्राह्मणों के देवभाव होने का क्या कारण है और साधुभाव होने का क्या कारण कहाजाता है और इनके असाधु होने का क्या हेतु है और नरभाव कैसे होता है, हंस बोले कि, ब्राह्मणों का वेदपाठ या जप देवभाव का कारण है और व्रतादिकों का करना साधुभाव कहाजाता है दूसरे की निन्दाकरना असाधुभाव का कारण है और मृत्यु नरभाव का कारण कहाती है, भीष्मजी बोले कि, यह मैंने साधुओं का उत्तम संवाद वर्णनकिया और स्थूल सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति के कारण कर्म्म हैं और सद्भाव अविनाशी कहाजाता है अर्थात् सद्भावरहित जो किया जाता है वह मिथ्यारूप है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्धेषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

एकसौसत्ताईस का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! आपने सबके उपकार के लिये श्रेष्ठ लोगों का अंगीकार कियाहुआ यह योगमार्ग न्याय के अनुसार वर्णनकिया अब सांख्यशास्त्र में और योगशास्त्र में जो विशेषता है उसको विस्तारपूर्वक कहिये क्योंकि आप तीनों लोकों के ज्ञान को जानते हैं, भीष्मजी बोले कि, हे आत्मज्ञानिन्! तुम सांख्यमत के इस सूक्ष्मतत्त्व को मुझ से सुनो जोकि कपिल आदि महामुनियों से प्रकाश किया गया है हे नरोत्तम! जिसमें अनेकगुण हैं और संदेह आदि नहीं दिखाईदेते हैं वह शास्त्र केवल शुद्धब्रह्म सेही सम्बन्ध रखता है इसका आशय यह है कि प्राणसम्बन्धी प्रपञ्च और दूसरा अविनाशी शुद्धब्रह्म इनके विशेष सबकर्म्म उपासना आदि जो व्यवहार सिद्ध हैं यहां इन में से किसी को भी साथ लेकर द्वैतभाव नहीं है केवल एकही अकेला है इस वचन से संसार नाशवान् है परन्तु इसके सिवाय अन्यमतों में द्वैतता मानने से एकता सिद्ध करनेवाले वेदवचन निरर्थक समझे जाते हैं उनको जगत् की सत्यता का भ्रम दृष्ट पड़ता है ऐसे अनेक प्रकार के भ्रम सांख्यशास्त्र में नहीं होते और कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड का अन्तर अदृष्ट गुण हैं और इनके विपरीत दोष हैं, हे राजन्! वह योगी दोष और विषयों को ज्ञान से त्यागकर सब विषयभाव को सीपी में चांदी की भ्रान्ति के समान मिथ्या समझकर मनुष्य पिशाचादि के विषयों को यक्ष, राक्षस, देव, गन्धर्वों के विषयों को मनुष्य से देवता पर्य्यन्तों के ऐश्वर्य्यरूपी विषयों को प्रजापतियों में ब्रह्मादिक पर्य्यन्त के विषयों को, और इसलोक में अवस्था के अन्त को अच्छी रीति से जानकर और

सुख के परमतत्त्व को भी जानकर विषय के सदैव चाहनेवालों के दुःख के समय को समझकर पशु, पक्षी, तिर्य्यक् योनि के जन्म में और नरक में पड़े हुए लोकों का दुःख देखकर स्वर्ग को और वेद सम्बन्धी गुणों को भी जान कर ज्ञानयोग के गुण दोषों को ध्यान करके रागद्वेषादि में गुण अवगुण देखकर और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों में भी दश नौ आठ क्रम से अवगुण जानकर चित्तको छः आकाश को पांच बुद्धि को चार गुणवाली इत्यादि सब बातें अच्छेप्रकार से जानकर ज्ञान विज्ञानयुक्त सात्त्विक भावों से शुद्धचित्त आकाश के समान सूक्ष्मज्ञानी शुभ उत्तम मोक्ष को पाता है अब ब्रह्ममें सबके लयभाव को कहते हैं कि जैसे कुण्डल में सुवर्ण है उसीप्रकार रूप से युक्त चक्षुरिन्द्रिय, गन्ध से घ्राण, शब्द से श्रोत्र, रस से युक्त रसनाइन्द्रिय, स्पर्श में देह, आकाश में वायु, तम में मोह और अर्थों में लोभ लय होता है, वायु की गति में विष्णु को, भुजा में इन्द्र को, उदर में अग्नि को, जल में पृथ्वी को, तेज में जल को और वायु में तेज को संयुक्तजानो, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार बुद्धि में, तम में बुद्धि को, रजोगुण में तम को लय जानो, सतोगुण में रजोगुण को और त्वम्पदार्थ जीव में सतोगुण को इसीप्रकार ईश्वर नारायण देवता में त्वम्पदार्थ जीव को और मोक्ष में नियत देवता को जानो, और मोक्ष किसी में भी संयुक्त नहीं है अर्थात् वह कैवल्य निर्विकल्प मोक्ष अपनीही महत्त्वता में संयुक्त है, सोलहगुणवाले स्वप्न से सम्बन्ध रखनेवाले देह को जानकर पिछले कर्म्म को और उसकर्म्म की उत्पत्ति कारणरूप वृत्ति को लिंगशरीर में आश्रयीभूत जान निष्पाप आत्मा को उदासीन जान के जाग्रत् अवस्था में विषय जाननेवालों के कर्मको दूसरा जानकर सब इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों को आत्मा में कल्पित जानकर वासनारूप तीनोंदशा के कारण से वेदवचन के अनुसार मोक्ष की कठिनता को जानकर प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान इनपांचों प्राणों को एककरके नीचे को प्राप्तकरता है वह अधोनाम छठवां है—फिर ऊपर को लेजानेवाला सातवां है इन सब को मुख्यता से जानकर इसीप्रकार फिर उन सातों को जिन प्रत्येकों में सातो प्राण इसप्रकार वर्त्तमान हैं जैसे कि वृक्षकी जड़में बहुत से बीज और उन बीजों में अगणित बीज होते हैं यह सब जान के प्रजापतिऋषि और अनेक उत्तम मार्गों को जानकर बड़े देवर्षि ब्रह्मर्षि और सूर्य्य के समान तेजस्वी महापुरुषों को जानकर देवताआदि अनेक जीवसमूहों को नाशवान् देख सुनकर पांचों की अशुभ गति को और यमलोक की वैतरणी नदी के गिरनेवालों के महा दुःखों को जानकर और नानाप्रकार की योनियों में अशुभ जन्म को थूक खकार विष्ठा मूत्र से संयुक्त नाना दुर्यातना में बड़े अनेक नरकों के दुःखों में

पीड़ित जानकर संसारी दुःखों में ढकेहुए तामसीजीव और सात्त्विकी जीवों के निन्दित कर्म्मों को जानकर और आत्मज्ञानी सांख्यमतवाले महा पुरुषों के अर्थ में निन्दित कर्म्मों को जानके चन्द्र सूर्य्य के घोर ग्रहण को देखकर नक्षत्रों के गिरने और अदला बदली आदि को और स्त्री पुरुषों के वियोग और दुःख को देखकर और जीवों का परस्पर में भक्षण करना अशुभ भयकारी जान कर बालकपने के अज्ञान और अशुभ नाश को जानकर प्रीति और मोह होनेपर सतोगुणी बुद्धि में और मोक्षबुद्धि में हज़ारों में कोई पुरुष नियत है, वेद वचन के अनुसार मोक्ष की कठिनता को जान अप्राप्त वस्तुओं में बहुत मानना और प्राप्त वस्तु में साधारण मानना और हे राजन्! विषयों में दुरात्मभाव और निर्जीव पुरुषों के अशुभ देहों को देखकर हे युधिष्ठिर! घरों में दुःखरूप निवास को और ब्रह्महत्या करनेवाले मनुष्यों की असह्य गति को, मद्यपान और गुरुपत्नी से आसक्त भ्रष्टाचारी ब्राह्मणों की गति को और जो माताओं में अच्छा वरताव नहीं करते और देवताओं से व्याप्तलोकों में श्रेष्ठ चलनवाले नहींहोते उन गतियों को जानकर बुरे कर्म्मों की और पशु आदि की योनि में जन्म होकर उनकी अनेक दुर्गतियों को और जलजीव कीट पतंगादि के नाश को और मास वर्ष आदि के नाश को इसीप्रकार यक्ष, राक्षस, देवता, गन्धर्व्व, दिन, रात, सूर्य्य, चन्द्र सम्बन्धी वृद्धि क्षय को समुद्रों की न्यूनाधिकता और धनों के वृद्धि क्षय को ऋतुओं के पहाड़ों के नदियों के नाश को देखकर और ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों का नाश वृद्धावस्था मरणावस्था आदि देहों के विकारों को और उनके दुःखों को ठीक २ विचारकर, शरीर की व्याकुलता और आत्मा में नियत आत्मा के सब दोषों को जानकर अपने देहको शुद्ध करके कोई मोक्ष को चाहता है, युधिष्ठिरबोले कि, हे महाप्राज्ञ, पितामह! अपने देह से उत्पन्न होनेवाले कौन से गुण दोषों को देखते हो इसमेरे सन्देह को भी अच्छे प्रकार से दूरकरिये, भीष्मजी बोले हे शत्रुहन्तः, युधिष्ठिर! कपिलमुनि के सांख्यशास्त्रज्ञ और सांख्यमत के आचरण करनेवाले ज्ञानीपुरुष इस देह में पांच दोषों को कहते हैं उनको सुनो, काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास यही पांचों देहधारियों के शरीर में दोषरूप दृष्टआते हैं, सन्तोष शान्ति से क्रोध को निवृत्त करते हैं और संकल्प के त्याग से काम को, सतोगुणरूप कर्म से निद्रा को, सावधानी से भयको और अल्पाहारी होने से श्वास को वश में करते हैं, गुणों को अनेक गुणों से दोषों को दोषों से पहचानकर और अपूर्व वात को अपूर्व वातों से, सैकड़ों माया से व्याप्त भीत के चित्र के समान नरकुल के तुल्य असारवान् गुफा के अँधेरे के समान जल के ओले के समान विनाशवान् नाशरूप इसलोक को देखकर रजोगुण तमोगुण में भरी कीचड़ में फँसे हाथी के

समान परवश संसार को जानकर महाज्ञानी सांख्यशास्त्रवाले संसारी प्रीति को त्यागकर उस सर्व्वव्यापी बड़े सांख्यज्ञान योग से राजसी, असुर, गन्धर्व्वोंको और तामसी, असुर, गन्धर्व्वों को स्पर्श से उत्पन्न होनेवाले देह में नियतजान पवित्र सात्त्विकी गन्धर्व्वों को ज्ञान और तपरूप फरसे से काटते हैं हे राजन् युधिष्ठिर ! इन सब बातों के पीछे अपनी शुद्धचित्तता और क्षेत्रज्ञके ज्ञान के द्वारा ज्ञानी उस महाघोर सागर को तरते हैं जिस में दुःखरूप जल और चिन्ताशोक गम्भीरता, रोग मृत्यु ग्राह और भय महा भयानक सर्प्प हैं, तमोगुण कछुआ रजोगुण मछली, स्नेहकीच है, वृद्धावस्था कठिन मार्ग ज्ञानद्वीप है, और [illegible] के कारण अथाह है सत्यतीर और व्रतास्थिरता है, हिंसाशीघ्रता महावेग है [illegible] नानाप्रकार के रसही रत्नों की खानि हैं और बहुतप्रकार की प्रीति बड़े २ [illegible] हैं और [illegible] महावायु के उत्पात हैं शोक लोभ चारों ओर के [illegible]

परमगति महत्तत्त्वनाम शुद्ध पदार्थ को प्राप्त करता है और सतोगुण तत्पदार्थ श्रेष्ठ नारायण को प्राप्त कराता है, वह ईश्वर आत्मा के द्वारा शुद्ध परमात्मा को प्राप्त कराता है फिर परमात्मा को पाकर परमात्मारूप स्थान रखनेवाले निर्मल लोग मोक्ष के निमित्त समर्थ होते हैं और फिर संसार में लौटकर नहीं आते हैं हे राजन् ! द्वन्द्वरहित सत्यता में प्रवृत्त सब जीवों में कृपाकरनेवाले महात्मा यतीलोगों की यह उत्तम गति है, युधिष्ठिर ने कहा कि, हे निष्पाप, पितामह ! यतीलोग उस षडैश्वर्यवान् परमात्मारूप मोक्षस्थान को पाकर सर्वज्ञ होकर जन्म मरण आदि को स्मरण करते हैं या नहीं अर्थात् मोक्ष में मुख्य विज्ञान है या नहीं, इस स्थान पर जो ठीक वचन है वह जैसा है वैसाही आप कहने को योग्य हैं—मोक्ष सिद्धकरनेवाले मन्त्रों को पाकर यह बड़ा दोष प्रकट होता है और जो दूसरे यती उस मुख्य विज्ञान में कर्म्मकर्त्ता होते हैं उस दशा में मैं प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्म को उत्तम देखता हूं किन्तु संसार में डूबेहुए मनुष्य को उत्तमज्ञान का होना महादुःखदायी है—भीष्मजी बोले कि, हे तात ! तुम ने यहां न्याय के अनुसार बड़ा कठिन प्रश्न किया इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानीलोगों को भी महामोह होता है इस स्थान में मेरे वर्णन कियेहुए उस उत्तम सिद्धान्त को सुनो जिसमें कपिल मतवाले महात्मा पुरुषों की उत्तम बुद्धि प्रकाशित है हे राजन् ! जीवों के देह में अपने २ स्थान में नियत इन्द्रियां जिनमें छठा मन है अधिकतर दीखती हैं क्योंकि वह सब आत्मविज्ञान में मुख्य कारण हैं वह सूक्ष्म चिदात्मा उन कर्त्तारूपइन्द्रियों में बाह्याभ्यन्तरीय ज्ञान को प्रकाश करता है, अब आत्मा की ज्ञानशक्ति की पृथक्ता न होना दिखलाने को इन्द्रियों की जड़ता वर्णन करते हैं—आत्मा से पृथक् इन्द्रियां काष्ठ के समान नाश को पाती हैं यह निस्संदेह है कि जैसे महासमुद्र में जल से पृथक् फेन होता है उसीप्रकार आत्मा से पृथक् इन्द्रियां हैं—इन्द्रियों की जड़ता को कहकर आत्मा के स्वयं प्रकाशवान् होने का वर्णन करते हैं कि स्वप्नावस्था में इन्द्रियों के साथ स्वप्न देखनेवाले देहाभिमानी का सूक्ष्म अन्तरात्मा सब विषयों में ऐसे घूमता है जैसे कि आकाश में वायु—हे भरतवंशिन् ! वह न्याय के अनुसार देखता है और स्पर्श के योग्यों को स्पर्श करता है और जैसे कि पूर्व जाग्रत् अवस्था में देखता था उसीप्रकार इस स्वप्नावस्था में भी पूर्णता से सब विषयों का प्रकाश करता है, इस स्वप्नावस्था में अपना स्वामी न रखनेवाली सब इन्द्रियां अपने २ स्थानपर बुद्धि के अनुसार निर्विष सर्प के समान लय होजाती हैं, वह आत्मा अपने स्थानपर नियत होकर सब इन्द्रियों की सूक्ष्म अशेष वृत्तियों को फैलाकर विचरता है अर्थात् चैतन्य से व्याप्त वृत्तियां निस्सन्देह उदय को प्राप्तहोती हैं अब चैतन्य की सब स्थानों में व्याप्ति को दिखलाते

हैं—हे युधिष्ठिर ! फिर वह आत्मा सत्त्व के और रजोगुण तमोगुण और बुद्धि के सब गुणों को व्याप्त करके चित्त के संकल्प आदि गुणों को आकाश के श्रोत्र आदि गुणों को और वायु अग्नि के गुणों को भी व्याप्त करके विचरता है इसी प्रकार जल के और पृथ्वी के भी गुणों को व्याप्त करके विचरता है, फिर वह ब्रह्म क्षेत्रज्ञों में नियत होकर सतोगुण आदि गुणों को सत्चित् आनन्द से व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ को भी व्याप्त करता है और अच्छे बुरे कर्म भी इसी जीव को ऐसे व्याप्त करते हैं जैसे कि शिष्यलोग गुरु अध्यापक को घेरलेते हैं और चित्त समेत इन्द्रियां भी इसीप्रकार जीव को घेरती हैं, वह जीव प्रकृति को अर्थात् कारण की उपाधि को और इन्द्रियों को भी उल्लंघनकर न्यूनाधिकता से रहित अविनाशी ब्रह्म को प्राप्तहोता है, हे राजन् ! सब पुण्य पापों से रहित निरुपाधि, निर्द्वन्द्व, निर्गुण, उत्तम प्रकृति से परे आत्मारूप नारायण में प्राप्त होनेवाला वह जीव फिर संसार में लौटकर नहीं आता है, इस स्थानपर समाधि और व्यवस्थान काल के भेद से प्रारब्ध कर्म्म के अनुसार ईश्वराधीन कर्म्म करनेवाले शान्त चित्त जितेन्द्रिय के पास मन और इन्द्रिय आतेजाते हैं, इसीप्रकार जीवन्मुक्ति के शुद्धभाव को कहकर कैवल्य बुद्धि को कहते हैं—हे कुन्तीनन्दन ! इसप्रकार उपदेश पायाहुआ ज्ञानी मोक्ष के अधिकारी गुणग्राही मनुष्य से थोड़ेही समय में मोक्ष का पानेवाला होजाता है, ऐसे बड़ेज्ञानी सांख्यमतवाले श्रेष्ठगति को पातेहैं हे युधिष्ठिर ! इस ज्ञानसे उत्तम कोई ज्ञान नहीं है, इसप्रकार सांख्य या योग से शुद्धहोनेवाले त्वम्पदार्थ का अद्वैतब्रह्म सिद्धहोने के निमित्त तत्पदार्थ का अभेद कहने को तत्पदार्थ के स्वरूप को कहते हैं—इसमें तुम को सन्देह नहीं होनाचाहिये कि सांख्यज्ञान उत्तम माना है जिसमें सर्व्वव्यापी चेष्टारहित पूर्ण सदैव एकरूप सर्वोत्तम ब्रह्म का वर्णन है उसीको ज्ञानीलोग आदि अन्त मध्यरहित अद्वितीय जगत् के जन्म मरण का कारण सनातन निर्विकार अविनाशी और नित्य कहते हैं उसीसे संसार की उत्पत्ति प्रलय और रूपान्तर दशा प्राप्तहोती है उसकी महर्षिलोगों ने शास्त्रों के द्वारा बड़ी भारी प्रशंसा की है, सब ब्राह्मण देवता और बाहर भीतर से शुद्धचित्त लोग उस ब्रह्मण्य देव अनन्त अविनाशी सर्व्वोत्तम को अपना ईश्वर जानते हैं इसीप्रकार अच्छे सावधानयोगी और दूरदर्शी सांख्यमतवाले संसार का कर्त्ता और सबका आदि कारण उसको मानते हैं और उस अरूप का स्वरूप शुद्ध चिन्मात्र है यह वेद की श्रुति है, उसके होने को सिद्धकरते हैं—घट आदि वस्तुओं का जो ज्ञान है वही उस अरूप ब्रह्म का भी ज्ञान है अर्थात् निर्विषयक घट आदि का ज्ञान ही परब्रह्म है—हे भरतवंशिन्, तात ! इस पृथ्वीपर दो प्रकार के जीव हैं अर्थात् स्थावर और जंगम इनमें जंगमजीव उत्तम हैं, हे राजन् ! जो ब्रह्मज्ञानियों में ज्ञान

और वेद शास्त्रों में सांख्य और योग बड़े उत्तम हैं और नानाप्रकार के उत्तमज्ञान पुराणों में देखेगये हैं वह सब सांख्यशास्त्र में वर्त्तमान हैं आशय यह है कि सांख्य के विज्ञान से सब का विज्ञान होता है इसीप्रकार स्थावर जीवों से जंगम अर्थात् चलने फिरनेवाले उत्तम हैं और जंगमों में भी ज्ञानी सर्वोत्तम है, बड़े इतिहासों में जो ज्ञान देखा और अच्छे पुरुषों से कियाहुआ जो शास्त्रों में सुना और देखा वह सब सांख्य शास्त्र में वर्त्तमान है जो उत्तम बल चित्तवृत्तिनिरोध और सूक्ष्म ज्ञान तप आदि सुखरूप हैं वह सब सांख्य विज्ञान के ही निमित्त नियत कियेगये हैं, हे राजन्! उस ज्ञान के पूरे होनेपर सांख्य मतवाले पुरुष देवलोकों को जाते हैं और वहां के भोगों को भोगकर अपने मनोरथों को सिद्ध करके वही लोग यती ब्राह्मणों में गिरकर जन्मलेते हैं, और यहांसे शरीर त्याग कर वह सांख्यवाले देवताओं में प्रवेश करते हैं—हे राजन्! इसीकारण वह ब्राह्मण बड़े प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित सांख्यज्ञान में अधिक प्रवृत्त हैं इस हेतु से देवता तत्पदार्थ में प्रवेश करते हैं, उनका तिरछा चलना अर्थात् पशु पक्षी आदि में जन्मलेना न अधोगति होना देखागया है और हे राजन्! वह ब्राह्मण भी नीच नहीं हैं जो इस सांख्यज्ञान में प्रीति करनेवाले हैं, सांख्यज्ञान बहुत बड़ा श्रेष्ठप्राचीन एकरस निर्मल और चित्तरोचक है उस अप्रमेय अशेष सांख्यज्ञान को महात्मा परब्रह्म नारायण भी धारण करते हैं और श्रुति कहती है कि ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही होता है, हे नरदेव! मैंने यह सिद्धान्त वर्णनकिया यह सबविश्व प्राचीन नारायणही है वही समय पर संसार को उत्पन्न करता है वही प्रलयकाल में सब को अपने में आप लय कर लेता है, अब आधेश्लोक में सांख्य के सब सिद्धान्त का संक्षेप कहते हैं—वह जगत् का अन्तरात्मा नारायण आकाशादि सब सृष्टि को अपने देहमें लय करके आप भी शुद्ध चिन्मात्र में लय हो जाता है॥ ११३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेसप्तविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १२७॥

एकसौअट्ठाईस का अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि त्वंपदार्थ के शोधनेवाले सांख्ययोग को आपने कहा अब उसके पारमार्थिक पदार्थ भाव को मूलसमेत वर्णन करिये और जो आपने अविनाशी कहा वह क्या है जिसमें कि प्रवेश करके फिर लौटकर नहीं आता है और जो विनाशवान् कहा कि जिसमें जाकर फिर लौट आता है वह क्या है हे सर्वज्ञ, पितामह! उन विनाशी और अविनाशी का पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहता हूं आप को ऋषि और महात्मा यतीलोग वेदज्ञ और ज्ञान की खानि वर्णन करते हैं, आप की अवस्था के थोड़े ही दिन बाकी हैं संसार के

प्रकाश करनेवाले उत्तरायण में वर्त्तमान सूर्य्य भगवान् के होनेपर आप इस अनित्य संसार को त्याग परमगति को पावेंगे, आप के जानेपर हम फिर कहां से ऐसे मोक्षरूप वचनों को सुनेंगे आप कुरुवंशियों के दीपकरूप अपने ज्ञानदीपक से हमलोगोंपर प्रकाशकरते हो हे कौरवकुल के दीपक, स्वर्ग में पहुंचानेवाले, राजेन्द्र! आप से सब वृत्तान्त सुना चाहता हूं आप के अमृतरूपी वचनों से मेरी तृप्ति नहीं होती है, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं तुम से एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें वशिष्ठजी और राजाकराल जनक का प्रश्नोत्तर है, कि पूर्वसमय में राजाकराल जनक ने उन ऋषियों में श्रेष्ठ आत्मविद्या में कुशल ब्रह्मज्ञान के अनुभव में निश्चय करनेवाले सूर्य्य के सन्मुख अभिवादन करके मैत्रावरुण के पुत्र वशिष्ठजी को बैठाहुआ देखकर बड़ीनम्रता से हाथ जोड़ कर यह मोक्षसम्बन्धी प्रश्नकिया, हे ब्रह्मन्! मैं सनातन परब्रह्म को सुनाचाहता हूं जिस से कि ज्ञानीलोग आवागमन से छूटजाते हैं, जो वह आनन्दरूप कल्याणमय संसार से छुटानेवाला अद्वैत ब्रह्म कहाता है उसी में यह अनित्य संसार नोन और जल के समान लयहोता है, वशिष्ठजी बोले कि हे सृष्टि और पृथ्वी के पालनेवाले! जैसे कि यह संसार लय होता है उसको चित्त से सुनो यह संसार काल से भी पूर्णता के साथ नाश नहीं होता है, यह सब अनित्य संसार जितने समय में लय होता है उसकी संख्या को कहता हूं कि चारोंयुग बारह हज़ार दिव्यवर्षों के होते हैं और चारों युगों को एककल्प कहते हैं और एक हज़ार कल्प में जो समय है वह ब्रह्माजी का एकदिन कहाजाता है और इतनी ही रात्रि होती है जिसके अन्त में संसार के स्वामी शिवजी महाराज जागते हैं वही उस महाकर्मी सबकी आदि में पैदाहोनेवाले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न करते हैं वह शिव अरूप रूपवान् विश्वरूप है और अणिमा लघिमा प्राप्तिआदि अष्टसिद्धियां उसको सदैव स्वयंसिद्ध होती हैं इसीकारण से उस कालस्वरूप ईश्वर को रूपान्तरदशा से रहित चैतन्यरूप कहते हैं उस अविनाशी रूपरहित जानने के योग्य रूप को कहते हैं—वह परमेश्वर सब ओर को हाथ, मुख, चरण, नेत्र, शिर, कान आदिअंग रखनेवाला संसार में सबको व्याप्त करके नियत है यही अविनाशी सर्व ऐश्वर्य्यवान् हिरण्यगर्भ है यही बुद्धिरूप योगेश्वर ब्रह्मा और अज हैं सांख्यशास्त्र में नामों से बहुत रूपवाले भी कहेजाते हैं वही विचित्ररूप विश्वात्मा और एकाक्षर अर्थात् प्रणवरूप है उसी ने अपनी आत्मा से तीनोंलोकों को उत्पन्न करके अनेकरूपयुक्त किया इसी कारण बहुतरूप होने से विश्वरूप कहाजाता है, रूपान्तर प्राप्त करनेवाला बड़ा तेजस्वी यह सूत्रात्मा अपने को आप प्रकट करता है और वही अहंकार अथवा अहंकार के अभिमानी विराट् को उत्पन्न करता है. उसके दो प्रकार इस रीति से हैं कि

अव्यक्त से व्यक्त प्रकटहुआ उसको विद्यासर्ग अर्थात् महान्त समष्टि कहते हैं और अविद्यासर्ग अहंकार भी उसी से प्रकटहुआ, अब विद्या और अविद्या के लक्षण को कहते हैं प्रथम उत्पत्ति अक्षर की है अक्षर से दूसरी उत्पत्ति हिरण्यगर्भ की और तीसरी विराट् की है इनतीनों से एकके विषय में अबुद्धि और बुद्धि उत्पन्न हुई, वेद और शास्त्र के अर्थ विचारनेवाले पण्डितों की ओर से वह विद्या और अविद्यानाम असंख्य प्रकार से संभव प्रसिद्धहुई आशय यह है कि वह तू है मैं ब्रह्म हूं यह आत्मा भी ब्रह्म है इस सिद्धि के समान कहना बुद्धि विद्या है कोई मनुष्य रस्सी को सर्प माने और दूसरा उसको शिक्षाकरे कि यह रस्सी है इससे उसका भय दूर होजाता है यही अबुद्धि विद्या है हे राजन्! अहंकार से उत्पन्न पञ्च-तन्मात्रा स्थूल तत्त्व अपञ्चीकृत को तीसरी जानो और सब अहंकाररूप सातों की राजसी, तामसी और प्रत्यक्ष में पञ्चीकृत सूक्ष्मतत्त्व को चौथा जानो इसको कहते हैं—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द यह दशोंवर्ग दृष्टि के साथ उत्पन्न होनेवाले प्रकटहुए और पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्च-कर्मेन्द्रिय मन समेत एकसाथ उत्पन्नहुए, यह चौबीस तत्त्वात्मक मूलप्रकृति सब शरीर मात्रों में वर्त्तमानहै, तत्त्वदर्शी ब्राह्मण जिसको पुरुषसे पृथक् जानकर शोच नहीं करते हैं, हे नरोत्तम! देव, मनुष्य, दैत्य, दानव आदि से युक्त तीनोंलोक हैं, सब जीवों में यह समान नाम देह अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड जानने और देखने के योग्य है यह ब्रह्माण्ड पिण्ड हाथी से लेकर लघुतम चींटीपर्यन्त असंख्यजीवों से भराहुआ है, इन सब समेत यह संसार प्रतिदिन नाश को पाता है इसकारण से इस भूतात्मा को नाशवान् कहते हैं यह अक्षर अर्थात् अविनाशी ब्रह्म और जैसे यह जगत् नाश को पाता है इसका भी वर्णनकिया अव्यक्त और व्यक्त नाम संसार को मोहरूप वर्णनकिया और जगत् के अव्यक्त और व्यक्तरूप कहने से अव्यक्त का भी नाश कहा इसस्थान में उस युक्ति को कहते हैं—जिसके कारण बड़ीसूक्ष्म बुद्धि सदैव नाशवान् है इसीकारण उसका स्वामी अव्यक्त भी नाशवान् है यह दृष्टान्त तुमसे वर्णनकिया यही तुम मुझसे पूछते थे, पचीसवां विष्णु शुद्ध चिन्मात्ररूप तत्त्व नहीं है परन्तु तत्त्वनाम है अर्थात् तत्त्वों में उसकी गणना है वह तत्त्वों का अधिष्ठान होनेसे तत्त्वनाम कहाजाता है स्वामीपन और सृष्टिपन से नहींकहाता और तत्त्वों के मध्यवर्ती होने से तत्त्वोंके हेतुरूप अज्ञान के कारण ब्रह्म को कर्त्तारूप वर्णनकिया क्योंकि दूसरी दशा में उसका नाश भी सिद्ध होता है, तत्त्व होने से उसमें अधिष्ठातापन भी नहीं है इसको अब वर्णन करते हैं—जिस हेतु से नाशवान् कर्त्ता और कर्म्म को उत्पन्न किया इसीकारण वह मूर्त्ति मूर्त्तिमान् जगत् प्रधान से भी प्रकट होती है वह अधिष्ठाता अव्यक्त चौबीसवां है क्योंकि पचीसवां पुरुष अंगरहित अमूर्त्तिमान् है इसीहेतु से वह अधिष्ठाता नहीं

है काष्ठ पाषाण के समान नाशवान् अव्यक्त भी अधिष्ठाता नहीं होसक्ता इस हेतु से कहते हैं, चैतन्य की छाया से संयुक्त वह चौबीसवां अव्यक्त सबदेहों में हृदयस्थ अधिष्ठाता है और उपाधिरहित प्राचीन चैतन्य प्रकृति के द्वारा मूर्त्तिमान् होजाता है वास्तव में वह अमूर्त्तिमान् है, और उत्पत्ति नाशरूप धर्मवाली प्रकृति से वह उत्पत्ति और नाशवान् होता है वही निर्गुण सगुण होकर सदैव विषयों में ऐसे प्रवृत्त होता है, जैसे कि दर्पण में मुखप्रतिबिम्बरूप होता है, अब त्वम्पदार्थ को वर्णन करते हैं, इसप्रकार उत्पत्तिनाश का जाननेवाला यह महान् आत्मा अज्ञान और अविद्या से संयुक्त होके विपरीत दशा को प्राप्त होने के पीछे यह मानता है कि मैं हूं अर्थात् देहाभिमानी होता है, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में संयुक्त होकर अज्ञानियों के सत्संग से उन २ योनियों से एकता प्राप्तकरता है और संग में रहने से अपने को पृथक् नहीं मानता है और कहता है कि मैं अमुक का पुत्र हूं अमुक मेरी जाति है यह अपने गुणों परही बर्त्ताव करता है अर्थात् ज्ञातिके अभिमान आदि को त्याग नहीं करता है, तमोगुण से नानाप्रकार के काम क्रोधादिकों को प्राप्त करता है इसीप्रकार रजोगुण से राजस भाव प्रवृत्ति आदि को और सतोगुण से सात्त्विकभाव प्रकाश आदि को पाते हैं इन तीनों भावों का रूप सतोगुण आदि के क्रम से श्वेत, रक्त, कृष्ण है यह प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले तीनोंरूप अग्नि, जल, पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाले पूर्वोक्त ही रंग के हैं, तमोगुणी नरक को जाते हैं रजोगुणी मनुष्य शरीर पाते हैं और सुख के भागी सात्त्विकी पुरुष देवलोक को जाते हैं केवल पापात्माजीव पशु पक्षी आदि के जन्म को और पुण्य पाप दोनों के योग से मनुष्य योनि को और केवल पुण्य से देवतारूप को पाते हैं इसप्रकार जो यह पचीसवां आत्मा है उस मायायुक्त को अज्ञान से नाशवान् अथवा विपरीत दशा प्राप्त करनेवाला कहा वह ज्ञान से प्रकाश करता है आशय यह है कि तत्पदार्थ ने ही अज्ञान से जीव भाव को पाया वह ज्ञान से मुक्तहोता है इसवर्णन से "तत्त्वमसि" महावाक्य के अर्थ द्वारा जीव और परब्रह्म की एकता सिद्ध होती है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेऽष्टाविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

एकसौउन्तीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी ने कहा कि, प्रकृति में मिलकर पुरुष उसीके अनुसारकर्म करता है यह ऊपर वर्णन कियागया अब दो अध्यायों में उसका ब्यौरेवार वर्णन करते हैं कि जैसे ज्ञान न होने से अज्ञान के समान कर्म्म करते हैं इसीप्रकार एक देह से हज़ारोंदेह प्राप्त करते हैं, कभी गुणों के साथ मिलने से गुणों की सामर्थ्य से हज़ारों तिर्य्यग्योनि और देवयोनियों में भी प्राप्तहोता है, मनुष्य शरीर के द्वारा

स्वर्ग को जाता है और स्वर्ग से क्षीणपुण्य होकर पृथ्वीपर मनुष्य का जन्म पाता है और मनुष्य शरीर से अपार नरकों को पाता है, जैसे कि रेशम का कीड़ा घर बनाता है और सूत्र वा तन्तुओं की रस्सियों से सदैव अपने को बन्द करता है इसीप्रकार यह निर्गुण आत्मा अपनेको गुणों से बँधाता है यह सुख दुःख से रहित उन २ योनियों में सुख दुःखको पाता है जैसे कि शिरपीड़ा, नेत्रपीड़ा, दांतपीड़ा, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्डरोग, विशूचिका, कर्णपीड़ा, कुष्ठ, मन्दाग्नि, कास, श्वास और अपस्मार आदि अनेक रोगों में महाकष्टों को पाते हैं, मनुष्य अपने को समझता है कि मैं रोगी हूं और देहों के मध्य में अनेकप्रकार के सुख दुःख आदि प्राकृत द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं उनको भी यह जीव अपनेही देह-सम्बन्धी जानता है अर्थात् कहता है कि मैं दुःखी हूं रोगी हूं उसीप्रकार कभी हज़ारों पशुपक्षियों की योनियों में और देवताओं में भी बड़े अहंकार से अपने उत्तम कर्मों का वर्णन करता है, श्वेत या मलिन पोशाक रखनेवाला और पृथ्वी पर सोनेवाला और मेढ़क के समान हाथ पैरों का सकोड़नेवाला शिर के बल से सोनेवाला और वीर आसनपर बैठनेवाला वस्त्रधारण कर मैदान में सोना और नियतहोना ईंट कांटोंपर सोना राख पृथ्वी पलँग आदिपर सोना और वीरों के स्थान जल कीच आदि में बैठना और नानाप्रकार की शय्याओं पर सोना और फल की आशायुक्तहोना अलसी के बल्कल या सन से बनाहुआ वस्त्र और काले मृगचर्म का धारण करनेवाला लँगोटी आदि का पहरना भोजपत्र या छाल को धारणकरना शालमली आदि से उत्पन्न वस्त्रों का पहरना रेशमी या सूत्र वस्त्रों से निर्वाह करनेवाला और चीथड़ों का धारण करनेवाला ज्ञानीपुरुष बहुत से उत्तम भोजन वस्त्र और अनेक रत्नादिकों को चाहता है, एकरात्रि के पीछे एकबार भोजनकरना चौथे आठवें और छठवें समयपर भोजनकर और छठें आठवें दिन भोजन करनेवाला वा बारहवें दिन भोजन और एकमहीनेतक व्रतकरना फलमूलभोक्ता वायु, जल, दही, खल भोजन करनेवाला गोमूत्र पीनेवाला साग फूल सेवल और चावल के माड़ से निर्वाह करनेवाला सूखे वृक्षों के पत्र पेड़ से गिरेहुए फल आदि से उदर भरताहुआ मनुष्य अनेककृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों का सेवनकरता है और चान्द्रायण नाम व्रतों को धर्म के नानाप्रकार के मार्गों से आचरण करता है और पाशुपतिआदि अनेकयज्ञ के पाखण्डों को अभ्यासकरता है और पर्व्वतों या एकान्त में नानाप्रकार के नियम तप जप यज्ञ आदि को बुद्धि में प्रवृत्तकरता है इसीप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के धर्म्म और उनके व्यापार मार्ग को और दुःखी, अन्धे, कृपलोगों को अनेकप्रकार के दान और अनेकगुणों को वह आत्मा अज्ञानता से अपने से सम्बन्ध करता है, इसीप्रकार तीनोंप्रकार के गुण और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनचारों

को भी वह आत्मा प्रकृति की प्रेरणा से अपने से सम्बन्ध करता है स्वधा, वषट्, स्वाहा, नमस्कार, यज्ञकराना, वेदपढ़ाना, दानलेना, देना, यज्ञकरना, वेद पढ़ना इत्यादि सब कर्म्म और जन्म मृत्युआदि शुभ अशुभ कर्म्म इन सबको प्रकृतिरूपा माया उत्पन्न और नाशकरती है फिर अकेली माया इन सब गुणों को कुछदिन के पीछे आप निगलकर नियतहोती है जैसे कि सूर्य्य अपनी किरण समूहको समय समयपर प्रकट करके व्याप्त करता है इसीप्रकार यह आत्मा वारंवार पूर्व्व आत्मा में कल्पित हृदय के प्यारे नानाप्रकार के गुणों को क्रीड़ा के निमित्त मानलेता है इसप्रकार क्रियामार्ग में प्रीति करनेवाला त्रिगुणाधीश आत्मा उत्पत्ति नाशरूप धर्मवाली क्रियारूप त्रिगुणात्मक प्रकृति को बहुत से रूपों में बदलता है और क्रियामार्ग में संयुक्त होकर क्रिया को मानता है कि वह उसी प्रकारका है अर्थात् अवश्य करने के योग्य है, हे समर्थ, युधिष्ठिर! यह सब संसार प्रकृति से अन्धा कियागया है और रजोगुण तमोगुण से अनेकप्रकार करके भराहुआ है, इसप्रकार से यह सुख दुःखादि दण्ड सदैव से वर्त्तमान हैं और मुझसेही उत्पन्न होकर मेरी ही ओर दौड़ते हैं—हे राजन्! यह सब सदैव तरने के योग्य हैं इसीप्रकार यह जीव ज्ञान से मानता है कि सब उत्तम कर्म भी मुझ देवलोक में भी प्राप्त होनेवाले को भोगने के योग्य हैं और इन बुरेभले कर्म्मों के फल को इसलोक में भी भोगूंगा तो मुझे सुखही उत्पन्न करना योग्य है एक बार सुख कर्म्म करके जबतक उसका अन्त हो तबतक वह मुझे प्रत्येक जन्मों में प्राप्तहोगा, इसलोक में कर्म्म से मुझ को अत्यन्त दुःख भी होगा मनुष्य का शरीरपाना और नरक में भी पड़ना महादुःख है नरक भोगकर फिर भी मनुष्य देह को मैं पाऊंगा मनुष्य देह से देवभाव देवभाव से फिर नरदेह को पाऊंगा, मनुष्य देह से क्रमपूर्वक नरक में जाता है आत्मा के सतचित आनन्दात्मक गुण से संयुक्त जीवात्मा सदैव इसबात को जानता है, इसकारण देवलोक नरलोक और नरक में भी जाता है और ममता में फँसकर हज़ारों संसारी जन्मोंतक नाशवान् मूर्त्तियों में प्राप्तहोकर उन्हीं लोकों में घूमता है, जो पुरुष इस प्रकार से अच्छेबुरे कर्म्म को करता है जैसे कि स्त्री पुरुष से सन्तान उत्पन्न हो यद्यपि इसीप्रकार प्रकृति पुरुष से भी सब काम होते हैं तथापि आगे के वर्णन से कर्त्तापन प्रकृति मेंही निश्चय होता है क्योंकि प्रकृति विकारवान् है और पुरुष निर्विकार है, इसबात को सिद्धकरते हैं—वह शरीरवान् जीव इसप्रकारसे तीनोंलोकों में इच्छानुसार फल को पाता है सब शुभ अशुभ कर्मों की करनेवाली प्रकृति ही है और वही प्रकृति जोकि इच्छानुसार तीनोंलोकों में चेष्टाकरती है वह पशु, पक्षी, नर, देव आदि योनियों के द्वारा इसलोक परलोक में उस कर्मफल को भोगती है इस स्थान में तीनों स्थानों को प्रकृतिसम्बन्धीही जाने, प्रकृति का

कोई चिह्न नहीं है उसके महत्तत्त्वादि कार्यों से उसको अनुमान करते हैं इसी प्रकार चैतन्य आत्मा को चिदाभास के चिह्नों से अनुमान करते हैं यह सांख्यमत वाले महापुरुष इसप्रकार से मानते हैं, यह जीव अष्टपुरीवाले शरीर को जोकि प्रकृति से संयुक्त मोक्षप्राप्त होनेतक निर्विकार है पाकर उसके इन्द्रिय रूपी द्वारपर नियत होकर अपने कर्म के द्वारा उसको आत्मा में मानता है यह सब ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने २ विषयों के साथ गुणों में वर्त्तमान होती हैं, यह सब इन्द्रियरूप मैंहीं हूं और यह सब मुझमें हैं इसप्रकार अपने को इन्द्रियों से पृथक् मानता है और विना घायल अपने को घायल मानता है और लिंगशरीर से पृथक् आत्मा को उक्तशरीरवान् मानता है और अक्षय होकर अपनी मृत्यु को मानता है बुद्धि से पृथक् आत्मा को बुद्धिरूप मानता है और तुच्छशरीर आदि को आत्मतत्त्व समझता है और मृत्युरहित अपने को मृत्युरूप जानता है और चेष्टारहित होकर अपने को चेष्टावान् मानता है और क्षेत्ररहित होकर अपने को क्षेत्रवान् जानता है और कर्तृत्व गुण से हीन होकर सृष्टि को आत्मासम्बन्धी मानता है, तप से असम्बन्धी होकर आत्मा को तपस्वी मानता है और सब स्थानों में वर्त्तमान होने से निश्चेष्ट होकर अपनीगति को मानता है और अजन्मा होकर आत्मा को जन्मलेनेवाला मानता है एकता से निर्भय होकर भी आत्मा के भय को मानता है और अविनाशी होकर भी आत्मा को नाशवान् मानता है कारण यह है कि अज्ञानी है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

एकसौतीस का अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि, इसप्रकार अज्ञान और अज्ञानी मनुष्यों के संयोगी होने से हज़ारों नाशवान् जन्मों को पाता है, यह पुरुष सोलह कला रखनेवाला है इनसोलह कलाओं में सोलहवां अविनाशी पुरुष है उस प्रकाशरूप चैतन्य कला के द्वारा अनेक पशु, पक्षी, मनुष्य, देवयोनियों आदि में देवलोक पर्यन्त हज़ारों नाशवान् स्थानों को पाता है सब जीवों के चन्द्रमा के समान पन्द्रह कला हैं पञ्चतत्त्व पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकर्मेन्द्रिय फिर यह अज्ञानी उनकलाओं में बुद्धि लगाने से हज़ारों जन्मों में प्राप्त कियाजाता है पन्द्रहवीं कला मूल प्रकृति है वह चिदात्मा से चैतन्य होती है इस चन्द्रमारूप अविनाशी चिदात्मा को सदैव सोलहवीं कलाजानो, अज्ञानी मनुष्य वारंवार मूल प्रकृतिरूप पन्द्रहवीं कला में जन्म लेता है उसकी सोलहवीं कला सच्चिदानन्दरूप है उस में आश्रित होकर जीव चेष्टा करते हैं इसीहेतु से फिर जन्म होता है, जो सोलहवीं सूक्ष्म कला है उसको चन्द्रमा अर्थात् अमृतरूप ब्रह्म जानो वह इन्द्रियों से

पोषण नहीं कियाजाता है किन्तु अपनी सत्तास्फूर्त्ति देने से उन इन्द्रियों का पोषण करता है, हे राजेन्द्र! इस सोलहवीं चैतन्यात्मक कला को अविनाशी मानकर यह सब ऐसे उत्पन्न होता है जैसे कि रस्सी की विद्यमानता में सर्प का होना, वह सोलहवीं प्रकृति इसप्रत्यक्ष संसार की उत्पत्ति और लयस्थान जानी जाती है, उससंसार के नाशहोने से अर्थात् "अहंब्रह्माऽस्मि" इस महावाक्य के अनुभव से मोक्ष कहीजाती है दूसरा अर्थ यह है कि इस पन्द्रहवीं कला नाम प्रकृति को नाशकिये विना जन्म लेता है वही उसकी उत्पत्ति और लयस्थान है उसके नाशहोने से मोक्ष कहीजाती है, जो धाम और मोक्षनाम शब्द से कहाजाता है वही आनन्दरूप सोलह कला रखनेवाला सब स्थावर जंगम का पिण्डरूप ब्रह्माण्ड है जो पुरुष पन्द्रहवीं प्रकृतिनाम से संयुक्त शरीर को इसप्रकार माननेवाला है कि यह मेरा है वह मनुष्य उसी में घूमाकरता है अर्थात् देह से नहींछूटता है आशय यह है कि वेद में लिखा है कि निश्चय करके आनन्द से ही सब जीव उत्पन्नहोते हैं और आनन्दही से जीवते हैं और उसी में प्रवेश करते हैं, जो इसप्रकार से माननेवाला है उसका वर्णन करते हैं—पचीसवां बड़ा आत्मा है उस निर्मल अत्यन्त शुद्ध के न जानने और शुद्ध अशुद्ध के सेवन करने से वह शुद्धआत्मा वैसाही अशुद्ध होजाता है इसीप्रकार ज्ञानी भी अशुद्ध के सेवन से अज्ञान होजाता है हे राजन्! अच्छाज्ञानी भी इसीप्रकार जानने के योग्य है और त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सेवन से तीनोंगुण युक्त होता है॥ ११॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १३०॥

एकसौइकतीस का अध्याय॥

राजा जनक बोले कि, हे महाराज! आप ने कहा कि प्रकृति के नाश से मोक्ष होती है इसमें मुझ को शंका है कि जो प्रकृति और पुरुष समान हैं फिर प्रकृति की निवृत्ति कैसे होसक्ती है हे भगवन्! जैसे प्रकृति पुरुष दोनों का योगसम्बन्ध है इसीप्रकार स्त्री पुरुष का भी सम्बन्ध योग कहाजाता है, इससंसार में स्त्री विना पुरुष के जैसे गर्भवती नहीं होसक्ती है इसीप्रकार पुरुष भी विना स्त्री के गर्भ नियत नहीं करसक्ता है, परस्पर सम्बन्धहोने से और परस्पर गुणों में संयोगहोने से सबयोनियों में गर्भ उत्पन्न होता है ऋतुकाल में संभोगहोने और परस्पर गुणसंयोगहोने से गर्भहोता है इसका दृष्टान्त कहता हूं और इसलोक में माता पिता के जो गुण हैं उनको भी कहता हूं हे ब्राह्मण! हाड़, नाड़ी और मस्तक को तो पिता का अंश और चर्म, मांस, रुधिर को माता का अंश सुनते हैं हे महा पुरुष! ऐसा वर्णन वेदशास्त्रों में देखा पढ़ागया है, अपने वेद और शास्त्रों में जो कहाहुआ है वही प्रमाण है वह वेद और शास्त्र दोनों सनातन हैं और

प्रमाण हैं, इसीप्रकार प्रकृति पुरुष दोनों के परस्पर गुणसंयोग और परस्पराश्रित होने से परस्पर सम्बन्धवान् हैं इसकारण मैं देखता हूं और विचारकरता हूं कि मोक्षधर्म वर्त्तमान नहीं है या मोक्ष के साक्षात्कार होने में कोई दृष्टान्त है इसको मूलसमेत आप वर्णन कीजिये क्योंकि आप सदैव प्रत्यक्ष के देखनेवाले हैं, और हम मोक्ष के चाहनेवाले हैं और उसको चाहते हैं जिससे कि दुःख दूरहो जाता है और जो शरीर रहित सदैव जरा इच्छारहित ईश्वर से भी उत्तम है, वशिष्ठजी बोले जो यह वेदशास्त्र का दृष्टान्त आपने वर्णनकिया यह ऐसाही है जैसा कि आप समझरहे हैं, हे राजन्! तुम ने वेद और शास्त्र दोनों अच्छे प्रकार से जाने हैं परन्तु जो उनका मुख्यसिद्धान्त है उसको नहीं जानते हो जो पुरुष वेदशास्त्र के ग्रन्थों को पढ़ा है और उसके मुख्य आशय को नहीं जानता है उसका वह सब पढ़ाहुआ निष्फल है अर्थात् जो ग्रन्थ के आशय को नहीजानता वह केवल उस ग्रन्थ का भार उठानेवाला है और जो ग्रन्थ के मुख्य आशय का जाननेवाला है उसका ग्रन्थपढ़ना सफल है, ग्रन्थ का आशय पूछा हुआ वैसाही कहने को योग्य होता है तब वह मुख्य प्रयोजन के अनुसार उस के आशय को पाता है जो स्थूल बुद्धिवाला पुरुष पण्डितों की सभा में ग्रन्थ के प्रयोजन को वर्णन न करसके तो वह निर्बुद्धि ग्रन्थ को खोलकर कैसे कहसकैगा ज्ञानरहित चित्तवाला मनुष्य जिसहेतु से इस स्पष्ट बात को भी मुख्यता से नहीं कहसक्ता है वह आत्मज्ञानी भी होकर हास्य के योग्य गिनाजाता है, हे राजेन्द्र! इसीकारण अब चित्त देकर श्रवणकरो जैसे कि यह बात सांख्ययोग में आत्मज्ञानियों के मध्य में ठीक दृष्ट पड़ती है वह मैं कहता हूं, जिसको योगीजन देखते हैं उसी को सांख्यमतवाले प्राप्त करते हैं, सांख्य और योग यह दोनों एक ही हैं जो ऐसा विचार से देखता है वही बुद्धिमान् है हे तात! चर्म, मांस, रुधिर, मज्जा, पित्त और नसें यह सब इन्द्रियों को अधिक रखनेवाले हैं यह तुम ने मुझ से कहा सो यह सब द्वैत से उत्पन्नहोते हैं जैसे कि द्रव्य से द्रव्य की उत्पत्ति होती है उसीप्रकार इन्द्रिय से इन्द्रिय, शरीर से शरीर, बीज से बीज को प्राप्त करते हैं तात्पर्य्य यह है कि समान जाति से उसी जाति की उत्पत्ति होती है और से और नहीं होसक्ती और प्रकृति पुरुष के भिन्नस्वभाव होने से योग होना असंभव है, उस इन्द्रियरहित निर्बीजरूप माया के आडम्बर से पृथक् अशरीरी महात्मा पुरुष के गुण निर्गुण होने से कैसे होसक्ते हैं तो यह उत्पत्ति किसप्रकार से है इसको कहते हैं—आकाश आदिगुण इस त्रिगुणात्मक प्रकृति मेंही उत्पन्न होते हैं और उसीमें लयहोते हैं इसीप्रकार गुणप्रकृति से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति मेंही लयहोते हैं फिर उस असहाय प्रकृति के सृष्टिसम्बन्धी कर्तृत्वगुण कैसे होसक्ते हैं इस शंका को दृष्टान्त से सिद्धकरते हैं कि चर्म, मांस, रुधिर, मज्जा,

पित्त, भेजा, हड्डी, नसें इनप्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाली आठों वस्तुओं को वीर्य्य सम्बन्धी जानो, जैसेकि विना माता के भी द्रोणाचार्य्य के शरीर में केवल वीर्य्यही से त्वक् मज्जा मांसादि उत्पन्नहुए तो दर्पण के समान दूसरे के प्रतिबिम्ब को प्राप्त करनेवाली प्रकृति से यह सब संसार उत्पन्न होता है, पुरुष के अन्तःकरण चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव और आकाशादि अपुरुष आत्मा को प्राप्तकरानेवाले प्रमाता प्रमाण प्रमेय यह तीनों प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले कहे परन्तु वह चिदात्मा पुरुष अपुरुष नहीं कहाजाता है अर्थात् वह चिदात्मा जीव संसार से पृथक् है, सम्बन्ध न होने में प्रकृति पुरुष का लिंगी वा लिंगरूप होना कैसे होसक्ता है इस शंका को कहते हैं—वह प्रकृति अलिंगी अर्थात् चिह्नरहित पुरुष को पाकर अपने देह से उत्पन्न महत्तत्त्वादिक चिह्नों से उसीप्रकार विदित होती है जैसे कि विना रूप की फसलें सदैव फूल और फलों से विदित होती हैं—हे तात! इसी प्रकार शुद्ध चिन्मात्र भी अनुमान से जानाजाता है जो कि पचीसवां है और चिदाभासों में व्याप्त आदि अन्त रहित है अर्थात् समय के चक्र से पृथक् अत्यन्त द्वेषरहित सब का द्रष्टा है और उपाधियों से भिन्न सीपी में मिथ्या चांदी के समान केवल अभिमान करने से शरीर आदि रूप धारण करनेवालों में कहाजाता है कि यह इन्द्रिय आदि का समूह आत्मा है, जब यह जीवात्मा प्रकृति सम्बन्धी इनगुणों का नाश करता है अथवा (पाठान्तर से) इन गुणों को श्रवण मनन निदिध्यासन से विचारकर जानता है तब शरीरादि के आत्मा जानने के भ्रम को दूर करके उस परब्रह्म को देखता है, सांख्ययोग और सब तान्त्रिकों ने जिस परब्रह्म को जड़रूप अहंकार के त्यागने से ज्ञात होनेवाला महाज्ञानी और बुद्धि से परे वर्णन किया है और अज्ञात अथवा गुणों से गुप्त अन्तर्य्यामी गुण सम्बन्ध से रहित ईश्वर प्राचीन अधिष्ठाता भी कहा है सांख्ययोग में कुशल मोक्ष के चाहनेवाले ज्ञानीलोग प्रकृति को और उसके महत्तत्त्वादिक गुणों को विचार कर जिसको पचीसवां कहते हैं, जब बाल्यावस्था और जाग्रत् अवस्था आदि जन्म से भयभीत ज्ञानी पुरुष निराकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा को जानते हैं तब उस ब्रह्म को प्राप्त करते हैं अर्थात् वह उपाधिरहित ब्रह्मन् जानाहुआ जीव है और जानाहुआ ब्रह्म है हे राजन्! यह जीव ईश्वर की एकता का सिद्ध करनेवाले शास्त्रज्ञ ज्ञानी की ओर से अच्छे प्रकार से पृथक् वर्णन कियागया और अच्छे प्रकार जीव ब्रह्म की एकता का न देखनाही अज्ञानी की ओर से अनुत्तम शास्त्र पृथक् कहागया, इस जड़ चैतन्य का सिद्ध करनेवाला शास्त्र इसप्रकार से वर्णन कियागया कि अपना ही मत अच्छा है दूसरे का अच्छा नहीं है—वादियों के भ्रमों को कहकर अपने सिद्धान्त को कहते हैं—एकता को अविनाशी और द्वैतता को विनाशवान् कहाजाता है यह अनुभव जान के योग्य समझकर

इसका वर्णन करते हैं–जब रस्सी में सर्प के समान ध्यान चिदाभास के साथ पचीस तत्त्वों में अच्छे प्रकार से विचार करना होता है तब उनके अधिष्ठान से पचीसवें आत्मा को साक्षात्कार करता है तब एकता और द्वैतता शास्त्र और अशास्त्र की सत्य होती है, संसार तत्त्व और असंसार तत्त्व का यह अनुभव पृथक् है ज्ञानियों ने पचीस प्रकार के तत्त्वों की उत्पत्ति को संसार कहा है और उस अतत्त्व को पचीसों तत्त्वों से उत्तम अनुभव कहा है क्योंकि सृष्टि के समूह चारों ओर घूमनेवाले हैं और तत्त्वों का तत्त्व पचीसवां परमात्मा सदैव एक रूप और अविनाशी है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वाणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेएकत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

एकसौबत्तीस का अध्याय ॥

जनकबोले कि, हे महर्षे ! आप ने जो कहा कि एकता विनाशरहित है और दो आदि अनेक नाशवान् हैं मैं इनदोनों के इस सिद्धान्त को अशुद्ध जानता हूं क्योंकि एकता में बन्धन और मोक्ष नहीं है और अनेकता में आत्मा का नाश सिद्ध है हे राजन् ! इसीप्रकार से ज्ञानी और अज्ञानी से जाने हुए इस आत्मतत्त्व को सूक्ष्म बुद्धि से देखता हूं हे निष्पाप ! तुम ने जो अविनाशी होने का कारण एकता और नाश होने का कारण अनेकता वर्णन की वह भी मेरी अस्थिर बुद्धि से नष्टता को प्राप्तहुआ इस हेतु से इस एकता और अनेकता के शास्त्र को और ब्रह्म प्रतिब्रह्म और प्रधान आदि ब्रह्म को और जड़ चैतन्य के आत्मारूप जीव को सुना चाहता हूं, हे भगवन् ! विद्या जानने के योग्य आत्मा को प्राप्त करनेवाली और अविद्या आत्मा की गुप्त करनेवाली है इसी प्रकार अक्षर अविनाशी और क्षर नाशवान् है और सांख्यतत्त्वों का विवेक और योगचित्त की वृत्ति का रोकना है और भेद अभेद अर्थात् एकता और अनेकता यह सब भी प्रधानरूप सांख्य और योग के वर्णन से सब प्रश्नों का उत्तर होजाता है इस निमित्त योग का वर्णन करने को वशिष्ठ जी बोले कि हे महाराज ! तुम जो यह पूछते हो इसको मैं अच्छेप्रकार से कहूंगा अबयोग के कर्मों को मैं पृथक्ता से वर्णनकरता हूं, योगियों के शास्त्र में करने के योग्य ध्यान ही परम सामर्थ्य है उस ध्यान को भी विद्या जाननेवालों ने दो प्रकार का कहा है एकतो मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम है फिर प्राणायाम भी दो प्रकारका है अर्थात् सगर्भ और निर्गर्भ उनमें मन सम्बन्धी मुख्य है, हे राजन् ! मूत्र पुरीष का त्याग और भोजन इनतीनों समयपर योग का अनुष्ठान नहींकरे इनके सिवाय और समय में मन बुद्धि को लगानेवाला योगी आत्मा को आत्मा में मिलावे फिर वह योगी मनसमेत इन्द्रियों को विषयों से रोककर चित्त से शुद्ध हो उन

बाईस चेष्टाओं से जो कि मनरूपी घोड़े के चाबुक समान हैं उस अजर अमर
जीवन्मुक्त जीव को जिसको ज्ञानीलोग तत्त्वरूप कहते हैं उस पचीसवें पर-
मात्मा में जो कि चौबीस तत्त्वों से उत्तम है प्रवेश करने की चेष्टाकरे उन बाईस
चेष्टाओं के द्वारा आत्मा सदैव जानने के योग्य है जिसका मन कामादि में आ-
सक्तनहीं है उसका व्रतयोगनाम है यही निश्चय है इसमें कभी संदेहनहीं है, सब
गसे रहित अल्पाहारी जितेन्द्रिय योगी पहली पिछली रात्रिमें मनको आत्मा
दाकारकरे, हे राजन्, जनक! मनके द्वारा इन्द्रियों के समूहों को वशकरे अर्थात्
उधर चलने न दे और मन को बुद्धि से पाषाण के समान निश्चल करके
भरूप स्थिरता प्राप्त करके पर्वत के समान अचल होजाय तब शास्त्र के प्रयो-
के जाननेवाले ज्ञानी योगी मिलने की दशापर ब्रह्म में वर्त्तमान कहते हैं
योगी के अनुभव को कहते हैं योगदशा में वह योगी स्वाद सुनना देखना
र्श आदि कोई बात नहीं करता है और उसके चित्त में कोई संकल्प विकल्प भी
ीं होता है न किसीप्रकार का अभिमान करता है और काष्ठ पाषाण के समान
थर होकर संसार के व्यवहारों को भूलजाता है उस योगी को ज्ञानी योगीलोग
पने शुद्धस्वरूप से मिलाहुआ कहते हैं, वह बुद्धि आदि से पृथक् और व्या-
क होने से निश्चेष्ट योगी इसप्रकार से प्रकाशकरता है जैसे कि वायुरहित
थान में देदीप्यमान दीपक होता है और अखण्ड चिन्मात्ररूप होने में उसकी
ातिशेष नहीं रहती, जिससमय अनुभव के बल से यह कहता है कि जो हृदय
ं नियत अन्तर्यामी ईश्वर है वह मैं ही हूं तब आत्मा को साक्षात्कार करे हे तात!
ुझ से मनुष्यों से वह जानने के योग्य है दूसरा साफ अर्थ यह है कि जब सब
ृत्तियों के निरोध से निराकार होने के कारण आत्मा के न जानने योग्य होने
से यह नहीं कहता है कि वह जानने के योग्य जानना चाहिये अर्थात् परोक्ष
ज्ञान से बढ़कर अपरोक्ष ज्ञान से मिलगया है तब वह आत्मज्ञानी कहाजाता है,
आत्मा में आत्मा इसरीति से दृष्ट पड़ता है जैसे निर्धूम अग्नि और आकाश में
प्रकाशमान सूर्य्य दीखता है, जो धैर्य्यवान् बुद्धिमान् वेदान्त के ज्ञाता महात्मा
ब्राह्मण हैं वह उस उत्पत्ति स्थान रहित अविनाशी ब्रह्म को देखते हैं, उसीको
सूक्ष्म से सूक्ष्म बृहत् से बृहत् कहते हैं वह अचल तत्त्व सब जीवों में नियत
होकर भी दृष्टनहीं पड़ता है जब वह दृष्ट ही नहीं पड़ता है तो उसका योग
कैसे होसक्ता है इसको कहता हूं—हे तात! महान्धकार के अन्त में वर्त्तमान
वह सृष्टि का स्वामी बुद्धिरूप धन से पूर्ण सब से परे वर्त्तमान उस पुरुष के चि-
त्तरूपी दीपक से दिखाई देता है, सर्व वेदपारग ब्राह्मणों से वह अन्धकार का
नाशकर्त्ता चिदात्मा प्रकाशमान सूत्रात्मा से पृथक् उपाधिरहित ब्रह्म कहा गया
है, इसप्रकार उस जरामृत्युरहित साक्षीरूप उत्तम आत्मा को देखता है यही

योगियों का योग कहाजाता है, हे तात ! मैंने इतना योगशास्त्र सिद्धान्त के साथ तुझ से वर्णन किया अब उस सांख्ययोग को कहता हूं जिस में न्यायरूपी रस्सी और सर्प के समान पिछले २ कार्य्य को पहले २ में लयकरने से साक्षात्कार होता है हे राजेन्द्र ! प्रकृतिवादियों ने प्रकृति को ही अव्यक्त वर्णन किया है उसी से महत्तत्त्व हुआ जो कि प्रकृति से दूसरा है तीसरा अहंकार महत्तत्त्व से उत्पन्न होता है यह हम ने सुना है सांख्य के सिद्धहोनेवाले आत्मा को देखनेवाले पुरुषों ने पञ्चतत्त्व अर्थात् पञ्चतन्मात्रा नाम सूक्ष्म तत्त्व को अहंकार से उत्पन्न होनेवाला कहा है यह आठ प्रकृति हैं और उनके विकृतरूप सोलह हैं और अपने २ विकारों को प्रकट करनेवाली ग्यारह इन्द्रियां पांच सूक्ष्मतत्त्व जो कि विशेष नाम कहेजाते हैं, सांख्यशास्त्र के आशय जाननेवाले और सांख्यमार्ग में ही सदैव चलनेवाले ज्ञानियों ने इतने ही तत्त्ववर्णन किये हैं—अब इनके लय को कहते हैं—जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसी में लय होता है अर्थात् वह अन्तरात्मा से उत्पन्न होते हैं, और विपरीत रीति में नियत होनेवाली लयता को प्राप्तहोते हैं, वह गुण सदैव अनुलोम अर्थात् सीधे मार्ग से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम अर्थात् उलटेमार्ग से ऐसे प्रकार गुणों में लयहोते हैं, जैसे कि समुद्र की लहरें समुद्र में ही लय होजाती हैं हे राजन् ! इसीप्रकारसे प्रकृति की भी उत्पत्ति और लय हैं अर्थात् त्रिगुणात्मिका प्रकृति ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसीशुद्ध ब्रह्म में लय होजाती है, प्रकृति के लय होनेपर इस पुरुष की भी एकता होती है और जब उसको उत्पन्न करती है तब अनेकता होती है हे राजन् ! उसी ओर का भय ब्रह्मज्ञानियों को जानना चाहिये जिसको कि अगले श्लोक में वर्णन करेंगे जिसे महत्तत्त्वादि का चेष्टा करानेवाला अव्यक्त कहते हैं इसका भी वही दृष्टान्त है जिसने अर्थ तत्त्व को अच्छे प्रकार से पाया वह सुषुप्ति और प्रलय काल में प्रकृति की एकता को और संसार की उत्पत्ति में अनेकता को जानता है, इसप्रकार अज्ञान के अधिष्ठाता सांख्यवाले मनुष्यों की विजय है इसशंका को कहते हैं—मोक्ष में चिदात्मा से इस अज्ञान की एकताही है और स्वरूप सत्ता के द्वारा चिदात्मा प्रकृति के प्रकट होने से उसकी अनेकता है क्योंकि आत्मा उस उत्पत्तिरूप प्रकृति को बहुत प्रकार का करदेता है इसी हेतु से चिदात्माही मुख्य अधिष्ठाता है और प्रकृति गौण अधिष्ठाता, हे राजेन्द्र ! वहां जो पचीसवां परमात्मा क्षेत्र में अर्थात् प्रकृति और उसके विकाररूपों में नियत होता है तब साधुओं की ओर से अधिष्ठाता कहाजाता है क्षेत्रों में नियत होने से अधिष्ठाता होता है और अव्यक्त नाम माया को क्षेत्र जानता है इसीहेतु से क्षेत्रज्ञ कहाता है, वह पुरुष इस आठपुरीवाली अविद्यारूप क्षेत्र में प्रवेश करता है यह भी कहाजाता है क्षेत्र एक पदार्थ और दूसरा अनेक पदार्थ कहाजाता है तात्पर्य्य यह है कि

क्षेत्रज्ञ का अधिष्ठातापन अव्यक्त ही के द्वारा है, अब पुरुष और प्रकृति के विवेक को वर्णन करते हैं-क्षेत्र को अव्यक्त रूपकहा और उसके जाननेवाले को पचीसवां चिदात्मा कहाजाता है दूसरा नहीं है परन्तु ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य पदार्थ दूसरा कहाजाता है, ज्ञाता के ज्ञान को अव्यक्त और ज्ञेय को पचीसवां अव्यक्त को क्षेत्रबुद्धि और ईश्वर कहा और पचीसवां तत्त्व चिदात्मा ईश्वर नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष सामान से दूसरा है और तत्त्व भी नहीं है क्योंकि तत्परोक्ष का जतलानेवाला है परन्तु वह चिदात्मा परोक्ष है, सांख्यशास्त्र इतनाही है कि सांख्यमतवाले उस साक्षात्कार को जो स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का आत्मा में लय करता है यही सिद्धकरते हैं और माया को जगत् का कारण कहते हैं-अब लय होने के योग्य वस्तुओं को कहते हैं सांख्यमतवाले चौबीस तत्त्वों को प्रकृति के साथ वास्तव करके चिदात्मा में लय करके सिद्धहोते हैं पचीसवां चिदात्मा सदैव अपरोक्ष है, प्रकृति से परे पचीसवां चिदात्मा जीवरूप कहा है और जब वह आत्मा ज्ञानस्वरूप होता है तब सिद्धहोता है, ब्रह्म दर्शन इतनाही है यह सब मैंने मूलसमेत तुझ से कहा इस प्रकार से इसके ज्ञातालोग ब्रह्मभाव को पाते हैं, ब्रह्मदर्शही पूर्ण दर्शन है और रस्सी के सर्प की समान अब्रह्म का दर्शन नहीं योग्य है वह केवल भ्रान्तिरूप है इसीप्रकार ब्रह्म में कल्पित अहंकारादि के देखने से द्रष्टा पूर्णता को नहीं पाता है, किन्तु जो उस अहंकारादिक में नियत है उसका देखनेवाला पूर्णता को प्राप्त होता है निर्गुण के सिवाय यह भ्रान्तिरूप महत्तत्त्वादिक जैसे अपने सन्मुख और व्यवहार में सचा होने से प्रत्यक्ष है उसीप्रकार निर्गुण पुरुषों का भ्रान्तिरहित रूप होना प्रत्यक्ष होता है अब आत्मज्ञान के फल को कहते हैं-इसप्रकार देहाभिमान से रहित ज्ञान में प्रवृत्त पुरुषों का आवागमन नहीं होता है ब्रह्मरूप होने से अपर सत्य संकल्पादि ऐश्वर्य्य और पर अर्थात् उपाधिरहित समाधि समय का अविनाशी सुख वर्त्तमान होता है आवागमन किसको है उसको वर्णन करते हैं-जो नानाप्रकार की बुद्धि रखनेवाले पुरुष अनेकता को देखते हैं और उनमें ब्रह्मदर्शन नहीं है वह वारंवार शरीरों को धारण करते हैं, इसब्रह्म को विज्ञान और ध्यान बल से अपरोक्ष न करनेवाले ब्रह्म का ज्ञान न होने से शरीर प्राप्त करनेवाले पुरुष शरीर के आधीनहोंगे, यह सब संसार अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधान है और पचीसवां चिदात्मा इससे पृथक् है जो पुरुष इस पचीसवें को जानते हैं उनको इस दुःखरूपी संसार का कोई भय नहीं है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्धेद्वात्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

एकसौतेंतीस का अध्याय॥

वशिष्ठजी बोले कि, बारह प्रश्नों में से सांख्ययोग और एकता अनेकता का विज्ञान इन तीनों प्रश्नों को मूलसमेत कहा अब शेष प्रश्नों के उत्तरवर्णन करता हूं—हे नरोत्तम! यह सांख्ययोग तो तुम ने सुना अब विद्या और अविद्या को क्रम से सुनो, उत्पत्ति नाश की धर्म्म रखनेवाली अविद्या को अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधानकहा और उत्पत्ति नाश से रहित अविद्या को पचीसवां कहा, इस विद्या की उत्तमता वर्णन करने को अवान्तर विद्या के भेद को कहते हैं एक दूसरे की विद्या को ऐसे क्रमपूर्वक समझो जैसे कि सांख्यऋषियों ने टीका वर्णन की है, सब कर्मेन्द्रियों की विद्या अर्थात् लयस्थान ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की विद्या स्थूलतत्त्व कहे गये यह हमने सुना है, ज्ञानीलोग उन स्थूल तत्त्वों की विद्या को चित्त और चित्त की विद्या को सूक्ष्म पञ्चतत्त्व कहते हैं, हे राजन्! इन पांचों सूक्ष्मतत्त्व की विद्या अहंकार है और अहंकार की विद्या बुद्धि है अर्थात् महत्तत्त्व है, महत्तत्त्वादि की विद्या परमेश्वरी प्रकृति है जिसको प्रधानअज्ञान भी कहते हैं, हे नरोत्तम! वहश्रेष्ठ विद्या जानने के योग्य है और परमबुद्धि कोही श्रेष्ठ संसार का कर्त्ता कहा पचीसवें चिदाभास को उस अव्यक्त की उत्तम विद्या वर्णन की और सब ज्ञानियों के ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य को अव्यक्त कहा अर्थात् अव्यक्त के ज्ञान से सर्वज्ञ होता है, ज्ञान अर्थात् बुद्धि की वृत्ति को अव्यक्त वर्णन किया और जानने के योग्य रूपरहित पचीसवां है इसीप्रकार ज्ञान अव्यक्त और जाननेवाला भी पचीसवां है यह मैंने विद्या और अविद्या क्रमपूर्वक तुझ से वर्णन की और अक्षर वा क्षर जो कहे उनको भी सुनो ब्रह्म, जीव, माया यह तीनों ब्रह्मरूप हैं इनमें से माया और जीव दोनों का वर्णन करते हैं यह माया और जीव आदि अन्त रहित होने से अक्षर हैं अर्थात् अविनाशी हैं और यही दोनों हरसमय पर रूपान्तर करने से कहेजाते हैं उनका कारण ज्ञान से ठीक २ कहता हूं, यह दोनों आदि अन्तरहित हैं और दोनों मिले हुए अक्षर हैं अर्थात् उत्पत्ति के कारण हैं इन दोनों को ब्रह्मदर्शी पुरुष तत्त्वनाम से वर्णन करते हैं उत्पत्ति नाश के धर्मरखने से अव्यक्तमाया को अविनाशी कहा क्योंकि उसके नाशवान् होने से संसार का अन्त होजायगा परन्तु उस संसार का भी आदि अन्त मोक्षदशा के सिवाय नहीं है वह अव्यक्त गुणों की उत्पत्ति के निमित्त वारंवार रूपान्तर करनेवाला है, पचीसवें चिदाभास को भी परस्पर के अधिष्ठान से गुणों का उत्पत्तिस्थान वर्णन करते हैं अर्थात् विना परस्पर संगहोने के न तो प्रकृति संसार को उत्पन्न करसक्ती है न जीव करसक्ता है किन्तु दोनों मिलकर ही करसक्ते हैं इसी हेतु से प्रकृति के समान जीव भी अविनाशी

है यह तो दोनों की अविनाशता को कहा अब उनके नाश को कहते हैं—जब योगी उस प्रकृति को शुद्ध ब्रह्म में लय करता है तब वह पचीसवां चिदाभास जीव उन गुणों समेत लय को प्राप्त होता है अर्थात् तीसरा महापुरुष शेष रहता है तात्पर्य्य यह है कि जबतक चिदाभास और प्रकृति की एकता है तबतक दोनों अविनाशी हैं फिर दोनों का नाशहोजाता है जब प्रलय के समय महत्तत्वादि गुणप्रकृति के गुणों में लयहोते हैं तब प्रकृतिही अकेलीरहजाती है इसीप्रकार क्षेत्रज्ञ भी जब अपने प्रत्यक्षस्थान पचीसवें चिदात्मा में लयहोता है तब वह पचीसवांही अकेला रहजाता है, हे राजन्, जनक! जब चिदाभास गुणों में कर्मकर्त्ता न होने से निर्गुण भाव को पाता है तब महत्तत्वादिसमेत प्रकृति भी नाश को पाती है, इसीप्रकार यह क्षेत्रज्ञ भी क्षेत्रज्ञान के दूरहोने में नाश को पाता है परन्तु प्रकृति में और उसमें इतना अन्तर है कि यह वास्तव में निर्गुण है अर्थात् यद्यपि गुण और गुणी नाम क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विनाशवान् हैं परन्तु क्षेत्रज्ञ के क्षेत्र से पृथक् होनेवाला चिदंश अविनाशी है यह हमने सुना है जब यह क्षेत्रज्ञ अज्ञानदशामें प्राप्तहोताहै तब विनाश युक्त होता है इसीप्रकार जब प्रकृति को गुण युक्त और आत्माकी निर्गुणताको देखताहै, तब प्रकृतिको लयादि करके अत्यन्त पवित्र होताहै जब यह ज्ञानी अपरोक्ष कहता है कि मैं दूसरा हूं और यह प्रकृति दूसरी है तब यह तत्त्वनाश अर्थात गुणों की कल्पना से पृथक्ताको पाताहै, और उसकी सम्बन्धताको दूरकरताहै, हे राजेन्द्र! यह आत्मा प्रकृति से युक्त और पृथक् भी दृष्टआता है, जब वह चिदाभास प्रकृति के गुण जाल की निन्दा करता है और सर्वद्रष्टा चिदात्मा को देखता है तब उसको देखता हुआ त्याग नहीं करै है अर्थात् भूलता नहीं है, मैंने यह किया जो यहां इस प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले देह का ऐसा साथी होता है जैसे कि मछली अज्ञान से जाल में आजाती है मैंनेहीं बड़ी भूल से एक देह से दूसरे देह में ऐसे निवास किया है जैसे कि मछली जल के इस ज्ञान से कि यह मेरे जीवन का कारण है तालाव में स्थिरता से निवास करती है. जिसप्रकार मछली अपनी अज्ञानता के कारण जल से अपनी अभिन्नता को नहीं जानती है उसीप्रकार मैं भी अज्ञान से पुत्र आदि से अपने आत्मा को पृथक् नहीं जानता हूं, मुझ अज्ञानीको धिकार है जो फिर उस आपत्ति में फँसे हुए देह का साथ किया और एक देह से दूसरे देह में प्रविष्ट हुआ, यहांपर यह मेरा भाई और मित्र है उसके साथमें मेरा कल्याण होगा यह विचारकर समानता और एकता को प्राप्त किया जैसा यह था वैसाही मैं भी हुआ निश्चय करके मैं उसी के समान हूं जैसे यह प्रत्यक्ष में कपट से रहित है इसीप्रकार का मैं भी हूं ऐसा विचार करनेवाला मैं अज्ञानी भूल से इस अज्ञानी के साथ प्रवृत्त हुआ मैं असंग होकर इतने समयतक इस संगी के साथ

नियत हुआ और उसके आधीन हुआ अवतक नहीं चेता हूं मैं उस उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी से सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृति के साथ कैसे निवास करूं यहां मैं अज्ञानता से इस प्रकृति के साथ कैसे निवास करूंगा, अब सांख्ययोग में निष्ठावान् होकर मैं आत्मा को जानूं इस समय अज्ञानी छली अपने साथी को नहीं पाऊंगा, मैं निर्विकार होकर इस विकारवान् प्रकृति से ठगागया हूं यह इसका अपराध नहीं है यह मेरेही अपराध का फल है जिससे कि मैं इसका साथी होकर आत्मा से बहिर्मुख हुआ हूं अर्थात् विषयों के भोगने में प्रवृत्त होगया इसहेतु से मेरा आत्मारूप भी धन और रूपों में अथवा मूर्त्तियों में मूर्त्तिमान् है यह देह से रहित ममता में फँसकर देहवान् है और अत्यन्त ममता के अभ्यास से नानायोनियों में गिरायागया, उन २ योनियों में चित्त की भ्रान्ति के साथ वर्त्तमान ममता से उस ममता रहित आत्मा का कुछ काम नहीं है, अहंकार से आत्मा की नाश करनेवाली इस प्रकृति से मेरा क्या काम है यह अनेकरूपों को धारण करके फिर मुझ को उनसे मिलाती है अब ममता और अहंकार से रहित होकर मैं सावधान हुआ हूं कि अहंकार से आत्मा की नाशकरनेवाली ममता इसी प्रकृति से सदैव उत्पन्न होती है, मैं इस प्रकृति को छोड़कर इससे अलग होकर निरानन्द परमात्मा की शरण लूंगा और इसी परमात्मा से एकता को प्राप्तकरूंगा इस जड़रूप प्रकृति से नहीं करूंगा, इस परमात्मा के साथ मेरी एकता है और प्रकृति के साथ अनेकता है, इसप्रकार उत्तम ज्ञान से पचीसवें चिदाभास ने शुद्धब्रह्म को साक्षात्कार किया है, नाशवान् प्रकृति को त्याग करके सब उपाधियों से पृथक् अविनाशीपने को प्राप्त करना योग्य है क्योंकि वह प्रकृतिरूप अव्यक्त वा प्रत्यक्ष धर्म रखनेवाली सगुण और निर्गुण है हे राजन्, जनक! यह चिदाभास प्रथम आदि निर्गुण ब्रह्म को देखकर वैसाही होता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मही होता है, यहां मैंने वेदानुभव के अनुसार यह ब्रह्म और प्रकृति का अनुभव जो कि ज्ञानयुक्त है तुम से कहा और जो सन्देह रहित सूक्ष्म पवित्र और दोषों से रहित है उसको भी तुझ से वेद के अनुसार कहता हूं, मैंने सांख्य और योग दोनों शास्त्रों की रीति से वर्णन की जो सांख्यशास्त्र है वही योग दर्शन है इसका तात्पर्य यह है कि शम दम आदि से द्वैत का नाशहोना मोक्ष का देनेवाला है यह बात दोनों शास्त्रों में बराबर है साधन के अनुभव फलों से दोनों की एकताई होती है, हे राजन्! सांख्यमतवालों का ज्ञान बड़ी विज्ञता का करनेवाला है वहां शिष्यों के प्रयोजन के सिद्धहोने की इच्छा से अच्छेप्रकार स्पष्टता से कहाजाता है, इसप्रकार यह शास्त्र बड़ा है यह ज्ञानियों का कथन है फिर उस सांख्यशास्त्र और वेद में योगियों का बड़ा आदर है, जीव इसमें क्या

है यह समझकर सांख्यमतवाले योग की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं इसी से कहते हैं—हे राजन् ! पच्चीसवें चिदाभास से बड़ातत्त्व कोई नहीं है, और सांख्यमत वालों का उत्तम तत्त्व छब्बीसवांही ठीक वर्णन कियागया है, फिर योगमत में उक्त दोष की कौन गति है यह शंका करके कहते हैं—जो चिदात्मा स्वरूप है वही सारूप्य वृत्तिदशा में शुद्धरूप के न जानने से जीव रूप होता है इसी कारण प्रधान और चिदात्मा को योग का अनुभव वर्णन किया है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्रयस्त्रिंशत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

एकसौचौंतीसका अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि, अब तुम परमात्मा जीव और सतोगुण आदि के प्रभाव को सुनो कि वह चैतन्य अपने को माया के कारण से बहुत प्रकार का करके उनके रूपों को तत्त्वरूप देखता है तात्पर्य्य यह है कि वही दोनों परमात्मा जीव प्रधान से पृथक् जानने उचित हैं उस दशा में जीव से सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र निष्फल नहीं होता है, इसप्रकार से भेदवादी की जीत नहीं होती है इसको कहते हैं—जीव इस ब्रह्म को नहीं जानता है कारण यह है कि अपने को कर्त्ता और भोक्ता मानकर विपरीत दशा करनेवाला है जब यह गुणों को धारण करता है तब उत्पत्ति और नाश को करता है, हे राजन् ! यहां क्रीड़ा के निमित्त रूपान्तर को करता है और कार्य के साथ अज्ञान के जानने से जीव को विधीयमान नाम से भी प्रसिद्ध करता है, यह जानना जीव काही धर्म्म है इस शंका को कहते हैं—हे तात ! निश्चय करके यह रूप आदि से युक्त प्रधान अव्यक्त इस पच्चीसवें निर्गुण पुरुष को नहीं जानता है इसीकारण इसको जड़ वर्णन किया, पच्चीसवें महात्मा चिदाभास को अव्यक्त के जानने से विधीयमान कहते हैं यह भी वास्तव में नहीं जानता है; अब जाननेवाले को कहते हैं—जो छब्बीसवां निर्मल ज्ञानस्वरूप अप्रमेय सनातन है वह पच्चीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को सदैव जानता है अर्थात् उपाधिरहित चैतन्यही सब का प्रकाशक है, हे महातेजस्विन् ! वह पच्चीसवां अपनी सत्ता से कार्य कारण में वर्त्तमान है अर्थात् सन्मात्रही छब्बीसवां है हे तात ! इस जीवते शरीर में वह गुप्त उपाधिरहित ब्रह्मज्ञानियों को विदित होता है, फिर सर्वत्र वर्त्तमान वह शुद्ध ब्रह्म हम को साक्षात् क्यों नहीं होता है—इसी हेतु से कहते हैं—जब यह जीव अपने को आत्मा से जुदा मानता है अर्थात् कहता है कि मैं अमुक पुरुष का पुत्र हूं ब्राह्मण हूं तब शुद्ध ब्रह्म पच्चीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को भी नहीं जानता है, फिर कैसे शुद्ध ब्रह्म का जाननेवाला होसक्ता है इसी हेतु से कहते हैं—जब शुद्ध ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाली द्वैततारहित सर्वोत्तमा विद्या

को प्राप्त करता है तब अव्यक्त प्रधान अज्ञान में दृष्टि करनेवाला यह चिदाभास प्रकृति को जीतता है, हे नरोत्तम ! इसप्रकार से छब्बीसवां ब्रह्म जीवभाव को प्राप्त करता है फिर वह जीव विद्या के द्वारा इस उत्पत्ति और नाश के धर्म्म रखनेवाले प्रधान अज्ञान को त्यागकरदेता है, यह जीव अव्यक्त अज्ञान को अपने से पृथक् देखने से शुद्ध होता है जो आप निर्गुण होकर गुणयुक्त जड़ रूप प्रकृति को जानता है वही शुद्ध ब्रह्म है, तीनों उपाधियों से रहित जीव शुद्ध आत्मा से मिलकर उसी आत्मा को पाता है जिसको कि निर्विकल्प अपरोक्ष अजर और अमर कहते हैं, हे महादानिन् ! तत्त्वज्ञ महात्मा दृश्यमान शरीरादिक में निवासकरने से तत्त्ववान् होता है वास्तव में कभी नहीं होता इस कारण से कि केवल साक्षीमात्र है उन तत्त्वों को ज्ञानी लोग संख्या में पचीस कहते हैं, हे तात ! यह तत्त्ववान् अर्थात् महत्तत्त्वादि का रखनेवाला परोक्ष नहीं है क्योंकि निस्तत्त्व अर्थात् कार्य्य कारण से रहित अपरोक्ष यह ज्ञानी के "अहं ब्रह्माऽस्मि" इस तत्त्व लक्षणको भी शीघ्र त्याग करता है, जब ज्ञानी मानता है कि मैं अजर अमर छब्बीसवां हूं तब केवल अपनी सामर्थ्यरूप ब्रह्माकारवृत्ति के द्वारा ब्रह्मभाव को पाता है आशय यह है कि यह ब्रह्माकार अन्त की वृत्ति दूसरी वृत्ति को और अपने को भी शीघ्र शान्त करती है, छब्बीसवें ब्रह्म के द्वारा पचीस तत्त्वों को जाननेवाला भी उस छब्बीसवें को नहीं जानता है यह उस का अज्ञान सांख्य श्रुति के दृष्टान्त से अनेक अर्थात् द्वैतता के विरुद्ध है कहा जाता है, अब छब्बीसवें के अनुभव स्वरूप को कहते हैं—इस बुद्धि से युक्त पचीसवें की ब्रह्म से एकता उससमय होती है जब बुद्धि से भी आत्मा को नहीं जानता है अर्थात् बुद्धि का निरोध होने पर पूर्णसुषुप्ति के समान छब्बीसवें का अनुभव है, हे राजन्, जनक ! जब यह सुखादि का भोक्ता अहंवृत्ति में नियत जीव मन वाणी से परे छब्बीसवें चिदात्मा से एकता को प्राप्त होताहै तब पुण्य पापके स्पर्श से पृथक् होता है, जब यह समर्थ उस असंग अजन्मा समर्थ छब्बीसवें परमात्मा को पाकर अज्ञानप्रधान अव्यक्त को त्याग करता है तब उसको जानता है तात्पर्य्य यह है कि पुरुष के देखतेही प्रकृति लय होजाती है, छब्बीसवें का ज्ञान होने से चौबीसवां रस्सी के सर्प की समान अरूप असार होजाता है, हे निष्पाप ! यह मायाजीव और ब्रह्ममूल समेत वेद के प्रमाण संयुक्त तुझ से कहे अब चौबीस तत्त्वों के साथ जीव की यह एकता और द्वैतता शास्त्र के अवलोकन से जानना योग्य है जैसे गूलर और गूलर के जीव या मछली और जल जुदे हैं इसीप्रकार इन दोनों को पृथक्ता ज्ञात होती है, इसीप्रकार इन दोनों की भी एकता और द्वैतता जाननी उचित है अव्यक्त को पुरुष से पृथक् जानना और केवल पुरुष का शेष रहना नाम यह मोक्ष उस पचीसवें चिदाभास का

वर्णन कियागया जो कि शरीरों में वर्त्तमान है यह चिदाभास अज्ञान और उसके विषय महत्तत्त्वआदिकों से जुदा करने के योग्य वर्णन किया इस चिदाभास और अज्ञान के नाशहोने से मुक्त होता है दूसरी रीति से नहीं होता है यह ठीक निश्चय है यह चिदाभास क्षेत्र से मिलकर चिदात्मा से दूसरा और क्षेत्र का धर्म्म रखनेवाला होता है, हे नरोत्तम ! वह अत्यन्त पवित्र धर्म्मवान् बुद्धिमान् मोक्षधर्म्म में नियत चिदाभास उस शुद्धज्ञान स्वरूपमुक्त वियोगधर्मी चिदात्मा से मिलकर वैसाही होजाता है, वह पवित्रकर्मी महाप्रकाशमान होता है और सब उपाधियों से पवित्र निर्मल आत्मा से मिलकर स्वच्छ निर्विकार आत्मा होता है, इसीप्रकार केवल शुद्ध ब्रह्म से मिलकर केवल आत्मा होता है और यह स्वतन्त्र चिदाभास इस स्वतन्त्र चिदात्मा से मिलकर स्वतन्त्रता को प्राप्त होता है, हे महाराज ! मैंने यह सिद्धान्त इतना तुमसे वर्णन किया सो तुम ईर्षा से रहित होकर प्रयोजन को स्वीकार करके यह पवित्र सनातन आदि परब्रह्म तुमको उस मनुष्यसे कहने के योग्य है जोकि तीनोंगुणोंसे रहित हो यह ज्ञान का कारण और नम्रपुरुष का उपदेश ज्ञान की इच्छा करनेवालों को करना उचित है और मिथ्यावादी, शठ, नपुंसक, कुटिल बुद्धि को कभी न देना चाहिये ऐसे मनुष्य को देनायोग्य है जो सदैव श्रद्धायुक्त दूसरे की निन्दा से रहित पवित्रात्मा योगी क्रियावान् शान्तरूप संतोषी महात्मा है, जो मनुष्य एकान्त में बैठनेवाला शास्त्र का माननेवाला विवादरहित अनेक शास्त्रों का ज्ञाता विज्ञानी मोक्षमार्ग में शत्रु से क्षमा न करनेवाला बाह्याभ्यन्तर से शान्तात्मा धर्मवान् है उसको उपदेश करना योग्य है, जो इनगुणों से अत्यन्तरहित है उसको कदापि न देनाचाहिये क्योंकि यह अत्यन्त पवित्र परब्रह्म कहाजाता है इसीसे अभक्त मनुष्यको उपदेश करना निष्प्रयोजन है क्योंकि वह उपदेश उसको कल्याणकारी नहीं होगा और अपात्र को दानकरने से उस दानी और धर्म्मोपदेश करनेवाले का भी कल्याण नहीं होता, चाहे रत्नों से भरीहुई सम्पूर्ण पृथ्वी को दान करे परन्तु इस ब्रह्मज्ञान को व्रत न करने वाले मनुष्य को कभी न देनाचाहिये यह ज्ञान निस्सन्देह जितेन्द्रिय पुरुष को देनाचाहिये, हे करालजनक ! अब तुम को किसी प्रकार का भय न होगा क्योंकि तुम ने यह शुद्ध उत्तम आदि अन्त रहित सनातन परब्रह्म का उपदेश ठीक २ वर्णन कियाहुआ सुना हे राजन् ! जो ब्रह्म जन्म मृत्यु से छुटानेवाला उपाधिरहित निर्भय और आनन्दस्वरूप है उस ब्रह्म को विचारकर और इस ज्ञान के तत्त्वार्थ को जानकर अब सब मोहों को त्यागकरो हे राजेन्द्र ! मैंने उस उग्र आत्मा सनातन ब्रह्माजी को युक्ति से प्रसन्नकरके उस उपदेशकरनेवाले सनातन हिरण्यगर्भ से इस ब्रह्मज्ञान को ऐसे पाया है जैसे कि अब तुम ने मुझ से

प्राप्तकिया है, हे राजन् ! यह ब्रह्मज्ञान मोक्ष जाननेवालों का उत्तम रक्षा का आश्रय है इसको जैसे तुम ने मुझ से पूछा उसीप्रकार मैंने तुम से कहा, युधिष्ठिर ने प्रश्नकिया था कि वह अविनाशी कौन है जिसको प्राप्त होकर आवागमन से छूटजाता है इसको सिद्ध करने के लिये भीष्मजी बोले कि हे राजन् ! मैंने वेदों के दृष्टान्त से यह परब्रह्म वर्णन किया जिसको पाकर पचीसवां चिदाभास संसार में फिर लौटकर नहीं आता है, यह जीव इस अजर अमर परब्रह्म को सिद्धान्तसहित नहीं जानता है इसीहेतु से उत्तम ज्ञान को न पाकर आवागवन में फँसता है हे पुत्र, राजन्, युधिष्ठिर ! मैंने देवऋषि नारदजी से सुनकर यह कल्याणकारी उत्तमज्ञान मूलसमेत तुम से कहा, यह ज्ञान महात्मा वशिष्ठ ऋषिजी ने ब्रह्माजी से पाया और नारदजी ने उन ऋषियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी से पाया और मुझ को नारदजी से मिला हे कौरवेन्द्र ! तुम इस परमपद को सुनकर शोच मतकरो हे तात ! जिसने यह क्षर माया और अक्षर जीव को जाना वह निर्भय है और जो इस ब्रह्म को नहीं जानता है वह सदैव भयभीत है, अज्ञानात्मा पुरुष ने विज्ञान के न होने से वारंवार दुःखों को पाया और मरकर हज़ारों मृत्युसम्बन्धी जन्मों को पाया है, देवलोक आदि लोकों को और पशु, पक्षी, मनुष्य, पर्यन्त योनियों को भी पाता है जब इच्छा से रहित होता है तव उस अज्ञान समुद्र से पार होता है, हे भरतवंशिन् ! वह अज्ञानसागर महाघोररूप है उसी में हज़ारों जीव डूबते हैं, हे राजन् ! तुम जिस अथाह और प्राचीन अव्यक्त नाम समुद्र से वाहर निकले हो इसहेतु से तुम रजोगुण तमोगुण से पृथक् हो अर्थात् शुद्धसतोगुण प्रधान हो ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे जनकवशिष्ठसंवादे
चतुस्त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

एकसौपैंतीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, चौवीस तत्त्वों को क्षर कहकर और योगमतसम्बन्धी पचीसवें चिदाभास को जो कि धर्म्म आदि के सम्बन्ध से क्षर है, उसको वर्णन किया और धर्म्म आदि से असम्बन्धी छब्बीसवां अक्षर ब्रह्म भी सांख्यमत से वर्णन किया अब उसके प्राप्त करने में अधिकारी होने के हेतु कुछ धर्म्मों का वर्णन करता हूं—निर्जनवन में आखेट करतेहुए राजा जनक के पुत्र राजा वसुमान् ने वेदपाठियों के इन्द्र भृगुवंशी मुनि को देखा, उन वैठेहुए मुनि को शिर से दण्डवत् करके उनके पास बैठगया और उनकी आज्ञालेकर राजा वसुमान् ने यह प्रश्नकिया, हे ब्रह्मन् ! इस अनित्य शरीर में इच्छा की आधीनता में वर्त्तमान पुरुष का इसलोक और परलोक में कैसे कल्याणहोय, तव बड़ी

प्रसन्नता से सत्कारपूर्व्वक उस महात्मा तेजस्वी ने राजा से यह कल्याणकारी वचन कहा, जो तुम इसलोक और परलोक में मनोवाञ्छित पदार्थों को चाहते हो तो इन्द्रियों से सावधान होकर हिंसा आदि जीवोंके अप्रिय कर्म्मोंको चित्तसे त्यागदो, धर्म ही सत्पुरुषों का हितकारी और रक्षा का स्थान है और हे तात ! धर्म्म सेही तीनों लोक स्थावरजंगम जीवोंसमेत उत्पन्न हैं, विषयी लोगोंकी जो इच्छा और मन की वाञ्छा हैं उनकी अनिच्छा क्यों नहीं करता है हे मूर्ख ! मधु को देखता है और उनके दुःखों को नहीं देखता है जिसप्रकार ज्ञान का फल जानने वाले मनुष्य को धर्म्म में अभ्यास करना चाहिये, जो सत्पुरुष नहीं है और धर्म्मकी इच्छा करनेवाला है वह अत्यन्त पवित्र होना कठिन है परन्तु धर्म्म को चाहनेवाले सत्पुरुष से कठिन कर्म्म होना सुगम है, जो वन के बीच स्त्रीप्रसंगादि सुख का अभ्यास करनेवाला है वह उस प्रकार का है जैसा प्राकृत मनुष्य और जो गांव वन के सुखोंका अभ्यास करनेवाला है जैसा वनचारी, तुम सावधान होकर निवृत्तिमार्ग्ग वा प्रवृत्तिमार्ग्ग में गुण अवगुणों को विचारकर मन, बुद्धि, देह से सम्बन्ध रखनेवाले धर्म्म में श्रद्धा करो, दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाले मनुष्य और ऐसे साधुओं को सदैव बहुत सा दानदेना योग्य है जोकि बाहर भीतर से पवित्र व्रती विरक्त देशकालपर पूजित हो, श्रेष्ठबुद्धि से प्राप्त होनेवाले धन को योग्य और पात्रलोगों को दानकरे दान में क्रोध और पश्चात्ताप को न करे न अपने मुख से उसका कहीं वर्णन करे, दयावान् पवित्र जितेन्द्रिय सत्यवक्ता स्वधर्म्मपत्नी में सन्तान हेतु विषय करनेवाला शुद्धकर्म्मी वेदज्ञ ब्राह्मण दान देने के योग्य पात्र है—अब योनि और कर्म्म की शुद्धि को कहते हैं—इसलोक में सन्तान का उत्पत्तिस्थान स्त्री ही समझीजाती है परन्तु जो एकही पुरुषकी स्त्री है वही पूजित है, ऋग्वेद, यजुर्व्वेद, सामवेद का जाननेवाला षट्-कर्म्मी ज्ञानी ब्राह्मण पात्र कहाजाता है, सब दानों में देशकाल को विचारकर दान के योग्य पात्र और कर्म्म की प्रशंसा से उसी मनुष्य को धर्म्म और अधर्म्म दोनों होते हैं जैसे कि मनुष्य शरीर के साधारण धब्बे को शरीरही से शुद्धक-रता है और बड़े धब्बे को बहुत उपायों से दूर करता है इसीप्रकार पाप का भी दूरकरना है जैसे विरक्त की मुख्य औषधि घृत है उसीप्रकार दोषरहित मनुष्य का यज्ञादिधर्म्म परलोक में सुखदायक होता है, सब जीवधारियों में मानसीपाप और पुण्य वर्त्तमान होता है उस मन को सदैवपापों से पृथक् करके शुभकर्म्मों में ही प्रवृत्तकरे, सर्वत्र सब से कियेहुए सबकर्मों को पूजनकरे जिसस्थानपर अपने धर्म में मैत्री और प्रीति हो वहां इच्छानुसार धर्म्म को करे, हे अधीर ! धीरज धर हे दुर्बुद्धे ! सुबुद्धिहो अशान्ति से शान्ति धारणकरो हे अज्ञानिन् ! तुम ज्ञानी के समान कर्म्म करो, अपने साथी सतोगुण अथवा पराक्रम से उपाय करना

उचित है इसलोक और परलोक में जो कल्याण है उसका मूल उत्तम धीरज है, धीरज से रहित महाभिप नाम राजर्षि स्वर्ग से गिरा और पुण्य नाश होनेपर भी राजा ययाति ने धीरज ही के द्वारा लोकों को प्राप्तकिया, तपस्वी धैर्य्यवान् ज्ञानियों की संगति और सेवा से बड़ी बुद्धि को प्राप्त करके उत्तम कल्याण को पाता है, भीष्मजी बोले कि उस स्वाभाविक धर्म्म से युक्त राजा वसुमान् ने मुनि के इस वर्णन को सुनकर और चित्त को इच्छाओं से हटा के धर्म्म में बुद्धि को नियत किया॥ २५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पञ्चत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

एकसौछत्तीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि जो चिदात्मा सुख दुःखादि धर्म्मों से और अनेक संशयों से और जन्ममृत्यु से पृथक् पाप पुण्य से रहित है और सदैव निर्भय नित्य अविनाशी न्यूनता और दोषों से रहित उपाधियों से मिलाहुआ भी सदैव एकही रूप में नियत है उसको आप कहने के योग्य हैं, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्! इसस्थानपर एक प्राचीन इतिहास को तुम से कहता हूं जिसमें याज्ञवल्क्यऋषि और राजाजनक का प्रश्नोत्तर है, महायशस्वी राजा देवराति के पुत्र नरभूषण राजाजनक ने ऋषियों में और प्रश्नों के महाज्ञाताओं में अति उत्तम याज्ञवल्क्यजी से प्रश्नकिया, कि हे ब्रह्मर्षे! कितनी इन्द्रियां और प्रकृति हैं और महत्तत्त्व से परे कारण ब्रह्म कौन है और उससे भी परे निर्गुण ब्रह्म कौन है, हे वेदपाठियों में इन्द्ररूप! आप के अनुग्रह चाहनेवाले मुझ प्रार्थना करनेवाले से उत्पत्ति प्रलय और काल की संख्या कहने को आप योग्य हैं क्योंकि आप ज्ञान के समूह हैं मैं अज्ञानता से इस संशय से रहित को सुनाचाहता हूं, याज्ञवल्क्य बोले कि, हे पृथ्वीपाल! जिसको तुम पूछते हो वह योगियों का और सांख्यमतवालों का उत्तम ज्ञान है उसको विभागपूर्वक सुनो, तात्पर्य्य यह है कि योगमत में अव्यक्त को जड़ और सत्य भी मानते हैं और सांख्यमत में चैतन्य के प्रतिबिम्ब से युक्त अव्यक्त शुद्धब्रह्म के ज्ञान से लय होजाता है, प्रकृति आठ प्रकार की और उसके विकार सोलह कहे इनमें से वेदान्त विचार करने वालों ने भी आठही प्रकृति वर्णन की हैं अज्ञान प्रधान अव्यक्त महत्तत्त्व, अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि यह सूक्ष्म पञ्चतत्त्व जिनको तन्मात्रा भी कहते हैं, यही आठ प्रकृति हैं और सोलह विकारों को भी सुनो— श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जिनको स्थूलतत्त्व भी कहते हैं, वाक्, पाणि, पाद, गुदा, लिंग यह कर्मेन्द्रिय, हे राजेन्द्र! पांचों महाभूतों में यह दशों विशेष नाम हैं अर्थात् उनसे

विकारों की उत्पत्ति नहीं होती है यह ज्ञानेन्द्रियां विशेष नाम हैं अर्थात् विशेष नहीं है, वेदान्त गति के विचार करनेवाले और तत्त्वज्ञों में पण्डित तुम ने और अन्य आत्मज्ञानियों ने मन को सोलहवां कहा अर्थात् मनविकार के मध्यवर्ती भी विशेष नहीं है क्योंकि वह तत्त्वों की उत्पत्ति का कारणरूप है—अब उत्पत्ति के क्रम को वर्णन करते हैं—हे राजन् ! अव्यक्त से महान् आत्मा उत्पन्न होता है इसकी उत्पत्ति को ज्ञानीलोग प्राधानिक कहते हैं और प्रधान से संसार और महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ इस दूसरी उत्पत्ति को बुद्धि से संसार कहते हैं, अहंकार से चित्त उत्पन्न हुआ वही चित्त पञ्चतत्त्व और शब्दादि विषयों का उत्पत्तिकारण है यह तीसरी सृष्टि की उत्पत्ति अहंकारसम्बन्धी कहीजाती है, हे राजन् ! पञ्चमहाभूत चित्तसे उत्पन्नहुए इस सब की अंगीकृत चौथी उत्पत्ति को चित्तसम्बन्धी सृष्टि जानो, तत्त्वों के विचार करनेवाले ज्ञानियों ने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्दको पांचवीं उत्पत्तिको तत्त्वसम्बन्धी सृष्टि वर्णनकरी है, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, पांचवीं घ्राण इस छठी उत्पत्ति को मनसम्बन्धी वर्णन किया हे राजन् ! श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से पञ्चकर्मेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं वह चित्तरूप हैं अर्थात् चित्त से हुई हैं इस सातवीं उत्पत्तिको इन्द्रियसमूह वर्णन किया, ऊर्ध्वगतिवाले प्राण और तिर्य्यक्गति रखनेवाले, समान, व्यान, उदान को आठवीं उत्पत्ति कहते हैं और इन्द्रियों से उत्पन्न इन प्राण आदि की वृत्ति को सामान्य कहते हैं इन समान, व्यान, उदान के नीचे अपान उत्पन्न होता है उसकी बाईं ओर को गति है ज्ञानीलोग इन्द्रियों की सृष्टि को सामान्य वृत्तिवाली कहते हैं, हे राजन् ! वेदों के दृष्टान्तों से यह नवप्रकारकी उत्पत्ति और चौबीस तत्त्वों का वर्णन किया तदनन्तर महात्माओं की कहीहुई इस गुण की उत्पत्तिसंख्यारूप काल को मूलसमेत मैं कहता हूं अर्थात् उस २ गुण की उपासना से उसके स्वरूप को पाकर जितने २ समयतक नियतहोता है वही उसकी संख्या है ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेषट्त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

एकसौसैंतीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि, हे नरोत्तम ! मोक्ष का अन्त नहीं है और कर्म उपासना के सब फलों का अन्त है और जिसने अव्यक्त की उपासना से अव्यक्त भाव को प्राप्तकिया है उसके समय की संख्या को मैं कहता हूं उसका दिन दश हज़ार कल्प का होता है और रात्रि भी इतनी ही होती है, हे राजन् ! वह जागनेवाला अव्यक्त प्रथम तो औषधि को उत्पन्न करता है क्योंकि उसी से सब जीवों का जीवन है वेद में लिखा है कि चित्त अन्नरूप है इसीकारण से यहां औषधि का अर्थ सूक्ष्मचित्त ही है, उस चित्त के द्वारा सुवर्णरूप अण्डे में अर्थात्

एकसौउन्तालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, तत्त्वदर्शी ब्राह्मणों ने चरणों को अध्यात्म और गति को अधिभूत और विष्णु को अधिदैवत कहा है, तत्त्वार्थदर्शियों ने वायु इन्द्रिय को अध्यात्म, विसर्ग को अधिभूत और मित्र देवता को अधिदैवत वर्णन किया है और योगदर्शी पुरुषों ने उपस्थ इन्द्रिय को अध्यात्म और उसके आनन्द को अधिभूत और प्रजापतिजी अधिदैव वर्णन किये, सांख्यदर्शी पुरुषों ने दोनों हाथों को अध्यात्म और करने के योग्य कर्म को अधिभूत और इन्द्र को अधिदैव कहा है, श्रुति देखनेवालों ने वाक् इन्द्रिय को अध्यात्म, कहनेवाला अधिभूत और अग्नि अधिदैव वर्णन किये हैं, वेददर्शी चक्षुरिन्द्रिय को अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्य्य को अधिदैव कहते हैं, और उन्ही श्रुति देखनेवालों ने श्रोत्र इन्द्रिय को भी अध्यात्म कहा है, उसमें शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैव है, वेददर्शियों ने जिह्वा को अध्यात्म, रस अधिभूत और जल को अधिदैव कहा है, श्रुतिदर्शी घ्राणइन्द्रिय को अध्यात्म, गन्ध को अधिभूत और पृथ्वी को अधिदैव कहते हैं, तत्त्व बुद्धि में कुशल पुरुषों ने मन को अध्यात्म, उसके विषय को अधिभूत और चन्द्रमा को अधिदैव कहा है, और शास्त्रवेत्ता पुरुषों ने त्वक्इन्द्रिय को अध्यात्म, स्पर्श इन्द्रिय को अधिभूत और वायु को अधिदैव कहा तत्त्वदर्शी अहंकार को अध्यात्म, अभिमान को अधिभूत और इस में बुद्धि होना अधिदैव कहते हैं, फिर उन्ही पुरुषों ने बुद्धि को अध्यात्म उसके विषय को अधिभूत और क्षेत्रज्ञ को अधिदैव कहा है, हे राजन्! आदि, मध्य, अन्त अर्थात् उत्पत्ति, समाधि, लय में यह पृथ्वी रस्सी में सर्प के समान तुम को ऐसे दिखलाई गई है जैसे कि तत्त्वज्ञ पुरुष सिद्धान्त के अनुसार देखता है, हे महाराज! यह प्रकृति रूप अविद्या स्वतन्त्रता और अपनी इच्छा से हज़ारों महत्तत्त्वादि गुणों को पृथक् २ प्रकट करती है इसी से यह प्रकृति कहलाती है, जैसे कि संसारी पृथ्वी के पुरुष एक दीपक से हज़ारों दीपक प्रकाशित करते हैं इसी प्रकार प्रकृति पुरुष के हज़ारों गुणों को प्रकट करती है, उनका ब्यौरा धैर्य्य, ऐश्वर्य्य, आनन्द, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धि, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धा, उदारता, क्रोधरहित होना, अहिंसकता, समदृष्टिता, सत्यता, तीनों ऋणों से निवृत्त होना, शील, लज्जा, अचपलता, बाहर भीतर की शुद्धता, सरलता, आचारता, निर्लोभता, निर्भय होना, प्रिय अप्रियता से रहितहोना, बुरेकर्म्म से बचना, दानसे जीवोंको आधीन करना, इच्छा, परोपकार करना, सबपर दया करना, यह सत्त्व के गुण हैं और ऐश्वर्य्य स्वरूपादि त्याग न करना, निर्दयता, सुख दुःख का अभ्यास दूसरे की निन्दा में प्रवृत्तहोना, परस्पर में विवाद करना, अहंकार, असत्कार, चिन्ता,

शत्रुता करना, शोक, भय, पराये धनका लेना, निर्लज्जता, कुटिलता, परस्पर में विरोध रखना, अपनी वीरता प्रकट करना, काम,क्रोध, अहंकार, बहुत बकना, यह राजस के गुण हैं, अब तामस के गुणोंको सुनो मोह, अप्रकाश, तामिस्र, अन्धतामिस्र, यह तमोगुण के लक्षण हैं भोजन आदिकी वस्तुओं में अधिक प्रीति रखना, भोजन से तृप्त न होना, पीने की वस्तुओं से तृप्त न होना, सुगन्ध, पोशाक, आनन्द के बाग आदि में विहार, पलंग आदि का शयन,आसन, दिनमें सोना, अधिक बोलना, और कामों में प्रवृत्त होकर विस्मरण होना,अज्ञानसे नृत्यगीत वाद्यमें प्रवृत्तचित्त,धर्म्मात्माओं से विरोध करना,इत्यादि तमोगुणके धर्म्म हैं॥ २८॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेएकोनचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

एकसौचालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि, इन गुणों के विकारों से उनका प्रकाशक पुरुष अनेकरूप का होता है और इनके समान उत्तम मध्यम निकृष्ट स्थानों को प्राप्तकरता है इस बात को इसअध्याय में वर्णन करते हैं–हे पुरुषोत्तम ! यह सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण तीनों प्रधान केही गुण हैं वह सदैव सब संसार के आगे वर्तमान होते हैं यह षडैश्वर्य का स्वामी अव्यक्तरूप हज़ारोंप्रकार से आत्मा के द्वारा इस अकेले शुद्ध चैतन्य को हज़ारों लाखों करोड़ोंप्रकार का करता है इससे इस ब्रह्माण्ड में सात्त्विकी पुरुष का स्थान उत्तम है राजसी का मध्यम और तामसी का निकृष्ट स्थान है यह वेदान्त विचारवाले कहते हैं यहां केवल पुण्य से ही स्वर्ग को प्राप्त करना योग्य है पुण्य और पाप से मनुष्य देह और अधर्म्म से अधोगति को पाता है इन तीनोंगुणों की प्रशंसा और वैसेही उसके संयोग को भी मैं कहता हूं कि सतोगुणी में रजोगुण और रजोगुणी में तमोगुण और तमोगुणी में सतोगुण और सतोगुणी का शुद्ध ब्रह्मरूपी अव्यक्त देखागया है सतोगुण से युक्त अव्यक्त जीवात्मा देवलोक को पाता है, रजोगुण सतोगुणयुक्त मनुष्य नरलोकों में जन्मलेता है और रजोगुण तमोगुणयुक्त पुरुष तिर्य्यग्योनि पशुपक्षीआदि में जन्म लेता है, रजोगुण तमोगुण और सतोगुण तीनों से युक्त मनुष्य शरीर को पाता है और पुण्य पाप से पृथक् मनुष्य महात्माओं के स्थान को पाता है, और जो सनातन अविनाशी न्यूनता से रहित है वह मोक्षरूप है, ज्ञानियों में जन्म लेना उत्तम है उनका स्थान निर्विकार अविनाशी इच्छाओं से रहित अविद्या से पृथक् जन्म मरण और अज्ञान का नाश करनेवाला है वह अरूप ब्रह्म में नियत होनेवाला सर्वोपरि है जिसको तू मुझ से पूछता है वही ब्रह्म प्रकृति में नियत होकर प्रकृतिही में निवास करनेवाला कहाजाता है, हे राजन् ! प्रकृति को भी जड़रूपही मानते हैं वह प्रकृति इस चैतन्य से

मिलकर उत्पत्ति और नाश को करती है परन्तु पकड़ने में नहीं आती है, हे वेद-पाठियों के इन्द्र, याज्ञवल्क्य ! तुम मोक्षधर्म को सम्पूर्णता के साथ उपासना करते हो मैं सम्पूर्ण मोक्षधर्म को मूलसमेत सुनना चाहता हूं इसीप्रकार चैतन्य होनेपर भी आवश्यक गुणों के वर्त्तमान होने विना उसका होना कैसे होसक्ता है क्योंकि अग्नि और उसकी ऊष्मा के समान प्रकृति पुरुष की प्रीति एक साथ होजाती है और वर्त्तमानता होनेपर भी एकता अर्थात् प्रकृति से पृथक् कैसे होसक्ती है क्योंकि पुरुष के ऐश्वर्य्य और प्रकृति के अविनाशी होने से उसका होना असम्भव है और शरीर में जो देवता नियत हैं उनको भी मुझे समझाइये, इसी प्रकार देह के त्यागनेवाले मृतकजीव के उस स्थान को भी बताइये जिसको कि समय पर प्राप्त करता है और सांख्यज्ञान और पृथक्योग को भी मूलसमेत वर्णन कीजिये हे महात्मन् ! आप मृत्यु जाननेवाले तत्त्वों के भी वर्णन करने को योग्य हैं यह सब आप हस्तामलक के समान जानते हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

एकसौइकतालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे राजन् ! वह निर्गुण ब्रह्म सगुण होना ऐसे असम्भव है कि वह गुणवान् और निर्गुण दोनों है इसको मूलसमेत मैं कहता हूं वह माया के गुणों से गुणवान् है इसीप्रकार गुणों से पृथक् निर्गुण है ब्रह्म का साक्षात् करनेवाले महात्मा मुनियों ने इसप्रकार से कहा है, गुण का स्वभाव रखनेवाला अव्यक्त गुणों को त्यागकर वर्त्तमान नहीं होसक्ता है और स्वभाव से अज्ञानी वही अव्यक्त उनगुणों को भोगता है, और दृष्टि से अलक्ष्य दूसराचिदात्मा पुरुष स्वभावसेही गुणों को न जानता है न भोगता है किन्तु सदैव मानता है कि मुझ आत्मा से भोगने के योग्य पदार्त्थ पृथक् नहीं हैं, इसीकारण भोक्तापन और अभोक्तापन की विलक्षणता से स्वभाव सेही जड़रूप वह प्रधान अव्यक्त चैतन्य की प्राचीन योग्यता और विनाशी अविनाशीपन आदिगुणों से भोक्ता है और काष्ठ के समान चैतन्य के अंश से भिन्न नहीं है इसीकारण अज्ञान के हेतु से वारंवार गुणों से मिलाकरता है इस निमित्त जबतक आत्मा को असंग नहीं जानता है तबतक मुक्त नहीं होता है, इसीप्रकार संसार के कर्तृत्वभाव से भी धर्म की उत्पत्तिवाला कहाजाता है और योगों के स्वामीपन से भी धर्म कहलाता है इसहेतु से मुक्त नहीं होता है, प्रजाओं के स्वामीभाव से प्रकृति धर्मता नाम गुण को धारण करता है इसकारण से भी मुक्त नहीं होता बीजों के स्वामी होने से बीजधर्मा और गुणों की उत्पत्ति लय करने से ईश्वर कहलाता है इत्यादि सबकारणों से मुक्ति से रहित होता है, इसप्रकार के पुरुष की एकता कैसे

होसक्ती है इसी से कहते हैं—तप से पृथक् ब्रह्मविद्या जाननेवाले शुद्ध यतीलोग केवल साक्षीभाव और एकत्वता से अथवा अभिमान से मानते हैं कि अव्यक्त अर्थात् गुप्तब्रह्म सदैव है और प्रत्यक्ष कार्य्य सब विपरीत दशा करनेवाले हैं अर्थात् विनाशवान् हैं यह सुनते हैं, इसीप्रकार अनीश्वरवादी सांख्यों ने अव्यक्त की एकता को और पुरुषों की अनेकता को कहा है वह अनीश्वर सांख्यवादी सब जीवोंपर दयावान् होकर केवल ज्ञान में नियत होते हैं, अब प्रकृति पुरुष के विभाग को बहुत दृष्टान्तों समेत कहते हैं वह सब में पूर्ण अविनाशी नाम अव्यक्त और है अर्थात् पुरुष से पृथक् है जैसे कि सींकों के बाहर मूंज उत्पन्न होती है उसी प्रकार यह भी उत्पन्न होता है इसीप्रकार गूलर और गूलर के भुनगों की अलगजाने क्योंकि भुनगे गूलर के योग से पृथक् हैं इसीप्रकार जल और मछली को समझो क्योंकि मछली सब दशा में जल के स्पर्शही की पाबन्दी नहीं रखती इसीप्रकार अग्नि और अग्नि की अंगीठी पृथक् २ हैं इसी प्रकार कलम और जल भी जुदे २ हैं ज्ञानी पुरुष इन सब के निवास स्थान और साथी के निवास स्थान को सदैव मुख्यता अर्थात् आद्योपान्त देखते हैं और जो प्राकृत मनुष्य हैं वह सदैव नहीं देखते हैं, जो पुरुष विपरीत देखनेवाले हैं उन्हों में पूर्णदृष्टि नहीं है वह सब के प्रत्यक्ष घोर नरक में पड़ते हैं, यह सांख्यदर्शन और उत्तमयोग तुम से कहा सांख्यपर चलनेवाले पुरुषों ने इसीप्रकार से ज्ञानी होकर एकता को प्राप्त किया है, उस सांख्य में जो दूसरे ज्ञानी प्रवृत्तहों उनके निमित्त यह सब दृष्टान्त हैं, अब योगियों के विचारज्ञान को कहता हूं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

एकसौबयालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, हे राजेन्द्र ! मैंने सांख्यज्ञान को तो वर्णन किया अब योगज्ञान को मूलसमेत मुझ से सुनो, सांख्य के समान कोई ज्ञान नहीं है इसी प्रकार योग के समान कोई पराक्रम नहीं है वह दोनों एक चर्यावाले अर्थात् शम दमादि का अनुष्ठान करनेवाले और मृत्यु के नाश करनेवाले कहे हैं हे राजन् ! जो मनुष्य अल्पबुद्धि हैं अर्थात् उन दोनों को पृथक् २ देखते हैं और हम अपने निश्चय से एकही देखते हैं, जिसको योगीलोग देखते हैं वही सांख्य मतवाले भी देखते हैं जो सांख्य और योग को एक देखता है वही तत्त्वज्ञ कहाता है, हे शत्रुहन्तः, राजन् ! दूसरे धारणरूप योगों को रुद्रप्रधान जानो अर्थात शरीर त्यागने के समय जीवात्मा को रुलानेवाले प्राण इन्द्रियआदि प्रधानरूप आलम्बन उन धारणाओं में नियत हैं उस प्राणधारणाका यह फल है कि वह योगी दशोंदिशा में उसीदेह से घूमते हैं अर्थात् आकाश की गति में सामर्थ्यवान्

होते हैं, हे निष्पाप, जनक, पुत्र! जबतक ब्रह्म में लयभाव हो तबतक योग के द्वारा अष्टपुरीरूप सूक्ष्म शरीर से लोकों में घूमते सुखपूर्वक संन्यास को धारण करो यह फल केवल श्रद्धाबढ़ाने के निमित्त कहा है कुछ योगियों को आवश्यक आदरार्थ नहीं है, हे राजेन्द्र! ऋषियों ने वेदों में अष्ट उन्माद आदि गुणरखनेवाले योग को पढ़ा है और प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, त्याग, समाधि, यम, नियम रखनेवाले योग को सूक्ष्म कहा है उस अन्य को नहीं कहा है जिसको पहिले आधेश्लोक में वर्णन किया था, योगियों की उत्तम योगचर्या को शास्त्र के दृष्टान्त समेत दो प्रकार की कही पहिली सगुण अर्थात् सबीज दूसरी निर्गुण अर्थात् निर्बीज, हे राजन्! प्राणनिग्रह के साथ आधारों में मन का धारण करना सगुण योगचर्या कहलाती है इसीप्रकार ध्यान करनेवाला ध्यान के योग्य वस्तु और ध्यान इन तीनों के विभाग से पृथक् उस एक ईश्वर के सन्मुख होना और मन समेत इन्द्रिय और बुद्धि को रोकना यह निर्गुण योगचर्या कहाती है, सगुण निर्गुण अंग और अंगी हैं इस बातको कहते हैं—प्राणायाम सगुण है और वृत्ति से मन को पृथक् नियतकरना निर्गुण है हे राजन्! जो योगी दृष्टि से गुप्त त्याग के स्थान प्राण में प्राणों को छोड़ता है तब वायु की अधिकयता होती है तात्पर्य्य यह है कि जो योगी है और मूलाधार आदि के देवता आदि का ध्यान करता हुआ वायु की धारणाकरता है वह सिद्धि को पाता है और जो ध्यानरहित केवल अभ्यास करता है वह अवश्य कष्ट को सहता है जैसे कि पवनयोगसंग्रह में लिखा है कि ध्यान देवता से संयुक्त प्राणायाम करने से सब रोग दूरहोते हैं और जिसमें अभ्यास और योगयुक्त नहीं है उसके करनेवाले को महारोग उत्पन्न होता है वह देवता यह हैं कि नील कमलदल के समान श्याम वर्ण नाभिदेश के मध्यनियत चतुर्भुज रूप को पूरक के द्वारा ध्यानकरे और हृदय में नियत कमलासन पर रक्तवर्ण वा श्वेतवर्ण चतुर्मुख ब्रह्माजी को कुम्भक के द्वारा ध्यानकरे और ललाट में नियत शुद्धस्फटिकरूप पापनाशक महेश्वरजी को रेचकके द्वारा ध्यानकरे इन्हीं हेतुओं से उसको नहीं करे अर्थात् मूलाधार चक्र से लेकर सब चक्रों में प्राण को पहुंचाकर उनके अधिष्ठाता देवता का ध्यान यहांतक करे कि बारहवींबार शुद्ध ब्रह्म में ध्यानलगाना होजाय इसप्रकार से वायुधारणा आदि उपाय के द्वारा दुःख से जीतने योग्य मन को अपने आधीन करके शान्त रूप तत्त्वप्राप्ति के योग्य एकान्त अभ्यासी केवल आत्मा में ही क्रीड़ाकरनेवाले तत्त्वज्ञ योगी की ओर से जीव ब्रह्म की निस्सन्देह एकता करने के योग्य है, अब मिलजाने की रीति को कहते हैं—पांचों इन्द्रियों के पांचप्रकार के उन दोषों को जोकि इच्छा के अप्राप्तिरूप शब्दादि विषयों को प्राप्त हों तुच्छ करके विक्षेप और लय को एकरूप करके सम्पूर्ण इन्द्रियसमूहों को मन में और मन को

अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व को प्रकृति में लय करके फिर माया से रहित ब्रह्म का ध्यान करते हैं वह ब्रह्म रजोगुण से रहित अनन्त प्राचीन अत्यन्तपवित्र रूपान्तर दशा से रहित है कूटस्थ पुरीरूप देहों में शयन करने वाला अज्ञानदशा में जीव ईश्वररूप के कारण माया से द्वैत न प्राप्त करने वाला भी आकाश के समान गिरनेवाला अजर अमर सदैव अविनाशी परमेश्वर ब्रह्मन्यूनता से रहित है हे महाराज! समाधियों में नियत योगी के लक्षणों को और आनन्दरूप योगी के उन लक्षणों को सुनो जैसे कि तृप्तहोकर आनन्द से सोता है, वायुरहित स्थान में घृत से पूर्ण दीपक प्रकाशमान होते हैं और अग्नि की ज्वाला भी निश्चल प्रकाशमान होती है उसीप्रकार से समाधि में नियत योगी को भी ज्ञानीलोग कहते हैं और जैसे कि मेह की बूंदें पर्वत को चलायमान नहीं करसक्तीं उसीप्रकार समाधि में नियत योगी का चित्त नाना प्रकार के गीतवाद्य रागादिकों से नहीं चलायमान होता यह मुक्त पुरुष का दृष्टान्त है, समाधिस्थों के लक्षण कहकर अब योगी के लक्षणों को कहते हैं— जिसप्रकार हाथ में खड्ग लिये मनुष्यों से घुड़का हुआ भयभीत मनुष्य तेल के पात्र को दोनों हाथों से पकड़कर सीढ़ीपर चढ़ता है और वह सावधान चित्त उन खड्गधारियों के भय से पात्र के तेल की बूंद भी न गिरावे इसीप्रकार एकाग्रचित्त योगी के उत्तम लक्षण को पाकर वैसा ही होजाता है, इसप्रकार जितेन्द्रिय समाधि में नियत योगी के लक्षण को जानो आत्मा में मिलाहुआ पुरुष उस ब्रह्मको देखता है जो कि न्यूनतारहित महाउत्तम है और ज्योतिःस्वरूप तत्त्वं नाम दोनों पदार्थों में नियत है अर्थात् उन दोनों का सारांशरूप है, हे राजन्! इस ज्ञान के साक्षात्कार से बहुत समय में अनात्मारूप देहको त्यागकर शुद्धब्रह्म को पाता है यह सनातन श्रुति है यही योगियों का मुख्ययोग है दूसरा योग नहीं है इसी योग को जानकर ज्ञानीलोग अपने को निवृत्त मानते हैं॥२७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे द्विचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १४२॥

एकसौतेतालीस का अध्याय॥

याज्ञवल्क्य ऋषि बोले कि, राजयोग के फल कैवल्यप्राप्ति को कहकर अब हठयोग का फल कहते हैं—हे राजन्! इसीप्रकार सावधान होकर अब देह के त्यागनेवाले जीवात्मा को सुनो, मन के साथ प्राण को चरण में धारण करने वाले और उसी मार्ग से देह के त्यागनेवाले का परमपद विष्णुलोक वर्णन करते हैं, जंघाओं से वसुदेवताओं के लोकों को और घुटनों के द्वारा साध्य देवताओं के लोकों को प्राप्त करता है, पाप इन्द्रिय में मन और प्राण की धारणा से प्राण त्यागनेवाला मनुष्य मैत्रलोक को और जघन अंग से पृथ्वी को

और ऊरू अंग से प्रजापति के लोक को और दोनोंपार्श्वों से मरुत् देवताओं के लोक को और नाभि के द्वारा इन्द्र पदवी को पाता है और दोनों भुजाओं से भी इन्द्रलोक को और छाती के द्वारा रुद्रलोक को पाता है, ग्रीवा से मुनियों में श्रेष्ठ नरलोक को मुख से विश्वेदेवाओं के लोक को और श्रोत्रइन्द्रिय से दिशाओं को पाता है और मूर्द्धा के द्वारा सुषुम्णानाड़ी अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से देवताओं से प्रथमही प्रकट होनेवाले प्रभु ब्रह्माजी को पाता है, हे मिथिलेश्वर! यह शरीर त्याग के स्थान वर्णन किये अब ज्ञानियों के नियत कियेहुए मृत्यु चिह्न जोकि एकवर्ष के अन्तर्गत मरनेवालों के शरीर में प्रकट होते हैं उनको वर्णन करताहूं जो पुरुष पहले देखेहुए अरुन्धती के नक्षत्र को और ध्रुवजी के नक्षत्र को और पूर्ण चन्द्रमा और दीपक पूरा न देखसके वह एकही वर्ष के भीतर देह को त्यागेंगे और हे राजन्! जो पुरुष दूसरे मनुष्य के नेत्र में अपने प्रतिविम्ब को नहीं देखते हैं वह भी एकही वर्ष के भीतर जीवेंगे तेज और बुद्धि की आधिक्यताहोना अथवा दोनों का नाशहोजाना और स्वभाव में विपरीत होना अर्थात् असन्तोषी से सन्तोषी होना कृपण से उदारहोना यह तो ऐसा लक्षण है कि छही महीने में मृत्यु होजाय—जो देवताओं का अपमान करता है और ब्राह्मणों से शत्रुता करता है कृष्णवर्ण वा धूसरवर्ण दीखकर मृत्यु को प्रकट करता है यह छः महीने के पीछे मृत्युहोने का लक्षण है, जो पुरुष चन्द्रमा और सूर्य्य को मकड़ी के जाले के समान वा उन चन्द्रमा सूर्य्य में छिद्र देखता है वह सातही रात्रि में मरनेवाला है, जो पुरुष देवता के मन्दिर में वर्त्तमान सुगन्धित वस्तु को पाकर उसमें मृतक की सी गन्ध को सूंघता है वह भी सातही रात्रि में मरनेवाला है, कान नाक का टेढ़ाहोजाना, दांत और आंख का रंग वदलजाना, देह की वेहोशी और गर्मी का दूर होजाना यह वहुतजल्द मरने के लक्षण हैं, हे राजन्! जिसके वायें नेत्र में से अकस्मात् अश्रुपात होनेलगें और मस्तक से धुआंनिकले वह शीघ्र मरने का लक्षण है, ज्ञानी मनुष्य इतने मरने के लक्षण जानकर दिन और रात आत्मा को परमात्मा में मिलावे, जिससमय कि मरण होगा उसकाल की बाट देखनेवाला अपने मरण को अप्रियजाने उसदशा में इस कर्म्म को करनाचाहिये, पूर्व्वोक्तरीति से पृथ्वी आदि के विजय करने के द्वारा उनके गन्धादि विषयभी जीतेजाते हैं और पांचोंतत्त्वों के विजय करने से मृत्यु को भी विजय करता है इसको कहते हैं—हे राजन्! सब गन्ध और रसों को धारणकरे अर्थात् आत्मा के रूप समानकरे वह नरोत्तम सांख्य और योग से प्रशंसनीय ज्ञानीपुरुष योग और उसयोग में प्रवृत्त अन्तरात्मा के द्वारा संसारी मृत्यु को जीतता है, और उस पूर्ण अविनाशी अजन्मा आनन्दस्वरूप न्यूनतादि आवागमन और रूपांतर दशा से रहित को

प्राप्त होकर उस के ज्ञान से उसकी एकता प्राप्तकरे जोकि भ्रष्ट अन्तःकरणवाले पुरुषों से करना कठिन है ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्रिचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

एकसौचवालीस का अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यऋषि बोले कि, हे राजन् ! अचलहोने के कारण ब्रह्म और प्रकृति की पृथक्ता सिद्धकरने को याज्ञवल्क्यऋषि बोले—तुम अव्यक्त में नियत जो परब्रह्म है उसको और अपने पूछेहुए गुप्तप्रश्न को सावधानी से श्रवणकरो ब्रह्मविद्या की कठिनता से प्राप्ति और गुप्तता देवता की प्रसन्नता से होती है इसको कहते हैं हे नरोत्तम ! जिसप्रकार इस संसार में मैंने आर्षबुद्धि में प्रवृत्तहोकर बड़ी नम्रता से यजुर्वेद की ऋचाओं को सूर्य्यनारायण से प्राप्तकिया हे निष्पाप ! मैंने बड़ी तपस्या से उस ज्योतिरूप संसार के प्रकाशक देवता को सेवनकिया था तब उसने प्रसन्न होकर मुझ को आज्ञा दी कि हे ब्रह्मर्षे ! तुम वह वर मांगो जो तुम्हारा अभीष्ट और कठिनता से प्राप्तहोनेवाला है मैं प्रसन्नचित्त होकर वह वर तुम को दूंगा मेरा प्रसन्न करना बड़ा कठिन है तब मैंने शिर से साष्टांग दण्डवत् करके उस सर्वप्रकाशक सूर्य्य देवता से प्रार्थना करी कि यजुर्वेद की उन ऋचाओं को जोकि अन्य मनुष्यों को अप्राप्त हैं शीघ्रही जानना चाहता हूं तदनन्तर षडैश्वर्य्य के स्वामी सूर्य्य देवता ने मुझ से कहा कि हे ब्राह्मण ! मैं तुझ को दूंगा और यहां वचनरूप सरस्वती तेरे शरीर में प्रवेशकरेगी, फिर आज्ञा दी कि अपना मुख फाड़ो जभी मैंने मुख को फाड़ा उसीसमय सरस्वती जी उसमें प्रवेश करगई, इसके अनन्तर मैं अत्यन्त तप्त महात्मा सूर्य्यनारायण के तेज को न सहकर जल में घुसगया फिर मुझ को अत्यन्त सन्तप्त समझकर भगवान् सूर्य्य ने कहा कि एक मुहूर्त्तमात्र शरीर के ताप को सहो फिर तेरा शरीर शीतल होजायगा, सूर्य्यनारायण ने जब मुझ को ताप से रहित देखा तब प्रसन्नता से कहा कि हे ब्राह्मण ! तेरा वेद उपनिषदों समेत बड़ी प्रतिष्ठा को पावेगा और शतपथ नाम ब्राह्मण को प्रकट करेगा तदनन्तर तेरी बुद्धि मोक्ष में नियत होगी, सांख्ययोग में जो अभीष्टपद है उसको भी प्राप्त करेगा इतना कहकर वह सूर्य्यरूप परमेश्वर अन्तर्द्धान होगये, फिर मैंने अत्यन्त प्रसन्नता से घर में आकर सरस्वती को ध्यानकिया इसके अनन्तर स्वर और व्यंजन वर्णों से विभूषित प्रणव को सन्मुख करके देवी सरस्वतीजी मेरे मुख से प्रकटहुई फिर देवता में प्रवृत्तचित्त होकर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सरस्वती और सूर्य्यदेवता को ध्यान किया फिर तब उत्साह से सम्पूर्ण शतपथ रहस्य संयुक्त मैंने संग्रह किया तात्पर्य्य यह है कि सरस्वती के मुख में प्रवेश

करने से और सूर्य्यदेवता की कृपा से वह प्राचीन शतपथ आप से आप प्रकट होगया और मेरे १०० सौ शिष्य उनको पढ़कर विद्वान् होगये फिर जैसे कि सूर्य्य अपनी किरणों से घिरा होता है उसीप्रकार शिष्यों से घिरेहुए मैंने अपने मामा महात्मा वैशम्पायन और उनके शिष्यों का अप्रिय करने को तेरे महात्मा पिता का यज्ञ व्यास किया, उसके पीछे धन के निमित्त मामाआदि से बड़ा विवाद होनेपर अपने मामा के पक्षवाले देवल ऋषि के देखतेहुए मैंने अपनी वेद दक्षिणा का आधाभाग प्राप्त किया फिर जैमिनि आदि ऋषियों से भी मैं स्तुति के योग्यहुआ और हे राजन्! मैंने तो सूर्य्यदेवता से यजुर्वेद की पन्द्रह ऋचा प्राप्त कीं और लोमहर्षऋषि ने उन्हीं सूर्य्यदेवता से पुराणों को पढ़ा, फिर मैं बीजरूप प्रणव और देवी सरस्वती को सन्मुख करके सूर्य्यनारायण के अनुभाव से शतपथ के करने में प्रवृत्त हुआ और मैंने बड़े परिश्रम से अनुपम शतपथ नाम ब्राह्मण प्रकट किया और शिष्यों की जैसी अभिरुचि थी उसी के समान सम्पूर्ण ज्ञान सिखलाया और शिष्यलोग बाहर भीतर से पवित्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अपने २ आश्रमों को चलेगये सूर्य्य की दी हुई इन पन्द्रह शाखानाम विद्या को प्रतिष्ठा देकर इच्छानुसार उस जानने के योग्य ब्रह्म का विचारकरे, इसलोक में ब्राह्मण को कौनवस्तु हितकारी और कौन सी जानने के योग्य सत्य और श्रेष्ठतर है इस बात को मैं विचारही रहा था कि एक गन्धर्व ने वहां आकर मुझ से प्रश्नकिया फिर वेदान्त ज्ञान में पण्डित विश्वावसु गन्धर्व ने आकर वेद के चौबीस प्रश्नों को पूछा और युक्तिविचार सम्बन्धी पचीसवें प्रश्न को भी गन्धर्वों ने मुझ से पूछा और विश्व, अविश्व, श्वा, अश्व, मित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, कः, तपा, अतपा, सूर्य्याद, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अचल, चल, अपूर्व, अक्षय, क्षय यह उत्तम चौबीस प्रश्नपूछे, इसके अनन्तर मुझ से आज्ञा लेकर उन गन्धर्वों में श्रेष्ठ गन्धर्वों के राजा ने अर्थयुक्त उत्तम प्रश्नों को क्रम से पूछना प्रारम्भकिया, तब मैंने कहाकि मैं एक मुहूर्ततक विचारांश करता हूं तबतक आप ठहरिये यह सुनकर वह गन्धर्व मौन होगया तब मैंने भगवती सरस्वती को स्मरण किया भगवती की कृपा से वह प्रश्न मेरे चित्त के ऊपर ऐसे आगया जैसे कि दहीपर घृत आजाता है हे तात, जनक! मैंने उस स्थानपर सरस्वती की कृपा से दीखनेवाली युक्ति को देखकर वेद और उपनिषदों के दृष्टान्तों को मनही मन में मथन किया हे नरोत्तम! यह विद्या जो मैंने तुझ से वर्णन की है और तत्त्ववाले देह के अधिकार में नियत है वह दण्डनीति और मोक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली है फिर मैंने राजाविश्वावसु से कहा कि हे गन्धर्वों के इन्द्र! जो तुम विश्व और अविश्व नाम प्रश्न को पूछते हो तो इस विश्व को प्रधान अज्ञानरूप अव्यक्त नाम जानो यही इस संसार का उत्पन्न

करनेवाला है और अपने कर्त्तापने के गुण से तीनगुणों को धारण करता है इसीप्रकार का अविश्व अर्थात् आत्मा भी अंगों के विभागों से पृथक् है ऐसेही अश्वा और अश्व का भी जोड़ा दृष्ट आता है अर्थात् प्रकृति अश्वा और उसका मानना अश्व है, स्त्रीरूप प्रकृति को अव्यक्त कहते हैं और वीर्य डालने वाले पुरुष को निर्गुण कहते हैं अर्थात् प्रकृति पुरुष के प्रतिबिम्ब को पाकर सृष्टि को उत्पन्न करती है इससे अन्य दूसरा शुद्ध ब्रह्म है इसीप्रकार पुरुष को मित्र और प्रकृति को वरुण कहते हैं, ज्ञान को प्रकृति और ज्ञेय को शब्द ब्रह्म इसकारण से जीव और ईश्वरनाम रखनेवाला अकेला पुरुष शुद्ध ब्रह्म ही कहाजाता है और (क) वा तपा, अतपा नाम जो कहा यह आनन्दपुरुष कहाजाता है इनमें तपा को प्रकृति अतपा को शुद्ध ब्रह्म कहते हैं, तात्पर्य्य यह है कि जीव तो कार्य की उपाधि है और ईश्वर कारण की उपाधि है उपाधि के दूर होने पर वह दोनों शुद्धब्रह्म हैं, अवेद्य अर्थात् न जानने के योग्य को अव्यक्त और वेद्य अर्थात् जानने के योग्य को पुरुष कहते हैं और जो चल वा अचल है उसको भी कहता हूं अर्थात् अज्ञान के दूरहोने से केवल ब्रह्म जानने के योग्य है उपासना के योग्य नहीं है और अव्यक्त तुच्छतासे जानने के अयोग्य है जैसे कि रस्सी को सर्प मानना है वहां उसको सर्प न मानें किन्तु रस्सीही मानें, उत्पत्ति नाश के कारण रूपान्तर होनेवाली प्रकृतिको चल कहा और उसकी उत्पत्ति और लय का करनेवाला अचलपुरुष कहाजाता है अर्थात् सदैव एक दशा में रहता है और उसी के आभास से प्रकृति का होना है, इसी से अव्यक्त को प्रकटहोने से जानने के योग्य कहा और पुरुष को गुप्त होने से न जानने के योग्य वर्णन किया दोनों अज्ञान हैं अर्थात् प्रकृति जड़ है और पुरुष प्रकृति के मिलने से अपने मुख्यरूप ब्रह्म को नहीं जानता है दोनों आदिरहित अविनाशी हैं अर्थात द्वैतदशा में तो अवश्य विनाशी हैं परन्तु अज्ञान रहित होने में केवल शुद्धब्रह्म है, अध्यात्मगति के निश्चय से दोनों को अजन्मा वर्णन करते हैं, वेदोक्त बीसप्रश्नों का उत्तर वेदकीही रीति से देकर अब तर्कणा से उत्पन्न प्रश्नों के उत्तर को तर्क बल से ही देते हैं—यहां बहुतरूप से प्रकट होनेपर भी न्यूनता न होने सेउस अजन्माको न्यूनता रहित वर्णन किया और उस अष्टपुरी में निवास करनेवाले को अविनाशी कहा क्योंकि उसका नाश वर्त्तमान नहीं है, भोग ऐश्वर्यादि गुण विनाशवान् हैं और माया को उत्पत्तिकरने से प्रकृतिनाम है कर्म्मउपासना ज्ञान से वारंवार उत्पन्न होनेवाले भोग ऐश्वर्य्य को अविनाशीकहा क्योंकि वह तीनोंभोग पृथ्वीपर नहीं हैं इसी कारण अप्राकृत लोकोंमें भोगों की अविनाशिता योग्य नही है और कर्म्मभूमि में सिद्धहोनेवाले भोगों का अवश्य विनाशहै और भोगभूमि में अनुष्ठान नहीं

होता है यह सब ज्ञानी लोगों का कथन है और जिसमें युक्ति विचार उत्तम है यह मोक्ष सम्बन्धी चौथी विद्या तुम से कही, इस चौथीविद्यासे मिलेहुए धनको श्रवण मनन करके गुरुके द्वारा नित्यकर्म में प्रवृत्त होनायोग्य है हे विश्वावसो! सब वेदकर्म नित्य हैं और ईश्वर के प्रत्यक्ष करनेवाले हैं हे गन्धर्वराज ! यह आकाशादि जिस अधिष्ठान में उत्पन्न और लय होते हैं उस जानने योग्य वेद से सिद्ध होनेवाले आत्माको जिस हेतु से नहीं जानते हैं उसी हेतु से सब नाश को पाते हैं, जो पुरुष वेदों को अंग उपांग समेत भी पढ़ता है, और वेद से जानने योग्य ब्रह्म को नहीं जानता है वह वेदों का भार उठानेवाला है, हे गन्धर्व ! जो घृत का चाहनेवाला गधी के दूध को विलोवे वह उसमें मठा और घी नहीं पाता है किन्तु मठा रूप विष्ठा को देखता है, इसीप्रकार जो वेद का जाननेवाला पुरुष जानने के योग्य ब्रह्म और न जानने के योग्य प्रकृति को नहीं जानता है वह अज्ञानी केवल ज्ञान का बोझा उठानेवाला है, उन में प्रवृत्त अन्तरात्मा समेत यह दोनों माया और ब्रह्म सदैव देखने के योग्य हैं जिससे कि वारंवार जन्ममृत्यु से बचे, इस संसार में वारंवार होनेवाले जन्ममृत्यु को विचार करके और इस कर्मकाण्ड के लिखेहुए कर्म्मधर्म्म को त्यागकर मैं अविनाशी योगधर्म में प्रवृत्तहुआ, हे काश्यपगोत्रीय ! जब यह त्वंपदार्थ प्रति दिन आत्मा को देखता है तब वह शुद्ध होकर अर्थात् अविद्या को त्यागकरके छब्बीसवें तत्पदार्थ को साक्षात्कार करता है, अब "तत्त्वमसि" महावाक्य के अर्थ को वर्णन करते हैं-जैसे दृष्टि से गुप्त ईश्वर दूसरा है उसी प्रकार पचीसवां जीवात्मा भी दूसरा है अज्ञानी उस परमात्मा के दोनों रूपों को देखते हैं और वेदान्तनिष्ठ सांख्यमतवाले साधुलोग उस एकही को देखते हैं और जन्म मृत्यु के भय से व्याकुल होकर मोक्ष की इच्छाकरनेवाले ज्ञानी पुरुष इस जीव ईश्वर के भेद को नहीं मानते हैं, विश्वावसु बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम ! तुमने जो पचीसवें का सिद्धान्त अच्युतरूप होना वर्णन किया वह उसीप्रकार का है वा नहीं है इसको वर्णन कीजिये, मैंने महात्मा ब्रह्मऋषि पराशरजी, जैगीषव्य, असित, देवल और वार्षगण्य के मुख से सुना है और महात्मा पञ्चशिख, कपिल, शुक, गौतम, आर्ष्टिषेण और गर्गजी के मुख से भी सुना है, फिर महात्मा बुद्धिमान् नारद, आसुरी, पुलस्त्य, सनत्कुमार और शुक्रजी से श्रवण किया परन्तु सब से पहले मैंने अपने पिता कश्यपजी से सुना था तदनन्तर विश्वरूप रुद्रजी के मुख से सुना इसके विशेष मैंने जहां तहां देवता, पितर, राक्षसों से भी इस सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या को पाया इसी को जानने के योग्य और प्राचीन कहते हैं, हे ब्राह्मण ! इसीकारण उसको मैं आप की बुद्धि से सुनाचाहता हूं आप शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ वक्ता और सर्वज्ञ हैं और वेद के भंडार हैं आप को देवलोक,

पितरलोक में भी वेद का खजाना कहते हैं, ब्रह्मलोक के महर्षि और संसार के प्रकाश करनेवाले सूर्य्यनारायण भी वारंवार आप की प्रशंसा करते हैं, हे याज्ञवल्क्यजी! आप ने सम्पूर्ण सांख्यज्ञान और योगशास्त्र को प्राप्तकिया है, आप सब स्थावर जंगम व जीवमात्रों के ज्ञाता होकर पूर्ण बुद्धिमान् हो आप उस ज्ञान को सुनाइये जो कि घृतयुक्त मट्ठे के समान स्वादिष्ठ है, याज्ञवल्क्य बोले कि हे गन्धर्व! मैं भी तुम को सर्वज्ञ मानता हूं तुम मेरी परीक्षालेना चाहते हो उसको आप शास्त्र के अनुसार सुनो, हे गन्धर्व! पचीसवां अर्थात् चिदाभास जीव प्रकृति को जड़रूप जानता है परन्तु वह प्रकृति पचीसवें जीवात्मा को नहीं जानती है तात्पर्य्य यह है कि जड़रूप प्रकृति पुरुष से ही प्रकाशित होती है प्रकृति से पुरुष नहीं प्रकाशित होता है इस कहने से जीवही शुद्धचैतन्य वर्णन होता है, तत्त्वज्ञयोगी और सांख्यमतवाले पुरुष इसप्रकृति में चैतन्य के प्रतिबिम्ब होने से इस प्रकृति को वेद के दृष्टान्तों के द्वारा प्रधान कहते हैं, तात्पर्य्य यह है कि चैतन्य के प्रतिबिम्ब से संयुक्त बुद्धिही अहंप्रत्यय का विषय होती है, जो चिदाभास से दूसरा साक्षी है वह पचीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को विकारों से संयुक्त देखता है और निर्विकल्प समाधि में अदृष्ट होकर भी छब्बीसवें को देखता है तात्पर्य्य यह है कि जो साक्षी है वही दृष्टि से मिलकर पचीसवां होता है और दृष्टि से पृथक् होकर छब्बीसवां है और जिसको देखता है वह दीखता हुआ भी नहीं देखता है, पचीसवां जीवात्मा यह माने कि मुझ से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है परन्तु ज्ञानी मनुष्यों को चौबीसवां प्रकृतिरूप तत्त्व आत्मभाव से जानने के योग्य नहीं है क्योंकि वह अनात्मा है, मछली जल में प्रवेश करती है और उसमें निवास और चेष्टाकरने को प्रवृत्त होकर जब उस को यह ज्ञान होय कि मैं जल से पृथक् हूं इसीप्रकार यह जीवात्मा भी ज्ञानी होजाता है, जब जीवात्मा समय की लौट पौट से छब्बीसवें परमात्मा के साथ अपनी एकता को नहीं जानता है तब वह सदैव की प्रीति और साथ के निवास करने से और अपने अभिमान से उस प्रकृति में संयुक्त होजाता है और किसीसमयपर ब्रह्मभाव से शुद्धरूप होनेवाला उस प्रकृति से जुदा भी होजाता है, हे ब्राह्मण! जब यह अपने को चिदात्मा मानता है और यह अहंकारादिक अनात्मरूप दूसरे हैं तब अविद्यारहित शुद्धरूप होकर छब्बीसवें को साक्षात्कार करता है, हे राजन्! छब्बीसवां और पचीसवां यह दोनों अन्य २ हैं साधुलोग अज्ञान के नाश से केवल छब्बीसवें ही चिदात्मा को अनुभव कहते हैं, इसी कारण से जन्म मरण से निर्भय योगी और वह सांख्यमतवाले पुरुष इस जीव और ईश्वर के विभाग को नहीं मानते हैं, जो कि छब्बीसवें परमात्मा को अनुभव करनेवाले पवित्र और परमात्मा में तदाकार होरहे हैं जब अविद्या आदि

से पृथक् शुद्धरूप होकर छब्बीसवें को अनुभव करते हैं तब वह सर्वज्ञज्ञानी पुरुष पुनर्जन्म को नहीं पाते हैं, हे निष्पाप! यह मैंने माया जीव और ईश्वर वेद के निश्चय संयुक्त मुख्यता से वर्णन किये, हे काश्यप! जो पुरुष निर्विकल्प समाधि से दृश्य और अदृश्य को और केवल अकेवल को और दृश्यादृश्य की अन्यता को नहीं देखता वही शुद्धब्रह्म है वही साक्षी वही पचीसवां चिदाभास और वही जगत् का कारण है और जो कार्य्यरूप महत्तत्त्वादिक हैं वह भी वही हैं इसकी साक्षी वेद की श्रुति है अर्थात् जो यह जानता है कि मैं ब्रह्म हूं वही यह सब होजाता है ब्रह्मशब्द से पूर्ण ब्रह्म और सर्व शब्द से शुद्ध और साक्षी आदि जानना योग्य है, विश्वावसु बोले कि हे प्रभो! आप ने यह मोक्षके उपकारी शुभ और सत्य वचन से ब्रह्मका अच्छेप्रकार से यथार्थ वर्णन किया आप का सदैव कल्याण हो और आप का मन भी सदैव बुद्धि से नियत हो, याज्ञवल्क्य बोले कि शोभायमान दर्शन से दिखाई देनेवाला वह महात्मा गन्धर्व बड़ी प्रसन्नता से यह कहताहुआ आशीर्वाद देकर मेरी परिक्रमा करके प्रकाश करता हुआ स्वर्ग को चलागया, हे नरेन्द्र! पृथ्वी और पाताल में जो निवास करते हैं और जो ब्रह्मा आदि आकाशचारी देवताओं के लोक और कल्याणरूप मार्ग में वर्त्तमान हैं वहांही उनको इस शास्त्र का ज्ञान देने को उस गन्धर्व ने निवास किया, जैसे सब सांख्यमतवाले लोग सांख्यधर्म में प्रवृत्त हैं उसीप्रकार योगी लोग भी धर्म्म में प्रीति करनेवाले हैं और जो कोई अन्य लोग भी मोक्ष के आकांक्षी हैं उन्हीं के ही निमित्त यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल का देनेवाला है, हे राजेन्द्र! ज्ञान से ही मोक्ष उत्पन्न होती है अज्ञान से कभी नहीं होती इस कारण ज्ञानही को मुख्यता समेत निश्चय करना योग्य है ज्ञानही से आत्मा जन्म मृत्यु से रहित होता है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कोई नीच भी हो उससे भी ज्ञान के लेने में श्रद्धा करनी चाहिये श्रद्धावान् को जन्म मृत्यु नहीं होती है, सब वर्ण ब्रह्मा से उत्पन्न ब्राह्मण हैं जो सदैव ब्रह्म कोही कहते हैं मैं ब्रह्मबुद्धि से तत्त्वशास्त्र को कहता हूं कि यह सम्पूर्ण स्थावर जंगम संसार ब्रह्मही है, ब्रह्माजी के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र किसी वर्ण को भेददृष्टि से न जानना चाहिये, हे राजन्! अज्ञान के द्वारा कर्म से उत्पन्न होनेवाली उस २ योनि को सेवन करते हैं और वह जैसे नाश को पाते हैं उसीप्रकार ज्ञान से रहित सब वर्ण महाअज्ञान से अनेक योनियों में गिरते हैं, इसीकारण सबप्रकार से सब से ज्ञान लेना योग्य है मैंने सब वर्णों में वर्त्तमान यह ज्ञानपदार्थ तुम से वर्णन किया जो ज्ञाननिष्ठ है वही ब्राह्मण है और जो क्षत्रिय आदि भी ज्ञान में प्रवृत्त हो उसके लिये भी यही मोक्ष मार्ग है, जो तुम ने पूछा उसको मैंने यथातथ्य वर्णन किया इस से अब तुम

निर्भय होजाओ तुम अपने अभीष्ट को पाओगे तेरा कल्याण हो, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से याज्ञवल्क्यजी से उपदेश पाकर वह बुद्धिमान् राजा जनक बड़ाप्रसन्न हुआ और इनकी परिक्रमा की तदनन्तर उनको बड़े सत्कारपूर्वक चलेजाने के पीछे ध्यान में प्रवृत्त होकर बड़ी श्रद्धा के साथ राजा जनक ने एक कोटि गोदान और अप्रमाण सुवर्ण और अनेक रत्नों का दान ब्राह्मणों को किया विदेह देश के राज्य को अपने पुत्र को सुपुर्द करके संन्यास धर्म में उपस्थित हुआ, हे राजन्, युधिष्ठिर! अविद्या सम्बन्धी धर्म और अधर्म निन्दा करता हुआ वह राजा जनक सम्पूर्ण सांख्यज्ञान और योगशास्त्र का ज्ञाता हुआ, मैं अनन्त हूं यह मन में निश्चय करके और धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, सत्य, मिथ्या, जन्म, मृत्यु आदि को अविद्या से संयुक्त जानकर सदैव शुद्धब्रह्म केही ध्यान में तत्पर होगया, हे राजन्! अपने शास्त्रोक्त लक्षण रखनेवाले योगी और सांख्य मतवाले सदैव देखते हैं कि यह धर्म आदि बुद्धि और अज्ञान का कर्म है ज्ञानियों ने सदैव उस ब्रह्म को अप्रियतारहित बड़े से बड़ा पवित्र और अचल वर्णन किया है इसकारण से तुम भी पवित्र होजाओ, हे राजन्! जो दियाजाता है वा जो पाता है और जो मानता है कि मैंने दिया अथवा जो लेता है वा देता है वह सब आत्माही है, निश्चय करके देनेलेनेवाला वही ईश्वरात्मा है उस आत्मा से उत्तम कोई नहीं है, उस पण्डित बुद्धिमान् को तीर्थ और यज्ञ साधन करना उचित है हे कौरवनन्दन! वेदपाठ, जप, तप, यज्ञ आदि से ज्योतिरूप स्थान को नहीं पाता है वह अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके प्रतिष्ठा को पाता है इसीप्रकार महत्तत्त्व और अहंकार में नियत होकर देवताओं के लोकों को और अहंकार से ऊपर के स्थानों को भी प्राप्त करे, अर्थात् जिस २ की उपासना करता है उस २ के रूप को प्राप्त करता है और जो शास्त्र का जाननेवाला ज्ञानी अव्यक्त से ऊंचे और सदैव एकदशा रखनेवाले जन्म मृत्यु से रहित सत्य मिथ्या से पृथक् ब्रह्म को जानते हैं वह ब्रह्मभाव को पाते हैं, हे राजन्! मैंने इस ज्ञान को जनक से प्राप्त किया है और जनक ने याज्ञवल्क्य ऋषि से पाया था इस से यह ज्ञान ऐसा बड़ा उत्तम है कि इसके समान कोई यज्ञ नहीं ज्ञान केही द्वारा दुर्गमस्थानों से पार होता है और यज्ञों के द्वारा पार नहीं होसक्ता इसी ज्ञान से दुस्तर जन्ममृत्यु के दुःख से भी पार होता है ज्ञानी पुरुष ब्रह्म को माया से जुदा कहते हैं जो पुरुष ज्ञानमार्ग में नियत नहीं है वह यज्ञ, तप, नियम और व्रतों के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होकर फिर पृथ्वी में गिरकर जन्म को पाते हैं, इसकारण तुम उस महापवित्र ब्रह्मकी उपासनाकरो जोकि कल्याणरूप निर्म्मल विमुक्त और पवित्र है तुम क्षत्रिय शरीर को जानकर ज्ञानयज्ञ और तत्त्वोंकी उपासना करके ऋषि होजाओगे, राजा जनक के पुरोहित इन याज्ञवल्क्यजी ने उपनि-

षद्वुद्धि के अनुसार जो पाया जिसको कि न्यूनतारहित सनातन ब्रह्म वर्णन करते हैं वही शोक सन्ताप से रहित जीवन्मुक्ति को देता है॥ ११२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेचतुश्चत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

एकसौपैंतालीसका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, यह ब्रह्मविद्या श्रुति और युक्तिप्रधान है अब साधन प्रधान ब्रह्मविद्या का वर्णन करते हैं अर्थात् अपने धर्म्म आचरण के साथ निवृत्तमार्ग में प्रवृत्त पुरुष जरा मरण को उल्लंघन करता है इस अध्याय के इस प्रयोजन को समझकर-युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, पितामह! बड़े २ धनादि ऐश्वर्य्य और पूर्ण अवस्था को पाकर कैसे मृत्यु को जीते और कौन सी बड़ी २ तपस्या कर्म शास्त्र और बड़ी २ युक्तियों के अभ्यास से जरा मरण को नहीं पाता है, भीष्मजी बोले कि, इस स्थानपर एकप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें पञ्चशिख संन्यासी और राजा जनक का प्रश्नोत्तर है, विदेह देश के स्वामी राजा जनक ने वेदज्ञों में श्रेष्ठ पञ्चशिख नाम संन्यासी जिसका कि धर्म्म अर्थ से संदेह मिटगया था उससे पूछा कि, हे भगवन्! कौन से तप बुद्धि कर्म अथवा शास्त्र से जरा मरण को जीते यह बात सुनकर उस अपरोक्ष ज्ञानी ने राजा को उत्तर दिया कि देह को किसी दशा में भी जरा मरण से पृथक्ता और अपृथक्ता नहीं है अर्थात् योग के द्वारा उससे पृथक्ता होसक्ती है, महीने दिन और रात लौटकर नहीं आते हैं और यह विनाशवान् जीवात्मा बहुतकाल में अपने अचलमार्ग को पाता है, सब जीवों का नाश सदैव होता है मानों नदी के प्रवाह से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचायाजाता है कोई मनुष्य इस बे नौका और जरामरणरूप ग्राह से व्याप्त काल सागर में बहने वाले वा डूबनेवाले पुरुष को नहीं पाता है न इसका कोई है न यह किसीका है, स्त्री और बांधवआदि का मिलाप मार्ग में है इसनिवास को पहले भी किसी ने सदैव नहीं किया न करता है न करेगा, वारंवार मृत्यु पानेवाले देह को उसके ऐसे २ हितकारी बांधवलोग श्मशान भूमि में ऐसे डालजाते हैं जैसे कि काल से वायु के द्वारा बादलों के समूह इधर से उधर को फेंकेजाते हैं, यह जरा मरण भेड़ियों के समान सब छोटे बड़े जीवों के भक्षण करनेवाले हैं, सदैव रहनेवाला भूतात्मा उत्पन्न होनेवाले और सदैव न रहनेवाले माया के जीवों में कैसे प्रसन्न होय और मृत्यु पानेवालों में कष्ट न पावे, मैं कहां से आया और कौन हूं किस का हूं किस में नियत हूं कहां जाऊंगा किस कारण से किसको शोचताहुआ किस स्थान में रहूंगा, स्वर्ग और नरक का देखनेवाला कौन है

इत्यादिबातें स्मरण करके शास्त्र की रीति से दानयज्ञादिक को करे॥ १५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपञ्चचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १४५॥

एकसौछियालीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे कौरवेन्द्र, पितामह! किस पुरुष ने गृहस्थाश्रम के विना त्यागेहुए बुद्धि के लयस्थान मोक्षतत्त्व को पाया है और जैसे इस स्थूल और कारण शरीर को त्यागते हैं और मोक्ष का जो परमतत्त्व है इन सब बातों को मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! इसस्थान परभी एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें राजाजनक और सुलभानाम संन्यासिनी का प्रश्नोत्तर है, पूर्वसमय में कोई मिथिला का जनकनाम बड़ाधर्मध्वज राजा संन्यास धर्म के फल का बड़ाज्ञाता होता हुआ, वेद मोक्षशास्त्र और अपने शास्त्र दण्डनीति आदि में कुशल होकर उस राजा ने इन्द्रियों को समाधान करके इस पृथ्वीपर राज्यकिया, और संसार के वेदज्ञ ज्ञानी पुरुष उसकी साधुवृत्ति को सुनकर उसके मिलने की इच्छाकरते थे, उस धर्म्मयज्ञ में योगधर्म का अनुष्ठान करनेवाली सुलभानाम संन्यासिनी अकेली पृथ्वीपर घूमाकरती थी उसने दैव-योग से कईत्रिदण्डी और और संन्यासियों से श्रवणकिया कि राजा जनक मोक्षमार्ग का बड़ा ज्ञाता है यह जानकर इसने अपने अनेक संदेहनिवृत्त करने के लिये राजा जनक से मिलने की इच्छा की और अपने योगबल से पूर्व्वरूप को त्याग कर दूसरे ऐसे उत्तमरूप को धारण किया जिसके कमल के समान नेत्र सुन्दर भृकुटी महातीव्रगामी स्वरूपा मोहनीरूप धारण कियेहुए क्षणभर में राजा जनक की राजधानी में पहुंची और वहां उसने क्रीड़ा के योग्य बहुत से मनुष्यों से भरीहुई मिथिलापुरी को देखकर भिक्षुकी होकर राजाजनक को जाकर देखा तब राजा ने भी उसके उत्तमरूप को देखकर आश्चर्य्य किया कि यह कौन किसकी स्त्री और कहां से आई है तदनन्तर उसको क्षेमकुशल पूछ चरण धोकर उत्तम आसनपर बैठाय उत्तम अन्न से तृप्तकिया फिर भोजन से निवृत्त होकर बड़े प्रसन्न चित्त से उस संन्यासिनी ने सूत्रार्थ के ज्ञाताओं के और मन्त्रियों के मध्यवर्त्ती होकर मोक्षधर्मों में अन्यलोगों का तिरस्कार करके राजा से प्रश्न किया कि यह राजा मुक्त नहीं है ऐसा संदेह करनेवाली सुलभा ने योगबल से अपनी बुद्धि को राजा की बुद्धि में प्रविष्ट किया अपने नेत्रों के प्रकाश से उसकी आंखों के प्रकाशको रोका फिर उस प्रश्न करनेवाली भिक्षुकी ने योग के बल से रसना और चित्त के द्वारा राजा को बांधा अर्थात् स्वाधीन करलिया, तब तो राजा जनक ने भी उसके विचार को तुच्छ करके अपने चित्त से उसके चित्त को पकड़ लिया, उससमय एक ही कारण शरीर में नियत होनेपर राज्य के

छत्रादि चिह्नों के प्राप्त होनेपर भी विमुक्त राजा के और त्रिदण्डनाम संन्यास आश्रम में प्रवृत्त उस संन्यासिनी के प्रश्नोत्तरों को सुनो, राजाजनक बोले कि हे सुभद्रे! भगवती को योगचर्य्या तुम ने कहां से सीखी कहां जाओगी किसकी हो और कहां से आई हो आप के रूप में साधुभाव नहीं विदित होता है इसकारण मेरे मिलने में तुम को इन बातों का उत्तर देना उचित है मुझ को राज्य के छत्र चमरादि चिह्न युक्तहोने पर भी मुख्यता से मुक्त ही जानो सो मैं भी तुम को जानना चाहता हूं आप को प्रतिष्ठा के योग्य मैं समझता हूं और मैंने पहले समय में मोक्षमार्ग के अद्वितीय जाननेवाले महात्मा जिस गुरु से यह वैशेषिक ज्ञान प्राप्तकिया है उसको भी सुनो, मैं पराशरगोत्री बड़े महात्मा वृद्ध पञ्चशिख नाम संन्यासी का कृपापात्र शिष्य हूं, वह गुरु महाराज सांख्य ज्ञान योग और राजबुद्धि कर्म्म उपासना ज्ञान इनतीनों प्रकार के मोक्षज्ञान धर्म्म मार्ग के ज्ञाता सन्देहों से निवृत्त हैं, प्राचीन समय में शास्त्र में देखेहुए मार्ग में घूमते हुए वर्षाऋतु के चारमास पर्य्यन्त मेरे समीप आनन्द से निवास करतेहुए, उस सांख्यशास्त्र के मुख्य अर्थ के ज्ञाता गुरु महाराज ने तीन प्रकार का मोक्षधर्म मुझ को सुनाया और इसराज्य से पृथक् भी नहीं किया सो मैं उस श्रेष्ठपद पर नियत वैराग्यवान् अकेला होकर उस मोक्षकी उपकारी तीनों प्रकार की वृत्तियों को करता हूं इस मोक्ष का मुख्य उपाय वैराग्य है और वैराग्य ज्ञान से उत्पन्न होता है उसीसे मुक्त होता है, ज्ञान से चैतन्यहोकर पुरुष योगाभ्यासको करता है और योगाभ्यास से सर्वज्ञताको प्राप्त होता है वह सर्वज्ञता सुखदुःख आदिसे निवृत्तहोने के निमित्त है और सिद्धि वह है जोकि मृत्युको जीतनेवाली है, यहांही मोह से जुदे मुक्तसंगी घूमतेहुए गुरुजी से सुखदुःख आदि से पृथक्ता और उत्तमबुद्धि को मैंने पाया है, जिसप्रकार जुतेहुए जल के सींचेहुए खेत में बीज के द्वारा अंकुर उत्पन्न होता है उसीप्रकार बीजरूप कर्म्म मनुष्यों के पुनर्जन्म को करता है जैसे कि भाड़ की बालू में भुनाहुआ बीजरूप अन्न उत्पत्ति कारणरूप भी होकर बीज के गुण से रहित होकर नहीं उपजता है इसीप्रकार इन भगवान् पञ्चशिख संन्यासी गुरुजी ने मेरी बुद्धि को भी निर्बीज अर्थात् बीज वासना से रहित करदिया है इसीसे वह बुद्धि विषयों में नहीं लगती है किसीमें प्रीति नहीं करती अनर्थ और स्त्री आदिक परिग्रह और रागद्वेष आदि को मिथ्या जानकर इनमें प्रीति नहीं करती है, जो पुरुष मेरी दाहिनी भुजा को चन्दन से लेपन करे और बाईं भुजा को शस्त्र से काटे यह दोनों मेरी दृष्टि में समान हैं, इसप्रकार का होकर मैं मट्टी पाषाण के समान सुवर्ण को जानताहुआ मुक्त हूं और अन्य त्रिदण्डी नाम संन्यासियों से विलक्षण पाषाणरूप राज्यपर नियत हूं, अन्य मोक्ष के ज्ञाताओं ने तीन प्रकार की निष्ठा देखी है सब लोकों में कर्म्म, उपा-

सना, ज्ञान और सब मानसी आदिक कर्म का त्यागनाही मोक्ष कहते हैं, और कोई मोक्ष शास्त्र के ज्ञाता केवल ज्ञाननिष्ठा को ही कहते हैं इसके विशेष दूसरे सूक्ष्मदर्शी यतीलोग केवल कर्मनिष्ठा को ही कहते हैं इसीप्रकार अब चारों पक्षों को छोड़ कर अपने मतको कहता हूं, ऊपर के दोनों श्लोकों के लिखेहुये दोनों सच्चे विकल्पों को भी त्याग करके केवल ज्ञान और दूसरे के उपकाररूप कर्म को ही उस महात्मा पञ्चशिख ने तीसरी निष्ठा वर्णन की है—इसी निष्ठा की प्रशंसा करते हैं—यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ आदि के होने से गृहस्थी संन्यासी के समानही त्रिदण्डी संन्यासी हैं अर्थात् यम आदि के होनेपर गृहस्थी भी संन्यासी के ही समान है, और काम आदि के होनेपर संन्यासी भी गृहस्थी के समानहै, जो ज्ञान के द्वारा त्रिदण्डी आदि में किसीकी मोक्षहै फिर छत्र आदि परिग्रह रखनेवालों में कैसे मोक्ष नहीं होसक्ती क्योंकि परिग्रह में दोनों समान हेतु रखनेवाले हैं, यहां विषयादिककर्म्म में जिस २ से जिसका जो प्रयोजन है वह धन और स्त्री आदि अर्थ प्राप्त करने को उसी २ में प्रवृत्तचित्त होता है; गृहस्थाश्रम में दोषदेखनेवाला जो पुरुष दूसरे आश्रम में जाता है वह त्याग और स्वीकार करनेवाला पुरुष भी संगदोष से निवृत्त नहीं होता है, इसीप्रकार शिष्य वा सेवक कृपा और दण्डरूप आज्ञा के समान होनेपर संन्यासीलोग राजाओं के समान हैं फिर वह कैसे मुक्त होते हैं, आज्ञादेनेवाला होनेपर भी उत्तम शरीर में नियत पुरुष ज्ञान के द्वारा सब पापों से छूटजाते हैं, फिर गेरुये वस्त्रों का धारण करना कमण्डलु त्रिदण्ड आदि चिह्न भी केवल कुमार्गरूपही हैं मोक्ष के निमित्त नहीं हैं यह मेरी राय है, जो इन चिह्नों के होनेपर भी ज्ञानही सुख का कारण है फिर यहां दुःख से अलग होना किस निमित्त है इससे केवल चिह्नों का होना निरर्थक है, अथवा चिह्नों में दुःख की अप्रबलता देखकर उसमें बुद्धि हुई है वह उन राज्य के छत्र आदि चिह्नों में क्या सदैव दृष्ट नहीं होते हैं केवल संसारी सामानों केही त्यागने से मोक्ष नहीं होती है और न संसार के समान रहने से बन्धन होता है सब पुरुष संसारी सामान को त्यागें वा न त्यागें परन्तु उनकी मोक्ष सब दशा में ज्ञानही से होसक्ती है इसी कारण से धर्म्म, अर्थ, काम और राजपरिग्रह आदि बन्धनरूप स्थान में नियत होनेपर भी मुझ को मोक्षपदवी में प्राप्तही जानो, मैंने यहां त्यागरूप खड्ग को मोक्षरूप पाषाणपर घिसकर उसकी तीक्ष्णधार से उस राज्यरूप ऐश्वर्य में चित्त की प्रीतिरूप फांसी को जो कि प्रीति के स्थान स्त्री धन आदि से बन्धन में डालती है काटडाला है, हे संन्यासिनि! इस दशावाला मुक्तरूप होकर मैं तुझ योगप्रभाव रखनेवाली को प्रतिष्ठा करनेवाला हूं तो भी योग के विरुद्ध त्रिगुण से उत्पन्न तेरे स्वरूप को मैं कहता हूं, शरीर की कोमलतारूप उत्तम

देह और तरुणावस्था यह सब तुझ को प्राप्त हैं और यह योगाभ्यास रूप नियम भी सन्देहयुक्त है क्योंकि यह दोनों भिन्न २ दशा तुझ एक में कैसे हो सक्ती हैं, जैसे कि देह आदि के सूखेहोने पर इस योगरूप की त्रिदण्ड धारणादि चेष्टा तेरेयोग्य नहीं विदित होती और मेरे सभासद् तैंने अपने उत्तम रूप के दिखाने से विपरीत दशा में करदिये इसी हेतु से सन्देह है कि यह मुक्त हो या न हो, दूसरों के अनुग्रह चाहनेवाले योगी में संन्यास का फल नहीं होता है मेरे देह के सत्संग से यह आश्रम के चिह्न तुझ से रक्षा नहीं कियेजाते हैं इन चिह्नों से योग के अधिकारपर चढ़कर उस करनेवाले की रक्षा नहीं है इस का दूसरा यह भी अर्थ है कि देह के कर्म्म से मुक्तपुरुष की रक्षा योग्य है, अपने मन से जो मेरे शरीर में तुझ आश्रय लेनेवाली ने अमर्य्यादा से प्रवेश किया है उसको भी सुनो, कुकर्म्मिणी स्त्री भी दूसरे के नगर वा स्थान में इंगितभाव से प्रवेश करती है वहां भी हमारा तिरस्कार करनेवाली तेराही अपराध है इसको कहता हूं—तुम ने किस कारण से मेरे देश वा नगर में प्रवेशकिया और तुम ने किसके इशारे से मेरी देह में प्रवेशकिया, उत्तम वर्णों में श्रेष्ठ तुम ब्राह्मण हो और मैं क्षत्रिय हूं हम दोनों का योग सजातीय नहीं है तुम वर्णसंकर मतकरो, तुम मोक्षधर्म से बर्त्तावकरती हो और मैं गृहस्थ आश्रम में हूं यह भी तेरी दूसरी बड़ी वर्णसंकरता है, मैं तुझ को सगोत्रा वा असगोत्रा नहीं जानता हूं और तू भी मुझ को नहीं जानती है तुझ सगोत्र में प्रवेश करनेवाली का तीसरा गोत्र संकर है फिर तेरा पति जीवता है अथवा कहीं विदेश को गया है इससे भोग के अयोग्य दूसरे की भार्य्या है यह चौथा अधर्म्मसंकर है तत्त्व का विज्ञान न होने से मिथ्या ज्ञान में युक्त प्रयोजन की चाहने वाली तुम इन कर्मों को निश्चय करती हो, अथवा किसी समयपर अपने दोषों से स्वतन्त्र भी हो उस दशा में तुम ने जो कुछ शास्त्र पढ़ा है वह सब निरर्थक है क्योंकि शास्त्र के अनुसार स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं है तुझ दूषित और भेद खोलनेवाली से प्रकट किया हुआ यह तीसरा चित्त का स्पर्शादि देखने में आता है, तुझ विजय चाहनेवाली ने विजय के निमित्त केवल मुझपरही इच्छा नहीं की किन्तु जो यह मेरी सम्पूर्ण सभा है उसको भी विजय करना चाहती है, इसीप्रकार तुम ने मेरे पक्ष का नाश और अपने पक्ष की विजय के लिये अपनी दृष्टि को पूजन के योग्य पुरुषों पर डाली है सो तुम ईर्षा से उत्पन्न मोह की आधिक्यता से अज्ञान होकर फिर दूसरे की बुद्धि से अपनी बुद्धि के संयोग को इसप्रकार पैदा करती हो जैसे कि विष और अमृत का मेल होता है, इसलोक में मिलने वाले स्त्री वा पुरुष का जो योग है वह अमृत के समान है और जो मित्र का न मिलना अर्थात् विना आज्ञा के मिलजाना है वह विष केही समान है,

अच्छा है सावधान होकर अपने संन्यासशास्त्र की रक्षाकरो उसको मत त्यागो तुम ने यह मेरी परीक्षा इस विचार से की थी कि यह मुक्त है वा नहीं है, यह सब बदला हुआ रूप आदि मुझ से गुप्त करना अयोग्य है, किसी दशा में भी राजा वा ब्राह्मण अथवा स्त्रियों में गुणयुक्त स्त्री से मिथ्या वचनों के द्वारा नहीं मिले जो मिथ्या वचनों के साथ मिलाप कियाजाय तो ऐसी दशा में यह तीनों उसको मारे हैं, राजाओं का बल ऐश्वर्य्य है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है और स्त्रियों का महाबलरूप यौवन और सौभाग्य है, इस कारण यह तीनों अपने २ बलों से पराक्रमी हैं, प्रयोजन चाहनेवाले मनुष्य को इन तीनों से सत्यतापूर्व्वक मिलना योग्य है क्योंकि इनसे कुटिलता करना नाशकारी है, सो तुम अपनी जाति, शास्त्र, आचरण, चित्त का विचार, स्वभाव और यहां आने के प्रयोजन को मुख्यता समेत कहने के योग्य हो, भीष्मजी बोले कि, राजा के इन दुःख रूप अयोग्य और असभ्य वचनों से तिरस्कार पानेवाली वह सुलभा क्रोधयुक्त नहीं हुई और राजा की बातों के समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ रूपवाली सुलभा अत्यन्त उत्तम वचनों को बोली कि हे राजन्! वचनों के दूषित करनेवाले कठोर आदि नौ दोष हैं और बुद्धि के दूषित करनेवाले काम आदि नौ दोष से पृथक् और वचन के मृदुता आदि नौ गुण और कामादि के विपरीत बुद्धि के नौ गुण से संयुक्त सौक्ष्म्य अर्थात् पद अर्थों से बिगड़ाहुआ सांख्य–अर्थात् पूर्व्वपक्ष और सिद्धान्त में गुणागुण विचार, क्रम–अर्थात् प्रत्यक्ष गुणदोषों में बलाबल विचारना-निर्णय अर्थात् सिद्धान्त-प्रयोजन अर्थात् अनुष्ठान यह पांचों जिसके अर्थ से सिद्ध होते हैं वह वचन कहाजाता है इनमेरे मुख से निकलेहुए सौक्ष्म्यादि के प्रत्येक अर्थसम्बन्ध निजरूप को पद, वाक्य, पदार्थ, वाक्यार्थ इन भेदों से चार प्रकार का होना मुझ से सुनो जब जानने के योग्य अनेक प्रकार के वचनों में असंख्य संदेहों को स्पर्श करनेवाली और उसके ज्ञान करने में अयोग्य बुद्धि वर्त्तमान होती है वही सौक्ष्म्य है और किसीप्रयोजन को दृष्टि के गोचर करके दोष और गुणों का जो विभाग से परिमाण है वह सांख्य है यह पहले और यह पीछे कहना चाहिये यह जो कहने की इच्छा है उस वचन को वचनज्ञलोग कर्मयोग कहते हैं, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में पृथक् निश्चय को जानकर अर्थात् वचन के अन्त में युक्तिपूर्वक जो कहाजाता है कि यह वह है वही निर्णय है हे राजन्! जिस विषय में इच्छा और अनिच्छा से उत्पन्न होने वाले दुःखों से यह विचार उत्पन्न होता है कि यहकरना योग्य है वा अयोग्य है और उस में जो प्रवृत्ति निवृत्तिरूप वृत्ति है उसी को प्रयोजन कहते हैं, हे नरेश! यह सौक्ष्म्य आदिक जैसे वर्णन कियेगये वह सब एक ही अर्थ निश्चय होने वाले हैं उन पांचों गुणों से युक्त मेरे वचन को सुनो–अब वचन के गुण को

कहती हूं—प्रत्यक्ष अर्थवाला पूरा बहुत प्रकार के अर्थों से रहित प्रसिद्ध स्पष्ट अर्थवाला न्याय के अनुसार श्लाघ्य, संक्षेप, असंदिग्ध, उत्तम, कठिन अक्षरों से रहित, सुकुमार नाम सुनने में सुखदायी, सत्य, त्रिवर्ग, धर्मादि के अनुसार संस्कार कियाहुआ सभ्य छन्द व्याकरणादि के दोषों से रहित सुगम शब्दयुक्त क्रमपूर्वक लक्षण से दूसरे पदों को जिसमें संयुक्त कियाजाय ऐसे वचनों से पृथक् अर्थ और युक्ति के साथ हो उसको कहूंगी प्रथम बुद्धि के नौ दोषों को कहती हूं मैं किसीदशा में काम, क्रोध, लोभ, मोह, दीनता, अहंकार, श्रम, कृपा और मान से वचन को नहीं कहूंगी, अब वचन कहनेवाले के गुण को कहते हैं—हे राजन्! जब कहनेवाला और सुननेवाला वचन के सिद्धान्त के अनुसार तत्त्वनिर्णय से सम्बन्ध रखनेवाली इच्छा में प्रवृत्त और प्रवीण होकर बुद्धि में प्रवेश करते हैं तब वह अर्थ प्रकाशकरता है, जब कहनेवाला कहने के योग्य वचन होनेपर सुननेवाले का अपमान करके अपने अंगीकृत वचन को कहता है तब वह बड़े अर्थवाला भी वचन हृदय में नहीं नियत होता है, फिर जो मनुष्य अपने अर्थ को त्यागकर दूसरे के अर्थ को कहे उसमें विशेष संदेह उत्पन्न होता है वह वचन भी दूषित है, हे राजन्! जो कहनेवाला अपने और सुनने वाले के अर्थ को विपरीत नहीं करता है वही वक्ता है दूसरा नहीं है, हे राजन्! तुम एकचित्त होकर उस अर्थवान् वचन को सुनो जड़रूप देह और इन्द्रिय से आत्मा को पृथक् जानकर जड़ चैतन्य समूहरूप जीवात्माओं से सम्बन्ध रखनेवाला अंश चैतन्य आकाश के समान तुझ में और मुझ में वही एक है जो कि मनवाणी से परे है वह प्रश्न के योग्य नहीं है क्योंकि अद्वितीय है और ईश जड़ भी काष्ठमृत्तिका के समान होने से प्रश्न के योग्य नहीं है इसको सुलभा वर्णन करती हैं—हे राजन्! जैसे लाख वा काष्ठ धूल और जलकण मिल जाते हैं इसीप्रकार यहां प्राणियों का जन्म है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांचों इन्द्रियां नानाप्रकार के रूप धारण करनेवाले लाख और काष्ठ के समान आत्मा अर्थात् आकाशादि के योग से मिलाप रखते हैं अर्थात् इन्हीं आकाशादि के रूप हैं, किसी शरीर में इनमें से प्रत्येक का वर्णन नहीं है चक्षुरिन्द्रिय अपनी दृष्टि शक्ति को नहीं जानती है इसीप्रकार श्रोत्रादि इन्द्रिय भी अपने स्वरूप और शक्ति को नहीं जानतीं और व्यभिचार से परस्पर में भी एक दूसरे को नहीं जानतीं अर्थात् वह अपने संघात से पृथक् नहीं हैं और प्रकाश करने वाला आत्मा इनके संघात से पृथक् है इसीसे संघात का भाग भी न आप को जानता है न दूसरे को, और परस्पर में मिलकर भी अपने मिलाप को नहीं जानती हैं और रूप नेत्र और प्रकाश यह तीनों दृष्टि में कारणरूप हैं उसीप्रकार ज्ञान और ज्ञेय यह दोनों रूपादि में कारण हैं, उस ज्ञान और ज्ञेय में मन

दूसरा गुण है, यह जिसके द्वारा श्रेष्ठ उन्नतिरूप निश्चय को विचारता है यही उनसब में बुद्धिनाम दूसरा गुण बारहवां कहाजाता है, और जिसके द्वारा संदेह में भराहुआ ज्ञेय पदार्थ को निश्चय करता है वह उस बारहवें में सत्त्वनाम पृथक् गुण है, जिसके द्वारा सुबुद्धि और निर्बुद्धि प्राणी जानाजाता है, उसी में चौदहवां एक जुदा गुण है जो कि अपने को कर्त्तापन सिद्ध करता है उसी के द्वारा मानता है कि यह मेरा है वा मेरा नहीं है, हे राजन्! फिर उनमें पन्द्रहवां अन्यगुण है वह यहां सोलह कलाओं के समूह का वासनारूप जगत् कहाजाता है, उस वासना में अविद्यानाम सोलहवां गुण है वही त्रिगुण होने से संघातरूप अर्थात् जगत् का अंकुर और बीजरूप है, उसी अविद्या में प्रकृति और व्यक्तिनाम दोनोंगुण अच्छेप्रकार से नियत हैं, प्रकृति के कार्य्य-रूप सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रिय, अप्रियनाम संयोग उन्नीसवां गुण है इसको द्वन्द्वयोग कहते हैं, अब व्यक्ति के कार्य को कहते हैं कि उन्नीसवें गुण के पीछे कालनाम एकवीसवां अन्य गुण है इसी वीसवें से जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलय होती है, यह बीसोंगुणों का समूह और पांचमहातत्त्व, सद्भावयोग असद्भावयोग यह दोनों गुणप्रकाशक इसप्रकार से बीसों गुणों का समूह और सात ऊपर कहेहुए गुण और बुद्ध शुक्र और बल यह तीसगुण कहेगये जिसमें सबगुण वर्त्तमान होते हैं उसीको शरीर जानो, इन तीसगुणों की उत्पत्ति में जुदे २ मत हैं उनको कहते हैं–अनीश्वर सांख्यवालों ने इन तीस कलाओं के उत्पत्ति स्थान को अव्यक्त कहा है इसीप्रकार स्थूलदर्शी कणादिलोग इनके व्यक्त अर्थात् महासमूह कोही इनका उत्पत्तिस्थान देखते हैं अव्यक्त को कपिल मत वाले अंगीकार करते हैं और व्यक्त को चार्वाक आदि स्वीकार करते हैं और जीव ईश्वर और इनदोनों की उपाधिरूप माया को वेदान्त विचार करनेवाले पुरुष सबजीवों का उत्पत्ति स्थान समझते हैं, हे राजेन्द्र! जो यह अव्यक्त प्रकृति तीस कलाओं से व्यक्तरूप होजाय तो मैं और तुम और जो अन्य शरीरधारी हैं वह सब भी इसी अव्यक्त प्रकृति के रूप हैं, इसप्रकार से चैतन्यांशों में तू कौन है इस प्रश्न को अयोग्य कहकर जड़ांश में भी उस प्रश्न की अयोग्यता वर्णन करते हैं जन्मादिक वीर्य और रुधिर के योग से होते हैं पुरुष स्त्री के योग से पहिले कलल पैदा होता है–कलल से, बुद्बुद होते हैं–बुद्बुद से, पेशी अर्थात् मांसपर की झिल्ली–और पेशी से अंगों की प्रकटता और अंगों से नख रोमादिक इसप्र-कार से देह की उत्पत्ति है, हे राजन्, जनक! नौमास पूरे होनेपर जन्म लेनेवाली स्त्री वा पुरुष नाम रूप देह से प्राप्तहोता है उत्पन्नहोनेवाले लालनख उँगलीयुक्त कौमाररूप को देखकर फिर रूपान्तरदशा नहीं होसक्ती है कौमारदशा से तरुणा-वस्था और तरुणावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्तकरता है इस क्रम से फिर वह जीव

अपनी पूर्वअवस्था को नहीं पासक्ता है सब जीवों में हरसमय विपयरखनेवाली कलाओं का रूपभेद पृथक् ही वर्त्तमान होता है और सूक्ष्मता से उसका ज्ञान नहीं होता है, हे राजन्! प्रत्येक दशा में इनकलाओं का उत्पत्ति नाश दृष्टि में नहीं आता है, ऐसा प्रभाव देखनेवाले और उत्तमघोड़े के समान दौड़नेवाले इस सबलोक को यह प्रश्नकरना उचित नहीं है कि तू कौन है और कहां से आया है, यह किस का यह किसीका नहीं यह कहां से आया यह कहीं से नहीं आया अपने अंगों से भी जीवों को क्या सम्बन्ध है अर्थात् कुछ नहीं, जैसे कि सूर्य की किरण और मथन दण्ड से अग्नि उत्पन्न होता है इसीप्रकार कलाओं के उदय होने से जीव उत्पन्न होते हैं, जैसे कि तुम अपनी देह में आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा को देखते हो इसीप्रकार आत्मा के द्वारा दूसरे में भी आत्मा को क्यों नहीं देखते हो, जो अपने और दूसरे की आत्मा में ब्रह्मभाव की बराबरी को निश्चय करते हो तो मुझ को क्यों पूछते हो कि तू कौन है और किसकी है, हे राजन्, जनक! यह मेरा है वा मेरा नहीं है इन दोनों से रहित ज्ञानी को इन बातों से क्या प्रयोजन है कि तू कौन किसकी और कहां से आई है. जो राजा शत्रु मित्र और उदासीनों में वा युद्ध के जय पराजय में योग्य कर्म्म करनेवाला है उसमें मुक्तों का कौन सा लक्षण है जो इसलोक में सातप्रकार के त्रिवर्ग को कर्म्मों में नहीं जानता है और त्रिवर्ग को साधन करता है उसमें मुक्तों का लक्षण कौनसा है, प्रिय अप्रिय सबल निर्बल में भी जिस की समान दृष्टि नहीं है उसमें भी मुक्तों का लक्षण क्या है अर्थात् कुछ भी नहीं है हे राजन्! इसीकारण तुम मोक्षसे न मिलनेवाले को जो अभिमान उत्पन्न हुआ वह श्रेष्ठ कर्म्मी पुरुषों से ऐसे हटाने के योग्य है जैसे कि कुपथ्यकरनेवाले को औषधि से करते हैं हे शत्रुओं के जीतनेवाले! स्त्री प्रसंगादि के स्थानों को अच्छे प्रकार से विचारकर आत्मज्ञानके द्वारा आत्मा मेंही देखीहुई मुक्ति का दूसरा लक्षण न ढूंढ़नाचाहिये अर्थात् यही लक्षण बहुत है, तुम मोक्ष में आश्रित होकर शयन, उपभोग, भोजन, वस्त्र इन चारोंहीं अंगों में नियत जानते हो इनके विशेष पृथ्वीआदि के अनेक उपभोगों को मुझ से सुनो, तुमने जो यह कहा कि मेरे राज्य अथवा पुर में तुम किसके कहने से घुसे यहां तेरे पुर आदि से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है इसको मैं वर्णन करती हूं, जो पुरुष एक २ छत्रवाली सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्रवर्त्तीराज्य करता है वह भी निश्चय करके अकेला एकही पुर में निवास करता है अर्थात् उस दशा में पृथ्वी निरर्थक है, जो उस पुर में उसका एकही महल नियत है और महल में भी एक ही शयन स्थान है जहांपर कि रात्रि के समय आकर सो रहता है उस शय्या में भी आधी शय्या उसकी स्त्री की है इसीकारण इसलोक में स्नेहरूपी बन्धन से मोक्ष नहीं पाता है, इसीप्रकार भोजन वस्त्रादि गुणों में और अपने भृत्यादि में

दण्ड और अनुग्रह के करने के कारण राजा भी सदैव दूसरे की आधीनता में है थोड़े स्नेह से भी बन्धन में पड़ता है और संधि विग्रहमें भी राजा अस्वतन्त्र है स्त्रियों की क्रीड़ा विहारों में यह पुरुष सदैव स्वतन्त्र है मित्रों में और मन्त्रियों की सभा में उसको स्वतन्त्रता कैसे होसक्ती है, हां जब दूसरों को आज्ञा देता है तब अवश्य उसको स्वतन्त्रता है ऐसे २ समयोंपर नियत होकर वह राजा वहां पर अस्वतन्त्र किया जाता है शयन में उत्सुकराजा भृत्यों के कहने से सोता नहीं है किन्तु उनकी प्रार्थना से शयन में सोयाहुआ भी जगाकर उठायाजाता है अर्थात् नौकरलोग कहते हैं कि स्नान, पूजन, दान, हवन, भोजनादि कर्म्मों को करो इन २ प्रकारोंसे राजा भी दूसरों के स्वाधीन गिनाजाताहै, मनुष्य सन्मुखता में आ आकर वारंवार प्रश्न करते हैं परन्तु वह धन का स्वामी राजा बड़े २ साहूकारों को भी देना नहीं चाहता है अर्थात् दे नहीं सक्ता है, दान में तो इसका भण्डार खाली होता है और न देने में शत्रुता उत्पन्न होती है और इसके वैराग्य उत्पन्न करनेवाले दोष उसी क्षण वर्त्तमान होते हैं इसीप्रकार राजा एक स्थानपर भी अपने प्राचीनज्ञानी और शूरवीर कामदारों को भी भयभीत रखता है और राजा को भी उन नौकरों से निर्भयस्थानपर भी भय रहता है जो कि सदैव सेवा में रहते हैं, हे राजन्! इसीप्रकार से वह लोग भी शत्रु होजाते हैं जिनको कि मैंने वर्णन किया है इसीप्रकार जैसा कि इसको भय उनसे उत्पन्न होता है इसी प्रकार उनको भी इसी रीति से समझो, अपने २ घर के सब राजा हैं और अपने २ घरों के स्वामी हैं, हे जनक! मनुष्य दण्ड और कृपा को करने से राजाओं के समान है, और मनुष्य के पुत्र, स्त्री, मित्र, आत्मा और धनआदि वस्तुओं के जो समूह हैं वह सब उन २ हेतुओं से अन्य मनुष्यों के पुत्रादि के साधारण हैं, राज्याभिमान में बड़ादुःख है इसको वर्णन करते हैं देश का उजड़ना पुर में अग्नि का लगना प्रधान हाथी आदि का मरना इत्यादि लोकों के साधारण कारणों में मिथ्याज्ञान से दुःखों को पाता है, इच्छा अनिच्छा भय आदि से उत्पन्न होनेवाले मानसी दुःख और शिरपीड़ा आदि रोग चारोंओर से खैंचने वाली आपत्तियों से सदैव बन्धन में पड़ते हैं उन २ सुखदुःखादि योगों से घायल सब ओर से सन्देहयुक्त मनुष्य रात्रियों को गिनताहुआ अनेक शत्रुओं से व्याप्त राज्य का सेवन करता है, उस अल्पसुख और बहुत से दुःख में प्रवृत्त असार के समान राज्य को प्राप्त करके फिर इसकी भी इच्छा नहीं करता है इस कारणसे शान्ति को पाता है, जो इन पुर, देश, सेना, खज़ाना और मन्त्रियों को मानता है कि यह सब मेरे हैं हेराजन्! यह किसी के हैं और किसी के नहीं हैं मित्र, मन्त्री, पुत्र, देश, दण्ड, खज़ाना और राज्य यह सब त्रिदण्ड के समान नियत एक दूसरे के गुण से युक्त ऊपर लिखेहुए सात गुणयुक्त इस राज्य का कौन

सा अंग किस अंग से गुणमें अधिक है अर्थात् सबअंग बराबर हैं उन २ समयों पर वह २ अंग श्रेष्ठता को पाता है जिससे जो कार्य सिद्ध होता है और वही श्रेष्ठता के लिये विचार कियाजाता है, हे राजन् ! सात अंगों का पुतला और दूसरे तीन गुण यह दशवर्ग ऐश्वर्यमानकर राजा के समान राज्य को भोगते हैं जो राजा बड़ा उदार और क्षत्रियधर्म्म में प्रवृत्त हो वह दशवें भाग सेही प्रसन्न होता है और शेषबचेहुए नौभाग से दूसरा–राजा साधारण नहीं है और राजा के विना राज्य भी नहीं है, राज्य के होनेपर धर्म्म कहां है और धर्म्म के न होने में मोक्ष कहां होसक्ती है यहां राजा और राज्य का जो उत्तम और पवित्रधर्म है, और जिसकी दक्षिणा पृथ्वी है वह अश्वमेध मोक्षसाधन में उपकारी नहीं होसक्ता है, हे राजन्, जनक ! मैं इस राज्य के हज़ारों दुःखदायी कर्म्मों के कहने को समर्थ हूं जब अपने शरीर में मेरा संग नहीं है तो दूसरे के शरीर में मेरा संग कैसे होसक्ता है, मुझ सरीकी ऐसी योगिनी को ऐसा कहना योग्य नही है कि तुम ने पञ्चशिख नाम योगी संन्यासी से सम्पूर्ण मोक्षशास्त्र को सुना, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि उपाय और ध्यान के अंग नियम आदि युक्त जीव ब्रह्मकी एकता के अनुभव समेत काम आदि की फांसियों से पृथक् तुझ मुक्तसंगी का संग उन छत्रआदि निजवस्तुओं में फिर कैसे है मेरी बुद्धि से तो तुम ने शास्त्र को नहीं सुना अथवा सुना भी है तो कपट से सुना है, अथवा इस शास्त्र के रूप का कोई दूसरा शास्त्र सुना है कि फिर इस लोक की वस्तुओं पर नियत होते हो, तुम प्राकृत पुरुष के समान स्त्री आदि के स्नेह में प्रवृत्त हो मैंने जो तेरे शरीर में प्रवेश किया वह तेरी बुद्धि में प्रवेश नहीं है, मैंने उसमें तेरा क्या अनुपकार किया जो तुम सब प्रकार से मुक्त हो तो संन्यासियों का यह वनवास इन वर्णों में नियम किया जाताहै, उजाड़ और विज्ञता रहित तेरी बुद्धिमें मैंने प्रवेश करके किसका अपराध किया है हे राजन् ! मैं दोनोंहाथ, भुजा, जंघा और अन्य अंगों के भागों से तुझ को स्पर्श नहीं करती हूं बड़ेकुलीन, लज्जावान्, दूरदर्शी पुरुष से सभा के मध्य में यह गुप्तकर्म उचितहुआ अनुचित न कहना चाहिये, यह ब्राह्मण गुरु हैं इसीप्रकार उत्तम गुरु भी प्रतिष्ठा के योग्य हैं तुम भी इन सब लोगों के राजारूप गुरु हो इसप्रकार परस्पर की वृद्धता है, इस बात को विचारकर कहने और न कहने के योग्य बातों के आप ज्ञाता होकर आप को सभा में स्त्री पुरुष का योग होना कहना योग्य नहीं है जिसप्रकार से कमल के पत्ते के ऊपर का जल उस पत्ते को स्पर्श न करताहुआ नियत्त होता है इसीप्रकार स्पर्श से रहित मैंने तुझ में निवासकिया, अब जो मुझ स्पर्श न करनेवाली के किसी स्पर्श को जानता है ऐसी दशा में यहां पञ्चशिख संन्यासी ने तेरे ज्ञान को किसरीति से निर्वासनारूप कहा, सो गृहस्थाश्रम से गिरेहुए तुम दुःख से प्राप्त होनेवाली मोक्ष को न पाकर दोनों

आश्रमों के बीच में केवल मोक्ष की बातें करनेवाले हो, जानने के योग्य आत्मा की एकता और द्वैतता में प्रकृति पुरुष के कारण से मुक्त का मुक्त के साथ और आत्मा का प्रकृति के साथ मेल होने से वर्णसंकर नहीं उत्पन्न होता है, मिले हुए वर्ण और आश्रम जिसको बहुत प्रकार के दृष्ट पड़ते हैं और जिसने अर्थ को देखा उससे वर्णसंकर उत्पन्न होता है देह और आत्मा दो २ नहीं होते इस एकत्वता को जानकर मेरा दूसरा चित्त तुझ दूसरे में वर्त्तमान नहीं होता है, हाथ में कुण्ड कुण्ड में दूध और दूध में मक्खी यह सब आश्रय स्थान के मिलने से एकत्र होकर नियत हैं और फिर पृथक् २ भी नियत हैं, कुण्ड में दूध और मक्खी भी मिलावट नहीं रखती और दूध का अभाव भी नहीं निश्चय करके वह सब वस्तु अपने आप ही दूसरे के निवास स्थान को प्राप्त करती हैं, आश्रमों के और वर्णों के पृथक् २ होने और परस्पर में जुदे होने से तेरा वर्णसंकर होना किस प्रकार से है, मैं जाति में तुझ से उत्तम वर्ण हूं न वैश्या हूं न शूद्रा हूं हे राजन् ! मैं पवित्र उत्पत्तियुक्त और शान्तचित्त में तेरी सवर्णता रखती हूं, प्रसिद्धि में कभी तैंने भी सुनाहोगा कि एक प्रधान नाम राजर्षि हैं मैं उसीके कुल में उत्पन्न हूं मेरा सुलभा नाम है, मेरे पुरुषों के यज्ञों में द्रोणशत शृंग और चक्रद्वार नाम पर्व्वत इन्द्र के द्वारा ईंटों के स्थानापन्न लगाये गये थे, मैं उसघराने में उत्पन्न हुई और मेरे समान पति के न मिलनेपर मोक्षधर्म्मों में गुरुओं से शिक्षापाई हुई अकेली मैं मुनियों के व्रतोंको करती हूं, मैं कपटरूप संन्यासिनी नहीं हूं मैं दूसरे का धन हरनेवाली हूं और धर्म्म-संकर करनेवाली भी नहीं हूं अपने धर्म्म में व्रत करनेवाली हूं अपनी मर्य्यादा में नियत होकर विना विचारे वार्त्तालाप नहीं करती हूं और इस तेरे स्थान में भी मैं विना विचारके नहीं आई हूं, कुशल चाहनेवाली मैं मोक्ष में प्राप्त तेरी शुद्ध-बुद्धि को सुनकर इस तेरे मोक्ष की परीक्षा करने के निमित्त यहां आई हूं, अपने और दूसरे के पक्ष में अपने ही पक्षपात पर नियत होकर मैं ब्रह्म को नहीं कहती हूं किन्तु तेरे कल्याण के हेतु कहतीहूं कि जो मनुष्य शूरवीरों के समान अपनी विजय के निमित्त वार्त्तालाप और ब्रह्म के निरूपण में परिश्रम नहीं करता है और ब्रह्म में शान्त होताहै वही मुक्तरूप है, जैसे कि संन्यासी पुरुष नगर के उजड़ेहुए स्थान में एकरात्रिही निवास करता है उसीप्रकार मैं भी इस तेरे शरीर में आज की रात्रिभर निवास करूंगी, हे राजन्, जनक ! मैं आपके प्रतिष्ठा और वचनरूप आतिथ्य से पूजित श्रेष्ठ स्थान में शयन करके प्रसन्नचित्त होकर कल प्रातःकाल जाऊंगी, भीष्मजी बोले कि राजाजनक ने ऐसी युक्तियों से भरेहुए प्रयोजनवाले वचनों को सुनकर भी कुछ दूसरा वचन नहीं कहा अर्थात् उसको उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हुआ—इस वर्णन से यह सिद्धान्त दिखाया कि गृहस्था-श्रम में मुक्ति का होना कठिन है इसकारण से संन्यास ही उत्तम है ॥ १६० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेषट्चत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

एकसौसैंतालीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, पूर्व्वसमय में व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने कैसे वैराग्य को प्राप्त किया और अव्यक्त वा व्यक्त वा तत्त्वों का निश्चय और बुद्धि का निश्चय और अजन्मा देवता वा सगुणदेवता की लीला को आप मुझे समझाइये मुझे इसके सुनने की बड़ी उत्कण्ठा है, भीष्मजी बोले कि, पिता व्यास जी ने प्राकृत आचरण से विचरनेवाले निर्भय पुत्र को अपना संपूर्ण वेद पढ़ा कर उपदेश किया कि हे पुत्र! तुम धर्म का सेवनकरो और ऊष्मा, शीत, वर्षा, भूख, प्यास और वायु का विजय करके सदैव जितेन्द्रिय हो, सत्यता, सरलता, क्रोधरहित होना, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, शान्तचित्त, अहिंसा, दया आदि गुणों में अपनी बुद्धि के अनुसार प्रवृत्तहोना सत्यता में नियत कुटिलता रहित होना धर्म में प्रीतिमान् देवता अतिथिआदि के पूजन से जो शेष रहै उसी से अपनी प्राणरक्षाकरो, हे पुत्र! देह को फेन के समान और जीव को पक्षी के समान नियत होनेपर और साथी, भाई, बन्धुओं के नाशवान् होनेपर कैसे सोरहा है अर्थात् पुरुषार्थ साधन में क्यों नहीं प्रवृत्तहोता है हे बालक! तुम इन बड़े सावधान चैतन्य सदैव कर्म्म में प्रवृत्त और कामादि शत्रुओं में अवकाश की इच्छा रखनेवालों के मध्य में क्यों नहीं सावधान होते हो दिनों को संख्या युक्त होने से और अवस्था के न्यूनहोने वा जीवन के क्षणभंगुर होनेपर क्यों नहीं उठकर दौड़ता है अर्थात् देवता और गुरु आदि का क्यों नहीं आश्रय लेता है, जो नास्तिक हैं वह मांस रुधिर आदि की वृद्धि करनेवाले नरलोक सम्बन्धी भोगों को चाहते हैं और परलोकसम्बन्धी कर्मों को भूलेहुए रहते हैं, जो पुरुष बुद्धि की भूल से धर्म की निन्दा करते हैं उन कुमार्गगामियों के पीछे चलने वाला भी दुःख पाता है, जो सन्तोष गुणयुक्त वेदको उत्तम जाननेवाले महात्मा धर्मरूप मार्ग में नियत हैं उनकी उपासनाकरो और उनसेही पूछो, उन धर्म-दर्शी ज्ञानियों के मत को स्वीकारकरो और उत्तमबुद्धि के द्वारा बुरेमार्ग से चित्त को सदैव हटाओ, इसीसमय देखनेवाली बुद्धि से यह मानकर कि प्रातःकाल दूर है इसहेतु से निर्भय निर्बुद्धि सब वस्तुओं के भक्षण करनेवाले मनुष्य कर्म्म-भूमि को नहीं देखते हैं, तुम सीढ़ी के समान धर्म में नियत होकर कुछ २ उस पर चढ़ो और तुम अपने को रेशम के कीट के बन्धन में डालतेहुए क्यों नहीं चैतन्यहोते और तुम विश्वासयुक्त होकर नास्तिक और वे मर्य्यादा चलनेवाले वांस से ऊंचे मनुष्यों का कभी संग न करो, तुम प्राण वेग धारण नाम योगरूप नौका को बनाकर मृत्युरूप काम क्रोध और पांचइन्द्रियरूप जलरखनेवाली नदी को और जन्म नाम कठिनस्थानों को अच्छेप्रकार से तरो, जरामृत्यु से पीड़्य-

मान लोक को जानकर और अवस्था की न्यूनकरनेवाली ऋतुओं के होनेपर धर्मरूप जहाज में चढ़कर इस संसार समुद्र को तरो, जब मृत्यु सोतेहुए मनुष्य को प्राप्त होती है तब अकस्मात् मृत्यु से नाशवान् पुरुष किस से मोक्ष पासक्ता है अर्थात् कोई नहीं उसको बचासक्ता है, इस धन आदि के संचय करनेवाले और मनोरथों से असन्तुष्टी मनुष्य को मृत्यु इसरीति से लेकर जाती है जैसे कि भेड़िया बकरी को लेकरजाता है, संसाररूपी अन्धकार में प्रवेशकरना चाहिये और क्रमपूर्व्वक धर्मरूप तेजस्वी अग्नि से ज्ञानरूपी दीपक को प्रज्वलित करके बड़ीयुक्ति से उसको निवृत्त करना चाहिये; हे पुत्र! इस नरलोक में देहरूपी जाल में फँसाहुआ जीव बड़ीकठिनता से कभी ब्राह्मण के शरीर को पाता है इसको तुम चारोंओर से बचाओ, ब्राह्मण का यह शरीर कभी काम और अर्थ के निमित्त नहीं पैदाहोता है किन्तु तपस्या आदि के निमित्त होता है ऐसे शरीर के त्यागकरने के पीछे अनुपम सुख मिलता है, ब्राह्मण का शरीर बड़ी तपस्या से होता है उसको प्राप्तहोकर संसारी प्रीति में डूबकर मनुष्य को उसकी अप्रतिष्ठा करनी उचित नहीं है, वेदपाठ जप तप और चित्त की शान्ति में सदैव प्रवृत्त मोक्ष को उत्तम माननेवाले तुम सदैव उपाय करतेरहो, मनुष्य का जो अवस्था रूपी घोड़ा चलता है उसका उत्पत्ति स्थान अव्यक्त है और कला उसका शरीर है और उसका आत्मा सूक्ष्मरूप है वह क्षण और त्रुटि नाम समय में शयन करनेवाला है और पलक का लगाना उसकी देह के रोमाञ्च हैं दोनों सन्ध्या उस के कन्धे हैं और एक से प्रभाववाले शुक्लपक्ष कृष्ण यह दोनों उस के नेत्र हैं महीने अंग हैं, उस तीव्रगामी सदैव चलने और दौड़नेवाले और अपूर्व्व दिखाई देनेवाले घोड़े को देखकर जो तेरा ज्ञान अन्धे के समान नहीं है तब परलोक वा आत्मा को सुनकर तेरा मन धर्म्म में नियत होगा जो पुरुष इसलोक में धर्म से पृथक् संसारी भोगों में प्रवृत्त होकर सदैव दूसरे के अप्रियकर्मों के करनेवाले हैं वह अपने अत्यन्त अधर्म्मरूप कर्मों से यम के लोक में शारीरिक दण्ड को पाकर महाआपत्तियों को भोगते हैं, जो राजा अच्छेप्रकार से विचार कर सदैव धर्म्म में प्रवृत्त छोटे बड़े जातिवालों का रक्षक है वह श्रेष्ठकर्म्मी पुरुषों के लोकों को पाता है और अनेकप्रकार के सुखों को भोगता है और हजारों योनियों में प्राप्त होनेवाले दोषों से रहित होकर ब्रह्म में प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष को पाता है नरकदन नाम भयानक नरक में कुत्ते और लोहे के मुख वाले बल गृध्रनाम पक्षियों के समूह जो रुधिर मांसादि के भक्षी हैं वह सब उस देह के त्यागनेवाले पुरुषपर गिरते हैं, जोकि गुरु, पिता, माता आदि के वचनों को नहीं मानता है यह मर्य्यादा जो वेद से नियत कीगई सांख्य में दश हैं अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, वेदपाठ, ईश्वर का ध्यान, अहिंसा, सत्य

बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रहरहित होना, जो मनुष्य इन दशों स्थानों को मन से नहीं मानता है वह पापीपुरुष अत्यन्त दुःखरूप यमलोक सम्बन्धी असिपत्र नाम वन में जाकर निवास करता है, जो मनुष्य अत्यन्त लोभी मिथ्यावादी और सदैव दुष्टकर्म्मी छलमें प्रवृत्तचित्त होता है वह पापात्मा छलआदि से दुःखों का उत्पन्न करनेवाला बड़े नरक में पड़कर महाअसह्य कष्टों को पाता है, ऊष्मजलवाली वैतरणी नाम महानदी में गोते खाताहुआ असिपत्रवन से घायल फरसे के वन में सोता महानरक में गिराहुआ घोरकष्ट को पाता है, अब स्वर्ग से भी अनिच्छा कराते हैं, ब्रह्मलोकादि परमपदों की प्रशंसा करता है और ब्रह्म को नहीं विचारता है और आगे प्राप्तहोनेवाली वृद्धों की मारनेवाली मृत्यु को यत्नकर क्या बैठा है बड़ा कराल वली भय उपस्थित हुआ है इससे सुख का उपाय कर नहीं जानता है वह जबतक यमराज की आज्ञा से मरकर यमलोक में पहुंचायाजाता है तबतक तुम आगे के सुख के निमित्त कृच्छ्रआदि तपों के द्वारा सत्यमार्ग में उपाय करो, जबतक दूसरे के दुःख को न जाननेवाला प्रभु यमराज इस लोक में तेरे जीवन को बान्धवादिकों समेत नहीं हरता है क्योंकि उसका रोकनेवाला नहीं है और यमराज के सन्मुखरहनेवाली वायु के द्वारा तू अकेलाही यमलोक को पहुंचायाजाता है उससमय से पूर्व्वही उस काम को करो जोकि परलोक में लाभदायक हो, वही नाशकारी हवा तेरे सन्मुख जबतक नहीं चलती है इससे पूर्व्वही उपायकरो और जबतक बड़े भय के आने में तेरी दिशा ओर पास घूमती हैं उससे पूर्वही उपायकरो, हे पुत्र ! यह जबतक तुझ व्याकुल और यमलोक में जानेवाले की श्रवणेन्द्रिय की सामर्थ्य बन्द होय उससे पूर्वही उत्तम समाधि को करो, कर्म्म की भूल से दुःखी होने पर पूर्वसमय के बुरेभलेकर्मों का स्मरण करताहुआ जबतक दुःख पाता है तबतक शुद्ध ब्रह्मरूप खज़ाने को आत्मा में धारणकरो, जबतक देह के बलरूप की हरनेवाली वृद्धावस्था शरीर को अत्यन्त जर्जरीभूत न करे तबतक शुद्ध ब्रह्मरूप खज़ाने को आत्मा में धारणकरो, जबतक जीवन के अन्त में रोग को सारथी बनानेवाला यमराज हठ करके तेरे शरीर को निर्जीव नहीं करे उससे पूर्व्वही बड़ी तपस्या में प्रवृत्त होजाओ, जबतक मनुष्यों के शरीरों में घूमनेवाले भयानक भेड़िया के समान काम क्रोधादिक सब ओर से सन्मुख न दौड़ें उससे पूर्वही पुण्य की वृद्धि में उपायकरो, जबतक सहायता न रखनेवाला तेरे दोषरूप अन्धकारों को नहीं देखे और पर्वत के शिखर पर पत्तों के चिह्नों को देखे न उससे पूर्वही शीघ्र उपाय करो, जबतक बुरी इच्छा और मित्ररूप शत्रु तुझ को अपने नेत्र से या बुद्धि तुझको न बाहर फेंकें हे पुत्र ! उससे पहलेही तू मोक्ष में उपाय करले जिस विद्यारूपी धन को

राजा और चोर से भय नहीं है और मरनेपर भी जिसकी कीर्त्ति विख्यात रहती है उस धन को अच्छेप्रकार से सञ्चय करो, वहां अपने कर्म्म का विभाग परस्पर में नहीं दियाजाता है जिसका जो पाथेय है वही अपने को वहां भी भोगता है हे पुत्र! परलोक में जिससे अपना जीवन होता है उसी को दान करो जो धन अविनाशी और अचल है उसीको उपाय करके इकट्ठा करो, जबतक साहूकार की यावकनाम भोजन की वस्तु पक्की नहीं होती है और उसके पक्के न होनेपर भी जो मरजायगा इस निमित्त पहलेही उपाय करना योग्य है, माता पिता पुत्र भाई और अच्छे प्रतिष्ठित रिश्तहदार लोग भी संकट में उस अकेले जानेवाले के पीछे नहीं जाते हैं, और पूर्व समय में जो कर्म्म अच्छा बुरा बनगया है केवल वही कर्म्म उस परलोकगामी का साथी होता है, अच्छे बुरे कर्म्मों से जो सुवर्ण रत्नादिक इकट्ठे किये गये हैं वह देह के मरने के पीछे उसके काम में नहीं आते हैं, इस स्थान में तुझ परलोक की इच्छा करनेवाले के और अन्य सब मनुष्यों के क्रोध से वा विना क्रोध से किये हुए कर्म्मों का आत्मा के सिवाय कोई साक्षी नहीं है, परलोक में अर्थात् साक्षी पुरुष में जीवात्मा के लय होनेपर ही मनुष्य का शरीर नाश होता है वह साक्षी हार्दाकाश में जाकर सब को दिखाई देता है, इस लोक में अग्नि, सूर्य्य, वायु यह तीनों देवता देह में वर्त्तमान रहते हैं वह धर्माधर्म के साक्षी होते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वृत्तियों में सब जीवों के भीतर विचरनेवाले और रात्रि दिन सब साक्षियों के चारों से स्पर्श करनेवाले होनेपर भी तुम धर्म्म की ही रक्षा करो, बहुत से शत्रु और बुरी सूरत के भयानक दंश करनेवाला परलोक के मार्ग में अपनाही कियाहुआ कर्म साथ जाता है इसी हेतु से अपने कर्म की भी रक्षा करो, वहां कोई किसी के कर्म का कोई भागी नहीं होता है जैसा करता है वैसा ही अपने कर्म से उत्पन्न होनेवाले भागों को भोगता है, जिसप्रकार अप्सराओं के समूह अपने कर्म फलरूपी सुखको पाती हैं उसीप्रकार इच्छानुसार चलनेवाले विमानों पर चढे हुए उत्तमपुरुष भी महर्षियों समेत कर्म के फल को पाते हैं, जिसप्रकार इस लोक में पापों से रहित ज्ञानीपुरुषों से जो कर्म कियाजाता है उसीप्रकार अत्यन्त पवित्र उत्पत्तिवाले पुरुष भी अपने उत्तम कर्म फल को पाते हैं, वह लोग गृहस्थ धर्म्मरूप पुलों के द्वारा प्रजापति, बृहस्पति, इन्द्र इत्यादि के लोकों को पाकर मोक्ष को भी पाते हैं, फिर हमसरीके अज्ञानियों को मोहनेवाला धर्म्म हजारों प्रकार से कहने को समर्थ है और वही अपनी सामर्थ्य से हमलोगों को ईप्सित स्थान में भी पहुंचाकर पवित्र करनेवाला है, तेरी अवस्था के वर्ष व्यतीत हुए अब केवल तुम्हारी अवस्था के पचीस वर्ष बाकी हैं तेरी अवस्था चलीजाती है इससे धर्म्म का ही संचय करो जबतक अज्ञान में

वर्त्तमान होनेवाली मृत्यु इन्द्रियों को अपने २ कामों से पृथक् करती है उससे पूर्व ही मृत्यु के पंजे में फँसेहुए शरीरको मत त्यागो किन्तु तैयार होकर अपने धर्म की रक्षा शीघ्रही करो, जैसेकि आत्मारूप तुम भी आगे या पीछे आत्मा को प्राप्तहोगे उसीप्रकार मोक्षप्राप्तकरनेवाले को अपने शरीर अथवा पुत्रादिकों से क्या प्रयोजन है अनेक भयों के प्राप्त होनेपर केवल धर्म या ज्ञान के द्वारा परलोक में जानेवाले सत्पुरुषों का जो हितकारी लोक होता है उसी शुद्ध और गुप्त निर्गुण को धारणकरो, वही असंग प्रभु सब जीवों को भाई, बन्धु, पुत्रादि समेत बाल वा वृद्धों को हरलेता है उसका रोकनेवाला कोई नहीं है इसहेतु से धर्मसंचय शीघ्र ही करो, हे पुत्र! अब यहां मैंने अपने शास्त्र और अनुमान से यह उचित दृष्टान्त तुझ से सब वर्णन किये इनकोही तुम अपना हितकारी जानकर अवश्यकरो, जो पुरुष अपने कर्म से अपने शरीर को पुष्टकरता है और जिस किसी उपकारी को देता है वही अकेला अज्ञान मोहजन्य कष्टों से मिलता है, उत्तमकर्म करनेवाले पुरुषोंको "तत्त्वमसि" वाक्य से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान ब्रह्माण्ड को व्याप्तकरता है वही परम पुरुषार्थ मोक्षरूप अर्थ का दर्शन है कृतज्ञ पुरुषों को उपदेश कियाहुआ ज्ञान पुरुषार्थ से संयुक्त होता है, जो संसारी लोगों में निवास करनेवाले पुरुषों को प्रीति होती है वही बड़ीभारी रस्सीबन्धन में डालती है और उत्तमकर्मी मनुष्य इस रस्सी के बन्धन को काटकर जाते हैं और निकृष्टकर्मी नहीं काटसक्ते हैं, हे पुत्र! जबकि तुम मृत्यु के वशीभूत होनेवाले हो फिर तुम को धन, भाई, पुत्रों से कुछ प्रयोजन नहीं है तुम अपने हार्दाकाश में नियत आत्मा की इच्छाकरो देख तेरे पिता आदि कहांगये, कल के काम को आजकर और रात्रि के काम को प्रातःकाल ही करले क्योंकि मृत्यु जरा भी बाट नहीं देखती है न यह देखती है कि इसका काम समाप्त हुआ है वा नहीं, मरने के समय मित्र बान्धव और ज्ञातिवाले पीछे २ चलकर मृतक को अग्नि में डालकर लौटआते हैं, तुम मोक्ष के अभिलाषी आलस्य को दूर करके विश्वासयुक्त होके उन निर्दयी पापबुद्धि नास्तिकों को अपने से सदैव हटाओ, इसप्रकार लोक से घायल काल से पीड़ावान् होनेपर भी तुम बड़े धैर्य से सब जीवों में धर्म को करो, फिर जो मनुष्य इस ज्ञान की युक्ति को अच्छेप्रकार से जानते हैं वह इस लोक में अपने धर्म को अच्छेप्रकार से करके परलोक में सुख को भोगते हैं, और देह के त्यागने में ज्ञानी लोगों की मृत्यु नहीं होती है और अपने धर्ममार्ग की रक्षा करने में किसीप्रकार की हानि नहीं है जो धर्म की वृद्धि करता है वह पण्डित है और धर्म से हीन होता है वह अज्ञान में फँसता है, कर्मकर्त्ता मनुष्य कर्ममार्ग में प्रकट होनेवाले अपने दो प्रकार के कर्मफलों को इसप्रकार से पाते हैं जैसा कि उन कर्मों को किया है

अर्थात् बुरा कर्मकरनेवाला नरक को पाता है और परायणलोग स्वर्ग पाते हैं इस स्वर्ग की नसेनी को बड़ी कठिनता से प्राप्त होनेवाले मनुष्य देह को पाकर उस आत्मा को अच्छेप्रकार से ध्यानकरे जिस से कि आपत्ति में न फँसे, स्वर्ग मार्ग के अनुसार कर्मकरनेवाली जिसकी बुद्धि धर्म को नहीं उल्लंघन करती है उसको पवित्रकर्मी और पुत्र बान्धवादि से शोचने के योग्य कहा है, जिसकी बुद्धि अज्ञान से मोहित नहीं है और निश्चय में आश्रय लेती है उस स्वर्ग में निवासी को कोई भय नहीं होता है, जो पुरुष तपोवन में उत्पन्नहुए और वहीं मरे उन कामभोगों से रहित पुरुषों का धर्म्म अत्यन्तछोटा है, जो पुरुष भोगों को चारोंओर से त्यागकर देह से तपस्याकरता है उसको सब अभीष्ट प्राप्तहोते हैं मैंने भी इसी बातको सिद्धान्त समझा है, हज़ारों माता पिता और सैकड़ों पुत्र स्त्री भूतकाल में हुए और आगे भी होंगे वह सब किसकेहुए और हम किसके हैं, मैं अकेला हूं मेरा कोई नहीं है न मैं किसी का हूं और जिसका हूं उसको नहीं देख सक्ता हूं और जो मेरा है इसको भी नहीं देखता हूं, न मुझसे उनका काम होगा न उनसे मेरा काम होगा वह अपने २ कर्म्मों से उत्पन्न होकर मरे वा मरेंगे और आप भी जाओगे, इसलोक में धनवान् के भाईबन्धु अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हैं और निर्द्धनों के भाई बन्धु नष्टता को प्राप्तहोते हैं, मनुष्य स्त्री के द्वारा बुरेकर्मों को संचयकरता है फिर परलोक में और इसलोक में भी कष्टों को पाता है, अपने कर्म्मों से इस दुःखरूप जीवलोक को देखता है हे पुत्र! इसीहेतु से इन सब बातों को ऐसेही करनाचाहिये जैसा कि वर्णन कियागया है, इसको अच्छे प्रकार ध्यान करके परलोक चाहनेवाले को उत्तम कर्म्म करना योग्य है, जिस काल के महीने, ऋतु, वर्ष, भ्रमण हैं सूर्य अग्नि है और दिनरात ईंधन है वह सूर्य्य कर्म्म और फल की नियतता का साक्षी भी है ऐसे इन्धन और अग्नि में वह काल भ्रमाय २ कर सब को भस्मकरता है, उस धन से क्या लाभ है जिसको न देता है न भोगता है और ऐसा पराक्रम भी निरर्थक है जिससे कि शत्रु को नहीं पीड़ित करता है और वह शास्त्र भी निष्फल है जिसके द्वारा धर्म्म को नहीं करे और उस आत्मा से भी क्या प्रयोजन है जो जितेन्द्रिय और मन का जीतनेवाला नहीं है भीष्मजी बोले कि, शुकदेवजी ने व्यासजी के कहेहुए इन हितकारी वचनों को सुनकर पिता को बिदाकर मोक्ष का उपदेश करनेवाले राजाजनक के पास जाकर मोक्ष की रीति को पूछा, युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! दान, यज्ञ, तप और गुरुओं की सेवा जैसे करनी योग्य है वह मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि अनर्थ में संयुक्त बुद्धि के कारण मन पापकर्म्मों में प्रवृत्त होता है और अपने कुकर्म्म के फल से महाकष्टों को नियत होता है दुर्भिक्ष से और नानाक्लेशों से अनेक भयकारी आपत्तियों में पड़कर मृतकनाम

पाके अर्थात् मुक्त न होनेवाले पुरुष मृतक मनुष्यों में मिलजाते हैं और पापी मनुष्य निर्द्धन होते हैं, उत्सव से उत्सव को स्वर्ग से स्वर्ग को सुख से सुख को पाते हैं श्रद्धावान् जितेन्द्रिय और धनवान् लोग श्रेष्ठकर्म्मी हैं, परलोक के न माननेवाले नास्तिकलोग सर्प हाथी आदि से दुर्गम और भयकारी मार्ग में हथकड़ियों समेत पिटतेहुए जाते हैं इससे कठिन दुःख क्या होगा, देवता अतिथि साधुलोग और देवता आदि जिन पुरुषों को प्यारे हैं और महादान दक्षिणाआदि के दाता हैं वह ज्ञानियों के मार्ग में नियत हैं जैसे धान्यों में पुलाका और पक्षियों में पूत्यण्डा होता है उसीप्रकार मनुष्यों के मध्य में वह नास्तिक पुरुष गिनेजाते हैं, जिस २ मनुष्य से जैसा २ कर्म्म हुआ है वही कर्म्मफल प्रारब्धरूप होकर दौड़नेवाले मनुष्य के पीछे २ दौड़ता है और सोनेवाले के साथ में सोता है और पापकर्म्म उस कर्म्मकर्त्ता के समीप नियत होता है और दौड़नेवाले के पीछे दौड़ता है और कर्म्म करनेवाले के साथ कर्म्म करता है सदैव छाया के समान संगही बना रहता है, जिस २ पूर्व्वजन्म समय में जो २ कर्म्म किया है उस २ अपने कर्म्म किये को आगे के जन्म में सदैव वह भोगता है, जिसमें कर्म्म और त्याग समान हैं उस प्रारब्ध से चारोंओर से रक्षित जीव को काल चारोंओर से खैंचकर पृथक् करदेता है जैसे कि विना कहेहुए अपने २ समय और ऋतु में फूल फल समय को उल्लंघन नहीं करते हैं उसीप्रकार पूर्व्व जन्म के किये हुए कर्म्म भी कभी समय को नहीं उल्लंघन करते हैं, प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा लाभ हानि जीवन मृत्यु इत्यादि सब जारी होनेवाले बन्धनही होते हैं और प्रत्येक चरणपर नाश के जतानेवाले हैं, आत्माही से सुख और दुःख कियेगये हैं गर्भशय्या को प्राप्तहोकर आत्मा अपनेही कियेहुए कर्मफलों को भोगता है, बालक, तरुण और वृद्ध कोई मनुष्य जिस २ शुभ अशुभ कर्म्मों को करता है उसीदशा में वह प्रत्येक जन्म में उसके फल को भोगता है, जैसे बछड़ा हजारों गौओं के मध्य में अपनीही माता को पालता है इसीप्रकार पूर्व्व का कियाहुआ कर्त्ता का कर्म्म उसके पीछे २ चलता है, जैसे कि मैला वस्त्र पीछे से जल के द्वारा शुद्धहोजाता है उसीप्रकार व्रतादि अनेक नियमों से कष्टसहनेवाले पुरुषों को अत्यन्त सुख प्राप्तहोता है हे महाज्ञानिन्! बहुत समयतक तपस्या करने से और धर्म्म से जिनका पाप दूरहोगया है उनके मनोरथ शीघ्र सिद्ध होते हैं, जैसे कि आकाश में पक्षियों का और जल में मछलियों का पहला चिह्न दृष्ट नहीं आता है उसीप्रकार पापात्माओं की भी गती है, प्राप्त और नियत नानाप्रकार की वे मर्य्यादाओं को छोड़ो और जो अपना हितकारी श्रेष्ठ कर्म्म है उसको करना उचित है ॥ ११२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्तचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

एकसौअड़तालीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि, हे पितामह! व्यासजी के पुत्र धर्म्मात्मा तपस्वी शुकदेवजी ने किसप्रकार से जन्म लिया और सिद्धिरूप मोक्ष को प्राप्त हुए यह सब आप वर्णन कीजिये, तपोधन व्यासजी ने किस स्त्री में शुकदेवजी को उत्पन्न किया इन महात्मा की माता को और उनके उत्तम जन्म को नहीं जानते हैं और उस बालक की बुद्धि किसकारण से ज्ञान में प्रवृत्त हुई इसलोक में ऐसी बुद्धि किसी की ज्ञान में नहीं प्रवृत्तहुई हे महाज्ञानिन्! मैं उसको मूलसमेत सुनना चाहता हूं क्योंकि आप के अमृतरूपी शास्त्रों के सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती है इसीसे हे पितामह! शुकदेवजी के माहात्म्ययोग और विज्ञान को ठीक २ क्रमपूर्वक मुझ से वर्णन कीजिये, भीष्मजी बोले कि ऋषि लोगों ने अधिक अवस्था वा वृद्धता मृतक शरीर और धन के कारण से धर्म को नहीं कहा है जो पुरुष अंगोंसमेत वेदों को जानता है वही हमलोगों में बड़ा है इन सब में तपही मूलरूप है वह तप जितेन्द्रिय पुरुषों से होता है दूसरों से नहीं होसक्ता है, हे तात! हज़ार अश्वमेध और सौ वाजपेययज्ञ का फल योग की कला के भी समान नहीं होता है अब मैं इस स्थान में शुकदेवजी के उस जन्म योगफल और उत्तमगति को जो कि अपवित्र मिथ्यावादी मनुष्यों को कठिनता से समझ में आसक्ती है तुझ से कहता हूं, निश्चय करके पूर्वसमय में भयंकररूप भूतगणों से सेवित श्रीमहादेवजी ने मेरु पर्वत के उस शिखर पर जो कि वन के नानावृक्षों से शोभित था उत्तम जानकर बड़े आनन्द से विहार किया और उस समय श्रीपार्वती जी भी उनके साथ थी उसीसमय देवताओं के समान श्रीव्यासजी ने वहां तपस्या की और हे कौरवेन्द्र! वहां व्यासजी ने योगधर्म में प्रवृत्त हो अपने योगबल से इन्द्रियों को हृदय में रोककर पुत्र की कामना के निमित्त प्रार्थना की अर्थात् उन्होंने यह इच्छाकरी कि मेरा पुत्र धैर्य से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के समान होवे, उस उत्तम तप में प्रवृत्त उस ऋषि ने यह संकल्प करके योग के द्वारा उन शिवजी को आराधन किया जो कि अज्ञानियों को प्राप्त होने कठिन हैं, वायु का भक्षण करके बहुत रूप रखनेवाले उमापति शिवजी के ध्यान में प्रवृत्त होकर व्यासजी सौ वर्षतक खड़े रहे वहां परब्रह्म ऋषिराज ऋषिलोकपाल और साध्यगणों ने वसुओं समेत शिवजी महाराज को सेवनकिया और बारह सूर्य, ग्यारह रुद्र, चन्द्रमा, सूर्य्य, वसु, मरुद्गण, सागर, नदी, अश्विनीकुमार, देवता, गन्धर्व, नारद, पर्वत, देवऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं ने शिवजी को आराधन किया उससमय शिवजी महाराज कनेर के पुष्पों की माला को धारण किये

हुए ऐसे शोभायमान थे जैसे कि अपनी किरणों समेत चन्द्रमा शोभायमान हो अपने धर्म में दृढ़ व्यासदेवजी उस दिव्य क्रीड़ा के योग्य देवता और देव ऋषियों से व्यास वन के मध्य में पुत्र की इच्छा करके उत्तम योग में नियतहुए इनका न तो प्राण निकलता था और कोई प्रकार की ग्लानि भी नहीं उत्पन्न होती थी यह बात देखकर तीनोंलोकों को आश्चर्य सा हुआ तब उस बड़े तेजस्वी की जटा का रूप तेज के मारे महादेदीप्यमान अग्नि की ज्वाला के समान दृष्ट पड़ता था यह चरित्र और अन्य भी अनेक देवचरित्र इस स्थान में मुझ से भगवान् मार्कण्डेयजी ने कहे हैं, हे तात ! अब भी उसी तप के प्रताप से व्यासजी की जटा अग्निवर्ण के समान दिखाई देती है हे युधिष्ठिर ! उनके इस योग भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी ने अपने चित्त में विचारकिया और ईषद्धास्यपूर्वक भगवान् शिवजी ने व्यासजी से यह कहा कि हे व्यास ! तेरा पुत्र पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनकेही समान सिद्धहोगा और महापुरुष समझा जायगा, मैं ब्रह्म हूं ऐसा विचार करनेवाला उसी ब्रह्म में बुद्धि का लगानेवाला और उसी में मन को दृढ़ करनेवाला और उसी में निवास करके तेरा पुत्र अपने तेजसे तीनों लोकों को व्याप्त करके यश को विख्यात करेगा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेऽष्टचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

एकसौउनचासका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले उन व्यासजी ने शिवजी से उत्तम वर को पाकर और युग्म अरणीकाष्ठ को लेकर कामना की प्रत्यक्ष करनेवाली अग्नि से उनको मथा, हे राजन् ! फिर व्यासजी ने अपने तेज से उत्तमरूप धारण करनेवाली घृताची नाम अप्सरा को देखा, हे युधिष्ठिर ! भगवान् व्यासजी उस वन में अप्सरा को देखकर काम से पीड़ितहुए और घृताची भी व्यासजी को काम से व्याकुल देखकर अपना रूप तोती का बनाकर उनके पास गई, वह ऋषि उस अप्सरा को पक्षी के रूप में गुप्त हुआ जानकर काम में संयुक्तहुए और बड़े धैर्य से काम को स्वाधीन करके व्यासजी अपने चंचल चित्तके रोकने को समर्थ नहीं हुए और होनहार के वश से घृताची के शरीर की लावण्यता पर मोहित होगये बड़ी युक्ति से काम को स्वाधीन करनेवाले उस मुनि की कामाग्नि से उनका वीर्य पतन होकर एक अरणीकाष्ठ के ऊपर गिरा इसीहेतु से उस महाऋषि ने अरणीकाष्ठ को मथा और उससे शुकदेवजी ने जन्मलिया जैसे कि यज्ञ सम्बन्धी तीव्र अग्नि हव्य को धारणकरता हुआ प्रकाशमान होता है वैसेही रूपवान् और तेज से देदीप्यमान शुकदेवजी भी होतेहुए हे कुरुभूषण ! पिता के अनूपरूप और सुन्दरवर्ण को धारण करतेहुए शुद्धअन्तःकरण शुकदेवजी धूमरहित

अग्नि के समान प्रकाशमान होतेहुए हे राजन्! तदनन्तर मेरुपर्वत के पीछे श्रेष्ठरूपवाली सब नदियों में उत्तम श्रीगंगाजी ने अपने रूप से उनके पास आकर उनको अपने जल से तृप्त किया और आकाश से दण्ड और कृष्णमृग का चर्म उन महात्मा के निमित्त पृथ्वी पर गिरा और गन्धर्व वा अप्सराआदि गाने वा नाचनेलगीं और देवता लोग बड़ी शब्दायमान दुन्दुभी बजानेलगे और विश्वावसु, नारद, तुम्बुरु और हाहा हूहू आदि गन्धर्व्वों ने शुकदेवजी के जन्मोत्सव का मंगलगान गाया और इन्द्रादिक सब देवता और लोकपाल, ब्रह्मर्षि, देवर्षि भी सब आये और वायु ने सुगन्धित उत्तम पुष्पों की वर्षा की और सब संसार के स्थावर जंगम जीव अत्यन्त प्रसन्नहुए तब महातेजस्वी महात्मा शिवजी ने भगवती के साथ बड़ी प्रीति से उस मुनि के पुत्र को उत्पन्न होतेही बुद्धि से अपना शिष्य किया और देवेश्वर इन्द्र ने अपूर्वदर्शनवाला दिव्यकमण्डलु और देवताओं के वस्त्र बड़ी प्रीति से उनको दिये फिर हजारों हंस, सारस, शतपत्र, तोते और नीलकण्ठों ने उनको दक्षिण किया, हे भरतर्षभ! फिर तो इस दिव्य जन्मको पाकर महातेजस्वी व्रत में सावधान अरणी के पुत्र बुद्धिमान् शुकदेवजी उसस्थानमें निवास करनेलगे तदनन्तर रहस्य और संग्रहोंसमेत सब वेद उनके पास वैसेही वर्त्तमानहुए जैसे कि उनके पिता के पास आये थे, हे राजन्! वेद वेदांग के भाष्य के ज्ञाता धर्म्म विचारनेवाले शुकदेवजी ने बृहस्पतिजीको अपना गुरुकिया और उनसे सब वेद, वेदांग, रहस्य, संग्रहोंसमेत और इतिहास आदि अनेक शास्त्रों को पूर्णता से पढ़ गुरु को दक्षिणा देकर समावर्त्तन कर्म्मकिया, फिर उस सावधान ब्रह्मचारी ने महातप करना प्रारम्भ किया और अपने ज्ञान वा तप से बाल्यावस्था मेंही देवता और ऋषियों में बड़े माननीय हुए, हे राजन्! मोक्षधर्म्म के साक्षात्कार करनेवाले इन शुकदेवजी की बुद्धि गृहस्थादिक तीनों आश्रमों में नहीं रमती थी ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

एकसौपचासका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि शुकदेवजी गुरु से मोक्षशास्त्र को पढ़कर पिता के पास गये और कल्याण के आकांक्षी विनीतता से अपने पितारूप गुरु को दण्डवत् करके बोले कि हे पितः! आप मोक्षधर्म में प्रवीण हैं इससे मुझको ऐसा उपदेश कीजिये जिससे कि चित्त में उत्तम शान्ति होजाय, व्यासजी ने पुत्र के ऐसे वचन सुनकर उत्तरदिया कि हे पुत्र! तुम मोक्षशास्त्र को और अन्य नानाप्रकार के धर्मों को भी पढ़ो, हे भरतवंशिन्! उस धर्म्मधारियों में उत्तम श्रीशुकदेवजी ने पिता की आज्ञा से संपूर्ण योगशास्त्र और सांख्यशास्त्र को भी पढ़ा जब उन

व्यासजी ने उस पुत्र को ब्राह्मणों की लक्ष्मी से संयुक्त ब्रह्म की समान पराक्रमी और मोक्ष धर्मों में महापण्डित जाना तब कहा कि अब तुम राजाजनक के पासजाओ वह मिथिलेश्वर संपूर्ण मोक्षशास्त्र को तुम से कहैगा, हे राजन्! शुकदेवजी पिता की आज्ञा को मानकर धर्मनिष्ठा और मोक्ष के सिद्धान्त के निर्णय के निमित्त मिथिलापुरी में गये और चलने के समय पिता ने समझा दिया था कि तुम निस्संदेह मनुष्यमार्ग होकर जाना आकाशमार्ग होकर न जाना सीधे और सचेपन से जाना उचित है और उस हमारे यजमान राजा से तुम कभी अहंकार न करना उसके आधीन होनाही योग्य है वही तुम्हारे सन्देहों को निवृत्तकरेगा, वह राजा धर्म में कुशल और मोक्ष शास्त्रमें अद्वितीय पण्डित है जो वह कहै वही तुम को निस्संदेह करना उचितहोगा इसप्रकार से समझाये हुए वह धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिलापुरी को गये जो कि वह मुनि अन्तरिक्ष के मार्ग से अपने चरणों करके समुद्रों समेत पृथ्वी के उल्लंघन करने को समर्थ थे इस हेतु से उन्हों ने पर्वतों को उल्लंघन कर नदी, तीर्थ, सरोवर, वन, उपवन आदि अनेक पर्वत श्रेणी और सर्प मृगों करके व्याप्त वनों के अनेक मार्गों को उल्लंघन करके मेरु के इलावर्त्तादि शिखरों को क्रमपूर्वक व्यतीत करके भरतखण्ड को पाया, फिर चीनी और हूननाम मनुष्यों से सेवित नाना प्रकार के देशों को देखतेहुए इस आर्य्यावर्त्त देश में आये (अन्यमतवाले लोग इस आर्य्यावर्त्त देश को एरियन कहते हैं) और पिता के वचन को जान कर उसी अर्थ को विचारतेहुए शुकदेवजी ने मार्ग को व्यतीत किया, आकाश में चलतेहुए पक्षी के समान क्रीड़ा के योग्य नानाकुतूहलों से वृद्धिमान् नगर और नानाप्रकार के पृथ्वी के रत्नों को देखतेहुए भी उनको तुच्छ समझकर अथवा वैराग्य से नही देखते थे और मार्ग के अनेक क्रीड़ा के योग्य उद्यान स्थान और सुन्दर नानारत्नों को भी तुच्छही समझा इसीप्रकार से चलते २ थोड़ेही समय में महात्मा जनक से रक्षित विदेह नगर को पाया उस नगर में और अनेकरस अन्नभोजनआदि पदार्थों से भरेहुए और अनेक गौओं से शोभित घोषपल्लीजाति के लोगों से व्याप्त बहुत से ऐसे ग्रामों को देखा जिनमें घास अन्न से पोषित अनेक हंस सारस थे और बहुतप्रकार के कमल युक्त तड़ाग वापी कूपों से शोभित अनेक धनाधीश साहूकारों से और व्यापारों से युक्त हाथी घोड़े रथआदि अनेक वाहनों से पूर्ण विदेह नगर को उल्लंघन करके आत्मज्ञान और मोक्षज्ञान के आकांक्षी शुकदेवजी उसके खुलेहुए द्वार के भीतर निश्शंक होकर घुसे वहां उग्रवचनों के द्वारा राजा के द्वारपालों ने उनको रोका तब शुकदेवजी क्रोधरहित होकर यथावस्थित खड़ेहुए यद्यपि मार्ग की ऊष्मा और क्षुधा पिपासा से व्याकुल भी मुनि थे तथापि हर्ष शोक से रहित धूप मेंही

वर्त्तमान रहे फिर उन द्वारपालों में से एक द्वारपाल ने आकाश में सूर्य्य के समान तेजस्वी शुकदेवजी को शोकयुक्त रूप धारण किये देखा और वह बड़ी प्रीति से पूजन करके दण्डवत्कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़ाहोगया और राजमहल की दूसरी ड्योढ़ीपर लेगया हे युधिष्ठिर! वहां बैठकर शुकदेवजी ने मोक्ष कांही विचार किया क्योंकि वह महाप्रतापी धूप और शीत को समान देखते थे, एक मुहूर्त्तही मात्र में राजा के मन्त्रियों ने बड़ी नम्रता से आकर शुकदेवजी को राजमहल की तीसरी ड्योढ़ीपर खड़ाकरदिया और वहां से लेजाकर स्त्रियों के समूह में प्रवेश करवाया वहां राजमहल से लगाहुआ चित्ररथ के समान सुपुष्पित वृक्षों से शोभित क्रीड़ा के योग्य जलक्रीड़ा स्थान से युक्त वन था उसमें शुकदेवजी का आसन करवाके वह मन्त्री चलागया उस स्थान में सुन्दर नितम्बवाली युवा स्वरूपवान् स्त्रियां जो अरुण सूक्ष्म वस्त्र धारण किये अग्नि के समान सुवर्ण आभूषणों से अलंकृत सुन्दर आलाप करनेवाली मृदुभाषिणी गीतवाद्य में प्रवीण मन्द मुसुकान युक्त वार्त्तालाप करनेवाली थीं और अप्सराओं के समान रूप कामकला में कुशल हावभाव कटाक्ष जाननेवाली सब बातों की ज्ञाता ऐसी पचास स्त्रियां उनके पास गईं और पाद्य अर्घ्य से उनका पूजन करके समयपर उपस्थित उत्तम भोजनों से उनको तृप्त किया और प्रत्येक स्त्री ने साथ लेलेजाकर वह क्रीड़ावन शुकदेवजी को दिखलाया और हँसती गाती और दूसरे के चित्त की जाननेवाली उन स्त्रियों ने उस बुद्धिमान् महाज्ञानी शुकदेवमुनिकी अच्छेप्रकार से सेवा की वह शुद्ध अन्तःकरण स्वकर्मनिष्ठ अरणी के पुत्र शान्तचित्त क्रोधरहित शुकदेवजी इनके प्रेमों से न प्रसन्न होते थे न क्रोधित होते थे तब उन सुन्दरस्त्रियों ने शुकदेवजी के बिछाने को वह कृष्णवर्ण अनेक रत्नों से जटित आसनदिया जो कि उत्तम देवताओं के योग्य था शुकदेवजी भी चरण धोकर संध्योपासनादि कर्मों से निबटकर उसी मोक्ष को विचारते हुए उस पवित्र आसनपर विराजमानहुए और रात्रि के प्रथमभाग में ध्यानावस्थित होकर अर्द्धरात्रि के समय रीति के अनुसार शयन किया फिर एक ही मुहूर्त्त में उठकर निरालस्य शौच और स्नानादिक करके स्त्रियों से घिरेहुए मुनि ने अपने मन को ध्यान में लगाया, हे भरतवंशिन्! मोक्ष के अधिकार में बड़े दृढ़चित्त शुकदेवजी ने इस बुद्धि से उस दिन के शेष और रात्रि को उसी राजकुल में व्यतीतकिया ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

एकसौइक्यावनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इनसब बातों के पीछे राजाजनक अपने सब मन्त्री पुरो-

हित और रानियोंको आगे करके बड़े २ आसन और नानाप्रकार के रत्नों समेत शिर से अर्घ्य को लेकर गुरु, पितर, देवताओं के सन्मुखगया और बहुत से रत्नों से जटित बहुमूल्य वस्त्रों से युक्त बड़े पूजित ऋद्धिमान् सर्वतोभद्र नाम आसन को हाथ में लेकर गुरु और पितृरूप शुकदेवजी को दिया, जब उस आसनपर शुकदेवजी विराजमान हुए तब राजा जनकने पाद्य अर्घ्यपूर्वक शास्त्र की विधि से उनका पूजन करके बहुत से रत्न संयुक्त सुन्दर गौओं को दान में दिया और शुकदेवजी ने उसके मन्त्रयुक्त पूजन को बुद्धि से अंगीकार किया फिर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तपस्वी शुकदेवजी ने भी उसके पूजन को और रत्नादिक समेत गौओं को स्वीकार करके और राजा को आशीर्वाद देकर उस राजा की कुशल क्षेमको पूछा और राजा अपने सब साथियों समेत हाथजोड़ेहुए मुनि की आज्ञा से ब्राह्मणों समेत नीचे पृथ्वीपर बैठगया फिर महाकुलीन प्रबल बुद्धिमान् राजा ने शुकदेव जी का कुशल मंगल पूछकर कहा कि आप का आगमन कैसे हुआ शुकदेव जी बोले तेरा कल्याण हो मैंने अपने पिता से सुना है कि मोक्षधर्म्म में महाविद्वान् मिथिलापुरी का राजा जनक मेरा यजमान है वह तुम्हारी बुद्धि से प्रवृत्ति निवृत्तिवाले सन्देहों को दूरकरेगा तुम मेरी आज्ञा से वहां जाओ वह तुम्हारे हृदय के सब सन्देहों को निवृत्त करेंगे सो मैं पिता की आज्ञा से आप से अपने संदेहों के पूछने को आया हूं सो धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ आप मुझ से कहने को योग्य हैं इसलोक में ब्राह्मण को क्या करना योग्य है और मोक्ष अर्थ का क्या स्वरूप है ज्ञान से अथवा तप के द्वारा मोक्ष किस रीतिसे प्राप्त करने के योग्य है, राजा जनक ने उत्तरदिया कि हे तात! इसलोक में जन्म से लेकर ब्राह्मण को जो करने के योग्य है उसको आप सुनिये कि प्रथम तो यज्ञोपवीत प्राप्त करके वेदपाठी होनाचाहिये तब गुरुवृत्ति और ब्रह्मचर्य होकर देवता और पितरों के ऋण को निवृत्त करके सब की निन्दारहित दूसरे के गुण में दोष न लगानेवाला सावधान वेदों को पढ़ गुरु को दक्षिणा देकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके फिर ब्राह्मण को समावर्त्तन कर्म्म करना चाहिये, गृहस्थधर्म्म में प्रवृत्त होनेवाला और केवल अपनीही विवाहिता स्त्री में प्रीति करनेवाला अन्य की निन्दा और गुणों में दोषरहित होकर निवासकरे और न्याय के अनुसार अग्नि स्थापन करे फिर अपने पुत्र पौत्रादि को उत्पन्न करके वानप्रस्थ आश्रम में निवासकरे और उन अग्नियों को शास्त्र की रीति से पूजता हुआ अतिथियों का प्यारा होवे, फिर वह धर्म्मज्ञ वन में अग्नियों को न्याय के अनुसार आत्मा में प्रविष्ट करके दुःख सुखआदि योगों से रहित विरक्त चित्त होकर संन्यास आश्रम में निवासकरे, शुकदेवजी बोले कि ज्ञान और विज्ञान के उत्पन्न होने और हृदय से सुख दुःखादि के रहित होनेपर और सनातन आत्मा के होनेपर तीनों आश्रमों

में निवास करना क्या आवश्यक और योग्य है यह मैं आप से पूछता हूं इसको मुझे समझाइये और हे राजन् ! तुम वेदार्थ और सिद्धान्त के अनुसार वर्णन करो राजा जनक ने उत्तर दिया कि विना ज्ञान और विज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होसक्ती और विना गुरु के ज्ञान नहीं मिलता यहां ज्ञान रूप शास्त्र नौका है और गुरु उसका कर्णधार है अच्छे प्रकार से ज्ञानी होकर कर्म्मों से निवृत्त संसारसागर से पारहोनेवाला उन दोनों गुरु और शास्त्र को त्याग करके वामदेवऋषि के समान ब्रह्मचर्य्य से प्रथमही विज्ञान के उत्पन्न होने पर उस ब्रह्मचर्य्य धर्म्म से क्या प्रयोजन है यह शंका करके कहते हैं कि धर्म्म परलोकों के निवास और कर्मों के नाश न होने के लिये प्राचीन वृद्धों का कियाहुआ चारों आश्रमों में सुखरूप है तात्पर्य्य यह है कि ज्ञानी को संसारी लोगों की शिक्षा के निमित्त उसका करना आवश्यक है, इस कर्म्म की परम्परा से इसलोक के अनेक जन्मों में शुभ अशुभ कर्म्मों का त्याग करके यह मोक्षनाम पदार्थ प्राप्तहोता है, यह शुद्धात्मा बहुत से जन्मों में शुद्ध होनेवाली बुद्धि आदि के कारण से पहले ही आश्रम में मोक्ष को पाता है उस मोक्ष को पाकर उस मोक्षदर्शी मुक्त ज्ञानी और कैवल्य मोक्ष चाहने वाले का तीनों आश्रमों में क्या प्रयोजन है, अर्थात् आश्रमधर्म्म केवल चित्त शुद्धि के निमित्त है उसकी चित्तशुद्धि होनेपर वह सब निरर्थक है राजसी और तामसी दोनों दोषों को सदैव त्यागकरे केवल सात्त्विकीमार्ग में नियत होकर आत्माही के द्वारा आत्मा को देखे, सब जीवों में नियत आत्मा को और आत्मा में नियत सब जीवमात्रों को अच्छेप्रकार देखताहुआ ऐसे लिप्त न होवे जैसे कि हंस आदि जल से निर्लिप्तहोते हैं, देह को त्यागकर सुख दुःखादि से रहित शान्तचित्त होकर मुक्त ज्ञानी ऐसे प्रकार से पक्षी के समान परलोक में मोक्ष को पाता है जैसे कि पक्षी नीचे स्थान से ऊपर को उड़ता है, हे तात ! इस स्थानपर मैं उन गाथाओं को कहता हूं जिनको कि पूर्वकाल में राजा ययाति ने गाया है और जो मोक्षशास्त्र में कुशल ब्राह्मणों से धारण कीजाती हैं चिन्मात्र ब्रह्मरूपी ज्योति बुद्धि मेंही होती है दूसरे स्थानमें नही होती है और वह ज्योति सबजीवमात्रों में एकही है जिसका चित्त योगारूढ़ है वही उसका दर्शन करसक्ता है, जिससे कोई भय नहीं करता है न आप किसी दूसरे से भयकरता है न इच्छाकरता है न निषेध करता है ऐसी दशा होनेपर वह ब्रह्मभाव को पाता है जब सबजीवों में मन वाणी कर्म्म से पापकर्म्म को नहीं करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब मन के द्वारा आत्मा को परमात्मा में मिलाता है और मोह की उत्पन्न करनेवाली ईर्षा को त्यागकर काम मोह को पृथक् करता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब यह सुनने और देखने के योग्य सबवस्तु और जीवमात्रों में

समदर्शी और सुख दुःख आदि से रहित होता है तब ब्रह्मभाव को पाता है, जब निन्दा स्तुति, सोना लोहा, सुख दुःख को समान देखता है वा शीतोष्णता, अर्थ, अनर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीवन और मृत्यु को समान देखता और मानता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्तहोता है जैसे कि कछुआ अंगों को फैलाकर फिर भीतर को सकोड़ लेता है उसीप्रकार संन्यासी को भी मन के द्वारा सब इन्द्रियों को जीतना योग्य है जैसे कि अँधेरेवाले घर में दीपक सेही पदार्थ देखते हैं उसी प्रकार ज्ञानरूप बड़े दीपक से आत्मा का दर्शन करना सम्भव है (आत्मारूप घर में अज्ञानरूप अँधेरा है) हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! मैं इन सब बातों को तुम में देखता हूं और जो दूसरी बात भी जानने के योग्य है उसको भी आप मूलसमेत जानते हो, हे ब्रह्मर्षे ! आप के पिता की कृपा से और आप की उपशिक्षता से आप सरीखे लोगों का आना इसदेश में हुआ है, हे महामुने ! उन व्यासजी कीही कृपा से यह मेरा दिव्यज्ञान भी प्रकाश हुआ है जिसके कारण आप मुझ को विदित हुए हो, आप का विज्ञान अधिक है और आप की गति ऐश्वर्य्य भी अधिक है तुम इसको नहीं जानते हो, बाल्यावस्थाही में संशय और बन्धन से उत्पन्नहोनेवाले भय से विज्ञान की उत्पन्न दशा में भी उस गति को नहीं प्राप्त करते हो, मुझसरीखे पुरुष से संशय को निवृत्त करके और शुद्ध निश्चय से हृदय की गांठों को खोलकर उसगति का प्राप्तकरता है, आप विज्ञानी स्थिर-बुद्धियुक्त और निर्लोभ हो परन्तु हे ब्रह्मन् ! विना निश्चयकियेहुए उस मोक्ष को नहीं प्राप्त करता है, सुखदुःखादि में आप की मुख्यता नहीं है लोभ नहीं है न नृत्य गीतादि में रुचि है न आप को शोक उत्पन्न होता है, बान्धवों में आप को बन्धन या संलग्नता और किसी प्रकार का भय भी नहीं है और आपकी बुद्धि में सुवर्ण वा पत्थर समान देखता हूं, मैं अथवा अन्यलोग जो ज्ञानी हैं वह सब भी आपको इस मार्ग में स्थिरबुद्धि जानते हैं जो सर्वोत्तम निरुपाधि और अविनाशी है हे ब्रह्मन् ! इसलोक में ब्राह्मण का जो फल है और जिसरूप का कि मोक्ष अर्थ है उनसब में आप का पूरा २ वृत्तान्त है अब दूसरी कौन सी बात है जिसको आप पूछते हो ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

एकसौबावनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, वह निश्चय करनेवाले ज्ञानी शुकदेवजी जनक के इस वचन को सुनकर बुद्धिरूप आत्मा के द्वारा आत्मा में नियतहोकर और आत्मा को आत्माही से देखकर सिद्धमनोरथ महा आनन्दित और शान्तरूप वायु के समान धर्मधारी हिमालय पर्वत की इच्छा से मौनहोकर चले और

दैवयोग से उसीसमयपर देवर्षिनारदजी भी सिद्धचारणों समेत उसपर्वत के देखने को आये, वह पर्वत अप्सरा गणों से व्याप्त मन्द २ शब्दों से शब्दायमान हज़ारों किन्नर, गन्धर्व वा विचित्र जीव जीवकनाम पक्षियों से और मोरों की केकानाम वाणियों से शोभायमान राजहंस और कृष्णागौओं से शोभित था और पक्षियों के राजा गरुड़ चारों लोकपाल और ऋषियों के समूहों समेत देवतालोग जिसपर सदैव निवासकरते थे और सबका प्यारा उसको समझ कर सदैव वहां आया करते थे उसी पर्वतपर महात्मा विष्णुजी ने भी पुत्र की इच्छा से तप को किया था और उसी शैलपर बाल्यावस्था में स्वामिकार्त्तिकजी ने देवताओं को अपने आधीन किया और तीनों लोकों का अपमान करके शक्ति को पृथ्वीपर फेंका फिर संसार को तुच्छ करके स्वामिकार्त्तिकजी ने यह वचन कहा कि जो कोई दूसरा मुझ से अधिक है और वेदपाठी ब्राह्मण जिसको अधिकप्यारे हैं अथवा कोई अन्य भी जो ब्राह्मणों का माननेवाला है और तीनोंलोकों में पराक्रमी है वह इस शक्ति को उठावे अथवा हिलाही दे यह वचन सुनकर सबलोक पीड्यमानहुए कि कौन इसको उठावे तदनन्तर भगवान् विष्णुजी ने सब देवताओं के समूह को भ्रान्तचित्त और अस्वस्थ व्याकुलता में प्रवृत्त और असुर राक्षसों से तिरस्कृत देख के यह विचार किया कि इसस्थानपर कौन सा काम उत्तम होगा, ऐसा विचार अप्रतिष्ठा को न सह कर उसअग्नि के पुत्र स्वामिकार्त्तिक के समक्ष में जाके उस प्रज्वलित शक्ति को अच्छेप्रकार से पकड़कर बायेंहाथ से ही हिलाया तब महाबली विष्णु के शक्ति हिलाते ही उस शक्ति के साथ वन पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांपनेलगी जब वह शक्ति ऐसे धारण करने में सामर्थ विष्णुजी ने केवल हिलाही मात्रदी और स्कन्द के अपमान को न किया अर्थात् भगवान् ने इसको हिलाकर प्रह्लाद से यह वचन कहा कि कुमार के पराक्रम को देखो इसपराक्रम को दूसरा नहीं करसक्ता है इस वचन को न सहकर प्रह्लाद ने शक्ति के उठाने का निश्चय करके उस शक्ति को पकड़कर हिलाना चाहा परंतु उससे नहीं हिली तब तो वह महाशब्द करके पर्वत के शिखरपर मूर्च्छावान् होकर अति व्याकुलता से पृथ्वी पर गिरा और फिर शैलराज के उत्तर दिशा की ओर शिवजी ने जाकर हिमालय में सदैव तपस्या को किया उनका आश्रम अग्नि के समान देदीप्त है, उस पर्वत पर एक सूर्य्यनाम पर्वत है जो अशुद्ध अन्तःकरणवालों से महाकठिन और दुर्धर्ष है वहां यक्षराक्षस दानव नहीं जासक्के उसका विस्तार दश योजन है और अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त है वहां भगवान् अग्निदेवता आप विराजमान रहते हैं हज़ार दिव्यवर्षतक एकचरण से खड़ेहोकर महाप्रतापी अग्नि देवता श्रीमहादेवजी के अनेकविघ्नों को शान्त करते हुए वर्त्तमान हुए वहां

महाव्रतधारी शिवजी ने देवताओं को अच्छेप्रकार से संतप्तकिया और उस पर्वत की पूर्वदिशा में पहाड़ के किनारे में बड़े एकान्त स्थानपर बैठेहुए पराशरजी के पुत्र महातपस्वी व्यासजी ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाया उनके नाम महाभाग, महाज्ञानी, तपस्वी, सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनि और पैल थे, जिस स्थानपर शिष्यों के मध्य वर्त्तमान व्यासजी थे उस पिता के उत्तम क्रीड़ा के योग्य आश्रम को शुकदेवजी ने देखा, जो कि अरणी के पुत्र शुकदेवजी अत्यन्त शुद्ध आत्मा और आकाश के सूर्य्य के समान तेजस्वी थे इसकारण व्यासजीने अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी और सूर्य्य के समान प्रकाशमान देश पर्वत वृक्षादि को प्रकाशित करते और सब से स्पर्श योगयुक्त महात्मा रूप धनुप से निकलेहुए वाण की समान आतेहुए पुत्र को देखा, उस अरणी के पुत्र महामुनि शुकदेवजी ने सन्मुख में आकर पिता के चरणों को स्पर्श करके दण्डवत् की और उन अपने पिता के शिष्यों से भी मिले फिर राजा जनक से जो २ वृत्तान्त हुआ था वह सब अपने पिता से प्रसन्नतापूर्वक सत्य २ वर्णन किया इसप्रकार से पराशरजी के पुत्र व्यासमुनि ने अपने पुत्र और शिष्यों को वेद पढ़ाया और हिमालय के पृष्ठपर निवास किया एकसमय वेदपाठी शान्तचित्त जितेन्द्रिय शिष्यों को चारोंओर बैठाकर व्यासजी पढ़ाते थे तब वह महातपस्वी शिष्यलोग अंगोंसमेत वेदों में निष्ठा को पाकर हाथ जोड़ के गुरु से बोले कि, हे गुरुदेव ! बड़े तेजस्वी यशस्वी और वृद्धि पायेहुए हम सब अब आप से एकअनुग्रह करवाना चाहते हैं उनके इसवचन को सुनकर ब्रह्मर्षि व्यासजी ने उनसे कहा कि हे पुत्रो ! तुम उस बातको अवश्यकहो जो मेरे करने के योग्य है, हे राजन् ! गुरु के इस वचन को सुनकर शिष्यों ने फिर हाथजोड़ शिर से गुरु को प्रणाम करके यह उत्तम वचनकहा कि हे महाराज, गुरुदेवजी ! जो आप हम सबपर प्रसन्न हैं ऐसीदशा में हमलोग धन्य हैं और यह वरदान आप से चाहते हैं कि आप का छठवां शिष्य संसार में कीर्त्ति को न पावै इस विषयमें आप प्रसन्न हूजिये, हम आप के चार शिष्य हैं और गुरुपुत्र शुकदेवजी पांचवें हैं यही इसलोक में वेद की प्रतिष्ठा पावें यही हम वरदान चाहते हैं, शिष्यों के वचन को सुनकर वेदार्थ और सिद्धान्तों समेत परलोक के अर्थ को जाननेवाले धर्मात्मा बुद्धिमान् व्यासजी ने शिष्यों से यह धर्मरूप कल्याणमय वचन कहा कि जैसे ब्राह्मण को वेद होता है उसीप्रकार सेवा करनेवाले के लिये सदैव धन आदि पदार्थ देना चाहिये, जो पुरुप ब्रह्मलोक में अचल स्थान को चाहता है यह उस का काम है आप सबलोग वृद्धि पायेहुए हो और यह वेद बहुत विस्तार को पावे, यह हमारा आशीर्वाद है जो शिष्य नहीं है वा व्रत रहित है अथवा अशुद्ध अन्तःकरण है उसको कभी न देना चाहिये शिष्यों के

यह सब गुण अर्थ समेत जानने के योग्य हैं, जिसके व्रत और चालचलन आदि की परीक्षा नहीं ली है उसको किसी दशा में भी यह विद्या देना योग्य नहीं है, जैसे कि शुद्ध सुवर्ण की परीक्षा गरम करके काटने और खींचने से करते हैं उसीप्रकार शिष्यों की परीक्षा कुलीनपन के गुण आदि से करनी चाहिये, और अपने शिष्यों को ऐसे स्थानपर तुम को आज्ञा नहीं करनी चाहिये जो कि आज्ञा के विपरीत और भय का करनेवाला हो, जैसी बुद्धि होती है वैसा ही पढ़ना होता है इसीप्रकार जैसे को वैसा ही फल विद्या भी देगी, सब अगम्य स्थानों को सुगमकरो और सब कल्याणों को देखो ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को सुनावे यही वेद का पढ़ना है और महाकर्म है इसलोक में ब्रह्माजी ने देवताओं की स्तुति के लिये वेदों को उत्पन्न किया है जो मनुष्य भूल से वेदपाठी ब्राह्मण से कठोरतापूर्वक दुर्वचन कहता है वह उस ब्राह्मण के शाप से निस्सन्देह नाश होजाता है और जो ब्राह्मण को अधर्म्म से उत्तर देता है या अधर्म्म सेही प्रश्न करता है वह भी नष्ट होजाता है अथवा जो कोई वेदपाठी से विरोध करता है वह भी भ्रष्ट होजाता है यह सब वेद की विधि तुम से वर्णन की और तुम शिष्यों का उपकार करो यही बुद्धि तुम्हारे चित्त में सदैव नियत हो ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेद्विपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

एकसौतिरपनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, इस परस्पर वार्त्तालाप के पीछे व्यासजी के शिष्य जो बड़े तपस्वी तेजस्वी और प्रसन्नचित्त थे वह सब व्यासजी के इन वचनों को सुनकर परस्पर में एकएक से स्नेहपूर्वक मिले, भगवान् गुरुजी ने जो उपदेश किया वह वर्त्तमान और भविष्यत्काल में हमारा हितकारी है वह उपदेश हमारे चित्त में नियतहुआ हम सब उसको उसीप्रकार से करेंगे, फिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त और वार्त्तालाप में प्रवीण उन शिष्यों ने परस्पर में इसप्रकार कहकर फिर गुरुजी को जतलाया कि हे महामुने, प्रभो ! हम वेदों को बहुतप्रकार का करने को पृथ्वी पर जाना चाहते हैं इस में क्या आपकी आज्ञा है तदनन्तर व्यासजी ने शिष्यों के वचनों को सुनकर धर्म्म अर्थसंयुक्त हितकारी वचनों को कहा, कि जो तुम को इच्छा है तो पृथ्वीपर या स्वर्ग में जहां चाहो वहां जावो परन्तु तुम को सावधान करना उचित है क्योंकि वेदविहित तर्कणाओं से युक्त अनेक अर्थवाला है, तदनन्तर सत्यवक्ता गुरु से आज्ञा लेकर वह सब शिष्य व्यासजी की प्रदक्षिणा करके मस्तक को नवा २ दण्डवत्कर चलेगये, और पृथ्वी पर उतरकर उन शिष्यों ने चातुर्होत्र मन्त्रों को वेद से विचारकिया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों को पूजन करातेहुए उन्हीं द्विज-

न्यात्रों से अन्य भी पूजित होकर आनन्द से गृह में प्रीतिमान् हो यज्ञ कराने और पढ़ाने में प्रवृत्त होकर श्रीमान् और कीर्त्तिमान् जगत् में विख्यात हुए, पर्व्वत से शिष्यों के जाने के पीछे पुत्र को साथलिये बुद्धिमान् श्रीव्यासदेवजी मौनतापूर्व्वक ध्यान में प्रवृत्त होकर एकान्त में विराजमान हुए, तब महा-तपस्वी नारदजी ने व्यासजी को आश्रमरूपी स्थान में देखकर समय के अनु-सार बड़ी मृदुतापूर्व्वक उनसे यह वचन कहा कि हे वशिष्ठगोत्रिन्! विना वेदघोष के आप एकान्त में मौन होकर ध्यानावस्थित अकेले चिन्तायुक्त क्यों बैठे हो विना वेद होने से यह पर्व्वत ऐसे शोभायमान नहीं लगता है जैसे कि आकाश धूल अन्धकार और राहु से ग्रसाहुआ शोभा नहीं देता है, देव ऋषियों के समूहों से व्याप्त होकर भी विना वेदों के यह पर्व्वत पूर्व्व के समान नहीं शोभित होता है ऐसा विदित होता है जैसा कि निषादों का स्थान हो बड़े तेजस्वी ऋषि देवता गन्धर्व भी वेदरूप धन से रहित होकर शोभित नहीं मालूम होते हैं, व्यासजी ने नारदजी के वचनों को सुनकर उत्तरदिया कि हे वेदविदांवर! जो आप कहते हैं यह मेरे मन की बात है क्योंकि आप सर्वज्ञ और वेदज्ञ होकर सर्वत्र उत्तम बातों के देखनेवाले हो तीनोंलोकों का वृत्तान्त आपकी मति में नियत है सो हे ब्रह्मर्षे! आप आज्ञा कीजिये कि आप का क्या शिष्टाचारकरूं जो मेरे योग्य है यहां शिष्यों से पृथक् होकर मेराचित्त अप्रसन्न है, नारदजी बोले कि अभ्यास न करना वेद का मल है, व्रत न करना ब्राह्मण का मल है और वाहीका जातिवाले मनुष्य पृथ्वी का मल हैं और उत्तम २ पदार्थों के देखने की उत्कण्ठाहोना स्त्रियों का मल है, आप अपने पुत्रसमेत वेदरूप धन के द्वारा राक्षसादि के भयरूप अन्धकार को निवृत्त करतेहुए वेदों को पढ़ो, भीष्मजी बोले कि उत्तमधर्मज्ञ वेदाभ्यास में दृढ़व्रतधारी व्यासजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजी से कहा कि ऐसाही हो, तदनन्तर अपनेपुत्र शुकदेवजीसमेत बड़े उच्चस्वरपूर्व्वक स्वर की रीतियुक्त वेदों के शब्दों से लोकों को पूरितकरके व्यासजी ने वेदों का अभ्यासकिया, उन दोनों महातेजस्वी पुरुषों के वेदघोष करतेही समुद्र को भी व्यथितकरनेवाला वायु महावेगयुक्त होकर चलनेलगा, तब व्यासजी ने पुत्र को वेद के पढ़ने से निषेधकिया फिर शुकदेवजी ने अपूर्वबातों के देखने की उत्कण्ठा से अपने पिता से निषेध का कारण पूछा और कहा कि हे ब्रह्मन्! यह वायु कहां से उत्पन्न हुआ आप इसका सब वृत्तान्त मूलसमेत वर्णन करने को योग्य हैं, व्यासजी ने शुकदेवजी के इस वचन को सुनकर बड़े आश्चर्य्यपूर्वक इस आंधी के विषय में यह वचन कहा कि तेरे दिव्यदृष्टि उत्पन्न हुई है और तेरा चित्त भी अति निर्मल है अर्थात् तमोगुण रजोगुण से रहित बुद्धि में नियत है, जैसे कि दर्पण में अपने प्रति-

बिम्ब को देखते हो उसीप्रकार बुद्धि से आत्मा को देखो और आपही वेदार्थों को खण्डन मण्डन की तर्कणाओं से सिद्ध करके बुद्धि सेही अच्छेप्रकार विचारकरो, सर्वव्यापी परमात्मा से सम्बन्ध रखनेवाला जो देवयान नाम मार्ग है उसमें विचरनेवाला अर्थात् सात्त्विक उपासकों के आवागमन रहित विष्णुलोक में पहुँचानेवाला वायु देवयानचर कहाजाता है और पितृयानसम्बन्धी वायु तामस कहाजाता है यह दोनोंवायु दोनों मार्गों को पाकर स्वर्ग और पाताल को जाते हैं, पिण्डरूप पृथ्वी और ब्रह्माण्डरूप अन्तरिक्ष में जहां २ वायु चलते हैं वह सब सात मार्ग हैं उनको क्रम से जानों, वहां पर महाबली साध्यनाम देवगण हैं उनका समाननाम पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ी कठिनता से विजय होता है, उसका पुत्र उदान हुआ उसकापुत्र व्यान व्यान का पुत्र अपान और उसी का दूसरा भाई प्राण भी है, शत्रुओं का संतप्त करनेवाला दुराधर्ष वह प्राणही है अर्थात् प्राण का दूसरा रूप नहीं है उनके पृथक् २ कर्म्मों को मूलसमेत कहता हूं वायु प्राणियों की चेष्टा को सब ओर से पृथक् २ वर्त्तमान करता है जीवों के जीवनमूल होने से उसका प्राण नाम है जो धूम से वा ऊष्मा से उत्पन्न होनेवाले बादलों के समूहों को इधर उधर करता है वह प्रवहनाम प्रथम वायु है वह प्रथम मार्ग में धूम और ऊष्मा से पैदा होनेवाले बादलों के समूहों को चलायमान करता है वही वायु वर्षाऋतु पाकर बिजलीरूप होकर महातेजस्वी होजाता है और गर्जना करताहुआ दूसरा वायु चलता है अथवा जो चन्द्रमा आदि प्रकाशमान पदार्थों को सदैव उदय करता है वह आवहनाम वायु कहाता है, ज्ञानी पुरुष जिसको देह के भीतर आदान वा अपान कहते हैं और जो चारों समुद्र से जल को उठाता है और जो जल को उठाकर आकाश में लेजाकर जीमूतनाम बादलों के सुपुर्द करता है और जो जीमूतों को जल में मिलाकर पर्जन्यनाम बादलों को सुपुर्द करता है वह तीसरा उद्वहनाम बड़ावायु है, जिससे खिंचेहुए एकस्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाये हुए बादल पृथक् २ होते हैं और जिन्हों ने वर्षा के लिये कर्म को प्रारम्भ किया है वह घन नाम जल से भरेहुए और अघननाम विना जल के बादल हैं, जिस वायु से मिले हुए बादल पृथक् २ होजाते हैं इसीकारण उन गर्जनेवालों के नाम नद होते हैं और रक्षा के निमित्त प्रकट होनेवाले जल से रहित बादल भी मेघहीं नाम से प्रसिद्ध बोले जाते हैं अर्थात् रस से रहित फल के समान नाश को नहीं पाते हैं, जो वायु जीवों के विमानों को आकाशमार्ग होकर चलाता है वह पर्व्वतों का तोड़नेवाला चौथा वायु संवहनाम से बोलाजाता है, वृक्ष वा पर्वतों को तोड़नेवाले रूखे वेगवान् वायुसे खण्डित होनेवाले मेघ जिस वायु के साथी होते हैं उसको बलाहक कहते हैं अर्थात् जो दूसरे के बल या

टक्कर से चलते हैं वह वलाहक कहाते हैं, संसार का नाश सूचन करनेवाले धूम्रकेतु संवर्त्तनाम मेघादिक जो उत्पात हैं और जिससे उन्हों की चेष्टा होती है वह आकाश का स्तनयित्नुनाम बड़ा शीघ्रगामी पांचवां वायु विवहनाम कहाता है, जिस वायु में दिव्य और पारिप्लवनाम मेघ आकाश मार्ग होकर चलते हैं और जो आकाशगंगा के पवित्र जल को आकाश में नियत करके आप स्थिरहोता है और जिसमें दूरसे टक्कर खाकर एकज्योतिवाला सूर्य्यहज़ारों किरणों का उत्पत्तिस्थान होता है और उस सूर्य्य से पृथ्वी प्रकाशमान होती है और जिससे कलारहित चन्द्रमा पूर्णमण्डल और वृद्धियुक्त होता है वह प्रवह नाम छठवां वायु कहाता है जो वायु कल्प के अन्त में सब प्राणियों के प्राणों को खींचता है और मृत्यु वा यमराज दोनों उसके पीछे चलते हैं अर्थात् वह इन दोनों का भी चलानेवाला है, हे वेदान्त विचारकरनेवाले ! तुम वाह्या-भ्यन्तरीय विषयों से रहित बुद्धि के द्वारा अच्छीरीति से साक्षात्कारकरो, और जो वायु उन पुरुषों की मोक्ष के लिये कल्पना किया जाता है जो ध्यान और अभ्यास में क्रीड़ाकरनेवाले हैं, दक्षप्रजापति के दशहज़ार पुत्रों ने भी उसी को पाकर बड़े वेग से ब्रह्माण्ड के अन्त को पाया है—अब सातवें वायु को कहता हूं—जिसवायु से संपर्क होनेवाला ब्रह्मरूप योगी जाता है और फिर लौट कर नहीं आता है वह दुःख से उल्लंघन होनेवाला सबसे परे परावहनाम वायु है, यह अखण्ड चैतन्यजन्य अर्थात् उसी के रूपभेद सबमें वर्त्तमान सबको धारण करनेवाले अपूर्व वायु नियतहोते हैं और चलते हैं, यह बड़ा आश्चर्य्य है जो यह उत्तमपर्वत अकस्मात् उस कठोर वेगवाले वायु से कम्पायमान हुआ, हे तात ! जब सर्वव्यापी परमात्मा के वेग से चलायमान उनका श्वास रूप यह वेद अकस्मात् उच्चस्वर से पढ़ाजाताहै तब यह जगत् पीड्यमान होता है इस हेतु से कि मूलपुरुष के श्वास की वायु अकस्मात् ऊंचेस्वर से उत्पन्न होकर मत कहीं सब संसार का नाशही करदे, इसीकारण से ब्रह्मज्ञानी पुरुष वायु के कठोर और वेगयुक्त चलने पर वेदों को नहीं पढ़ते हैं क्योंकि वायु से वायु कोही भयहोना कहागया और वह जगत्रूप या वेदरूप ब्रह्म भी पीड़ित होता है तब यह वचन कहकर और अपने पुत्र को पढ़ने की आज्ञा देकर व्यासजी आकाशगंगा को गये ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्रिपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

एकसौ चौवन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, व्यासजी के जातेही स्थान के भीतर एकान्त स्थान में नियत वेदपाठ में तदाकार शुकदेवजी के पास जब नारदजी आये तब शुकदेव

जी ने सन्मुख आयेहुए देवर्षि नारदजी को देखकर वेद के अर्थों के पूछने की इच्छा से अर्घ्यपाद्यपूर्वक वेदोक्त बुद्धिसे उनका पूजन किया, फिर प्रसन्न चित्त होकर नारदजी बोले कि, हे धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ, पुत्र! मैं प्रसन्न होकर तुम्हारा कौन सा कल्याणकरूं भीष्मजी बोले हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! नारदजी के इस वचन को सुनकर शुकदेवजी ने उत्तर दिया कि इससंसार में जो महत् हो अर्थात् बड़ा हो उसी से मुझ को मिलाओ, नारदजी बोले कि पूर्वसमय में भगवान् सनत्कुमारजी ने शुद्ध अन्तःकरण और तत्त्वाभिलाषी ऋषियों से यह वचन कहा कि विद्या के समान आंख नहीं है त्याग के समान सुख नहीं, पापकर्म्म से पृथक् उत्तम प्रकृति श्रेष्ठवृत्ति और सदाचार यह महाकल्याण हैं, जो दुःखरूप मनुष्य शरीर को पाकर उसमें प्रवृत्त चित्त होता है वह मोह को प्राप्तहोता है और दुःख से नहीं छूटसक्ता है क्योंकि संसार में लगनाही दुःख का मूल है, संसार में प्रवृत्तचित्त मनुष्य की बुद्धि मोहजाल की बढ़ानेवाली चलायमान होती है मोहजाल में फँसाहुआ जीव इसलोक और परलोक दोनों में दुःख को भोगता है कल्याण चाहनेवाले मनुष्य अनेक युक्तियों के द्वारा काम क्रोधादि के जीतने के योग्य हैं क्योंकि वह दोनों कल्याण के नाश के लिये सदैव तैयार रहते हैं, सदैव क्रोध से तप की रक्षाकरे और आलस्य से लक्ष्मीजी की रक्षा करे और प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा से विद्या की और प्रमाद से आत्मा की रक्षाकरे, दयाधर्महीं उत्तम है शान्त होनाही बड़ा पराक्रम है और ज्ञानों में आत्मज्ञान श्रेष्ठ है और सत्य से बड़ाधर्म कोई नहीं है, सत्य बोलना कल्याणरूप है और सत्य से भी वह उत्तम है जो हितकारी बात कहे इस निमित्त जीवों का जो प्रियवचन या प्राप्तहोनेवाला हित है वह सत्यताही जानो, जो सम्पूर्ण प्रारम्भ कर्मों का त्याग करनेवाला इच्छा और परिग्रह से रहित है और जिसने सर्वस्व त्याग भी किया है वही ज्ञानी और महापण्डित है, जो पुरुष आत्मा के वशीभूत इन्द्रियों से विषयादिकों को भोगते हैं उन में वह पुरुष श्रेष्ठ है जो उन विषयादि में चित्त न लगाकर रूपान्तर दशा से रहित सावधान होता है उन आत्मारूप इन्द्रियों के साथ अथवा उनसे पृथक् भी उनसे सम्बन्ध नहीरखता है वह विमुक्त पुरुष शीघ्र ही कल्याणपद को पाता है, हे मुने! सदैव जीवधारियों में जिसको दृष्टि स्पर्श और वचन सम्बन्ध नहीं है वह भी परमकल्याण का भागी है कभी किसीजीव मात्र को न मारे और देवयानमार्ग में वर्त्तमान होकर विचरे इस जन्म को पाकर किसी के साथ शत्रुता न करे कुछ पास न रखना सन्तोषयुक्त चपलता रहितहोना भी महाकल्याणकारी है जो कि मन को जीतकर आत्मज्ञानी हैं और स्त्री आदि परिग्रह को अत्यन्त त्यागकर जितेन्द्रिय और दुर्व्यसनों से रहित अशोकस्थान में नियत हैं और जो संसारी विषयों से पृथक् हैं वह शोच कभी

नहीं करते हैं, जो इन विषयों को त्यागेगा वह दुःखरूप तीनों तापों से छूटेगा सदैव तप करनेवाले जितेन्द्रिय सदैव अजय को विजय करने के इच्छावान् संगों से असंगीमुनि को मोक्ष का अधिकारी होना उचित है, गुणों के संगों में प्रवृत्त न होनेवाला सदैव एकान्त विचार करनेवाला ब्राह्मण थोड़े ही समय में असादृश्य सुख को पाता है, जो एकाकी मुनि उन जीवधारियों में घूमता है जो कि सुख दुःखादि योगों में प्रवृत्त हैं उसको विज्ञान से तृप्त जानो क्योंकि ज्ञान से तृप्त पुरुष शोच नहीं करता है, उत्तम कर्म्मों से देवभाव को पाता है और दोनों अच्छे बुरे कर्म्मों से मनुष्य योनि को पाता है और बुरे कर्म्मों से महानीचयोनियों में जन्म को पाता है और जरामृत्यु और अनेक दुःखों से वारंवार पीड़ित कियाहुआ संसार में पकायाजाता है उसको तुम कैसे नहीं जानते हो, यद्यपि अमंगल में मंगलबुद्धि और चल में अचल अनर्थ में अर्थबुद्धि भी हो तो भी आप किस निमित्त सावधान नहीं होते हो, अपने मोह के कारण देहजन्य अनेक जालों से और बन्धनों से बँधेहुए आपे को कैसे नहीं जानते हो और रेशम के कीड़े के समान अपने को आपही बन्ध में करते हुए भी नहीं जानते इसलोक में स्त्री आदि के परिग्रह से तृप्ति हो वह परिग्रह निश्चयकरके दोषयुक्त है वह रेशम का कीड़ा परिग्रह से ही माराजाता है, पुत्र स्त्री और कुटुम्ब में आसक्तचित्त मनुष्य बड़ीपीड़ा पाते हैं उनकी वैसीही दशा है जैसी कि वृद्ध जंगली हाथी कीच के तालाब में फँसकर फिर नहीं निकल सक्ता है, प्रीतिरूपी रस्सी से खैंचेहुए बड़े दुःखी जीवों को देखो वह ऐसी दशा में होते हैं जैसे बड़ी रस्सियों के जाल में फँसीहुई मछलियां सूखे स्थल में धरी हों, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब और अपना संचित आदि अनेक संसारी पदार्थ सब नाशवान् हैं केवल पुण्यपाप के सिवाय अपना यहां कुछ भी नहीं है, जब सब को त्यागकरके तुझ असहाय को चलना है तो फिर क्यों अनर्थ में फँसता है और अपने मोक्षरूप अर्थ का अभ्यास नहीं करता है, तुम अकेले ही उस अन्धकार वन के मार्ग में कैसे जाओगे वह वन निवासस्थान और रक्षास्थान मार्ग के भोजन और आबादी से रहित है, तुझ यात्रा करनेवाले के पीछे तेरे पापपुण्य के सिवाय कोई भी नहीं जायगा, विद्या, कर्म्म, शौच और बड़ाज्ञान यही केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिये अभ्यास कियेजाते हैं और सिद्धअर्थ अर्थात् मुक्तपुरुष उनसे छूटजाता है, वह रस्सी वारंवार बांधनेवाली है जो कि बहुतों में मनुष्य की प्रीति होती है उस रस्सी को शुभकर्म्मी मनुष्य काटकर जाते हैं और पापी इसको काट नहीं सक्ते हैं, जिसमें रूप किनारा है, मन प्रवाह, स्पर्श द्वीप, भाव रस, गन्ध कीच, और शब्द जल है और स्वर्ग के मार्ग में अगम्यरूप है अर्थात् स्वर्गमार्ग को रोकनेवाली है, शान्ति नौकाचलाने का दण्ड है और

धर्म्म में नियत रहना नाव खींचने की रस्सी है त्याग वायु है ऐसी नौका के द्वारा वह नदी तरने के योग्य है उस मार्गरूप मार्ग में वर्त्तमान तीक्ष्ण वेगवाली नदी को पार होना चाहिये, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य, मिथ्या और जिसबुद्धि से सत्य मिथ्या करते हो उस बुद्धि को त्यागकरो, संकल्प न करने से धर्म्म को और अनिच्छा से अधर्म्म को त्यागकरो और दोनों सत्य मिथ्या को बुद्धि से त्याग करो और परमात्मा के निश्चय से बुद्धि को भी त्यागो, जिसमें कमर की हड्डियां रूप खम्भा नाड़ीरूप रस्सियों से बँधाहुआ मांस रुधिर से लिपा देह के चर्म से मढा दुर्गन्ध मूत्रपुरीष आदि से भराहुआ बुढ़ापे और शोक से जीर्णरोग का घर रजोगुण से आतुर है ऐसे भूतावास को अर्थात् देह के निवासस्थान को त्यागकरो यह विश्व और विश्व के सिवाय भी जो कुछ है सब पञ्चतत्त्वरूप है और जो देह से भी महत् है वह बुद्धिपञ्चइन्द्रिय पञ्चप्राण तीनोंगुणों का समूह यह सत्रह वस्तुओं का ढेर अव्यक्तनाम कहाता है, यहां सब इन्द्रियों के शब्दादि पञ्च विषय और दो विषय मनबुद्धि के गुप्तप्रकटनाम युक्त यह व्यक्त अव्यक्तरूप गुणबीस प्रकार का बोलाजाता है, इनसब से युक्तहोनेवाले को पुरुष कहते हैं धर्म्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग और सुख, दुःख, जीवन, मरण इनसब को जो पुरुष मूलसमेत जानता है वह उत्पत्ति लय के स्थानरूप ब्रह्म को जानता है ज्ञानियों का जो कुछ सार पदार्थ है वह क्रम से जानना योग्य है, इन्द्रियों से जो जो वस्तु लीजाती हैं उनका नाम व्यक्त है और जो इन्द्रियों के घेरे से बाहर हैं और कारणरूप देह से पकड़ने के योग्य हैं वह अव्यक्त कहीजाती हैं यही मर्यादा है इन्द्रियों से सावधान वह जीवात्मा धाराओं के समान तृप्त होता है जो कि लोक में फैले हुए आत्मा को और आत्मा में फैलेहुए लोकों को देखता है, सदैव सब दशा में जीवों को और सगुण निर्गुण ब्रह्म को देखनेवाले पुरुष की ज्ञानमूल शक्ति नाश नहीं होती है, ब्रह्मरूप ज्ञानी का योग पापकर्म्मों से प्राप्त नहीं होता है मोह से उत्पन्न अनेकप्रकार के क्लेशों को ज्ञान से उल्लंघन करता है, लोक में प्रकाशरूप बुद्धि से लोक का मार्ग नाश नहीं होता है, मोक्ष की युक्ति जानने वाले परमेश्वर ने आत्मा में नियत जीव का आदि अन्तरहित न्यूनता से जुदा अकर्त्तारूप वर्णन किया है जो जीव अपने २ कियेहुए उन कर्म्मों से सदैव दुःखी हैं वह दुःख के नाश के अर्थ जीवों को अनेकप्रकारसे मारते हैं फिर जीव दूसरे नवीन अनेक कर्म्मों को प्राप्त करता है, और उन्हीं कर्म्मों से ऐसे दुःख पाता है जैसे कि रोगी अपथ्य वस्तु को खाकर पीड़ित होता है वारंवार मोह से अन्धा होकर दुःखों में सुख मानता है और सदैव मथन के समान बांधा और मथाजाता है फिर वह बँधाहुआ जीव अपने कर्म्मों की मुख्य योनि को प्रकट करता है और अत्यन्त पीड़ित होकर संसार में घूमता है सो तुम बन्धन से और

कर्मों से जुदे होकर सर्वज्ञ सर्वजित् सिद्धरूप और संसार के भावों से रहित हो-
कर तप के बल से दृष्टिदोष से भी उत्पन्न हुए नवीन बन्धन को पृथक् करके
सुख को उदय करनेवाली बाधारहित सिद्धि को अच्छेप्रकार से प्राप्तकरो ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचतुष्पञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

एकसौपचपन का अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, शोक के नाश के लिये शोकरहित शान्ति उत्पन्न करने वाले आनन्दरूप शास्त्र को सुनकर बुद्धि को पाता है और उसको पाकर सुख से वृद्धि पाता है, शोक भय के हजारों स्थान प्रतिदिन अज्ञानी में प्रवेश करते हैं परिडत में कभी नहीं प्रवेश करते, इसकारण अप्रिय के नाश के निमित्त मैं एक इतिहास को कहता हूं जो बुद्धि स्वाधीनता में नियत होती है तो शोक का नाशहोता है, अप्रिय के मेल से और प्रिय के वियोग से अत्यन्त निर्बुद्धि मनुष्य मानसी दुःखों से संयुक्त होते हैं, धन आदि के व्यय होजाने पर जो उस धन आदि के गुणों को नहीं चिन्तवन करते हैं उनकी प्रतिष्ठा करनेवाले मनुष्य की प्रीतिरूप फांसी पृथक् नहींहोती है अर्थात् उसमें फँसाही रहता है, जिसमें प्रीति उत्पन्न होती है उसका अपूर्व दृष्ट होवे और जब अप्रियता से देह को दुःखित जानता है तभी वैराग्य को प्राप्त होता है, जो गतवात को शोचता है वह न अर्थ है न धर्म्म है और न यश है जिसका अर्थ नाशहोजाता है वह फिरकर नहीं आता है सब जीवमात्र जैसे कि गुणों से मिलते हैं वैसेही जुदे भी होते हैं यह शोक का स्थल केवल एकजीवधारी काही नहीं है, किन्तु सबका है जो पुरुष भूतकाल के मृतक को अथवा नाश प्राप्त होनेवाले को शोचता है वह दुःख से दुःख को पाता है अर्थात् दुःखशोक दोनों अनर्थों को प्राप्त करता है, जो पुरुष लोकों में सन्तान आदि को देखकर बुद्धि के द्वारा अश्रुपात नहीं करता है उस ब्रह्मदर्शन करनेवाले को अश्रुपात करनेवाला कर्म्म प्राप्त नहीं होता है, देह और मन के दुःखों का रोग सन्मुख वर्त्तमान होनेपर जिसमें कि कोई उपाय नहीं करसक्का है उसमें चिन्ता भी न करे, दुःख की औषधि यही है जो इसको नहीं शोचे शोचाहुआ दूरनहीं होता है किन्तु और भी वृद्धि पाता है, बुद्धि के द्वारा चित्त के दुःख को और औषधि से देह के दुःख को निवृत्तकरे यह विज्ञान की सामर्थ्य है बालकरूप अज्ञानियों से बराबरी न करे, युवावस्था, रूप, जीवन धन का ढेर, नीरोगता, मित्रों के साथ निवास, इत्यादि सब वस्तु सदैव नहीं रहती हैं इस हेतु से इन वस्तुओं में बुद्धिमान् परिडतलोग लोभ न करें, अकेला आप सम्पूर्ण प्रदेश का शोचकरने को योग्य नहीं है शोच न करताहुआ रोग के स्थानों को देखकर उनकी चिकित्सा करे, जीवन में निस्संदेह सुख से भी अधिक दुःख

हैं इन्द्रियों के विषयों में जो प्रीतिकरना है वही मोह से अप्रियकारी मृत्यु है, जो मनुष्य दोनों सुखदुःखों को चारोंओर से त्याग करता है वह अनन्त ब्रह्म को पाता है और पण्डितलोग उसको नहीं शोचते हैं धन आदि अर्थों का त्याग करते हैं इसहेतु से जो दुःखरूप हैं वह विना पालन करने से सुखरूप होजाते हैं और जो दुःख से प्राप्तहोते हैं उनके नाश को नहीं शोचते हैं कोई २ धन की मुख्यदशा को पाकर तृप्त न होनेवाले पुरुष नाश को पाते हैं, इसीकारण पण्डित लोग सन्तोष को धारणकरते हैं, सब धनआदि के समूह अन्त में नाशवान् हैं और वृद्धिप्राप्त करनेवाले अन्त में गिरनेवाले हैं सब मिलनेवाले अन्त को वियोगी होनेवाले हैं जीवन अन्त में मृत्यु रखनेवाला है, लोभ का अन्त नहीं है सन्तुष्टता में बड़ा आनन्द है इससे पण्डितलोग संतोषरूपी धन को सर्वोत्तम समझते हैं, सदैव जातीहुई अवस्था अपने नाशवान् देहों में एक पलक भी नियत नहीं रहती है इस निमित्त शोच क्यों करना चाहिये, जो पुरुष मोक्षमार्ग में वर्त्तमान हैं वह बुद्धि के द्वारा चित्त से भी परे भाव को विचारकर परमगति को देखके शोच नहीं करते हैं, इन धन संचय करनेवाले और मनोरथों से अतृप्त मनुष्यों को मृत्यु ऐसे लेकर जाती है जैसे कि पशु को व्याघ्र लेजाताहै, तो भी बुद्धिमान् पुरुष दुःख के दूरहोने का उपाय विचार से अवश्यकरे और शोचरहित होकर उपाय को विचार करे और जीवन्मुक्त होकर काम क्रोधादिक के दोषों से पृथक् होजाय, धनी वा निर्धन को शब्दादि विषयों में उपभोग से अधिक कुछ नहीं है, विषयों के योग से पहला दुःख जीवों का निवासस्थान नहीं है विषयों के वियोग से ही सबको दुःख उत्पन्न होता है इसलिये मुख्यदशा में नियत होकर शोच नहीं करे, शिश्नेन्द्रिय और उदर को धैर्य्य से रक्षाकरे, हाथ पैरों की रक्षा नेत्रों से करे और आंख कान की रक्षा मन के द्वारा करे और मनवाणी की रक्षा विद्या के द्वारा करे, निन्दास्तुति में अनिच्छा और प्रीति को दूर करके जो बन्धन से पृथक् होकर विचरे वही सुखी है और पण्डित है, जो ब्रह्मविद्या में प्रीति करनेवाला ज्ञानी अनिच्छा से एक स्थानपर नियत विषयों से जुदाहोकर केवल आत्माहीको अपना साथी बनाकर विचरता है वही महासुखी होता है ॥३०॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपञ्चपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

एकसौछप्पन का अध्याय ॥

नारदजी बोले कि, जब सुख दुःख का विपर्य्यास सन्मुख वर्त्तमान होता है तब उसकी रक्षा बुद्धि से नहीं होती है और अच्छेप्रकार से प्राप्त होनेवाले उपाय भी रक्षा नहीं करसक्ते हैं, स्वभाव से उपाय में नियत होवे क्योंकि उपाय करनेवाला दुःखी नहीं होता है अपने प्यारे आत्मा को जरामृत्यु और अनेक

रोगों से छुटावे, देह और मन के रोग देहों को ऐसे पीड़ादेते हैं जैसे अच्छे बलवान् के धनुष से छोड़ेहुए तीक्ष्णबाण भेदन करते हैं, लोभों से पीड़ित जीवन की इच्छाकरनेवाले परतन्त्र प्राणी का शरीर नाश के निमित्त आकर्षण कियाजाता है यह दिन और रात्रि जीवों की आयुर्दाय को लेकर बराबर व्यतीत होतेचले जाते हैं और लौटकर फिर इसप्रकार नहीं आते हैं जैसे कि नदियों का प्रवाह फिर नहीं लौटता, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष का यह बड़ा आवागमन जन्मधारी जीवों को वृद्ध करदेता है और एक पलकमात्र को भी स्थिर नहीं होता है यह जरारहित सूर्य्य वारंवार उदय और अस्त होता है और जीवों के सुख दुःखोंको निर्बल करता है, यह रात्रि भी मनुष्यों की उन प्रिय अप्रिय वस्तुओं को लेकर समाप्त होजाती हैं जिनको कि पूर्व में न देखा था न किसी ओर से उनके आने की शंका थी, यह इच्छा से जो चाहे तो उनमें से उसको तभी प्राप्तकरे जब कि पुरुष का कर्म्मफल दूसरे के आधीन न होवे परन्तु जितेन्द्रिय बुद्धिमान् सावधान सन्तलोग सब कर्म्मों से पृथक् अर्थात् कर्म्मफल के विना दृष्टआते हैं और कितने ही गुणों से रहित आशीर्वाद न पानेवाले नीचपुरुष अज्ञानी भी मनोरथ पानेवाले दिखाई देते हैं, जीवधारियों में कितने ही मनुष्य सदैव हिंसा और लोक के ठगने में उपस्थित हैं वह सुखों में ही वृद्ध होते हैं, किसी २ निकम्मे बैठेहुए मनुष्य के पास भी लक्ष्मी निवासकरती है और कोई २ कर्म्मप्रवृत्त मनुष्य प्राप्तहोने के योग्य वस्तु को भी नहीं पाता है, पुरुष के अपराध को कहता हूं स्वभाव से ही वीर्य्य दूसरे स्थान में उत्पन्न हुआ और दूसरेही में फिर भी जाता है, उस योनि में संयुक्त वीर्य्य का गर्भ उत्पन्न होता है अथवा नहीं भी उत्पन्न होता है उसका होना खपुष्प के समान पायाजाता है पुत्र की इच्छाकरनेवाले और पिछलीसंतान चाहनेवाले, सिद्धि में उपायकरनेवाले कितनेही पुरुषों का वीर्य्यरूप बीज नहीं उपजता है जैसेकि क्रोधभरेहुए महाविषवाले सर्प से भयहोता है इसीप्रकार गर्भ से भयभीत मनुष्यों का पुत्र भी बड़ी अवस्थावाला उत्पन्न होता है मानों मरकर जीता है, देवताओं को पूजकर तपस्या करके पुत्र की इच्छावाले पुरुष दुःखों से दश महीनेतक गर्भ मे रक्खेहुए कुलीनपुत्र को भी दोषलगानेवाले होते हैं, उन्हीं मंगलोंसे प्राप्तहोनेवाले अन्यपुत्र पिता के संचितकियेहुए धनधान्य और बड़े २ उत्तम भोगों के भोगने के लिये उत्पन्न होते हैं, परस्पर में अच्छी रीति से सलाह करके स्त्री पुरुष के भोग में योनि के द्वारा गर्भ ऐसे प्राप्तहोता है जैसे कि देह में प्रवेश करनेवाला उपद्रव प्रकट होता है, शीघ्रही दूसरे शरीरको प्राप्त करते हैं अर्थात् स्वर्ग नरक का वीर्यरूप सूक्ष्मदेह जिसका नाशवान् हुआ और मांस रुधिर रखनेवाले देह से जिसकी चेष्टा है उस शरीरवाले प्राणी को देह के त्यागने

के समय दूसरा देह प्राप्तहोता है, मरने के समय दूसरी देह में भस्म और नाश पानेवाले जीवको देखकर विपरीतदशासे क्षणमात्र मेंही नाशहोनेवाला दूसरा देह कर्म्म सम्बन्धसे ऐसे उत्पन्नहोता है जैसे कि नौकामें रक्खी हुई नौका होती है, स्त्री पुरुष के संभोग से उत्पन्न वीर्य जो कि चैतन्य नहीं है पेट में रक्खागया है उस गर्भ को किस उपाय से तुम सजीव करते हो और जीवता देखते हो, जिस उदर में भोजन की वस्तु के समान वह गर्भ क्यों नहीं परिपाक होता है गर्भ में मूत्र विष्ठा आदि की गति स्वाभाविक है उनके धारण करने वा त्याग करने में स्वतन्त्र भी कर्त्ता वर्त्तमान नहीं है, उदर से गर्भ गिर भी पड़ते हैं इसीप्रकार बहुत से कर्म्म भी उत्पन्न होकर नाश होजाते हैं और ग्रह, भूत, पिशाचादि के प्रवेशसे अनेक गर्भों का नाश होता है इसीकारण जो पुरुष योनिसम्बन्ध से वीर्य को छोड़ता है वह किसीप्रकार की सन्तानको पाताहै और फिर सुख दुःख आदि योगों में संयुक्त होता है, गर्भ का निवास, जन्म, बाल्यावस्था, कौमारअवस्था जो कि पांचवर्ष तक रहती है और पौगण्ड अवस्था जो दश वर्षतक होती हैं तरुण वृद्ध और जरावस्था, प्राणरोधावस्था, नाश यह दशअवस्था हैं उस अनादि प्रवाह से बँधीहुई देहकी सातवीं वृद्धावस्था और नवीं प्राणरोधावस्थाओं को पञ्चतत्त्व प्राप्तकरते हैं आत्मा नहीं करता है तदनन्तर वह दशवीं नाश दशा को प्राप्तहोते हैं, उपाय करने में मनुष्यों की सामर्थ्य निस्सन्देह नहीं होती है जब कि वह अनेकरोगों से ऐसे व्यथित कियेजाते हैं जैसे शिकारियों से मृग पीड़ित कियेजाते हैं, उपाय और चिकित्सा करनेवाले वैद्यादि लोग अपनी अनेक औषधियों से और अनेक रीति से धन के व्ययकरवाने से भी उनके रोगों को दूर नहीं करसक्के हैं और चिकित्सा करनेवाले भी जब तंग होजाते हैं तब अनेक प्रकार के कडुवे कषैलेकाढ़े और फुकेहुए दिव्य रसों को खिलाते हैं फिर भी वृद्धावस्थासे ऐसे जीर्णशरीर दिखाई देते हैं जैसे कि बड़े २ हाथियों के तोड़े हुए वृक्ष निस्सत्त्व होजाते हैं, पृथ्वीपर रोगों से पीड़ित पशु पक्षी और व्याघ्रादि बिचारे जीवोंकी कौन चिकित्सा करता है इसीहेतु ईश्वर की कृपा से वह बहुधा रोगी नहीं होते हैं महाउग्र तेजस्वी राजाओं को भी रोग दबाकर अपने आधीन करते हैं जैसे कि पशुओं के समूह अन्यपशुओं के समूहों को, यह लोक पीड़ा करके व्याकुल मोह शोकसे व्याप्त और आकस्मिक महावेगवाले प्रवाहसे घिरा हुआ चेष्टाकरता है, जो अपने दिव्य शरीरपर स्वाधीन है वह धन राज्य और उग्रतप के द्वारा स्वभाव को उल्लंघन नहीं करते हैं, उद्योग सफल होने पर न मृत्यु पाते हैं न वृद्ध होते हैं न अशुभ को देखते हैं किन्तु सब मनोरथों के सिद्धकरनेवाले होते हैं, सब मनुष्य संसार से ऊपर २ जानाचाहते हैं और सामर्थ्य के अनुसार उद्योग भी करते हैं परन्तु वह ईश्वर उसरीति से वर्त्तमान

नहीं होता है, सावधान, शूरवीर, पराक्रमी, मनुष्य शठता को त्यागकर ऐसे लोगों को प्राप्तहोते हैं जो कि अपने रजोगुण में मद्यपान से उन्मत्त हैं, कितने ही मनुष्यों के अदृष्टक्लेश दूर होजाते हैं और कितनोंही को अपना भी धन प्राप्त नहीं होता है, कर्म्मफल की इच्छाकरनेवाले मनुष्यों में फलों का बहुत सा अन्तर दीखता है कोई पालकी को लेचलते हैं कोई पालकी में सवार होते हैं, वृद्धि चाहनेवाले सब मनुष्यों के रथ के आगे भी कोई मनुष्य होते हैं, सैकड़ों मनुष्य तो विवाहिता स्त्रियों के रखनेवाले हैं कितनेही सुख दुःखादि योगों में क्रीड़ायुक्त नानाप्रकार की स्त्रियों का संग करते हैं तुम इस दूसरे पद को देखो इसमें मोह को नहीं करो, धर्म्माधर्म्म को त्यागकर सत्यमिथ्या से रहित होकर जिस बुद्धि के द्वारा उनको छोड़ता है उसको भी त्यागकरो, हे ऋषियों में श्रेष्ठ, शुकदेवजी! यह बड़ी गुप्त वार्त्ता मैंने तुम से कही इसके द्वारा देवता मर्त्य लोक को त्यागकर स्वर्गलोक को गये हैं, नारदजी के इनवचनों को सुनकर बड़े धैर्यवान् बुद्धिमान् शुकदेवजी मन से अच्छे प्रकार विचार कर दृढ़निश्चय को न पाकर जाना कि स्त्री पुत्रादि से बड़ी उपाधि में फँसता है और विद्या के अभ्यास अथवा उपदेश में बड़ा परिश्रम होता है इससे थोड़े परिश्रम में बड़े उदयवाला सनातन स्थान कौन है, यह विचारकर सगुण निर्गुण के जाननेवाले शुकदेवजी ने एकमुहूर्त्ततक अपनी निश्चय की हुई और मोक्षधर्म में उत्तम कल्याण करनेवाली गति को अच्छी रीति से विचारा कि मैं किसप्रकार से सब उपाधियों से छूटकर उत्तम गति को पाऊं जिससे कि इस योनिसंकट समुद्र में फिर न वर्त्तमान हूं, मैं उस परम ब्रह्मभाव को चाहता हूं जिसमें आवागमन नहीं होता है इससे सबप्रकार के स्नेहों को त्यागकर मन से गति को निश्चय करनेवाला, मैं वहां जाऊंगा जिसमें मेरा आत्मा शान्ति को पावेगा और जिस में अविनाशी न्यूनाधिकता रहित सनातन ब्रह्मरूप नियत होगा, वह उत्तम गति योग के विना प्राप्त नहीं होसक्की कर्मों से ज्ञानी को बन्धन नहीं होता है, इसीकारण योग में अच्छेप्रकार से नियत होकर और स्थानरूप देह को त्याग वायु के रूप से इस प्रकाश पुञ्ज सूर्य्य में प्रवेश करूंगा क्योंकि इसका नाश नहीं है जैसे कि असुरगणों से कम्पायमान होकर चन्द्रमा पृथ्वीपर गिरता है और फिर चढ़ता है अर्थात् सदैव नष्टता को पाता है और फिर पूर्णकला होता है मैं इस वृद्धि क्षय को वारंवार जानकर नहीं चाहता हूं, अविनाशी मण्डलवाला सूर्य्य अपनी प्रत्यक्ष पवित्र कलाओं से लोकों को अच्छीरीति से संतप्तकरता है और सब ओर से तेज को खींचता है इसकारण प्रकाशमान तेजवाले सूर्य्य में जाना मुझ को अभीष्ट है, दुर्धर्ष मैं निश्शंक अन्तःकरण से वासकरूंगा मैं सूर्य्यलोक में इसकारण नाम देह को त्यागूंगा, और ऋषियों के साथ बड़े असह्यसूर्य्य के

अन्तर्यामी तेज में प्राप्त हूंगा, मैं वृक्ष सर्प पर्वत पृथ्वी और दशोंदिशाओं को पूछता हूं, और दानव, देवता, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस आदि से भी पूछता हूं कि मैं संसार के जितने प्राणी हैं उनसब में निस्सन्देह प्रवेशकरूंगा, सब देवता ऋषियों के साथ मेरे योग्य बल को देखो तदनन्तर उसअपूर्व प्रसिद्ध अनुपम नारद ऋषि से पूछकर और उनकी आज्ञा लेकर पिताजी के पासगये वहां जाकर शुकदेवजी ने अपने पिता व्यासजी को दण्डवत् और प्रदक्षिणा करके पूछा तब महात्मा व्यासजी ने शुकदेवजी के उस वचन को सुनकर कहा कि, हे पुत्र! तुम तबतक निवासकरो जबतक कि मैं तेरे निमित्त चक्षुओं को तृप्तकरूं तब शुकदेवजी ने इच्छा, प्रीति, सन्देह इत्यादि से पृथक् होकर मोक्ष को ही विचारकर चलने के लिये मनकिया और अपने पिता को त्यागकर कैलास के उस ऊंचे शिखरपर गये जहां सिद्धलोगों के समूह वर्त्तमान थे॥६४॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेषट्पञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः॥ १५६॥

एकसौसत्तावन का अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, हे भरतवंशिन्! उनव्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने पर्वत के शिखरपर चढ़कर तृणादि से रहित एकान्तस्थल की समभूमि में विराजमान होकर योग के क्रम को जाननेवाले शास्त्रबुद्धि के अनुसार चरण से लेकर शिखापर्यन्त सब अंगों में आत्मा को धारणकिया, तदनन्तर सूर्य्य के शीघ्रउदय होनेपर वह ज्ञानी शुकदेवजी पूर्वमुख होकर उस स्थानपर अपने हाथ पैरों को छातीपर इकट्ठे करके बड़ीनम्रता से सूर्य्य के सन्मुख बैठगये, जिस स्थान में न पक्षियों का समूह न किसी प्रकार का शब्द न संसारी जीवों का बहुधा दर्शन था ऐसे स्थानपर बुद्धिमान् शुकदेवजी ने योगक्रिया को प्रारम्भकिया, जब आत्माको सब संगों से असंग देखा तब शुकदेवजी ने उस परमात्मा को मोक्ष मार्ग की प्राप्ति के निमित्त योगारूढ़ महायोगेश्वर होकर आकाश को उल्लंघन किया, फिर देवऋषि नारदजी को प्रदक्षिण करके उस अपने योग को महर्षि से प्रकट किया, शुकदेवजी बोले कि हे तपोधन! मैंने मार्ग देखलिया मैं उसी में प्रवृत्त हूं आपका कल्याण हो हे महातेजस्विन्! आप के अनुग्रह से मैं वांछित गति को प्राप्त हूंगा, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी उनसे दण्डवत् पूर्वक आज्ञा लेकर फिर योग में नियत होकर आकाश में पहुँचे और अन्तरिक्षचारी योग के ज्ञाता शुकदेवमुनि वायुरूप होके कैलास के ऊपर से उछलकर स्वर्ग को उड़े उससमय ऊपर की ओर चलनेवाले शुकदेवजी को सबजीवों ने गरुड़ के समान तेजस्वी और मन वायु के समान शीघ्रगामी देखा फिर बड़ेमार्ग के अंगीकार करनेवाले और सूर्य्य के समान प्रकाशमान उस मुनि ने पूरे निश्चय

से तीनों लोकों को ध्यानकिया, सब स्थावर जंगम जीवों ने उस एकाग्रमन और सावधान निर्भय होकर जानेवाले को देखकर सामर्थ्य और न्याय के अनुसार पूजन किया और देवताओं ने दिव्य पुष्पमालाओं की वर्षा से उनको व्याप्त किया और सब गन्धर्व और अप्सराओं के गण उनको देखकर आश्चर्यित हुए और बड़े २ शुद्ध ऋषियों ने भी बड़ा अचंभा किया कि इस कौन से अन्तरिक्षचारी ने तप से सिद्धि को पाया, सूर्य की ओर देखने से जिसका नीचे को शरीर और ऊंचे को मुख है और नेत्रों से प्रीति को प्रकट करता है, तदनन्तर तीनोंलोकों में प्रसिद्ध वह बड़े धर्मात्मा शुकदेवजी सूर्यदेवता को देखतेहुए पूर्वाभिमुख होकर सुन्दर वाणी को बोले और अपने शब्द से संपूर्ण आकाश को पूर्ण करतेहुए चले, हे राजन्! सब अप्सराओं के समूह उस आकस्मिक आते हुए ऋषि को देखकर महाआश्चर्ययुक्त मन से अचंभा करनेलगे जो कि अत्यन्त सुन्दर नेत्रवाली पञ्चचूड़ा नाम आदि अप्सरा थीं वह परस्पर में कहनेलगीं कि यह उत्तमगति में नियत कौन सा देवता है जो अच्छा निश्चय करनेवाले इच्छारहित विमुक्त पुरुष के समान यहां आता है तदनन्तर उस मलयाचलनाम पर्वत को अच्छे प्रकार से उल्लंघन किया जहांपर कि उर्वशी और पूर्वचित्तीनाम अप्सरा सदैव निवास करती हैं, वह सब भी उस महर्षि के पुत्र को देखकर आश्चर्ययुक्त हुईं कि इस वेदाभ्यास में प्रीति करनेवाले ब्राह्मण में ऐसी बुद्धि की एकाग्रता है, कि थोड़ेही समय में चन्द्रमा के समान आकाश में चलता है इसने अपने पिता कीही सेवा से उत्तम बुद्धि को पाया है यह पितृभक्त दृढ़ तपस्वी अपने पिता का प्यारापुत्र है पुत्र के सिवाय दूसरे में चित्त न लगानेवाले उस पिता ने इसको कैसे यहां को बिदा किया है, परम धर्म्म के जाननेवाले शुकदेवजीने उस उर्वशीके वचन को सुनकर वचन में चित्त लगाकर सब दिशाओं को देखा और पहाड़, वन, विपिनों समेत पृथ्वी को और अनेक सरोवर समेत नदी और अन्तरिक्ष को देखा, तदनन्तर चारों ओर से हाथ जोड़ेहुए सब देवताओं ने बड़ी प्रतिष्ठा से युक्त उन शुकदेवजी को देखा, तब परमधर्मज्ञ शुकदेवजी ने उनसे यह वचन कहा कि जो पिताजी मुझ को अरे शुक! इस वचन से पुकारतेहुए मेरे पीछे चलेआवें तो तुम सब उनको मेरी ओर से सावधानी से उत्तरदेना इस मेरी प्रार्थना को आप सबलोग प्रतिपालन कीजिये, शुकदेवजी के इस वचन को सुनकर सब समुद्र, वन, नदी आदि समेत दिशाओंने उत्तर दिया कि हे वेदपाठिन् ब्राह्मण! जैसी तुम आज्ञा करते हो वह अंगीकार है इसीप्रकार होगा जब ऋषि आवेंगे तो उत्तरदिया जायगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्तपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

एकसौअट्ठावन का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेवजी इसप्रकार के वचन को कहकर और चारों प्रकार के दोषों से जुदे हो बुद्धि में प्रवेश करतेहुए, पाठान्तर से शुकदेवजी ने सिद्धि में प्रविष्टहोकर, आठप्रकार के तमोगुण और पांच प्रकार के विषयों को त्यागकर फिर सत्त्वगुण वा बुद्धि को भी त्याग किया यह आश्चर्य सा हुआ, तदनन्तर निर्धूम अग्नि के समान देदीप्यमान वह ऋषि उस सूर्य्य के अन्तर्य्यामी आवागमन रहित लय के स्थान निर्गुण निराकार ब्रह्म में नियत हुए अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्तहुए, उस समय उल्कापात और दिग्दाह होकर पृथ्वी कंपायमान हुई यह भी महाआश्चर्य सा होता हुआ (महापुरुषों के लयादिक होनेपर संसार की प्रारब्ध हीनतासूचक अनेक उत्पात होते हैं,) वृक्षों से शाखा और पर्वतों से शिखर गिरे और निर्घातशब्दों से हिमालय पर्वत भी फटगया और सहस्रांशु सूर्य्य देवता भी प्रकाशित नहीं हुए और अग्नि ने प्रकाश त्यागकरदिया और नदी समुद्रादि सब व्याकुल हुए, इन्द्र ने स्वादु सुगन्धियुक्त जल की वर्षा को किया और दिव्य सुगन्धयुक्त पवित्र वायु भी चलनेलगी, हे भरतवंशिन् ! फिर उसने उत्तरदिशा में नियत होकर दो महासुन्दर शिखरों को देखा वह दोनों शिखर मेरुपर्वत के दिव्य प्रकाशवान् और तुषार से श्वेतरूप ऐसे दिखाई देते थे मानों चांदी और सुवर्ण के ढेर हैं विस्तार में सौ योजन और उँचाई में तीनयोजन थे, उसके समीप निश्शंक-चित्त होकर शुकदेवजी जो दौड़े तो उनके दो खण्ड अकस्मात् होगये यह भी आश्चर्य्य साही हुआ फिर शुकदेवजी उनशिखरों से अकस्मात् बाहर निकले उस उत्तम पहाड़ ने भी इनकी गति को नहीं रोका इसकारण स्वर्ग में देवताओं का बड़ा शब्दहुआ और ऋषि गन्धर्व आदि जो पर्वतपर रहते थे उन्हों ने भी महाशब्द किया और पहाड़ उल्लंघन करनेवाले शुकदेवजी को और दो फांक होनेवाले पर्वत के शिखरों को देखकर वहां सबस्थानों पर धन्य २ यह शब्द हुआ और देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और विद्याधरों के गणोंने भी उनका यथोचित पूजनकिया और उनके ऊपर दिव्यपुष्पों की वर्षाहुई फिर ऊपर को चलकर शुकदेवजी ने मन्दाकिनी गंगा को देखा जिसका तट सुगन्धित और प्रफुल्लित वृक्षों से व्याप्त क्रीड़ा के योग्य स्थान था और उस गंगा में अप्सराओं के गण क्रीड़ापूर्व्वक नग्न हो हो कर स्नान कररहे थे वह नग्न शरीर वाली अप्सरा शुकदेवजी को ब्रह्मरूप देखकर उसीप्रकार नग्न शरीरही वर्त्तमानरहीं हृदय से प्रीति और स्नेहयुक्त पिता व्यासजी उस मोक्षमार्ग में चलनेवाले को जानकर, और उत्तम गति में नियत होकर उन के पीछे २ चले तब

शुकदेवजी वायु से ऊपर अन्तरिक्ष की चाल को और अपने प्रभाव को दिखाकर ब्रह्मरूप हुए और महातपस्वी व्यासजी ने दूसरी महायोग गति में उपाय करनेवाले होकर पलभर मेंही उनके मार्ग में पहुँचकर शिखर के दो टुकड़े करनेवाले शुकदेवजी को देखा और वहां के सब ऋषियों ने शुकदेवजी के उस कर्म को वर्णन किया तदनन्तर व्यास पिता ने बड़े उच्चस्वर से तीनों लोकों को व्याप्त करके हे शुक ! इस वचन को ऊंचेस्वर से कहा, तब धर्मात्मा शुकदेवजी ने सर्वव्यापी सर्वात्मा सर्वतोमुख होकर हे पितः ! इस गर्जनापूर्व्वक शब्द से उत्तरदिया तिस पीछे 'भो' इस एकाक्षरवाले शब्द के द्वारा सब दिशाओं से अशेष जड़ चैतन्य जीवों ने उत्तरदिया तब से लेकर अबतक पृथक् २ कहेहुए शब्दों को गुफा और पहाड़ों के ऊपर शुकदेवजी के विषय में कहते हैं फिर शुकदेवजी ने प्रभाव को दिखाकर अन्तर्द्धान होकर, शब्दादि गुणों को त्याग करके परमपद को भी पाया उस महातपस्वी पुत्र की उस अपूर्व्व महिमा को देखकर पुत्र के शोच में व्यासजी पर्व्वत के शिखरपरही बैठगये तदनन्तर मन्दाकिनी नाम आकाशगंगा के तटपर क्रीड़ा करनेवाले अप्सराओं के गण उन व्यासजी को देखकर भ्रान्तियुक्त हो ऐसी लज्जायुक्त हुईं कि कोई तो जल में छिपीं कोई गुल्मों में गुप्तहुईं और कितनीहीं अप्सराओं ने उन व्यासजी को देखकर वस्त्रों से अपने शरीरों को आच्छादनकिया तब मुनिअपने पुत्रके मुक्तभाव को जानकर और अपने में आत्मा के बन्धन को समझकर प्रसन्न होके लज्जितहुए, उससमय देवगन्धर्व और बड़े २ महर्षियों समेत हाथ में पिनाक धनुष धारण किये भगवान् शिवजी उन व्यासजी के सन्मुख आये, और उस पुत्रशोक से व्याकुल व्यासजी को ढाढ़स और विश्वास कराके यह वचन बोले कि पूर्व्वसमय में पञ्चतत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाश केवलकी समान पुत्र तुम ने मुझ से मांगा था इस हेतु से वह उसीप्रकार का पुत्र उत्पन्न हुआ और तुम्हारी तपस्या से पोषित हुआ और मेरी कृपा से वह पवित्र और ब्रह्मतेजरूप हुआ, उसने उस उत्तमगति को पाया जो अजितेन्द्रियों से प्राप्त होनी कठिन है हे ब्रह्मर्षे ! वह गति देवताओं से भी प्राप्तहोनी असंभव है तुम उसको क्या शोचते हो, जबतक पर्व्वत समुद्रादि नियत हैं तबतक तेरी और तेरे पुत्र की कीर्त्ति अचल रहैगी, हे महामुने ! तुम इसलोक में मेरी कृपा से सदैव अपने पुत्र की समान सबओर से सन्मुख वर्त्तमान छाया को देखोगे, हे युधिष्ठिर ! आप भगवान् शिवजी के समझायेहुए वह व्यासजी छाया को देखतेहुए बड़ीप्रसन्नता से लौटआये, हे राजन् ! यह मैंने शुकदेवजी का जन्म और मोक्ष ब्योरेसमेत तुम से वर्णनकिया, हे पुत्र ! पूर्व्वसमय में देवर्षि नारदजी और महायोगी व्यासजी ने हरएक स्थान की कथा में इस वृत्तान्त को मुझ से कहा,

जो पुरुष बाह्याभ्यन्तर से शान्त होकर इस मोक्षधर्म से भरी महापवित्र कथा को सुनेगा वह मोक्षरूप परमगति को पावेगा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेऽष्टपञ्चाशदुपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

एकसाउनसठ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी इत्यादि में से जो कोई सिद्धि में नियत होना चाहे वह किस देवता का पूजनकरे और आवागमन रहित ब्रह्मलोक किसकी कृपा से प्राप्तहोता है और किससे मोक्ष प्राप्त होती है और किस बुद्धि से देवता पितृसम्बन्धी हवन श्राद्धादि को करे, और मुक्तपुरुष किस गति को पाता है और मोक्ष का क्या स्वरूप है और स्वर्ग में प्राप्तहोकर क्या २ करे जिसके द्वारा स्वर्ग से नहीं गिरे देवताओं का भी देवता कौन है इसीप्रकार पितरों का पितर भी कौन सा है और देवता आदि के स्वामी से जो श्रेष्ठतर है इनसब को आप मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि हे निष्पाप, प्रश्नों के ज्ञाता! तुम यह बड़ा प्रश्न मुझ से पूछते हो इसप्रश्न के उत्तर को मैं सैकड़ों वर्ष में भी देवता की कृपा और ज्ञानप्राप्ति के विना तर्कणाओं के द्वारा कहने को समर्थ नहीं होसक्ता हे शत्रुहन्तः, युधिष्ठिर! यह कठिनता से बुद्धि में आने योग्य आख्यान तुझ से कहने के योग्य है, इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें नारदजी और श्रीनारायण ऋषि का प्रश्नोत्तर है, वह नारायणजी विश्व के आत्मा चतुर्मूर्त्तिधारी सनातन धर्मराज के पुत्र हुए अर्थात् वासुदेवजी से संकर्षणनाम जीव उत्पन्नहुआ जीव से प्रद्युम्ननाम चित्त हुआ चित्त से अनिरुद्ध नाम अहंकार प्रकट हुआ यही चार मूर्त्ति हैं, हे महाराज! पहले स्वायंभुव मन्वन्तर के सतयुग में स्वतःसिद्ध होनेवाले नर नारायण हरिकृष्ण नाम चाररूप प्रकटहुए उन सब में आदि अन्त न रखनेवाले नर नारायणजीने बदरिकाश्रम को पाकर मोह उत्पन्न करने से सुवर्णरूप और शकट के समान अन्य से चेष्टा पानेवाले शरीर में तपस्याकरी वह सवारीरूप देह आठ प्रकार की अविद्यारूप आठ पहिये रखनेवाला पञ्चतत्त्वयुक्त मन को क्रीड़ा करानेवाला है अर्थात् मायारूप है वहां वह दोनों लोकनाथ महाकृशाङ्ग नाड़ियों से व्याप्त अपने तप के तेज के द्वारा देवताओं से कठिनता से देखने में आते थे, जिसपर प्रसन्न होते थे वही देवता दर्शन के योग्य होता था उनदोनों की इच्छा से और हृदय में वर्त्तमान अन्तर्य्यामी की प्रेरणा से सर्वज्ञ सर्वदर्शी नारदजी महामेरु पर्व्वत के शिखर से गन्धमादन पहाड़पर आये और सबलोकों में घूमे, हे राजन्! शीघ्रगामी नारदजी घूमते हुए उस बदरीवनमें उन दोनों नर नारायण की संध्या के समय पहुँचे और दर्शन न होने का नारद को बड़ा शोक और पश्चात्ताप हुआ और कहने

लगे कि यह वह उत्तम अधिष्ठान है जिसमें देव, गन्धर्व, दैत्य, दानवादिक सब जीवयुक्त लोक नियत हैं, प्रथम यह एकही मूर्त्ति थी फिर धर्म की कुलसन्तान में चार प्रकार से प्रकटहुए और धर्मादिक से वृद्धियुक्त हुए, बड़ा आश्चर्य है कि अब यहां धर्म नर नारायण कृष्ण हरि इन चारों देवताओं से कृपा कियागया है इनमें से कृष्ण और हरि किसी कारण से धर्म के उत्तममाननेवाले हुए और इसीप्रकार यह दोनों नर नारायणजी तप में प्रवृत्तहुए, यह दोनों उत्तम तेजवान् यशस्वी सबजीवों के स्वामी पिता और देवता हैं इनदोनों को संध्या आदि क्रिया का करना क्या आवश्यक है, बड़े बुद्धिमान् यह दोनों किस इच्छा से किस देवता और पितर का पूजन करते हैं ऐसा मन में विचारकर नारदजी नारायण की भक्ति से अकस्मात् उन दोनों के सन्मुख वर्त्तमान हुए तब देवकर्म पितृकर्म समाप्त होनेपर उनदोनों ने नारदजी को देखा और शास्त्र की बुद्धि से इनका पूजनकिया इस आश्चर्य्य को देखकर परमप्रसन्न होकर नारदजी उनके समीप बैठगये और आनन्दपूर्व्वक श्रीनारायणजी का दर्शनकरके बड़े ईश्वर का ध्यानकर यह वचन बोले, कि पुराण उपपुराण और अंगोंसमेत चारों वेद तुम को अजन्मा वा सदैव वर्त्तमान अविनाशी सर्वपालक और सर्वोत्कृष्ट वर्णन करते हैं, यह सब संसार जो हुआ और है और होगा तुमहीं में नियत है हे देव ! चारों आश्रम के पुरुष आप को अनेकमूर्त्तियों में नियत करके पूजन करते हैं तुमही सब जगत् के पिता माता और सनातन गुरु हो ऐसे आप होकर किस देवता और पितर का पूजन करते हो यह हम नहीं जानते आप अनुग्रहपूर्व्वक समझाइये श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! यह कहने के अयोग्य बुद्धि में गुप्त करने के योग्य सनातन वार्त्ता तुमसरीके भक्तिमानों से कहना उचित है इस को यथातथ्य तुम से कहता हूं, जोकि सूक्ष्म कठिनता से दर्शन होनेवाला द्वैततारहित गुप्त और चेष्टा के विना अचल सनातन इन्द्रियों के विषय और तत्त्वों से भी पृथक् है, वही जीवों का अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है और तीनों गुणों से रहित पुरीरूप शरीरों में शयनकरनेवाला कल्पित हुआ, और हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! उसीपुरुष से तीनोंगुणों का रखनेवाला अव्यक्त वा व्यक्त उत्पन्न हुआ, वह अविनाशिनी शक्तिरूप प्रकृति है वही अव्यक्त वा व्यक्तभाव में नियत होती है, उसीको हम दोनों ईश्वरजीव का उत्पत्तिस्थान जानों और जो यह कार्य्य कारण का आत्मा है उसीको हम दोनों पूजते हैं और वही देव पितृ कर्म्मों में देवता और पितृरूप कल्पना कियाजाता है, उससे बड़ा कोई पिता देवता और ब्राह्मण नहीं है वह हमारा आत्मा जानने के योग्य है इसीहेतु से हम उसको पूजते हैं, हे ब्रह्मन् ! वही संसार की उत्पत्ति पालनरूप मर्य्यादा को स्थापित करता है और देवपितृसम्बन्धी कर्म सबको अवश्य करना चाहिये यह

भी उसीका उपदेश है, ब्रह्मा, शिव, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म्म, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्रमा, कर्दम और जो क्रोध विक्रीत नाम से इक्कीस प्रसिद्ध हैं वह प्रजापति कहे जाते हैं, जिस देवता की सनातन मर्य्यादा को पूजते हुए वह उत्तम ब्राह्मण उसके देवपितृकर्म्म को सदैव मुख्यता से जानकर आत्मा से प्राप्त भोगों को उसी से प्राप्तकरते हैं जो कोई पुरुष स्वर्ग में नियत हैं उनको भी शरीरधारी नमस्कार करते हैं परन्तु वह सब उसकी कृपा से उसके दिये हुए फलवाली गति को पाते हैं, जो पुरुष सत्रह गुणों से और कर्म्मों से रहित पन्द्रह कलाओं के त्यागनेवाले हैं वह निश्चय करके मुक्तरूप हैं, हे ब्रह्मन्! मुक्तलोगों की लयरूपा गति क्षेत्रज्ञ है वही चिदात्मा माया से सगुणरूप और वास्तव में निर्गुण कहाजाता है, वह योग और ज्ञान से दृष्ट आता है हमदोनों उसीसे प्रकट हुए ऐसे जानकर उस सनातन आत्मा को हम पूजते हैं सब वेद आश्रम और नानाप्रकार के मतों में नियत होकर मनुष्य भक्ति से उस आत्मा को अच्छीरीति से पूजते हैं और वह भी उनको शीघ्रही गति देता है जो पुरुष संसार में उससे मिलेहुए एक निश्चय में नियत हैं उनमें यही विशेषता है, कि इसमें प्रविष्ट होते हैं हे नारदजी! भक्ति और प्रेम से यह गुप्त उपदेश हम ने तुम से कहा और हे ब्रह्मर्षे! आपने भी बड़ी भक्ति से इसको सुना ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

एकसौसाठ का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे पुरुषश्रेष्ठ, युधिष्ठिर! इसप्रकार पुरुषोत्तम नारायणजी के समझायेहुए नारदजी ने लोकों का हितकारी प्रश्न फिर उन नारायणजी से पूछाकि अपने आप उत्पन्न होनेवाले आपने धर्म्मदेवता के घर में जिस प्रयोजन के लिये चाररूपों से अवतार लिया है उसको आप साधन कीजिये और मैं अब लोकों के हित के अर्थ आप की श्वेतद्वीप में वर्त्तमान प्रथममूर्त्ति के दर्शनों को जाऊंगा उसके दर्शन में मैं अपने अधिकार को वर्णन करता हूं कि एक तो मैं सदैव गुरु का पूजन करता हूं प्रथम मैंने किसीकी गुप्तवार्त्ता प्रकट नहीं की और सब वेद भी अच्छेप्रकार से पढ़े और मिथ्यारहित होकर तपस्या को भी किया, शास्त्र के अनुसार हाथ, पैर, उदर, शिश्न यह चारों मेरे रक्षित हैं और सदैव शत्रु मित्र को समान जानता हूं और सदैव उस आदिदेव ज्योतिस्वरूप की शरण में रहता हूं और सदैव अनन्य भक्तिभाव से पूजन आदि करता हूं, इन मुख्यगुणों से शुद्ध होकर भी मैं उस अनन्त ईश्वर को कैसे न देखूंगा सनातन धर्म्म की रक्षा करनेवाले नारायणजी ने अपनी बुद्धि और अनुग्रहों से नारदजी की पूजाकरके

यह वचन कहा कि अब पधारो यह सुनकर वह ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी उस पूर्ण ऋषि को पूज और उनसे विदा हो उत्तम योग में संयुक्त होकर आकाश को उछले और क्षण में मेरुपर्वत पर जापहुंचे और उसके शिखरपर एकान्त-स्थान को पाकर एक मुहूर्त्ततक विश्रामयुक्त हुए, फिर उत्तर पश्चिम के कोणों की ओर देखतेहुए नारदजी अद्भुतरूपवाले उस देश में पहुँचे जो कि क्षीरसमुद्र से उत्तर दिशा में श्वेतद्वीप नाम से प्रसिद्ध बड़ा विस्तारवान् द्वीप है, पण्डितों ने इसद्वीप को मेरु पहाड़ के मूल से बत्तीस हज़ार योजन ऊंचा कहा है वहांपर जो पुरुष रहते हैं वह इन्द्रियों से पृथक् शब्दादि भोगों से रहित चेष्टारहित सौ-गन्धिनाम परमात्मा का ध्यान करनेवाले शुद्ध सतोगुण प्रधान श्वेतरूप सर्व-पापरहित तेजस्वी होने से पापात्मा को दृष्ट न आनेवाले वज्र के समान अस्थि और शरीरवाले मानापमान रहित दिव्य अंगरूपयुक्त योग प्रभाव से उत्पन्न प-राक्रमी जिनके छत्र के समान शिर और बादल के समान शब्द शरीर में पतले और काठ के समान चारभुजाधारी अनेक रेखाओं समेत उत्तम चरण हैं और हे राजन्! छयासठ दाँतयुक्त संसार के भक्षण करने को वर्षों की व्यतीतता के समान समर्थ श्वेत आठ दाढ़वाले अर्थात् आठों दिशाओं के समान देश और काल को मुख में धारण करनेवाले विश्व को और महाकाल को अपनी रसना से चाटने-वाले हैं, कारण यह है कि जिससे सब सृष्टि उत्पन्न हुई और सब का ईश्वर है उस देवता को उन्होंने अपने ध्यान के बल से अपने हृदय में धारण किया है चारोंवेद और सब धर्म्म देवता ऋषि गन्धर्वादिक जिसने विना उपाय के उत्पन्न किये हैं युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! वह इन्द्रिय भोजन चेष्टा आदिसे रहित होकर सौगन्धिनाम परमात्मा को ध्यान में दर्शन करनेवाले पुरुष किसप्रकार से उत्पन्नहुए और कौन सी उनकी उत्तमगति है, हे भरतर्षभ! इसलोक में जो जीवन्मुक्त होते हैं उन लोगों का यह लक्षण है और वही श्वेतद्वीपनिवासी सगुण उपासकों का लक्षण है, इसीहेतु से इसमेरे संदेह को निवृत्तकरो क्योंकि मुझको अद्भुत बातों के देखने का बड़ा उत्साह है और आप सब कथाओं में कुशल हैं और आप की शरण हैं, भीष्मजी बोले कि मैंने यह बड़ी कथा पिता के सन्मुख सुनी थी वह तुझ से कहने के योग्य है क्योंकि वह सब कथाओं का सार है, कि उपरिचर नाम एकराजा संपूर्ण पृथ्वी का स्वामी हुआ वह नारायण हरि का भक्त और इन्द्र का सखा करके प्रसिद्ध था, वह धर्म्म और भक्ति में कुशल सदैव पिता की सेवा में सावधान था उसने पूर्वसमय में श्रीनारायणजी के वर से सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य को भोगा, और पञ्च रात्रनाम वैष्णवों की बुद्धि में नियत होकर प्रातःकाल सूर्य के मुख से प्रकटहोनेवाले देवेश का पूजन किया फिर उसपूजन से बचीहुई सामग्री से पितामहादिकों को तृप्त किया और पितरों

के शेष बचेहुए अन्न से ब्राह्मणों और आश्रितों को विभागदेकर शेषबचेहुए अन्न का भोजन करनेवाला सत्यता से न्यायकरने में प्रवृत्त जीवमात्र में हिंसा से रहित था, उसभक्त ने शुद्धमन से देवदेव दुष्टनिकन्दन आदि अन्तरहित अविनाशी सब के स्वामी भगवान् का पूजन किया, उसनारायण के भक्तदुष्टों के पीड़ा करनेवाले राजा को इन्द्र ने अपने हाथ से एक शय्यासन दिया, वा अपनाराज्य, धन, स्त्री सवारीआदि जो सामान सुख के हैं इनसब को नारायणही का है ऐसासंकल्प सदैव रखता था हे राजन् ! उस सावधान राजाने वैष्णव बुद्धि में नियत होकर यज्ञसम्बन्धी काम्य और नैमित्तिक उत्तमकर्म्मों को किया उस महात्मा के घरमें पञ्चरात्र शास्त्र के जानने वाले मुख्य ब्राह्मण उस प्रधान भोजन को खाते थे जो भगवत् का प्रसाद कहाजाता था, धर्म्म से उस शत्रुहन्ता राजा के आज्ञावर्त्तीलोग कभी मिथ्याभाषी नहींहुए और उसका चित्त भी कभी दोष युक्त नहीं हुआ, उसने अपने शरीर से थोड़ा भी पाप नहींकिया और जो वह सात ऋषि चित्रशिखण्डी नाम से प्रसिद्ध थे उन्होंने एकमत होकर जो उत्तम शास्त्र वर्णनकिया वह उस महामेरु पर्व्वतपर चारोंवेदों के समान लोक का उत्तम धर्म्मरूप सातमुखों से वर्णन हुआ उन ऋषियों के नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वशिष्ठजी यही सातों चित्रशिखण्डी कहाते हैं यह सब प्रकृति हैं और स्वायंभुवमनु आठवीं प्रकृति है यह लोक इन्हींसे धारणकिया जाता है और इन्हीं से शास्त्र उत्पन्न हुआ, उनएकमत जितेन्द्रिय संयम में प्रीतिमान् तीनोंकाल के जाननेवाले सत्यधर्म्म में नियत होकर मनुजी ने यह कल्याणरूप ब्रह्म है उत्तममत है इसप्रकार मन से लोकों को विचार कर फिर शास्त्र को बनाया, उस शास्त्र में धर्म्म, अर्थ, काम और सच्चीमोक्ष को भी वर्णनकिया और नानाप्रकार की वह मर्य्यादें जो स्वर्ग और पृथ्वीपर श्रेष्ठ गिनीजाती हैं उनको भी वर्णनकिया, वह सब ऋषियों के दिव्य सात हजार वर्षतक हरिनारायण को तपस्या से आराधन करके नियत हुए, तब नारायणजी की आज्ञा से देवी सरस्वतीजी लोकों के हित करने को उनऋषियों में प्रविष्ट हुई तदनन्तर प्रथम उत्पत्ति में उत्पन्न होनेवाली सरस्वती उन तपस्वी ब्राह्मणों के कारण से सिद्धार्थ और हेतुओं में अच्छेप्रकार से वर्त्तमान हुई, आदि में ऋषियों की ओर से प्राण व और स्वरयुक्त वह शास्त्र भगवान् विष्णुजी के स्थान में सुना गया, तदनन्तर षड़ैश्वर्य्य के स्वामी वर्णन से बाहर देह में वर्त्तमान दृष्टिसे गुप्त प्रसन्नमूर्त्ति परमेश्वर ने उन सब ऋषियों से यह वचन कहा कि तुम ने जो यह एकलाख उत्तम श्लोक बनाये जिससे कि सब लोक तन्त्र धर्म्म अर्थात संसार का धर्म्मप्रबन्ध जारीहोता है, और इसीसे यह शास्त्र प्रवृत्ति निवृत्तिमार्ग में ऋग, यजु, साम, अथर्वण इन चारों वेदों की ऋचाओं से सेवित वा संयुक्त

होगा, हे ब्राह्मणो! जिसप्रकार वह क्रोध से प्रकटहोनेवाले रुद्रदेवता ब्रह्म अनुग्रह से प्रमाण कियेगये हैं और तुम प्रकृतिरूप ब्राह्मण, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि सर्वनक्षत्रगण और भूतगण इत्यादि अपने २ अधिकारोंपर वर्त्तमान रहते हैं और जैसे वह सब ब्रह्मवादी प्रमाण हैं इसीप्रकार यह आप का उत्तम शास्त्र भी मेरे उपदेश से प्रमाण होगा आप स्वायंभुवमनुजी इस शास्त्र से धर्म्मों को कहेंगे, और जब शुक्र और बृहस्पतिजी उत्पन्नहोंगे तब वह भी तुम्हारे इस शास्त्र से धर्म्मों को कहेंगे, स्वायंभुवमनु के सब धर्म्म और शुक्र वा बृहस्पतिजी के बनाये हुए शास्त्र लोकों में जारीहोने पर राजा वसु तुम्हारे बनायेहुए शास्त्र को बृहस्पतिजी से पावेगा हे उत्तम ब्राह्मणलोगो! इसको यथार्थही जानो, और वह राजा साधुओं का सेवी मेराभक्त होगा वह उसशास्त्र से लोकों में सब क्रियाओं को करेगा, यह तुम्हारा शास्त्र सब शास्त्रों में उत्तम है और सब अर्थ धर्मादि युक्त श्रेष्ठ रहस्य है तुम इसके जारी करने से सन्तान युक्त होगे और महाराजा वसु लक्ष्मीवान् होगा, उस राजा के परमपद होनेपर यह सनातन शास्त्र गुप्त होजायगा यह सब वृत्तान्त मैंने तुम से कहा, वह अदृष्ट पुरुषोत्तम यह वचन कहकर और उन सब ऋषियों को विदा करके किसी दिशा को चलदिये, तदनन्तर सब लोकों का हित विचारनेवाले लोक के पितररूप ऋषियों ने उस धर्म्मों के उत्पत्तिस्थान सनातन शास्त्र को जारी किया, प्रथम कल्पित सतयुग में अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर अंग और उपनिषदों समेत शास्त्र को उसमें नियत करके, सबलोकों के धारण करनेवाले और अशेषसंसार को कर्म्मों में प्रवृत्तकरनेवाले तपनिष्ठ वह सब ऋषिलोग अपने अभीष्ट देश को गये॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १६०॥

एकसौइकसठ का अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, हे युधिष्ठिर! महाकल्प के अन्त में बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर सबदेवता उस देवताओं के पुरोहित बृहस्पतिजी के जन्म से बड़े प्रसन्नहुए, हे राजन्! बृहद्ब्रह्म महत्त्व जिसमें यह सब शब्दसंयुक्त हों उसके पूरे अर्थ के कहनेवाले इत्यादि गुणों से संयुक्त बृहस्पतिजी हुए और प्रथम उनका शिष्य राजा उपरिचरवसु होताभया उसने चित्रशिखण्डी नाम ऋषियों के बनाये हुए शास्त्र को गुरु से अच्छेप्रकार पढ़ा, उस महात्मा ने प्रथम तो दिव्य बुद्धि से पृथ्वी के जीवों का पालन ऐसा किया जैसाकि स्वर्ग का इन्द्र करता है फिर उस यशस्वी ने अश्वमेधनाम भारी यज्ञ किया उसमें उपाध्याय बृहस्पतिजी होतेहुए और प्रजापतिजी के तीन पुत्र एकत द्वित त्रितनाम

तीनों महर्षि यज्ञ में सदस्य हुए और धनुषाख्य, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, ताराड्य, शान्त, वेदशिरा, कपिल जो कि शालिहोत्र का पिता कहा जाता है, अद्य, कठ, तैत्तिरि, वैशंपायन के बड़े भाई करव, देवहोत्र यह सोलह महान् ऋषि भी उस यज्ञ में वर्त्तमान थे उसबृहत् यज्ञ में और सामान तो सब इकट्ठा हुआ परन्तु उसमें पशु का नाश नहीं हुआ इन सब सामग्रियों समेत वह राजा यज्ञशाला में नियत हुआ, जोकि हिंसारहित पवित्र अक्षुद्र निराकांक्षी कर्म में प्रशंसनीय था इस निमित्त यज्ञ में वन के फूल मूलों से विभाग विचार किये गये, तदनन्तर वह षड़ैश्वर्य्य का स्वामी देवताओं का देवता पुरातन पुरुषोत्तम ईश्वर इसपर प्रसन्न हुआ और अदृश्य होकर भी इसको साक्षात् दर्शन दिया और आप अपने पुरोडाश नाम भाग को सूंघकर लेलिया अर्थात् अश्वमेध यज्ञ से अपना भाग लेलिया, तदनन्तर क्रोधित होकर बृहस्पतिजी ने शुच नाम पात्र को उठाकर उससे आकाश को ताड़न करके बड़े अश्रुपातकर उस उपरिचर राजा से कहा कि मेरे सन्मुख से मेरे देखते हुए यह भाग उठायागया है इससे देवता से निस्सन्देह लेना योग्य है युधिष्ठिर बोले कि यहां उठाये हुए यज्ञभाग नेत्रों के आगे देवताओं ने अंगीकार किये परन्तु उस हरिने सब को दर्शन क्यों नहीं दिया, भीष्मजी बोले कि यह दशा देखकर उस महाराजा वसु ने और सब सदस्यों ने उस उठे हुए बृहस्पतिजी को बहुत प्रसन्न किया, भ्रान्तिरहित उनलोगों ने उनसे कहा कि आप को क्रोधकरना योग्य नहीं है सतयुग में यह धर्म्म नहीं है जो आप ने क्रोधकिया, हे बृहस्पतिजी ! यह देवता क्रोध से रहित है जिसका यह भाग उठायागया है वह देवता हम से और तुम से अदृष्ट है, जो इसकी प्रसन्नता करता है उसी को यह दर्शन देता है तदनन्तर एकत, द्वित, त्रित और चित्रशिखण्डी नाम ऋषियों ने यह कहा कि हम ब्रह्माजी के मानसी पुत्र कहाते हैं एकसमय हम अपने कल्याण के निमित्त उत्तरदिशा को गये और हजारों वर्षतक उत्तम तपस्या करके सावधानी से काष्ठ के समान एकचरण से खड़े रहे वह देश क्षीरसागर के तटपर सुमेरु पर्वत के उत्तर में है जहांपर कि हमने इस मनोरथ से उग्रतप किया था कि हम उस ज्योतिरूप वरदाता देवदेवश्रेष्ठ नारायण सनातनरूप को किसीप्रकार से देखें तदनन्तर इस व्रत की समाप्ति में अवभृथस्नान होनेपर आकाश से यह गंभीरवाणी हुई कि हे ब्राह्मणलोगो ! तुम ने शुद्ध अन्तरात्मा से अच्छा तप किया, तुम जानने की इच्छा करनेवाले भक्त हो उस प्रभु को कैसे देखोगे क्षीरसागर के उत्तर की ओर महाप्रकाशवान् श्वेतद्वीप है वहां नारायण को श्रेष्ठतम जाननेवाले चन्द्रमा के समान तेजस्वी एक में निश्चय भक्तिरखनेवाले मनुष्य हैं वह भक्तलोग पुरुषोत्तम को पूजते हैं,

वह इन्द्रियों से रहित भोजन और चेष्टा से रहित परमात्मा को ध्यान करनेवाले भक्त उस हज़ारों किरणयुक्त सनातन देवता में प्रवेश करते हैं वह श्वेतद्वीप निवासी पुरुष एक निश्चय रखनेवाले हैं हे मुनियो ! तुम वहीं जाओ उस स्थान में मेरा आत्मा प्रकाशवान् है, इस आकाशवाणी को सुनकर हम सब उस बताये हुए मार्ग के द्वारा उस देश में पहुँचे और उस के देखने की इच्छा की तब वह हम को दिखाई देकर गुप्त होगया उसके तेज से नेत्रों की ज्योति नष्ट होजाने से हम सब ने उस पुरुष को नहीं देखा तदनन्तर देवता की कृपा से हमारा यह विज्ञान उत्पन्न हुआ कि तपस्या न करनेवाले पुरुष को निश्चय करके दर्शन होना असम्भव है, फिर हम सबने सौ वर्ष तक तात्कालिक नाम तपस्या को करके शुभलोगों को देखा वह पुरुष श्वेतवर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशित सबलक्षणयुक्त सदैव हाथ जोड़े गायत्री वा प्रणव का जप करनेवाले पूर्वोत्तर कोण में मुख कियेहुए वर्त्तमान थे वह महात्मा मानसी जप को करते हैं उसी चित्त की एकाग्रता से ईश्वर प्रसन्न होते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! युग के अन्त में जैसी कि सूर्य्य की किरणें होती हैं वैसाही प्रकाश प्रत्येक मानसी भक्त का था तब हम ने जाना कि यह द्वीप इनके रहने का स्थान है उनमें कोई न्यूनाधिक नहीं था सब बराबर के तेजस्वी थे, हे बृहस्पते ! जो इसके पीछे हमने फिर भी अकस्मात् एकहीबार प्रकट होनेवाले हज़ार सूर्य्य के प्रकाश को देखा फिर वह मनुष्य हाथ जोड़ेहुए प्रसन्नचित्त नमस्कार करके शीघ्रही सन्मुख को दौड़े और उन्हों के बोलने की ध्वनि को सुना फिर उन मनुष्यों ने उस देवता की बलिक्रिया की, फिर उसके तेज से अकस्मात् बेहोश अन्धे के समान महानिर्बल से होकर हमलोगों ने वहां कुछ भी नहीं देखा उनके मुख से निकला हुआ एक यह शब्द हमने सुना कि हे पुण्डरीकाक्ष ! आपने सबको विजय किया है हे विश्वभावन ! आप को नमस्कार है हे सबकी आदि इन्द्रियों के स्वामी, महापुरुष ! तुम को नमस्कार है शिक्षा और हाथ की चेष्टायुक्त यह शब्द हम ने सुना, इसी अन्तर में सब सुगन्धियों के बहानेवाले वायु ने उत्तम पुष्पों को और सब औषधियों को इकट्ठा किया तब पांचों काल के जाननेवाले उत्तम भक्तियुक्त एक निश्चयवाले लोगों ने मन वाणी और कर्म से हरि का पूजन किया जैसे ही उन्हों ने मन्त्र वचनों से ध्यान किया वैसेही वह निस्सन्देह साक्षात्कार हुआ परन्तु उसकी माया से मोहित हमलोगोंने दर्शन नहीं पाया, हे अंगिरा वंशियों में उत्तम, बृहस्पतिजी ! वायु के बंद होनेपर और बलि के भेट करने पर हमलोग चिन्ता से व्याकुल होगये, उन शुद्ध उत्पत्तिवाले हज़ारों पुरुषों के मध्य में किसी ने हम को मन और नेत्रों से भी पूजन नहीं किया अर्थात् देखा भी नहीं, उन सुखरूप एकभावयुक्त ब्रह्मभाव का अनुष्ठान

करनेवालों ने हम को मन से भी नहीं देखा तदनन्तर वहां पर स्वर्ग में नियत देह के विना किसी पुरुष ने तप से पीड्यमान और थकेहुए हमलोगों से यह वचन कहा कि यह दीखनेवाले श्वेतवर्णपुरुष सब इन्द्रियों से रहित हैं इन देखनेवाले उत्तम पुरुषों से वह देवेश्वर देखने के योग्य है और इन्हीं को दर्शन देता है हे मुनियो ! तुम जैसे आये हो वैसेही शीघ्रता से चले जाओ उस देवता का दर्शन अभक्त लोगों से करना असंभव है अर्थात् भक्तलोगों के सिवाय वह किसीको दर्शन नहीं देता है वह षडैश्वर्ययुक्त प्रकाश मण्डल से बड़ी कठिनता से दर्शन होनेवाला कालपुरुष एक निश्चयकरनेवाले भक्तों से बहुत काल में दर्शन कियाजाता है हे ब्राह्मणो ! तुम बहुत कर्मों को करो अब से लेकर वैवस्वत मन्वन्तर में सतयुग के अन्तहोने और त्रेतायुग के वर्त्तमान होनेपर, तुम देवताओं के प्रयोजन सिद्ध करने को मेरे साथी सहायता करनेवाले होगे तदनन्तर उस अपूर्व अमृतरूप वचन को सुनकर उसीकी कृपा से शीघ्रही हम सब अपने मनभावने देश को पहुँचे, इसप्रकार बड़े तप और हव्य कव्य के द्वारा भी उस देवता को हमने नहीं देखा तो तुम उसके दर्शन कैसे करसक्तेहो वह नारायण बड़ा प्रत्यक्ष संसार का स्वामी हव्यकव्य का भोक्ता आदि अन्तरहित दृष्टि से गुप्त देवता दानव आदि से पूजित है इसप्रकार द्वित त्रित ऋषि के अभीष्ट एकतऋषिके वचनों से और सदस्यों से समझायेहुए बुद्धिमान् बृहस्पतिजी ने उस यज्ञ को समाप्तकिया और देवता को अच्छीरीति से पूजा, और यज्ञपूर्ण करनेवाले राजा वसुने भी प्रजाका पालनकिया तिस पीछे ब्राह्मणों के शाप से स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर आया, हे राजाओं में श्रेष्ठ ! सत्यधर्म में नियत और पृथ्वी के भीतर वर्त्तमान भी सदैव धर्मवत्सल उस राजाने, नारायण का भक्त होकर नारायणही के नाम का जप किया और उसी की कृपा से वह राजा फिर स्वर्ग को गया और विना रोक के पृथ्वीतल से ब्रह्मलोक को गया और बहुत शीघ्र उस संसारबंधन से छूटनेवाली गति को पाया ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धे एकषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

एकसौबासठ का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि महाराजा वसु तो बड़ा भगवद्भक्त था वह किस कारण स्वर्ग से गिरा और पृथ्वी में आया, भीष्मजी बोले कि हे भरतर्षभ ! इस स्थानपर एक इतिहास को कहता हूं जिसमें ऋषियों का और देवताओं का संवाद है, देवताओं ने उत्तम ब्राह्मणों से यह कहा कि अज अर्थात् बकरे से यज्ञों में हवन करनाचाहिये उस बकरे को भी अज जानना योग्य है दूसरा पशु न समझना यह मर्य्यादा है, ऋषियों ने उत्तर दिया कि यज्ञों में बीजों के द्वारा हवन करना

चाहिये यह वेद की श्रुति है क्योंकि सब बीजों का अजनाम है इस कारण तुम बकरे के मारने के योग्यनहीं हो, हे देवतालोगो ! यह धर्म सत्पुरुषों का नहीं है जिसमें कि पशु माराजाय यही श्रेष्ठयज्ञ है पशु को क्यों मारें, भीष्मजी बोले कि देवताओं के साथ में उन ऋषियों की इसप्रकार की वार्त्ता होनेपर मार्ग में मिलने- वाले राजाओं में श्रेष्ठ महाराजा वसु भी दैवयोग से उस देश में प्राप्तहुए वह राजा संपूर्ण सेना और सवारियों समेत श्रीमान् अन्तरिक्ष में चलता था वह ऋषि और देवता उस अन्तरिक्षगामी राजा वसुको अकस्मात् आता देखकर बोल उठे कि यह राजा हमारे तुम्हारे सन्देहों को निवृत्त करेगा क्योंकि यह यज्ञ करने- वाला दानपति महाश्रेष्ठ सब जीवों की वृद्धि को अच्छा जाननेवाला है यह महाराजा कभी अन्यथा नहीं बोलेगा इसप्रकार से इन देवता और ऋषियों ने सम्मत करके अकस्मात् उसके समीप जाकर यह प्रश्न किया कि हे राजन् ! यज्ञ पशु से करना योग्य है वा औषधियों से उचित है हमारे इस सन्देह को आप निवृत्त कीजिये हमदोनों समूहों ने आपही को प्रमाण माना है तब राजा वसु ने हाथ जोड़कर उनसे पूछा कि हे उत्तम ब्राह्मणलोगो ! आप में से किसकी कौन इच्छा है यह सत्य २ कहो, ऋषि बोले हे राजन् ! हमारा यह पक्ष है कि धानों से यज्ञकरना योग्य है और देवताओं का अभीष्टपक्ष पशु है यह हम को समझाइये, भीष्मजी बोले कि देवताओं का सम्मत जानकर उनका पक्ष धारण करके राजाने ऋषियों से कहा कि बकरे से यज्ञ करना योग्य है, तदनन्तर वह सूर्य्य के समान तेजस्वी ऋषिलोग महाक्रोधयुक्त हुए और देवताओं के पक्ष धारणकरनेवाले विमान में बैठेहुए राजावसु से यह वचन कहा कि जिसहेतु से तुम ने देवताओं का पक्ष अंगीकार किया है इसपाप से तुमस्वर्ग से गिरो और हे राजन् ! अब से लेकर तुम्हारा आकाश का चलना भी नष्टहुआ, हमारे शाप से तू पृथ्वी को चीरकर प्रवेश करेगा इस वाक्य के कहतेही तत्क्षण राजा उप- रिचर पृथ्वी के छिद्र में औंधामुख होकर वर्त्तमान हुआ परन्तु श्रीनारायणजी की आज्ञा से उसकी स्मृति बनीरही, तब सावधान देवताओं ने राजावसु के शाप के दूरकरने का एक साथही विचार किया कि निश्चय करके राजा का ऐसा कहना यथार्थ था इस महात्मा राजा ने हमारे कारण से शापपाया इस हेतु से हम सब लोगों को साथ होकर उसका अभीष्ट करना चाहिये, उस समय अत्यन्त प्रसन्न चित्त देवताओं ने शीघ्रही बुद्धि से निश्चय करके राजा उपरिचर से कहा कि देव ब्राह्मणों के रक्षक तुम देवता के भक्त हो और विष्णुजी देवता और असुर दोनों के गुरु हैं वह प्रसन्नचित्त तुम्हारी प्रीति से तुम को शाप से निवृत्त करें निश्चय करके महात्मा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा करनी योग्य है हे उत्तम, राजन् ! इन ब्राह्मणों के तप से अवश्य फल प्रकट होने के योग्य है, हे राजन् ! जिसहेतु

आप अकस्मात् स्वर्ग से पृथ्वीपर गिरे इससे हम को भी तुम्हारा कुछ उपकार करना उचित है हे निष्पाप! जबतक तुम शाप दोष से पृथ्वी के छिद्र में प्रवेश करके शाप की मुद्दत को व्यतीत करोगे तबतक अपने मनोरथ को भी सिद्ध करोगे अर्थात् यज्ञों के बीच में सावधान ब्राह्मणों से अच्छेप्रकार होमी हुई वसोर्द्धारा को हमारी कृपा से पावोगे तुम को ग्लानि स्पर्श नहीं करेगी, हे राजेन्द्र! वसोर्द्धारा के भोजन करने से पृथ्वी के छिद्र में तुम को भूख प्यास बाधा नहीं करेगी और तेजकी वृद्धि होगी और हमारे वर से प्रसन्न होकर वह देवता तुम को ब्रह्मलोक में पहुँचावेगा इसप्रकार वर देकर वह सबदेवता अपने भवन को गये और तपोधन ऋषिलोग भी चलेगये तदनन्तर हे भरतवंशिन्! उस राजा वसु ने विष्णुजी का पूजनकिया, और नारायण के मुख से प्रकटहोनेवाले जप के योग्य मन्त्र को सदैव जपतारहा, हे युधिष्ठिर! वहां भी पृथ्वी के छिद्र में वर्त्तमान होकर राजा ने पांचयज्ञों से पांच समयपर देवताओं के स्वामी हरि का पूजनकिया तब उसकी भक्ति से भगवान् नारायणजी प्रसन्न हुए जोकि अनन्यभक्त और सत्पुरुष था इसकारण विष्णु भगवान् उसपर प्रसन्न हुए और महातीव्रगामी पक्षियों के राजा अपने वाहन गरुड़जी से कहा कि हे महाभाग, गरुड़! तुम मेरे कहने से देखो कि सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा धर्मात्मा प्रशंसा के योग्य व्रत का करनेवाला राजा वसु ब्राह्मणों के क्रोध से पृथ्वीतल में पहुँचा है वह ऋषि तो प्रतिष्ठा दियेगये अब हे खगेश! तुम मेरी आज्ञा से पृथ्वी के छिद्र में गुप्त राजा को जाकर यहां ले आकर उस पृथ्वीतल में विचरनेवाले उत्तम राजा को शीघ्रही आकाशचारी करो विलम्ब मत करो यह सुनतेही वायु के समान शीघ्रगामी गरुड़जी अपने पंखों को फैलाकर पृथ्वी के छिद्र में जहां राजा वसु वर्त्तमान थे वहांपर पहुँचे और अकस्मात् उसको उठाकर शीघ्रही आकाश को लेउड़े और वहां जाकर इसको छोड़दिया इसी से उस राजा का नाम फिर उपरिचर होगया अर्थात् आकाशचारी होगया फिर कुछ काल पीछे वह उत्तम राजा सदेह ब्रह्मलोक को गया, हे कुन्तीपुत्र! इसप्रकार से उस राजा ने भी दोषी वचनों से उन महात्मा ब्राह्मणों के शाप से और देवता की आज्ञा से अधम और उत्तम दोनों गतियों को पाया, उस राजा ने केवल सर्व्वव्यापी पापों के दूर करनेवाले ईश्वर काही सेवन और पूजनकिया था इसीकारण से वह शीघ्रही शाप से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गया, भीष्मजी बोले कि यह वृत्तान्त मूलसमेत तुझ से कहा अब मनुजी के पुत्र जैसे ऐश्वर्य्यवान् हुए और जैसे वह नारद ऋषि श्वेतद्वीप को गये वह सब वृत्तान्त तुझ से कहता हूं तू एकाग्रमन होकर सुन ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेद्विषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

एकसौतिरेसठका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, भगवान् नारदऋषि ने श्वेतद्वीप को प्राप्त होकर उन शुक्ल वर्ण और चन्द्रमा की समान प्रकाशमान पुरुषों को देखा और बड़ी भक्ति से दण्डवत् करके पूजन किया फिर उनलोगों ने भी नारदजी का मन से पूजन किया और अपने जप में प्रवृत्त प्राजापत्यादि व्रत कियेहुए दर्शन की इच्छा करके नियतहुए थे तब नारदजी ने भी एकाग्रमन ऊंची भुजा और सावधान होकर उस विश्वरूप निर्गुण सगुण के निमित्त स्तोत्रका पाठ किया ॥

स्तोत्र ॥

नारद उवाच ॥ नमस्ते देव देवेश १ निष्क्रिय २ निर्गुण ३ लोकसाक्षिन् ४ क्षेत्रज्ञ ५ पुरुषोत्तम ६ अनन्त ७ पुरुष ८ महापुरुष ९ पुरुषोत्तम १० त्रिगुण ११ प्रधान १२ अमृत १३ अमृताक्ष १४ अनन्ताख्य १५ व्योम १६ सनातन १७ सदसद्व्यक्ताव्यक्त १८ ऋतधामन् १९ आदिदेव २० वसुप्रद २१ प्रजापते २२ सुप्रजापते २३ वनस्पते २४ महाप्रजापते २५ ऊर्जस्पते २६ वाचस्पते २७ जगत्पते २८ मनस्पते २९ दिवस्पते ३० मरुत्पते ३१ सलिलपते ३२ पृथिवीपते ३३ दिक्पते ३४ पूर्वनिवास ३५ गुह्य ३६ ब्रह्मपुरोहित ३७ ब्रह्मकायिक ३८ महाराजिक ३९ चातुर्थ्यमहाराजिक ४० आभासुर ४१ महाभासुर ४२ सप्तमहाभाग ४३ याम्य ४४ महायाम्य ४५ संज्ञासंज्ञा ४६ तुषित ४७ महातुषित ४८ प्रमर्दन ४९ परिनिर्मित ५० अपरिनिर्मित ५१ वशवर्त्तिन् ५२ अपरिनिन्दित ५३ अपरिमित ५४ वशवर्त्तिन् ५५ अवशवर्तिन् ५६ यज्ञ ५७ महायज्ञ ५८ यज्ञसम्भव ५९ यज्ञयोने ६० यज्ञगर्भ ६१ यज्ञहृदय ६२ यज्ञस्तुत ६३ यज्ञभाग ६४ पञ्चयज्ञ ६५ पञ्चकालकर्तृपते ६६ पञ्चरात्रिक ६७ वैकुण्ठ ६८ अपराजित ६९ मानसिक ७० नामनामिक ७१ परस्वामिन् ७२ सुस्नात ७३ हंस ७४ परमहंस ७५ महाहंस ७६ परमयाज्ञिक ७७ सांख्ययोग ७८ सांख्यमूर्त्ते ७९ अमृतेशय ८० हिरण्येशय ८१ देवेशय ८२ कुशेशय ८३ ब्रह्मेशय ८४ पद्मेशय ८५ विश्वेश्वर ८६ विष्वक्सेन ८७ त्वंजगदन्वयः ८८ त्वंजगदाकृतिः ८९ तवाग्निरास्यं ९० वडवामुखोऽग्निः ९१ त्वमाहुतिः ९२ सारथिः ९३ त्वं वषट्कारः ९४ त्वंतपः ९५ त्वं मनः ९६ त्वं चन्द्रमाः ९७ त्वं चक्षुराख्यं ९८ त्वं सूर्यः ९९ त्वंदिशांगजः १०० त्वंदिग्भानो १०१ विदिग्भानो १०२ हयशिरः १०३ प्रथमत्रिसौपर्णः १०४ वर्णधरः १०५ पञ्चाग्ने १०६ त्रिणाचिकेत १०७ षडंगनिधान १०८ प्राग्ज्योतिष १०९ ज्येष्ठसामग ११० सामिकव्रतधर १११ अथर्वशिराः ११२ पञ्चमहाकल्प ११३ फेनपाचार्य्य ११४ वालखिल्य ११५ वैखानस ११६ अभग्नयोग ११७ अभग्नपरिसंख्यान ११८ युगादे ११९ युगमध्य १२०

युगनिधन १२१ आखण्डल १२२ प्राचीनगर्भ १२३ कौशिक १२४ पुरुष्टुत १२५ पुराहूत १२६ विश्वकृत् १२७ विश्वरूप १२८ अनन्तगते १२६ अनन्तभोग १३० अनन्त १३१ अनादे १३२ अमध्य १३३ अव्यक्तमध्य १३४ अव्यक्तनिधन १३५ व्रतावास १३६ समुद्राधिवास १३७ यशोवास १३८ तपोवास १३६ दमावास १४० लक्ष्म्यावास १४१ विद्यावास १४२ कीर्त्यावास १४३ श्रीवास १४४ सर्वावास १४५ वासुदेव १४६ सर्वछन्द १४७ हरिहय १४८ हरिमेध १४६ महायज्ञभागहर १५० वरप्रदसुखप्रद १५१ धनप्रद १५२ हरिमेध १५३ यम १५४ नियम १५५ महानियम १५६ कृच्छ्र १५७ अतिकृच्छ्र १५८ महाकृच्छ्र १५६ सर्वकृच्छ्र १६० नियमधर १६१ निवृत्तभ्रम १६२ प्रवचनगतापृश्निगर्भप्रवृत्त १६३ प्रवृत्तवेदक्रिय १६४ अज १६५ सर्वगते १६६ सर्वदर्शिन् १६७ अग्राह्य १६८ अचल १६६ महाविभूते १७० माहात्म्यशरीर १७१ पवित्र १७२ महापवित्र १७३ हिरण्यमय १७४ बृहत् १७५ अप्रतर्क्य १७६ अविज्ञेय १७७ ब्रह्माग्र्य १७८ प्रजासर्गकर १७६ प्रजानिधनकर १८० महामायाधर १८१ चित्रशिखण्डिन् १८२ वरप्रद १८३ पुरोडासभागहर १८४ गताध्वर १८५ छिन्नतृष्ण १८६ छिन्नसंशय १८७ सर्वतोवृत्त १८८ निवृत्तरूप १८६ ब्राह्मणरूप १६० ब्राह्मणप्रिय १६१ विश्वमूर्त्ते १६२ महामूर्त्ते १६३ बान्धव १६४ भक्तवत्सल १६५ ब्रह्मण्य १६६ वेदभक्तोहंत्वांदिदृक्षुरेकान्तदर्शनाय नमो नमः १६७ इति श्रीमहापुरुषस्तवः समाप्तः ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेमहापुरुषस्तववर्णनोनाम त्रिषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

एकसौचौंसठका अध्याय ॥

भीष्म उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान् गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभिः । तं मुनिं दर्शयामास नारदं विश्वरूपधृक् १ किंचिचन्द्राद्विशुद्धात्मा किंचिचन्द्राद्विशेषवान् । कृशानुवर्णःकिंचिच्च किंचिद्धिष्ण्याकृतिः प्रभुः २ शुकः पत्रनिभः किंचित् किंचित् स्फटिकसंनिभः । नीलाञ्जनचयप्रख्यो जातरूपप्रभः क्वचित् ३ प्रवालाङ्कुरवर्णश्च श्वेतवर्णस्तथा क्वचित् । क्वचित्सुवर्णवर्णाभो वैदूर्यसदृशःक्वचित् ४ नील वैदूर्यसदृश इन्द्रनीलनिभः क्वचित् । मयूरग्रीववर्णाभो मुक्ताहारनिभः क्वचित् ५ एतान्बहुविधान्वर्णान् रूपैर्बिभ्रन्सनातनः । सहस्रनयनः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रपात् ६ सहस्रोदरबाहुश्च अव्यक्तइति च क्वचित् । ओंकारमुद्गिरन्वक्त्रात् सावित्रीं च तदन्वयाम् ७ शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदान् गिरन्बहून् । आरण्यकं जगौ देवो हरिर्नारायणोवशी ८ वेदिं कमण्डलुं शुभ्रान्मणीनुपानहौ कुशान् । अजिनं दण्डकाष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम् ६ धारयामास देवेशो हस्तैर्यज्ञपतिस्तदा । तं

प्रसन्नं प्रसन्नात्मा नारदो मुनिसत्तमः। वाग्यतः प्रणतो भूत्वा ववन्दे परमेश्वरम् १० तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ११ श्रीभगवानुवाच ॥ एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः। इमं देशमनुप्राप्ता मम दर्शनलालसाः १२ नच मां तेददृशिरे नच द्रक्ष्यति कश्चन। ऋते ह्येकान्तिकश्रेष्ठा त्वं चैवैकान्तिकोत्तमः १३ ममैतास्तनवः श्रेष्ठा जाताधर्मगृहे द्विज। तांस्त्वं भजस्व सततं साधयस्व यथागतम् १४ वृणीष्व च वरं विप्र मत्तस्त्वं यदिहेच्छसि। प्रसन्नोहं तवाद्येह विश्वमूर्त्तिरिहाव्ययः १५ नारदउवाच॥ अद्य मे तपसोदेव यमस्य नियमस्य च। सद्यः फलमवाप्तं वै दृष्टोयद्भगवान् मया १६ वरएषमयात्यन्तं दृष्टस्त्वं यत्सनातनः। भगवन्विश्वदृक्सिंहः सर्वमूर्तिर्महान्प्रभुः १७ भीष्म उवाच॥ एवं संदर्शयित्वा तु नारदं परमेष्ठिनम्। उवाच वचनं भूयो गच्छ नारद माचिरम् १८ इमे ह्यनिंद्रियाहारा मद्भक्ताश्चन्द्रवर्चसः। एकाग्राश्चिन्तयेयुर्मां नैषां विघ्नोभवेदिति १९ सिद्धा ह्येते महाभागाः पुरा ह्येकान्तिनोभवन्। तमोरजोभिनिर्मुक्ता मां प्रवेक्ष्यत्यसंशयम् २० न दृश्यश्चक्षुषा योसौ न स्पृश्यः स्पर्शनेन च। न घ्रेयश्चैव गन्धेन रसेन च विवर्जितः २१ सत्त्वं रजस्तमश्चैव न गुणास्तं भजन्ति वै। यश्च सर्वगतः साक्षी लोकस्यात्मेति कथ्यते २२ भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न विनश्यति। अजो नित्यःशाश्वतश्च निर्गुणोनिष्कलस्तथा २३ द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्चविंशकः। पुरुषोनिष्क्रियश्चैव ज्ञानदृश्यश्च कथ्यते २४ यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्तावै द्विजसत्तमाः। स वासुदेवो विज्ञेयः परमात्मा सनातनः २५ पश्य देवस्य माहात्म्यं महिमानं च नारद। शुभाशुभैःकर्मभिर्यो न लिप्यति कदाचन २६ एतान् गुणांस्तु क्षेत्रज्ञोभुङ्क्ते नैभिः सभुज्यते। निर्गुणोगुणभोक्तैव गुणस्रष्टा गुणाधिकः २७ जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते। ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते २८ खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकाशमेव च। मनोहि परमं भूतं तदव्यक्ते प्रलीयते २९ अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्क्रिये संप्रलीयते। नास्ति तस्मात्परतरः पुरुषाद्वै सनातनात् ३० नित्यं हि नास्ति जगतीभूतं स्थावरजंगमम्। ऋते तमेकं पुरुषं वासुदेवं सनातनम् ३१ सर्वभूतात्मभूतोहि वासुदेवोमहाबलः। पृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्च पञ्चमम् ३२ ते समेता महात्मानःशरीरमितिसंज्ञितम्। तदा विशति योब्रह्म न दृश्यो लघुविक्रमः। उत्पन्न एवभवति शरीरं चेष्टयन्प्रभुः ३३ न विना धातुसंघातं शरीरं भवति क्वचित्। नच जीवं विना ब्रह्मन् वायवश्चेष्टयन्त्युत ३४ स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः। तस्मात्सनत्कुमारत्वं योलभेत्स्वेन कर्मणा ३५ यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षये। मनसः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते ३६ तस्मात् प्रसूतो यः कर्त्ता कारणं कार्यमेव च। तस्मात्सर्वं संभवति जगत्स्थावरजंगमम्। सोनिरुद्धः सईशानो व्यक्तः सर्वेषु कर्मसु ३७ योवासुदेवोभगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः। ज्ञेयः सएव राजेन्द्र

जीवः संकर्षणः प्रभुः ३८ संकर्षणाच्च प्रद्युम्नोमनोभूतः सउच्यते। प्रद्युम्नाद्योनिरुद्ध स्तु सोहंकारः सईश्वरः ३९ मत्तः सर्वं संभवति जगत्स्थावरजंगमम्। अक्षरंचक्षरं चैव सच्चासच्चैव नारद ४० मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता भक्तास्तु ये मम। अहं हि पुरुषो ज्ञेयोनिष्क्रियः पञ्चविंशकः। निर्गुणो निष्कलश्चैव निर्द्वन्द्वो निष्परि ग्रहः ४१ एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते। इच्छन्मुहूर्तान्निश्येयमीशोहं जग तोगुरुः ४२ माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि ४३ मयैतत्कथितं सम्यक्तव मूर्तिचतुष्टयम्। अहं हि जीवसंज्ञातो मयि जीवः समाहितः ४४ नैवं ते बुद्धिरत्राभूद्दृष्टजीवोमयेति वै। अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन्भूत ग्रामान्तरात्मकः ४५ भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम्। सिद्धाहि ते म हाभागा नरा ह्येकान्तिनोऽभवन् ४६ तमोरजोभ्यांनिर्मुक्ताः प्रवेक्ष्यन्ति च मां मुने। हिरण्यगर्भोलोकादिश्चतुर्वक्त्रो निरुक्तगः ४७ ब्रह्मा सनातनो देवो मम बह्व र्थचिन्तकः। ललाटाच्चैव मे रुद्रो देवः क्रोधाद्विनिःसृतः ४८ पश्यैकादशमे रुद्रान् दक्षिणं पार्श्वमास्थितान्। द्वादशैव तथादित्यान् वामपार्श्वे समास्थितान् ४९ अग्रतश्चैव मे पश्य वसूनष्टौ सुरोत्तमान्। नासत्यं चैव दस्रं च भिषजौ पश्य पृष्ठ तः ५० सर्वान्प्रजापतीन्पश्य पश्य सप्तऋषींस्तथा। वेदान्यज्ञांश्च शतशः प श्यामृतमथौषधीः ५१ तपांसि नियमांश्चैव यमानपि पृथग्विधान्। तथाष्टगुण मैश्वर्य्यमेकस्थं पश्य मूर्त्तिमत् ५२ श्रियं लक्ष्मीं च कीर्तिं च पृथिवीं च ककुद्मि नीम्। वेदानां मातरं पश्य मत्स्थां देवीं सरस्वतीम् ५३ ध्रुवं च ज्योतिषां श्रेष्ठं पश्य नारद खेचरम्। अम्भोधरान्समुद्रांश्च सरांसि सरितस्तथा ५४ मूर्त्तियुक्तान् पितृगणांश्चतुः पश्यासि सत्तम। त्रींश्चैवेमान्गुणान्पश्य मत्स्थान्मूर्तिविवर्जि तान् ५५ देवकार्यादपिमुने पितृकार्य्यं विशिष्यते। देवानां च पितॄणां च पिता ह्येकोहमादितः ५६ अहं हयशिरा भूत्वा समुद्रे पश्चिमोत्तरे। पिबामि सुहु तं हव्यं कव्यं च श्रद्धयान्वितम् ५७ मया सृष्टः पुरा ब्रह्मा मांयज्ञमयजत्स्वयम्। ततस्तस्मिन्वरान्प्रीतोदत्तवानस्म्यनुत्तमान् ५८ मत्पुत्रत्वं च कल्पादौ लोकाध्य क्षत्वमेव च। अहंकारकृतं चैव नामपर्यायवाचकम् ५९ त्वया कृतं च मर्यादां नातिक्रम्यति कश्चन। त्वं चैव वरदो ब्रह्मन् वरेप्सूनां भविष्यसि ६० सुरासुरग णानां च ऋषीणां च तपोधन। पितॄणां च महाभाग सततं संशितव्रत। विविधा नां च भूतानां त्वमुपास्यो भविष्यसि। प्रादुर्भावगतश्चाहं सुरकार्य्येषु नित्यदा। अनुशास्यस्त्वया ब्रह्मन् नियोज्यश्च सुतोयथा ६१ एतांश्चान्यांश्च रुचिरान् ब्रह्मणेमिततेजसे। अहं दत्त्वा वरान्प्रीतो निवृत्तिपरमोभवम् ६२ निर्वाणं सर्वधर्मा णां निवृत्तिः परमास्मृता। तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत्सर्वाङ्गनिर्वृतः ६३ विद्यास हायवन्तं च आदित्यस्थं समाहितम्। कपिलं प्राहुराचार्य्याः सांख्यनिश्चितनिश्च याः ६४ हिरण्यगर्भोभगवानेषच्छन्दसिसुष्टुतः। सोहं योगरतिर्ब्रह्मन्योगशास्त्रेषु

शब्दितः ६५ एषोहं व्यक्तिमागत्य तिष्ठामि दिवि शाश्वतः । ततोयुगसहस्रान्ते सं हरिष्ये जगत्पुनः ६६ कृत्वात्मस्थानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । एकाकी विद्यया सार्द्धं विहरिष्ये जगत्पुनः ६७ ततो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीहविद्यया । अस्मिन्मूर्त्तिश्चतुर्थी या सासृजच्छेषमव्ययम् ६८ साहि संकर्षणःप्रोक्तः प्रद्युम्नं सोप्यजीजनत् । प्रद्युम्नादनिरुद्धोहं सर्गोमम पुनः पुनः ६९ अनिरुद्धात्तथा ब्रह्मा तन्नाभिकमलोद्भवः । ब्रह्मणः सर्वभूतानि चराणि स्थावराणि च ७० एतां सृष्टिं विजानीहि कल्पादिषु पुनः पुनः । यथा सूर्य्यस्य गगनादुदयास्तमने इह ७१ नष्टे पुनर्बलात्काल आनयत्यमितद्युतिः । तथा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ७२ सत्वैराक्रान्तसर्वांगो नष्टां सागरमेखलाम् । आनयिष्यामि स्वस्थानं वाराहं रूपमास्थितः ७३ हिरण्याक्षं वधिष्यामि दैत्येयं बलगर्वितम् । नारसिंहं पुनः कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुनः ७४ सुरकार्य्ये हनिष्यामि यज्ञघ्नं दितिनन्दनम् । विरोचनस्य बलवान् बलिपुत्रो महासुरः ७५ अवध्यः सर्वलोकानां सदेवासुररक्षसाम् । भविष्यतिसशक्रञ्च स्वराज्याच्च्यावयिष्यति ७६ त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखे च शचीपतौ । आदित्यान्द्वादशादित्यः सम्भविष्यामि कश्यपात् ७७ ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे । देवताःस्थापयिष्यामि स्वेस्वेस्थानेषु नारद ७८ बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम् । दानवं च बलिश्रेष्ठमवध्यं सर्वदेवतैः ७९ त्रेतायुगे भविष्यामि रामोभृगुकुलोद्वहः । क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धबलवाहनम् ८० सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च । अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ८१ त्रितोपघाताद्वैरूप्यमेकतोथ द्वितस्तथा । प्राप्स्येते वानरत्वं हि प्रजापतिसुतावृषी ८२ तयोर्येत्वन्वये जाता भविष्यन्ति वनौकसः । महाबला महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ८३ ते सहायाभविष्यन्ति सुरकार्य्ये ममद्विज । ततो रक्षपतिं घोरं पुलस्त्यकुलपांसनम् ८४ हरिष्ये रावणं रौद्रं सगणं लोककण्टकम् । द्वापरस्य कलेश्चैव संधौ पर्य्यवसानिके ८५ प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुराया भविष्यति । तत्राहं दानवान्हत्वा सुबहून् देवकण्टकान् ८६ कुशस्थलीं करिष्यामि निवेशं द्वारकां पुरीम् । वसानस्तत्र वै पुर्य्यामदितेर्विप्रियं करम् ८७ हनिष्ये नरकं भौमं मुरुम्पीठं च दानवम् । प्राग्ज्योतिषं पुरं रम्यं नानाधनसमन्वितम् ८८ कुशस्थलीं नयिष्यामि हत्वा वै दानवोत्तमम् । महेश्वरमहासेनौ बाणप्रियहितैषिणौ ८९ पराजेष्याम्यथोद्युक्तौ देवौ लोकनमस्कृतौ । ततः सुतं बलेर्जित्वा बाणं बाहुसहस्रिणम् ९० विनाशयिष्यामि ततः सर्वान् सौभनिवासिनः । यः कालयवनख्यातोगर्गतेजोभिसंवृतः ९१ भविष्यति वधस्तस्य मतएव द्विजोत्तम । जरासन्धश्च बलवान् सर्वराजाविरोधनः ९२ भविष्यत्यसुरस्फीतो भूमिपालो गिरिव्रजे । मम बुद्धिपरिस्पंदाद् वधस्तस्यभविष्यति ९३ शिशुपालं वधिष्यामि यज्ञे धर्म्मसुतस्य वै । समागतेषु बलिषु पृथिव्यां सर्व

राजसु ६४ वासविः सुसहायोवै मम त्वेको भविष्यति। युधिष्ठिरं स्थापयिष्ये स्वरा
ज्ये भ्रातृभिःसह ६५ एवं लोका वदिष्यन्ति नरनारायणावृषी। उद्युक्तौ दहतः क्षत्रं
लोके कार्य्यार्थमीश्वरौ ६६ कृत्वा भारावतरणं वसुधाया यथेप्सितम्। सर्वसात्व
तमुख्यानां द्वारकायाश्च सत्तम ६७ करिष्ये प्रलयं घोरमात्मज्ञानाभिसंवृतम्।
कर्माण्यपरिमेयानि चतुर्मूर्त्तिधरोम्यहम् ९८ कृत्वा लोकान् गमिष्यामि स्वानहं
ब्रह्मसत्कृतान्। हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद्विजोत्तम ६६ वाराहोनारसिं
हश्च वामनोरामएवच। रामोदाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेवच १०० यदा
वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः। सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृतेयुगे १
अतिक्रान्ताः पुराणेषु श्रुतास्ते यदिवा क्वचित्। अतिक्रान्ताश्च बहवः प्रादुर्भावा
ममोत्तमाः २ लोककार्य्याणि कृत्वा च पुनः स्वां प्रकृतिं गताः। नह्येतद्ब्रह्मणा प्रा
प्तमीदृशं मम दर्शनम् ३ यत्त्वया प्राप्तमद्येह एकान्तगतिबुद्धिना। एतत्ते सर्व
माख्यातं ब्रह्मन्भक्तिमतो मया। पुराणं च भविष्यं च सरहस्यं च सत्तम ४ भीष्म
उवाच॥ एवं स भगवान्देवो विश्वमूर्त्तिधरोऽव्ययः। एतावदुक्त्वा वचनं तत्रैवा
न्तर्दधे पुनः ५ नारदोऽपि महातेजाः प्राप्यानुग्रहमीप्सितम्। नरनारायणौ द्रष्टुं
बदर्य्याश्रममाद्रवत् ६ इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम्। सांख्ययोगकृतं तेन
पञ्चरात्रानुशब्दितम् ७ युधिष्ठिर उवाच॥ एतदाश्चर्य्यभूतं हि माहात्म्यं तस्य
धीमतः। किं वै ब्रह्मा न जानीते यतः शुश्राव नारदात् ८ पितामहोऽपि भग
वांस्तस्माद्देवादनन्तरः। कथं स न विजानीयात्प्रभावममितौजसः ६ भीष्म
उवाच॥ महाकल्पसहस्राणि महाकल्पशतानि च। समतीतानि राजेन्द्र! सर्गा
श्च प्रलयाश्च ह १० सर्गस्यादौ स्मृतो ब्रह्मा प्रजासर्गकरः प्रभुः। जानाति देव
प्रवरं भूयाश्चातोऽधिकं नृप ११ परमात्मानमीशानमात्मनः प्रभवन्तथा। येत्व
न्ये ब्रह्मसदने सिद्धसंघाःसमागताः १२ तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणं वेदसम्मि
तम्। तेषां सकाशात्सूर्यस्तु श्रुत्वा वै भावितात्मना १३ आत्मानुगामिनां राजन्
श्रावयामास वै ततः। षट्षष्टिर्हि सहस्राणि ऋषीणां भावितात्मनाम् १४ सूर्यस्य
तपतोलोकान्निर्मिता ये पुरःसराः। तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषां भावितात्मनाम् १५
सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः। मेरौ समागता देवाः श्राविताश्चेद
मुत्तम १६ देवानान्तु सकाशाद्वै ततः श्रुत्वासितो द्विजः। श्रावयामासराजेन्द्र
पितॄणां मुनिसत्तम १७ मम चापि पिता तात कथयामास शान्तनुः। ततो
मयापि श्रुत्वा च कीर्त्तितं तव भारत १८ सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं
श्रुतम्। सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ते समन्ततः १६ इदमाख्यानमार्ष्येयं पारं
पर्यागतं नृप। न वासुदेवभक्ताय त्वया देयं कथञ्चन २० मत्तोन्यानि च तेरा
जन्नुपाख्यानि शतानि वै। यानि श्रुतानि सर्वाणि तेषां सारोयमुद्धृतः २१
सुरासुरैर्यथा राजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम्। एवमेतत्पुराविप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम् २२

यश्चेदं पठते नित्यं यश्चेदं शृणुयान्नरः । एकान्तभावोपगत एकान्तेषु समाहितः २३ प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं भूत्वा चन्द्रप्रभो नरः । ससहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः २४ मुच्येदार्त्तस्तथारोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तो भक्तगतिं व्रजेत् २५ त्वयापि सततं राजन्नभ्यर्च्यः पुरुषोत्तमः । स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः २६ ब्रह्मण्यदेवो भगवान् प्रीयतां ते सनातनः । युधिष्ठिर महाबाहो महाबुद्धिर्जनार्दनः २७ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वैतदाख्यानवरं धर्मराज्जनमेजय । भ्रातरश्चास्य ते सर्वे नारायणपराभवन् २८ जितं भगवता तेन पुरुषेणेति भारत । नित्यं जाप्यपरा भूत्वा सरस्वतिमुदीरयन् २९ योह्यस्माकं गुरुः श्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनो मुनिः । जगौ परमकं जप्यं नारायणमुदीरयन् ३० गत्वान्तरिक्षात्सततं क्षीरोदममृताशयम् । पूजयित्वा च देवेशं पुनरायात्स्वमाश्रमम् ३१ भीष्म उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं नारदोक्तं मयेरितम् । पारंपर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितम्पुरा ३२ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्त्तितम् । जनमेजयेन तच्छ्रुत्वा कृतं सम्यग्यथाविधि ३३ यूयंहि तप्ततपसः सर्वे च चरितव्रताः । सर्वे वेदविदोमुख्याः नैमिषारण्यवासिनः ३४ शौनकस्य महासत्रे प्राप्ताः सर्वेद्विजोत्तमाः । यजध्वं सुहुतैर्यज्ञैः शाश्वतं परमेश्वरम् । पारंपर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितं पुरा ॥ १३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचतुःषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

एकसौपैंसठका अध्याय ॥

इस अध्याय का टीका अर्थात् अर्थ लिखते हैं ॥

इसप्रकार गुप्त और सच्चे नामों से स्तुति कियेहुए बहुरूपी भगवान् ईश्वर ने उन नारदजी को दर्शन दिया चन्द्रमा से भी स्वच्छ वा विशेष और अग्नि से भी उत्तमवर्ण कुछ स्थान की सी आकृति कुछ तोते के परों की समान कुछ स्फटिक और धवलागिरि के समान कहीं सुवर्ण समानःप्रकाश कहीं वैडूर्य मणि के कहीं नीलवैडूर्य के समान कहीं इन्द्रनीलमणि के समान कहीं मोर की गर्दन के समान कहीं मुक्ताहारधारी के समान इत्यादि अनेकप्रकार के रूपयुक्त हज़ार शिर चरण और नेत्रों से शोभित हज़ारों भुजा उदर आदि को धारण किये कहीं अव्यक्तरूप से ॐकार और उसके अंगरूप गायत्री को मुख से उच्चारण करते और शेष मुखों से चारों वेद और अनेक शास्त्रों को कहते हुए उस सर्वैश्वर्य्यवान् जगत् के स्वामी ने आरण्यक उपनिषद् को वर्णन किया फिर उस देवदेव यज्ञपति ने हाथ में दण्डकमण्डलु देह में मृगचर्म चरणों में पादुका अग्नि स्वरूप तेजवान्रूप को धारण किया ऐसा रूपक देख के ब्राह्मणों में उत्तम नारदजी ने बड़ी प्रसन्न बुद्धि और शान्तता को धारणकर नम्रता

पूर्व्वक उस अपूर्व्व मूर्त्तिधारी को दण्डवत् किया तब उसमहात्मा जगदीश ने प्रसन्न होकर उसशिरझुकाये हुए नारद से कहा कि हे नारद! मेरे दर्शनों की इच्छा से एकत, द्वित, त्रित महर्षिलोग इस देश में आये उनको मेरा दर्शन नहीं हुआ क्योंकि एक मेंही निश्चय करनेवाले अर्थात् अनन्यभक्तों के सिवाय किसीको मेरा दर्शन नहीं होता है सो तुम भी अनन्यभक्त हो हे नारद! यह मेरे उत्तम अंग धर्म देवता के घर में उत्पन्न हुए तुम उन्हीं अंगों का ध्यान करके मुझ को भजो जिससे कि मेरी प्राप्तिहोय हे ब्रह्मर्षि, नारद! मैं तुम पर प्रसन्न हूं जो इच्छा हो सो वरमांगो नारदजी बोले कि हे देवेश्वर! मैं ने आप के दर्शन पाकर सब तप यज्ञों का फल पाया यही मुझ को बड़ा वर है जो संसार के उत्पत्ति पालन और नाश करनेवाले का दर्शनपाया; भीष्मजी बोले कि इसप्रकार ब्रह्म में लय होनेवाले नारदजी को दर्शन देकर फिर यह वचन बोले कि हे नारद! शीघ्रही जाओ विलम्ब मतकरो, यह मेरेभक्त अनिच्छा पूर्व्वक भोजन करनेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशमान एकाग्रचित्त होकर मेरा ध्यान करते हैं उनको कभी विघ्न नहीं होता है यह महाभाग शुद्ध अन्तःकरण हैं यह सब पूर्वसमय में अनन्यभक्त थे यह निस्सन्देह तीनों गुणों से पृथक् होकर मुझ में प्रवेश करेंगे, अब प्रवेश करने के योग्य आत्मस्वरूप को कहता हूं जो कि इन्द्रियों के विषय से परे गुणातीत सर्वव्यापी साक्षी लोक का आत्मा कहाजाता है वह अज अविनाशी सदैव रूपान्तर रहित निर्गुण कलारूप उपाधियों से पृथक् है, जो पुरुष चौबीस तत्त्वों से पृथक् पचीसवां प्रसिद्ध है वही सूक्ष्म निर्म्मल बुद्धि से दृष्ट होता है, संसार में उत्तम ब्राह्मण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं वह वासुदेव सर्वव्यापी परमात्मा सनातन जानने के योग्य है हे नारदजी! देवता के माहात्म्य और उसकी महिमा को देखकर जो पुरुष अच्छे बुरे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता है और मन से जानता है कि क्षेत्रज्ञही भोगता है वा नहीं भोगता है निर्गुण गुणों को पैदा करता भोक्ताहुआ भी गुणों से जुदा है, हे देवर्षे! जगत् की प्रतिष्ठा यह है कि पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश मन में, और मन अव्यक्त में लय होता है, वह अव्यक्त अकर्त्ता पुरुष में लय होता है उस सनातन पुरुष से उत्तम कोई नहीं है, उस अकेले सनातन पुरुष वासुदेव के सिवाय यह जड़चैतन्य जगत् नाशवान् है वही वासुदेव सबजीवों के आत्मा हैं यह पांचों तत्त्व इकट्ठे होकर देहरूप होते हैं तब वह ब्रह्मरूप उसमें प्रवेश करता है वह दृष्टि से अगोचर महाबलवान् है वही देह को चेष्टा देता है तब संसार कहाजाता है विना तत्त्वों के देह नहीं होता और विना जीव के देह में वायु चेष्टा नहीं होती है वह प्रभु, जीव, शेष, संकर्षण, विश्वधारक इन

नामों से और अपने ध्यान पूजन आदि कर्मों के द्वारा सनत्कुमार भाव को प्राप्त होता है अर्थात् जीवन्मुक्ति को पाता है, इसप्रकार अविद्या उपाधिवाले जीव को साबित करके उसी से प्रद्युम्न नाम मन की उत्पत्ति को वर्णन करते हैं कि महाप्रलय में जिसके भीतर सब जीवमात्र लय होजाते हैं वह प्रद्युम्न नाम मन कहाता है जिस मन से सब जीवों की उत्पत्ति है, उस संकर्षण से जो उत्पन्न हुआ वह कर्त्ता, क्रिया और कारणरूप है उसीसे सब जड़ चैतन्य जगत् उत्पन्न होता है वही प्रद्युम्न अनिरुद्ध नाम अहंकार होता है वह स्वामी है और सब कर्मों में प्रकट है, इसप्रकार प्रद्युम्न आदि के कर्त्तारूप त्वंपदार्थ जीव को कहकर ऊपर लिखेहुए तत्पदार्थ से इसकी एकांगी गति को कहते हैं हे राजेन्द्र ! जो निर्गुण क्षेत्रज्ञ भगवान् वासुदेव है वही प्रभु संकर्षण नाम जीव है, संकर्षण से उत्पन्न होनेवाला प्रद्युम्न नाम मन वही वासुदेव कहाजाता है और प्रद्युम्न से जो अनिरुद्ध नाम अहंकार उत्पन्न हुआ वह भी वही ईश्वर है, यह सब चराचर जगत् मुझसेही उत्पन्न होता है हे नारदजी ! अक्षर जीव और क्षर महत्तत्त्वादिक जो कि सत् असत् रूप हैं वह उत्पन्न होते हैं यहां जो मेरे भक्त हैं वह अपने को मुझ में प्रवेश करके मुक्त होते हैं मैंहीं चिन्मात्र निष्क्रिय कूटस्थ पचीसवां पुरुष जानने के योग्य हूं और उपाधिरहित निर्गुण सुखदुःखादि और वासनाआदि परिग्रह से जुदा हूं तुझ विश्वरूप का उपाधि से पृथक् होना कैसे होसक्ता है यह शंका करके कहते हैं यह बात तुम को न जानना चाहिये कि यह रूपयुक्त दृष्ट आता है मैं इच्छा करतेही एक मुहूर्त में निराकार होजाऊं मैं हीं जगत् का ईश्वर और गुरु भी होजाता हूं अर्थात् उत्पत्ति नाश केवल मेरी इच्छा है, हे नारद ! मैंने यह माया की है जो तुम मुझ को देखते हो तुम इस प्रकार से मुझ को सब भूतों के गुणों से संयुक्त मत जानो तात्पर्य यह है कि मैं निर्गुण निराकार हूं मैंने यह चारों मूर्त्ति तुम से अच्छेप्रकार वर्णन करीं मैंहीं जीवभाव से जानागया हूं और वह जीव मुझ मेंही अच्छेप्रकार से नियत है, यहां तू ऐसा मत समझ कि मैंने उपाधियुक्त समष्टि जीव देखा हे ब्रह्मन् ! मैं सब जगह वर्त्तमान सबजीवों में आत्मारूप हूं जीवसमूहों के शरीरनाश होनेपर मैं नाश नहीं होता हूं वे महाभाग अनन्यभक्त पुरुष सिद्ध हैं और तमोगुण रजोगुण से पृथक् मुझ मेंही प्रवेश करेंगे अर्थात् मुझ सेही एकत्वता को प्राप्त करेंगे संसार का प्रथम चतुर्मुख वेदांगनिर्गत नाम को जाननेवाला हिरण्यगर्भ सनातन देवता ब्रह्मा मेरे अनेक अर्थों का विचारनेवाला है और क्रोध के कारण मेरे ललाट से रुद्र उत्पन्नहुए, और मेरे दक्षिणभाग से ग्यारहरुद्र और वामभाग से बारह सूर्य्य और अग्रभाग में अष्टवसु और पीछे के भाग में अश्विनीकुमार दोनों देववैद्य उत्पन्न देखो जिसप्रकार सबप्रजापति, ऋषि, वेद,

यज्ञ, अमृत, औषध, तप, नियम हैं उसीप्रकार मुझअकेले में नियत आठप्रकार के ऐश्वर्य्य को देखो, श्रीलक्ष्मी, कीर्त्ति, पृथ्वी, ककुद्मनि, वेदमाता, सरस्वती को भी मुझ में नियतदेखो बादल, समुद्र, नदी, सरोवर, मूर्त्तिमान् चारोंपितरों को और तीनोंगुणों को भी मुझी में देखो हे मुनिदेव ! कर्म से पितृकर्म बड़ा है मैं अकेलाही देव पितर दोनों का पिता हूं मैंहीं बड़वानल समुद्र की अग्नि होकर श्रद्धापूर्वक होमेहुए हव्य कव्य को भोजनकरता हूं, पूर्वसमय में मुझ से पैदाहुए ब्रह्मा ने मुझी यज्ञरूप को पूजा था जिसकेकारण प्रसन्न होकर मैंने बहुत से वर उसको दिये, कल्प की आदि में मेरा पुत्रत्वभाव लेकर लोकों के क्रमपूर्वक राज्य और अध्यक्षता को अहंकार प्राप्तहोगा तब तुम्हारी की हुई मर्यादाओं को कोई उल्लंघन नहीं करेगा और तुम जीवों के वांछित वस्तुओं के वरदाता होगे, हे तपोधन, महाभाग ! तुम्हीं महातेजस्वी ब्रह्मा होकर सबदेव, पितृ, ऋषि, गन्धर्व आदि अनेक प्रकार के जीवों के उपासना योग्यहोगे और हे ब्रह्मन् ! देवकार्य्यों में अवतारलेनेवाला मैं सदैव तुम से पुत्र के समान उपदेश और आज्ञालेने के योग्य होऊंगा फिर मैं प्रसन्न होकर इनवरों के सिवाय अन्य बहुत उत्तम २ वर ब्रह्मा को देकर निवृत्तिधर्मपरायण होऊंगा, सब धर्मों से जो पृथक्ता है उसकोही उत्तम निवृत्ति कहते हैं इसीहेतु से सब अंगों से निवृत्ति धर्मयुक्त होकर विचरे, सांख्यशास्त्र का निश्चय रखनेवाले आचार्य्यों ने कपिल जी को सावधान विद्यासम्पन्न और सूर्य्य में नियतहोना वर्णनकिया है, यह भगवान् हिरण्यगर्भ वेद में स्तुतिकियाहुआ है हे ब्रह्मन् ! वही मैं योगशास्त्रों के मध्य में योग में प्रीतिमान् वर्णन कियागया हूं, मैंहीं सनातन सगुणरूप होकर सर्ग में नियत होता हूं फिर मैंहीं हज़ार युगों के अन्तहोनेपर संसार को अपने में लय करलेता हूं, सब स्थावर जंगम जीवों को अपनी आत्मा में नियत करके अकेला मैंहीं विद्यानाम माया से युक्तहोकर जगत् को नाश करता हूं फिर मैंहीं जगत् को उत्पन्न करता हूं मेरी जो चौथी मूर्त्ति है उसने अविनाशी शेषजी को उत्पन्न किया वही शेष संकर्षण जीव कहाजाता है उसने प्रद्युम्ननाम मन को उत्पन्न किया और प्रद्युम्न से अनिरुद्धरूप अहंकार उत्पन्न हुआ और बारंबार मेराही प्रत्यक्ष होता है, इसीप्रकार अनिरुद्ध से ब्रह्मा उत्पन्नहुए उसकी उत्पत्ति नाभिकमल से है और ब्रह्माजी से सब स्थावर जंगम जीव उत्पन्नहुए, बारंबार कल्पों की आदि में यह सब सृष्टि का होना ऐसा जानो, जैसे कि इस लोक में आकाश से सूर्य्य का उदय और अस्त होता है, गुप्तहोने पर बड़ा तेजस्वी काल उसको फिर लेआता है इसीप्रकार मैं भी सबजीवों के उपकार के लिये वराहरूप को धारण करके बड़े बल से, इस सागररूप मेखलाधारी जीवों के भार से आक्रान्त सब अंगों समेत इस पृथ्वी को गुप्त होजानेपर अर्थात्

हिरण्याक्ष के हरलाने पर पाताल से ऊपर को लाऊंगा फिर नृसिंहरूप होकर हिरण्यकशिपु दैत्य को बड़े बल से नखों के द्वारा विदीर्ण करके मारूंगा तदनन्तर विरोचन का पुत्र महापराक्रमी महाअसुर राजाबलि सब लोकों का और देव असुर राक्षसों का विरोधी होगा और इन्द्र को अपने इन्द्रासन से नीचे उतारेगा उसके हाथ से तीनों लोकों की विजय होनेपर और इन्द्र के पीठफेरने पर कश्यपजी से अदिति माता में मैंही बारहवां सूर्य्य उत्पन्न होऊंगा, हे नारद ! फिर महातेजस्वी इन्द्र को उसका राज्य दूंगा और देवताओं को नये सिरे से फिर अपने २ स्थानों पर नियत करूंगा, सब देवताओं के विरोधी पराक्रमियों में श्रेष्ठ दानवोत्तम राजा बलि को पाताल में स्थित करूंगा, त्रेतायुगमें भृगुवंश का रक्षा करनेवाला परशुरामअवतार भी मैंही होऊंगा और बड़े २ क्षत्रिय राजाओं को सेना समेत मारूंगा, त्रेतायुग में द्वापर के सन्ध्यांश होने पर मैं जगत् का स्वामी दशरथ का पुत्र रामचन्द्र नाम मर्य्यादा पुरुषोत्तम अवतार धारण करूंगा, प्रजापति के पुत्र एकत द्वितनाम ऋषि अपने त्रितनाम भाई के शाप से विपरीतरूप अर्थात् वानर के रूपों को धारण करेंगे, उन दोनों के वंश में जो बड़े पराक्रमी वानर इन्द्र के बल के समान प्रचण्ड पराक्रमी होंगे वही वानर देवताओं के कार्य्य में मेरी सहायता करेंगे फिर उस राक्षसों के स्वामी घोररूप पुलस्ति के कुल को दोष लगानेवाले भयानकरूप संसार के कण्टक रावण को उसकी सन्तान समेत मारूंगा, और द्वापर कलियुग की सन्धि के अन्त में कंसादिकों के मारने को मेरा कृष्ण नाम अवतार मथुरा में होगा वहां भी देवताओं के कण्टकरूप बहुत से दानवों को मारकर कुशस्थली द्वारकापुरी को अपना निवासस्थान बनाऊंगा उस पुरी में निवासी होकर अदिति माता के अप्रियकारी नरकासुर, भौमासुर, मुरु और पीठ नाम दानवों को मारकर नानाप्रकार के धनरत्नादिसंपन्न क्रीड़ा के योग्य प्राग्ज्योतिपनाम रमणीक पुर को द्वारका में लाऊंगा फिर बाणासुर के हितैषी लोकपूज्य युद्धकांक्षी महेश्वरजी को सेना समेत विजय करूंगा तदनन्तर हजार भुजाधारी राजाबलि के पुत्र बाणासुर को विजयकरके उस सौभनिवासी को मारूंगा जोकि गर्गऋषि के तेज से संयुक्त कालयवननाम से प्रसिद्ध होगा उसका वध मेरे हाथ से होगा। हे ब्रह्मन्! बड़ाबली सब राजाओं का विरोधी असुरों से बुद्धियुक्त जरासन्ध गिरिव्रज में राजा होगा उसका भी मरना मेरे ही बुद्धि की प्रेरणासे होगा, पृथ्वी के जितने पराक्रमी राजा हैं उन सब के इकट्ठे होनेपर धर्म के पुत्र राजायुधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल को मारूंगा और इन्द्र का पुत्र केवल एकअर्जुनही मेरा साथी और सहायक रहेगा युधिष्ठिर को उसके भाइयों समेत उसके राज्यपर नियत करूंगा लोक में यही प्रसिद्धि होगी कि देवताओं के कार्य्य के लिये आप श्रीनरनारायण

ऋषि युद्ध करके क्षत्रियों के समूहों को मारेंगे, इच्छानुसार पृथ्वी के भारको उतारकर सब यादव लोगों का और द्वारका का घोरनाश करूंगा फिर चारमूर्त्ति रखनेवाला मैं अनेक कर्मों को करके आत्मज्ञान में प्रवृत्त होके अपने लोकों को जाऊंगा हे उत्तम, ब्राह्मण! मेरे अवतारों के हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दशरथात्मज श्रीरामचन्द्र, कृष्ण और कल्की यह नाम हैं, फिर मैं गुप्तहोनेवाले वेद श्रुति को फेरकर जब लाया तब सतयुग में सब प्राणी वेद और श्रुति से संयुक्त कियेगये तुम ने भी पुराणों में सुनाहोगा कि मेरे बहुत से उत्तम २ अवतार पूर्वकाल में होचुके हैं, लोक के कार्य्यों को करके फिर अपने मूलमें प्रवेशकिया मेरा यह इसप्रकार का दर्शन ब्रह्माजी को भी कभी नहीं हुआ अब जो यहां तुझ एक निश्चयवाले बुद्धि के स्वामी से यह मैंने अपना गुप्त वृत्तान्त जिसको कि कोई नहीं जानता है तुझ भक्तिमान् से वर्णन किया, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार वह विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी भगवान् देवता यह सब वचनकहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगये फिर महातेजस्वी नारद ऋषि भी अभीष्ट मनोरथों को पाकर नरनारायणजी के दर्शन करने को बदरिकाश्रम को गये, उन नारायणऋषि ने सांख्ययोग और चारोंवेदों से संयुक्त पञ्चरात्रनाम महाउपनिषद् बनाया, हे तात! फिर नारदजी ने श्रीनारायणजी के मुख से निकलेहुए शास्त्रों में जैसे सुना और समझा था सब ब्रह्मलोक में जाकर सुनाया, युधिष्ठिर बोले कि इन बुद्धिमान् नारायणजी का यह माहात्म्य अपूर्व है इसको क्या ब्रह्माजी नहीं जानते थे जो नारद से सुना, ब्रह्माजी भी उसी से एकता रखते हैं वह उस बड़े तेजस्वी के प्रभाव को क्यों नहीं जानते थे, भीष्मजी बोले हे राजेन्द्र! हजारों महाकल्प और उत्पत्ति नाश व्यतीतहुए और संसारकी आदि उत्पत्ति में प्रभु ब्रह्माजी संसार के स्वामी कहेगये हैं इससे वह इस नारदजी से अधिक देवसृष्टि को जानते हैं, और उसीप्रकार से परमेश्वर को अपना उत्पत्तिस्थान जानते हैं, परन्तु ब्रह्मलोक में जो दूसरे सिद्धों के समूह इकट्ठे हुए उनसबके सुनाने को यह श्रेष्ठपुराण के समान वर्णनकिया हे राजन्! इसके पीछे इन सिद्धों के मुखसे सूर्य्यदेवता ने सुनकर अपने पीछे चलनेवाले ऋषियों को सुनाया जिनकी कि संख्या छयासठ सहस्र है और सूर्य्य के आगे पीछे स्तुति करते चलते हैं और उन आगे पीछे चलनेवाले ऋषियों ने भी सुमेरु पर्व्वतपर इकट्ठे होनेवाले देवताओं को यह उत्तम शास्त्र सुनाया, और देवताओं से सुन कर असित नाम ऋषिने अपने पितरोंको सुनाया, हे भारतवंशिन्, पुत्र! मेरे पिता शंतनु ने भी मुझ से कहा इसी से मैंने भी तुझ से वर्णनकिया, जिनदेवता मुनियों ने यह पुराण सुनाया है वह सबभी सब प्रकार से चारों और आत्माको पूजते हैं हे राजन्! यह ऋषिसम्बन्धी आख्यान क्रम से परम्परापूर्व्वक बहुतकाल से

प्राप्त है जो वासुदेवजी का भक्त नहीं है उसको तुम किसी दशा में भी देने को योग्य नहीं हो, हे राजन् ! तुम ने सैकड़ों अन्य आख्यान जो मुझ से सुने उन सबका यह सारभूत है, जैसे देवता असुरों ने समुद्र को मथकर अमृत को निकाला है उसीप्रकार पूर्वकाल में वेदपाठी ब्राह्मणों ने यह कथारूपी अमृत निकाला है अनन्य भक्ति का प्राप्तकरनेवाला और एकान्त में सावधान होकर जो पुरुष इसको पढ़ता है वा सुनता है, वह मनुष्य श्वेतद्वीप में प्राप्त होकर चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर सहस्ररश्मिवाले सूर्य्यदेवता के भीतर वर्त्तमान अन्तर्य्यामी महातेज में निस्सन्देह नियत होजाता है, इसीप्रकार जो रोगी इस कथा को प्रारम्भ से मन लगाकर सुनेगा उसका भारी भी रोग निवृत्त होगा और जो जिस बात की कामना करे वह कामना उसको प्राप्त होगी और भक्तपुरुष महाभक्तों की गति को पाता है, हे राजन् ! उस पुरुषोत्तम का पूजन तुम को भी करना उचित है वही संपूर्ण संसार का माता पिता और गुरु है, हे महाबाहो, युधिष्ठिर ! वह महाज्ञानी दुष्टों का नाशकर्त्ता षड़ैश्वर्य्याधिपति वेदब्राह्मणों की रक्षा करनेवाला भक्तों का सनातन देवता तेरे ऊपर प्रसन्न हो, वैशंपायन बोले कि, हे जनमेजय ! वह धर्मराज युधिष्ठिर और उसके वह सब भाई इस उत्तम आख्यान को सुनकर श्रीनारायणजी के भक्त होगये, हे भरतवंशिन् ! सरस्वती को उच्चारण करते हुए उस भगवान् पुरुष नरनारायण ने सदैव जप में प्रवृत्त होकर सबको विजय किया, और हमारे श्रेष्ठ गुरु श्रीवेदव्यासजी ने भी नारायणजी को स्मरणकरतेहुए मुख से उसी उत्तममन्त्र का जप किया, और अन्तरिक्षमार्ग के द्वारा अमृत के उत्पत्तिस्थान क्षीरसागरपर पहुँचकर देवेश्वर की पूजा करके फिर अपने आश्रम में निवास किया, भीष्मजी बोले कि यह नारदजी का कहा हुआ और मेरा वर्णनकिया हुआ आख्यान सब तैंने सुना यह परम्परा से एक से एक को मिलताहुआ चला आता है और पूर्व में मेरे पिता ने मुझ से वर्णनकिया, सूतजी बोले कि यह वैशंपायनजी का कहाहुआ सब आख्यान मैंने तुम से कहा उसको सुनकर जनमेजयने अपनी बुद्धिके अनुसार अच्छीरीतिसे अभ्यास किया हे नैमिषारण्यवासियो ! तुम सब तप और नियमके करनेवाले वेदज्ञों में उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण शौनकऋषि के महायज्ञ में वर्त्तमान हो तुम सब अच्छे हवनपूर्वक उत्तम यज्ञों में सनातन परमेश्वर का पूजनकरो ॥ १३५ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपञ्चषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

एकसौछयासठ का अध्याय ॥

शौनकजी बोले कि, वह षड़ैश्वर्य्यवान् ईश्वर यज्ञों में किस रीतिसे प्रथमभाग अर्थात् उत्तम भाग के भागी हुए और यज्ञधारी होकर सदैव वेद वेदांग के कैसे

जाननेवाले हुए वह भगवत्स्वरूप प्रभु शान्त और निवृत्तिधर्म में नियत है उसी भगवान् प्रभु ने निवृत्तिधर्म को धारणकिया और सब देवता किसप्रकार प्रवृत्तिधर्मों में भाग पानेवाले कियेगये और निवृत्तिधर्मवाले पुरुष किसरीति से निवृत्तिधर्मवाले हुए, हे सूतजी! इस हमारे गुप्त और प्राचीन सन्देह को निवारण करिये क्योंकि आपही से नारायण की हितकारी कथाओं को हम ने सुना है, यह सुन कर सूतपुत्र ने उत्तर दिया कि हे शौनक! राजाजनमेजय ने व्यासजीके शिष्य वैशंपायनजी से जो पूछा है उस प्राचीन वृत्तान्त को मैं तुम से कहता हूं कि बड़े ज्ञानी जनमेजयने इस जीवधारियों के अन्तरात्मा नारायणजीके माहात्म्यको सुनकर वैशंपायनजीसे पूछा, कि यह सब ब्रह्माआदि सब देवता मनुष्य असुरोंसमेत सफल कर्मों में प्रवृत्त संसारदृष्टआता हैं और हे ब्रह्मन्! आप ने मोक्ष को निर्वाण और परमानन्दरूप कहा इस लोक में जो पुरुष पुण्य पाप से रहित होकर मुक्त होते हैं, वह सूर्य्य के अन्तर्य्यामी अनन्त चैतन्यरूप में प्रवेश करते हैं यह हमने सुना है इससे यह सनातनमोक्षधर्म दुःख से करने के योग्य है, सब देवता जिस मोक्षधर्म को त्यागकर हव्य कव्य के भोक्ता हुए क्या यह ब्रह्मा, रुद्र और बलि का मारनेवाला इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, पृथ्वी और जो शेषदेवता हैं वह सब अपने नियत नाशआदि को नहीं जानते हैं इसकारण वह अचल अविनाशी न्यूनतारहित उत्तममोक्षमार्ग में नहीं नियत होते हैं और उसी नाशवान् प्रवृत्तिमार्ग में वर्त्तमान हैं और कालके व्यतीत होनेपर क्रियावान् पुरुषों में यह बड़ा दोष है हे ब्रह्मन्! इस सन्देहरूपी हृदय के बाण को इतिहासों के द्वारा निकालो मुझको अपूर्वबातोंके देखनेकी बड़ी उत्कण्ठा है, हे ब्राह्मण! देवता यज्ञों में भागलेनेवाले कैसे कहेगये औ कैसे पूजेजाते हैं हे ब्रह्मन्! जो देवता यज्ञों में भागको लेते हैं वह पूजित देवता आप अपने यज्ञों में किसको भाग देते हैं, वैशंपायन बोले कि हे राजन्! बड़ा आश्चर्य्यकारी आपने प्रश्नकिया यह प्रश्न उस मनुष्यसे जिसने तपस्या नहीं की है और वेद को भी नहीं जानता है अथवा पुराण को भी सुना वा पढ़ानहीं है शीघ्र कहना असंभव है अच्छा जैसे कि पहले गुरुजी से मैंने पूछा है उस के अनुसार तुझसे कहता हूं मेरे गुरु वेदों के विस्तार करनेवाले द्वीपनिवासी कृष्णनाम व्यास महर्षि हैं और सुमन्त, जैमिनि, सुव्रतपैल, और चौथा मैं पांचवें शुकदेवजी इन पांचों शान्तचित्त क्रोधरहित जितेन्द्रिय शिष्यों के इकट्ठे होनेपर उन्हों ने वेदों को पढ़ाया इनमें पांचवां महाभारत है, पर्व्वतों में श्रेष्ठ क्रीड़ायोग्य सिद्ध चारणआदि से व्याप्त सुमेरु के किसी भाग में उन वेद पढ़नेवाले शिष्यों ने किसी समय सन्देह किया और व्यासजी ने इसी तुम्हारे प्रश्नको उनसे कहा और मैंने भी सुना उसीको हे भरतवंशिन्! अब मैं तुझ से कहताहूं, सब अज्ञातदोषोंके दूरकरनेवाले पराशरजीके पुत्रव्यासऋषिने शिष्योंके

वचनोंको सुनकर यह वचन कहा कि हे उत्तम, शिष्यलोगो! मैंने भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों के जानने के निमित्तही बड़ी तपस्या की थी क्षीरसागर के समीप शान्तचित्त तपपरायण मुझ त्रिकालज्ञ होनेवाले के मनोरथ को श्रीनारायणजी ने अपनी कृपा से पूर्ण किया अर्थात् वह ज्ञान मुझको उत्पन्न हो-गया उसको न्याय के अनुसार यथार्थ तुम से कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो, मैंने कल्प के प्रारम्भमें ज्ञानरूप दृष्टि से जैसा वृत्तान्त देखाहै और सांख्य वा योग जाननेवाले पुरुषों ने जिसको परमात्मा वर्णनकिया है वह अपने कर्म से महा-पुरुष नाम कहलाता है उससे अव्यक्त हुआ जिसको ज्ञानी प्रधान कहते हैं, संसार की उत्पत्तिके निमित्त अपनी इच्छासे अव्यक्त ईश्वर व्यक्तरूप हुआ वह लोकों में महान् आत्मा अनिरुद्ध कहाजाता है, जिसने अपने प्रकट होनेके पीछे ब्रह्माको उत्पन्न किया वह अहंकार नाम प्रसिद्ध हुआ वह सब तेजों का रूप है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पञ्चमहाभूत पांच रीति के द्वारा अहंकार से उत्पन्न हैं महाभूतों को उत्पन्न करके गुणों को उत्पन्न किया और पञ्चमहाभूतों से सब देह उत्पन्नहुए उनको सुनो, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, महात्मा वशिष्ठ, स्वायम्भुवमनु यह आठ प्रकृति अर्थात् उत्पत्तिस्थान जानने के योग्य हैं इन्हीं में लोक नियत हैं लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उन वेदवेदांग यज्ञ और यज्ञों के अंगों से संयुक्त ऋषियों को लोकसिद्धि के लिये उत्पन्न किया उन आठों प्रकृतियों से यह विश्वरूप संसार उत्पन्न हुआ, फिर क्रोधरूप रुद्र पुरुष उत्पन्नहुए उन्होंने आप जिन देशों को उत्पन्न किया वह ग्यारहरुद्र रूपान्तर करनेवाले पुरुष कहेगये वह रुद्र प्रकृति, और सब देवर्षि लोग लोक की सिद्धि के निमित्त उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के पास नियत हो कर बोले कि हे भगवन्! अनेकरूपधारी पितामह आप ने हमको उत्पन्न किया है इससे जो जिस अधिकार की योग्यता रखता है उस को उस अधिकार पर नियत करना योग्य है आप ने जो संसार के कामों का विचार करनेवाला पद हम को दिया है वह उस अहंकारकर्त्ता से कैसे रक्षा कियाजायगा, जो अ-धिकार के कामों का विचार करनेवाला हैं उस के पराक्रम उत्पन्न करनेवाले कर्म को बताओ यह बात सुनकर उस बड़े देवता ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि हे देवताओ! तुमने मुझ को खूब जताया तुम्हारा कल्याण हो मुझ को भी यही चिन्ता हुई थी जो तुम चाहते हो सम्पूर्ण त्रिलोकी का दृढ़ बीजरूप परिग्रह किसप्रकार करने के योग्य है और हमारे तुम्हारे शरीर का बल किस रीति से नाश न हो, यहां से हम सब उस लोकसाक्षी गुप्तपुरुष के धाम को चलें वह हमारे हित की बात कहैगा, तदनन्तर लोक के हितकारी वह ऋषि देवता ब्रह्माजी समेत क्षीरसागर के उत्तरीय तटपर गये, और सब ब्रह्माजी के बनाये हुए

वेद से कल्पित तपों में प्रवृत्तहुए वह तपचर्य्या महानियम नाम बड़ेभारी दुःखों से भी असह्य है, कि जिनकी दृष्टि और भुजा ऊपर को थीं और एकाग्रचित्त था इस स्वरूप से सब एक चरण से नियत होकर काष्ठ के समान दृढ़ हो के साव-धान हुए उन्होंने दिव्य हज़ारवर्ष घोर तपस्या को करके उस मधुरवाणी को सुना जो कि वेद वेदांग से शोभित थी, श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मा समेत सब देवता और तपोधन ऋषिलोगो ! मैं तुम सबकी कुशल क्षेम पूछकर इस उत्तम वचन को सुनाता हूं, मैंने तुम्हारे प्रयोजन को जाना वह लोक का बड़ा हितकारी है प्रवृत्तियुक्त तुम्हारे बल की बुद्धि करनेवाला कर्म्म तुमको करना उचित है हे देवताओ ! तुम ने मेरे आराधन की इच्छा से अच्छा तप किया हे बुद्धिमानो ! तुम इस तप के उत्तम फल को पावोगे यह ब्रह्मा लोकों का बड़ा मान्य और पितामह है हे देवताओ ! तुम बड़ी सावधानी से मेरा पूजन करो तुम सबयज्ञों में मेरे भागों को सदैव कल्पना किया करो मैं भी तुम्हारे अधिकार के समान सब का कल्याण करूंगा, वैशम्पायन बोले कि सब देव ऋषियों ने उस परमपुरुष के इन वचनों को सुनकर वेदोक्तरीतियों से बुद्धि के अनुसार विष्णुयज्ञ की रचना की उसयज्ञ में आप ब्रह्माजी ने सदैव के लिये सबका भाग नियत किया, देवता और देवर्षियों ने अपने २ भाग को कल्पना किया वह देवता आदि सब सतयुग का धर्म रखनेवाले थे और उनके भाग बड़े ऊँचे थे उनको सूर्य्य का सा वर्ण महावरदायी सर्वगामी तेजमय पुरुष कहते हैं, तदनन्तर उस अदेहरूप आकाश में नियत महावरदायी ईश्वर ने उन सब नियत देवताओं से यह वचन कहा कि जिसने जो विभाग विचार किया है वह वैसेही मुझ को प्राप्त होगा मैं बहुत प्रसन्न हूं अब प्रवृत्ति लक्षणवाले फल को कहता हूं, हे देवताओ ! मेरी प्रसन्नता से उत्पन्न होनेवाला यह तुम्हारा लक्षण है कि उत्तम पूरी दक्षिणावाले यज्ञों से आप पूजन करनेवाले तुम सब हरएक यज्ञ में प्रवृत्ति फल के भोगनेवाले होजाओ जो मनुष्य अन्यलोकों में भी यज्ञों से पूजनकरेंगे वह मनुष्य वेदकल्पित तुम्हारे भी भागों को विचारकरेंगे उस महायज्ञ में जिसने मेरेभाग को जिसरीति से विचार किया है वह उसीप्रकार वेद सूत्र में यज्ञभाग के योग्य कियाहुआ यज्ञभाग और फल के योग्य तुम देवता लोगों को पोषणकरो, लोक में सब बातों के विचारनेवाले और प्रवृत्तिफल से सत्कारपानेवाले तुम सब देवता अपने २ अधिकार के अनुसार जिन २ कर्मों को करोगे उनसे बल-वान् होनेवाले तुमसब अन्य लोकों को भी धारण करोगे सब यज्ञों में मनुष्यों के पूजन आदि से ध्यान कियेहुए तुमसब फिर मुझ को ध्यानकरो तुम्हारी ओर से यह मेरीही भक्ति है इस आशय से औषधियों समेत सब वेद और यज्ञ उत्पन्न कियेगये हैं, इन वेदादिकों का पृथ्वीपर अच्छे प्रकार से प्रचार और अभ्यास

होने से देवता तृप्त होते हैं यह तुम्हारी उत्पत्ति जो कि प्रवृत्ति गुण से कल्पित है वह मैंनेही तवतक के लिये की है जबतक कि कल्पना का अन्त हो हे ईश्वरो ! तुम अपने अधिकार के अनुसार लोकों का हित विचार करो मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ यह सातों ऋषि हैं मैंने उनको मन से उत्पन्न किया है, यह महावेदज्ञ वेद के आचार्य्य विचार किये गये हैं और प्रवृत्ति धर्म में युक्त होने से वही लोग प्रजापति भाव में भी कल्पना किये हैं, यह क्रियावानों का मार्ग प्रत्यक्षरूप और सनातन है इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला प्रभु अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध है यह रजोगुण प्रधान पुरुषों का प्रवृत्तिमार्ग वर्णन किया, अब सतोगुण प्रधान पुरुषों के निवृत्त मार्ग को कहते हैं—सन, सनत, सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल, और सातवें सनातन, यह सातों ऋषि ब्रह्माजी के मानसी पुत्र हैं और आप से आप विज्ञान प्राप्त करनेवाले निवृत्ति धर्म्म में नियत हुए, यह सब योग और सांख्य के उत्तमज्ञाता धर्मशास्त्रों के आचार्य्य और मोक्षधर्म के जारी करनेवाले हैं, इनके मार्ग और अधिकार का विभाग कहांसे है इसको कहते हैं—जिससे कि अव्यक्त के तीन गुण रखनेवाला महा अहंकार प्रथम उत्पन्न हुआ उससे भी जो परे है उसको क्षेत्रज्ञ नाम से कल्पित किया है, सो हम यह जो निवृत्ति मार्ग है वह आवा-गमन रखनेवाले क्रियावान् पुरुषों को कठिनता से प्राप्त होता है, जो जीव जिस २ कर्म में जिस रीति से प्रवृत्ति वा निवृत्ति धर्म में नियत कियागया है वह उस २ के बड़े फल को पाता है यह ब्रह्मा लोकों का गुरु संसार आदि का उत्पन्न करनेवाला प्रभु है, माता पिता है और मेरा उपदेश कियाहुआ तुम्हारा पिता-मह है और जीवधारियों को वर का देनेवाला होगा, इनके पुत्र रुद्रजी जो ललाट से उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजी के उपदेश से सब जीवों के धारण करनेवाले होंगे तुम अपने २ अधिकारों को प्राप्त करके बुद्धि के अनुसार विचारकर सब लोकों में धर्मक्रियाओं को शीघ्रजारी करो विलम्ब मतकरो, जीवों की कर्मग-तियों का उपदेश करो हे देवताओ ! यहां मनुष्यों की आयुर्दा पूर्ण होती है, क्योंकि यह सतयुग नाम उत्तम समय जारी हुआ इस युग में यज्ञपशु नहीं मारे जायँगे और इसमें सब धर्म्म चारों चरणयुक्त होंगे इसके पीछे त्रेतायुग नाम आवेगा इसमें तीन चरण धर्म के रहेंगे, और संस्कार कियेहुए पशु यज्ञों में मारे जायँगे उसमें धर्म का चौथा चरण नहीं होगा तिसके पीछे द्वापर नाम युग होगा उसमें धर्म के दोही चरण होंगे उसके पीछे चौथा कलियुग नाम समय होगा उसमें एक चरणही धर्म का रहैगा अर्थात् जहां तहां कोई कहीं धर्म को करेगा इस प्रकार से कहनेवाले गुरु से देवता और देव ऋषियों ने सुनकर कहा कि जब धर्म एक चरण होकर जहांतहांहीं होगा तब हमलोगों को किसप्रकार से

कर्म करना उचित होगा उसको आप कहिये श्रीभगवान् बोले कि, हे उत्तम, देवताओ! जिस स्थानपर वेद, यज्ञ, तप, सत्य, शान्तचित्तता और अहिंसा आदि धर्म वर्त्तमान हों वहां विचरो वही देश तुम्हारे सेवन करने के योग्य है अधर्म तुम को कभी स्पर्श न करेगा, व्यासजी बोले कि भगवान् से शिक्षा किये हुए वह सब देवता और ऋषियों के समूह भगवान् को नमस्कार करके अपनी रुचि के देशों को गये, देवता आदि के चलेजाने पर अकेले ब्रह्माजी उस अनिरुद्ध देह में नियत होकर भगवत् के दर्शन की अभिलाषा से वहीं स्थिर रहे, तब भगवान् ने हयग्रीवरूप धारण कर कुण्डल और कमण्डलु हाथ में लिये उन ब्रह्माजी के सन्मुख आकर चारोंवेदों को अंगों समेत वर्णन किया, व्यास जी बोले कि इसके पीछे संसार के स्वामी ब्रह्माजी उस महातेजस्वी नारायण को घोड़े के स्वरूप में देखकर लोकों के हित की इच्छा से उस वरदायी को नमस्कारकर हाथ जोड़के उसके आगे नियत हुए तब उस देवता ने उनसे स्नेह पूर्व्वक मिलकर यह वचन कहा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार लोक के कामों की सब दशाओं को विचारो तुमहीं सबजीवों के धाता अर्थात् पालनेवाले प्रभु और गुरु हो मैं तुम्हारे सुपुर्द पृथ्वी का भार रखकर शीघ्रही शान्तता को प्राप्त होजाऊंगा, जब देवताओं का कोई कार्य्य तुम्हारी सामर्थ्य से बाहर होगा तब आत्मज्ञान का उपदेश करनेवाला मैं अवतार धारण करूंगा, ऐसा कह वह हयग्रीवरूप नारायण उसीस्थानमें अन्तर्द्धान होगये और उनसे उपदेश पायेहुए ब्रह्माजी भी शीघ्र अपने लोक को गये, हे महाभाग! इसप्रकार से यह कमलनाभ सनातन देवता सदैव यज्ञों का धारण करनेवाला यज्ञों में उत्तमभाग का लेनेवाला हुआ, और अविनाशी धर्मधारी पुरुषों की निवृत्ति धर्म नाम गति को प्राप्तहुआ और अपूर्व संसार को उत्पन्न करके प्रवृत्ति धर्मों को विचारनेलगा, वही आदि मध्य अन्त है वही प्रजापालक और ध्यान के योग्य है वही कर्त्ता वही क्रिया और उसीने युगों के अन्त में सबको अपने में लय करके शयन किया और फिर उसी युगकी आदि में जगनेवाले ने संसारको प्रकट किया उस महात्मा निर्गुण देवता के अर्थ नमस्कार करो और उस अजन्मा विश्वरूप सब देवों के धाम स्वरूप को नमस्कार करो, महाभूतों के स्वामी रुद्रों के अधिपति द्वादश सूर्य्यों के प्रकाशक वसुओं के और अश्विनीकुमारों के, मरुद्गणों के वेद यज्ञ और वेदांगों के स्वामी को भी प्रणाम करो, समुद्र में स्थित हररूप मुञ्जकेशि शान्तस्वरूप सब जीवों को मोक्षधर्म के उपदेश करनेवाले तप, तेज, यश, वचन, सरिता, कपर्दी, वराह, एकशृंग, विवस्वत, अश्वशिर, चतुर्मूर्त्तिधारी गुह्य, ज्ञान, दृश्य, अक्षर, क्षर, सर्वत्रगति, अव्यय, न्यूनाधिकरहित इन रूपों से आनन्द पूर्वक विचरनेवाले को नमस्कार करो, यह परब्रह्म विज्ञान नेत्रों से जानने के

योग्य है, मैंने भी पूर्वसमय में इसीप्रकार ज्ञानदृष्टि से उसको देखा था और मैंने तुम लोगों से मूलसमेत यथातथ्य वर्णन किया है शिष्यलोगो ! मेरे वचनों को मानकर उसी हरि का सेवन करो उसी को वेदों के शब्दों से गाओ और बुद्धि के अनुसार पूजनकरो, वैशम्पायन बोले कि हम सब शिष्य और उनके पुत्र महातेजस्वी शुकदेवजी उन बुद्धिमान् वेदव्यासजी से उपदेश किये गये, हे राजन् ! उन हमारे उपाध्यायजी ने हमलोगों समेत चारोंवेदों की ऋचाओं से उस ईश्वर की स्तुति को किया यह जो तुम ने पूछा सो सब वर्णन किया, यह सब पूर्वकाल में गुरु व्यासजी नेही हम से कहा है, जो सावधान बुद्धिमान् पुरुष भगवान् को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके सदैव इस उपाख्यान को सुने वा सुनावैगा, वह नीरोग बुद्धिमान् पराक्रमी होगा और रोगी रोग से निवृत्त हो जायगा और बद्ध मनुष्य बन्धन से छूटता है, इच्छावान् मनोरथों को और आयुर्दा चाहनेवाले दीर्घायु को और ब्राह्मण सब वेदों का प्राप्त करनेवाला होता है क्षत्रिय विजय को वैश्य बहुत लाभ को शूद्र सुख को अपुत्री पुत्र को कन्या सुन्दर पति को पाती है गर्भवती स्त्री आनन्द से निवृत्तहोवे और पुत्र को उत्पन्नकरै बन्ध्या प्रसव पावे पुत्र पौत्र धन संयुक्तहोय और जो मनुष्य मार्ग में इसको पढ़े वह आनन्द से मार्ग व्यतीत करे, जो जिस कामना को चाहै वह अवश्य उस मनोरथ को पाता है, इसप्रकार से उस महात्मा पुरुषोत्तम के इस वचन को जो अच्छेप्रकार से निश्चय कियाहुआ था राजा से महर्षि ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया इस देवता और ऋषियों के समाज को सुनकर भक्तलोग आनन्द को पाते हैं ॥ १२१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेषट्षष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

एकसौसरसठ का अध्याय ॥

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि, हे भगवन् ! व्यासजी ने शिष्योंसमेत जिन नानाप्रकार के नामों से इन मधुसूदनजी की स्तुति करी उसका मुख्य हेतु क्या है इसको आप कृपा करके मुझे समझाइये जिससे कि मैं प्रजापतियों के स्वामी हरि की कथा को सुनकर अपने पापों से ऐसे शुद्ध होजाऊं जैसे कि शरदऋतु का चन्द्रमा निर्मल होता है, वैशम्पायन बोले कि हे राजन् ! उस प्रसन्न भगवान् ने अपने नामों के सर्वज्ञता आदि गुण और संसार की उत्पत्ति का क्रम और मूल कारण श्रीकृष्णरूप होकर अर्जुन से कहा है और शत्रुहंता अर्जुन ने उन महात्मा श्रीकृष्णजी के कहेहुए नामों का मूल हेतु उन्हीं से पूछा था कि हे षड़ैश्वर्य्यमान, त्रिकालज्ञ, सबके स्वामिन्, सर्वतेजोमय, जगन्नाथ, सबके अभय देनेवाले, देवदेवेश्वर ! आप के जिन नामों को महर्षियों ने वर्णन

किया है और जो वेद पुराणों में गुप्त हैं उनसबके मूल हेतु को आप से सुना चाहता हूं हे प्रभो, केशवजी ! आप के सिवाय आप के नामों के मूल हेतु को दूसरा नहीं वर्णन करसक्ता है श्रीभगवान् बोले कि हे अर्जुन ! ऋक्, यजु, साम, अथर्वण यह चारों वेद पुराण और उपनिषद, ज्योतिष, सांख्य, योगशास्त्र और अन्य वैद्यक आदि शास्त्रों में भी मेरेबहुत से नाम ऋषियों ने वर्णन किये हैं उनमें कोई नाम तो गुण संयुक्त और कोई कर्म से उत्पन्न हैं उनको तुम सावधानी से सुनो हे तात ! पूर्वसमय में तुम्ही हमारे अर्द्धांग कहे जाते थे उस महातेजस्वी जीवमात्रों के परमात्मा यजस्वी निर्गुण सगुणरूप विश्वरूप नारायण के अर्थ नमस्कार है जिसकी प्रसन्नता से ब्रह्मा क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए और सब जड़ चैतन्यों का उत्पत्ति स्थान है हे सतोगुणियों में श्रेष्ठ ! वह जो प्रकाश आदि अठारह गुणों की धारण करनेवाली मेरी परा प्रकृति स्वर्ग पृथ्वी रूप लोकों को योग से धारण करनेवाली है वह कर्म्मफलरूप बाधा से रहित चिन्मात्ररूप अविनाशी अजया नाम लोकों की आत्मारूप है उसी प्रकृति से उत्पत्ति नाश की सब विपरीत दशा प्राप्त होती हैं तप यज्ञ और यज्ञकर्ता पुराणपुरुष विराट् लोकों का उत्पत्ति और लय स्थान इन नामों से नामी अनिरुद्ध कहाजाता है हे कमललोचन, अर्जुन ! ब्रह्माजी की रात्रि के अन्त होनेपर उस बड़े तेजस्वी अनिरुद्ध की इच्छा से कमल उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए यह ब्रह्मा उसी की प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ है इसी प्रकार उस देवता के क्रोध होने पर ललाट से सायंकाल के समय संसार के नाशकर्ता रुद्र नाम पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों देवता प्रसन्नता और क्रोध से उत्पन्न होते हैं और उसकी आज्ञा से यह दोनों संसार की उत्पत्ति और नाश के करनेवाले हैं यहां वह दोनों कारण रूप होकर सब जीवों के वर देनेवाले हैं, हे अर्जुन ! गंगाजल से पूर्ण जटा मुण्डधारी श्मशानवासी उग्रव्रत परायण महायोगी रुद्रजी बड़े भयानकरूप, दक्षप्रजापति के यज्ञ के विध्वंसी और भग नाम देवता की आंख निकालनेवाले हर एक युग में नारायण रूप समझने के योग्य हैं उस देवदेवेश्वर महेश्वरजी के पूजित होने से प्रभु नारायण देवही की पूजा समझी जाती है इससे इनकी पूजा सदैव अच्छे प्रकार से सबको करना योग्य है, हे पाण्डवनन्दन ! मैंहीं सब लोकों का आत्मा हूं इसी कारण प्रारम्भ में अपने आत्मारूप शिवजी का पूजन करता हूं जो मैं सबके ईश्वर वरदाता शिवजी का पूजन नहीं करूं तो फिर कोई आत्मा को पूजन नहीं करे मुझ शुद्ध अन्तःकरण का यह मत है कि यह लोक मेरी जारी करी हुई प्रमाणीक मर्य्यादाओं पर अच्छेप्रकार से कर्म करनेवाला होता है और प्रमाणीकही पूजन के योग्य हैं इसहेतु से मैं उनको पूजता हूं, जो उन शिवजी

को जानता है वह मुझ को भी जानता है और जो उनके सन्मुख है वही मेरे भी सन्मुख है शिव और नारायण दोनों एकही आत्मा हैं केवल रूप में दो हैं परन्तु वास्तव में एकही हैं हे अर्जुन ! वह शिवजी लोकों में विचरते हैं और सब कर्मों में प्रत्यक्षरूप से नियत हैं हे पाण्डव ! मेरे वरदेने के योग्य कोई नहीं है, मैंने इसप्रकार विचारकर पुत्र के निमित्त आत्मा के द्वारा उस आत्मारूप पुराणपुरुष ईश्वर शिवजी का आराधन किया, विष्णु अपनी आत्मा के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करते इस कारण से रुद्रजी का स्मरणकरता हूं, ऋषियों समेत सब ब्रह्मा रुद्र देवता इस देवदेव नारायण हरिको पूजन करते हैं हे अर्जुन ! सब वर्त्तमान भविष्यत् देवताओं में श्रेष्ठतम विष्णुजी सदैव सेवा करने के योग्य हैं, इससे हे कुन्तीनन्दन ! तुम हव्य देनेवाले विष्णुजीको नमस्कार करो इसीप्रकार शरणदाता वरदाता और हव्य कव्य भोजन करनेवाले को सेवन करो, चारप्रकार के मेरे भक्त होते हैं उनमें भी अनन्यभक्त महाउत्तम हैं अर्थात् आत्मा के ही उपासक हैं, उन अनिच्छावान् भक्तों को मैंही गति हूं इनके विशेष जो बाकी के तीन प्रकार के भक्त हैं वह कर्मफल के चाहनेवाले हैं, वह विनाशवान् धर्मवाले हैं और ज्ञानी उत्तमफल का पानेवाला है ब्रह्मा महादेव और जो अन्य देवता हैं उनके सेवन करनेवाले ज्ञानीपुरुष मुझ को ही प्राप्त होते हैं हे अर्जुन ! भक्ति के विषय में यह मुख्यता तुम से वर्णन की, हे कुन्तीनन्दन ! तुम और हम नरनारायण कहाते हैं हम दोनों पृथ्वी के भार उतारने को मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हैं हे अर्जुन ! मैं अध्यात्म को जानता हूं और जो हूं और जिससे प्रकट हूं उसको भी जानता हूं और निवृत्ति प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म को भी जानता हूं और मैं ही सनातन अकेला जीवात्मा का भी उत्पत्ति स्थान कहाता हूं अर्थात् मुझ विम्बरूप में प्रतिबिम्बरूप जीव कल्पित होते हैं और मुख्यता का ज्ञान होनेपर केवल बिम्बही शेष रहजाता है दूसरे जीवात्मा से सम्बन्ध रखनेवाले शरीर नारायण नाम हैं क्योंकि शरीर जीवात्मा से मिलेहुए हैं वह मोक्ष से पहले उपाधि दशा में मेरा निवास स्थान है इसीहेतु से मेरा नारायण नाम है, जैसे सूर्य्य उदय होकर अपनी किरणों से सब को प्रकाशित करता है उसीप्रकार मैं भी अपने प्रकाश से इस संसार को व्याप्त करता हूं और सब जीवों का निवास स्थान हूं इस हेतु से मेरा वासुदेव नाम है, सब जीवों का लयस्थान हूं और मुझी से सब प्रकट होते हैं आकाश स्वर्ग और पृथ्वी सब व्याप्त है प्रकाश भी मेरा अधिक है और जीवमात्र अपने शरीर त्यागने के समय जिस ब्रह्म को स्मरण करते हैं वह भी मैंही हूं इस अर्थ परम्परा से मेरा नाम विष्णु है, सबमन शुद्ध और शान्तचित्त से मेरीही इच्छा करते हैं और दमदामनामस्वर्ग, अन्तरिक्ष, और पृथ्वी मेरेही उदरमें हैं इस हेतु से मेरा दामोदर

नाम है, अन्न, वेद, जल, अमृत, यह सब पृश्णि नाम कहेजाते हैं सो सब मेरे गर्भस्थान हैं इसहेतु से मेरा नाम पृश्णिगर्भ है, ऋषियों ने इच्छाओं में प्रवृत्त कियेहुए त्रितऋषि को जतलाकर ऐसा मुझ से कहा कि हे पृश्णिगर्भ! एकत और द्वित के हाथ से गिराये हुए त्रित ऋषि की रक्षाकरो, तदनन्तर वह ब्रह्मा जी का पुत्र प्राचीन और ऋषियों में श्रेष्ठ त्रित पृश्णिगर्भ का जप करने से इच्छा से निवृत्तहुआ, लोकों को तप्त वा प्रकाशमान करनेवाले सूर्य्य, अग्नि, चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाश करती हैं वह मेरे केश अर्थात् बाल कहेजाते हैं इसी कारण सर्वज्ञ पुरुष मुझ को केशवनाम से पुकारते, हैं महात्मा उतथ्य ऋषि ने अपनी स्त्री में गर्भस्थापन किया और दैवयोग से उतथ्य ऋषि के कहीं चलेजाने पर बृहस्पतिजी ने उस महात्मा की स्त्री को एकान्त में पाकर विषय की वासना की उस समय हे अर्जुन! स्त्री के गर्भ में से उतथ्यके पञ्चभूतात्मक पुत्र ने बृहस्पति जी से यह कहा कि हे वरदाता! मैं प्रथम आगया हूं तुम मेरी माता को दुःख देने के योग्य नहीं हो बृहस्पतिजी ने यह सुनकर क्रोध में होकर उसको शाप दिया कि मेरे विषय करने को जो तुमने रोका है इसहेतु से तुम निस्सन्देह अन्धे उत्पन्न होगे तब उनके शाप से वह जन्मान्ध होगये इसी से वह ऋषि दीर्घतमा नाम से प्रसिद्ध हुए और सनातन ऋषि से उसने अंग और उपअंगों समेत चारों वेदों को पढ़ा और शुद्ध अन्तःकरण से मेरे इस गुप्त केशव नाम को रीतिपूर्व्वक वारंवार जपा इस जप के प्रताप से वह दृष्टियुक्त होगये और इसी हेतु से उनका नाम गौतम हुआ हे अर्जुन! इसप्रकार से यह मेरा केशव नाम सब देवता और ऋषियों को वर का देनेवाला है, चन्द्रमासमेत अग्नि ने एकही उत्पत्ति स्थान को प्राप्तकिया इसीहेतु से यह जड़ चैतन्यरूप जगत् अग्निसोम रूप है, यह भी वृत्तान्त प्राचीन सिद्ध होता है कि अग्नि और चन्द्रमा एकस्थान में ही उत्पन्न होनेवाले हैं और अग्निको आगे रखनेवाले हैं और एकही स्थान से उत्पन्न होने के कारण परस्पर पूजित होकर लोकों को धारण करते हैं॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्तषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १६७॥

एकसौअरसठ का अध्याय॥

अर्जुन बोले कि, हे मधुसूदनजी! पूर्वसमय में अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार से एक ही योनि में प्राप्त हुए इस मेरे सन्देह को निवृत्तकरो, श्रीभगवान् बोले हे पाण्डुनन्दन, अर्जुन! बहुतश्रेष्ठ है मैं अपने तेज से प्रकट होनेवाले प्राचीन वृत्तान्त को तुम से कहता हूं तुम एकाग्रमन से सुनो, युगों की हज़ार चौकड़ियों के अन्त में प्रलयकाल के वर्त्तमान होने और सब स्थावर जंगम जीवों के अव्यक्त में लय होनेपर, और वायु अग्नि पृथ्वी से रहित महाअन्धकारयुक्त

लोक के एकरस ब्रह्मरूप होनेपर और उस एकरस अद्वैत ब्रह्म को अपनी म-हिमा में नियत होनेपर दिन, रात्रि, प्रधान आकाश परिमाणु आदि और सबल माया के वर्त्तमान होनेपर, नारायण के गुण ऐश्वर्य्य आदि की रक्षा से पुरीरूप देहों में शयन करनेवाले अविनाशी हरि उस अन्धकार के भीतर से प्रकट हुए यद्यपि वास्तव में अविनाशी अजर इच्छा से रहित अग्राह्य गुप्त सत्यवक्ता व्यवहारों से जुदे हिंसा से रहित चिन्तामणि के समान भावरूप नानाप्रकार की निजवृत्तियों से युक्त द्वैपतारहित जरामृत्यु विना रूपरहित सब का स्वामी और सनातन वेद प्रमाण है तौ भी उससमय सब सदसत रात्रि दिन इत्यादि कोई भी न था केवल अन्धकाररूप विश्व था वही विश्वरूप परमेश्वर की रात्रि थी उस अन्धकार से प्रकट होनेवाले ब्रह्मयोनि पुरुषोत्तम सगुण ब्रह्म के प्रकट होने पर संसार के उत्पन्न करने की इच्छा करनेवाले उस पुरुष ने अपने नेत्रों से अग्नि और चन्द्रमा को उत्पन्न किया उससे भूतसर्ग के उत्पन्न होनेपर संसारी परम्परा में से ब्राह्मणों का वंश क्षत्रियों के वंश के पास नियत हुआ जो चन्द्रमा है वही ब्रह्म है जो ब्रह्म है वही ब्राह्मण है जो अग्नि है वही क्षत्रियों का वंश है और क्षत्रियों के वंश से ब्राह्मणों का वंश बड़ा बलवान् है कारण यह है कि यह गुण लोक के दृष्टिगोचर है कि प्रथम ब्राह्मणों से उत्तम कोई नहीं हुआ इसका हेतु यह है कि जो ब्राह्मणों के मुख में हवन करता है वह प्रत्यक्ष प्रकाशित अग्नि में हवन करता है इस हेतु से मैं कहता हूं कि ब्राह्मण से भूतसर्ग उत्पन्न किया गया है और हवनों को ही प्रतिष्ठा करके तीनोंलोक धारण कियेजाते हैं और मन्त्रवादी भी ब्राह्मण के माहात्म्य को प्रकट करता है कि हे अग्ने ! तुम देवता मनुष्य और संसार के हितकारी हो क्योंकि तुम यज्ञों के होता हौ तात्पर्य्य यह है कि अग्नि का होता ब्राह्मण अग्नि से भी अधिक है वेद भी इसकी गवाही देता है हे अग्ने ! तुम यज्ञों को और विश्वेश्वर आदि देवताओं के होताओं के होता हौ अथवा विश्वेश्वर आदि देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाले यज्ञों के होता हौ और तुम देवता मनुष्यों के ही हेतु से संसार के हितकारी हौ, और अग्नि ही यज्ञों का होता अर्थात् ऋत्विज् है और कर्त्तारूप यजमान भी वही है और वही अग्नि ब्राह्मण है, विना मन्त्रों के हवन नहीं है और विना पुरुष के तप नहीं होता है हव्य ही मन्त्रों की पूरी पूजा है इसी कारण तुम देवता मनुष्य और ऋषियों के होता हो यह वचन योग्य है कि जो पुरुष मनुष्यों में हवन का अधिकार रखनेवाले हैं वह ब्राह्मण के ही याजन को कहते हैं क्षत्रिय और वैश्य के याजन को नहीं कहते इसकारण अग्निरूप ब्राह्मण [illegible] धारण करते हैं अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य भी विना ब्राह्मण की सहायता [illegible] समझके उन यज्ञों से देवताओं की तृप्ति होती है और देवता सब

पृथ्वी के जीवों का पोषण करते हैं और सत्पथ नाम वचन का अर्थ है कि वह देवताओं की तृप्ति ब्राह्मण के मुख में होती है अर्थात् अग्नि में हवन करने से ब्राह्मण तृप्त नहीं होता है और ब्राह्मण के मुख में हवन करने से अग्नि आदि देवता ब्राह्मण के मुख में प्रवेश करके उसको धारण करतेहुए उसकी तृप्ति से आप भी तृप्त होजाते हैं, वह ज्ञानी देदीप्य अग्नि में हवन करता है जोकि ब्राह्मण के मुख में आहुति को होमता है, इसप्रकार होनेपर भी अग्नि रूप ज्ञानी ब्राह्मण अग्नि को पूजते हैं क्योंकि सर्वव्यापी अग्नि सब जीवधारियों में प्रवेश करके प्राणों को धारण करता है इसस्थानपर सनत्कुमारजी के कहेहुए श्लोक भी प्रमाण होते हैं सबके आदि रूप ब्रह्माजी ने प्रथम इस विश्व को पैदाकिया जोकि उनके सिवाय दूसरे की सृष्टि नहीं है ब्राह्मणयोनि में जन्म लेनेवाले देवता वेदघोष के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं ब्राह्मणों के जो बुद्धि, वचन, कर्म, श्रद्धा, और तप हैं वह पृथ्वी और स्वर्ग को ऐसे धारण करते हैं जैसे कि दही दूध आदि को छींका धारण करता है, सत्यता से अधिक कोई धर्म नहीं है माता की समान कोई गुरु नहीं है और इस लोक परलोक दोनों में ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कोई नहीं है, जिन राजाओं के देश में ब्राह्मणों की जीविका नहीं है और बैल वा अन्य सवारी उनके चढ़ने को नहीं हैं और दान के निमित्त उनका बुलाना नहीं होता है वह राजा चोररूप विनाश को पाते हैं, वेद पुराण इतिहास आदि के प्रमाण से नारायणजी के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण सब के आत्मा सबके पैदा करनेवाले और सब भाव रखनेवाले हैं उनदेवताओं के देवता वरदाता नारायणजी की मौनदशा में सब से प्रथम ब्राह्मण उत्पन्न हुए उन ब्राह्मणों से अन्य सबवर्ण उत्पन्न हुए इस प्रकार से ब्राह्मणलोग देवता और असुरों से श्रेष्ठ हैं जो कि मुझ निज ब्रह्मस्वरूप से पूर्वसमय में उत्पन्नकिये गये देवता, असुर, ब्रह्मर्षिआदि अधिकार पर नियत और पीड्यमान किये गये इन्द्र ने अहल्या से विषय करने के कारण अण्डकोशों को कटवाकर मेढ़े के अण्डकोशों को पाया और अश्विनीकुमार के यज्ञ में भाग रोकने के लिये भी इन्द्र ने वज्र को उठाया था तब इन्द्र की दोनों भुजा च्यवनऋषि ने बांधदीन्हीं अर्थात् भुजा जड़रूप होकर हिलने झुलने से बन्द करदीं दक्षप्रजापति ने अपने यज्ञविध्वंस होने के कारण क्रोध होकर अपने तप में संयुक्त होकर नेत्र का दूसरारूप रुद्रजी के मस्तकपर उत्पन्न किया त्रिपुरासुर के मारने को महादेवजी के दीक्षित होने पर शुक्रजी ने शिर की जटा उखाड़कर शिवजीपर प्रयोग किया उससे सर्प प्रकटहुए उन सर्पों से रुद्रजी के पीड़ित कण्ठ में नील वर्णता होगई प्रथम स्वायंभुव मन्वन्तर में भी नारायणजी के हाथपकड़ने से शिवजी के कण्ठ में नीलता आगई थी क्षीरसागर की समी-

पता प्राप्त करनेवाले अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के स्नान करने की दशा में जलने स्वच्छता को नहीं पाया इससे बृहस्पतिजी ने जलों के ऊपर क्रोध किया कि जो तुम मेरे स्नान से मैले हुए और स्वच्छ नहीं हुए इसकारण आज से तुम मगर, मच्छ, कछुए आदि अनेक जलजीवों से भ्रष्ट रहोगे तभी से जल की नदीआदि जलजीवों से व्याप्तहुई हैं त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप देवताओं का पुरोहित हुआ वह असुरों का मित्र होकर प्रत्यक्ष में तो देवताओं का भाग दिखाता था परन्तु गुप्त असुरों कोही भागदेता रहता था तदनन्तर असुरों ने हिरण्यकशिपु को अपना अग्रगामी बनाकर विश्वरूप की माता अपनी बहन को वरदेने की इच्छा की और कहा कि हे बहन ! यह तेरा पुत्र विश्वरूप जो त्वष्टा से उत्पन्न है तीन शिरधारी देवताओं का पुरोहित है इसने प्रत्यक्ष में तो देवताओं को भाग दिया और गुप्त हमको दिया इसहेतु से देवता वृद्धि पाते हैं और हमारा बिगाड़ होता है तुम उसको समझादो कि ऐसा न करे हमकोही चाहै तदनन्तर उसकी माता ने नन्दनवन में वर्त्तमान अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! तुम अन्य लोगों के पक्ष को क्यों वृद्धि करते हो और मामा के पक्ष को घटाते हो तुम को ऐसा कर्म करना उचित नहीं है तब उस विश्वरूप ने माता के वचन को उल्लंघन के अयोग्य समझकर उसका अच्छी रीति से पूजन करके हिरण्यकशिपु के पास यात्राकरी तब हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ जी से शापपाया कि जो तुम ने दूसरा होताबुलाया इसकारण तुम्हारा यज्ञ पूर्ण न होगा और प्रकट होनेवाले अद्भुत शरीरधारी के हाथ से मारेजाओगे उनके शापदेने से उसीरीति से हिरण्यकशिपु मारागया तदनन्तर माता का पक्ष बढ़ानेवाले विश्वरूप ने बड़ा तपकिया इन्द्र ने उसका व्रत खण्डित करने के लिये बहुत सी शोभायमान अप्सराओं को उसके पास नियत किया उन को देखकर उसका चित्त महाव्याकुल और चलायमान हुआ और शीघ्रही उन अप्सराओं के ऊपर आसक्त होगया उसको आसक्त जानकर अप्सराओं ने कहा कि हम जहां से आई हैं वहीं जाती हैं तब विश्वरूप ने उनसे कहा कि कहां जाओगी बैठो हमारे साथ आनन्दकरो तब अप्सराओं ने कहा कि हम देवताओं की स्त्री अप्सरा हैं हम ने पूर्वसमय में वरदाता और अनेकरूप से प्रकट होने-वाले इन्द्र देवता कोही अपना पति बनाया है तब विश्वरूप ने कहा कि इन्द्रसमेत सब देवताओं का अभी नाश होजायगा यह कहकर मन्त्रों को जपा उन मन्त्रों के प्रभाव से तीन शिर रखनेवाला विश्वरूप ऐसा बढ़ा कि जिसने अपने एक मुख से तो अच्छे २ क्रियावान् पुण्यकर्मी ब्राह्मणों के श्रेष्ठरीति से होमेहुए अमृत को भोजनकिया दूसरे मुख से अन्न को और तीसरे मुख से इन्द्र समेत सब देवताओं को तिसपीछे इन्द्र ने उसको ऐसा देखकर देवताओं समेत

क्षीणता को पाया फिर वह इन्द्रादि सबदेवता ब्रह्माजी के पास गये और कहा कि हे ब्रह्माजी ! सबयज्ञों में अच्छीरीति से होमाहुआ हव्य अमृत विश्वरूप भोजनकरता है हम भागों से रहित हुए असुरों का पक्ष वृद्धि को पाता है और हमारेपक्ष की हानि होती है इससे आप बड़ी शीघ्रता से हमारा कल्याण करो तब ब्रह्माजी ने उनको उत्तरदिया कि दधीचिनाम भार्गवऋषि तपस्या करते हैं उनको प्रसन्न करके उनसे यह वरदान मांगो कि आप अपने अस्थि हमको दें यह काम करके उनके हाड़ों का वज्रबनाओ यह सुनकर सब देवता वहांगये जहां भगवान् दधीचिऋषि तपकररहे थे इन्द्रसमेत देवताओं ने उनके सन्मुख जाकर प्रार्थनाकरी कि हे भगवन् ! आपका तप मंगलदायक और निर्विघ्न हो दधीचि ने कहा तुम सबआनन्द से आये हो हम तुम्हारा क्या सत्कारकरें जो आपलोग कहो वही मैं करूं उन्हों ने अपना मनोरथ कहा कि आप संसार के आनन्द के लिये अपना शरीर त्यागकरदीजिये तब तो हर्ष शोकरहित प्रसन्न होकर महायोगी दधीचिजी ने आत्मा को परमात्मा में धारण करके देह को त्यागकिया परमात्मा में उसके लय होजानेपर धातानाम देवता ने उनके हाड़ों को लेकर वज्र बनाया और उसवज्र में विष्णु प्रवेशकरगये उसीवज्र से इन्द्रने विश्वरूपनाम त्रिशिरा को मारडाला और उसके शिर को काटा तदनन्तर त्वष्टा से उत्पन्न मिथुनी से प्रकट हुए अपने शत्रु वृत्रासुर को भी इन्द्र ने मारडाला उस ब्रह्महत्या के दो प्रकार होनेपर इन्द्रने भय के मारे इन्द्रासन को त्यागकर मानसरोवर के शीतलजल से उत्पन्न अत्यन्त शीतल स्पर्शवाली कमलनी में जाकर विश्राम किया वहां योगबल से अणुमात्र अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्मरूप होकर मृणाल की गांठ में प्रवेश किया ब्रह्महत्या के भय से तीनों लोक के नाथ इन्द्र के गुप्तहोनेपर फिर संसार अनाथ होगया और देवताओं में रजोगुण तमोगुण की वृद्धिहुई मन्त्र गुप्तहोगये और ब्रह्मर्षियों के सन्मुख राक्षस प्रकटहुए वेद ब्राह्मणरूप ब्रह्म का विनाश हुआ इन्द्र से रहित निर्बल संसार होगया तिस पीछे देवता और ऋषियों ने आयु के पुत्र हंस को देवताओं के राज्यपर अभिषेक करके बैठाया जब हंस ने ललाटपर प्रकाशवान् सब तेजों की हरनेवाली पांच सौ ज्योतियों से स्वर्ग की रक्षाकरी तब संसार यथावस्थित हुआ और सब स्थिरचित्त होकर प्रसन्नहुए इसके पीछे हंस ने कहा कि शची के सिवाय इन्द्र का भोगा हुआ सब सामान मेरे सन्मुख आवे ऐसा कहकर वह शची के सन्मुख गया और उससे कहा कि हे सुन्दरि ! मैं देवताओं का इन्द्र हूं तुम मुझ को सेवनकरो शची ने उसको उत्तरदिया कि तुम स्वभाव सेही धर्मशील और चन्द्रवंशी हो अन्य की स्त्री से संभोग करने के योग्य नहीं हो फिर हंस ने उससे कहा कि मैं इन्द्रासन पर बैठा हूं और मैंही इन्द्र के राज्य और रत्नों का हरनेवाला हूं इसमें कोई अधर्म की बात नहीं है और

तुम इन्द्र की उपभोग हो उसने फिर उत्तरदिया कि मेरा कोई व्रत अभी पूरा नहीं हुआ है उस अवभृथस्नान अर्थात् पूरेव्रतहोनेपर तेरे पास आऊंगी फिर कुछ दिन के लिये शची के ऐसे वचन सुनकर चलागया तदनन्तर दुःख शोक से पीड़ित अपने पति के दर्शन की इच्छा करती हुई हंस के भय से भयातुर शची बृहस्पतिजी के पास गई बृहस्पतिजी ने उसको अत्यन्त भयभीत और व्याकुल देखकर अपने ध्यान से शची को पति के कार्य में प्रवृत्त जानकर यह कहा कि तुम इस व्रत और तप से साक्षात् वरदाता देवी सरस्वती का आवाहन करो तब वह तुझ को इन्द्र का दर्शन करावेगी यह सुनकर बड़े नियम में प्रवृत्त होकर शची ने अपने शुद्धमन्त्रों से उस वरदाता सरस्वती का आवाहन किया और साक्षात् सरस्वतीजी शची के पास आई और कहा कि मैं आई हूं जो तू चाहे वह मैं तेरा मनोरथ पूराकरूं तब शची ने मस्तक से प्रणाम करके भगवती से कहा कि हे देवि ! तुम मुझ को मेरे पति का दर्शन कराओ आप सती और पूजित हो यह सुनतेही सरस्वती उसको मानसरोवरपर लेगई वहां कमल की मृणाल की गांठ में बैठेहुए इन्द्र का दर्शन कराया फिर इन्द्र ने उस अपनी स्त्री को दुर्बल और महादुःखी देखकर चिन्ता की कि यह मेरा दुःख वर्त्तमान हुआ यह स्त्री मुझ गुप्त को तलाश करतीहुई मेरे सन्मुख पीड्यमान होकर आई है इन्द्र ने शची से कहा कि तू कैसे अपनावर्त्ताव करती है उसने उत्तर दिया कि हंस मुझ को अपनी स्त्री बनाने को बुलाता है और मैंने उसका समय भी नियत करदिया है इन्द्र ने कहा कि जाओ तुम हंस से यह कहो कि तुम बहुत उत्तम ऋषियों से उठाईहुई सवारी पर सवार होकर मुझ को विवाहो इन्द्र की बहुत सी अनेक सवारियां हैं और मैं उन सवार चढ़ीहुई फिरी हूं इसके सिवाय उनमें से तुम कोई सवारी मतलाओ इसप्रकार इन्द्र की शिक्षापाकर वह बड़ी प्रसन्नता से चलीगई फिर इन्द्र भी अपने कमल मृणाल की गांठमें प्रविष्ट हुआ फिर हंस ने सन्मुख आईहुई इन्द्राणी को देखकर कहा कि तुम्हारा वादापूराहुआ शची ने उससे वही कहा जैसे कि इन्द्र ने समझाय दिया था तब महर्षियों की सवारी में सवार होकर हंस शची के पासगया तदनन्तर मैत्रावरुण के पुत्र घट से उत्पन्न होनेवाले ऋषियों में श्रेष्ठ अगस्तिजी ने उन महर्षियों को हंस की सवारी में धिक्कारयुक्त हंस के चरणों से स्पर्शवान् देखकर हंस से कहा हे अयोग्यकर्मी, पापी ! पृथ्वी पर गिरो और तबतक सर्पयोनि में रहो जबतक पृथ्वी और पर्वत नियत रहें उस महर्षि के इस वचन के कहतेही वह हंस उससवारी से गिर कर पृथ्वीपर सर्पयोनि में आकर प्रवृत्त हुआ इसके पीछे फिर तीनों लोक इन्द्र से रहित होकर अनाथ होगये तिसपीछे देवता और ऋषिलोग इन्द्र के निमित्त भगवान् विष्णुजी के धाम को गये और प्रार्थनाकरी कि हे भगवन् ! ब्रह्महत्या

के भय से इन्द्र की रक्षा करिये यह सुनकर विष्णुजी ने उन से कहा कि इन्द्र अश्वमेधनाम विष्णुयज्ञ को करके अपने स्थान को पावेगा तिस पीछे जब देवता और ऋषियों ने इन्द्र को नहीं देखा तब शची से कहा कि हे सुन्दरि! तुम जाकर इन्द्र को लाओ तब वह फिर उसी मानसरोवर पर गई और इन्द्र उस सरोवर से निकलकर बृहस्पतिजी के सन्मुख आया बृहस्पतिजी ने इन्द्र के निमित्त अश्वमेध नाम महायज्ञ को किया और श्यामकर्ण नाम पवित्र घोड़े को छोड़कर और उसको सवारी विचार करके बृहस्पतिजी ने मरुद्गणों के स्वामी इन्द्र को अपने अधिकार स्थान को पहुंचाया तदनन्तर देवता ऋषियों से स्तुतिमान स्वर्ग में वर्त्तमान इन्द्र अपने पाप से निवृत्तहुआ और ब्रह्महत्या को स्त्री, अग्नि, औषधि और गौ इनचारोंस्थानों में विभागकिया इसीप्रकार ब्राह्मणों के तेज और प्रताप से वृद्धिमान् इन्द्र अपने शत्रुओं के मरने के पीछे अपने स्थानपर पहुंचायागया, पूर्वसमय में आकाशगंगा पर वर्त्तमान भरद्वाजमहर्षि ने स्नान किया तब तीनचरण चलनेवाले त्रिविक्रम विष्णुजी उनसे मिले और विष्णुजी की छाती में उनहाथ में जल धारणकियेहुए भरद्वाज ने प्रहारकिया और वह छातीपर चिह्न नियतहुआ और भृगुजी ने अग्नि को शापदिया कि तुम सर्वभक्षी होजाओ सो अग्नि देवता सर्वभक्षी होगये—अदितिमाता ने देवताओं के भोजन को ऐसे बनाया कि वह उसको खाकर असुरों को मारें और वहां व्रतचर्या के समाप्त होनेपर बुधदेवताआये और उन्हों ने अदिति से कहा कि भिक्षा दो तब अदिति ने यह समझकर कि प्रथम देवताओं को भोजन करना चाहिये दूसरे को नहीं योग्य है ऐसा समझकर भिक्षा नहीं दी तब भिक्षा न देने से क्रोधरूप ब्रह्मरूप बुध ने अदिति को शापदिया कि विवस्वान् के दूसरे जन्म में अण्डनाम जन्म लेनेवाले की माता अदिति के उदर में पीड़ाहोगी यह वचन कहा फिर वह मार्त्तण्ड विवस्वान् श्राद्धदेवता होतेहुए और दक्ष की जो साठ पुत्रियांहुईं उनमें से तेरहकन्या तो कश्यपजी को, दश धर्म को, दश मनु को और सत्ताईस चन्द्रमा को दीं उन सत्ताईस नक्षत्र नाम कन्याओं में चन्द्रमा की प्रीति केवल एक रोहिणी में अधिकहुई तब उन शेष नक्षत्र नाम कन्याओं ने ईर्षा करके अपने पिता से यह वृत्तान्त कहा कि हे पितः! हम सब समानरूप गुण वाली कन्याओं में से चन्द्रमा केवल एक रोहिणी परही स्नेह करता है यह सुन कर दक्ष ने क्रोध होकर कहा कि जो तुम को नहीं चाहता है तो उसके शरीर में यक्ष्मानाम रोग उत्पन्नहोगा इसी दक्ष के शाप से चन्द्रमा में यक्ष्मारोग पैदा हुआ यक्ष्मारोग से भराहुआ वह पीड़ित चन्द्रमा दक्ष के पास गया दक्ष ने कहा कि तुम सब से समान बर्ताव नहीं करते हो फिर वहां ऋषियों ने चन्द्रमा से कहा कि तुम यक्ष्मारोग से नष्ट होते हो इससे पश्चिम की ओर समुद्र के तटपर

हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है उस में स्नान करो यह सुनकर चन्द्रमा वहांगया और हिरण्य सरोवर तीर्थपर पहुंचकर अभिषेकपूर्वक स्नान करके पाप से छूटा और जब चन्द्रमा उसपर प्रकाशितहुआ तबसे उसतीर्थ का नाम प्रभासनाम प्रसिद्ध हुआ चन्द्रमा अब भी उसके शान्त से अमावास्या के दिन अन्तर्द्धान होजाता है और पूर्णमासी में प्रकट होकर भी मेघलेखा से आच्छादित शरीर दृष्ट पड़ता है मेघ की समान वर्ण पाने से उसका चन्द्र लक्षण निर्मल है स्थूलशिरा महर्षि ने सुमेरुपर्वत के पूर्वोत्तर कोण में तपस्या की तब उसके शरीर को सुगन्धित मन्दचलनेवाली पवित्रवायु ने स्पर्शकिया इससे वह बहुत तृप्त हुए और वायु के वेग से हिलायेहुए वृक्षों ने अपने पुष्पों की शोभा ऋषि को दिखाई तब उसने उनको शापदिया कि तुम सदैव फूलदेनेवाले नहीं होगे-पूर्वसमय में नारायणजी संसार के आनन्द के लिये बड़वामुखनाम महर्षि होगये थे उन्हों ने मेरु पर्वतपर तपकरते हुए समुद्र को बुलाया और समुद्र उनके बुलाने से नहीं आया तब उन्हों ने महाक्रोधयुक्त होकर अपने संतप्तशरीर से समुद्र को अचल करदिया पसीने के समान जल को लवण सा करदिया और कहा कि पीने के अयोग्यहोगा फिर बड़वानल अग्नि से सोखाहुआ तेरा जल मीठा होगा वह जल अबतक भी समीप रहनेवाली बड़वानल अग्नि से सोखा जाता है रुद्रजी ने हिमालय पर्वत की पुत्री कन्यारूप उमा को चाहा और भृगुमहर्षि ने भी हिमालय से मिलकर कहा कि यह कन्या मुझे दो तब हिमालय ने उनसे कहा कि रुद्रजी को इसका वर विचार कियागया है फिर भृगु जीने उससे कहा कि मैं कन्याकांक्षी हूं और तैंने हम को निषेध किया इसकारण से तुम रत्नों के निवासस्थानरूप नहीं होगे वह ऋषि का वचन अबतक नियत है ब्राह्मणों का ऐसा २ माहात्म्य है क्षत्रियों के वंश भी ब्राह्मणों केही आशीर्वाद से सदैव और न्यूनाधिक रहित स्त्रीरूप पृथ्वी को पाकर भोगकरते हैं, जो यह अग्निषोमीय नाम तेज ब्राह्मण और क्षत्रियों में नियत है उसीतेज से संसार धारण कियाजाता है इसीहेतु से जगत् भी अग्निषोमीय कहाता है सूर्य और चन्द्रमा दोनों मेरे नेत्र कहेजाते हैं और उनकी किरणें मेरे बाल हैं वह दोनों सूर्य चन्द्रमा संसार को जगाकर प्रसन्नकरते हैं और संसार पृथक् २ उठता है उनके जतलाने और तप्त करने से संसार में आनन्द होता है हे पाण्डुनन्दन! अग्निषोम के इनकर्मों से मैं भी संसार का वरदाता ईश्वर और हृषीकेश हूं अर्थात् अग्नि और चन्द्रमा की किरणें जिसके बाल हों उसी को हृषीकेश कहते हैं, मैं आवागमन के सम्बन्ध से यज्ञों में भाग को लेता हूं और श्रेष्ठ वर्ण मेरा हरित है इसीसे मेरानाम हरिविख्यात है, मैं बाधा से रहित जीवों का आधार कहाता हूं इसीसे मुझे ब्राह्मणलोग अमृत विचारते हैं और ऋतधामा कहते हैं,

पूर्वसमय में मैंने रसातल में गुप्तपृथ्वी को पाया इसी हेतु से मुझे देवताओं के वचनों से गोविन्द नाम से वर्णन करते हैं और जो कला से खाली ब्रह्माण्ड का बनानेवाला हूं इसीसे शिपिविष्ट मेरानाम है बड़े सावधान यास्क नाम ऋषि ने बहुत से यज्ञों में मुझ को शिपिविष्ट नाम से वर्णनकिया इसीसे मैं इसगुप्त नाम का धारण करनेवाला हूं बड़े बुद्धिमान् यास्क ऋषि ने शिपिविष्टनाम से मेरीस्तुति को करके मेरीकृपा से पाताल में गुप्तहुए वेद को पाया, मैंने कभी न जन्मलिया है न लूंगा और सबजीवों का क्षेत्रज्ञ हूं इसीसे अज कहलाता हूं मैंने प्रथम कभी स्वभाव के विरुद्ध किसी से कठोर वचन नहीं कहे वह मेरी वाणी सरस्वती सत्य अविनाशी और वेद से उत्पन्न है, हे कुन्तीनन्दन ! मैंने नाभि से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मलोक में पृथ्वी, जल, अग्निरूप सत और वायु आकाशरूप असत् अपनी आत्मा में प्रवेशित किया इस कारण मुझ को ऋषियों ने सत्यनाम से प्रसिद्ध किया है, मैं प्रथम शुद्ध सतोगुण से कभी नहीं गिरा उसी शुद्धसतोगुण को मेरी सृष्टि जानो हे अर्जुन ! जन्म में मेरी इच्छा शुद्धसतोगुणी और प्राचीन है मैं अनिच्छावान् सतोगुणी कर्मी निष्पाप ब्रह्मज्ञानियों को ब्रह्मज्ञान से दृष्टआता हूं इसहेतु से मेरा सात्वत नाम है अर्थात् पञ्चरात्रि आदि से उत्पन्न होनेवाले ज्ञान से दर्शन देताहूं और हे अर्जुन ! लोहेका कालरूप महल्लहोकर पृथ्वी को विजयकरता हूं उसीसे मेराशरीर कृष्ण है इस हेतु से कृष्ण नाम से पुकाराजाता हूं मैंने इस पृथ्वी को जलों से संयुक्त किया आकाश को वायु से वायु को अग्नि से संयुक्त किया है इस कारण से मेरा नाम वैकुण्ठ है अर्थात् व नाम वायु व अग्नि और मेघरूप जल का है और कु पृथ्वी और ठः आकाश को कहते हैं इन सबशब्दों से मिलकर वैकुण्ठ शब्दबना है इससे जो महापुरुष इन सबको परस्पर में मिलाता है उसीको वैकुण्ठ वर्णन करते हैं यह उत्तम धर्म निर्वाण और परब्रह्मरूप कहाजाता है मैं प्रथम, जिस बुद्धि के कारण कहीं से नहीं गिरा इसीकर्म से मेरा नाम अच्युत बोलते हैं, पृथ्वी और आकाश दोनों विश्वतोमुख हैं प्रसिद्ध हैं इनका साधारण अर्थ मेरा अधोक्षज होता है अर्थात् अधनाम पृथ्वी का है क्षोनाम आकाश का है जो इनदोनों को विजयकरता है उसका नाम अधोक्षज है, वेदज्ञलोगों का यह वचन है वह वेदशब्दार्थ को विचारनेवाले पुरुष यज्ञशाला के मुख्यस्थानपर मुझ को अधोक्षज नाम से गानकरते हैं, अर्थात् (अ) का अर्थ यह है कि जिसमें सदैव लय हो और (धोक्ष) का अर्थ यह है कि जिससे सबका पोषण हो और (ज) का अर्थ यह है कि जिससे सबकी उत्पत्ति हो यह अधोक्षजशब्द के अक्षरों का अर्थ है इनको इकट्ठा करके एक शब्दबनाकर महर्षियों ने गाया है कभी प्रभु नारायण के सिवाय दूसरा अधोक्षज नहीं होसक्ता है इसलोक में मुझ अग्नि

स्वरूप की ज्वाला को घृतपदार्थ वृद्धि का करनेवाला है और जीवों के भी प्राणों का धारण करनेवाला है इसहेतु से सावधान वेदज्ञलोगों ने मुझ को घृताची नाम से प्रसिद्ध किया है, और जो कर्मों से उत्पन्न हुई तीनधातु वात, पित्त, कफ हैं इसका नाम संघात है इन्हींतीनों से जीवमात्र धारण किये जाते हैं और इन्हीं के विनाशवान् होने से जीवों का विनाश होता है इसहेतु से वैद्य लोग मुझ को त्रिधातुरूप वर्णन करते हैं हे भरतवंशिन्! धर्मलोकों में भगवान् का नाम वृष नाम से प्रसिद्ध है नैष्ठिक पदों के अर्थ में मेरा वृषनाम उत्तम है वृष, कपि, वराह, यही श्रेष्ठ धर्म कहाजाता है इसीहेतु से कश्यप प्रजापति ने मुझ को (वृषाकपि) वर्णन किया है, देवता और असुर कभी मेरे आदि, मध्य, अन्त को नहीं कहते हैं इसहेतु से आदि अन्त से रहित प्रजा का स्वामी लोकसाक्षी (विभु) नाम से प्रसिद्ध मैंहीं हूं, हे अर्जुन! मैं इसलोक में पवित्र और संशयात्मक वचनों को सुनता हूं और पापों को नहीं सुनता हूं इसहेतु से (शुचिश्रवा) नाम से प्रसिद्ध हूं, पूर्वसमय में मैंने आनन्द बढ़ानेवाला और एक सींग रखनेवाला वराहरूप होकर पृथ्वी को पाताल से ऊपर को उठाया इससे मुझ को एकशृंग नाम से वर्णन करते हैं, और उसी वराहरूप में नियत होकर मैं तीन ऊंचेकन्धे आदि रखनेवाला हुआ तब शरीर के माप से (त्रिककुद) यह मेरा नामहुआ वेदान्त विचार करनेवालों ने मुझ को (विरंचि) वर्णन किया अर्थात् जो सब तत्त्वों को अपने में लय करता है उसको विरंचि कहते हैं वह प्रजापति मैंहीं हूं जो परमात्मा के द्वारा सबलोकों का उत्पन्न करनेवाला है, निश्चय को निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्र के आचार्यों ने मुझी को कपिलनाम से कहा है वही कपिल विद्यासंयुक्त सनातन पीतवर्ण सूर्य्य में नियत हैं, जो तेजस्वी वेदों से स्तुति कियाहुआ हिरण्यगर्भ योगी लोगों से सदैव पूजा कियाजाता है और पृथ्वी में चतुर्मुख नाम से प्रसिद्ध है वह भी मैंही हूं, जो वेदज्ञ पुरुष हैं वह मुझ को इकीस सहस्र संख्यायुक्त ऋग्वेद और सहस्र शाखायुक्त सामवेद वर्णन करते हैं, वेदपाठी ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् में मुझ को गाते हैं वह मेरेभक्त बहुत दुर्लभ हैं जिस यजुर्वेद में एकसौ एक शाखा हैं वह वेद और यजुर्वेदोक्त कर्म मैंही हूं जोकि अध्वर्यु से सम्बन्ध युक्त है, इसीप्रकार अथर्वण वेद जाननेवाले ब्राह्मण मुझको अथर्वण वेद कल्पना करते हैं वह वेद पांच कल्प और कृत्याओं से संयुक्त है और जो कुछ शाखाओं के भेद हैं और शाखाओं में जो गीत स्वर वर्णों से अच्छी रीतिपूर्वक उच्चारण किये जाते हैं उन सबको मेराही बनायाहुआ जानो, हे अर्जुन! जो वह अश्वशिरनाम वरदाता अवतार ब्रह्माजी को दर्शन देता है वह मैंही संसार के उत्तरभाग में क्रम और अक्षर के विभाग का जाननेवाला हूं मेरेही कृपा से

महात्मा पाञ्चाल मुनि ने वामदेव ऋषि के उपदेश कियेहुए मार्ग के द्वारा उस सनातनब्रह्म से क्रम को पाया, और बाभ्रव्यगोत्री मुनि भी नारायणजी से वर और उत्तम योग को पाकर कर्मशास्त्र में सब से विद्यावान् और शोभायमान हुए, और गालवऋषि कर्म और शिक्षाशास्त्र को निर्माण करके शोभायमान हुए और कण्डरीकवंशी महाप्रतापी राजा ब्रह्मदत्त ने जन्म मरण से उत्पन्न दुःखों को वारंवार स्मरण करके और सात जन्मों में से इस जन्म के उत्तम होने से योगियों के उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त किया हे अर्जुन ! मैं पूर्वकाल में किसी हेतु से धर्म का पुत्र प्रसिद्धहुआ इस कारण से मुझ को धर्मज नाम से प्रसिद्ध करते हैं, और पूर्वही काल में गन्धमादन पर्व्वत के ऊपर धर्म्मयान में सवार दोनों नरनारायण ने अविनाशी तपस्या की, हे भरतवंशिन् ! उसीसमय में दक्ष प्रजापति का यज्ञ हुआ वहां दक्ष ने रुद्रजी का भाग नहीं विचार किया, तिसपीछे रुद्रजी ने दधीचिऋषि के वचन से दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किया महाक्रोधित होकर वारंवार त्रिशूल को छोड़ा, वह त्रिशूल दक्ष के बड़े विस्तृत यज्ञ को भस्मीभूत करके अकस्मात् बदर्य्याश्रम के समीप हम दोनों की ओर को आया, हे अर्जुन ! वह शूल बड़े वेग से नारायण की छातीपर गिरा तब नारायणजी के बाल उस शूल के तेज से भरे हुए मूजवर्ण होकर शोभायमानहुए इस हेतु से मेरा नाम मुंजकेश भी है महात्मा की हुंकार से घुड़काहुआ और नारायणजी से घायल होकर वह शूल महादेवजी के हाथ में गया तदनन्तर शिवजी उन तप में भरेहुए ऋषियों के सन्मुख दौड़े, तब उस विश्वात्मा नारायण ने इस आकाशमार्ग से आनेवाले रुद्रजी के कण्ठ को अपने हाथ से पकड़ा इसी कारण अर्थात् कृष्णवर्ण नारायणजी के स्पर्श करने से शिवजी नीलकण्ठ हुए, तदनन्तर रुद्रजी के नाश करने को नर ने एकसींक को उठाया और शीघ्रही मन्त्रों से संयुक्त किया तभी वह बड़ा भारी फरसा होगया तब अकस्मात् शिवजी के घुड़केहुए उस फरसे ने पराजय पाई उस फरसे के पराजय होने से मेरानाम कण्ठपरशु कहाया गया (कण्ठपरशु नाम रुद्रजी का भी है कारण यह है कि नारायण और रुद्र एकही आत्मा हैं) अर्जुन ने प्रश्नकिया कि हे दुष्टसंहारिन्, तीनोंलोकों की शान्ति करनेवाले, वासुदेवजी ! इस महायुद्ध के होनेपर किसने विजय को पाया इसको मुझे समझाइये, श्रीभगवान् बोले कि उस युद्ध में उन रुद्र और नारायण को प्रवृत्त होनेपर अकस्मात् सबलोक भयभीत और व्याकुलहुए, यज्ञों में अग्नि ने अच्छीरीति से होमेहुए उज्ज्वल हव्य को नहीं ग्रहणकिया और वेद शुद्ध अन्तःकरण ऋषियों की याद से विस्मरणहुए, तब देवताओं में रजोगुण और तमोगुण प्रविष्ट हुआ पृथ्वी कम्पायमान हुई और आकाश भी हलने लगा, सब

सूर्य्य आदि के तेज प्रभारहित हुए और ब्रह्माजी भी आसन से उठ खड़े हुए, समुद्र सूखने लगे और हिमालय पर्व्वत फटगया, हे पाण्डुनन्दन! इसीप्रकार से ऐसे उत्पातों के होनेपर महात्मा ऋषियों समेत देवताओं के गणसहित ब्रह्मा जी शीघ्रही उस देश में आये जहां युद्ध वर्त्तमान था तब उन वेदज्ञ ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर रुद्रजी से वचन कहा कि हे विश्वेश्वर! शस्त्रों को रखकर लोक की वृद्धि के अर्थ लोकों के कल्याण रूप होजाओ, जो अविनाशी और गुप्त लोकों का ईश्वर पालनकर्त्ता उपाधिरहित अकेला ही संसार का स्वामी हर्ष शोक से जुदा है उसको अकर्त्ता जानो इस सगुणरूपधारी की यह शुभ मूर्त्ति है जो कि धर्मकुल के प्रकाश करनेवाले नरनारायण नाम से दोनों प्रकट हुए, यह देवताओं में श्रेष्ठ महाव्रती और तपोमूर्त्ति हैं मैं भी किसी हेतु से इन्हीं की प्रसन्नता से उत्पन्नहुआ हूं हे तात! सनातन तुम भी पूर्व उत्पत्ति में इन्हीं के क्रोध से उत्पन्नहुए हो हे वरदाता! तुम और सब देवता महर्षियों समेत इनको शीघ्र प्रसन्नकरो जिससे कि लोकों की शान्ति होय इसमें विलम्ब न कीजिये क्रोधाग्नि को छोड़तेहुए शिवजी ने इसप्रकार ब्रह्माजी के वचन सुन कर प्रभु नारायण देवता को वहुत प्रसन्नकिया और उस श्रेष्ठ वरदाता प्रभु आदिपुरुष के शरण हुए इसके पीछे क्रोध और स्वभाव के जीतनेवाले वरदा· यक देवदेव प्रसन्नहुए और स्नेहपूर्व्वक रुद्रजी से मिले फिर ब्रह्मासमेत देवता और ऋषियों ने भी उनका पूजन किया तब उस देवदेव नारायणजी ने शिव जी से यह वचन कहा कि हे शिवजी! जो तुम को जानता है वह मुझी को जानता है और जो तुम्हारा भक्त है वह मेराभक्त है हमारी तुम्हारी कुछ पृथक्ता नहीं है अर्थात् एकही रूप हैं आप की बुद्धि कभी विपरीत न हो अब से लेकर यह मेरा श्रीवत्स तुम्हारे शूल से अंकित हुआ और मेरे हाथ से अंकित तुम भी श्रीकण्ठ होगे श्रीकृष्णजी बोले कि ऐसा कहकर उन दोनों नर नारायण ऋषि ने इसप्रकार परस्पर में चिह्न अंकित करके शिवजी से बड़ी प्रीति भावकर देवताओं को विदाकर सावधान होकर तपस्या को किया हे अर्जुन! युद्ध में नारायणजी की यह विजय मैंने तुम से कही हे भरतवंशिन्! गुप्त नाम और अनाम जोकि इसलोक में ऋषियों से वर्णन किये गये वह तेरे सन्मुख अच्छी रीति से वर्णनकिये, हे कुन्तीनन्दन! मैं इसरीति से इसलोक ब्रह्मलोक और सनातन गोलोक में वहुत प्रकार के रूपों से विचरता हूं युद्ध में मेरी रक्षा में होकर तुमने भी बड़ीभारी विजय को पाया और युद्ध के वर्त्तमान होनेपर जो वह पुरुष तेरे आगे चलता था, उसको गंगाजल से पूर्ण जटाधारी देवताओं का देवता रुद्र जानो वही रुद्र तेरे सन्मुख मेरे क्रोध से उत्पन्न काल पुरुष था जिन शत्रुओं को तैंने मारा है वह पहलेही से उन कालरूप रुद्रजी से

मारेगये थे तुम सावधान होकरउस अप्रमेय प्रभावयुक्त देवदेव उमापति विश्वेश्वर अविनाशी हर को नमस्कार करो हे अर्जुन ! उसमेरे क्रोधजन्य तेज का अतुल प्रभाव था उसको तैंने वारंवार सुना है ॥ १४० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

एकसौउनहत्तर का अध्याय ॥

शौनक ऋषि बोले कि, हे सूतपुत्र ! आप ने बहुत बड़ा आख्यान वर्णन किया इसको सुनकर हम सब मुनियों ने बड़ा आश्चर्य्य किया, सब आश्रमों में कर्म कर्त्ता होना, सब तीर्थों में स्नानकरना ऐसा फल देनेवाला नहीं है जैसा कि नारायणजी की कथा से फल मिलता है हम इस नारायणजी की पवित्र और पापमोचनी कथा को आदि से सुनकर निष्पाप हुए, सब लोकों में पूज्य श्रीनारायण देवता ब्रह्मा को आदि लेकर किसी देवता वा महर्षियों से विजय नहीं किये जासक्ते हैं, हे सूतनन्दन ! नारदजी ने जो उस देवता नारायण हरि को देखा वह निश्चय करके उन्हीं की इच्छा थी, जो नारदजी ने उस जगन्नाथ अनिरुद्ध देह में नियत प्रभु को वहां आकर देखा इसका हेतु आप हम से वर्णन कीजिये, सूतजी बोले कि हे शौनक ! राजाजनमेजय ने अपने यज्ञ प्रारम्भहोनेंं के समय अपने पिता के भी प्रपितामह व्यासजी से पूछा कि श्वेतद्वीप से लौटकर आनेवाले और भगवत् वचन के ध्यान करनेवाले देवऋषि नारदजी ने फिर कौन सा कर्म किया, और बदय्याश्रम में आकर उन नरनारायण ऋषि से मिलकर कितने समयतक वहां निवास किया और कौन २ कथा को भगवान् से पूछा, एकलाख श्लोकयुक्त महाभारत से बुद्धिरूप मथानी के द्वारा इस ज्ञानरूप उत्तम समुद्र को मथकर जैसे दही से मक्खन, मलयाचल से चन्दन और वेदों से आरण्यक उपनिषद् और औषधियों से अमृत निकाला जाता है उसीप्रकार से हे तपोधनजी ! यह कथारूप अमृत आप ने निकाला है, हे विप्रेन्द्र ! वह षड़ैश्वर्य्य युक्त देवता आदि जीवमात्रों को आत्मारूप से पोषण करनेवाला है उन नारायण जी का तेज बड़ी कठिनता से दृष्ट आनेवाला है कल्प के अन्त में ब्रह्माआदि देवता ऋषि गन्धर्व और सब जड़ चैतन्य जिसमें प्रवेश करते हैं, मैं मानता हूं कि इसलोक और परलोक दोनों में उससे अधिक सब का पवित्र करनेवाला कोई नहीं है सब आश्रमों का वास और तीर्थों में स्नान ऐसा फलदायक नहीं है जैसी नारायणजी की कथा फलदायी होती है यहां हम सब पापमोचनी नारायण और विश्वेश्वरजी की इस कथा को प्रारम्भ से सुनकर सब दशा में पवित्र हैं उस कथा में मेरे बाबा अर्जुन ने जो कर्म किये वह अपूर्व्व और अद्भुत हैं, वासुदेवजी को साथ रखनेवाले जिस अर्जुन ने विजय को पाया मैं जानता

हूं कि तीनोंलोक में भी उसको दुःप्राप्य वस्तु कोई नहीं है वह तीनों लोक के स्वामी जैसे हैं और जिसप्रकार से वह अर्जुन के सहायक हुए वह सब मेरे वृद्ध प्रशंसा के योग्य हैं, दुष्टसंहारी श्रीकृष्णजी जिनके हित और कल्याण के निमित्त कर्मकर्त्ता हुए वह लोकपूजित भगवान् तप के द्वारा अच्छी रीति से दर्शन देनेवाले हैं उन्हों ने जिस श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत विष्णुजी को अपने नेत्रों से देखा उनसे अधिक प्रशंसा के योग्य ब्रह्माजी के पुत्र श्रीनारदजी हैं, मैं मोक्ष के अधिकार से न गिरनेवाले नारदऋषि को थोड़े तेजवाला नहीं जानता हूं जिसने श्वेतद्वीप में जाकर आप साक्षात् नारायणजी का दर्शन पाया, प्रत्यक्ष है कि देवता की कृपा से उसको वह दर्शन हुआ जो अनिरुद्ध देह में नियत गुप्तरूप था हे मुने ! फिर नारदजी नरनारायणजी का दर्शन करने के लिये वदर्य्याश्रम में गये इसका क्या कारण है, श्वेतद्वीप से लौटेहुए ब्रह्मा के पुत्र नारदजी वदर्य्याश्रम को पाकर उन दोनों नरनारायण ऋषियों से मिलकर कितनेसमयतक वहां स्थिर रहे और कौन २ सी बातें उनसे पूछीं और वहां से चलने के समय नरनारायणजी ने क्या २ नारदजी से कहा इनसब बातों को कृपाकरके मुझ से कहिये, वैशंपायन बोले कि उस बड़े तेजस्वी भगवान् व्यासजी को मैं नमस्कार करता हूं जिनकी कृपा से नारायणजी की इसकथा को कहता हूं, हे राजन् ! नारदजी श्वेतद्वीप में प्राप्त होके उस अविनाशी हरि का दर्शन करके लौटे और बड़ी शीघ्रता से मेरुपर्व्वतपर आये और परमात्मानारायण ने जो उन से कहा था उसबोझे को हृदय में धारण करके जब यहां आये तब उनके चित्त में यह बड़ा भय उत्पन्न हुआ कि मैं इतनीदूर जाकर फिर यहां आया हूं फिर मेरु पर्व्वत से गन्धमादन पर्व्वत में आये फिर शीघ्रही आकाश से बड़ेभारी वदर्य्याश्रम के पासगिरे वहां पुराणपुरुष ऋषियों में श्रेष्ठ नरनारायण को देखा, बड़े तपस्वी आत्मनिष्ठ महाव्रती सबलोक के प्यारे होकर सूर्य्य के समान तेजधारी श्रीवत्सचिह्न और जटामण्डलयुक्त हंसचिह्निनी भुजाओं से शोभित चक्रों से चिह्नित चरण बड़ावक्षस्स्थल लम्बी २ चार भुजाधारी साठ दांत आठदाढ़ रखनेवाले मेघों के समान शब्दायमान सुन्दर और बड़ा मुख, ललाट, भृकुटी, ठोड़ी, नाक आदि से शोभित उन दोनों देवताओं के शिरच्छत्र के समान थे इसप्रकार के लक्षणों से भरे महापुरुषनाम उन दोनों को देखकर नारदजी दोनों से पूजित होकर प्रसन्न हुए मार्ग की कुशल क्षेमादिक पूछकर मन के आनन्द को पूछा, उनदोनों पुरुषोत्तमों को देखकर नारदजी के अन्तःकरण में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उस श्वेतद्वीपीय भगवत् की सभा में वर्त्तमान सब जीवों से पूज्य जो पुरुष मैंने देखे वैसेही यह दोनों ऋषि मनको प्यारे मालूम होते हैं वह नारदजी मन से अच्छीतरह ऐसा विचार के प्रदक्षिणा कर सुन्दर उत्तम कुशासनपर

बैठगये, तिसपीछे तप यश और तेजों के निवासस्थान बाह्याभ्यन्तर से शुद्ध-चित्त सावधान दोनों ऋषियों ने पूर्वाह्ण काल की संध्या आदि क्रिया करके पाद्य अर्घ्य से नारदजी का पूजनकिया जब संध्या पूजन आरती आदि कर्मों से नि-वृत्त होकर अपने २ आसनों पर वह दोनों नरनारायणजी बैठगये और उनके बैठने से वह देश चारों ओर से ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि घृत से होमीहुई अग्नि के तेज से यज्ञ की शोभा होजाती है तब नारायणजी ने नारदजी से यह वचन कहा कि हे नारदजी ! आपने हम दोनों के उत्पत्ति स्थान सब से श्रेष्ठ परमात्मा भगवान् को भी श्वेतद्वीप में जाकर देखा है नारदजी बोले कि मैंने वह विश्वरूपधारी अविनाशी श्रीमान् पुरुष देखा है उस देवता में सब ब्रह्मर्षियों समेत देवता नियत थे अब भी तुम दोनों सनातन पुरुषों को देखताहुआ भी मैं उनको देखता हूं वह गुप्तरूप धारी हरि जिन २ लक्षणों से युक्त हैं वैसेही लक्षण तुम दोनों प्रत्यक्षरूप धारियों में भी मुझे दिखाई देते हैं वहां उस देवता में तुम दोनों को भी उसके पार्श्वभाग में देखा है, अब मैं परमात्मा से बिदा होकर यहां आया हूं प्रत्यक्ष है कि तीनों लोक में तुम दोनों धर्मपुत्र के सिवाय तेज यश और लक्ष्मी में उसके समान दूसरा कोई नहीं है उसने क्षेत्रज्ञसम्बन्धी सम्पूर्ण धर्म्म मुझ से वर्णन किये और अपने वह अवतार भी कहे जो यहां होनेवाले हैं वहां जो सतोगुण प्रधान श्वेत पुरुष पांचों इन्द्रियों से रहित थे वह सब उस पुरुषोत्तम के ज्ञानी भक्त हैं वह सदैव उस देवताको पूजते हैं और वह भी उन्हीं के साथ क्रीड़ा करता है, वह भगवान् परमात्मा भक्तों का प्यारा और ब्रह्मण्य देव है वह ऐसा भगवद्भक्तों का प्रियतम सदैव उनसे पूजित और क्रीड़ायुक्त है, वही सर्व्वव्यापी विश्व का स्वामी माधव भक्तवत्सल कार्य कारण रूप है और बड़े तेजबल का धारण करनेवाला है और बड़ा यशस्वी तप युक्त आत्मा को धारण करके उत्पत्ति कारण और आज्ञाप्रधान तत्त्वरूप है वह श्वेतद्वीपसे भी अतिउ-त्तम है वह अपने प्रकाशही से तेजरूप प्रसिद्ध है उस शुद्धआत्मा से तीनों लोक में वह शान्ति नियतहुई है कि मैं भी इस शुभबुद्धि से नैष्ठिकव्रत में नियत हुआ हूं वहां न तो सूर्य्यउदय होता है न चन्द्रमा प्रकाश करता है और दुःख से करने के योग्य तप में देवेश्वर के नियत होनेपर वायु भी नहीं चलती है वह जगत् का स्वामी देवता आठ अंगुल ऊंचीवेदी को पृथ्वीपर बनाकर ऊर्द्धबाहु पूर्वाभिमुख एकचरण से नियत था अंगों से युक्त वेदों को पढ़तेहुए देवता ने महाकष्ट से करने के योग्य तप को तपा है वहां आप पशुपति शिवजी, ब्रह्मा जी, समेत सब देवता, ऋषि, महर्षि, किन्नर, गन्धर्व, उरग, दैत्य, दानव, रा-क्षस, अप्सराओं समेत सदैव जिस बुद्धियुक्त होकर हव्य कव्य को भेंट करते हैं वह सब उस देवता के चरणों के समीप वर्त्तमान था, व्यभिचार रहित बुद्धि के

स्वामी देवता उस भक्ति से दियेहुए सबपदार्थों को शिर से अंगीकार करता है महात्मा ज्ञानी भक्तों के सिवाय दूसरा उसका प्यारा तीनोंलोक में कोई नहीं है इसीहेतु से वह उनकी भक्ति में नियत है, उस परमात्मा से जिदा होकर मैं यहां आया हूं और जो कि उस आप परमेश्वर ने वर्णन किया है इससे मैं उसीमें मन को लगाकर सदैव तुम दोनों के पास निवास करूंगा ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

एकसौसत्तर का अध्याय ॥

नरनारायण बोले कि, तुम प्रशंसा के योग्य और कृपापात्र हो तुमने साक्षात प्रभु का दर्शन किया उसको किसीने किन्तु ब्रह्माजी ने भी नहीं देखा है, हे नारद! वह पुरुषोत्तम कठिनता से दर्शन देनेवाला षडैश्वर्य्य का स्वामी और अव्यक्त का उत्पत्ति स्थान है यह हमारा वचन सत्यही है, लोक में व्यक्त से अधिक उसका प्यारा कोई नहीं है हे उत्तम, ब्राह्मण! इसीहेतु से उसने आप अपने रूप का दर्शनदिया, उस तपकरनेवाले परमात्मा का जो निवासस्थान है उसको हम दोनों के सिवाय कोई प्राप्त नहीं करसक्ता है, जो कि उसका प्रकाश हज़ार सूर्य्य के समान हो इसीकारण उसी विराजमानही के प्रताप से इस स्थान का भी वही प्रकाश होता है, हे ब्राह्मण! उस विश्व के स्वामी देवता के देवता सेही शान्ति उत्पन्न होती है हे शान्तों में श्रेष्ठ! इस शान्ति से पृथ्वीसंयुक्त होती है उस जीवों के हितकारी देवता से रस उत्पन्न होता है उसीसे जलसंयुक्त होते हैं और नाश को प्राप्तहोते हैं, उसीसे रूपगुण रखनेवाला तेज होता है सूर्य्य भी उसीसे युक्तहोकर लोकों में प्रकाश करता है, उसी पुरुषोत्तम देवता से स्पर्श और स्पर्श से वायु उत्पन्न होकर लोकों में चेष्टाकरता है, सब लोकों के ईश्वर से शब्दहुआ शब्द से आकाश होकर सर्वत्र व्याप्त होता है, उसीसे मनहुआ जिससे संयुक्त होकर चन्द्रमा प्रकाशरूप धारण करता है वह वेदनाम स्थान सब भूतों का उत्पन्न करनेवाला है जहां ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न होनेवाले हव्य कव्य के भोक्ता भगवान् विराजते हैं हे ब्राह्मण, श्रेष्ठ! लोक में जो पुरुष शुद्ध और पुण्य से पृथक् हैं उन चलनेवालों का मार्ग मंगलों से भराहुआ है सबलोकों में अन्धकार का दूर करनेवाला सूर्य्यही द्वाररूप कहाजाता है सूर्य्य से सुखाये हुए सब अंग कभी किसीके दृष्ट न आनेवाले परमाणुरूप होकर उस देवता में प्रवेश करते हैं और उससे भी छूटकर अनिरुद्ध शरीर में नियत होते हैं, फिर मनरूप होकर उकार अर्थवाले सूत्रात्मा प्रद्युम्न नाम चित्त में प्रवेश करते हैं और प्रद्युम्न से भी निकलकर संकर्षण नाम जीव में प्रवेश होते हैं, वह सांख्यमतवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण भगवत् भक्तों के साथ संकर्षण में प्रवेश करते हैं

तदनन्तर वह तीनों गुणों से रहित उत्तम ब्राह्मण उस क्षेत्रज्ञ निर्गुण परमात्मा में शीघ्रही प्रवेश करते हैं उसको सबका निवासस्थान क्षेत्रज्ञ और वासुदेवनाम मुख्यता से जानो नियम व्रतधारी अच्छे सावधान चित्त जितेन्द्रिय विचार रहित भक्ति में प्रवृत्त पुरुष वासुदेवजी में प्रवेश करते हैं, हे ब्राह्मणवर्य्य ! हम दोनों भी धर्म देवता के घर में उत्पन्न हुए और रमणीक बदरिकाश्रम में नियत होकर उग्रतप में नियत हुए, उसी देवता के अवतार जो सब देवताओं के प्यारे तीनों लोक में नियत होंगे उनका कल्याण हो और हे ब्राह्मण ! पूर्व्व समय में अपनी बुद्धि से युक्त और सब कृच्छ्रनाम उत्तम व्रत में नियत हम दोनों ने तुम को बहुत पूछा था कि हे तपोधन ! तुम श्वेतद्वीप में भगवान् से अपने संकल्प के समान मिले, जो तीनों लोकों में जड़ चैतन्यों समेत हम सबको जानते हैं और तीनों काल के शुभाशुभ को भी अच्छी रीति से जानते हैं, वैशम्पायन बोले कि नारदजी उन दोनों के इस वचन को सुनकर उग्रतप में प्रवृत्त हुए नारायण के चाहनेवाले नारदजी ने हाथ जोड़कर नरनारायणाश्रम में दिव्य हजार वर्षतक नारायण से पाये हुए अनेक मन्त्रों का बुद्धि के अनुसार जपकिया, और उसी देवता को इन दोनों नरनारायण समेत पूजते हुए नियत हुए ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसौइकहत्तर का अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि, किसी समयपर ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी न्याय के अनुसार देवकर्म को करके पितृकर्म में प्रवृत्तहुए तब धर्म के बड़े पुत्र नारायणजी ने नारदजी से यह वचन कहा कि हे द्विजवर्य्य ! यहां देव और पितृकर्म के कल्पित होनेपर तुम किसको पूजन करते हो, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! यह कौन कर्म कियाजाता है और इसका फल क्या है इसको शास्त्र के अनुसार मुझ से वर्णन करो, नारदजी बोले कि प्रथम तुम से यह वर्णन कियागया है कि देवकर्म करना चाहिये वह यज्ञपुरुष सनातन परमात्मा देवता उत्तम है इसीकारण उससे पालन कियाहुआ मैं सदैव उस अविनाशी की पूजाकरता हूं—पूर्वसमय में उसी से पितामह ब्रह्माजी भी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी ने प्रसन्नहोकर मेरे पिता को भी उत्पन्न किया मैं पहले कल्पित होनेवाला पुत्र उसके संकल्प से मिलाहुआ हूं, हे साधो ! मैं तान्त्रिक पूजनादिकों में पितरों को पूजता हूं इसप्रकार से कि वही भगवान् माता पितारूप है, इसीरीति से वह जगत्पति सदैव पितृयज्ञों में पूजाजाता है और दूसरी देवी सरस्वती भी है कि पिताओं ने पुत्रों को पूजा है अर्थात् वेद की श्रुति जब प्रणष्ट होगई हैं तब पुत्रों ने पिताओं को पढ़ाया

इसीकारण उनमन्त्र देनेवाले पुत्रों ने पित्राधिकार पाया, निश्चय है कि तुम दोनों शुद्ध अन्तःकरणवालों को भी यह वृत्तान्त देवताओं से विदित हुआ होगा कि पिता पुत्रों ने परस्पर में एक ने एक की प्रतिष्ठा की प्रथम पृथ्वी पर कुशाओं को बिछाकर उसपर पितरों के स्थान में पिण्डों को धर के पूजनकिया पूर्वसमय में उन पितरों ने किसी प्रकार से पिण्ड नाम को पाया, नरनारायण बोले कि पूर्वकाल में गोविन्दजी ने वराहरूपधारण करके सागररूप मेखला धारी इस पृथ्वी को शीघ्रता से ऊपर को उठाया और उसको यथावस्थित स्थान में नियत करके जलकीच से भरे संसार के कार्य्य में उद्योग युक्त शरीरवाले प्रभु ने मध्याह्न के समय सन्ध्याकाल होने पर दाढ़ में लगेहुए तीनपिण्डों को अकस्मात् बाहर निकाल कर पृथ्वीपर कुशाओं को बिछाकर पृथ्वी में उन पिण्डों को स्थापित किया फिर उन पिण्डों में अपने स्वरूप को नियत करके बुद्धि के अनुसार उसने पितृकर्म किया, प्रभुने अपनी बुद्धि से तीनों पिण्डों को संकल्प करके अपने शरीर की ऊष्मा से उत्पन्नहुए घृत और तिल से युक्त करके पूर्व्वाभिमुख हो पिण्डों का दान किया, फिर मर्य्यादा नियत करने के लिये यह वचन कहा कि मैं संसार का स्वामी होकर आप पितरों के उत्पन्न करने को प्रवृत्तहुआ हूं मेरे ध्यान करने से पितृकार्य्य की उत्तम रीति प्राप्त होती है, यह पिण्ड दाढ़ों से निकले और दक्षिण में पृथ्वीपर नियत हुए हैं इसहेतु से अब यह पितर हैं, यह तीनों पितर रूपरहित हैं और मुझ से मिलेहुए यह सनातन पितर पिण्डरूपधारी हों, इन तीनों पिण्डों में नियत मैंही पिता, पितामह, प्रपितामह नाम से जानने के योग्य हूं, मुझ से अधिक कोई नहीं है न कोई दूसरा मुझ से अन्य पूजन के योग्य है, लोक में मेरा पिता भी कोई नहीं है अर्थात मैंहीं पितामह ब्रह्मा का भी पिता हूं मैंहीं सब का कारण हूं वह देवदेव वराहजी इतना वचन कहकर और वराह पर्व्वतपर विस्तारयुक्त पिण्डों को दे अपने आत्मा का पूजन करके उसी स्थान में अन्तर्द्धान होगये हे ब्राह्मण ! उसी की यह मर्यादा है कि पिण्डनाम पितर सदैव पूजा को प्राप्त करते हैं जैसा कि वराहजी का वचन है, जो पुरुष मन, वाणी, कर्म से देवता, पितर, गुरु, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और पृथ्वी माता को पूजन करते हैं वह विष्णु भगवान्ही को पूजते हैं क्योंकि वह षडैश्वर्य्य का स्वामी सब जीवों के शरीर में वर्त्तमान उन देवता आदि के भी शरीर में नियत है वह हर्ष शोकरहित सब जीवों में समान बुद्ध महात्मा सब का आत्मा नारायण है ऐसा शिष्टलोगों से सुनते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

एकसौबहत्तर का अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि, नारायणजी के कहे हुए इस वचन को सुनकर बड़े देव भक्त नारदजी अनिच्छा भक्ति में प्रवृत्त हुए, हजार वर्ष तक नरनारायणजी के आश्रम में निवास करके भगवत् आख्यान को सुनकर अविनाशी हरि को दर्शनकर, शीघ्रही हिमालय पर्वत पर गये जहां कि उनका निजआश्रम था और प्रसिद्ध तपयुक्त उन नरनारायण ने भी, उसी रमणीक आश्रम में श्रेष्ठ तप को तपा और पाण्डु के वंश में महाविजय पानेवाले तुम भी अब इस कथा को आदि से सुनकर पवित्रात्मा होगये हे राजेन्द्र! उनका यहलोक परलोक दोनों नहीं हैं जो पुरुष मन वाणी और कर्म से विष्णुजी से शत्रुता करते हैं ऐसे पुरुषों के पितरलोग भी हजारों वर्षतक नरक में पड़ते हैं जो पुरुष देवताओं में श्रेष्ठ देवदेव नारायण हरि से विरोध या अहंकार करे उसको ध्यान से विचार करना योग्य है कि सृष्टि का आत्मा कैसे शत्रुता करने योग्य है, हे पुरुषोत्तम! विष्णुही सबका आत्मा जाननायोग्य है जो हमारे गुरु व्यासजी हैं, जिन से यह श्रेष्ठ और पूरण इतिहास और माहात्म्य मैंने सुना है हे निष्पाप, जनमेजय! यह मैंने उन्हीं की कृपा से तुम से वर्णन किया है, हे तात! नारदजी ने साक्षात् नारायणजी से पाया इसी से यह बड़ाधर्म है वह धर्म पूर्व्व में हरिगीताके मध्य तुम से कहा है, हे राजन्! तुम कृष्ण द्वैपायन व्यासजी को भी नारायण ही जानो इनके सिवाय दूसरा कौन है जो महाभारत को बनाता और उन के सिवाय कौन नानाप्रकार के धर्मों को वर्णन करता तैंने बड़ा संकल्प जैसा किया है उसीके समान तेरा यज्ञ वर्त्तमान हो तुम अश्वमेध का संकल्प करनेवाले और मुख्यता से धर्म के सुननेवाले हो सूतजी बोले कि, उसउत्तम राजा ने इस बड़े आख्यान को सुनकर फिर यज्ञ समाप्ति के लिये सब क्रियाओं को प्रारम्भ किया, मैंने जो यह नारायणजी का इतिहास तुम से कहा उसी को पूर्व्वसमय में नैमिषारण्यवासी शौनक आदि ऋषियों में बैठेहुए नारदजी ने बृहस्पतिजी से कहा उससमय सब ऋषि, पाण्डव, भीष्म और श्रीकृष्ण ने भी श्रवणकिया वही विश्वंभर धराधारी श्रुति नम्रता बुद्धि शान्ति के घर यम नियम में पूर्ण देवताओं का हितकारी असुरसंहारी तप यश का पात्र मधुकैटभ का मारनेवाला धर्मज्ञ सतयुगी पुरुषों को गति और निर्भयता का देनेवाला यज्ञभाग लेनेवाला नारायण हरि महर्षि व्यासजी समेत तेरी गति और रक्षा का आश्रय हो, त्रिगुणात्मक निर्गुण चतुर्मूर्त्ति वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध इष्टापूर्त्ति के फल और भाग का हरनेवाला अजित नारायण श्रेष्ठकर्मी ऋषियों की कैवल्यादि गति को सदैव देता रहै, उस लोकसाक्षी अजन्मा सूर्य्य

वर्ण लयस्थान पुराणपुरुष को एकाग्रचित्त से ध्यान और नमस्कार करो जिसको कि शेषशायी भगवान् वासुदेवजी नमस्कार करते हैं वही अव्यक्त आदि का उत्पन्नकर्त्ता मोक्ष का सूक्ष्मस्थान अचल आवागमनरहित सर्वात्मारूप हैं हे उदार ! वह वासुदेव सनातन सांख्य और योग के ज्ञाता चित्त के निरोधी ध्यान करनेवाले पुरुषों से दर्शन के योग्य हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेद्विसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

एकसौतिहत्तर का अध्याय ॥

शौनक ऋषि बोले कि, उस भगवत् परमात्मा का माहात्म्य हम ने सुना और धर्म के घर में नारायणजी का जन्म होना भी सुना, और महावराहजी के उत्पन्न कियेहुए पिण्डों की प्राचीन उत्पत्ति भी सुनी और प्रवृत्ति निवृत्ति धर्मों की कल्पना जैसे करी उसको भी आप के मुख से हमने श्रवण किया, परन्तु हे ब्रह्मन् ! जो आप ने कहा कि हव्य भोगनेवाले विष्णुजी का अवतार अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव पूर्व्वोत्तरकोण में महासमुद्र के समीप हुआ था जिसे परमेष्ठी ब्रह्माजी ने देखा सो हे परमबुद्धिमन् ! उसको लोक के स्वामी नारायण ने प्रथम ही क्यों उत्पन्न किया क्या महापुरुषों का रूप और प्रभाव अपूर्व्व होता है हे मुने ! प्रभु ब्रह्माजी ने उस देवदेव अपूर्व्वरूप पवित्रात्मा बड़े तेजस्वी हयग्रीव परमात्मा को देखकर क्या किया हे बुद्धिमन्, ब्राह्मण ! इस हमारे प्राचीन ज्ञान से विचार किये हुए संदेह को वर्णनकीजिये, हे पवित्रकथा कहनेवाले ! आप की कृपा से हम पवित्र हुए हैं, सूतजी बोले कि मैं वेद के समान सवपुराणों को तुम से वर्णन करता हूं जिसको भगवान् व्यासजी ने राजा जनमेजय के सन्मुख वर्णन किया है, हयग्रीव नाम विष्णु की मूर्त्ति को सुनकर सन्देह करनेवाले राजाने यह वचन कहा कि हे बड़े धर्मज्ञ ! ब्रह्माजी ने जो उस अश्वशिरधारी देवता के दर्शन किये उस अवतार का कारण मुझ से वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि हे राजन् ! निश्चय करके इसलोक में जो जीवधारी हैं वह सब ईश्वर के संकल्प रूप पञ्चतत्त्वों से मिश्रित हैं, जगत् का उत्पन्न करनेवाला ईश्वर प्रभु विराट् नारायण जीवों का अन्तरात्मा वरदाता सगुण और निर्गुण भी है, हे राजन् ! तत्त्वों की महाप्रलय को कहता हूं कि पूर्वसमय में एकसमुद्ररूप जल में पृथ्वी के लय होने और जल के अग्निरूप होने और वायु में अग्नि के लीनहोने और आकाश में वायु के लीनहोने और इसीप्रकार मन में आकाश महत्तत्त्वों में मन, अव्यक्त में महत्तत्त्व, पुरुष में अव्यक्त और श्रीवासुदेवजी में पुरुष के लय होने पर सब संसार अन्धकाररूप होगया अर्थात् निज विज्ञान गुप्त होगया और कुछ नहीं रहा उस अन्धकार से जिसका मूल शुद्ध ब्रह्म है अर्थात् जैसे कि रस्सी में

सर्पकल्पित हुआ उसीप्रकार ब्रह्म में अन्धकार कल्पित है उस अन्धकार से जगत् का कारण ब्रह्म उत्पन्न हुआ, वह नामरूपधारी विराट् देह में नियत था वही अनिरुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ उसीको प्रधान कहते हैं, हे राजन्! उसी को त्रिगुणात्मक अव्यक्त जानना योग्य है निर्विशेष चिन्मात्राकार चित्तवृत्ति से संयुक्त निद्रायोग को प्राप्त देवता विष्वक्सेन प्रभुहरि ने निर्विशेष ब्रह्म में शयन किया अर्थात् लयता को पाया उसी चैतन्य ने जगत् की उत्पत्ति को जो कि अपूर्व्व अद्भुत गुणों से प्रकट होनेवाली है ध्यान किया, जगत् की उत्पत्ति को विचारते हुए उस देवता के निजगुण को महत्तत्त्व कहते हैं उस महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ, तब वह चतुर्मुख सबलोकों के पितामह ब्रह्मा कमललोचन भगवान् हिरण्यगर्भ कमलरूप ब्रह्माण्ड में अनिरुद्ध से उत्पन्न हुए, वह तेजस्वी सनातन ब्रह्मा हजार पत्तेवाले कमल पर बैठे और अद्भुतरूपवाले प्रभु ने जलरूप लोकों को देखा, तदनन्तर जीवसमूहों को उत्पन्न करते हुए वह ब्रह्माजी सतोगुण में नियत हुए सूर्य्य की किरण के समान प्रकाशमान कमलपत्ररूप ब्रह्माण्ड के मुख्य स्थान में नारायणजी से उत्पन्न श्रेष्ठ गुण सम्पन्न दो जलकण थे उस आदि अन्तरहित षड़ैश्वर्य्य के स्वामी ब्रह्मभाव से पूर्ण ने उन दोनों जलकणों को देखा उनमें एकजलकण तो सुन्दर प्रभावयुक्त मधुर आम के वर्ण की समान था तब नारायण की आज्ञा से वह जलकण तामसी मधु नाम दैत्य होकर उत्पन्न हुआ, दूसरा कण कठोर था वह राजसी कण कैटभ नाम दैत्यहुआ तमोगुण रजोगुण यह दोनों श्रेष्ठ असुर बड़ेबली गदा हाथ में लिये कमल की नाल में चलते हुए सन्मुख में दौड़े और कमलपर बैठे बड़े प्रकाशमान आदि में सुन्दर रूपधारी चारों वेद के प्रकट करनेवाले ब्रह्मा को बैठा देखकर उन स्वरूपवान् असुरों ने वेदों को देखके ब्रह्माजी के देखते हुए अकस्मात् वेदों को पकड़लिया और दोनों ने वेदों को लेकर उस जल से पूर्ण समुद्र में प्रवेश किया फिर वेदों के हरेजाने पर ब्रह्माजी को मूर्च्छा हुई इसी कारण वेदों से रहित होकर ईश्वर से यह वचन कहा कि यह वेद ही मेरे उत्तम चक्षु हैं वेद ही मेरा परमबल परमधाम अर्थात् उत्तम तेज हैं वेद ही मेरा परमब्रह्म हैं यहां वह मेरे सब वेद दानवों ने बल से हरलिये वेदों से रहित होकर मेरे लोक सब अन्धकारयुक्त होगये मैं विना वेदों के लोकों की उत्तम सृष्टि को कैसे करूं वेदों के जाते रहने से बड़ा दुःख मुझ को प्राप्त हुआ यह शोच मेरे हृदय को पीड़ा देता है अब शोकसमुद्र में डूबेहुए मुझ को कौन यहां से छुटावे और गुप्तहुए वेदों को लावे, मैं किसका प्यारा हूं हे राजेन्द्र! इसप्रकार से कहनेवाले ब्रह्मा की बुद्धि हरि के स्तोत्र वर्णन करने को प्रकटहुई तदनन्तर ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर इस उत्तम स्तोत्र को वर्णन किया,

ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्महृदय! मुझ से प्रथम उत्पन्न होनेवाले लोक के आदि सब भूतों में श्रेष्ठ सांख्य योग के भण्डार व्यक्त अव्यक्त के उत्पादक बुद्धि से परे मोक्षमार्ग में नियत तुम्हारे अर्थ नमस्कार है हे विश्वभोक्ता! जीवात्माओं के अन्तरात्मा योनि से उत्पन्न होनेवाले लोकप्रकाशक मैं तुम्ही स्वयंभू से प्रसन्नतापूर्वक उत्पन्न होनेवाला हूं तुम सेही मेरा प्रथम जन्म ब्राह्मणों से पूजित मानस नाम है और दूसरा जन्म प्राचीन चाक्षुष नाम हुआ और आपही की कृपा से मेरा तीसरा जन्म वाचक नाम हुआ मेरा चौथा जन्म श्रवणज नाम भी तुम्हीं से हुआ और मानसी मेरा पांचवां नाम जन्म भी तुम्हीं से है छठा जन्म अण्डज सातवां पद्मज भी तुम सेही उत्पन्न हुआ है हे त्रिगुण से रहित, प्रभो! मैं प्रत्येक उत्पत्ति में आपही का पुत्र हूं, हे कमललोचन! मैं शुद्ध सतोगुण से कल्पित आप का प्रथम पुत्र हूं तुम मुझ ब्रह्मा के ईश्वर स्वभाव और कर्मबन्धन हो, वेद रूप नेत्र रखनेवाला काल का विजय करनेवाला मैं आपकाही पैदा किया हूं वह मेरे नेत्ररूप वेद हरेगये मैं उनके विना अंधा होगया हूं आप चैतन्य हूजिये, मेरे नेत्रों को दो मैं आप का प्यारा हूं और तुम मेरे प्यारे हो इसप्रकार ब्रह्मा से स्तुति किये हुए सर्वव्यापी जगदात्मा स्वयंभू प्रभु जागे और वेद लाने को सन्नद्ध होके वह प्रभु अपने ऐश्वर्य्य प्रयोग से दूसरे शरीर में प्रवेशकरगये, तब वह प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त देहधारी चन्द्रमा के समान प्रकाशित होकर अश्व का शिर धारण करके प्रस्थान करगये वह रूप वेदों का निवास स्थान था, नक्षत्र तारागणों समेत स्वर्ग मस्तक और लम्बेबाल सूर्य्य की किरणों के समान प्रकाशमान हुए आकाश, पाताल, दोनों कान—पृथ्वी, ललाट—गंगा और सरस्वती और दोनों महासमुद्र भृकुटी—और सूर्य्य, चन्द्रमा दोनों नेत्र—संध्या नाक-प्रणव संस्कार-बिजली जिह्वाहुई-और सोमप नाम पितर दांत हुए-और गोलोक ब्रह्मलोक उस महात्मा के दोनों होठ थे, और गुणयुक्त कालरात्रि उस की गर्दन थी-ऐसे नाना अद्भुतस्वरूप रखनेवाले हयग्रीव विश्वेश प्रभु शरीर को धारण करके अन्तर्द्धान होकर जल में प्रवेशकर गये उस जल में प्रविष्ट योग में नियत प्रभु ने शिक्षायुक्त स्वर में नियत होकर-उद्गीथ नाम स्वर को उत्पन्न किया वह शिर अत्यन्त स्वच्छ और दूसरा शब्द उत्पन्न करनेवाला सबजीवों का गुण और हितकारी हुआ और ऐसा विदितहुआ कि मानो पृथ्वी के भीतर होता है तिस पीछे वह दोनों असुर वेदों को वचनबद्धकर रसातल में छोड़कर जिधर शब्द होरहा था उधर को दौड़े हे राजन्! उसी अंतर में हयग्रीवधारी देवता ने रसातल में जाकर आप सब वेदों को लेलिया और वहां से लाकर ब्रह्माजी को देदिये और अपने मुख्यरूप को धारणकरलिया, अर्थात् उस अपने हयग्रीव रूप को पूर्वोत्तर कोण के महासमुद्र में नियतकरके

अपने मुख्यरूप को धारणकिया तदनन्तर हयग्रीव भी वेदों के निवास स्थान हुए, फिर मधुकैटभ नाम दोनों असुरों ने वहां कुछ भी न देखकर बड़ीशीघ्रता से वहां आकर उसस्थान को भी जहां वेद रक्खे थे खाली देखा तब तो महाबली वह दोनों बड़े शीघ्रगामी होकर शीघ्र ही फिर समुद्र से ऊपर उठे तो वहां उसी आदिपुरुष प्रभु को देखा जोकि श्वेतवर्ण शुद्ध चन्द्रमा के समान प्रकाशमान अनिरुद्ध देह में नियत महापराक्रमी निद्रा के योग से मिलाहुआ था और उस शयनपर विराजमान था जोकि जलों के ऊपर कल्पित ज्वालाओं की मालाओं से गुप्त शेषनाग के फणोंपर वर्त्तमान अपने शरीर के समान रचाहुआ था, उन दोनों दानवों ने उस शुद्ध सतोगुण युक्त सुन्दर प्रभाववाले पुरुष को देखकर बड़ाहास्य किया, रजोगुण तमोगुण से भरेहुए उनदोनों ने कहा कि यह वह श्वेतवर्ण निद्रा में भराहुआ पुरुष सोता है, इसी ने निश्चय करके वेदों को रसातल से हरा है यह कौन है किसका है और शेष की शय्यापर क्यों सोता है, ऐसा वचन कहकर उन दोनों ने हरि को जगाया तब पुरुषोत्तमजी उनको युद्धाभिलाषी जानके जागे, और दोनों असुरेंद्रों को देखकर युद्ध में मन को प्रवृत्त किया फिर तो उनदोनों से और भगवान् से बड़ायुद्ध हुआ, ब्रह्माजी की रक्षाकरतेहुए मधुसूदनजी ने उन रजोगुण तमोगुण से भरेहुए दोनों असुरों को मारडाला और वेदों के लाने और उनके मारने से ब्रह्माजी के शोक को निवृत्त किया, तदनन्तर ईश्वर की आज्ञा से और वेदों से प्रतिष्ठित ब्रह्माजी ने सब जड़ चैतन्यरूप लोकों को उत्पन्न किया, फिर भगवान् प्रभुजी को संसार के उत्पन्न करने की बुद्धि को देकर वहीं अन्तर्द्धान होगये जहां से उदयहुए थे, इसप्रकार से महाभाग हरिने हयग्रीव होकर अवतार धारण किया था यह ईश्वर का रूप बड़ा वरदाता और प्राचीन वर्णन किया है, हरिने हयग्रीव शरीर धारण कर दोनों दैत्यों का वध करके प्रवृत्ति धर्म के लिये फिर उसी रूप को धारण किया, जो ब्राह्मण इसको सदैव सुनेगा अथवा धारण करेगा वह अपनी पढ़ी हुई विद्या को कभी न भूलेगा, पांचाल ने बड़ा तप करके हयग्रीव रूपधारी देवता का आराधन करके देवता की कृपा से कर्म को प्राप्त किया, हे राजन्! यह हयग्रीव अवतार का आख्यान जो कि प्राचीन और वेद की समान है मैंने तुझ से वर्णन किया, जब देवता संसार के प्रबन्ध के लिये जिस २ शरीर को धारण करना चाहता है तब अपनी आत्मा के द्वारा विपरीतरूप करनेवाला होकर उस २ शरीर को धारणकरता है, यह श्रीमान् वेदों का वा तपों का और सांख्य योगों का भण्डार है यही परब्रह्म हव्य और प्रभु है, वेद नारायण को सब से श्रेष्ठ कहनेवाले हैं यज्ञ नारायणरूप हैं तप नारायण को अन्त रखनेवाला है नारायण परमगति है, नारायण सत्यरूप है और सत्यधर्म दोनों नारायण को अन्त

रखनेवाले हैं और जिस धर्म से स्वर्ग से नीचे को आवागवन होता है उससे कठिनतापूर्व्वक मिलता है, प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म भी नारायणरूप है, पृथ्वी में जो सबसे उत्तमगन्धि है उसको भी नारायणरूप कहते हैं, हे राजन्! जलों के गुणरस भी नारायणरूप हैं, अग्निआदि का उत्तमरूप भी नारायणस्वरूप है वायु का स्पर्श गुण आकाश का शब्दगुण अव्यक्त के गुणरखनेवाला मन और उसीसे प्रकट हुआ तेजस्वी वस्तुओं का निवास स्थान काल भी ईश्वर का रूप है, कीर्त्ति शोभा लक्ष्मी देवता इत्यादि सब नारायणरूप हैं सांख्य नारायण को सर्वोत्तम वर्णन करता है और योग भी नारायणरूप है जिन्हों का कारण पुरुषप्रधान, स्वभाव, कर्म और दैव हैं और अधिष्ठान कर्त्ता, जुदे प्रकार का करण और नानाप्रकार की चेष्टा जिसमें दैव हैं और निश्चय करके पांच कारणों से प्रसिद्ध हरिही सब स्थानपर निष्ठा है अनेक प्रकार के हेतुओं से तत्त्व जानने के अभिलाषी पुरुषों का एकतत्त्व वही प्रभु नारायण हरि है, वही ब्रह्मादिदेवता, महात्मा, ऋषि, सबलोक, सांख्यमतवाले, योगी और आत्मज्ञानी संन्यासियों के भी मन के भेद को जानते हैं परन्तु वह सब उसकी इच्छा को नहीं जानते लोकों में जो कोई पुरुष दैवकर्म पितृकर्म को करते हैं और दीनों को देते हैं अथवा बड़ातप करते हैं उनसबके रक्षा स्थान ईश्वरसम्बन्धी बुद्धि में नियत विष्णुजीही हैं वह सब जीवों का उत्पत्तिस्थान अथवा सब जीवों में निवास करनेवाला वासुदेव कहाजाता है, यह पुराणपुरुष महाविभूतियुक्त प्रसिद्ध गुणातीत महाऋषि नारायण शीघ्रही गुणों से ऐसे मिलजाता है जैसे कि समय ऋतुओं से मिलजाता है, यहां इस महात्मा की गति को अथवा अगति को भी कोई नहीं जानता है न देखता है जो ज्ञानस्वरूप महर्षि हैं वही उस गुणातीत पुरुष को सदैव देखते हैं, ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेत्रिसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

एकसौचौहत्तर का अध्याय ॥

राजा जनमेजय बोले कि, बड़ा आश्चर्य है कि भगवान् हरि उन अनिच्छावान् सबभक्तों का पोषण करता है और बुद्धि से अर्पण कीहुई पूजा को आप ग्रहण करता है, लोक में जो पुरुष वासनारहित पुण्य पाप से पृथक् हैं तुम ने उन्हीं को ज्ञानगौरव सम्प्रदाय से प्राप्तहोनेवाला वर्णन किया, वह अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण के सिवाय चौथीप्रकृति वासुदेव नाम से पुरुषोत्तम को पाते हैं परन्तु इच्छारहित भक्त परमपद को पाते हैं, निश्चय करके यह एकान्त धर्म महाश्रेष्ठ नारायण का प्यारा है इसमें अनिरुद्ध आदि तीनों गतियों को न पाकर अविनाशी वासुदेव हरि को प्राप्त करते हैं, अच्छीरीति से धर्म में नियत

जो ब्राह्मण बुद्धि में नियतहोकर उपनिषदोंसमेत वेदों को पढ़ते हैं और संन्यास धर्म को भी रखते हैं उनसे भी उत्तमगतिपानेवाले इच्छारहित भक्तों को मैं जानता हूं यह धर्म किसीदेवता और ऋषि ने वर्णन किया है जनमेजय बोले कि, हे प्रभो ! अनिच्छावान् पुरुषों का आदि नियम क्या है और कबसे है इस सन्देह को निवृत्तकीजिये मुझे इसके सुनने की बड़ीइच्छा है, वैशंपायन बोले कि युद्धभूमि में कौरव और पाण्डवों की सेना तैयार होने और अर्जुन के उदास होनेपर आप भगवान् ने गीता का वर्णन किया, मैंने प्रथमही अगति अर्थात् ज्ञान धर्म गति उपासना धर्म तुझ से वर्णन किया यह मार्ग गहन है और अशुद्ध अन्तःकरण पुरुषों की बुद्धि में कठिनता से आता है, सामवेद "तत्त्वमसि" महावाक्य के समान है पहले सतयुग में जारीकियाहुआ वह धर्म आप शिवजी और नारदजी से धारण कियाजाता है हे महाराज ! ऋषियों के मध्य में श्रीकृष्णजी और भीष्मजी की विद्यमानता में महाभाग नारदजी से अर्जुन ने इसी विषय में पूछा था, हे राजेन्द्र ! नारदजी ने इसको जिस रीति से वर्णन किया और मेरे गुरु ने भी जैसे यह धर्म मुझ से कहा उसको मैं तुम से कहता हूं, हे पृथ्वीपाल ! जब नारायणजी के मुख से प्रकटहोनेवाले ब्रह्मा का मानसी जन्म हुआ तब आप नारायणजी ने, उसीधर्म से देवकर्म और पितृकर्म को किया फिर फेनप नाम ऋषियों ने इस धर्म को पाया, फेनपाओं से वैखानसों ने वैखानसों से चन्द्रमा ने पाया फिर वह गुप्त होगया, हे अर्जुन ! जब ब्रह्माजी का दूसरा जन्म चाक्षुप नाम हुआ तब ब्रह्माजी ने चन्द्रमा से धर्म को सुना और ब्रह्माजी ने उस धर्म को रुद्रजी को दिया, तिस पीछे सतयुग के बीच योगारूढ़ शिवजी ने यह संपूर्ण धर्म बालखिल्य ऋषियों को पढ़ाया फिर उस देवता की माया से वह धर्म गुप्त होगया, हे राजन् ! जब ब्रह्माजी का तीसरा जन्म कल्याणवाचक हुआ तब यह धर्म आप नारायणजी ने प्रकटकिया, सुपर्ण नाम ऋषि ने श्रेष्ठ तपस्या और नियमपूर्वक शान्तवृत्ति होकर इसधर्म को पुरुषोत्तमजी से पाया, इसकारण सुपर्णऋषि ने इस उत्तमधर्म को प्रतिदिन तीनबार पाठकिया उसके प्रभाव से यह व्रत त्रिसुपर्ण नाम से विख्यात है यह कठिनता से करने के योग्य व्रत त्रिसुपर्ण नाम ऋग्वेद के पाठ में पढ़ागया सनातनधर्म है तदनन्तर वायु ने इस धर्म को किया फिर वायु से विघसासी सप्तऋषियों ने पाया सप्तऋषियों से महोदधि ऋषि ने फिर नारायणजी से नियत कियाहुआ वह धर्म फिर गुप्त होगया, हे पुरुषोत्तम ! जब महात्मा ब्रह्माजी की उत्पत्ति नारायणजी के कानों से हुई उसके विषय में जो मैं कहता हूं उसको सुनो, संसार की उत्पत्ति में आसक्त चित्त नारायण हरि ने आप उससंसार की उत्पत्ति करनेवाले समर्थ पुरुष को ध्यान किया उस ध्यान करतेहुए नारायणजी के कानों से सृष्टि

के उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा नाम पुरुष बाहर निकले उन ब्रह्माजी से जगत्पति नारायण जी ने कहा कि हे सुन्दर व्रतवाले, पुत्र ! तुम मुख और चरणों से सब सृष्टि को उत्पन्नकरो और मैं तेरे कल्याण बल और तेज को भी करूंगा मुझ से सनातन नाम धर्म्म को लेकर उससे मिलेहुए सतयुग को बुद्धि के अनुसार नियत करो, तदनन्तर उन ब्रह्माजी ने नारायण देवता को नमस्कार करके रहस्य संग्रह समेत उत्तम धर्म को प्राप्त किया, फिर नारायणजी ने मुख से उत्पन्न होने वाले अमित तेजधारी ब्रह्मा को उपदेश करके कहा कि तुम इच्छा से रहित होकर युगधर्मों के कर्ता हो यह कहकर नारायणजी तो उस तम के पार चले गये जहां दृष्टि से गुप्त नारायण परब्रह्म नियत हैं, तदनन्तर उस लोकों के पितामह वरदाता ब्रह्माजी ने सब जड़ चैतन्य लोकों को उत्पन्न किया, सबसे पूर्व सतयुग वर्त्तमान हुआ तब सात्त्विक धर्मलोकों को व्याप्त करके नियत हुआ उस समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने उस पूर्व धर्म्म से देवेश्वर प्रभु नारायण हरि को पूजन किया, और संसार की वृद्धि की इच्छा से धर्म प्रतिष्ठा के निमित्त स्वारोचिष मनु को शिक्षाकरी, तदनन्तर हे राजन् ! सब लोकों के स्वामी समर्थ सावधान ब्रह्मा जी ने आपही स्वारोचिष के पुत्र शंखपद नाम को पढ़ाया फिर हे भरतवंशिन् ! शंखपद ने भी अपने औरसपुत्र दिशोपाल और सुवर्णाभ को पढ़ाया, फिर त्रेता युग के वर्त्तमान होनेपर वह धर्म फिर गुप्त हुआ, पूर्वसमय में ब्रह्माजी के नासत्य नाम जन्म में प्रभु नारायण हरि देवता ने इस धर्म को उपदेश किया, अर्थात् कमललोचन विष्णुजी ने उस धर्म को ब्रह्माजी के सन्मुख वर्णन किया फिर भगवान् सनत्कुमारजी ने उसको पढ़ा, फिर सतयुग के प्रारम्भ में वीरण नाम प्रजापति ने सनत्कुमारजी से इसधर्म को पढ़ा और वीरण ने भी पढ़कर रैभ्यनाम मनु को दिया उस रैभ्य ने अपने पुत्र कक्षी को जो कि शुद्ध सुन्दर व्रतयुक्त दिशाओं का रक्षक धर्मात्मा था पढ़ाया फिर वही धर्म गुप्त होगया, जिसका उत्पत्तिस्थान हरि हैं उन ब्रह्माजी के अण्डज जन्म में यह धर्म फिर नारायणजी के मुख से प्रकटहुआ, और ब्रह्माजी ने उस धर्म को प्राप्त किया और बुद्धि के अनुसार काम में लाये और बर्हिषद नाम मुनि को पढ़ाया बर्हिषद ने सामवेद के पूर्णज्ञाता ज्येष्ठनाम प्रसिद्ध ब्राह्मणों को पढ़ाया और ज्येष्ठ ब्राह्मण ने अविकम्पन राजा को दिया क्योंकि हरि सामवेद का व्रत धारण करनेवाले हैं फिर यह धर्म गुप्त होगया हे राजन् ! ब्रह्माजी का जो यह पद्मजनाम जन्म है उसमें यह धर्म आप नारायणजी ने नियत किया है, अर्थात् युग के प्रारम्भ में उस लोकधारी शुद्ध ब्रह्माजी के निमित्त कहागया फिर ब्रह्मा ने दक्ष को दिया दक्ष ने अपने बड़े धेवते सविता के बड़ेभाई आदित्य को दिया आदित्य ने विवस्वान् को दिया, फिर त्रेतायुग के प्रारम्भ में विवस्वान् ने मनु को दिया मनु

ने संसार के ऐश्वर्यादि के लिये इक्ष्वाकु को दिया इक्ष्वाकु से कहा हुआ धर्म लोकों को व्याप्त करके नियतहुआ अन्त को फिर भी वह धर्म नारायण में ही आवागवन करेगा, हे राजन् ! संन्यासियों का भी जो धर्म है वह पूर्व में भगवद्गीता के मध्यवर्ती मिलाहुआ तुम से कहा इस धर्म को नारदजी ने रहस्य संग्रहयुक्त नारायणजी से प्राप्तकिया था, इसप्रकार यह सनातन आदि धर्म कठिनता से समझने और करने के योग्य सदैव भगवद्भक्त पुरुषों से धारण किया जाता है, वह ईश्वर हरि इस अहिंसाधर्म युक्त श्रेष्ठ आचरित धर्म ज्ञान से प्रसन्न होता है, यह ब्रह्म एक व्यूह विभागवाला कहीं २ द्वैध नाम से भी युक्त है और त्रिव्यूहयुक्त भी प्रसिद्ध है और चार व्यूहवाला दृष्ट आता है, ममता और कला से पृथक् क्षेत्रज्ञ हरिही है और पञ्चतत्त्वों के गुणों से रहित सब जीवों में नियत जीव भी हरि हैं, हे राजन् ! पांचों इन्द्रियों को चेष्टा करानेवाला मन अहंकार समेत हरिही हैं और हरिही लोक प्रवर्त्तक अन्तर्यामी और बुद्धिमान् हैं और संसार की उत्पत्ति का ज्ञाता कर्त्ता अकर्त्ता कार्य्य कारणरूप हैं हे अर्जुन ! यह पुरीरूप शरीरों में निवास करनेवाला अविनाशी हरि जैसा चाहता है वैसीही क्रीड़ा करता है, हे राजेन्द्र ! मैंने गुरु की कृपा से अनिच्छावान् भक्तों का धर्म जोकि अज्ञानियों से जानने के अयोग्य है तुम से वर्णन किया, हे राजेन्द्र ! इच्छारहित भक्तपुरुष वहुत कम होते हैं कदाचित् यह संसार अनिच्छावान् पुरुषों से भराहुआ होजाय तो हिंसा रहित आत्मज्ञानी सबजीवों की भलाई में प्रवृत्त भक्तों से सतयुग वर्त्तमान होजाय वह युग फलरहित कर्मों से संयुक्त है, हे राजन् ! इसप्रकार से उस मेरे धर्मज्ञ गुरु ब्राह्मणोत्तम व्यासभगवान् ने इस धर्म को धर्मराज के सन्मुख वर्णन किया और ऋषियों के सन्मुख श्रीकृष्ण और भीष्मजी के सुनतेहुए भी वर्णनकिया उन व्यासजी के सन्मुख भी पूर्व्वसमय में बड़े तपस्वी नारदजी ने उस देवता का वर्णन किया जो कि परमब्रह्म चन्द्रमा के समान उज्ज्वल देदीप्तवर्ण अविनाशी है उसी में वह निराकांक्षी नारायण परायण भक्त लय होते हैं, राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि नानाप्रकार के व्रत में नियत दूसरे ब्राह्मण इसप्रकार ज्ञानियों से सेवित बहुत प्रकारवाले धर्म को क्यों नहीं करते हैं, वैशम्पायन बोले हे भरतवंशिन्, राजन्, जनमेजय ! शरीररूप बन्धन रखनेवाले जीवों में तीनप्रकृति सात्त्विकी, राजसी, तामसी नाम उत्पन्न कीगई हैं और शरीररूप बन्धन रखनेवाले जीवों में सात्त्विकी पुरुष श्रेष्ठ हैं वह मोक्ष के निमित्त निश्चय किया जाता है, यहां वह ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ उस पुरीरूप देहों में निवास करनेवाले को भी अच्छे प्रकार से जानता है और मोक्ष नारायण को प्राप्त करनेवाली है इसी से वह ज्ञानी सात्त्विकी कहाजाता है, वह इच्छारहित भक्ति रखनेवाला सदैव ईश्वर का ध्यान करनेवाला पुरुष उस पुरुषोत्तम को

ध्यान करता हुआ अभीष्ट को प्राप्त करता है, जो कोई मोक्षधर्मवाले बुद्धिमान् संन्यासी हैं उन निराकांक्षी पुरुषों के योगक्षेम को हरिही प्राप्त कराते हैं, जिस जन्मलेनेवाले पुरुष को मधुसूदनजी अपनी कृपादृष्टि से देखते हैं उसको भी सात्त्विकी जानना योग्य है वह भी मोक्ष के योग्य है, नारायणरूप मोक्ष में इच्छारहित भक्तों से सेवन कियाहुआ धर्म सांख्ययोग के समान है, इस कारण से वह भक्त परमगति को पाते हैं ईश्वरकी कृपासे ही ज्ञान उत्पन्न होता है अपनी इच्छा से नहीं होता है इसको वर्णन करते हैं कि नारायण से देखा हुआ पुरुष ज्ञानी होता है—अब भक्ति न होने से दोषों को कहते हैं हे राजन्! इसप्रकार अपनी इच्छा से ज्ञानी होनेवाला पुरुष जन्म नहीं धारणकरता है, राजसी और तामसी स्वभाव दोषों से संयुक्त हैं, रजोगुण तमोगुण से संयुक्त प्रवृत्ति लक्षणों से युक्त जन्म लेनेवाले पुरुष को आप नारायण नहीं देखते हैं अर्थात् प्रवृत्तिमार्ग मेंही लगाते हैं, और लोकपितामह ब्रह्माजी इस रजोगुण, तमोगुण से मिलेहुए जन्म लेनेवाले पुरुष को देखते हैं अर्थात् प्रवृत्तिमार्गी करते हैं और देवता ऋषि तो अवश्य सतोगुण में नियत हैं परन्तु सूक्ष्म सतोगुण से पृथक् हैं इसी हेतु से वैकारिक कहेजाते हैं, राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि अहंकारी जीव किस रीति से पुरुषोत्तम को प्राप्त करसक्ता है इसको वर्णन कीजिये और प्रवृत्ति को भी क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि संन्यासधर्म में नियत पच्चीसवां पुरुष उस पुरुष को प्राप्त करता है जो कि अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्वों से युक्त अधिष्ठानरूप अकार, उकार, मकार इन तीन अक्षरों से संयुक्त अर्थात् उपाधियों को त्यागकर पुरुष उस आदिपुरुष को प्राप्त करता है वह प्रवेश करनेवाला पुरुष अन्य नगर की समान नहीं है किंतु उपाधि से रहित होनाही इसकी प्राप्ति है इसप्रकार से आत्मा अनात्मा का विवेकरूप सांख्य और चित्तवृत्ति निरोधरूप योग जीव ब्रह्म की एकता को सिद्ध करनेवाला "तत्त्वमसि" वाक्य से उत्पन्न होता है और ज्ञानरूप वेदारण्यक और भक्तिमार्गरूप पंचरात्रि यह सब एक दूसरे के अंग कहे जाते हैं अर्थात् यह सब एकही पुरुष के धर्म हैं पृथक् २ पुरुषों के नहीं हैं अनिच्छावान् पुरुषों का यह धर्म नारायण में निष्ठा रखनेवाला है हे राजन्! जैसे समुद्र से निकलनेवाले जलसमूह फिर उसी में प्रवेश करते हैं, उसीप्रकार यह ज्ञानरूप बड़े जलसमूह रूप फिर नारायण में प्रवेश करते हैं, हे कौरवनन्दन! यह मैंने सात्त्विक धर्म तुम से वर्णन किया, उसको न्याय के अनुसार करो जिससे कि समर्थ हो इसीप्रकार उन महाभाग नारदजी ने मेरे गुरु से, श्वेत गर्हितआदि की और संन्यासियों की एकान्त नाम अविनाशी गति को वर्णन किया और व्यासजी ने बड़ी प्रीतिपूर्वक बुद्धिमान् युधिष्ठिर के सन्मुख वर्णन किया, गुरु से उपदेश किया हुआ यह वही धर्म मैंने

तुम से कहा हे राजाओं में श्रेष्ठ! इसप्रकार से यह धर्म असाधारण है, जैसे कि इसमें तुम मोहित होते हो उसीप्रकार अन्य पुरुष भी अधिक मोहित होते हैं, हे राजन्! श्रीकृष्णजीही संसार के पालनकर्त्ता मोहित करनेवाले नाश करनेवाले और उत्पत्ति के कारण हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचतुस्सप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

एकसौपचहत्तर का अध्याय ॥

राजा जनमेजय ने प्रश्नकिया हे ब्रह्मर्षे! यह सांख्ययोग पंचरात्रि वेद अरण्यकनाम ज्ञान लोकोंमें जारी है, हे मुने! यह क्या एकही पुरुष की निष्ठा है अथवा पृथक् २ पुरुषों की निष्ठा है आप इन ज्ञानियों की प्रवृत्ति को क्रम से वर्णन कीजिये, वैशम्पायन बोले कि, पराशरऋषि और सत्यवती माता ने द्वीप के मध्य में अपने योग के द्वारा जिस बहुज्ञ उत्तम बड़ेउदार महर्षिपुत्र को उत्पन्नकिया उस अज्ञान के नाशकरनेवाले व्यासजी को नमस्कार है, जिन व्यास महर्षि को ऋषियों के ऐश्वर्ययुक्त वेदों का बड़ाभण्डार नारायणजी का छठवांअवतार और नारायणही के अंश से उत्पन्न एकपुत्र कहते हैं, महाविभूति और ऐश्वर्य्ययुक्त तेजस्वी नारायणजी ने पूर्व्वसमय में उस वेदों के बड़े भंडार महात्मा अजन्मा पुराणपुरुष व्यासजी को अपना पुत्र होने के निमित्त उत्पन्नकिया, जनमेजय ने कहा हे उत्तम, ब्राह्मण! पूर्व में आप नेही व्यासजी का जन्म वह वर्णन किया था कि वशिष्ठजी के पुत्र शक्ति और शक्ति के पुत्र पराशरजी और पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हैं उनको आप नारायणजी का पुत्र कहते हो इसकारण से बड़े तेजस्वी व्यासजी का होनेवाला जन्म नारायणजी से कैसेहुआ इन सबको आप वर्णन कीजिये, वैशम्पायन बोले कि, हे राजन्! वेदार्थ कहने के उत्सुक धर्मिष्ठ तपोमूर्त्ति ज्ञाननिष्ठ हिमालय के नीचे विराजमान और महाभारत को बनाकर तप से थकित बुद्धिमान् गुरु की सेवा में प्रीतिमान् हम सबने उन व्यासजी की सेवाकरी, सुमन्तु, जैमिनि, बड़ेदृढ़व्रतवाले पैल, चौथा शिष्य मैं और व्यासजी के पुत्र शुकदेवमुनि इन पांचों उत्तम शिष्यों समेत शिवजी शोभायमान होते हैं, अंगों समेत वेद और सब महाभारत के वारंवार अर्थ वर्णन करतेहुए व्यासजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे कि भूतगणोंसमेत शिवजी शोभित होते हैं और हम सब शिष्यों ने भी एकाग्रमन होकर उन जितेन्द्रिय व्यासजी को मन से पूजन किया और किसी कथा में हम सब ने उनसे पूछा कि वेदार्थ और महाभारत के अर्थों को और नारायणजी से होनेवाले अपने जन्म को वर्णन कीजिये, उस तत्त्वज्ञानी ने प्रथम तो वेद के अर्थों को और महाभारत के अर्थों को कहकर नारायणजी से होनेवाले इस अपने जन्म

को वर्णन करना प्रारम्भ किया, हे ब्राह्मणोत्तम ! इस ऋषिसम्बन्धी पूर्व्वसमय में प्रकट होनेवाले उत्तम आख्यान को सुनो मैंने इसको तप के द्वारा जाना है, कमल से उत्पन्न संसार की सात्त्विक उत्पत्ति होनेपर शुभाशुभरहित बड़े तेजस्वी और योगी नारायणजी ने अपनी नाभि से प्रथम तो ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और जब ब्रह्मा प्रकटहुए तब उनसे यह वचनकहा कि तुम समर्थ संसार के स्वामी मेरी नाभि से उत्पन्न हुए हो सो हे ब्रह्माजी ! तुम नानाप्रकार के स्थावर जंगम जीवों को उत्पन्न करो, इसप्रकार से कहेहुए चिन्ता से व्याकुल मन से विमुख उन ब्रह्माजी ने वरदाता ईश्वर हरिको प्रणाम करके कहा कि हे देवेश्वर ! तुम को नमस्कार करके कहता हूं कि सृष्टि के उत्पन्न करने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है मैं अज्ञानी हूं यह ब्रह्माजी के वचन सुनकर उस महाज्ञानी देवेश्वर भगवान् ने अन्तर्द्धान होकर बुद्धिदेवी को स्मरणकिया, स्मरण करतेही वह स्वरूपधारी बुद्धिदेवी नारायणजीके पास आकर प्राप्तहुई तब उस निस्संग ईश्वर ने अपने योग से उस बुद्धिदेवी को संयुक्त करके यह वचन कहा, कि संसार की उत्पत्ति के लिये तुम ब्रह्माजी में प्रवेश करो तदनन्तर ईश्वर की आज्ञा से वह बुद्धि बड़ीशीघ्रता से ब्रह्माजी के शरीर में प्रवेश करगई; उसके पीछे उस हरि ने इस बुद्धि से संयुक्त ब्रह्माजीको फिर दर्शन दिया और यह वचन कहा कि नानाप्रकार के जीवों को उत्पन्नकरो, तब ब्रह्माजी ईश्वर की आज्ञा को स्वीकार करके विचारपूर्व्वक कर्म में प्रवृत्तहुए और भगवान् वक्ष्यमाण बातों को कहकर उसीस्थान में अन्तर्द्धान होगये, कि ब्रह्माजी तुम उस निवासस्थानको एक मुहूर्त्त मेंही पावोगे और उस स्थान को पातेही अद्वैत भगवद्भक्तहोगे इस अनन्य भक्तिके होतेही हे ब्रह्माजी ! तुम्हारी दूसरी बुद्धि फिर प्रकटहोगी उसी बुद्धि के द्वारा सब सृष्टि उत्पन्न होगी दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसों के समूह से यह तपस्विनी पृथ्वी महाव्याकुल हो उन सबके भार से दब जायगी तब पृथ्वीपर महाबलवान् तप संयुक्त बहुत से दैत्य, दानव और राक्षस होंगे और उत्तम वरों को पावेंगे, वरों के पाने से अभिमानी इन सब राक्षस आदि के हाथों से देवता आदि ऋषि, मुनि, तपोधन लोग अवश्य पीड़ा को पावेंगे तब मैं उस पृथ्वी के भार के उतारने को अवतार धारण करके न्याय के अनुसार धर्म जारी करूंगा, तदनन्तर यह तपस्विनी पृथ्वी पापियों को दण्ड और साधुओं के पोषण करने से प्रजाको धारण करेगी, क्योंकि मुझ पातालवासी शेष नागरूप से यह सूक्ष्म स्थूलरूप चौदह भुवन नाम पृथ्वी धारण कीजाती है और मुझ से धारण किये हुए इस जड़, चैतन्य विश्व को यह धारण करती है, इसीकारण अवतार लेनेवाला मैं पृथ्वी की रक्षाकरूंगा, फिर उस भगवान् मधुसूदनजी ने ऐसा विचारकर अवतार लेने के लिये वराह, नृसिंह, वामन आदि अनेकरूपों को उत्पन्न किया, यह समझकर

कि इनरूपों के द्वारा मैं दुष्टराक्षसों को मारूंगा, तदनन्तर संबोधनपूर्व्वक वार्त्तालाप करतेहुए संसार के स्वामी ने, सरस्वती का उच्चारण किया उस स्थानपर वचन से प्रकट होनेवाला पुत्र सारस्वत प्रभु उपान्तरात्मानाम उत्पन्न हुआ, वह तीनोंकालका जाननेवाला सत्यवादी दृढ़व्रतधारी था, उसको देखकर देवताओं के आदिभूत अविनाशी ईश्वर ने उस माथा नवायेहुए पुरुष से यह वचन कहा कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! तुम को वेदाख्यान में श्रुतियों का करना योग्य है हे मुने! इसी कारण जैसा मैंने कहा है वैसाही करो, तब स्वायम्भुव मन्वन्तर में उस ने वेदों का विभाग किया तिस पीछे भगवान् हरि उसके उस कर्म से प्रसन्न हुए, और कहा कि हे पुत्र! अच्छे तपेहुए तप यम और नियमों से तुम हर एक मन्वन्तर में इसप्रकार वेदों के जारी करनेवाले होगे, और सदैव अचल और अजय होगे, फिर कलियुग वर्त्तमान होनेपर कौरव नाम भरतवंशी महात्मा राजा पृथ्वीपर वर्त्तमान होंगे और तुझ से उत्पन्न उन भरतवंशियों में नाश करनेवाला परस्पर का विरोध उत्पन्न होगा हे ब्राह्मणोत्तम! तुम वहां भी तप से संयुक्त हो कर वेदों को बहुतप्रकारका करोगे, कलियुग वर्त्तमान होनेपर कृष्णवर्ण होगा वह नानाप्रकार के धर्मों का उत्पन्न करनेवाला ज्ञान का उत्पादक और तप से संयुक्त होगा। और वैराग्य से जीवन्मुक्त होगा, और तेरा पुत्र वैराग्यवान् परमात्मा महादेवजी की कृपा से उत्पन्न होगा यह मेरा वचन सत्य है, वेदपाठी ब्राह्मण जिन वशिष्ठजी को ब्रह्माजी की उत्तमबुद्धि से संयुक्त और उत्तम तप का भंडार मानसी विख्यात जिसकी किरणें सूर्य्य से भी अधिक देदीप्य हैं, उसके वंश में बड़े प्रभाववान् वेदों के घर श्रेष्ठ महातपस्वी तपोमूर्त्ति महर्षि पराशरजी उत्पन्नहोंगे वही तुम्हारे पिता होंगे तुम उस ऋषि से कन्या के बीच कानीनगर्भ नाम पुत्र उत्पन्न होगे और त्रिकालज्ञ होगे पूर्व्व में जो कल्प व्यतीत हुए उन सबको तुम तपयुक्त होकर मेरे उपदेश से देखोगे फिर आगे होनेवाले अनेक कल्पों को भी देखोगे हे मुने! लोक में मेरे ध्यान से मुझ आदि अन्तरहित चक्रधारी को भी देखोगे इस वचन को सत्यही जानना, हे बुद्धिमन्! तेरी बड़ी कीर्त्ति होगी और सूर्य्य का बड़ा पुत्र शनैश्चर मनु होगा, हे पुत्र! उस मन्वन्तरमें मेरी कृपासे तुम निस्सन्देह मनु आदि समूह के पूर्वही होगे, संसारमें जो कुछ वर्त्तमान है वह मेरा कर्म है एक अनात्मा दूसरे अनात्माका ध्यान करता है, मैं अपनी इच्छाके अनुसार कर्म्म करता हूं, वह परमेश्वर सारस्वत ऋषि उपान्तरात्मा नाम से प्रकट होगा ऐसा वचन कहकर बोले कि साधन करो सो मैं उस विष्णु देवताकी कृपा से उपान्तरात्मा नाम उत्पन्नहुआ फिर हरिकी आज्ञासे जन्म लेनेवाला मैं वशिष्ठजीका कुलनन्दन नाम प्रसिद्ध हुआ मैंने नारायणजी की कृपा से वह अपना पहला जन्म और यह जन्म जो कि नारायण के अंश से उत्पन्न हुआ है वर्णन किया,

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, शिष्यलोगो ! मैंने प्राचीन समय में उत्तम समाधियुक्त महाअसह्यतप किया था हे पुत्रो ! मैंने भक्तोंकी प्रीति से तुम्हारा पूछा हुआ यह प्रथम जन्म और होनेवाला वृत्तान्त तुम से कहा; वैशम्पायन बोले हे राजन् ! इस मृदुलाचित्त अपने गुरु व्यासजी का प्रथम जन्म जो तैंने पूछा था उसका वर्णन फिर भी सुनो, हे राजऋषे ! सांख्ययोग, पंचरात्र, वेद, पाशुपत इत्यादि नाना प्रकार के मतों को ज्ञान जानो, सांख्यशास्त्र के वर्णन करनेवाले कपिल मुनि हैं वह परमऋषि कहे जाते हैं वही पुरातन हिरण्यगर्भ योग के जानने-वाले हैं दूसरा नहीं है, वह उपान्तरात्मा ऋषि वेदों के आचार्य कहे जाते हैं यहां कोई पुरुष उस ऋषि को प्राचीनगर्भ भी कहते हैं, ब्रह्माजी के पुत्र उमापति, भूतपति, श्रीकण्ठ, सावधान, शिवजी ने इस पाशुपत ज्ञान को वर्णन किया है, हे राजन् ! सम्पूर्ण पंचरात्रि के जाननेवाले आप भगवान् नारायण हैं और इन सब ज्ञानियों के मध्य में, शास्त्र और अनुभव के अनुसार प्रभु नारायण ही निष्ठारूप दिखाई देते हैं अर्थात् नारायण ही सब के परमात्मा हैं और जो पुरुष तमोगुणी हैं वह इसको अच्छी रीति से नहीं जानते हैं, शास्त्र बनानेवाले ज्ञानी पुरुष उसी नारायणऋषि को निष्ठा कहते हैं, और नारायण के सिवाय दूसरी निष्ठा नहीं है यह मेरा वचन है, सब पुरुषों में निस्सन्देह हरि सदैव नि-वास करते हैं और सन्देह से भरेहुए कुतर्कणा करनेवाले मनुष्यों में माधवजी निवास नहीं करते हैं, हे राजन् ! जो मनुष्य क्रमानुसार पंचरात्र के जाननेवाले और अनिच्छा भक्त हैं वह परमेश्वर हरि में प्रवेश करते हैं, सांख्य और योग यह दोनों शास्त्र सनातन हैं और सब वेदोंसमेत ऋषियों से भी प्राचीन विश्वनारायणरूप कहेजाते हैं अर्थात् वह नारायण अद्वितीय है, सब लोकों में जो कुछ वेदोक्त शुभाशुभकर्म वर्त्तमान होता है वह सब स्वर्ग, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल में उसी नारायण ऋषि से उत्पन्न होता है अर्थात् सब को कर्म में प्रवृत्त करनेवाला अन्तर्यामी वही नारायण है ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धपञ्चसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

एकसौछिहत्तर का अध्याय ॥

जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन् ! बहुत से पुरुष हैं अथवा एक ही पुरुष है यहां कौन पुरुष उत्तम है और कौन उत्पत्तिस्थान कहाजाता है, वैशम्पायन बोले कि हे राजन्, जनमेजय ! लोकव्यवहार में बहुत पुरुष हैं और सांख्ययोग के विचार में एकही है उस एक पुरुष को नहीं जानते हैं, जिसप्रकार बहुत से प्रतिबिम्बों का उत्पत्तिस्थान एकही बिम्ब होता है उसी प्रकार हमलोगों का उत्पत्तिस्थान इस पुरीरूप शरीर में निवास करनेवाले गुणों से परे नारायण को

वर्णन करता हूं—श्रीगुरु व्यासजी को नमस्कार करके कहता हूं कि उत्तम ऋषि से विचार कियाहुआ यह पुरुषसूक्त सब वेदों में सत्य और पूजन के योग्य प्रसिद्ध हुआ, हे भरतवंशिन् ! कपिलादि ऋषियों ने वेदान्तविचार में नियत होकर योग्यायोग्य और विधि निषेध के साथ शास्त्रों को वर्णन किया, व्यास गुरु ने जो सूक्ष्म के साथ पुरुष की ऐक्यता वर्णनकी है मैं उसको अपने महात्मा गुरु की कृपा से वर्णन करता हूं हे राजन् ! इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिस में ब्रह्माजी और शिवजी के प्रश्नोत्तर हैं, हे राजेन्द्र ! क्षीरसमुद्र में सुवर्ण के समान प्रकाशित वैजयन्त नाम से प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है वहां वेदान्त गति को विचारते अकेले देवता ब्रह्माजी सदैव विराट् भवन के समीप उसी वैजयन्त पर्व्वत को सेवन करते थे, दैवयोग से वहांपर बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्माजी के ललाट से उत्पन्न पुत्र शिवजी भी आपहुँचे, और प्रसन्नमन होकर शिवजी के सन्मुख हुए और दोनों चरणों को प्रणाम किया तब अकेले प्रभु ब्रह्मा प्रजापति ने उन नमस्कार करते हुए शिवजी को देख कर हाथों से ऊपर को उठाया और बहुत काल में मिले हुए अपने पुत्र शिवजी से बोले कि हे महाबाहो ! तुम आनन्द से आये और मेरे प्रारब्ध से यहां आये हो हे पुत्र ! सदैव तुम्हारे वेदपाठ और तपस्या में निर्विघ्नता है, तुम सदैव उग्र-तप करनेवाले हो इसकारण फिर तुम से पूछता हूं, शिवजी बोले कि हे भगवन् ! आप की कृपा से मेरे वेदपाठ और जप तप की कुशलता पूर्वक वृद्धि है और सब जगत् की कुशल है, बहुत काल हुआ कि मैंने आप भगवान् को विराट् भवन में देखा था इसी कारण मैं आप के चरणों से सेवित इस पर्व्वतपर आया हूं हे पितामह ! आप की मुलाकात हुई मुझ को भी आप के दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी और हे तात ! वह श्रेष्ठ भवन कौन सा है जो क्षुधा तृषा से रहित देवता असुर और तेजस्वी ऋषियों से सेवित है और गन्धर्व अप्सराओं से भी शोभित है अकेले आप ने इस उत्तम पर्वत को छोड़कर इस भवन को सेवन किया, ब्रह्माजी बोले इस पर्व्वतों में श्रेष्ठ वैजयन्त नाम पर्व्वत को मैं सदैव सेवन करता हूं यहां मैं एकाग्रमन से विराट् पुरुष का ध्यान करता हूं, रुद्रजी बोले कि, हे ब्राह्मण ! स्वतः उत्पन्न होनेवाले तुम ने बहुत से पुरुषों को उत्पन्न किया और अब भी करते हो सो हे ब्रह्मन् ! वह विराट् पुरुष अकेला है सो कौन है जिसको तुम ध्यान किया करते हो आप इस मेरे संदेह को दूरकरिये मुझे इसके जानने की बड़ी इच्छा है, ब्रह्माजी बोले हे पुत्र ! तत्त्वों से संघातरूप अनेक पुरुष हैं जो तुमने अच्छीरीति से वर्णन किये इस संघात को उल्लंघन करनेवाला पुरुष इस प्रकार से दर्शन के योग्य नहीं है उस अकेले पुरुष के अधिष्ठान को मैं तुम से कहता हूं जैसे कि बहुत से पुरुषों का उत्पत्ति स्थान एकही कहाजाता है, उसी

प्रकार ज्ञानी पुरुष निर्गुण होकर उस विश्वरूप परम सूत्रात्मा वृद्धों को वृद्ध निर्गुण अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव नाम रखनेवाले सनातन निर्गुण ब्रह्ममें प्रवेश करते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे षट्सप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

एकसौसतहत्तर का अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र! जैसे यह न्यूनतारहित अविनाशी सनातन पुरुष सब स्थानों में वर्त्तमान कहाजाता है और देखाजाता है वह पुरुष हम से तुम से और अन्य पुरुषों से जो बुद्धि इन्द्रिय युक्त वा शमदमादि गुणों से रहित है दर्शनकरने के अयोग्य है वह विश्वात्मा केवल ज्ञानी सेही देखने में आता है, तीनों देहोंसे पृथक् यह पुरुष सब शरीरों में निवास करता है और शरीरों में बसता हुआ भी कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता है, वही मेरा और तेरा अन्तरात्मा है और दूसरे शरीरवान् हैं उन सब का साक्षी है तौभी वह कहीं किसी से पकड़ने के योग्य नहीं है,—यही विश्वरूप है इसको कहते हैं—विश्वही उसका मस्तक, भुजा, चरण, नाक, आंख आदि हैं वह अपनी इच्छा से कर्मकर्त्ता है सब शरीरों में सुखपूर्व्वक घूमता है, सब शरीर क्षेत्र हैं और अच्छे बुरे कर्म बीजरूप हैं वह योगात्मा उनको जानता है इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, जीवों में किसी से उसकी ऊर्ध्व वा दिव्ययान आदि की गति जानी नहीं जासक्ती है मैं सांख्य योग से क्रमपूर्व्वक उसकी गति को विचारता हूं परन्तु उसकी उत्तम गति को नहीं जानता हूं तौभी ज्ञान के अनुसार सनातन पुरुष को वर्णन करता हूं और एकता और बुद्धिमत्ता को भी कहता हूं—जो अकेला पुरुष कहाजाता है वही सनातन अकेला पुरुष महापुरुष कहलाता है एकही अग्नि अनेक प्रकार से वृद्धि पाता है एकही सूर्य्य सर्वत्र प्रकाश करता है तप का उत्पत्तिस्थान एक ही है लोक में एकही वायु अनेकप्रकार से चलती है और जलों का भी उत्पत्ति स्थान केवल एक समुद्र है और पुरुष भी अकेला निर्गुण और सगुण है उसी निर्गुण पुरुष में सब प्रवेश करते हैं सब देह, इन्द्रिय, अहंकार, रूपगुणों को छोड़ शुभाशुभ कर्म्मों को त्यागकर अविनाशी जीव और प्रधानभोक्ता भोग को त्याग करके निर्गुण होता है, जो पुरुष गुरु से जताये हुए मनसेपरे परमात्मा को जानकर अर्थात् साक्षात्कार कर के सूक्ष्म विभागरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव अथवा अधिदेव विराट् सूत्रात्मा अन्तर्य्यामी शुद्ध ब्रह्म या अध्यात्म विश्वतैजस प्राज्ञ इन सबमें कर्म करनेवाला होता है अर्थात् सूक्ष्म स्थूल लय के क्रम से सदैव समाधि को अधिष्ठान करता है वह बड़ा शान्त है और वही उस शुभपुरुष को प्राप्त करता है, इसप्रकार कोई पण्डित वा योगी

परमात्मा को चाहते हैं, उस स्थानपर जो परमात्मा है वह सदैव निर्गुण कहाता है वही सबका आत्मा पुरुष नारायण जानने के योग्य है वह कर्म्मों के फल से भी कभी सम्बन्ध नहीं रखता जैसे कि जल से कमल का पत्ता स्पर्श नहीं करता, कर्मकर्त्ता दूसरा पुरुष है जोकि मोक्ष बन्धनों से संयुक्त होता है वह तत्त्वों के समूह लिंगशरीर से संयुक्त होते हैं इस प्रकार वह उपाधियुक्त जीवात्मा कर्मों के विभाग से देवमनुष्यादि के रूपों को प्राप्तकरनेवाला पुरुष क्रमपूर्व्वक बहुत प्रकार का रूप से कहा है जो वह पुरुष संपूर्ण लोक मन्त्र का प्रकाशक चैतन्य ज्योतिरूप है वही जानने के योग्य उत्तम समझनेवाला जीव है वही सब इन्द्रियों के विषयों का भोगनेवाला जानने के योग्य है हे तात ! जिसको सगुण निर्गुण और प्रधान पुरुष भी कहते हैं, वह प्रधान पुरुष सदैव रहनेवाला आदिअन्तरहित रूपान्तर दशा से हीन और धाता से प्रथम महत्तत्त्व को उत्पन्न करता है—वेदपाठी ब्राह्मण उसको अहंकाररूप अनिरुद्ध कहते हैं जोकि लोक में वैदिककर्म्मों का अधिष्ठाता देवता है वही इच्छा कियाजाता है उसी का ध्यान करना उचित है अच्छे शान्तरूप सब मुनि सावकाश के समय कर्म-यज्ञ और उस यज्ञभोक्ता को समझते हैं अर्थात् यह कहते हैं कि इस अग्निहोत्र से वह अनिरुद्ध का आत्मा वासुदेव प्रसन्न हो मैं संसार का आदि ईश्वर ब्रह्मा उससे उत्पन्न हुआ और तुम मुझ से प्रकट हुए, हे पुत्र! मुझ सेही जड़ चैतन्य जगत् और सब वेद रहस्योंसमेत प्रकट हुए, चाररूपों में विभाग होनेवाला वह पुरुष क्रीड़ा करता है जैसा चाहता है वैसाही वह षड़ैश्वर्य्य का स्वामी अपने द्वैत ज्ञान से सावधान होता है अर्थात् वह वासुदेव उपाधियुक्त होकर चार प्रकार का होता है और अन्त में अपने अखण्ड स्वरूप के ज्ञान से जीवभाव को त्याग कर वासुदेवही होता है, हे पुत्र ! यह मैंने तेरे पूछने से भक्ति और भक्तिजन्य ज्ञान और ज्ञान से प्राप्त होनेवाला मोक्ष जो कि सांख्यज्ञान और योगशास्त्र में निश्चय कियागया है मूल समेत वर्णन किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे सप्तसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

एकसौअठहत्तरका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, यद्यपि सुलभा और राजा जनक के संवाद में संन्यास-धर्म को उत्तम कहा तथापि सुख से प्राप्त होनेवाला श्रेष्ठ आश्रम कौन है और इस ज्ञान की इच्छा से प्रश्न कियेहुए मोक्षधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले पितामह ब्रह्मा ने जो शिवजी से वर्णनकिया वह आश्रमियों के मध्य में उत्तम धर्म आप कृपा करके वर्णनकीजिये भीष्मजी बोले कि, सब आश्रमियों में वह धर्म विचार कियागया है जोकि स्वर्ग और मोक्षनाम बड़े फल का देनेवाला है इसलोक

में यज्ञ दान आदि बहुत से द्वार रखनेवाले धर्म के कर्म निष्फल नहीं हैं हे भरतर्षभ ! जो पुरुष जिस २ आश्रम धर्म में पूरे निश्चय को पाता है वह उसी को जानता है दूसरे को नहीं जानता है, इस दशा में न्यायपूर्वक धन प्राप्त करनेवाले गृहस्थाश्रम की उत्तमता सिद्ध करने को उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण का इतिहास प्रारम्भ करते हैं, हे नरोत्तम ! पूर्वसमय में श्रीनारद महर्षि से इन्द्र के सन्मुख वर्णन की हुई यह कथा मैं तुम से कहता हूं, कि तीनों लोकों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले वायु के समान बे रोक शुद्ध नारदजी क्रमपूर्वक लोकों में भ्रमण करते थे, वह नारदजी घूमते हुए कभी इन्द्रलोक को गये और वहां इन्द्रने उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करके श्रेष्ठ आसनपर विराजमान किया और यह पूछा कि हे निष्पाप, महर्षे ! आप ने कोई अद्भुतता भी देखी है, आप नानाप्रकार के अद्भुत कौतूहलों को देखतेहुए तीनों लोकों में आनन्द से विचरते रहते हो ऐसी कोई बात नही है जो आप को विदित न हो चाहै आप ने सुना हो वा अनुभव किया हो अथवा देखा हो मुझ को आप के मुख से सुनने की बड़ी अभिलाषा है हे युधिष्ठिर ! तबतो नारदजी ने इस बड़े इतिहास को इन्द्र से वर्णन किया सो जैसे नारदजी ने इन्द्र के पूछने पर कथा को कहा वैसेही तुम्हारे पूछने पर मैं तुम से कहता हूं ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टसप्तत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

एकसौउनासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे नरोत्तम ! गंगाजी के दक्षिण तटपर महापद्मनाम उत्तम नगर में कोई सावधान तपस्वी ब्राह्मण था, जोकि सौम्य और अत्रिगोत्रवाले वेदमार्ग जानने में संशयरहित सदैव धर्मिष्ठ क्रोध और इन्द्रियजित तप वेदपाठ अथवा जपमें प्रीति करनेवाला सत्यवक्ता सज्जन न्यायसे उपार्जित धन और अपने शील स्वभावयुक्त बहुत से सजातीय कुटुम्बी लोगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य आश्रम के समान प्रसिद्ध बड़ा कुलीन श्रेष्ठवृत्ति में नियत था, वह अपने बहुत से पुत्रों को देखकर महाकर्म में नियत कुलधर्मी अपनी धर्मचर्य्या में उपस्थित हुआ, फिर वह ब्राह्मण वेद और शास्त्र के लिखेहुए उत्तम लोगों के अनुभूत तीन प्रकार के धर्म को मन से विचारकर, सदैव ऐसा दुःख पाता था कि कैसे मेरा बेड़ापार हो ऐसा कौन सा कर्म और स्थान है जिसका सेवनकरूं किसी बात में पूरा निश्चय नहीं होता था, एक समय कोई बड़ा सावधान अतिथि ब्राह्मण जोकि उत्तमधर्म का ज्ञाता था उस दुःखी ब्राह्मण के समीप आया उसने बड़ी भक्ति से उसका शिष्टाचार किया और उनको प्रसन्नकर आनन्द से बैठाकर यह वचन कहा ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकोनाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

एकसौअस्सी का अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि, हे निष्पाप! मैं तेरे मीठे वचनों से तेरे वश में हूं तुम मेरे मित्र हो अब मैं जो कुछ कहूं उसको सुनो हे वेदपाठियों में उत्तम! मैं गृहस्थ आश्रम को अपने पुत्र के आधीन करके मोक्षधर्म में प्रवृत्तहोना चाहता हूं आप मुझ को वह मार्ग बताइये, मैं अकेलाही आत्मा का आलम्बनकर आत्मा में नियत होकर संन्यास आश्रम को धारण किया चाहता हूं परन्तु इन्द्रियों के जाल में फँसे हुए होने से उसको नहीं चाहता हूं जबतक पुत्र के स्नेह कर्म में फँसकर मेरी अवस्था व्यतीत हो तबतक परलोक सम्बन्धी पाथेय अर्थात् परलोक के मार्ग का भोजनादि पदार्थ प्राप्त किया चाहता हूं, इस ब्रह्माण्ड के बीच मुझ संसार से पार उतरनेवाले का विचार हुआ है कि धर्मरूप नौका किस आश्रम में है संसार में देवताओं को कर्म में प्रवृत्त और पीड्यमान विचारता सृष्टि में ऐसे फैले हुए रोगों को जोकि यमराज की पताका के दण्डरूप हैं देखता हूं और भोजन के समय संन्यासियों को दूसरे के घर में भिक्षा मांगनेवाला देखकर इस संन्यासधर्म में भी प्रवृत्त नहीं होता हूं हे अतिथे! इसी कारण बुद्धिबल में नियत धर्म के द्वारा मुझ को धर्म में प्रवृत्तकरो उसज्ञानी अतिथि ने उसधर्म का वर्णन करनेवाले ब्राह्मण के वचन को सुनकर बड़ी मधुरता से इस स्वच्छ वचन को कहा कि इसस्थानपर मैं भी मोह को पाता हूं मेरा भी यही मनोरथ है कि अनेक द्वारयुक्त स्वर्ग होनेपर पूरे निश्चय को नहीं पाता हूं कोई मोक्ष की प्रशंसा करते हैं कोई यज्ञ के फल को उत्तम कहते हैं कोई वानप्रस्थधर्म में कोई गृहस्थाश्रम में नियत हैं कोई राजधर्मसम्बन्धी धर्म को कोई आत्मफलसम्बन्धी धर्म को कोई गुरुधर्मसम्बन्धी कर्म को कोई शान्तचित्तीयधर्म को और कोई मातापिता को सेवन करतेहुए स्वर्ग को गये कोई हिंसारहित सत्यता के द्वारा स्वर्ग को गये, कोई युद्ध में लड़कर मरनेवाले स्वर्ग को गये कोई पुरुष उञ्छवृत्ति से शुद्ध कोई पुरुष स्वर्गमार्ग में प्रवृत्त कोई वेदपाठी वेदव्रत में नियत बुद्धिमान् तृप्त आत्मा जितेन्द्रिय उत्तम पुरुष स्वर्ग को गये शुद्धस्वभाव शुद्ध अन्तःकरण प्रतिज्ञावान् सत्यवादी और ऐसे भी मनुष्य जो कुटिल पुरुषों के हाथ से मारेगये स्वर्ग में आनन्द करते हैं इसप्रकार बहुतप्रकार के लोकों और धर्म के बड़े २ द्वारों से मेरी भी बुद्धि ऐसी व्याकुल हुई है जैसे वायु से बादल अस्तव्यस्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकसौइक्यासी का अध्याय ॥

अतिथि ने कहा कि, हे ब्राह्मण! जैसामेरे गुरु ने उपदेश किया है वैसाही मैं

तुमसे वर्णन करता हूं प्रथम अर्थतत्त्व को कहता हूं उत्पत्ति के समय में जिस नैमिषारण्य क्षेत्र के गोमती के तटपर धर्मचक्र वर्त्तमान हुआ वहां नागाह्वय नाम एक नगर था जहां राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाता ने यज्ञ करके इन्द्रको विजय किया अथवा स्वाधीन किया था वहांपर पद्मनाभ नागनाम से प्रसिद्ध महाभाग धर्मात्मा सर्प निवास करता है हे विप्रेन्द्र! कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीन प्रकार के ज्ञान में प्रवृत्त होकर वह सर्प मन, वाणी, कर्म से सबजीवों को प्रसन्न करता है और साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारप्रकारके नीति विचार से अर्थ के मूलको जानकर कुटिलतारहित सत्यता को प्रतिपालन करता है अर्थात् सत्यवक्ता को अभय और दुष्ट को दण्ड देता है तुम उसके समीप जाकर अपने प्रयोजन का प्रश्न बुद्धि के अनुसार उससे कहने को योग्य हो वह सत्यवक्ता, धर्मात्मा, अतिथियों का पूजन करनेवाला, नागबुद्धि और शास्त्र में कुशल, सर्वज्ञ और अनेक गुणों से पूर्ण है और स्वभाव से सदैव जल के समान निर्मल अहर्निश जप में प्रवृत्त तप और शान्ति से शोभित श्रेष्ठ आचरणवान् ईश्वर का पूजन करनेवाला, महादानी, सन्तोषरूपी उत्तम व्रत में नियत, सत्यवक्ता, किसी के गुण में दोष न लगानेवाला, जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त है, देवता पितृ आदि से शेष अन्नादि भोजन का करनेवाला, सबसे प्रियभाषी, उपकार और सत्यतासंयुक्त, दूसरे के शुभाशुभकर्म्मों का जाननेवाला, शत्रुतारहित, दूसरे के अभीष्ट में प्रवृत्त गंगाजल के समान शुद्ध कुलवाला है ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेएकाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

एकसौबयासी का अध्याय ॥

ब्राह्मण बोला कि, मैंने आप से दूसरे का निश्चय और दृढ़ता करानेवाला वचन सुना यह ऐसा है जैसे कि किसी भार धरेहुए मनुष्य का भार उतारलेना और मार्ग में किसी थकेहुए का सोरहना अथवा थकेहुए को आसन देना प्यासे को जल और भूखे को अन्न का देना होता है, समयपर भूखे अतिथि को मनमाना भोजन मिलना और जैसा वृद्धपुरुष का पुत्र प्रसन्नता का देनेवाला होता है अथवा जैसे मन से विचार-कियेहुए की प्रीति और मित्र का दर्शन आनन्ददायक होता है उसीप्रकार आपने जो वचन कहे वह मुझको अत्यन्त प्रसन्नता के देनेवाले हैं, अब तुम ने विज्ञान वचन से जो यह उपदेश मुझको किया उसको मैं आकाश में दृष्टि करनेवाले के समान देखता और शोचता हूं हे साधो! आप आनन्दपूर्वक निवास करके प्रातःकाल जाने का विचार करियेगा आज की रात्रि मेरे साथ में सुखपूर्वक निवासकरो और जैसी आपने आज्ञा की है वैसाही मैं करूंगा इससमय सूर्य्यनारायण अस्तंगत होनेवाले हैं, भीष्मजी

बोले हे शत्रुहन्तः! तब वह अतिथि उसके शिष्टाचार को पाकर रात्रिभर उसी के समीप रहा और आनन्द से चौथे धर्म का वर्णन करतेहुए दोनों ने जब वह रात्रि व्यतीत की तब प्रातःकाल होते ही ब्राह्मण ने उस अतिथि को अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजा तदनन्तर वह कर्म का निश्चय करनेवाला अपने भाई पुत्र स्त्री आदि स पूछकर शुभकर्म में निश्चय करनेवाला ब्राह्मण अतिथि के बतायेहुए उस सर्पराज के स्थान को चला ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेद्व्यशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

एकसौतिरासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, वह ब्राह्मण अपने स्थान से चलकर मार्ग के अनेक विचित्र वन, पर्व्वत, तीर्थ, नदी, सरोवरों को देखताहुआ चला २ किसी मुनि के पास पहुँचा तो उस ब्राह्मण ने उस अतिथि के बतायेहुए नाग के स्थान को उस मुनि से पूछा तो वह इसके वचन को सुनतेही चलदिया, उस अर्थ के जानने वाले ब्राह्मण ने नाग के स्थानपर पहुँचकर हे अमुकनाग ! ऐसा सुन्दर वचन कहा कि मैं अमुक ब्राह्मण हूं इसके इस वचन को सुनतेही धर्मचारिणी पतिव्रता नागपत्नी ने आकर उसब्राह्मण को दर्शन दिया और सुन्दर व्रत में प्रवृत्त उस नाग की पत्नी ने बुद्धिके अनुसार धर्म्मपूर्व्वक उस ब्राह्मण का सत्कारपूर्व्वक पूजन किया और कुशल मङ्गल पूछकर बोली कि क्या आज्ञा है, ब्राह्मण ने कहा कि, मैं तेरे इस स्वच्छ पवित्र सुन्दर वचनों सेही आनन्दयुक्त होकर उस उत्तम नाग देवता का दर्शन करना चाहता हूं यही मेरा प्रथम उत्तम कार्य्य है इसीमें मेरे मन की परम इच्छा है इसीप्रयोजन से मैं सर्पराज के आश्रमको आया हूं, नाग की भार्य्या बोली हे ब्राह्मण! वह मेरा पति चारमहीने से सूर्य्य देवता का रथ धारण करने को गया है सो तुम को निस्सन्देह पन्द्रह दिन पीछे दर्शन देगा मैंने अपने पति के परदेश जाने का यह कारण तुम से वर्णन किया इस के सिवाय जो आपकी आज्ञा सेवा हो उसको हम से कहिये वही हम करें, ब्राह्मण ने कहा हे साध्वि, देवि! मैं उसीसे मिलने को आया हूं और उस नागराज की बाट देखता हुआ इस महावन में निवास करूगा तुम मेरी यह प्रार्थना नागराज से कहने के योग्य हो कि मेरे संग स्नेह करे, मैं भी सामान्य आहार करनेवाला उसके आने के समयतक गोमती के सुन्दर पुलिन में उस की बाट देखूंगा, तदनन्तर वह वेदपाठियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण वारंवार उस नागपत्नी को विश्वास देकर उक्तनदी के पुलिन अर्थात् रेत के टीलेपर गया ॥ १३॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्र्यशीत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १८३ ॥

एकसौचौरासी का अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, हे नरोत्तम! तब वह सर्पिणी उस तपस्वी ब्राह्मण के निराहार निवास करने से महादुःखित हुई और उस नाग के भाई बन्धु पुत्र आदि भी सब इकट्ठे होकर उस ब्राह्मण के पास गये और उस नदी के रेत में निराहार निवास करते हुए जप में प्रवृत्त उस ब्राह्मण को बैठ हुआ देखा, अतिथिपूजन में कुशल सर्पराज के सब भाईबन्धु वहां उस ब्राह्मण का वारंवार पूजन करके यह शुभ वचन बोले कि हे तपोधन! यहां तुम को आये हुए छः दिन व्यतीत होगये हे धर्मवत्सल! तुम अपने भोजन के विषय में कुछ नहीं कहते हो तुम हमारे पास आये हो और हम आप के सन्मुख वर्त्तमान हैं और हम को आपका अतिथिपूजन करना उचित है क्योंकि हम सब कुटुम्बी हैं, हे द्विजन्माओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण! तुम आहार के निमित्त मूल, फल, पत्र, दूध, अन्न आदि भोजन करने को योग्य हो, हे वन में निवासी, आहार त्यागनेवाले! आप के कारण धर्म सुनने के हेतु से यह सब बालक और वृद्ध पीड़ा पारहे हैं, हमारे इस कुल में कोई भी गृहस्थी ब्रह्महत्या करनेवाला मिथ्यावादी नहीं है और देवता अतिथि बान्धवों से पहले भोजन करनेवाला भी कोई नहीं है, ब्राह्मण बोला कि, मैंने तुम्हारे कहने से यह आहार का वचन किया कि नाग के आने में आठ दिन बाकी हैं, जो आठ रात्रि के व्यतीत होनेपर वह सर्प नहीं आवेगा तब आहार करलूंगा यह उसीके निमित्त मेरा व्रत है, शोच न करना चाहिये जैसे आये हो वैसेही चलेजाओ उसके निमित्त इस मेरे व्रत को तुम खंडित करने के योग्य नहीं हो, हे नरोत्तम! तब उस ब्राह्मण की आज्ञा पाकर अपने मनोरथ प्राप्त किये विना वह सब सर्प अपने २ घर को आये॥ १२॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचतुरशीत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १८४॥

एकसौपचासी का अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि, इसके अनन्तर बहुत तिथियुक्त समय के व्यतीत होने पर उस काम से निवृत्त हो सूर्य्य देवता की आज्ञा लेकर वह सर्प अपने स्थान पर आया, तब उसकी स्त्री चरणप्रक्षालनादि सेवा गुणयुक्त होकर उसके पास गई सर्प ने भी उस शुद्ध साध्वी स्त्री का बड़ा सत्कार करके पूछा, कि हे कल्याणिनि! पूर्व्व कही हुई युक्तिसंयुक्त बुद्धि से देवता अतिथि आदि के पूजन में नियत हो क्योंकि वह कर्म तेरे योग्य है, हे सुन्दरि! तुम स्त्रीबुद्धि से प्रयोजन की सिद्धि करनेवाली होकर आलस्य से मेरे वियोग में धर्म मर्य्यादा से पृथक् तो नहीं होगई, नागपत्नी बोली कि शिष्यों का धर्म गुरु की सेवा है

ब्राह्मणों का धर्म वेद का पढ़ना है नौकरों का धर्म स्वामी की आज्ञा का करना है राजा का धर्म प्रजा का पालना है, इसलोक में सब जीवों की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म कहाजाता है वैश्यों का धर्म अतिथिपूजन और यज्ञस्मृति है अर्थात् गौ सेवा आदि है शूद्रों का कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा है हे नागेन्द्र ! गृहस्थी का धर्म सब जीवों की वृद्धि को चाहना है, गृहस्थी को योग्य है कि सामान्य भोजन करना और सदैव बुद्धि के अनुसार व्रत करना मुख्यकर वह धर्म जो इन्द्रियों के सम्बन्ध से होता है और यह समझना कि यहां मैं किसका हूं कहां से आया और मेरा कौन है इसप्रकार सदैव मोक्ष आश्रम के बीच बड़े काम में श्रेष्ठ बुद्धि का लगानेवाला होवै और भार्य्या का उत्तम धर्म पतिव्रत कहाजाता है हे नागेन्द्र ! मैं तेरे उपदेश से उसको मुख्यता समेत जानती हूं सो मैं धर्म को अच्छेप्रकार जानतीहुई तुझ धर्म्मात्मा के नियत होते उत्तम मार्ग को त्यागकर कैसे कुमार्ग में चलूंगी, हे महाभाग ! देवताओं की धर्मचर्य्या नाश नहीं होती है मैं आलस्यरहित होकर अतिथियों के पूजन में सदैव प्रवृत्त हूं अब यहां आनेवाले ब्राह्मण को पन्द्रहदिन हुए उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं प्रकट किया और तेरे दर्शन को चाहता है, तेरे दर्शन का अभिलाषी तीव्रव्रतधारी वह ब्राह्मण गोमती के पुलिन में वेदपाठ कररहा है, हे नागेन्द्र ! मुझ को उस ब्राह्मण ने बड़ी सत्यता से उपदेश किया है कि वह सर्प जब आवै तब मेरे समीप उसको भेजना उचित है, हे महाज्ञानिन्, सर्प ! तुम को इस वचन के सुनतेही वहां जाकर उसको दर्शन देना अवश्य है ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपञ्चाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

एकसौछियासी का अध्याय ॥

नाग बोला हे पवित्रे, स्त्री ! तुम उसको ब्राह्मणरूप से कौन जानती हो केवल मनुष्य ब्राह्मण जानती हो वा देवता समझती हो हे यशस्विनि ! वह कौन मनुष्य मेरे दर्शन का अभिलाषी और समर्थ है और देखनेपर कौन सी आज्ञा के साथ वचन को कहेगा हे भामिनि ! निश्चय करके देवता असुर और देवऋषियों में नागलोग बड़े पराक्रमी दिव्यगन्ध धारण करनेवाले और वेगवान् होते हैं और वन्दना के योग्य होकर वर को भी देनेवाले हैं और हम भी उनके समान अथवा उनके अनुगामी हैं वह नाग मुख्य करके मनुष्यों को नहीं दर्शन देसक्के यह मेरा मत है, नागभार्य्या बोली हे वायुभक्षिन्, महाक्रोधिन् ! मैं सत्यता से जानती हूं कि देवता नहीं है इसके विषय में इसप्रकार जानती हूं कि वह भक्तपुरुष है और अपने निजकाम का चाहनेवाला तेरे दर्शन को इस प्रकार से चाहनेवाला है जैसे कि स्वाति के जल का प्यासा पपीहा वर्षनेवाले

बादलकी बाटको देखे, वह तेरे दर्शन के किये विना किसी दुःखरूप विघ्नको नहीं मानता है उत्तम कुल में जन्म लेनेवाला कोई अन्यसर्प भी किसी अतिथि को त्याग करके अपने घर में नहीं बैठरहता है सो तुम देहजन्य क्रोधको त्याग करके उसके देखने को योग्य हो अब उसके अभीष्ट नष्टकरने से तुम अपने को नष्ट मत करो, राजा अथवा राजकुमार आशावान् अपने आश्रितोंके अश्रुपात न पोंछकर भ्रूणहत्याको प्राप्त होता है मौनता सेज्ञानकी प्राप्ति है और दान से बड़ी शुभ कीर्त्ति होती है और सत्य बोलने से वाणी प्रसन्न होती है और परलोक में प्रतिष्ठा होती है, भूमि- दान करने से आश्रम के समान गति को प्राप्त करता है और न्याय से धनसंचय करके उसके फल को भोगता है, सबके अंगीकृत पक्षपात-रहित अपने हित करनेवाले धर्म को करके कोई भी नरक को नहीं जाता है यह बातें धर्म की जानी हुई हैं, नाग बोला अहंकारादिक से मेरा क्रोध नहीं है मेरे उत्पत्तिदोष से मुझ को बड़ा क्रोध है हे साध्वि ! तुम ने अपने वचनरूप अग्नि से उस मेरे क्रोध को भस्म करदिया जो संकल्प से उत्पन्न हुआ था, हे साध्वि ! मैं क्रोध से अधिक कोई बुरा दोष नहीं समझता हूं सर्प ही में विशेष करके वह क्रोधरूप निन्दा होती है, इन्द्र से ईर्षा करनेवाला वह महाप्रतापी रावण क्रोधके वशीभूत होकर रामचन्द्रजी के हाथ से मारागया, राजा कार्त्तवीर्य्य के पुत्रादिक महलों से बछड़ों को परशुराम करके लेजाना सुनकर अपने क्रोधसे व्याकुलहो-कर मारेगये इन्द्रकी समानता रखनेवाला महापराक्रमी कार्त्तवीर्य्य जिसका दूसरा नाम सहस्रार्जुन भी है वह भी क्रोधके ही कारण जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी के हाथ से मारागया, मैंने तेरे वचनको सुनकर यह तप और अनेक कल्याणों का नाश करनेवाला क्रोध अपने स्वाधीन किया, हे विशालाक्षि ! मैं अधिकतर अपनी प्रशंसा करता हूं उसी मुझ अवगुणी सर्प की तुम गुणवान् भार्य्या हो, मैं वहीं जाता हूं जहां वह ब्राह्मण नियत है और सब प्रकार से यही वचन नागिन से कहा कि वह ब्राह्मण अपने मनोरथ को प्राप्त करके ही जायगा ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेषडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

एकसौसत्तासी का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, वह सर्प उसी ब्राह्मण को मन से ध्यान करता हुआ उस के मनोरथ को विचारता अपनी सर्पगति से उस ब्राह्मण के पास पहुँचा हे राजन् ! स्वभाव से धर्मवत्सल बुद्धिमान् वह नागेन्द्र उसके समीप पहुँचकर यह मीठे वचन बोला कि हे ब्राह्मण ! मैं तुम को सन्मुख करके कहता हूं कि तुम को क्रोध करना योग्य नहीं है यहां किस हेतु से आये और क्या आप का प्रयो-जन है, हे ब्राह्मणोत्तम ! मैं सन्मुख से समीप होकर प्रीति के साथ तुम से

पूछता हूं कि तुम इस एकान्तस्थान में गोमती के रेतपर किसकी उपासना करते हो, ब्राह्मण ने कहा कि पद्मनाभ सर्प के दर्शन करने को यहां मुझे आये हुए को धर्मारण्यनाम उत्तम ब्राह्मण जानो मेरा प्रयोजन उसीसे है, मैंने उसको यहां से सूर्य्यलोक में जाना सुना है उसी अपने सुजन मित्र की बाट ऐसे देखरहा हूं जैसे कि खेती करनेवाले पर्जन्य नाम वर्षा के देवता बादल को देखते हैं, योगसंयुक्त सब दोषों से रहित होकर मैं उस वेद को पढ़ता हूं जो कि दुःखों का दूरकरनेवाला और कल्याणों से भराहुआ है, नाग बोला कि बड़ा आश्चर्य है कि तुम साधु और मित्रवत्सल कल्याणरूप चलन रखनेवाले हो हे महाभाग! निन्दा से रहित तुम दूसरे को कृपादृष्टि से देखते हो, हे ब्रह्मर्षे! मैं वही नाग हूं जैसा कि आप मुझ को जानते हो तुम अपनी इच्छानुसार आज्ञा करो आप का क्या अभीष्ट करूं हे श्रेष्ठ, ब्राह्मण! मैंने अपनी स्त्री आदि से आप का आगमन सुना है इसकारण मैं तुम्हारे दर्शनों को आया हूं अब आप मुझ को मिले हो अपने मनोरथ को सिद्ध करके जाओगे हे विश्वासयोग्य, उत्तम, ब्राह्मण! आप अपने अभीष्ट को मुझ से कहने को योग्य हैं वास्तव में हम सब आप के गुणों से बिकेहुए हैं इसहेतु से कि आप अपने हित को छोड़कर मेरा भी भला चाहते हैं, ब्राह्मणने कहा हे महाभाग, सर्प! मैं तेरे दर्शन की अभिलाषा करके आया हूं और प्रयोजन का न जाननेवाला मैं किसी अभीष्ट के पूछने को तुम्हारे पास आया हूं, हे महाभाग, ज्ञानिन्! मैं विषयों से रहित आत्मा में नियत होकर जीवों के लयस्थान ब्रह्म को निश्चय करताहुआ भी चलायमानचित्त हूं, तुम अपने उन उत्तम गुणों से प्रकाशमान हो जोकि कीर्त्तिरूप किरणों से युक्त चन्द्रमा के समान आत्मा से प्रकाशित हैं, हे सर्प! मुझ पूछनेवाले के जो जो प्रश्न हैं उनका तुम उत्तर दो फिर मैं अपने प्रयोजन को भी कहूंगा आप उनके सुनने के योग्य हैं॥ १६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८७॥

एकसौअट्ठासी का अध्याय॥

ब्राह्मण ने कहा कि, आप समय पर सावधानी से सूर्य्य का वह रथ धारण करने को जाते हो जिसमें एक चक्र है आपने जो कुछ वहां आश्चर्य्य नवीन देखा हो उसके कहने को योग्य हो, नाग ने कहा कि भगवन्! सूर्य्य देवता बड़ेआश्चर्य्यों के निवासस्थान हैं तीनों लोकों के सब अभीष्टतत्त्व उसी से प्रकट होते हैं, अच्छे २ सिद्ध, मुनि, देवता आदि जिसकी हजारों किरणों में आश्रित होकर ऐसे निवास करते हैं जैसे कि इसलोक के पक्षी वृक्ष की शाखाओं पर विश्राम करते हैं, सूर्य्य में नियत जिस बड़े भारी तेज से अति प्रबल वायु

निकलकर उसी सूर्य्य की किरणों में नियत होता है और आकाश में जंभाई लेत है तब बड़ा आश्चर्य होता है, हे ब्रह्मरूपे! वह सूर्य्य देवता संसार की वृद्धि के लिये उस वायु का रूपान्तर करके वर्षाऋतु में जल को उत्पन्न करता है इससे अधिक कौनसा आश्चर्य है उसी के मण्डल में उत्तम तेजरूप से नियत होकर महाप्रकाशमान अन्तर्यामी परमात्मा लोकों को देखता है यह भी बड़ा आश्चर्य्य है, जो देवता आठमहीनेतक अपनी पवित्र किरणों से संयुक्त होनेवाले जल को समयपर वर्षता है इससे अधिक और आश्चर्य क्या है, जिसके प्रकाशसमूह में आप आत्मा नियत है उसीकी कृपा से यह पृथ्वी जड़ चैतन्य समेत सब ओषधियों को धारण करती है, हे ब्राह्मण! जिस सूर्य देवता में महाबाहु आदिअन्तरहित सनातन देवता पुरुषोत्तम नियत है इससे अधिक आश्चर्य्य क्या है, यह एकबात आश्चर्य्य का भी आश्चर्य्य है जिसको कि तैंने निर्मल आकाश में सूर्य्य के द्वारा देखा है उसको मैं तुम से कहता हूं मध्याह्न के समय संसार में सूर्य्य के प्रकाशमान होनेपर एक प्रकाश सूर्य्य के भीतर ऐसा तेजस्वी दिखाई दिया जो अपने तेज के प्रकाश से सब लोकों को प्रकाशित करता आकाश को पूर्ण करके सूर्य्यदेवता के सन्मुख जाता था, जिसप्रकार आहुतिसंयुक्त अग्नि प्रकाशमान होता है उसीप्रकार अपने तेज की किरणों से लोकों को व्याप्त करके वाणी से परे दूसरे सूर्य्यरूप के समान था, उसके सन्मुख आने से सूर्य्य देवता ने दोनों हाथ दिये फिर उस पूजन के इच्छा करनेवाले ने भी अपना दक्षिण हाथ दिया, और आकाश को चीरकर किरणों के मण्डल में प्रवेश किया और क्षणमात्र में ही वह तेज एक होगया और सूर्य्य के रूप को प्राप्त किया फिर दोनों तेजों के मिलजाने पर हम को यह संदेह उत्पन्न हुआ कि इन दोनों में वह सूर्य्य कौन सा है जो रथ में नियत होकर वर्त्तमान है हम सबने संदेह में प्रवृत्त होकर सूर्य्य देवता से ही पूछा कि यह कौन पुरुष है जो आकाश को उल्लंघन करके दूसरे सूर्य्य के समान गया है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेऽष्टाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १८८॥

एकसौनवासी का अध्याय॥

सूर्य्य देवता ने उत्तर दिया कि यह न तो अग्नि देवता है न कोई असुर गन्धर्व है यह उञ्छवृत्ती सिद्धमुनि स्वर्ग को गया है, यह ब्राह्मण मूल फल का आहार करनेवाला सूखे पत्तों का खानेवाला वा पूजन करनेवाला सावधान था, इस ब्राह्मण ने संहिताओं के पाठों से शिवजी की स्तुति की और जिस निमित्त इसने स्वर्ग के द्वार के लिये उद्योग किया था उसी के हेतु से वह स्वर्ग को गया हे भुजंग लोगो! यह ब्राह्मण संसारी मनुष्यों से न मिलनेवाला अनिच्छावान्

सदैव उञ्छशिल का भोजन करनेवाला सब जीवों की भलाई में प्रवृत्त था, देवता असुर गन्धर्व पन्नग इत्यादि उन जीवों के ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं करसके हैं जिन्हों ने उत्तम गति को पाया है हे ब्राह्मण ! वहां मैंने इसप्रकार से आश्चर्य्य को देखा, हे ब्रह्मन् ! अच्छे शुद्ध इस मनुष्य ने चित्त की इच्छा के अनुसार शुद्ध गति को पाया और सूर्य्य के साथ पृथ्वी पर भ्रमण करता है ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेनवाशीत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

एकसौनब्बे का अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि, हे सर्प ! बड़ा आश्चर्य्य है और निस्सन्देह मैं प्रयोजन के अनुसार प्राप्त होनेवाले वचनों से विदित कियागया हूं, हे साधुरूप, सर्प ! तुम्हारा कल्याण हो आप मुझ को अब जाने की आज्ञा दो और आप का कोई कार्य्य मेरे करने के योग्य होय तो मुझे स्मरण करियेगा नाग ने कहा कि, हे ब्राह्मण ! आप अपने हृदय के कार्य्य को कहे विना कहां जाते हो जो करने के योग्य है और जिसके निमित्त तुम यहां आये हो उसको अवश्य कहो हे सुन्दर व्रतवाले, ब्राह्मण ! उक्त अनुक्त काम के करनेपर तुम मुझ से पूछकर और आज्ञा लेकर यहां से जाओगे हे मित्र ब्रह्मर्षे ! जैसे कि कोई मनुष्य वृक्ष के फल लेने के निमित्त वृक्ष के नीचे जाकर उस वृक्ष को त्यागकर निष्फल जाय उसी प्रकार तुम यहां आकर अपने अभीष्ट सिद्ध किये विना मुझे त्यागकर जाते हो यह तुम को योग्य नहीं है, हे निष्पाप, ब्राह्मण ! मैं तुम से प्रीति करनेवाला हूं और तुमभी मुझपर प्रीति करते हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है यह सब लोक आप का है आप को मेरी मित्रता करने में क्या संदेह है, ब्राह्मण ने कहा हे बड़े, बुद्धिमन्, आत्मज्ञानिन्, सर्प ! यह इसी प्रकार से है किसी दशा में भी देवता तुम से अधिक नहीं हैं अर्थात् तुम देवताओं के समान हो, जो पुरुषोत्तम सूर्य्य के भीतर वर्त्तमान है वही तुम और हम भी हैं और जो मैं हूं वही आप हो अर्थात् हम तुम में कुछ भी अन्तर नहीं है वह आत्मा अद्वैत है जिसमें हम तुम और सब तत्त्व सदैव लय होते हैं हम वही ब्रह्म हैं, ब्राह्मण ने कहा हे सर्पराज ! पुण्यसंचय में मुझ को सन्देह था सो हे साधो ! मैं मोक्षसाधन नाम उञ्छवृत्ति व्रत को करूंगा, यह मेरा पूर्व निश्चय का श्रेष्ठ कारण नियत हुआ था सो पूर्ण हुआ तुम्हारा कल्याण हो अब मुझे आप बिदा कीजिये मेरा सब मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेनवत्युपरिशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

एकसौ इक्यानवे का अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि, हे राजन् ! तब निश्चय करनेवाला वह ब्राह्मण सर्प की

आज्ञा लेकर दीक्षा लेने की इच्छा से भार्गव च्यवनऋषि के पास गया, औ भार्गवजी से संस्कारयुक्त होकर धर्म में प्रवृत्त हुआ और इस कथा को भी अपन गुरु च्यवनजी के सन्मुख वर्णन किया, हे राजन्! तब भार्गवजी ने भी राज जनक की सभा में महात्मा नारदजी के सन्मुख इस पवित्र कथा को वर्णन किया, हे राजेन्द्र! उन नारदजी ने इस उत्तम कथा को इन्द्र के पूछनेपर देव सभा में वर्णन किया, और पूर्व समय में यह शुभ कथा इन्द्र ने भी श्रेष्ठ ऋषियो के सन्मुख वर्णन की, हे राजन्! जब परशुरामजी से मेरा युद्ध बड़ा भयकारी हुआ तब यह कथा वसुओं ने मेरे सन्मुख वर्णन करी हे धर्मध्वज! मैंने भी यह धर्मरूप उत्तम कथा मूलसमेत तुम से वर्णन करी, हे राजन्, युधिष्ठिर! जो तुम मुझ से पूछते हो वह यही उत्तम और पवित्र धर्म्म है, जिसको करके वह वीर ब्राह्मण भी इसी व्रत में धर्म, अर्थ, कामादिक से निरपेक्ष हुआ, और अपने कर्म में सर्पराज की आज्ञा पाके हिंसाआदि दोषों से और शोच आदि दुःखों से रहित सहनशील होकर उञ्छशिल को निर्वाहमात्र भोजन करनेवाला होकर वनमें जाके पूर्व्वोक्त उत्तम गति को प्राप्त हुआ॥ ६॥

इति श्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे एकनवत्युपरिशततमोऽध्यायः॥ १६१॥

इति शान्तिपर्वसमाप्तम्॥